संस्कृत-साहित्य-ग्रन्थमाला—१

सचित्र

महाभारत-संहिता

आदि पर्व (पहला खण्ड)

[मूल संस्कृत के साथ शुद्ध, सरल और सरस हिन्दी टीका]

भाषान्तरकार

साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

प्रकाशक

ओझाबन्धु-आश्रम, इलाहाबाद

मूल्य १) रुपया

महाभारत-संहिता का सूचीपत्र

आदि पर्व



राजा धृतराष्ट्र और सञ्जय

Prabasi Press, Calcutta.

॥ श्रीः ॥

महाभारत-संहिता

आदिपर्व

• • •

प्रथम अध्याय

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्।
ओंनमो भगवते वासुदेवाय। ओंनमः पितामहाय। ओंनमः प्रजापतिभ्यः। ओंनमः कृष्णद्वैपायनाय। ओंनमः सर्वविघ्नविनायकेभ्यः। लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे ॥ १ ॥
सुखासीनानभ्यगच्छद्‌ब्रह्मर्षीन्संशितव्रतान्। विनयावनतो भूत्वा कदाचित्सूतनन्दनः ॥२॥
तमाश्रममनुप्राप्तं नैमिषारण्यवासिनाम्। चित्राः श्रोतुं कथास्तत्र परिवव्रुस्तपस्विनः ॥३॥

नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा देवी सरस्वती को नमस्कार करके जय नामक इतिहास ग्रन्थ अर्थात् महाभारतसंहिता का पाठ प्रारम्भ करे। भगवान् वासुदेव को नमस्कार। पितामह ब्रह्मा को नमस्कार, सृष्टि के उत्पादक प्रजापतियों को नमस्कार। महाभारतसंहिता के कर्ता कृष्णद्वैपायन को नमस्कार, सब विघ्नों को नष्ट करनेवाले गणेश को नमस्कार।

लोमहर्षण के पुत्र सूतवंशीय पुराण के विद्वान् उग्रश्रवा नैमिषक्षेत्र में कुलपति शौनक के बारह वर्षों में समाप्त होनेवाले यज्ञ में सुखपूर्वक बैठे हुए कठोर व्रत करनेवाले ब्रह्मर्षियों के पास सूतनन्दन विनीत होकर किसी समय गये ॥ १, २ ॥ नैमिषारण्यवासी मुनियों के

अभिवाद्यमुनींस्तांस्तु सर्वानेव कृतांजलिः । अपृच्छत्स तपोवृद्धिं सद्भिश्चैवाभिपूजितः ॥४॥
अथ तेषूपविष्टेषु सर्वेष्वेव तपस्विषु । निर्दिष्टमासनं भेजे विनयाल्लौमहर्षणिः ॥५॥
सुखासीनं ततस्तं तु विश्रांतमुपलक्ष्य च । अथापृच्छदृषिस्तत्र कश्चित्प्रस्तावयन्कथाः ॥६॥
कुत आगम्यते सौते क्व चायं विहृतस्त्वया । कालः कमलपत्राक्ष शंसैतत्पृच्छतो मम ॥७॥
एवं पृष्टोऽब्रवीत्सम्यग्यथावल्लौमहर्षणिः । वाक्यं वचनसंपन्नस्तेषां च चरिताश्रयम् ॥८॥
तस्मिन्सदसि विस्तीर्णे मुनीनां भावितात्मनाम् ।
॥ सौतिरुवाच ॥ जनमेजयस्य राजर्षेः सर्पसत्रे महात्मनः ॥९॥
समीपे पार्थिवेन्द्रस्य सम्यक्पारिक्षितस्य च । कृष्णद्वैपायनप्रोक्ताः सुपुण्याः विविधाः कथाः॥१०॥
कथिताश्चापि विधिवद्या वैशंपायनेन वै । श्रुत्वाहं ता विचित्रार्था महाभारतसंश्रिताः ॥११॥
बहूनि संपरिक्रम्य तीर्थान्यायतनानि च । समन्तपञ्चकं नाम पुण्यं द्विजनिषेवितम् ॥१२॥
गतवानस्मि तं देशं युद्धं यत्राभवत्पुरा । कुरूणां पाण्डवानां च सर्वेषां च महीक्षिताम्॥१३॥
दिदृक्षुरागतस्तस्मात्समीपं भवतामिह । आयुष्मन्तः सर्व एव ब्रह्मभूता हि मे मताः ॥१४॥
कृताभिषेकाः शुचयः कृतजप्या हुताग्नयः । भवन्त आसने स्वस्था ब्रवीमि किमहं द्विजाः ॥१५॥

आश्रम में आये हुए उग्रश्रवा को देखकर वे तपस्वी अद्भुत कथाएँ सुनने की इच्छा से उनसे बोले ॥ ३ ॥ सज्जनों के द्वारा प्रशंसित उग्रश्रवा ने उन समस्त मुनियों को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी तपोवृद्धि के समाचार पूछे ॥ ४ ॥ उन समस्त तपस्वियों के यथास्थान बैठ जाने पर नियत आसन पर लोमहर्षण के पुत्र विनीत भाव से बैठे ॥ ५ ॥ उनके सुखपूर्वक बैठ जाने पर तथा उनकी थकावट दूर हुई यह जान लेने पर एक ऋषि ने बातचीत चलाने के उद्देश्य से यह पूछा ॥ ६ ॥ हे सूतपुत्र, आप कहाँ से आ रहे हैं ? हे कमलपत्राक्ष, आपने यह समय कहाँ बिताया यह मैं आपसे पूछ रहा हूँ, आप उत्तर दें ॥ ७ ॥ उस मुनि के ऐसा पूछने पर शब्दप्रयोग करने में निपुण लोमहर्षण के पुत्र, उन मुनियों और राजाओं के चरित से सम्बन्ध रखनेवाले वचन बोले ॥ ८ ॥ शुद्ध चित्तवाले मुनियों की उस बड़ी सभा में लोमहर्षण पुत्र बोले। सूतवंशी उग्रश्रवा बोले—राजर्षि महात्मा जनमेजय के सर्पयज्ञ में मैं था ॥ ९ ॥ वहाँ राजश्रेष्ठ परीक्षित्-पुत्र के पास कृष्णद्वैपायन की कही हुई अनेक प्रकार की पवित्र कथाएँ—जो वैशम्पायन ने विधिपूर्वक कही थीं, जिन कथाओं का सम्बन्ध महाभारत से है और जिनके अर्थ विचित्र हैं—सुनकर मैं नदी-प्रधान तथा स्थान-प्रधान तीर्थों में भ्रमण करता हुआ समन्त-पंचक नामक स्थान में गया, जहाँ द्विजगण निवास करते हैं। जिस समन्तपंचक नामक स्थान में कौरवों-पांडवों तथा समस्त राजाओं का पहले युद्ध हुआ था ॥ १०, ११, १२, १३ ॥ वहीं से देखने के लिए मैं आपलोगों के पास आया हूँ। दीर्घजीवी आप सभीलोग मेरे मत से ब्रह्मस्वरूप हैं। सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी महाभाग आपलोगों का इस यज्ञ में अभिषेक हुआ है। आपलोग पवित्र हैं, आपलोगों ने अग्नि में हवन किया है और जप किया है। आपलोग अपने आसनों पर बैठे रहें। ब्राह्मणों, आपलोग बतलावें मैं क्या कहूँ ॥ १४, १५ ॥ पुराण की संहिताएं, धर्म और अर्थ

पुराणसंहिताः पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रिताः । इतिवृत्तं नरेन्द्राणामृषीणां च महात्मनाम् ॥१६॥

॥ऋषय ऊचुः॥

द्वैपायनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा । सुरैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम् ॥१७॥
तस्याख्यानवरिष्ठस्य विचित्रपदपर्वणः । सूक्ष्मार्थन्याययुक्तस्य वेदार्थैर्भूषितस्य च ॥१८॥
भारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुताम् । संस्कारोपगतां ब्राह्मीं नानाशास्त्रोपबृंहिताम् ॥१९॥
जनमेजयस्य यां राज्ञो वैशम्पायन उक्तवान् । यथावत्स ऋषिस्तुष्ट्या सत्रे द्वैपायनाज्ञया ॥२०॥
वेदैश्चतुर्भिः संयुक्तां व्यासस्याद्भुतकर्मणः । संहितां श्रोतुमिच्छामः पुण्यां पापभयापहाम् ॥२१॥
आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥२२॥
असच्च सदसच्चैव यद्विश्वं सदसत्परम् । परावराणां स्रष्टारं पुराणंपरमव्ययम् ॥२३॥

सम्बन्धी पवित्र कथाएं, नल-राम आदि राजाओं का इतिहास, भृगु आदि ऋषियों तथा पतिव्रताओं का इतिहास,इनमें से क्या कहूँ ॥ १६ ॥ ऋषिगण बोले—परमर्षि द्वैपायन ने जो पुराण कहा है और जिसे सुनकर देवताओं तथा ब्रह्मर्षियों ने उसकी प्रशंसा की है ॥ १७ ॥ वह आख्यान सब आख्यानों में श्रेष्ठ है, उसके पद विचित्र और रमणीय हैं । आदि,सभा, प्रभृति उसके उत्तम पर्व हैं, उस आख्यान में सूक्ष्म अर्थ तथा श्रेष्ठ युक्तियाँ वर्तमान हैं और वेदार्थ से वह भूषित है ॥१८॥ वह आख्यान भारतीय इतिहास का है, उस इतिहास की भाषा पवित्र और ग्रन्थ के अर्थों को साफ साफ बतलानेवाली है, वह भाषा व्याकरण के नियमों से युक्त तथा भिन्न भिन्न शास्त्रों के अनुकूल है, अन्य शास्त्रों के विरुद्ध नहीं है ॥१९॥ राजा जनमेजय के यज्ञ में महर्षि द्वैपायन की आज्ञा से प्रसन्नतापूर्वक जिसको ऋषि वैशम्पायन ने कहा था ॥ २० ॥ वही चारों वेदों के अर्थ से युक्त, अद्भुतकर्मा व्यास की बनाई संहिता, हमलोग सुनना चाहते हैं, जो कल्याण बढ़ानेवाली तथा चित्त शुद्ध करनेवाली है ॥२१॥

सौति बोले—जो आद्य पुरुष हैं, मायाहीन चैतन्यरूप हैं, जो ईश हैं, स्वामी हैं, अर्थात् माया के अधीश्वर हैं, जो पुरुहूत हैं, अर्थात् यज्ञ में अनेक होता जिनके उद्देश्य से हवन करते हैं, अथवा सामगायक जिनकी स्तुति करते हैं, जो व्यक्त हैं अर्थात् कर्मफल के देनेवाले हैं, जो अव्यक्त हैं, कारणरूप हैं, प्रलयकाल में जिनमें सब संसार मूलरूप से वर्तमान रहता है, जो सनातन हैं, सदा एकरूप से वर्तमान रहते हैं, जो ऋत हैं, सत्य हैं, शुद्ध स्वरूप हैं, जो अक्षय हैं, व्यापक हैं, अर्थात् उपाधिभूत संसार की सत्ता उनसे पृथक् नहीं है जो ब्रह्म हैं, विशाल हैं अर्थात् देश और काल के द्वारा उनकी माप नहीं हो सकती ॥ २२ ॥ (ऊपर के श्लोक में भगवान् के तीन रूप—शुद्ध चैतन्य, मायायुक्त चैतन्य और यज्ञ पुरुष का वर्णन हुआ है । अगले श्लोक में विराटरूप का वर्णन किया जाता है) जो सदसत् से अर्थात् कार्यकारण से भिन्न है, वही विश्व है, अर्थात् वह विराट् ब्रह्म है । वे सत् और असत् हैं,क्योंकि उनका प्रत्यक्ष होता है, इससे वे सत् हैं। श्रुतियों के अनुसार असत् हैं, यथार्थ में असत् ही हैं, अर्थात् जिस प्रकार रस्सी में सर्प का भ्रम हो जाने पर रस्सी सर्प ही समझी जाती है, इस भ्रम दशा में वह सर्प रूप से ही प्रतीत होती है, पर यथार्थ में वह सर्प नहीं है । (अब भगवान् के पांचवे पिण्डरूप का वर्णन किया जाता है ।) कार्य और कारण के

मङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम्। नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥२४॥
महर्षेः पूजितस्येह सर्वलोकैर्महात्मनः। प्रवक्ष्यामि मतं पुण्यं व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥२५॥
आचख्युः कवयः केचित्संप्रत्याचक्षते परे। आख्यास्यन्ति तथैवान्ये इतिहासमिमं भुवि ॥२६॥
इदं तु त्रिषु लोकेषु महज्ज्ञानं प्रतिष्ठितम्। विस्तरैश्च समासैश्च धार्यते यद्द्विजातिभिः॥२७॥
अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः। छन्दोवृत्तैश्चविविधैरन्वितं विदुषां प्रियम् ॥२८॥
निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्वतस्तमसावृते। बृहदंडमभूदेकं प्रजानां बीजमव्ययम् ॥२९॥
युगस्यादौ निमित्तं तन्महद्दिव्यं प्रचक्षते। यस्मिन्संश्रूयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनम् ॥३०॥
अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च सर्वत्र समतां गतम्। अव्यक्तं कारणं सूक्ष्मं यत्तत्सदसदात्मकम् ॥३१॥

उत्पन्न करनेवाले हैं, उनका कभी नाश नहीं होता। वे पुराण हैं, सबके कारण हैं, सनातन हैं। ॥२३॥ जो मंगलस्वरूप, मंगल देनेवाले हैं, जो व्यापक हैं,जो भोग और मोक्ष चाहनेवालों के लिए आदरणीय हैं, जिनमें कोई बाहरी दोष नहीं लगता, जो स्वभाव से ही शुद्ध हैं, जो इन्द्रियों के स्वामी हैं, नियामक हैं, और जो स्थावर तथा जंगम को ज्ञान देनेवाले हैं, उन भगवान् को नमस्कार करके व्यास का मत कहूँगा। उन व्यास का जो महर्षि हैं, वेदों के विभाग करनेवाले हैं, सब लोक के द्वारा पूजित हैं, प्रशंसित हैं, जो अद्भुत कर्मा हैं अर्थात् जिन्होंने विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया है ॥२४, २५॥ इस इतिहास को पहले के कई कवियों ने कहा है, इस समय भी कई इस इतिहास को कहते हैं, और भविष्य में भी लोग इसको कहेंगे ॥२६॥ ज्ञानरूप जिन वेदों को द्विजाति धारण करते हैं, वही इस इतिहास के रूप में, संक्षेप और विस्तार के साथ, बहुत बड़ा ज्ञान अर्थात् सब जातियों को ज्ञान देनेवाला ज्ञान तीनों लोकों में प्रतिष्ठित हुआ है अर्थात् सबको इससे ज्ञान प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ यह इतिहास शुद्ध शब्दों से अलंकृत है, लौकिक और वैदिक आचारों का वर्णन तथा शब्दों का इसमें प्रयोग हुआ है। वैदिक और लौकिक अनेक छन्दों का इसमें निवेश है, अतएव यह विद्वानों का प्रिय है ॥२८॥ जो प्रजाओं का बीज है अर्थात् जगत् का उपादान कारण है, जो एक था अर्थात् निमित्त कारण आदि की जिसे अपेक्षा न थी, जो अव्यय था, अपरिणामी था, जिसमें कोई विकार नहीं हो सकता था, वही ब्रह्माण्ड हुआ। वह निष्प्रभ था, नामरूप न होने के कारण उसका परिचय नहीं हो सकता था, आलोकरहित था, आलोक का अर्थ है ईश्वरोपाधिभूत माया, उससे वह रहित था और तम से आवृत था। तम का अर्थ है आच्छादक रूप माया, उसीसे वह अण्ड उत्पन्न हुआ था। जिस प्रकार स्वप्न प्रपंच उत्पन्न होता है, उसी प्रकार वह ब्रह्माण्ड भी उत्पन्न हुआ था ॥ २९ ॥ युग के आदि में, ब्रह्मकल्प के प्रारम्भ में, महत्तत्व निमित्त कारण था, जो दिव्य था अर्थात् भौतिक न था। सुना जाता है जिसमें सत्य, ज्योति और सनातन ब्रह्म प्रविष्ट हुए हैं। जिसमें विकार न हो वह सत्य है, ज्योति का अर्थ है चैतन्य, सनातन सदा एक रूप से रहनेवाला ॥ ३० ॥ जो अद्भुत हैं, दुर्ज्ञेय हैं, वचन और मन के अतीत हैं, जो सर्वत्र समानरूप से वर्तमान हैं, जिनका विभाग नहीं हुआ है, जो कारण हैं, जो सूक्ष्म हैं अर्थात् इन्द्रियों के अगोचर हैं और जो सदसत् स्वरूप हैं अर्थात् अनिर्वचनीय हैं ॥ ३१ ॥

यस्मात्पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः । ब्रह्मा सुरगुरुः स्थाणुर्मनुः कःपरमेष्ठ्यथ ॥३२॥
प्राचेतसस्तथा दक्षो दक्षपुत्राश्च सप्त वै । ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः ॥३३॥
पुरुषश्चाप्रमेयात्मा यं सर्व ऋषयो विदुः । विश्वेदेवास्तथादित्या वसवोऽश्विनावपि॥३४॥
यक्षाःसाध्याःपिशाचाश्चगुह्यकाः पितरस्तथा । ततः प्रसूता विद्वांसः शिष्टा ब्रह्मर्षिसत्तमाः॥३५॥
राजर्षयश्चबहवः सर्वैः समुदिता गुणैः । आपो द्यौःपृथिवीवायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ॥३६॥
सम्वत्सरर्तवो मासाः पक्षाहोरात्रयः क्रमात् । यच्चान्यदपि तत्सर्वं सम्भूतं लोकसाक्षिकम् ॥३७॥
यदिदं दृश्यते किञ्चिद्भूतं स्थावरजंगमम् । पुनः संक्षिप्यते सर्वं जगत्प्राप्ते युगक्षये ॥३८॥
यथर्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथाभावा युगादिषु॥३९॥
एवमेतदनाद्यन्तं भूतसंहारकारकम् । अनादिनिधनं लोके चक्रं संपरिवर्तते ॥४०॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च । त्रयस्त्रिंशच्च देवानां सृष्टिः संक्षेपलक्षणा ॥४१॥
दिवः पुत्रो बृहद्भानुश्चक्षुरात्मा विभावसुः । सविता स ऋचीकोऽर्को भानुराशावहो रविः॥४२॥
पुत्रा विवस्वतः सर्वे मह्यास्तेषां तथावरः । देवभ्राट् तनयस्तस्य सुभ्राडिति ततःस्मृतः ॥४३॥

उस अंड से पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जो पहले प्रजापति थे । अनन्तर देवगुरु विष्णु और स्थाणु शिव हुए । पुनः मनु देवता, परमेष्ठी, प्राचेतस तथा दक्ष और दक्ष के सात पुत्र उत्पन्न हुए । इसके अनन्तर इक्कीस प्रजापति हुए । (ये मनु आदि, सृष्टि उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा की विभूति हैं ॥३२॥ ॥३३॥ पुनः पुरुष उत्पन्न हुए, जिनको ऋषिगण अप्रमेयात्मा कहते हैं अर्थात् जो विराट् पुरुष हैं । पुनः विश्वेदेव, आदित्य वसु और आश्विन उत्पन्न हुए । ये विष्णु की विभूति हैं ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् यक्ष,साध्य, पिशाच गुह्यक और पिशाच उत्पन्न हुए। ये शिव की विभूति हैं। अनन्तर ब्रह्मर्षि उत्पन्न हुए जो सज्जन तथा विद्वान् थे ॥ ३५ ॥ अनन्तर राजर्षि उत्पन्न हुए, जो राजर्षि के समस्त गुणों से युक्त थे । जल, सूर्य, पृथिवी, वायु, आकाश, और चन्द्रमा उत्पन्न हुए ॥ ३६ ॥ अनन्तर संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, और दिन-रात ये क्रम से उत्पन्न हुए । इसी प्रकार और जो कुछ देखा और सुना जाता है,वह सब भी उसी अण्ड से उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥ स्थावर-जंगम जो कुछ पदार्थ यहाँ देखे जाते हैं, वे सब पुनः प्रलयकाल में विलीन हो जाते हैं, वे अपने कारण के रूप में बदल जाते हैं ॥३८॥ ऋतु के प्रकट होने पर उसके चिन्ह प्रकट होते हैं; सर्दी, गर्मी, बरसात आदि होते हैं, उनके बदलने पर जब पुनः वही ऋतु आती है, तब उसके वही चिन्ह प्रकट होते हैं। गर्मी में गर्मी पड़ती है और सर्दी में सर्दी, यही नियम सृष्टि के लिए भी है । एक बार जो पदार्थ उत्पन्न हुआ है, उसका जो नाम पड़ा है, जैसा रूप है, प्रलय के अन्त में दूसरी सृष्टि के समय भी वही पदार्थ उत्पन्न होता है, उसका वही नाम होता है और वही रूप ॥ ३९ ॥ यह सभी चक्र अनादि और सान्त है । प्राणी उत्पन्न होते हैं और उनका संहार हो जाता है, इसी प्रकार अनादि और अन्तवान् यह चक्र घूमता रहता है ॥ ४० ॥ तैंतीस हजार तैंतीस सौ और तैंतीस देवता उत्पन्न हुए, यह संक्षेप सृष्टि है । अर्थात् ये जड़सृष्टि के अभिमानी देवता हैं ॥ ४१ ॥ दिवःपुत्र, बृहद्भानु, चक्षुरात्मा, विभावसु, सविता, ऋचीक, अर्क, भानु, आशावह, रवि, और सह्य ये सब विवस्वान्

सुभ्राजस्तु त्रयः पुत्राः प्रजावन्तो बहुश्रुताः । दशज्योतिःशतज्योतिःसहस्रज्योतिरेव च ॥४४॥
दश पुत्रसहस्राणि दशज्योतेर्महात्मनः । ततो दशगुणाश्चान्ये शतज्योतेरिहात्मजाः ॥४५॥
भूयस्ततो दशगुणाः सहस्रज्योतिषः सुताः । तेभ्योऽयं कुरुवंशश्च यदूनां भरतस्य च ॥४६॥
ययातीक्ष्वाकुवंशश्च राजर्षीणां च सर्वशः । संभूतःबहवो वंशाः भूतसर्गाः सुविस्तराः॥४७॥
भूतस्थानानि सर्वाणि रहस्यं त्रिविधं च यत् । वेदा योगःसविज्ञानो धर्मोऽर्थः कामएव च॥४८॥
धर्मकामार्थयुक्तानि शास्त्राणि विविधानि च । लोकयात्राविधानं च सर्वं तद्दृष्टवानृषिः ॥४९॥
इतिहासाः सवैयाख्या विविधाःश्रुतयोऽपि च । इह सर्वमनुक्रान्तमुक्तं ग्रन्थस्य लक्षणम् ॥५०॥
विस्तीर्यैतन्महज्ज्ञानमृषिः संक्षिप्य चाब्रवीत् । इष्टंहि विदुषां लोकेसमासव्यासधारणम् ॥५१॥
मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथापरे । तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते ॥५२॥
विविधं संहिताज्ञानं दीपयन्ति मनीषिणः । व्याख्यातुं कुशलाःकेचिद्ग्रन्थान्धारयितुं परे॥५३॥
तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम् । इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः ॥५४॥
पराशरात्मजो विद्वान् ब्रह्मर्षिः संशितव्रतः । तदाख्यानवरिष्ठं स कृत्वा द्वैपायनः प्रभुः॥५५॥
कथमध्यापयानीह शिष्यानित्यन्वचिन्तयत् । तस्य तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ऋषेर्द्वैपायनस्य च ॥५६॥

के पुत्र हुए । इन सब में छोटा सुभ्राट् था, जिसका पुत्र देवभ्राट् हुआ ॥ ४२, ४३ ॥ सुभ्राट् के तीन पुत्र हुए, दसज्योति शतज्योति और सहस्रज्योति। ये तीनों पुत्रवान् तथा विद्वान् थे ॥ ४४ ॥ महात्मा दसज्योति के दस हजार पुत्र उत्पन्न हुए। इसके दसगुने पुत्र शतज्योति के हुए, इसके भी दसगुने सहस्र ज्योति के पुत्र उत्पन्न हुए। इन्हींसे कुरु, यदु, भरत, ययाति, इक्ष्वाकु आदि राजर्षियों के वंश चले, इनके वंशों से भी अनेक वंश चले जिससे प्राणिसृष्टि का विस्तार हुआ ॥४५, ४६॥ प्राणियों के रहने के स्थान, नगर, तीर्थ आदि, धर्म अर्थ और काम के तीन प्रकार के रहस्य, कर्म उपासना और ज्ञान, धर्म अर्थ और काम के वर्णन करनेवाले विविध शास्त्र तथा जीविका के उपाय यह सब ऋषि व्यास ने योगबल से जाना ॥ ४८, ४९ ॥ इतिहास, व्याख्यान अनुव्याख्यान, अर्थात् सूत्ररूप से किसी बात को कहकर उसका विस्तार करना तथा विविध श्रुतियाँ इन सब का अनुक्रम से वर्णन करना इस ग्रन्थ का विषय है ॥५०॥ इस विशाल ज्ञान का ऋषि ने संक्षेप और विस्तार से वर्णन किया है, क्योंकि संक्षेप और विस्तार विद्वानों को प्रिय है ॥५१॥ इस भारत ग्रन्थ का कल्प भेद से आठ भेद है। कई लोग 'नारायणं नमस्कृत्य' इस मन्त्र से इसका प्रारम्भ मानते हैं। कई आस्तीक चरित से तथा कई उपरिचर की कथा से भारत का प्रारम्भ मानते और विधिवत् इसका पाठ करते हैं ॥५२॥ विद्वान् इस संहिता के भिन्न भिन्न ज्ञानों को प्रकाशित करते हैं। व्याख्या करने में कुशल कई विद्वान इस ग्रन्थ का अध्ययन करते हैं ॥५३॥ सत्यवती-पुत्र व्यास ने तपस्या और ब्रह्मचर्य्य के द्वारा सनातन वेद का विभाग करके इस पवित्र इतिहास ग्रन्थ को बनाया ॥ ५४ ॥ पराशरपुत्र कठोरव्रती ब्रह्मर्षि विद्वान् द्वैपायन प्रभु ने इस श्रेष्ठ आख्यान की रचना की ॥५५॥ इस ग्रन्थ का अध्ययन शिष्यों के लिये कैसे सुलभ होगा इसका विचार ऋषि व्यासदेव करने लगे। ऋषि ऐसा विचार कर रहे हैं, यह जानकर लोकगुरु भगवान्

तत्राजगाम भगवान् ब्रह्मा लोकगुरुः स्वयम् । प्रीत्यर्थं तस्य चैवर्षेर्लोकानां हितकाम्यया ॥५७॥
तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः । आसनं कल्पयामास सर्वैर्मुनिगणैर्वृतः ॥५८॥
हिरण्यगर्भमासीनं तस्मिंस्तु परमासने । परिवृत्यासनाभ्याशे वासवेयः स्थितोऽभवत् ॥५९॥
अनुज्ञातोऽथ कृष्णस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना । निषसादासनाभ्याशे प्रीयमाणःशुचिस्मितः ॥६०॥
उवाच स महातेजा ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । कृतं मयेदं भगवन्काव्यं परमपूजितम् ॥६१॥
ब्रह्मन्वेदरहस्यं च यच्चान्यत्स्थापितं मया । सांगोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया ॥६२॥
इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत् । भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम् ॥६३॥
जरामृत्युभयव्याधिभावाभावविनिश्चयः । विविधस्य च धर्मस्य ह्याश्रमाणां च लक्षणम् ॥६४॥
चातुर्वर्ण्यविधानं च पुराणानां च कृत्स्नशः । तपसो ब्रह्मचर्यस्य पृथिव्याश्चन्द्रसूर्ययोः ॥६५॥
ग्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणं च युगैः सह । ऋचो यजूंषि सामानि वेदाध्यात्मं तथैव च ॥६६॥
न्यायशिक्षाचिकित्सा च दानं पाशुपतं तथा । हेतुनैव समं जन्म दिव्यं मानुषसंज्ञितम् ॥६७॥
तीर्थानां चैव पुण्यानां देशानां चैव कीर्तनम् । नदीनां पर्वतानां च वनानां सागरस्य च ॥६८॥
पुराणांचैवदिव्यानां कल्पानां युद्धकौशलं । वाक्यजातिविशेषाश्च लोकयात्राक्रमश्च यः ॥६९॥

ब्रह्मा ऋषि को प्रसन्न करने के लिये और जनता के कल्याण के लिये वहाँ स्वयं उपस्थित हुए ॥५६॥ ॥५७॥ ब्रह्मा को देख कर व्यास को आश्चर्य हुआ । वे हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक खड़े हो गए । पुनः अन्य मुनियों के साथ उन्होंने ब्रह्मा को आसन दिया ॥५८॥ हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा जब सुखपूर्वक आसन पर बैठ गए, तब व्यासदेव आकर उनके आसन के पास खड़े हुए ॥५९॥ ब्रह्मा की आज्ञा पाकर कृष्णद्वैपायन ब्रह्मा के आसन के पास मुस्कराते हुए प्रसन्नता पूर्वक बैठे ॥६०॥ महातेजस्वी व्यास परमेष्ठी ब्रह्मा से बोले—भगवान् ! मैंने यह उत्तम और सब का प्रिय काव्य तैयार किया है । ॥६१॥ ब्रह्मन्, वेद का रहस्य, समस्त उपनिषदों का रहस्य, और वैदिक क्रियाओं का विस्तार मैंने इसमें लिखा है ॥६२॥ इतिहास पुराणों का विस्तार मैंने लिखा है । भूत, वर्तमान और भविष्य नामक तीनों कालों का वर्णन मैंने किया है ॥६३॥ जरा, मृत्यु, भय और व्याधि का हेतु तथा प्रतीकार इसमें बतलाया है । अनेक धर्मों तथा आश्रमों के लक्षण बतलाये हैं ॥६४॥ चातुर्वर्ण्य का विधान, पुराणों के रहस्य, तपस्या, ब्रह्मचर्य, पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य का वर्णन मैंने किया है ॥६५॥ ग्रह, नक्षत्र और ताराओं का युगों के साथ प्रमाण बतलाया है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अध्यातम-विद्या का वर्णन किया है ॥६६॥ न्याय, शिक्षा, दान और पाशुपत शास्त्रों का वर्णन मैंने किया है, सात्विक आदि कर्मों के साथ देवता और मनुष्य जन्म का वर्णन मैंने किया है ॥६७॥ पवित्र तीर्थों, देशों, नदियों, पर्वतों, बनों और समुद्रों का वर्णन मैंने किया है ॥६८॥ देवताओं के नगरों और धनुर्वेद कथित युद्ध की क्रियाओं, सेना, गृहरचना आदि का वर्णन मैंने किया है । वक्ता की पदमर्य्यादा के अनुसार मैंने भाषा का प्रयोग किया है ॥६९॥ और भी सबके काम की जो वस्तु है, उसका भी वर्णन किया है, पर संसार

यच्चापि सर्वगं वस्तु तच्चैव प्रतिपादितम्। परं न लेखकः कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते॥७०॥
॥ ब्रह्मोवाच॥
तपोविशिष्टादपि वै विशिष्टान्मुनिसंचयात्। मन्ये श्रेष्ठतरं त्वां वै रहस्यज्ञानवेदनात्॥७१॥
जन्मप्रभृति सत्यां ते वेद्मि गां ब्रह्मवादिनीम्। त्वया च काव्यमित्युक्तं तस्मात्काव्यं भविष्यति॥७२॥
अस्य काव्यस्य कवयो न समर्था विशेषणे। विशेषणे गृहस्थस्य शेषास्त्रय इवाश्रमाः॥७३॥
काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने।
॥ सौतिरुवाच॥ एवमाभाष्य तं ब्रह्मा जगाम स्वं निवेशनम्॥७४॥
ततः सस्मार हेरम्बं व्यासः सत्यवतीसुतः। स्मृतमात्रो गणेशानो भक्तचिन्तितपूरकः॥७५॥
तत्राजगाम विघ्नेशो वेदव्यासो यतःस्थितः। पूजितश्चोपविष्टश्च व्यासेनोक्तस्तदानघः॥७६॥
लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक। मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च॥७७॥
श्रुत्वैतत्प्राह विघ्नेशो यदि मे लेखनी क्षणम्। लिखतो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम्॥७८॥
व्यासोऽप्युवाच तं देवमबुद्ध्वा मा लिख क्वचित्। ओमित्युक्त्वा गणेशोऽपि बभूव किल लेखकः॥७९॥
ग्रन्थग्रन्थिं तदा चक्रे मुनिर्गूढं कुतूहलात्। यस्मिन् प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम्॥८०॥
अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च। अहं वेद्मि शुको वेत्ति सञ्जयो वेत्ति वा न वा॥८१॥

में इस ग्रन्थ का लिखनेवाला मुझे कोई नहीं मिलता॥७०॥ ब्रह्मा बोले—तुम वैदिक रहस्यों के ज्ञाता हो, इस कारण तुमको मैं श्रेष्ठ तपस्वी और प्रसिद्ध मुनियों से श्रेष्ठ समझता हूँ॥७१॥ तुम्हारे जन्म से ही तुम्हारी ब्रह्मवादिनी सत्यवाणी को मैं जानता हूँ। तुम्हारा बनाया यह काव्य, काव्य होगा अर्थात् इसका आदर होगा॥७२॥ कोई कवि इस काव्य की समता न कर सकेगा। जिस प्रकार गृहस्थ आश्रम की समता अन्य तीन आश्रम नहीं करते॥७३॥ मुने, इस काव्य को लिखने के लिए गणेश का स्मरण करो। सौती बोले—ऋषि से ऐसा कह कर ब्रह्मा अपने स्थान को गए॥७४॥ अनन्तर सत्यवतीपुत्र व्यास ने गणेश का स्मरण किया। स्मरण करते ही भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले विघ्ननाशक गणेश वहाँ आए, जहाँ वेदव्यास बैठे थे। व्यास द्वारा सम्मानित हो कर वे बैठे। हे निष्पाप! व्यास ने गणेश से कहा॥७५, ७६॥ हे गणनायक, आप मेरे इस भारत ग्रन्थ का लेखक बनें, जो मैं कहूँ या सोचूँ उसे आप लिखते जाँय॥७७॥ यह सुन कर गणेश बोले—यदि लिखते समय एक क्षण के लिये भी मेरी लेखनी को रुकना न पड़े, तब मैं लेखक हो सकता हूँ॥७८॥ व्यास ने भी कहा कि बिना समझे कुछ भी न लिखना, अर्थ समझ कर लिखना। गणेश ने यह स्वीकार किया और वे लेखक बन गए॥७९॥ अतः मुनि ने कुतूहल से ग्रन्थग्रन्थी बनाई अर्थात् ग्रन्थ में ऐसी बातें कहीं जिनका अर्थ कठिनता से समझ में आ सके। ऐसे स्थानों के विषय में द्वैपायन मुनि ने यह प्रतिज्ञा की है॥८०॥ आठ हजार आठ सौ श्लोकों के अर्थ मैं जानता हूँ, शुकदेव जानते हैं, सञ्जय जानते हैं या नहीं अर्थात् चौथा तो जानता ही नहीं। तीसरे के जानने में भी सन्देह है॥८१॥ वे गूढ़ार्थ श्लोक आज भी सुदृढ़ और गठे हुए हैं, उनका अर्थ समझ में नहीं आता, क्योंकि

तच्छ्लोककूटमद्यापि ग्रथितं सुदृढं मुने । भेत्तुं न शक्यतेऽर्थस्य गूढत्वात्प्रश्रितस्य च॥८२॥
सर्वज्ञोऽपि गणेशो यत्क्षणमास्ते विचारयन् । तावच्चकार व्यासोऽपि श्लोकानन्यान् बहूनपि॥८३॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः । ज्ञानाञ्जनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकम् ॥८४॥
धर्मार्थकाममोक्षार्थैः समासव्यासकीर्तनैः । तथा भारतसूर्येण नृणां विनिहतं तमः ॥८५॥
पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाःप्रकाशिताः। नृबुद्धिकैरवाणां च कृतमेतत्प्रकाशनम् ॥८६॥
इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना । लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत्संप्रकाशितम् ॥८७॥
संग्रहाध्यायबीजो वै पौलोमास्तीकमूलवान् । संभवस्कन्धविस्तारः सभारण्यविटङ्कवान् ॥८८॥
अरणीपर्वरूपाढ्यो विराटोद्योगसारवान् । भीष्मपर्वमहाशाखो द्रोणपर्वपलाशवान ॥८९॥
कर्णपर्व सितैः पुष्पैः शल्यपर्वसुगन्धिभिः । स्त्रीपर्वैषीकविश्रामः शान्तिपर्वमहाफलः ॥९०॥
अश्वमेधामृतरसस्त्वाश्रमस्थानसंश्रयः । मौसलः श्रुतिसंक्षेपः शिष्टद्विजनिषेवितः ॥९१॥
सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति । पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः ॥९२॥
सौतिरुवाच
तस्य वृक्षस्य वक्ष्यामि शश्वत्पुष्पफलोदयम् । स्वादुमेध्यरसोपेतमच्छेद्यममरैरपि ॥९३॥

वह गूढ़ है और शब्दों में छिपा हुआ है ॥८२॥ सर्वज्ञ गणेश भी उन श्लोकों का अर्थ क्षण भर के विचार के बाद समझते थे, तब तक व्यासदेव और दूसरे बहुत से श्लोक बना लेते थे ॥८३॥ अज्ञान, अन्धकार से अन्धे छटपटाते हुए मनुष्यों की आँखों को ज्ञानाञ्जन शलाका के द्वारा खोलने के लिये व्यास ने इस ग्रन्थ का निर्माण किया ॥८४॥ धर्मार्थ और काम के विस्तार और संक्षिप्त वर्णन के द्वारा भारतरूपी इस सूर्य ने मनुष्यों का अन्धकार दूर किया ॥८५॥ पुराणरूपी इस पूर्णचन्द्रमा ने वैदिक ज्ञानरूपी प्रकाश को फैलाया। मनुष्यबुद्धिरूपी कमल का प्रकाशन मुनि ने इस ग्रन्थ के द्वारा किया ॥८६॥ यह इतिहास एक दीपक है। अज्ञान अन्धकार को दूर करता है। इसने लोक के गर्भगृह को अच्छी तरह प्रकाशित किया है ॥८७॥ यह भारत एक अक्षय वृक्ष है, संग्रहाध्याय इसका बीज है। पौलोम और आस्तीक की कथा इसकी जड़ है। सम्भव पर्व इसकी शाखाओं का विस्तार है, सभापर्व और आरण्यपर्व इस वृक्ष के खोढ़र हैं। अरणीपर्व इसका रूप है, सौन्दर्य है। विराट और उद्योग पर्व बल हैं। भीष्मपर्व बड़ी शाखा है। द्रोणपर्व पत्ते हैं। कर्णपर्व सफेद फूल है। शल्यपर्व गन्ध है। स्त्रीपर्व और ऐषिकपर्व छाया है। शान्तिपर्व उत्तम फल है। अश्वमेध पर्व अमृत के तुल्य रस है। आश्रमवासिकपर्व वृक्ष के नीचे का चबूतरा है। मौसलपर्व शाखाओं का अन्त है, जहाँ सज्जनरूपी पक्षी निवास करते हैं ॥८८, ८९, ९०, ९१॥ सभी प्रधान कवियों का यह उपजीव्य (सहायता देनेवाला) होगा। जिस प्रकार मेघ प्राणियों का उपजीव्य(सहायक) होता है ॥९२॥ सौती बोले—उस वृक्ष के सनातन पुष्प और फल; धर्म और मोक्ष हैं, उसे मैं कहता हूँ, जिसका रस स्वादयुक्त और पवित्र है और देवता भी उसे नष्ट नहीं कर सकते। ९३॥ पहले विचित्र वीर्य्य की स्त्री में

मातुर्नियोगाद्धर्मात्मा गाङ्गेयस्य च धीमतः । क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य कृष्णद्वैपायनः पुरा ॥९४॥
त्रीनग्नीनिव कौरव्यान् जनयामास वीर्यवान । उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च ॥९५॥
जगाम तपसे धीमान्पुनरेवाश्रमं प्रति । तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम् ॥९६॥
अब्रवीद्भारतं लोके मानुषेऽस्मिन्महानृषिः । जनमेजयेन पृष्टः सन् ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ॥९७॥
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमंतिके । स सदस्यैःसहासीनःश्रावयामास भारतम् ॥९८॥
कर्मान्तरेषु यज्ञस्य चोद्यमानः पुनः पुनः । विस्तरं कुरुवंशस्य गान्धार्या धर्मशीलताम् ॥९९॥
क्षत्तुः प्रज्ञां धृतिं कुन्त्याःसम्यग्द्वैपायनोऽब्रवीत् । वासुदेवस्य माहात्म्यं पाण्डवानां च सत्यताम् १००
दुर्वृत्तं धार्तराष्ट्राणामुक्तवान् भगवानृषिः । इदं शतसहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम् ॥१०१॥
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम् । चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ॥१०२॥
उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः । ततोऽप्यर्धशतं भूयःसंक्षेपं कृतवानृषिः॥१०३॥
अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तानां सपर्वणाम् । इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयच्छुकम् ॥१०४॥
ततोऽन्येभ्योऽनुरूपेभ्यः शिष्येभ्यःप्रददौ विभुः ।षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम्॥१०५॥
त्रिंशच्छतसहस्रं च देवलोके प्रतिष्ठितम् । पित्र्ये पंचदशप्रोक्तं गन्धर्वेषु चतुर्दश ॥१०६॥
एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम् । नारदोऽश्रावयद्देवानसितो देवलःपितॄन ॥१०७॥

कृष्णद्वैपायन ने माता तथा बुद्धिमान भीष्म की आज्ञा से तीन अग्नियों के समान तीन कुरुवंशियों को उत्पन्न किया था । धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को उत्पन्न करके बुद्धिमान व्यास तपस्या के लिये अपने आश्रम में पुनः चले गए । उनके उत्पन्न होने पर तथा वंशपरम्परा से बढ़ कर परलोक जाने पर महर्षि व्यास ने इस संसार में ब्राह्मणों के साथ जनमेजय के पूछने पर यह भारत आख्यान कहा ॥९४॥ ॥९७॥ पास बैठे हुए शिष्य वैशम्पायन को भारत सुनाने की आज्ञा दी । सदस्यों के साथ बैठे हुए वैशम्पायन ने भारत की कथा सुनाई ॥९८॥ यज्ञ के अवकाश के समय बार बार पूछने पर उन्होंने कुरुवंश का विस्तार और गान्धारी की धर्मशीलता बतलाई ॥९९॥ विदुर की बुद्धि, कुन्ती का धैर्य, वासुदेव का प्रभाव, पाण्डवों की सत्यता इन सबका वर्णन द्वैपायन ने बड़ी अच्छी तरह किया ॥१००॥ भगवान ऋषि ने धृतराष्ट्र-पुत्रों की उद्दण्डता का वर्णन किया । यह सब सौ हजार श्लोकों में पूरा हुआ ॥१०१॥ इस उत्तम भारत की यह संख्या उपाख्यानों को मिला कर है । व्यास ने चौबीस हजार श्लोकों में भारत-संहिता बनाई थी ॥१०२॥ उपाख्यान रहित इस ग्रन्थ को भारत कहते हैं । अनन्तर ऋषि ने डेढ़सौ श्लोकों में अनुक्रमणिका अध्याय की रचना की, जिसमें पर्वों की कथाओं की सूची बतलाई गयी है । मुनि द्वैपायन ने यह कथा पहले अपने पुत्र शुक को पढ़ाई ॥१०३ १०४॥ अनन्तर अन्य योग्य शिष्यों को उन्होंने यह कथा दी । उन्होंने साठ लाख श्लोकों की एक दूसरी संहिता बनाई थी ॥१०५॥ उस संहिता के तीस लाख श्लोकों का प्रचार देवलोक में हुआ । पितृलोक में पन्द्रह लाख और गन्धर्वलोक में चौदह लाख श्लोक प्रचलित हुए ॥१०६॥ एक लाख श्लोकोंवाली संहिता मनुष्यलोक में रही । नारद ने देवताओं को यह संहिता सुनाई और असित देवल ने पितरों

गन्धर्वयक्षरक्षांसि श्रावयामास वै शुकः । अस्मिंस्तु मानुषे लोके वैशम्पायन उक्तवान्॥१०८
शिष्यो व्यासस्य धर्मात्मा सर्ववेदविदांवरः । एकं शतसहस्रं तु मयोक्तं वै निबोधत ॥१०९॥

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कंधः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः ।
दुःशासनः फलपुष्पे समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी ॥११०॥
युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः ।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ॥१११॥

पाण्डुर्जित्वा बहून्देशान् बुद्ध्या विक्रमणेन च । अरण्ये मृगयाशीलो न्यवसन्मुनिभिःसह ॥११२॥
मृगव्यवायनिधनात्कृच्छ्रां प्राप स आपदम् । जन्मप्रभृति पार्थानां तत्राचारविधिक्रमः ॥११३॥
मात्रोरभ्युपपत्तिश्च धर्मोपनिषदं प्रति । धर्मस्य वायोः शक्रस्य देवयोश्च तथाश्विनोः ॥११४॥
तापसैः सह संवृद्धा मातृभ्यां परिरक्षिताः । मेध्यारण्येषु पुण्येषु महतामाश्रमेषु च ॥११५॥
ऋषिभिर्यत्तदा नीता धार्तराष्ट्रान्प्रतिस्वयम् । शिशवश्चाभिरूपाश्च जटिला ब्रह्मचारिणः॥११६॥
पुत्राश्च भ्रातरश्चेमे शिष्याश्च सुहृदश्च वः । पाण्डवा एत इत्युक्त्वा मुनयोऽन्तर्हितास्ततः॥११७॥

को ॥१०७॥ गन्धर्वों, यक्षों और राक्षसों को शुकदेव मुनि ने यह कथा सुनाई और इस मर्त्यलोक में व्यास के शिष्य सब वेदज्ञों में श्रेष्ठ धर्मात्मा वैशम्पायन ने महाभारत की कथा कही हैं । वह एक लाख श्लोकोंवाला महाभारत मैं कहता हूँ आप लोग समझें ॥१०८॥१०९॥ दुर्योधन क्रोध का एक बड़ा वृक्ष है, कर्ण उसका स्कन्ध है; डाल निकलने का स्थान है, शकुनी उसकी शाखा है, दुश्शासन सुन्दर फूल फल है, और चञ्चल चित्तवाले राजा धृतराष्ट्र उस वृक्ष की जड़ हैं ॥११०॥ युधिष्ठिर धर्म के एक बड़े वृक्ष हैं, अर्जुन स्कन्ध हैं । भीमसेन शाखा हैं, माद्री पुत्र नकुल और सहदेव उसके सुन्दर पुष्प फल हैं और जड़ हैं, श्रीकृष्ण, वेद और ब्राह्मण ॥१११॥ बुद्धि और पराक्रम से अनेक देशों को जीत कर राजा पाण्डु वन में मुनियों के साथ निवास करने लगे, शिकार खेलना उन्हें बहुत पसन्द था ॥११२॥ एक मृगा को मैथुन के समय उन्होंने मार दिया, जिस कारण उन्हें बड़ी विपत्ति भोगनी पड़ी । उस आपत्ति के समय में भी पाण्डवों के जन्म तथा जातसंस्कार आदि हुए और उन्हें आचार शील आदि की भी शिक्षा मिली अर्थात् पिता की आपत्ति से पुत्रों को अपने भावी जीवन के कार्यक्रम की शिक्षा मिली ॥११३॥ आपत्ति कालमें कुलस्त्रियों के धर्मरक्षार्थ दुर्वासा ऋषि के वतलाये मन्त्र का उपयोग माता कुन्ती और माद्री ने किया । जिस मन्त्र के प्रभाव से धर्म, वायु इन्द्र और दोनों अश्वनी कुमारों ने माता कुन्ती और माद्री के प्रति गर्भाधान के लिए कृपा की अर्थात् धर्म से युधिष्ठिर, वायु से भीम, इन्द्र से अर्जुन और अश्वनीकुमारों से नकुल सहदेव के जन्म हुए ॥११४॥ महान् ऋषियों के पवित्र आश्रमों में—जो यज्ञ के उपयोगी बनों में थे, वहां तपस्त्रियों तथा दानों माताओं के द्वारा इन पाण्डवों का लालन पालन हुआ, मतलब यह कि पिता पाण्डु के मरजाने पर दोनों माताओं ने इनका पालन किया ॥११५॥ जब वे लड़के बड़े हुए, उस समय ऋषिगण उन्हें लेकर धृतराष्ट्र के पास आये । उस समय वे जटाधारी ब्रह्मचारी थे ॥११६॥ मुनियों ने कहा—ये पाण्डव

तांस्तैर्निवेदितान्दृष्ट्वा पाण्डवान् कौरवास्तदा । शिष्टाश्च वर्णाः पौरा ये ते हर्षान्चुक्रुशुर्भृशम् ॥११८॥
आहुःकेचिन्न तस्यैते तस्यैत इतिचापरे । यदाचिरमृतः पाण्डुः कथं तस्येति चापरे ॥११९॥
स्वागतं सर्वथा दिष्ट्या पाण्डोःपश्याम संततिम् । उच्यतां स्वागतमिति वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः॥१२०
तस्मिन्नुपरते शब्दे दिशः सर्वा निनादयन् । अन्तर्हितानां भूतानां निःस्वनस्तुमुलोऽभवत्॥१२१॥
पुष्पवृष्टिः शुभागन्धाः शंखदुन्दुभिनिःस्वनाः । आसन्प्रवेशे पार्थानांतदद्भुतमिवाभवत् ॥१२२॥
तत्प्रीत्या चैव सर्वेषां पौराणां हर्षसम्भवः । शब्द आसीन्महांस्तत्र दिवस्पृक्कीर्तिवर्धनः॥१२३॥
तेऽधीत्य निखिलान्वेदान् शास्त्राणि विविधानि च । न्यवसन्पाण्डवास्तत्र पूजिता अकुतोभयाः १२४
युधिष्ठिरस्य शौचेन प्रीताः प्रकृतयोऽभवन् । धृत्या च भीमसेनस्य विक्रमेणार्जुनस्य च ॥१२५॥
गुरुशुश्रूषया क्षान्त्या यमयोर्विनयेन च । तुतोष लोकः सकलस्तेषां शौर्यगुणेन च ॥१२६॥
समवाये ततो राज्ञां कन्यां भर्तृस्वयंवराम् । प्राप्तवानर्जुनः कृष्णां कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥१२७॥
ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्पूज्यःसर्वधनुष्मताम् । आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः समरेष्वपि चाभवत् ॥१२८॥
स सर्वान्पार्थिवान् जित्वा सर्वांश्च महतो गुणान् । आजहारार्जुनो राज्ञो राजसूयं महाक्रतुम्॥१२९॥

हैं, ये आपके पुत्र भाई, शिष्य तथा मित्र हैं । ऋषियों का मतलब यह है कि पुत्र होने के कारण धृतराष्ट्र इनका पालन करे, भाई होने के कारण इन्हे भाग दे, शिष्य होने के कारण सन्मार्ग बतलावे और मित्र होने के कारण सत् परामर्श दे । ऐसा कहकर मुनि वहां से चले गए ॥११७॥ धृतराष्ट्र के यहां इन पांडवों का उपस्थित किया जाना देखकर कौरव तथा पुरवासी और अन्यवर्ण के सज्जन बार बार आनन्द कोलाहल करने लगे ॥११८॥ किसीने कहा—ये तो पांडु के लड़के नहीं हैं, दूसरे ने कहा—नहीं ये पांडु पुत्रही हैं; तीसरे ने कहा कि जब पांडु को मरे इतने दिन हो गए, तब ये पांडु के पुत्र कैसे हो सकते हैं ॥११९॥ इसी समय "इनका स्वागत करो" यह आवाज़ चारों ओर से गूँजने लगी । लोग "स्वागत, स्वागत" कहने लगे । कइयों ने कहा कि आज हमलोग भाग्य से ही पांडु की सन्तानों को देखते हैं ॥१२०॥ जनता के इस कोलाहल के शान्त हो जाने पर सब दिशाओं को प्रतिध्वनित करनेवाला अदृश्य प्राणियों का तुमुल शब्द हुआ ॥१२१॥ जिससे उनके पांडुपुत्र होने का निश्चय हुआ । पांडवों के नगरप्रवेश के समय सुगन्धित पुष्पवृष्टि हुई; शंख और नगाड़ों के शब्द हुए । इससे नगरवासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥१२२॥ पांडवों में प्रेम होने के कारण समस्त पुरवासियों का महान् हर्ष कोलाहल हुआ, जो आकाश तक फैल गया । वह शब्द पांडवों की कीर्ति बढ़ानेवाला था ॥१२३॥ पांडवों ने समस्त वेदों तथा विविध शास्त्रों का अध्ययन किया । पांडव निर्भय होकर वहाँ निवास करने लगे और वहाँवालों के आदरपात्र हो गए ॥१२४॥ युधिष्ठिर की पवित्रता, भीमसेन की धीरता और अर्जुन के पराक्रम से प्रजा प्रसन्न हुई ॥१२५॥ नकुल सहदेव के विनय, क्षमा, बड़ों की सेवा तथा इनकी शूरता के कारण सभी सन्तुष्ट हुए ॥१२६॥ राजाओं की सभा में स्वयंवरा कन्या द्रौपदी को कठिन कर्म करके अर्जुन ने पाया ॥१२७॥ तभी से अर्जुन सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ गिने जाने लगे और युद्धों में सूर्य के समान दुष्प्रेक्षणीय (बड़े प्रयत्न से देखने के योग्य) हुए ॥१२८॥ अर्जुन ने सब राजाओं तथा सब बड़े बड़े

अन्नवान्दक्षिणावांश्च सर्वैः समुदितो गुणैः । युधिष्ठिरेण सम्प्राप्तो राजसूयो महाक्रतुः ॥१३०॥
सुनयाद्वासुदेवस्य भीमार्जुनबलेन च । घातयित्वा जरासन्धं चैद्यं च बलगर्वितम् ॥१३१॥
दुर्योधनं समाजह्रुरर्हणानि ततस्ततः । मणिकांचनरत्नानि गोहस्त्यश्वधनानि च ॥१३२॥
विचित्राणिच वासांसि प्रावारावरणानि च । कम्बलाजिनरत्नानि रांकवास्तरणानि च ॥१३३॥
समृद्धां तां तथा दृष्ट्वा पाण्डवानां तदा श्रियम् । ईर्ष्यासमुत्थः सुमहांस्तस्य मन्युरजायत ॥१३४॥
विमानप्रतिमां तत्र मयेन सुकृतां सभाम । पाण्डवानामुपहृतां स दृष्ट्वा पर्यतप्यत ॥१३५॥
तत्रावहसितश्चासीत्प्रस्कंदन्निव संभ्रमात् । प्रत्यक्षं वासुदेवस्य भीमेनानभिजातवत् ॥१३६॥
स भोगान् विविधान् भुंजनरत्नानि विविधानि च । कथितो धृतराष्ट्रस्य विवर्णो हरिणःकृशः॥१३७॥
अन्वजानात्ततो द्यूतं धृतराष्ट्रः सुतप्रियः । तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य कोपः समभवन्महान् ॥१३८
नातिप्रीतमनाश्चासीद्विवादांश्चान्वमोदत । द्यूतादीननयान् घोरान्विविधांश्चाप्युपैक्षत ॥१३९॥
निरस्य विदुरं भीष्मं द्रोणं शारद्वतं कृपम् । विग्रहे तुमुले तस्मिन्दहन् क्षत्रं परस्परम् ॥१४०॥
जयत्सु पाण्डुपुत्रेषु श्रुत्वा सुमहदप्रियम् । दुर्योधनमतं ज्ञात्वा कर्णस्य शकुनेस्तथा ॥१४१॥

गण-राज्यों को (प्रजातन्त्र-राज्य) जीत कर राजा युधिष्ठिर से राजसूय नामक महायज्ञ कराया ॥१२६॥ युधिष्ठिर ने अन्नदान, दक्षिणादान आदि समस्त गुणों से युक्त राजसूय नामक महायज्ञ सम्पन्न किया ॥१३०॥ वासुदेव की नीति भीम और अर्जुन के बल से, अहंकार रखने वाले जरासन्ध और शिशुपाल का वध कराकर राजा युधिष्ठिर ने यज्ञ समाप्त किया ॥१३१॥ उस यज्ञ में अनेक स्थानों से भेंट में दुर्योधन के पास (यह खजाञ्ची था) मणि, सोना, रत्न, गौ, हाथी, घोड़े, धन, उत्तम कपड़े, ओढ़ने, दुसाले, चमड़े तथा, पश्मीने के बिछौने आये । ॥१३२॥ ॥१३३॥ दुर्योधन ने इस विशाल संपत्ति और समृद्धि को देखा, जिससे ईर्ष्या से उत्पन्न क्रोध के कारण वह मन ही मन जलने लगा ॥१३४॥ मय नामक दानव ने देवताओं के विमान के समान राजा युधिष्ठिर का सभाभवन बनाया था और पांडवों को उपहार में दिया था, उसको देखकर दुर्योधन बहुत दुःखी हुआ ॥१३५॥ उस सभाभवन में जल में स्थल के भ्रम से, स्थल में जल के भ्रम से, और जहाँ द्वार नहीं था वहाँ द्वार के भ्रम से दुर्योधन गिर पड़ा था । उस समय श्रीकृष्ण के सामने भीमसेन ने ग्रामीणों के समान उसका उपहास किया था ॥१३६॥ दुर्योधन अनेक भोगों का भोग करता था, अनेक रत्नों का उपयोग करता था, पर उसकी कान्ति छीजती जाती थी । वह पीला और दुबला होता जाता था । यह बात राजा धृतराष्ट्र से कही गई ॥१३७॥ पुत्रप्रेम के कारण विवेकहीन राजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों को युधिष्ठिर से जुआ खेलने की आज्ञा दी । यह सुनने से श्रीकृष्ण को बहुत क्रोध हुआ ॥१३८॥ यद्यपि श्रीकृष्ण इससे बहुत प्रसन्न नहीं हुए, फिर भी इस विवाद का उन्होंने समर्थन ही किया । जुआ आदि भयंकर अन्यायों की उन्होंने उपेक्षा की ॥१३६॥ अतएव विदुर, भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य की ओर उन्होंने ध्यान न दिया । इनके द्वारा विवाद मिटाने का प्रयत्न न किया; क्योंकि वे परस्पर के तुमुल युद्ध से क्षत्रियों का नाश करना चाहते थे ॥१४०॥

धृतराष्ट्रश्चिरं ध्यात्वा संजयं वाक्यमब्रवीत् । शृणु संजय सर्वं मे नचासूयितुमर्हसि ॥१४२॥
श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान्प्राज्ञसंमतः । न विग्रहे मम मतिर्न च प्रीये कुलक्षये ॥१४३॥
न मे विशेषः पुत्रेषु स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा । वृद्धं मामभ्यसूयन्ति पुत्रा मन्युपरायणाः ॥१४४॥
अहं त्वचक्षुःकार्पण्यात्पुत्रप्रीत्या सहामि तत् । मुह्यंतं चानुमुह्यामि दुर्योधनमचेतनम् ॥१४५॥
राजसूये श्रियं दृष्ट्वा पाण्डवस्य महौजसः । तच्चावहसनं प्राप्य सभारोहणदर्शने ॥१४६॥
अमर्षणः स्वयं जेतुमशक्तः पाण्डवान् रणे । निरुत्साहश्च सम्प्राप्तुं सुश्रियं क्षत्रियोऽपि सन्॥१४७॥
गान्धारराजसहितश्छद्मद्यूतममन्त्रयत् । तत्र यद्यद्यथा ज्ञातं मया संजय तच्छृणु ॥१४८॥
श्रुत्वा तु मम वाक्यानि बुद्धियुक्तानि तत्त्वतः। ततो ज्ञास्यसि मां सौते प्रज्ञाचक्षुषमित्युत॥१४९॥

यदाऽश्रौषं धनुरायम्य चित्रं विद्धं लक्ष्यं पातितं वै पृथिव्याम् ।
कृष्णां हृतां प्रेक्षतां सर्वराज्ञां तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५० ॥
यदाऽश्रौषं द्वारकायां सुभद्रां प्रसह्योढां माधवीमर्जुनेन ।
इन्द्रप्रस्थं वृष्णिवीरौ च यातौ तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १५१ ॥

पांडु-पुत्रों की विजय का अप्रिय वृत्तान्त सुनकर दुर्योधन, कर्ण और शकुनी का मत जानकर धृतराष्ट्र बड़ी देर तक विचार करते रहे । फिर वे सञ्जय से बोले—सञ्जय, सब सुनो । मुझे दोष न देना ॥१४१॥ ॥१४२॥ तुमने शास्त्रों का अध्ययन किया है, तुम्हें शास्त्रों का ज्ञान है । तुम बुद्धिमान हो और बुद्धिमानों के द्वारा आदृत हो, अतएव तुम मुझे दोष न देना । इस विरोध में मेरा मत नहीं है ! मेरी इच्छा से यह विरोध नहीं हो रहा है और कुल के नाश से मुझे प्रसन्नता भी न होगी ॥१४३॥ मैं पाण्डवों और अपने पुत्रों में भेद नहीं समझता । मैं दोनों को बराबर समझता हूँ, पर मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मेरे पुत्र क्रोधी हैं अतएव मेरी निन्दा करते हैं मुझे दोष देते हैं ॥१४४॥ मैं अन्धा हूँ, अतएव दीनता और पुत्र प्रेम के कारण यह सब सहता हूँ । बुद्धिहीन दुर्योधन के दुःख से दुखी होता हूँ ॥१४५॥ महौजस पांडवों की राजसूययज्ञ में संपत्ति देखकर तथा सभा के देखने के समय उपहास पाकर दुर्योधन क्रोधित हुआ और युद्ध में पांडवों को स्वयं न जीत सकने के कारण निरुत्साहित हुआ । जब वह समृद्धिमान् राजा युधिष्ठिर को अपने वश में न कर सका, तब क्षत्रिय होकर भी उसने गान्धारराज शकुनी के साथ कपटद्यूत के लिए पांडवों को निमन्त्रित किया । सञ्जय, उस कपटद्यूत में तथा उसके बाद जो कुछ हुआ और जैसा मैं जानता हूँ वह सब मुझसे सुनो ॥१४६॥१४७॥१४८॥ बुद्धिमत्ता-पूर्ण मेरे वचनों को सुनकर तुम यथार्थतः मुझे प्रज्ञा-चक्षु समझोगे अर्थात् जो कुछ मैंने किया है वह बहुत समझ बूझकर किया है ॥१४९॥ जब मैंने सुना कि धनुष चढ़ाकर अर्जुन ने लक्ष्य को वेधा और पृथ्वी पर गिराया तथा सब राजाओं के सामने उनके देखते २ द्रौपदी का हरण किया सञ्जय ! तभी से मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१५०॥ जब मैंने सुना कि द्वारका में मधुवंशी सुभद्रा का अर्जुन ने हरण किया और जब मैंने सुना कि यदुवंशी वीर कृष्ण और बलराम इन्द्रप्रस्थ नगर में गए, हे सञ्जय, तब से मुझे विजय की आशा नहीं है ॥१५१॥ जब मैंने सुना कि

यदाऽश्रौषं देवराजं प्रवृष्टं शरैर्दिव्यैर्वारितं चार्जुनेन ।
अग्निं तथा तर्पितं खाण्डवे च तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १५२ ॥
यदाऽश्रौषं जातुषाद्वेश्मनस्तान्मुक्तान्पार्थान्पञ्च कुन्त्या समेतान् ।
युक्तं चैषां विदुरं स्वार्थसिद्धौ तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १५३ ॥
यदाऽश्रौषं द्रौपदीं रंगमध्ये लक्ष्यं भित्वा निर्जितामर्जुनेन ।
शूरान्पाञ्चलान्पाण्डवेयांश्च युक्तांस्तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १५४ ॥
यदाश्रौषं मागधानां वरिष्ठं जरासन्धं क्षत्रमध्ये ज्वलन्तम् ।
दोर्भ्यां हतं भीमसेनेन गत्वा तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १५५ ॥
यदाऽश्रौषं दिग्जये पाण्डुपुत्रैर्वशीकृतान्भूमिपालान्प्रसह्य ।
महाक्रतुं राजसूयं कृतं च तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १५६ ॥
यदाऽश्रौषं द्रौपदीमश्रुकण्ठीं सभां नीतां दुःखितामेकवस्त्राम् ।
रजस्वलां नाथवतीमनाथवत्तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १५७ ॥
यदाऽश्रौषं वाससां तत्र राशिं समाक्षिपत्कितवो मन्दबुद्धिः ।
दुःशासनो गतवान्नैव चांतं तदानाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १५८ ॥
यदाऽश्रौषं हृतराज्यं युधिष्ठिरं पराजितं सौबलेनाक्षवत्याम् ।
अन्वागतं भ्रातृभिरप्रमेयैस्तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १५९ ॥
यदाऽश्रौषं विवधास्तत्र चेष्टा धर्मात्मनां प्रस्थितानां वनाय ।

देवराज निरन्तर वृष्टि करने लगे, तब अर्जुन ने अपने दिव्य बाणों से उन्हें रोक दिया और खाण्डव वन को जलाकर अग्नि को तृप्त किया, तबसे मुझे विजय की आशा नहीं है ॥१५२॥ जब मैंने सुना कि उस लाक्षाभवन से पांचों पांडव कुन्ती के साथ निकल भागे और विदुर पांडवों की स्वार्थ-सिद्धि में सहायक हुए हैं सञ्जय, तबसे मुझे विजय की आशा नहीं है ॥१५३॥ जब मैंने सुना कि राजसभा में लक्ष्य वेध करके अर्जुन ने द्रौपदी को जीता है तथा वीर पाञ्चालों से मैत्री हुई है सञ्जय, तबसे मुझे विजय की आशा नहीं है ॥१५५॥ जब मैंने सुना कि दिग्विजय में पांडुपुत्रों ने बलपूर्वक राजाओं को अपने अधीन किया है और राजसूय महायज्ञ किया है सञ्जय ! तब से मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१५६॥ सञ्जय, जब मैंने सुना कि राजस्वला एक वस्त्र पहिने हुई दुःखिनी और रोती हुई द्रौपदी सनाथा होने पर भी अनाथा के समान सभा में लाई गई, तबसे मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१५७॥ जब मैंने सुना कि धूर्त और मूर्ख दुःशासन ने द्रौपदी का वस्त्र खींचा, जिसकी ढेर लग गई, सञ्जय ! तबसे मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१५८॥ संजय, जब मैंने सुना कि शकुनी ने जुए में युधिष्ठिर को हराया और उनका राज्य ले लिया तथा भाइयों ने उनका अनुगमन किया सञ्जय, तब से मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१५९॥ जब मैंने सुना कि वन जाने के समय धर्मात्मा पाण्डवों ने अनेक प्रकार के संकेत

ज्येष्ठप्रीत्या क्लिश्यतां पाण्डवानां तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १६० ॥
यदाऽश्रौषं स्नातकानां सहस्रैरन्वागतं धर्मराजं वनस्थम् ।
भिक्षाभुजां ब्राह्मणानां महात्मनां तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १६१ ॥
यदाऽश्रौषमर्जुनं देवदेवं किरातरूपं त्र्यम्बकं तोष्य युद्धे ।
अवाप्नवन्तं पाशूपतं महास्त्रं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १६२ ॥
यदाऽश्रौषं त्रिदिवस्थं धनञ्जयं शक्रात्साक्षाद्दिव्यमस्त्रं यथावत् ।
अधीयानं शंसितं सत्यसन्धं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १६३ ॥
यदाऽश्रौषं कालकेयास्ततस्ते पौलोमानो वरदानाच्च दृप्ताः ।
देवैरजेया निर्जिताश्चार्जुनेन तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १६४ ॥
यदाऽश्रौषमसुराणां वधार्थे किरीटिनं यान्तममित्रकर्शनम् ।
कृतार्थं चाप्यागतं शक्रलोकात्तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १६५ ॥
यदाऽश्रौषं वैश्रवणेन सार्धं समागतं भीममन्यांश्च पार्थान् ।
तस्मिन्देशे मानुषाणामगम्ये तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १६६ ॥
यदाऽश्रौषं घोषयात्रागतानां बन्धं गन्धर्वैर्मोक्षणं चार्जुनेन ।
स्वेषां सुतानां कर्णबुद्धौ रतानां तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १६७ ॥
यदाऽश्रौषं यक्षरूपेण धर्मं समागतं धर्मराजेन सूत ।

किये हैं और बड़े भाई के प्रेम के कारण उन्होंने अनेक कष्ट उठाये हैं सञ्जय! तब से मुझे विजय की आशा नहीं है ॥१६०॥ सञ्जय! जब मैंने सुना कि हजारों स्नातक भिक्षा से भोजन करनेवाले महात्मा ब्राह्मण, वनवासी धर्मराज के साथ रहते हैं, तभी से मुझे विजय की आशा नहीं है ॥१६१॥ जब मैंने सुना कि किरातरूपधारी महादेव को युद्ध में सन्तुष्ट करके अर्जुन ने पाशुपत नामक महा अस्त्र पाया है सञ्जय, तब से मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१६२॥ सञ्जय! जब मैंने सुना कि स्वर्ग में रहकर सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रशंसित अर्जुन साक्षात् इन्द्र से दिव्यास्त्र सीख रहा है, तब से मैं विजय की आश नहीं करता हूँ ॥१६३॥ सञ्जय, जब मैंने सुना कि वरदान पाने से गर्विष्ठ, कालकेय और पौलोम नामक राक्षसों को जो देवताओं के लिये भी अजेय थे, अर्जुन ने जीत लिया सञ्जय, तबसे मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१६४॥ जब मैंने सुना कि शत्रुओं को निर्बल करनेवाला अर्जुन राक्षसों के वध के लिये इन्द्रलोक में गया है और वहां से कृतार्थ होकर लौट आया है, सञ्जय, तब से मुझे विजय की आशा नहीं है ॥१६५॥ सञ्जय, जब मैंने सुना कि मनुष्यों के अगम्य देश में भीम तथा दूसरे पाण्डव कुबेर के साथ मिले हैं, तब से मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१६६॥ सञ्जय, जब मैंने सुना कि कर्ण के परामर्श से चलनेवाले मेरे पुत्र घोषयात्रा में (पशुओं के निरीक्षण की यात्रा) गए हुए थे, गन्धर्वों ने बांध लिया और अर्जुन ने छुड़ाया, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥ १६७ ॥ हे सञ्जय सूत, जब मैंने सुना कि यक्ष के रूप में धर्म, युधिष्ठिर

प्रश्नान् कांश्चिद्विब्रुवाणं च सम्यक् तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १६८ ॥
यदाऽश्रौषं न विदुर्मामकास्तान् प्रच्छन्नरूपान्वसतः पाण्डवेयान्।
विराटराष्ट्रे सह कृष्णया च तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १६९ ॥
यदाऽश्रौषं मामकानां वरिष्ठान्धनञ्जयेनैकरथेन भग्नान् ।
विराटराष्ट्रे वसता महात्मना तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १७० ॥
यदाऽश्रौषं सत्कृतां मत्स्यराज्ञा सुतां दत्तामुत्तरामर्जुनाय ।
तां चार्जुनः प्रत्यगृह्णात् सुतार्थे तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १७१ ॥
यदाऽश्रौषं निर्जितस्याधनस्य प्रव्राजितस्य स्वजनात्प्रच्युतस्य ।
अक्षौहिणीः सप्त युधिष्ठिरस्य तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १७२ ॥
यदाऽश्रौषं माधवं वासुदेवं सर्वात्मना पाण्डवार्थे निविष्टम् ।
यस्येमां गां विक्रममेकमाहुस्तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१७३॥
यदाऽश्रौषं नरनारायणौ तो कृष्णार्जुनौ वदतो नारदस्य ।
अहं द्रष्टा ब्रह्मलोके च सम्यक् तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१७४॥
यदाऽश्रौषं लोकहिताय कृष्णं शमार्थिनमुपयांतं कुरूणाम् ।
शमं कुर्वाणमकृतार्थं च यान्तं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१७५॥
यदाऽश्रौषं कर्णदुर्योधनाभ्यां बुद्धिं कृतां निग्रहे केशवस्य ।

से मिले थे और उनके प्रश्नों के उत्तर युधिष्ठिर ने ठीक २ दिये हैं, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥ १६८ ॥ सञ्जय, जब मैंने सुना कि, विराटराज्य में छिप कर द्रौपदी के साथ निवास करनेवाले पाण्डवों का पता मेरे पुत्रों को न लगा, तब सञ्जय, मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥ १६९ ॥ हे संजय, जब मैंने सुना कि, मेरे अनेक महारथी, विराटराज्य में निवास करनेवाले महात्मा अर्जुन से—जो अकेला युद्ध करने वाला था, हार गए हैं, तब हे सञ्जय मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥ १७० ॥ जब मैंने सुना कि विराट-राज ने अपनी कन्या उत्तरा सत्कार पूर्वक अर्जुन को दी और अर्जुन ने अपने पुत्र के लिये उसका ग्रहण किया, तब हे सञ्जय, मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥ १७१ ॥ जब मैंने सुना कि, पराजित, धनहीन, वन में विचरनेवाले, स्वजनहीन युधिष्ठिर को सात अक्षौहिणी सेना मिली, तब हे सञ्जय, मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥ १७२ ॥ जब मैंने सुना कि, सञ्जय वसुदेव के पुत्र माधव पाण्डवों के हित में सब प्रकार से लगे हुए हैं जिनके एक पैर में यह समस्त पृथ्वी आ गई थी, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१७३॥ जब मैंने नारद के मुँह से सुना कि, कृष्ण और अर्जुन नर नारायण हैं, यह बात नारद ने ब्रह्मलोक में देखी है । सञ्जय, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१७४॥ जब मैंने सुना कि, लोकहित के लिये सुलह कराने की इच्छा से श्रीकृष्ण कुरुओं के यहाँ आए और सुलह न होने से विफल होकर लौट गए । सञ्जय, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१७५॥ सञ्जय, जब मैंने

तं चात्मानं बहुधा दर्शयानं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१७६॥
यदाऽश्रौषं वासुदेवे प्रयाते रथस्यैकामग्रतस्तिष्ठमानाम् ।
आर्तां पृथां सांत्वितां केशवेन तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१७७॥
यदाऽश्रौषं मन्त्रिणं वासुदेवं तथा भीष्मं शान्तनवं च तेषाम् ।
भारद्वाजं चाशिषोऽनुब्रुवाणं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥१७८॥
यदाऽश्रौषं कर्ण उवाच वाक्यं नाहं योत्स्ये युध्यमाने त्वयीति ।
हित्वा सेनामपचक्राम चापि तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥१७९॥
यदाऽश्रौषं वासुदेवार्जुनौ तौ तथा धनुर्गाण्डिवमप्रमेयम् ।
त्रीण्युग्रवीर्याणि समागतानि तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१८०॥
यदाऽश्रौषं कश्मलेनाभिपन्ने रथोपस्थे सीदमानेऽर्जुने वै ।
कृष्णं लोकान्दर्शयानं शरीरे तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१८१॥
यदाऽश्रौषं भीष्ममित्रकर्शनं निघ्नंतमाजावयुतं रथानाम् ।
नैषां कश्चिद्वध्यते ख्यातरूपस्तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१८२॥
यदाऽश्रौषं चापगेयेन संख्ये स्वयं मृत्युं विहितं धार्मिकेण ।
तच्चाकार्षुः पाण्डवेयाः प्रहृष्टास्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥१८३॥

सुना कि, केशव को पकड़ रखने के लिये कर्ण और दुर्योधन ने सलाह की है और उस समय कृष्ण ने विश्वरूप दिखलाया है। हे सञ्जय, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१७६॥ सञ्जय, जब मैंने सुना कि, वासुदेव के लौटने पर दुःखिनी कुन्ती अकेली उनके रथ के आगे खड़ी हुई और उन्होंने उसे समझाया, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१७७॥ हे सञ्जय! जब मैंने सुना कि, वासुदेव और शन्तनुपुत्र भीष्म पाण्डवों को सलाह देते हैं और द्रोणाचार्य उन्हें आशीर्वाद देते हैं, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१७८॥ सञ्जय, जब मैंने सुना कि, कर्ण ने कहा है—जब तक भीष्म युद्ध करेंगे मैं नहीं करूंगा और वह सेना छोड़कर चला गया है हे सञ्जय, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१७९॥ हे सञ्जय, जब मैंने सुना कि वासुदेव अर्जुन और विशाल गाण्डीव धनुष ये तीनों परमपराक्रमी एकत्र हुए हैं, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१८०॥ जब मैंने सुना कि, मोहवश दुःखी होकर अर्जुन रथ के नीचे बैठ गया है और श्रीकृष्ण ने अपने शरीर में समस्त लोकों का दर्शन कराया है। हे सञ्जय, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१८१॥ जब मैंने सुना कि, शत्रुहन्ता भीष्म प्रतिदिन दस हज़ार रथियों को मारते हैं, फिर भी पाण्डवों का कोई प्रसिद्ध वीर नहीं मारा गया है, हे सञ्जय, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१८२॥ सञ्जय, जब मैंने सुना कि, धर्मात्मा भीष्म ने युद्ध में स्वयं अपनी मृत्यु बुलाई है और मृत्यु का प्रबन्ध पाण्डवों ने प्रसन्नतापूर्वक किया है, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१८३॥ जब मैंने सुना कि, युद्ध में अजेय अत्यन्त वीर भीष्म को अर्जुन ने अपने आगे

यदाऽश्रौषं भीष्ममत्यन्तशूरं हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम् ।
शिखण्डिनं पुरतः स्थापयित्वा तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१८४॥
यदाऽश्रौषं शरतल्पे शयानं वृद्धं वीरं सादितं चित्रपुंखैः ।
भीष्मं कृत्वा सोमकानल्पशेषांस्तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१८५॥
यदाऽश्रौषं शांतनवे शयाने पानीयार्थे चोदितेनार्जुनेन ।
भूमिं भित्वा तर्पितं तत्र भीष्मं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१८६॥
यदा वायुश्चन्द्रसूर्यौ च युक्तौ कौन्तेयानामनुलोमा जयाय ।
नित्यं चास्मान् श्वापदा भीषयन्ति तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१८७॥
तदा द्रोणो विविधानस्त्रमार्गान्निदर्शयन्समरे चित्रयोधी ।
न पाण्डवान् श्रेष्ठतरान्निहन्ति तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१८८॥
यदाऽश्रौषं चास्मदीयान्महारथान्व्यवस्थितानर्जुनस्यांतकाय ।
संशप्तकान्निहतानर्जुनेन तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१८९॥
यदाऽश्रौषं व्यूहमभेद्यमन्यैर्भारद्वाजेनात्तशस्त्रेण गुप्तम् ।
भित्वासौ भद्रं वीरमेकं प्रविष्टं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१९०॥
यदाऽभिमन्युं परिवार्य बालं सर्वे हत्वा हृष्टरूपा बभुवुः ।
महारथाः पार्थमशक्नुवंतस्तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१९१॥

शिखण्डी को खड़ा करके मारा है, तब हे सञ्जय, मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१८४॥ जब मैंने सुना कि सोमवंशियों को भीष्म ने थोड़ा ही बचा रहने दिया है अर्थात् बहुतों का नाश कर दिया है और चित्रित पंखवाले बाणों से बिधकर बूढ़े वीर भीष्मपितामह शरशय्या पर सो रहे हैं, सञ्जय, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१८५॥ जब मैंने सुना कि, भीष्म पितामह शरशय्या पर सो रहे थे, तब उन्होंने अर्जुन से जल माँगा। अर्जुन ने पाताल भेदकर जल निकाला और उन्हें तृप्त किया सञ्जय, तब मुझे विजय की आशा नहीं है ॥१८६॥ जब मैंने सुना कि वायु, और चन्द्रमा सूर्य दोनों मिलकर पाण्डवों की विजय के अनुकूल हो गए हैं और जङ्गली, हिंसक पशु हमलोगों को डरवा रहे हैं, तब सञ्जय, मैं युद्ध में विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१८७॥ जब मैंने सुना कि, अद्भुत युद्ध करनेवाले द्रोण युद्ध में अनेक तरह की अस्त्र निपुणता दिखलाते हैं, पर पाण्डवों और उनके प्रधान योद्धाओं में एक को भी नहीं मार सके हैं, तब सञ्जय, मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१८८॥ जब मैंने सुना कि, हमारे संशप्तक महारथी अर्जुन को मारने के लिये उद्यत हुए, पर अर्जुन ने ही उन सबको मार दिया, तब सञ्जय, मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१८९॥ जब मैंने सुना कि, अभेद्य चक्रव्यूह की रक्षा भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य शस्त्र लेकर कर रहे थे, उस व्यूह को सुभद्रापुत्र वीर अभिमन्यु ने अकेले तोड़ दिया और वह उसमें घुस गया, तब हे सञ्जय, मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१९०॥ बालक अभिमन्यु

यदाऽश्रौषमभिमन्युं निहत्य हर्षान्मूढान् क्रोशतो धार्त्तराष्ट्रान्।
क्रोधादुक्तं सैन्धवे चार्जुनेन तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१९२॥
यदाऽश्रौषं सैन्धवार्थे प्रतिज्ञां प्रतिज्ञातां तद्वधायार्जुनेन।
सत्यां तीर्णां शत्रुमध्ये च तेन तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१९३॥
यदाऽश्रौषं श्रांतहये धनंजये मुक्त्वा हयान्पाययित्वोपवृत्तान्।
पुनर्युक्त्वा वासुदेवं प्रयातं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१९४॥
यदाऽश्रौषं वाहनेष्वक्षमेषु रथोपस्थे तिष्ठता पाण्डवेन।
सर्वान्योधान् वारितानर्जुनेन तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१९५॥
यदाऽश्रौषं नागबलैः सुदुःसहं द्रोणानीकं युयुधानं प्रमथ्य।
यातं वार्ष्णेयं यत्र तौ कृष्णपार्थौ तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१९६॥
यदाऽश्रौषं कर्णमासाद्य मुक्तं वधाद्भीमं कुत्सयित्वा वचोभिः।
धनुष्कोट्या तुद्य कर्णेन वीरं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१९७॥
यदा द्रोणः कृतवर्मा कृपश्च कर्णो द्रौणिर्मद्रराजश्च शूरः।
अमर्षयन्सैन्धवं वध्यमानं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१९८॥

को घेर कर जब हमारे महारथियों ने मारा और अर्जुन को वे न मार सके, तब हे सञ्जय, मैं युद्ध में विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१९१॥ जब मैंने सुना कि, अभिमन्यु को मारकर मेरे पुत्र तथा उनके दलवाले मूर्खतावश आनन्द कोलाहल करने लगे और अर्जुन ने सन्ध्या के पहले जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की, तब हे सञ्जय, मैं युद्ध में विजय की आशा नही करता हूँ ॥१९२॥ जब मैंने सुना कि, शत्रुवध की अर्जुन ने जो प्रतिज्ञा की थी, शत्रुओं के सामने वह प्रतिज्ञा उन्होंने पूरी कर दिखाई, हे सञ्जय, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१९३॥ जब मैंने सुना कि, अर्जुन के घोड़े थक गए थे, उन घोड़ों को रथ से खोलकर जल पिलाया और रथ में उन्हें जोतकर श्रीकृष्ण ने प्रयाण किया, तब हे सञ्जय मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१९४॥ जब मैंने सुना कि, घोड़े थक गए थे, चल नहीं सकते थे, तब रथ के पास खड़ा होकर अकेले अर्जुन सब योद्धाओं को रोक रहे थे, हे संजय, तब मैं युद्ध में विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१९५॥ जब मैंने सुना कि द्रोणाचार्य की सेना जो हाथियों से घिरी हुई थी और विकट युद्ध कर रही थी, उसको मथित कर वृष्णवंशी सात्यकी श्रीकृष्ण और अर्जुन के पास चला गया, तब हे सञ्जय, मैं युद्ध में विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१९६॥ जब मैंने सुना कि अपने पास आए हुए भीमसेन को वचनों के द्वारा तिरस्कार करके कर्ण ने छोड़ दिया और धनुष की नोक से उन्हें खुरच दिया, तथा गाली दी, तब हे सञ्जय, मैं युद्ध में विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१९७॥ जब मैंने सुना कि द्रोणाचार्य, कृतवर्म्मा, कृपाचार्य्य, कर्ण, अश्वत्थामा, मद्रराज, वीर शल्य इन लोगों ने जयद्रथ का वध होते देखा और उसे सह लिया, तब हे सञ्जय ! मैं युद्ध में विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१९८॥ जब मैंने सुना

यदाऽश्रौषं देवराजेन दत्तां दिव्यां शक्तिं व्यंसिता माधवेन ।
घटोत्कचे राक्षसे घोररूपे तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥१९९॥
यदाऽश्रौषं कर्णघटोत्कचाभ्यां युद्धे मुक्तां सूतपुत्रेण शक्तिम् ।
यया वध्यः समरे सव्यसाची तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥२००॥
यदाऽश्रौषं द्रोणमाचार्यमेकं धृष्टद्युम्नेनाभ्यतिक्रम्य धर्मम् ।
रथोपस्थे प्रायगतं विशस्तं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥२०१॥
यदाऽश्रौषं द्रौणिना द्वैरथस्थं माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये ।
समं युद्धे मण्डलेभ्यश्चरंतं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥२०२॥
यदा द्रोणे निहते द्रोणपुत्रो नारायणं दिव्यमस्त्रं विकुर्वन् ।
नैषामंतं गतवान्पाण्डवानां तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥२०३॥
यदाऽश्रौषं भीमसेनेन पीतं रक्तं भ्रातुर्युधि दुःशासनस्य ।
निवारितं नान्यतमेन भीमं तदा नाशंसे विजयाय संजया ॥२०४॥
यदाऽश्रौषं कर्णमत्यन्तशूरं हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम् ।
तस्मिन् भ्रातॄणां विग्रहे देवगुह्ये तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥२०५॥
यदाऽश्रौषं द्रोणपुत्रं च शूरं दुःशासनं कृतवर्माणमुग्रम् ।
युधिष्ठिरं धर्मराजं जयंतं तदा नाशसे विजयाय सञ्जय ॥२०६॥

कि, देवराज इन्द्र से जो दिव्यशक्ति कर्ण ने पाई थी, वह भयङ्कर राक्षस घटोत्कच पर श्रीकृष्णने चलवा दी, तब हे सञ्जय, मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥१९९॥ जब मैंने सुना कि, घटोत्कच के साथ युद्ध करते हुए कर्ण ने वह शक्ति उस पर चला दी, जो अर्जुन के वध के लिये थी, तब हे सञ्जय ! मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२००॥ जब मैंने सुना कि, धर्म का अतिक्रम करके धृष्टद्युम्न ने रथ के पास अस्त्र छोड़कर बैठे हुए द्रोणाचार्य का वध किया, तब हे सञ्जय ! मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२०१॥ जब मैंने सुना कि, माद्री-पुत्र नकुल युद्ध के बीच में अश्वत्थामा के साथ युद्ध करने लगा और दाव वदलने और चक्कर काटने में उसने उनकी बराबरी की, तब हे सञ्जय, मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२०२॥ जब द्रोण के मारे जाने पर उनके पुत्र अश्वत्थामा ने दिव्य नारायण अस्त्र छोड़ा पर उससे पाण्डवों में का कोई भी नहीं मारा गया, तब हे सञ्जय ! मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२०३॥ जब मैंने सुना कि, भीमसेन ने युद्ध में दुश्शासन का रक्तपान किया और उसके भाई भीम को रोक नहीं सके, हे सञ्जय, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२०४॥ जब मैंने सुना कि, अत्यन्त वीर युद्ध में पराजित न होनेवाला कर्ण, अर्जुन के द्वारा मारा गया और इसका प्रधान कारण यह था कि, ये नहीं जानते थे कि हम दोनों परस्पर भाई भाई हैं, तब हे सञ्जय, मुझे विजय की आशा नहीं हैं ॥२०५॥ जब मैंने सुना कि, द्रोणपुत्र वीर अश्वत्थामा को, दुश्शासन और उग्र कृतवर्म्मा को युधिष्ठिर ने जीत लिया है, तब हे सञ्जय,

यदाऽश्रौषं निहतं मद्रराजं रणे शूर धर्मराजेन सूत ।
सदा संग्रामे स्पर्धते यस्तु कृष्ण तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥२०७॥
यदाऽश्रौषं कलहद्यूतमूलं मायाबलं सौबलं पांडवेन ।
हतं संग्रामे सहदेवेन पापं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥२०८॥
यदाऽश्रौषं श्रान्तमेकं शयानं ह्रदं गत्वा स्तम्भयित्वा तदम्भः ।
दुर्योधनं विरथं भग्नशक्तिं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥२०९॥
यदाऽश्रौषं पाण्डवांस्तिष्ठमानान् गत्वा ह्रदे वासुदेवेन सार्धम् ।
अमर्षणं धर्षयतः सुतं मे तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥२१०॥
यदाऽश्रौषं विविधांश्चित्रमार्गान् गदायुद्धे मण्डलशश्चरन्तम् ।
मिथ्याहतं वासुदेवस्य बुद्‌ध्या तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥२११॥
यदाऽश्रौषं द्रोणपुत्रादिभिस्तैर्हतान्पाञ्चालान् द्रौपदेयांश्च सुप्तान ।
कृतं बीभत्समयशस्यं च कर्म तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥२१२॥
यदाऽश्रौषं भीमसेनानुयातेनाश्वत्थाम्ना परमास्त्रं प्रयुक्तम् ।
क्रुद्धेनैषीकमवधीद्येन गर्भं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥२१३॥
यदाऽश्रौषं ब्रह्मशिरोऽर्जुनेन स्वस्तीत्युक्त्वाऽस्त्रमस्त्रेण शान्तम् ।

मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२०६॥ जब मैंने सुना कि मद्रराज वीर शल्य को युद्ध में युधिष्ठिर ने मार दिया, जो शल्य श्रीकृष्ण से युद्ध करने का हौसला रखता था, तब हे सञ्जय, मैं युद्ध में विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२०७॥ जब मैंने सुना कि, जुआ और झगड़े की जड़, छली, पापी शकुनी को पाण्डव सहदेव ने युद्ध में मारा, तब हे सञ्जय, मैं युद्ध में विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२०८॥ जब मैंने सुना कि, दुर्योधन एक तालाब में जाकर उसके जल को स्तम्भित कर वहाँ अकेला सो गया, उसका रथ टूट गया था, उसकी सब शक्तियाँ नष्ट हो गई थीं, हे सञ्जय, तब मैं युद्ध में विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२०९॥ जब मैंने सुना कि, उस तालाब पर श्रीकृष्ण के साथ पाण्डव खड़े हैं और क्रोधी मेरे पुत्र का तिरस्कार कर रहे हैं, तब हे सञ्जय, मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२१०॥ जब मैंने सुना कि गदायुद्ध में दुर्योधन अनेक प्रकार के कौशल दिखला रहा था, मण्डलाकार घूमकर दाँव कर रहा था, उस समय श्रीकृष्ण के परामर्श से वह व्यर्थ ही मारा गया, हे सञ्जय, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२११॥ जब मैंने सुना कि अश्वत्थामा आदि ने द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों और पाञ्चालों को मार डाला है, जब इस वीभत्स और निन्दित कर्म को मैंने सुना, सञ्जय, तब मैं विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२१२॥ जब मैंने सुना कि, अपने पीछे दौड़ते हुए भीमसेन पर क्रोध करके अश्वत्थामा ने ऐषीक नामक भयङ्कर अस्त्र चलाया है, जिससे उत्तरा के गर्भ का नाश हुआ है, तब हे सञ्जय, मैं युद्ध में विजयकी आशा नहीं करता हूँ ॥२१३॥ जब मैंने सुना कि, अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को अपने ब्रह्मास्त्र के द्वारा "स्वस्ति"

अश्वत्थाम्ना मणिरत्नं च दत्तं तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥२१४॥
यदाऽश्रौषं द्रोणपुत्रेण गर्भे वैराट्या वै पात्यमाने महास्त्रैः।
द्वैपायनः केशवो द्रोणपुत्रं परस्परेणाभिशापैः शशाप ॥२१५॥
शोच्या गान्धारी पुत्रपौत्रैर्विहीना तथा बन्धुभिः पितृभिर्भ्रातृभिश्च ।
कृतं कार्यं दुष्करं पाण्डवेयैः प्राप्तं राज्यमसपत्नं पुनस्तैः ॥२१६॥
कष्टं युद्धे दश शेषाः श्रुता मे त्रयोऽस्माकं पाण्डवानां च सप्त ।
द्व्यूना विंशतिराहताऽक्षौहिणीनां तस्मिन्संग्रामे भैरवे क्षत्रियाणाम् ॥२१७॥
तमस्त्वतीव विस्तीर्णं मोह आविशतीव माम् । संज्ञां नोपलभे सूत मनो विह्वलतीव मे॥२१८॥
सौतिरुवाच ॥
इत्युक्त्वा धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहु दुःखितः । मूर्च्छितः पुनराश्वस्तः संजयं वाक्यमब्रवीत्॥२१९॥
धृतराष्ट्र उवाच ॥
संजयैवंगते प्राणाँस्त्यक्तुमिच्छामि माचिरम् । स्तोकं ह्यपि न पश्यामि फलं जीवितधारणे॥२२०॥
सौतिरुवाच ॥
तं तथावादिनं दीनं विलपन्तं महीपतिम् । निःश्वसंतं यथा नागं मुह्यमानं पुनः पुनः ॥२२१॥
गावाल्गणिरिदं धीमान्महार्थं वाक्यमब्रवीत् । सञ्जय उवाच ॥
श्रुतवानसि वै राजन महोत्साहान् महाबलान् ॥२२२॥

कहकर अर्जुन ने शान्त कर दिया और अपना मणिरत्न अश्वत्थामा ने उन्हें दे दिया, हे सञ्जय, तब मैं युद्ध में विजय की आशा नहीं करता हूँ ॥२१४॥ जब मैंने सुना कि, अश्वत्थामाने उत्तरा के गर्भनाश के लिये ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया है और व्यासदेव, तथा श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा को शाप दिया है और अश्वत्थामा ने उन्हें शाप दिया है ॥२१५॥ गान्धारी के लिये मुझे शोक है, क्योंकि उसके बेटे, पोते मारे गए हैं, उसके पिता, भाई बन्धु आदि मारे गए हैं, पाण्डवों ने बड़ा अद्भुत काम किया है। उन लोगों ने शत्रुहीन राज्य प्राप्त किया है ॥२१६॥ दुःख की बात है कि इस युद्ध में दस ही बच गए हैं, तीन हमारी ओर के और सात पाण्डवों की ओर के । क्षत्रियों के इस भयङ्कर युद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेना मारी गई है ॥२१७॥ हे सूत ! मेरे चारों ओर अन्धकार फैल गया है। मैं चेतनाहीन होता जा रहा हूँ, मुझे कुछ मालूम नहीं पड़ता। मेरा मन व्याकुल हो गया है ॥२१८॥ सौति बोले—ऐसा कहकर धृतराष्ट्र ने बड़े दुःख से विलाप किया और वे मूर्च्छित हो गए। पुनः होश आने पर वे सञ्जय से बोले ॥२१९॥ धृतराष्ट्र बोले—सञ्जय, ऐसी अवस्था में मैं शीघ्र अपने प्राणों का त्याग करना चाहता हूँ; क्योंकि अब जीवित रहने में थोड़ा भी लाभ मुझे दिखाई नहीं पड़ता ॥२२०॥ सौति(उग्रश्रवा) बोले—राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार दीन होकर विलाप करने लगे। हाथी के समान लम्बी साँस खींचने लगे और बार २ मोहित होने लगे, तब

द्वैपायनस्य वदतो नारदस्य च धीमतः। महत्सु राजवंशेषु गुणैः समुदितेषु च ॥२२३॥
जातान् दिव्यास्त्रविदुषः शक्रप्रतिमतेजसः। धर्मेण पृथिवीं जित्वा यज्ञैरिष्ट्वाऽऽप्तदक्षिणैः ॥२२४॥
अस्मिँल्लोके यशः प्राप्य ततः कालवशं गतान्। शैब्यं महारथं वीरं सृञ्जयं जयतां वरम् ॥२२५॥
सुहोत्रं रन्तिदेवं च कक्षिवन्तमथौशिजम्। बाह्लीकं दमनं चैद्यं शर्यातिमजितं नलम् ॥२२६॥
विश्वामित्रममित्रघ्नमंबरीषं महाबलम्। मरुत्तं मनुमिक्ष्वाकुं गयं भरतमेव च ॥२२७॥
रामं दाशरथिं चैव शशबिन्दुं भगीरथम्। कृतवीर्यं महाभागं तथैव जनमेजयम् ॥२२८॥
ययातिं शुभकर्माणं देवैर्यो याजितः स्वयम्। चैत्ययूपांकिता भूमिर्यस्येयं सवनाकरा ॥२२९॥
इतिराज्ञां चतुर्विंशन्नारदेन सुरर्षिणा। पुत्रशोकाभितप्ताय पुरा श्वैत्याय कीर्तितम्॥२३०॥
तेभ्यश्चान्ये गताः पूर्वं राजानो बलवत्तराः। महारथा महात्मानः सर्वैः समुदिता गुणैः॥२३१॥
पूरुः कुरुर्यदुः शूरो विष्वगश्वो महाद्युतिः। अणुहो युवनाश्वश्च ककुत्स्थो विक्रमी रघुः॥२३२॥
विजयो वीतिहोत्रोऽङ्गो भवः श्वेतो बृहद्गुरुः। उशीनरः शतरथः कंको दुलीदुहो द्रुमः॥२३३॥
दम्भोद्भवः परो वेनः सगरः संकृतिर्निमिः। अजेयः परशुः पुण्ड्रः शंभुर्देवावृधोऽनघः ॥२३४॥
देवाह्वयः सुप्रतिमः सुप्रतीको बृहद्रथः। महोत्साहो विनीतात्मा सुक्रतुर्नैषधो नलः॥२३५॥
सत्यव्रतः शान्तभयः सुमित्रः सुबलः प्रभुः। जानुजंघोऽनरण्योऽर्कः प्रियभृत्यःशुचिव्रतः॥२३६॥
बलबन्धुर्निरामर्दः केतुशृङ्गो बृहद्बलः। धृष्टकेतुर्बृहत्केतुर्दीप्तकेतुर्निरामयः ॥२३७॥

बुद्धिमान् सञ्जय ने यह गम्भीरार्थक वचन कहा। राजन्, आपने व्यासदेव तथा बुद्धिमान् नारद के मुँह से सुना है कि उत्साही, महाबली, समस्त गुणों से युक्त प्रख्यात राजवंश में उत्पन्न इन्द्र के समान तेजस्वी दिव्य अस्त्रों को जाननेवाले जिन्होंने धर्मपूर्वक पृथ्वी को जीता था, तथा दक्षिणा देकर यज्ञ किया था, वे भी इस लोक में यशस्वी होकर अन्त में कालवश हो गए। महारथ शैब्य वीर विजयी सञ्जय, सुहोत्र रन्तिदेव, कक्षीवान्, औशिज, बाह्लीक, दमन, सर्याति, अजेय नल, शत्रुहन्ता विश्वामित्र, महाबली अम्बरीष, मरुत, मनु, इक्ष्वाकु, गय, भरत, दशरथ पुत्र राम, शशबिन्दु, भगीरथ, महाभागी कृतवीर्य्य, जनमेजय, पुण्यकर्मा ययाति जिन्हें स्वयं देवताओं ने यज्ञ कराया था, जिनके यज्ञ-यूपों से (खम्भा) यह समस्त पृथ्वी चिह्नित है, इन सब की वही दशा हुई है ॥२२१॥ ॥२२२॥ ॥२२३॥ ॥२२४॥ ॥२२५॥ ॥२२६॥ ॥२२७॥ ॥२२८॥ ॥२२९॥ राजन्, पहले पुत्रशोक से पीड़ित श्वैत्य से देवर्षि नारद ने इन चौबीस राजाओं के वृत्तान्त कहे थे ॥२३०॥ इन राजाओं के अतिरिक्त और भी अनेक बली महारथ महात्मा राजा पहले के समय में हो गए हैं। जो समस्त गुणों से युक्त थे। वे भी कालवश हो गए हैं ॥२३१॥ पुरु, कुरु, यदु, सूर, महाद्युति विष्वगश्व, अणुह, युवनाश्व, ककुत्स्थ, पराक्रमी रघु, विजय, वीतिहोत्र, अङ्ग, भव, श्वेत, बृहद्गुरु, उशीनर, शतरथ, कङ्क, दुलिद्रुह, द्रुम, दम्भोद्भव, वेन, सगर, संकृति, निमि, अजेय परशु, पुण्ड्र, शम्भु, निष्पाप देवावृध, देवाह्वय, सुप्रतीम, सुप्रतीक, बृहद्रथ, महोत्साही और विनयी सुक्रतु, निषधराज नल, निर्भय सत्यव्रत, सुमित्र, प्रभु सुबल, जानुजंघ, अनरण्य,

अविक्षिच्चपलो धूर्त्तः कृतबन्धुर्दृढेषुधिः । महापुराणसंभाव्यः प्रत्यङ्गः परहा श्रुतिः ॥२३८॥
एते चान्ये च राजानः शतशोऽथ सहस्रशः । श्रूयन्ते शतशोऽन्ये संख्यातश्चैव पद्मशः ॥२३९॥
हित्वा सुविपुलान् भोगान् बुद्धिमन्तो महाबलाः। राजानो निधनं प्राप्तास्तव पुत्रा इव प्रभो ॥२४०॥
येषां दिव्यानि कर्माणि विक्रमस्त्याग एव च । महात्म्यमपि चास्तिक्यं सत्यं शौचं दयार्जवम्॥२४१।
विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणे कविसत्तमैः । सर्वर्द्धिगुणसम्पन्नास्ते चापि निधनं गताः ॥२४२॥
तव पुत्रा दुरात्मानः प्रतप्ताश्चैव मन्युना । लुब्धा दुर्वृत्तभूयिष्ठा न ताञ्छोचितुमर्हसि ॥२४३॥
श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान्प्राज्ञसंमतः । येषां शास्त्रानुगा बुद्धिर्न ते मुह्यन्ति भारत ॥२४४॥
निग्रहानुग्रहौ चापि विदितौ ते नराधिप । नात्यन्तमेवानुवृत्तिः कार्या ते पुत्ररक्षणे ॥२४५॥
भवितव्यतया तच्च नानुशोचितुमर्हसि । दैवं प्रज्ञाविशेषेण को निवर्तितुमर्हति ॥२४६॥
विधातृविहितं मार्गं न कश्चिदतिवर्तते । कालमूलमिदं सर्वं भावाभावौ सुखासुखे ॥२४७॥
कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः । संहरन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः ॥२४८॥
कालोहि कुरुते भावान् सर्वलोके शुभाशुभान् । कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजा विसृजते पुनः ॥२४९॥

प्रियभृत्य, शुचिव्रत, बलबन्धु, निरामर्द, केतुशृङ्ग, बृहद्बल, धृष्टकेतु, बृहत्केतु, रोगहीन दीप्तकेतु, अविक्षित, चञ्चल, और धूर्त कृतबन्धु, दृढेषुधि, पुराण प्रशंसित प्रत्यङ्ग, जिनकी शत्रुहन्ता के नाम से प्रसिद्ध थी । ये तथा अन्य सैकड़ों हज़ारों राजा सुने जाते हैं तथा पद्मों राजाओं की गणना हुई है, जो बुद्धिमान और महाबली थे और विशाल भोगों को छोड़कर कालवश हो गए हैं; प्रभो, जिस प्रकार आपके पुत्र कालवश हुए हैं ॥२३२।२४०॥ जिनके अलौकिक कार्य, पराक्रम, त्याग, महात्म्य, आस्तिकता, सत्य, शुद्धि, दया, सरलता का कविश्रेष्ठ विद्वान् पुराणों में वर्णन करते हैं । ये समस्त ऐश्वर्यों और गुणों से युक्त थे, इनकी भी मृत्यु हुई ॥२४१॥ ॥२४२॥ आपके पुत्र दुष्ट थे, क्रोध से जल रहे थे, लोभी थे, बड़े दुराचारी थे, उनके लिये आप शोक न करें ॥२४३॥ आपने वेदों का अध्ययन किया है और उनका रहस्य जाना है, आप बुद्धिमान हैं और बुद्धिमानगण आपका आदर करते हैं । हे भारत, जिनकी बुद्धि शास्त्रानुगामिनी होती है अर्थात् जिनका आचरण शास्त्रानुकूल होता है, वे कर्तव्यमूढ़ नहीं होते ॥२४४॥ राजन्, निग्रह और अनुग्रह, दण्ड और सहायता इन दोनों की बात आपको मालूम है, अतएव पुत्रों की रक्षा के लिये आप चिन्तित न हों अर्थात् पाण्डवों को आपने काफी दण्ड दिया, अपने पुत्रों को काफ़ी सहायता दी, यह आप अच्छी तरह जानते हैं, पर सफल न हो सके, तो क्या किया जाय ॥२४५॥ ऐसी ही भावी थी इसके लिये आप शोक न करें । बुद्धि के द्वारा कोई भाग्य को तो उलट नहीं सकता ॥२४६॥ भाग्य के द्वारा नियत मार्ग का अतिक्रम कोई नहीं कर सकता । अर्थात् कर्मों के अनुसार जो शुभाशुभ फल निश्चित हो चुका है, वह बदला नहीं जा सकता । यह सब भाव अभाव और सुख दुःख काल के अनुसार होते हैं, काल ही इनका कर्त्ता है ॥२४७॥ काल प्राणियों का सृष्टिकर्त्ता है और वही प्रजाओं का नाश करता है तथा प्रजा का नाश करनेवाले काल का भी अन्त, काल ही के द्वारा होता है ॥ २४८ ॥ समस्त लोकों में शुभ और अशुभ कर्म काल ही करता है और यही प्रजाओं का संक्षेप (संहार) तथा विसर्ग (सृष्टि) करता है ॥ २४९ ॥ समस्त संसार के

कालः सुप्तेषु जागर्ति कालोहि दुरतिक्रमः । कालः सर्वेषु भूतेषु चरत्यविधृतः समः ॥२५०॥
अतीतानागता भावा ये च वर्तंति सांप्रतम् । तान्कालनिर्मितान्बुद्धा न संज्ञां हातुमर्हसि ॥२५१॥
सौतिरुवाच ॥
इत्येवं पुत्रशोकार्तं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् । आश्वास्य स्वस्थमकरोत् सूतो गावल्गणिस्तदा ॥२५२
अत्रोपनिषदं पुण्यां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् । विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणे कविसत्तमैः ॥२५३॥
भारताध्ययनं पुण्यमपि पादमधीयतः । श्रद्दधानस्य पूयन्ते सर्वपापान्यशेषतः ॥२५४॥
देवा देवर्षयो ह्यत्र तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः । कीर्त्यन्ते शुभकर्माणस्तथा यक्षा महोरगाः॥२५५॥
भगवान्वासुदेवश्च कीर्त्यते च सनातनः । सहि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च ॥२५६॥
शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम् । यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः ॥२५७॥
असच्च सदसच्चैव यस्माद्विश्वं प्रवर्तते । सन्ततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपुनर्भवाः ॥२५८॥
अध्यात्मं श्रूयते यच्च पंचभूतगुणात्मकम् । अव्यक्तादि परं यच्च स एव परिगीयते ॥२५९॥
यत्तद्यतिवरा मुक्ता ध्यानयोगबलान्विताः । प्रतिबिम्बमिवादर्शे पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्॥२६०॥

सो जाने पर अर्थात् प्रलय के समय भी काल जागता रहता है । काल अलङ्घनीय है । काल समस्त प्राणियों में विचरण करता है अर्थात् उनका परिचालन करता है उसका कोई आधार नहीं है वही सब का आश्रय है वर्ष काल समभाव से सर्वत्र वर्तमान है ॥ २५० ॥ अतीत और अनागत तथा वर्तमान जो कुछ पदार्थ हैं वे सब काल के द्वारा निर्मित हैं । यह समझ कर आपको विचलित नहीं होना चाहिये । अपने ज्ञान को नष्ट न होने देना चाहिये ॥ २५१ ॥ सौति बोले—इस प्रकार समझा कर पुत्रशोकपीड़ित राजा धृतराष्ट्र को सञ्जय ने प्रकृतिस्थ किया ॥ २५ ॥ इसी कथा भाग को लेकर कृष्णद्वैपायन व्यास ने एक पवित्र ग्रन्थ बनाया है जिसे कविश्रेष्ठ विद्वान् पुराण कहते हैं तथा उसका परायण करते हैं ॥ २५३ ॥ इस भारत ग्रन्थ का अध्ययन पवित्र है, जो इसका एक पाद भी, चौथाई हिस्सा भी पढ़ता है और श्रद्धा के साथ पढ़ता है, तो उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ २५४ ॥ इस ग्रन्थ में देवता, देवर्षि, निष्पाप ब्रह्मर्षियों का कीर्तन हुआ है, तथा उनके शुभ कर्मों का भी कीर्तन हुआ है, यक्ष और नागों का भी कीर्तन हुआ है ॥ २५५ ॥ सनातन भगवान् वासुदेव का इस ग्रन्थ में कीर्तन हुआ है, जो सत्यस्वरूप हैं, ऋत हैं अर्थात् वेदबोधित ज्ञानरूप हैं, पापनाशक हैं और अभ्युदय के हेतु हैं ॥ २५६ ॥ वे सदा वर्तमान ब्रह्म हैं, कार्यकारण से अतीत कूटस्थ, चैतन्य और सनातन हैं । ऐसे भगवान के दिव्य कर्मों का वर्णन विद्वान् करते हैं ॥ २५७ ॥ ऐसे भगवान से अनिर्वचनीय कार्यकारणरूप विश्व उत्पन्न होता है, उन्हींसे ब्रह्मा आदि सन्तति, यज्ञ आदि प्रवृत्ति, जन्ममृत्यु और पुनर्जन्म होते हैं ॥ २५८ ॥ जो पञ्चभूतों के कार्यरूप इन्द्रियों का नियामक सुना जाता है, जो अध्यात्म नाम से प्रसिद्ध है और जो अव्यक्त का आदि है तथा अज्ञेय है ॥ २५९ ॥ ये दोनों वेदों में एक ही बतलाए गए हैं, जिनको श्रेष्ठ योगी तथा मुक्त पुरुष जो ध्यान और योगबल से बलवान हैं, वे दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान, आत्मा में अवस्थित देखते हैं ॥ २६० ॥ श्रद्धावान, सदा संयम से रहने

श्रद्दधानः सदायुक्तः सदाधर्मपरायणः। आसेवन्निममध्यायं नरः पापात् प्रमुच्यते ॥२६१॥
अनुक्रमणिकाध्यायं भारतस्येममादितः। आस्तिकः सततं शृण्वन्न कृच्छ्रेष्ववसीदति ॥२६२॥
उभे सन्ध्ये जपन्किंचित्सद्यो मुच्येत किल्बिषात्। अनुक्रमण्या यावत्स्यादह्ना रात्र्या च सञ्चितम् २६३
भारतस्य वपुर्ह्येतत्सत्यं चामृतमेव च। नवनीतं यथा दध्नो द्विपदां ब्राह्मणो यथा ॥२६४॥
आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा। ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ॥२६५॥
यथैतानीतिहासानां तथा भारतमुच्यते। यश्चैनं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्ततः ॥२६६॥
अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते। इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ॥२६७॥
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति। कार्ष्णं वेदमिमं विद्वान् श्रावयित्वार्थमश्नुते ॥२६८॥
भ्रूणहत्यादिकं चापि पापं जह्यादसंशयम्। य इमं शुचिरध्यायं पठेत्पर्वणि पर्वणि ॥२६९॥
अधीतं भारतं तेन कृत्स्नं स्यादिति मे मतिः। यश्चैनं शृणुयान्नित्यमार्षं श्रद्धासमन्वितः ॥२७०॥
स दीर्घमायुः कीर्तिं च स्वर्गतिं चाप्नुयान्नरः। एकतश्चतुरो वेदा भारतं चैतदेकतः ॥२७१॥
पुरा किल सुरैः सर्वैः समेत्य तुलया धृतं। चतुर्भ्यः सरहस्येभ्यो वेदेभ्योह्यधिकं यदा ॥ २७२॥
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन्महाभारतमुच्यते। महत्त्वे च गुरुत्वे च ध्रियमाणं यतोऽधिकम् ॥२७३॥

वाला, सदा धर्म में बुद्धि रखनेवाला मनुष्य इस अध्याय का यदि पाठ करे, तो वह पापों से मुक्त हो जाता है ॥ २६१ ॥ आरम्भ से लेकर भारत के इस अनुक्रमणिका अध्याय का जो आस्तिक पाठ करता है, वह संकट काल में भी दुखी नहीं होता ॥ २६२ ॥ जो मनुष्य प्रातः और सायंकाल इस अनुक्रमणिका के किसी भी श्लोक का जप करता है, तो दिन रात के सञ्चित पाप उसके नष्ट हो जाते हैं ॥ २७३ ॥ यह भारत ग्रन्थ सत्यरूप और अमृतरूप है अर्थात् ब्रह्मभाव और देवभाव दोनों इसमें वर्तमान हैं। जिस प्रकार दही से मक्खन श्रेष्ठ है, दो पैरवालों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, वेदों में ज्ञान काण्ड श्रेष्ठ है, ओषधियों में अमृत श्रेष्ठ है, तलावों में समुद्र श्रेष्ठ है, चतुष्पदों में गो श्रेष्ठ है उसी प्रकार इतिहासों में यह भारत श्रेष्ठ है। जो इसको श्राद्ध में ब्राह्मण को सुनाता है, कम से कम चौथाई भाग भी, तो उसका दिया हुआ अन्नपान आदि अक्षय होकर पितरों को मिलता है। इतिहास और पुराणों के द्वारा वेद की व्याख्या करनी चाहिये अर्थात् पुराण और इतिहासों में वेदों की व्याख्या की गई है ॥ २६४—२६७ ॥ अल्पज्ञों से—थोड़ा ज्ञान रखनेवालों से वेद डरता है कि कहीं यह मुझ पर प्रहार न करे, अर्थ का अनर्थ न करे, वेद-व्यास के बनाये इस वेद को जाननेवाला मनुष्य यदि वेदों को सुनावे तो अर्थ मालूम हो सकता है ॥ २६८ ॥ भ्रूणहत्या आदि पापों को निस्सन्देह दूर कर देता है। जो पर्व २ करके इस ग्रन्थ का पाठ करता है, मैं समझता हूँ कि इस प्रकार वह समस्त महाभारत-पाठ का फल प्राप्त कर लेता है। जो इस ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ को श्रद्धा के साथ प्रतिदिन सुनता है, वह दीर्घायु, कीर्ति तथा अन्त में स्वर्ग पाता है। पहले के समय में देवताओं ने तुला पर एक ओर भारत रक्खा एक ओर चारों वेदों को, सरहस्य वेदों से भारत अधिक हुआ ॥ २६९ २७२ ॥ तभी से यह महा-भारत कहा जाता है, क्योंकि यह महत्त्व और गुरुत्व दोनों में अधिक है ॥ २७६ ॥ महत्व के

महत्त्वाद्भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते । निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२७४॥
तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्कःस्वाभाविको वेदविधिर्न कल्कः ।
प्रसह्यवित्ताहरणं न कल्कस्तान्येव भावोपहतानि कल्कः ॥२७५॥

इति श्रीमन्महाभारते आदिपर्वणि अनुक्रमणिकापर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

॥ अनुक्रमणीपर्व समाप्तम् ॥

कारण तथा भार के कारण यह महाभारत कहा जाता है । इसके इस अर्थ को जो जानता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ २७४ ॥ तपस्या छल नहीं है, वेदाध्ययन छल नहीं है, स्वभाव-सिद्ध वैदिक आज्ञाएँ छल नहीं हैं, बलपूर्वक धन अपहरण करना भी छल नहीं है, यदि ये शुद्ध भाव से किये जाँय । दुष्ट अभिप्राय से करने पर ये छल—पाप हो जाते हैं ॥ २७५ ॥

॥ प्रथम अध्याय । अनुक्रमणी पर्व समाप्त ॥

पर्वसंग्रह पर्व

ऋषय ऊचुः ॥

समन्तपंचकमिति यदुक्तं सूतनन्दन । एतत्सर्वं यथातत्त्वं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१॥

सौतिरुवाच ॥

शृणुध्वं मम भो विप्रा ब्रुवतश्च कथाः शुभाः । समन्तपंचकाख्यं च श्रोतुमर्हथ सत्तमाः ॥२॥
त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतांवरः । असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः ॥३॥
स सर्वं क्षत्रमुत्साद्य स्ववीर्येणानलद्युतिः । समन्तपञ्चके पञ्च चकार रौधिरान् ह्रदान् ॥४॥
स तेषु रुधिराम्भःसु ह्रदेषु क्रोधमूर्च्छितः । पितॄन्संतर्पयामास रुधिरेणेति नः श्रुतम् ॥५॥

ऋषि बोले—हे सूतनन्दन, समन्तपञ्चक जो आपने बतलाया है वह क्या है ? हमलोग उसके सम्बन्ध की यथार्थ बातें सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥ सौति बोले—ब्राह्मणो, आपलोग सुनें, मैं यह सुन्दर कथा कहता हूँ, समन्तपञ्चक की कथा भी आपलोग सुन सकेंगे ॥ २ ॥ त्रेता और द्वापर के मध्यकाल में शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ परशुराम ने क्रोध से प्रेरित होकर कई बार क्षत्रिय-राजाओं का नाश किया था ॥३॥ अग्नि के समान तेजस्वी परशुराम ने समस्त क्षत्रियों का नाश करके समन्तपंचक तीर्थ में पाँच रुधिर-पूर्ण तालाब बनाए ॥४॥ क्रोधान्ध परशुराम ने उन रुधिर-पूर्ण तालाबों में पितरों को रुधिर से तर्पण किया ऐसा हम लोगों ने सुना है ॥ ५ ॥

अथर्चीकादयोऽभ्येत्य पितरो समब्रुवन् । रामराम महाभाग प्रीताः स्म तव भार्गव ॥६॥
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण तव प्रभो । वरं वृणीष्व भद्रन्ते यदिच्छसि महाद्युते ॥७॥
राम उवाच ॥
यदि मे पितरः प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि । यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया ॥८॥
अतश्च पापान्मुच्येऽहमेष मे प्रार्थितो वरः । ह्रदाश्च तीर्थभूता मे भवेयुर्भुवि विश्रुताः ॥९॥
एवं भविष्यतीत्येवं पितरस्तमथाब्रुवन् । तं क्षमस्वेति निषिषिधुस्ततः स विरराम ह ॥१०॥
तेषां समीपे यो देशो ह्रदानां रुधिराम्भसाम् । समन्तपञ्चकमिति पुण्यं तत्परिकीर्तितम् ॥११॥
येन लिङ्गेन यो देशो युक्तः समुपलक्ष्यते । तेनैव नाम्ना तं देशं वाच्यमाहुर्मनीषिणः ॥१२॥
अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् । समन्तपंचके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥१३॥
तस्मिन् परमधर्मिष्ठे देशे भूदोषवर्जिते । अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया ॥१४॥
समेत्य तं द्विजास्ताश्च तत्रैव निधनं गताः । एतन्नामाभिनिर्वृत्तं तस्य देशस्य वै द्विजाः ॥१५॥
पुण्यश्च रमणीयश्च स देशो वः प्रकीर्तितः । तदेतत्कथितं सर्वं मया ब्राह्मणसत्तमाः ॥
यथा देशः सविख्यातस्त्रिषु लोकेषु सुव्रताः ॥१६॥
ऋषय ऊचुः ॥
अक्षौहिण्य इतिप्रोक्तं यत्त्वया सूतनन्दन । एतदिच्छामहे श्रोतुं सर्वमेव यथातथम् ॥१७॥

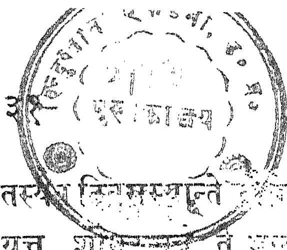
अनन्तर ऋचीक आदि पितर आकर परशुराम से बोले—हे राम, भृगु पुत्र महाभाग राम, हमलोग तुमसे प्रसन्न हैं ॥ ६ ॥ तुम्हारी इस पितृभक्ति तथा इस पराक्रम से हम लोग प्रसन्न हैं। हे तेजस्विन्, जो चाहो वर मांगो। तुम्हारा कल्याण हो ॥ ७ ॥ राम बोले—पितरों, यदि आपलोग मुझ पर प्रसन्न हैं, मुझपर कृपा करना चाहते हैं तो क्रोधान्ध होकर जो मैंने क्षत्रियों का नाश किया है उस पाप से मैं मुक्त होऊँ यही वर मैं चाहता हूँ और ये तालाब संसार में तीर्थरूप से प्रसिद्ध हों ॥ ८ ॥ ९ ॥ पितरों ने कहा कि, ऐसा ही होगा और कहा कि क्षत्रियों को क्षमा कर दो। वे पितरों की आज्ञा से निवृत्त हुए। क्षत्रियों का बध करना उन्होंने छोड़ दिया ॥ १० ॥ रुधिरपूर्ण उन तालावों के पास जो स्थान था वह पवित्र समन्तपञ्चक के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ जो देश जिस विशेष चिन्ह से युक्त होता है वह उसीके नाम से प्रसिद्ध होता है ऐसा बुद्धिमान कहते हैं ॥ १२ ॥ जब कलि और द्वापर का संयोग हुआ, तब उस समन्तपञ्चक स्थान में पाण्डव और कौरवों की सेनाओं का युद्ध हुआ ॥१३॥ उस परम धर्मिष्ठ, भूमिके ऊंचा नीचा आदि दोषों से रहित स्थान में अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध करने की इच्छा से आई ॥ १४ ॥ ब्राह्मणों, यहाँ समेत—एकत्र हो कर वे सब यहीं नष्ट हो गए अर्थात् उनका नाश हो गया इस कारण वह देश समन्त नामसे प्रसिद्ध हुआ क्योंकि वहां समेतों का अन्त हुआ था ॥ १५ ॥ वह देश पवित्र और रमणीय है जिसका परिचय मैंने आपलोगों को दिया। ब्राह्मण श्रेष्ठो, मैंने आपलोगों को सब बतलाया कि वह देश तीनों लोकों में किस प्रकार प्रसिद्ध हुआ ॥ १६ ॥ ऋषि बोले—सूतनन्दन, आपने अक्षौहिणी शब्द का प्रयोग किया है वह क्या है यह

अक्षौहिण्याः परीमाणं नराश्वरथदंतिनाम् । यथावच्चैव नो ब्रूहि सर्वं हि विदितं तव ॥१८॥

सौतिरुवाच ॥

एको रथो गजश्चैको नराः पंच पदातयः । त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥१९॥
पत्तिं तु त्रिगुणामेतामाहुः सेनामुखं बुधाः । त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते ॥२०॥
त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रयः । स्मृतास्तिस्रस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्षणैः ॥२१॥
चमूस्तु पृतनास्तिस्रस्तिस्रश्चम्वस्त्वनीकिनी । अनीकिनीं दशगुणां प्राहुरक्षौहिणीं बुधाः ॥२२॥
अक्षौहिण्याः प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमाः । संख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ॥२३॥
शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्ततिः । गजानां च तावत्संख्यैव विनिर्दिशेत् ॥२४॥
ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु । नराणामपि पंचाशच्छतानि त्रीणि चानघाः ॥२५॥
पंचषष्टि सहस्राणि तथाश्वानां शतानि च । दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह संख्यया ॥२६॥
एतामक्षौहिणीं प्राहुः संख्यातत्त्वविदो जनाः । यां वः कथितवानस्मि विस्तरेण तपोधनाः ॥२७॥
एतया संख्यया ह्यासन्कुरुपाण्डवसेनयोः । अक्षौहिण्यो द्विजश्रेष्ठाः पिंडिताष्टादशैव तु ॥२८॥
समेतास्तत्र वै देशे तत्रैव निधनं गताः । कौरवान्कारणं कृत्वा कालेनाद्भुतकर्मणा ॥२९॥
अहानि युयुधे भीष्मो दशैव परमास्त्रवित् । अहानि पंच द्रोणस्तु ररक्ष कुरुवाहिनीम् ॥३०॥
अहनी युयुधे द्वे तु कर्णः परबलार्दनः । शल्योऽर्धदिवसं चैव गदायुद्धमतः परम् ॥३१॥

सब, हमलोग ठीक ठीक सुनना चाहते हैं ॥ १७ ॥ अक्षौहिणी का परिमाण क्या है उसमें कितने मनुष्य, घोड़े, रथ, और हाथी होते हैं यह सब आप हमलोगों से कहें क्योंकि आपको सब मालूम है ॥ १८ ॥ सौति बोले—एक रथ, एक हाथी पाँच पैदल और तीन घोड़ों की सेना को पत्ति कहते हैं ॥ १९ ॥ तीन पत्तियों को विद्वान् सेना-मुख बतलाते हैं और तीन सेनामुखों को एक गुल्म कहते हैं ॥२०॥ तीन गुल्मों का एक गण और तीन गणों की वाहिनी होती है । तीन वाहिनियों की एक पृतना होती है यह विद्वान कहते हैं ॥२१॥ तीन पृतनाओं की एक चमू होती है और तीन चमू की एक अनीकिनी होती है और दस अनीकिनियों को बुद्धिमान एक अक्षौहिणी कहते हैं ॥ २२ ॥ ब्राह्मण श्रेष्ठो ! अक्षौहिणी के रथों की संख्या इक्कीस हज़ार आठ सौ सत्तर बतलाई है । हाथियों की भी संख्या इतनी ही है ॥ २३ ॥ २४ ॥ पैदलों की संख्या हे निष्पापों, एक लाख नौ हज़ार तीन सौ पचास बतलाई है ॥ २५ ॥ घोड़ों की संख्या पैंसठ हज़ार छः सौ दस बतलाई है ॥ २६ ॥ गणित के विद्वानों ने अक्षौहिणी की यही संख्या बतलाई है । हे तपस्वियों ! जो मैंने आपलोगों से कही है ॥ २७ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठों, कौरवों और पाण्डवों की सेना इसी संख्या के अनुसार अठारह अक्षौहिणी वहाँ एकत्र हुई थी ॥२८॥ कौरवों को कारण बनाकर अद्भुत कर्म करनेवाले काल के द्वारा वह सब सेना वहाँ एकत्र हुई और नष्ट हो गई ॥२९॥ श्रेष्ठ अस्त्रवेत्ता भीष्म ने दस दिनों तक युद्ध किया, द्रोण ने पाँच दिनों तक कौरव सेना की रक्षा की ॥३०॥ शत्रुसेना को नष्ट करने-वाले कर्ण ने दो दिनों तक युद्ध किया । आधे दिन तक शल्य ने युद्ध किया इसके पश्चात्



तस्यैव दिवसस्यान्ते द्रौणिहार्दिक्यगौतमाः। प्रसुप्तं निशि विश्वस्तं जघ्नुर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥३२॥
यत्तु शौनक सत्रे ते भारताख्यानमुत्तमम्। जनमेजयस्य तत्सत्रे व्यासशिष्येण धीमता ॥३३॥
कथितं विस्तरार्थं च यशो वीर्यं महीक्षिताम्। पौष्यं तत्र च पौलोममास्तीकं चादितःस्मृतम् ॥३४॥
विचित्रार्थपदाख्यानमनेकसमयान्वितम् । प्रतिपन्नं नरैः प्राज्ञैर्वैराग्यमिव मोक्षिभिः ॥३५॥
आत्मेव वेदितव्येषु प्रियेष्विव हि जीवितम् । इतिहासः प्रधानार्थः श्रेष्ठः सर्वागमेष्वयम् ॥३६॥
अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते। आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम् ॥३७॥
तदेतद्भारतं नाम कविभिस्तूपजीव्यते। उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः ॥३८॥
इतिहासोत्तमे यस्मिन्नर्पिता बुद्धिरुत्तमा। स्वरव्यञ्जनयोः कृत्स्ना लोकवेदाश्रयेव वाक् ॥३९॥
तस्य प्रज्ञाभिपन्नस्य विचित्रपदपर्वणः। सूक्ष्मार्थन्याययुक्तस्य वेदार्थैर्भूषितस्य च ॥४०॥
भारतस्येतिहासस्य श्रूयतां पर्वसंग्रहः। पर्वानुक्रमणी पर्व द्वितीयः पर्वसंग्रहः ॥४१॥
पौष्यं पौलोममास्तीकमादिरंशावतारणम्। ततः संभवपर्वोक्तमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥४२॥
दाहो जतुगृहस्यात्र हैडिंबं पर्व चोच्यते। ततो बकवधः पर्व पर्व चैत्ररथं ततः ॥४३॥
ततःस्वयम्वरो देव्याःपांचाल्याःपर्व चोच्यते। क्षात्रधर्मेण निर्जित्य ततो वैवाहिकं स्मृतम् ॥४४॥

गदायुद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ ३१ ॥ उसी दिन के अन्त में अश्वत्थामा, कृतवर्म्मा और कृपाचार्य ने सोती हुई युधिष्ठिर की सेना का रात में नाश किया ॥ ३२ ॥ हे शौनक, आपके यज्ञ में जो यह भारत की उत्तम कथा प्रारम्भ हुई है, उसको जन्मेजय के यज्ञ में व्यास के शिष्य वैशम्पायन ने कहा था और उसके विस्तार के लिये राजाओं के यश और पराक्रम का वर्णन किया था। इस कथा के प्रारम्भ में पौष्य, पौलोम, तथा आस्तीक पर्व हैं॥ ३३॥ ३४॥ इसमें विचित्र अर्थ विचित्र पद तथा विचित्र आख्यान आए हैं। अनेक प्रकार के आचारों का इसमें वर्णन किया गया है। मनुष्य इस आख्यान का बड़ा आदर करते हैं जिस प्रकार मोक्षार्थी मनुष्य वैराग्य का आदर करते हैं ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार जानने योग्य पदार्थों में आत्मा है और प्रिय पदार्थों में जीवन है उसी प्रकार समस्त शास्त्रों में यह इतिहास श्रेष्ठ है; क्योंकि इसमें प्रधान विषय ब्रह्म का वर्णन है ॥ ३६ ॥ इस आख्यान के आश्रय विना पृथ्वी में कोई कथा नहीं हो सकती, जिस प्रकार भोजन के विना शरीर धारण नहीं होता ॥ ३७ ॥ इस भारत से कविगण अपनी रचना में सहायता लेते हैं जिस प्रकार उदय चाहनेवाला भृत्य कुलीन स्वामी से सहायता पाता है ॥ ३८ ॥ इस उत्तम इतिहास में उत्तमा बुद्धि का वर्णन है अर्थात् ब्रह्मविद्या नामक अन्तःकरण की वृत्ति का परिचय दिया गया है, जिस प्रकार लौकिक और वैदिक समस्त वाणी स्वर व्यञ्जन से युक्त होती है ॥३९॥ ब्रह्मविद्या नामक बुद्धि से युक्त, विचित्र पदपर्ववाले सूक्ष्म अर्थ और न्याय से युक्त तथा वेदार्थ से भूषित इस भारत इतिहास के पर्वों की गणना सुनिये। पहला अनुक्रमणी पर्व है। दूसरापर्व-संग्रह है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ पौष्य पर्व, पौलोम पर्व और आस्तीक पर्व के पश्चात् हंसावतार पर्व है। अनन्तर सम्भवपर्व है जो अद्भुत है रोमाञ्चकारी है ॥३४२॥ लाक्षागृहदाह पर्व, हैडिम्ब पर्व, बकवधपर्व और चैत्ररथ पर्व है ॥३४३॥ अनन्तर देवी द्रौपदी का स्वयम्बरपर्व है। क्षात्रधर्म से द्रौपदी को जीतने के

विदुरागमनं पर्व राज्यलाभस्तथैव च । अर्जुनस्य वनेवासः सुभद्राहरणं ततः ॥४५॥
सुभद्राहरणादूर्ध्वं ज्ञेया हरणहारिका । ततः खाण्डवदाहाख्यं तत्रैव मयदर्शनम् ॥४६॥
सभापर्व ततः प्रोक्तं मन्त्रपर्व ततः परम् । जरासन्धवधः पर्व पर्व दिग्विजयं तथा ॥४७॥
पर्व दिग्विजयादूर्ध्वं राजसूयिकमुच्यते । ततश्चार्घाभिहरणं शिशुपालवधस्ततः ॥४८॥
द्यूतपर्व ततः प्रोक्तमनुद्यूतमतः परम् । तत आरण्यकं पर्व किर्मीरवध उच्यते ॥४९॥
अर्जुनस्याभिगमनं पर्व ज्ञेयमतः परम् । ईश्वरार्जुनयोर्युद्धं पर्व कैरातसंज्ञितम् ॥५०॥
इन्द्रलोकाभिगमनं पर्व ज्ञेयमतः परम् । नलोपाख्यानमपि च धार्मिकं करुणोदयम् ॥५१॥
तीर्थयात्रा ततः पर्व कुरुराजस्य धीमतः । जटासुरवधः पर्व यक्षयुद्धमतः परम् ॥५२॥
निवातकवचैर्युद्धं पर्व चाजगरं ततः । मार्कंडेयसमस्या च पर्वानन्तरमुच्यते ॥५३॥
संवादश्च ततः पर्व द्रौपदीसत्यभामयोः । घोषयात्रा ततः पर्व मृगस्वप्नोद्भवं ततः ॥५४॥
व्रीहिद्रौणिकमाख्यानमैन्द्रद्युम्नं तथैव च । द्रौपदीहरणं पर्व जयद्रथविमोक्षणम् ॥५५॥
पतिव्रता या माहात्म्यं सावित्र्याश्चैवमद्भुतम् । रामोपाख्यानमत्रैव पर्व ज्ञेयमतः परम् ॥५६॥
कुण्डलाहरणं पर्व ततः परमिहोच्यते । आरणेयं ततः पर्व वैराटं तदनन्तरम् ॥
पाण्डवानां प्रवेशश्च समयस्य च पालनम् ॥५७॥
कीचकानां वधः पर्व, पर्व गोग्रहणं ततः । अभिमन्योश्च वैराट्याःपर्व वैवाहिकं स्मृतम् ॥५८॥

पश्चात् वैवाहिकपर्व है ॥४४॥ अनन्तर विदुरागमन पर्व, राज्यलाभपर्व, अर्जुनवनवासपर्व और सुभद्रा-हरणपर्व है ॥१४५॥ सुभद्राहरण के आगे हरणहारिक (दहेज लाना) पर्व है। आगे खाण्डवदाहपर्व है जहां मयसे अर्जुन की भेंट हुई थी ॥१४६॥ इसके बाद सभापर्व और मन्त्र पर्व (सलाह) है। पुनः जरासन्धवधपर्व उसके बाद दिग्विजयपर्व है। दिग्विजयपर्व के आगे राजसूयिकपर्व है उसके पश्चात् अर्घाभिहरणपर्व अनन्तर शिशुपालवधपर्व है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अनन्तर द्यूतपर्व उसके बाद अनुद्यूतपर्व फिर आरण्यकपर्व और किरमीरवधपर्व है ॥४९॥ इसके बाद अर्जुनागमनपर्व समझना चाहिए । शिव और अर्जुन के युद्ध का पर्व कैरात पर्व कहा जाता है ॥५०॥ इसके बाद इन्द्रलोकगमन पर्व है । पुनः नलोपाख्यान है जो धार्मिक और करुणायुक्त है ॥ ५१ ॥ बुद्धिमान कुरुराज युधिष्ठिर का यात्रापर्व उसके बाद है। जटासुरवधपर्व उसके बाद यक्षयुद्ध है ॥५२॥ उसके बाद निवात कवचों के साथ युद्धपर्व और आजगरपर्व हैं। इसके बाद मार्कण्डेयसमस्यापर्व कहा गया है ॥ ५३ ॥ इसके पश्चात् द्रौपदी और सत्यभामा का सम्वादपर्व है। इसके पश्चात् घोषयात्रा पर्व और स्वप्नोद्भवपर्व हैं ॥ ५४ ॥ व्रीहिद्रौणिक पर्व फिर ऐन्द्रद्युम्नआख्यानपर्व, द्रौपदीहरणपर्व और जयद्रथ-मोक्षपर्व है ॥५५॥ इसीमें पतिव्रता सावित्री का अद्भुत चरित्र और रामोपाख्यान पर्व कहे गए हैं। अनन्तर इस इतिहास में कुण्डलाहरणपर्व कहा गया है फिर आरणेयपर्व और वैराटपर्व हैं। पाण्डवों का विराटनगर में जाना और प्रतिज्ञा का पालन करना कहा गया है ॥५६॥५७॥ कीचकवधपर्व गोग्रहणपर्व, उत्तरा और अभिमन्यु का विवाहपर्व है ॥५८॥ इसके आगे

उद्योगपर्व विज्ञेयमत ऊर्ध्वं महाद्भुतम् । ततः संजययानाख्यं पर्व ज्ञेयमतः परम् ॥५९॥
प्रजागरं तथा पर्व धृतराष्ट्रस्य चिन्तया । पर्व सानत्सुजातं वै गुह्यमध्यात्मदर्शनम् ॥६०॥
यानसन्धिस्ततः पर्व भगवद्यानमेव च । मातलीयमुपाख्यानं चरितं गालवस्य च ॥६१॥
सावित्रं वामदेव्यं च वैन्योपाख्यानमेवच । जामदग्न्यमुपाख्यानंपर्व षोडशराजकम् ॥६२॥
सभाप्रवेशः कृष्णस्य विदुलापुत्रशासनम् । उद्योगःसैन्यनिर्याणं विश्वोपाख्यानमेव च॥६३॥
ज्ञेयं विवादपर्वात्र कर्णस्यापि महात्मनः । निर्याणं च ततः पर्व कुरुपाण्डवसेनयोः ॥६४॥
रथातिरथसंख्या च पर्वोक्तं तदनंतरम् । उलूकदूतागमनं पर्वामर्षविवर्धनम् ॥६५॥
अम्बोपाख्यानमत्रैव पर्व ज्ञेयमतः परम् । भीष्माभिषेचनं पर्व ततश्चाद्भुतमुच्यते ॥६६॥
जम्बूखण्डविनिर्माणं पर्वोक्तं तदनन्तरम् । भूमिपर्व ततःप्रोक्तं द्वीपविस्तारकीर्तनम् ॥६७॥
पर्वोक्तं भगवद्गीतापर्व भीष्मवधस्ततः । द्रोणाभिषेचनं पर्व संशप्तकवधस्ततः ॥६८॥
अभिमन्युवधः पर्व प्रतिज्ञापर्व चोच्यते । जयद्रथवधः पर्व घटोत्कचवधस्ततः ॥६९॥
ततो द्रोणवधः पर्व विज्ञेयं लोमहर्षणम् । मोक्षो नारायणास्त्रस्य पर्वानन्तरमुच्यते ॥७०॥
कर्णपर्व ततो ज्ञेयं शल्य पर्व ततः परम् । ह्रदप्रवेशनं पर्व गदायुद्धमतः परम् ॥७१॥
सारस्वतं ततः पर्व तीर्थवंशानुकीर्तनं । अत ऊर्ध्वं सुबीभत्सं पर्व सौप्तिकमुच्यते ॥७२॥
ऐषीकं पर्व चोद्दिष्टमतऊर्ध्वं सुदारुणम् । जलप्रादानिकं पर्व स्त्रीविलापस्ततः परम् ॥७३॥

उद्योग पर्व है जो बड़ाही अद्भुत है। इसके पश्चात् सञ्जययानपर्व है ॥५९॥ प्रजागरपर्व जिसमें धृतराष्ट्र की चिन्ता की कथा है। फिर सनतसुजातपर्व है, जिसमें गुप्त अध्यात्म तत्त्व का वर्णन है ॥६०॥ अनन्तर यानसन्धिपर्व है, जिसमें श्रीकृष्ण की यात्रा की कथा है। मातलि का उपाख्यान, गालव का चरित, सावित्रीकथा, वामदेव कथा, वैन्यकथा, जमदग्नि कथा और सोलह राजाओं की कथा इसी पर्व में है ॥६१,६२॥ पुनः कृष्ण का सभाप्रवेश और विदुला का पुत्र शासन है, युद्ध का उद्योग, सेनाओं का प्रस्थान और विश्वोपाख्यान हैं ॥६३॥ महात्मा कर्ण के साथ श्रीकृष्ण का विवाद पर्व है। इसके बाद कौरवपाण्डवसेनाओं का प्रस्थान पर्व है ॥६४॥ इसके अनन्तर रथ और अतिरथ का संख्यापर्व है। इसके पश्चात् उलूक नामक दूत का आगमनपर्व है, जो क्रोध बढ़ानेवाला है ॥६५॥ इसके बाद अम्बोपाख्यानपर्व है, अनन्तर भीष्माभिषेक पर्व है जो अद्भुत है ॥६६॥ इसके बाद जम्बूखण्ड-निर्माणपर्व है, फिर भूमिपर्व है, जिसमें द्वीपों का विस्तार कहा गया है ॥६७॥ भगवद्गीतापर्व, भीष्मवधपर्व, द्रोणाभिषेक पर्व, संशप्तकवधपर्व, अभिमन्युवधपर्व, जयद्रथवधपर्व, घटोत्कच वधपर्व ये क्रम से हैं ॥६८,६९॥ इसके बाद द्रोणवधपर्व है, जो भयङ्कर है। नारायणास्त्रत्याग पर्व इसके बाद है ॥७०॥ इसके बाद कर्णपर्व है और फिर शल्यपर्व है, पुनः ह्रदप्रवेशपर्व, गदायुद्धपर्व, सारस्वतपर्व, तीर्थपर्व, वंशानुकीर्तनपर्व फिर सौप्तिकपर्व है, जो अत्यन्त वीभत्स है ॥७१॥७२॥ इसके बाद बड़ा ही भयङ्कर ऐषीकपर्व कहा गया है। फिर जलप्रादानिकपर्व और

श्राद्धपर्व ततो ज्ञेयं कुरूणामौर्ध्वदैहिकम् । चार्वाकनिग्रहः पर्व रक्षसो ब्रह्मरूपिणः ॥७४॥
आभिषेचनिकं पर्व धर्मराजस्य धीमतः । प्रविभागो गृहाणां च पर्वोक्तं तदनन्तरम् ॥७५॥
शान्तिपर्व ततो यत्र राजधर्मानुशासनम् । आपद्धर्मश्च पर्वोक्तं मोक्षधर्मस्ततः परम् ॥७६॥
शुकप्रश्नाभिगमनं ब्रह्मप्रश्नानुशासनम् । प्रादुर्भावश्च दुर्वासः संवादश्चैव मायया ॥७७॥
ततः पर्व परिज्ञेयमानुशासनिकं परम् । स्वर्गारोहाणिकं चैव ततो भीष्मस्य धीमतः ॥७८॥
ततोऽश्वमेधिकं पर्व सर्वपापप्रणाशनम् । अनुगीता ततः पर्व ज्ञेयमध्यात्मवाचकम् ॥७९॥
पर्वाश्रमवासाख्यं पुत्रदर्शनमेव च । नारदागमनं पर्व ततः परमिहोच्यते ॥८०॥
मौसलं पर्व चोदिष्टं ततो घोरं सुदारुणम् । महाप्रस्थानिकं पर्व स्वर्गारोहणिकं ततः ॥८१॥
हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम् । विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा ॥८२॥
भविष्यपर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत् । एतत्पर्व शतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना ॥८३॥
यथावत्सूतपुत्रेण लौमहर्षणिना ततः । उक्तानि नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टादशैव तु ॥८४॥
समासो भारतस्यायमत्रोक्तः पर्वसंग्रहः । पौष्यं पौलोममास्तीकमादिरंशावतारणम् ॥८५॥
संभवो जतुवेश्माख्यं हिडिम्बबकयोर्वधः । तथा चैत्ररथं देव्याः पांचाल्याश्च स्वयंवरः ॥८६॥
क्षात्रधर्मेण निर्जित्य ततो वैवाहिकं स्मृतम् । विदुरागमनं चैव राज्यलंभस्तथैव च ॥८७॥

स्त्रीविलापपर्व हैं ॥७३॥ पुनः श्राद्धपर्व है जिसमें कुरुओं की पारलौकिक क्रिया की गई है, फिर चार्वाकनिग्रह पर्व है जिसमें ब्राह्मणरूपी राक्षस को दण्ड दिया गया है ॥७४॥ इसके आगे आभिषेचनिकपर्व है जिसमें बुद्धिमान् राजा धर्मराज के अभिषेक की बात है। गृहप्रविभागपर्व इसके पश्चात् है ॥७५॥ फिर शान्तिपर्व है, जिसमें राजधर्म का वर्णन किया गया है फिर आपद्धर्मपर्व और मोक्षधर्मपर्व है, जिसमें शुकप्रश्न, शुकागमन, ब्रह्मप्रश्न, ब्रह्मोपदेश, दुर्वासा की उत्पत्ति और सुलभा-संवाद का वर्णन है ॥७६,७७॥ पुनः अनुशासनपर्व तथा बुद्धिमान भीष्म का स्वर्गारोहणपर्व है ॥७८॥ पुनः आश्वमेधिकपर्व है, जो सब पापों का नाश करने वाला है। पुनः अनुगीतापर्व है, जिसमें अध्यात्म ज्ञान का वर्णन है ॥७९॥ पुनः आश्रमवासिक पर्व है, पुत्रदर्शनपर्व, नारदागमनपर्व, मौशलपर्व कहा गया है जो अत्यन्त भयानक है। इसके पश्चात् महाप्रास्थानिक पर्व और स्वर्गारोहणपर्व हैं। इसके बाद हरिवंशपर्व है, जो खिल नामक पुराण कहा जाता है। उसमें विष्णु पर्व है, जिसमें शिशुचर्या और कृष्ण के द्वारा कंस के वध का वर्णन है। इसीमें भविष्य पर्व है, जो बहुत ही अद्भुत है। ये सौ पर्व महात्मा व्यास ने कहे हैं ॥८०, ८३॥ उसीको सूतवंशी रोमहर्षण पुत्र ने नैमिषारण्य में अठारह पर्व में कहा है ॥८४॥ यही भारत का संक्षेप है, जिसके पर्वों का यहां संग्रह किया गया । आदि पर्व में इतने पर्व आए हैं—पौष्य, पौलोम, आस्तीक, आदि, अंशावतार, संभव, लाक्षागृह, हिडिम्ब और बक का वध, चैत्ररथ, देवी द्रौपदी का स्वयम्बर क्षात्रधर्म से जीतकर उनके साथ विवाह, विदुर का आना और राज्यलाभ, अर्जुन का वनवास और सुभद्राहरण, दहेज ले आना

वनवासोऽर्जुनस्यापि सुभद्राहरणं ततः । हरणाहरणं चैव दहनं खाण्डवस्य च ॥८८॥
मयस्य दर्शनं चैव आदिपर्वणि कथ्यते । पौष्ये पर्वणि माहात्म्यमुत्तङ्कस्योपवर्णितम् ॥८९॥
पौलोमे भृगुवंशस्य विस्तारः परिकीर्तितः । आस्तीके सर्वनागानां गरुडस्य च संभवः ॥९०॥
क्षीरोदमथनं चैव जन्मोच्चैःश्रवसस्तथा । यजतः सर्पसत्रेण राज्ञः पारिक्षितस्य च ॥९१॥
कथेयमभिनिर्वृत्ता भरतानां महात्मनाम् । विविधाः संभवा राज्ञामुक्ताः संभवपर्वणि ॥९२॥
अन्येषां चैव शूराणामृषेर्द्वैपायनस्य च । अंशावतरणं चात्र देवानां परिकीर्तितम् ॥९३॥
दैत्यानां दानवानां च यक्षाणां च महौजसाम् । नागानामथ सर्पाणां गन्धर्वाणां पतत्रिणाम् ॥९४॥
अन्येषां चैव भूतानां विविधानां समुद्भवः । महर्षेराश्रमपदे कण्वस्य च तपस्विनः ॥९५॥
शकुन्तलायां दुष्यन्ताद्भरतश्चापि जज्ञिवान् । यस्य लोकेषु नाम्नेदं प्रथितं भारतं कुलम् ॥९६॥
वसूनां पुनरुत्पत्तिर्भागीरथ्यां महात्मनाम् । शांतनोर्वेश्मनि पुनस्तेषां चारोहणं दिवि ॥९७॥
तेजोंशानां च संपातो भीष्मस्याप्यत्र संभवः। राज्यान्निवर्तनं तस्य ब्रह्मचर्यव्रते स्थितिः ॥९८॥
प्रतिज्ञापालनं चैव रक्षा चित्राङ्गदस्य च । हते चित्राङ्गदे चैव रक्षा भ्रातुर्यवीयसः ॥९९॥
विचित्रवीर्यस्य तथा राज्ये संप्रतिपादनम् । धर्मस्य नृषु संभूतिरणीमांडव्यशापजा ॥१००॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैव प्रसूतिर्वरदानजा । धृतराष्ट्रस्य पाण्डोश्च पाण्डवानां च संभवः॥१०१॥
वारणावतयात्रायां मन्त्रो दुर्योधनस्य च । कूटस्य धार्त्तराष्ट्रेण प्रेषणं पाण्डवान् प्रति ॥१०२॥

खाण्डव वन जलाना और मय से भेंट ये पर्व आदि पर्व के अन्तर्गत हैं । पौष्यपर्व में उत्तङ्क के माहात्म्य का वर्णन है ॥८५-८९॥ पौलोमपर्व में भृगुवंश के विस्तार का वर्णन है । आस्तीकपर्व में समस्त सर्पों के और गरुड़ के जन्म का वर्णन है ॥९०॥ क्षीरसमुद्र का मन्थन, उच्चैःश्रवा का जन्म, महाराज जन्मेजय का नागयज्ञ तथा भरतवंशी महात्माओं की कथा इस पर्व में है । संभवपर्व में राजाओं की अनेक प्रकार की उत्पत्ति की कथा है ॥९१, ९२॥ अन्य वीरों तथा ऋषि द्वैपायन की जन्मकथा लिखी गई है, देवताओं के अंशावतार की भी कथा इसीमें है ॥९३॥ देवता, दानव, महाबली यक्ष, नाग, सर्प गन्धर्व, पक्षी तथा अन्य अनेक प्राणियों की उत्पत्ति की कथा है । महर्षि तपस्वी कण्व के आश्रम में शकुन्तला के गर्भ से राजा दुष्यन्त के द्वारा भरत की उत्पत्ति का वर्णन है । जिसके नाम से यह भारतवर्ष संसार में प्रसिद्ध हुआ है ॥९४, ९५, ९६॥ राजा शान्तनु के घर में गङ्गा के गर्भ से महात्मा वसुओं की उत्पत्ति तथा उनका स्वर्गारोहण कहा गया है ॥९७॥ वसुओं के तेजों का एकत्र होना, भीष्म की उत्पत्ति, राज्यत्याग और ब्रह्मचर्य व्रतग्रहण कहा गया है ॥९८॥ प्रतिज्ञापालन, चित्राङ्गद की रक्षा, चित्राङ्गद के मारे जाने पर छोटे भाई विचित्रवीर्य की रक्षा तथा उसे राज्य देना वर्णित हुआ है । अणीमाण्डव्य का शाप, मनुष्यरूप में धर्म का उत्पन्न होना और कृष्ण द्वैपायन से वरदान के कारण धृतराष्ट्र और पाण्डु की उत्पत्ति का वर्णन सम्भवपर्व में है ॥९९, १०१॥ वारणावत नगर में युधिष्ठिर के जाने के लिये दुर्योधन की सलाह और पाण्डवों के लिये दुर्योधन का कपटपूर्वक पुरोचन का वहां भेजना,

हितोपदेशश्च पथि धर्मराजस्य धीमतः। विदुरेण कृतो यत्र हितार्थं म्लेच्छभाषया ॥१०३॥
विदुरस्य च वाक्येन सुरंगोपक्रमक्रिया। निषाद्याः पंच पुत्रायाः सुप्ताया जतुवेश्मनि॥१०४॥
पुरोचनस्य चात्रैव दहनं संप्रकीर्तितम्। पाण्डवानां वने घोरे हिडिंबायाश्च दर्शनम् ॥१०५॥
तत्रैव च हिडिंबस्य वधो भीमान्महाबलात्। घटोत्कचस्य चोत्पत्तिरत्रैव परिकीर्तिता ॥१०६॥
महर्षेर्दर्शनं चैव व्यासस्यामिततेजसः। तत्रैवैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥१०७॥
अज्ञातचर्यया वासो यत्र तेषां प्रकीर्तितः। बकस्य निधनं चैव नागराणां च विस्मयः ॥१०८॥
संभवश्चैव कृष्णाया धृष्टद्युम्नस्य चैवह। ब्राह्मणात्समुपश्रुत्य व्यासवाक्यप्रचोदिताः ॥१०९॥
द्रौपदीं प्रार्थयन्तस्ते स्वयंवरदिदृक्षया। पांचालानभितो जग्मुर्यत्र कौतूहलान्विताः ॥११०॥
अंगारपर्णं निर्जित्य गंगाकूलेऽर्जुनस्तदा। सख्यं कृत्वा ततस्तेन तस्मादेव च शुश्रुवे ॥१११॥
तापत्यमथ वासिष्ठमौर्वं चाख्यानमुत्तमम्। भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पंचालानभितो ययौ ॥११२॥
पांचालनगरे चापि लक्ष्यं भित्त्वा धनञ्जयः। द्रौपदीं लब्धवानत्र मध्ये सर्वमहीक्षिताम् ॥११३॥
भीमसेनार्जुनौ यत्र संरब्धान्पृथिवीपतीन्। शल्यकर्णौ च तरसा जितवंतौ महामृधे ॥११४॥
दृष्ट्वा तयोश्च तद्वीर्यमप्रमेयममानुषम्। शंकमानौ पांडवांस्तान् रामकृष्णौ महामती ॥११५॥
जग्मतुस्तैःसमागन्तुं शालां भार्गववेश्मनि। पञ्चानामेकपत्नीत्वे विमर्शो द्रुपदस्य च ॥११६॥
पञ्चेन्द्राणामुपाख्यानमत्रैवाद्भुतमुच्यते । द्रौपद्यादेव विहितो विवाहश्चाप्यमानुषः ॥११७॥

मार्ग में बुद्धिमान धर्मराज को विदुर का म्लेच्छभाषा में हितकारी उपदेश देना, विदुर के कहने से सुरङ्ग बनाना, लाक्षागृह में सोई हुई निषादी (मल्लाहिनी) का पाँच पुत्रों के साथ और पुरोचन का जलना, इस लाक्षागृहपर्व में कहा गया है। घोर वन में हिडिम्बा को देखना और वहीं महाबली भीम के द्वारा हिडिम्ब का मारा जाना तथा घटोत्कच की उत्पत्ति इस हिडिम्बवध पर्व में कही गयी है ॥ १०२-१०६ ॥ महर्षि अमिततेजस्वी व्यास का दर्शन, उनकी आज्ञा से एकचक्रापुरी में ब्राह्मण के घर छिपकर पाण्डवों का निवास करना, वहीं बक का वध और इससे नगरवासियों का विस्मित होना, ब्राह्मण से द्रौपदी और धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति सुनना, व्यासदेव की आज्ञा से द्रौपदी को पाने की इच्छा से स्वयम्बर देखने के लिये उत्सुक होकर पाञ्चाल देश को जाना इस पर्व में कहा गया है ॥१०७-११०॥ गङ्गातीर पर अर्जुन का अङ्गारपर्ण गन्धर्व को जीतना उससे मैत्री होना, उसके द्वारा तापत्य वासिष्ठ और और्व आख्यानों को सुनना चित्ररथ पर्व में कहा गया है। ॥१११, ११२॥ पाँचाल नगर में अर्जुन का लक्ष्यवेध करना, सब राजाओं के बीच में द्रौपदी को पाना, क्रुद्ध राजाओं, शल्य और कर्ण को बलपूर्वक भीमसेन और अर्जुन का युद्ध में जीतना, उन दोनों का अमानुष महापराक्रम देखकर उनके पाण्डव होने का सन्देह बलराम और श्रीकृष्ण को होना और निश्चय करने के लिये उन दोनों का भार्गव (कुम्हार) के घर जाना। पाँच पुरुषों की एकपत्नी होने के सन्देह से द्रुपद का चिन्तित होना; और पाँचों इन्द्रों का अद्भुत उपाख्यान सुनना इस पर्व में कहा गया है। द्रौपदी का विवाह मनुष्य रीति

क्षत्तुश्च धार्तराष्ट्रेण प्रेषणं पाण्डवान्प्रति। विदुरस्य च संप्राप्तिर्दर्शनं केशवस्य च ॥११८॥
खाण्डवप्रस्थवासश्च तथा राज्यार्धसर्जनम्। नारदस्याज्ञया चैव द्रौपद्याः समयक्रिया ॥११९॥
सुन्दोपसुन्दयोस्तद्वदाख्यानं परिकीर्तितम्। अनन्तरं च द्रौपद्या सहासीनं युधिष्ठिरम् ॥१२०॥
अनुप्रविश्य विप्रार्थे फाल्गुनो गृह्य चायुधम्। मोक्षयित्वा गृहं गत्वा विप्रार्थं कृतनिश्चयः॥१२१॥
समयं पालयन्वीरो वनं यत्र जगाम ह। पार्थस्य वनवासे च उलूप्या पथि संगमः ॥१२२॥
पुण्यतीर्थानुसंयानं बभ्रुवाहनजन्म च। तत्रैव मोक्षयामास पंच सोऽप्सरसः शुभाः ॥१२३॥
शापाद्ग्राहत्वमापन्ना ब्राह्मणस्य तपस्विनः। प्रभासतीर्थे पार्थेन कृष्णस्य च समागमः ॥१२४॥
द्वारकायां सुभद्रा च कामयानेन भामिनी। वासुदेवस्यानुमते प्राप्ता चैव किरीटिना ॥१२५॥
गृहीत्वा हरणं प्राप्ते कृष्णे देवकिनन्दने। अभिमन्योः सुभद्रायां जन्म चोत्तमतेजसः ॥१२६॥
द्रौपद्यास्तनयानां च संभवोऽनु प्रकीर्तितः। विहारार्थश्च गतयोः कृष्णयोर्यमुनामनु ॥१२७॥
संप्राप्तिश्चक्रधनुषोः खाण्डवस्य च दाहनम्। मयस्य मोक्षो ज्वलनाद्भुजंगस्य च मोक्षणम् ॥१२८॥
महर्षेर्मन्दपालस्य शाङ्ग्‍र्यां तनयसंभवः। इत्येतदादिपर्वोक्तं प्रथमं बहुविस्तरम् ॥१२९॥
अध्यायानां शते द्वे तु संख्याते परमर्षिणा। सप्तविंशतिरध्याया व्यासेनोत्तमतेजसा ॥१३०॥
अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च। श्लोकाश्च चतुराशीतिर्मुनिनोक्ता महात्मना॥१३१

से भिन्न रीति से होना, देवताओं के द्वारा निश्चित है इसका वर्णन भी इसी पर्व में है।।११३-११७।। दुर्योधन के द्वारा पाण्डवों के पास विदुर का भेजा जाना, विदुर का जाना और श्रीकृष्ण का दर्शन होना विदुरपर्व में कहा गया है ॥११८॥ पाण्डवों का खाण्डवप्रस्थ में वास तथा राज्य का आधा भाग पाना, नारद की आज्ञा से द्रौपदी के लिये समय नियत करना तथा सुन्द उपसुन्द का आख्यान इस पर्व में है। अनन्तर द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर के रहने के समय में उनके घर में अर्जुन का जाना, ब्राह्मण के लिये वहाँ अस्त्र लेना, उनकी गौ को छुड़ाना, फिर घर लौटकर समय पालन की प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिये वन जाने का निश्चय करना। वन में उलूपी के साथ अर्जुन की भेंट होना, वहाँ से पुण्यतीर्थों में जाना, बभ्रुवाहन का जन्म होना, ब्राह्मण के शाप से मगर बनी हुई पाँच अप्सराओं का उद्धार करना वनवासपर्व में कहा गया है। प्रभास तीर्थ में श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन का मिलना, द्वारका में सुभद्रा पर उनका प्रेम होना और श्रीकृष्ण की आज्ञा से उसका हरण करना सुभद्राहरणपर्व में कहा गया है ॥११९-१२५॥ दहेज लेकर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण का खाण्डवप्रस्थ जाना, सुभद्रा के गर्भ से तेजस्वी अभिमन्यु का उत्पन्न होना, द्रौपदी के पुत्रों का उत्पन्न होना, भ्रमण के लिये कृष्ण और अर्जुन का यमुना तीर जाना इस पर्व में कहा गया है ॥१२६, १२७॥ अर्जुन को चक्र और धनुष मिलना, खाण्डव वन को जलाना, अग्नि से मय और सर्प की रक्षा करना, महर्षि मन्दपाल से शार्ङ्गी में पुत्र उत्पन्न होना आदि कथायें आदिपर्व में विस्तार के साथ कही गई हैं। तेजस्वी ब्रह्मर्षि व्यास ने इस पर्व में दो सौ सत्ताइस अध्यायों की गणना की है ॥१२८-१३०॥ आठ हजार आठ सौ चौरासी श्लोक महात्मा मुनि ने इस पर्व में कहे हैं ॥१३१॥

द्वितीयं तु सभापर्व बहुवृत्तान्तमुच्यते । सभाक्रिया पाण्डवानां किङ्कराणां च दर्शनम् ॥१३२॥
लोकपालसभाख्यानं नारदाद्देवदर्शिनः । राजसूयस्य चारंभो जरासन्धवधस्तथा ॥१३३॥
गिरिव्रजे निरुद्धानां राज्ञां कृष्णेन मोक्षणम् । तथा दिग्विजयोऽत्रैव पाण्डवानां प्रकीर्तितः ॥१३४॥
राज्ञामागमनं चैव सार्हणानां महाक्रतौ । राजसूयेऽर्घ संवादे शिशुपालवधस्तथा ॥१३५॥
यज्ञे विभूतिं तां दृष्ट्वा दुःखामर्षौ सुयोधनस्य च । दुर्योधनस्यावहासो भीमेन च सभातले ॥१३६॥
यत्रास्य मन्युरुद्भूतो येन द्यूतमकारयत् । यत्र धर्मसुतं द्यूते शकुनिः कितवोऽजयत् ॥१३७॥
यत्र द्यूतार्णवे मग्नां द्रौपदीं नौरिवार्णवात् । धृतराष्ट्रो महाप्राज्ञः स्नुषां परमदुःखिताम् ॥१३८॥
तारयामास तांस्तीर्णान् ज्ञात्वा दुर्योधनो नृपः । पुनरेव ततो द्यूते समाहूयत पांडवान ॥१३९॥
जित्वा स वनवासाय प्रेषयामास तांस्ततः । एतत्सर्वं सभापर्व समाख्यातं महात्मना ॥१४०॥
अध्यायाः सप्ततिर्ज्ञेयास्तथा चाष्टौ प्रसंख्यया । श्लोकानां द्वे सहस्रे तु पंचश्लोकशतानि च ॥१४१॥
श्लोकाश्चैकादश ज्ञेयाः पर्वण्यस्मिन् द्विजोत्तमाः । अतः परं तृतीयं तु ज्ञेयमारण्यकं महत् ॥१४२॥
वनवासं प्रयातेषु पांडवेषु महात्मसु । पौरानुगमनं चैव धर्मपुत्रस्य धीमतः ॥१४३॥
अन्नोषधीनां च कृते पाण्डवेन महात्मना । द्विजानां भरणार्थं च कृतमाराधनं रवेः ॥१४४॥
धौम्योपदेशात्तिग्मांशुप्रसादादन्नसंभवः । हितं च ब्रुवतः क्षत्तुः परित्यागोऽम्बिकासुतात् ॥१४५॥

दूसरा सभापर्व है जिसमें अनेक कथाएँ हैं, पाण्डवों का सभानिर्माण, किंकरों का दर्शन, देवताओं का साक्षात्कार करनेवाले नारद का लोकपालों की सभा का वर्णन, राजसूय यज्ञ का प्रारंभ, जरासन्धवध, गिरिव्रज में कैद राजाओं का श्रीकृष्ण के द्वारा उद्धार और पाण्डवों के दिग्विजय का भी वर्णन यही है ॥१३२,१३४॥ राजसूय यज्ञ में भेंट के साथ राजाओं का आना, अग्रपूजा सम्बन्धी विवाद में शिशुपालका वध होना, यज्ञ में युधिष्ठिर की वह विभूति देखने से दुर्योधन का दुखी होना और भीमसेन के द्वारा उपहास होने से क्रोधित होना कहा गया है ॥१३५,१३६॥ इससे दुर्योधन क्रुद्ध हुआ और उसने जूआ खेलने का प्रबन्ध किया, धर्मराज को छली शकुनी ने जूए में जीता ॥१३७॥ इस जूआरूपी समुद्र में डूबती हुई समुद्र से नौका के समान महाबुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र ने परम दुःखिनी पुत्रबधू द्रौपदी को बचाया। राजा दुर्योधन को जब यह मालूम हुआ कि, उनलोगोंका उद्धार होगया तब उसने पुनः जूआ खेलने के लिए पाण्डवों को बुलाया ॥१३८,१३९॥ जीतकर राजा दुर्योधन ने उनको वन भेजा। ये सब कथाएँ सभापर्व में कही गयी हैं ॥१४०॥ इस पर्व में अठहत्तर अध्याय हैं और दो हजार पांचसौ ग्यारह श्लोक हैं। इसके बाद तीसरा आरण्यक पर्व है और वह बड़ा है ॥१४१,१४२॥ महात्मा पाण्डवों के वनवास के लिए प्रस्थित होने पर बुद्धिमान धर्मपुत्र युधिष्ठिर के साथ पुरवासियों का जाना, अन्न ओषधि के लिए तथा ब्राह्मणोंको भोजन देने के लिए महात्मा पाण्डव का धौम्य के उपदेश से सूर्य की आराधना करना, सूर्य की कृपा से अन्न का प्राप्त होना, हित कहने वाले विदुर का धृतराष्ट्र के द्वारा त्याग किया जाना, धृतराष्ट्र के त्याग करने पर उनका पाण्डवों के पास जाना, और धृतराष्ट्र की आज्ञा से उनका पुनः लौट आना, कर्ण के प्रोत्साहन से धृतराष्ट्रपुत्र मूर्ख दुर्योधन का वनवासी पाण्डवों को मारने के लिए सलाह करना

त्यक्तस्य पाण्डुपुत्राणां वनगमनं तथा । पुनरागमन चैव धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥१४६॥
कर्णप्रोत्साहनाच्चैव धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः । वनस्थान्पाण्डवान्हन्तुं मन्त्रो दुर्योधनस्य च ॥१४७॥
तं दुष्टभावं विज्ञाय व्यासस्यागमनं द्रुतम् । निर्याणप्रतिषेधश्च सुरभ्याख्यानमेव च ॥१४८॥
मैत्रेयागमनं चात्र राज्ञश्चैवानुशासनम् । शापोत्सर्गश्च तेनैव राज्ञो दुर्योधनस्य च ॥१४९॥
किर्मीरस्य वधश्चात्र भीमसेनेन संयुगे । वृष्णीनामागमश्चात्र पाञ्चालानां च सर्वशः ॥१५०॥
श्रुत्वा शकुनिना द्यूते निकृत्या निर्जितश्च तान् । क्रुद्धस्यानुप्रशमनं हरेश्चैव किरीटिना ॥१५१॥
परिदेवनं च पांचाल्या वसुदेवस्य सन्निधौ । आश्वासनं च कृष्णेन दुःखार्तायाःप्रकीर्तितम् ॥१५२॥
तथा सौभवधाख्यानमत्रैवोक्तं महर्षिणा । सुभद्रायाः सपुत्रायाःकृष्णेन द्वारकां पुरीम् ॥१५३॥
नयनं द्रौपदेयानां धृष्टद्युम्नेन चैव ह । प्रवेशः पांडवेयानां रम्ये द्वैतवने ततः ॥१५४॥
धर्मराजस्य चात्रैव संवादः कृष्णया सह । संवादश्च तथा राज्ञा भीमस्यापि प्रकीर्तितः ॥१५५॥
समीपं पाण्डुपुत्राणां व्यासस्यागमनं तथा । प्रतिश्रुत्याथ विद्याया दानं राज्ञो महर्षिणा ॥१५६॥
गमनं काम्यके चापि व्यासे प्रतिगते ततः । अस्त्रहेतोर्विवासश्च पार्थस्यामिततेजसः ॥१५७॥
महादेवेन युद्धं च किरातवपुषा सह । दर्शनं लोकपालानामस्त्रप्राप्तिस्तथैवच ॥१५८॥
महेन्द्रलोकगमनमस्त्रार्थे च किरीटिनः । यत्र चिन्ता समुत्पन्ना धृतराष्ट्रस्य भूयसी ॥१५९॥
दर्शनं बृहदश्वस्य महर्षेर्भावितात्मनः । युधिष्ठिरस्य चार्त्तस्य व्यसनं परिदेवनम् ॥१६०॥
नलोपाख्यानमत्रैव धर्मिष्ठं करुणोदयम् । दमयंत्याः स्थितिर्यत्र नलस्य चरितं तथा ॥१६१॥

उसका बुरा अभिप्राय मालूम हो जाने के कारण व्यास मुनि का वहां शीघ्र आना तथा उनकी यात्रा रोकना, सुरभि का आख्यान, मैत्रेय का आगमन और राजा को उपदेश देना, और उन्हींके द्वारा राजा दुर्योधन के शाप की निवृत्ति, युद्ध में भीमसेन के द्वारा किर्मीर का वध, वृष्णी और पाञ्चालों का अपने स्थानों से आगमन, शकुनिने छल से पाण्डवों को जूए में जीता है, यह सुनने से श्रीकृष्ण का क्रुद्ध होना और अर्जुनका उन्हें शान्त करना, श्रीकृष्ण से द्रौपदी का अपना दुःख कहना और दुःखिनी द्रौपदी को श्रीकृष्ण का ढाढ़स बँधाना यहां कहा गया है ॥१४३, १५२॥ महर्षि व्यास ने इसी पर्व में सौभ वध कहा है। पुत्र के साथ सुभद्रा को श्रीकृष्ण का द्वारका लेजाना और द्रौपदी के पुत्रों को धृष्टद्युम्न का ले जाना, इसके अनन्तर पांडवों का रमणीय द्वैतवन में जाना यहीं द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर का संवाद और राजा युधिष्ठिर के साथ भीम का संवाद कहा गया है ॥१५३, १५५॥ पांडवों के पास व्यासदेव का आना, प्रतिज्ञा करके व्यास का विद्या दान करना, व्यास मुनि के चले जाने पर पांडवों का काम्यक वन में जाना, तेजस्वी अर्जुन का अस्त्र प्राप्ति के लिए विदेश जाना, किरातवेषधारी महादेव के साथ उनका युद्ध होना लोकपालों का दर्शन, अस्त्रप्राप्ति, पुनः अर्जुन का अस्त्रप्राप्ति के लिए इन्द्रलोक जाना, और इस संवाद के सुनने से धृतराष्ट्र का विशेष चिन्तित होना। विशुद्धात्मा महर्षि बृहदश्व का दर्शन, दुःखी युधिष्ठिर का दुःख और विलाप, धर्म और करुणायुक्त नलोपाख्यान का वर्णन, जिसमें दमयन्ती की दृढ़ता और

तथाऽक्षहृदयप्राप्तिस्तस्मादेव महर्षितः। लोमशस्यागमस्तत्र स्वर्गात्पांडुसुतान्प्रति ॥१६२॥
वनवासगतानां च पाण्डवानां महात्मनाम्। स्वर्गे प्रवृत्तिराख्याता लोमशेनार्जुनस्य वै ॥१६३॥
सन्देशादर्जुनस्यात्र तीर्थाभिगमन क्रिया। तीर्थानां च फलप्राप्तिः पुण्यत्वं चापि कीर्तितम्॥१६४॥
पुलस्त्यतीर्थयात्रा च नारदेन महर्षिणा। तीर्थयात्रा च तत्रैव पांडवानां महात्मनाम् ॥१६५॥
कर्णस्य परिमोक्षोऽथ कुंडलाभ्यां पुरंदरात्। तथा यज्ञविभूतिश्च गयस्यात्र प्रकीर्तिता ॥१६६॥
आगस्त्यमपि चाख्यानं यत्र वातापिभक्षणं। लोपामुद्राभि[illegible]पेस्तथा ॥१६७॥
ऋष्यश्रृङ्गस्य चरितं कौमारब्रह्मचारिणः। जामदग्न्यस्य रामस्य चरितं भूरितेजसः ॥१६८॥
कार्तवीर्यवधो यत्र हैहयानां च वर्ण्यते। प्रभासतीर्थे पाण्डूनां वृष्णिभिश्च समागमः ॥१६९॥
सौकन्यमपि चाख्यानं च्यवनोयत्र भार्गवः। शर्यातियज्ञे नासत्यौ कृतवान्सोमपीतिनौ ॥१७०॥
ताभ्यां च यत्र समुनिर्यौवनं प्रतिपादितः। मांधातुश्चाप्युपाख्यानं राज्ञोऽत्रैव प्रकीर्तितम् ॥१७१॥
जन्तूपाख्यानमत्रैव यत्र पुत्रेण सोमकः। पुत्रार्थमयजद्राजा लेभे पुत्रशतं च सः ॥१७२॥
ततः श्येनकपोतीयमुपाख्यानमनुत्तमम्। इन्द्राग्नी यत्र धर्मश्चाप्यजिज्ञासञ्छिबिं नृपम् ॥१७३॥
अष्टावक्रीयमत्रैव विवादो यत्र बंदिना। अष्टावक्रस्य विप्रर्षेर्जनकस्याध्वरेऽभवत् ॥१७४॥
नैयायिकानां मुख्येन वरुणस्यात्मजेन च। पराजितो यत्र बंदी विवादेन महात्मना ॥१७५॥

नलचरित का वर्णन है ॥१५६-१६१॥ अनन्तर उसी महर्षि से राजा युधिष्ठिर को जूए के रहस्य का ज्ञान प्राप्त होना, पाण्डवों के पास स्वर्ग से लोमश मुनि का आना, वनवासी महात्मा पाण्डवों को अर्जुन का समाचार सुनाना, अर्जुन के सन्देश से पाण्डवों का तीर्थयात्रा के लिए जाना, तीर्थों का फल और पुण्य इसी प्रसङ्ग में यहाँ कहा गया है ॥१६२, १६४॥ महर्षि नारद की पुलस्त्य-तीर्थयात्रा और महात्मा पाण्डवों का भी उसी तीर्थ में जाना, यहां ही इन्द्र ने कर्ण के कुण्डल प्राप्त किये और यहाँ ही राजा गय के यज्ञ के ऐश्वर्य का वर्णन है ॥१६५-१६६॥ अगस्त्य आख्यान का वर्णन जिसमें वातापिभक्षण तथा पुत्र के लिए लोपामुद्रा के पास महर्षि का जाना कहा गया है ॥१६७॥ कुमार ब्रह्मचारी ऋष्यश्रृङ्ग का चरित, अतितेजस्वी जामदग्न्य राम का चरित जिसमें कार्तवीर्यवध तथा हैहयवंशियों के वध का वर्णन है, प्रभासतीर्थ में पाण्डवों की वृष्णि वंशियों के साथ भेंट, सुकन्या का उपाख्यान, जिसमें भृगुवंशी च्यवन मुनि ने राजा शर्याति के यज्ञ में दोनों अश्विनीकुमारों को सोमरस पीने का अधिकार दिलाया, क्योंकि उन दोनों ने उन मुनि को युवावस्था दी थी। राजा मान्धाता का उपाख्यान भी इसी पर्व में कहा गया है ॥१६८,१७१॥ इसी पर्व में जन्तु उपाख्यान है, जिसमें राजा सोमक ने पुत्र के लिए पुत्र से यज्ञ किया था और उन्होंने सौ पुत्र पाये थे ॥१७२॥ अनन्तर सर्वश्रेष्ठ श्येनकपोतीय उपाख्यान है जिसमें इन्द्र अग्नि और धर्म ने राजा शिवि की परीक्षा ली थी ॥७३॥ इसी में अष्टावक्रीय उपाख्यान है, जिसमें ब्रह्मर्षि अष्टावक्र का राजा जनक के यज्ञ में वन्दी के साथ विवाद हुआ था, वह बन्दी वरुण का पुत्र और प्रधान नैयायिक था, वह इस विवाद में महात्मा अष्टावक्र से पराजित हुआ ॥१७४-१७५॥ उसको

विजित्य सागरं प्राप्तं पितरं बन्दिनोऽन्तिकात् । यवक्रीतस्य चाख्यानं रैभ्यस्य च महात्मनः
गन्धमादनयात्रा च वासो नारायणाश्रमे ॥१७६॥
नियुक्तो भीमसेनश्च द्रौपद्या गन्धमादने । व्रजन्पथि महाबाहुर्दृष्टवान्पवनात्मजम् ॥१७७॥
कदलीषण्डमध्यस्थं हनूमन्तं महाबलम् । यत्र सौगन्धिकार्थेऽसौ नलिनीं तामधर्षयत् ॥१७८॥
यत्रास्य युद्धमभवत्सुमहद्राक्षसैः सह । यक्षैश्चैव महावीर्यैर्मणिमत्प्रमुखैस्तथा ॥१७९॥
जटासुरस्य च वधो राक्षसस्य वृकोदरात् । वृषपर्वणो राजर्षेस्ततोऽभिगमनं स्मृतम् ॥१८०॥
आर्ष्टिषेणाश्रमे चैषां गमनं वास एव च । प्रोत्साहनं च पांचाल्या भीमस्य च महात्मनः ॥१८१॥
कैलासारोहणं प्रोक्तं यत्र यक्षैर्बलोत्कटैः । युद्धमासीन्महाघोरं मणिमत्प्रमुखैः सह ॥१८२॥
समागमश्च पांडूनां यत्र वैश्रवणेन च । समागमश्चार्जुनस्य तत्रैव भ्रातृभिः सह ॥१८३॥
अवाप्य दिव्यान्यस्त्राणि गुर्वर्थं सव्यसाचिना । निवातकवचैर्युद्धं हिरण्यपुरवासिभिः ॥१८४॥
निवातकवचैर्घोरैर्दानवैः सुरशत्रुभिः । पौलोमैः कालकेयैश्च यत्र युद्धं किरीटिनः ॥१८५॥
वधश्चैषां समाख्यातो राज्ञस्तेनैव धीमता । अस्त्रसंदर्शनारंभो धर्मराजस्य सन्निधौ ॥१८६॥
पार्थस्य प्रतिषेधश्च नारदेन सुरर्षिणा । अवरोहणं पुनश्चैव पांडूनां गंधमादनात् ॥१८७॥
भीमस्य ग्रहणं चात्र पर्वताभोगवर्ष्मणा । भुजगेन्द्रेण बलिना तस्मिन्सुगहने वने ॥१८८॥
अमोक्षयद्यत्र चैनं प्रश्नानुक्त्वा युधिष्ठिरः । काम्यकागमनं चैव पुनस्तेषां महात्मनाम् ॥१८९॥

जीतकर ऋषि ने समुद्र में डूबे अपने पिता को पाया, यवक्रीत और महात्मा रैभ्य का आख्यान पुनः गन्धमादन पर्वत की यात्रा और नारायणाश्रम में पाण्डवों का निवास, सौगन्धिक लाने के लिए भीमसेन को जाने के लिये द्रौपदी का कहना, जाते हुए भीमसेन का रास्ते में कदली वनमें बैठे हुए महाबली वायुपुत्र हनुमान को देखना, सौगन्धिक के लिए उस तालाब को भीमसेन का हलोड़ना, जहां इनका राक्षसों से तथा महाबली मणिमय आदि यक्षोंसे बड़े भारी युद्ध हुआ। राक्षस जटासुर का भीम के द्वारा वध, राजर्षि वृषपर्वा के यहां पाण्डवों का जाना, वहां से आर्ष्टिषेण के आश्रम में इनका जाना और निवास करना, यहीं महाबली भीम को द्रौपदी का उत्साहित करना ॥१७६-१८१॥ पुनः पांडवों का कैलास पर्वत पर चढ़ना, महाबली मणिमय आदि यक्षों से भयंकर युद्ध होना, कुबेर से पांडवों की भेंट और वहीं भाइयों की अर्जुन से भेंट होना, कहागया है ॥१८२, १८३॥ बड़े भाई के लिए दिव्य अस्त्रों को लेकर अर्जुन यहीं लौट कर उनलोगों से मिले। यहीं हिरण्यपुरवासी निवातकवचों से अर्जुन का युद्ध हुआ। निवातकवच बड़े भयंकर दानव थे और वे देवताओं के शत्रु थे, पौलोम और कालकेय के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ। राजा युधिष्ठिर के सामने अर्जुन ने इन दानवों का वध किया, अर्जुन ने दिव्यास्त्रों को महाराज युधिष्ठिर के सामने दिखाना चाहा, पर महर्षि नारद ने अर्जुन को रोक दिया, अनन्तर पांडव गन्धमादन पर्वत से नीचे उतरे, उस गहन वन में पर्वत के समान शरीरवाले बली सर्प-राज ने भीम को पकड़ लिया। राजा युधिष्ठिर ने उस सर्प के प्रश्नों का उत्तर देकर भीमसेन को छुड़ाया, पुनः महात्मा पांडव काम्यक वन में लौट आये ॥१८४,१८९॥ काम्यक वन में निवास

तत्रस्थांश्च पुनर्द्रष्टुं पांडवान्पुरुषर्षभान् । वासुदेवस्यागनमत्रैव परिकीर्तितम् ॥१९०॥
मार्कण्डेयसमास्याश्चाप्युपाख्यानानि सर्वशः । पृथोर्वैन्यस्य यत्रोक्तमाख्यानं परमर्षिणा ॥१९१॥
संवादश्च सरस्वत्यास्तार्क्ष्यर्षेः सुमहात्मनः । मत्स्योपाख्यानमत्रैव प्रोच्यते तदनन्तरम् ॥१९२॥
मार्कण्डेयसमास्या च पुराणं परिकीर्त्यते । ऐन्द्रद्युम्नमुपाख्यानं धौन्धुमारं तथैव च ॥१९३॥
पतिव्रतायाश्चाख्यानं तथैवांगिरसं स्मृतम् । द्रौपद्याः कीर्तितश्चात्र संवादः सत्यभामया ॥१९४
पुनर्द्वैतवनं चैव पांडवाः समुपागताः । घोषयात्रा च गन्धर्वैर्यत्र बद्धः सुयोधनः ॥१९५॥
ह्रियमणास्तु मंदात्मा मोक्षितोऽसौ किरीटिना। धर्मराजस्य चात्रैव मृगस्वप्ननिदर्शनात् ॥१९६॥
काम्यके काननश्रेष्ठे पुनर्गमनमुच्यते । व्रीहिद्रौणिकमाख्यानमत्रैव बहुविस्तरम् ॥१९७॥
दुर्वाससोऽप्युपाख्यानमत्रैव परिकीर्तितम् । जयद्रथेनापहारो द्रौपद्याश्चाश्रमांतरात् ॥१९८॥
यत्रैनमन्वयाद्भीमो वायुवेगसमो जवे । चक्रे चैनं पंचशिखं यत्र भीमो महाबलः ॥१९९॥
रामायणमुपाख्यानमत्रैव बहु विस्तरम् । यत्र रामेण विक्रम्य निहतो रावणो युधि ॥२००॥
सावित्र्याश्चाप्युपाख्यानमत्रैव परिकीर्तितम् । कर्णस्य परिमोक्षोऽथ कुंडलाभ्यां पुरंदरात् ॥२०१
यत्रास्य शक्तिं तुष्टोऽस्याददादेकवधाय च । आरणेयमुपाख्यानं यत्र धर्मोऽन्वशात् सुतम् ॥२०२
जग्मुर्लब्धवरा यत्र पांडवाः पश्चिमां दिशम् । एतदारण्यकं पर्व तृतीयं परिकीर्तितम् ॥२०३॥
अत्राध्यायशते द्वे तु संख्यया परिकीर्तिते । एकोनसप्ततिश्चैव यत्राध्यायाः प्रकीर्तिताः ॥२०४॥

करने वाले पुरुष श्रेष्ठ पांडवों को देखने के लिए वासुदेव श्रीकृष्ण का पुनः आगमन इसी पर्वमें कहा गया है ॥१९०॥ मार्कण्डेय मुनिके साथ रहने के समय की अनेक कथाएँ—इस प्रकरण में मुनि व्यास ने कही गयी हैं वैन्य पृथु की कथाएँ कही हैं, महात्मा तार्क्ष्य ऋषिके साथ सरस्वती का संवाद, इसके पश्चात् यहीं मत्स्योपाख्यान भी कहा गया है ॥१९१, १९२॥ इस प्रकरण में पौराणिक रीति से कथाएँ कही गयी हैं। इन्द्रद्युम्न और धुन्धुमार का उपाख्यान इसी प्रकरण में है । पतिव्रता और अंगिरा का उपख्यान, द्रौपदी और सत्यभामा का संवाद भी इसी प्रकरण में है ॥१९३,१९४॥ अनन्तर पांडव द्वैतवन में आये, इसी समय घोषयात्रा के बहाने दुर्योधन भी यहां आया, गन्धर्वों ने उसे कैद कर लिया, वे उसे ले जा रहे थे, पर अर्जुन ने छुड़ा दिया, यहीं राज युधिष्ठिर को मृगस्वप्न का उदाहरण मिला । पुनः ये लोग द्वैतवन से काम्यक वन में चले गये । व्रीहिद्रौणिका का उपाख्यान यहीं कहा गया है, यहीं जयद्रथने आश्रम से द्रौपदी का हरण किया और वायु के समान तेजचलनेवाले भीम ने उसका पीछा किया और उसके सिर पर पांच चुटिया रखकर उन्होंने उसे छोड़ दिया ॥१९८, १९९॥ यहीं विस्तर के साथ रामायण का उपाख्यान कहा गया है, जिसमें रामने पराक्रम से युद्ध में रावण को मारा ॥२००॥ यहीं सावित्री का भी उपाख्यान है, यहीं इन्द्र के द्वारा कर्ण के कुण्डल निकाले गये, और प्रसन्न हो कर इन्द्र ने उसे एक शक्ति दी, जिससे एक मनुष्य का वध हो सकता था । आरणेय उपाख्यान है जिसमें धर्म ने अपने पुत्र को उपदेश दिया है ॥२०१,२०२॥ वर पाकर—पाण्डवों को पश्चिम दिशा की ओर जाने का वर्णन है,यही तीसरा आरण्यक पर्व है ॥२०३॥ इस पर्व में दो सौ उनहत्तर अध्याय हैं ॥२०४॥ इस पर्व में ग्यारह

एकादश सहस्राणि श्लोकानां षट्शतानि च । चतुःषष्टिस्तथा श्लोकाः पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः२०५
अतः परं निबोधेदं वैराटं पर्व विस्तरम् । विराटनगरे गत्वा श्मशाने विपुलां शमीम् ॥२०६।
दृष्ट्वा सन्निदधुस्तत्र पांडवाह्यायुधान्युत । यत्र प्रविश्य नगरं छद्मना न्यवसंस्तु ते ॥२०७॥
पांचालीं प्रार्थयानस्य कामोपहतचेतसः । दुष्टात्मनो वधो यत्र कीचकस्य वृकोदरात् ॥२०८॥
पाण्डवान्वेषणार्थं च राज्ञो दुर्योधनस्य च । चाराःप्रस्थापिताश्चात्र निपुणाःसर्वतो दिशम् २०९
न च प्रवृत्तिस्तैर्लब्धा पाण्डवानां महात्मनाम् । गोग्रहश्च विराटस्य त्रिगर्तैः प्रथमं कृतम् ॥२१०
यत्रास्य युद्धं सुमहत्तैरासील्लोमहर्षणम् । ह्रियमाणश्च यत्रासौ भीमसेनेन मोक्षितः ॥२११॥
गोधनं च विराटस्य मोक्षितं यत्र पाण्डवैः । अनन्तरं च कुरुभिस्तस्य गोग्रहणं कृतम् ॥२१२॥
समस्ता यत्र पार्थेन निर्जिताः कुरवो युधि । प्रत्याहृतं गोधनं च विक्रमेण किरीटिना ॥२१३॥
विराटेनोत्तरा दत्ता स्नुषा यत्र किरीटिनः । अभिमन्युं समुद्दिश्य सौभद्रमरिघातिनम् ॥२१४॥
चतुर्थमेतद्विपुलं वैराटं पर्व वर्णितम् । अत्रापि परिसंख्याता अध्यायाः परमर्षिणा ॥२१५॥
सप्तषष्टिरथो पूर्णाः श्लोकानामपि मे शृणु । श्लोकानां द्वे सहस्रे तु श्लोकाः पंचाशदेव तु ॥२१६॥
उक्तानि वेदविदुषा पर्वण्यस्मिन्महर्षिणा । उद्योगपर्व विज्ञेयं पंचमं शृण्वतः परम् ॥२१७॥
उपप्लव्ये निविष्टेषु पांडवेषु जिगीषया । दुर्योधनोऽर्जुनश्चैव वासुदेवमुपस्थितौ ॥२१८॥
सहाय्यमस्मिन्समरे भवान्नो कर्तुमर्हति । इत्युक्ते वचने कृष्णो यत्रोवाच महामतिः ॥२१९॥

हजार छः सौ चौसठ श्लोक हैं ॥२०५॥ इसके अनन्तर विराटपर्व का विस्तार समझो । विराट नगर में जाकर श्मशान के बड़े शमी वृक्ष को देखकर पाण्डवों ने अपने अस्त्रशस्त्र रख दिए । पुनः नगर में जाकर और छिप कर वे रहने लगे ॥२०६,२०७॥ काम से अन्धा दुष्ट कीचक ने द्रौपदी की प्रार्थना की और भीम ने उसे मार डाला ॥२०८॥ पांडवों को ढूँढ़ने के लिए राजा दुर्य्योधन ने निपुण दूत भेजे ॥२०९॥ पर उनको महात्मा पांडवों का पता न लगा । पहले त्रिगर्तवालों ने राजा विराट की गाओं का हरण किया, जिसके लिये इनका त्रिगर्तों के साथ रोमांचकारी युद्ध हुआ और वे विराट को पकड़ कर ले जाने लगे, भीमसेन ने उन्हें छुड़ाया ॥२१०,२११॥ पाण्डवों ने विराट की गौओं का उद्धार किया, इसके अनन्तर कौरवों ने विराट की गौओं को पकड़ लिया । इसके लिये युद्ध हुआ और उस युद्ध में समस्त कौरवों को पार्थ ने जीता और उन्होंने अपने पराक्रम से गौओं को भी लौटाया ॥२१२,२१३॥ अनन्तर विराट ने अपनी कन्या अर्जुन को दी और अर्जुन ने शत्रुघाती सुभद्रापुत्र अभिमन्यु के लिये उसका ग्रहण किया ॥२१४॥ चौथे विराटपर्व में ये कथाएँ विस्तार के साथ कही गई हैं । ऋषि ने इसके अध्यायों की भी संख्या बतलाई है ॥२१५॥ सतसठ अध्यायों में यह पर्व पूरा हुआ है । अब श्लोकों की संख्या सुनिये । इस पर्व में दो हजार पचास श्लोक हैं । वेदज्ञ परमर्षि ने इस पर्व में इतने श्लोक बनाए हैं । इसके बाद पांचवां उद्योग पर्व है । उसका विस्तार सुनिये ॥२१६,२१७॥ विजय की इच्छा से पांडव उपप्लाव्य नामक स्थान में रहते थे । उस समय दुर्योधन और अर्जुन दोनों श्रीकृष्ण के पास गए ॥२१८॥ दोनों ने कहा इस युद्ध में आप हमारी सहायता करें । उनके ऐसा कहने पर महात्मा श्रीकृष्ण ने कहा ॥२१९॥ पुरुषश्रेष्ठो ! एक तो मैं

अयुध्यमानमात्मानं मन्त्रिणं पुरुषर्षभौ । अक्षौहिणी वा सैन्यस्य कस्य किंवा ददाम्यहम्॥२२०
वव्रे दुर्योधनःसैन्यं मन्दात्मा यत्र दुर्मतिः । अयुध्यमानं सचिवं वव्रे कृष्णं धनंजयः ॥२२१॥
मद्रराजं च राजानमायांतं पाण्डवान्प्रति । उपहारैर्वञ्चयित्वा वर्त्मन्येव सुयोधनः ॥२२२॥
वरदं तं वरं वव्रे साहाय्यं क्रियतां मम । शल्यस्तस्मै प्रतिश्रुत्य जगामोद्दिश्य पाण्डवान् ॥२२३
शान्तिपूर्वं चाकथयद्यत्रेन्द्रविजयं नृपः । पुरोहितप्रेषणं च पाण्डवैः कौरवान्प्रति ॥२२४॥
वैचित्रवीर्यस्य वचः समादाय पुरोधसः । तथेन्द्रविजयं चापि यानं चैव पुरोधसः ॥२२५॥
संजयं प्रेषयामास शमार्थी पाण्डवान्प्रति । यत्र दूतं महाराजो धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ॥२२६॥
श्रुत्वा च पाण्डवान्यत्र वासुदेवपुरोगमान् । प्रजागरः संप्रजज्ञे धृतराष्ट्रस्य चिन्तया ॥२२७॥
विदुरो यत्र वाक्यानि विचित्राणि हितानि च । श्रावयामास राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ॥२२८॥
तथा सनत्सुजातेन यत्राध्यात्ममनुत्तमम् । मनस्तापान्वितो राजा श्रावितः शोकलालसः ॥२२९॥
प्रभाते राजसमितौ संजयो यत्र वाविभो । ऐकात्म्यं वासुदेवस्य प्रोक्तवानर्जुनस्य च ॥२३०॥
यत्र कृष्णो दयापन्नः संधिमिच्छन्महामतिः । स्वयमागाच्छमं कर्तुं नगरं नागसाह्वयम् ॥२३१॥
प्रत्याख्यानं च कृष्णस्य राज्ञा दुर्योधनेन वै । शमार्थे याचमानस्य पक्षयोरुभयोर्हितम् ॥२३२॥
दम्भोद्भवस्य चाख्यानमत्रैव परिकीर्तितम् । वरान्वेषणमत्रैव मातलेश्च महात्मनः ॥२३३॥
महर्षेश्चापि चरितं कथितं गालवस्य वै । विदुलायाश्च पुत्रस्य प्रोक्तं चाप्यनुशासनम् ॥२३४॥

हूँ युद्ध नहीं करूँगा केवल सलाह दूँगा । दूसरी अक्षौहिणी सेना है इन दोनों में से किसको मैं क्या दूँ ॥२२०॥ मूर्ख दुर्बुद्धि दुर्योधन ने सेना माँगी और अर्जुन ने श्रीकृष्ण को लिया । इस शर्त पर कि आप युद्ध न करें, केवल सलाह दें ॥२२१॥ मद्रराज शल्य पांडवों के पास आरहे थे रास्ते में ही दुर्योधन ने नजर वगैरह से ठग कर रोक लिया, जब उन्होंने उससे वर मांगने के लिये कहा—तब उसने कहा—आप मेरी सहायता कीजिये । शल्य ने सहायता करने की प्रतिज्ञा की और वे पांडवों के पास जाने के लिये चले ॥२२२,२२३॥ राजा ने पहले शान्ति के लिये प्रयत्न करने को कहा—पांडवों को कौरवों के पास दूत भेजने का उपदेश दिया । पुरोहित से युधिष्ठिर का सन्देश सुनकर और इन्द्रविजय सम्बन्धी कथा तथा पांडवों के आक्रमण की बात सुन कर शान्तिचाहने वाले प्रतापी महाराज धृतराष्ट्र ने पांडवों के पास सञ्जय को दूत बनाकर भेजा ॥२२४,२२५,२२६॥ पांडवो के नेता श्रीकृष्ण हैं यह सुनकर धृतराष्ट्र बहुत चिन्तित हुआ, वह जाग कर रात बिताने लगा ॥२२७॥ बुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र को विदुर ने हितकारी और अद्भुत बातें सुनाईं ॥२२८॥ सनत् सुजात ने भी चिन्तित और दुःखी राजा को उत्तम अध्यात्म तत्व सुनाया ॥२२९॥ प्रातःकाल राजसभा में संजय ने श्रीकृष्ण और अर्जुन का एक चित्त होना बतलाया ॥२३०॥ दयापरवश होकर महामति श्रीकृष्ण सन्धि की इच्छा से हस्तिनापुर में स्वयं आए और शान्तिस्थापना का प्रयत्न किया ॥२३१॥ राजा दुर्योधनने श्रीकृष्ण की शान्ति की बातों को अस्वीकार किया, जो दोनों पक्षों को हितकारी थीं ॥२३२॥ यहीं दम्भोद्भव का आख्यान कहा गया है और महात्मा मातलि का वर ढूँढ़ना भी यहीं कहा गया है ॥२३३॥ महर्षि गालव का चरित और विदुला का अपने पुत्र को उपदेश

कर्णदुर्योधनादीनां दुष्टं विज्ञाय मन्त्रितम् । योगेश्वरत्वं कृष्णेन यत्र राज्ञां प्रदर्शितम् ॥२३५॥
रथमारोप्य कृष्णेन यत्र कर्णोऽनुमन्त्रितः । उपायपूर्वं शौटीर्यात्प्रत्याख्यातश्च तेन सः ॥२३६॥
आगम्य हास्तिनपुरादुपप्लव्यमरिंदमः । पांडवानां यथावृत्तं सर्वमाख्यातवान् हरिः ॥२३७॥
ते तस्य वचनं श्रुत्वा मन्त्रयित्वा च यद्धितम् । सांग्रामिकं ततः सर्वं सज्जं चक्रुः परन्तपाः ॥२३८॥
ततो युद्धाय निर्याता नराश्वरथदन्तिनः । नगराद्धास्तिनपुराद्बलसंख्यानमेव च ॥२३९॥
यत्र राज्ञा उलूकस्य प्रेषणं पाण्डवान्प्रति । श्वोभाविनि महायुद्धे दौत्येन कृतवान्प्रभुः ॥२४०॥
रथातिरथसंख्यानमम्बोपाख्यानमेव च । एतत्सुबहुवृत्तान्तं पंचमं पर्व भारते ॥२४१॥
उद्योगपर्व निर्दिष्टं सन्धिविग्रहमिश्रितम् । अध्यायानां शतं प्रोक्तं षडशीतिर्महर्षिणा ॥२४२॥
श्लोकानां षट्सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च। श्लोकाश्च नवतिः प्रोक्तास्तथैवाष्टौ महात्मना॥२४३॥
व्यासेनोदारमतिना पर्वण्यस्मिंस्तपोधनाः। अतः परं विचित्रार्थं भीष्मपर्व प्रचक्षते ॥२४४॥
जम्बूखण्डविनिर्माणं यत्रोक्तं संजयेन ह। यत्र यौधिष्ठिरं सैन्यं विषादमगमत्परम् ॥२४५॥
यत्र युद्धमभूद्घोरं दशाहानि सुदारुणम् । कश्मलं यत्र पार्थस्य वासुदेवो महामतिः ॥२४६॥
मोहजं नाशयामास हेतुभिर्मोक्षदर्शिभिः । समीक्ष्याधोक्षजः क्षिप्रं युधिष्ठिरहिते रतः ॥२४७॥
रथादाप्लुत्य वेगेन स्वयं कृष्ण उदारधीः। प्रतोदपाणिराधावद्भीष्मं हन्तुं व्यपेतभीः ॥२४८॥
वाक्यप्रतोदाभिहतो यत्र कृष्णेन पाण्डवः। गाण्डीवधन्वा समरे सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥२४९॥

यहां कहा गया है ॥२३४॥ कर्ण और दुर्योधन आदि के बुरे अभिप्राय को समझ कर अपनी योग महिमा राजाओं को दिखाई ॥२३५॥ श्रीकृष्णने अपने रथ पर कर्ण को बैठाया और उसे समझाया अर्थात् उसको पांडवपक्ष ग्रहण करने के लिये फुसलाया, पर कर्ण ने अहङ्कार के कारण उनकी बातें न मानी ॥२३६॥ शत्रुनाशी कृष्ण हस्तिनापुर से ऊपप्लाव्य आए और जो कुछ हुआ था उन्होंने पांडवों को सुनाया ॥२३७॥ श्रीकृष्ण की बातें सुन कर तथा आपस में सलाह कर पांडवों ने अपने लिये मार्ग निश्चित किया और परन्तप पांडव युद्ध की तय्यारी करने लगे ॥२३८॥ अनन्तर हस्तिनापुर से युद्ध करने के लिये मनुष्य, घोड़े, हाथी, रथ तथा सेना प्रस्थित हुई ॥२३९॥ । राजा दुर्योधनने उलूक नामक एक दूत पांडवों के पास भेजा, उस समय जब कि महायुद्ध कल ही होने वाला था ॥२४०॥ रथ अतिरथ की गणना अम्बोपाख्यान, ये सब वृत्तान्त भारत के पांचवें पर्व में हैं ॥२४१॥ उद्योग पर्व में सन्धि और विग्रह का वर्णन है। इसमें एक सौ छियासी अध्याय महर्षि ने बनाए हैं और छः हजार छः सौ नव्वे श्लोक इस पर्व में महामति व्यास ने कहे हैं। इसके बाद भीष्म पर्व है, जिसमें आश्चर्यमय कथाएँ हैं ॥२४२,२४३,२४४॥ इस पर्व में सञ्जय ने जम्बूखंड का निर्माण कहा है, अनन्तर युधिष्ठिर की सेना का अत्यन्त खेद करना कहा गया है ॥२४५॥ इस पर्व में दसदिनों तक के भयङ्कर युद्ध का वर्णन है। अर्जुन के मोह उत्पन्न होने पर महामति श्रीकृष्ण ने ज्ञानमय वचनों के द्वारा उस मोह को दूर किया। युधिष्ठिर के हित में तत्पर उदारबुद्धि श्रीकृष्ण विचार करके और हाथ में चाबुक लेकर निर्भय होकर भीष्म को मारने के लिये दौड़े ॥२४६॥२४७॥२४८॥ शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ गाण्डीवधन्वा अर्जुन को वचन के चाबुक से

शिखंडिनं पुरस्कृत्य यत्र पार्थो महाधनुः । विनिघ्नन्निशितैर्बाणैरथाद् भीष्ममपातयत् ॥२५०॥
शरतल्पगतश्चैव भीष्मो यत्र बभूवह । षष्ठमेतत्समाख्यातं भारते पर्व विस्तृतम् ॥२५१॥
अध्यायानां शतं प्रोक्तं तथा सप्त दशापरे । पंच श्लोकसहस्राणि संख्ययाऽष्टौ शतानि च ॥२५२॥
श्लोकाश्च चतुराशीतिरस्मिन्पर्वणि कीर्तिताः। व्यासेन वेदविदुपा संख्याता भीष्मपर्वणि ॥२५३॥
द्रोणपर्व ततश्चित्रं बहुवृत्तान्तमुच्यते । सैनापत्येऽभिषिक्तोऽथ यत्राचार्यः प्रतापवान् ॥२५४॥
दुर्योधनस्य प्रीत्यर्थं प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् । ग्रहणं धर्मराजस्य पाण्डुपुत्रस्य धीमतः ॥२५५॥
यत्र संशप्तकाः पार्थमपनिन्यू रणाजिरात् । भगदत्तो महाराजो यत्र शक्रसमो युधि ॥२५६॥
सुप्रतीकेन नागेन सहि शान्तः किरीटिना । यत्राभिमन्युं बहवो जघ्नुरेकं महारथाः ॥२५७॥
जयद्रथमुखा बालं शूरमप्राप्तयौवनम् । हतेऽभिमन्यौ क्रुद्धेन यत्र पार्थेन संयुगे ॥२५८॥
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः । यत्र भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः ॥२५९॥
अन्वेषणार्थं पार्थस्य युधिष्ठिरनृपाज्ञया । प्रविष्टौ भारतीं सेनामप्रधृष्यां सुरैरपि ॥२६०॥
संशप्तकावशेषं च कृतं निःशेषमाहवे । संशप्तकानां वीराणां कोट्यो नव महात्मनाम् ॥२६१॥
किरीटिनाभिनिष्क्रम्य प्रापिता यमसादनम् । धृतराष्ट्रस्य पुत्राश्च तथा पाषाणयोधिनः ॥२६२॥
नारायणाश्च गोपालाः समरेचित्र योधिनः । अलम्बुषः श्रुतायुश्च जलसंधश्च वीर्यवान् ॥२६३॥
सौमदत्तिर्विराटश्च द्रौपदश्च महारथः । घटोत्कचादयश्चान्ये निहता द्रोणपर्वणि ॥२६४॥

आहत किया ॥२४९॥ महाधनुर्धारी अर्जुन ने शिखण्डी को आगे करके तीखे बाणों से भीष्म को गिरा दिया ॥२५०॥ पुनः भीष्म ने शरशय्या पर शयन किया। भारत के छठें पर्व में इन कथाओं का विस्तार से वर्णन है ॥२५१॥ इस पर्व में एक सौ सत्तरह अध्याय हैं। पाँच हज़ार आठ सौ चौरासी श्लोक हैं, वेदवेत्ता व्यास ने भीष्मपर्व की यह संख्या बतलाई है ॥२५२॥२५३॥ इसके अनन्तर द्रोणपर्व हैं, जिसमें अनेक प्रकार की अद्भुत कथाएँ हैं। इसमें प्रतापी द्रोणाचार्य सेनापति बनाये गए हैं ॥२५४॥ दुर्योधन की प्रसन्नता के लिये अस्त्रवेत्ता द्रोणाचार्य ने पाण्डुपुत्र बुद्धिमान धर्म्मराज को पकड़ने की प्रतिज्ञा की ॥२५५॥ संशप्तक अर्जुन को युद्धक्षेत्र से अलग ले गए और इन्द्र के समान युद्ध करनेवाले महाराज भगदत्त सुप्रतीक नामक हाथी के साथ अर्जुन के हाथ से मारे गए। बालक अभिमन्यु को, जो अभी युवा नहीं हुआ था पर वीर था, जयद्रथ आदि अनेक महारथों ने मिलकर मारा। अभिमन्यु के मारे जाने पर अर्जुन के क्रोध करके युद्ध में सात अक्षौहिणी सेना मारकर राजा जयद्रथ को मारा। राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से महाबाहु भीम और महारथ सात्यकी ने कौरवसेना में प्रवेश किया, जिसमें देवताओं का भी प्रवेश होना कठिन था ॥२५६-२६०॥ युद्ध में अर्जुन ने समस्त संशप्तकों का नाश कर दिया। वीर संशप्तकों की संख्या नौ करोड़ थी। युद्धक्षेत्र से निकल कर अर्जुन ने उन्हें मारा। धृतराष्ट्र के पुत्र, पत्थर से युद्ध करनेवाले वीर, नारायण और गोपाल नामक दल और अद्भुत रीति से युद्ध करनेवाले वीर अलम्बुष श्रुतायु, बली जलसन्ध, सोमदत्त के पुत्र, विराट् द्रुपद और घटोत्कच आदि द्रोणपर्व में मारे गए हैं ॥२६१-२६४॥ द्रोण के मारे जाने पर अश्वत्थामा ने क्रोध

अश्वत्थाम्नोऽपि चात्रैव द्रोणे युधि निपातिते । अस्त्रं प्रादुश्चकारोग्रं नारायणममर्षितः ॥२६५॥
आग्नेयं कीर्त्यते यत्र रुद्रमाहात्म्यमुत्तमम् । व्यासस्य चाप्यागमनं महात्म्यं कृष्णपार्थयोः ॥२६६॥
सप्तमं भारते पर्व महदेतदुदाहृतम् । यत्र ते पृथिवीपालाः प्रायशो निधनं गताः ॥२६७॥
द्रोणपर्वणि ये शूरा निर्दिष्टाः पुरुषर्षभाः । अत्राध्यायशतं प्रोक्तं तथाऽध्यायाश्च सप्ततिः॥२६८॥
अष्टौश्लोकसहस्राणि तथा नवशतानि च । श्लोका नव तथैवात्र संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ॥२६९॥
पाराशर्येण मुनिना संचिन्त्य द्रोणपर्वणि । अतः परं कर्ण पर्व प्रोच्यते परमाद्भुतम् ॥२७०॥
सारथ्ये विनियोगश्च मद्रराजस्य धीमतः । आख्यातं यत्र पौराणं त्रिपुरस्य निपातनम् ॥२७१॥
प्रयाणे परुषश्चात्र संवादः कर्णशल्ययोः । हंसकाकीयमाख्यानं तत्राक्षेपसंहितम् ॥२७२॥
वधःपाण्ड्यस्यच तथा अश्वत्थाम्ना महात्मना । दंडसेनस्य च ततो दंडस्य च वधस्तथा ॥२७३॥
द्वैरथे यत्र कर्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः । संशयं गमितो युद्धे मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥२७४॥
अन्योन्यं प्रति च क्रोधो युधिष्ठिरकिरीटिनोः । यत्रवा नुनयः प्रोक्तो माधवेनार्जुनस्य हि ॥२७५॥
प्रतिज्ञापूर्वकं चापि वक्षो दुःशासनस्य च । भित्त्वा वृकोदरो रक्तं पीतवान्यत्र संयुगे ॥२७६॥
द्वैरथे यत्र पार्थेन हतः कर्णो महारथः । अष्टमं पर्व निर्दिष्टमेतद्भारतचिन्तकैः ॥२७७॥
एकोनसप्ततिः प्रोक्ता अध्यायाःकर्णपर्वणि । चत्वार्येव सहस्राणि नव श्लोकशतानि च ॥२७८॥
चतुःषष्टिस्तथा श्लोकाः पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः । अतः परं विचित्रार्थं शल्यपर्व प्रकीर्तितम् ॥२७९॥
हतप्रवीरे सैन्ये तु नेता मद्रेश्वरोऽभवत् । यत्र कौमारमाख्यानमभिषेकस्य कर्म च ॥२८०॥

करके नारायणास्त्र का प्रयोग किया, जो आग्नेय अस्त्र कहा जाता है। इसी प्रसङ्ग में श्रेष्ठ रुद्र माहात्म्य इसी पर्व में कहा गया है ॥२६५॥२६६॥ भारत का यह सातवाँ पर्व है। द्रोणपर्व में जो वीर कहे गए हैं, वे प्रायः सभी मारे गए। इसमें एक सौ सत्तर अध्याय हैं, आठ हज़ार नौ सौ नौ श्लोक इस द्रोण पर्व में तत्वदर्शी व्यास ने कहे हैं।

इसके अनन्तर परम अद्भुत कर्णपर्व है ॥२६७-२७०॥ बुद्धिमान् मद्रराज सारथी बनाये गए। त्रिपुर नाश की पौराणिक कथा कही गई है। इस पर्व में प्रायः शल्य और कर्ण का कठोर सम्वाद हुआ है। इसी प्रसङ्ग में हंस और काक का उपाख्यान कहा गया है॥२७१-२७२॥ महात्मा अश्वत्थामा के द्वारा पाण्ड्य दण्डसेन और दण्ड का वध वर्णित हुआ है। कर्ण और युधिष्ठिर के युद्ध में सब धनुर्धारियों के सामने कर्ण ने युधिष्ठिर को संकट में डाल दिया ॥२७३-२७४॥ युधिष्ठिर और अर्जुन ने परस्पर क्रोध किया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को विनयपूर्वक समझाया ॥२७५॥ प्रतिज्ञा करके युद्ध में भीमसेन ने दुश्शासन की छाती फाड़कर रक्त पिया ॥२७६॥ कर्ण और अर्जुन दोनों के युद्ध में अर्जुन ने महारथ कर्ण को मारा। भारतपढ़नेवालों ने इसको आठवाँ पर्व कहा है ॥२७७॥ कर्ण पर्व में उनहत्तर अध्याय हैं। चार हज़ार नौ सौ चौंसठ श्लोक इस पर्व में कहे गए हैं। इसके बाद शल्य पर्व है, जिसमें अद्भुत अर्थों का वर्णन है ॥२७८-२७९॥ प्रधान वीरों के मारे जाने पर मद्रराज शल्य सेनापति हुए। इस पर्व में कौमाराख्यान, अभिषेक, रथयद्धों का विभागपूर्वक वर्णन, और

वृत्तानि चाथयुद्धानि कीर्त्यन्ते यत्र भागशः । विनाशः कुरुमुख्यानां शल्यपर्वणि कीर्त्यते ॥२८१॥
शल्यस्य निधनं चात्र धर्मराजान्महारथात् । शकुनेश्च वधोऽत्रैव सहदेवेन संयुगे ॥२८२॥
सैन्येच हतभूयिष्ठे किंचिच्छिष्टे सुयोधनः । ह्रदं प्रविश्य तत्रासौ संस्तभ्यापो व्यवस्थितः॥२८३॥
प्रवृत्तिस्तत्र चाख्याता यत्र भीमस्य लुब्धकैः । क्षेपयुक्तैर्वचोभिश्च धर्मराजस्य धीमतः ॥२८४॥
ह्रदात्समुत्थितो यत्र धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः । भीमेन गदया युद्धं यत्रासौ कृतवान् सह ॥२८५॥
समवाये च युद्धस्य रामस्यागमनं स्मृतम् । सरस्वत्याश्च तीर्थानां पुण्यता परिकीर्तिता ॥२८६॥
गदायुद्धं च तुमुलमत्रैव परिकीर्तितम् । दुर्योधनस्य राज्ञोऽथ यत्र भीमेन संयुगे ॥२८७॥
ऊरूभग्नौ प्रसह्याजौ गदया भीमवेगया । नवमं पर्व निर्दिष्टमेतदद्भुतमर्थवत् ॥२८८॥
एकोनषष्ठिरध्यायाः पर्वण्यत्र प्रकीर्तिताः । संख्याता बहुवृत्तान्ताः श्लोकसंख्यात्र कथ्यते ॥२८९॥
त्रीणि श्लोकसहस्राणि द्वेशते विंशतिस्तथा । मुनिना संप्रणीतानि कौरवाणां यशोभृता ॥२९०॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि सौप्तिकं पर्व दारुणम् । भग्नोरुं यत्र राजानं दुर्योधनममर्षणम् ॥२९१॥
अपयातेषु पार्थेषु त्रयस्तेऽभ्याययूरथाः । कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सायाह्ने रुधिरोक्षितम् ॥२९२॥
समेत्य ददृशुर्भूमौ पतितं रणमूर्धनि । प्रतिजज्ञे दृढक्रोधो द्रौणिर्यत्र महारथः ॥२९३॥
अहत्वा सर्व पञ्चालान्धृष्टद्युम्नपुरोगमान् । पाण्डवाँश्च सहामात्यान्न विमोक्ष्यामि दंशनम्॥२९४॥
यत्रैवमुक्त्वा राजनमपक्रम्य त्रयोरथाः । सूर्यास्तमनवेलयामासेदुस्ते महद्वनम् ॥२९५॥
न्यग्रोधस्याथ महतो यत्राधस्ताद्व्यवस्थिताः। ततः काकान् बहून् रात्रौ दृष्ट्वोलूकेन हिंसितान ॥२९६

प्रधान कौरवों का नाश कहा गया है ॥२८०-२८१॥ इसी पर्व में युधिष्ठिर के हाथ से शल्य मारे गये हैं और शकुनी को सहदेव ने मारा है ॥२८२॥ जब समूची सेना मारी गयी, थोड़े बच रहे, तब दुर्योधन एक तालाब में उसके जल को स्तम्भित करके घुसा ॥२८३॥ व्याधों ने भीमसेन को इसकी खबर दी। युधिष्ठिर के तिरस्कार से महाक्रोधी दुर्योधन उस तालाब से निकला और भीमसेन के साथ उसका गदायुद्ध होने लगा। इस युद्ध के समय बलरामजी आये। इसी प्रसङ्ग में सरस्वती के तीर्थों के महत्व का वर्णन हुआ है ॥२८४-२८६॥ भीमसेन के साथ राजा दुर्योधन के गदायुद्ध का वर्णन इसी पर्व में है ॥२८७॥ वेगवती गदा से भीमसेन ने बलपूर्वक उसकी जांघ तोड़ दी, नवे पर्व की ये ही अद्भुत कथाएँ हैं ॥२८८॥ इस पर्व में उनसठ अध्याय हैं, जिनमें अनेक वृतान्त हैं। अब श्लोकसंख्या कही जाती है ॥२८९॥ तीन हजार दो सौ बीस, श्लोक इस पर्व में कौरवों के कर्मों को जाननेवाले व्यास ने बनाये हैं ॥२९०॥ इसके अनन्तर अत्यन्त भयंकर सौप्तिक पर्व है। जब क्रोधी राजा दुर्योधन की जांघ टूट गयी, पाण्डव वहां से चले गये, तब कृपाचार्य कृतवर्मा और अश्वत्थामा ये तीनों सायंकाल रुधिर से भीगे दुर्योधन के पास गये ॥२९१,२९२॥ वहां जाकर उन लोगों ने रणभूमि में दुर्योधन को पड़ा देखा, वहां महारथ अश्वत्थामा ने बड़े क्रोध से प्रतिज्ञा की ॥२९३॥ धृष्टद्युम्न आदि समस्त पांचालों को और सलाहकारों के साथ पाण्डवों को बिना मारे मैं कवच न उतारूँगा ॥२९४॥ राजा से इस प्रकार कह कर वे वहाँ से लौटे और सायंकाल के समय उनलोगों ने वन में प्रवेश किया ॥२९५॥ वहां एक

द्रौणिः क्रोधसमाविष्टः पितुर्वधमनुस्मरन्। पांचालानां प्रसुप्तानां वधं प्रति मनो दधे ॥२९७॥
गत्वा च शिबिरद्वारि दुर्दर्शं तत्र राक्षसम्। घोररूपमपश्यत्स दिवमावृत्यविष्ठितम् ॥२९८॥
तेन व्याघातमस्त्राणां क्रियमाणमवेक्ष्य च। द्रौणिर्यत्र विरूपाक्षं रुद्रमाराध्य सत्वरः ॥२९९॥
प्रसुप्तान्निशि विश्वस्तान धृष्टद्युम्नपुरोगमान। पांचालान्सपरीवारान्द्रौपदेयाँश्च सर्वशः ॥३००॥
कृतवर्मणा च सहितः कृपेण च निजघ्निवान। यत्रामुच्यंत ते पार्थाः पंच कृष्णबलाश्रयात्॥३०१॥
सात्यकिश्च महेष्वासः शेषाश्च निधनं गताः। पांचालानां प्रसुप्तानां यत्र द्रोणसुताद्वधः ॥३०२॥
धृष्टद्युम्नस्य सूतेन पांडवेषु निवेदितः। द्रौपदी पुत्रशोकार्त्ता पितृभ्रातृवधार्दिता॥३०३॥
कृतानशनसंकल्पा यत्र भर्तॄनुपाविशत्। द्रौपदीवचनाद्यत्र भीमो भीमपराक्रमः ॥३०४॥
प्रियं तस्याश्चिकीर्षन्वै गदामादाय वीर्यवान। अन्वधावत्सुसंक्रुद्धो भारद्वाजं गुरोः सुतम् ॥३०५॥
भीमसेनभयाद्यत्र दैवेनाभिप्रचोदितः। अपांडवायेति रुषा द्रौणिरस्त्रमवासृजत् ॥३०६॥
मैवमित्यब्रवीत्कृष्णः शमयंस्तस्य तद्वचः। यत्रास्त्रमस्त्रेण च तच्छमयामास फाल्गुनः ॥३०७॥
द्रौणेश्च द्रोहबुद्धित्वं वीक्ष्य पापात्मनस्तदा। द्रौणिद्वैपायनादीनां शापाश्चान्योन्यकारिताः॥३०८॥
मणिं तथा समादाय द्रोणपुत्रान्महारथात्। पांडवाः प्रददुर्हृष्टा द्रौपद्यै जितकाशिनः ॥३०९॥
एतद्वै दशमं पर्व सौप्तिकं समुदाहृतम्। अष्टादशास्मिन्नध्यायाः पर्वण्युक्ता महात्मना॥३१०॥

बड़े बरगद के नीचे वे लोग ठहरे। वहां उन लोगों ने देखा कि एक उल्लू ने अनेक कौओं को उस रात में मार डाला है ॥९६॥ पिता के वध का स्मरण करके अश्वत्थामा को बड़ा क्रोध आया और सोते हुए पांचालों का अन्त करने का मन ही मन उन्होंने निश्चय किया ॥९७॥ युधिष्ठिर के शिविर के द्वार पर पहुँचकर अश्वत्थामा ने वहां देखने में भयङ्कर एक राक्षस देखा जो आकाश तक फैला हुआ था ॥९८॥ उस राक्षस के कारण अश्वत्थामा के अस्त्र चलाने में रुकावट होती थी अतएव अश्वत्थामा ने शीघ्र ही विरूपाक्ष शिवकी आराधना की ॥९९॥ धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल निश्चिन्त होकर रात में सो रहे थे, परिवार सहित उनको तथा द्रौपदी के पुत्रों को कृतवर्म्मा और कृपाचार्य्य को साथ लेकर अश्वत्थामा ने मार डाला और कृष्ण के साथ रहने के कारण केवल पाण्डव बच गए ॥३००,३०१॥ महाधनुर्धारी सात्यकी और पाण्डव बच गए और लोग मारे गए। सोते हुये पाञ्चालों का वध द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने किया, यह बात धृष्टद्युम्न के सारथी ने पाण्डवों से कही। पुत्रों तथा पिता, भाई आदि के वध से दुःखिनी होकर द्रौपदी ने अपने पतियों के सामने भूखी रहकर प्राण देने का आग्रह किया। द्रौपदीके कहने से भीमपराक्रमी भीमसेन उसका अभीष्ट करने के लिये गदा लेकर और क्रोध करके गुरुपुत्र अश्वत्थामा के पीछे दौड़े ॥३०२-३०५॥ भीमसेन के भय से तथा भाग्य की प्रेरणा से पृथ्वी को पाण्डवहीन करने के लिये अश्वत्थामा ने अस्त्र चलाया। श्रीकृष्ण ने कहा "ऐसा मत करो"। ऐसा कहकर उन्होंने अश्वत्थामा को शान्त करना चाहा। पापी अश्वत्थामा की द्रोहबुद्धि देखकर अर्जुन ने अपने अस्त्र से उसका अस्त्र शान्त कर दिया। अश्वत्थामा और व्यासदेव आदि ने परस्पर शाप दिया ॥३०६-३०८॥ विजयी पाण्डवों ने द्रोणपुत्र महारथ अश्वत्थामा से मणि लेकर प्रसन्नता पूर्वक द्रौपदी को दी ॥३०९॥

श्लोकानां कथितान्यत्र शतान्यष्टौ प्रसंख्यया । श्लोकाश्च सप्ततिःप्रोक्ता मुनिना ब्रह्मवादिना ३११
सौप्तिकैषीकसंबद्धे पर्वण्युत्तमतेजसी । अत ऊर्ध्वमिदं प्राहुः स्त्रीपर्व करुणोदयम् ॥३१२॥
पुत्रशोकाभिसंतप्तः प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः । कृष्णोपनीतां यत्रासावायसीं प्रतिमां दृढाम् ॥३१३॥
भीमसेनद्रोहबुद्धिर्धृतराष्ट्रो बभञ्ज ह । तथा शोकाभिहतस्य धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥३१४॥
संसारगहनं बुद्ध्या हेतुभिर्मोक्षदर्शनैः । विदुरेण च यत्रास्य राज्ञ आश्वासनं कृतम् ॥३१५॥
धृतराष्ट्रस्य चात्रैव कौरवायोधनं तथा । सांतःपुरस्य गमनं शोकार्तस्य प्रकीर्तितम् ॥३१६॥
विलापो वीरपत्नीनां यत्रातिकरुणःस्मृतः । क्रोधावेशप्रमोहश्च गांधारीधृतराष्ट्रयोः ॥३१७॥
यत्रैतान् क्षत्रियाः शूरान्संग्रामेष्वनिवर्तिनः । पुत्रान् भ्रातॄन्पितॄंश्चैव ददृशुर्निहतान् रणे ॥३१८॥
पुत्रपौत्रवधार्त्तायास्तथात्रैव प्रकीर्तिता । गांधार्याश्चापि कृष्णेन क्रोधोपशमनक्रिया ॥३१९॥
यत्र राजा महाप्राज्ञः सर्वधर्मभृतांवरः । राज्ञां तानि शरीराणि दाहयामास शास्त्रतः ॥३२०॥
तोयकर्मणि चारब्धे राज्ञामुदकदानिके । गूढोत्पन्नस्य चाख्यानं कर्णस्य पृथयाऽऽत्मनः॥३२१॥
सुतस्यैतदिह प्रोक्तं व्यासेन परमर्षिणा। एतदेकादशं पर्व शोकवैक्लव्यकारणम् ॥३२२॥
प्रणीतं सज्जनमनोवैक्लव्याश्रुप्रवर्तकम् । सप्तविंशतिरध्यायाः पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः ॥३२३॥
श्लोकसप्तशती चापि पंचसप्ततिसंयुता । संख्यया भारताख्यानमुक्तं व्यासेन धीमता ॥३२४॥

यह दसवाँ सौप्तिकपर्व कहा जाता है। इसमें अठारह अध्याय महात्मा व्यास ने कहे हैं ॥३१०॥ आठ सौ सत्तर श्लोक इस पर्व में ब्रह्मवादी मुनि ने कहे हैं। सौप्तिक पर्व और ऐषीकपर्व दोनों सम्मिलित पर्व हैं। इसके अनन्तर करुणरसपूर्ण स्त्रीपर्व है ॥३११-३१२॥ इस पर्व में पुत्रशोक से दुःखी अन्धे राजा धृतराष्ट्र ने कृष्ण की दी हुई लोहे की मज़बूत मूर्ति को भीमसेन समझ कर और उनको मार डालने की इच्छा से तोड़ दी। शोक पीड़ित बुद्धिमान धृतराष्ट्र को तर्क तथा ज्ञानमय उपदेशों के द्वारा संसार की विचित्रता बतला कर विदुर ने समझाया ॥३१३-३१५॥ इसी पर्व में शोकपीड़ित धृतराष्ट्र तथा रनिवास की स्त्रियों का कौरवों के युद्धक्षेत्र में जाने की कथा है ॥३१६॥ इस पर्व में वीर पत्नियों का बड़ा ही करुण विलाप है। धृतराष्ट्र और गान्धारी का पहले क्रुद्ध होना तथा मूर्च्छित होना लिखा गया है ॥३१७॥ इस पर्व में क्षत्रिय स्त्रियों ने युद्ध से मुँह न मोड़ने वाले वीर अपने भाइयों बेटों और पिताओं को युद्ध में मरा देखा ॥३१८॥ बेटे और पोतों के मारे जाने के कारण दुःखिनी गान्धारी के क्रोध को श्रीकृष्ण ने इसी पर्व में शान्त किया ॥३१९॥ इसी पर्व में महाबुद्धिमान धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने सब वीरों का दाह संस्कार कराया ॥३२०॥ जब राजाओं को जल दिया जाने लगा, उस समय कुन्ती ने कर्ण का परिचय दिया। उसने कहा कि, यह मेरा ही पुत्र था और सूर्य के द्वारा गुप्तरीति से उत्पन्न हुआ था ॥३२१॥ यह ग्यारहवाँ पर्व जो शोक और विक्लव का पर्व है, महर्षि व्यासदेव ने कहा है ॥३२२॥ यह सज्जनों के मन को विक्लव करनेवाला तथा आँसू बहानेवाला है। इस पर्व में सत्ताइस अध्याय हैं ॥३२३॥ बुद्धिमान व्यासदेव ने इस पर्व में सात सौ पचहत्तर श्लोकों की संख्या बतलाई है ॥३२४॥ इसके बाद बारहवाँ शान्ति पर्व है, जो बुद्धि को बढ़ानेवाला है। इसमें

अतः परं शान्तिपर्व द्वादशं बुद्धिवर्धनम् । यत्र निर्वेदमापन्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥३२५॥
घातयित्वा पितॄन् भ्रातॄन्पुत्रान् [illegible] धर्माश्च व्याख्याताःशारतल्पिकाः३२६
राजभिर्वेदितव्यास्ते सम्यग्ज्ञानबुभुत्सुभिः । आपद्धर्माश्च तत्रैव कालहेतुप्रदर्शिनः ॥३२७॥
यान्बुद्ध्वा पुरुषः सम्यक्सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात् । मोक्षधर्माश्च कथिता विचित्रा बहुविस्तराः ३२८॥
द्वादशं पर्व निर्दिष्टमेतत्प्राज्ञजनप्रियम् । अत्र पर्वणि विज्ञेयमध्यायानां शतत्रयम् ॥३२९॥
विंशच्चैव तथाध्याया नव चैव तपोधनाः । चतुर्दश सहस्राणि तथा सप्तशतानि च ॥३३०॥
सप्त श्लोकास्तथैवात्र पंचविंशतिसंख्यया । अत ऊर्ध्वं च विज्ञेयमनुशासनमुत्तमम् ॥३३१॥
यत्र प्रकृतिमापन्नः श्रुत्वा धर्मविनिश्चयम् । भीष्माद्भागीरथीपुत्रात्कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥३३२॥
व्यवहारोऽत्र कार्त्स्न्येन धर्मार्थीयःप्रकीर्तितः। विविधानां च दानानां फलयोगाःप्रकीर्तिताः॥३३३॥
तथा पात्रविशेषाश्च दानानां च परो विधिः। आचारविधियोगश्च सत्यस्य च परा गतिः ॥३३४॥
महाभाग्यं गवां चैव ब्राह्मणानां तथैव च । रहस्यं चैव धर्माणां देशकालोपसंहितम् ॥३३५॥
एतत्सुबहुवृत्तान्तमुत्तमं चानुशासनम् । भीष्मस्यात्रैव संप्राप्तिः स्वर्गस्य परिकीर्तिता ॥३३६॥
एतत्त्रयोदशं पर्व धर्मनिश्चयकारकम् । अध्यायानां शतं त्वत्र षट्चत्वारिंशदेव तु ॥३३७॥
श्लोकानां तु सहस्राणि प्रोक्तान्यष्टौ प्रसंख्यया। ततोऽश्वमेधिकं नाम पर्व प्रोक्तं चतुर्दशम् ॥३३८॥
तत्संवर्तमरुत्तीयं यत्राख्यानमनुत्तमम् । सुवर्णकोशसंप्राप्तिर्जन्म चोक्तं परीक्षितः ॥३३९॥

युधिष्ठिर के वैराग्य उत्पन्न होने की कथा है ॥३२५॥ पिता के समान माननीयों, भाइयों और पुत्रों को मारने से राजा युधिष्ठिर के मन में बड़ा कष्ट उत्पन्न हुआ । इस पर्व में भीष्म पितामह ने धर्म का उपदेश दिया है ॥३२६॥ ज्ञानप्राप्ति की इच्छा रखनेवाले राजाओं को वे सब उपदेश जानने चाहियें । देश काल के अनुसार आपद्धर्मों का भी वर्णन है ॥३२७॥ जिन सब को जानने से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है, उसे कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान हो जाता है । इसमें विस्तार के साथ अनेक प्रकार के मोक्षधर्मों का भी वर्णन है ॥३२८॥ यह बारहवाँ पर्व बुद्धिमान मनुष्यों को अत्यन्त प्रिय है इसमें तीन सौ उनतीस अध्याय हैं । चौदह हजार सात सौ बत्तीस श्लोक हैं । इसके बाद अनुशासन पर्व है, जो सब से श्रेष्ठ है ॥३२९-३३१॥ इस पर्व में भागीरथी के पुत्र भीष्म से धर्म का निर्णय सुन कर राजा युधिष्ठिर के स्वस्थ होने की कथा है । इस पर्व में धर्म और अर्थ के अनुकूल आचारों का वर्णन है तथा विविध दानों का फल बतलाया गया है ॥ ३३२-३३३ ॥ दानपात्र भिन्न २ दानों के विधान, आचार व्यवहार तथा सत्य का अन्तिम सरूप बतलाया गया है । गौ, और ब्राह्मणों का माहात्म्य तथा देश कालानुसार धर्म्मों का रहस्य इस पर्व में कहा गया है ॥३३४-३३५ ॥ ये सब अनेक वृत्तान्त इस उत्तम अनुशान पर्व में हैं । इसी पर्व में भीष्म के स्वर्गारोहण का भी वृत्तान्त है ॥३३६॥ धर्मनिर्णय बतलाने वाला यह तेरहवां पर्व है, इसमें एक सौ छियालीस अध्याय हैं ॥३३७॥ इस में आठ हजार श्लोक कहे गये हैं । इसके पश्चात् चौदहवां आश्वमेधिक पर्व है ॥३३८॥ इस पर्व में सम्वर्त और मरुत्त का सर्वश्रेष्ठ उपाख्यान, सुवर्ण का खजाना मिलना और राजा परिक्षित का जन्म कहा गया है ॥३३९॥ पहले

दग्धस्यास्त्राग्निना पूर्वं कृष्णात् संजीवनं पुनः। चर्यायां हयमुत्सृष्टं पाण्डवस्याथ फाल्गुनः ॥३४०॥
तत्र तत्र च युद्धानि राजपुत्रैर्महात्मभिः। चित्रांगदायाः पुत्रेण पुत्रिकाया धनंजयः ॥३४१॥
संग्रामे बभ्रुवाहेन संशयं चात्र दर्शितः। अश्वमेधे महायज्ञे नकुलाख्यानमेव च ॥३४२॥
इत्याश्वमेधिकं पर्व प्रोक्तमेतन्महाद्भुतम्। अध्यायानां शतं चैव त्रयोऽध्यायाश्च कीर्तिताः ॥३४३॥
त्रीणि श्लोकसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च। विंशतिश्च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना॥३४४
ततस्त्वाश्रमवासाख्यं पर्व पंचदशं स्मृतम्। यत्र राज्यं समुत्सृज्य गांधार्या सहितो नृपः॥३४५॥
धृतराष्ट्रोश्रमपदं विदुरश्च जगाम ह। यं दृष्ट्वा प्रस्थितं साध्वी पृथाप्यनुययौ तदा ॥३४६।
पुत्रराज्यं परित्यज्य गुरुशुश्रूषणे रता। यत्र राजा हतान्पुत्रान्पौत्रानन्यांश्च पार्थिवान ॥३४७॥
लोकांतरगतान्वीरानपश्यत्पुनरागतान्। ऋषेः प्रसादात्कृष्णस्य दृष्ट्वाश्चर्यमनुत्तमम् ॥३४८
त्यक्त्वा शोकं सदारश्च सिद्धिं परमिकां गतः। यत्र धर्मं समाश्रित्य विदुरः सुगतिं गतः ॥३४९॥
संजयश्च सहामात्यो विद्वान्गावल्गणिर्वशी। ददर्श नारदं यत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥३५०॥
नारदाच्चैव शुश्राव वृष्णीनां कदनं महत्। एतदाश्रमवासाख्यं पर्वोक्तं महदद्भुतम् ॥३५१॥
द्विचत्वारिंशदध्यायाः पर्वैतदभिसंख्यया। सहस्रमेकं श्लोकानां पञ्चश्लोकशतानि च ॥३५२
षडेव च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना। अतः परं निबोधेदं मौसलं पर्व दारुणम्॥३५३॥
यत्र ते पुरुषव्याघ्राः शस्त्रस्पर्शहता युधि। ब्रह्मदंडविनिष्पिष्टाःसमीपे लवणाम्भसः॥३५४॥

अश्वत्थामा की अस्त्राग्नि से जले हुए परिक्षित को संजीवित करना और अर्जुन की रक्षा में यज्ञ के लिये घोड़ा छोड़ने की कथा है ॥३४०॥ स्थान स्थान पर क्षत्री राजपुत्रों से युद्ध, अर्जुन के अपने पुत्र चित्रांगदा के गर्भ से उत्पन्न बभ्रुबाहन से युद्ध और इस युद्ध में अर्जुन के प्राणों पर संकट आना, नकुलोपाख्यान आदि अत्यन्त अद्भुत कथाओं का वर्णन इस आश्वमेधिक पर्व में है। एक सौ तीन अध्याय इस पर्व में हैं और तत्वदर्शी व्यास ने इस पर्व में तीन हजार तीन सौ बीस श्लोक बतलाये हैं ॥३४१-३४४॥ इसके बाद पन्द्रहवाँ आश्रमवास पर्व है इसमें राजा धृतराष्ट्र के राज्य छोड़ कर गान्धारी और विदुर के साथ आश्रम में जाने की कथा है इन लोगों को जाते देख कुन्ती के भी जाने का वर्णन है ॥३४५-३४६॥ पुत्र के राज्य को छोड़ कर कुन्ती अपने बड़ों की सेवा करने के लिये उनके साथ वनमें गई। राजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र पौत्रों तथा अन्य राजाओं को जो परलोक चले गये थे, उन सबको महर्षि व्यास की कृपा से पुनः देखा ॥३४७,३४८॥ स्त्री के साथ उन्होंने शोक का त्याग किया और परम सिद्धि पायी। इस पर्व में धर्म का आश्रय करके विदुर तथा वशी विद्वान धृतराष्ट्र के सचिव सञ्जय दोनों परलोकवासी हुए। राजा युधिष्ठिर ने नारद को देखा और उनसे वृष्णिवंश के भयङ्कर विनाश का हाल सुना। इस आश्रमवास पर्व में ये अद्भुत कथाएँ हैं ॥३४९-३५१॥ इस पर्व में बयालिस अध्याय हैं। एक हजार पांच सौ छः श्लोक हैं। यह गणना तत्वदर्शी व्यास की है इसके पश्चात् मौशल पर्व समझो जो बड़ा ही भयङ्कर है ॥३५२ ३५३॥ इस पर्व में लवण समुद्र के पास ब्रह्मशाप से बुद्धिहीन बने पुरुषश्रेष्ठ यादव आपसी युद्ध में

आपाने पानकलिता दैवेनाभिप्रचोदिताः । एरकारूपिभिर्वज्रैर्निजघ्नुरितरेतरम् ॥३५५॥
यत्र सर्वक्षयं कृत्वा तावुभौ रामकेशवौ । नातिचक्रमतुःकालं प्राप्तं सर्वहरं महत् ॥३५६॥
यत्रार्जुनो द्वारवतीमेत्य वृष्णिविनाकृताम् । दृष्ट्वा विषादमगमत्परां चार्तिं नरर्षभः ॥३५७॥
स संस्कृत्य नरश्रेष्ठं मातुलं शौरिमात्मनः । ददर्श यदुवीराणामापाने वैशसं महत् ॥३५८॥
शरीरं वासुदेवस्य रामस्य च महात्मनः । संस्कारं लम्भयामास वृष्णीनां च प्रधानतः ॥३५९॥
स वृद्धबालमादाय द्वारवत्यास्ततो जनम् । ददर्शापदि कष्टायां गांडीवस्य पराभवम् ॥३६०॥
सर्वेषां चैव दिव्यानामस्त्राणामप्रसन्नताम् । नाशं वृष्णिकलत्राणां प्रभवानामनित्यताम् ॥३६१॥
दृष्ट्वा निर्वेदमापन्नो व्यासवाक्यप्रचोदितः । धर्मराजं समासाद्य संन्यासं समरोचयत् ॥३६२॥
इत्येतन्मौसलं पर्व षोडशं परिकीर्तितम् । अध्यायाऽष्टौ समाख्याताः श्लोकानां च शतत्रयम् ॥३६३॥
श्लोकानां विंशतिश्चैव संख्यातास्तत्त्वदर्शिना । महाप्रस्थानिकं तस्मादूर्ध्वं सप्तदशं स्मृतम् ॥३६४॥
यत्र राज्यं परित्यज्य पाण्डवाः पुरुषर्षभाः । द्रौपद्या सहिता देव्या महाप्रस्थानमास्थिताः॥३६५॥
यत्र तेऽग्निं ददृशिरे लौहित्यं प्राप्य सागरम् । यत्राग्निना चोदितश्च पार्थस्तस्मै महात्मने ॥३६६॥
ददौ संपूज्य तद्दिव्यं गांडीवं धनुरुत्तमम् । यत्र भ्रातॄन्निपतितान्द्रौपदीं च युधिष्ठिरः ॥३६७॥
दृष्ट्वा हित्वा जगामैव सर्वाननवलोकयन् । एतत्सप्तदशं पर्व महाप्रस्थानिकं स्मृतम् ॥३६८॥

कट मरे ॥३५४॥ मदिरा पीने के स्थान पर मदिरा के नशे से बेहोश हो कर भाग्य की प्रतिकूलता के कारण नरकुल रूपी बज्रों से उनलोगों ने आपस में एक दूसरे को मार डाला ॥ ३५५ ॥ इस प्रकार सब का क्षय हो जाने पर वे दोनों बलराम और श्रीकृष्ण सब का संहार करनेवाले काल के आने पर उसको रोक न सके। उनको भी प्राणत्याग करना पड़ा ॥३५६॥ इस पर्व में अर्जुन द्वारका पुरी गये और श्रीकृष्ण के बिना उस पुरी को देखकर बहुत ही दुःखी और पीड़ित हुए ॥३५७॥ उन्होंने अपने मामा वसुदेव के शरीर का संस्कार किया और शराब पीने के स्थान पर यादव वीरों का निजकृत विनाश देखा ॥३५८॥ श्रीकृष्ण और महात्मा बलराम के शरीरों का संस्कार करके उन्होंने अन्य प्रधान प्रधान यादवों का संस्कार किया ॥३५९॥ अर्जुन बालों और बृद्धों को ले कर द्वारका से चले। उन्होंने मार्गमें आपत्ति के समय अपने धनुष गाण्डीव का शक्तिहीन होना देखा ॥३६०॥ अन्य दिव्य अस्त्रों को भी उन्होंने कार्यक्षम नहीं पाया। उनसे भी अर्जुन लाभ नहीं उठा सके। जिससे यादव स्त्रियों का हरण हो गया। उस समय अर्जुन ने सामर्थ्य की अनित्यता देखी। उन्हें वैराग्य हुआ और व्यासदेव की सम्मति से धर्मराज के पास आकर सन्यास ग्रहण करने की इच्छा उन्होंने प्रकाशित की ॥३६१, ३६२॥ ये सब कथायें मौशल नामक सोलहवें पर्व में कही गई हैं। इसमें आठ अध्याय और तीन सौ बीस श्लोक तत्त्वदर्शी व्यास ने बतलाये हैं। इसके पश्चात् सत्रहवां महाप्रास्थानिक पर्व है ॥३६३,३६४॥ पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंने राज्य त्याग करके देवी द्रौपदी के साथ महाप्रस्थान के लिये यात्रा की। लालसमुद्र के पास जाकर उन लोगों ने अग्नि को देखा। अग्नि के कहने पर अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष महात्मा अग्नि को दे दिया। मार्ग में द्रौपदी तथा भाइयों का गिरना देख कर उन लोगों की ओर बिना ध्यान

यत्राध्यायास्त्रयः प्रोक्ताः श्लोकानां च शतत्रयम्। विंशतिश्च तथा श्लोका संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ३६९
स्वर्गपर्व ततो ज्ञेयं दिव्यं यत्तदमानुषम्। प्राप्तं दैवरथं स्वर्गान्नेष्टवान्यत्र धर्मराट् ॥३७०॥
आरोढुं सुमहाप्राज्ञ आनृशंस्याच्छुना विना। तामस्याविचलां ज्ञात्वा स्थितिं धर्मे महात्मनः॥३७१॥
श्वरूपं यत्र तत् त्यक्त्वा धर्मेणाऽसौ समन्वितः। स्वर्गं प्राप्तः स च तथा यातना विपुला भृशम् ॥३७२॥
देवदूतेन नरकं यत्र व्याजेन दर्शितम्। शुश्राव यत्र धर्मात्मा भ्रातॄणां करुणा गिरः॥३७३॥
निदेशे वर्तमानानां देशे तत्रैव वर्तताम्। अनुदर्शितश्च धर्मेण देवराज्ञा च पाण्डवः ॥३७४॥
आप्लुत्याकाशमङ्गायां देहं त्यक्त्वा स मानुषम्। स्वधर्मनिर्जितं स्थानं स्वर्गे प्राप्य स धर्मराट्॥३७५
मुमुदे पूजितः सर्वैः सेन्द्रैः सुरगणैः सह। एतदष्टादशं पर्व प्रोक्तं व्यासेन धीमता ॥३७६॥
अध्यायाःपञ्च संख्याताःपर्वण्यस्मिन्महात्मना। श्लोकानां द्वे शते चैव प्रसंख्याते तपोधनाः॥३७७
नवश्लोकास्तथैवान्ये संख्याता परमर्षिणा। अष्टादशैवमेतानि पर्वाण्येतान्यशेषतः ॥३७८॥
खिलेषु हरिवंशश्च भविष्यं च प्रकीर्तितम्। दशश्लोकसहस्राणि विंशच्छ्लोकशतानि च ॥३७९
खिलेषु हरिवंशे च संख्यातानि महर्षिणा। एतत्सर्वं समाख्यातं भारते पर्वसंग्रहः ॥३८०॥
अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया। तन्महादारुणं युद्धमहान्यष्टादशाभवत् ॥३८१॥
यो विद्याच्चतुरो वेदान्सांगोपनिषदो द्विजः। न चाख्यानमिदं विद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः॥३८२॥

दिये ही राजा युधिष्ठिर आगे चले। यह महाप्रास्थानिक नाम का सत्रहवाँ पर्व है।३६५-३६८॥ इसमें तीन अध्याय और तीन सौ बीस श्लोक तत्वदर्शी व्यास ने बतलाये हैं ॥३६९॥ इसके अनन्तर स्वर्ग पर्व है जो अमानुष और दिव्य है। स्वर्ग से आये हुए रथ पर धर्मराज युधिष्ठिर ने दया के वश अपने कुत्ते के बिना चढ़ना न चाहा। महात्मा युधिष्ठिर की धर्म में ऐसी अविचल आस्था देख कर कुत्ते का रूप छोड़ कर धर्म ने अपना रूप धारण किया। वे धर्म के साथ स्वर्ग में गए। देव दूत ने किसी बहाने से उन्हें नरक दिखाया, जहाँ उनको अधिक पीड़ा हुई। धर्मात्मा युधिष्ठिर ने अपने भाइयों का आर्त्तस्वर सुना। उनके भाई यमराज की आज्ञा से वहीं नरक में वर्तमान थे। देवराज इन्द्र ने और धर्म ने युधिष्ठिर को सांसारिक भोग का फल दिखाया ॥३७०,३७४॥ आकाश गङ्गा में कूद कर उन्होंने मनुष्य शरीर का त्याग किया और धर्म से प्राप्त स्वर्ग में अपने स्थान पर गए। देवताओं के साथ इन्द्र ने उनका अभिनन्दन किया जिससे वे प्रसन्न हुए। यह अठारहवाँ पर्व बुद्धिमान व्यास देव ने कहा है ॥३७५-३७६॥ तपोधनो, इस पर्व में पाँच अध्याय और दो सौ नौ श्लोक परमर्षि व्यासदेव ने बतलाये हैं। ये ही समस्त महाभारत में अठारह पर्व हैं॥३७७,३७८॥ खिलपर्व में हरिवंश और भविष्य की कथाएँ हैं,दस हजार और अर्थात् बीस सौ बारह हजार श्लोक हरिवंश और भविष्य के कथा भाग तक हैं। यह समस्त भारत का यहाँ पर्व संग्रह कहा गया, इसे पर्व संग्रहाध्याय कहते हैं ॥३७९,३८०॥ अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध करने की इच्छा से आई थी और वह भयङ्कर युद्ध अठारह दिनों तक हुआ ॥३८१॥ जो ब्राह्मण अङ्गों और उपनिषदों के साथ चारों वेदों को जानता है पर इस महाभारत के आख्यान को नहीं जानता है, वह विचक्षण अर्थात् अपने कर्तव्य का ज्ञाता नहीं हो सकता ॥३८२॥ बुद्धिमान व्यासदेव

अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत्। कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ॥३८३॥
श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं श्राव्यमन्यन्न रोचते। पुंस्कोकिलगिरं श्रुत्वा रूक्षा ध्वांक्षस्य वागिव॥३८४॥
इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः। पंचभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः ॥३८५॥
अस्याख्यानस्य विषये पुराणं वर्तते द्विजाः। अंतरिक्षस्य विषये प्रजा इव चतुर्विधाः ॥३८६॥
क्रियागुणानां सर्वेषामिदमाख्यानमाश्रयः। इन्द्रियाणां समस्तानां चित्रा इव मनःक्रियाः ॥३८७॥
अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते। आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम्॥३८८॥
इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते। उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः ॥३८९॥
अस्य काव्यस्य कवयो न समर्था विशेषणे। साधोरिव गृहस्थस्य शेषास्त्रय इवाश्रमाः ॥३९०॥

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां सह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना नैवाप्तभावमुपयांति न च स्थिरत्वम्॥३९१॥
द्वैपायनौष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं किंतस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥३९२॥

यदह्ना कुरुते पापं ब्राह्मणस्त्विंद्रियैश्चरन्। महाभारतमाख्याय सन्ध्यां मुच्यति पश्चिमाम् ॥३९३॥

ने इस आख्यान में अर्थशास्त्र विशाल धर्मशास्त्र तथा कामशास्त्र कहा है अर्थात् इन तीनों का वर्णन इसमें है ॥३८३॥ इस उपाख्यान के सुनने पर दूसरे उपाख्यान के सुनने की इच्छा नहीं रहती। जिस प्रकार कोकिल की बोली सुनने पर कौए की रूखी बोली अच्छी नहीं लगती ॥३८४॥ इस श्रेष्ठ इतिहास से अन्य कवियों की रचना उत्पन्न होती है जिस प्रकार पञ्चभूतों से अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन तीन प्रकार की रचनाएँ होती हैं ॥३८५॥ इस आख्यान के अन्तर्गत पुराणों की कथाएँ हैं जिस प्रकार आकाश में जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज ये चतुर्विध प्रजाएँ रहती हैं ॥३८६॥ लौकिक और वैदिक क्रियाओं के उत्तम फलों का आश्रय यह आख्यान है जिस प्रकार समस्त इन्द्रियों का आश्रय मानसिक क्रियाएँ हैं ॥३८७॥ इस आख्यान के बिना कोई भी कथा पृथ्वी में नहीं है जिस प्रकार भोजन के बिना शरीर का धारण करना असम्भव है ॥३८८॥ सब कविश्रेष्ठ इस आख्यान की सहायता लेते हैं। जिस प्रकार अपनी उन्नति चाहनेवाला भृत्य कुलीन स्वामी की सहायता पाता है ॥३८९॥ कोई कवि इस काव्य से श्रेष्ठ काव्य की रचना नहीं कर सकता, जिस प्रकार सज्जन गृहस्थ से श्रेष्ठ अन्य तीन आश्रम नहीं हैं ॥३९०॥ आप सदा जाग्रत रहने वाले हैं। आपकी बुद्धि धर्म में रहे; क्योंकि वही परलोक का प्रधान बन्धु है। धन और स्त्रियाँ चाहे निपुणता के साथ ही रक्षित क्यों न की जाँय, पर ये अपनी नहीं हो सकतीं, उनमें स्थिरता भी नहीं होती ॥३९१॥ जो द्वैपायन के मुँह से निकले इस महाभारत की कथा सुनता है जिसमें सबसे अधिक ज्ञान है, जो पुण्य का हेतु है, मृत्यु से रक्षा करनेवाला है, पापों को दूर करनेवाला और कल्याण प्रद है, उसको पुष्कर जल से स्नान करने से कौन लाभ ॥३९२॥ ब्राह्मण दिन में इन्द्रियों के द्वारा जो पाप करता है वह पाप सायंकाल महाभारत के पाठ करने से नष्ट हो जाता है ॥३९३॥ मन, वचन और कर्म के द्वारा मनुष्य रात को जो पाप करता है उसका वह पाप प्रातः

यद्रात्रौ कुरुते पापं कर्मणा मनसा गिरा । महाभारतमाख्याय पूर्वां सन्ध्यां प्रमुच्यते ॥३९४॥
ये गोशतं कनकशृङ्गमयन्ददाति विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय ।
पुण्यां च भारतकथां शृणुयाच्च नित्यं तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ॥३९५॥
आख्यानं तदिदमनुत्तमं महार्थं विज्ञेयं महदिह पर्वसंग्रहेण ।
श्रुत्वाऽऽदौ भवति नृणां सुखावगाहं विस्तीर्णं लवणजलं यथा प्लवेन ॥३९६॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संग्रहपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
॥ समाप्तं पर्वसंग्रहपर्व ॥

काल महाभारत के पाठ करने से नष्ट हो जाता है ॥३९४॥ वेदज्ञ, बहुश्रुत ब्राह्मण को सोने की सींगवाली सौ गौ जो दान देता है उसको, और जो पवित्र महाभारत की कथा सुनता है उसको बराबर फल होता है ॥३९५॥ यह आख्यान सर्वश्रेष्ठ है। इसमें परम अर्थ का विचार किया गया है, अवश्य ज्ञातव्य है। प्रारम्भ में इस पर्व संग्रह का ज्ञान हो जाने पर मनुष्य भारत उपाख्यान का अवगाहन सुख से कर सकता है जिस प्रकार विशाल लवण समुद्र का अवगाहन नौका के द्वारा सुख कर हो जाता है ॥३९६॥

द्वितीय अध्याय पर्व संग्रहपर्व।

पौष्यपर्व

सौतिरुवाच ॥ जनमेजयः पारिक्षितः सह भ्रातृभिः कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रमुपास्ते । तस्य भ्रातरस्त्रयःश्रुतसेन उग्रसेनो भीमसेन इति, तेषु तत्सत्रमुपासीनेष्वागच्छत्सारमेयः ॥१॥ जनमेजयस्य भ्रातृभिरभिहतो रोरूयमाणो मातुः समीपमुपागच्छत् ॥२॥ तं माता रोरूयमाणमुवाच ॥

किं रोदिषि केनास्यभिहत इति ॥३॥ स एवमुक्तो मातरं प्रत्युवाच, जनमेजयस्य भ्रातृभिरभिहतोऽस्मीति ॥४॥ तं माता प्रत्युवाच, व्यक्तं त्वया तत्रापराद्धं येनास्यभिहत इति ॥५॥ स तां पुनरुवाच, नापराध्यामि किंचिन्नावेक्षे हवींषि नावलिह इति ॥६॥ तच्छ्रुत्वा

सौति बोले—परीक्षित के पुत्र जनमेजय अपने भाइयों के साथ कुरुक्षेत्र में बहुत दिनों में समाप्त होनेवाला यज्ञ कर रहे थे। उनके तीन भाई थे। श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन। ये तीनों यज्ञ में बैठे हुए थे, उस समय एक कुत्ता इनके पास आया ॥१॥ जनमेजय के भाइयों ने उसे मारा और वह रोता हुआ अपनी माता के पास गया ॥२॥ रोते हुये उससे माता बोली—क्यों रोता है, किसने मारा है ॥३॥ माता के ऐसा कहने पर उसने उन्हें उत्तर दिया, जनमेजय के भाइयों ने हमें मारा है ॥४॥ माता ने उसको उत्तर दिया—निश्चय वहाँ तुमने कोई अपराध किया होगा जिससे तुम पर मार पड़ी है ॥५॥ उसने पुनः माता से कहा, मैंने कोई अपराध नहीं किया, न मैंने उनकी हवि देखी है और न उसे चाटा है ॥६॥ यह सुनकर उसकी माता सरमा पुत्र के दुःख से

तस्य माता सरमा पुत्रशोकार्ता तत्सत्रमुपागच्छद्यत्र स जनमेजयः सह भ्रातृभिर्दीर्घसत्र-मुपास्ते ॥७॥ स तया क्रुद्धया तत्रोक्तोऽयं मे पुत्रो न किंचिदपराध्यति नावेक्षते हवींषि नावलेढि किमर्थमभिहत इति ॥८॥ न किंचदुक्तवन्तस्ते, स तानुवाच यस्मादयमभिहतोऽन पकारी तस्माददृष्टं त्वां भयमागमिष्यतीति ॥९॥ जनमेजय एवमुक्तो देवशुन्या सरमया भृशं संभ्रान्तो विषण्णश्चासीत् ॥१०॥ स तस्मिन्सत्रे समाप्ते हास्तिनपुरं प्रत्येत्य पुरोहित-मनुरूपमन्विच्छमानः परं यत्नमकरोद् यो मे पापकृत्यां शमयेदिति ॥११॥ स कदाचिन्मृगयां गतः पारिक्षितो जनमेजयः कस्मिंश्चित्स्वविषय आश्रममपश्यत् ॥१२॥ तत्र कश्चिदृषिरासां-चक्रे श्रुतश्रवा नाम। तस्य तपस्यभिरतः पुत्र आस्ते सोमश्रवा नाम॥१३॥ तस्य तं पुत्रमभिगम्य जनमेजयः पारिक्षितः पौरोहित्याय वव्रे ॥१४॥ स नमस्कृत्य तमृषिमुवाच भगवन्नयं तव पुत्रो मम पुरोहितोऽस्त्विति ॥१५॥ स एवमुक्तः प्रत्युवाच जनमेजयम्, भो जनमेजय, पुत्रोऽयं मम सर्प्यां जातो महातपस्वी स्वाध्यायसंपन्नो मत्तपोवीर्यसंभृतो, मच्छुक्रं पीत-वत्यास्तस्याः कुक्षौ जातः ॥१६॥ समर्थोऽयं भवतः सर्वाः पापकृत्याः शमयितुमन्तरेण महादेव-कृत्याम् ॥१७॥ अस्य त्वेकमुपांशुव्रतं यदेनं कश्चिद्ब्राह्मणः कंचिदर्थमभियाचेत्त तस्मै-दद्यादयं यद्येतदुत्सहसे ततो नयस्वैनमिति ॥१८॥ तेनैवमुक्तो जनमेजयस्तं प्रत्युवाच

दुःखी होकर उस यज्ञक्षेत्र में गई, जहाँ जनमेजय अपने भाइयों के साथ बहुत दिनों में समाप्त होने वाला यज्ञ कर रहे थे ॥७॥ उसने क्रोध करके कहा—इस मेरे पुत्र ने कोई अपराध नहीं किया, हवि नहीं देखी, न उसे चाटा, फिर यह क्यों मारा गया ॥८॥ उनलोगों ने कोई उत्तर नहीं दिया। सरमा बोली—जिस कारण विना अपराध के तुमने मेरे पुत्र को मारा है, अतएव तुमको कोई आकस्मिक भय होगा ॥९॥ देवताओं की कुत्ती सरमा के ऐसा कहने पर जनमेजय अत्यन्त भीत और दुःखी हुए ॥१०॥ उस यज्ञ के समाप्त होने पर वे हस्तिनापुर आए और अपने शाप को दूर करने के लिये एक योग्य पुरोहित ढूँढ़ने का उद्योग करने लगे ॥११॥ किसी समय परीक्षित के पुत्र जनमेजय आखेट करने गए, उन्होंने अपने राज्य में एक आश्रम देखा ॥१२॥ वहाँ एक ऋषि रहते थे, जिनका नाम श्रुतश्रवा था, वे तपस्या करते थे, उनके एक पुत्र था, जिसका नाम सोमश्रवा था ॥१३॥ जनमेजय ने ऋषि के पुत्र को जानकर उसे पुरोहित बनाना निश्चय किया ॥१४॥ ऋषि को प्रणाम करके जनमेजय बोले—आपके ये पुत्र मेरे पुरोहित हों ॥१५॥ राजा के ऐसे कहने पर ऋषि ने उन्हें उत्तर दिया—जनमेजय, मेरा यह पुत्र सर्पिणी से उत्पन्न हुआ है, बड़ा तपस्वी और विद्वान है। मेरी तपस्या और सामर्थ्य इसमें है। सर्पिणी ने मेरा वीर्य पी लिया था, जिससे यह उसके गर्भ से उत्पन्न हुआ ॥१६॥ यह आपके समस्त दुःखदायी शापों को दूर कर सकता है। केवल महादेव के शाप को दूर करने में असमर्थ रहेगा ॥१७॥ पर इसका एक गुप्त नियम है, यदि कोई ब्राह्मण इससे कोई वस्तु माँगे तो यह उसे अवश्य देता है। यदि तुम्हारा उत्साह हो, इसके नियम को पूरा करने का तो इसे ले जाओ ॥१८॥ ऋषि के ऐसा कहने पर जनमेजय ने उत्तर दिया—भगवन्, जैसा आप कहते हैं, वैसा ही होगा ॥१९॥ उनको पुरोहित

भगवंस्तत्तथा भविष्यतीति ॥१९॥ स तं पुरोहितमुपादायोपावृत्तो भ्रातॄनुवाच, मयाऽयं वृत उपाध्यायो, यदयं ब्रूयात्तत्कार्यमविचारयद्भिर्भवद्भिरिति । तेनैवमुक्ता भ्रातरस्तस्य तथा चक्रुः, स तथा भ्रातॄन्संदिश्य तक्षशिलां प्रत्यभिप्रतस्थे, तं च देशं वशे स्थापयामास ॥२०॥ एतस्मिन्नंतरे कश्चिदृषिर्धौम्यो नामापोदस्तस्य शिष्यास्त्रयो बभूवुःउपमन्युरारुणिर्वेदश्चेति ॥२१॥ स एकं शिष्यमारुणिं पांचाल्यं प्रेषयामास, गच्छ केदारखण्डं बधानेति ॥२२॥ स उपाध्यायेन संदिष्ट आरुणिः पांचाल्यस्तत्र गत्वा तत्केदारखण्डं वद्धुं नाशकत् । स क्लिश्यमानोऽपश्यदुपायं भवत्वेवं करिष्यामीति ॥२३॥ स तत्र संविवेश केदारखंडे, शयाने च तथा तस्मिँस्तदुदकं तस्थौ ॥२४॥ ततः कदाचिदुपाध्याय आपोदो धौम्यः शिष्यानपृच्छत् क आरुणिः पांचाल्यो गत इति ॥२५॥ तौ तं प्रत्यूचतुर्भगवँस्त्वयैव प्रेषितो-गच्छ केदारखंडं बधानेति । स एवमुक्तः शिष्यौ प्रत्युवाच तस्मात्तत्र सर्वे गच्छामो यत्र स गत इति ॥२६॥ स तत्र गत्वा तस्याह्वानाय शब्दं चकार । भो आरुणे पांचाल्य क्वासि वत्सैहीति ॥२६॥ स तच्छ्रुत्वा आरुणिरुपाध्यायवाक्यं तस्मात्केदारखण्डात् सहसोत्थाय तमुपाध्यायमुपतस्थे ॥२८॥ प्रोवाच चैनमयमस्म्यत्र केदारखण्डे निःसरमाणमुदकमवारणीयं संरोद्धं संविष्टो भगवच्छब्दं श्रुत्वैव सहसा विदार्य केदारखंडं भवंतमुपस्थितः ॥२९॥ तदभिवादये भगवंतमाज्ञापयतु

बनाकर जनमेजय लौट आए। उन्होंने भाइयों से कहा—मैंने इन्हें पुरोहित बनाया है। ये जब जो कहें वह बिना विचारे तुम लोग करना। जनमेजय के कहने पर उनके भाई वैसा करने लगे। भाइयों को इस प्रकार सिखा कर राजा जनमेजय तक्षशिला गए और उन्होंने उस देश को अपने अधीन किया ॥२०॥

आरुणि की कथा

इसी समय धैम्य नाम के एक ऋषि थे, जो केवल जल पर रहते थे, उनके तीन शिष्य थे उपमन्यु, आरुणि और वेद ॥२१॥ ऋषि ने पाञ्चालदेशी आरुणि नामक शिष्य को भेजा—जाओ क्यारी बाँधो, जो टूट गई है ॥२२॥ वह पाञ्चालदेशी आरुणि वहाँ जाकर टूटी क्यारी को बाँध न सका। बहुत दुःख उठाने पर उसने एक उपाय देखा, उसने कहा, अच्छा, ऐसा करूँगा ॥२३॥ वह वहाँ क्यारी में सो गया उसके सोने से जल का बहना रुक गया ॥२४॥ अनन्तर, आपोद धैम्य ने शिष्यों से पूछा कि पाञ्चालदेशी आरुणि कहाँ गया ॥२५॥ शिष्यों ने उन्हें उत्तर दिया—भगवन्! आप ही ने भेजा है कि जाओ क्यारी बाँधो। ऐसा कहने पर उन्होंने शिष्यों से कहा—तब हम सबलोग वहीं चलें, जहाँ वह गया है ॥२६॥ वहाँ जाकर ऋषि ने उसे पुकारा पाञ्चाल देशी आरुणि, कहाँ हो बेटा, आओ ॥२७॥ गुरु के वे वचन सुनकर आरुणि क्यारी से शीघ्रता पूर्वक उठकर गुरु के पास आया ॥२८॥ वह उनसे बोला, मैं यहाँ हूँ। क्यारी से जल निकल रहा था, रुकता ही नहीं था, उसीको रोकने के लिए मैं वहां पड़ गया था, आपके शब्द सुनकर क्यारी से निकलकर (क्योंकि वह कीचड़ में गड़ गया था) आपके सामने उपस्थित हुआ

भवान्कमर्थं करवाणीति ॥३०॥ स एवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच, यस्माद्भवान्केदारखंडं विदार्योत्थितस्तस्मादुद्दालक एव नाम्ना भवान् भविष्यतीत्युपाध्यायेनानुगृहीतः ॥३१॥ यस्माच्च त्वया मद्वचनमनुष्ठितं तस्माच्छ्रेयोऽवाप्स्यसि, सर्वे च ते वेदाः प्रतिभास्यन्ति, सर्वाणि च धर्मशास्त्राणीति ॥३२॥ स एवमुक्त उपाध्यायेनेष्टं देशं जगाम। अथापरः शिष्यस्तस्यैवायोदस्य धौम्यस्योपमन्युर्नाम ॥३३॥ तं चोपाध्यायः प्रेषयामास वत्सोपमन्यो गा रक्षस्वेति ॥३४॥ स उपाध्यायवचनादरक्षद् गाः स चाहनि गा रक्षित्वा दिवसक्षये गुरुगृहमागम्योपाध्यायस्याग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥३५॥ तमुपाध्यायः पीवानमपश्यदुवाचैनं वत्सोपमन्यो केन वृत्तिं कल्पयसि पीवानसि दृढमिति ॥३६॥ स उपाध्यायं प्रत्युवाच, भो भैक्ष्येण वृत्तिं कल्पयामीति, तमुपाध्यायः प्रत्युवाच ॥३७॥ मय्यनिवेद्य भैक्ष्यं नोपयोक्तव्यमिति। स तथेत्युक्तो भैक्ष्यं चरित्वोपाध्यायाय न्यवेदयत् ॥३८॥ स तस्मादुपाध्यायः सर्वमेव भैक्ष्यमगृह्णात्। स तथेत्युक्तः पुनररक्षद् गाः, अहनि रक्षित्वा निशामुखे गुरुकुलमागम्य गुरोरग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥३९॥ तमुपाध्यायस्तथापि पीवानमेव दृष्ट्वोवाच। वत्सोपमन्यो, सर्वमशेषतस्ते भैक्ष्यं गृह्णामि केनेदानीं वृत्तिं

हूँ ॥२९॥ मैं आपको प्रणाम करता हूँ, आप आज्ञा दें कि आपकी किस आज्ञा का मैं पालन करूँ॥३०॥ उसके ऐसा कहने पर उपाध्याय ने उत्तर दिया, तुम क्यारी से निकलकर आये हो, तुम्हारा नाम उद्दालक होगा, तुम्हारा गुरु कृपापूर्वक तुम्हारा यह नाम रखता है ॥३१॥ तुमने जो मेरी आज्ञा का पालन किया है, इससे तुम्हारा कल्याण होगा। समस्त वेदों तथा समस्त धर्मशास्त्रों का ज्ञान तुम्हें आप ही आप होगा ॥३२॥ उपाध्याय के ऐसा कहने पर उसे जहां जाना था, वहां वह गया।

उपमन्यु कथा।

उन्हीं आपोद-(जलाहारी) धौम्य का दूसरा शिष्य उपमन्यु था ॥३३॥ उपाध्याय ने उसे यह कहकर भेजा कि बेटा, उपमन्यु, गौओं की रक्षा करो ॥३४॥ वह उपाध्याय की आज्ञा से गौओं की रक्षा करने लगा। दिन भर गौओं को चराकर सन्ध्या के समय गुरु के आश्रम में आकर उसने गुरु के सामने जाकर उन्हें प्रणाम किया ॥३५॥ उपाध्याय ने उसे हृष्ट पुष्ट देखा। उन्होंने पूछा बेटा उपमन्यु, क्या खाते हो जिससे मोटे और मजबूत मालूम पड़ते हो ॥३६॥ उसने कहा—महाराज, मैं भिक्षा से अपनी जीविका चलाता हूँ। उपाध्याय ने कहा ॥३७॥ बिना मुझे दिखाये भिक्षा का अन्न नहीं खाना चाहिए। गुरु की आज्ञा मानकर वह भिक्षा लाने गया और जो कुछ भिक्षा में मिला वह उसने गुरु के सामने रखा ॥३८॥ भिक्षा में जो कुछ मिला था वह सब उपाध्याय ने उससे ले लिया। गुरु की आज्ञा से वह पुनः गौ की रक्षा करने लगा। दिन भर गौ चराकर सन्ध्या के समय गुरु के आश्रम में आकर और उनके सामने जाकर उसने उन्हें प्रणाम किया ॥३९॥ उस समय भी उसको मोटा देखकर गुरु बोले—बेटा उपमन्यु, भिक्षा में जो कुछ तुम लाते हो, वह सब मैं ले लेता हूँ, इस समय तुम्हारी जीविका कैसे चलती है ॥४०॥

कल्पयसीति ॥४०॥ स एवमुक्त उपाध्यायं प्रत्युवाच। भगवते निवेद्य पूर्वमपरं चरामि तेन वृत्तिं कल्पयामीति, तमुपाध्यायः प्रत्युवाच ॥४१॥ नैषा न्याय्या गुरुवृत्तिरन्येषामपि भैक्ष्योपजीविनां वृत्त्युपरोधं करोषि, इत्येवं वर्तमानो लुब्धोऽसीति ॥४२॥ स तथेत्युक्त्वा गा अरक्षद्रक्षित्वा च पुनरुपाध्यायगृहमागम्योपाध्यायास्याग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥४३॥ तमुपाध्यायस्तथापि पीवानमेव दृष्ट्वा पुनरुवाच। वत्सोपमन्यो, अहं ते सर्वं भैक्ष्यं गृह्णामि न चान्यच्चरसि, पीवानसि भृशं केन वृत्तिं कल्पयसीति ॥४४॥ स एवमुक्तस्तमुपाध्यायं प्रत्युवाच। भो एतासां गवां पयसा वृत्तिं कल्पयामिति, तमुवाचोपाध्यायो नैतन्न्याय्यं पय उपयोक्तुं भवतो मया नाभ्यनुज्ञातमिति ॥४५॥ स तथेति प्रतिज्ञाय गा रक्षित्वा पुनरुपाध्यायगृहमेत्य गुरोरग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥४६॥ तमुपाध्यायः पीवानमेव दृष्ट्वोवाच। वत्सोपमन्यो, भैक्ष्यं नाश्नासि न चान्यच्चरसि पयो न पिबसि, पीवानसि भृशं केनेदानीं वृत्तिं कल्पयसीति ॥४७॥ स एवमुक्त उपाध्यायं प्रत्युवाच। भोः फेनं पिबामि, यमिमे वत्सा मातृणां स्तनात्पिबंत उद्गिरंति ॥४८॥ तमुपाध्यायः प्रत्युवाच॥ एते त्वदनुकंपया गुणवन्तो वत्साः प्रभूततरं फेनमुद्गिरन्ति। तदेषामपि वत्सानां वृत्त्युपरोधं करोष्येवंवर्तमानः फेनमपि भवान्न पातुमर्हतीति स तथेति प्रतिश्रुत्य पुनररक्षद् गाः ॥४९॥ तथा प्रतिषिद्धो भैक्ष्यं नाश्नाति न चान्यच्चरति, पयो न पिबति

उपाध्याय के ऐसा पूछने पर वह बोला—पहली भिक्षा आपको दे देता हूँ, पुनः दूसरी भिक्षा लाता हूँ, जिससे मेरी जीविका चलती है। उपाध्याय ने उससे कहा ॥४१॥ गुरु के साथ तुम्हारा यह व्यवहार उचित नहीं है, इस प्रकार भिक्षा से निर्वाह करनेवाले दूसरों की जीविका में तुम बाधा डालते हो, तुम्हारा ऐसा करना लोभ है ॥४२॥ गुरु की आज्ञा मानकर वह गौ चराने चला गया। गौ चराकर वह पुनः गुरु के सामने आया और उसने गुरु को प्रणाम किया ॥४३॥ उस समय भी गुरु ने उसे मोटा देखा और पुनः पूँछा—बेटा उपमन्यु, तुम्हें भिक्षा में जो कुछ मिलता है, वह सब मैं ले लेता हूँ पुनः तुम भिक्षा लाते नहीं, पर मोटे अधिक हो, किस तरह निर्वाह करते हो ॥४४॥ उपाध्याय के ऐसा पूछने पर उसने उत्तर दिया, महाराज, इन गौओं के दूध से मैं अपना निर्वाह कर लेता हूँ। उपाध्याय ने उससे कहा—यह तो उचित नहीं है, मेरी आज्ञा के विना गौओं के दूध का उपयोग करना उचित नहीं है ॥४५॥ गुरु के कहने के अनुसार करने की प्रतिज्ञा करके वह गौ चराने के बाद उपाध्याय के यहां आया और उनके सामने जाकर उसने उन्हें प्रणाम किया ॥४६॥ फिर भी गुरु ने देखा वह मोटा ही है। वे बोले—बेटा उपमन्यु, भिक्षा में मिले अन्न तुम नहीं खाते, दूसरीबार भिक्षा लाते भी नहीं, दूध भी नहीं पीते, फिर भी मोटे हो, किस तरह तुम्हारी जीविका चलती है ॥४७॥ उसने उपाध्याय से कहा—मैं फेन पीता हूँ। बच्चे जो माता के थन पीने के समय उगलते हैं ॥४८॥ उपाध्याय ने कहा—ये बच्छे बड़े गुणी हैं, तुम पर दया करके बहुत सा फेन उगल देते हैं, इस तरह तुम इन बच्छों का भी जीविकाहरण करते हो, तुमको फेन भी नहीं पीना चाहिए। वैसा करने की प्रतिज्ञा करके वह गौओं की रक्षा करने लगा ॥४९॥ गुरु के मना करने पर अब वह भिक्षा का अन्न नहीं खाता, दूसरी भिक्षा नहीं लाता, दूध नहीं पीता, फेन नहीं

फेनं नोपयुङ्क्ते स कदाचिदरण्ये क्षुधार्त्तोऽर्कपत्राण्यभक्षयत् ॥५०॥ स तैरर्कपत्रैर्भक्षितैः क्षार-तिक्तकटुरूक्षैस्तीक्ष्णविपाकैश्चक्षुष्युपहतोऽन्धो बभूव। ततः सोऽन्धोऽपि चंक्रम्यमाणः कूपे पपात ॥५१॥ अथ तस्मिन्ननागच्छति, सूर्ये चास्ताचलावलंबिनि उपाध्यायः शिष्यानवोचत् नायात्युपमन्युः। त ऊचुर्वनं गतो गा रक्षितुमिति, तानाह उपाध्यायः ॥५२॥ मयोपमन्युः सर्वतः प्रतिषिद्धः स नियतं कुपितस्ततो नागच्छति, चिरगतस्त्विति ततोऽन्वेष्य इत्येवमुक्त्वा शिष्यैः सार्धमरण्यं गत्वा तस्याह्वानाय शब्दं चकार-भो उपमन्यो क्वासि वत्सैहीति ॥५३॥ स उपाध्यायस्याह्वानवचनं श्रुत्वा प्रत्युवाचोच्चैरयमस्मिन्कूपे पतितोऽहमिति, तमुपाध्यायः प्रत्युवाच, कथं त्वमस्मिन्कूपे पतित इति ॥५४॥ स उपाध्यायं प्रत्युवाच। अर्कपत्राणि भक्षयित्वा-ऽन्धीभूतोऽस्म्यतश्चंक्रम्यमाणः कूपे पतित इति, तमुपाध्यायः प्रत्युवाच अश्विनौ स्तुहि तौ देव-भिषजौ त्वां चक्षुष्मंतं कर्ताराविति। स एवमुक्त उपाध्यायेनोपमन्युःस्तोतुमुपचक्रमे तौ देवावश्विनौ वाग्भिर्ऋग्भिः ॥५६॥

प्रपूर्वगौ पूर्वजौ चित्रभानू गिरावाऽऽशंसामि तपसा ह्यनन्तौ।
दिव्यौ सुपर्णौ विरजौ विमानावधिक्षियंतौ भुवनानि विश्वा ॥५७॥

खाता। किसी समय भूख लगने पर उसने आंक के पत्ते खा लिये ॥५०॥ आंक के पत्ते खारे तीखे कडुए और रूखे होते हैं, पचने के समय पेट में ज्वाला उत्पन्न करते हैं। उन पत्तों के खाने से उसकी आंखें जाती रहीं, वह अन्धा हो गया। फिर भी वह घूमता रहा जिससे एक कूएं में गिर पड़ा ॥५१॥ सूर्य अस्त हो गये, पर नहीं आया, तब गुरु शिष्यों से बोले--उपमन्यु अभी तक नहीं आया। शिष्यों ने कहा—गौ चराने वह वन में गया है। उपाध्याय ने उन लोगों से कहा—मैंने किसी भी उपाय से उसे भोजन करने का निषेध कर दिया है, अतः वह अवश्य नाराज हो गया है, जिससे नहीं आ रहा है, उसको ढूँढ़ना चाहिए। ऐसा कहकर तथा शिष्यों के साथ वन में जाकर उन्होंने उसे पुकारा—बेटा, उपमन्यु, कहां हो यहां आओ ॥५३॥ उपाध्याय की आवाज सुनकर उसने जोर से उत्तर दिया—मैं इस कुएँ में पड़ा हूँ। उपाध्याय ने पूछा—इस कूएँ में तुम कैसे गिरे ॥५४॥ उपाध्याय से उसने कहा—आंक के पत्ते खाकर मैं अन्धा हो गया हूँ, इससे इस कूएँ में गिर पड़ा हूँ। उपाध्याय ने कहा ॥५५॥ अश्विनीकुमारों की तुम स्तुति करो, वे देववैद्य तुम्हें आंख देंगे, गुरु के ऐसा कहने पर उपमन्यु अश्विनदेवों की ऋग् वचनों से स्तुति करने लगा ॥५६॥
हे अश्विनदेवों, वाणी के द्वारा मैं आप लोगों की स्तुति करता हूँ। समस्त देवताओं से पहले आपलोग यज्ञ में जाते हैं। आपलोग पूर्वज हैं, प्रथम उत्पन्न हुए हैं, आप दोनों अग्नि के समान हैं, आप शक्ति के द्वारा अनन्त हैं अर्थात् अनेक रूप धारण कर सकते हैं, आपलोग सूर्य से उत्पन्न हुए हैं, आप लोगों का गमन सुन्दर है, आप में रजो गुण नहीं है, समस्त भुवनों में आपलोग अपने विमानों को चलाते हैं ॥५८॥ आप दोनों सुवर्ण अलंकार से अलंकृत हैं, राग दूर

हिरण्मयौ शकुनी सांपरायौ नासत्यदस्रौ सुनसौ वैजयन्तौ ।
शुक्लं वयंतौ तरसा सुवेमावभिव्ययंतावसितं विवस्वतः ॥५८॥
ग्रस्तां सुपर्णस्य बलेन वर्तिकाममुंचतामश्विनौ सौभगाय ।
तावत्सुवृत्तावनमंतमायावसत्तमा गा अरुणा उदावहद् ॥५९॥
षष्टिश्च गावस्त्रिशताश्च धेनव एकं वत्सं सुवते तं दुहन्ति ।
नानागोष्ठा विहिता एकदोहनास्तावश्विनौ दुहतो घर्ममुक्थ्यम् ॥६०॥
एकां नाभिं सप्तशताअराः श्रिताः प्रधिष्वन्या विंशतिरर्पिता अराः ।
अनेमिचक्रं परिवर्ततेऽजरं मायाऽश्विनौ समनक्ति चर्पणी ॥६१॥
एकं चक्रं वर्तते द्वादशारं षण्णाभिमेकाक्षममृतस्य धारणम् ।
यस्मिन्देवा अधिविश्वे विपक्तास्तावश्विनौ मुंचतं मा विषीदतम् ॥६२॥
अश्विनाविन्दुममृतं वृत्तभूयौ तिरोधत्तामश्विनौ दासपत्नी ।
हित्वा गिरिमश्विनौ गामुदाचरंतौ तद्वृष्टिमह्ना प्रस्थितौ बलस्य ॥६३॥

करके शक्ति देनेवाले हैं, आपत्ति के समय में आपलोग दर्शन देते हैं और रक्षा करते हैं, आपलोगों की नाक सुन्दर है, आपलोग विजय करते हैं, सूर्य के बल से आपलोग काले कुष्ठरोग को दूर करते हैं और शरीर का वर्ण सुन्दर कर देते हैं, जिस प्रकार कपड़ा बुननेवाला मैले सूत निकाल कर अलग कर देता है और सफेद सूत के कपड़े बुनता है ॥५८॥ गरुडतुल्य पराक्रमी काल ने बटेर नामक पक्षी को ग्रस लिया है, आपलोगों ने जीवन सुख भोगने के लिए उसे छुड़ा दिया, मैंने आप दोनों को प्रणाम किया है, सोम यज्ञ करनेवाले यजमानने असमर्थ गौओं की रक्षा के लिए आपलोगों की स्तुति की है। जिस प्रकार अरुण से दिन का प्रारम्भ होता है, उसी प्रकार सोम यज्ञ का प्रारम्भ अश्विनों की स्तुति से होता है ॥५९॥ तीन सौ साठ दूधदेनेवाली गौं हैं। जो एक बछड़ा उत्पन्न करती हैं। अर्थात् तीन सौ साठ दिनों का एक वर्ष होता है। वे गौएँ अनेक स्थानों में रहती हैं अर्थात् तीन सौ साठ दिन भिन्न भिन्न समय में होते हैं, पर उन सबको दुहनेवाला एक ही है। वे अश्विनदेव उनसे उक्थ घर्म-प्रशंसनीय ज्ञान दुहते हैं ॥६०॥ सूर्य के रथ चलानेवाले के रूप में अश्विनों की स्तुति की जाती है। अश्विन देवो, मैं दुःखी हो रहा हूँ, आप लोग मेरा उद्धार करें। आप दोनों मनुष्य के समान हैं। जिस रथ को आपलोग चलाते हैं उसके एक पहिए की धुरि में सात सौ अरा (वेडी लकड़ियां) लगे हुए हैं, दूसरे पहिए में बीस और अधिक अरा लगे हुए हैं, ये अरा प्रधि (पहिए के छोर की लकड़ी) में लगे हुए हैं। दूसरे पहिए में बीस अरा और छ धुरी हैं। पहले पहिए की धुरी दृढ है, वह कभी नहीं घिसती, पहले पहिए में एक चक्र है अर्थात् वह अपने स्थान पर ही घूमता है। दूसरा चारों ओर घूमता है। इसको अक्ष (दोनों पहिओं को जोड़नेवाली लकड़ी) बहुत दृढ है, यह स्वर्ग की रक्षा करनेवाला है। इस पहिए में सभी देवता लगे हुए हैं। अश्विनों, आपदोनों उस रथ को चलाते हैं ॥६१॥६२॥ हे अश्विनो, नाना कर्म करनेवाले आपलोगों ने जल में सोम नामक अमृत को बनाया था। अश्विनो,

युवां दिशो जनयथो दशाग्रे समानं मूर्ध्नि रथयानं वियन्ति ।
तासां यातमृषयोऽनुप्रयान्ति देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति ॥६४॥
युवां वर्णान्विकुरुथो विश्वरूपांस्तेऽधिक्षियन्ते भुवनानि विश्वा ।
ते भानवोऽप्यनुसृताश्चरंति देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति ॥६५॥
तौ नासत्यावश्विनौवां महेऽहं स्रजं च यां बिभृथः पुष्करस्य ।
तौ नासत्यावमृताहृता वृधा वृते देवास्तत्प्रपदेन सूते ॥६६॥
मुखेन गर्भं लभतां युवानौ गतासुरेतत्प्रपदेन सूते ।
सद्यो जातो मातरमत्ति गर्भस्तावश्विनौ मुंचथो जीवसे गाः ॥६७॥
स्तोतुं न शक्नोमि गुणैर्भवन्तौ चक्षुर्विहीनः पथि संप्रमोहः ।
दुर्गे ह्यस्मिन्पतितोऽस्मि कूपे युवां शरण्यौ शरणं प्रपद्ये ॥६८॥
इत्येवं तेनाभिष्टुतावश्विनावाजग्मतुराहतुश्चैनं प्रीतौ स्व एष तेऽपूपोऽशानैनमिति ॥६९॥

जब आपलोगों ने मेरूपर्वत को छोड़ा और आपलोग पृथिवी पर आये, तब प्राणियों को बलवान् बनानेवाली वृष्टि के लिए शीघ्र ही आप लोगोंने प्रस्थान किया। अर्थात् मेरुसे उतर कर पृथिवी में आकर आपलोगों ने शीघ्र ही वृष्टि का प्रबन्ध किया, जिससे अन्न आदि हो और उनके द्वारा प्राणि बलवान् बनें ॥६३॥ अश्विनौ, आप दोनों सोमयज्ञ में पहले जाते हैं और दस दिशाओं अर्थात् दस दिक्पालों को उत्पन्न करते हैं। पुनः जो दिक्पाल यज्ञ में प्रधान स्थान ग्रहण करते हैं और उन दिक्पालों का अनुगमन ऋषिगण करते हैं। अतएव देवता और मनुष्य आप दोनों की ऐश्वर्ययुक्त स्तुति करते हैं ॥६४॥ अश्विनौ, आप दोनों सूर्य की किरणों को जो अनेक वर्ण तथा सृष्टिका कारण होने से अनेक रूप की हैं, बनाते हैं और वे किरणें समस्त संसार में फैल जाती हैं, अनुगमन करने पर भी वे घेर लेती हैं, अतएव देवता और मनुष्य आप दोनों की स्तुति करते हैं ॥६५॥ हे नासत्यो (अश्विनौ का नाम) मैं आप दोनों की पूजा करता हूँ। आपदोनों कमलों की मलाएँ धारण करते हैं। आप दोनों अमर हैं, आपको मृत्यु की बाधा नहीं होती। आप दोनों के बिना सोम यज्ञ में इन्द्र आदि देवता हवि नहीं पासकते हैं। सोमयज्ञ में अश्विनौ की प्रथम पूजा होती है, अतः इनकी पूजा के बिना दूसरे देवताओं की पूजा कैसे हो सकती है ॥६६॥ अश्विनौ मेरे जीने के लिए आपलोग मेरी ओर देखें, आपलोगों का गर्भ मुख से धारण हुआ था (घोड़े मुँह से गर्भ धारण करते हैं यह प्रसिद्धि है) आपलोग युवा हैं। मनुष्य (जिनका मृत्यु होती है) नौ महीने गर्भ में रहकर उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होते ही वे माता का दूध पीते हैं। पर अश्विन तो देवता हैं, अमर हैं। इनके लिए ये बातें नहीं हैं ॥६७॥ अश्विनौ, मैं आपलोगों की स्तुति नहीं कर सकता हूँ, आप के गुणों का वर्णन नहीं कर सकता हूँ, मेरी आँखें नहीं हैं, रास्ते में मैं भूल जाता हूँ। इस भयानक कुएँ में मैं पड़ा हूँ। आप शरणागतों के रक्षक हैं, इस लिए आपलोगों की शरण आया हूँ ॥६८॥

सौति बोले—इस प्रकार अन्यऋचाओं से भी उसने अश्विन देवों की स्तुति की।

स एव मुक्तः प्रत्युवाच, नानृतमूचतुर्भगवंतौ, नत्वहमेतमपूपमुपयोक्तुमुत्सहे गुरवेऽनिवेद्येति ॥७०॥ तावश्विनावूचतुः। आवाभ्यां पुरस्तादुपाध्यायेनैवमेवाभिष्टुताभ्यामपूपो दत्त उपयुक्तः स चानिवेद्य गुरवे, त्वमपि तथैव कुरुष्व, यथाकृतमुपाध्यायेनेति ॥७१॥ स एवमुक्तः प्रत्युवाच एतत्प्रत्यनुनये भवंतावश्विनौ नोत्सहेऽहमनिवेद्य गुरवेऽपूपमुपयोक्तुमिति ॥७२॥ तमश्विनावाहतुः, प्रीतौ स्वस्तवानया गुरुभक्त्या। उपाध्यायस्य ते कार्ष्णायसा दंता, भवतोऽपि हिरण्मया भविष्यंति चक्षुष्मांश्च भविष्यसि श्रेयश्चावाप्स्यसीति ॥७३॥ स एव मुक्तोऽश्विभ्यां लब्धचक्षुरुपाध्यायसकाशमागम्याभ्यवादयत् ॥७४॥ आचचक्षे च, स चास्य प्रीतिमान् बभूव ॥७५॥ आह चैनं यथाऽश्विनावाहतुस्तथात्वं श्रेयोवाप्स्यसि ॥७६॥ सर्वे च ते वेदाः प्रतिभास्यंति, सर्वाणि च धर्मशास्त्राणीति। एषा तस्यापि परीक्षोपमन्योः ॥७७॥ अथापरः शिष्यस्तस्यैवापोदस्य धौम्यस्य वेदो नाम, तमुपाध्यायः समादिदेश वत्स वेद इहास्यतां तावन्मम गृहे कंचित्कालं शुश्रूषुणा च भवितव्यं श्रेयस्ते भविष्यतीति ॥७८॥ स तथेत्युक्त्वा गुरुकुले दीर्घकालं

उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर वे वहाँ आये और बोले—हम लोग प्रसन्न हैं, यह पूआ है तुम खाओ ॥६७॥ अश्विन देवों के ऐसा कहने पर उसने कहा, भगवान्, आप लोग झूठ नहीं बोलते, अर्थात्—आप लोगों की वाणी अनर्थक नहीं होती, पर मैं गुरु के सामने बिना रखे वह पूआ खाना नहीं चाहता हूँ।

पुनः अश्विनों ने उससे कहा—पहले आप के उपाध्याय ने भी हमलोगों की स्तुति इसी प्रकार की थी और उनको भी इसी प्रकार हमलोगों ने पूआ दिया था। उन्होंने गुरु को बिना दिखाये खा लिया था। तुमभी वैसाही करो, जैसा तुम्हारे गुरु ने किया था ॥७१॥

अश्विनों के ऐसा कहने पर वह पुनः बोला—भगवन् आपलोगों से मैं पुनः यह विनती करता हूँ कि बिना गुरु को दिखाये मैं पूआ खाना नहीं चाहता हूँ ॥७२॥

अश्विन देवता उससे बोले—तुम्हारी इस गुरु भक्ति से हमलोग प्रसन्न हैं। तुम्हारे गुरु के दाँत लोहे के हैं, अर्थात्—उन्हें सुख दुःख रूप कर्म फल भोगना पड़ता है, तुम्हारे दाँत सुवर्ण के होंगे अर्थात् तुम संकल्प सिद्ध होगे, जो चाहोगे वह होगा। तुम चक्षुष्मान् होगे और तुम कल्याण पाओगे ॥७३॥

अश्विन देवताओं के ऐसा कहने पर उसकी आंखों से दीखने लगा, गुरु के पास आकर उसने उन्हें प्रणाम किया ॥७४॥ उसने सब बातें कहीं, जिससे गुरु प्रसन्न हुए ॥७५॥ गुरु ने कहा—अश्विन देवताओं ने जैसा कहा है तुम्हारा कल्याण होगा ॥७६॥ समस्तवेदों तथा धर्म शास्त्रों का अर्थ तुम्हें आपही आप ज्ञात हो जायगा। इस प्रकार गुरु ने उपमन्यु की परीक्षा ली ॥७७॥

वेद की कथा

उसी उपाध्याय आपोदधौम्य का तीसरा शिष्य वेद था। उपाध्याय ने कहा—बेटा यहाँ मेरे घर में कुछ दिनों तक रहकर सेवा करो, तुम्हारा कल्याण होगा ॥७८॥ उसने गुरु की



उपमन्युको अश्विनीकुमार वर दे रहे हैं

गुरुशुश्रूषणपरोऽवसत् । गौरिव नित्यं गुरुणा धूर्षु नियोज्यमानः शीतोष्णक्षुत्तृष्णादुःखसहः सर्वत्राप्रतिकूलस्तस्य महता कालेन गुरुः परितोषं जगाम ॥७९॥ तत्परितोषाच्च श्रेयः सर्वज्ञतां चावाप । एषा तस्यापि परीक्षा वैदस्य ॥८०॥

स उपाध्यायेनानुज्ञातः समावृत्तस्तस्माद् गुरुकुलवासाद् गृहाश्रमं प्रत्यपद्यत, तस्यापि स्वगृहे वसतस्त्रयः शिष्या बभूवुः, स शिष्यान्न किंचिदुवाच कर्म वा क्रियतां गुरुशुश्रूषा चेति । दुःखाभिज्ञो हि गुरुकुलवासस्य शिष्यान्परिक्लेशेन योजयितुं नेयेष ॥८१॥ अथ कस्मिंश्चित् काले वैदं ब्राह्मणं जनमेजयः पौष्यश्च क्षत्रियावुपेत्योपाध्यायं वरयाञ्चक्रतुः ॥८२॥ स कदाचिद्याज्यकार्येणाभिप्रस्थित उत्तंकनामानं शिष्यं नियोजयामास ॥८३॥ भो यत्किंचिदस्मद्गृहे परिहीयते तदिच्छाम्यहमपरिहीयमानं भवता क्रियमाणमिति, स एवं प्रतिसंदिश्योत्तंकं वैदः प्रवासं जगाम ॥८४॥ अथोत्तंकः शुश्रूषुर्गुरुनियोगमनुतिष्ठमानो गुरुकुले वसतिस्म । स तत्र वसमान उपाध्यायस्त्रीभिः सहिताभिराहूयोक्तः ॥८५॥ उपाध्यायानी ते ऋतुमती, उपाध्यायश्च प्रोषितोऽस्या यथाऽयमृतुर्वन्ध्यो न भवति तथा क्रियतामेषा विषीदतीति ॥८६॥ एवमुक्तस्ताः स्त्रियः प्रत्युवाच । न मया स्त्रीणां वचनादिदमकार्यं करणीयम् न ह्यमुपाध्यायेन संदिष्टो आकार्यमपि त्वया कार्यमिति ॥८७॥ तस्य पुनरुपाध्यायः

आज्ञा स्वीकार की और बहुत दिनों तक गुरु के घर में रहकर वह सेवा करता रहा। प्रतिदिन बैल के समान उसको गुरु काम में जोत देते, सर्दी गर्मी भूख प्यास के दुःखों को सह कर भी उसने गुरु की आज्ञा में नाहीं नहीं की । इस प्रकार बहुत दिन बीतने पर गुरु उसपर प्रसन्न हुए ॥७९॥

गुरु की प्रसन्नता से उसका कल्याण हुआ, वह सर्वज्ञ हो गया । इस प्रकार गुरु ने वैद की भी परीक्षा ली ॥८०॥

गुरु की आज्ञा से उसने ब्रह्मचर्य समाप्त किया और गुरुकुल से वह गृस्थाश्रम में आया अर्थात् उसने व्याह किया । उसके यहाँ भी तीन शिष्य रहने लगे, पर उसने किसी से कुछ भी नहीं कहा—काम करो या गुरु की सेवा करो; क्योंकि वह गुरुकुल के कष्टों को जानता था, अतएव शिष्यों को दुःख देने की उसकी इच्छा नहीं हुई ॥८१॥

किसी समय ब्राह्मण वैदके यहाँ जनमेजय और पौष्य नामक दो क्षत्रिय गये और उनलोगों ने उन्हें अपना उपाध्याय बनाया ॥८२॥ एक बार वे कहीं यज्ञ कराने के लिए जाने लगे, उससमय उन्होंने उत्तङ्क नामक अपने शिष्य को आज्ञा दी ॥८३॥ "सुनो, मेरे घर में जिस किसी चीज की कमी हो, मैं चाहता हूँ कि तुम उसे पूरा करो" ऐसी आज्ञा देकर वैद परदेश चले गये ॥८४॥ अनन्तर उत्तङ्क सेवा करता हुआ गुरु की आज्ञा का पालन करता हुआ गुरुकुल में रहने लगा । वहाँ गुरुकुल में रहने के समय एक बार सब गुरुस्त्रियोंने मिल कर उसे बुलाया और कहा ॥८५॥ तुम्हारे उपाध्याय की स्त्री ऋतुमती हुई हैं और उपाध्याय बाहर गये हुए हैं । तुम ऐसा उपाय करो जिससे इसका ऋतुकाल निष्फल न हो, यह दुःखिनी हो रही है ॥८६॥ स्त्रियों के ऐसा कहने

कालान्तरेण गृहमाजगाम तस्मात्प्रवासात्। सतु तद्वृत्तं तस्याशेषमुपलभ्य प्रीतिमानभूत् ॥८८॥ उवाच चैनं वत्सोत्तंक किं ते प्रियं करवाणीति। धर्मतोहि शुश्रूषितोऽस्मि भवता, तेन प्रीतिः परस्परेण नौ संवृद्धा, तदनुजाने भवंतं सर्वानेव कामानवाप्स्यसि गम्यतामिति ॥८९॥ स एवमुक्तः प्रत्युवाच किंते प्रियंकरवाणीति एवंह्याहुः ॥९०॥ यश्चाधर्मेण वै ब्रूयाद्यश्चाधर्मेण पृच्छति। तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं चाधिगच्छति ॥९१॥ सोऽहमनुज्ञातो भवता इच्छामीष्टं गुर्वर्थमुपहर्तुमिति। तेनैवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच वत्सोत्तंक उष्यतां तावदिति ॥९२॥ स कदाचिदुपाध्यायमाहोत्तंक आज्ञापयतु भवान् किं ते प्रियमुपाहरामि गुर्वर्थमिति ॥९३॥ तमुपाध्यायः प्रत्युवाच वत्सोत्तंक बहुशो मां चोदयसि गुर्वर्थमुपहरामीति तद्गच्छैनां प्रविश्योपाध्यायानीं पृच्छ किमुपाहरामीति ॥९४॥ एषा यद्ब्रवीति तदुपाहरस्वेति। स एवमुक्त उपाध्यायेनोपाध्यायानीमपृच्छद्भगवत्युपाध्यायेनास्म्यनुज्ञातो गृहं गन्तुमिच्छामीष्टं ते गुर्वर्थमुपहृत्यानृणो गन्तुमिति ॥९५॥ तदाज्ञापयतु भवती किमुपाहरामि गुर्वर्थमिति। सैवमुक्तोपाध्यायानी उत्तंकं प्रत्युवाच। गच्छ पौष्यं प्रति राजानं कुण्डले भिक्षितुं तस्य क्षत्रियया पिनद्धे

पर उसने उन्हें उत्तर दिया। मैं स्त्रियों के कहने से ऐसा कुकर्म नहीं कर सकता। गुरु ने मुझे कुकर्म करने की आज्ञा नहीं दी है ॥८७॥

कुछ दिनों के बाद उसके उपाध्याय परदेश से लौट आये। उत्तङ्क की सब बातें सुनकर वे प्रसन्न हुए ॥८८॥ वे उससे बोले बेटा उत्तङ्क, मैं तुम्हारा क्या उपकार करूँ। धर्मपूर्वक तुमने हमारी सेवा की, इससे हमलोगों का परस्पर प्रेम बढ़गया है। मैं कहता हूँ कि तुम्हारे सब मनोरथ पूरे होंगे ॥८९॥ गुरु के ऐसा कहने पर उसने कहा—महाराज, आपको और कौनसा प्रिय काम मैं करूँ, क्योंकि वृद्धोंने ऐसा कहा है—जो छल से पूछता है और छल से उत्तर देता है उनमें का एक नष्ट हो जाता है और उनमें द्वेष हो जाता है ॥९०, ९१॥

मैं आपकी आज्ञा से चाहता हूँ कि आपको कोई प्रिय वस्तु आपको उपहार में दूँ। उसके ऐसा कहने पर उपाध्याय ने उत्तर दिया—बेटा उत्तङ्क, थोड़े दिनों तक और रहो ॥९२॥

एक समय उत्तङ्क ने गुरु से कहा—महाराज आपके लिए कौनसी प्रिय वस्तु भेंट में लाऊँ ॥९३॥

उपाध्याय ने कहा—बेटा उत्तङ्क, तुमने कई बार कोई प्रिय वस्तु मुझे भेंट देने की बात कही है। तुम भीतर जाकर उपाध्यायानी से पूछो, "कौन सी वस्तु भेंट में लाऊँ" वे जो कहें वह ले आओ ॥९४॥

उपाध्याय के ऐसा कहने पर उसने उपाध्यायानी से पूछा—गुरु ने मुझे घर जाने की आज्ञा दी है। मैं कोई प्रिय उपहार गुरु को देकर ऋणमुक्त हो कर जाना चाहता हूँ। आप आज्ञा दें, गुरु के लिए मैं कौनसा उपहार लाऊँ ॥९५॥

उत्तङ्क के ऐसा कहने पर उपाध्यायानी ने कहा—भिक्षा में कुण्डल लाने के लिए राजा पौष्य के पास जाओ। वे कुण्डल उसकी क्षत्रिया स्त्री ने पहने हैं ॥९६॥ आज के चौथे दिन एक

॥९६॥ आनयस्व चतुर्थेऽहनि पुण्यकं भविता ताभ्यामाबद्धाभ्यां शोभमाना ब्राह्मणान्परिवेष्टुमिच्छामि। तत्संपादयस्व एवं हि कुर्वतः श्रेयो भवितान्यथा कुतः श्रेय इति ॥९७॥ स एवमुक्तस्तया प्रातिष्ठतोत्तंकः, स पथि गच्छन्नपश्यदृषभमतिप्रमाणं तमधिरूढं च पुरुषमतिप्रमाणमेव, स पुरुष उत्तंकमभ्यभाषत ॥९८॥ भो उत्तंकैतत्पुरीषमस्य ऋषभस्य भक्षयस्वेति स एवमुक्तो नैच्छत् ॥९९॥ तमाह पुरुषो भूयो भक्षयस्वोत्तंक माविचारयोपाध्यायेनापि ते भक्षितं पूर्वमिति ॥१००॥ स एवमुक्तो बाढमित्युक्त्वा तदा तद्वृषभस्य मूत्रं पुरीषं च भक्षयित्वोत्तंकः संभ्रमादुत्थित एवाप उपस्पृश्य प्रतस्थे ॥१०१॥ यत्र स क्षत्रियः पौष्यः, तमुपेत्यासीनमपश्यदुत्तंकः। स उत्तंकस्तमुपेत्याशीर्भिरभिनंद्योवाच ॥१०२॥ अर्थी भवन्तमुपागतोऽस्मीति स एनमभिवाद्योवाच। भगवन्पौष्यः खल्वहं किं करवाणीति ॥१०३॥ तमुवाच गुर्वर्थं कुंडलयोरर्थेनाभ्यागतोस्मीति। ये वै ते क्षत्रियया पिनद्धे कुंडले ते भवान्दातुमर्हतीति ॥१०४॥

तं प्रत्युवाच पौष्यः, प्रविश्यान्तःपुरं क्षत्रिया याच्यतामिति। स तेनैवमुक्तः प्रविश्यांतःपुरं क्षत्रियां नापश्यत् ॥१०५॥ स पौष्यं पुनरुवाच, न युक्तं भवताऽहमनृतेनोपचरितुं, न हि तेऽन्तःपुरे क्षत्रिया सन्निहिता नैनां पश्यामि ॥१०६॥ स एवमुक्तः पौष्यः क्षणमात्रं विमृश्योत्तंकं प्रत्युवाच। नियतं भवानुच्छिष्टः, स्मर तावन्नहि सा क्षत्रिया उच्छिष्टेनाशुचिना शक्या

पुण्योत्सव होने वाला है। मैं कुण्डलों से शोभित हो कर ब्राह्मणों को भोजन परसना चाहती हूँ। मेरा यह काम करने से तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा, नहीं तो कैसे मनोरथ पूरा होगा ॥९७॥

उपाध्यायानी की आज्ञा से उत्तङ्क ने प्रस्थान किया। चलने के थोड़ी ही दूर पर उसने एक बड़ा बैल देखा, और उसपर बैठे हुए एक बहुत बड़े पुरुष को उसने देखा। वह पुरुष उत्तङ्क से बोला ॥९८॥ उत्तङ्क, इस बैल का गोबर तुम खाओ। पर उसके कहने पर भी उत्तङ्क ने खाना न चाहा ॥९९॥ उस पुरुष ने पुनः कहा—उत्तङ्क खाओ विचार न करो, तुम्हारे उपाध्याय ने भी पहले खाया है ॥१००॥

उस पुरुष के ऐसा करने पर—"अच्छा, कह कर उत्तङ्क ने उस बैल का गोबर और मूत्र खा लिया और शीघ्रता के कारण हाथ मुँह धोते ही वे वहां से चल खड़े हुए ॥१०१॥ जहां राजा पौष्य थे, वहां पहुंच कर उत्तङ्क ने उनको बैठा देखा, उनको आशीर्वाद देकर वह बोला ॥१०२॥ मैं अर्थी हो कर आपके पास आया हूँ। राजा प्रणाम करके उत्तङ्क से बोला, भगवन् मैं पौष्य हूँ मैं क्या करूँ ॥१०३॥ वह बोला—गुरु के लिए कुण्डल पाने की इच्छा से मैं आपका अतिथि हुआ हूँ। जिन कुण्डलों को आपकी क्षत्रिया महारानी पहनती हैं, वे कुण्डल आप मुझे दें ॥१०४॥ पौष्य ने कहा—भीतर जाकर आप महारानी से मांग लें। राजा के कहने से वह भीतर गया पर वहां रानी को नहीं देख सका ॥१०५॥ उत्तङ्क, पौष्य से पुनः बोला, आपको झूठ बोलकर मुझे ठगना नहीं चाहिए था। आपके रनिवास में महारानी नहीं हैं, वहां मैंने उनको नहीं देखा ॥१०६॥ उत्तङ्क के ऐसा कहने पर थोड़ी देर तक विचार कर पौष्य उनसे बोले, निश्चय आप जूठे हैं, याद कीजिए, उस महारानी को जूठा तथा

द्रष्टुं पतिव्रतात्वात्सैषा नाशुचेर्दर्शनमुपैतीति ॥१०७॥ अथैवमुक्त उत्तंकः स्मृत्वोवाचास्ति खलु मयोत्थितेनोपस्पृष्टं गच्छता चेति। तं पौष्यः प्रत्युवाच, एष ते व्यतिक्रमो नोत्थितेनोपस्पृष्टं भवतीति शीघ्रं गच्छता चेति ॥१०८॥ अथोत्तंकस्तं तथेत्युक्त्वा प्राङ्मुख उपविश्य सुप्रक्षालितपाणिपादवदनो निःशब्दाभिरफेनाभिरनुष्णाभिर्हृद्गताभिरद्भिस्त्रिः पीत्वाद्भिः परिमृज्य खान्यद्भिरुपस्पृश्य चांतःपुरं प्रविवेश ॥१०९॥ ततस्तां क्षत्रियामपश्यत्सा च दृष्ट्वैवोत्तंकं प्रत्युत्थायाभिवाद्योवाच, स्वागतं ते भगवन्नाज्ञापय किं करवाणीति ॥११०॥ स तामुवाचैते कुण्डले गुर्वर्थं मे भिक्षिते दातुमर्हसीति। सा प्रीता तेन तस्य सद्भावेन पात्रमयमनतिक्रमणीयश्चेति मत्वा ते कुण्डलेऽवमुच्यास्मै प्रायच्छदाह चैनमेते कुण्डले तक्षको नागराजः सुभृशं प्रार्थयत्यप्रमत्तो नेतुमर्हसीति ॥१११॥ स एवमुक्तस्तां क्षत्रियां प्रत्युवाच भवती सुनिर्वृता भवतु। न मां शक्तस्तक्षको नागराजो धर्षयितुमिति ॥११२॥ स एवमुक्त्वा तां क्षत्रियामामंत्र्य पौष्यसकाशमागच्छत्। आह चैनं भोः पौष्य प्रीतोऽस्मीति। तमुत्तंकं पौष्यः प्रत्युवाच ॥११३॥ भगवंश्चिरेण पात्रमासाद्यते भवांश्च गुणवानतिथिस्तदिच्छे श्राद्धं कर्तुं क्रियतां क्षण इति ॥११४॥ तमुत्तंकः प्रत्युवाच कृतक्षण एवास्मि शीघ्रमिच्छामि। यथोपपन्नमन्नमुपस्कृतं भवतेति स तथेत्युक्त्वा यथोपपन्नेनान्नेनैनं भोजयामास ॥११५॥ अथोत्तंकः

अशुद्ध मनुष्य नहीं देख सकता, क्योंकि वह पतिव्रता है, वह अशुद्ध मनुष्यों को दर्शन नहीं देती ॥१०७॥ उत्तङ्क ने याद कर के कहा—सच है मैंने भोजन किया है, और भोजन से उठकर मुँह धोया है। पौष्य ने कहा—यह आपने ठीक नहीं किया, भोजन से उठकर अथवा चलते हुए जो आचमन किया जाता है वह आचमन नहीं होता ॥१०८॥ राजा की बात मान कर पूर्व की ओर मुँह करके बैठकर फेन रहित तथा शब्दहीन ठंढे जल से उन्होंने हाथ पैर और मुँह धोये और आचमन किया, आचमन का जल हृदय तक पहुंचे, इतना आचमन किया, दो बार मार्जन किया, इन्द्रियों का जल से स्पर्श किया, पुनः वे राजा के रनिवास में गये ॥१०९॥ वहां उन्होंने महारानी को देखा, उत्तङ्क को देख कर महारानी उठी और प्रणाम करके बोली स्वागत। भगवन्, क्या आज्ञा है, मैं क्या करूँ ॥११०॥ उत्तङ्क बोले—इन कुण्डलों की गुरु के लिए मैं भिक्षा मांगता हूँ, आप दें। उत्तङ्क के सद्व्यवहार से रानी प्रसन्न हो गयीं, उन्होंने समझा कि यह सुपात्र है, इसको नाहीं नहीं करना चाहिए। ऐसा विचार कर और कुण्डल निकाल कर उन्होंने उत्तङ्क को दिया और कहा—इन कुण्डलों को नागराज तक्षक बहुत बार मांग चुका है, अतएव सावधानी से लेजाना ॥१११॥ महारानी के ऐसा कहने पर उत्तङ्क ने कहा—आप निश्चिन्त रहें। नागराज तक्षक मुझसे जीत नहीं सकता ॥११२॥ ऐसा कहकर और महारानी से आज्ञा लेकर उत्तङ्क पौष्य के पास आये और बोले—महाराज पौष्य, मैं प्रसन्न हुआ। पौष्य ने कहा भगवन्, पात्र विलम्ब से मिला करते हैं, आप गुणवान अतिथि हैं, अतः मैं श्राद्ध करना चाहता हूं, आप समय नियत कर दें ॥११४॥ उत्तङ्क ने उन्हें उत्तर दिया—समय ही है, मैं शीघ्र ही चाहता हूं, जो अन्न आपने तैयार किया हो और वर्तमान हो, वही दीजिए। "ठीक है" कहकर जो अन्न था

केशं शीतमन्नं दृष्ट्वा अशुच्येतदिति मत्वा तं पौष्यमुवाच। यस्मान्मेऽशुच्यन्नं ददासि, तस्मादन्धो भविष्यसीति ॥११६॥ तं पौष्यः प्रत्युवाच। यस्मात्त्वमप्यदुष्टमन्नं दूषयसि तस्मात्त्वमनपत्यो भविष्यसीति तमुत्तंकः प्रत्युवाच ॥११७॥ न युक्तं भवताऽन्नमशुचि दत्त्वा प्रतिशापं दातुं, तस्मादन्नमेव प्रत्यक्षीकुरु, ततः पौष्यस्तदन्नमशुचि दृष्ट्वा तस्याशुचिभावम-परोक्ष्यामास ॥११८॥ अथ तदन्नं मुक्तकेश्याऽस्त्रियोपहृतमनुष्णं सकेशं चाशुच्येतदिति मत्वा तमृषिमुत्तंकं प्रसादयामास ॥११९॥ भगवन्नेतदज्ञानादन्नं सकेशमुपाहृतं शीतं तत्क्षामये भवन्तं न भवेयमंध इति ॥ तमुत्तंकः प्रत्युवाच ॥१२०॥ न मृषा ब्रवीमि भूत्वा त्वमन्धो न चिरादनंधो भविष्यसीति। ममापि शापो भवता दत्तो न भवेदिति ॥१२१॥ तं पौष्यः प्रत्युवाच, न चाहं शक्तः शापं प्रत्यादातुं नहि मे मन्युरद्याप्युपशमं गच्छति, किं चैतद्भवता न ज्ञायते तथा ॥१२२॥ नवनीतं हृदयं ब्राह्मणस्य वाचि क्षुरो निशितस्तीक्ष्णधारः। तदुभयमेतद्विपरीतं क्षत्रियस्य वाङ् नवनीतं हृदयं तीक्ष्णधारमिति ॥१२३॥ तदेवं गते न शक्तोऽहं तीक्ष्णहृदय-त्वात्तं शापमन्यथाकर्तुं गम्यतामिति तमुत्तंकः प्रत्युवाच। भवताऽहमन्नस्याशुचिभावमा-लक्ष्य प्रत्यनुनीतःप्राक् च तेऽभिहितम् ॥१२४॥ यस्माददुष्टमन्नं दूषयसि तस्मादनपत्यो भविष्य-सीति। दुष्टे चान्ने नैष मम शापो भविष्यतीति ॥१२५॥ साधयामस्तावदित्युक्त्वा

वही राजाने उत्तङ्क को खिलाया ॥११५॥ उत्तङ्कने उस अन्न में बाल पाया और वह अन्न ठंढा भी हो गया था, अतएव उसे अशुद्ध समझकर पौष्य से बोले, तुमने मुझे अशुद्ध अन्न दिया है इसलिए तुम अन्धा हो जाओ ॥११६॥ राजा पौष्यने भी उनसे कहा—तुम अच्छे अन्नको बुरा बतला रहे हो इससे तुम पुत्रहीन होओगे। उत्तङ्क ने उनसे कहा—यह आपके लिए अनुचित है कि आप अशुद्ध अन्न भी दें और शाप के बदले शाप भी दें। आप अन्न को ही देख लीजिए। पौष्य ने भी उस अशुद्ध अन्नको देखा और उन्होंने उसकी अशुद्धि प्रत्यक्ष की ॥११८॥ उस अन्न को खुले बाल-वाली स्त्री ने बनाया था, अतएव उसमें बाल पड़ गया था, वह ठंढा भी हो गया था, अतएव यह अशुद्ध हो गया है यह जानकर राजा पौष्य उत्तङ्क को प्रसन्न करने लगे ॥११९ भगवन्, भूलसे यह बाल पड़ा, ठंढा अन्न मैंने आपको दिया, इस लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूं, आप कृपा करें जिससे मैं अन्धा न होऊँ। उत्तङ्क ने उनसे कहा ॥१२०॥ मेरी बात झूठी नहीं होगी, तुम अन्धे होकर शीघ्रही अच्छे हो जाओगे। आपने जो मुझे शाप दिया है उसका भी फल मुझे न हो ॥१२१॥ पौष्य ने कहा—मैं अपना शाप लौटा नहीं सकता। मेरा क्रोध इस समय तक भी शान्त नहीं हुआ है। क्या आपको यह मालूम नहीं है ॥१२२॥ ब्राह्मण का हृदय मक्खन के समान कोमल होता है, उनकी वाणी तीखे धारवाले छुरे के समान होती है। क्षत्रिय के ये दोनों इसके विपरीत होते हैं। उनकी वाणी तो कोमल होती है और हृदय धारवाला होता है ॥१२३॥ ऐसी दशा में मैं अपने शापको लौटाने में समर्थ नहीं हूं, क्योंकि मेरा हृदय क्रूर है अब आप जांय। उत्तङ्कने कहा—अन्न को अशुद्ध जान लेने पर आपने मुझसे क्षमा चाही, पहले आपने कहा था—॥१२४॥ तुम अच्छे अन्न को बुरा बतला रहे हो, इसलिए तुम पुत्रहीन होओगे। अन्न अशुद्ध था ही इसलिए

प्रतिष्ठतोत्तंकस्ते कुण्डले गृहीत्वा। सोऽपश्यदथ पथि नग्नं क्षपणकमागच्छन्तं मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमदृश्यमानं च ॥१२६॥ अथोत्तंकस्ते कुण्डले संन्यस्य भूमावुदकार्थं प्रचक्रमे, एतस्मिन्नन्तरे स क्षपणकस्त्वरमाण उपसृत्य ते कुण्डले गृहीत्वा प्राद्रवत् ॥१२७॥ तमुत्तंकोऽभिसृत्य कृतोदककार्यः शुचिः प्रयतो नमो देवेभ्यो गुरुभ्यश्च कृत्वा महता जवेन तमन्वयात् ॥१२८॥ तस्य तक्षको दृढमासन्नः स तं जग्राह, गृहीतमात्रः स तद्रूपं विहाय तक्षकस्वरूप कृत्वा सहसा धरण्यां विवृतं महाबिलं प्रविवेश ॥१२९॥ प्रविश्य च नागलोकं स्वभवनमगच्छत् । अथोत्तंकस्तस्याः क्षत्रियाया वचः स्मृत्वा तं तक्षकमन्वगच्छत् ॥१३०॥ स तद्बिलं दण्डकाष्ठेन चखान न चाशकत् । तं क्लिश्यमानमिन्द्रोऽपश्यत्स वज्रं प्रेषयामास ॥१३१॥ गच्छास्य ब्राह्मणस्य साहाय्यं कुरुष्वेति । अथ वज्रं दंडकाष्ठमनुप्रविश्य तद्बिलमदारयत् ॥१३२॥ तमुत्तंकोऽनुविवेश, तेनैव, बिलेन प्रविश्य च तं नागलोकमपर्यन्तमनेकविधप्रासादहर्म्यवलभीनिर्यूहशतसंकुलमुच्चावचक्रीडाश्चर्यस्थानावकीर्णमपश्यत् ॥१३३॥ स तत्र नागांस्तानस्तुवदेभिः श्लोकैः ।

य ऐरावतराजानः सर्पाः समितिशोभनाः । क्षरंत इव जीमूताः स विद्युत्पवनेरिताः ॥१३४॥
सुरूपा बहुरूपाश्च तथा कल्माषकुंडलाः । आदित्यवन्नाकपृष्ठे रेजुरैरावतोद्भवाः ॥१३५॥

आपका शाप मुझपर न लगेगा ॥१२५॥ मैं जा रहा हूं, ऐसा कहकर उत्तङ्क उन कुण्डलों को लेकर चले। रास्ते में उन्होंने एक नङ्गे सन्यासीको आते देखा, वह कभी छिप जाता था और कभी प्रत्यक्ष हो जाता था ॥१२६॥ अनन्तर उतङ्क अज्ञानवश कुण्डलों को रखकर जल पीने लगे। इसी अवसर में वह सन्यासी कुण्डलों को शीघ्रतापूर्वक लेकर वहांसे भाग गया ॥१२७॥ उतङ्क भी उसके पीछे चले आचमन आदि से वे शुद्ध हो गये थे। ध्यानस्थ होकर देवताओं और गुरुओं को नमस्कार करके उन्होंने बड़े वेगसे उसका पीछा किया ॥१२८॥ वे तक्षक के बहुत पास चले गये और उसे उन्होंने पकड़ लिया। पकड़े जाते ही सन्यासी का रूप छोड़कर तक्षक के रूप में वह प्रकट हुआ। उसी समय पृथिवी में एक बड़ा बिल दीख पड़ा और वह उस में घुस गया ॥१२९॥ बिल में घुसकर वह नागलोक में अपने घर चला गया, महारानी की कही बातका स्मरण करके उतङ्कने कुण्डल ले जानेवाले को तक्षक समझा ॥१३०॥ वे उस बिलको अपने डन्डे से खोदने लगे, पर खोद न सके। उनको कष्ट पाते देखकर इन्द्र ने अपना वज्र भेजा ॥१३१॥ जाओ, ब्राह्मण की सहायता करो। वज्र ने डंडे में प्रवेश किया और बिल को खोद दिया ॥१३२॥ उसी बिल से उतङ्क ने तक्षक के पीछे प्रवेश किया। वहां जाकर के उन्होंने नागलोक को देखा, जो बड़ा लम्बा चौड़ा था, अनेक महल अटारी, ऊँचे नीचे खेल के मैदान तथा अन्य अनेक आश्चर्यजनक स्थान उन्होंने देखे ॥१३३॥ उन्होंने नीचे लिखे श्लोकों से नागों की स्तुति की। जिन सर्पों का राजा ऐरावत नामका नाग है, जो युद्ध में प्रशंसित हैं, मेघ के समान बाणवृष्टि करने वाले हैं, वायु के समान शीघ्रगामी हैं ॥१३४॥ वे नाग सुन्दर हैं तथा अनेक रूप के हैं। वे चित्रितकुण्डल धारण करते हैं। ऐरावत से उत्पन्न ये नाग स्वर्ग में सूर्य के समान शोभित होते हैं ॥१३५॥ गंगा के उत्तर



उत्तंकका ध्यानस्थ होकर कुण्डल चोरका पता लगाना

Prabasi Press, Calcutta.

बहूनि नागवेश्मानि गंगायास्तीर उत्तरे । तत्रस्थानपि संस्तौमि महतः पन्नगानहम् ॥१३६॥
इच्छेत्कोऽर्कांशुसेनायां चर्तुमैरावतं विना । शतान्यशीतिरष्टौ च सहस्राणि च विंशतिः ॥१३७॥
सर्पाणां प्रग्रहा यांति धृतराष्ट्रोऽयदैजति । ये चैनमुपसर्पंति ये च दूरपथं गताः ॥१३८॥
अहमैरावतज्येष्ठभ्रातृभ्योऽकरवं नमः । यस्य वासः कुरुक्षेत्रे खाण्डवे चाभवत्पुरा ॥१३९॥
तं नागराजमस्तौषं कुंडलार्थाय तक्षकम् । तक्षकश्चाश्वसेनश्च नित्यं सहचरावुभौ ॥१४०॥
कुरुक्षेत्रं च वसतां नदीमीक्षुमतीमनु । जघन्यजस्तक्षकस्य श्रुतसेनेति यः सुतः ॥१४१॥
अवसद्यो महद्द्युम्नि प्रार्थयन्नागमुख्यताम् । करवाणि सदा चाहं नमस्तस्मै महात्मने ॥१४२॥
एवं स्तुत्वा स विप्रर्षिरुत्तंको भुजगोत्तमान् । नैव ते कुंडले लेभे ततश्चिंतामुपागमत् ॥१४३॥

एवं स्तुवन्नपि नागान्यदा ते कुंडले नालभत्तादाऽपश्यत्स्त्रियौ तंत्रे अधिरोप्य सुवेमे पटं वयन्त्यौ । तस्मिंस्तंत्रे कृष्णाः सिताश्च तंतवश्चक्रं चापश्यत्, द्वादशारं षड्भिः कुमारैः परिवर्त्यमानं पुरुषं चापश्यदश्वं च दर्शनीयम् ॥१४४॥ स तान् सर्वांस्तुष्टाव एभिर्मन्त्रवदेव श्लोकैः ॥१४५॥

त्रीण्यर्पितान्यत्र शतानि मध्ये षष्टिश्च नित्यं चरति ध्रुवेऽस्मिन् ।
चक्रे चतुर्विंशति पर्वयोगे षड् वै कुमाराः परिवर्तयन्ति ॥१४६॥

तीर पर नागों के अनेक घर हैं । उन घरों में रहनेवाले बड़े बड़े नागों की भी मैं स्तुति करता हूँ ॥१३६॥ सेना के समान असहनीय सूर्य की किरणों में ऐरावत के अतिरिक्त दूसरा कौन चल-सकता है । धृतराष्ट्र (ऐरावत का भाई) जब चलता है, तब उसके साथ अठाइस हजार आठ सर्प रस्सी से बनकर चलते हैं । जो सर्प धृतराष्ट्र के साथ रहते हैं, जो उनसे दूर रहते हैं, ॥१३७॥ १३८॥ उन सब के साथ में ऐरावत के बड़े भाइयों को नमस्कार करता हूँ । जो नागराज तक्षक पहले कुरुक्षेत्र और खाण्डव बनमें रहते थे, उनकी स्तुति मैंने कुण्डल पाने के लिए की है । तक्षक और अश्वसेन दोनों सदा साथ रहते हैं । कुरुक्षेत्र में ईक्षुमती नदी के तीर पर ये रहते थे । इनकी मैंने स्तुति की है । तक्षक का छोटा बेटा श्रुतसेन है । जिसने नागराज बनने के लिए महाद्युम्ननामक तीर्थ में निवास किया था । उस महात्मा को भी मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥१३९,१४२॥ ब्रह्मर्षि उत्तङ्क ने इस प्रकार नागों की स्तुति की, पर कुण्डल न मिला, इससे वे चिन्तित हुए ॥१४३॥ इस प्रकार नागों की स्तुति करने पर भी उत्तङ्क को कुण्डल न मिले । उस समय उन्होंने देखा कि दो स्त्रियां तांत पर चढ़ा कर सुन्दर ढरकी से वस्त्र बुन रही है । उस तांत में श्वेत और काले धागे तथा एक पहिआ देखा । उस में बारह अरा थे जिन्हें छ बालक घुमा रहे थे, वहीं उन्होंने एक पुरुष का तथा एक सुन्दर घोड़े को देखा ॥१४४॥ मन्त्रतुल्य इन श्लोकों से उन्होंने इन सब की स्तुति की ॥१४५॥ इस ध्रुव चक्र में चौबीस पर्व हैं, इसके बीच में तीन सौ साठ ताने लगे हुए हैं और छ बालक इसे घुमा रहे हैं ॥१४६॥ इस तानेबाने को विश्वरूपी दो स्त्रियां—जो समय पर

तन्त्रं चेदं विश्वरूपे युवत्यौ वयतस्तंतून्सततं वर्त्तयन्त्यौ ।
कृष्णान्सितांश्चैव विवर्त्तयंत्यौ भूतान्यजस्रं भुवनानि चैव ॥२४७॥
वज्रस्य भर्त्ता भुवनस्य गोप्ता वृत्रस्य हन्ता नमुचेर्निहन्ता ।
कृष्णे वसानो वसने महात्मा सत्यानृते यो विविनक्ति लोके ॥३४८॥
यो वाजिनं गर्भमपां पुराणं वैश्वानरं वाहनमभ्युपैति ।
नमोस्तु तस्मै जगदीश्वराय लोकत्रयेशाय पुरन्दराय ॥४४९॥

ततः स एनं पुरुषः प्राह, प्रीतोऽस्मि तेहमनेन स्तोत्रेण, किते प्रियं करवाणीति । स तमुवाच ॥१५०॥ नागा मे वशमीयुरिति, स चैनं पुरुषः पुनरुवाच एतमश्वमपाने धमस्वेति ॥१५१॥ ततोऽश्वस्यापानमधमत्ततोऽश्वाद्धम्यमानात्सर्वस्रोतोभ्यः पावकार्चिषः सधूमा निष्पेतुः ॥१५२॥ ताभिर्नागलोक उपधूपितेऽथ संभ्रान्तस्तक्षकोऽग्नेस्तेजोभयाद्विषण्णः कुंडले गृहीत्वा सहसा भवनान्निष्क्रम्योत्तंकमुवाच ॥१५३॥ इमे कुण्डले गृह्णातु भवानिति, स ते प्रतिजग्राहोत्तंकः प्रतिगृह्य च कुंडलेऽचिंतयत् ॥१५४॥ अद्य तत्पुण्यकमुपाध्यायान्या दूरं चाहमभ्यागतः स कथं संभावयेयमिति, तत एनं चिन्तयानमेव स पुरुष उवाच ॥१५५॥ उत्तंक एनमेवाश्वमधिरोह त्वां क्षणेनैवोपाध्यायकुलं प्रापयिष्यतीति ॥१५६॥ स तथेत्युक्त्वा तमश्वमधिरुह्य प्रत्याजगामोपाध्यायकुलं, उपाध्यायानी च स्नाता केशानावापयंत्युपविष्टोत्तंको

पुरुष भी हो जाती है, बुनती हैं, काले और सफेद धागों को सदा बदलती जाती हैं, उसीके साथ समस्त प्राणी और भुवन भी घूम रहे हैं ॥१४७॥ जो वज्र धारण करते हैं, भुवनों की रक्षा करते हैं, नमुचि और वृत्र के हनन करनेवाले हैं जो काले दो वस्त्र धारण करते हैं, तथा संसार में सत्य और असत्य का निर्णय करते हैं । जो जलके द्वारा आदि सृष्टि में उत्पन्न अग्नि रूपी घोड़े को वाहन के रूप में प्राप्त करते है, उन तीनों लोकों के स्वामी पुरन्दर जगदीश्वर को नमस्कार ॥१४८,१४९॥

उस पुरुष ने उत्तङ्क से कहा—मैं तुम्हारी इस स्तुति से प्रसन्न हूँ, कहो तुम्हारे लिए मैं क्या करूँ । उत्तङ्क ने कहा ॥१५०॥ नाग मेरे अधीन हो जाँयँ । उस पुरुष ने पुनः इनसे कहा—इस घोड़े की गुदा में तुम फूँक मारो ॥१५१॥ उसने घोड़े के अपान को फूँका, फूँक मारने से घोड़े के समस्त शरीर के छिद्रों से धूमसहित अग्नि की ज्वाला निकली ॥१५२॥ उस ज्वाला और धूम से समस्त नागलोक भर गया । अग्नि के भय से तक्षक घबराया और दुःखी हुआ । कुण्डल लेकर शीघ्र घर से निकला और उत्तङ्क से बोला ॥१५३॥ इन कुण्डलों को आप लें । कुण्डलों को लेकर उत्तङ्क सोचने लगे ॥१५४॥ उपाध्यायानी के पुण्योत्सव का आज ही दिन है और मैं बहुत दूर आगया हूं । अब मैं वहाँ कैसे जा सकता हूँ । उत्तङ्क इस प्रकार सोच रहे थे उसी समय उस पुरुष ने कहा—उत्तङ्क, इसी घोड़े पर बैठ जाओ, यह शीघ्र ही उपाध्याय के घर पर पहुंचा देगा ॥१५५,१५६॥ उस पुरुष के कहने से घोड़े पर बैठ कर उत्तङ्क उपाध्याय के पास चले आये,



अग्निदेवको भृगुमुनिका शाप

नागच्छतीति शापायास्य मनो दधे ॥१५७॥ अथैतस्मिन्नन्तरे स उत्तंकः, प्रविश्य उपाध्यायकुलं उपाध्यायानीमभ्यवादयत्तो चास्यै कुण्डले प्रायच्छत्सा चैनं प्रत्युवाच ॥१५८॥ उत्तंक देशे कालेऽभ्यागतः, स्वागतं ते वत्स, इदानीं यदि नागतोऽसि कोपितया मय शप्तो भविष्यसि, श्रेयस्तवोपस्थितं सिद्धिमाप्नुहीति ॥१५९॥ अथोत्तंक उपाध्यायमभ्यवादयत् । तमुपाध्यायः प्रत्युवाच, वत्सोत्तंक स्वागतं ते किं चिरं कृतमिति ॥१६०॥ तमुत्तंक उपाध्यायं प्रत्युवाच । भोस्तक्षकेण मे नागराजेन विघ्नः कृतोऽस्मिन्कर्मणि, तेनास्मि नागलोकं गतः, तत्र च मया दृष्टे स्त्रियौ तंत्रेऽधिरोप्य पटं वयन्त्यौ तस्मिंश्च कृष्णाः सिताश्च तंतवः किंतत् ॥१६२॥ तत्र च मया चक्रं दृष्टं द्वादशारं षड्वैनं कुमाराः परिवर्त्तयन्ति तदपि किं, पुरुषश्चापि मया दृष्टः स चापि कः अश्वश्चातिप्रमाणो दृष्टः सचापि कः ॥१६३॥ पथि गच्छता च मया ऋषभो दृष्टस्तं च पुरुषोऽधि रुढस्तेनास्मि सोपचारमुक्त उत्तंकास्य ऋषभस्य पुरीषं भक्षय उपाध्यायेनापि ते भक्षित- मिति॥१६४॥ ततस्तस्य वचनान्मया तदृषभस्य पुरीषमुपयुक्तं स चापि कः । तदेतद्भवतोपदिष्ट- मिच्छेयं श्रोतुं किं तदिति । स तेनैवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच ॥१६५॥ ये ते स्त्रियौ धाता विधाता च, ये च ते कृष्णाः सितास्तंतवस्ते रात्र्यहनी । यदपि तच्चक्रं द्वादशारं षड् वै कुमाराः

उस समय उपाध्यायानी स्नान कर के बालों को गूँथ रही थीं । बैठी सोच रही थीं, उत्तङ्क नहीं आया, ऐसा सोच कर उन्होंने उसको शाप देने की इच्छा की ॥१५७॥ इसी समय उपाध्याय के घर जा कर उत्तङ्क ने उपाध्यायानी को प्रणाम किया और उन्हें वे दोनों कुण्डल दिये। उपाध्यायानी उनसे बोलीं ॥१५८॥ उत्तङ्क, तुम ठीक समय पर और ठीक स्थान पर आये हो। बेटा तुम्हारा स्वागत। इस समय यदि तुम न आते तो क्रोध करके मैं शाप दे देती। अब तुम्हारे कल्याण का समय आया है तुम सिद्धि पाओ ॥१५९॥ अनन्तर उतङ्क ने उपाध्याय को प्रणाम किया। उपाध्याय ने कहा—उत्तङ्क. स्वागत, देर क्यों लगायी ॥१६०॥ उतङ्क ने उपाध्याय से कहा। महाराज, नागराज तक्षक ने इस काम में बाधा डाली थी इस कारण मैं नाग लोक चला गया था ॥१६१॥ वहां मैंने देखा दो स्त्रियां ताना बनाकर कपड़ा बुन रही थीं, उसमें श्वेत और काले धागे थे, वह क्या है ॥१६२॥ वहां मैंने एक पहिआ देखा, जिसमें बारह अरा थे और छ बालक उसे घुमा रहे थे। वह भी क्या है। एक पुरुष भी मैंने देखा, वह कौन है। बहुत बड़ा एक घोड़ा देखा, वह कौन है ॥१६३॥ जाने के समय रास्ते में मैंने एक बैल देखा, उसपर एक पुरुष बैठा था। उसने आदर से मुझ से कहा—इस बैल का गोबर खाओ, तुम्हारे उपाध्याय ने भी खाया था ॥१६४॥ उसके कहने से मैंने उस बैल का गोबर खाया था वह कौन है। मैं आपके कहने से यह जानना चाहता हूँ कि यह सब क्या हैं। उत्तङ्क के ऐसा कहने पर उपाध्याय ने कहा, ॥१६५॥ तुमने जो स्त्रियां देखी हैं वे धाता विधाता हैं। काले और श्वेत धागे रात दिन हैं। तुमने बारह अरावाला जो पहिआ देखा है जिसे छ बालक घुमा रहे थे। वे छ बालक छ ऋतु हैं, वह

परिवर्तयन्ति, तेऽपिऽषड् ऋतवः संवत्सरश्चक्रम् ॥१६६॥ यः पुरुषः स पर्जन्यः योऽश्वः सोऽग्निः य ऋषभस्त्वया पथि गच्छता दृष्टः स ऐरावतो नागराट् ॥१६७॥ यश्चैनमधिरूढः पुरुषः स चेन्द्रः, यदपि ते भक्षितं तस्य ऋषभस्य पुरीषं तदमृतं, तेन खल्वसि तस्मिन्नागभवने न व्यापन्नस्त्वम् ॥१६८॥ स हि भगवानिन्द्रो मम सखा त्वदनुक्रोशादिममनुग्रहं कृतवान्। तस्मात्कुण्डले गृहीत्वा पुनरागतोऽसि॥१६९॥ तत्सौम्य गच्छ तावदनुजाने भवन्तं श्रेयोऽवाप्स्यसीति, स उपाध्यायेनानुज्ञातो भगवानुत्तंकः क्रुद्धस्तक्षकं प्रतिचिकीर्षमाणो हास्तिनपुरं प्रतस्थे ॥१७०॥ स हास्तिनपुरं प्राप्य न चिराद्विप्रसत्तमः ॥ समागच्छत राजानमुत्तंको जनमेजयम् ॥१७१॥ पुरा तक्षशिलासंस्थं निवृत्तमपराजितम् । सम्यग्विजयिनं दृष्ट्वा समन्तान्मंत्रिभिर्वृतम् ॥१७२॥ तस्मै जयाशिषः पूर्वं यथान्यायं प्रयुज्य सः । उवाचैनं वचः काले शब्दसंपन्नया गिरा ॥१७३॥

उत्तंक उवाच

अन्यस्मिन्करणीये तु कार्ये पार्थिवसत्तम । बाल्यादिवान्यदेव त्वं कुरुषे नृपसत्तम ॥१७४॥

सौतिरुवाच

एवमुक्तस्तु विप्रेण स राजा जनमेजयः । अर्चयित्वा यथान्यायं प्रत्युवाच द्विजोत्तमम् ॥१७५॥

जनमेजय उवाच

आसां प्रजानां परिपालनेन स्वं क्षत्रधर्मं परिपालयामि ।
प्रब्रूहि मे किं करणीयमद्य येनासि कार्येण समागतस्त्वम् ॥१७६॥

पहिआ वर्ष है ॥१६६॥ जो पुरुष तुमने देखा है, वह पर्यन्य है, जो घोड़ा देखा है वह अग्नि है। रास्ता में जाते हुए तुमने जो बैल देखा है, वह नागराज ऐरावत है ॥१६७॥ उस बैल पर जो पुरुष चढ़ा था वह इन्द्र है। तुमने जो बैल का गोबर खाया है वह अमृत है। इसीसे नागों के घर में जाने पर तुम नहीं मरे ॥१६८॥ वे भगवान् इन्द्र मेरे मित्र हैं। तुम पर दया करके उन्होंने यह अनुग्रह किया है। इसी कारण कुण्डलों को लेकर तुम पुनः लौट आये हो ॥१६९॥ हे सौम्य, अब तुम जाओ, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं। तुम कल्याण प्राप्त करोगे। उपाध्याय से आज्ञा पाकर भगवान् उतङ्क क्रोध करके तक्षक से बदला लेने के विचार से हस्तिनापुर चले ।१७०॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ उत्तङ्क शीघ्रही हस्तिनापुर पहुंच कर राजा जनमेजय के पास गये ॥१७१॥ इसके पहले राजा जनमेजय तक्षशिला पर चढ़ाई करके और वहां से विजयी होकर लौटे थे, उनके चारों ओर मन्त्री बैठे थे। राजा को देखकर उत्तङ्क नियमानुसार जय तथा आशीर्वाद देकर अवसर देखकर राजा से बोले, उनकी वाणी शब्द के गुणों से युक्त थी ॥१७२,१७३॥ उत्तङ्क बोले, राजश्रेष्ठ आपको दूसरा काम करना चाहिए था। उसे छोड़कर आप बालकों के समान दूसरे काममें लगे हुए हैं ॥१७४॥ सौति बोले, ब्राह्मण के ऐसा कहने पर राजा जनमेजय विधिपूर्वक पूजा करके उनसे बोले ॥१७५॥ जनमेजय बोले, इन प्रजाओं का पालन करके मैं अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करता हूं। आप बतलावें मुझे

सौतिरुवाच

स एवमुक्तस्तु नृपोत्तमेन द्विजोत्तमः पुण्यकृतां वरिष्ठः ।
उवाच राजानमदीनसत्वं स्वमेव कार्यं नृपते कुरुष्व ॥१७७॥

उत्तंक उवाच

तक्षकेण महींद्रेन्द्र येन ते हिंसितः पिता । तस्मै प्रतिकुरुष्व त्वं पन्नगाय दुरात्मने ॥१७८॥
कार्यकालं हि मन्येऽहं विधिदृष्टस्य कर्मणः । तद्गच्छापचितिं राजन्पितुस्तस्य महात्मनः ॥१७९॥
तेन ह्यनपराधी स दष्टो दुष्टांतरात्मना । पंचत्वमगमद्राजा वज्राहत इव द्रुमः ॥१८०॥
बलदर्पसमुत्सिक्तस्तक्षकः पन्नगाधमः । अकार्यं कृतवान्पापो योऽदशत्पितरं तव ॥१८१॥
राजर्षिवंशगोप्तारममरप्रतिमं नृपम् । यियासुं कश्यपं चैव न्यवर्तयत पापकृत् ॥१८२॥
होतुमर्हसि तं पापं ज्वलिते हव्यवाहने । सर्पसत्रे महाराज त्वरितं तद्विधीयताम् ॥१८३॥
एवं पितुश्चापचितिं कृतवांस्त्वं भविष्यसि । मम प्रियं च सुमहत्कृतं राजन् भविष्यति ॥१८४॥
कर्मणः पृथिवीपाल मम येन दुरात्मना । विघ्नः कृतो महाराज गुर्वर्थं चरतोऽनघ ॥१८५॥

सौतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा तु नृपतिस्तक्षकाय चुकोप ह । उत्तंकवाक्यहविषा दीप्तोऽग्निर्हविषा यथा ॥१८६॥
अपृच्छत्स तदा राजा मंत्रिणस्तान्सुदुःखितः । उत्तंकस्यैव सान्निध्ये पितुः स्वर्गगतिं प्रति ॥१८७॥

क्या करना चाहिए, किस काम के लिए आप आये हैं ॥१७६॥ सौति बोले, राजश्रेष्ठ जनमेजय के यह कहने पर पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ ब्राह्मण उतङ्क प्रभावशाली राजा से बोले, राजन्, आप अपने ही काम करें ॥१७७॥ उतङ्क बोले, राजेन्द्र तक्षक नाग ने आपके पिता को मारा है उस दुरात्मा सर्प से आप बदला लें ॥१७८॥ नीति के द्वारा निश्चित कार्यके लिए यह समय उपयुक्त है। अतएव राजन्, आप अपने महात्मा पिता का ऋण चुकावें ॥१७९॥ उस दुष्टात्माने अनपराधी राजा को काटा, जिससे वज्राहत वृक्ष के समान राजा मर गये ॥१८०॥ नागाधम तक्षक बल के घमंड से अपने को बड़ा समझता है। उसने आपके पिता को काटकर पाप किया है ॥१८१॥ राजवंश की रक्षा करनेवाले देवतुल्य कश्यप राजाके पास जारहे थे, उनको इस पापी ने लौटा दिया ॥१८२॥ राजन्, सर्पयज्ञ की जलती आग में आपको उसका हवन करना चाहिए। अतएव महाराज, आप शीघ्रही सर्पयज्ञ कीजिये ॥१८३॥ इस प्रकार आप पिता का ऋण चुका सकेंगे। और राजन्, ऐसा करने से मेरा भी बड़ा प्रिय कार्य होगा ॥१८४॥ हे निष्पाप महाराज, मेरे काम में भी इस दुरात्मा ने विघ्न किया है, जब मैं गुरुके कामके लिए जारहा था ॥१८५॥ सौति बोले, यह सुननेके बाद राजा ने तक्षक पर क्रोध किया। जिस प्रकार हवि से आग प्रज्वलित हो जाती है। उसी प्रकार उतङ्क के वचनरूपी हवि से राजा की क्रोधाग्नि प्रदीप्त हो उठी ॥१८६॥ उत्तङ्क के सामने ही दुःखी होकर राजा ने अपने मंत्रियों से पिता के स्वर्गगमन की बात पूछी ॥१८७॥ जिस समय उत्तङ्क से पिता

तदैव हि स राजेन्द्रो दुःखशोकाप्लुतोऽभवत्। यदैव वृत्तं पितरमुत्तंकादशृणोत्तदा ॥१८८॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौष्यपर्वणि पौष्याख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

॥ समाप्तं च पौष्यपर्व ॥

के मरने का वृत्तान्त राजा ने सुना, उसी समय राजा जनमेजय दुःख और शोक से व्याकुल हो गये ॥१८८॥

तृतीय अध्याय

—

पौलोम पर्व

लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे ऋषीनभ्यागतानुपतस्थे ॥१॥ पौराणिकः पुराणे कृतश्रमः स कृतांजलिस्ता नुवाच। "मयोतङ्कस्य चरितमशेषमुक्तं, जनमेजयस्य सार्पसत्रे निमित्तान्तरमिदमपि" किं भवन्तः श्रोतुमिच्छन्ति, किमहं ब्रवाणीति ॥२॥ तमृषय ऊचुः

परं लौमहर्षणे वक्ष्यामस्त्वां नः प्रतिवक्ष्यसि वचः शुश्रूषतां कथायोगं नः कथायोगे ॥३॥ तत्रभगवान्कुलपतिस्तु शौनकोऽग्निशरणमध्यास्ते दीर्घासत्रत्वात् सर्वाः कथाः श्रोतुं कालोऽस्ति ॥४॥

योऽसौ दिव्याः कथा वेद देवतासुरसंश्रिताः। मनुष्योरगगंधर्वकथा वेद च सर्वशः ॥५॥ स चाप्यस्मिन्मखे सौते विद्वान् कुलपतिर्द्विजः। दक्षो धृतव्रतो धीमान् शास्त्रे चारण्यके गुरुः ॥६॥ सत्यवादी शमपरस्तपस्वी नियतव्रतः। सर्वेषामेव नो मान्यः स तावत्प्रतिपाल्यताम् ॥७॥

लोमहर्षण के पुत्र सूतवंशी पौराणिक उग्रश्रवा नैमिषारण्य में कुलपति शौनक के बारह वर्ष में समाप्त होनेवाले यज्ञ में आये हुए ऋषियों के पास गये ॥१॥ पुराण का ज्ञान प्राप्त करने में उन्होंने परिश्रम किया था। वे हाथ जोड़कर उन ऋषियों से बोले। उत्तङ्क का सम्पूर्ण चरित मैंने कहा, जनमेजय के सर्पयज्ञ का एक यह भी कारण था। अब आपलोग क्या सुनना चाहते हैं मैं क्या कहूं। २॥ ऋषिगण बोले—उग्रश्रवा, हमलोग आपसे पूछेंगे, आप उसका उत्तर दीजिएगा, हमलोग बहुत सी कथाएं सुनना चाहते हैं। हमलोगों को कथा प्रारम्भ होने पर आप कहिएगा ॥३॥ इस समय कुलपति भगवान् शौनक अग्निशाला में हैं ॥४॥ वे देवता और असुरों की दिव्य कथाएँ जानते हैं। वे मनुष्य सर्प तथा गन्धर्वों की समस्त कथाएँ जानते हैं ॥५॥ वे विद्वान्, निपुण, व्रतधारी, बुद्धिमान् कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के उपदेशक, सत्यवादी शान्त, तपस्वी और निरन्तर व्रत करनेवाले इस यज्ञ के कुलपति हैं, हम सबलोगों के

तस्मिन्नध्यासति गुरावासनं परमार्चितम्। ततो वक्ष्यसि यत्त्वां स प्रक्ष्यति द्विजसत्तमः ॥८॥
सौतिरुवाच
एवमस्तु गुरौ तस्मिन्नुपविष्टे महात्मनि। तेन पृष्टः कथाः पुण्या वक्ष्यामि विविधाश्रयाः ॥९॥
सोऽथ विप्रर्षभः सर्वं कृत्वा कार्यं यथाविधि। देवान्वाग्भिः पितॄनद्भिस्तर्पयित्वाऽऽजगाम ह ॥१०॥
यत्र ब्रह्मर्षयः सिद्धाः सुखासीना धृतव्रताः यज्ञायतनमाश्रित्य सूतपुत्रपुरःसराः ॥११॥
ऋत्विक्ष्वथ सदस्येषु स वै गृहपतिस्तदा। उपविष्टेषूपविष्टः शौनकोऽथाब्रवीदिदम् ॥१२॥

इतिश्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि कथाप्रवेशो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

शौनक उवाच
पुराणमखिलं तात पिता तेऽधीतवान्पुरा। कच्चित्त्वमपि तत्सर्वमधीषे लोमहर्षणे ॥१॥
पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्। कथ्यंते ये पुराऽस्माभिः श्रुतपूर्वाः पितुस्तव ॥२॥
तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम्। कथयस्व कथामेतां कल्याः स्मः श्रवणे तव ॥३॥
सौतिरुवाच
यदधीतं पुरा सम्यक् द्विजश्रेष्ठैर्महात्मभिः। वैशम्पायनविप्राग्र्यैस्तैश्चापि कथितं यथा ॥४॥

मान्य हैं। उनकी हमलोग तब तक प्रतीक्षा करें ॥६,७॥ जब गुरु शौनक इस पूजित आसन पर बैठेंगे, तब आपसे वे ब्राह्मणश्रेष्ठ जो पूछेंगे वह कहिएगा ॥८॥ सौति बोले—ठीक है, गुरु महात्मा शौनक के बैठने पर, वे जिन भिन्न भिन्न पवित्र कथाओं को पूछेंगे मैं उन कथाओं को कहूंगा ॥९॥ वे ब्राह्मणश्रेष्ठ शौनक सब कार्यों को विधिपूर्वक करके मन्त्रों के द्वारा देवताओं को और जल के द्वारा पितरों को तृप्त करके वहां आये ॥१०॥ जहां पर मण्डप के पास व्रत धारी ब्रह्मर्षि तथा सूतपुत्र उग्रश्रवा सुखपूर्वक बैठे थे ॥११॥ ऋत्विक तथा सदस्यों के यथास्थान बैठ जाने पर गृहपति शौनक बैठे और इस प्रकार बोले ॥१२॥

चतुर्थ अध्याय।

—

कथा प्रारम्भ।

शौनक बोले, भाई तुम्हारे पिता ने समस्त पुराण पढ़े थे। उग्रश्रवा, क्या तुमने भी उन सब पुराणों को पढ़ा है, ॥१॥ पुराणों में दिव्य कथाएँ तथा बुद्धिमान आदिवंशों का वर्णन है। ये सब कथाएँ हम लोगोंने पहले तुम्हारे पिता से सुनी हैं ॥२॥ उनमें हम लोग पहले भृगु-वंश की कथा सुनना चाहते हैं। आप यह कथा कहें, हमलोग इसके सुनने के योग्य हैं ॥३॥ सौति बोले, वैशम्पायन आदि ब्राह्मणश्रेष्ठ महात्माओं ने जो पढ़ा है और उन लोगों ने जो

यदधीतं च पित्रा मे सम्यक्चैव ततो मया । तावच्छृणुष्व यो देवैः सेन्द्रैः सर्षिमरुद्गणैः ॥५॥
पूजितः प्रवरो वंशो भार्गवो भृगुनन्दन । इमं वंशमहं पूर्वं भार्गवं ते महामुने ॥६॥
निगदामि यथायुक्तं पुराणाश्रयसंयुतम् । भृगुर्महर्षिर्भगवान् ब्रह्मणा वै स्वयंभुवा ॥७॥
वरुणस्य क्रतौ जातः पावकादिति नः श्रुतम् । भृगोः सुदयितः पुत्रश्च्यवनो नाम भार्गवः ॥८॥
च्यवनस्य च दायादः प्रमतिर्नाम धार्मिकः । प्रमतेरप्यभूत्पुत्रो घृताच्यां रुरुरित्युत ॥९॥
रुरोरपि सुतो जज्ञे शुनको वेदपारगः । प्रमद्वरायां धर्मात्मा तव पूर्वपितामहः ॥१०॥
तपस्वी च यशस्वी च श्रुतवान् ब्रह्मवित्तमः । धार्मिकः सत्यवादी च नियतो नियताशनः ॥११॥

शौनक उवाच

सूतपुत्र यथा तस्य भार्गवस्य महात्मनः । च्यवनत्वं परिख्यातं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥१२॥

सौतिरुवाच

भृगोः सुदयिता भार्या पुलोमेत्यभिविश्रुता । तस्यां गर्भः समभवद् भृगुवीर्यसमुद्भवः ॥१३॥
तस्मिन्गर्भेऽथ संभूते पुलोमायां भृगूद्वह । समये समशीलिन्यां धर्मपत्न्यां यशस्विनः ॥१४॥
अभिषेकाय निष्क्रान्ते भृगौ धर्मभृतांवरे । आश्रमं तस्य रक्षोऽथ पुलोमाभ्याजगाम ह ॥१५॥
तं प्रविश्याश्रमं दृष्ट्वा भृगोर्भार्यामनिंदिताम् । हृच्छयेन समाविष्टो विचेताः समपद्यत ॥१६॥
अभ्यागतं तु तद्रक्षः पुलोमा चारुदर्शना । न्यमन्त्रयत वन्येन फलमूलादिना तदा ॥१७॥
तां तु रक्षस्तदा ब्रह्मन्हृच्छयेनाभिपीडितम् । दृष्ट्वा हृष्टमभूद्राजन् जिहीर्षुस्तामनिंदिताम् ॥१८॥

बतलाया है, मेरे पिता ने जो पढ़ा है और उनसे वह सब अच्छी तरह मैंने पढ़ा है, वह आप सुनें। भृगुनन्दन, यह श्रेष्ठ भृगुवंश, इन्द्र प्रभृति देवताओं तथा ऋषियों के द्वारा प्रशंसित है। महामुनि, मैं इसी भृगुवंश की कथा आपसे कहता हूँ जो पुराणों की उपोद्घात है, भूमिका है। मैंने सुना है कि वरुण के यज्ञ में अग्नि से स्वयम्भू ब्रह्मा ने महर्षि भृगु को उत्पन्न किया। भृगु के पुत्र च्यवन हुए, जो उनके अत्यन्त प्रिय थे ॥४,८॥ च्यवन के पुत्र प्रमति थे, जो बड़े धार्मिक थे, प्रमति के घृताची के गर्भसे रुरु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥९॥ प्रमद्वरा के गर्भ से रुरु के भी शुनक नामक वेदज्ञ पुत्र उत्पन्न हुआ जो धर्मात्मा था तथा आपका पितामह था ॥१०॥ वह तपस्वी यशस्वी वेदब्रह्मज्ञानी, धर्मात्मा, सत्यवादी संयमी तथा अल्पाहारी था ॥११॥ शौनक बोले—हे सूतपुत्र, महात्मा भार्गव के पुत्र का नाम च्यवन क्यों पड़ा, यह हम पूछते हैं आप कहें ॥१२॥ सौति बोले, भृगु की प्रिय स्त्री पुलोमा नाम से प्रसिद्ध थी। भृगु के वीर्य से उसके गर्भ हुआ ॥१३॥ हे भृगुश्रेष्ठ, यशस्वी भृगु की समानशीला धर्मपत्नी पुलोमा के यथासमय गर्भ हुआ ॥१४॥ उसी समय एक दिन धार्मिक श्रेष्ठ भृगु के स्नान के लिए जाने पर उनके आश्रम में पुलोमा नाम का राक्षस आया ॥१५॥ उस आश्रम में जाकर और भृगु की सुन्दरी स्त्री को देख कर वह कामपीडित होकर विह्वल हो गया ॥१६॥ सुन्दरी पुलोमा ने उस राक्षस को अतिथि समझ कर बनैले फल-मूल आदि से उसका आतिथ्य किया ॥१७॥ ब्रह्मन्, कामपीडित वह राक्षस उस सर्वांग सुन्दरी

जातमित्यब्रवीत्कार्यं जिहीर्षुर्मुदितः शुभाम् । साहि पूर्वं वृता तेन पुलोम्ना तु शुचिस्मिता ॥१९॥
तां तु प्रादात्पिता पश्चाद् भृगवे शास्त्रवत्तदा । तस्य तत्किल्बिषं नित्यं हृदि वर्तति भार्गव ॥२०॥
इदमंतरमित्येवं हर्तुं चक्रे मनस्तदा । अथाग्निशरणेऽपश्यज्ज्वलंतं जातवेदसम् ॥२१॥
तमपृच्छत्ततो रक्षः पावकं ज्वलितं तदा । शंस मे कस्य भार्येयमग्ने पृच्छे ऋतेन वै ॥२२॥
मुखं त्वमसि देवानां वद पावक पृच्छते । मया हीयं वृता पूर्वं भार्यार्थे वरवर्णिनी ॥२३॥
पश्चादिमां पिता प्रादाद् भृगवेऽनृतकारकः । सेयं यदि वरारोहा भृगोर्भार्या रहोगता ॥२४॥
तथा सत्यं समाख्याहि जिहीर्षाम्याश्रमादिमाम् । स मन्युस्तत्र हृदयं प्रदहन्निव तिष्ठति ॥२५॥
मत्पूर्वभार्यां यदिमां भृगुराप सुमध्यमाम् ॥२५॥ सौतिरुवाच
एवं रक्षस्तमामंत्र्य ज्वलितं जातवेदसम् । शंकमानं भृगोर्भार्यां पुनः पुनरपृच्छत ॥२६॥
त्वमग्ने सर्वभूतानामंतश्चरसि नित्यदा । साक्षिवत्पुण्यपापेषु सत्यं ब्रूहि कवे वचः ॥२७॥
मत्पूर्वाऽपहृता भार्या भृगुणाऽनृतकारिणा । सेयं यदि तथा मे त्वं सत्यमाख्यातुमर्हसि ॥२८॥
श्रुत्वा त्वत्तो भृगोर्भार्यां हरिष्याम्याश्रमादिमाम् । जातवेदः पश्यतस्ते वद सत्यां गिरं मम ॥२९॥
सौतिरुवाच
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा सप्तार्चिर्दुःखितोऽभवत् । भीतोऽनृताच्च शापाच्च भृगोरित्यब्रवीच्छनैः ॥३०॥

स्त्री को देखकर प्रसन्न हुआ और उसे हरने की उसने इच्छा की ॥१८॥ उस स्त्री को हरने की इच्छा रखनेवाला वह राक्षस प्रसन्न हो कर बोला मेरा कार्य सिद्ध हो गया। पहले इस पुलोमा नामक राक्षस ने मधुर मुस्कानवाली इस स्त्री का वरण किया था ॥१९॥ पर उसके पिता ने शास्त्रानुसार भृगु के साथ उसका व्याह कर दिया। भार्गव, इस कारण उस राक्षस के हृदय में सदा क्रोध बना रहा ॥२०॥ इसी अवसर में ऋषि के आश्रम में अनुपस्थित रहने के समय राक्षस ने पुलोमा को हरने का विचार किया। उस राक्षस ने अग्निशाला में जलते अग्निदेव को देखा ॥२१॥ राक्षस ने जलते अग्निदेव से पूछा—अग्निदेव, सत्य की शपथ से मैं आपसे पूछता हूँ आप कहें, यह किसकी स्त्री है ॥२२॥ हे पावक, आप देवताओं के मुख हैं, मैं पूछ रहा हूँ, आप कहें। पहले स्त्री बनाने के लिए मैंने ही इस उत्तम स्त्रीका वरण किया था ॥२३॥ पीछे असत्य आचरण करनेवाले इसके पिता ने इसे भृगु को दिया। यदि यह बरारोहा एकान्त-वासिनी भृगु की स्त्री हो तो आप सत्य सत्य कहें, इसका मैं आश्रम से हर ले जाना चाहता हूँ। उस समय का क्रोध आज भी मेरे हृदय को जलाता हुआ वर्तमान है। क्योंकि यह सुमध्यमा मेरी पहले की स्त्री है, भृगु ने इसे पीछे पाया है ॥२४,२५॥ जलते अग्निदेव से इस प्रकार पूछकर वह राक्षस भृगु की स्त्री के सन्देह से बार बार पूछने लगा ॥२६॥ अग्नि आप सब प्राणियों के हृदय में पुण्य पाप के साक्षी रूप से सदा वर्तमान रहते हैं। आप सत्य कहें ॥२७॥ मेरी पहले की स्त्री का असत्याचरण करनेवाले भृगु ने अपहरण किया है। यदि यह वही हो तो आप मुझे सत्य सत्य बतला दें ॥२८॥ "यह भृगु की स्त्री है" यह आपसे जान लेने पर मैं आश्रम से आपके सामने ही इसका हरण करूँगा, आप मेरी इस वाणी को सत्य समझें ॥२९॥ सौति बोले, उस

अग्निरुवाच

त्वया वृता पुलोमेयं पूर्वं दानवनन्दन । किंत्वियं विधिना पूर्वं मंत्रवन्न वृता त्वया ॥३१॥
पित्रा तु भृगवे दत्ता पुलोमेयं यशस्विनी । ददाति न पिता तुभ्यं वरलोभान्महायशाः ॥३२॥
अथेमां वेददृष्टेन कर्मणा विधिपूर्वकम् । भार्यामृषिर्भृगुः प्राप मां पुरस्कृत्य दानव ॥३३॥
सेयमित्यवगच्छामि नानृतं वक्तुमुत्सहे । नानृतं हि सदा लोके पूज्यते दानवोत्तम ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि पुलोमाग्निसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

सौतिरुवाच

अग्नेरथवचः श्रुत्वा तद्रक्षः प्रजहार ताम् । ब्रह्मन्वराहरूपेण मनोमारुतरंहसा ॥१॥
ततः स गर्भो निवसन्कुक्षौ भृगुकुलोद्वहः । रोषान्मातुश्च्युतः कुक्षेश्च्यवनस्तेन सोऽभवत् ॥२॥
तं दृष्ट्वा मातुरुदराच्च्युतमादित्यवर्चसम् । तद्रक्षो भस्मसाद्भूतं पपात परिमुच्य ताम् ॥३॥
सा तमादाय सुश्रोणी ससार भृगुनन्दनम् । च्यवनं भार्गवं पुत्रं पुलोमा दुःखमूर्च्छिता ॥४॥
तां ददर्श स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः। रुदतीं बाष्पपूर्णाक्षीं भृगोर्भार्यामनिन्दिताम् ॥५॥
सांत्वयामास भगवान्वधूं ब्रह्मा पितामहः। अश्रुबिन्दूद्भवा तस्याः प्रावर्तत महानदी ॥६॥

राक्षस के वचन सुनकर अग्निदेव दुःखी हुए। वे असत्य और भृगु के शाप दोनों से डर रहे थे। भृगु की स्त्री कहने से यह हरी जायगी, तब भृगु शाप देंगे, न कहने से असत्य का दोष लगेगा ये ही उन्हें दो भय थे। अतएव वे धीरे से बोले ॥३०॥ अग्निदेव बोले, दानवनन्दन, तुमने पहले इस पुलोमा का वरण किया था पर मन्त्रपूर्वक विधि के साथ इसका वरण नहीं किया था ॥३१॥ इस यशस्विनी पुलोमा का दान पिता ने भृगु को किया, तुम्हें नहीं, क्योंकि यशस्वी पिता को तुमसे अच्छा वर मिल गया ॥३२॥ हे दानव, वैदिक विधान के अनुसार मुझे साक्षी बनाकर भृगु ने स्त्री रूप में इसे पाया है। यह वही है ऐसा मैं समझता हूँ, मैं झूठ नहीं बोल सकता, क्योंकि लोक में झूठ सदा नहीं चलता ॥३४॥

पंचम अध्याय।

भृगुवंश, पुलोमाख्यान, पुलोमा और अग्नि का संवाद ।

सौति बोले, अग्नि के वचन सुनकर मन और वायुके समान वेगवाले उस राक्षस ने शूकर का रूप बनाकर भृगुकी पत्नी का हरण किया ॥१॥ भृगुकुल श्रेष्ठ, माता की कोख में जो गर्भ था, वह क्रोध से अपने स्थान से च्युत हुआ। इस कारण उस गर्भ का नाम "च्यवन" पड़ा ॥२॥ माता की कोखसे गिरा हुआ, सूर्य के समान चमकीला उस गर्भ को देखकर राक्षस ने उस स्त्री को छोड़ दिया और जलकर जमीन पर गिर पड़ा ॥३॥ सुन्दर नितम्बवाली वह पुलोमा दुःखी होकर भृगु-पुत्र च्यवन को लेकर धीरे धीरे वहां से चली ॥४॥ सर्वाङ्गसुन्दरी भृगु की स्त्री को लोक पितामह ब्रह्मा ने रोती हुई देखा। आंसू से उसकी आँखें भर आयीं थीं ॥ ५ ॥ पितामह भगवान् ब्रह्मा ने अपनी बहू को सान्त्वना दी । उसकी आंसू से एक महानदी

आवर्तंतीं सृतिं तस्याः भृगोः पत्न्यास्तपस्विनः । तस्या मार्गं सृतवतीं दृष्ट्वा तु सरितं तदा ॥७॥
नाम तस्यास्तदा नद्याश्चक्रे लोकपितामहः । वधूसरेति भगवांश्च्यवनस्याश्रमं प्रति ॥८॥
स एवं च्यवनो जज्ञे भृगोः पुत्रः प्रतापवान् । तं ददर्श पिता तत्र च्यवनं तां च भामिनीं ।
स पुलोमां ततो भार्यां पप्रच्छ कुपितो भृगुः ॥९॥ भृगुरुवाच
केनासि रक्षसे तस्मै कथिता त्वं जिहीर्षते । नहि त्वां वेद तद्रक्षो मद्भार्यां चारुहासिनीम् ॥१०॥
तत्त्वमाख्याहि तं ह्यद्य शप्तुमिच्छाम्यहं रुषा । विभेति को न शापान्मे कस्य चाद्यं व्यतिक्रमः ॥११॥

पुलोमोवाच

अग्निना भगवंस्तस्मै रक्षसेऽहं निवेदिता । ततो मामनयद्रक्षः क्रोशंतीं कुररीमिव ॥१२॥
साऽहं तव सुतस्यास्य तेजसा परिमोक्षिता। भस्मीभूतं च तद्रक्षो मामुत्सृज्य पपात वै ॥१३॥

सौतिरुवाच

इति श्रुत्वा पुलोमाया भृगुः परममन्युमान्। शशापाग्निमतिक्रुद्धः सर्वभक्षो भविष्यसि ॥१४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि अग्निशापे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सौतिरुवाच

शप्तस्तुभृगुणा वह्निः क्रुद्धो वाक्यमथाब्रवीत् । किमिदं साहसं ब्रह्मन्कृतवानसि मां प्रति ॥१॥
धर्मे प्रयतमानस्य सत्यं च वदतः समम् । पृष्टो यदब्रुवं सत्यं व्यभिचारोऽत्र को मम ॥२॥

बह चली ॥६॥ तपस्वी भृगु की स्त्री का वह नदी अनुसरण कर रही है, उसके पीछे पीछे आरही है । ब्रह्मा ने देखा कि यह नदी वधू का अनुसरण करती है इस कारण लोकपितामह ब्रह्मा ने उस नदी का नाम "वधूसरा" रखा, जो च्यवन के आश्रम के पास से बहती है ॥७-८॥ भृगु के पुत्र प्रतापी च्यवन इस प्रकार उत्पन्न हुए । उस आश्रम में पिताने च्यवन को देखा और वहीं उन्होंने स्त्री को भी देखा अपनी स्त्री पुलोमा से क्रोध करके पूछा ॥९॥ भृगु बोले, हरने के लिए आये हुए उस राक्षस को तुम्हारा परिचय किसने दिया। क्योंकि वह राक्षस यह नहीं जानता कि सुन्दर हंसनेवाली तुम मेरी स्त्री हो ॥१०॥ तुम सच सच बतलाओ, मैं क्रोध से उसे शाप देना चाहता हू । कौन है जो मेरे शापसे नहीं डरता, किसने यह अपराध किया है ॥११॥ पुलोमा बोली, भगवन् अग्नि ने मेरा परिचय उसे दिया, इसीसे कुररी के समान विलाप करती मुझको वह राक्षस हर ले गया ।१२॥ आपके इस पुत्रके तेज से मेरा उद्धार हुआ, वह राक्षस जल गया और मुझे छोड़कर पृथिवी में गिर पड़ा ॥१३॥ सौति बोले, पुलोमा से यह सुनकर भृगु ने अत्यन्त क्रोध किया । उन्होंने क्रोध करके अग्नि को शाप दिया कि तुम सर्वभक्षी होओ ॥१४॥

षष्ठ अध्याय

अग्नि का क्रोधकरके लुप्त होना, ब्रह्मा के समझाने से प्रसन्न होना ।

सौतिबोले—भृगुके शाप देने पर अग्नि क्रोध करके बोले, ब्रह्मन् आपने मुझपर यह क्या अत्याचार किया है, यह आपने बड़ा साहस किया ॥१॥ मैं सदा धर्मानुकूल चलता हूँ सदा

पृष्टो हि साक्षी यः साक्ष्यं जानानोऽप्यन्यथा वदेत्। स पूर्वानात्मनः सप्त कुलं हन्यात्तथाऽपरान् ॥३॥
यश्च कार्यार्थतत्त्वज्ञो जानानोऽपि न भाषते। सोऽपि तेनैव पापेन लिप्यते नात्र संशयः ॥४॥
शक्तोऽहमपि शप्तुं त्वां मान्यास्तु ब्राह्मणा मम। जानतोऽपि च ते ब्रह्मन्कथयिष्ये निबोध तत् ॥५॥
योगेन बहुधात्मानं कृत्वा तिष्ठामि मूर्तिषु। अग्निहोत्रेषु सत्रेषु क्रियासु च मखेषु च ॥६॥
वेदोक्तेन विधानेन मयि यद्धूयते हविः। देवताः पितरश्चैव तेन तृप्ता भवन्ति वै ॥७॥
आपो देवगणाः सर्वे आपः पितृगणास्तथा। दर्शश्च पौर्णमासश्च देवानां पितृभिः सह ॥८॥
देवताः पितरश्चैव भुंजते मयि यद्धुतम्। देवतानां पितॄणां च मुखमेतदहं स्मृतम् ॥१०॥
अमावास्यां हि पितरः पौर्णमास्यां हि देवताः। मन्मुखेनैव हूयन्ते भुंजते च हुतं हविः ॥११॥
सर्वभक्षः कथं त्वेषां भविष्यामि मुखं त्वहम्। सौतिरुवाच
चिन्तयित्वा ततो वह्निश्चक्रे संहारमात्मनः ॥१२॥

द्विजानामग्निहोत्रेषु यज्ञसत्रक्रियासु च। निरोंकारवषट्काराःस्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥१३॥
विनाऽग्निना प्रजाःसर्वास्तत आसन्सुदुःखिताः। अथर्षयः समुद्विग्ना देवान् गत्वा ब्रुवन्वचः ॥१४॥

सत्य बोलता हूँ। अतएव राक्षस के पूछने पर मैंने जो सत्य बातें कह दीं इसमें मेरा अपराध क्या हुआ ॥२॥ कोई साक्षी यथार्थ बातें जानने पर भी साक्ष्य में उल्टी बातें कह दे, यथार्थ बात छिपा ले, वह अपने आगे और पीछे के सातकुलों का नाश कर देता है ॥३॥ जो सब बातें जानता है, और पूछने पर बतलाता नहीं उसे भी वही पाप होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥४॥ आपने मुझे शाप दिया है, मैं भी आपको शाप दे सकता हूँ. पर मैं ब्राह्मणों का सम्मान करता हूँ इसलिए शाप नहीं देता। ब्रह्मन् आप ज्ञानी हैं यह मैं जानता हूं, तथापि जो कुछ मैं कहूँ उसे आप समझें ॥५॥ मैं योग के द्वारा अपने को अनेक रूपों में विभक्त करता हूँ, अनेक रूप धारण करता हूँ। अग्निहोत्र सततयज्ञ, क्रियाएं तथा यज्ञों में अपने उन रूपों से मैं वर्तमान रहता हूँ ॥७॥ वेदोक्त विधिसे जो हवि मुझमें हवन की जाती है, उससे देवता और पितर तृप्त होते हैं ॥७॥ सोम घृत दूध आदि जो अग्निमें हवन किया जाता है वही देवता का रूप धारण करता है वही पितरोंका रूप धारण करता है। "अमावस्या और पौर्णमास" भी देवताओं का पितरों के साथ ही होता है ॥८॥ इस कारण पितर देवता हैं और देवता पितर हैं अर्थात् दोनों एक हैं। वे एक होने पर भी पर्वों पर भिन्नरूप से दीख पड़ते हैं ॥९॥ मुझमें जो हवन किया जाता है वह देवताओं और पितरों को प्राप्त होता है। इसी कारण मैं देवताओं और पितरों का मुख कहा जाता हूँ ॥१०॥ अमावस्या को पितरों के लिए और पूर्णिमा को देवताओं के लिए मेरे मुख में ही हवन किया जाता है और वह देवता तथा पितर खाते हैं ॥११॥ इनका मुख हो कर मैं सर्वभक्षी कैसे हो सकता हूँ। सौति बोले, इसके अनन्तर अग्नि ने ब्राह्मणों के यज्ञ अग्निहोत्र आदि से अपने को हटा लिया। प्रजा ओंकार वषट्कार स्वाहा स्वधा आदि से रहित हो गयी अर्थात् यज्ञ आदि क्रियाएँ बन्द हो गयीं। अग्नि के अभाव से समस्त प्रजाओं को बहुत दुःख हुआ। व्याकुल हो कर ऋषिगण देवताओं से जाकर इसप्रकार

अग्निनाशात् क्रियाभ्रंशाद् भ्रान्ता लोकास्त्रयोऽनघाः। विधध्वमत्र यत्कार्यं न स्यात्कालात्ययो यथा१५॥
अथर्षयश्च देवाश्च ब्रह्माणमुपगम्य तु। अग्नेरावेदयन् शापं क्रियासंहारमेव च ॥१६॥
भृगुणा वै महाभाग शप्तोऽग्निः कारणान्तरे। कथं देवमुखो भूत्वा यज्ञभागाग्रभुक् तथा ॥१७॥
हुतभुक्सर्वलोकेषु सर्वभक्षत्वमेष्यति । श्रुत्वा तु तद्वचस्तेषामग्निमाहूय विश्वकृत् ॥१८॥
उवाच वचनं श्लक्ष्णं भूतभावनमव्ययम्। लोकानामिह सर्वेषां त्वं कर्ता चांत एव च ॥१९॥
त्वं धारयसि लोकांस्त्रीन् क्रियाणां च प्रवर्तकः। स तथा कुरु लोकेश नोच्छिद्येरन्यथा क्रियाः२०॥
कस्मादेवं विमूढस्त्वमीश्वरः सन् हुताशन। त्वं पवित्रं सदा लोके सर्वभूतगतिश्च ह ॥२१॥
न त्वं सर्वशरीरेण सर्वभक्षत्वमेष्यसि। अपाने ह्यर्चिषो यास्ते सर्वं भक्ष्यन्ति ताः शिखिन् ॥२२॥
क्रव्यादा च तनुर्या ते सा सर्वं भक्षयिष्यति। यथा सूर्यांशुभिः स्पृष्टं सर्वं शुचि विभाव्यते ॥२३॥
तथा त्वदर्चिर्निर्दग्धं सर्वं शुचि भविष्यति। त्वमग्ने परमं तेजः स्वप्रभावाद्विनिर्गतम् ॥२४॥
स्वतेजसैव तं शापं कुरु सत्यमृषेर्विभो। देवानां चात्मनो भागं गृहाण त्वं मुखे हुतम् ॥२५॥

सौतिरुवाच

एवमस्त्विति तं वह्निः प्रत्युवाच पितामहम्। जगाम शासनं कर्तुं देवस्य परमेष्ठिनः ॥२६॥

बोले ॥१२-१४॥ हे निष्पापों, अग्नि के न रहने से तथा क्रियाओं के लुप्त होने से तीनों लोक व्याकुल हो गया है। अतएव जो उचित उपाय हो वह आप लोग करें, अधिक बिलम्ब न होने पावे ॥१५॥ अनन्तर ऋषि और देवता ब्रह्मा के पास गये और अग्नि के शाप तथा उनके गुप्त होने की बात उन लोगोंने कही ॥१६॥ महाभाग, किसी कारणविशेष से भृगु ने अग्नि को शाप दिया है। अग्नि देवताओं के मुख हैं, ये यज्ञोंमें अग्रभाग पाते हैं, ये यज्ञ के हवन को खाते हैं, सर्वभक्षी कैसे होंगे। सौति बोले, देवताओं के बचन सुन कर सृष्टिनिर्माता ब्रह्माने अग्नि को बुलाया ॥१७-१८॥ ब्रह्मा भूतभावन अग्नि से मधुर वचन बोले, तुम समस्त लोकों के उत्पादक और संहार करनेवाले हो ॥१९॥ तुम तीनों लोको का धारण करते हो, तुमसे यज्ञ आदि क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं अतएव, हे लोकेश, तुम ऐसा करो, जिससे क्रियाओं का नाश न हो ॥२०॥ हुताशन, आप स्वामी होकर इस प्रकार उदासीन क्यों हो गये हैं, आप सदा पवित्र हैं और सब लोकों के गति हैं ॥२१॥ अग्नि, आप अपनी सब मूर्तियों से सर्वभक्षी न होंगे। आप के पश्चाद्भाग में जो ज्वालाएँ हैं, वेही सर्वभक्षी होंगी ॥२२॥ आपका जो शरीर मांसभक्षी है वही सर्वभक्षी होगा। जिस प्रकार सूर्य की किरणों के सम्पर्क से सभी वस्तुएँ शुद्ध हो जाती हैं, उसी प्रकार आपकी ज्वाला से जलकर सभी पदार्थ शुद्ध हो जायँगे। अग्नि, तुम सर्वोत्कृष्ट तेज हो, अपने प्रभाव से उत्पन्न तेजके द्वारा ही हे विभो, ऋषि के शाप को सत्य बना दो। देवताओं का तथा अपना भाग ग्रहण करो जो तुम्हारे मुख में हवन किया जाता है ॥२३-२५॥ सौति बोले, अग्नि ने ब्रह्मा की बातों को स्वीकार किया और उनकी आज्ञा के अनुसार काम करने के लिए वे वहां से चले आये ॥२६॥ देवता और

देवर्षयश्च मुदितास्ततो जग्मुर्यथागतम्। ऋषयश्च यथापूर्वं क्रियाः सर्वाः प्रचक्रिरे ॥२७॥
दिवि देवा मुमुदिरे भूतसंघाश्च लौकिकाः। अग्निश्च परमां प्रीतिमवाप हतकल्मषः ॥२८॥
एवं स भगवाञ्छापं लेभेऽग्निर्भृगुतः पुरा। एवमेष पुरा वृत्त इतिहासोऽग्निशापजः।
पुलोम्नश्च विनाशोऽयं च्यवनस्य च संभवः ॥२९॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि अग्निशापमोचने सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

सौतिरुवाच

स चापि च्यवनो ब्रह्मन्भार्गवो जनयत्सुतम्। सुकन्यायां महात्मानं प्रमतिं दीप्ततेजसम् ॥१॥
प्रमतिस्तु रुरुं नाम घृताच्यां समजीजनत्। रुरुः प्रमद्वरायां तु शुनकं समजीजनत् ॥२॥
शुनकस्तु महासत्त्वः सर्वभार्गवनंदनः। जातस्तपसि तीव्रे च स्थितः स्थिरयशास्ततः ॥३॥
तस्य ब्रह्मन् रुरोः सर्वं चरितं भूरितेजसः। विस्तरेण प्रवक्ष्यामि तच्छृणु त्वमशेषतः ॥४॥
ऋषिरासीन्महान्पूर्वं तपोविद्यासमन्वितः। स्थूलकेश इतिख्यातः सर्वभूतहिते रतः ॥५॥
एतस्मिन्नेव काले तु मेनकायां प्रजज्ञिवान्। गन्धर्वराजो विप्रर्षे विश्वावसुरिति स्मृतः ॥६॥
अप्सरा मेनका तस्य तं गर्भं भृगुनंदन। उत्ससर्ज यथाकालं स्थूलकेशाश्रमं प्रति ॥७॥

ऋषि भी प्रसन्न होकर जहां से आये थे वहां चले गये और ऋषिगण पहले के समान अपनी समस्त क्रियाएं करने लगे ॥२७॥ स्वर्गलोक में देवता प्रसन्न हुए, लोकनिवासी समस्त प्राणी भी प्रसन्न हुए ॥२८॥ भगवान् अग्निने भृगु से इसी प्रकार शाप पाया था, और यही अग्नि शाप का इतिहास है, जो पहले के समय में हुआ था। इसी प्रकार पुलोमा नामक राक्षस का विनाश और च्यवन की उत्पत्ति हुई थी ॥२९॥

सप्तम अध्याय

रुरु चरित, रुरु से प्रमद्वरा के ब्याह की बातचीत, सांप के काटने से प्रमद्वरा की मृत्यु।

सौति बोले, भगवन्, भृगुपुत्र च्यवन ने भी सुकन्या के गर्भ से अतितेजस्वी प्रमति नामक महात्मा पुत्र उत्पन्न किया ॥१॥ प्रमति ने घृताची के गर्भ से रुरु नामक पुत्र उत्पन्न किया। रुरु ने प्रमद्वरा के गर्भ से शुनक नाम का पुत्र उत्पन्न किया ॥२॥ शुनक बड़ा बली था। समस्त भार्गव कुल को उज्ज्वल करने वाला था। उत्पन्न होने पर इन्होंने कठोर व्रत का दृढ़ता के साथ पालन किया। उनका यश फैला ॥३॥ ब्रह्मन्, अत्यन्त तेजस्वी उस रुरु का समस्त चरित्र विस्तार पूर्वक मैं कहूँगा। आप वह सब सुनें ॥४॥ पहले जमाने में स्थूलकेश नामक एक बड़े ऋषि थे, वे तपस्वी और विद्वान थे। सब प्राणियों के हित करने में तत्पर रहते थे ॥५॥ हे विप्रर्षि, इसी समय गन्धर्वराज विश्वावसु से मेनका को गर्भ रहा ॥६॥ उस मेनका अप्सरा ने उस गर्भ को स्थूलकेश के आश्रम के पास त्याग किया ॥७॥ निर्लज्ज और निर्दय वह मेनका अप्सरा गर्भ को नदी-



प्रमद्वरा और सर्प

Prabasi Press, Calcutta.

उत्सृज्य चैव तं गर्भं नद्यास्तीरे जगाम सा । अप्सरा मेनका ब्रह्मन्निर्दया निरपत्रपा ॥ ८॥
कन्याममरगर्भाभां ज्वलन्तीमिव च श्रिया । तां ददर्श समुत्सृष्टां नदीतीरे महानृषिः ॥ ९॥
स्थूलकेशः स तेजस्वी विजने बन्धुवर्जिताम् । स तां दृष्ट्वा तदा कन्यां स्थूलकेशो महाद्विजः ॥१०॥
जग्राह च मुनिश्रेष्ठः कृपाविष्टः पुपोष च । ववृधे सा वरारोहा तस्याश्रमपदे शुभे ॥११॥
जातकाद्याः क्रियाश्चास्या विधिपूर्वं यथाक्रमम् । स्थूलकेशो महाभागश्चकार सुमहानृषिः ॥१२॥
प्रमदाभ्यो वरा सा तु सत्त्वरूपगुणान्विता । ततः प्रमद्वरेत्यस्या नाम चक्रे महानृषिः ॥१३॥
तामाश्रमपदे तस्य रुरुर्दृष्ट्वा प्रमद्वराम् । बभूव किल धर्मात्मा मदनोपहतस्तदा ॥१४॥
पितरं सखिभिः सोऽथ श्रावयामास भार्गवम् । प्रमतिश्चाभ्ययाचत्तां स्थूलकेशं यशस्विनम् ॥१५॥
ततः प्रादात्पिता कन्यां रुरवे तां प्रमद्वराम् । विवाहं स्थापयित्वाग्रे नक्षत्रे भगदैवते ॥१६॥
ततः कतिपयाहस्य विवाहे समुपस्थिते । सखीभिः क्रीडती सार्धं सा कन्या वरवर्णिनी ॥१७॥
नापश्यत्संप्रसुप्तं वै भुजंगं तिर्यगायतम् । पदा चैनं समाक्रामन्मुमूर्षुः कालचोदिता ॥१८॥
स तस्याः संप्रमत्तायाश्चोदितः कालधर्मणा । विषोपलिप्तान्दशनान्भृशमङ्गे न्यपातयत् ॥१९॥
सा दष्टा तेन सर्पेण पपात सहसा भुवि । विवर्णा विगतश्रीका भ्रष्टाभरणचेतना ॥२०॥
निरानंदकरी तेषां बन्धूनां मुक्तमूर्धजा । व्यसुरप्रेक्षणीया सा प्रेक्षणीयतमाऽभवत् ॥२१॥

तीर पर छोड़कर चली गयी ॥८॥ देवकुमारी के समान प्रभा से चमकती हुई और नदी तीर पर छोड़ी गयी उस कन्या को उन महान् ऋषि ने देखा ॥९॥ तेजस्वी महाद्विज स्थूलकेश ने निर्जन स्थान में बन्धुबान्धवहीन कन्या को पड़ी देखा। कृपापरवश होकर उन्होंने उसे उठाया और वे उसका पालन करने लगे। वह सुन्दरी कन्या उस पवित्र आश्रम में बढ़ने लगी ॥१०-११॥ महर्षि स्थूलकेश ने उस कन्या के जातसंस्कार आदि क्रियाएँ विधिपूर्वक तथा क्रम से कीं। वह प्रमदाओं से (स्त्रियों से) वर (श्रेष्ठ) थी, रूप गुण तथा बल युक्त थी इस कारण ऋषि ने उसका प्रमद्वरा नाम रखा ॥१३॥ उस महर्षि के आश्रम में प्रमद्वरा को देखकर धर्मात्मा रुरु कामवश हुए ॥१४॥ उन्होंने अपना अभिप्राय साथियों के द्वारा पिता को सुनाया। प्रमति ने यशस्वी स्थूलकेश से उस कन्या की प्रार्थना की ॥१५॥ अनन्तर पिता ने पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में विवाह का समय निश्चित करके प्रमद्वरा नाम की कन्या रुरु को दी ॥१६॥ जब विवाह के थोड़े ही दिन बाकी थे, उस समय वह सर्वांग सुन्दरी कन्या सखियों के साथ खेल रही थी। बगल से लम्बे पड़े सर्प को उसने नहीं देखा और उस पर पैर रख दिया। वह कन्या कालप्रेरित होकर मरना चाहती थी ॥१७-१८॥ उस मस्त लड़की के शरीर में काल से प्रेरित उस सर्प ने अपने विषैले दांत चुभा दिए ॥१९॥ सांप के काटने से वह शीघ्र ही पृथिवी पर गिर पड़ी। उसका रंग बिगड़ गया। शोभा जाती रही। गहने अलग हो गये और वह बेहोश हो गयी ॥२०॥ उसके बाल खुल गये। निष्प्राण होने के कारण जो अत्यन्त सुन्दरी थी वह कुरूप होगयी और अपने बान्धवों को आनन्द-हीन बनाने लगी ॥२१॥ सर्पविष से पीड़ित होकर वह सोती के समान पृथिवी पर पड़ी थी।

प्रसुप्तेवाभवच्चापि भुवि सर्पविषार्दिता । भूयो मनोहरतरा बभूव तनुमध्यमा ॥२२॥
ददर्श तां पिता चैव ये चैवान्ये तपस्विनः । विचेष्टमानां पतितां भूतले पद्मवर्चसम् ॥२३॥
ततः सर्वे द्विजवराः समाजग्मुः कृपान्विताः । स्वस्त्यात्रेयो महाजानुः कुशिकः शंखमेखलः ॥२४॥
उद्दालकः कठश्चैव श्वेतश्चैव महायशाः । भरद्वाजः कौणकुत्स्य आर्ष्टिषेणोऽथ गौतमः ॥२५॥
प्रमतिः सह पुत्रेण तथान्ये वनवासिनः । तां ते कन्यां व्यसुं दृष्ट्वा भुजङ्गस्य विषार्दिताम् ॥२६॥
रुरुदुः कृपयाऽऽविष्टा रुरुस्त्वार्तो बहिर्ययौ । ते च सर्वे द्विजश्रेष्ठास्तत्रैवोपाविशंस्तदा ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि प्रमद्वरासर्पदंशे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

सौतिरुवाच

तेषु तत्रोपविष्टेषु ब्राह्मणेषु महात्मसु । रुरुश्चुक्रोश गहनं वनं गत्वाऽतिदुःखितः ॥१॥
शोकेनाभिहतः सोऽथ विलपन्करुणं बहु । अब्रवीद्वचनं शोचन् प्रियां स्मृत्वा प्रमद्वराम् ॥२॥
शेते सा भुवि तन्वंगी मम शोकविवर्धिनी । बांधवानां च सर्वेषां किं नु दुःखमतः परम् ॥३॥
यदि दत्तं तपस्तप्तं गुरवो वा मया यदि । सम्यगाराधितास्तेन संजीवतु मम प्रिया ॥४॥
यथा च जन्मप्रभृति यतात्माऽहं धृतव्रतः । प्रमद्वरा तथाद्यैषा समुत्तिष्ठतु भामिनी ॥५॥

वह तनुमध्या (पतली कमर वाली) उस समय भी देखने में सुन्दर मालूम होती थी ॥२२॥ पिता तथा और जो तपस्वी वहाँ थे, कमलकान्तिवाली उस कन्या को उन लोगों ने पृथिवी में छटपटाते हुए देखा ॥२३॥ अनन्तर, सभी ब्राह्मणश्रेष्ठ कृपापरवश होकर वहीं आए। स्वस्ति, आत्रेय, महाजानु, कुशिक, शंखमेखल, उद्दालक, कठ, महायस्वी श्वेत, भरद्वाज, कौणकुत्स्य आर्ष्टि-षेण गौतम तथा पुत्र के साथ प्रमति वहां आये। अन्य वनवासी भी आये। सर्पके विष से पीड़ित होकर मरी हुई कन्या को उनलोगों ने देखा ॥२४,२५,२६॥ सब कृपापरवश होकर रोने लगे। रुरु अत्यन्त दुःखी होकर वहाँ से बाहर चला गया। वे सब ब्राह्मणश्रेष्ठ वहीं बैठ गये ॥२७॥

अष्टम अध्याय

देवदूत के कहने से रुरु का अपनी आधी आयु देकर प्रमद्वरा को जिलाना और उससे रुरु का विवाह।

सौति बोले, महात्मा ब्राह्मणों के वहां बैठ जाने पर रुरु सघन बनमें जाकर बड़े दुख से विलाप करने लगे ॥१॥ शोक से आहत दीनता पूर्वक विलाप करते हुए प्रिया प्रमद्वरा का स्मरण करके वे बोले ॥२॥ वह तन्वंगी जमीन में सो रही हैं जिससे मेरा शोक बढ़ता है। इससे बढ़कर समस्त बान्धवों को और क्या दुख हो सकता है ॥३॥ यदि मैंने दान दिया है, तपस्या की है तथ गुरुओं की सद्भाव से आराधना की है तो इन सब के पुण्यों से मेरी प्रिया जी जाय ॥४॥ यदि जन्म से लेकर मैंने ब्रह्मचर्यव्रत का धारण किया है, यदि दृढ़तापूर्वक व्रतों का पालन किया है, तो भामिनी प्रमद्वरा जी उठे ॥५॥ इस प्रकार दुखित होकर भार्या के लिए

एवं लालप्यतस्तस्य भार्यार्थे दुःखितस्य च । देवदूतस्तदाभ्येत्य वाक्यमाह रुरुं वने ॥६॥

देवदूत उवाच

अभिधत्से ह यद्वाचा रुरो दुःखान्न तन्मृषा । यतो मर्त्यस्य धर्मात्मन्नायुरस्ति गतायुषः ॥७॥

गतायुरेषा कृपणा गंधर्वाप्सरसोः सुता । तस्माच्छोके मनस्तात मा कृथास्त्वं कथंचन ॥८॥

उपायश्चात्र विहितः पूर्वं देवैर्महात्मभिः । तं यदीच्छसि कर्तुं त्वं प्राप्स्यसीह प्रमद्वराम् ॥९॥

रुरुरुवाच

क उपायः कृतो देवैर्ब्रूहि तत्वेन खेचर । करिष्येऽहं तथा श्रुत्वा त्रातुमर्हति मां भवान् ॥१०॥

देवदूत उवाच

आयुषोऽर्धं प्रयच्छ त्वं कन्यायै भृगुनन्दन । एवमुत्थास्यति रुरो तव भार्या प्रमद्वरा ॥११॥

रुरुरुवाच

आयुषोऽर्धं प्रयच्छामि कन्यायै खेचरोत्तम । शृङ्गाररूपाभरणा समुत्तिष्ठतु मे प्रिया ॥१२॥

सौतिरुवाच

ततो गन्धर्वराजश्च देवदूतश्च सत्तमौ । धर्मराजमुपेत्येदं वचनं प्रत्यभाषताम् ॥१३॥

धर्मराजायुषोर्धेन रुरोर्भार्या प्रमद्वरा । समुत्तिष्ठतु कल्याणी मृतैवं यदि मन्यसे ॥१४॥

धर्मराज उवाच

प्रमद्वरां रुरोर्भार्यां देवदूत यदीच्छसि । उत्तिष्ठत्वायुषोऽर्धेन रुरोरेव समन्विता ॥१५॥

विलाप करते हुए रुरु से उस बन में आकर देवदूत बोला ॥६॥ रुरु, जो तुम दुख से बोल रहे हो वह सब निष्फल है। क्योंकि धर्मात्मन्, मरे हुए मनुष्य की आयु नहीं रहती। अर्थात् जो मर जाता है वह जी नहीं सकता ॥७॥ गन्धर्व और अप्सरा की कन्या इस विचारी की आयु खतम हो गयी है। अतएव भाई, अब इसके लिए तुम किसी प्रकार का शोक मत करो॥८॥ इस अवस्था के लिए भी प्राचीन देवताओं और महात्माओं ने उपाय बतलाये हैं। यदि तुम उस उपाय को कर सको तो इस प्रमद्वरा को पा सकते हो ॥९॥ रुरु बोले, देवताओं ने कौनसा उपाय बतलाया है। हे खेचर, वह ठीक ठीक तुम मुझे बतलाओ। तुमसे जैसा ही मैं सुनूँगा, वैसा ही करूँगा। तुमको मेरी रक्षा करनी चाहिए ॥१०॥ देवदूत बोला, भृगुनन्दन, तुम इस कन्या को अपनी आधी आयु दो, ऐसा करने से तुम्हारी भार्या यह प्रमद्वरा जी जायगी ॥११॥ रुरु बोले, हे देवदूत मैं अपनी आधी आयु इस कन्या को देता हूँ। इससे मेरी प्रिया जिसका भूषण शृंगार और सौन्दर्य है, जीवित हो जाय ॥१२॥ सौति बोले, अनन्तर गन्धर्वराज (प्रमद्वरा के पिता) और देवदूत दोनों धर्मराज के पास जाकर इस प्रकार बोले ॥१३॥ धर्मराज, रुरु की आधी आयु से उसकी भार्या प्रमद्वरा यदि आप उचित समझें तो जी जाय, जो मर गयी है ॥१४॥ धर्मराज बोले, देवदूत यदि तुम चाहते हो तो रुरु की भार्या प्रमद्वरा उसकी आधी आयु से जी जाय ॥१५॥ सौति बोले,

सौतिरुवाच

एवमुक्ते ततः कन्या सोदतिष्ठत्प्रमद्वरा । रुरोस्तस्यायुषोऽर्धेन सुप्तेव वरवर्णिनी ॥१६॥
एतद्दृष्टं भविष्येहि रुरोरुत्तमतेजसः । आयुषोऽतिप्रवृद्धस्य भार्यार्थेऽर्धमलुप्यत ॥१७॥
तत इष्टेऽहनि तयोः पितरौ चक्रतुर्मुदा । विवाहं तौ च रेमाते परस्परहितैषिणौ ॥१८॥
स लब्ध्वा दुर्लभां भार्यां पद्म किंजल्कसुप्रभाम् । व्रतं चक्रे विनाशाय जिह्मगानां धृतव्रतः ॥१९॥
स दृष्ट्वा जिह्मगान् सर्वांस्तीव्रकोपसमन्वितः। अभिहन्ति यथासत्त्वं गृह्य प्रहरणं सदा ॥२०॥
स कदाचिद्वनं विप्रो रुरुरभ्यागमन्महत् । शयानं तत्र चापश्यत् डुंडुभं वयसाऽन्वितम् ॥२१॥
तत उद्यम्य दण्डं स कालदंडोपमं तदा । जिघांसुः कुपितो विप्रस्तमुवाचाथ डुंडुभः ॥२२॥
नापराध्यामि ते किंचिदहमद्य तपोधन । संरम्भाच्च किमर्थं मामभिहंसि रुषाऽन्वितः ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि प्रमद्वराजीवने नवमोऽध्यायः ॥९॥

रुरुरुवाच

मम प्राणसमा भार्या दष्टासीद्भुजगेन ह । तत्र मे समयो घोर आत्मनोरग वै कृतः ॥१॥
भुजंगं वै सदा हन्यां यं यं पश्येयमित्युत । ततोऽहं त्वां जिघांसामि जीवितेनाद्य मोक्ष्यसे ॥२॥

धर्मराज के ऐसा कहने पर वह कन्या प्रमद्वरा रुरु की आधी आयु से जी उठी। मानो सोकर उठी हो ॥१६॥ उत्तम तेजस्वी रुरुकी लम्बी आयु की आधा भाग स्त्री के लिए इस प्रकार कम हो गया ॥१७। अनन्तर उन दोनों के पिताओं ने नियत समय पर प्रसन्नतापूर्वक दोनों का विवाह कर दिया और वे परस्पर हिताकांक्षी हो कर रमण करने लगे ॥१८॥ कमल के फूल के वर्ण के समान वर्णवाली भार्या को पाकर; दृढ़तापूर्वक व्रत करने वाले रुरु ने सर्पों के नाश के लिए व्रत करना प्रारम्भ किया ॥१९॥ वह सांपों को देख कर अत्यन्त क्रोधित हो जाते और लाठी लेकर अपने पूरे बल से उनको मारते ॥२०॥ ब्राह्मण रुरु किसी समय एक बड़े बन में गये और वहां उन्होंने बूढ़े डुण्डुभ सर्प (जलका विषहीन सांप) को सोता देखा ॥२१॥ उन्होंने क्रोध करके मारने के लिए कालदण्ड के समान डण्डा उठाया। यह देखकर वह डुण्डुभ सर्प उनसे बोला ॥२२॥ तपोधन, आज मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया। फिर तुम मुझे क्यों मारना चाहते हो। तुम इतने क्यों क्रोधित हो ॥२३॥

नवम अध्याय

रुरु और डुण्डुभ का संवाद।

रुरु बोले, प्राणके समान प्रिय मेरी भार्या को सांपने काटा था। सर्प, उसी समय से मैंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि जिस किसी सांप को मैं देखूंगा उसको अवश्य मारूँगा। अतएव मैं तुमको मारना चाहता हूँ। आज तुम्हारा अपने प्राणों से साथ छूटेगा ॥१,२॥ डुण्डुभ बोला,



रुरु ओर डुण्डुभ

डुंडुभ उवाच

अन्ये ते भुजगा ब्रह्मन् ये दशंतीह मानवान् । डुंडुभानहिगन्धेन न त्वं हिंसितुमर्हसि ॥३॥

एकानर्थान्पृथगर्थानेकदुःखान्पृथक्सुखान् । डुंडुभान् धर्मविद्भूत्वा न त्वं हिंसितुमर्हसि ॥४॥

सौतिरुवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य भुजगस्य रुरुस्तदा । नावधीद्भयसंविग्नमृषिं मत्वाऽथ डुंडुभम् ॥५॥

उवाच चैनं भगवान् रुरुः संशमयन्निव । केन त्वं भुजग ब्रूहि कोऽसीमां विक्रियां गतः ॥६॥

डुण्डुभ उवाच

अहं पुरा रुरो नाम्ना ऋषिरासं सहस्रपात् । सोहं शापेन विप्रस्य भुजगत्वमुपागतः ॥७॥

रुरुरुवाच

किमर्थं शप्तवान् क्रुद्धो द्विजस्त्वां भुजगोत्तम । कियन्तं चैव कालं ते वपुरेतद्भविष्यति ॥८॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि रुरुडुंडुभसंवादे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

डुण्डुभ उवाच

सखा बभूव मे पूर्वं खगमो नाम वै द्विजः । भृशं संशितवाक् तात तपोबलसमन्वितः ॥१॥

स मया क्रीडता बाल्ये कृत्वा तार्णं भुजंगमम् । अग्निहोत्रे प्रसक्तस्तु भीषितः प्रमुमोह वै ॥२॥

ब्राह्मण, वे सर्प दूसरे हैं जो मनुष्यों को काटते हैं । सर्प के समान होने के कारण तुमको डुण्डुभों को नहीं मारना चाहिए ॥३॥ तुम धर्मात्मा हो तुम्हें डुण्डुभों को नहीं मारना चाहिए । क्योंकि सर्पों के समान होने पर भी इनका धर्म दूसरा है । ये प्राणियों को काटते नहीं पर अन्य सर्पों के समान ये मारे जाते हैं । ये भी सर्पों के दुखों को भोगते हैं, पर उनके सुख के अधिकारी नहीं होते । साधारण लोगों को यही समझ है, पर तुम तो धर्मात्मा हो । तुम्हें तो ऐसा नहीं करना चाहिए । जिसका अपराध हो उसीको दण्ड देना चाहिए ॥४॥ सौति बोले, सर्प के बचन सुन कर रुरु भयभीत हो गया । उसने उस सर्प को कोई ऋषि समझा अतएव नहीं मारा ॥५॥ भगवान रुरु उस सर्प को धैर्य देकर बोले, हे सर्प, तुम यथार्थ मुझ से कहो । तुम इस योनि में पड़े हुए कौन हो ॥६॥ डुण्डुभ बोले, मैं पहले सहस्रपात नामक ऋषि था । ब्राह्मण के शाप से सर्प हो गया हूँ ॥७॥ रुरु बोले, हे सर्पश्रेष्ठ, ब्राह्मणने तुम्हें क्यों शाप दिया ? कितने दिनों तक तुमको यह सर्पशरीर धारण करना पड़ेगा ॥८॥

दशम अध्याय

डुण्डुभ चरित

डुण्डुभ बोला, ब्राह्मण पहले खगम नाम का मेरा एक मित्र था । उसका बचन बड़ा कठोर होता था । वह तपस्वी और बली था ॥१॥ बाल्यावस्था में खेल करते हुए मैंने तृण का सांप बनाकर उसे डरवा दिया । उस समय वह अग्निहोत्र कर रहा था । वह बेहोश हो गया ॥२॥ होश आने पर वह तपस्वी क्रोध से मानों मुझे जला रहा हो ऐसा बोला, उसकी वाणी सत्य थी । उसका

लब्ध्वा स च पुनः संज्ञां मामुवाच तपोधनः। निर्दहन्निव कोपेन सत्यवाक्संशितव्रतः ॥३॥
यथावीर्यस्त्वया सर्पः कृतोऽयं मद्विभीषया। तथावीर्यो भुजंगस्त्वं मम शापाद्भविष्यसि ॥४॥
तस्याहं तपसो वीर्यं जानन्नासं तपोधन। भृशमुद्विग्नहृदयस्तमवोचमहं तदा ॥५॥
प्रणतः सम्भ्रमाच्चैव प्रांजलिः पुरतः स्थितः। सखेति हसतेदं ते नर्मार्थं वै कृतं मया ॥६॥
क्षंतुमर्हसि मे ब्रह्मन् शापोऽयं विनिवर्त्यताम्। सोऽथ मामब्रवीद्दृष्ट्वा भृशमुद्विग्नचेतसम् ॥७॥
मुहुरुष्णां विनिःश्वस्य सुसंभ्रान्तस्तपोधनः। नानृतं वै मया प्रोक्तं भवितेदं कथंचन ॥८॥
यत्तु वक्ष्यामि ते वाक्यं श्रृणु तन्मे तपोधन। श्रुत्वा च हृदि ते वाक्यमिदमस्तु सदाऽनघ ॥९॥
उत्पत्स्यति रुरुर्नाम प्रमतेरात्मजः शुचिः। तं दृष्ट्वा शापमोक्षस्ते भविता न चिरादिव ॥१०॥
स त्वं रुरुरितिख्यातः प्रमतेरात्मजोऽपि च। स्वरूपं प्रतिपद्याहमद्य वक्ष्यामि ते हितम् ॥११॥
स डौंडुभं परित्यज्य रूपं विप्रर्षभस्तदा। स्वरूपं भास्वरं भूयः प्रतिपेदे महायशाः ॥१२॥
इदं चोवाच वचनं रुरुमप्रतिमौजसम्। अहिंसा परमो धर्मः सर्वप्राणभृतांवर ॥१३॥
तस्मात्प्राणभृतःसर्वान्न हिंस्याद् ब्राह्मणःक्वचित्। ब्राह्मणः सौम्य एवेह भवतीति परा श्रुतिः॥१४॥
वेदवेदांगविन्नाम सर्वभूताभयप्रदः। अहिंसा सत्यवचनं क्षमा चेति विनिश्चितम् ॥१५॥
ब्राह्मणस्य परो धर्मो वेदानां धारणाऽपि च। क्षत्रियस्य हि यो धर्मः सहि नेष्येत वै तव ॥१६॥

व्रत उग्र था ॥३॥ मुझे डराने के लिए जिस तरह का सांप बनाया है उसी तरह का सांप मेरे शाप से तुम होओगे। अर्थात् तुम्हारा बनाया सर्प जिस प्रकार विषहीन है, बलहीन है, वैसा ही सर्प तुम बनोगे ॥४॥ हे तपोधन, मैं उसकी तपस्या का प्रभाव जानता था। मैं बहुत ही व्याकुल होकर उस समय उससे बोला, ॥५॥ मैंने शीघ्रता पूर्वक उसे प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर उसके सामने खड़ा हो गया। मित्र, बिना बिचारे मैंने हंसी के लिए ऐसा किया है ॥६॥ ब्रह्मन्, आप मुझे क्षमा करें। अपना शाप हटा लें। मुझको बहुत व्याकुल देखकर वह मुझसे बोला ॥७॥ बार बार गरम सांस लेकर वह तपस्वी क्रोध से बोला, मेरा कहा हुआ यह बचन कभी असत्य नहीं हो सकता ॥८॥ हे तपोधन, मैं जो कहता हूँ वह तुम सुनो और सुनकर उसे सदा याद रखो ॥९॥ प्रमति के रुरु नाम का पुत्र होगा जो बड़ा पवित्र होगा, उसका दर्शन करते ही तुम शीघ्र मेरे शाप से छुटकारा पा जाओगे ॥१०॥ तुम वही रुरु के नाम से प्रसिद्ध प्रमति के पुत्र हो। अब शाप मुक्त होकर तथा अपना पूर्वरूप धारण कर मैं तुम्हें हितोपदेश करूँगा। उस महायशस्वी ब्राह्मण श्रेष्ठ ने डुण्डुभ का रूप छोड़कर अपना पुराना उज्ज्वल रूप धारण किया ॥१२॥ तेजस्वी रुरु से उसने यह कहा, अहिंसा परम धर्म है। आप सब प्राणियों में श्रेष्ठ हैं, अतएव आपके लिए तो यह अत्यन्त आवश्यक है ॥१३॥ अतएव ब्राह्मण को चाहिए कि वह किसी को भी हिंसा न करे। ब्राह्मण को सौम्य होना चाहिए यही श्रुति का उपदेश है ॥१४॥ वेद वेदांगों का ज्ञान, प्राणिमात्र को अभयदान, अहिंसा, सत्य और क्षमा यह ब्राह्मणों का परमधर्म है। तथा वेदों का धारण करना भी ब्राह्मणों का धर्म है। क्षत्रिय का जो धर्म है वह तुम्हारे लिए

दंडधारणमुग्रत्वं प्रजानां परिपालनम्। तदिदं क्षत्रियस्यासीत्कर्म वै शृणु मे रुरो ॥१७॥
जनमेजयस्य यज्ञेऽस्मिन् सर्पाणां हिंसनं पुरा। परित्राणं च भीतानां सर्पाणां ब्राह्मणादपि ॥१८॥
तपोवीर्यबलोपेताद्वेदवेदांगपारगात् । आस्तीकाद्द्विजमुख्याद्वै सर्पसत्रे द्विजोत्तम ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि डुण्डुभशापमोक्षे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

रुरुरुवाच

कथं हिंसितवान् सर्पान् स राजा जनमेजयः। सर्पा वा हिंसितास्तत्र किमर्थं द्विजसत्तम ॥१॥
किमर्थं मोक्षिताश्चैव पन्नगास्तेन धीमता। आस्तीकेन द्विजश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥२॥

ऋषिरुवाच

श्रोष्यसि त्वं रुरो सर्वमास्तीकचरितं महत्। ब्राह्मणानां कथयतामित्युक्त्वान्तरधीयत ॥३॥

सौतिरुवाच

रुरुश्चापि वनं सर्वं पर्यधावत्समन्ततः । तमृषिं नष्टमन्विच्छन्संश्रान्तो न्यपतद्भुवि ॥४॥
स मोहं परमं गत्वा नष्टसंज्ञ इवाभवत् । तदृषेर्वचनं तथ्यं चिन्तयानः पुनः पुनः ॥५॥
लब्धसंज्ञो रुरुश्चायात्तदाचख्यौ पितुस्तदा । पिता चास्य तदाख्यानं पृष्टः सर्वं न्यवेदयत् ॥६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि सर्पसत्रप्रस्तावनायां द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

उचित नहीं है ॥१५,१६॥ दण्ड देना, कठोर होना, प्रजा का पालन करना यह सब क्षत्रिय के धर्म हैं। रुरु मुझ से सुनो ॥१७॥ जनमेजय के इस यज्ञ में सर्पों की हिंसा होगी और डरे हुए सर्पों की रक्षा एक ब्राह्मण के द्वारा होगी। तपस्या, बल, वीर्य से युक्त वेद वेदांग के ज्ञाता ब्राह्मण श्रेष्ठ आस्तीक सर्पयज्ञ में सर्पों की रक्षा करेंगे ॥१८,१९॥

एकादश अध्याय

सर्पयज्ञ की तैयारी

रुरु बोले, राजा जनमेजय ने सर्पों को कैसे मारा था। ब्राह्मणश्रेष्ठ, उस यज्ञ में उन्होंने सर्पों को क्यों मारा था ॥१॥ द्विजश्रेष्ठ, बुद्धिमान आस्तीक ने उन सर्पों को क्यों छुड़ाया। यह सब मैं सुनना चाहता हूँ ॥२॥ ऋषि बोले, रुरु, यह महान् आस्तीकचरित तुम ब्राह्मणों के मुंह से सुनोगे। वे तुमसे कहेंगे। ऐसा कहकर वे चले गये ॥३॥ सौती बोले—रुरु उस समूचे वन में उन ऋषि को ढूंढ़ने के लिये दौड़ा फिरा, अन्त में थक कर वह पृथिवी पर गिर पड़ा ॥४॥ वह बहुत ही थक गया था और ऋषि के बचनों को सोचता हुआ वह बेहोश सा हो गया था ॥५॥ होश आने पर रुरु ने अपने पिता से वह बात पूछी। पूछे जाने पर, पिता ने वह समस्त आख्यान उससे कहा ॥६॥

द्वादश अध्याय

आस्तीकपर्व

शौनक उवाच

किमर्थं राजशार्दूलः स राजा जनमेजयः। सर्पसत्रेण सर्पाणां गतोऽन्तं तद्वदस्व मे ॥१॥

निखिलेन यथातत्त्वं सौते सर्वमशेषतः। आस्तीकश्च द्विजश्रेष्ठः किमर्थं जपतांवरः॥२॥

मोक्षयामास भुजगान् प्रदीप्ताद्वसुरेतसः। कस्य पुत्रः स राजासीत्सर्पसत्रं य आहरत् ॥३॥

सच द्विजातिप्रवरः कस्य पुत्रोऽभिधत्स्व मे। सौतिरुवाच

महदाख्यानमास्तीकं यथैतत्प्रोच्यते द्विज ॥४॥

सर्वमेतदशेषेण शृणु मे वदतां वर। शौनक उवाच

श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण कथामेतां मनोरमाम् ॥५॥

आस्तीकस्य पुराणर्षेर्ब्राह्मणस्य यशस्विनः। सौतिरुवाच

इतिहासमिमं विप्राः पुराणं परिचक्षते ॥६॥

कृष्णद्वैपायनप्रोक्तं नैमिषारण्यवासिषु। पूर्वं प्रचोदितः सूतः पिता मे लोमहर्षणः ॥७॥

शिष्यो व्यासस्य मेधावी ब्राह्मणेष्विदमुक्तवान्। तस्मादहमुपश्रुत्य प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥८॥

इदमास्तीकमाख्यानं तुभ्यं शौनक पृच्छते। कथयिष्याम्यशेषेण सर्वपापप्रणाशनम् ॥९॥

आस्तीक और जरत्कारु का उपाख्यान। जरत्कारु का अपने पितरों से संवाद।

शौनक बोले, राजश्रेष्ठ राजा जनमेजय सर्पयज्ञ में सर्पों को क्यों मारना चाहते थे। यह तुम मुझ से कहो ॥१॥ सूतपुत्र, यह सब ठीक ठीक तुम मुझसे कहो, द्विजश्रेष्ठ, ब्राह्मणों तथा यज्ञ करनेवालों में श्रेष्ठ आस्तीक ने जलते हुए अग्नि से सर्पों की रक्षा क्यों की? वह राजा किसका पुत्र था जिसने सर्प यज्ञ किया ॥२,३॥ और वह ब्राह्मणश्रेष्ठ किसका पुत्र था, यह तुम मुझ से कहो। सौती बोले, यह आस्तीक का आख्यान बहुत बड़ा है। जिस प्रकार यह कहा जाता है ॥४॥ हे वाग्मीश्रेष्ठ, आप यह समस्त मुझसे सुनें। शौनक बोले, इस समस्त मनोहर कथा को मैं सुनना चाहता हूं। प्राचीन ऋषि, यशस्वी ब्राह्मण आस्तीक का चरित मैं सुनना चाहता हूँ। सौती बोले, नैमिषारण्यवासियों के प्रति कृष्णद्वैपायन के कहे हुए इस इतिहास को ब्राह्मण पुराण कहते हैं। मेरे पिता लोमहर्षण जो व्यास के बुद्धिमान शिष्य थे। उन्होंने ब्राह्मणों के पूछने पर यह कथा उनसे कही थी। अपने पिता से सुनी हुई वह कथा आपलोगों को मैं क्रम के अनुसार कहूँगा। शौनक, यह आस्तीक का आख्यान जो पापों को नष्ट करनेवाला है, आपके पूछने पर मैं कहूँगा ॥५-९॥ आस्तीक के पिता ब्रह्मचारी, अल्पाहारी और कठोर तपस्या करनेवाले

आस्तीकस्य पिता ह्यासीत्प्रजापतिसमः प्रभुः । ब्रह्मचारी यताहारस्तपस्युग्रे रतः सदा ॥१०॥
जरत्कारुरिति ख्यात उर्ध्वरेता महातपाः । यायावराणां प्रवरो धर्मज्ञः संशितव्रतः ॥११॥
स कदाचिन्महाभागस्तपोबलसमन्वितः । चचार पृथिवीं सर्वां यत्र सायंगृहो मुनि ॥१२॥
तीर्थेषु च समाप्लावं कुर्वन्नटति सर्वशः । चरन्दीक्षां महातेजा दुश्चरामकृतात्मभिः ॥१३॥
वायुभक्षो निराहारः शुष्यन्ननिमिषो मुनिः । इतस्ततः परिचरन्दीप्तपावकसप्रभः ॥१४॥
अटमानः कदाचित्स्वान्स ददर्श पितामहान् । लंबमानान्महागर्ते पादैरूर्ध्वैरवाङ्मुखान् ॥१५॥
तानब्रवीत्स दृष्ट्वैव जरत्कारुः पितामहान् । के भवन्तोऽवलम्बन्ते गर्ते ह्यस्मिन्नधोमुखाः ॥१६॥
वीरणस्तंबके लग्नाः सर्वतः परिभक्षिते । मूषकेन निगूढेन गर्तेऽस्मिन्नित्यवासिना ॥१७॥

पितर ऊचुः

यायावरा नाम वयमृषयः संशितव्रताः । संतानप्रक्षयाद्ब्रह्मन्नधो गच्छाम मेदिनीम् ॥१८॥
अस्माकं सन्ततिस्त्वेको जरत्कारुरिति स्मृतः। मन्दभाग्योऽल्पभाग्यानां तप एकं समास्थितः॥१९॥
न स पुत्रान् जनयितुं दारान्मूढश्चिकीर्षति। तेन लंबामहे गर्ते संतानस्य क्षयादिह ॥२०॥
अनाथास्तेन नाथेन यथा दुष्कृतिनस्तथा । कस्त्वं बंधुरिवास्माकमनुशोचसि सत्तम ॥२१॥

थे। वे प्रजापति के समान थे। वे महातपस्वी, ऊर्ध्वरेता थे। उनका नाम जरत्कारु था। यायावरों (किसी गांव में एक दिन रहने वाले गृहस्थ) में वे श्रेष्ठ थे, धर्मात्मा थे, तथा कठोर व्रत करने वाले थे ॥१०-११॥ एक समय वे तपस्वी बली मुनि, समस्त पृथिवी का परिभ्रमण करने के लिए निकले। वे जहां संध्या हो जाती, वहीं ठहर जाते ॥१२॥ वे तीर्थों में स्नान करते हुए चारों ओर पर्यटन करने लगे, उन्होंने ऐसे व्रत का अनुष्ठान किया ; जिसका अनुष्ठान करना उन मनुष्यों के द्वारा असम्भव है, जिनका मन अपने वश में न हो ॥१३॥ वायु का आहार तथा निराहार रहकर मुनि ने अपने को सुखा डाला। वे कभी आंखें बन्द नहीं करते थे। प्रज्वलित अग्नि के समान वे चारों ओर भ्रमण करने लगे ॥१४॥ घूमते घूमते एक बार उन्होंने अपने पितरों को देखा। जो एक बड़े गड्ढे में लटके हुए थे। उनके सिर नीचे थे और पैर ऊपर ॥१५॥ उन पितरों को देखकर जरत्कारु बोला, आपलोग कौन हैं जो इस गढ़े में औंधे मुँह लटके हुए हैं । आपलोग एक तिनके के सहारे लटके हुए हैं, उस तिनके को भी इस गढ़े में रहनेवाले चूहे ने चारों ओर से खा लिया है, जो चूहा सदा छिपा रहता है ॥१७॥ पितर बोले, हमलोग यायावर नामक ऋषि हैं। हमलोगों ने बड़े कठोर व्रत किये हैं। पर ब्रह्मन्, आज सन्तान के न रहने से हमलोग गढ़े में गिर रहे हैं ॥१८॥ हम अभागियों की एक सन्तान है, जिसका नाम जरत्कारु है। वह भी अभागी है। क्योंकि वह केवल तपस्या ही करता है ॥१९॥ वह मूर्ख, पुत्र उत्पन्न करने के लिए विवाह नहीं करता। इसी सन्तान न रहने के कारण हमलोग इस गढ़े में लटक रहे हैं ॥२०॥ उस जरत्कारु के रहने पर भी हम लोग पापियों के समान अनाथ हो गये हैं। हे सज्जन, आप कौन हैं ? जो हम लोगों के लिए दुख कर रहे हैं ॥२१॥ ब्रह्मन्, हमलोग जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं और क्यों

ज्ञातुमिच्छामहे ब्रह्मन्को भवानिह नः स्थितः। किमर्थं चैव नः शोच्याननुशोचसि सत्तम ॥२२॥

जरत्कारुरुवाच

मम पूर्वे भवन्तो वै पितरः सपितामहाः । ब्रूत किं करवाण्यद्य जरत्कारुरहं स्वयम् ॥२३॥

पितरऊचुः

यतस्व यत्नवांस्तात संतानाय कुलस्य नः । आत्मनोऽर्थेऽस्मदर्थे च धर्म इत्येव वा विभो ॥२४॥
न हि धर्मफलैस्तात न तपोभिः सुसंचितैः । तां गतिं प्राप्नुवंतीह पुत्रिणो यां व्रजंति वै ॥२५॥
तद्दारग्रहणे यत्नं संतत्यां च मनः कुरु । पुत्रकास्मन्नियोगात्त्वमेतन्नः परमं हितम् ॥२६॥

जरत्कारुरुवाच

न दारान्वै करिष्येऽहं न धनं जीवितार्थतः । भवतां तु हितार्थाय करिष्ये दारसंग्रहम् ॥२७॥
समयेन च कर्ताऽहमनेन विधिपूर्वकम् । यथा यद्युपलप्स्यामि करिष्ये नान्यथा ह्यहम्॥२८॥
सनाम्नी या भवित्री मे दित्सिता चैव बन्धुभिः । भैक्ष्यवत्तामहं कन्यामुपयंस्ये विधानतः ॥२९॥
दरिद्राय हि मे भार्यां को दास्यति विशेषतः । प्रतिग्रहीष्ये भिक्षां तु यदि कश्चित्प्रदास्यति॥३०॥
एवं दारक्रियाहेतोः प्रयतिष्ये पितामहाः । अनेन विधिना शश्वन्न करिष्येऽहमन्यथा ॥३१॥
तत्र चोत्पत्स्यते जंतुर्भवतां तारणाय वै । शाश्वतं स्थानमासाद्य मोदन्तां पितरो मम ॥३२॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि जरत्कारुपितृसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

हमलोगों के लिए आप दुखित हो रहे हैं ॥२२॥ जरत्कारु बोला—आप लोग हमारे ही पिता पितामह हैं। कहिए, अब मैं क्या करूँ। मैं ही जरत्कारु हूँ ॥२३॥ पितर बोले-बेटा, कुल की वृद्धि के लिए प्रयत्न करो। अपने लिए हम लोगों के लिए तथा धर्म समझ कर तुम कुल की वृद्धि करो ॥२४॥ बेटा, धर्मों से, प्रयत्न द्वारा संचित तपस्याओं से मनुष्यों को वह गति नहीं प्राप्त होती जो पुत्रवालों को प्राप्त होती है ॥२५॥ अतएव बेटा, हम लोगों की आज्ञा से विवाह करने तथा पुत्र उत्पन्न करने का प्रयत्न करो। यही हमलोगों के परम कल्याण की बात होगी ॥२६॥ जरत्कारु बोला, मैं व्याह नहीं करूंगा और अपने जीवन के लिए धन एकत्र नहीं करूँगा। हाँ, आप लोगों के कल्याण के लिए व्याह कर सकता हूँ ॥२७॥ मैं इस शर्त के साथ विधिपूर्वक व्याह करूँगा। यदि वैसी कन्या मुझे मिल गयी, तो मैं व्याह कर सकता हूँ, नहीं तो नहीं ॥२८॥ जिसका नाम मेरा ही नाम हो, जिसे उसके बन्धु भिक्षा के रूप में मुझे दें। मैं उसी कन्या से विधिपूर्वक व्याह कर सकता हूँ ॥२९॥ मैं दरिद्र हूं, मुझे स्त्री बनाने के लिये कौन कन्यादान करेगा। यदि कोई दाता मिल जायगा, तो मैं व्याह कर लूंगा ॥३०॥ पितरो, मैं इस प्रकार व्याह करने के लिए सदा प्रयत्न करता रहूंगा। इसके अतिरिक्त दूसरे उपाय से मैं व्याह न करूँगा। यदि व्याह हुआ तो प्राणी उत्पन्न होगा। आप लोग अविनाशी स्थान प्राप्त करके प्रसन्न हो ॥३१ ३२ ३३॥

त्रयोदश अध्याय

सौतिरुवाच

ततो निवेशाय तदा स विप्रः संशितव्रतः । महीं चचार दारार्थी न च दारानविंदत ॥१॥
स कदाचिद्वनं गत्वा विप्रः पितृवचः स्मरन् । चुक्रोश कन्या भिक्षार्थी तिस्रो वाचःशनैरिव॥२॥
तं वासुकिः प्रायच्छदुद्यम्य भगिनीं तदा । न सतां प्रतिजग्राह न सनाम्नीति चिन्तयन् ॥३॥
सनाम्नीं चोद्यतां भार्यां गृह्णीयामिति तस्य हि । मनो निविष्टमभवज्जरत्कारोर्महात्मनः ॥४॥
तमुवाच महाप्राज्ञो जरत्कारुर्महातपा । किंनाम्नी भगिनीयं ते ब्रूहि सत्यं भुजंगम ॥५॥

वासुकिरुवाच

जरत्कारो जरत्कारुः स्वसेयमनुजा मम । प्रतिगृह्णीष्व भार्यार्थे मया दत्तां सुमध्यमाम् ।
त्वदर्थं रक्षिता पूर्वं प्रतीच्छेमां द्विजोत्तम ॥६॥
एवमुक्त्वा ततः प्रादाद्भार्यार्थे वरवर्णिनीम् । स च तां प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा ॥७॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि वासुकिस्वसृवरणे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

सौतिरुवाच

मात्रा हि भुजगाः शप्ताः पूर्वं ब्रह्मविदां वर । जनमेजयस्य वो यज्ञे धक्ष्यत्यनिलसारथिः ॥१॥
तस्य शापस्य शांत्यर्थं प्रददौ पन्नगोत्तमः । स्वसारमृषये तस्मै सुव्रताय महात्मने ॥२॥

जरत्कारु का जरत्कारु से विवाह

सौति बोले, अनन्तर, स्त्री पाने के लिए कठोर व्रतधारी वह ब्राह्मण पृथिवी का परिभ्रमण करने लगा। पर स्त्री चाहनेवाले उस ब्राह्मण को स्त्री मिली नहीं ॥१॥ किसी समय वनमें जाकर वह ब्राह्मण पितरों की बातों का स्मरण करता हुआ तीन बार "कन्या की भिक्षा दो" कह कर चिल्लाने लगा ॥२॥ वासुकि आये अपनी वहन के विवाह के लिए उससे प्रार्थना की। परन्तु उसने उसे स्वीकार नहीं किया। क्योंकि वह जानता था कि वह कन्या मेरे नाम की नहीं है ।३। वह चाहता था कि मेरे ही नाम की कन्या यदि मिले तो मैं उससे विवाह करूँ। महातमा जरत्कारु का यही निश्चय था ॥४॥ महातपस्वी और बुद्धिमान जरत्कारु वासुकि से बोले भुजंगम, तुम्हारी इस बहिन का क्या नाम है! सच सच कहो ॥५॥ वासुकी बोले, हे जरत्कारु, यह मेरी छोटी बहिन है, इसका नाम जरत्कारु है। मैं इस सुन्दरी को तुम्हें देता हूँ। तुम स्त्री के रूप में इसका ग्रहण करो। ब्राह्मणश्रेष्ठ यह तुम्हारे ही लिए रखी गयी है। तुम इसका उपयोग करो ॥६॥ ऐसा कह कर वासुकिने उस सुन्दरी का दान किया और जरत्कारु ने उससे वैदिक विधि के अनुसार विवाह किया।

चतुर्दश अध्याय

आस्तीक की उत्पत्ति

सौति बोले, हे श्रेष्ठ ब्रह्मवेता पहले सर्पों की माता ने उन्हें शाप दिया था कि जनमेजय के यज्ञ में तुम लोगों को अग्नि जलाएँगी ॥१॥ उस शाप को शान्त करने के लिए सर्पराज वासुकि ने अपनी वहन, व्रतधारी महात्मा जरत्कारु ऋषि को दी ॥२॥ जरत्कारु ऋषि ने विधानपूर्वक

स च तां प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा। आस्तीको नाम पुत्रश्च तस्यां जज्ञे महात्मनः॥३॥
तपस्वी च महात्मा च वेदवेदांगपारगः। समः सर्वस्य लोकस्य पितृमातृभयापहः ॥४॥
अथ दीर्घस्य कालस्य पांडवेयो नराधिपः। आजहार महायज्ञं सर्पसत्रमिति श्रुतिः ॥५॥
तस्मिन्प्रवृत्ते सत्रे तु सर्पाणामंतकाय वै। मोचयामास तान्नागानास्तीकः सुमहातपाः ॥६॥
भ्रातृंश्च मातुलांश्चैव तथैवान्यान्स पन्नगान्। पितृंश्च तारयामास संतत्या तपसा तथा ॥७॥
व्रतैश्च विविधैर्ब्रह्मन्स्वाध्यायैश्चानृणोऽभवत्। देवांश्च तर्पयामास यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ॥८॥
ऋषींश्च ब्रह्मचर्येण संतत्या च पितामहान्। अपहृत्य गुरुं भारं पितृणां संशितव्रतः ॥९॥
जरत्कारुर्गतः स्वर्गं सहितः स्वैःपितामहैः। आस्तीकं च सुतं प्राप्य धर्मं चानुत्तमं मुनिः॥१०॥
जरत्कारुः सुमहता कालेन स्वर्गमेयिवान्। एतदाख्यानमास्तीकं यथावत्कथितं मया।
प्रब्रूहि भृगुशार्दूल किमन्यत्कथयामि ते ॥११॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पाणां मातृशापप्रस्तावे पंचदशोऽध्यायः॥१५

शौनक उवाच

सौते त्वं कथयस्वेमां विस्तरेण कथां पुनः। आस्तीकस्य कवेः साधोः शुश्रूषा परमा हि नः॥१॥

उसका ग्रहण किया। अनन्तर उस स्त्री के गर्भ से आस्तीक नामक उदार पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३॥ वह महात्मा तपस्वी वेद वेदाङ्गों का ज्ञाता हुआ। वह सबके लिए सुखकारी था। पिता और माता के संकट को दूर करनेवाला हुआ ॥५॥ इसके बहुत दिनों के बाद पाण्डुवंशी राजा ने सर्प यज्ञ प्रारम्भ किया। यह बात सब जगह प्रसिद्ध है। सर्पों के विनाश के लिए जब वह यज्ञ प्रारम्भ हुआ, तब महातपस्वी आस्तीक ने सर्पों की रक्षा की ॥६॥ भाइयों, मामा तथा अन्य सर्पों की उन्होंने रक्षा की। पुत्र उत्पन्न करके तथा तपस्या करके उन्होंने पितरों का उद्धार किया ॥७॥ अनेक प्रकार के व्रतों तथा वेदाध्यायन के द्वारा उन्होंने देव ऋण चुकाया। अनेक प्रकार के दक्षिणावाले यज्ञों से उन्होंने देवताओं को प्रसन्न किया ॥८॥ ब्रह्मचर्य के द्वारा ऋषियों का, सन्तानोत्पत्ति के द्वारा पितरों का बहुत बड़ा भार, कठोर व्रतधारी जरत्कारु ने उतारा ॥९॥ अनन्तर जरत्कारु अपने पितरों के साथ स्वर्ग गये। जरत्कारु मुनि ने आस्तीक नामक पुत्र और श्रेष्ठ धर्म पाया ॥१०॥ बहुत दिनों तक संसार में रहकर जरत्कारु स्वर्गवासी हुए। यह आस्तीक का आख्यान है। वह आपसे मैंने विस्तार के साथ कहा। हे भृगुश्रेष्ठ, अब आप से मैं क्या कहूँ ॥११॥

पञ्चदश अध्याय

आस्तीक का आख्यान। कद्रू और विनता का वर पाना। कद्रू से सर्पों की और विनता से अरुण की उत्पत्ति। विनता को अरुण का शाप।

शौनक बोले, सूतपुत्र इस कथा को तुम और विस्तार के साथ कहो। साधु आस्तीक की कथा सुनने की मेरी प्रबल इच्छा है ॥१॥ भाई, तुम्हारा कहना बड़ा मधुर है। बड़े कोमल

मधुरं कथ्यते सौम्य श्लक्ष्णाक्षरपदं त्वया । प्रीयामहे भृशं तात पितेवेदं प्रभाषसे ॥२॥
अस्मच्छुश्रूषणे नित्यं पिता हि निरतस्तव । आचष्टैतद्यथाख्यानं पिता ते त्वं तथा वद ॥३॥

सौतिरुवाच

आयुष्मन्निदमाख्यानमास्तीकं कथयामि ते । यथाश्रुतं कथयतः सकाशाद्वै पितुर्मया ॥४॥
पुरा देवयुगे ब्रह्मन्प्रजापतिसुते शुभे । आस्तां भगिन्यौ रूपेण समुपेतेऽद्भुतेऽनघ ॥५॥
ते भार्ये कश्यपस्यास्तां कद्रूश्च विनता च ह । प्रादात्ताभ्यां वरं प्रीतः प्रजापतिसमः पतिः ॥६॥
कश्यपो धर्मपत्नीभ्यां मुदा परमया युतः । वरातिसर्गं श्रुत्वैवं कश्यपादुत्तमं च ते ॥७॥
हर्षादप्रतिमां प्रीतिं प्रापतुः स्म वरस्त्रियौ । वव्रे कद्रूः सुतान्नागान्सहस्रं तुल्यवर्चसः ॥८॥
द्वौ पुत्रौ विनता वव्रे कद्रूपुत्राधिकौ बले । तेजसा वपुषा चैव विक्रमेणाधिकौ च तौ ॥९॥
तस्यै भर्ता वरं प्रादादीदृशौ ते भविष्यतः । एवमस्त्विति तं चाह कश्यपं विनता तदा ॥१०॥
यथावत्प्रार्थितं लब्ध्वा वरं तुष्टाऽभवत्तदा । कृतकृत्या तु विनता लब्ध्वा वीर्याधिकौ सुतौ ॥११॥
कद्रूश्च लब्ध्वा पुत्राणां सहस्रं तुल्यवर्चसाम् । धार्यौ प्रयत्नतो गर्भावित्युक्त्वा स महातपाः ॥१२॥
ते भार्ये वरसन्तुष्टे कश्यपो वनमाविशत् । सौतिरुवाच
कालेन महता कद्रूरंडानां दशतीदश ॥१३॥

शब्दों के द्वारा तुम कथा कहते हो । हम बहुत प्रसन्न हो रहे हैं । तुम अपने पिता के समान ही कथा कहते हो । हमलोगों को तुम्हारे पिता सदा कथा सुनाते थे । तुम्हारे पिता ने यह आख्यान जैसा तुमको सुनाया है, वैसा तुम कहो ॥२,३॥ सौति बोले, आयुष्मन् ! मैं आपको यह आस्तीक उपाख्यान सुनाता हूँ । जैसा मैंने अपने पिता से सुना है ॥४॥ ब्रह्मन्, पहले सत्ययुग में प्रजापति की दो कन्यायें थीं । वे दोनों बहनें अद्भुत सुन्दरी थीं ॥५॥ वे दोनों कश्यप की स्त्री थीं । उनका नाम कद्रू और विनता था । प्रजापतितुल्य उनके पति ने प्रसन्न होकर उन दोनों को वर दिया था ॥६॥ अत्यन्त प्रसन्न होकर कश्यप अपनी दोनों धर्म-पत्नियों को वर देने को तैयार हुए हैं, यह जानकर उन दोनों श्रेष्ठ स्त्रियों को बड़ी प्रसन्नता हुई । कद्रू ने हजार सर्पों के पुत्ररूप में उत्पन्न होने की प्रार्थना की । विनता ने दो पुत्र मांगे, जो कद्रू के पुत्र से अधिक बलवान हों । उनसे अधिक तेजस्वी शरीर और पराक्रम में भी जो उनसे अधिक हों ॥७,८,९॥ पति ने उत्कट अभि-लाषा से उसके पुत्र प्राप्त होने की प्रार्थना पूरी की । कश्यप ने उस समय विनता से कहा कि ऐसा ही होगा ॥१०॥ जैसा वह चाहती थी, वैसा वर पाकर वह प्रसन्न हो गयी । अधिक बली पुत्र पाने का वर पाकर विनता कृतकृत्य हुई ॥११॥ तुल्य तेजस्वी, हजार पुत्रों को पाकर कद्रू भी प्रसन्न हुई । महातपस्वी कश्यप वर पाकर सन्तुष्ट हुई स्त्रियों से सावधानता पूर्वक गर्भ की रक्षा करने का उपदेश देकर वन में चले गये । सौति बोले, कुछ समय बीतने पर कद्रू ने दस सौ अण्डे दिए और हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, विनता ने दो अण्डे दिये । प्रसन्नतापूर्वक उन दोनों ने अण्डे दिये और

जनयामास विप्रेन्द्र द्वे चाण्डे विनता तदा । तयोरंडानि निदधुः प्रहृष्टाः परिचारिकाः ॥१४॥
सोपस्वेदेषु भांडेषु पंचवर्षशतानि च । ततः पंचशते काले कद्रूपुत्रा विनिःसृताः ॥१५॥
अण्डाभ्यां विनतायास्तु मिथुनं न व्यदृश्यत । ततः पुत्रार्थिनी देवी व्रीडिता च तपस्विनी ॥१६॥
अंडं विभेद विनता तत्र पुत्रमपश्यत । अध्यर्धकायसंपन्नमितरेणाप्रकाशता ॥१७॥
स पुत्रः क्रोधसंरब्धः शशापैनामिति श्रुतिः । योऽहमेवं कृतो मातस्त्वया लोभपरीतया ॥१८॥
शरीरेणासमग्रेण तस्माद्दासी भविष्यसि । पंचवर्षशतान्यस्या यया विस्पर्धसे सह ॥१९॥
एष च त्वां सुतो मातर्दासीत्वान्मोचयिष्यति । यद्येनमपि मातस्त्वं मामिवांडविभेदनात् ॥२०॥
न करिष्यस्यनंगं वा व्यंगं वापि तपस्विनम् । प्रतिपालयितव्यस्ते जन्मकालोऽस्य धीरया ॥२१॥
विशिष्टं बलमीप्संत्या पंचवर्षशतात्परः । एवं शप्त्वा ततः पुत्रो विनतामंतरिक्षगः ॥२२॥
अरुणो दृश्यते ब्रह्मन्प्रभातसमये यदा । आदित्यरथमध्यास्ते सारथ्यं समकल्पयत् ॥२३॥
गरुडोऽपि यथा कालं जज्ञे पन्नगभोजनः । स जातमात्रो विनतां परित्यज्य खमाविशत् ॥२४॥
आदास्यन्नात्मनो भोज्यमन्नं विहितमस्य यत् । विधात्रा भृगुशार्दूल क्षुधितः पतगेश्वरः ॥२५॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पादीनामुत्पत्तौ षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

वे उनकी रक्षा करने लगीं । ॥१२-१४॥ गरम भाण्ड में पाँच सौ वर्षों तक उन लोगों ने अण्डों की रक्षा की । अनन्तर पाँच सौ वर्ष पूरे होने पर कद्रू के पुत्र उत्पन्न हुए ॥१५॥ विनता के दोनों अण्डों से कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुए । इससे पुत्र प्राप्ति की इच्छा रखने वाली विचारी विनता बहुत लज्जित हुई ॥१६॥ विनता ने एक अण्डा फोड़ा उसमें उसने पुत्र को देखा जिसका आधा शरीर पूरा हो गया था और आधा पूरा नहीं था ॥१७॥ सुना जाता है कि क्रोध करके उस पुत्र ने विनता को शाप दिया । माता, तुमने लोभवश होकर मेरे साथ जो ऐसा किया है । मेरा शरीर पूर्ण होने के पहले ही मुझे अण्डे से निकाला है । इस कारण तुम्हें पांच सौ वर्षों तक उसकी दासी बनकर रहना पड़ेगा जिसकी तुम ईर्ष्या करती हो ॥१८-१९॥ माता, यह तुम्हारा पुत्र तुम्हें दासी होने से छुड़ावेगा यदि उसको भी मेरे ही समान अण्डा फोड़कर अंगहीन तुम न बनाओगी । अतएव धैर्य धारण करके उसके जन्म समय तक तुम्हें उसका पालन करना चाहिए ॥२०,२१॥ यदि तुम अपने उस पुत्र को बली बनाना चाहो तो और पांच सौ वर्षों तक प्रतीक्षा करो । इस प्रकार माता को शाप देकर वह पुत्र आकाश में चला गया । जब प्रातःकाल होता है तब अरुण सूर्य के मध्य में दिखाई पड़ते हैं । सूर्य ने उन्हें अपना सारथी बना लिया है ॥२३॥ यथा समय सर्पों को खाने वाले गरुड़ भी उत्पन्न हुए । उत्पन्न होते ही माता विनता को छोड़कर वे आकाश में चले गये ॥२४॥ पक्षियों का स्वामी गरुड़ भूखा था अतएव ब्रह्मा के बतलाये अपने भोज्य अन्न को लेने के लिए वे आकाश में गये ॥२५॥

षोड़श अध्याय

सौतिरुवाच

एतस्मिन्नेव काले तु भगिन्यौ ते तपोधन । अपश्यतां समायाते उच्चैःश्रवसमन्तिकात् ॥१॥
यं तं देवगणाः सर्वे हृष्टरूपमपूजयन् । मथ्यमानेऽमृते जातमश्वरत्नमनुत्तमम् ॥२॥
अमोघबलमश्वानामुत्तमं जविनां वरम् । श्रीमन्तमजरं दिव्यं सर्वलक्षणपूजितम् ॥३॥

शौनक उवाच

कथं तदमृतं देवैर्मथितं क्व च शंस मे । यत्र जज्ञे महावीर्यः सोऽश्वराजो महाद्युतिः ॥४॥

सौतिरुवाच

ज्वलंतमचलं मेरुं तेजोराशिमनुत्तमम् । आक्षिपन्तं प्रभां भानोः स्वशृङ्गैः कांचनोज्ज्वलैः ॥५॥
कनकाभरणं चित्रं देवगन्धर्वसेवितम् । अप्रमेयमनाधृष्यमधर्मबहुलैर्जनैः ॥६॥
व्यालैरावारितं घोरैर्दिव्यौषधिविदीपितम् । नाकमावृत्य तिष्ठंतमुच्छ्रयेण महागिरिम् ॥७॥
अगम्यं मनसाऽप्यन्यैर्नदीवृक्षसमन्वितम् । नानापतगसंघैश्च नादितं सुमनोहरैः ॥८॥
तस्य शृंगमुपारुह्य बहुरत्नाचितं शुभम् । अनंतकल्पमद्धन्द्वं सुराः सर्वे महौजसः ॥९॥
ते मंत्रयितुमारब्धास्तत्रासीना दिवौकसः । अमृताय समागम्य तपोनियमसंयुता ॥१०॥

अमृत मन्थन के लिए भगवान् की आज्ञा से देवताओं का विचार ।

सौति बोले—इसी समय कद्रू और विनता दोनों बहनों ने, जो साथ खड़ी थी, पास से उच्चैःश्रवा को देखा । अमृत के लिए समुद्र मन्थन के समय वह अश्वश्रेष्ठ उत्पन्न हुआ था और उस सुन्दर घोड़े की देवता प्रसन्नता पूर्वक प्रशंसा करते हैं ॥१२॥ वह घोड़ों में सब से बली है, तेज चलने वालों में सबसे श्रेष्ठ है, सुन्दर है, कभी पुराना होनेवाला नहीं है, वह देवताओं का घोड़ा समस्त शुभलक्षणों से युक्त है ॥३॥ शौनक बोले—देवताओं ने अमृत मन्थन किस प्रकार किया था । और वह अमृत मन्थन किस स्थान पर हुआ था, जिसमें महाबली और द्युतिमान वह अश्वराज हुआ था ॥४॥ सौति बोले, अपनी प्रभा से प्रकाशमान मेरु पर्वत पर एकत्र होकर अमृत मन्थन के लिए देवताओं ने सलाह की । वह मेरु पर्वत, पर्वतों में श्रेष्ठ हैं । तेजों का समूह है । सुवर्ण के समान चमकीले अपने शिखरों से सूर्य की किरणों को रोक देता है ॥५॥ सुवर्ण के आभूषणों से शोभित है । देवता और गन्धर्व वहाँ रहते हैं । वाणी और मन के द्वारा उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । अधर्मी मनुष्यों का उस पर्वत पर पहुंचना असम्भव है ॥६॥ भयङ्कर सर्प वहाँ निवास करते हैं । दिव्य औषधियों से प्रकाशमान है । अपनी ऊंचाई से आकाश तक फैला हुआ है ॥७॥ साधारण मनुष्य मन से वहाँ जाने की कल्पना भी नहीं कर सकते । नदियों और वृक्षों से वह सुशोभित है । सुन्दर अनेक प्रकार के पक्षियों के शब्दों से वह प्रतिध्वनित होता है ॥८॥ उसी पर्वत के शिखर पर जो अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित था जो बहुत ही ऊंचा, पर आकाश से थोड़ा ही छोटा था, उस पर बली देवगण एकत्र हुए ॥९॥ तपस्वी और नियम पालन करनेवाले देवता उस पर्वत के शिखर पर बैठकर अमृत मन्थन के लिए सलाह

तत्र नारायणो देवो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् । चिंतयत्सु सुरेष्वेवं मंत्रयत्सु च सर्वशः ॥११॥
देवैरसुरसंघैश्च मथ्यतां कलशोदधिः । भविष्यत्यमृतं तत्र मथ्यमाने महोदधौ ॥१२॥
सर्वोषधीः समावाप्य सर्वरत्नानि चैव ह । मंथध्वमुदधिं देवा वेत्स्यध्वममृतं ततः ॥१३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि अमृतमंथने सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

सौतिरुवाच

ततोऽभ्रशिखराकारैर्गिरिशृंगैरलंकृतम् । मंदरं पर्वतवरं लताजालसमाकुलम् ॥१॥
नानाविहगसंघुष्टं नानादंष्ट्रिसमाकुलम् । किन्नरैरप्सरोभिश्च देवैरपि च सेवितम् ॥२॥
एकादशसहस्राणि योजनानां समुच्छ्रितम् । अधोभूमेः सहस्रेषु तावत्स्वेव प्रतिष्ठितम् ॥३॥
तमुद्धर्तुमशक्ता वै सर्वे देवगणास्तदा । विष्णुमासीनमभ्येत्य ब्रह्माणं चेदमब्रुवन् ॥४॥
भवंतावत्र कुर्वीतां बुद्धिं नैःश्रेयसीं पराम् । मंदरोद्धरणे यत्नः क्रियतां च हिताय नः ॥५॥

सौतिरुवाच

तथेति चाब्रवीद्विष्णुर्ब्रह्मणा सह भार्गव । अचोदयदमेयात्मा फणीन्द्रं पद्मलोचनः ॥६॥
ततोऽनंतः समुत्थाय ब्रह्मणा परिचोदितः । नारायणेन चाप्युक्तस्तस्मिन्कर्मणि वीर्यवान् ॥७॥
अथ पर्वतराजानं तमनंतो महाबलः । उज्जहार बलाद् ब्रह्मन् सवनं सवनौकसम् ॥८॥

करने लगे ॥१०॥ भगवान् नारायण वहाँ ब्रह्मा से बोले, जिस समय देवता लोग विचार कर रहे थे। तथा आपस में सलाह कर रहे थे ॥११॥ देवताओं और असुरों के साथ मिलकर आप समुद्र का मन्थन करें। समुद्र का मन्थन करने से अमृत प्राप्त होगा ॥१२॥ सब प्रकार की औषधियों तथा रत्नों को पाकर आप लोग अमृत पावेंगे। अतएव देवताओं आप समुद्र को मन्थन करें ॥१३॥

सप्तदश अध्याय

मोहिनी रूप से दैत्यों को छल कर अमृत का कलश लेना।

सौति बोले, अनन्तर देवगण पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल पर्वत के पास गये जो लताओं से घिरा हुआ है, तथा मेघों के आकारवाले शिखरोंसे सुशोभित हैं ॥१॥ जहाँ तरह तरहके पक्षी बोलते हैं तथा अनेक दंतैले जन्तु रहते हैं। और देवता, अप्सरा और किन्नरोंका जहाँ निवास है ॥२॥ जो ग्यारह हजार योजन ऊंचा है, तथा इतना ही नीचा पृथ्वी में धँसा हुआ है ॥३॥ सब देवता मिलकर भी जब उसको नहीं उखाड़ सके तब वे बैठे हुए ब्रह्मा और विष्णु के पास गये तथा इस प्रकार बोले, आप दोनों कार्य सिद्धि का कोई उपाय बतलावें। मन्दर को उठावें तथा हम लोगों के कल्याण के लिए आप कोई प्रयत्न करें ॥५॥ सौति बाले, ब्रह्मा के साथ विष्णु ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार की और कमललोचन विष्णु ने सर्पराज को मन्दर पर्वत को उठाने की आज्ञा दी। विष्णु अमेयात्मा हैं। उनका यथाथ परिचय होना असम्भव है ॥६॥ ब्रह्मा की प्रेरणा तथा विष्णु के कहने पर सर्पराज उठे, जो उस काम के करने में समर्थ थे ॥७॥ ब्रह्मन्, महाबली सर्पराज ने वनों और वनवासियों के साथ उस पर्वतराज को उखाड़ लिया ॥८॥ उस सर्पराज के



असुर मोहिनीको अमृतकलश दे रहे हैं

ततस्तेन सुराः सार्धं समुद्रमुपतस्थिरे । तमूचुरमृतस्यार्थे निर्मथिष्यामहे जलम् ॥९॥
अपांपतिरथोवाच ममाप्यंशो भवेत्ततः । सोढाऽस्मि विपुलं मर्दं मंदरभ्रमणादिति ॥१०॥
ऊचुश्च कूर्मराजानमकूपारे सुरासुराः । अधिष्ठानं गिरेरस्य भवान् भवितुमर्हति ॥११॥
कूर्मेण तु तथेत्युक्त्वा पृष्ठमस्य समर्पितम् । तं शैलं तस्य पृष्ठस्थं वज्रेणेंद्रो न्यपीडयत् ॥१२॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा तथा नेत्रं च वासुकिम् । देवा मथितुमारब्धाः समुद्रं निधिमंभसाम् ॥१३॥
अमृतार्थे पुरा ब्रह्मंस्तथैवासुरदानवाः । एकमंतमुपश्लिष्टा नागराज्ञो महासुराः ॥१४॥
विबुधाःसहिताः सर्वे यतः पुच्छं ततः स्थिताः । अनंतो भगवान्देवो यतो नारायणस्ततः ।
शिर उत्क्षिप्य नागस्य पुनः पुनरवाक्षिपत् ॥१५॥
वासुकेरथ नागस्य सहसाऽऽक्षिप्यतोऽसुरैः । सधूमाः सार्चिषो वाता निष्पेतुरसकृन्मुखात् ॥१६॥
ते धूमसंघाः संभूता मेघसंघाः सविद्युतः । अभ्यवर्षन्सुरगणान् श्रमसन्तापकर्शितान् ॥१७॥
तस्माच्चगिरिकूटाग्रात्प्रच्युताः पुष्पवृष्टयः । सुरासुरगणान्सर्वान्समंतात्समवाकिरन् ॥१८॥
बभूवात्र महानादो महामेघरवोपमः । उदधेर्मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ॥१९॥
तत्र नाना जलचरा विनिष्पिष्टा महाद्रिणा । विलयं समुपाजग्मुः शतशो लवणाम्भसि ॥२०॥
वारुणानि च भूतानि विविधानि महीधरः । पातालतलवासीनि विलयं समुपानयत् ॥२१॥

साथ समस्त देवता समुद्र के पास आये और उससे बोले, कि अमृत के लिये हमलोग तुम्हारे जल का मथन करेंगे ॥९॥ अनन्तर, जलके स्वामी समुद्र बोले, उस अमृत में हमारा भी भाग होगा । क्योंकि मन्दराचल के भ्रमण की कठोर पीड़ा मैं सहूँगा ॥१०॥ देवता और असुर समुद्र के समीप रहने वाले कूर्मराज के पास जाकर बोले, आप इस पर्वत के आधार बनें। जिससे यह पर्वत भारी होने के कारण समुद्र तल में न चला जाय ॥११॥ कूर्मराज ने उनकी बात मान कर अपनी पीठ उन्हें दे दी । इन्द्र ने उसकी पीठ पर वह पर्वत रखकर उसे बज्र से दबाया ॥१२॥ मन्दराचल को मथनी बनाकर तथा वासुकि को मथनी को रस्सी बनाकर देवगण जलराशि समुद्र का मन्थन करने लगे ॥१३॥ ब्रह्मन्, इस प्रकार पहले समय में देवता और असुरोंने अमृत के लिए समुद्र मन्थन करना प्रारम्भ किया था । असुरों ने नागराज के मुंहकी ओर बल से पकड़ा था और पूंछ की ओर समस्त देवताओं ने पकड़ा था । भगवान् अनन्तदेव, जिधर नारायण थे, उधर हुए । वे वासुकि का सिर उठाते और छोड़ देते थे । अर्थात् उसके विष वेग को स्वयं सहते थे ॥१४-१५॥ वेग से असुर वासुकि को खींच रहे थे । अतएव उसके मुंह से धूमसहित ज्वाला तथा हवा बार बार निकलने लगी ॥१६॥ वह धूमराशि मेघ बन गए और उनमें बिजली चमकने लगी उन मेघों ने परिश्रम से थके हुए देवताओं पर वृष्टि की ॥१७॥ उस पर्वत के शिखर पर से फूलों की वर्षा हुई, जिससे देवता और असुर दोनों ढक गये ॥१८॥ मेघ गर्जन के समान वहां घोर शब्द होने लगा । जब देवता असुर मन्दर पर्वत से समुद्र को मथने लगे ॥१९॥ उस महा पर्वत से अनेक जलचर प्राणी पिस गये । सैकड़ों तो उसी लवण समुद्र में नष्ट हो गये ॥२०॥ उस महा

तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्यंतःपरस्परम्। न्यपतन्पतगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः ॥२२॥
तेषां संघर्षजश्चाग्निरर्चिभिःप्रज्वलन्मुहुः। विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मंदरं गिरिम् ॥२३॥
ददाह कुंजरांस्तत्र सिंहांश्चैव विनिर्गतान्। विगतासूनि सर्वाणि सत्वानि विविधानि च ॥२४॥
तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहंतमितस्ततः । वारिणा मेघजेनेंद्रः शमयामास सर्वशः ॥२५॥
ततो नानाविधास्तत्र सुस्रुवुः सागरांभसि। महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधीरसाः ॥२६॥
तेषाममृत वीर्याणां रसानां पयसैव च । अमरत्वं सुराजग्मुः कांचनस्य च निःस्रवात् ॥२७॥
ततस्तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः । रसोत्तमैर्विमिश्रं च ततः क्षीरादभूद् घृतम् ॥२८॥
ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वरदमब्रुवन् । श्रांताःस्म सुभृशं ब्रह्मन्नोद्भवत्यमृतं च तत् ॥२९॥
विना नारायणं देवं सर्वेऽन्ये देवदानवाः। चिरारब्धमिदं चापि सागरस्यापि मंथनम् ॥३०॥
ततो नारायणं देवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् । विधत्स्वैषां बलं विष्णो भवानत्र परायणम् ॥३१॥

विष्णुरुवाच

बलं ददामि सर्वेषां कर्मैतद्ये समास्थिताः । क्षोभ्यतां कलशः सर्वैर्मंदरः परिवर्त्यताम् ॥३२॥

सौतिरुवाच

नारायणवचः श्रुत्वा बलिनस्ते महोदधेः । तत्पयः सहिता भूयश्चक्रिरे भृशमाकुलम् ॥३३॥
ततः शतसहस्रांशुर्मथ्यमानात्तु सागरात् । प्रसन्नात्मा समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः ॥३४॥

पर्वत ने पाताल में रहने वाले अनेक प्राणियों को जिनका शरीर जल से बना हुआ था नष्ट कर दिया ॥२१॥ उस पर्वत के घुमाने से उसपर के बड़े २ वृक्ष जो पक्षियों से भरे हुए थे परस्पर टकरा कर पृथ्वी पर गिरने लगे ॥२२॥ उन वृक्षों की रगड़ से आग उत्पन्न हुई और उसकी ज्वाला समस्त पर्वत पर फैल गयी। जैसे नील मेघ में बिजलियाँ फैल गयीं हों ॥२३॥ अपने स्थान से निकले हुए हाथियों और सिंहों को उस अग्नि ने जला दिया। और अन्य विविध प्राणियों को भी उसने जलाया ॥२४॥ इस प्रकार सब को जलाती हुई उस आग को देवराज इन्द्र ने मेघ से जल बरसा कर बुझाया ॥२५॥ अनन्तर बड़े बड़े वृक्षों की गोंद तथा अनेक औषधियों के रस बहकर समुद्र के जल में मिल गये ॥२६॥ अमृत के समान गुणकारी उन वृक्षों और औषधियों के रस तथा पिघले हुए सुवर्ण और औषधियों के रस से देवता अमर हो गये ॥२७॥ अनन्तर उस रस को पाकर समुद्र का खारा जल दूध हो गया। पुनः अन्य उत्तम रसों के मिलने से उस दूध से घृत उत्पन्न हुआ ॥२८॥ बैठे हुए वरदाता ब्रह्मा से देवता बोले, ब्रह्मन् हमलोग बहुत थक गये हैं, अभी तक अमृत नहीं निकला ॥२९॥ भगवान् नारायण को छोड़ कर अन्य समस्त देवता और दानव बहुत देर से समुद्र का मन्थन कर रहे थे। पर अमृत नहीं निकला था ॥३०॥ ब्रह्मा ने विष्णु से कहा, भगवन् आप इनको बलवान बनावें, आप ही की यहां आशा है ॥३१॥ विष्णु बोले, मैं उन सभी को बल देता हूं जिन लोगों ने इस बात का प्रारम्भ किया है। वे समुद्र का मन्थन करें और मन्दराचल पर्वत को घुमावें ॥३२॥ सौति बोले, नारायण के वचन सुन कर बली वे देवता और दानव एकत्र होकर समुद्र के जल को मथने लगे ॥३३॥ अनन्तर समुद्र के मथने से हँसता हुआ चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। जिसकी किरणें शीतल थीं। जो उज्वल था ॥३४॥

श्रीरनंतरमुत्पन्ना घृतात्पांडुरवासिनी* । सुरादेवी समुत्पन्ना तुरगः पांडुरस्तथा ॥३५॥
कौस्तुभस्तु मणिर्दिव्य उत्पन्नो घृतसंभवः । मरीचिविकचः श्रीमान्नारायण उरोगतः ॥३६॥
श्रीः सुरा चैव सोमश्च तुरगश्च मनोजवः । यतो देवास्ततो जग्मुरादित्यपथमाश्रिताः ॥३७॥
धन्वंतरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत । श्वेतं कमंडलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ॥३८॥
एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः । अमृतार्थे महान्नादो ममेदमिति जल्पताम् ॥३९॥
श्वेतैर्दन्तैश्चतुर्भिस्तु महाकायस्ततः परम् । ऐरावणो महानागोऽभवद्वज्रभृता धृतः ॥४०॥
अतिनिर्मथनादेव कालकूटस्ततः परः । जगदावृत्य सहसा सधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥४१॥
त्रैलोक्यं मोहितं यस्य गंधमाघ्राय तद्विषम् । प्राग्रसल्लोकरक्षार्थं ब्रह्मणो वचनाच्छिवः ॥४२॥
दधार भगवान्कंठे मंत्रमूर्तिर्महेश्वरः । तदा प्रभृति देवस्तु नीलकंठ इति श्रुतिः ॥४३॥
एतत्तदद्भुतं दृष्ट्वा निराशा दानवाः स्थिताः । अमृतार्थे च लक्ष्म्यर्थे महान्तं वैरमाश्रिताः॥४४॥
ततो नारायणो मायां मोहिनीं समुपाश्रितः । स्त्रीरूपमद्भुतं कृत्वा दानवानभिसंश्रितः ॥४५॥
ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतसः । स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ॥४६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि अमृतमंथने अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली लक्ष्मीदेवी उस घृत * (जल) से उत्पन्न हुई । सुरा (मदिरा) और श्वेत घोड़ा, उत्पन्न हुए ॥३५॥ दिव्य कौस्तुभमणि उस जलसे निकला जो किरणों के कारण प्रकाशमान था । उसने नारायण के वक्षस्थल की शोभा बढ़ायी ॥३६॥ लक्ष्मी, सुरा, चन्द्रमा और घोड़ा देवताओं की ओर खड़े हुए । और वे सूर्य मार्ग से देवलोक को चले गये ॥३७॥ पुनः शरीरधारी धन्वन्तरि देव समुद्र से निकले । अमृत से भरा हुआ श्वेत कमण्डल उनके हाथ में था ॥३८॥ इस अद्भुत दृश्य को देखकर दानव अमृत के लिए कोलाहल करने लगे और कहने लगे कि यह मेरा है ॥३९॥ पुनः विशाल शरीर का चार दांतोंवाला ऐरावत हाथी निकला जिसको इन्द्र ने ले लिया ॥४०॥ अधिक मथने के कारण समुद्र से विष निकला । जो समस्त संसार में सधूम अग्नि के समान शीघ्र ही जलने लगा ॥४१॥ उसकी गन्ध से तीनों लोक बेहोश हो गया । लोकों की रक्षा के लिये, ब्रह्मा के कहने से उस विष को शिव ने खा लिया ॥४२॥ मन्त्रमूर्त्ति भगवान् महेश्वर ने उस विष को अपने कण्ठ में धारण किया । तभी से वे देव नीलकण्ठ कहे जाने लगे ॥४३॥ इस अद्भुत दृश्य को देखकर दानव निराश हो गये । उन लोगों ने सोचा कि हम लोग विष को तो पचा नहीं सकते फिर अमृत हमें कैसे मिल सकता है । यही विचार उनके निराश होने का कारण था । उन लोगों ने अमृत के लिए और लक्ष्मी के लिए देवताओं से बड़ा बैर बाँधा ॥४४॥ इसके बाद नारायण ने मायामय स्त्री का अद्भुत मोहिनी रूप बनाया और वे दानवों के पास गये ॥४५॥ वे मूर्ख दानव और दैत्य उस स्त्री के वशीभूत हो गये और उन लोगों ने वह अमृत भाण्ड उस स्त्री को दे दिया ॥४६॥ अष्टादश अध्याय ।

* यहां घृत का अर्थ है जल । निघंटु में घृत का अर्थ जल भी बतलाया गया है । "घृतेन द्यावा पृथिवी व्यधुः" ऐसा श्रुति वाक्य मिलता है । अन्य अनेक स्थानों में जल को ही सृष्टि का कारण बतलाया गया है, इस कारण घृत शब्द जल के अर्थ में आया है ऐसा समझना चाहिए ।

सौतिरुवाच

अथावरणमुख्यानि नानाप्रहरणानि च। प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान्सहिता दैत्यदानवाः ॥१॥
ततस्तदमृतं देवो विष्णुरादाय वीर्यवान्। जहार दानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ॥२॥
ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा। विष्णोः सकाशात्संप्राप्य संभ्रमे तुमुले सति ॥३॥
ततः पिबत्सु तत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम्। राहुर्विबुधरूपेण दानवः प्रापिबत्तदा ॥४॥
तस्य कंठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा। आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया ॥५॥
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम्। चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा ॥६॥
तच्छैलश्रृंगप्रतिमं दानवस्य शिरो महत्। चक्रच्छिन्नं खमुत्पत्य ननादातिभयंकरम् ॥७॥
तत्कबन्धं पपातास्य विस्फुरद्धरणीतले। सपर्वतवनद्वीपां दैत्यस्याकंपयन्महीम् ॥८॥
ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै। शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां ग्रसत्यद्यापि चैव तौ ॥९॥
विहाय भगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः। नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान्समकंपयत् ॥१०॥
ततः प्रवृत्तः संग्रामः समीपे लवणाम्भसः। सुराणामसुराणां च सर्वघोरतरो महान् ॥११॥
प्रासाश्च विपुलास्तीक्ष्णा न्यपतंत सहस्रशः। तोमराश्च सुतीक्ष्णाग्राः शस्त्राणि विविधानि च ॥१२॥
ततोऽसुराश्चक्रभिन्ना वमंतो रुधिरं बहु। असिशक्तिगदारुग्णा निपेतुर्धरणीतले ॥१३॥
छिन्नानि पट्टिशैश्चैव शिरांसि युधि दारुणैः। तप्तकांचनमालीनि निपेतुरनिशं तदा ॥१४॥

देवताओं का अमृतदान। देवता बनकर अमृत पीने वाले राहु का मस्तक छेदन। देव दानव युद्ध और दानवों का पराजय।

सौति बोले, उत्तम कवचों तथा अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों को लेकर दैत्य दानवों ने साथ ही देवताओं पर आक्रमण किया ॥१॥ अनन्तर पराक्रमी विष्णु देव ने दानवों से उस अमृत का हरण किया ॥२॥ देव दानव के इस भयंकर कोलाहल के समय देवताओं ने विष्णु से अमृत लेकर पी लिया ॥३॥ उस समय देवता अमृत पी रहे थे। उसी समय राहु नामका दानव अमृत पीने को चाव से देवता का रूप बनकर आया और अमृत पीने लगा ॥४॥ उस दानव के गले में ही जब अमृत था तब ही देवताओं की कल्याण कामना से चन्द्रमा और सूर्य ने यह बात प्रकाशित कर दी ॥५॥ उस समय बलपूर्वक अमृतपान करते हुए उस दानव का सिर चक्रधारी भगवान् ने चक्र से काट दिया ॥६॥ पर्वत शिखर के समान विशाल उस दानव का मस्तक चक्र से कटने पर आकाश में गया और उसने वहाँ भयंकर नाद किया ॥७॥ दैत्य का वह धड़ पृथ्वी में गिरा, जिस से पृथ्वी, पर्वतों, वनों और द्वीपों के साथ कांप गयी ॥८॥ तभी के राहु ने चन्द्रमा और सूर्य से वैर बांध लिया। वह आज भी उन दोनों का ग्रास करता है। मनोहर स्त्री रूप का त्याग करके भगवान् ने विविध अस्त्र शस्त्रों से दानवों को कँपा दिया ॥१०॥ लवण समुद्र के पास देवता और असुरों का युद्ध प्रारम्भ हो गया जो अन्य सब युद्धों से भयंकर था ॥११॥ अनेक तीखे प्रास (किरिच) गिरे तथा तीखे भाले, अनेक तरह के शस्त्र चले ॥१२॥ तलवार शक्ति और गदा से घायल होकर तथा चक्र से कट कट रुधिर उगलते हुए राक्षस पृथ्वी पर गिरने लगे। भयंकर

रुधिरेणानुलिप्तांगा निहताश्च महासुराः । अद्रीणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते ॥१५॥
हाहाकारः समभवत्तत्र तत्र सहस्रशः । अन्योन्यं छिन्दतां शस्त्रैरादित्ये लोहितायति ॥१६॥
परिघैरायसैस्तीक्ष्णैः सन्निकर्षे च मुष्टिभिः । निघ्नतां समरेऽन्योन्यं शब्दो दिवमिवास्पृशत् ॥१७॥
छिंधिभिंधि प्रधाव त्वं पातयाभिसरेति च । व्यश्रूयन्त महाघोराः शब्दास्तत्र समंततः ॥१८॥
एवं सुतुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये । नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम् ॥१९॥
तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि । चिन्तयामास तच्चक्रं विष्णुर्दानवसूदनम् ॥२०॥

ततोऽम्बराच्चिंतितमात्रमागतं महाप्रभं चक्रममित्रतापनम् ।
विभावसोस्तुल्यमकुंठमंडलं सुदर्शनं संयति भीमदर्शनम् ॥२१॥
तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं भयंकरं करिकरबाहुरच्युतः ।
मुमोच वै प्रबलवदुग्रवेगवान्महाप्रभं परनगरावदारणम् ॥२२॥
तदंतकज्वलनसमानवर्चसं पुनः पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा ।
विदारयद्दितिदनुजान्सहस्रशः करेरितं पुरुषवरेण संयुगे ॥२३॥
दहत्क्वचिज्ज्वलन इवावलेलिहत्प्रसह्य तानसुरगणान्न्यकृंतत ।
प्रवेरितं वियति मुहुः क्षितौ तथा पपौ रणे रुधिरमथो पिशाचवत् ॥२४॥

पट्टिशों से कटे हुए सुवर्ण भूषित मस्तक धड़ाधड़ गिरने लगे ॥१४॥ रुधिर से भींगे हुए निहत राक्षस पृथ्वी पर सो गये। वे गेरू आदि धातुओं के द्वारा रक्तवर्ण पर्वतशिखर के समान मालूम होते थे ॥१५॥ परस्पर शस्त्रों के द्वारा वे काटने लगे। चारों ओर हाहाकार होने लगा। सूर्य लाल हो गया ॥१६॥ वे तीखे लोहे के परिघों से परस्पर प्रहार करने लगे। समीप आ जाने पर घूंसों से प्रहार करने लगे। उन प्रहारों का शब्द आकाश तक फैल गया ॥१७॥ फाड़ दो, टुकड़े कर दो, दौड़ो, पटक दो, पीछा करो, ये भयंकर शब्द वहां चारों तरफ सुनाई पड़ने लगे ॥१८॥ महाभयंकर इस प्रकार तुमुल युद्ध हो रहा था, वहां नर और नारायण आये ॥१९॥ वहां युद्धक्षेत्र में नारायण ने नर के हाथ में दिव्य धनुष देखा और दानवों का नाश करनेवाले अपने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया ॥२०॥ वह शत्रुओं का नाश करनेवाला चक्र बड़ा चमकीला था। उसका धार तीखा था। युद्ध में वह भयंकर दीखता था। अग्नि के समान उज्ज्वल था। भगवान के स्मरण करते ही वह आकर उपस्थित हुआ ॥२१॥ धधकते अग्नि के समान भयंकर उस आये हुए शत्रु के नगरों को नष्ट करनेवाले चमकीले चक्र को भगवान् अच्युत ने जिनकी भुजा हाथी की सूंड़ के समान है बड़े वेग से बली मनुष्य के समान चलाया ॥२२॥ पुरुषोत्तम भगवान् के हाथों से चलाया गया वह प्रलयाग्नि के समान चमकीला और वेगवान् चक्र बार बार दानवों पर गिरा और हजारों दानवों को तथा दैत्यों को उसने काट डाला ॥२३॥ वह भगवान का प्रेरित जलता हुआ चक्र अग्नि के समान राक्षसों को चाटने लगा। अर्थात् जलाने लगा और बलपूर्वक उनको काटने लगा। आकाश में तथा पृथ्वी में वह चक्र पिशाच के समान

तथाऽसुरा गिरिभिरदीनचेतसो मुहुर्मुहुः सुरगणमार्दयंस्तदा ।
महाबला विगलितमेघवर्चसः सहस्रशो गगनमभिप्रपद्य ह ॥२५॥
अथांबराद्भयजननाः प्रपेदिरे सपादपा बहुविधमेघरूपिणः ।
महाद्रयः परिगलिताग्रसानवः परस्परं द्रुतमभिहत्य सस्वनाः ॥२६॥
ततो मही प्रविचलिता सकानना महाद्रिपाताभिहता समंततः ।
परस्परं भृशमभिगर्जतां मुहू रणाजिरे भृशमभिसंप्रवर्तिते ॥२७॥
नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणैर्महेषुभिर्गगनपथं समावृणोत् ।
विदारयन् गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभयेऽसुरगणविग्रहे तदा ॥२८॥
ततो मही लवणजलं च सागरं महासुराः प्रविविशुरर्दिताः सुरैः ।
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपितं निशम्य ते ॥२९॥
ततः सुरैर्विजयमवाप्य मंदरः स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः ।
विनाद्य खं दिवमपि चैव सर्वशस्ततो गताः सलिलधरा यथागतम् ॥३०॥
ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम् ।
ददौ च तं निधिममृतस्य रक्षितुं किरीटिने बलभिदथामरैः सह ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणिआस्तीकपर्वणिअमृतमंथनसमाप्तिर्नामएकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

बार बार दैत्यों का रुधिर पीने लगा ॥२४॥ जलहीन मेघ के समान श्वेत, हजारों महाबली और उत्साही दानव आकाश में जाकर पर्वतों की वृष्टि करके देवताओं को पीड़ित करने लगे ॥ २५ ॥ जो पर्वत आकाश से गिरते थे। जिनमें अनेक वृक्ष होते थे तथा अनेक धातुओं के कारण बहुविध मेघों के समान मालूम पड़ते थे। वे आपस में टकराते थे जिससे उनके शिखर टूट जाते और बड़ा शब्द होता था। वह शब्द भयंकर होता था ॥२६॥ बड़े बड़े पर्वतों के गिरने से तथा युद्धक्षेत्र में दोनों ओरके योद्धाओं के बार बार गर्जन से वनसहित पृथिवी कांपने लगी ॥२७॥ उस समय महाभयंकर दानवों के युद्ध में नर ने सुवर्ण मढे बड़े बड़े वाणों से आकाश को पाट दिया और पर्वतशिखरों को तोड़ दिया ॥२८॥ धधकते अग्नि के समान उज्ज्वल सुदर्शन चक्र को कुपित देखकर देवताओं के द्वारा घायल वे महाराक्षस पृथिवी में तथा समुद्र में छिप गये ॥२९॥ विजय पाकर देवताओं ने मन्दराचल की पूजा की और उसे अपने स्थान पर भेज दिया। पुनः आकाश और अन्तरिक्ष को प्रतिध्वनित करते हुए देवता अमृत लेकर अपने अपने स्थान को गये ॥३०॥ देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्नता पाकर अमृत को रक्षित किया और देवताओं के साथ निश्चित करके इन्द्र ने नररूपी भगवान को अमृत की रक्षा का भार सौंपा। वह उनको थाती के रूप में दिया ॥३१॥

एकोनविंश अध्याय

सौतिरुवाच

एतत्ते कथितं सर्वममृतं मथितं तथा। यत्र सोऽश्वः समुत्पन्नः श्रीमानतुलविक्रमः ॥१॥
यं निशम्य तदा कद्रू विनतामिदमब्रवीत्। उच्चैःश्रवा हि किं वर्णो भद्रे प्रब्रूहि मा चिरम् ॥२॥

विनतोवाच

श्वेत एवाश्वराजोऽयं किंवा त्वं मन्यसे शुभे। ब्रूहि वर्णं त्वमप्यस्य ततोऽत्र विपणावहे ॥३॥

कद्रूरुवाच

कृष्णवालमहं मन्ये हयमेनं शुचिस्मिते। एहि सार्धं मया दीव्य दासीभावाय भामिनि ॥४॥

सौतिरुवाच

एवं ते समयं कृत्वा दासीभावाय वै मिथः। जग्मतुः स्वगृहानेव श्वो द्रक्ष्याव इति स्मह ॥५॥
ततः पुत्रसहस्रं तु कद्रूर्जिह्मं चिकीर्षती। आज्ञापयामास तदा वाला भूत्वाऽञ्जनप्रभाः ॥६॥
आविशध्वं हयं क्षिप्रं दासी न स्यामहं यथा। नावपद्यंत ये वाक्यं तान् शशाप भुजंगमान् ॥७॥
सर्पसत्रे वर्तमाने पावको वः प्रधक्ष्यति। जनमेजयस्य राजर्षेः पांडवेयस्य धीमतः ॥८॥
शापमेनं तु शुश्राव स्वयमेव पितामहः। अतिक्रूरं समुत्सृष्टं कद्र्वा दैवादतीव हि ॥९॥
सार्धं देवगणैः सर्वैर्वाचं तामन्वमोदत। बहुत्वं प्रेक्ष्य सर्पाणां प्रजानां हितकाम्यया ॥१०॥
तिग्मवीर्यविषा ह्येते दंदशूका महाबलाः। तेषां तीक्ष्णविषत्वाद्धि प्रजानां च हिताय च ॥११॥

कद्रू और विनता की बाजी। सर्पों को कद्रू का शाप. कश्यप को ब्रह्मा का विषहरी विद्या देना।

सौति बोले, जिस प्रकार अमृत मन्थन हुआ था, जहां वह सुन्दर और बली उच्चैःश्रवा घोड़ा उत्पन्न हुआ था—वह सब मैंने आप लोगों से कहा, ॥१॥ उसी घोड़े को देखकर कद्रू विनता से बोली, बहन, उच्चैःश्रवा किस रंग का है। यह तुम शीघ्र कहो, देर न लगाओ ॥२॥ विनता बोली, यह अश्वराज सफेद है। सुन्दरी, तुम इसे कैसा समझती हो। तुम भी इसका रंग बतलाओ, तब हम दोनों बाजी लगावें ॥३॥ कद्रू बोली, शुचिस्मिते, मैं तो इस घोड़े के बाल को काला समझती हूँ, अर्थात् इसकी पूंछ के बाल काले हैं। आओ, मेरे साथ दासी होने का पण करो। अर्थात् मेरी बात ठीक निकले तो तुम मेरी दासी होओ और तुम्हारी बात ठीक निकले तो मैं तुम्हारी दासी होऊं ॥४॥ सौति बोले, इस प्रकार दासी बनने का निश्चय करके वे दोनों घर गयीं और कल इसके निर्णय का उन लोगों ने निश्चय किया ॥५॥ कद्रू कपट करना चाहती थी। इस लिए अपने हजारों पुत्रों को उसने आज्ञा दी कि अंजन के समान काले बाल बनकर तुम लोग शीघ्र इस घोड़े के शरीर में चिपट जाओ, जिससे मुझे दासी होना न पड़े। जिन सर्पों ने उसकी बात न मानी उनको कद्रू ने शाप दिया ॥६,७॥ बुद्धिमान पाण्डुवंशी राजर्षि जनमेजय के सर्पयज्ञ में अग्नि तुम लोगों को जलावेगी ॥८॥ इस अत्यन्त क्रूर शाप को जो कद्रू ने अकस्मात् दिया था स्वयं पितामह ब्रह्मा ने भी सुना ॥९॥ देवताओं के साथ ब्रह्मा ने इस शाप का अनुमोदन किया। क्योंकि सांप बहुत हो गये थे और उनकी कमी होने से लोक कल्याण होनेवाला था ॥१०॥ ये

युक्तं मात्रा कृतं तेषां परपीडोपसर्पिणाम् । अन्येषामपि सत्वानां नित्यं दोषपरास्तु ये ॥१२॥
तेषां प्राणान्तिको दंडो दैवेन विनिपात्यते । एवं संभाष्य देवस्तु पूज्य कद्रूं च तां तदा ॥१३॥
आहूय कश्यपं देवमिदं वचनमब्रवीत् । यदेते दंदशूकाश्च सर्पा जातास्त्वयाऽनघ ॥१४॥
विषोल्वणा महाभोगा मात्रा शप्ताः परंतप । तत्र मन्युस्त्वया तात न कर्तव्यः कथचन ॥१५॥
दृष्टं पुरातनं ह्येतद्यज्ञे सर्पविनाशनम् । इत्युक्त्वा सृष्टिकृद्देवस्तं प्रसाद्य प्रजापतिम् ।
प्रादाद्विषहरीं विद्यां कश्यपाय महात्मने ॥१६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

सौतिरुवाच

ततो रजन्यां व्युष्टायां प्रभातेऽभ्युदिते रवौ । कद्रूश्च विनता चैव भगिन्यौ ते तपोधन ॥१॥
अमर्षिते सुसंरब्धे दास्ये कृतपणे तदा । जग्मतुस्तुरगं द्रष्टुमुच्चैःश्रवसमंतिकात् ॥२॥
ददृशातेऽथ ते तत्र समुद्रं निधिमंभसाम् । महांतमुदकागाधं क्षोभ्यमाणं महास्वनम् ॥३॥
तिमिंगिलझषाकीर्णं मकरैरावृतं तथा । सत्वैश्च बहुसाहस्रैर्नानारूपैः समावृतम् ॥४॥
भीषणैर्विकृतैरन्यैर्घोरैर्जलचरैस्तथा । उग्रैर्नित्यमनाधृष्यं कूर्मग्राहसमाकुलम् ॥५॥

दन्दशूक (तीखा काटनेवाले सर्प) बड़े बली हैं, इनका विष बड़ा तेज है, इनके विषैले होने के कारण तथा जनता की हित की दृष्टि से, दूसरों को पीड़ा देनेवाले इन सर्पों का माता ने जो शाप दिया वह उचित किया। अन्य प्राणियों में भी जो सदा दूसरों का अपराध किया करते हैं उनको प्राणान्त दण्ड दिया जाता है। यह दण्ड स्वाभाविक है। ऐसा कहकर के ब्रह्मा ने कद्रू की प्रशंसा की ॥११-१३॥ अनन्तर ब्रह्मा ने कश्यप को बुलाया और उनसे बोले, निष्पाप, जो ये तीक्ष्ण काटने वाले सर्प आपसे उत्पन्न हुए हैं, जो बड़े जहरीले हैं, उनको उनकी माता ने शाप दिया है। परन्तु इस पर आपको किसी तरह भी क्रोध नहीं करना चाहिए ॥१४,१५। यह पहले से ही निश्चित है कि सर्पयज्ञ में सर्पों का नाश होगा। ऐसा कहकर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने प्रजापति कश्यप को प्रसन्न किया और उन्होंने महात्मा कश्यप को विष हरनेवाली विद्या दी ॥१६॥

विंश अध्याय

उच्चैःश्रवा को देखने के लिए कद्रू और विनता का जाना।

सौति बोले, अनन्तर, रात के बीतने पर जब सूर्योदय हुआ तब कद्रू और विनता दोनों बहनें पास से उच्चैः श्रवा को देखने के लिए गयीं। उन लोगों ने दासी होने का प्रण किया था, अतएव वे घबड़ायी हुईं थीं और क्रोधित थीं ॥१,२॥ उन लोगों ने जल के स्वामी समुद्र को देखा, जिसके अगाध जल राशि में तरंगे उठ रही थीं और शब्द हो रहा था ॥३॥ तिमिंगिल मछलियाँ और मगरों से समुद्र भरा हुआ था। तथा अनेक रूपवाले हजारों जीव जन्तु उसमें थे। भयंकर विकृत रूपवाले, उग्र जलचरों के कारण उस समुद्र में कोई प्रवेश नहीं कर पाता था। कछुए और ग्राह उसमें भरे पड़े थे ॥५॥ सब रत्नों का आकर राजा वरुण का स्थान नागों

आकरं सर्वं रत्नानमालयं वरुणस्य च । नागानामालयं रम्यमुत्तमं सरितां पतिम् ॥६॥
पातालज्वलनावासमसुराणां च बान्धवम् । भयङ्करं च सत्वानां पयसां निधिमर्णवम् ॥७॥
शुभं दिव्यममर्त्यानाममृतस्याकरं परम् । अप्रमेयमचिन्त्यं च सुपुण्यजलमद्भुतम् ॥८॥
घोरं जलचरारावरौद्रं भैरवनिःस्वनम् । गंभीरावर्तकलिलं सर्वभूतभयंकरम् ॥९॥
वेलादोलानिलचलं क्षोभोद्वेगसमुच्छ्रितम् । वीचीहस्तैः प्रचलितैर्नृत्यंतमिव सर्वतः ॥१०॥
चन्द्रवृद्धिक्षयवशादुद्वृत्तोर्मिसमाकुलम् । पांचजन्यस्य जननं रत्नाकरमनुत्तमम् ॥११॥
गां विंदता भगवता गोविंदेनामितौजसा । वराहरूपिणा चांतर्विक्षोभितजलाविलम् ॥१२॥
ब्रह्मर्षिणा व्रतवता वर्षाणां शतमत्रिणा । अनासादितगाधं च पातालतलमव्ययम् ॥१३॥
अध्यात्मयोगनिद्रां च पद्मनाभस्य सेवतः । युगादिकालशयनं विष्णोरमिततेजसः ॥१४॥
वज्रपातनसंत्रस्तमैनाकस्याभयप्रदम् । डिंबाहवार्दितानां च असुराणां परायणम् ॥१५॥
वडवामुखदीप्ताग्नेस्तोयहव्यप्रदं शिवम् । अगाधपारं विस्तीर्णमप्रमेयं सरित्पतिम् ॥१६॥

के रहने की जगह वह समुद्र बड़ा रमणीय, बड़ा उत्तम था ॥६॥ बड़वाग्नि का निवास-स्थान राक्षसों का बन्धु अर्थात् शरण देने वाला, प्राणियों के लिए भयंकर वह जलराशि समुद्र था ॥७॥ देवताओं के लिए उत्तम तथा अमृत का स्थान था। उसकी लम्बाई चौड़ाई नहीं जानी जा सकती। उसके विषय में कुछ सोचा नहीं जा सकता। वह पवित्र जलवाला समुद्र अद्भुत था ॥८॥ जलचरों के गर्जन से वह भयंकर हो गया था। उसका गर्जन भयंकर था, वह स्वयं भयंकर था। गहरे आवर्त के कारण वह कलुषित हो गया। वह समुद्र सब प्राणियों के लिए भयंकर था ॥९॥ तीरपर लहरियों के टकराने से उत्पन्न वायु ने उसे चंचल बना दिया था। जल के उथला पथल के वेग के कारण वह ऊंचा जान पड़ता था। चंचल तरंगरूपी हाथों को देखने से मालूम पड़ता है कि वह नाच रहा हो। चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय के अनुसार समुद्र की लहरें ऊपर उठ जाती हैं और नीची हो जाती है। इसीने भगवान के पांचजन्य शंख को उत्पन्न किया है। यह रत्नों का सर्वश्रेष्ठ आकर है ॥११॥ अमित पराक्रमी भगवान् गोविंद जब पृथिवी पर आये और उन्होंने बराह रूप धारण किया तो इसके जलको हलाड़ा जिससे इसका जल कलुषित हो गया ॥१२॥ ब्रतचारण करने वाले महर्षि अत्रि सौ वर्षों तक इसका थाह लेते रहे पर इसकी थाह उन्हें न मिली। क्योंकि इसका तल पाताल के भी नीचे है। अतएव पाताल के नाश होने पर भी इसके तल का नाश नहीं होता ॥१३॥ प्रलयकाल में जब विष्णु भगवान् योग निद्रा में शयन करते हैं, उस समय यह तेजस्वी विष्णु का पलंग होता है ॥१४॥ मैनाक पर्वत बज्रपात की शंका से भयभीत हो गया था, उसे इसी समुद्र ने अभय दिया था। जिस युद्ध में भयभीतों का आर्तस्वर हो रहा था, उससे असुरों की रक्षा इसी समुद्र ने की थी ॥१५॥ यह समुद्र बड़वा के मुख में जलने वाली अग्नि को (बड़वाग्नि को) जलरूपी हवि देता है और यह मंगलमय है। इसके पार जाना कठिन है। यह बहुत ही विशाल है और इसकी लम्बाई चौड़ाई की कल्पना नहीं की जा सकती ॥१६॥ हजारों महानदियाँ स्पर्द्धा से समुद्र में जाकर मिलती हैं।

महानदीभिर्बह्वीभिः स्पर्धयेव सहस्रशः । अभिसार्यमाणमनिशं ददृशाते महार्णवम् ।
आपूर्यमाणमत्यर्थं नृत्यमानमिवोर्मिभिः ॥१७॥
गंभीरन्तिमिमकरोग्रसंकुलं तं गर्जन्तं जलचररावरौद्रनादैः ।
विस्तीर्णं ददृशतुरंबरप्रकाशन्तेऽगाधं निधिमुरुमंभसामनंतम् ॥१८॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे एकविंशतितमोऽध्याय ॥२१॥
सौतिरुवाच
नागाश्च संविदं कृत्वा कर्तव्यमिति तद्वचः । निःस्नेहा वै दहेन्माता असंप्राप्तमनोरथा ॥१॥
प्रसन्ना मोक्षयेदस्मांस्तस्माच्छापाच्च भामिनी । कृष्णं पुच्छं करिष्यामस्तुरगस्य न संशयः ॥२॥
तथा हि गत्वा ते तस्य पुच्छे वाला इति स्मृताः। एतस्मिन्नंतरे ते तु सपत्न्यौ पणिते तदा ॥३॥
ततस्ते पणितं कृत्वा भगिन्यौ द्विजसत्तम । जग्मतुः परया प्रीत्या परं पारं महोदधेः ॥४॥
कद्रूश्च विनता चैव दाक्षायण्यौ विहायसा । आलोकयन्त्यावक्षोभ्यं समुद्रं निधिमंभसाम् ॥५॥
वायुनाऽतीव सहसा क्षोभ्यमाणं महास्वनम् । तिमिंगिलसमाकीर्णं मकरैरावृतं तथा ॥६॥
संयुतं बहुसाहस्रैः सत्त्वैर्नानाविधैरपि । घोरैर्घोरमनाधृष्यं गंभीरमतिभैरवम् ॥७॥

उन दोनों बहिनों ने देखा वह चारो ओर से भरा हुआ था, तथा लहरियों के कारण नाचता हुआ सा प्रतीत होता था ॥१७॥ उन दोनों ने अनन्त समुद्र को देखा जो अथाह तिमि, मकर आदि भयंकर जन्तुओं से भरा हुआ था । जलचरों के शब्दों से भयंकर गर्जन कर रहा था । आकाश तक फैला हुआ था । उस विशाल समुद्र को उन दोनों ने देखा ॥१८॥

एकविंशति अध्याय

माता के कहने से सर्पों का उच्चैःश्रवा की पूँछ में लिपटना ।

सौति बोले, नागों ने आपस में विचार करके निश्चय किया कि माता की आज्ञा का पालन करना चाहिए । यदि हमलोग उसकी आज्ञा का पालन न करें तो मनोरथ भंग होने के कारण वह हम लोगों के प्रति स्नेह हीन हो जायगी और शाप देकर जला देगी ॥१॥ यदि वह प्रसन्न हो गई तो अपने उस शाप से हम लोगों की रक्षा करेगी अतएव हम लोग अवश्य ही उच्चैःश्रवा की पूँछ काली बना देंगे ॥२॥ ऐसा निश्चय करके और जाकर उन लोगों ने पूँछ के बालों को काला बना दिया । इसी समय वे दोनों सौतें जिन दिनों ने बाजी लगायी थी वे दोनों बाजी लगाकर बड़ी प्रसन्नता से समुद्र के उस पर जा रही थी ॥३, ४॥ कद्रू और विनता ये दोनों दक्ष की कन्याएँ आकाश मार्ग से अक्षोभ्य समुद्र को देखती हुई जाने लगी ॥५॥ तिमिंगिलों से भरा हुआ और मगरों से ढका हुआ वह समुद्र वायु के चलने से सहसा क्षुभित हुआ और उससे घोर शब्द होने लगा ॥६॥ अनेक प्रकार के कई हजार प्राणी उस समुद्र में थे । उन भयङ्कर प्राणियों के कारण समुद्र भी भयङ्कर हो गया था । कोई उसका पार नहीं कर सकता था । वह बड़ा ही भयङ्कर और गहरा था ॥७॥ नदियों का पति वह समुद्र सब रत्नों का आकर राजा वरुण और

आकरं सर्वरत्नानामालयं वरुणस्य च । नागानामालयं चापि सुरम्यं सरितां पतिम् ॥८॥
पातालज्वलनावासमसुराणां तथालयम् । भयंकराणां सत्वानां पयसो निधमव्ययम् ॥९॥
शुभ्रं दिव्यममर्त्यानाममृतस्याकरं परं । अप्रमेयमचिंत्यं च सुपुण्यजलसंमितम् ॥१०॥
महानदीभिर्बह्वीभिस्तत्र तत्र सहस्रशः । आपूर्यमाणमत्यर्थं नृत्यंतमिव चोर्मिभिः ॥११॥
इत्येवं तरलतरोर्मि संकुलं ते गंभीरं विकसितमंबरप्रकाशम् ।
पातालज्वलनशिखाविदीपितांगं गर्जन्तं [illegible] ॥१२॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे समुद्रदर्शननाम द्वाविंशोध्यायः ॥२२॥

सौतिरुवाच

तं समुद्रमतिक्रम्य कद्रूर्विनतया सह । न्यपतत्तुरगाभ्याशे न चिरादिव शीघ्रगा ॥१॥
ततस्ते तं हयश्रेष्ठं ददृशाते महाजवम् । शशांककिरणप्रख्यं कालबालमुभे तदा ॥२॥
निशम्य च बहून् वालान् कृष्णान्पुच्छसमाश्रितान्। विषण्णरूपां विनतां कद्रूर्दास्ये न्ययोजयत्॥३॥
ततः सा विनता तस्मिन्पणितेन पराजिता । अभवद्दुःखसंतप्ता दासीभावं समास्थिता ॥४॥
एतस्मिन्नंतरे चापि गरुड़ः काल आगते । विना मात्रा महातेजा विदार्याडमजायत ॥५॥
महासत्वबलोपेतः सर्वा विद्योतयन् दिशः । कामरूपः कामगमः कामवीर्यो विहंगमः ॥६॥

सर्पों के रहने का स्थान था और बड़ा ही रमणीय था ॥८॥ वह बड़वाग्नि का निवास स्थान असुरों का घर है, वह भयङ्कर प्राणियों के रहने की जगह है ॥९॥ वह देवताओं के लिए दिव्य-धाम अमृत का श्रेष्ठ खजाना है, वह अप्रमेय और अचिन्त्य है, उसका जल पवित्र है, हजारों बड़ी बड़ी नदियों से वह भरता है। तरंगों के द्वारा नाचता हुआ सा मालूम होता है ॥१०, ११॥ इस प्रकार लहरों से भरे हुए गभीर, आकाश के समान नील, बड़वाग्नि की ज्वालाओं से प्रकाश-मान् गर्जन करते हुए समुद्र के पास वे दोनों बहिनें पहुंचीं ॥१२॥

द्वाविंश अध्याय ।

गरुड़ की उत्पत्ति । देवताओं की स्तुति से गरुड़ का अपने तेज को कम करना ।

उस समुद्र को पार करके कद्रू विनता साथ शीघ्र ही घोड़े के समीप पहुंची, क्योंकि वे बहुत तेज चलने वाली थीं उसने घोड़े को देखा जो चन्द्रमा के किरणों के समान श्वेत होने पर भी काले केशवाला दिखाई पड़ता था ॥२॥ घोड़े की पूँछ के बालों को काला देखकर विनता बहुत दुखी हुई और कद्रू ने उसे अपनी दासी बनाया ॥३॥ कद्रू के साथ की होड़ में पराजित होकर विनता को दासी बनना पड़ा और इससे उसे बहुत दुख हुआ ॥४॥ इसी समय गरुड़ माता की सहायता के बिना अण्डा फोड़ कर निकले। वे बड़े ही तेजस्वी थे। अण्डा से निकलने का उनका समय हो गया था ॥५॥ वे बड़े बली और पराक्रमी थे। उनकी प्रभा से समस्त दिशाएँ प्रकाशित हुई। वे अपनी इच्छा से रूप बना सकते थे। इच्छानुसार जा सकते थे और

अग्निराशिरिवोद्भासन्समिद्धोऽतिभयंकरः । विद्युद्विस्पष्टपिंगाक्षो युगांताग्निसमप्रभः ॥७॥
प्रवृद्धः सहसा पक्षी महाकायो नभोगतः । घोरो घोरस्वनो रौद्रो वह्निरौर्व इवापरः ॥८॥
तं दृष्ट्वा शरणं जग्मुर्देवाः सर्वे विभावसुम् । अग्नि[illegible]मासीनं विश्वरूपिणम् ॥९॥
अग्ने मा त्वं प्रवर्धिष्ठाः कच्चिन्नो न दिधक्षसि । असौ हि राशिः सुमहान्समिद्धस्तव सर्पति ॥१०॥

अग्निरुवाच

नैव देवं यथा यूयं मन्यध्वमसुरार्दनाः । गरुडो बलवानेष मम तुल्यश्च तेजसा ॥११॥
जातः परम तेजस्वी विनतानंदवर्धनः । तेजोराशिमिमं दृष्ट्वा युष्मान्मोहः समाविशत् ॥१२॥
नागक्षयकरश्चैव काश्यपेयो महाबलः । देवानां च हिते युक्तस्त्वहितो दैत्यरक्षसाम् ॥१३॥
न भीः कार्या कथंचात्र पश्यध्वं सहिता मया । एवमुक्तास्तदा गत्वा गरुडं वाग्भिरस्तुवन ॥१४॥
ते दूरादभ्युपेत्यैनं देवाः सर्पिगणास्तदा ।

देवाः ऊचुः

त्वमृषिस्त्वं महाभागस्त्वं देवः पतगेश्वरः ॥१५॥
त्वं प्रभुस्तपनः सूर्यः परमेष्ठी प्रजापतिः । त्वमिन्द्रस्त्वं हयमुखस्त्वं शर्वस्त्वं जगत्पतिः ॥१६॥

वे पक्षी गरुण इच्छा के अनुसार हो चाहे जितना बड़ा बली हो सकते थे। ६ अग्निराशि के समान वे प्रकाशमान थे। उनके शरीर से प्रभा निकल रही थी। देखने में बड़े भयंकर थे। बिजली के समान पीली उनकी आँखें थीं। प्रलयकाल की अग्नि के समान वे मालूम पड़ती थीं ॥७॥ आकाश में जाकर विशाल शरीर वह पक्षी और बड़ा हो गया। वह देखने में भयंकर, उसका शब्द भयंकर वह दूसरे बडवानल के समान मालूम होता था ॥८॥ उसको देखकर देवता अग्नि की शरण गये और प्रणाम करके बैठे हुए विश्वरूपी अग्नि से बोले ॥९॥ देवताओं ने गरुड़ को अग्नि समझ लिया था और इसी भ्रम से उन लोगों ने अग्नि से इस प्रकार कहा—अग्निदेव, आप और अधिक न बढ़ें, क्या आप हमलोगों को जला ही देना चाहते हैं। यह महान् अग्नि राशि धधक रहा है और फैलता जाता है ॥१०॥ अग्नि बोले, असुरनाशक देवगण जैसा आप लोग समझ रहे है, यह वैसा नहीं है। बली गरुड़ हैं जो हमारे समान ही तेजस्वी हैं ॥११॥ ये परम तेजस्वी गरुड़ विनता से उत्पन्न हुए हैं। तेजोराशि गरुड़ को देखकर आपलोगों को ऐसा भ्रम हो गया है ॥१२॥ महाबली कश्यप पुत्र गरुड़ नागों का नाश करेंगे। ये देवताओं का हित करेंगे और दैत्य तथा राक्षसों का अहित करेंगे ॥१३॥ आपलोगों को किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए। आप सब लोग मेरे साथ गरुड़ को देखें, अर्थात् गरुड़ के पास चलें। अग्नि के ऐसा कहने पर समस्त देवता गरुड़ के यहां गये और वचनों से उनकी स्तुति करने लगे। ॥१४॥ ऋषियों के साथ देवता गरुड़ के पास जाकर इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे। देवता बोले, (देवताओं ने गरुड़ को परब्रह्म समझकर स्तुति की है) आप ऋषि हैं, मन्त्रों के द्रष्टा हैं, आप महाभाग हैं, यज्ञों के फल भोगनेवाले हैं, आप देवता हैं, जीव रूपी पक्षियों के स्वामी हैं ॥१५॥ आप चेतन और अचेतन के अधिष्ठाता प्रभु है। आप तपन हैं अर्थात् नाशकर्ता हैं। सूर्य हैं अर्थात् उत्पादक हैं। आप परमेष्ठी ब्रह्मा हैं, प्रजापति हैं, आप

त्वं मुखं पद्मजो विप्रस्त्वमग्निः पवनस्तथा । त्वं हि धाता विधाता च त्वं विष्णुः सुरसत्तमः ॥१७॥
त्वं महानभिभूः शश्वदमृतं त्वं महद्यशः । त्वं प्रभास्त्वमभिप्रेतं त्वं नस्त्राणमनुत्तमम् ॥१८॥

बलोर्मिमान्साधुरदीनसत्वः समृद्धिमान्दुर्विषहस्त्वमेव ।
त्वत्तः सृतं सर्वमहीनकीर्ते ह्यनागतं चोपगतं च सर्वम् ॥१९॥
त्वमुत्तमः सर्वमिदं चराचरं गभस्तिभिर्भानुरिवावभाससे ।
समाक्षिपन्भानुमतः प्रभां मुहुस्त्वमंतकः सर्वमिदं ध्रुवाध्रुवम् ॥२०॥
दिवाकरः परिकुपितो यथा दहेत्प्रजास्तथा दहसि हुताशनप्रभ ।
भयंकरः प्रलय इवाग्निरुत्थितो विनाशयन्युगपरिवर्त्तनान्तकृत् ॥२१॥
खगेश्वरं शरणमुपागता वयं महौजसं ज्वलनसमानवर्चसम् ।
तडित्प्रभं वितिमिरमभ्रगोचरं महाबलं गरुडमुपेत्य खेचरम् ॥२२॥
परावरं वरदमजय्यविक्रमं तवौजसा सर्वमिदं प्रतापितम् ।
जगत्प्रभो तप्तसुवर्णवर्चसा त्वं पाहि सर्वांश्च सुरान्महात्मनः ॥२३॥
भयान्विता नभसि विमानगामिनो विमानिता विपथगतिं प्रयान्ति ते ।
ऋषेः सुतस्त्वमसि दयावतःप्रभो महात्मनः खगवर कश्यपस्य ह ॥२४॥

इन्द्र हैं, आप हयग्रीव हैं, आप त्रिपुरवध के समय महादेव के बाणरूपी विष्णु हैं, आप जग के स्वामी हैं ॥१६॥ आप विराट के मुख हैं, आप चतुर्मुख ब्रह्मा हैं, आप विज्ञानवेत्ता, अग्नि, वायु रूप हैं। आप चेतन हैं, आप माया हैं, आप व्यापक विष्णु हैं, आप समस्त देवताओं में श्रेष्ठ हैं ॥१७॥ आप महत्तत्व हैं, अहंकार हैं, कभी विकृत न होनेवाला यश हैं, आप प्रभा हैं, आप मनोरथ हैं, आप सर्वश्रेष्ठ प्राणरक्षा के उपाय हैं ॥१८॥ आप बल के समुद्र हैं, साधु हैं, और आपके पराक्रम की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आप ऐश्वर्यवान् हैं, युद्ध में आपको कोई सह नहीं सकता। हे पवित्रकीर्त्ति, भविष्य और भूत यह सब आप ही से उत्पन्न हुआ है ॥१९॥ आप चेतन स्वरूप हैं, इस चराचर संसार को प्रकाशित करते हैं, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से समस्त पदार्थों को प्रकाशित करता है। आपने सूर्य की प्रभा को नष्ट किया है, आप अन्तक हैं, नित्य और अनित्य सभी आप ही हैं ॥२०॥ क्रोध करके सूर्य जिस प्रकार प्रजा को जलाता है, उसी प्रकार, हे अग्नि के समान तेजस्वी गरुड़, आप जला रहे हैं। जो प्रलयाग्नि युग परिवर्तन करती है, आप उसके समान हैं ॥२१॥ ओजस्वी अग्नि के समान तेजस्वी पक्षिराज गरुड़ की शरण हमलोग आये हैं। जो आकाश में घूम रहे हैं, बिजली के समान प्रकाशमान हो रहे हैं, अन्धकार का नाश कर रहे हैं, उन आकाशचारी महाबली गरुड़ की शरण हमलोग आये हैं ॥२२॥ आप कारण रूप और कार्य रूप हैं। वर देनेवाले हैं। आपका पराक्रम अजेय हैं, आपके पराक्रम से यह समस्त संसार भीत है। तपे सुवर्ण के समान अपने तेज से आप समस्त देवताओं की रक्षा करें। भयभीत होकर विमानगामी सिद्धगण आकाश में आपके तेज से अपमानित होकर इधर उधर भटक रहे हैं। दयावान महात्मा ऋषि

स मा क्रुधःकुरु जगतो दयां परां त्वमीश्वरः प्रशममुपैहि पाहि नः।
महाशनिस्फुरितसमस्वनेन ते दिशोऽम्बरं त्रिदिवमियं च मेदिनी ॥२५॥
चलन्ति नः खग हृदयानि चानिशं निगृह्यतां वपुरिदमग्निसन्निभम्।
तव द्युतिं कुपितकृतान्तसन्निभां निशम्य नश्चलति मनोऽव्यवस्थितम्।
प्रसीद नः पतगपते प्रयाचतां शिवश्च नो भव भगवन् सुखावहः ॥२६॥
एवं स्तुतः सुपर्णस्तु देवैः सर्षिगणैस्तदा। तेजसः प्रतिसंहारमात्मनः संप्रचक्रमे ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

सौतिरुवाच

स श्रुत्वाऽथात्मनो देहं सुपर्णः प्रेक्ष्य च स्वयम्। शरीरप्रतिसंहारमात्मनः संप्रचक्रमे ॥१॥

सुपर्ण उवाच

न मे सर्वाणि भूतानि विभियुर्देहदर्शनात्। भीमरूपात्समुद्विग्नास्तस्मात्तेजस्तु संहरे ॥२॥

सौतिरुवाच

ततः कामगमः पक्षी कामवीर्यो विहंगमः। अरुणं चात्मनः पृष्ठमारोप्य स पितुर्गृहात् ॥३॥
मातुरन्तिकमागच्छत्परं तीरं महोदधेः। तत्रारुणश्च निक्षिप्तो दिशं पूर्वां महाद्युतेः ॥४॥

कश्यप के, हे पक्षिराज, आप पुत्र हैं ॥२४॥ आप क्रोध न करें। जगत पर दया करें। आप स्वामी हैं, शान्त हों। आप हमलोगों की रक्षा करें। वज्र के समान आपके गर्जन से दिशाएँ, आकाश, स्वर्ग, यह पृथ्वी तथा हमलोगों के हृदय, निरन्तर काँप रहे हैं। अग्नि के समान अपने शरीर को संक्षिप्त कीजिए। अपना तेज कम कीजिए। कुपित यमराज के समान आपकी द्युति देखकर हम लोगों का मन चंचल हो जाता है, व्याकुल हो जाता है। अतएव भगवान पक्षिराज, आप प्रसन्न हों, हम प्रार्थना करनेवालों पर अनुकूल हों और हमारे लिए सुखकारी हों ॥ २५, २६ ॥ ऋषियों और देवताओं के द्वारा स्तुति की जाने पर गरुड़ ने अपने तेज को कम किया ॥२७॥

त्रयोविंश अध्याय

राहु के उपद्रव से सूर्य का क्रोध। ब्रह्मा की आज्ञा से अरुण का सूर्य का सारथि बनना।

सौति बोले, देवताओं के द्वारा अपने स्वरूप का वर्णन सुनकर तथा स्वयं अपना शरीर देखकर गरुड़ ने अपने विशाल रूप को छोटा बनाया। अर्थात् वे भयंकर से सौम्य हो गये ॥१॥ गरुड़ बोले, सब प्राणी मेरा भयंकर शरीर देखकर व्याकुल न हों, डरें नहीं, इसलिए हम अपने तेज को कम करते हैं ॥२॥ सौति बोले, अनन्तर, इच्छानुसार पराक्रमी, इच्छानुसार चलनेवाले, आकाशगामी पक्षी गरुड़ अपनी पीठ पर अरुण को चढ़ाकर, पिता के घर से समुद्र के दूसरे पार, माता के पास आए। वहाँ पूर्व दिशा में उन्होंने अरुण को महाद्युति सूर्य के आगे रख दिया।

सूर्यस्तेजोभिरत्युग्रैर्लोकान्दग्धुमना यदा । रुरुरुवाच
किमर्थं भगवान्सूर्यो लोकान्दग्धुमनास्तदा ॥५॥
किमस्यापहृतं देवैर्येनेमं मन्युराविशत् । प्रमतिरुवाच
चन्द्रार्काभ्यां यदा राहुराख्यातो ह्यमृतं पिबन् ॥६॥
वैरानुबंधं कृतवाँश्चन्द्रादित्यौ तदाऽनघ । वध्यमाने ग्रहेणाथ आदित्ये मन्युराविशत् ॥७॥
सुरार्थाय समुत्पन्नो रोषो राहोस्तु मां प्रति । बह्वनर्थकरं पाप्मैकोऽहं समवाप्नुयाम् ॥८॥
सहाय एव कार्येषु न च कृच्छ्रेषु दृश्यते । पश्यंति ग्रस्यमानं मां सहंते वै दिवौकसः ॥९॥
तस्माल्लोकविनाशार्थं ह्यवतिष्ठे न संशयः । एवं कृतमतिः सूर्यो ह्यस्तमभ्यगमद्गिरिम् ॥१०॥
तस्माल्लोकविनाशाय संतापयत भास्करः । ततो देवानुपागम्य प्रोचुरेवं महर्षयः ॥११॥
अद्यार्धरात्रसमये सर्वलोकभयावहः । उत्पत्स्यते महान्दाहस्त्रैलोक्यस्य विनाशनः ॥१२॥
ततो देवाः सर्षिगणा उपगम्य पितामहम् । अब्रुवन्किमिवेहाद्य महद्दाहकृतं भयम् ॥१३॥
न तावद्दृश्यते सूर्यः क्षयोऽयं प्रतिभाति च । उदिते भगवन् भानौ कथमेतद्भविष्यति ॥१४॥

पितामह उवाच

एष लोकविनाशाय रविरुद्यंतुमुद्यतः । दृश्यन्नेव हि लोकान्स भस्मराशीकरिष्यति ॥१५॥
तस्य प्रतिविधानं च विहितं पूर्वमेवहि । कश्यपस्य सुतो धीमानरुणेत्यभिविश्रुतः ॥१६॥

उसी समय सूर्य अपनी उग्र किरणों से लोकों को जलाना चाहते थे ॥४॥ रुरु बोले, भगवान सूर्य, किस कारण लोकों को जलाना चाहते थे ॥५॥ देवताओं ने उनका क्या ले लिया था । जिससे उन्हें इतना क्रोध हुआ । प्रमति बोले, अमृत पीते हुए राहु को चन्द्रमा और सूर्य ने जब बतला दिया तभी से वह उनसे बैर रखने लगा । हे निष्पाप, उसी समय से वह राहु ग्रह चन्द्रमा और सूय को ग्रास करने लगा । इससे सूर्य ने क्रोध किया ॥६, ७॥ देवताओं के कारण राहु ने मुझ पर क्रोध किया है, पर अकेले मुझको ही अनेक अनर्थों की जड़ यह कष्ट भोगना पड़ता है ॥८॥ इस कठोर समय में कोई सहायक भी नहीं दिखाई पड़ता । देवता मेरा ग्रास होना देखते रहते हैं, सहजाते हैं कोई भी उपाय नहीं करते ॥९॥ अतएव मुझे अवश्य समस्त लोकों का विनाश करना चाहिए। ऐसा निश्चय करके सूर्यदेव अस्ताचल पर्वत पर गये ॥१०॥ वहां से संसार के नाश के लिए सूर्य तपने लगे । तब महर्षिगण देवताओं के पास जाकर इस प्रकार बोले, ॥११॥ आज आधी रात के समय सबको भयभीत करने वाला बड़ा भारी दाह उत्पन्न होगा । जिसमें समस्त त्रिलोक नष्ट हो जायगा ॥१२॥ पुनः ऋषियों को लेकर देवता ब्रह्मा के पास गये और उनसे बोले, यह बहुत बड़े दाह का भय इससमय क्यों उत्पन्न हुआ ॥१३॥ सूर्य भी दिखाई नहीं पड़ते । हमें तो क्षय के ही लक्षण दिखायी पड़ते हैं, सूर्य के उदय होने पर न जाने क्या होगा ॥१४॥ ब्रह्मा बोले, मालूम होता है कि आज लोक का विनाश करने के लिए सूर्य का उदय होनेवाला है । देखते ही देखते वे सब लोकों का नाश कर देंगे ॥१५॥ पर इसका उपाय भी पहले से ही किया

महाकायो महातेजाः स स्थास्यति पुरो रवेः । करिष्यति च सारथ्यं तेजश्चास्य हरिष्यति ॥१७॥
लोकानां स्वस्ति चैवं स्यादृषीणां च दिवौकसाम् । प्रमतिरुवाच
ततः पितामहाज्ञातः सर्वं चक्रे तदाऽरुणः ॥१८॥
उदितश्चैव सविता ह्यरुणेन समावृतः । एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्सूर्यं मन्युराविशत् ॥१९॥
अरुणश्च यथैवास्य सारथ्यमकरोत्प्रभुः । भूय एवापरं प्रश्नं शृणु पूर्वमुदाहृतम् ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

सौतिरुवाच

ततः कामगमः पक्षी महावीर्यो महाबलः । मातुरंतिकमागच्छत्परं पारं महोदधेः ॥१॥
यत्र सा विनता तस्मिन्पणितेन पराजिता । अतीव दुःखसंतप्ता दासीभावमुपागता ॥२॥
ततः कदाचिद्विनतां प्रणतां पुत्रसन्निधौ । काले चाहूय वचनं कद्रूरिदमभाषत ॥३॥
नागानामालयं भद्रे सुरम्यं चारुदर्शनम् । समुद्रकुक्षावेकांते तत्र मां विनते नय ॥४॥
ततः सुपर्णमाता तामवहत्सर्पमातरम् । पन्नगान् गरुडश्चापि मातुर्वचनचोदितः ॥५॥
स सूर्यमभितो याति वैनतेयो विहंगमः । सूर्यरश्मिप्रतप्ताश्च मूर्च्छिताः पन्नगाऽभवन् ॥६॥

गया है । कश्यप के पुत्र एक है, वह अरुण नाम से प्रसिद्ध और बुद्धिमान् है । वह विशाल शरीर का तेजस्वी सूर्य के आगे बैठ कर उनका रथ हांकेगा और सूर्य के तेज को रोकेगा ॥१७॥ इस प्रकार लोकों ऋषियों और देवताओं का कल्याण होगा । प्रमति बोले, अनन्तर ब्रह्मा की आज्ञा से अरुण ने वैसा ही किया ॥१८॥ सूर्य का उदय हुआ, पर वे अरुण से ढके हुए थे । जिस कारण सूर्य ने क्रोध किया था, वह सब मैंने तुम्हें बतलाया ॥१९॥ अरुण जिस प्रकार सूर्य का सारथि हुआ वह भी मैंने बतलाया । अब दूसरे प्रश्न का उत्तर सुनो जो पहले कहा गया है ॥२०॥

चतुर्विंश अध्याय

विनता का कद्रू को और गरुड़ का सर्पों को पीठ पर लेकर ढोना । सूर्य के ताप से तपे अपने पुत्र की रक्षा के लिए कद्रू के द्वारा इन्द्र की स्तुति ।

सौति बोले, कामगामी, महापराक्रमी महाबली पक्षी माता के पास समुद्र के दूसरे पार आया ॥१॥ जहां बाजी में पराजित होकर विनता बड़े दुख से दासी होकर रहतीथी ॥२॥ एक समय विनता अपने पुत्र के पास थी । उस समय कद्रू ने उसे बुलाया और वह बोली ॥३॥ नागों का स्थान बड़ाही रमणीय और देखने में सुन्दर है । समुद्र के भीतर एकान्त में वह स्थान है विनता तुम वहां मुझे ले चलो ॥४॥ सौति बोले, गरुड़ की माता सर्पों की माता को लेकर चली । माता के कहने से गरुड़ भी सर्पों को लेकर चले ॥५॥ वे विनता के पुत्र गरुड़ पक्षी सूर्य के पास पास चलते थे । अतएव उनकी पीठ पर चढ़े हुए सर्प, सूर्य किरणों के ताप से मूर्छित हो

तदवस्थान् सुतान्दृष्ट्वा कद्रूः शक्रमभ्यस्तुवत् । नमस्ते सर्व देवेश नमस्ते बलसूदन ॥७॥
नमुचिघ्न नमस्तेऽस्तु सहस्राक्ष शचीपते । सर्पाणां सूर्यतप्तानां वारिणा त्वं प्लवो भव ॥८॥
त्वमेव परमं त्राणमस्माकममरोत्तम । ईशो ह्यसि पयः स्रष्टुं त्वमनल्पं पुरंदर ॥९॥
त्वमेवमेघस्त्वं वायुस्त्वमग्निर्विद्यु तोऽम्बरे । त्वमभ्रगणविक्षेप्ता त्वामेवाहुर्महाघनम् ॥१०॥
त्वं वज्रमतुलं घोरं घोषवांस्त्वं बलाहकः । स्रष्टा त्वमेव लोकानां संहर्ता चापराजितः ॥११॥
त्वं ज्योतिः सर्व भूतानां त्वमादित्यो विभावसुः । त्वं महद्भूतमाश्चर्यं त्वं राजा त्वं सुरोत्तमः ॥१२॥
त्वं विष्णुस्त्वं सहस्राक्षस्त्वं देवस्त्वं परायणम् । त्वं सर्व ममृतं देव त्वं सोमःपरमार्चितः ॥१३॥
त्वं मुहूर्त्तास्तिथिस्त्वं च त्वं लवस्त्वं पुनः क्षणः । शुक्लस्त्वं बहुलस्त्वं च कलाकाष्ठा त्रुटिस्तथा ।
संवत्सरर्त्तवोमासा रजन्यश्च दिनानि च ॥१४॥

त्वमुत्तमा सुगिरिवना वसुन्धरा सभास्करं वितिमिरमम्बरं तथा ।
महोदधिः सतिमितिमिंगिलस्तथा महोर्मिमान् बहुमकरो झषाकुलः ॥१५॥
महायशास्त्वमिति सदाऽभिपूज्यसे मनीषिभिर्मुदितमना महर्षिभिः ।
अभिष्टुतः पिबसि च सोममध्वरे वषट्कृतान्यपि च हवींषि भूतये ॥१६॥
त्वं विप्रैः सततमिहेज्यसे फलार्थं वेदांगेष्वतुलबलौघ गीयसे च ।

गये ॥६॥ अपने पुत्रों की वह दशा देखकर कद्रू ने इन्द्र की स्तुति की । हे सब देवों के स्वामी, हे बल नामक राक्षस का नाश करने वाले, आप को नमस्कार ॥७॥ हे नमुचि को मारने वाले सहस्राक्ष शचीपति आपको नमस्कार, सूर्य से तप हुए सर्पों को जल के द्वारा आप पार उतारें उनकी रक्षा करें ॥८॥ हे देवश्रेष्ठ आपही हमलोगों के परम रक्षक हैं । हे पुरन्दर, बहुत अधिक जल बरसाने का आप स्वामी हैं, अर्थात् आप खूब जल बरसा सकते हैं ॥९॥ आप मेघ हैं, वायु हैं, अग्नि है, आकाश में चमकनेवाली विद्युत हैं, आप ही मेघों को दूर हटानेवाले हैं । आप ही को लोग महामेघ कहते हैं ॥१०॥ आप अतुलनीय और भयंकर वज्र हैं, आप गर्जन करने वाले मेघ हैं । आप लोकों की सृष्टि और संहार करने वाले हैं । आप सदा अपराजित हैं । ११॥ आप सब प्राणियों के ज्ञान स्वरूप हैं, आप सूर्य हैं, अग्नि हैं, आप महद्भूत हैं, आप राजा हैं; और देवताओं के स्वामी हैं ॥१२॥ आप विष्णु हैं, सहस्राक्ष हैं, देव हैं, और गति हैं, रक्षक हैं । आप मोक्ष हैं, और परम पूजित सोम अर्थात् ईश्वर हैं ॥१३॥ आप मुहूर्त हैं, तिथि हैं, लव (काल का छोटा परिणाम) और क्षण हैं । आप शुक्ल और कृष्ण पक्ष हैं, आप कला, काष्ठा और त्रुटि हैं । आप वर्ष हैं, ऋतु हैं, मास हैं, रात्रि हैं, और दिन हैं ॥१४॥ आप पर्वत और बन सहित सुन्दर पृथिवी हैं, आप सूर्य सहित, अन्धकारहीन आकाश है, तिमि और तिमिंगिल युक्त अनेक मगर और मछलियों से भरे हुए बड़ी बड़ी लहरों वाले समुद्र हैं । आप बड़े यशस्वी हैं, सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं । बुद्धिमान् आपको प्रशंसा करते हैं ॥१६॥ महर्षियों के द्वारा स्तुति करने पर यज्ञ में आप सोमरस पीते हैं और वषट्कारयुक्त हवि संसार के कल्याण के लिए खाते हैं । आप को

त्वद्धेतोर्यजनपरायणा द्विजेन्द्रा वेदांगान्यभिगच्छंति सर्वयत्नैः ॥१७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

सौतिरुवाच

एवं स्तुतस्तदा कद्र्वा भगवान्हरिवाहनः । नीलजीमूतसंघातैः सर्वमंबरमावृणोत् ॥१॥
मेघानाज्ञापयामास वर्षध्वममृतं शुभम् । ते मेघा मुमुचुस्तोयं प्रभूतं विद्युदुज्ज्वलाः ॥२॥
परस्परमिवात्यर्थं गर्जंतः सततं दिवि । संवर्तितमिवाकाशं जलदैः सुमहाद्भुतैः ॥३॥
सृजद्भिरतुलं तोयमजस्रं सुमहारवैः । संप्रनृत्तमिवाकाशं धारोर्मिभिरनेकशः ॥४॥
मेघस्तनितनिर्घोषैर्विद्युत्पवनकंपितैः । तैर्मेघैः सततासारं वर्षद्भिरनिशं तदा ॥५॥
नष्टचन्द्रार्ककिरणमंबरं समपद्यत । नागानामुत्तमो हर्षस्तथा वर्षति वासवे ॥६॥
आपूर्यत मही चापि सलिलेन समन्ततः । रसातलमनुप्राप्तं शीतलं विमलं जलम् ॥७॥
तदा भूरभवच्छन्ना जलोर्मिभिरनेकशः । रामणीयकमागच्छन्मात्रा सह भुजंगमाः ॥८॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

पाने की इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण सदा आपके लिए यज्ञ करते हैं। वेदों में आप अतुलनीय बली कहे गये हैं। आपके लिए अर्थात् आपको पाने के लिए यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण बड़े प्रयत्नों से वेदांगों को पढ़ते हैं ॥१७॥

पंचविंश अध्याय।

स्तुति से प्रसन्न होकर इन्द्र का जल बरसाना!

सौति बोले, कद्रू के इस तरह स्तुति करने पर इन्द्र ने नीले मेघ समूह से समस्त आकाश को ढँक लिया ॥१॥ इन्द्र ने मेघों को उत्तम जल बरसाने की आज्ञा दी। बिजली से चमकनेवाले, उन मेघों ने खूब जल बरसाया ॥२॥ परस्पर गरजते हुए अत्यन्त अद्भुत मेघों के कारण आकाश प्रलयकाल के ऐसा हो गया ॥३॥ बड़े भयंकर शब्द करके वे मेघ जल बरसाने लगे। अनेक जलधाराओं के कारण आकाश नाचता हुआ सा मालूम पड़ता था। मेघों के गर्जन के शब्द से, बिजलियों की चमक से और हवा के द्वारा कंपाये वे मेघ निरन्तर जलधारा की वृष्टि करने लगे ॥५॥ उस प्रकार इन्द्र के वृष्टि करने पर सर्प बहुत प्रसन्न हुए ॥६॥ समूची पृथिवी जल से भर गयी। और शीतल तथा विमल जल पाताल में पहुँच गया ॥७॥ उस समय जल से समूची पृथिवी ढक गई और सर्प अपनी माता के साथ रामणीयक नामक द्वीप में आये ॥८॥

षड्विंस अध्याय।

सौतिरुवाच

संप्रहृष्टास्ततो नागा जलधाराप्लुतास्तदा । सुपर्णेनोह्यमानास्ते जग्मुस्तं द्वीपमाशु वै ॥१॥
तं द्वीपं मकरावासं विहितं विश्वकर्मणा । तत्र ते लवणं घोरं ददृशुः पूर्वमागताः ॥२॥
सुपर्णसहिताः सर्पाः काननं च मनोरमम् । सागराम्बुपरिक्षिप्तं पक्षिसंघनिनादितम् ॥३॥
विचित्रफलपुष्पाभिर्वनराजिभिरावृतम् । भवनैरावृतं रम्यैस्तथा पद्माकरैरपि ॥४॥
प्रसन्नसलिलैश्चापि ह्रदैर्दिव्यैर्विभूषितम् । दिव्यगंधवहैः पुण्यैर्मारुतैरुपवीजितम् ॥५॥
उत्पतद्भिरिवाकाशं वृक्षैर्मलयजैरपि । शोभितं पुष्पवर्षाणि मुंचद्भिर्मारुतोद्धतैः ॥६॥
वायुविक्षिप्तकुसुमैस्तथाऽन्यैरपि पादपैः । किरद्भिरिव तत्रस्थान्नागान्पुष्पांबुवृष्टिभिः ॥७॥
मनःसंहर्षजं दिव्यं गन्धर्वाप्सरसां प्रियम् । मत्तभ्रमरसंघुष्टं मनोज्ञाकृतिदर्शनम् ॥८॥
रमणीयं शिवं पुण्यं सर्वैर्जनमनोहरैः । नानापक्षिरुतं रम्यं कद्रूपुत्रप्रहर्षणम् ॥९॥
तत्तो वनं समासाद्य विजह्रुः पन्नगास्तदा । अब्रुवंश्च महावीर्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥१०॥
वहास्मानपरं द्वीपं सुरम्यं विमलोदकम् । त्वं हि देशान् बहून् रम्यान् व्रजन्पश्यसि खेचर॥११॥
स विचिंत्याब्रवीत्पक्षी मातरं विनतां तदा । किं कारणं मया मातः कर्तव्यं सर्पभाषितम्॥१२॥

विनतोवाच

दासीभूतास्मि दुर्योगात्सपत्न्याः पतगोत्तम । पणं वितथमास्थाय सर्पैरुपधिना कृतम् ॥१३॥

गरुड़ का विनता से दासी होने का कारण पूछना । सर्पों का दासता दूर करने का उपाय बतलाना ।

सौति बोले, जल से भींगने के कारण सर्प बहुत प्रसन्न हुए और गरुड़ पर चढ़कर उस द्वीप में शीघ्र गये ॥१॥ वह द्वीप मगरों के रहने के लिए विश्वकर्म्मा ने बनाया था । वहाँ आकर सर्पों ने पहले लवणासुर नामक राक्षस को देखा था ॥२॥ गरुड़ के साथ उस सुन्दर बन में जो समुद्र के जल से चारों ओर से घिरा हुआ था और वहाँ पक्षी बोल रहे थे ॥३॥ विचित्र फल और पुष्पों वाली बनश्रेणी से भरा हुआ था । रमणीय घर बने हुए थे और रमणीय सरोवर थे । स्वच्छ जलवाले, दिव्य तालाबों से सुशोभित था । दिव्य गंध लेकर बहने वाली पवित्र हवा चल रही थी ॥५॥ आकाश में ऊँचे उठे चन्दन वृक्षों से वह बन शोभित था । वायु के कंपाने से वहां के वृक्ष पुष्प वर्षा कर रहे थे ॥६॥ वायु के द्वारा जिनके पुष्प कंपा दिये गये हैं, वे तथा अन्य वृक्ष भी वहां के नागों पर पुष्परूपी जल की वृष्टि कर रहे थे ॥७॥ वह दिव्य बन मन को प्रसन्न करनेवाला था, गन्धर्व और अप्सराओं को प्रिय था । मस्त भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे । वह देखने में अत्यन्त सुन्दर मंगलमय और पवित्र था । अनेक पक्षियों के शब्द से निनादित था और कद्रू के पुत्रों को प्रसन्न करनेवाला था ॥९॥ वे सर्प उस बन में आकर विहार करने लगे और महाबली गरुड़ से वे बोले, ॥१०॥ हमलोगों को दूसरे रमणीय द्वीप में ले चलो जहां स्वच्छ जल हो । तुमने अनेक रमणीय द्वीप देखे होंगे; क्योंकि तुम आकाश में चलनेवाले हो ॥११॥ पक्षी गरुड़ ने कुछ विचार कर माता बिनता से कहा, माता सर्पों की आज्ञा मानने का क्या कारण है । हम लोग सर्पों की आज्ञा क्यों मानते हैं ॥१२॥ विनता बोली, अभाग्य वश मैं अपनी सौत की

तस्मिंस्तु कथिते मात्रा कारणे गगनेचरः । उवाच वचनं सर्पांस्तेन दुःखेन दुखितः ॥१४॥
किमाहृत्य विदित्वा वा किं वा कृत्वेह पौरुषम् । दास्याद्वो विप्रमुच्येयं तथ्यं वदत लेलिहाः ॥१५॥
श्रुत्वा तमब्रुवन्सर्पा आहरामृतमोजसा । ततो दास्याद्विप्रमोक्षो भविता तव खेचर ॥१६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

सौतिरुवाच

इत्युक्तो गरुडः सर्पैस्ततो मातरमब्रवीत् । गच्छाम्यमृतमाहर्तुं भक्ष्यमिच्छामि वेदितुम् ॥१॥

विनतोवाच

समुद्रकुक्षावेकांते निषादालयमुत्तमम् । निषादानां सहस्राणि तान् भुक्त्वाऽमृतमानय ॥२॥
न च ते ब्राह्मणं हन्तुं कार्या बुद्धिः कथंचन । अवध्यः सर्वभूतानां ब्राह्मणो ह्यनलोपमः ॥३॥
अग्निरर्को विषं शस्त्रं विप्रो भवति कोपितः । गुरुर्हि सर्वभूतानां ब्राह्मणः परिकीर्तितः ॥४॥
एवमादिभी रूपैस्तु सतां वै ब्राह्मणो मतः । स ते तात न हन्तव्यः संक्रुद्धेनापि सर्वथा ॥५॥
ब्राह्मणानामभिद्रोहो न कर्तव्यः कथंचन । न ह्येवमग्निर्नादित्यो भस्म कुर्यात्तथाऽनघ ॥६॥

दासी बन गयी हूँ, झूठी बाजी लगाकर और सर्पों से कपट करा कर उसने हमें दासी बना लिया है ॥१३॥ माता के कारण बतलाने पर उस दुख से दुखी हो कर आकाशगामी गरुड़ सर्पों से बोला ॥१४॥ सर्पों, क्या देकर, क्या बतला कर या कौन सा पुरुषार्थ दिखला कर दास्य से हमारा छुटकारा होगा यह सच सच बतलाओ ॥१५॥ सौति बोले, यह सुनकर सर्पों ने कहा, पराक्रम दिखाकर अमृत ले आओ। तभी हे खेचर, दास्य से तुम्हारा छुटकारा होगा ॥१६॥

सप्तविंश अध्याय

अमृत के लिए जाने वाले गरुड़ का भोजन मांगना। ब्राह्मणों को छोड़ कर समुद्र तीर पर रहनेवाले निषादों को खाने की विनता का आज्ञा देना।

सौति बोले, सांपों के ऐसा कहने पर गरुड़ माता से बोला, मैं अमृत लाने जाता हूँ। बतलाओ मैं क्या खाऊँ ॥१॥ विनता बोली, एकान्त समुद्र गर्भ में निषादों की बड़ी बस्ती है। वहां हजारों निषाद रहते हैं। उनको खाकर तुम अमृत ले आने जाओ ॥२॥ तुम्हें ब्राह्मण वध करने की कभी इच्छा नहीं करनी चाहिए। ब्राह्मण सबका अवध्य है। वह अग्नि के समान तेजस्वी है ॥३॥ क्रोध करने पर ब्राह्मण अग्नि, सूर्य, विष और शस्त्र के समान घातक हो जाता है। ब्राह्मण सब प्राणियों का गुरु कहा जाता है ॥४॥ सज्जन ब्राह्मणों को इन लक्षणों से पहचानते हैं अर्थात् नीचे बतलाये लक्षण जिनमें हों वे ब्राह्मण हैं। बेटा, क्रोध करने पर भी तुम ब्राह्मणों को न मारना ॥५॥ ब्राह्मणों की कभी बुराई न करना। उनसे द्रोह न करना, अग्नि अथवा सूर्य उस प्रकार नहीं जला सकते, हे निष्पाप कठोर व्रतधारी ब्राह्मण क्रोध करके जैसा जला सकता है। तुम इन विविध लक्षणों से ब्राह्मणों को पहिचानना ॥७॥ ब्राह्मण समस्त प्राणियों से पहले

यथा कुर्यादभिक्रुद्धो ब्राह्मणः संशितव्रतः । तदेतैर्विविधैर्लिंगैस्त्वं विद्यास्तं द्विजोत्तमम् ॥७॥
भूतानामग्रभूर्विप्रो वर्णश्रेष्ठः पिता गुरुः । गरुडोवाच
किंरूपो ब्राह्मणो मातः किंशीलः किंपराक्रमः ॥८॥
किंस्विदग्निनिभो भाति किंस्वित् सौम्यप्रदर्शनः । यथाहमभिजानीयां ब्राह्मणं लक्षणैः शुभैः ॥९॥
तन्मे कारणतो मातः पृच्छतो वक्तुमर्हसि । विनतोवाच
यस्ते कंठमनुप्राप्तो निगीर्णं बडिशं यथा ॥१०॥
दहेदंगारवत्पुत्र तं विद्या ब्राह्मणर्षभम् । विप्रस्त्वया न हन्तव्यः संक्रुद्धेनापि सर्वदा ॥११॥
प्रोवाच चैनं विनता पुत्रहार्दादिदं वचः । जठरे न च जीर्येद्यस्तं जानीहि द्विजोत्तमम् ॥१२॥
पुनः प्रोवाच विनता पुत्रहार्दादि वचः । जानंत्यप्यतुलं वीर्यमाशीर्वादपरायणा ॥१३॥
प्रीता परमदुःखार्त्ता नागैर्विप्रकृता सती । विनतोवाच
पक्षौ ते मारुतः पातु चन्द्रसूर्यौ च पृष्ठतः ॥१४॥
शिरश्च पातु वह्निस्ते वसवः सर्वतस्तनुम् । अहं च ते सदा पुत्र शांतिस्वस्तिपरायणा ॥१५॥
इहासीना भविष्यामि स्वस्तिकारे रता सदा । अरिष्टं व्रज पन्थानं पुत्र कार्यार्थसिद्धये ॥१६॥
सौतिरुवाच

ततः स मातुर्वचनं निशम्य वितत्य पक्षौ नभ उत्पात ।
ततो निषादान्बलवानुपागतो बुभुक्षितः काल इवांतकोऽपरः ॥१७॥

उत्पन्न हुआ है । वह वर्ण में श्रेष्ठ, और उनका पिता तथा गुरु है । गरुड़ बोले, माता, ब्राह्मण कैसे होते हैं, उनका कैसा स्वभाव होता है । उनके कौन विशेष काम होते हैं ॥८॥ क्या ये अग्नि के समान होते हैं या देखने में सौम्य होते हैं, जिन लक्षणों से मैं ब्राह्मण को पहिचानूं वे लक्षण तुम बतलाओ । माता, मेरे लिए जो मैं पूछता हूँ वह कहो । विनता बोली, जो गले में जाने पर बंसी के समान (मछली पकड़ने वाले कांटे) मालूम पड़े अथवा आग के समान जलावे, पुत्र, उसीको तुम ब्राह्मण जानना । क्रोध होने पर भी तुम्हें ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए ॥९-१०-११॥ पेट में जो पचे नहीं उसको तुम ब्राह्मण समझो । विनता ने पुत्र-प्रेम के कारण गरुड़ से ये वचन कहे ॥१२॥ विनता अपने पुत्र को अतुल पराक्रमी जानती थी, फिर भी उसे आशीर्वाद देने के लिए पुत्रप्रेम से वह इस प्रकार बोली, ॥१३॥ साध्वी विनता नागों के अपमान से दुखी थी । वह प्रसन्नता पूर्वक बोली । विनता बोली, तुम्हारे पंखों की रक्षा वायु करे, चन्द्रमा और सूर्य तुम्हारी पीठ की रक्षा करे ॥१४॥ अग्नि तुम्हारे सिर की रक्षा करे और वसु तुम्हारे समस्त शरीर की रक्षा करें । पुत्र, मैं सदा तुम्हारे मङ्गल की कामना करती हूं ॥१५॥ यहाँ रहकर मैं सदा तुम्हारी मंगल कामना किया करूंगी । कार्यसिद्ध करने के लिए तुम निर्विघ्न प्रस्थान करो ॥१६॥ सौति बोले, अनन्तर माता के वचन सुनकर और पंखों को फैलाकर वह आकाश में उड़ा । वह भूखा था, वह दूसरे यमराज के समान निषादों के पास पहुंचा ॥१७॥

स निषादानुपसंहरंस्तदा रजः समुद्धूय नभःस्पृशं महत्।
समुद्रकुक्षौ च विशोषयन्पयः समीपजान्भूधरजान् विचालयन् ॥१८॥
ततः स चक्रे महदाननं तदा निषादमार्गं प्रतिरुध्य पक्षिराट्।
ततो निषादास्त्वरिताः प्रवव्रजुर्यतो मुखं तस्य भुजंगभोजिनः ॥१९॥
तदाननं विवृतमतिप्रमाणवत्समभ्ययुर्गगनमिवार्दिताः खगाः।
सहस्रशः पवनरजो विमोहिता यथाऽनिलप्रचलितपादपे वने ॥२०॥
ततः खगो वदनममित्रतापनः समाहरत्परिचपलो महाबलः।
निषूदयन्बहुविधमत्स्यजीविनो बुभुक्षितो गगनचरेश्वरस्तदा ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

सौतिरुवाच

तस्य कंठमनुप्राप्तो ब्राह्मणः सह भार्यया। दहन्दीप्त इवांगारस्तमुवाचांतरिक्षगः ॥१॥
द्विजोत्तम विनिर्गच्छ तूर्णमास्यादपावृतात्। नहि मे ब्राह्मणो वध्यः पापेष्वपि रतः सदा ॥२॥
ब्रुवाणमेवं गरुडं ब्राह्मणः प्रत्यभाषत। निषादी मम भार्येयं निर्गच्छतु मया सह ॥३॥

आकाश तक फैलने वाली धूल उड़ा कर उसने उन निषादों को समेट लिया। समुद्र के जल को सोख लिया, तथा पास के वृक्षों को कंपा दिया ॥१८॥ अनन्तर, निषादों के निकलने का मार्ग रोककर गरुड़ ने मुँह फैलाया निषाद शीघ्रता पूर्वक सर्पभक्षी उस गरुड़ के मुख में चले आये ॥१९॥ बहुत बड़े फैले उसके मुखमें निषाद घुस पड़े। जिस प्रकार भयभीत होने पर पक्षी आकाश में चले आते हैं। उस वन के समस्त वृक्षों को वायु ने कंपा दिया था। वहां वायु की उड़ायी धूल से अंधे होकर हजारों निषाद गरुड़ के मुख में आये ॥२०॥ महाबली चंचल शत्रुओं को दुखी करनेवाले पक्षी ने मुँह बन्द कर लिया। आकाशगामी भूखे उस पक्षी ने मछली से जीविका करनेवाले अनेक निषादों का नाश कर दिया ॥२१॥

अष्टाविंश अध्याय

ब्राह्मण और निषादी की रक्षा। गरुड़ कश्यप संवाद। हाथी और कछुए की पूर्व कथा। कश्यप के कहने से गरुड़ का हाथी और कछुए का पकड़ना। रौहिण (वट) वृक्ष की शाखा टूटना।

सौति बोले, गरुड़ के गले में एक ब्राह्मण अपने स्त्री के साथ चला गया था। इससे उसका गला जलते हुए अंगार से मानों जलने लगा। उस समय गरुड़ बोला, ॥१॥ ब्राह्मण श्रेष्ठ, हमारे खुले मुँह से तुम शीघ्र ही निकल आओ। ब्राह्मण चाहे पापी भी हो, मैं उसका वध नहीं करूँगा ॥२॥ गरुड़ के ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण उनसे बोला, निषाद जाति की मेरी स्त्री भी है, वह भी मेरे साथ ही निकले ॥३॥ गरुड़ बोले, उस निषादी को लेकर तुम शीघ्र ही निकलो। तुम

गरुडोवाच

एतामपि निषादीं त्वं परिगृह्याशु निष्पत । तूर्णं संभावयात्मानमजीर्णं मम तेजसा ॥४॥

सौतिरुवाच

ततः स विप्रो निष्क्रांतो निषादीसहितस्तदा । वर्जयित्वा च गरुडमिष्टं देशं जगाम ह ॥५॥

सह भार्ये विनिष्क्रांते तस्मिन्विप्रे च पक्षिराट् । वितत्य पक्षावाकाशमुत्पपात मनोजवः ॥६॥

ततोऽपश्यत्स पितरं पृष्टश्चाख्यातवान्पितुः । यथान्यायममेयात्मा तं चोवाच महानृषिः ॥७॥

कश्यप उवाच

कच्चिद्वः कुशलं नित्यं भोजने बहुलं सुत । कच्चिच्च मानुषे लोके तवान्नं विद्यते बहु ॥८॥

गरुड उवाच

माता मे कुशला शश्वत्तथा भ्राता तथा ह्यहम् । नहि मे कुशलं तात भोजने बहुले सदा ॥९॥

अहं हि सर्पैः प्रहितः सोममाहर्त्तुमुत्तमम् । मातुर्दास्यविमोक्षार्थमाहरिष्ये तमद्य वै ॥१०॥

मात्रा चात्र समादिष्टो निषादान्भक्षयेति ह । न च मे तृप्तिरभवद्भक्षयित्वा सहस्रशः ॥११॥

तस्माद्भक्ष्यं त्वमपरं भगवन्प्रदिशस्व मे । यद्भुक्त्वाऽमृतमाहर्त्तुं समर्थः स्यामहं प्रभो ॥१२॥

क्षुत्पिपासाविघातार्थं भक्ष्यमाख्यातु मे भवान् । कश्यप उवाच

इदं सरो महापुण्यं देवलोकेऽपि विश्रुतम् ॥१३॥

यत्र कूर्माग्रजं हस्ती सदा कर्षत्यवाङ्मुखः । तयोर्जन्मांतरे वैरं संप्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥१४॥

जब तक हमारे तेज से जल नहीं जाते तभी तक अपनी रक्षा कर लो ॥४॥ सौति बोले, अनन्तर, वह ब्राह्मण निषादी स्त्री के साथ गरुड़ के मुख से निकल गया और गरुड़ को वहां छोड़कर जहां जाना चाहता था, वहां चला गया ॥५॥ उस ब्राह्मण के स्त्री के साथ निकल जाने पर पक्षिराज गरुड़ पंख फैला कर मन के समान वेग से आकाश में उड़ गये ॥६॥ अनन्तर, गरुड़ ने अपने पिता को देखा। उनके पूछने पर गरुड़ ने पिता से सब बातें ठीक ठीक कहीं। महर्षि ने भी उनसे पूछा, ॥७॥ तुम लोग कुशल से तो हो, पुत्र तुम्हें मनुष्य लोक में ठीक ठीक भोजन तो मिल जाता है। तुम्हारे भोजन की सामग्री तो यथेष्ट है ॥८॥ गरुड़ बोले, मेरी माता, भाई तथा मैं कुशल से हैं। पर पिता, सदा यथेष्ट भोजन हमको नहीं मिलता, इसीका कष्ट है ॥९॥ हमको सर्पों ने अमृत लाने के लिए भेजा है। अपनी माता की पराधीनता दूर करने के लिए मैं आज ही अमृत लेकर आऊँगा ॥१०॥ माता ने मुझे निषादों को खाने के लिए कहा था, मैंने हजारों निषाद खा डाले पर मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥११॥ अतः भगवान् मेरे भोजन के लिए आप कुछ और बतलावें जो खाकर अमृत ला सकूँ ॥१२॥ आप भूख और प्यास जिससे मिट जाय ऐसा भोजन मुझे बतलावें कश्यप बोले, यह तालाब बड़ा पवित्र है, देवलोक तक इसकी प्रसिद्धि है ॥१३॥ जहां एक हाथी कछुए को जो उसका बड़ा भाई था, सदा खींचता रहता है। वह हाथी नीचे की ओर मुंह किये हुए है। उन दोनों में पूर्व जन्म का विरोध है। यह सब मैं तुमसे कहता हूँ ॥१४॥ वे कितने बड़े

तन्मे यत्त्वं निबोध त्वं यत्प्रमाणौ च तावुभौ । आसीद्विभावसुर्नाम महर्षिःकोपनो भृशम् ॥१५॥
भ्राता तस्यानुजश्चासीत्सुप्रतीको महातपाः । स नेच्छति धनं भ्राता सहैकस्थं महामुनिः ॥१६॥
विभागं कीर्त्तयत्येव सुप्रतीको हि नित्यशः । अथाब्रवीच्च तं भ्राता सुप्रतीकं विभावसुः ॥१७॥
विभागं बहवो मोहात्कर्तुमिच्छंति नित्यशः । ततो विभक्तास्त्वन्योऽन्यं विक्रुध्यंतेऽर्थमोहिताः ॥१८॥
ततः स्वार्थपरान्मूढान्पृथग्भूतान् स्वकैर्धनैः । विदित्वा भेदयंत्येतानमित्रा मित्ररूपिणः ॥१९॥
विदित्वा चापरे भिन्नानंतरेषु पतंत्यथ । भिन्नानामतुलो नाशः क्षिप्रमेव प्रवर्त्तते ॥२०॥
तस्माद्विभागं भ्रातॄणां न प्रशंसंति साधवः । गुरुशास्त्रे निबद्धानामन्योन्येनाभिशंकिनाम् ॥२१॥
नियंतुं न हि शक्यस्त्वं भेदतो धनमिच्छसि । यस्मात्तस्मात्सुप्रतीक हस्तित्वं समवाप्स्यसि ॥२२॥
शप्तस्त्वेवं सुप्रतीको विभावसुमथाब्रवीत् । त्वमप्यन्तर्जलचरः कच्छपः संभविष्यसि ॥२३॥
एवमन्योन्यशापात्तौ सुप्रतीकविभावसू । गजकच्छपतां प्राप्तावर्थार्थं मूढचेतसौ ॥२४॥
रोषदोषानुषंगेण तिर्यग्योनिगतावुभौ । परस्परद्वेषरतौ प्रमाणबलदर्पितौ ॥२५॥
सरस्यस्मिन् महाकायौ पूर्ववैरानुसारिणौ । तयोरन्यतरः श्रीमान्समुपैति महागजः ॥२६॥
यस्य बृंहितशब्देन कूर्मोऽप्यंतर्जलेशयः । उत्थितोऽसौ महाकायः कृत्स्नं विक्षोभयन्सरः ॥२७॥

हैं यह तुम मुझसे जान लो । विभावसु नाम के एक महर्षि थे जो बड़े क्रोधी थे ॥१५॥ उनका छोटा भाई सुप्रतीक था वह बड़ा तपस्वी था, वह भाई धन को एक साथ रहने देना नहीं चाहता था । वह भाई से बटवारा करा लेना चाहता था ॥१६॥ उसका भाई बटवारा करने को कहता था । एक समय बड़ा भाई विभावसु सुप्रतीक से बोला, ॥१७॥ बहुतलोग अज्ञान से आपस में बटवारा करना चाहते हैं । परन्तु बटवारा हो जाने पर भी धन लोभ से परस्पर क्रोध करते हैं आपस में बैर बांध लेते हैं ॥१८॥ अनन्तर अपने भाग का धन लेकर अलग हुए उन स्वार्थी मूर्खों को मित्र रूपी शत्रु और भड़का देते हैं । उनमें और विरोध बढ़ा देते हैं ॥१९॥ जब वे भाइयों को अलग हुआ जान लेते हैं तो उनके बीच में घुस पड़ते हैं और जिनमें भेद हो जाता है, उनका नाश शीघ्र ही होना है ॥२०॥ शास्त्रों की आज्ञा में जो बंधे हुए हैं तथा मर्यादा भंग के भय से परस्पर सदा शंकित रहते हैं उन भाइयों के परस्पर बटवारे की प्रशंसा सज्जन नहीं करते ॥२१॥ तुम मानते नहीं हो, तुम विरोध करके धन का बटवारा कराना चाहते हो । अतएव सुप्रतीक, तुम हाथी हो जाओगे ॥२२॥ इस प्रकार शापित होकर सुप्रतीक विभावसु से बोला, तुम भी जल में रहनेवाला कछुआ हो जाओगे ॥२३॥ इस प्रकार धन के लोभ से मूर्ख बने वे सुप्रतीक और विभावसु दोनों ने परस्पर शाप दिया और वे हाथी तथा कछुआ हो गये ॥२४॥ तीर्यग्योनि प्राप्त करने पर भी उनमें पूर्वजन्म का वैर बना ही रहा । ये बड़े लम्बे चौड़े तथा बली हैं । वे दोनों परस्पर वैर रखते हैं ॥२५॥ वे दोनों विशाल शरीरवाले पूर्व जन्म का वैर का पालन करनेवाले इसी तालाब में रहते हैं । उन दोनों में का एक महागज वहां आता है ॥२६॥ जिसके गर्जन से जल के भीतर रहने वाला विशाल शरीर कछुआ तालाब को हलोड़ करके ऊपर आता है ॥२७॥ उस

यं दृष्ट्वा वेष्टितकरः पतत्येष गजो जलम् । दंतहस्ताग्रलांगूलपादवेगेन वीर्यवान् ॥२८॥
विक्षोभयंस्ततो नागःसरोबहुरुपाकुलम् । कूर्मोऽप्युद्यतशिरा युद्धायाभ्येति वीर्यवान् ॥२९॥
षडुच्छ्रितो योजनानि गजस्तद्द्विगुणायतः । कूर्मस्त्रियोजनोत्सेधो दशयोजनमंडलः ॥३०॥
तावुभौ युद्धसंमत्तौ परस्परवधैषिणौ । उपयुज्याशु कर्मेदं साधये प्सितमात्मनः ॥३१॥
महाभ्रघनसंकाशं तं भुक्त्वाऽमृतमानय । महागिरिसमप्रख्यं घोररूपं च हस्तिनम् ॥३२॥

सौतिरुवाच

इत्युक्त्वा गरुडं सोऽथ मांगल्यमकरोत्तदा । युध्यतः सहदेवैस्ते युद्धे भवतु मंगलम् ॥३३॥
पूर्णकुंभो द्विजा गावो यच्चान्यत्किंचिदुत्तमम् । शुभं स्वस्त्ययनं चापि भविष्यति तवांडज ॥३४॥
युध्यमानस्य संग्रामे देवैः सार्धं महाबल । ऋचो यजूंषि सामानि पवित्राणि हवींषि च ॥३५॥
रहस्यानि च सर्वाणि सर्वे वेदाश्च ते बलम् । इत्युक्तो गरुडः पित्रा गतस्तं ह्रदमंतिकात् ॥३६॥
अपश्यन्निर्मलजलं नानापक्षिसमाकुलम् । स तत्स्मृत्वा पितुर्वाक्यं भीमवेगोऽन्तरिक्षगः ॥३७॥
नखेन गजमेकेन कूर्ममेकेन चाक्षिपत् । समुत्पपात चाकाशं तत उच्चैर्विहंगमः ॥३८॥
सोऽलंबं तीर्थमासाद्य देववृक्षानुपागमत् । ते भीताः समकंपन्त तस्य पक्षानिलाहताः ॥३९॥
न नो भंज्यादिति तदा दिव्याः कनकशाखिनः । प्रचलांगान्स तान्दृष्ट्वा मनोरथफलद्रुमान् ॥४०॥

कछुआ को देखकर यह हाथी भी सूँड़ को लपेट कर जल में कूद पड़ता है। दांत, सूँड़ पूँछ तथा पैरों से वह बलवान् हाथी बड़े क्रोध से उस तालाब को हलोड़ देता है। बली कछुआ भी सिर ऊपर करके युद्ध के लिए आता है ॥२८-२९॥ हाथी छः योजन ऊंचा और बारह योजन लम्बा है। कछुए की ऊंचाई तीन योजन और गोलाई दस योजन है ॥ ३० ॥ युद्ध से मतवाले होकर परस्पर एक दूसरे का वध करना चाहते हैं। तुम इन दोनों को खा जाओ और अपना उद्देश्य सिद्ध करने के लिए जाओ ॥३१॥ बड़े मेघ के समान काले और पर्वत के समान ऊंचे उस हाथी को खाकर तुम अमृत लाने जाओ ॥३२॥ सौति बोले, गरुड़ से ऐसा कहकर उन्होंने उसकी यात्रा के मङ्गल कृत्य किये। उन्होंने कहा, देवताओं के साथ युद्ध में तुम्हारा कल्याण हो ॥३३॥ भरा हुआ घड़ा ब्राह्मण, गौ तथा और जो कुछ उत्तम हैं, वे सब तुम्हारे लिए शुभ और मंगलकारी हों ॥३४॥ हे महाबली, देवताओं के साथ जब तुम युद्ध करोगे उस समय ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, पवित्र आहुतियाँ, समस्त रहस्य तथा समस्त वेद तुम्हारे बल होंगे। पिता के ऐसा कहने पर गरुड उस तालाब के पास गया ॥३५-३६॥ उसने उसका निर्मल जल देखा, जहां पक्षी भरे हुए थे। पिता के वचन स्मरण करके वेग से चलनेवाले उस पक्षी ने एक पंजे में हाथी को और एक में कछुए को पकड़ लिया और वह आकाश में बहुत ऊँचे उड़ गया ॥३७-३८॥ वह गरुड़ आकाश मार्ग से मेरु शृंग पर जाकर देववृक्षों के पास पहुंचा। गरुड़ की पंखों की हवा से वे वृक्ष कांप और डर गये ॥३९॥ यह हम लोगों को तोड़ न दे इस भय से सुवर्ण पर्वत के वे दिव्य वृक्ष डर गये। मनोरथ सिद्ध करनेवाले उन वृक्षों को भय से काँपते देखकर गरुड़ दूसरे बड़े वृक्षों के पास गये।

[illegible] खेचरः । कांचनै राजतैश्चैवं फलैर्वैदूर्यशाखिनः ।
सागरांबुपरिक्षिप्तान् भ्राजमानान्महाद्रुमान् ॥४१॥
तमुवाच खगश्रेष्ठं तत्र रौहिणपादपः । अतिप्रवृद्धः सुमहानापतंतं मनोजवम् ॥४२॥

रौहिण उवाच

यैषा मम महाशाखा शतयोजनमायता । एतामास्थाय शाखां त्वं खादेमौ गजकच्छपौ ॥४३॥
ततो द्रुमं पतगसहस्रसेवितं महीधरप्रतिमवपुः प्रकंपयन् ।
खगोत्तमो द्रुतमभिपत्य वेगवान्बभंज तामविरलपत्रसंचयाम् ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

सौतिरुवाच

स्पृष्टमात्रा तु पद्भ्यां सा गरुडेन बलीयसा । अभज्यत तरोः शाखा, भग्नां चैकामधारयत् ॥१॥
तां भंक्त्वा स महाशाखां स्मयमानो विलोकयन् । अथात्र लंबतोऽपश्यद्वालखिल्यानधोमुखान् ॥२॥
ऋषयो ह्यत्र लंबते न हन्यामिति तानृषीन् । तपोरतान् लंबमानान् ब्रह्मर्षीनभिवीक्ष्य सः ॥३॥
हन्यादेतान्संपतंती शाखेत्यथ विचिंत्य सः । नखैर्दृढतरं वीरः संगृह्य गजकच्छपौ ॥४॥
स तद्विनाशसंत्रासादभिपत्य खगाधिपः । शाखामास्येन जग्राह तेषामेवान्ववेक्षया ॥५॥

जिनके फल सोने और चाँदी के थे और जिनकी शाखाएँ वैदुर्यमणि की थीं। समुद्र के जल से घिरे हुए वे बड़े वृक्ष बहुत सुन्दर मालूम होते थे। ॥४०-४१॥ मनोवेग से आते हुए पक्षिराज गरुड़ को देखकर एक बड़ा वटवृक्ष उनसे बोला, ॥४२॥ वटवृक्ष बोला, यह जो सौ योजन लम्बी मेरी शाखा है, इस पर बैठकर तुम इस हाथी और कछुए को खाओ। पर्वत के समान शरीरवाले पक्षिराज उस वृक्षपर, जिसमें सहस्रों पक्षी रहते थे, आकाश से उतर कर आये और उन्होंने सघन पत्तों वाले उस वृक्ष को तोड़ दिया ॥४३-४४॥

उनत्रिंश अध्याय

टूटी डाल के नीचे रहने वाले बालखिल्यों को बचाने के लिए गरुड़ का उस डाल को पकड़ रखना। कश्यप की आज्ञा से गरुड़ का हिमालय पर्वत पर जाना। वहां डाल छोड़कर हाथी और कछुए को खाना। अमृत की रक्षा का देवताओं का उपाय करना।

सौति बोले, बली गरुड़ के पैरों के स्पर्श से ही वृक्ष की वह शाखा टूट गयी। गरुड़ ने उस शाखा को पकड़ लिया ॥१॥ उस बड़ी शाखा के टूटने से गरुड़ विस्मित हो कर देखने लगे। उन्होंने देखा कि बालखिल्य उस शाखा के सहारे नीचे की ओर मुँह करके लटके हुए हैं। तपस्या करनेवाले उन ऋषियों को देखकर गरुड़ ने उन्हें न मारने का निश्चय किया ॥२-३॥ यदि यह शाखा गिर गयी तो ये मर जाँयगे ऐसा निश्चय करके उन्होंने हाथी कछुए को पंजों से जोर से पकड़ लिया ॥४॥ गरुड़ उन ऋषियों के विनाश होने के भय से डर गए थे। अतएव वे आकाश में उड़ गए और उन ऋषियों की रक्षा के लिए उन्होंने वह शाखा मुँह से पकड़ ली ॥५॥ देवताओं

अतिदेवं तु तत्तस्य कर्म दृष्ट्वा महर्षयः । विस्मयोत्कंपहृदया नाम चक्रुर्महाखगे ॥६॥
गुरुं भारं समासाद्योड्डीन एष विहंगमः । गरुडस्तु खगश्रेष्ठस्तस्मात्पन्नगभोजनः ॥७॥
ततः शनैः पर्यपतत्पक्षैः शैलान्प्रकंपयन् । एवं सोऽभ्यपतद्देशान् बहून्सगजकच्छपः ॥८॥
दयार्थं वालखिल्यानां न च स्थानमविंदत । स गत्वा पर्वतश्रेष्ठं गन्धमादनमंजसा ॥९॥
ददर्श कश्यपं तत्र पितरं तपसि स्थितम् । ददर्श तं पिता चापि दिव्यरूपं विहंगमम् ॥१०॥
तेजोवीर्यबलोपेतं मनोमारुतरंहसम् । शैलशृंगप्रतीकाशं ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ॥११॥
अचिंत्यमनभिध्येयं सर्वभूतभयंकरम् । महावीर्यधरं रौद्रं साक्षादग्निमिवोद्यतम् ॥१२॥
अप्रधृष्यमजेयं च देवदानवराक्षसैः । भेत्तारं गिरिशृंगाणां समुद्रजलशोषणम् ॥१३॥
लोकसंलोडनं घोरं कृतांतसमदर्शनम् । तमागतमभिप्रेक्ष्य भगवान्कश्यपस्तदा
विदित्वा चास्य संकल्पमिदं वचनमब्रवीत् ॥१४॥ कश्यप उवाच

पुत्र मा साहसं कार्षीर्मा सद्यो लप्स्यसे व्यथां । मा त्वां दहेयुः संक्रुद्धा वालखिल्या मरीचिपाः ॥१५॥

सौतिरुवाच

ततः प्रसादयामास कश्यपः पुत्रकारणात् । वालखिल्यान्महाभागांस्तपसा हतकल्मषान् ॥१६॥

कश्यप उवाच

प्रजाहितार्थमारंभो गरुडस्य तपोधनाः । चिकीर्षति महत्कर्म तदनुज्ञातुमर्हथ ॥१७॥

के द्वारा भी न होनेवाला गरुड़ का यह काम देखकर महर्षियों का हृदय विस्मय से कांप गया। उन लोगों ने उस महापक्षी का नामकरण किया ॥६॥ यह पक्षी भारी भार लेकर उड़ा है अतएव सर्पखानेवाला यह पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ नाम से प्रसिद्ध होगा ॥७॥ पुनः गरुड़ पांख की हवा से पर्वतों को कंपाते हुए धीरे धीरे उड़े। इस प्रकार हाथी और कछुए को लिए हुए अनेक स्थानों में होते हुए चले। बालखिल्यों की रक्षा करने के अभिप्राय से वे कहीं बैठे नहीं। वे शीघ्र ही पर्वतश्रेष्ठ गन्धमादन पर पहुंचे ॥८॥ वहां उन्होंने तपस्या करते हुए पिता कश्यप को देखा, पिता ने भी दिव्य स्वरूप इस पक्षी को देखा ॥१०॥ जो तेजस्वी बली और पराक्रमी था। मन और वायु के समान वेगवान था। पर्वत शिखर के समान ऊँचा था और ब्रह्मदण्ड के समान उद्यत था। अर्थात् कार्यशील था ॥११॥ यह अचिन्त्य, ध्यान में न आने वाला सब प्राणियों के लिए भयंकर महापराक्रमी साक्षात् अग्नि के समान था ॥२१॥ इसका कोई अपमान नहीं कर सकता था। देवता दानव और राक्षसों से यह पराजित नहीं हो सकता था। यह पर्वत शिखरों को तोड़ने वाला और समुद्र के जल को सोखनेवाला था ॥१३॥ लोकों को आपस में टकरा देने वाला तथा यमराज के समान देखने में भयंकर था। उसको आया हुआ देखकर तथा उसका अभिप्राय जानकर कश्यप उससे बोले ॥१४॥ कश्यप बोले, पुत्र, साहस मत करो, शीघ्र ही खन उठाओ। सूर्य की किरणों का पान करनेवाले ये बालखिल्य मुनि क्रोध करके तुम्हें जला न दें ॥१५॥ सौति बोले, पुनः कश्यपपुत्र की ओर से महाभाग बालखिल्यों को प्रसन्न करने लगे। जिन्होंने समस्त पापों को तपस्या के द्वारा नष्ट कर दिया है ॥१६॥ कश्यप बोले, हे तपोधनों, गरुड़ ने जो काम

सौतिरुवाच

एवमुक्ता भगवता मुनयस्ते समभ्ययुः । मुक्त्वा शाखां गिरिं पुण्यं हिमवंतं तपोऽर्थिनः ॥१८॥
ततस्तेष्वपयातेषु पितरं विनतासुतः । शाखाव्याक्षिप्तवदनः पर्यपृच्छत कश्यपम् ॥१९॥
भगवन् क्व विमुंचामि तरोः शाखामिमामहम् । वर्जितं मानुषैर्देशमाख्यातु भगवान्मम ॥२०॥
ततो निःपुरुषं शैलं हिमसंरुद्धकन्दरम् । अगम्यं मनसाप्यन्यैस्तस्याचख्यौ स कश्यपः ॥२१॥
तं पर्वतं महाकुक्षिमुद्दिश्य स महाखगः । जवेनाभ्यपतत्तार्क्ष्यः सशाखागजकच्छपः ॥२२॥
न तां वध्री परिणहेच्छतचर्मा महातनुम् । शाखिनो महतीं शाखां यां प्रगृह्य ययौ खगः ॥२३॥
स ततः शतसाहस्रं योजनान्तरमागतः । कालेन नातिमहता गरुडः पतगेश्वरः ॥२४॥
स तं गत्वा क्षणेनैव पर्वतं वचनात् पितुः । अमुञ्चन्महतीं शाखां सस्वनं तत्र खेचरः ॥२५॥
पक्षानिलहतश्चास्य प्राकंपत स शैलराट् । मुमोच पुष्पवर्षं च समागलितपादपः ॥२६॥
शृङ्गाणि च व्यशीर्यन्त गिरेस्तस्य समन्ततः । मणिकाञ्चनचित्राणि शोभयन्ति महागिरिम् ॥२७॥
शाखिनो बहवश्चापि शाखयाऽभिहतास्तया । काञ्चनैः कुसुमैर्भान्ति विद्युत्वंत इवाम्बुदाः ॥२८॥
ते हेमविकचा भूमौ युताः पर्वतधातुभिः । व्यराजञ्छाखिनस्तत्र सूर्यांशुप्रतिरञ्जिताः ॥२९॥

प्रारम्भ किया है। वह प्रजा के कल्याण के लिए है। यह जो बड़ा काम करना चाहता है उसके लिए आप लोग आज्ञा दें ॥१७॥ सौति बोले, कश्यप के ऐसा कहने पर वे सब मुनि शाखा छोड़ कर पवित्र हिमवान पर्वत पर गये। क्योंकि वे तपस्या करना चाहते थे ॥१८॥ मुनियों के चले जाने पर विनता के पुत्र गरुड़ ने कश्यप से पूछा,वह शाखा पकड़ने के कारण अच्छीतरह बोल नहीं सकता था ॥१६॥ भगवन्, वृक्ष की इस शाखा को मैं कहां रखूं। भगवन्. वैसा स्थान बतलावें, जहां मनुष्य न रहते हों ॥२०॥ अनन्तर कश्यप ने पुरुषहीन पर्वत बतलाया जिसकी गुहाएँ बर्फ से ढकी हुई थीं। जहां दूसरा कोई मन से भी नहीं जा सकता था ॥२१॥ उस बड़ी खोहवाले पर्वत पर जाने के लिए वह महापक्षी शाखा हाथी और कछुए को लेकर बड़े वेग से चला ॥२२॥ जिस शाखा को लेकर गरुड़ जा रहा था, वह बड़ी मोटी थी। उसको सौ चमड़ों की रस्सी भी नहीं बांध सकती थी। (एक पशु के चमड़े से जितनी पृथिवी ढक जाती है वह एक चमड़े की लम्बाई चौड़ाई समझी जाती है) यह शाखा सौ चमड़ों से भी नहीं ढक सकती थी ॥२३॥ पक्षिराज गरुड़ सौ हजार योजन बहुत देर में नहीं अर्थात् शीघ्र ही चले आये ॥२४॥ पिता के कहने के अनुसार गरुड़ ने उस पर्वत पर जाकर वह शाखा, छोड़ दी। जिससे बड़ा शब्द हुआ ॥२५॥ गरुड़ की पंख की हवा से आहत होकर वह पर्वतराज कांपने लगा और पेड़ों के गिर जाने के कारण पुष्प वृष्टि करने लगा ॥२६॥ उस पर्वत के शिखर चारो ओर से फट गए। मणियां तथा सुवर्ण से वह पर्वत शोभित हो रहा था ॥२७॥ उस शाखा के गिरने से बहुत से पेड़ टूट गये, वे पेड़ सुवर्णमय पुष्पों के कारण बिजलीवाले मेघों के समान मालूम होते थे ॥२८॥ सुवर्ण के समान चमकीले, पर्वत की धातुओं से सुशोभित सूर्य की किरणों से रंगे गये, वे वृक्ष बहुत ही सुन्दर मालूम होते थे ॥२६॥ उस पर्वत के शिखर पर बैठकर पक्षिराज गरुड़ ने हाथी और कछुआ

ततस्तस्य गिरेः शृङ्गमास्थाय स खगोत्तमः । भक्षयामास गरुडस्तावुभौ गजकच्छपौ ॥३०॥
तावुभौ भक्षयित्वा तु स तार्क्ष्यः कूर्मकुञ्जरौ । ततः पर्वतकूटाग्रादुत्पपात महाजवः ॥३१॥
प्रावर्त्तन्ताथ देवानामुत्पाता भयशंसिनः । इन्द्रस्य वज्रं दयितं प्रजज्वाल भयात्ततः ॥३२॥
सधूमान्यपतत्सार्चिर्दिवोल्का नभसश्च्युता । तथा वसूनां रुद्राणामादित्यानां च सर्वशः ॥३३॥
साध्यानां मरुतां चैव ये चान्ये देवतागणाः । स्वं स्वं प्रहरणं तेषां परस्परमुपाद्रवत् ॥३४॥
अभूतपूर्वं सङ्ग्रामे तदा देवासुरेऽपि च । ववुर्वाताः सनिर्घाताः पेतुरुल्काः सहस्रशः ॥३५॥
निरभ्रमेव चाकाशं प्रजगर्ज महास्वनम् । देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षत शोणितम् ॥३६॥
मम्लुर्माल्यानि देवानां नेशुस्तेजांसि चैव हि । उत्पातमेघा रौद्राश्च ववृषुः शोणितं बहु ॥३७॥
रजांसि मुकुटान्येषामुत्थितानि व्यधर्षयन् । ततस्त्राससमुद्विग्नः सह देवैः शतक्रतुः ॥
उत्पातान्दारुणान्पश्यन्नित्युवाच बृहस्पतिम् ॥३८॥ इन्द्र उवाच
किमर्थं भगवन् घोरा उत्पाताः सहसोत्थिताः । न च शत्रुं प्रपश्यामि युधि यो नः प्रधर्षयेत् ॥३९॥

बृहस्पतिरुवाच

तवापराधाद्देवेन्द्र प्रमादाच्च शतक्रतो । तपसा वालखिल्यानां महर्षीणां महात्मनाम् ॥४०॥
कश्यपस्य मुनेः पुत्रो विनतायाश्च खेचरः । हर्तुं सोममभिप्राप्तो बलवान्कामरूपधृक् ॥४१॥
समर्थो बलिनां श्रेष्ठो हर्तुं सोमं विहङ्गमः । सर्वं सम्भावयाम्यस्मिन्नसाध्यमपि साधयेत् ॥४२॥

दोनों को खाया ॥३०॥ हाथी और कछुए को खाकर वह पक्षी पर्वत के शिखर से वेग से उड़ा ॥३१॥ उस समय अनिष्ट की सूचना देनेवाले उत्पात देवताओं के यहाँ होने लगे । भय के कारण इन्द्र का प्रिय वज्र जल उठा ॥३२॥ धूम और ज्वालायुत उल्का आकाश से गिरी । इसी प्रकार वसुओं, रुद्रों आदित्यों मरुतों तथा अन्य जो देवताओं का गण है उनके अस्त्र शस्त्र आपस में टकराने लगे । उन अस्त्र शस्त्रों का एक संग्राम ठन गया ॥३३-३४॥ देवताओं और असुरों के संग्राम के समान उस समय वायु चलने लगी । वज्र गर्जन के समान हजारों उल्काएँ गिरने लगीं ॥३५॥ मेघ के विना ही आकाश में घोर गर्जन होने लगा । मेघों से रुधिर की वृष्टि होने लगी ॥३६॥ देवताओं की मालाएँ मुरझा गयीं । वे तेजों को सहने में असमर्थ हो गये । उत्पात सूचक भयंकर मेघ रुधिर की वृष्टि करने लगे । उड़ी हुई धूल से देवताओं के मुकुट मलीन हो गये । इन भयसूचक उत्पातों को देखकर इन्द्र भय से व्याकुल हुए और देवताओं के साथ बृहस्पति से इस प्रकार बोले । इन्द्र बोले, भगवन् किस कारण ये भयंकर उत्पात अकस्मात् हो रहे हैं । मैं किसी शत्रु को भी नहीं देखता हूँ । जो युद्ध में हमलोगों को पराजित करे ॥३८॥ बृहस्पति बोले, हे देवेन्द्र, आपके अपराध और असावधानी से ये उत्पात हो रहे हैं । महर्षि, महात्मा बालखिल्यों की तपस्या के प्रभाव से कश्यप मुनि और विनता के पुत्र गरुड़ अमृत के लिए आया हुआ है । जो बली है और इच्छानुसार रूप धारण कर सकता है ॥४०-४१॥ यह बलियों में श्रेष्ठ, अमृत ले जाने की शक्ति रखता है । इसके लिए सभी संभव है । यह असाध्य साधन भी कर सकता है

सौतिरुवाच

श्रुत्वैतद्वचनं शक्रः प्रोवाचामृतरक्षिणः । महावीर्यबलः पक्षी हर्तुं सोमिहोद्यतः ॥४३॥
युष्मान्संबोधयाम्येष यथा न स हरेद्बलात् । अतुलं हि बलं तस्य बृहस्पतिरुवाच ह ॥४४॥
तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं विस्मिता यत्नमास्थिताः। परिवार्यामृतं तस्थुर्वज्री चेन्द्रः प्रतापवान्॥४५॥
धारयन्तो विचित्राणि काञ्चनानि मनस्विनः । कवचानि महार्हाणि वैडूर्यविकृतानि च ॥४६॥
चर्माण्यपि च गात्रेषु भानुमन्ति दृढानि च । विविधानि च शस्त्राणि घोररूपाण्यनेकशः॥४७॥
शिततीक्ष्णाग्रधाराणि समुद्यम्य सुरोत्तमाः। सविस्फुलिङ्गज्वालानि सधूमानि च सर्वशः ॥४८॥
चक्राणि परिघांश्चैव त्रिशूलानि परश्वधान् शक्तीश्च विविधास्तीक्ष्णाः करवालांश्च निर्मलान् ॥
स्वदेहरूपाण्यादाय गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः ॥४९॥
तैः शस्त्रैर्भानुमद्भिस्ते दिव्याभरणभूषिताः । भानुमन्तः सुरगणास्तस्थुर्विगतकल्मषाः ॥५०॥

अनुपमबलवीर्यतेजसो धृतमनसः परिरक्षणेऽमृतस्य ।
असुरपुरविदारणाः सुरा ज्वलनसमिद्धवपुःप्रकाशिनः ॥५१॥
इतिसमरवरं सुराःस्थितास्ते परिघसहस्रशतैः समाकुलम् ।
विगलितमिव चाम्बरान्तरं तपनमरीचिविकाशितं बभासे ॥५२॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे त्रिंशोऽध्यायः ॥१७॥

॥४२॥ सौति बोले, यह सुन कर इन्द्र अमृत की रक्षा करने वालों से बोले, महाबली और पराक्रमी पक्षी अमृत ले जाने के लिए आया है ॥४३॥ मैं आप लोगों को सम्बोधित करके कहता हूँ कि वह अमृत न ले जाने पावे । बृहस्पति ने उसे बहुत बली बतलाया है ॥४४॥ इन्द्र के वचन सुनकर देवता विस्मित हुए और अमृत की रक्षा के प्रयत्न में लगे । अमृत को चारो ओर से घेर कर वे खड़े हो गये । प्रतापी इन्द्र भी रक्षा करने लगे ॥४५॥ विचित्र सुवर्ण के तथा वैदुर्य मणि के बने बहुमूल्य कवच पहिन कर ढाल लेकर चमकीले मजबूत भयंकर अनेक प्रकार के अनेक शस्त्रों को लेकर देवता अमृत की रक्षा करने लगे ॥४६-४७॥ देव श्रेष्ठ तीखे धारवाले अग्निकण तथा अग्नि ज्वाला के समान किरण फैलाने वाले चक्र, परिघ, त्रिशूल, परशु तथा अनेक प्रकार की शक्ति चमकीली तलवार अपने शरीर के प्रमाण के अनुसार, गदा, लेकर अमृत की रक्षा करने लगे ॥४८-४९॥ किरण फैलाने वाले इन शस्त्रों से सज्जित होकर तथा भूषणों से भूषित होकर देवता निर्भय होकर खड़े हो गये ॥५०॥ असीम बली, पराक्रमी और तेजस्वी, राक्षस नगरों को नष्ट करनेवाले जलते हुए अग्नि के समान प्रकाशमान शरीरधारी देवता अमृत की रक्षा के लिए उद्यत हुए ॥५१॥ वे देवता इस प्रकार बड़े युद्ध के लिए तयार होकर खड़े हुए । हजारों परिघों से वह युद्ध क्षेत्र भर गया । मालूम होता था कि सूर्य किरणों से प्रकाशमान दूसरा आकाश उतर आया है ॥५२॥

त्रिंश अध्याय

मुद्रक—काव्यतीर्थ पं० विश्वम्भर नाथ वाजपेयी, ओंकार प्रेस, प्रयाग ।

संस्कृत-साहित्य-ग्रन्थमाला १

सचित्र

महाभारत-संहिता

आदि पर्व (दूसरा खण्ड)

[मूल संस्कृत के साथ शुद्ध, सरल और सरस हिन्दी टीका]

भाषान्तरकार

साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

काशक

ओझाबन्धु-आश्रम, इलाहाबाद

मूल्य १) रुपया

मुद्रक—काव्यतीर्थ पं० बिश्वम्भर नाथ बाजपेयी, ओंकार प्रेस, प्रयाग ।

महाभारत-संहिता का सूचीपत्र

आदि पर्व (दूसरा खण्ड)

शौनक उवाच ।

कोऽपराधो महेन्द्रस्य कः प्रमादश्च सूतज । तपसा वालखिल्यानां सम्भूतो गरुडःकथम्॥१॥
कश्यपस्य द्विजातेश्च कथं वै पक्षिराट् सुतः । अधृष्यः सर्वभूतानामवध्यश्चाभवत्कथम् ॥२॥
कथं च कामचारी स कामवीर्यश्च खेचरः । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पुराणे यदि पठ्यते ॥३॥

सौतिरुवाच ।

विषयोऽयं पुराणस्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि । शृणु मे वदतः सर्वमेतत्संक्षेपतो द्विज ॥४॥
यजतः पुत्रकामस्य कश्यपस्य प्रजापतेः । साहाय्यमृषयो देवागन्धर्वाश्च ददुः किल ॥५॥
तत्रेध्मानयने शक्रो नियुक्तः कश्यपेन ह । मुनयो वालखिल्याश्च येचान्ये देवतागणाः ॥६॥
शक्रस्तु वीर्यसदृशमिध्मभारं गिरिप्रभम् । समुद्यम्यानयामास नातिकृच्छ्रादिव प्रभुः ॥७॥
अथापश्यदृषीन् ह्रस्वानङ्गुष्ठोदरवर्ष्मणः । पलाशवर्तिकामेकां वहतः संहतान् पथि ॥८॥
प्रलीनान् स्वेष्विवांगेषु निराहारांस्तपोधनान् । क्लिश्यमानान् मन्दबलान् गोष्पदे संप्लुतोदके ॥९॥
तान्सर्वान् विस्मयाविष्टो वीर्योन्मत्तःपुरन्दरः। अवहस्याभ्यगाच्छीघ्रं लंघयित्वाऽवमन्य च ॥१०॥
तेऽथ रोषसमाविष्टाः सुभृशं जातमन्यवः । आरेभिरे महत्कर्म तदा शक्रभयंकरम् ॥११॥

बालखिल्य ऋषियों की तपस्या से गरुड़ की उत्पत्ति, और उसका पक्षिराज्य पर अभिषेक होना ।

शौनक बोले, इन्द्र का क्या अपराध था, उन्होंने कौन सी असावधानी की थी। बालखिल्य ऋषियों की तपस्या के द्वारा गरुड़ की उत्पत्ति कैसे हुई ॥१॥ ब्राह्मण कश्यप का पुत्र पक्षिराज कैसे हुआ । अर्थात् मनुष्य से पक्षी की उत्पत्ति कैसे हुई और वह किसी से भी परास्त न होनेवाला तथा सब का अवध्य कैसे हुआ ॥२॥ उस पक्षी को इच्छानुसार गति तथा इच्छानुसार बल कैसे मिला । यह सब मैं सुनना चाहता हूँ यदि पुराण में कहा गया है । अर्थात् इन प्रश्नों का उत्तर पुराण में हो तो तुम कहो । क्योंकि पौराणिक होने के कारण वे बात तुम्हें अवश्य मालूम होगी ॥३॥ सौति बोले—जो आप मुझसे पूछ रहे हैं वह पुराण की ही बात है, वह सब मैं संक्षेप में कहता हूँ, आप सुने ॥४॥ प्रजापति कश्यप ने पुत्र के लिए यज्ञ करने की जब इच्छा की, तब ऋषि देवता और गन्धर्वों ने उनकी सहायता की, ऐसा सुना जाता है ॥५॥ कश्यप ने इन्द्र को लकड़ी लाने के लिए नियुक्त किया । बालखिल्य मुनि तथा और जो देवता थे उनको भी यही काम सौंपा गया ॥६॥ इन्द्र बलवान् थे, विशाल आकार वाले थे, इसलिए पर्वत के आकार के लकड़ी का भार वे बिना परिश्रम के ही उठा लाये ॥७॥ इन्द्र ने रास्ते में बालखिल्य ऋषियों को देखा । वे बहुत ही छोटे थे, अंगूठे के बराबर उनके शरीर थे । वे सब मिलकर पलाश की एक छोटी और पतली लकड़ी ले आ रहे थे ॥८॥ निराहार रहनेवाले वे तपस्वी बहुतही दुर्बल थे । मानो अपने शरीर में ही लीन हो रहे थे। वे बलहीन थे, जल से भरे गौ के खुर में वे डूब रहे थे और इस तरह दुःख उठा रहे थे ॥९॥ बलोन्मत इन्द्र उन वालखिल्यों को देखकर विस्मित हुए । उनका उपहास और तिरस्कार करके और उनको लांघकर वे चले गये ॥१०॥ इससे वे मुनि बहुत

जुहुवुस्ते सुतपसो विधिवज्जातवेदसम् । मन्त्रैरुच्चावचैर्विप्रा येन कामेन तच्छृणु ॥१२॥
कामवीर्यः कामगमो देवराजभयप्रदः । इन्द्रोऽन्यः सर्वदेवानां भवेदितियतव्रताः ॥१३॥
इन्द्राच्छतगुणः शौर्ये वीर्येचैव मनोजवः । तपसो नः फलेनैव दारुणः सम्भवत्विति ॥१४॥
तद्बुध्वा भृशसन्तप्तो देवराजः शतक्रतुः । जगाम शरणं तत्र कश्यपं शंशितव्रतम् ॥१५॥
तच्छ्रुत्वा देवराजस्य कश्यपोथ प्रजापतिः । बालखिल्यानुपागम्य कर्मसिद्धिमपृच्छत् ॥१६॥
एवमस्त्विति तं चापि प्रत्यूचुः सत्यवादिनः । तान् कश्यप उवाचेदं सांत्वपूर्वं प्रजापतिः ॥१७॥
अयमिन्द्रस्त्रिभुवने नियोगाद्ब्रह्मणः कृतः । इन्द्रार्थे च भवन्तोपि यत्नवन्तस्तपोधनाः ॥१८॥
न मिथ्या ब्रह्मणो वाक्यं कर्तुमर्हथ सत्तमाः । भवतां हि न मिथ्याऽयं संकल्पोवै चिकीर्षितः॥१९॥
भवत्वेष पतित्त्रीणामिन्द्रोतिबलसत्त्ववान् । प्रसादः क्रियतामस्य देवराजस्य याचतः ॥२०॥
एवमुक्ताः कश्यपेन बालखिल्यास्तपोधनाः । प्रत्यूचुरभिसंपूज्य मुनिश्रेष्ठं प्रजापतिम् ॥२१॥
बालखिल्या ऊचुः ।
इन्द्रार्थोऽयं समारम्भः सर्वेषां नः प्रजापते । अपत्यार्थंसमारम्भो भवतश्चायमीप्सितः ॥२२॥

दुःखी हुए और उन लोगों ने क्रोध करके बहुत बड़ा काम प्रारम्भ किया, जो इन्द्र के लिए भयंकर था ॥११॥ वे तपस्वी विधिपूर्वक छोटे बड़े मन्त्रों के द्वारा अग्नि में हवन करने लगे। जिस कामना से वे हवन करते थे, वह भी सुनिए ॥१२॥ उन लोगों का यह निश्चय था कि एक दूसरा इन्द्र उत्पन्न हो, जो देवराज इन्द्र को भयभीत करे और जो इच्छानुसार बल को घटा बढ़ा सके। इच्छानुसार जा आ सके ॥१३॥ इन्द्र से सौगुना बड़ा वीर, बड़ा शूर और मन के समान गमन करने वाला एक भयंकर पुरुष हमलोगों की तपस्या के फल से आज उत्पन्न हो। यह उन लोगों की कामना थी ॥१४॥ इस संवाद को सुनकर देवराज इन्द्र बहुत दुखी हुए और वे प्रसिद्ध व्रतधारी कश्यप की शरण गये ॥१५॥ देवराज की बातें सुनकर प्रजापति कश्यप बालखिल्यों के पास गये और उन्होंने उन लोगों से "कर्म सिद्धि" पूछी, अर्थात् आपका कार्य सिद्ध हुआ, यह पूछा ॥१६॥ कश्यप के यह कहने पर कि आप लोगों का कार्य सिद्ध हो सत्यवादी उन मुनियों ने कश्यप को उत्तर दिया। पुनः प्रजापति कश्यप उनको प्रसन्न करते हुए इस प्रकार बोले ॥१७॥ यह ब्रह्मा की आज्ञा से त्रिभुवन में इन्द्र बना हुआ है। तपस्वियों, आपलोग भी इन्द्र के लिए ही प्रयत्न कर रहे हैं। अर्थात् आप भी दूसरा इन्द्र बनाना चाहते हैं ॥१८॥ श्रेष्ठों, आप लोगों को ब्रह्मा की बात को असत्य सिद्ध नहीं करनी चाहिए। मैं भी आप लोगों के इस सङ्कल्प को मिथ्या करना नहीं चाहता हूँ ॥१९॥ यह जिसे आपलोग इन्द्र बनाना चाहते हैं वह पक्षियों का इन्द्र हो, बलवान् और परिश्रमी हो। इन्द्र पर आप दया करें, यह आपसे दयाभिक्षा मांग रहा है ॥२०॥ कश्यप के ऐसा कहने पर तपस्वी बालखिल्यों ने मुनिश्रेष्ठ प्रजापति की पूजा करके उत्तर दिया ॥२१॥ बालखिल्य बोले—हम सब लोगों का यह प्रयत्न इन्द्र के लिए है। अर्थात् एक नया इन्द्र बनाने का है। आप भी पुत्र प्राप्ति के लिए उद्योग कर रहे हैं अतएव हमलोगों का यह उद्योग आपको भी इष्ट है ॥२२॥ अतएव आपही हमलोगों के इस फलयुक्त कर्म को लें अर्थात् हमलोगों

तदिदं सफलं कर्म त्वयैव प्रतिगृह्यताम् । तथा चैवं विधत्स्वात्र यथा श्रेयोऽनुपश्यसि॥२३॥
सौतिरुवाच ।
एतस्मिन्नेव कालेतु देवी दाक्षायणी शुभा । विनता नाम कल्याणी पुत्रकामा यशस्विनी॥२४॥
तपस्तप्त्वा व्रतपरा स्नाता पुंसवने शुचिः । उपचक्राम भर्तारं तामुवाचाथ कश्यपः ॥२५॥
आरम्भः सफलो देवि भविता यस्तवेप्सितः । जनयिष्यसि पुत्रौ द्वौ वीरौ त्रिभुवनेश्वरौ ॥२६॥
तपसा वालखिल्यानां मम संकल्पजौ तथा । भविष्यतो महाभागौ पुत्रौ त्रैलोक्यपूजितौ ॥२७॥
उवाच चैनां भगवान् कश्यपः पुनरेवह । धार्यतामप्रमादेन गर्भोऽयं सुमहोदयः ॥२८॥
एतौ सर्वपतत्रीणामिन्द्रत्वं कारयिष्यतः । लोकसम्भावितौ वीरौ कामरूपौ विहङ्गमौ॥२९॥
शतक्रतुमथोवाच प्रीयमाणः प्रजपतिः । त्वत्सहायौ महावीर्यौ भ्रातरौ ते भविष्यतः॥३०॥
नैताभ्यां भविता दोषः सकाशात् ते पुरन्दर । व्येतु ते शक्र सन्तापस्त्वमेवेन्द्रो भविष्यसि ॥३१॥
नचाप्येवं त्वया भूयः क्षेप्तव्या ब्रह्मवादिनः । नचावमान्या दर्पात्ते वाग्वज्रा भृशकोपनाः ॥३२॥
एवमुक्तो जगामेन्द्रो निर्विशंकस्त्रिविष्टपम् । विनता चापि सिद्धार्था बभूव मुदिता तथा ॥३३॥
जनयामास पुत्रौ द्वावरुणं गरुडं तथा । विकलांगोऽरुणस्तत्र भास्करस्य पुरस्सरः ॥३४॥

के कर्म का फल आपही लें और जिस प्रकार आप उचित समझें—जिस प्रकार आप कल्याण समझें वैसा करें ॥२३॥
सौतिबोले—

इसी समय दक्षपुत्री देवी कल्याणी यशस्विनी विनता, तपस्या करके, स्नान करके, शुद्ध होकर व्रतधारण करके पुत्र की कामना से पति कश्यप के पास गयी। कश्यप ने उनसे कहा ॥२४-२५॥ देवि, तुम्हारा उद्योग सफल होगा, जो तुम चाहती हो वह होगा, तुम दो वीर पुत्र उत्पन्न करोगी। दोनों वीर और त्रिभुवन के स्वामी होंगे ॥२६॥ बालखिल्यों की तपस्या तथा मेरे सङ्कल्प से वे पुत्र उत्पन्न होंगे। वे दोनों पुत्र बड़े यशस्वी और त्रिलोक में प्रसिद्ध होंगे ॥२७॥ भगवान् कश्यप पुनः उनसे बोले, सावधान होकर तुम इस गर्भ को धारण करो, इसका फल बड़ा ही उत्तम होगा ॥२८॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले लोक प्रसिद्ध ये दोनों वीर पक्षी, सकल पक्षियों के इन्द्र होंगे ॥२९॥ प्रजापति कश्यप प्रसन्न होकर इन्द्र से इस प्रकार बोले, महाबली ये दोनों भाई तुम्हारे सहायक होंगे ॥३०॥ इन्द्र, इन दोनों के द्वारा तुम्हारा कोई अनिष्ट न होगा। अब तुम्हारा सन्ताप दूर हो, तुम्हीं इन्द्र बने रहोगे ॥३१॥ पर तुमको पुनः ब्रह्मवादियों के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए और न अहङ्कार से उनका तिरस्कार ही करना चाहिए। क्योंकि वे बड़े क्रोधी होते हैं उनके वचन वज्र के समान होते हैं ॥३२॥ कश्यप के ऐसा कहने पर इन्द्र निःशंक होकर स्वर्ग चले गये और विनता भी मनोरथ सिद्ध होने से प्रसन्न हो गयी ॥३३॥ उसने अरुण और गरुड़ नाम के दो पुत्र उत्पन्न किये। अरुण विकलांग हुआ। उसके पैर नहीं थे। वह सूर्य के आगे चलता है अर्थात् सूर्य का सारथि है ॥३४॥ पक्षिराज्य पर गरुड़ का अभिषेक

पतत्रीणांच गरुडमिन्द्रत्वेनाभ्यऽषिंचत । तस्यैतत्कर्म सुमहच्छ्रूयतां भृगुनन्दन ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे एकत्रिंशोऽध्यायः ।

सौतिरुवाच ।

ततस्तस्मिन् द्विजश्रेष्ठ समुदीर्णे तथाविधे । गरुड़ः पक्षिराट् तूर्णं सम्प्राप्तो विबुधान प्रति ॥१॥
तं दृष्ट्वातिवलञ्चैव प्राकम्पन्त सुरास्ततः । परस्परंच प्रत्यघ्नन्सर्वप्रहरणान्युत ॥२॥
तत्र चासीदमेयात्मा विद्युदग्निसमप्रभः । भौमनः सुमहावीर्यः सोमस्य परिरक्षिता ॥३॥
स तेन पतगेन्द्रेण पक्षतुण्डनखक्षतः । मुहूर्तमतुलं युद्धं कृत्वा विनिहतो युधि ॥४॥
रजश्चोद्धूय सुमहत्पक्षवातेन खेचरः । कृत्वा लोकान्निरालोकांस्तेन देवानवाकिरत् ॥५॥
तेनावकीर्णारजसा देवा मोहमुपागमन् । नचैनं ददृशुश्छन्ना रजसाऽमृतरक्षिणः ॥६॥
एवं संलोड़यामास गरुड़स्त्रिदिवालयम् । पक्षतुंडप्रहारैस्तु देवान्स विददारह ॥७॥
ततो देवः सहस्राक्षस्तूर्णंवायुमचोदयत् । विक्षिपेमां रजोवृष्टिं तवेदं कर्म मारुत ॥८॥
अथवायुरपोवाह तद्रजस्तरसा वली । ततो वितिमिरे जाते देवाः शकुनिमार्दयन ॥९॥
ननादोच्चैः स वलवान्महामेघ इवाम्बरे । वध्यमानः सुरगणैः सर्वभूतानि भीषयन ॥१०॥

हुआ । भृगुनन्दन, उसके ये महान् कर्म आप सुनें ॥३५॥ एकत्रिंश अध्यायः ।

—o—

देवताओं और गरुड़ का युद्ध और देवताओं की हार ।

सौति बोले, ब्राह्मणश्रेष्ठ, अनन्तर उस अस्त्र शस्त्र लेकर देवसेना के युद्ध के लिए उपस्थित होने पर शीघ्र ही पक्षिराज गरुड़ देवताओं से युद्ध के लिए तयार हुआ ॥१॥ बली गरुड़ को देखकर देवता कांप गये और वे आपस ही में समस्त अस्त्रशस्त्रों का प्रयोग करने लगे ॥२॥ वहां अग्नि और बिजली के समान तेजस्वी महाबली उदारात्मा विश्वकर्मा अमृत की रक्षा कर रहा था ॥३॥ उसे पक्षिराज ने पांख चोंच और पंजे से घायल किया । थोड़ी देर तक भयंकर युद्ध कर के वह मारा गया ॥४॥ पांख की हवा से गरुड़ ने धूल उड़ाकर तीनों लोकों में अन्धकार फैला दिया और उस धूल से देवताओं को ढँक दिया ॥५॥ उस धूल में ढक जाने के कारण देवता मोहित हो गये । उन लोगों ने समझ बूझ खो दी । धूल से ढँक जाने के कारण अमृत की रक्षा करनेवालों को युद्ध भी दिखाई न पड़ा । इस प्रकार गरुड़ ने देवलोक को व्याकुल कर दिया । और उन्होंने पांख और चोंच के प्रहार से देवताओं को घायल किया ॥७॥ अनन्तर देवता इन्द्र ने वायु को आज्ञा दी । वायु, इस धूल की वृष्टि को हटा दो, यह तुम्हारा काम है ॥८॥ अनन्तर, बली वायु ने उस धूल को हटा दिया । प्रकाश हो जाने पर देवताओं ने गरुड़ को पीड़ित किया ॥९॥ महाबली गरुड़ ने देवताओं के द्वारा पीड़ित होने पर भयंकर गर्जन किया । जिस प्रकार महामेघ आकाश में गर्जन करता है । उससे सभी प्राणी भयभीत हो गये ॥१०॥ महा

उत्पपात महावीर्यः पक्षिराट् परवीरहा । समुत्पत्यान्तरिक्षस्थं देवानामुपरिस्थितम् ॥११॥
वर्मिणो विबुधाः सर्वे नानाशस्त्रैरवाकिरन् । पट्टिशैः परिघैः शूलैर्गदाभिश्च सवासवाः ॥१२॥
क्षुरप्रैर्ज्वलितैश्चापि चक्रैरादित्यरूपिभिः । नानाशस्त्रविसर्गैस्तैर्वध्यमानः समन्ततः ॥१३॥
कुर्वन्सुतुमुलं युद्धं पक्षिराट् न व्यकम्पत । निर्दहन्निव चाकाशे वैनतेयः प्रतापवान् ॥१४॥
ते विक्षिप्तास्ततो देवा दुद्रुवुर्गरुडार्दिताः । नखतुंडक्षताश्चैव सुस्रुवुः शोणितं बहु ॥१५॥
साध्याः प्राचींसगंधर्वा वसवो दक्षिणां दिशम् । प्रजग्मुः सहिता रुद्राः पतगेन्द्रप्रधर्षिताः ॥१६॥
दिशं प्रतीचीमादित्या नासत्याउत्तरां दिशम् । मुहुर्मुहुः प्रेक्षमाणा युध्यमाना महौजसः ॥१७॥
अश्वक्रन्देन वीरेण रेणुकेन च पक्षिराट् । क्रथनेन च शूरेण तपनेन च खेचरः ॥१८॥
उलूकश्वसनाभ्यां च निमिषेण च पक्षिराट् । प्ररुजेन च संग्रामं चकार पुलिनेन च ॥१९॥
तान्पक्षनखतुण्डाग्रैरभिनद्द विनतासुतः । युगान्तकाले संक्रुद्धः पिनाकीव परन्तपः ॥२०॥
महाबला महोत्साहास्तेन ते बहुधा क्षताः । रेजुरभ्रघनप्रख्या रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥२१॥
तान्कृत्वा पतगश्रेष्ठः सर्वानुत्क्रान्तजीवितान् । अतिक्रान्तोऽमृतस्यार्थे सर्वतोऽग्निमपश्यत ॥२२॥
आवृण्वानं महाज्वालमर्चिभिः सर्वतोऽम्बरम् । दहंतमिव तीक्ष्णांशुं चण्डवायुसमीरितम् ॥२३॥
ततो नवत्या नवतीर्मुखानां कृत्वा महात्मा गरुडस्तपस्वी ।

पराक्रमी, शत्रु वीरों को मारनेवाला पक्षिराज आकाश में उड़कर देवताओं के ऊपर चला गया ॥११॥ कवच धारण करनेवाले देवता इन्द्रने, पट्टिश, परिघ, शूल, गदा आदि अनेक प्रकार के शस्त्रों से उसे ढँक दिया ॥१२॥ चमकते हुए क्षुरप्र, सूर्य सदृश चक्र आदि अनेक शस्त्रों के छोड़े जाने से वह पक्षी बहुत पीड़ित हुआ ॥१३॥ पर भयंकर युद्ध करता हुआ वह पक्षिराज कम्पित नहीं हुआ । प्रतापी वैनतेय ने आकाश में जलते हुए अग्नि के समान देवताओं को इधर उधर फेंक दिया ॥१४॥ अनन्तर, गरुड़ के द्वारा पीड़ित और फेंके गये देवता इधर उधर भाग गये । पंजा और चोंच के प्रहार से उनके शरीर से खून बह रहा था ॥१५॥ गंधर्वों के साथ साध्यगण पूर्व दिशा की ओर गये । गरुड़ के द्वारा पीड़ित होकर रुद्रों के साथ वसु दक्षिण दिशा की ओर गये ॥१६॥ बारह आदित्य पश्चिम दिशा की ओर तथा दोनों अश्विनी कुमार उत्तर दिशा की ओर गये । वे महाबली बार बार युद्ध देखते जा रहे थे ॥१७॥ पक्षिराज गरुड़, वीर अश्वक्रन्द, रेणुक, शूर क्रथन, तपन्, उलूक, श्वसन, निमेष, प्ररुज् और पुलिन (ये नवों यक्ष थे) के साथ युद्ध किया ॥१८-१९॥ विनता के पुत्र गरुड़ ने प्रलयकाल में क्रोधित पिनाकधारी महादेव के समान, पांख चोंच और पंजे के प्रहार से उन्हें आहत किया ॥२०॥ महाबली, महोत्साही गरुड़ ने देवताओं को खूब घायल किया । जिससे देवताओं के शरीर से रुधिर की धारा चलने लगी और वे वृष्टिकारी मेघ के समान मालूम हुए ॥२१॥ पक्षिराज गरुड़ उन समस्त देवताओं को मार कर अमृत के लिए आगे चले । वहां उन्होंने चारों ओर आग जलती देखी ॥२२॥ प्रचण्ड वायु की सहायता से उस महाज्वाल अग्नि ने अपनी लौ फैला दी । मानों वह सूर्य को जलाना चाहती

नदीः समापीय मुखैस्ततस्तैः सुशीघ्रमागम्य पुनर्जवेन ॥२४॥
ज्वलंतमग्निं तममित्रतापनः समास्तरत्पत्ररथो नदीभिः।
ततः प्रचक्रे वपुरन्यदल्पं प्रवेष्टुकामोऽग्निमभिप्रशाम्य ॥२५॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे द्वात्रिंशोऽध्यायः।

सौतिरुवाच

जाम्बूनदमयो भूत्वा मरीचिनिकरोज्वलः। प्रविवेश बलात्पक्षी वारिवेग इवार्णवम् ॥१॥
स चक्रं क्षुरपर्यन्तमपश्यदमृतान्तिके। परिभ्रमन्तमनिशं तीक्ष्णधारमयस्मयम् ॥२॥
ज्वलनार्कप्रभं घोरं छेदनं सोमहारिणाम्। घोररूपं तदत्यर्थं यन्त्रं देवैः सुनिर्मितम् ॥३॥
तस्यान्तरं सदृष्ट्वैव पर्यवर्तत खेचरः। अरान्तरेणाभ्यपतत्संक्षिप्यांगं क्षणेनह ॥४॥
अधश्चक्रस्य चैवात्र दीप्तानलसमद्युती। विद्युज्जिह्वौ महावीर्यौ दीप्तास्यौ दीप्तलोचनौ ॥५॥
चक्षुर्विषौ महाघोरौ नित्यं क्रुद्धौ तरस्विनौ। अमृतस्यैव रक्षार्थं ददर्श भुजगोत्तमौ ॥६॥

थी ॥२३॥ तपस्वी महातमा गरुड़ ने अनन्तर आठ हजार एक सौ मुख बनाये और उन मुखों से नदियों को पीकर शीघ्र ही वेग से लोट आये। ॥२४॥ शत्रुतापी उस पक्षी ने जलते हुए अग्नि को नदियों से आच्छादित कर दिया। पुनः आग के बुझ जाने पर अमृत के समीप जाने के लिए दूसरा छोटा शरीर बनाया ॥२५॥ द्वात्रिंश अध्याय।

—o—

अमृत के पास गरुड़ का जाना। अमृत लेकर जाते हुए गरुड़ की विष्णु से भेंट। विष्णु और गरुड़ का परस्पर वरदान। गरुड़ का सुपर्ण नाम पाना।

सौति बोले—गरुड़ स्वर्णमय शरीर हो गये। उनके शरीर से किरणें निकलने लगीं। वे बड़े बल से चक्र में घुस गये। (अमृत की रक्षा के लिए एक चक्र लगा हुआ था, जो बराबर घूमता रहता था और उसके चारो ओर चक्कू लगे हुए थे) जिस प्रकार नदियों की धारा समुद्र में घुसती है ॥१॥ उन्होंने अमृत के पास एक लोहे का चक्र देखा जिसके चारो ओर चाकू लगे हुए थे। जिनकी धार तेज थी और वह चक्र हमेशा घूम रहा था ॥२॥ वह चक्र अग्नि और सूर्य के समान चमकीला था और भयंकर था। वह देवताओं का बनाया हुआ अत्यन्त भयानक चक्र अमृत की रक्षा करने के लिए लगाया गया था। अमृत चुरानेवालों को वह काट देता था ॥३॥ उस चक्र के चाकुओं के बीच का अवकाश देखकर उस पक्षि ने अपना शरीर बहुत छोटा बना लिया और वह दो अराओं के बीच में घुस गया। (पहिए के बीच की आड़ी लकड़ियाँ अरा कहलाती हैं) ॥४॥ चक्र के नीचे दो सर्प अमृत की रक्षा के लिए नियुक्त थे। जलती आग के समान उनकी चमक थी। बिजली के समान उनकी जीभ लपलपा रही थी। वे बड़े बली, चमकीली आंख और मुँहवाले महा भयंकर सदा क्रुद्ध रहनेवाले थे। उनकी आंखों में विष था। गरुड़ ने उन सांपों को देखा ॥५-६॥ उनकी आंखें सदा भयंकर दीख पड़ती थीं। और वे आंखें



भगवान् विष्णु और गरुड

[चित्रकार—पी० मुकर्जी

सदा संरब्धनयनौ सदा चानिमिषेक्षणौ । तयोरेकोऽपि यं पश्येत्स तूर्णं भस्मसाद्भवेत् ॥७॥
तयोश्चक्षूंषि रजसा सुपर्णःसहसाऽऽवृणोत् । ताभ्यामदृष्टरूपोऽसौ सर्वतः समताडयत् ॥८॥
तयोरंगे समाक्रम्य वैनतेयोऽन्तरिक्षगः । आच्छिनत्तरसा मध्ये सोमभ्यद्रवत्ततः ॥९॥
समुत्पाट्यामृतं तत्र वैनतेयस्ततो बली । उत्पपात जवेनैव यन्त्रमुन्मथ्य वीर्यवान् ॥१०॥
अपीत्वैवामृतं पक्षी परिगृह्याशु निःसृतः । आगच्छदपरिश्रान्त आवार्यार्कप्रभां ततः ॥११॥
विष्णुना च तदा काले वैनतेयः समेयिवान् । तस्य नारायणस्तुष्टस्तेनालौल्येन कर्मणा ॥१२॥
तमुवाचाव्ययो देवो वरदोऽस्मीति खेचरम् । सववे तव तिष्ठेयमुपरीत्यन्तरिक्षगः ॥१३॥
उवाच चैनं भूयोऽपि नारायणमिदं वचः । अजरश्चामरश्च स्याममृतेन विनाऽप्यहम् ॥१४॥
एवमस्त्विवतितं विष्णुरुवाच विनतासुतम् । प्रतिगृह्य वरौ तौ च गरुड़ो विष्णुमब्रवीत् ॥१५॥
भवतेपि वरं दद्यां वृणोतु भगवानपि । तं वव्रे वाहनं विष्णुर्बलवन्तं महाबलम् ॥१६॥
ध्वजं च चक्रे भगवानुपरिस्थास्यसीति तम् । एवमस्त्विति तं देवमुक्त्वा नारायणं खगः ॥१७॥
वव्राज तरसा वेगाद् वायुं स्पर्धन्महाजवः । तं व्रजन्तं खगश्रेष्ठं वज्रेणेन्द्रोभ्यताडयत् ॥१८॥
हरन्तममृतं रोषाद्गरुड़ं पक्षिणांवरम् । तमुवाचेन्द्रमाक्रन्दे गरुड़ः पततांवरः ॥१९॥

कभी बन्द न होती थी। उन दोनों में एक भी कोई को देख लें तो वह शीघ्र ही भस्म हो जाय ॥७॥ गरुड़ ने शीघ्र ही उनकी आखें धूल से भर दीं और उनसे छिप कर वह उनके समस्त शरीर में आघात पहुंचाने लगा ॥८॥ आकाशचारी वैनतेय ने सर्पों पर आक्रमण कर के बलपूर्वक उनके शरीरों को टुकड़े टुकड़े कर दिये और अमृत लेकर वह भाग खड़ा हुआ ॥९॥ अनन्तर; बली और पराक्रमी वैनतेय ने यन्त्र को तोड़ कर अमृत उठा लिया और शीघ्रता पूर्वक वह आकाश में उड़ गया ॥१०॥ वह पक्षी अमृत को बिना पीये ही उसे लेकर शीघ्र ही वहां से निकल गया। और सूर्य की किरणों का विना परवाह किये और बिना थके वह चला आया ॥११॥ उस समय वह पक्षी आकाश में विष्णु से मिला। लोभ रहित उसके इस कार्य से विष्णु प्रसन्न हुए ॥१२॥ वे अव्यय विष्णु उस पक्षि से बोले कि मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। उस पक्षी ने उनसे वर मांगा—मैं तुम्हारी ध्वजा के ऊपर सदा वर्तमान रहूँ ॥१३॥ वह नारायण से पुनः यह बोला कि अमृत के बिना भी मैं अजर अमर रहूँ। न मैं कभी बूढ़ा होऊँ और न कभी मरूँ ॥१४॥ विष्णु भगवान ने विनता पुत्र गरुड़ की वे बातें स्वीकार कर लीं। गरुड़ दो वरों को लेकर विष्णु से बोला—॥१५॥ आप को मैं भी वर दूंगा। आप वर मांगे। तब विष्णु ने महाबली गरुड़ के अपना वाहन होने का वर मांगा ॥१६॥ विष्णु भगवान ने—ध्वजा के ऊपर तुम रहोगे—ऐसा कह कर उसका चित्र ध्वजा पर अंकित कर दिया। भगवान नारायण की बातें स्वीकार कर के वह पक्षी बड़े वेग से, मानों वायु को अपने वेग से जीतना चाहता हो चला। जाते हुए उस पक्षिराज को इन्द्र ने वज्र से मारा ॥१७,१८॥ जो पक्षिराज गरुड़, अमृत ले जा रहा था। पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ उस कोलाहल में इन्द्र से बोला—वज्र से आहत होने पर भी

प्रहसन्श्लक्ष्णया वाचा तथा वज्रसमाहतः। ऋषेर्मानं करिष्यामि वज्रं यस्यास्थिसम्भवम् ॥२०॥
वज्रस्य च करिष्यामि तवैव च शतक्रतो। एतत्पत्रं त्यजाम्येकं यस्यान्तं नोपलप्स्यसे ॥२१॥
न च वज्रनिपातेन रुजा मेऽस्तीह काचन। एवमुक्त्वा ततः पत्रमुत्ससर्ज स पक्षिराट् ॥२२॥
तदुत्सृष्टमभिप्रेक्ष्य तस्य पर्णमनुत्तमम्। हृष्टानि सर्वभूतानि नाम चक्रुर्गरुत्मतः ॥२३॥
सुरूपं पत्रमालक्ष्य सुपर्णोऽयं भवत्विति। तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं सहस्राक्षः पुरन्दरः
खगो महदिदंभूतमितिमत्वाऽभ्यभाषत ॥२४॥ शक्र उवाच
बलं विज्ञातुमिच्छामि यत्ते परमनुत्तमम्। सख्यं चानन्तमिच्छामि त्वया सह खगोत्तम ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।

गरुड़ उवाच
सख्यं मेऽस्तु त्वया देव यथेच्छसि पुरन्दर। बलन्तु मम जानीहि महच्चासह्यमेवच ॥१॥
कामं नैतत्प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम्। गुणसंकीर्तनं चापि स्वयमेव शतक्रतो ॥२॥
सखेतिकृत्वा तु सखे पृष्टो वक्ष्याम्यहं त्वया। नह्यात्मस्तवसंयुक्तं वक्तव्यमनिमित्ततः ॥३॥
सपर्वतवनामुर्वीं ससागरजलामिमाम्। वहे पक्षेण वै शक्र त्वामप्यत्रावलम्बिनम् ॥४॥

हंसता हुआ मधुर स्वर में बोला। मैं उन ऋषि का सम्मान कर रहा हूँ, जिनकी हड्डी से यह वज्र बना हुआ है ॥१६,२०॥ इन्द्र, तुम्हारे वज्र के सम्मान में मैं अपनी एक पांख छोड़ देता हूँ, जिसकी ओर छोर का पता तुमको न लगेगा ॥२१॥ वज्र के आघात से मुझे कुछ भी पीड़ा नहीं हुई है। ऐसा कह कर उस पक्षिराज ने अपनी एक पांख गिरा दी ॥२२॥ उसकी सुन्दर गिरी हुई पांख देख कर सब प्राणी प्रसन्न हुए और उन्होंने गरुड़ का नया नाम रखा ॥२३॥ चूंकि इसकी पांख सुन्दर है इसलिए यह सुपर्ण नाम से प्रसिद्ध होगा ॥२३॥ इस आश्चर्य घटना को देखकर इन्द्र विस्मित हुए। यह पक्षी कोई महाप्राणी है, साधारण पक्षी नहीं है, यह जान कर वे उससे बोले—२४॥ इन्द्र बोले, तुम्हारा श्रेष्ठ बल मैं जानना चाहता हूँ। हे पक्षिश्रेष्ठ, मैं तुम्हारे साथ सदा की मैत्री चाहता हूँ ॥२५॥ त्रयस्त्रिंश अध्याय।

—o—

इन्द्र और गरुड़ की मैत्री। इन्द्र से गरुड़ का वरदान पाना। विनता का दास्य से छुटकारा सर्पों का द्विजिह्व होना।

गरुड़ बोले, देव इन्द्र, जैसा तुम चाहते हो मेरे साथ तुम्हारी मैत्री हो। मेरा बल बहुत अधिक है और असहनीय है। यह तुम समझो ॥१॥ भले आदमी अपने बल की प्रशंसा नहीं करते यह सब लोग प्रायः जानते हैं। अपने गुणों का स्वयं कीर्तन करना भी वे उचित नहीं समझते ॥२॥ पर मित्र, तुमने मुझे अपना मित्र समझ कर पूछा है, इसलिए तुम से ऐसा कहता हूँ, क्योंकि बिना किसी कारण के गुणों का बखान करना अच्छा नहीं है ॥३॥ पर्वत, वन तथा समुद्र के जल के साथ इस समस्त पृथिवी को और उसके सहारे तुम यदि लटको, तो तुमको भी

सर्वान्सपिंडितान्वापि लोकान्संस्थाणुजंगमान्। वहेयमपरिश्रान्तो विद्धीदं मे महद्बलम् ॥५॥
सौतिरुवाच ।
इत्युक्तवन्तं वीरं किरीटी श्रीमतां वरः । आह शौनक देवेन्द्रः सर्वलोकहितः प्रभुः ॥६॥
एवमेवयथा ऽऽत्थत्वं सर्वं सम्भाव्यते त्वयि । संगृह्यतामिदानीं मे सख्यमत्यन्तमुत्तमम् ॥७॥
न कार्यं यदि सोमेन मम सोमः प्रदीयताम् । अस्मांस्ते हि प्रबाधेयुर्येभ्यो दद्याद्भवानिमम्॥८॥
गरुड़ उवाच ।
किंचित्कारणमुद्दिश्य सोमोऽयं नीयते मया । न दास्यामि समादातुं सोमं कस्मैचिदप्यहम्॥९॥
यत्रेमं तु सहस्राक्ष निक्षिपेयमहं स्वयम् । त्वमादाय ततस्तूर्णं हरेथास्त्रिदिवेश्वर ॥१०॥
शक्र उवाच ।
वाक्येनानेन तुष्टोऽहं यत्त्वयोक्तमिहांडज । यमिच्छसि वरं मत्तस्तं गृहाण खगोत्तम ॥११॥
सौतिरुवाच ।
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं कद्रूपुत्राननुस्मरन् । स्मृत्वा चैवोपधिकृतं मातुर्दास्यनिमित्ततः॥१२॥
ईशोऽहमपि सर्वस्य करिष्यामि तु तेऽर्थिताम् । भवेयुर्भुजगाः शक्र मम भक्ष्या महाबलाः ॥१३॥
तथेत्युक्त्वाऽन्वगच्छत्तं ततो दानवसूदनः । देवदेवं महात्मानं योगिनामीश्वरं हरिम् ॥१४॥
स चान्वमोदत्तं चार्थं यथोक्तं गरुड़ेन वै । इदं भूयो वचः प्राह भगवांस्त्रिदशेश्वरः ॥१५॥
हरिष्यामि विनिक्षिप्तं सोममित्यनुभाष्य तम् । आजगाम ततस्तूर्णं सुपर्णो मातुरन्तिकम्॥१६॥

मैं अपनी पांख पर ढो सकता हूँ ॥४॥ चर, अचर समस्त लोकों को एकत्र करके विना थकावट के मैं ढो सकता हूँ। यही मेरा बल तुम समझो ॥५॥ सौति बोले, ऐसा कहने पर वीर गरुड़ से किरीटधारी राजाओं में श्रेष्ठ सब के हितकारी प्रभु देवराज बोले ॥६॥ तुम मेरी मैत्री ग्रहण करो। वह अत्यन्त उत्तम है ॥७॥ यदि अमृत की कोई खास तुम्हें आवश्यकता नहीं हो तो वह मुझे लौटा दो। क्यों कि जिनको तुम यह अमृत दोगे, वे हम लोगों को पीड़ित करेंगे ॥७॥ गरुड़ बोले, किसी कारण विशेष से यह अमृत मैं लिए जा रहा हूँ। मैं पीने के लिए किसी को भी अमृत न दूंगा ॥६॥सहस्राक्ष, जिस स्थान पर यह मैं अमृत रखूंगा, वहां से लेकर तुम शीघ्र ही चले जाना। १०॥ इन्द्र बोले, हे अण्डज, मैं तुम्हारे इस वचन से सन्तुष्ट हुआ। खगोत्तम, तुम जो वर चाहो मुझ से ले लो ॥११॥ सौति बोले, इन्द्र के ऐसा कहने पर कद्रू के पुत्रों का स्मरण करके और छल से अपनी माता के दासी बनाए जाने का वृत्तान्त स्मरण करके वह बोला ॥१२॥ मैं स्वयं सब के लिए समर्थ हूँ। जो चाहे कर सकता हूँ, फिर भी तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ। मैं तुमसे यह वर चाहता हूँ कि महाबली सर्प मेरे भोजन हों ॥१३॥ ऐसा कह कर दानवहन्ता इन्द्र योगियों के स्वामी देव देव महात्मा हरि के पास गये ॥१४॥ गरुड़ ने जो कहा था उसका अनुमोदन हरि ने भी किया।

देवराज इन्द्र ने पुनः गरुड़ को सम्बोधित करके कहा—तुम्हारे द्वारा रखा हुआ अमृत मैं उठा लाऊंगा। सुपर्ण वहां से शीघ्र ही माता के पास चला आया ॥१६॥ बहुत प्रसन्न होता

अथ सर्पानुवाचेदंसर्वान् परमहृष्टवत् । इदमानीतममृतं निक्षेप्स्यामि कुशेषु वः ॥१७॥
स्नाता मंगलसंयुक्तास्ततः प्राश्नीत पन्नगाः । भवद्भिरिदमासीनैर्यदुक्तं तद्वचस्तदा ॥१८॥
अदासी चैव मातेयमद्यप्रभृति चास्तु मे । यथोक्तं भवतामेतद्वचो मे प्रतिपादितम् ॥१९॥
ततः स्नातुं गताः सर्पाः प्रत्युक्त्वा तत्तथेत्युत । शक्रोऽप्यमृतमाक्षिप्य जगाम त्रिदिवं पुनः ॥२०॥
अथागतास्तमुद्देशं सर्पाः सोमार्थिनस्तदा । स्नाताश्चकृतजप्याश्च प्रहृष्टाः कृतमंगलाः ॥२१॥
यत्रैतदमृतं चापि स्थापितं कुशसंस्तरे । तद्विज्ञाय हृतं सर्पाः प्रतिमायाकृतं च तत् ॥२२॥
सोमस्थानमिदं चेति दर्भांस्ते लिलिहुस्तदा । ततो द्विधाकृता जिह्वा सर्पाणां तेन कर्मणा ॥२३॥
अभवंश्चामृतस्पर्शाद्दर्भाऽस्तेथ पवित्रिणः । एवं तदमृतं तेन हृतमाहृतमेव च ।

द्विजिह्वाश्च कृताः सर्पाः गरुडेन महात्मना ॥२४॥
ततः सुपर्णः परमप्रहर्षवान्विहृत्य मात्रा सह तत्र कानने ।
भुजंगमक्षः परमार्चितः खगैरहीनकीर्तिर्विनतामनन्दयत् ॥२५॥
इमां कथां यः शृणुयान्नरः सदा पठेत वा द्विजगणमुख्यसंसदि ।
असंशयं त्रिदिवमियात्स पुण्यभाङ्महात्मनः पतगपतेः प्रकीर्तनात् ॥२६॥
इति श्री महाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥

हुआ वह सर्पों से बोला—यह अमृत मैं तुम लोगों के लिए ले आया हूँ। तुम लोगों के लिए इसे कुशों पर रखता हूँ ॥१६॥ स्नान कर के मंगल युक्त होकर आप लोग बैठ कर इसे पीयें। जैसा कि पहले आप लोगों ने मुझसे कहा था ॥१८॥ आज से मेरी माता दासी न रहे। आप लोगों ने मुझे यह वचन दिया था ॥१६॥ गरुड़ की बातें स्वीकार कर सर्प स्नान करने चले गये। इस अवसर में इन्द्र पुनः स्वर्ग को लौट गये ॥२०॥ सोम पीने की इच्छा से वहां सर्प आये, स्नान जप और मांगलिक कृत्यों को करके प्रसन्नता पूर्वक वे आये ॥२१॥ जिस कुश के स्थान पर अमृत रखा हुआ था, उस स्थान को उन्होंने ढूंढ़ निकाला। और वहां अमृत न देखकर उन लोगों ने समझा, यह छल का बदला छल से लिया गया है। जिस प्रकार छल से हम लोगों ने इनकी माता को दासी बनाया था उसी प्रकार इन्होंने अमृत भी दिया ॥२२॥ यह अमृत रखने का स्थान है, यह समझ कर वे कुश को चाटने लगे। जिससे सांपों की जीभ दो हो गयी, बीच से फट गयी ॥२३॥ अमृत के स्पर्श से वे कुश भी पवित्र होगये। (पवि का अर्थ है इन्द्र का वज्र अमृत वज्र के प्रहार से रक्षा करता है, अर्थात् अमृत पीनेवालों पर वज्र का असर नहीं होता। इसलिए अमृत को पवित्र कहते हैं और उस पवित्र के स्पर्श से कुश भी पवित्र हुए।) इस प्रकार वह अमृत लाया गया और चला गया। महात्मा गरुड़ ने सर्पों को दो जीभ वाला बना दिया ॥२४॥ अनन्तर अत्यन्त प्रसन्नहोकर गरुड़ अपनी माता के साथ उस वन में विचरण करने लगे। सर्पों को खाकर पक्षियों से प्रशंसित होकर और विशाल कीर्तिमान् होकर उन्होंने विनता को प्रसन्न किया ॥२५॥ जो मनुष्य इस कथा को सुनता है अथवा श्रेष्ठब्राह्मणों की सभा में कहता है वह पुण्यात्मा निस्सन्देह गरुड़ के चरित के कथन के कारण स्वर्ग में जाता है ॥२६॥ चतुस्त्रिंश अध्यायः

—o—

शौनक उवाच

भुजंगमानां शापस्य मात्रा चैव सुतेन च। विनतायास्त्वया प्रोक्तं कारणं सूतनन्दन ॥१॥
वरप्रदानं भर्त्रा च कद्रूविनतयोस्तथा। नामनी चैव ते प्रोक्ते पक्षिणोर्वैनतेययोः ॥२॥
पन्नगानां तु नामानि न कीर्तयसि सूतज। प्रधान्येनापि नामानि श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥३॥

सौतिरुवाच

बहुत्वान्नामधेयानि पन्नगानां तपोधन। न कीर्तयिष्ये सर्वेषां प्राधान्येन तु मे शृणु ॥४॥
शेषः प्रथमतो जातो वासुकिस्तदनन्तरम्। ऐरावतस्तक्षकश्च कर्कोटकधनंजयौ ॥५॥
कालियो मणिनागश्च नागश्चापूरणस्तथा। नागस्तथा पिंजरक एलापत्रोऽथ वामनः ॥६॥
नीलानीलौ तथा नागौ कल्माषशवलौ तथा। आर्यकश्चोग्रकश्चैव नागः कलशपोतकः ॥७॥
सुमनाख्यो दधिमुखस्तथा विमलपिंडकः। आप्तः कर्कोटकश्चैव शंखो वालिशिखस्तथा॥८॥
निष्ठानको हेमगुहो नहुषः पिंगलस्तथा। बाह्यकर्णो हस्तिपदस्तथा मुद्गरपिंडकः ॥९॥
कंबलाश्वतरौ चापि नागःकालीयकस्तथा। वृत्तसंवर्त्तकौ नागौ द्वौच पद्माविति श्रुतौ ॥१०॥
नागः शंखमुखश्चैव तथा कूष्मांडकोऽपरः। क्षेमकश्च तथा नागो नागः पिंडारकस्तथा ॥११॥
करवीरः पुष्पदंष्ट्रोबिल्वको बिल्वपांडुरः। मूषकादः शंखशिराःपूर्णभद्रो हरिद्रकः ॥१२॥
अपराजितो ज्योतिकश्च पन्नगः श्रीवहस्तथा। कौरव्यो धृतराष्ट्रश्च शंखपिंडश्च वीर्यवान्॥१३॥
विरजाश्च सुबाहुश्च शालिपिंडश्च वीर्यवान्। हस्तिपिंडः पिठिरकःसुमुखः कौणपाशनः ॥१४॥
कुठरः कुञ्जरश्चैव तथा नागः प्रभाकरः। कुमुदः कुमुदाक्षश्च तित्तिरिर्हलिकस्तथा ॥१५॥

प्रधान सर्पों के नाम।

शौनक बोले। हे सूतनन्दन। सर्पों की माता के शाप के कारण और विनता पुत्र गरुड़ के शाप का कारण तुमने बतलाया ॥१॥ कद्रू और विनता के पतिने जो शाप दिया था वह भी कहा और विनता के दोनों पुत्र के नाम भी तुमने बतलाये ॥२॥ पर सूतपुत्र तुमने सर्पों के नाम नहीं बतलाये। हम लोग प्रधान प्रधान सर्पों के नाम सुनना चाहते हैं ॥३॥ सौति बोले, तपोधन सर्प अनेक हैं उनके नाम बहुत हैं इसलिए मैं सब सर्पों के नाम नहीं कह रहा हूँ। हाँ, प्रधान प्रधान सर्पों के नाम सुनिए ॥४॥ पहले शेष उत्पन्न हुआ उसके बाद वासुकि, ऐरावत, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय ॥५॥ कालिया, मणिनाग, आपूरण, पिंजरक, एलापत्र, वामन, नील, आनील, कल्माष, शवल, आर्यक, उग्रक, कलश, पोतक ॥६॥७॥ सुमना, दधिमुख, विमलपिंडक, आप्तकर्कोटक, शंख, वालिशिख ॥८॥ निष्ठानक, हेमगुह, नहुष,पिंगल,बाहय कर्ण, हस्तिपद, मुद्गर, पिंडक ॥९॥ कंबल, अश्वतर, कालीयक, वृत्त, संवर्तक, पद्मनाम के दो॥१०॥ शंखमुख, कूश्मांडक क्षेमक,पिंडारक ॥११॥ करवीर, पुष्पदंष्ट्र, बिल्वक, बिल्वपांडुर, मूषकाद, शंखशिर, पूर्णभद्र, हरिद्रक ॥१२॥ अपराजित, ज्योतिक, श्रीवह, कौरव्य, धृतराष्ट्र, पराक्रमी शंखपिंड॥१३॥ विरजा, सुवाहु, पराक्रमी शालिपिंड, हस्तिपिंड, पिठरक, सुमुख, कौणपाशन ॥१४॥ कुठर, कुंजर, प्रभाकर, कुमुद

कर्दमश्च महानागो नागश्च बहुमूलकः। कर्कराकर्करौ नागौ कुण्डोदरमहोदरौ ॥१६॥
एते प्राधान्यतो नागाः कीर्तिता द्विजसत्तम। बहुत्वान्नामधेयानामितरे नानुकीर्तिता ॥१७॥
एतेषां प्रसवो यश्च प्रसवानांच सन्ततिः। असंख्येयेति मत्वा तान्न ब्रवीमि तपोधन ॥१८॥
बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च। अशक्यान्येव संख्यातुं पन्नगानां तपोधन ॥१९॥

इतिश्री महाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पनामकथने पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥

शौनक उवाच।
आख्याता भुजगा तात वीर्यवन्तो दुरासदाः। शापान्तं तेऽभिविज्ञाय कृतवन्तः किमुत्तरम् ॥१॥
सौतिरुवाच।
तेषां तु भगवांच्छेषः कद्रूं त्यक्त्वा महायशाः। उग्रं तपः समातस्थे वायुभक्षो यतव्रतः ॥२॥
गन्धमादनमासाद्य बदर्यां च तपोरतः। गोकर्णे पुष्करारण्ये तथा हिमवतस्तटे ॥३॥
तेषु तेषु च पुण्येषु तीर्थेष्वायतनेषु च। एकान्तशीलो नियतः सततं विजितेन्द्रियः॥४॥
तप्यमानं तपो घोरं तं ददर्श पितामहः। संशुष्कमांसत्वक्स्नायुंजटाचीरधरं मुनिम् ॥५॥
तमब्रवीत्सत्यधृतिं तप्यमानं पितामहः। किमिदं कुरुषे शेष प्रजानां स्वस्ति वै कुरु ॥६॥
त्वं हि तीव्रेण तपसा प्रजास्तापयसेऽनघ। ब्रूहि कामं च मे शेष यस्ते हृदि व्यवस्थितः ॥७॥

कुमुदाक्ष, तित्तिरि, हलिक ॥१५॥ महानाग, कर्दम, बहुमूलक, कर्कर, अकर्कपिंड, कुंडोदर, महोदर ॥१६॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ, नागों के नाम प्रधानतः मैंने तुमको बतलाये, नाम अनेक हैं इसलिए औरों के नाम मैंने नहीं कहे ॥१७॥ इनकी सन्तान और इनकी सन्तानों की सन्तान अनेक हैं उनकी गणना असंख्य है इसलिए मैं नहीं कह रहा हूँ ॥१८॥ अनेक हजार लाखों अरबों उनकी संख्या है तपोधन सर्पों की गणना-अशक्य है ॥१९॥ पंचत्रिंश अध्याय।

—o—

ब्रह्मा से शेष का वर पाना तथा पृथिवी धारण करने का वर पाना।

शौनक बोले, तात पराक्रमी और दुरासद सर्पों का वृत्तान्त तुमने कहा, पर माता के शाप जानने के अनन्तर उन सर्पों ने क्या किया ॥१॥ सौति बोले, उन सर्पों में यशस्वी भगवान शेष ने कद्रू का त्याग कर दिया और वे वायु का आहार करके नियम व्रत के साथ तपस्या करने लगे ॥२॥ गन्धमादन पर्वत पर जाकर और बदरी वन में उन्होंने तपस्या की। गोकर्ण, पुष्कर क्षेत्र तथा हिमवान की तराई में उन्होंने तपस्या की ॥३॥ भिन्न भिन्न तीर्थों और आयतनों में एकान्त और जितेन्द्रिय रहकर उन्होंने तपस्या की। घोर तपस्या करते हुए उनको ब्रह्मा ने देखा। मांस त्वचा और शरीर की नाड़ियाँ सूख गयी थीं। और जटा तथा चीर वे धारण किए हुए थे ॥५॥ तपस्या करते हुए अद्भुत धैर्यधारी शेष से ब्रह्माबोले—शेष यह तुम क्या कर रहे हो। तुम प्रजाओं का कल्याण करो ॥६॥ हे निष्पाप, तुम अपनी उग्रतपस्या के द्वारा प्रजा को तपा रहे हो। तुम

शेष उवाच ।

सोदर्या मम सर्वे हि भ्रातरो मन्दचेतसः । सह तैर्नोत्सहे वस्तुं तद्भवाननुमन्यताम् ॥८॥
अभ्यसूयन्ति सततं परस्परममित्रवत् । ततोऽहं तप आतिष्ठं नैतान्पश्येयमित्युत ॥९॥
न मर्षयन्ति ससुतां सततं विनतां च ते । अस्माकं चापरो भ्राता वैनतेयोन्तरिक्षगः ॥१०॥
तंच द्विषन्ति सततं स चापि बलवत्तरः । वरप्रदानात् स पितुः कश्यपस्य महात्मनः ॥११॥
सोऽहं तपः समास्थाय मोक्ष्यामीदं कलेवरं । कथं मे प्रेत्यभावेऽपि न तैः स्यात् सह संगमः॥१२॥
तमेवं वादिनं शेषं पितामह उवाच ह । जानामि शेष सर्वेषां भ्रातॄणां ते विचेष्टितम् ॥१३॥
मातुश्चाप्यपराधाद्वै भ्रातॄणां ते महद्भयम् । कृतोऽत्र परिहारश्च पूर्वमेव भुजंगम ॥१४॥
भ्रातॄणां तव सर्वेषां न शोकं कर्तुमर्हसि । वृणीष्व च वरं मत्तः शेष यत्ते ऽभिकांक्षितम् ॥१५॥
दास्यामि हि वरं तेऽद्य प्रीतिर्मे परमा त्वयि । दिष्ट्या बुद्धिश्च ते धर्मे निविष्टा पन्नगोत्तम ।
भूयो भूयश्च ते बुद्धिर्धर्मे भवतु सुस्थिरा ॥१६॥

शेष उवाच

एष एव वरो देव कांक्षितो मे पितामह । धर्मे मे रमतां बुद्धिः शमे तपसि चेश्वर ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

प्रीतोऽस्म्यनेन ते शेष दमेन च शमेन च । त्वयात्विदं वचः कार्यं मन्नियोगात्प्रजाहितम् ॥१८॥

अपना मनोरथ कहो, जो तुम्हारे हृदय में वर्तमान है ॥७॥ शेष बोले—मेरे सभी सहोदर भाई मूर्ख हैं। मैं उनके साथ रहना नहीं चाहता । आप इसकी आज्ञा दें ॥८॥ ये परस्पर शत्रु के समान असूय्या करते हैं। इसलिए मैंने तपस्या प्रारम्भ करदी। जिससे मैं उनलोगों को देख न सकूँ॥९॥ विनता और उनके पुत्रों को वे सहन नहीं करते उनसे द्वेष रखते हैं। हमारा दूसरा भाई विनता का पुत्र आकाशगामी है॥१०॥ वे उससे द्वेष करते हैं और वह पिता महात्मा कश्यप के वर से बड़ा बलवान् है ॥११॥ मैं तपस्या के द्वारा अपने इस शरीर का त्याग करूँगा। दूसरे जन्म में भी उनका साथ हमें न हो—कैसे न हो यह मैं जानना चाहता हूँ ॥१२॥ शेष के ऐसा कहने पर पितामह बोले—शेष, तुम्हारे सब भाइयों का कार्य मैं जानता हूँ ॥१३॥ माता के अपराध से तुम्हारे भाइयों पर बड़ा संकट आने वाला था। पर सर्प, उसका उपाय पहले ही कर दिया गया है। तुम अपने भाइयों के लिए शोक मत करो। शेष, जो तुम चाहो वह मुझसे वर मांग लो॥१४,१५॥ तुमको आज मैं वर दूंगा। क्यों कि तुम पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। यह प्रसन्नता की बात है कि नाग श्रेष्ठ तुम्हारा मन धर्म में लगा हुआ है। सदा तुम्हारी बुद्धि धर्म में स्थिर रहे ॥१६॥ शेष बोले, पितामह देव मैं यही वर चाहता हूँ कि धर्म—वैदिक कार्यों में, शम—मन को जीतने में, तपस्या-तत्व निर्णय में मेरी बुद्धि सदा बनी रहे ॥१७॥ ब्रह्मा बोले, शेष, तुम्हारी इस जितेन्द्रियता और शम से मैं प्रसन्न हूँ मेरी आज्ञा से तुम यह काम करो। इससे प्रजा का कल्याण भी होगा ॥१८॥

इमां महीं शैलवनोपपन्नां ससागरग्रामविहारपत्तनाम् ।
त्वं शेष सम्यक् चलितां यथावत्संगृह्य तिष्ठस्व यथाऽचला स्यात् ॥१९॥

शेष उवाच

यथाह देवो वरदः प्रजापतिर्महीपतिर्भूतपतिर्जगत्पतिः ।
तथा महीं धारयितास्मि निश्चलां प्रयच्छतां मे शिरसि प्रजापते ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

अधो महीं गच्छ भुजंगमोत्तम स्वयं तवैषा विवरं प्रदास्यति ।
इमां धरां धारयता त्वया हि मे महत्प्रियं शेष कृतं भविष्यति ॥२१॥

सौतिरुवाच

तथैव कृत्वा विवरं प्रविश्य स प्रभुर्भुवो भुजगवराग्रज स्थितः ।
बिभर्ति देवीं शिरसा महीमिमां समुद्रनेमिं परिगृह्य सर्वतः ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

शेषोऽसि नागोत्तम धर्मदेवो महीमिमां धारयसे यदेकः ।
अनन्तभोगैः परिगृह्य सर्वां यथाऽहमेवं बलभिद्यथा वा ॥२३॥

सौतिरुवाच

अधोभूमौ वसत्येवं नागोऽनन्तः प्रतापवान् । धारयन्वसुधामेकः शासनाद्ब्रह्मणो विदुः ॥२४॥
सुपर्णं च सहायं वै भगवानमरोत्तमः । प्रादादनन्ताय तदा वैनतेयं पितामहः ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि शेषवृत्तकथने षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

यह पृथिवी, पर्वत, वन, समुद्र, गांव, शहर आदि के साथ डोल रही है, स्थिर नहीं है। इसको अच्छी तरह से पकड़ कर स्थिर रहो। जिससे यह अचला हो जाय ॥१९॥ शेष बोले, वर देने वाले देव आप जैसा कहते हैं वैसा मैं करूँगा। आप प्रजाओं में पृथ्वी, प्राणी और जगत के पति हैं। मैं स्थिर हो कर पृथिवी को धारण करूँगा। आप इसे मेरे सिर पर रखें ॥२०॥

ब्रह्मा बोले, नागश्रेष्ठ तुम पृथिवी के नीचे चले जाओ। यह स्वयं तुम्हें जाने का बिल-मार्ग दे देगी। हे शेष, इस पृथिवी को धारण करके तुम हमारा बहुत ही प्रिय काम करोगे ॥२१॥ सौति बोले—शेष ने वैसाही किया। प्रभु शेष, सर्पों के बड़े बिल में प्रवेश करके समुद्र से घिरी इस पृथिवी को सिर पर धारण करने लगे ॥२२॥ ब्रह्मा बोले, हे नागोत्तम तुम धर्म देव हो। क्यों कि अकेले तुम इस समस्त पृथिवी को धारण करते हो। अपने अनन्त फणों पर उठाकर तुम उसी प्रकार पृथिवी धारण करते हो जिस प्रकार मैं और इन्द्र धारण करते हैं ॥२३॥ सौति बोले, इस प्रकार प्रतापी अनन्त नाग भूमि के नीचे निवास करते हैं। ये ब्रह्मा की आज्ञा से अकेले पृथिवी को धारण करते हैं ऐसा लोग कहते हैं ॥२४॥ देवश्रेष्ठ पितामहने अनन्त नाग का गरुड़ को मित्र बना दिया ॥२५॥ षट्त्रिंश अध्याय।

—०—

सौतिरुवाच

मातुः सकाशात्तं शापं श्रुत्वावै पन्नगोत्तमः। वासुकिश्चिन्तयामास शापोऽयं न भवेत्कथम् ॥१॥
ततः स मंत्रयामास भ्रातृभिः सह सर्वशः । ऐरावतप्रभृतिभिः सर्वधर्मपरायणैः ॥२॥

वासुकिरुवाच

अयं शापो यथोद्दिष्टो विदितं वस्तथाऽनघाः। तस्य शापस्य मोक्षार्थं मन्त्रयित्वा यतामहे ॥३॥
सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते । न तु मात्राऽभिशप्तानां मोक्षः क्वचन विद्यते ॥४॥
अव्ययस्याप्रमेयस्य सत्यस्य च तथाग्रतः । शप्ता इत्येव मे श्रुत्वा जायते हृदि वेपथुः॥५॥
नूनं सर्वविनाशोऽयमस्माकं समुपागतः । नह्येतां सोऽव्ययो देवः शपन्तीं प्रत्यषेधयत्॥६॥
तस्मात्संमन्त्रयामोऽद्य भुजंगानामनामयम् । यथा भवेद्धि सर्वेषां मा नः कालोऽत्यगादयम् ।
सर्वएव हि नस्तावद्बुद्धिमन्तो विचक्षणाः ॥७॥
अपि मन्त्रयमाणा हि हेतुं पश्याम मोक्षणे । यथा नष्टं पुरा देवा गूढमग्निं गुहागतम् ॥८॥
यथा स यज्ञो न भवेद्यथा वाऽपि पराभवः । जनमेजयस्य सर्पाणां विनाशकरणाय वै ॥९॥

सौतिरुवाच ।

तथेत्युक्त्वा ततः सर्वे काद्रवेयाः समागताः । समयं चक्रिरे तत्र मन्त्रबुद्धिविशारदाः ॥१०॥

माता के शाप से रक्षा पाने के लिए सर्पों की सलाह ।

सौति बोले, पन्नगोत्तम वासुकि ने माता का वह शाप सुनकर सोचा कि किस प्रकार यह शाप मुझे न लगेगा ॥१॥ अनन्तर उसने ऐरावत आदि धर्मात्मा अपने समस्त भाइयों के साथ सलाह की ॥२॥ वासुकि बोले, हे निष्पापो, यह शाप जैसा कहा गया है वह आप लोगों को मालूम है । उस शाप से रक्षा पाने के लिए विचार करके हम लोग प्रयत्न करें ॥३॥ अन्य सब प्रकार के शापों के दूर करने का उपाय है पर माता के शाप से बचने का कोई उपाय नहीं है ॥४॥ हम लोगों को सत्य लोक के स्वामी, जरामरण रहित और अनन्त माहत्म्य वाले ब्रह्मा के सामने शाप दिया गया है । यह सुनकर मेरा हृदय काँप रहा है ॥५॥ निश्चय ही हम सबके विनाश का समय उपस्थित हुआ है । नहीं तो अव्यय देव ब्रह्मा शाप देने के समय माता को अवश्य रोकते ॥६॥ अतएव हम लोग विचार करें जिससे समस्त सर्पों का कल्याण हो। जिससे हम लोगों का यह समय व्यतीत न हो जाय । अर्थात् अभी विचार कर लेने से ही हम लोगों की रक्षा हो सकती है । यज्ञ प्रारम्भ होने पर विचार करना व्यर्थ है । हम सब लोग बुद्धिमान और कुशल हैं ॥७॥ हम लोग जो विचार करें वह शाप से रक्षा पाने का ही हो । जिस प्रकार पहले समय में अपने कारण वायु ने अग्नि के छिप जाने पर उन्हें ढूंढ़ने के लिए देवताओं ने किया था ॥८॥ सर्पों के विनाश के लिए जनमेजय का जो यज्ञ होने वाला है, वह न होने पावे, अथवा प्रारम्भ होने पर भी वह नष्ट हो जाय, अर्थात् उसका प्रभाव हम लोगों पर न पड़े ॥९॥

सौति बोले, ऐसा निश्चय करके कद्रू के समस्त पुत्र एकत्र हुए । नीति और निश्चय में निपुण वे आपस में एक मत से विचार करने लगे ॥१०॥ कई सर्पों ने कहा कि हम लोग

एके तत्राब्रुवन्नागा वयं भूत्वा द्विजर्षभाः । जनमेजयं तु भिक्षामो यज्ञस्ते न भवेदिति ॥११॥
अपरे त्वब्रुवन्नागास्तत्र पण्डितमानिनः । मन्त्रिणोऽस्य वयं सर्वे भविष्यामः सुसम्मताः ॥१२॥
स नः प्रक्ष्यति सर्वेषु कार्येष्वर्थविनिश्चयम् । तत्र बुद्धिं प्रदास्यामो यथा यज्ञो निवर्त्स्यति ॥१३॥
स नो बहुमतान्राजा बुद्ध्या बुद्धिमतां वरः । यज्ञार्थं प्रक्ष्यति व्यक्तं नेति वक्ष्यामहे वयम् ॥१४॥
दर्शयन्तो बहून्दोषान्प्रेत्य चेह च दारुणान् । हेतुभिः कारणैश्चैव यथा यज्ञे भवेन्न सः ॥१५॥
अथवा य उपाध्यायः क्रतोस्तस्य भविष्यति । सर्पसत्रविधानज्ञो राजकार्यहिते रतः ॥१६॥
तं गत्वा दशतां कश्चिद्भुजंगः स मरिष्यति । तस्मिन्मृते यज्ञकारे क्रतुः स न भविष्यति ॥१७॥
ये चान्ये सर्पसत्रज्ञा भविष्यन्त्यस्य चर्त्विजः । तांश्च सर्वान्दशिष्यामः कृतमेवं भविष्यति ॥१८॥
अपरे त्वब्रुवन्नागा धर्मात्मानो दयालवः । अबुद्धिरेषा भवतां ब्रह्महत्या न शोभनम् ॥१९॥
सम्यक्सद्धर्ममूला वै व्यसने शान्तिरुत्तमा । अधर्मोत्तरता नाम कृत्स्नं व्यापादयेज्जगत् ॥२०॥
अपरे त्वब्रुवन्नागाः समिद्धं जातवेदसम् । वर्षैर्निर्वापयिष्यामो मेघा भूत्वा सविद्युतः ॥२१॥
स्रुग्भाण्डं निशि गत्वा च अपरे भुजगोत्तमाः । प्रमत्तानां हरन्त्वाशु विघ्न एवं भविष्यति ॥२२॥
यज्ञे वा भुजगास्तस्मिन् शतशोऽथ सहस्रशः । जनान्दशन्तु वै सर्वे नैवं त्रासो भविष्यति ॥२३॥

ब्राह्मण बनकर जनमेजय से प्रार्थना करें कि आपका यज्ञ न हो ॥११॥ दूसरे नाग जो अपने को पण्डित समझते थे बोले कि हम लोग राजा जनमेजय के मन्त्री बन जांय और उनके प्रिय हों ॥१२॥ ऐसा होने से वह अपने समस्त कार्यों का निश्चय हम लोगों से पूछेगा। और हम लोग ऐसी सलाह देंगे जिससे यज्ञ न होने पावे ॥१३॥ बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राजा जनमेजय हमलोगों की बुद्धि देखकर आदर करेंगे और यज्ञ के लिए हम लोगों से अवश्य पूछेंगे। उस समय हम लोग यज्ञ करने को मना कर देंगे ॥१४॥ परलोक और इस लोक में यज्ञ के दोषों को हम लोग बतलावेंगे। ब्राह्मण के शाप का अमोघ होना और ब्राह्मण का तिरस्कार करना आदि कारण दिखलाकर हम लोग ऐसा कहेंगे, जिससे वह यज्ञ न हो ॥१५॥ अथवा सर्पयज्ञ की विधि जानने वाला राजा का हितकारी जो कोई उस यज्ञ का उपाध्याय होगा उसको जाकर कोई सांप काट ले जिससे वह मर जायगा और यज्ञ करानेवाले के मरने से वह यज्ञ न होने पावेगा ॥१६, १७॥ और दूसरे सर्पसत्र के जानने वाले जो इसके ऋत्विज होंगे उन सब को भी जाकर हम लोग काटेंगे। इस प्रकार हमारा कार्य सिद्ध होगा ॥१८॥ दूसरे सर्प बोले जो धर्मात्मा और दयालु थे। यह तुम लोगों की दुर्बुद्धि है। ब्रह्महत्या अच्छी नहीं है ॥१९॥ विपत्ति के समय अविकल सद्धर्म के अनुसार शान्ति उत्तम होती है। अर्थात् आपत्ति को धर्मानुकूल ही दूर करने का उपाय करना चाहिए। और विपत्ति के समय अधर्म की राह चलने से समस्त जगत् का नाश हो सकता है ॥२०॥ दूसरे नाग बोले कि जलती हुई आग को बिजली वाले मेघ होकर जल बरसा कर हम लोग बुझा देंगे ॥२१॥ यज्ञ के कर्मचारी जब असावधान रहें तब प्रधान प्रधान सर्प जाकर स्रुवा आदि यज्ञ पात्रों को चुरा लावें। इस तरह यज्ञ में विघ्न हो जायगा ॥२२॥ अथवा सैकड़ों हजारों

अथवा संस्कृतं भोज्यं दूषयन्तु भुजंगमाः । स्वेन मूत्रपुरीषेण सर्वभोज्यविनाशिना ॥२४॥
अपरे त्वब्रुवंस्तत्र ऋत्विजोऽस्य भवामहे । यज्ञविघ्नं करिष्यामो दीयतां दक्षिणा इति॥२५॥
वश्यतां च गतोऽसौ नः करिष्यति यथेप्सितम् । अपरे त्वब्रुवस्तत्र जले प्रक्रीडितं नृपम् ॥२६॥
गृहमानीय बध्नीमः क्रतुरेवं भवेन्न सः । अपरे त्वब्रुवंस्तत्र नागा पंडितमानिनः ॥२७॥
दशामस्तं प्रगृह्याशु कृतमेवं भविष्यति । छिन्नं मूलमनर्थानां मृते तस्मिन् भविष्यति॥२८॥
एषा नो नैष्ठिकी बुद्धिः सर्वेषामीक्षणश्रवः । अथ यन्मन्यसे राजन्द्रुतं तत्संविधीयताम्॥२९॥
इत्युक्त्वा समुदैक्षन्त वासुकिं पन्नगोत्तमम् । वासुकिश्चापि संचिन्त्य तानुवाच भुजंगमान् ॥३०॥
नैषावो नैष्ठिकी बुद्धिर्मताकर्तुं भुजंगमाः । सर्वेषामेव मे बुद्धिः पन्नगानां न रोचते ॥ ३१ ॥
किं तत्र संविधातव्यं भवतां स्याद्धितं तु यत् । श्रेयः प्रसादनं मन्ये कश्यपस्य महात्मनः॥३२॥
ज्ञातिवर्गस्य सौहार्दादात्मनश्च भुजंगमाः । न च जानाति मे बुद्धिः किंचित्कर्तुं वचो हि वः॥३३॥
मया हीदं विधातव्यं भवतां यद्धितं भवेत् । अनेनाहं भृशं तप्ये गुणदोषौ मदाश्रयौ ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि वासुक्यादिमन्त्रेण सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

सर्प उस यज्ञ में जाकर लोगों को काटें । इस प्रकार वहां भय का संचार हो जायगा ॥२३॥ अथवा भोजन के जो पदार्थ बने हों उनको अपने मूत्र और विष्ठा से सर्प दूषित कर दें । ऐसा करने से समस्त अन्न दूषित हो जायंगे । थोड़ा भी किसी के कामलायक न रह जायगा ॥२४॥ दूसरे सर्प बोले कि यज्ञ में हम लोग उसके ऋत्विज हो जायंगे और दक्षिणा मांग कर यज्ञ में विघ्न कर देंगे ॥२५॥ राजा हम लोगों के अधीन रहेगा और जैसा हम लोग चाहेंगे वैसा करेंगे। दूसरे सर्प बोले कि राजा जनमेजय जिस समय जल क्रीड़ा करता रहेगा उस समय उसे घर लाकर हम लोग बांध रखेंगे जिससे यज्ञ न हो सकेगा । अपने को पण्डित समझने वाले दूसरे सर्प बोले कि राजा को पकड़ कर हम लोग काट लेंगे, जिससे यज्ञ न हो सकेगा। राजा के मरने पर समस्त अनर्थों की जड़ ही कट जायगी ॥२६, २७, २८॥ हे ईक्षणश्रव (आंख से सुनने वाले) यही हम लोगों की सलाह है और यह सलाह हम लोगों ने अपनी निष्ठा (विवेचना युक्त विश्वास) से अर्थात् विवेचना युक्त विश्वास से दी है । अब जो आप उचित समझें उसके अनुसार व्यवस्था करें ॥२९॥ ऐसा कहकर वे सभी पन्नग श्रेष्ठ वासुकि की ओर देखने लगे। वासुकि भी विचार कर उन सर्पों से बोले ॥३०॥ सर्पों, आप लोगों की इस नैष्ठिकी बुद्धि से अर्थात् विवेचनायुक्त विश्वास से काम नहीं लिया जा सकता । सभी सर्पों की सलाह मुझे अच्छी नहीं लगी ॥३१॥ क्या करना चाहिए, जिससे आप लोगों का कल्याण हो। मेरी समझ से तो महात्मा कश्यप को प्रसन्न करना ही अच्छा मालूम होता है ॥३२॥ अपने ज्ञातियों के प्रेम तथा अपने प्रेम के कारण हमारी बुद्धि आप लोगों के बतलाये उपायों में से कोई भी उपाय करना नहीं चाहती ॥३३॥ हमें वही करना चाहिए जिससे आप लोगों का कल्याण हो । मैं इससे दुखी हो रहा हूँ, क्यों कि आप लोगों की भलाई बुराई की जिम्मेदारी हम पर ही है ॥३४॥

सप्तत्रिंश अध्याय

—०—

सौतिरुवाच ।

सर्पाणां तु वचः श्रुत्वा सर्वेषामिति चेति च । वासुकेश्च वचः श्रुत्वा एलापत्रोऽब्रवीदिदम् ॥१॥

न स यज्ञो न भविता न स राजा तथाविधः । जनमेजयः पांडवेयो यतोऽस्माकं महद्भयम् ॥२॥

दैवेनोपहतो राजन्यो भवेदिह पूरुषः । स दैवमेवाश्रयते नान्यत्तत्र परायणम् ॥३॥

तदिदं चैवमस्माकं भयं पन्नगसत्तमाः । दैवमेवाश्रयामोऽत्र श्रृणुध्वं च वचो मम ॥४॥

अहं शापे सुमत्सृष्टे समश्रौषं वचस्तदा । मातुरुत्संगमारूढो भयात्पन्नगसत्तमाः ॥५॥

देवानां पन्नगश्रेष्ठास्तीक्ष्णास्तीक्ष्णा इतिप्रभो । पितामहमुपागम्य दुःखार्त्तानां महाद्युते ॥६॥

देवा ऊचुः ।

का हि लब्ध्वा प्रियान्पुत्रान् शपेदेवं पितामह । ऋते कद्रूं तीक्ष्णरूपां देवदेव तवाग्रतः ॥७॥

तथेति च वचस्तस्यास्त्वयाऽप्युक्तं पितामह । एतदिच्छाम विज्ञातुं कारणं यन्न वारिता ॥८॥

ब्रह्मोवाच ।

बहवः पन्नगास्तीक्ष्णा घोररूपा विषोल्बणाः । प्रजानां हितकामोऽहं न च वारितवांस्तदा ॥९॥

ये दंदशूकाः क्षुद्राश्च पापाचारा विषोल्बणाः । तेषां विनाशो भविता न तु ये धर्मचारिणः ॥१०॥

यन्निमित्तं च भविता मोक्षस्तेषां महाभयात् । पन्नगानां निबोधध्वं तस्मिन्काले समागते॥११॥

एलापत्र का भाषण, देवता और ब्रह्मा के संवाद के द्वारा आस्तीक के उत्पन्न होने की कथा।

सौति बोले, सब सर्पों के भिन्न भिन्न प्रकार के वचन तथा वासुकि के वचन सुनकर एलापत्र नाम का सर्प बोला, ॥१॥ यह यज्ञ नहीं होगा ऐसा नहीं है। और न वह पाण्डु पुत्र राजा जनमेजय ही ऐसा है जिसको ऋत्विजों का अभाव है। जिससे हम लोगों को बड़ा भारी भय है ॥२॥ राजन् जो पुरुष देवताओं के द्वारा आपत्ति में फंसा हो उसे देवताओं का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए। उसके लिए दूसरा उपाय नहीं है। हे श्रेष्ठ सर्पों हम लोगों का यह भय भी देवताओं के ही द्वारा हुआ है।३। अतएव हम लोगों को उन्हीं का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। आप लोग हमारी बात सुनें ॥४॥ शाप देने के समय मैं माता के गोद में बैठा था और भय से मैंने वह वचन सुना था ।५। देवताओं ने जो दुख से पीड़ित थे, पितामह के पास जाकर कहा कि स्त्रियां कठोर से भी कठोर होती हैं ॥६॥ देवता बोले, कौन स्त्री प्रिय पुत्रों को पाकर उन्हें शाप देगी। पितामह, कठोर कद्रू को छोड़कर, देव देव उसने आपके सामने पुत्रों को शाप दिया है ॥७॥पितामह आपने भी उसके वचन सुन कर कहा था कि ठीक है। हम लोग जानना चाहते हैं कि आपने क्यों नहीं उसे रोका ॥८॥ ब्रह्मा बोले, अनेक सांप बड़े कठोर भयंकर तथा जहरीले हैं। प्रजा के हित के लिए मैंने कद्रू को नहीं रोका ॥९॥ जो सांप छोटे हैं, थोड़े कारण से भी प्राण लेने वाले हैं, वे बड़े जहरीले और बिना कारण भी हिंसा करने वाले हैं। इस शाप से उन्हीं का नाश होगा। जो धर्मात्मा हैं उनका नाश नहीं होगा ॥१०॥ जिस कारण से धर्मात्मा सर्पों की समय आने पर इस भय से रक्षा होगी, वह तुम लोग सुनो, ॥११॥ यायावर कुल में जरत्कारु नाम से प्रसिद्ध

यायावरकुले धीमान्भविष्यति महानृषिः । जरत्कारुरितिख्यातस्तपस्वी नियतेन्द्रियः ॥१२॥
तस्य पुत्रो जरत्कारोर्भविष्यति तपोधनः । आस्तीको नाम यज्ञं स प्रतिषेत्स्यति तं तदा ।
तत्र मोक्ष्यन्ति भुजगा ये भविष्यंति धार्मिकाः ॥१३॥
देवा ऊचुः ।
स मुनिप्रवरो ब्रह्मन्जरत्कारुर्महातपाः । कस्यां पुत्रं महात्मानं जनयिष्यति वीर्यवान् ॥१४॥
ब्रह्मोवाच ।
सनामायां सनामा स कन्यायां द्विजसत्तमः । अपत्यं वीर्यसम्पन्नं वीर्यवान्जनयिष्यति ॥१५॥
वासुकेः सर्पराजस्य जरत्कारुः स्वसा किल । स तस्यां भविता पुत्रः शापान्नागांश्च मोक्ष्यति १६
एलापत्र उवाच ।
एवमस्त्विति तं देवाः पितामहमथाब्रुवन् । उक्त्वैवं वचनं देवान्विरंचिस्त्रिदिवं ययौ ॥१७॥
सोऽहमेवं प्रपश्यामि वासुके भगिनीं तव । जरत्कारुरिति ख्याता तां तस्मै प्रतिपादय॥१८॥
भैक्षवद्भिक्षमाणाय नागानां भयशान्तये । ऋषये सुव्रतायैतामेष मोक्षः श्रुतो मया ॥१९॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि एलापत्रवाक्ये अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥
सौतिरुवाच ।
एलापत्रवचः श्रुत्वा ते नागा द्विजसत्तम । सर्वे प्रहृष्टमनसः साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥१॥

तपस्वी, जितेन्द्रिय और बुद्धिमान महर्षि होंगे॥ १२ ॥ उस जरत्कारु के पुत्र तपस्वी आस्तीक होंगे और वे ही उस समय यज्ञ को रोकेंगे और इसी से धार्मिक सर्पों की रक्षा होगी ॥१३॥ देवता बोले, ब्रह्मन्, वे मुनिप्रवर, महा तपस्वी वीर्यवान् जरत्कारु किस स्त्री में महात्मा पुत्र को उत्पन्न करेंगे ॥१४॥ ब्रह्मा बोले, ब्राह्मण श्रेष्ठ वीर्यवान् जरत्कारु अपने नाम वाली कन्या में पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करेंगे ॥१५॥ सर्पराज वासुकि की बहन जरत्कारु है, ऐसा सुना गया है । उसी से वह पुत्र उत्पन्न होगा । जो शाप से सर्पों की रक्षा करेगा ॥१६॥ एलापत्र बोला, ठीक है, ऐसा ही हो, इस प्रकार देवताओं ने पितामह से कहा । देवताओं से ऐसा कह कर ब्रह्मा स्वर्ग को चले गये ॥१७॥ वासुकि, मैं तो यही ठीक समझता हूँ कि जरत्कारु नाम की अपनी बहन तुम उस महर्षि को दो ॥१८॥ जिस प्रकार भिक्षार्थी को भीख दी जाती है उसी प्रकार सर्पों का भय दूर करने के लिये व्रतधारी उन ऋषि को तुम अपनी बहन दो । सर्पों के छुटकारे का यही उपाय मैंने सोचा है ॥१९॥

अष्टत्रिंश अध्याय

—o—

एलापत्र के कहने से वासुकि की बहन जरत्कारु की रक्षा ।

सौति बोले, ब्राह्मणश्रेष्ठ, एलापत्र के बचन सुनकर वे समस्त सर्प बहुत प्रसन्न हुए और उसे साधुवाद देने लगे ॥१॥ उस समय से वासुकि जरत्कारु नाम की अपनी बहन को

ततः प्रभृति तां कन्यां वासुकिः पर्यरक्षत । जरत्कारुं स्वसारं वै परं हर्षमवाप च ॥२॥
ततो नातिमहान्कालः समतीत इवाभवत् । अथ देवासुराः सर्वे ममन्थुर्वरुणालयम् ॥३॥
तत्र नेत्रमभून्नागो वासुकिर्बलिनां वरः । समाप्यैव च तत्कर्म पितामहमुपागमन् ॥४॥
देवा वासुकिना सार्धं पितामहमथाब्रुवन् । भगवन् शापभीतोऽयं वासुकिस्तप्यते भृशम् ॥५॥
अस्यैतन्मानसं शल्यं समुद्धर्तुं त्वमर्हसि । जनन्याः शापजं देव ज्ञातीनां हितमिच्छतः ॥६॥
हितोह्ययं सदास्माकं प्रियकारी च नागराट् । प्रसादं कुरु देवेश शमयास्य मनोज्वरम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच ।

मयैव तद्वितीर्णं वै वचनं मनसाऽमराः । एलापत्रेण नागेन यदस्याभिहितं पुरा ॥८॥
तत्करोत्वेष नागेन्द्रः प्राप्तकालं वचः स्वयम् । विनशिष्यन्ति ये पापा न तु ये धर्मचारिणः ॥९॥
उत्पन्नः स जरत्कारुस्तपस्युग्रे रतो द्विजः । तस्यैष भगिनीं काले जरत्कारुं प्रयच्छतु ॥१०॥
एलापत्रेण यत्प्रोक्तं वचनं भुजगेन ह । पन्नगानां हितं देवास्तत्तथा न तदन्यथा ॥११॥

सौतिरुवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु नागेन्द्रः पितामहवचस्तदा । सन्दिश्य पन्नगान्सर्वान्वासुकिः शापमोहितः ॥१२॥
स्वसारमुद्यम्य तदा जरत्कारुमृषिं प्रति । सर्पान्बहूञ्जरत्कारौ नित्ययुक्तान्समादधत् ॥१३॥

जो अभी कन्या थी बड़े यत्न से रखने लगा । और वह बहुत प्रसन्न हुआ ॥२॥ इसके अनन्तर बहुत समय नहीं बीता था कि देवता और असुर मिलकर दोनों ने समुद्र मथन किया ॥३॥ बलीश्रेष्ठ वासुकि इस काम में रस्सी बना था । इस काम को समाप्त करके देवता वासुकि के साथ पितामह के पास गये और वे उनसे बोले, भगवन् यह वासुकि शाप से डरा हुआ है और बड़ा दुखी है ॥४,५॥ इसका यह माता के शाप से उत्पन्न मानसिक दुख आप को दूर करना चाहिए । यह आप के परिवार वालों का भी कल्याण चाहता है ॥६॥ यह नागराज हम लोगों का हित चाहने वाला और प्रिय करने वाला है । देव, आप प्रसन्न हों और इसका मानसिक दुख दूर करें ॥७॥ ब्रह्मा बोले, देवताओं, मैंने ही वह बात अपने मन से पहले कही थी जो एलापत्र नाग ने इससे पहले कहा था ॥८॥ यह नागराज उस काम को स्वयं करे । उसके लिए समय भी आ गया है । उससे पापी सर्पों का नाश होगा, धर्मात्माओं का नहीं ॥९॥ जरत्कारु नाम का ब्राह्मण उत्पन्न हो गया है और उग्रतपस्या कर रहा है । उसको यह जरत्कारु नाम की अपनी बहन दे ॥१०॥ एलापत्र सर्प ने जो वचन कहा है उसी से सर्पों का हित हो सकता है दूसरे से नहीं ॥११॥ सौति बोले, नागराज वासुकि जो शाप से दुखी थे, ब्रह्मा के ये बचन सुन कर सर्पराज वासुकि ने, जो शाप से से मोहित थे सब सर्पों को आज्ञा दी ॥१२॥ अपनी बहन जरत्कारु को जरत्कारु ऋषि के हाथ समर्पित करने की इच्छा से उन्हें ढूंढ़ने के लिए उन्होंने अनेक सर्पों को नियुक्त किया । जो उनकी आज्ञा पालन में सदा लगे रहते थे ॥१३॥ वासुकि ने उन नागों से कहा कि महर्षि जरत्कारु जब

जरत्कारुर्यदा भार्यामिच्छेद्वरयितुं प्रभुः । शीघ्रमेत्य तदाख्येयं तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥१४॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि जरत्कार्वन्वेषणे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।
शौनक उवाच ।
जरत्कारुरितिख्यातो यस्त्वयासूतनन्दन । इच्छामि तदहं श्रोतुं ऋषेस्तस्य महात्मनः ॥१॥
किं कारणं जरत्कारोर्नामैतत्प्रथितं भुवि । जरत्कारुनिरुक्तिं त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥२॥
सौतिरुवाच
जरेति क्षयमाहुर्वै दारुणं कारु संज्ञितम् । शरीरं कारु तस्यासीत्तत्सधीमान् शनैः शनैः ॥३॥
क्षपयामास तीव्रेण तपसेत्यत उच्यते । जरत्कारुरिति ब्रह्मन्वासुकेर्भगिनी तथा ॥४॥
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा शौनकः प्राहसत्तदा । उग्रश्रवसमामन्त्र्य उपपन्नमिति ब्रुवन् ॥५॥
शौनक उवाच
उक्तं नाम यथापूर्वं सर्वं तच्छ्रुतवानहम् । यथा तु जातोह्यास्तीक एतदिच्छामि वेदितुम् ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सूतः प्रोवाच शास्त्रतः ॥६॥
सौतिरुवाच
सन्दिश्य पन्नगान्सर्वान्वासुकिः सुसमाहितः । स्वसारमुद्यम्य तदा जरत्कारुमृषिं प्रति ॥७॥

स्त्री ग्रहण करने की इच्छा प्रकट कर तब तुम लोग शीघ्र आकर मुझे इसकी खबर दो । क्योंकि इससे हमलोगों का कल्याण होगा ॥१४॥

एकोनचत्वारिंश अध्याय ।

—०—

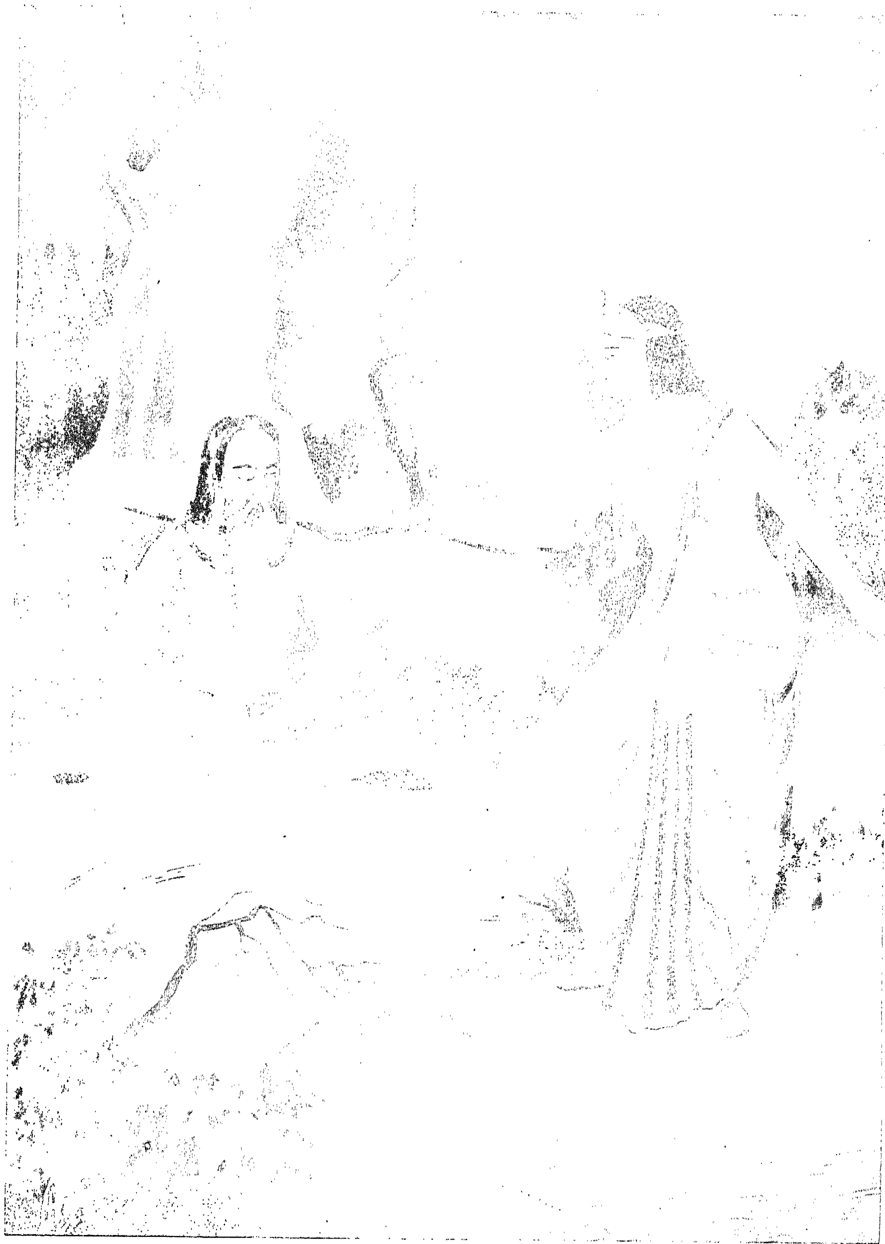
जरत्कारु नाम का अर्थ । आस्तीक के उत्पन्न होने का सौति से शौनक का प्रश्न । परीक्षित का शिकार और शमीक के कंधे पर परीक्षित का मरा सर्प रखना ।

शौनक बोले, सूतनन्दन, आपने प्रसिद्ध जरत्कारु की बात कही है, उस महात्मा ऋषि के सम्बन्ध की बातें मैं सुनना चाहता हूँ ॥१॥ किस कारण से उनका जरत्कारु नाम संसार में प्रसिद्ध हुआ, और जरत्कारु शब्द का अर्थ क्या है यह भी आप ठीक ठीक कहें ॥२॥ सौति बोले, जरत् शब्द का अर्थ है, क्षय, और कारु शब्द का अर्थ है दारुण, भयंकर । उस ऋषि का शरीर कारु था, अर्थात् काम आदि दुर्गणों के उत्पन्न होने के कारण दारुण था, भयंकर था । उस शरीर को उन्होंने तपस्या के द्वारा धीरे धीरे क्षीण किया इस कारण वे जरत्कारु कहे जाते हैं । ब्रह्मन्, वासुकि की बहन का भी जरत्कारु नाम इसी कारण पड़ा है ॥३,४॥ सौति उग्रश्रवा के ऐसा कहने पर शौनक हंसने लगे । उन्होंने उग्रश्रवा को सम्बोधित करके कहा कि ठीक है ॥५॥ शौनक बोले, नाम तथा उसका अर्थ जो तुमने कहा वह मैंने सुना । आस्तीक का जन्म कैसे हुआ वह मैं सुनना चाहता हूँ । शौनक का यह बचन सुनकर सौति ने शास्त्रीय बातें बतलायीं ॥६॥ सौति बोले, समस्त सर्पों को वासुकि ने सावधान हो कर आज्ञा दी कि जरत्कारु ऋषि को हमारी

अथ कालस्य महतः स मुनिः संशितव्रतः । तपस्यभिरतो धीमान्स दारान्नाभ्यकांक्षत ॥८॥
सतूर्ध्व रेतास्तपसि प्रसक्तः स्वाध्यायवानवीतभयः कृतात्मा ।
चचार सर्वां पृथिवीं महात्मा न चापि दारान्मनसाऽप्यकांक्षत ॥९॥
ततोऽपरस्मिन्संप्राप्ते काले कस्मिंश्चिदेव तु । परिक्षिन्नाम राजासीद् ब्रह्मन्कौरववंशजः ॥१०॥
यथा पांडुर्महाबाहुर्धनुर्धरवरो युधि । बभूव मृगयाशीलः पुराऽस्य प्रपितामहः ॥११॥
मृगान्विध्यन्वराहांश्च तरक्षून्महिषांस्तथा । अन्यांश्च विविधान्वन्यांश्चचार पृथिवीपतिः ॥१२॥
स कदाचिन्मृगं विद्ध्वा बाणेनानतपर्वणा । पृष्ठतो धनुरादाय ससार गहने वने ॥१३॥
यथैव भगवान्रुद्रो विद्ध्वा यज्ञ मृगं दिवि । अन्वगच्छद्धनुष्पाणिः पर्यन्वेष्टुमितस्ततः ॥१४॥
न हि तेन मृगो विद्धो जीवनगच्छति वै वने । पूर्वरूपं तु तत्तूर्णं सोऽगात्स्वर्गगतिं प्रति ॥१५॥
परिक्षितो नरेन्द्रस्य विद्धो यन्नष्टवान्मृगः । दूरं चापहृतस्तेन मृगेण स महीपतिः ॥१६॥
परिश्रान्तः पिपासार्त्त आससाद मुनिं वने । गवां प्रचारेष्वासीनं वत्सानां मुखनिःसृतम् ॥१७॥
भूयिष्ठमुपयुंजानं फेनमापिबतां पयः । तमभिद्रुत्य वेगेन स राजा संशितव्रतम् ॥१८॥
अपृच्छद्धनुरुद्यम्य तं मुनिं क्षुच्छ्रमान्वितः । भो भो ब्रह्मन्नहं राजा परीक्षिदभिमन्युजः ॥१९॥

बहन व्याही जाय, इसके लिए तुम लोग उद्योग करो ॥७॥ अनन्तर, प्रसिद्ध व्रतधारी उस मुनि ने तपस्या में रत रहने के कारण स्त्री ग्रहण करने की इच्छा न की ॥८॥ उर्ध्वरेता तपस्या में रत रहनेवाले, अध्ययन करनेवाले, निर्भय और शुद्ध आत्मा वे महात्मा मुनि समस्त पृथिवी में घूम आये । पर मन से भी स्त्री ग्रहण करने की इच्छा उन्होंने न की ॥९॥

अनन्तर, दूसरे किसी समय में कौरव वंश में उत्पन्न परीक्षित नाम के एक राजा हुए ॥१०॥ जिस प्रकार महाबाहु पाण्डु जो युद्ध में श्रेष्ठ धनुर्धारी थे और इन राजा परीक्षित के प्रपितामह थे। वे शिकार को बहुत पसन्द करते थे ॥११॥ मृगों, सूअरों, चीता, भैंसा तथा अन्य बनैले पशुओं को मारते हुए वे राजा विचरण करने लगे ॥१२॥ एक समय छोटी गाठों वाले बाणों से मृग को घायल कर और धनुष ले कर वे गहन वन में उसका पीछा करने लगे ॥१३॥ जिस प्रकार भगवान् रुद्र ने आकाश में यज्ञ मृग को घायल कर उसको ढूंढने के लिए हाथ में धनुष ले कर उसका पीछा किया था ॥१४॥ राजा के द्वारा विद्ध मृग जीता हुआ वन में जा रहा है या नहीं, यह राजा को मालूम न हो सका । पर राजा के शीघ्र ही स्वर्ग प्राप्ति का, उस मृग का दिखाई न पड़ना कारण हो गया । अर्थात् मृग के न दीख पड़ने के कारण ही राजा ने ब्राह्मण का अपमान किया और जिससे उन्हें शाप मिला और उनकी मृत्यु हुई ॥१५॥ राजा परीक्षित द्वारा विद्ध मृग भाग गया और वह मृग राजा को बहुत दूर खींच ले गया ॥१६॥ राजा थके, प्यासे वन में एक मुनि के पास गए वे मुनि गौओं के गोष्ठ (बथान) में रहते थे और माता का दूध पीने के समय बच्चों के मुँह से निकले हुए फेन का वे आहार करते थे । व्रतधारी मुनि के पास जाकर धनुष तान कर भूखे प्यासे राजाने कहा, ब्रह्मन् मैं अभिमन्यु का पुत्र राजा



परीक्षितका शमीक ऋषिके गलेमें मरा सर्प डालना

[चित्रकार—पी० मुकर्जी

मयाविद्धो मृगो नष्टः कच्चितं दृष्टवानसि । स मुनिस्तं तु नोवाच किंचिन्मौनव्रते स्थितः॥२०॥
तस्य स्कन्धे मृतं सर्पं क्रुद्धो राजा समासजत् । समुत्क्षिप्य धनुष्कोट्या स चैनं समुपैक्षत ॥२१॥
न स किंचिदुवाचैनं शुभं वा यदि वाऽशुभम् । स राजा क्रोधमुत्सृज्य व्यथितस्तं तथागतम् ।
दृष्ट्वा जगाम नगरमृषिस्त्वासीत्तथैव सः ॥२२॥
न हि तं राजशार्दूलं क्षमाशीलो महामुनिः । स्वधर्मनिरतं भूपं समाक्षिप्तोऽप्यधर्षयत् ॥२३॥
न हि तं राजशार्दूलस्तथा धर्मपरायणम् । जानाति भरतश्रेष्ठस्तत एनमधर्षयत् ॥२४॥
तरुणस्तस्य पुत्रोऽभूत्तिग्मतेजा महातपाः । शृंगीनाम महाक्रोधो दुष्प्रसादो महाव्रतः ॥२५॥
स देवं परमासीनं सर्वभूतहिते रतम् । ब्रह्माणमुपतस्थे वै काले काले सुसंयतः ॥२६॥
स तेन समनुज्ञातो ब्रह्मणा गृहमेयिवान् । सख्योक्तः क्रीडमानेन स तत्र हसता किल ॥२७॥
संरम्भात्कोपनोऽतीव विषकल्पो मुनेः सुतः । उद्दिश्य पितरं तस्य यच्चोक्तः रोषमहारत् ।
ऋषिपुत्रेण धर्मार्थे कृशेन द्विजसत्तम ॥२८॥ कृश उवाच–
तेजस्विनस्तव पिता तथैव च तपस्विनः । शवं स्कन्धेन वहति मा शृङ्गिन् गर्वितो भव ॥२९॥
व्याहरत्स्वृषिपुत्रेषु मा स्म किंचिद्वचो वद । अस्मद्विधेषु सिद्धेषु ब्रह्मवित्सु तपस्विषु ॥३०॥

परीक्षित हूँ ॥१७,१८,१९,॥ मैंने एक मृग को घायल किया था, क्या आपने उसे देखा है । पर उन मुनि ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया क्योंकि वे मौन व्रत धारण किये हुए थे ॥२०॥ क्रोध करके राजा ने उस मुनि के कंधे पर मरा हुआ सर्प धनुष से उठा कर रख दिया पर मुनि ने इसकी उपेक्षा कर दी ॥२१॥ उन मुनि ने राजा से अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं कहा । इससे राजा को क्रोध होगया वे बहुत दुखी हुए । ऋषि को उस अवस्था में, समाधि की दशा में देखकर राजा अपने नगर में लौट आये । ऋषि ज्यों के त्यों रहे । वे हिले डुले नहीं ॥२२॥ अपने धर्म का पालन करने वाले उस श्रेष्ठ राजा को उनके द्वारा अपमानित होने पर उन क्षमाशील मुनि ने शाप नहीं दिया । उनका कुछ अनिष्ट नहीं किया ॥२३॥ भरत वंश के प्रधान राजश्रेष्ठ राजा परीक्षित उन मुनि को जानते न थे, वे इतने धर्म परायण हैं इसका उन्हें ज्ञान न था, इसीसे उन्होंने उनका अपमान किया था ॥२४॥ उन मुनि के एक जवान बेटा था वह महा तपस्वी और तीक्ष्ण तेजवाला था उसका नाम शृंगी था । वह महा क्रोधी और महा व्रतधारी था । क्रोध करने पर उसका प्रसन्न होना कठिन था ॥२५॥ वे शृंगी ऋषि सब प्राणियों के हितकारी, ब्रह्मा जब सुख पूर्वक बैठते थे तब वे उनके पास समय समय पर नम्रता पूर्वक जाया करते थे ॥२६॥ ब्रह्मा की आज्ञा से वे अपने घर लौट आये थे । खेल में लगे हुए उनके मित्र ने हंस कर उनसे कहा ॥२७॥ मुनिपुत्र शृङ्गी क्रोध के कारण तीखे हो गये थे वे विष के समान हो गये थे । ऋषि पुत्र कृश ने उनके पिता के सम्बन्ध में जो कुछ कहा उससे उन्हें क्रोध हो आया ॥२८॥ कृश बोले, शृंगी तुम तेजस्वी और तपस्वी हो, और तुम्हारे पिता के कन्धे पर मुर्दा रखा हुआ है । अब तुम गर्व न करो ॥२९॥ हम लोगों के समान ब्रह्म

क ते पुरुष मानित्वं क ते वाचस्तथाविधाः । दर्पजाः पितरं द्रष्टा यस्त्वं शवधरं तथा ॥३१॥
पित्रा च तव तत्कर्म नानुरूपमिवात्मनः । कृतं मुनिजन श्रेष्ठ येनाहं भृशदुःखितः ॥३२॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि परिक्षिदुपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥
सौतिरुवाच ।
एवमुक्तः स तेजस्वी शृङ्गी कोपसमन्वितः । मृतधारं गुरुं श्रुत्वा पर्यतप्यत मन्युना ॥१॥
स तं कृशमभिप्रेक्ष्य सूनृतां वाचमुत्सृजन् । अपृच्छत् कथं तातः स मेऽद्य मृतधारकः ॥२॥
कृश उवाच ।
राजा परिक्षिता तात मृगयां परिधावता । अवसक्तः पितुस्तेऽद्य मृतः स्कन्धे भुजंगमः ॥३॥
शृंग्युवाच ।
किं मे पित्रा कृतं तस्य राज्ञोऽनिष्टं दुरात्मनः । ब्रूहि तत्कृशतत्वेन पश्य मे तपसो बलम् ॥४॥
कृश उवाच ।
स राजा मृगयां यातः परिक्षिदभिमन्युजः । ससार मृगमेकाकी विद्धा बाणेन शीघ्रगम् ॥५॥
न चापश्यन्मृगं राजा चरंस्तस्मिन्महावने । पितरं ते स दृष्ट्वैव पप्रच्छानभिभाषिणम् ॥६॥

वेत्ता सिद्ध तपस्वी ऋषिपुत्रों के बातचीत में तुमको कुछ न बोलना चाहिए, दखल न देना चाहिए ॥३०॥ अब तुम्हारा पुरुषार्थ कहां गया, तुम्हारी अहंकार की बातें कहां गयीं अब तो तुम अपने पिता को मुर्दा धारण किये हुए देखोगे ॥३१॥ तुम्हारे पिता ने ऐसा कोई काम न किया था, जिससे उनका ऐसा अपमान हो, यह देख कर मैं बहुत दुखी हूँ ॥३२॥

चत्वारिंश अध्याय ।

—o—

मुनि पुत्र शृङ्गी का राजा परीक्षित को शाप देना ।

सौति बोले—कृश के ऐसा कहने पर वे तेजस्वी मुनि बहुत ही क्रुद्ध हुए। पिता मृतक को धारण कर रहे हैं यह सुन कर वे क्रोध से जलने लगे ॥१॥ कृश की ओर देखकर बहुत ही मधुर बचन से उन्होंने उनसे पूछा। मेरे पिता ने क्यों शव धारण किया है ॥२॥ कृश बोले, भाई, राजा परीक्षित शिकार के लिए घूम रहे थे, उन्होंने ही तुम्हारे पिता के गले में मरा हुआ सर्प लपेट दिया है ॥३॥ शृंगी बोले, उस दुरात्मा राजा का मेरे पिता ने क्या अनिष्ट किया था। कृश, सब बातें मुझसे ठीक ठीक कहो और मेरी तपस्या का बल देखो ॥४॥ कृश बोले, वे अभिमन्यु पुत्र राजा परीक्षित शिकार के लिए आये हुए थे। उन्होंने अकेला ही तेज चलने वाले मृग को बाण से घायल किया ॥५॥ पर राजा ने उस मृग को उस महावन में नहीं देखा, वह कहीं छिप गया। उन्होंने तुम्हारे पिता से पूछा; पर वे तो बोलते न थे, मौन थे ॥६॥

तं स्थाणुभूतं तिष्ठन्तं क्षुत्पिपासाश्रमातुरः । पुनः पुनर्मृगं नष्टं पप्रच्छ पितरं तव ॥७॥
स च मौनव्रतोपेतो नैव तं प्रत्यभाषत । तस्य राजा धनुष्कोट्या सर्पं स्कन्धे समासजत् ८
शृङ्गिंस्तव पिता सोऽपि तथैवास्ते यतव्रतः । सोऽपि राजा स्वनगरं प्रस्थितो गजसाह्वयम् ॥९॥
सौतिरुवाच ।
श्रुत्वैव ऋषिपुत्रस्तु शवं स्कन्धे प्रतिष्ठितम् । कोपसंरक्तनयनः प्रज्वलन्निव मन्युना ॥१०॥
आविष्टः स हि कोपेन शशाप नृपतिं तदा । वार्युपस्पृश्य तेजस्वी क्रोधवेग बलात्कृतः ॥११॥
शृंग्युवाच ।
योऽसौ वृद्धस्य तातस्य तथा कृच्छ्रगतस्य ह । स्कन्धे मृतं समास्राक्षीत्पन्नगं राजकिल्बिषी ॥१२॥
तं पापमतिसंक्रुद्धस्तक्षकः पन्नगेश्वरः । आशीविषस्तिग्मतेजा मद्वाक्यबलचोदितः ॥१३॥
सप्तरात्रादितो नेता यमस्य सदनं प्रति । द्विजानामवमन्तारं कुरूणामयशस्करम् ॥१४॥
सौतिरुवाच ।
इति शप्त्वाऽतिसंक्रुद्धः शृङ्गी पितरमभ्यगात् । आसीनं गोव्रजे तस्मिन्वहन्तं शवपन्नगम् ॥१५॥
स तमालक्ष्य पितरं शृङ्गी स्कन्धगतेन वै । शवेन भुजगेनासीद्भूयः क्रोधसमाकुलः ॥१६॥
दुःखाच्चाश्रूणि मुमुचे पितरं चेदमब्रवीत् । श्रुत्वेमां धर्षणां तात तव तेन दुरात्मना ॥१७॥

तुम्हारे पिता खुन्थ के समान बैठे हुए थे। राजा भूखा प्यासा था। भूले हुए मृग का पता बार बार उन्होंने तुम्हारे पिता से पूछा ॥७॥ पर वे मौनव्रत धारण किये हुए थे, इससे कुछ बोल न सके। इससे उस राजा ने धनुष की नोक से उठाकर मरा हुआ सांप उनके गले पर रख दिया ॥८॥ शृंगी, तुम्हारे व्रतधारी पिता उस पर वैसेही रहे, उन्होंने कुछ कहा सुना नहीं और न वे हिले डुले, वह राजा भी अपने नगर हस्तिनापुर में चला गया ॥९॥ सौति बोले—पिता के कंधे पर मुर्दा रखा हुआ है यह सुनते ही मुनि पुत्र की आंखें क्रोध से लाल हो गयीं, वे क्रोध से मानों जलने लगे ॥१०॥ उस समय क्रुद्ध हो कर उस मुनि पुत्र ने राजा को क्रोध से अधीर होकर और जल से आचमन करके शाप दिया ॥११॥ शृंगी बोले—जिस राजा ने बूढ़े और मौनी मेरे पिता के कन्धे पर मरा हुआ सांप रखा है वह पापी राजा है ॥१२॥ सर्प राज तीक्ष्ण तेजवाला आशीविष (जिसके दांत में विष हो) तक्षक मेरे कहने से उस कुरुवंश के कलंक और ब्राह्मण का तिरस्कार करने वाले राजा को सात रात के भीतर ही यम पुर ले जायगा ॥१३, १४॥ सौति बोले—ऐसा शाप देकर क्रोध में भरे हुए शृंगी ऋषि पिता के पास गये, वे वैसे ही गौओं के रहने के स्थान में बैठे हुए थे, और उनके कंधे पर मरा सांप पड़ा हुआ था ॥१५॥ पिता के कन्धे पर मरा हुआ सांप लिपटा देख कर शृंगी ऋषि को पुनः बड़ा क्रोध आया ॥१६॥ दुःख से वे आंसू बहाने लगे, वे पिता से बोले, दुरात्मा राजा परीक्षित ने तुम्हारा अपमान किया है यह सुनकर मैंने उस राजा को शाप दिया है। वह कुरुकुल कलंक वैसे ही

राज्ञा परिक्षिता कोपादशपं तमहं नृपम्। यथाऽर्हति स एवोग्रं शापं कुरुकुलाधमः॥
सप्तमेऽहनि तं पापं तक्षकः पन्नगोत्तमः॥ १८ ॥
वैवस्वतस्य सदनं नेता परमदारुणम्। इत्यब्रवीत्पिता ब्रह्मंस्तथा कोपसमन्वितम्॥१९॥
शमीक उवाच।
न मे प्रियं कृतं तात नैष धर्मस्तपस्विनाम्। वयं तस्य नरेन्द्रस्य विषये निवसामहे॥२०॥
न्यायतो रक्षितास्तेन तस्य पापं न रोचये। सर्वथा वर्तमानस्य राज्ञो ह्यस्मद्विधैः सदा॥२१॥
क्षन्तव्यं पुत्रधर्मो हि हतो हन्ति न संशयः। यदि राजा न संरक्षेत्पीड़ा नः परमा भवेत्॥२२॥
न शक्नुयाम चरितुं धर्मं पुत्र यथा सुखम्। रक्षमाणा वयं तात राजभिर्धर्मदृष्टिभिः॥२३॥
चरामो विपुलं धर्मं तेषां भागोऽस्ति धर्मतः। सर्वथा वर्तमानस्य राज्ञः क्षन्तव्यमेव हि॥२४॥
परिक्षित्तु विशेषेण यथाऽस्य प्रपितामहः। रक्षत्यस्मांस्तथा राज्ञा रक्षितव्याः प्रजा विभो॥२५॥
तेनेह क्षुधितेनाद्य श्रान्तेन च तपस्विना। अजनता कृतं मन्ये व्रतमेतदिदं मम॥२६॥
अराजके जनपदे दोषा जायन्ति वै सदा। उद्वृत्तं सततं लोकं राजा दंडेन शास्ति वै॥२७॥
दंडात्प्रतिभयं भूयः शान्तिरुत्पद्यते तदा। नोद्विग्नश्चरते धर्मं नोद्विग्नश्चरते क्रियाम्॥२८॥
राज्ञा प्रतिष्ठितो धर्मो धर्मात्स्वर्गः प्रतिष्ठितः। राज्ञो यज्ञक्रियाः सर्वा यज्ञाद्देवाः प्रतिष्ठिताः॥२९॥

उग्र शाप के योग्य भी है। आज के सातवें दिन सर्पराज तक्षक उसे यमपुर ले जायगा। ब्रह्मन्, इस प्रकार क्रोधित पुत्र से पिता बोले॥१७, १८, १९॥ शमीक बोले, बेटा, तुमने यह मेरा प्रिय काम नहीं किया और यह तपस्वियों का धर्म भी नहीं है। हम लोग उस राजा के राज्य में रहते हैं॥२०॥ वह न्याय पूर्वक हम लोगों की रक्षा करता है। यदि वह हम लोगों का कुछ अपराध भी करे, यदि हमारा विरोधाचरण भी करे तौ भी हम उसकी ओर ध्यान नहीं देते॥२१॥ इस कारण पुत्र तुम्हें क्षमा करना चाहिए जो धर्म का हनन करता है, वह हनन किया हुआ धर्म भी उसका नाश कर देता है। यदि राजा हम लोगों की रक्षा न करें तो हम लोगों को बहुत कष्ट हो॥२२॥ पुत्र, सुखपूर्वक हमलोग धर्म का आचरण नहीं कर सकते, यदि धर्म दृष्टि राजा हम लोगों की रक्षा न करे। राजा के द्वारा रक्षित होने पर ही हम लोग विपुल धर्माचरण करते हैं अतएव हम लोगों की तपस्या में धर्मानुसार उनका भी भाग होता है। यदि राजा हम लोगों के साथ इच्छानुसार व्यवहार भी करे तौ भी हम लोगों को चाहिए कि उसे क्षमा ही करें॥२३, २४॥ विशेष कर राजा परीक्षित तो अपने प्रपितामह पाण्डु के समान हम लोगों की रक्षा करता है। राजा को इसी प्रकार प्रजा की रक्षा करनी ही चाहिए॥२५॥ वह विचारा भूखा था, थका था, मैं मौन रहता हूं यह वह जानता न था, इसीलिए उसने ऐसा अपराध किया॥२६॥ राजाहीन देश में अनेक अपराध होते हैं, उभड़े हुए लोगों का शासन राजा सदा दण्ड देकर करता है॥२७॥ दण्ड से प्रजा में भय उत्पन्न होता है पुनः शान्ति होती है। व्याकुलता की दशा में न कोई धर्म कर सकता है और न कोई काम ही कर सकता है॥२८॥ राजा धर्म की स्थापना करता है और धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। राजा ही के कारण यज्ञ आदि सभी क्रियाएँ होती हैं और यज्ञ

देवाद्वृष्टिः प्रवर्तेत वृष्टेरोषधयः स्मृताः । औषधिभ्यो मनुष्याणां धारयन्सततं हितम् ॥३०॥
मनुष्याणां च यो धाता राजा राज्यकरः पुनः । दशश्रोत्रियसमो राजा इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥३१॥
तेनेह क्षुधितेनाद्य श्रान्तेन च तपस्विना । अजानता कृतं मन्ये व्रतमेतदिदं मम ॥३२॥
कस्मादिदं त्वया बाल्यात्सहसा दुष्कृतं कृतम् । न ह्यर्हति नृपः शापमस्मत्तः पुत्र सर्वथा ॥३३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि परिक्षिच्छापे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

शृंग्युवाच ।
यद्येतत्साहसं तात यदि वा दुष्कृतं कृतम् । प्रियं वाऽप्यप्रियं वा ते वागुक्ता न मृषा भवेत् ॥१॥
नैवान्यथेदं भविता पितरेष ब्रवीमिते । नाहं मृषाब्रवीम्येवं स्वैरेष्वपि कुतः शपन् ॥२॥
शमीक उवाच ।
जानाम्युग्रप्रभावं त्वां तात सत्यगिरं तथा । नानृतं चोक्तपूर्वं ते नैतन्मिथ्या भविष्यति ॥३॥
पित्रा पुत्रो वयस्थोऽपि सततं वाच्य एव तु । यथास्याद्गुण संयुक्तः प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥४॥
किं पुनर्बाल एव त्वं तपसा भावितः सदा । वर्धते च प्रभवतां कोपोऽतीव महात्मनाम् ॥५॥

से देवता सुखी होते हैं ॥२७॥ देवताओं के सुखी होने से वृष्टि होती है, वृष्टि से औषधियां उत्पन्न होती हैं और औषधियों से मनुष्यों का सदा कल्याण होता है ॥३०॥ राजा मनुष्यों का धारण करने वाला है और वह इसी से राज्य करता है। अतएव दस श्रोत्रियों के समान एक राजा है यह मनु कहते हैं ॥३१॥
उस विचारे भूखे और थके राजा ने यह किया है और मेरे मौन होने की बात भी उसे मालूम न थी ॥३२॥ पर पुत्र तुमने बिना विचारे लड़कपन से यह बड़ा दुःसाहस कर दिया। उस राजा को हमलोगों को किसी भी दशा में शाप नहीं देना चाहिए ॥३३॥

एकचत्वारिंश अध्याय।

—o—

शृंगी और शमीक का संवाद। शमीक के शिष्य गौरमुख से राजा परिक्षित का संवाद। मंत्रियों के साथ राजा की सलाह। तक्षक और काश्यप का संवाद।

शृंगी बोले, पिता जी, यह मेरा साहस हो या मैंने पाप किया हो, यह आपको प्रियहो या अप्रिय, पर मेरी कही बात झूठी नहीं हो सकती ॥१॥ पिताजी मैं आप से कहता हूँ कि मेरी कही हुई बात झूठी नहीं हो सकती। मैं साधारण बातचीत में भी झूठ नहीं बोलता, फिर शाप देने के समय झूठ कैसे बोल सकता हूँ ॥२॥ शमीक बोले, तुम्हारा प्रभाव उग्र है, तुम सत्यवादी हो यह मैं जानता हूँ। तुमने पहले कभी झूठ नहीं कहा है और तुम्हारी यह बात भी झूठी न होगी ॥३॥ पुत्र बड़ा भी हो जाय तोभी पिता को चाहिए कि वह उसको समझावें उसे उपदेश दे। जिससे पुत्र गुणवान और यशस्वी हो ॥४॥ तुम अभी बालक हो और सदा तपस्या में लगे रहते हो। प्रभावशाली महात्माओं के भी क्रोध बढ़ता है, वे भी बहुत अधिक

सोऽहं पश्यामि वक्तव्यं त्वयि धर्मभृतां वर । पुत्रत्वं बालतां चैव तवावेक्ष्य च साहसम् ॥६॥
स त्वं शमपरो भूत्वा वन्यमाहारमाचरन् । चर क्रोधमिमं हत्वा नैवं धर्मं प्रहास्यसि ॥७॥
क्रोधो हि धर्मं हरति यतीनां दुःख संचितम् । ततो धर्मविहीनानां गतिरिष्टा न विद्यते ॥८॥
शम एव यतीनां हि क्षमिणां सिद्धिकारकः । क्षमावतामयं लोकः परश्चैव क्षमावताम् ॥९॥
तस्माच्चरेथाः सततं क्षमाशीलो जितेन्द्रियः । क्षमया प्राप्स्यसे लोकान्ब्रह्मणः समनंतरान् ॥१०॥
मया तु शममास्थाय यच्छक्यं कर्तुमद्य वै । तत्करिष्याम्यहं तात प्रेषयिष्ये नृपाय वै ॥११॥
मम पुत्रेण शप्तोसि बालेन कृशबुद्धिना । ममेमां धर्षणां त्वत्तः प्रेक्ष्य राजन्नमर्षिणा ॥१२॥
सौतिरुवाच ।
एवमादिश्य शिष्यं स प्रेषयामास सुव्रतः । परिक्षिते नृपतये दयापन्नो महातपः ॥१३॥
संदिश्य कुशलप्रश्नं कार्यं वृत्तान्तमेव च । शिष्यं गौरमुखं नाम शीलवन्तं समाहितम् ॥१४॥
सोऽभिगम्य ततः शीघ्रं नरेन्द्रं कुरुवर्धनम् । विवेश भवनं राज्ञः पूर्वं द्वास्थैर्निवेदितः ॥१५॥
पूजितस्तु नरेन्द्रेण द्विजो गौरमुखस्तदा । आचख्यौ च परिश्रान्तो राज्ञः सर्वमशेषतः॥१६॥
शमीक वचनं घोरं यथोक्तं मन्त्रिसन्निधौ । गौरमुख उवाच ।
शमीको नाम राजेन्द्र वर्तते विषये तव ॥ १७ ॥

क्रोध करते हैं ॥५॥ धार्मिक श्रेष्ठ, तुम मेरे पुत्र हो, बाल हो और साहसी हो, यह देख कर मैं समझता हूँ कि तुमसे कुछ कहना चाहिए, तुम्हें उपदेश देना चाहिए ॥६॥ वनमें उत्पन्न होने वाली वस्तुओं का आहार करके तुम्हें शान्ति के साथ रहना चाहिए । तुम क्रोधका त्याग कर दो इस प्रकार तुम धर्म की हानि न करोगे ॥७॥ दुःख से संचित यतियों के धर्मको क्रोध हर लेता है और जो धर्म हीन हो जाता है उसे उच्च जाति नहीं मिलती ॥८॥ क्षमाशील यतियों को सिद्धि देने वाला शम ही है, इस लोक और परलोक में भी क्षमा शील को सुख होता है ॥९॥ इस कारण क्षमाशील और जितेन्द्रिय हो कर विचरण करो, क्षमा से मनुष्य ब्रह्मलोक के पास के लोकों को पाता है ॥१०॥ शान्ति धारण करके मुझे जो करना चाहिए वह आज करता हूँ । आज मैं राजा के पास मनुष्य भेजता हूँ ॥११॥ बुद्धिहीन और बालक मेरे पुत्र ने तुम्हें शाप दिया है । क्योंकि तुमने मेरा अपमान किया था इसीसे क्रोध करके उसने ऐसा किया है ॥१२॥ सौति बोले, पुत्र से ऐसा कहकर व्रतधारी तपस्वी और दयालु उन मुनिने राजा परिक्षित के पास अपना शिष्य भेजा ॥१३॥ कुशल प्रश्न तथा काम की बातों का सन्देश देकर गौरमुख नामक शीलवान और सावधान शिष्य को मुनिने भेजा ॥१४॥ वह शिष्य कुरुवंश की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले राजा के पास शीघ्र ही पहुंचा और द्वारपालों से अपने आने का समाचार राजा को भिजवाकर वह राज भवन में गया ॥१५॥ राजाने ब्राह्मण गौरमुख का पूजा की । उसने राजा से सब बातें बिना थके हुए कहीं ॥१६॥ गौरमुख ने शमीक की वे भयंकर बातें सुनायी जो वह पहले मंत्रियों को सुना चुका था । गौरमुख बोला राजेन्द्र, शमीक नाम के ऋषि तुम्हारे राज्य में रहते हैं ॥१७॥

ऋषिः परमधर्मात्मा दान्तः शान्तो महातपाः । तस्य त्वया नरव्याघ्र सर्पः प्राणैर्वियोजितः॥१८॥
अवसक्तो धनुष्कोट्या स्कन्धे मौनान्वितस्य च । क्षान्तवांस्तव तत्कर्म पुत्रस्तस्य न चक्षमे॥१९॥
तेन शप्तोऽसि राजेन्द्र पितुरज्ञातमद्य वै । तक्षकः सप्तरात्रेण मृत्युस्तव भविष्यति ॥२०॥
तत्र रक्षां कुरुष्वेति पुनः पुनरथाऽब्रवीत् । तदन्यथा न शक्यं च कर्तुं केनचिदप्युत ॥२१॥
नहि शक्नोति तं यंतुं पुत्रं कोपसमन्वितम् । ततोऽहं प्रेषितस्तेन तव राजन्हितार्थिना ॥२२॥
सौतिरुवाच
इति श्रुत्वा वचो घोरं स राजा कुरुनन्दनः । पर्यतप्यत तत्पापं कृत्वा राजा महातपाः ॥२३॥
तं च मौनव्रतं श्रुत्वा वने मुनिवरं तदा । भूय एवाभवद्राजा शोक संतप्तमानसः ॥२४॥
अनुक्रोशात्मतां तस्य शमीकस्यावधार्य च । पर्यतप्यत भूयोऽपि कृत्वा तत्किल्विषं मुनेः ॥२५॥
नहि मृत्युं तथा राजा श्रुत्वा वै सोऽन्वतप्यत । अशोचदमरप्रख्यो यथा कृत्वेह कर्म तत् ॥२६॥
ततस्तं प्रेषयामास राजा गौरमुखं तदा । भूयः प्रसादं भगवान् करोत्विह ममेति वै ॥२७॥
तस्मिंश्च गतमात्रेऽथ राजा गौरमुखे तदा । मंत्रिभिर्मन्त्रयामास सह संविग्नमानसः ॥२८॥
संमन्त्र्य मन्त्रिभिश्चैव स तथा मन्त्रतत्त्ववित् । प्रासादं कारयामास एकस्तंभं सुरक्षितम् ॥२९॥
रक्षां च विदधे तत्र भिषजश्चौषधानि च । ब्राह्मणान् मन्त्रसिद्धांश्च सर्वतो वै न्ययोजयत् ॥३०॥

वे बड़े धर्मात्मा जितेन्द्रिय, शान्त और तपस्वी हैं। राजेन्द्र, उनके गले में मरा हुआ सर्प धनुष की नोक से उठा कर तुमने लपेट दिया था वे मुनि उस समय मौनी थे। आपके इस काम को मुनि ने क्षमा कर दिया था, पर पुत्र ने क्षमा नहीं की ॥१८,१९॥ पिता के अनजान में ही उन्होंने तुम्हें शाप दिया है कि सातवीं रात को तक्षक तुमको काटेगा और इससे तुम्हारी मृत्यु होगी ॥२०॥ इससे आप अपनी रक्षा का प्रबन्ध करें, यह बात मुनि ने बार बार कही है। इसको कोई भी उलट नहीं सकता ॥२१॥ वे मुनि अपने क्रोधी पुत्र को समझा न सके उसे रोक न सके, अब आपके कल्याण की इच्छा से उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है ॥२२॥ सौति बोले, इस भयंकर संवाद को सुन कर कुरुवंशी राजा परीक्षित जो महातपस्वी थे अपने पहले के पाप के लिए दुःखी हुए ॥२३॥ उस समय बन में वे मुनि मौनी थे यह सुनकर राजा का मन शोक से बहुत ही दुखी हुआ ॥२४॥ शमीक ऋषि की दयालुता का परिचय पाकर तथा उनके विषय में अपने किये पाप का स्मरण कर राजा और दुखी हुए ॥२५॥ अपनी मृत्यु होने के संवाद से राजा को उतना कष्ट नहीं हुआ जितना कि देवतुल्य राजा को अपने उस कर्म से हुआ ॥२६॥ राजा ने गौरमुख को मुनि के पास लौटा दिया और कहलवाया कि भगवान मुनि मुझ पर पुनः प्रसन्न हों ॥२७॥ गौरमुख के जाने पर राजा ने शोक से व्याकुल मन से मंत्रियों से परामर्श किया ॥२८॥ मंत्रियों से परामर्श करके मन्त्र के तत्व जानने वाले राजा ने एक खम्भे वाली अटारी बनवायी जिसकी रक्षा चारों ओर से की गयी अर्थात् नीचे एक मोटा खम्भा बनवाकर उसपर अटारी बनवायी गयी ॥२९॥ उसकी रक्षा के लिए वैद्यों ने स्थान स्थान पर औषधियां

राजकार्याणि तत्रस्थः सर्वाण्येवाकरोच्च सः। मन्त्रिभिः सह धर्मज्ञः समन्तात्परिरक्षितः ॥३१॥
न चैनं कश्चिदारूढं लभते राजसत्तमम्। वातोऽपि निश्चरंस्तत्र प्रवेशे विनिवार्यते ॥३२॥
प्राप्ते च दिवसे तस्मिन्सप्तमे द्विजसत्तमः। काश्यपोऽभ्यागमद्विद्वांस्तं राजानं चिकित्सितुम् ॥३३॥
श्रुतं हि तेन तदभूद्यथा तं राजसत्तमम्। तक्षकः पन्नगश्रेष्ठो नेष्यते यमसादनम् ॥३४॥
तं दष्टं पन्नगेन्द्रेण करिष्येऽहमपज्वरम्। तत्र मेऽर्थश्च धर्मश्च भवितेति विचिन्तयन् ॥३५॥
तं ददर्श स नागेन्द्रस्तक्षकः काश्यपं पथि। गच्छन्तमेकमनसं द्विजो भूत्वा वयोऽतिगः ॥३६॥
तमब्रवीत्पन्नगेन्द्रः काश्यपं मुनिपुंगवम्। क्व भवांस्त्वरितो याति किंच कार्यं चिकीर्षति ॥३७॥

काश्यप उवाच

नृपं कुरुकुलोत्पन्नं परीक्षितमरिन्दमम्। तक्षकः पन्नगश्रेष्ठोस्तेजसाद्य प्रधक्ष्यति ॥३८॥
तं दष्टं पन्नगेन्द्रेण तेनाग्निसमतेजसम्। पांडवानां कुलकरं राजानममितौजसम्।
गच्छामि त्वरितं सौम्य सद्यः कर्तुमपज्वरम् ॥३९॥

तक्षक उवाच

अहं स तक्षकोब्रह्मंस्तं धक्ष्यामि महीपतिम्। निवर्तस्व न शक्तस्त्वं मया दष्टं चिकित्सितुम् ॥४०॥

रखीं और मन्त्रसिद्ध ब्राह्मण उसकी रक्षा के लिए नियुक्त किये गये ॥३०॥ इस प्रकार चारों ओर से रक्षित होकर वह धर्मात्मा राजा समस्त राजकार्य वहीं रहकर करने लगे ॥३१॥ उस भवन में बैठे हुए राजा को कोई भी नहीं पा सकता था कोई उन तक नहीं पहुंच सकता था वायु भी यदि वहां घुसने का प्रयत्न करे तो वह रोक दी जाती थी ॥३२॥ सातवें दिनके उपस्थित होने पर द्विज श्रेष्ठ विद्वान् काश्यप उन राजा की चिकित्सा करने के लिए वहां आये ॥३३॥ काश्यप ने यह सुन रखा था कि राजश्रेष्ठ परीक्षित को सर्पराज तक्षक यमपुर ले जायगा ॥३४॥ तक्षक के डसने पर मैं राजा को निरोगकर दूंगा, विष उतार दूंगा और वहां, मुझे धन भी मिलेगा धर्म भी होगा यह सोचते हुए वे आये थे ॥३५॥ नागराज तक्षक ने मार्ग में काश्यप को देखा, वे वृद्ध ब्राह्मण एकचित्त होकर जा रहे थे ॥३६॥
मुनि श्रेष्ठ काश्यप से वह सर्पराज बोला, आप शीघ्रता पूर्वक कहां जा रहे हैं और क्या करना चाहते हैं ॥३७॥ काश्यप बोले, शत्रु को दमन करने वाले कुरुवंशी राजा परीक्षित को सर्पराज तक्षक अपने तेजसे आज जलावेगा ॥३८॥ उस सर्पराज के डसने पर अग्नि के समान तेजस्वी पाण्डवों के वंशधर अमित तेजस्वी राजा को सौम्य, मैं शीघ्र निरोग करने के लिए जा रहा हूं ॥३९॥ तक्षक बोला, राजन् मैं ही वह तक्षक हूँ मैं तो उस राजा को जलाऊंगा। तुम लौट जाओ, मेरे डसे हुए की चिकित्सा तुम नहीं कर सकते ॥४०॥ काश्यप बोले, मैं जाकर तुम्हारे डसे

काश्यप उवाच

अहं तं नृपतिं गत्वा त्वया दष्टमपज्वरम्। करिष्यामीति मे बुद्धिर्विद्याबलसमन्विता ॥४१॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि काश्यपागमने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।

तक्षक उवाच

यदि दष्टं मयेह त्वं शक्तः किंचिच्चिकित्सितुम्। ततो वृक्षं मया दष्टमिमं जीवय काश्यप ॥१॥

परं मन्त्रबलं यत्ते तद्दर्शय यतस्व च। न्यग्रोधमेनं धक्ष्यामि पश्यतस्ते द्विजोत्तम ॥२॥

काश्यप उवाच

दश नागेन्द्र वृक्षं त्वं यद्येतदभिमन्यसे। अहमेनं त्वया दष्टं जीवयिष्ये भुजंगम ॥३॥

सौतिरुवाच

एवमुक्तः स नागेन्द्रः काश्यपेन महात्मना। अदशद्वृक्षमभ्येत्य न्यग्रोधं पन्नगोत्तमः ॥४॥

स वृक्षस्तेन दष्टस्तु पन्नगेन महात्मना। आशीविषविषोपेतः प्रजज्वाल समन्ततः ॥५॥

तं दग्ध्वा स नगं नागः काश्यपं पुनरब्रवीत्। कुरु यत्नं द्विजश्रेष्ठ जीवयैनं वनस्पतिम् ॥६॥

सौतिरुवाच

भस्मीभूतं ततो वृक्षं पन्नगेन्द्रस्य तेजसा। भस्म सर्वं समाहृत्य काश्यपो वाक्यमब्रवीत् ॥७॥

हुए उस राजा को नीरोग करूंगा, ऐसा मेरा निश्चय है और इसके लिए मेरी विद्या मुझे बल देगी ॥४१॥

द्विचत्वारिंश अध्याय।

—o—

तक्षक के काटे वृक्ष को काश्यप का जिलाना और तक्षक से धन लेकर लौट जाना। परिक्षित को सर्प का काटना।

तक्षक बोला—यदि तुम मेरे डसे हुए किसी की चिकित्सा कर सकते हो तो काश्यप, मैं इस वृक्ष को डसता हूं तुम इसकी चिकित्सा करो ॥१॥ जो तुम्हारा श्रेष्ठ मन्त्र बल हो वह दिखाओ, प्रयत्न करो, द्विजोत्तम तुम्हारे सामने मैं इस वट वृक्ष को जलाता हूं ॥२॥ काश्यप बोले, सर्पराज, यदि तुम्हें ऐसा अभिमान है तो इस वृक्ष को डसो, तुम्हारे डसने पर मैं इस वृक्ष को जिला दूंगा ॥३॥ सौति बोले, महात्मा काश्यप के ऐसा कहने पर वह नागराज वटवृक्ष के पास गया और उसने उसे काटा ॥४॥ महात्मा, उस सर्प के काटने पर वह वृक्ष सर्प विष से युक्त होने के कारण चारों ओर से जलने लगा ॥५॥ उस वृक्ष को जलाकर वह सर्प पुनः काश्यप से बोला, द्विजश्रेष्ठ, प्रयत्न करो, इस वनस्पति को जिलाओ ॥६॥ सौति बोले, सर्पराज के तेज से जले हुए उस वृक्ष की समस्त भस्म एकत्र कर के काश्यप पुनः बोले॥७॥ सर्पराज, इस वनस्पति पर मेरी

विद्याबलं पन्नगेन्द्र पश्य मेऽद्य नृपतौ । अहं संजीवयाम्येनं पश्यतस्ते भुजंगम ॥८॥
ततः स भगवान् विद्वान्काश्यपो द्विजसत्तमः । भस्मराशीकृतं वृक्षं विद्यया समजीवयत् ॥९॥
अंकुरं कृतवांस्तत्र ततः पर्णद्वयान्वितम् । पलाशिनं शाखिनं च तथा विटपिनं पुनः ॥१०॥
तं दृष्ट्वा जीवितं वृक्षं काश्यपेन महात्मना । उवाच तक्षको ब्रह्मन्नेतदत्यद्भुतं त्वयि ॥११॥
द्विजेन्द्र यद्विषं हन्या मम वा मद्विधस्य वा । कं त्वमर्थमभिप्रेप्सुर्यासि तत्र तपोधन ॥१२॥
यत्तेऽभिलषितं प्राप्तुं फलं तस्मान्नृपोत्तमात् । अहमेव प्रदास्यामि तत्ते यद्यपि दुर्लभम् ॥१३॥
विप्रशापाभिभूते च क्षीणायुषि नराधिपे । घटमानस्य ते विप्र सिद्धिः संशयिता भवेत् ॥१४॥
ततो यशः प्रदीप्तं ते त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । निरंशुरिव घर्मांशुरंतर्धानमितो व्रजेत् ॥१५॥

काश्यप उवाच

धनार्थी याम्यहं तत्र तन्मे देहि भुजंगम । ततोऽहं विनिवर्तिष्ये स्वापतेयं प्रगृह्य वै ॥१६॥

तक्षक उवाच

यावद्धनं प्रार्थयसे तस्माद्राज्ञस्ततोऽधिकम् । अहमेव प्रदास्यामि निवर्तस्व द्विजोत्तम ॥१७॥

सौतिरुवाच

तक्षकस्य वचः श्रुत्वा काश्यपो द्विजसत्तमः । प्रदध्यौ सुमहातेजा राजानं प्रति बुद्धिमान ॥१८॥
दिव्यज्ञानः स तेजस्वी ज्ञात्वा तं नृपतिं तदा । क्षीणायुषं पांडवेयमपावर्तत काश्यपः ॥१९॥

विद्या का बल देखो । भुजंगम, तुम्हारे देखते देखते ही मैं इसे जिलाता हूं ॥८॥ अनन्तर विद्वान् ब्राह्मण श्रेष्ठ भगवान् काश्यप ने विद्या के बल राशी की हुई भस्म को जिलाकर वृक्ष बना दिया ॥९॥ पहले उसमें अंकुर निकला पुनः दो पत्ते निकले, पुनः बहुत से पत्ते छोटी छोटी शाखाएँ पुनः बड़ी बड़ी शाखाएँ निकलीं ॥१०॥ महात्मा काश्यप के द्वारा उस वृक्ष को जीवित देखकर तक्षक बोला, ब्रह्मन् सचमुच तुम ने बड़ा अद्भुत काम किया ॥११॥ द्विजेन्द्र, मेरा या मेरे समान किसी अन्य सर्प का विष जो तुम दूर करते हो, वह किस धन की प्राप्ति के लिए, तुम परीक्षित से कितना धन पाने की इच्छा से वहां जा रहे हो ॥१२॥ उस राजा से जो फल तुम पाना चाहते हो उससे तुम जितना धन चाहते हो, वह तुमको मैं ही देता हूँ, और जो मैं तुमको दूँगा, वह तुम्हारे लिए दुर्लभ है ॥१३॥ राजा पर ब्राह्मण का शाप पड़ा है उसकी आयु भी क्षीण हो गयी है । उसकी चिकित्सा करोगे तो तुम्हारी सिद्धि में सन्देह रहेगा । सम्भव है राजा को तुम न जिला सको ॥१४॥ तब त्रिलोक में फैला हुआ उज्वल तुम्हारा यश किरण रहित सूर्य के समान निस्तेज हो जायगा ॥१५॥ काश्यप बोले, धन के लिए मैं वहां जा रहा हूँ सर्प तुम मुझे धन दो, धन लेकर मैं लौट जाऊँगा ॥१६॥ तक्षक बोला, उस राजा से तुम जितना धन चाहते हो उससे अधिक मैं ही तुमको देता हूँ । द्विजोत्तम, तुम लौट जाओ ॥१७॥ सौति बोले, तक्षक के वचन सुनकर ब्राह्मण श्रेष्ठ तेजस्वी और बुद्धिमान् काश्यप ने राजा के भविष्य के विषय में ध्यान किया ॥१८॥ दिव्यज्ञानी और तेजस्वी उस ब्राह्मण ने जाना कि पाण्डुवंशी यह राजा क्षीणायु

लब्ध्वा वित्तं मुनिवरस्तक्षकाद्यथावदीप्सितम्। निवृत्ते काश्यपे तस्मिन् समयेन महात्मनि ॥२०॥
जगाम तक्षकस्तूर्णं नगरं नागसाह्वयम्। अथ शुश्राव गच्छन् स तक्षको जगतीपतिम् ॥२१॥
मन्त्रैर्गदैर्विषहरै रक्ष्यमाणं प्रयत्नतः। सौतिरुवाच।
स चिन्तयामास तदा मायायोगेन पार्थिवः ॥२२॥
मया वंचयितव्योऽसौ क उपायो भवेदिति। ततस्तापसरूपेण प्राहिणोत्स भुजंगमान् ॥२३॥
फलदर्भोदकं गृह्य राज्ञे नागोऽथ तक्षकः। तक्षक उवाच।
गच्छध्वं यूयमव्यग्रा राजानां कार्यवत्तया ॥२४॥
फलपुष्पोदकं नाम प्रतिग्राहयितुं नृपम्। सौतिरुवाच।
ते तक्षकसमादिष्टास्तथा चक्रुर्भुजंगमाः ॥२५॥
उपनिन्युस्तथा राज्ञे दर्भानापः फलानि च। तच्च सर्वं स राजेन्द्रः प्रतिजग्राह वीर्यवान्॥२६॥
कृत्वा तेषां च कार्याणि गम्यतामित्युवाच तान्। गतेषु तेषु नागेषु तापसच्छद्मरूपिषु ॥२७॥
अमात्यान् सुहृदश्चैव प्रोवाच स नराधिपः। भक्षयन्तु भवन्तो वै स्वादूनीमानि सर्वशः ॥२८॥
तापसैरुपनीतानि फलानि सहिता मया। ततो राजा ससचिवः फलान्यादातुमैच्छत ॥२९॥
विधिना संप्रयुक्तो वै ऋषिवाक्येन तेन तु। यस्मिन्नेव फले नागस्तमेवाभक्षयत्स्वयम् ॥३०॥
ततो भक्षयतस्तस्य फलात्कृमिरभूदणुः। ह्रस्वकः कृष्णनयनस्ताम्रवर्णोऽथ शौनकः ॥३१॥

है, इसकी आयु समाप्त हो चुकी, यह जानकर वे लौट गये ॥१९॥ जितना चाहते थे उतना धन तक्षक से लेकर मुनिवर काश्यप के अपनी शर्त के अनुसार लौट जाने पर तक्षक शीघ्र ही हस्तिनापुर नगर में गया। जाते हुए उसने सुना कि यन्त्रों से तथा विषहर ओषधियों से राजा की रक्षा बड़े प्रयत्न से की जा रही है। सौति बोले, तक्षक ने विचार किया कि छल के द्वारा मुझे राजा को ठगना चाहिए। पर ठगने के लिए कौन सा उपाय होगा। पुनः उसने तपस्वियों का रूप बनाकर सर्पों को, फल कुश तथा जल लेकर भेजा। तक्षक बोला, तुम लोग निर्भय होकर कामके बहाने से राजा के पास जाओ ॥२०,२१,२२,२३,२४॥ राजा को फल फूल और जल भेंट करने के लिए तुम लोग जाओ। सौति बोले, सर्पों ने तक्षक की आज्ञा के अनुसार ही किया ॥२५॥ वे राजा के पास कुश जल और फल लेकर गये। पराक्रमी राजा ने वह सब ले लिया ॥२६॥ उनके काम करके, राजा ने उन लोगों से कहा कि आप लोग जायं, तपस्वीरूप में छिपे उन सर्पों के चले जाने पर सचिवों और मित्रों से राजा बोले, मेरे साथ इन फलों को आप लोग खायं, ये तपस्वियों के लाये फल, बड़े स्वादिष्ठ हैं। अनन्तर राजा ने सचिवों के साथ उन फलों को खाने की इच्छा की ॥२७.२८,२९॥ ब्राह्मण के शाप के कारण भाग्य से प्रेरित हो कर राजा ने वह फल स्वयं खाने के लिए लिया, जिसमें तक्षक सर्प था ॥३०॥ राजा जब फल खा रहे थे, तब उससे एक छोटा कीड़ा निकला। शौनक, वह भद्दे ढंग का छोटा था, उसकी आँखें काली थीं और वह लाल था ॥३१॥ उसे उठा कर राजा सचिवों से बोले, सूर्यास्त

स तं गृह्य नृपश्रेष्ठः सचिवानिदमब्रवीत् । अस्तमभ्येति सविता विषादद्य न मे भयम् ॥३२॥
सत्यवागस्तु स मुनिः कृमिर्मां दशतामयम् । तक्षको नाम भूत्वा वै तथा परिहृतं भवेत् ॥३३॥
ते चैनमन्ववर्तन्त मन्त्रिणः कालचोदिताः । एवमुक्त्वा स राजेन्द्रो ग्रीवायां सन्निवेश्य ह ३४
कृमिकं प्राहसत्तूर्णं मुमूर्षुर्नष्टचेतनः । प्रहसन्नेव भोगेन तक्षकेण त्ववेष्ट्यत ॥३५॥
तस्मात फलाद्विनिष्क्रम्य यत्तद्राज्ञे निवेदितम् । वेष्टयित्वा च वेगेन विनद्य च महास्वनम् ॥
अदशत्पृथिवीपालं तक्षकः पन्नगेश्वरः ॥३६॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि तक्षकदंशे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

सौतिरुवाच ।
ते तथा मन्त्रिणो दृष्ट्वा भोगेन परिवेष्टितम् । विषण्णवदनाः सर्वे रुरुदुर्भृशदुःखिताः ॥१॥
तं तु नादं ततः श्रुत्वा मन्त्रिणस्ते प्रदुद्रुवुः । अपश्यन्त तथा यान्तमाकाशे नागमद्भुतम् ॥२॥
सीमन्तमिव कुर्वाणं नभसः पद्मवर्चसम् । तक्षकं पन्नगश्रेष्ठं भृशं शोकपरायणाः ॥ ३ ॥
ततस्तु ते तद्गृहमग्निना वृतं प्रदीप्यमानं विषजेन भोगिनः ।
भयात्परित्यज्य दिशः प्रपेदिरे पपात राजाऽशनिताडितो यथा ॥ ४ ॥

हो रहा है, अब मुझे विष से कोई भय न रहा ॥३२॥ उन मुनि का भी वचन सत्य हो, यह कीड़ा ही तक्षक सर्प हो कर मुझे काटे, इस प्रकार ब्राह्मण के अपमान का प्रायश्चित भी हो जायगा ॥३३॥ मन्त्री भी काल से मोहित हो गये थे, उनकी भी बुद्धि मारी गयी थी, उन्होंने राजा की हां में हां मिलायी। ऐसा कहकर राजा ने उस कीड़े को अपने गले पर रखा ॥३४॥ राजा मरने वाला था, उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, वह कीड़े को देख कर हंसने लगा। वह हंस रहा था उसी समय तक्षक उसके गले से लिपट गया ॥३५॥ उस फल से—जो फल राजा की भेंट में आया था, निकल कर और राजा के गले से लिपट कर सर्पराज तक्षक ने बड़े जोर का फुफकार छोड़ा और राजा को काट लिया ॥३६॥ त्रिचत्वारिंश अध्याय।

—o—

परीक्षित का मरना और उनके पुत्र जनमेजय का राज्याभिषेक। वपुष्टमा के साथ जनमेजय का विवाह।

सौति बोले, राजा को सांप से उस प्रकार वेष्टित देखकर मन्त्रियों का मुँह म्लान हो गया, वे बड़े दुःखी होकर रोने लगे ॥१॥ तक्षक का फुफकार सुनकर वे मन्त्री वहां से भाग गये और उन लोगोंने आकाश में अद्भुत सर्प को जाते देखा ॥२॥ सर्पराज तक्षक कमलके समान लाल था, वह आकाश में सिन्दूर की रेखा के समान मालूम पड़ता था। उसको देखकर मन्त्री बहुत दुःखी हुए ॥३॥ अनन्तर उस घर को आग ने चारों ओर से घेर लिया। सर्प के विष की आग से वह जलने लगा, मन्त्री उस घर को छोड़ कर डर से भाग गये, वह घर गिर गया, मानों

ततो नृपे तक्षकतेजसा हते प्रयुज्य सर्वाः परलोकसत्क्रियाः ।
शुचिर्द्विजो राजपुरोहितस्तदा तथैव ते तस्य नृपस्य मन्त्रिणः ॥ ५ ॥
नृपं शिशुं तस्य सुतं प्रचक्रिरे समेत्य सर्वे पुरवासिनो जनाः ।
नृपं यमाहुस्तममित्रघातिनं कुरुप्रवीरं जनमेजयं जनाः ॥ ६ ॥
स बाल एवार्यमतिर्नृपोत्तमः सहैव तैर्मन्त्रिपुरोहितैस्तदा ।
शशास राज्यं कुरुपुंगवाग्रजो यथाऽस्य वीरः प्रपितामहस्तथा ॥ ७ ॥
ततस्तु राजानममित्रतापनं समीक्ष्य ते तस्य नृपस्य मन्त्रिणः ।
सुवर्णवर्माणमुपेत्य काशिपं वपुष्टमार्थं वरयांप्रचक्रमुः ॥ ८ ॥
ततः स राजा प्रददौ वपुष्टमां कुरुप्रवीराय परीक्ष्य धर्मतः ।
स चापि तां प्राप्य मुदायुतोऽभवन्नचान्यनारीषु मनो दधे क्वचित् ॥ ९ ॥
सरःसु फुल्लेषु वनेषु चैव प्रसन्नचेता विजहार वीर्यवान् ।
तथा स राजन्यवरो विजह्निवान् यथोर्वशीं प्राप्य पुरा पुरूरवाः ॥ १० ॥
वपुष्टमा चापि वरं पतिव्रता प्रतीतरूपा समवाप्य भूपतिम् ।
भावेन रामा रमयांबभूव विहार कालेष्ववरोधसुन्दरी ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि जनमेजयराज्याभिषेके चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥

उसको बिजली ने मारा हो ॥४॥ तक्षक के तेज से राजा के मरने पर शुद्ध ब्राह्मण तथा राज पुरोहित ने तथा उस राजा के मन्त्री ने परलोक की सब क्रियाएँ कीं ॥५॥ समस्त पुरवासी एकत्र हो कर छोटे राजपुत्र को उन लोगों ने राजा बनाया, जिन शत्रुधारी कुरुवंश में श्रेष्ठ राजा को लोग जनमेजय कहते हैं ॥६॥ वह राजश्रेष्ठ बाल्यावस्था में ही श्रेष्ठ बुद्धिवाला था, वह मन्त्रियों और पुरोहितों के साथ राज्य का शासन करने लगा, जिस प्रकार उसके प्रपितामह राजा युधिष्ठिर राज्य शासन करते थे ॥७॥ शत्रुओं को जलानेवाले उस राजा की उचित अवस्था जानकर उस राजा के मन्त्रियों ने, काशिराज सुवर्णवर्मा से वपुष्टमा नाम की उनकी कन्या राजा के लिए मांगी ॥८॥ उस काशिराज ने धर्मानुसार परीक्षा करके उस राजा के लिए वपुष्टमा दी, वे राजा भी उसको पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहीं दूसरी स्त्रियों पर मन नहीं लगाया ॥९॥ विकसित तालाबों और वन में प्रसन्न चित्त पराक्रमी राजा ने विहार किया। उन राजश्रेष्ठ ने उस प्रकार विहार किया जिस प्रकार उर्वशी को पाकर राजा पुरुरवाने विहार किया था ॥१०॥ पतिव्रता वपुष्टमा भी राजा को पति पाकर प्रसन्न होगयी। विहार के समय अन्तःपुर की वह सुन्दरी प्रेम से उनको रमण कराने लगी ॥११॥ चतुः चत्वारिंश अध्याय।

—०—

सौतिरुवाच ।

एतस्मिन्नेव काले तु जरत्कारुर्महातपाः । चचार पृथिवीं कृत्स्नां यत्र सायंगृहो मुनिः ॥१॥
चरन्दीक्षां महातेजा दुश्चरामकृतात्मभिः । तीर्थेष्वाप्लवनं कृत्वा पुण्येषु विचचार ह ॥२॥
वायुभक्षो निराहारः शुष्यन्नहरहर्मुनिः । स ददर्श पितॄन्गर्ते लंबमानानधोमुखान् ॥३॥
एकतन्त्ववशिष्टं वै वीरणस्तम्बमाश्रितान् । तं तन्तुं च शनैराखुमाददानं बिलेशयम् ॥४॥
निराहारान्कृशान्दीनान्गर्ते स्वत्राणमिच्छतः । उपसृत्य स तान्दीनान्दीनरूपोऽभ्यभाषत ॥५॥
के भवन्तोऽवलम्बन्ते वीरणस्तंम्बमाश्रिताः । दुर्बलंखादितैर्मूलैराखुना बिलवासिना ॥६॥
वीरणस्तम्बके मूलं यदप्येकमिहस्थितम् । तदप्ययं शनैराखुरादत्ते दशनैः शितैः ॥७॥
छेत्स्यतेऽल्पावशिष्टत्वादेतदप्यचिरादिव । ततस्तु पतितारोऽत्र गर्ते व्यक्तमधोमुखाः ॥८॥
तस्य मे दुःखमुत्पन्नं दृष्ट्वा युष्मानधोमुखान् । कृच्छ्रमापदमापन्नान्प्रियं किं करवाणि वः ॥९॥
तपसोऽस्य चतुर्थेन तृतीयेनाथ वा पुनः । अर्धेन वापि निस्तर्तुमापदं ब्रूत मा चिरम् ॥१०॥
अथवाऽपि समग्रेण तरन्तु तपसा मम । भवन्तः सर्व एवेह काममेवं विधीयताम् ॥११॥

जरत्कारु का अपने पितरों का दर्शन और उनसे बात चीत ।

इसी समय महातपस्वी जरत्कारु मुनि समस्त पृथिवी का भ्रमण कर रहे थे, जहां सन्ध्या हो जाती थी वहीं ठहर जाते थे, अर्थात् उनका कोई वासस्थान न था ॥१॥ वे महातेजस्वी अपने व्रत का पालन करते थे, जिसका पालन करना उसके लिए कठिन था जिसका मन वश में न हो। पवित्र तीर्थों में विचरण करते हुए वे विचरण करते थे ॥२॥ वे मुनि निराहार रहते थे, केवल वायु का आहार करते थे इससे दिन दिन वे सूखते जाते थे, उन्होंने पितरों को नीचे सिर किए एक गढ़े में लटकते देखा ॥३॥ वे सब किसी पौधे के तने को पकड़ कर लटक रहे थे। उस तने को भी बिल में रहने वाला एक चूहा धीरे धीरे कुतर रहा था ॥४॥ आहार के बिना वे दुर्बल और दुखी थे और गढ़े से अपनी रक्षा के लिए चिन्तित थे। उन दुखियों के पास दुखी होकर जरत्कारु गये और उनसे बोले ॥५॥ इस तने को पकड़ कर लटकने वाले आप लोग कौन हैं। यह तना तो बहुत ही कमजोर है। बिल में रहने वाले चूहे ने इसकी जड़ खा ली है ॥६॥ यद्यपि इस पौधे की जड़ का एक तना पृथिवी में लगा हुआ है, उसको भी चूहा अपने तीखे दांतों से धीरे धीरे काट रहा है ॥७॥ अब थोड़ा ही बाकी रह गया है उसको भी यह शीघ्र ही काट देगा, उस समय आप लोग अवश्य ही औंधे मुँह इस गढ़े में गिर जांयगे ॥८॥ आप लोगों को यहां औंधे मुँह लटकते देखकर मुझे बहुत ही दुख हुआ है। आप लोग बड़ी आपत्ति में फंसे हुए हैं, क्या मैं आप लोगों का कोई प्रिय काम कर सकता हूँ ॥९॥ मेरी तपस्या के चौथे तीसरे अथवा आधे हिस्से से यदि आप लोगों की इस आपत्ति से रक्षा हो सकती हो तो आप लोग शीघ्र ही कहें ॥१०॥ अथवा मेरी समूची तपस्य से आप लोग इस उत्पत्ति से पार हो जांय, तो आप लोग निश्चय ही ऐसा करें ॥११॥ पितर बोले, आप ब्रह्मचारी कौन हैं, जो हम लोगों

पितर ऊचुः

वृद्धो भवान् ब्रह्मचारी यो नस्त्रातुमिहेच्छसि । नतु विप्राग्र्य तपसा शक्यते तद्व्यपोहितुम् ॥१२॥
अस्ति नस्तात त तपसः फलं प्रवदतांवर । सन्तानप्रक्षयाद्ब्रह्मन्पताम निरयेऽशुचौ ॥१३॥
सन्तानं हि परो धर्म एवमाह पितामहः । लम्बतामिह नस्तात न ज्ञानं प्रतिभाति वै ॥१४॥
येन त्वां नाभिजानीमो लोकेविख्यातपौरुषम् । वृद्धो भवान्महाभागो यो नःशोच्यान्सुदुःखितान्१५
शोचते चैव कारुण्याच्छृणु ये वै वयं द्विज । यायावरा नाम वयमृषयः संशितव्रताः ॥१६॥
लोकात्पुण्यादिह भ्रष्टाःसन्तानप्रक्षायान्मुने । प्रनष्टं नस्तपस्तीव्रं नहि नस्तंतुरस्ति वै ॥१७॥
अस्ति त्वेकोऽद्य नस्तंतुःसोपि नास्ति यथा तथा । मन्दभाग्योऽल्पभाग्यानां तप एकं समास्थितः१८
जरत्कारुरितिख्यातो वेदवेदांगपारगः । नियतात्मा महात्मा च सुव्रतः सुमहातपाः ॥१९॥
तेन स्म तपसो लोभात्कृच्छ्रमापादिता वयम् । न तस्य भार्या पुत्रो वा बान्धवो वाऽस्ति कश्चन२०॥
तस्माल्लम्बामहे गर्त्ते नष्टसंज्ञा ह्यनाथवत् । स वक्तव्यस्त्वया दृष्टो ह्यस्माकं नाथवत्तया ॥२१॥
पितरस्तेऽवलम्बन्ते गर्त्ते दीना अधोमुखाः । साधु दारान्कुरुष्वेति प्रजामुत्पादयेति च ॥२२॥
कुलतन्तुर्हि नः शिष्टस्त्वमेवैकस्तपोधन । यस्त्वं पश्यसि नो ब्रह्मन्वीरणस्तम्बमाश्रितान् ॥२३॥

की रक्षा करना चाहते हैं । ब्राह्मण श्रेष्ठ, पर यह दुःख तपस्या से नहीं हटाया जा सकता ॥१२॥ भाई, सुन्दर बोलने वाले, तपस्या का फल हम लोगों को भी है पर हम लोग तो संतान के अभाव से इस अपवित्र नरक में गिर रहे हैं ॥१३॥ पितामह ने सन्तान को ही परम धर्म बतलाया है । लटकने के कारण हम लोगों को कुछ मालूम नहीं है, पहचानने की शक्ति नहीं ॥१४॥ जिससे प्रसिद्ध पुरुषार्थी आप को नहीं पहचान रहे हैं । आप वृद्ध हैं, अतएव दुःखी और शोचनीय हमलोगों के लिए दया से शोक कर रहे हैं । हम लोग कौन हैं यह आप सुनें । हम लोग प्रसिद्ध व्रतधारी यायावर नाम के ऋषि हैं ॥१५-१६॥ मुने, सन्तान के अभाव से पवित्र लोकों से गिर कर हम लोग यहां आये हैं । हम लोगों की तीव्र तपस्या नष्ट हो गयी, कोई भी अवलम्ब—सूत्र नहीं रह गया ॥१७॥ अब केवल एक अवलम्ब है पर वह भी नहीं के बराबर है । अभागी हम लोगों का वह सहारा भी बड़ा मूर्ख है, वह केवल तपस्या ही करता है ॥१८॥ वह वेद वेदाङ्गों का ज्ञाता है, उसका नाम जरत्कारु है । वह महात्मा व्रतधारी महातपस्वी और मन पर अधिकार रखने वाला है ॥१९॥ उसी ने तपस्या के लोभ से हम लोगों को संकट में डाल रखा है । उसकी न स्त्री है, न पुत्र है, और न कोई बन्धु ही है ॥२०॥ इसी कारण हम लोग बेहोश होकर अनाथ के समान इस गढ़े में लटक रहे हैं । यदि वह तुमको कहीं दीख पड़े तो उससे कहना । वही हम लोगों का रक्षक है, वही हमारा उद्धार कर सकता है ॥२१॥ तुम्हारे पितर दुखी हैं, वे औंधे मुँह गढ़े में लटक रहे हैं । अच्छा हो कि तुम सुशीला और सुन्दरी स्त्री से व्याह करो और पुत्र उत्पन्न करो ॥२२॥ तपोधन, वही अब तक कुल सूत्र हम लोगों का रह गया है । जिसको तुम इस पौधे के तने के रूप में देख रहे हो ॥२३॥ वही हम लोगों के कुलका

ाकं कुलस्तम्ब आस्ते स्वकुलवर्धनः। यानि पश्यसि वै ब्रह्मन्मूलानीहास्य वीरुधः॥२४॥
[illegible] कालेन परिभक्षिताः। यत्त्वेतत्पश्यसि ब्रह्मन्मूलमस्यार्धभक्षितम् ॥२५॥
म्बामहे गर्ते सोऽप्येकस्तप आस्थितः। यमाखुं पश्यसि ब्रह्मन्काल एष महाबलः॥२६॥
तपोरतं मन्दं शनैः क्षपयते तुदन्। जरत्कारुं तपोलब्धं मन्दात्मानमचेतसम् ॥२७॥
नस्तत्तपस्तस्य तारयिष्यति सत्तम। छिन्नमूलान्परिभ्रष्टान्कालोपहतचेतसः॥२८॥
विष्टान्पश्[illegible]था दुष्कृतिनस्तथा। अस्मासु पतितेष्वत्र सह सर्वैः सबान्धवैः॥२९॥
कालेन सोऽप्यत्र गन्ता वै नरकं ततः। तपो वाऽप्यथ वा यज्ञो यच्चान्यत्पावनं महत्॥३०॥
परं तात न सन्तत्या समं मतम्। स तात दृष्ट्वा ब्रूयास्तं जरत्कारुं तपोधन ॥३१॥
टमिदं चात्र त्वयाऽऽख्येयमशेषतः। यथा दारान्प्रकुर्यात्स पुत्रानुत्पादयेद्यथा ॥३२॥
ांस्त्वयावाच्यः सोऽस्माकं नाथवत्तया। बान्धवानां हितस्येह यथा चात्मकुलं तथा॥३३॥
बन्धुमिवास्माकमनुशोचसि सत्तम। श्रोतुमिच्छाम सर्वेषां को भवानिह तिष्ठति ॥३४॥

ीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि जरत्कारुपितृदर्शने पंचचत्वारिंशोऽध्यायः।

ब है, वही कुल बढ़ाने वाला है। इस पौधे की जो जड़ के अनेक तने देख रहे हो, वे हमारे ब थे, हमारे वंशज थे, उन्हें काल ने नष्ट कर दिया। ब्रह्मन्, जो इस पौधे की जड़ में एक ख रहे हो जिसका आधा खाया हुआ है। जिसके सहारे हम लोग गढ़े में लटक रहे हैं। क वही है, और वह भी तपस्या में लगा है। जो तुम यह चूहा देख रहे हो वह महाबली है ॥२४-२५-२६॥ महाबली काल तपस्या में रत और तपस्या के लोभी, मूर्ख अज्ञानी जरत्कारु रे धीरे काट कर नष्ट कर रहा है ॥२७॥ श्रेष्ठ, उसकी बुद्धि काल से मारी गयी है, इस नष्ट होने पर जब हम लोग मरेंगे तब उसकी तपस्या हमारा उद्धार नहीं कर सकेगी ॥२८॥ जेस तरह पापी नीचे की ओर जाते हैं नरकगामी होते हैं, उसी तरह हम लोग भी नीचे हैं। अन्य बांधवों के साथ हम लोगों के इस नरक में गिरने पर काल के मुँह में पड़कर नरक में जायगा। तपस्या हो अथवा और जो कोई बड़े तथा पवित्रकाम हों वे सब पुत्र के नही हैं यह सज्जनों का मत है ॥२९-३०-३१॥ जैसा तुमने यहां देखा है वह सब उससे कहना ारह वह ब्याह करे और पुत्र उत्पन्न करे वैसा तुम उससे कहना, क्योंकि वही हम लोगों ाक है। तुम हमारे बन्धुओं में कौन हो, तुम तो अपने कुल के समान मालूम होते हो। बन्धु के समान तुम हम लोगों के लिए दुःख कर रहे हो। आप कौन हैं हम लोग आप रिचय जानना चाहते हैं ॥३२-३३-३४॥

पंच चत्वारिंश अध्याय।

—०—

सौतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा जरत्कारुर्भृशं शोकपरायणः । उवाच तान्पितॄन्दुःखाद्बाष्पसन्दिग्धया गिरा ॥१॥

जरत्कारुरुवाच

मम पूर्वे भवन्तो वै पितरः स पितामहाः । तद्ब्रूत यन्मया कार्यं भवतां प्रियकाम्यया ॥२॥

अहमेव जरत्कारुः किल्बिषी भवतां सुतः । ते दंडं धारयत मे दुष्कृतेरकृतात्मनः ॥३॥

पितर ऊचुः

पुत्र दिष्ट्याऽसि सम्प्राप्त इमं देशं यदृच्छया । किमर्थं च त्वया ब्रह्मन्न कृतो दार संग्रहः ॥४॥

जरत्कारुरुवाचः

ममायं पितरो नित्यं हृद्यर्थः परिवर्त्तते । ऊर्ध्वरेताः शरीरं वै प्रापयेयममुत्र वै ॥५॥

न दारान्वै करिष्येऽहमिति मे भावितं मनः । एवं दृष्ट्वा तु भवतः शकुन्तानिवलंबतः ॥६॥

मया निवर्त्तिता बुद्धि ब्रह्मचर्यात्पितामहाः । करिष्ये वः प्रियं कामं निवेक्ष्येऽहमसंशयम् ॥७॥

सनाम्नीं यद्यहं कन्यामुपलप्स्ये कदाचन । भविष्यति च या काचिद्भैक्ष्यवत्स्वयमुद्यता ॥८॥

प्रतिग्रहीता तामस्मि न भरेयं च यामहम् । एवंविधमहं कुर्यां निवेशं प्राप्नुयां यदि ।

अन्यथा न करिष्येऽहं सत्यमेतत्पितामहाः ॥९॥

तत्र चोतपत्स्यते जन्तुर्भवतां तारणाय वै । शाश्वताश्चाव्ययाश्चैव तिष्ठन्तु पितरो मम ॥१०॥

पितरों से बातचीत के अनन्तर जरत्कारु का स्त्री ढूंढना ।

सौति बोले—जरत्कारु बहुत दुःखी हुआ, दुःख से उसका गला भर आया, वह अस्फुट स्वर में पितरों से बोला ॥१॥ जरत्कारु बोला, आप सब मेरे पूर्वज पिता और पितामह हैं। इस कारण आप लोग बतलावें कि आपका प्रिय करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए । मैं ही पापी आप लोगों का पुत्र जरत्कारु हूँ । मुझ पापी और मूर्ख को आप लोग दण्ड दें ॥३॥ पितर बोले, पुत्र यह प्रसन्नता की बात है कि अकस्मात् घूमते हुए तुम इधर की ओर चले आये। ब्रह्मन्, किस कारण से तुमने व्याह नहीं किया ॥४॥ जरत्कारु बोला, पितरों, मेरे हृदय में यह विचार सदा घूमता रहता था कि अपने शरीर को ऊर्ध्वरेता बनाकर इसे मैं स्वर्गलोक में ले जाऊँगा ॥५॥ मैंने अपने मन में यह निश्चय किया था कि मैं व्याह न करूँगा । पर पितामहों, पक्षी के समान आप लोगों को लटकते देखकर मेरी बुद्धि ब्रह्मचर्य से पलट गयी । ब्रह्मचर्य की ओर से मेरा विचार बदल गया । अब निश्चय मैं आप लोगों का प्रिय करूंगा, निःसन्देह व्याह करूंगा, ॥६-७॥ यदि मुझे कोई कन्या मेरे नामवाली कभी मिल जायगी और भिक्षा के समान स्वयं आकर मेरे सामने उपस्थित होगी ॥८॥ उसको मैं ग्रहण करूंगा पर उसके भरण का भार मैं न लूंगा, यदि ये सब बातें कहीं मिल गयीं तब मैं व्याह करूंगा । यदि ऐसा संयोग न घटा तो पितामहों, मैं व्याह न करूंगा, यह बात सत्य है ॥९॥ आप लोगों का उद्धार करने के लिए उस स्त्री में एक जीव उत्पन्न होगा ॥१०॥ सौति बोले—पितरों से ऐसा कह कर वे पुनः पृथिवी का परिभ्रमण

ःवाच

त्वा तु स पितृंश्चचार पृथिवीं मुनिः । न च स्म लभते भार्यां वृद्धोऽयमिति शौनक ॥११॥

र्वेदनादन्कः पितृभिश्चोदितस्तथा। तदाऽरण्यं स गत्वोच्चैश्चुक्रोश भृश दुःखितः ॥१२॥

ण्यगतः प्राज्ञः पितृणां हितकाम्यया । उवाच कन्यां याचामि तिस्रो वाचः शनैरिमाः॥१३॥

भूतानि संतीह स्थावराणि चराणि च । अन्तर्हितानि वा यानि तानि शृण्वंतु मे वचः॥१४॥

पसि वर्तन्तं पितरश्चोदयन्ति माम् । निविशस्वेति दुःखार्ताः सन्तानस्य चिकीर्षया॥१५॥

ायाखिलां भूमिं कन्याभैक्ष्यं चरामि भोः। दरिद्रो दुःखशीलश्च पितृभिः सन्नियोजितः॥१६॥

कन्यास्ति भूतस्य ये मयेह प्रकीर्तिताः । ते मे कन्यां प्रयच्छन्तु चरतः सर्वतो दिशम्॥१७॥

न्या सनाम्नी या भैक्ष्यवच्चोदिता भवेत् । भरेयं चैव यां नाहं तां मे कन्यां प्रयच्छत॥१८॥

पन्नगा ये वै जरत्कारौ समाहिताः । तामादाय प्रवृत्तिं ते वासुकेः प्रत्यवेदयन् ॥१९॥

श्रुत्वा स नागेन्द्रस्तां कन्यां समलंकृताम् । प्रगृह्यारण्यमगमत्समीपं तस्य पन्नगः ॥२०॥

ां भैक्ष्यवत्कन्यां प्रादात्तस्मै महात्मने । नागेन्द्रो वासुकिर्ब्रह्मन्न स तां प्रत्यगृह्णत ॥२१॥

ामेति वै मत्वा भरणे चाविचारिते । मोक्षभावे स्थितश्चापि द्वन्द्वभूतः परिग्रहे ॥२२॥

लगें। शौनक, वे वृद्ध हो गये थे इस कारण उनको कोई स्त्री नहीं मिली ॥११॥ पितरों के कहने पर और स्त्री के न मिलने पर जब वे बहुत दुःखी हुए तब वे वन में जाकर रोने १२॥ पितरों की हित कामना से प्रेरित होकर जरत्कारु ने वन में जाकर तीन बार धीरे धीरे के "मैं कन्या चाहता हूं" ॥१३॥ यहां जो प्राणी हों, स्थावर या जंगम, या छिपे हुए, वे मेरे सुनें ॥१४॥ मैं उग्र तपस्या कर रहा था पर पितर मुझे ब्याह करके पुत्र उत्पन्न करने के प्रेरित कर रहे हैं ॥१५॥ मैं दरिद्र और दुखी हूं और पितरों से प्रेरित होकर ब्याह करने ए समस्त पृथिवी में कन्या की भिक्षा मांगता फिरता हूं ॥१६॥ जिनकी गणना मैंने की में किसी प्राणी के पास यदि कन्या हो, वे चारों ओर भ्रमण करने वाले मुझको कन्या ७॥ जो कन्या मेरे नामवाली हो, भिक्षा के समान बुलाकर दी गयी हो, और जिसके का भार मुझ पर न हो वैसी कन्या तुम लोग मुझे दो ॥१८॥

अनन्तर वे सर्प जो जरत्कारु का पता लगाने के लिए सावधान घूम रहे थे उन लोगों समाचार जाकर वासुकि से कहा ॥१९॥ उनके वचन सुनकर सर्पराज वासुकि कन्या को त करके और साथ लेकर वन में जरत्कारु के पास गये ॥२०॥ वहां उस महात्मा को भिक्षा मान वह कन्या सर्पराज वासुकि ने दी। पर ब्रह्मन्, जरत्कारु ने कन्या को ग्रहण नहीं ॥२१॥ क्योंकि उन्होंने समझा था कि इसका नाम मेरा नहीं है और उसके लिए भोजन देगा इसका भी निर्णय नहीं हुआ था। ब्याह करने की उनकी प्रबल इच्छा भी नहीं थी, वे

ततो नाम स कन्यायाः पप्रच्छ भृगुनन्दन । वासुकिं भरणं चास्या न कुर्यामित्युवाच ह ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि वासुकिजरत्कारुसमागमे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

सौतिरुवाच ।

वासुकिस्त्वब्रवीद्वाक्यं जरत्कारुमृषिं तदा । सनाम्नी तव कन्येयं स्वसा मे तपसान्विता ॥१॥
भरिष्यामि च ते भार्यां प्रतीच्छेमां द्विजोत्तम । रक्षणं च करिष्येऽस्याः सर्वशक्त्या तपोधन ॥
त्वदर्थं रक्ष्यते चैषा मया मुनिवरोत्तम ॥ २ ॥ ऋषिरुवाच ।
न भरिष्येऽहमेतां वै एष मे समयः कृतः । अप्रियं च न कर्तव्यं कृते चैनां त्यजाम्यहम् ॥३॥

सौतिरुवाच ।

प्रतिश्रुते तु नागेन भरिष्ये भगिनीमिति । जरत्कारुस्तदा वेश्म भुजगस्य जगाम ह ॥४॥
तत्र मन्त्रविदांश्रेष्ठस्तपोवृद्धो महाव्रतः । जग्राह पाणिं धर्मात्मा विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥ ५ ॥
ततो वासगृहं रम्यं पन्नगेन्द्रस्य सम्मतम् । जगाम भार्यामादाय स्तूयमानो महर्षिभिः ॥६॥
शयनं तत्र संक्लृप्तं स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम् । तत्र भार्यासहायो वै जरत्कारुरुवास ह ॥७॥
स तत्र समयं चक्रे भार्यया सह सत्तमः । विप्रियं मे न कर्तव्यं न च वाच्यं कदाचन ॥८॥

तो मोक्ष चाहने वाले थे ॥२२॥ भृगुनन्दन, अनन्तर उन्होंने उस कन्या का नाम पूछा, और इसको खाना पीना मैं न दूँगा यह भी उन्होंने वासुकि से कहा, ॥२३॥ षट्चत्वारिंश अध्याय

—o—

जरत्कारु का ब्याह, गर्भाधान और शर्त तोड़ने के कारण क्रोध करके मुनि का तपस्या के लिए वन जाना।

जरत्कारु ऋषि से वासुकि बोले, इसका नाम भी तुम्हारा ही नाम है। यह कन्या मेरी बहन है और तपस्विनी है॥ तुम इसको ग्रहण करो, इसको खाना पीना मैं दूंगा। तपोधन, मैं अपनी समस्त शक्ति से इसकी रक्षा करूँगा । मुनिवरोत्तम, तुम्हारे लिए ही मैंने यह कन्या रख छोड़ी थी॥ २ ॥ जरत्कारु बोले, मैं इसका भरण पोषण न करूँगा, यह मेरी शर्त है, यह मेरा अप्रिय कोई काम न करेगी, यदि करेगी तो मैं इसको छोड़ दूंगा ॥३॥ सौति बोले, जब वासुकि ने यह प्रतिज्ञा की कि मैं अपनी बहिन को भोजनाच्छादन दूँगा तब जरत्कारु वासुकि के घर गये ॥४॥ वहां मन्त्र वेत्ताओं में श्रेष्ठ तपस्वी श्रेष्ठ महाव्रती धर्मात्मा, जरत्कारु ने विधि और मन्त्र के साथ उसका पाणिग्रहण किया ॥५॥ अनन्तर सर्पराज के प्रिय और रमणीय घर में वे स्त्री के साथ गये, उस समय महर्षियों ने इनकी स्तुति की ॥६॥ वहां उनके लिए पलंग बिछा हुआ था उस पर बहुमूल्य बिछौना बिछा था वहीं स्त्री के साथ जरत्कारु रहने लगे ॥७॥ वहां उन्होंने स्त्री से यह शर्त की। मेरा कोई अप्रिय काम न करना और न अप्रिय बात कहना ॥८॥ यदि तुमने मेरा अप्रिय काम किया, या अप्रिय बात

त्यजेयं विप्रिये च त्वां कृते वासं च ते गृहे । एतद्गृहाण वचनं मया यत्समुदीरितम् ॥९॥
ततः परमसंविग्ना स्वसा नागपतेस्तदा । अतिदुःखान्विता वाक्यं तमुवाचैवमस्त्विति ॥१०॥
तथैव सा च भर्तारं दुःखशीलमुपाचरत् । उपायैः श्वेतकाकीयैः प्रियकामा यशस्विनी॥११॥
ऋतुकाले ततः स्नाता कदाचिद्वासुकेः स्वसा । भर्तारं वै यथान्यायमुपतस्थे महामुनिम् ॥१२॥
तत्र तस्याः समभवद्गर्भो ज्वलनसन्निभः । अतीवतेजसा युक्तो वैश्वानरसमद्युतिः ॥१३॥
शुक्लपक्षे यथा सोमो व्यवर्धत तथैव सः । ततः कतिपयाहस्सु जरत्कारुर्महायशाः ॥१४॥
उत्संगेऽस्याःशिरः कृत्वा सुष्वाप परिखिन्नवत् । तस्मिंश्च सुप्ते विप्रेन्द्रे सवितास्तमियाद्गिरिम् ॥१५
अह्नः परिक्षये ब्रह्मंस्ततः साऽचिन्तयत्तदा । वासुकेर्भगिनी भीता धर्मलोपान्मनस्विनी ॥१६॥
किंनु मे सुकृतं भूयाद्भर्तुरुत्थापनं न वा । दुःखशीलो हि धर्मात्मा कथं नास्यापराध्नुयाम् ॥१७॥
कोपो वा धर्मशीलस्य धर्मलोपोऽथवा पुनः । धर्मलोपो गरीयान्वै स्यादित्यत्राकरोन्मतिम् ॥१८॥
उत्थापयिष्ये यद्येनं ध्रुवं कोपं करिष्यति । धर्मलोपो भवेदस्य सन्ध्यातिक्रमणे ध्रुवम् ॥१९॥

कही तो मैं तुम्हें और तुम्हारे घर रहना छोड़ दूँगा । यह जो मैंने तुमसे कहा है इस वचन को तुम मान लो ॥९॥ बहुत ही व्याकुल और दुखी हो कर नागराज की बहिन जरत्कारु ने उनकी बात मान ली ॥१०॥ अनन्तर वह दुःखदायी स्वभाव वाले पति की सेवा उनके अनुकूल उपायों से करने लगी । वह यशस्विनी पति का प्रिय करना चाहती थी* ॥११॥ अनन्तर ऋतु काल में स्नान के अनन्तर वासुकि की बहन नियमानुसार महामुनि अपने पति के पास गयी ॥१२॥ वहां उसने अग्नि के समान तेजस्वी गर्भधारण किया । वह गर्भ बड़ा ही तेजस्वी था, अग्नि के समान प्रकाशमान था ॥१३॥ जिस प्रकार शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है उसी प्रकार वह गर्भ भी बढ़ने लगा । अनन्तर कई दिनों के बाद यशस्वी जरत्कारु स्त्री के गोद में सिर रख कर थके हुए के समान सो गये । उस ब्राह्मण के सोने पर सूर्य अस्त होगये ॥१४,१५॥ ब्रह्मन्, जब दिन समाप्त होने लगा तब मनस्विनी वासुकि की बहन धर्मलोप होने के भयसे सोचने लगी ॥१६॥ मेरे लिये पति का उठाना या न उठाना इनमें क्या अच्छा होगा । ये धर्मात्मा सदा दुःख उठाया करते हैं यदि इनको न उठाऊँ तो क्या इनके सामने मैं अपराधिनी न होऊँगी ॥१७॥ धर्मशील पति को यदि मैं उठाऊँ तो वे क्रोध करेंगे, न उठाऊँ तो उनका धर्मलोप होगा । सोच विचार कर उसने धर्म लोप को ही बड़ा समझा । उसने धर्मलोप न होने देने का निश्चय किया ॥१८॥ यदि न उठाऊँ तो सन्ध्या का समय बीत जाने से अवश्य ही इनका धर्म लोप होगा ॥१९॥ मनमें

*संस्कृत में "श्वेतकाकीय" शब्द आया है । जिसका अर्थ है कुत्ते के समान, हिरन के समान और कौए के समान । कुत्ता चौकन्ना होकर सोता है वैसे ही वह सोती थी, हिरन सर्वदा सावधान रहता है, थोड़े खटका से भी वह चौंक उठता है । और कुत्ता इशारे समझता है । इन तीनों के गुणों का अभ्यास करके वह अपने पति की सेवा करती थी । कुछ लोग कहते हैं । श्वेत काक बगला को कहते हैं । वर्षा काल में बगली ही बगला का पालन करती है । उसी प्रकार स्त्री ही पति का पालन करने लगी ।



सूर्यास्तके समय पतिको सोते देख जरत्कारु पत्नीका चिन्तित होना

[चित्रकार—पी० मुकर्जी

इति निश्चित्य मनसा जरत्कारुर्भुजंगमा । तमृषिं दीप्ततपसं ज्वालानलसमोपमम् ॥२०॥
उवाचेदं वचः श्लक्ष्णं ततो मधुरभाषिणी । उत्तिष्ठ त्वं महाभाग सूर्योऽस्तमपगच्छति ॥२१॥
सन्ध्यामुपास्व भगवन्नपः स्पृष्ट्वा यतव्रतः । प्रादुष्कृताग्निहोत्रोऽयं मुहूर्तो रम्यदारुणः ॥२२॥
सन्ध्या प्रवर्तते चेयं पश्चिमायां दिशि प्रभो । एवमुक्तः स भगवान्जरत्कारुर्महातपाः ॥२३॥
भार्यां प्रस्फुरमाणौष्ठ इदं वचनमब्रवीत् । अवमानः प्रयुक्तोऽयं त्वया मम भुजंगमे ॥२४॥
समीपे ते न वत्स्यामि गमिष्यामि यथागतम् । शक्तिरस्ति न वामोरु मयि सुप्ते विभावसोः ॥२५॥
अस्तं गन्तुं यथाकालमिति मे हृदि वर्तते । न चाप्यवमतस्येह वासो रोचेत कस्यचित् ॥२६॥
किं पुनर्धर्मशीलस्य मम वा मद्विधस्य वा । एवमुक्ता जरत्कारुर्भर्त्रा हृदयकम्पनम् ॥२७॥
अब्रवीद्भगिनी तत्र वासुकेः सन्निवेशने । नावमानात्कृतवती तवाहं विप्र बोधनम् ॥२८॥
धर्मलोपो न ते विप्र स्यादित्येतन्मया कृतम् । उवाच भार्यामित्युक्तो जरत्कारुर्महातपाः ॥२९॥
ऋषिः कोपसमाविष्टस्त्यक्तुकामो भुजंगमाम् । न मे वागनृतं प्राह गमिष्येऽहं भुजंगमे ॥३०॥
समयो ह्येष मे पूर्वं त्वया सह मिथः कृतः । सुखमस्म्युषितो भद्रे ब्रूयास्त्वं भ्रातरं शुभे ॥३१॥
इतो मयि गते भीरु गतः स भगवानिति । त्वं चापि मयि निष्क्रान्ते न शोकं कर्तुमर्हसि ॥३२॥
इत्युक्ता साऽनवद्यांगी प्रत्युवाच मुनिं तदा । जरत्कारुं जरत्कारुश्चिन्ताशोकपरायणा ॥३३॥

ऐसा निश्चय करके वह नाग कन्या जरत्कारु उग्रतपस्वी और अग्नि के समान तेजस्वी सोते हुए उन ऋषि से मधुर बचन बोली, वह स्वयं मधुर भाषणी थी। महाराज उठिए, सूर्य अस्ताचल को जारहे हैं ॥२०,२१॥ आप नियमित व्रत करने वाले हैं, आचमन करके सन्ध्योपासन कीजिए। यह समय अग्निहोत्र का है, अतएव यह जितना रमणीय है उतना ही कठोर भी है ॥२२॥ प्रभो, पश्चिम दिशा में सन्ध्या होरही है। महा तपस्वी भगवान् जरत्कारु ऐसा कहने पर स्त्री से यह बचन बोले, उससमय उनके ओठ फड़कने लगे। नागकन्ये, तुमने मेरा यह अपमान किया ॥२३,२४॥ अब मैं तुम्हारे पास न रहूँगा। अब मैं जहां से आया हूँ वहाँ जाऊँगा। वामोरु, मेरे सोते रहने पर नियत समय पर अस्ताचल चले जाने को शक्ति सूर्य में नहीं है। अपमान होने पर यहां रहना किसी को भी अच्छा नहीं लग सकता ॥२५,२६॥ फिर धर्मशील मुझको या मेरे समान दूसरे को यहाँ रहना कैसे अच्छा लग सकता है। पति की ऐसी हृदय कंपाने वाली बात कहने पर वासुकि की बहन अपने घर में पति से बोली। विप्र, अपमान करने के लिए मैंने तुमको नहीं जगाया है ॥२७,२८॥ विप्र, आपका धर्म लोप न हो इस लिए मैंने आपको जगाया है। महा तपस्वी जरत्कारु भार्या से इस प्रकार बोले। वे बड़ा क्रोध किये हुए थे और भार्या का त्याग करना चाहते थे। सर्पिणी, मेरी जीभ झूठ नहीं बोलती। मैं जा रहा हूँ ॥२९,३०॥ पहले ही, तुम्हारे साथ मैंने यह शर्त करली थी। भद्रे, तुम अपने भाई से कहना कि मैंने तुम्हारे यहां सुखपूर्वक निवास किया है ॥३१॥ मेरे चले जाने पर उनसे कहना कि वे भगवान् चले गये। मेरे चले जाने पर शोक न करना ॥३२॥ मुनिके ऐसा कहने पर वह शोक से दुःखिनी सुन्दरी जरत्कारु, जरत्कारु

बाष्पगद्‌गद्‌या वाचा मुखेन परिशुष्यता । कृतांजलिर्वरारोहा पर्यश्रुनयना ततः ॥३४॥
धैर्यमालम्ब्य वामोरुर्हृदयेन प्रवेपता । न मामर्हसि धर्मज्ञ परित्यक्तुमनागसम् ॥३५॥
धर्मे स्थितां स्थितोधर्मे सदा प्रियहिते रताम् । प्रदाने कारणं यच्च मम तुभ्यं द्विजोत्तम॥३६॥
तदलब्धवतीं मन्दां किं मां वक्ष्यति वासुकिः । मातृशापाभिभूतानां ज्ञातीनां मम सत्तम ॥३७॥
अपत्यमीप्सितं त्वत्तस्तच्च तावन्न दृश्यते । त्वत्तो ह्यपत्यलाभेन ज्ञातीनां मे शिवं भवेत् ॥३८॥
संप्रयोगो भवेन्नायं मम मोघस्त्वया द्विज । ज्ञातीनां हितमिच्छन्ती भगवंस्त्वां प्रसादये ॥३९॥
इममव्यक्तरूपं मे गर्भमाधाय सत्तम । कथं त्यक्त्वा महात्मा सन्गन्तुमिच्छस्यनागसम् ॥४०॥
एवमुक्तः स मुनिर्भार्यां वचनमब्रवीत् । यद्युक्तमनुरूपं च जरत्कारुं तपोधनः ॥४१॥
अस्त्ययं सुभगे गर्भस्तव वैश्वानरोपमः । ऋषिः परमधर्मात्मा वेदवेदांगपारगः ॥४२॥
एवमुक्त्वा स धर्मात्मा जरत्कारुर्महानृषिः । उग्राय तपसे भूयो जगाम कृतनिश्चयः ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि जरत्कारुनिर्गमे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

सौतिरुवाच
गतमात्रं तु भर्तारं जरत्कारुरवेदयत् । भ्रातुः सकाशमागत्य यथातथ्यं तपोधन ॥१॥

मुनि से इस प्रकार बोली । ॥३३॥ गला भर आने से उसके बचन टूट रहे थे, मुँह सूख रहा था, आंखों से आंसू बह रहा था वह हाथ जोड़ कर बोली ॥३४॥ धैर्य धारण करके धड़कते हुए हृदय से वह बोली, धर्मज्ञ अनपराधिनी मुझे आपको छोड़ना न चाहिए ॥३५॥ मैं सदा धर्म में स्थित रही हूँ । सदा अपका प्रिय और हित करती रही हूँ । द्विजश्रेष्ठ जिसलिए वासुकि ने मुझे तुम को दिया था, उसको बिना पाये मुझ अभागिनी को आप छोड़ रहे हैं । वासुकि मुझे क्या कहेंगे । श्रेष्ठ, माता के शाप से भयभीत मेरे बान्धवों की रक्षा के लिए तुमसे उत्पन्न पुत्र की आवश्यकता है, पर वह नहीं मिला, वह दिखायी नहीं पड़ता । तुमसे जो पुत्र उत्पन्न होगा उससे मेरे बान्धवों का कल्याण होगा ॥३६,३७,३८॥ आपके साथ का मेरा यह सम्बन्ध निष्फल न हो इसलिए अपने बान्धवों के हित के लिए मैं आपको प्रसन्न करना चाहती हूँ ॥३९॥ आपने जो गर्भाधान किया है उसका कोई रूप प्रकाशित नहीं हुआ । ऐसी अवस्था में अनपराधिनी मेरा त्याग करके आप क्यों जा रहे हैं । आप तो महात्मा हैं, आपको ऐसा नहीं करना चाहिए ॥४०॥ भार्या के यह उचित वचन कहने पर तपोधन मुनि उससे बोले ॥४१॥ सुभगे, यह अग्नि के समान तेजस्वी गर्भ तुम्हें है । इसमें वेद वेदाङ्गों का ज्ञाता धर्मात्मा ऋषि उत्पन्न होगा ॥४२॥ महर्षि जरत्कारु ऐसा कहकर और उग्र तपस्या करने का निश्चय करके पुनः चले गये ॥४३॥

सप्तचत्वारिंश अध्याय ।

—o—

वासुकि की अपनी बहिन के साथ बातचीत । आस्तीक का जन्म तथा उसका नामकरण करना ।

सौति बोले, पति के जाते ही जरत्कारु ने भाई के पास आकर जैसा हुआ था वह सब कह

ततः स भुजगश्रेष्ठः श्रुत्वा सुमहदप्रियम् । उवाच भगिनीं दीनां तदा दीनतरः स्वयम् ॥२॥

वासुकिरुवाच

जानासि भद्रे यत्कार्यं प्रदाने कारणं च यत् । पन्नगानां हितार्थाय पुत्रस्ते स्यात्ततो यदि ॥३॥

स सर्पसत्रात् किल नो मोक्षयिष्यति वीर्यवान् । एवं पितामहः पूर्वमुक्तवांस्तु सुरैः सह ॥४॥

अप्यस्ति गर्भः सुभगे तस्मात्ते मुनिसत्तमात् । नचेच्छाम्यफलं तस्य दारकर्म मनीषिणः ॥५॥

कामं च मम न न्याय्यं प्रष्टुं त्वां कार्यमीदृशम् । किन्तु कार्यगरीयस्त्वात् ततस्त्वाऽहमचूचुदम् ॥६॥

दुर्वार्यतां विदित्वा च भर्तुस्तेतितपस्विनः । नैनमन्वागमिष्यामि कदाचिद्धि शपेत्स माम् ॥७॥

आचक्ष्व भद्रे भर्तुः स्वं सर्वमेव विचेष्टितम् । उद्धरस्व च शल्यं मे घोरं हृदि चिरस्थितम् ॥८॥

जरत्कारुस्ततो वाक्यमित्युक्ता प्रत्यभाषत । आश्वासयन्ती सन्तप्तं वासुकिं पन्नगेश्वरम् ॥९॥

जरत्कारुरुवाच ।

पृष्टो मयापत्यहेतोः स महात्मा महातपाः । अस्तीत्युत्तरमुद्दिश्य ममेदं गतवांश्च सः ॥१०॥

स्वैरेष्वपि न तेनाहं स्मरामि वितथं वचः । उक्तपूर्वं कुतो राजन्सांपराये स वक्ष्यति ॥११॥

न संतापस्त्वया कार्यः कार्यं प्रति भुजंगमे । उत्पत्स्यति च ते पुत्रो ज्वलनार्कसमप्रभः ॥१२॥

इत्युक्त्वा स हि मां भ्रातर्गतो भर्ता तपोधनः । तस्माद्व्येतु परं दुःखं तवेदं मनसि स्थितम् ॥१३॥

सुनाया ॥१॥ यह अत्यन्त अप्रिय बात सुनकर सर्पराज वासुकि दुखी होकर दुखिनी बहन से बोले ॥२॥

वासुकि बोले, भद्रे, जानती हो कि हमारा क्या काम है, तुम्हारा व्याह मैंने क्यों किया। तुम्हारे पुत्र से सर्पों का कल्याण होगा, और वह पराक्रमी सर्पयज्ञ से हम लोगों की रक्षा करेगा। यह बात पहले ब्रह्मा ने देवताओं से कही थी ॥३-४॥ सुभगे, क्या उस मुनिश्रेष्ठ से तुमने गर्भाधान किया है। उस मनस्वी के व्याह को मैं निष्फल देखना नहीं चाहता ॥५॥ ऐसे कार्यों के लिए तुमसे मेरा पूछना उचित नहीं है। पर काम बड़ा आवश्यक और महत्व का है, इसलिए मैं तुम्हें कहने के लिए प्रेरित कर रहा हूँ ॥६॥ बड़े तपस्वी तुम्हारे पति को रोकना कठिन है। इसीलिए मैं उनके पीछे नहीं जा रहा हूँ, क्या मालूम वे मुझे भी शाप दे दें ॥७॥ भद्रे, अपने पति की सब बातें तुम मुझसे बतलाओ और मेरे हृदय के कांटे को जो बहुत दिनों से जमा है उखाड़ फेंको ॥८॥ ऐसा कहने पर नागराज वासुकि को धैर्य देती हुई जरत्कारु ने ऐसा उत्तर दिया ॥९॥ जरत्कारु बोली, उन महात्मा महातपस्वी से सन्तान के विषय में पूछा था। उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा कि "है" और वे चले गये ॥१०॥ साधारण हंसी दिल्लगी में भी उन्होंने कोई झूठी बात कही है इसका मुझे स्मरण नहीं है। राजन, फिर ऐसे संकट के समय में वे झूठ कैसे बोल सकते हैं ॥११॥ उन्होंने कहा था—सर्पिणी, तुम्हे अपने काम के लिए दुःख नहीं करना चाहिए। सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र तुम्हें उत्पन्न होगा ॥१२॥ भाई, यही कह कर मेरे तपस्वी पति चले गये, इस कारण तुम्हारे मन में जो दुःख है वह दूर कर दो ॥१३॥ सौति बोले—ऐसा सुन

सौतिरुवाच ।

एतच्छ्रुत्वा स नागेन्द्रो वासुकिः परया मुदा । एवमस्त्विति तद्वाक्यं भगिन्याः प्रत्यगृह्णत ॥१४॥

सांत्वमानार्थदानैश्च पूजया चारुरूपया । सोदर्यां पूजयामास स्वसारं पन्नगोत्तमः ॥१५॥

ततः प्रववृधे गर्भो महातेजा महाप्रभः । यथा सोमो द्विजश्रेष्ठ शुक्लपक्षोदितो दिवि ॥१६॥

अथ काले तु सा ब्रह्मन्प्रजज्ञे भुजगस्वसा । कुमारं देवगर्भाभं पितृमातृभयापहम् ॥१७॥

ववृधे स तु तत्रैव नागराजनिवेशने । वेदांश्चाधिजगे सांगान्भार्गवाच्च्यवनान्मुनेः ॥१८॥

चीर्णव्रतो बाल एव बुद्धिसत्वगुणान्वितः । नाम चास्याभवत्ख्यातं लोकेष्वास्तीक इत्युत ॥१९॥

अस्तीत्युक्त्वा गतो यस्मात्पिता गर्भस्थमेव तम् । वनं तस्मादिदं तस्य नामास्तीकेति विश्रुतम् ॥२०॥

स बाल एव तत्रस्थश्चरन्नमितबुद्धिमान् । गृहे पन्नगराजस्य प्रयत्नात्परिरक्षितः ॥२१॥

भगवानिव देवेशः शूलपाणिर्हिरण्मयः । विवर्धमानः सर्वांस्तान्पन्नगानभ्यहर्षयत् ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि आस्तीकोत्पत्तौ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

शौनक उवाच ।

यदपृच्छत्तदा राजा मन्त्रिणो जनमेजयः । पितुः स्वर्गगतिं तन्मे विस्तरेण पुनर्वद ॥१॥

कर नागराज वासुकि ने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि ठीक है, और बहन की बात पर विश्वास किया ॥१४॥ सदय व्यवहार, सम्मान, धन दान तथा सुन्दर सत्कार से नागराज अपनी सहोदर बहिन को प्रसन्न रखने लगे ॥१५॥ ब्राह्मण श्रेष्ठ, वह गर्भ बढ़ने लगा, वह गर्भ तेजस्वी और उज्वल था। जिस प्रकार आकाश में उदय हो कर शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा बढ़ता है ॥१६॥ ब्रह्मन्, अनन्तर समय होने पर सर्प की उस बहन ने देवकुमार के तुल्य कुमार उत्पन्न किया। वह पुत्र पिता और माता के कुल का भय दूर करने वाला था ॥१६॥ वह कुमार वहीं नागराज के घर में रह कर बढ़ने लगा और भृगुवंशी च्यवन से उसने अंगों के साथ वेद पढ़े ॥८॥ बुद्धि और बल से युक्त उसने बाल्यावस्था में ही व्रत धारण किया। वह "आस्तीक" नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१६॥ जब वह बालक गर्भ में था तभी "अस्ति" है, कह कर पिता वन में चले गये थे। इसी से उसका आस्तीक नाम प्रसिद्ध हुआ ॥२०॥ वह बाल्यावस्था में ही अत्यन्त बुद्धिमान हुआ और विचरण करने लगा। सर्पराज के घर में बड़े प्रयत्न से उसकी रक्षा हुई थी ॥२१॥ भगवान् महेश के समान उसने शूल धारण किया। दीप्तिमान् वह बढ़ते हुए उसने समस्त सर्पों को प्रसन्न किया ॥२२॥ अष्ट चत्वारिंश अध्याय।

—o—

राजा जनमेजय और मन्त्रियों के कथोपकथन द्वारा परीक्षित का चरित कहना।

शौनक बोले—राजा जनमेजय ने अपने मन्त्रियों से पिता के स्वर्ग गमन के विषय में जो पूछा था उसको विस्तार के साथ पुनः कहो ॥१॥ सौति बोले, ब्रह्मन् राजा ने मन्त्रियों से जो

सौतिरुवाच ।

श्रृणु ब्रह्मन्यथाऽपृच्छन्मंत्रिणो नृपतिस्तदा । यथाचाख्यातवन्तस्ते निधनं तत्परीक्षितः ॥२॥

जनमेजय उवाच ।

जानन्तिस्म भवन्तस्तद्यथावृत्तं पितुर्मम । आसीद्यथा स निधनं गतः काले महायशाः ॥३॥

श्रुत्वा भवत्सकाशाद्धि पितुर्वृत्तमशेषतः । कल्याणं प्रतिपत्स्यामि विपरीतं न जातुचित् ॥४॥

सौतिरुवाच ।

मन्त्रिणोऽथाब्रुवन्वाक्यं पृष्टास्तेन महात्मना । सर्वे धर्मविदः प्राज्ञा राजानं जनमेजयम् ॥५॥

मन्त्रिण ऊचुः ।

श्रृणु पार्थिव यद्ब्रूपे पितुस्तव महात्मनः । चरितं पार्थिवेन्द्रस्य यथानिष्ठां गतश्च सः ॥६॥

धर्मात्मा च महात्मा च प्रजापालः पिता तव । आसीदिह यथा वृत्तः स महात्मा श्रृणुष्व तत् ॥७॥

चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मस्थं स कृत्वा पर्यरक्षत । धर्मतो धर्मविद्राजा धर्मो विग्रहवानिव ॥८॥

ररक्ष पृथिवीं देवीं श्रीमानतुलविक्रमः । द्वेष्टारस्तस्य नैवासन्स च द्वेष्टि न कंचन ॥९॥

समः सर्वे षुभूतेषु प्रजापतिरिवाभवत् । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव स्वकर्मसु ॥१०॥

स्थिताः सुमनसो राजंस्तेन राज्ञास्वधिष्ठिताः। विधवाऽनाथ विकलाङ्गकृपणांश्च वभार सः ॥११

सुदर्शः सर्वभूतानामासीत्सोम इवापरः । तुष्टपुष्टजनः श्रीमान्सत्यवाग्दृढविक्रमः ॥१२॥

पूछा था तथा उन लोगों ने राजा परीक्षित की मृत्यु के सम्बन्ध में जो कहा था वह सब सुनो ॥२॥

जनमेजय बोले, पिता के सम्बन्ध की जो घटना हुई है वह आप लोग जानते हैं। वे महायशस्वी जिस तरह मृत्यु मुख में पतित हुए यह सब आप लोग जानते हैं ॥३॥ पिता का समस्त वृत्तान्त आप लोगों से सुनकर ही मुझे शान्ति मिलेगी, नहीं तो किसी प्रकार भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥४॥ सौति बोले, उस महात्मा राजा के पूछने पर मन्त्रियों ने राजा जनमेजय से कहा। वे सभी धर्मात्मा और बुद्धिमान् थे ॥५॥

मन्त्री बोले, राजन् जो आप पूछते हैं, वह सुनें। राजश्रेष्ठ अपने महात्मा पिता का चरित सुनें और जिस प्रकार उनकी मृत्यु हुई वह भी सुनें ॥६॥ आपके महात्मा पिता धर्मात्मा थे और प्रजा का पालन करने वाले थे। उस महात्मा का जिस प्रकार का व्यवहार था वह आप सुनें ॥७॥ चार वर्णों को अपने अपने धर्मों में आरूढ़ कराकर वे उनको रक्षा करते थे। वे शरीरधारी धर्म थे, धर्मज्ञ श्रीमान् राजा धर्मपूर्वक पृथिवी देवी की रक्षा करते थे। वे बड़े पराक्रमी थे। उनका कोई शत्रु न था और न वे किसी से शत्रुता रखते थे ॥८-९॥ ब्रह्मा के समान सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखते थे। उस राजा के राज्य के समय में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सभी अपने अपने कार्य में लगे थे और प्रसन्न थे। विधवाओं, अनाथों अङ्गहीनों और गरीबों का वे पोषण करते थे ॥१०-११॥ वे सब प्राणियों के लिए दूसरे चन्द्रमा के समान दर्शनीय थे। उनके आश्रित पुष्ट और प्रसन्न रहते थे। वे सत्यवादी और पराक्रमी थे ॥१२॥ उन्होंने धनुर्वेद की

धनुर्वेदे तु शिष्योऽभून्नृपः शारद्वतस्य सः। गोविन्दस्य प्रियश्चासीत्पिता ते जनमेजयः॥१३॥
लोकस्य चैव सर्वस्य प्रिय आसीन्महायशाः। परिक्षीणेषु कुरुषु सोत्तरायामजीजनत् ॥१४॥
परिक्षिद्भवत्तेन सौभद्रस्यात्मजो बली। राजधर्मार्थकुशलो युक्तः सर्व गुणैर्वृतः॥१५॥
जितेन्द्रियश्चात्मवांश्च मेधावी धर्मसेविता। षड्वर्गजिन्महाबुद्धिर्नीतिशास्त्रविदुत्तमः ॥१६॥
प्रजा इमास्तव पिता षष्टिवर्षाण्यपालयत्। ततो दिष्टान्तमापन्नः सर्वेषां दुःखमावहन्॥१७॥
ततस्त्वं पुरुषश्रेष्ठ धर्मेण प्रतिपेदिवान्। इदं वर्षसहस्राणि राज्यं कुरुकुलागतम्॥
बाल एवाभिषिक्तस्त्वं सर्वभूतानुपालकः॥१८॥ जनमेजय उवाच।

नास्मिन्कुले जातु बभूव राजा यो न प्रजानां प्रियकृत्प्रियश्च।
विशेषतः प्रेक्ष्य पितामहानी वृतं महद्वृत्तपरायणानाम्॥ १९ ॥

कथं निधनमापन्नः पिता मम तथाविधः। आचक्षध्वं यथावन्मे श्रोतुमिच्छामि तत्वतः॥२०॥
सौतिरुवाच।
एवं संचोदिता राज्ञा मन्त्रिणस्ते नराधिपम्। ऊचुः सर्वे यथावृत्तं राज्ञः प्रियहितैषिणः॥२१॥
मन्त्रिण ऊचुः।
स राजा पृथिवीपालः सर्वशस्त्रभृतां वरः। बभूव मृगयाशीलस्तव राज न्पिता सदा॥२२॥
यथा पांडुर्महाबाहुर्धनुर्धरवरो युधि। अस्मास्वासज्य सर्वाणि राजकार्याण्यशेषतः॥२३॥

शिक्षा कृपाचार्य से पायी थी। तुम्हारे पिता जनमेजय श्री कृष्ण के प्रिय थे॥१३॥ वे महायशस्वी समस्त लोकों के प्रिय थे। कुरुवंश के नाश होने पर उत्तरा के गर्भ से उनका जन्म हुआ था॥१४॥ सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित हुए, वे बली थे वे सब गुणों से युक्त थे, राजधर्म और धन संग्रह में निपुण थे॥१५॥ वे जितेन्द्रिय दृढ़ात्मा मेधावी और धर्म सेवक थे। काम क्रोध छ शत्रुओं को जीतनेवाले बुद्धिमान् और नीति शास्त्र के ज्ञाता थे॥१६॥ तुम्हारे पिता ने साठ वर्षों तक प्रजा पालन किया था, अनन्तर सब को दुखी बनाकर वे परलोकवासी हुए॥१७॥ उनके बाद पुरुषश्रेष्ठ, तुमने यह राज्य धर्मानुसार पाया हजार वर्षों तक इसका पालन करने के लिए। यह राज्य कुरुकुल में वंश परम्परा से चला आया है। बाल्यावस्था में ही तुम्हारा राज्याभिषेक हुआ है, तुम सब प्राणियों के रक्षक हो॥१८॥

जनमेजय बोले, इस कुल में ऐसा कोई राजा न हुआ जो प्रजा को प्रिय न हो और उनका प्रिय करने वाला न हो॥१९॥ वैसे मेरे पिता की मृत्यु किस प्रकार हुई, यह आप लोग यथावत् कहें। मैं यथार्थ बातें सुनना चाहता हूँ॥२०॥ सौति बोले, राजा के इस प्रकार प्रेरित करने पर, राजा के प्रिय और हित चाहने वाले उन मन्त्रियों ने जैसा हुआ था वह कहा॥२१॥ मन्त्री बोले, पृथिवी का पालन करने वाले सब शास्त्रों के ज्ञाता वे तुम्हारे पिता राजा शिकारी थे। शिकार करना पसन्द करते थे॥२२॥ जिस प्रकार धनुर्धारियों में श्रेष्ठ पाण्डु शिकार को

स कदाचिद्वनगतो मृगं विव्याध पत्रिणा। विद्ध्वा चान्वसरत्तूर्णं तं मृगं गहने वने ॥२४॥
पदातिर्बद्धनिस्त्रिंशस्ततायुधकलापवान्। न चाससाद गहने मृगं नष्टं पिता तव ॥२५॥
परिश्रांतो वयस्थश्च षष्टिवर्षो जरान्वितः। क्षुधितः स महारण्ये ददर्श मुनिसत्तमम् ॥२६॥
स तं पप्रच्छ राजेन्द्रो मुनिं मौनव्रते स्थितम्। न च किंचिदुवाचेदं पृष्टोऽपि स मुनिस्तदा ॥२७॥
ततो राजा क्षुच्छ्रमार्तस्तं मुनिं स्थाणुवत्स्थितम्। मौनव्रतधरं शान्तं सद्यो मन्युवशं गतः ॥२८॥
न बुबोध च तं राजा मौनव्रतधरं मुनिम्। स तं क्रोधसमाविष्टो धर्षयामास ते पिता ॥२९॥
मृतं सर्पं धनुष्कोट्या समुत्क्षिप्य धरातलात्। तस्य शुद्धात्मनः प्रादात्स्कन्धे भरतसत्तम ॥३०॥
न चोवाच स मेधावी तमथो साध्वसाधु वा। तस्थौ तथैव चाक्रुद्धः सर्पं स्कन्धेन धारयन्॥३१॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि पारिक्षितीये एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥

मन्त्रिण ऊचुः

ततः स राजा राजेन्द्र स्कन्धे तस्य भुजंगमम्। मुनेः क्षुत्क्षाम आसज्ज्य स्वपुरं प्रययौ पुनः ॥१॥
ऋषेस्तस्य तु पुत्रोभूद्गवि जातो महायशाः। शृंगीनाम महातेजास्तिग्मवीर्योऽतिकोपनः॥२॥
ब्रह्माणं समुपागम्य मुनिः पूजां चकार ह। सोऽनुज्ञातस्ततस्तत्र शृंगी शुश्राव तं तदा ॥३॥
सख्युः सकाशात्पितरं पित्रा ते धर्षितं पुरा। मृतं सर्पं समासक्तं स्थाणुभूतस्य तस्य तम् ॥४॥

पसन्द करते थे। समस्त राज काज हम लोगों पर छोड़ कर राजा एक बार वन में गये, और वहां उन्होंने बाण से एक मृगा को घायल किया। उस बीहड़ वन में मृगा को घायल करके उन्होंने उसका पीछा किया ॥२३, २४॥ राजा पैदल थे, वे अस्त्र शस्त्र बांधे हुए थे, पर भगे मृग को तुम्हारे पिता ने उस बीहड़ वन में नहीं पाया ॥२५॥ राजा की उमर बहुत हो गयी थी, वे साठ वर्ष के बूढ़े थे, वे थके और भूखे थे उस वन में उन्होंने एक मुनि को देखा ॥२६॥ राजा ने उन मुनि से पूछा, पर वे मौन धारण किये हुए थे। राजा के पूछने पर भी मुनि ने कोई उत्तर नहीं दिया ॥२७॥ अनन्तर क्षुधा और थकावट से पीड़ित राजा ने मुनि को शान्त, मौन और स्थुत्थ के समान बैठे देखकर क्रोध किया ॥२८॥ राजा ने यह नहीं समझा कि ये मुनि मौनव्रतधारी हैं। क्रुद्ध होकर तुम्हारे पिता राजा ने उनका अपमान किया ॥२९॥ मरे सर्प को धनुष की नोक से पृथिवी पर से उठा कर उस निरपराध मुनि के कन्धे पर राजा ने रख दिया ॥३०॥ उन बुद्धिमान् मुनिने राजा से अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं कहा, बिना क्रोध किये तथा कन्धे पर सर्प को रखे वे उसी तरह बैठे रहे ॥३१॥ एकोनपंचाशत् अध्याय

—o—

मन्त्री बोले, राजेन्द्र, भूखे राजा मुनि के कन्धे पर सांप रख कर अपने नगर में लौट आये ॥१॥ उन ऋषि का एक यशस्वी पुत्र था, जो गौ में उत्पन्न हुआ था। उसका नाम शृंगी था, वह क्रोधी तेजस्वी और असहनशील था ॥२॥ब्रह्मा के पास जाकर शृंगी मुनि ने उनकी पूजा की। ब्रह्मा की आज्ञा से वे वहां से लौटे। रास्ते में उन्होंने अपने मित्र से पिता के अपमान की बात

वहन्तं राजशार्दूल स्कन्धेनानपकारिणम् । तपस्विनमतीवाथ तं मुनिप्रवरं नृप ।।५।।
जितेन्द्रियं विशुद्धं च स्थितं कर्मण्यथाद्भुतम् । तपसा द्योतितात्मानं स्वेष्वङ्गेषु यतं तदा ।।६।।
शुभाचारं शुभकथं सुस्थितं तमलोलुपम् । अक्षुद्रमनसूयं च वृद्धं मौनव्रते स्थितम् ।।७।।
शरण्यं सर्वभूतानां पित्रा विनिकृतं तव ।।७।।
शशापाथ महातेजाः पितरं ते रुषान्वितः । ऋषेः पुत्रो महातेजा वालोपि स्थविरद्युतिः ८।।
स क्षिप्रमुदकं स्पृष्ट्वा रोषादिदमुवाच ह । पितरं तेभिसन्धाय तेजसा प्रज्वलन्निव ।।९।।
अनागसि गुरौ यो मे मृतं सर्पमवासृजत् । तं नागस्तक्षकः क्रुद्धस्तेजसा प्रदहिष्यति ।।१०।।
आशीविषस्तिग्मेजा मद्वाक्यवलचोदितः । सप्तरात्रादितः पापं पश्य मे तपसो वलम् ।।११
इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र पिता यत्रास्य सोभवत् । दृष्ट्वा च पितरं तस्मै तं शापं प्रत्यवेदयत् ।।१२।।
स चापि मुनिशार्दूलःप्रेरयामास ते पितुः । शिष्यं गौरमुखं नाम शीलवन्तं गुणान्वितम् ।१३
आचख्यौ स च विश्रान्तो राज्ञः सर्वमशेषतः । शप्तोसि मम पुत्रेण यत्तो भव महीपते ।।१४।।
तक्षकस्त्वां महाराज तेजसासौ दहिष्यति । श्रुत्वा च तद्वचो घोरं पिता ते जनमेजय १५
यत्तोऽभवत् परित्रस्तस्तक्षकात् पन्नगोत्तमात् । ततस्मिंस्तु दिवसे सप्तमे समुपस्थिते ।।१६।।
राज्ञः समीपं ब्रह्मर्षिः काश्यपो गन्तुमैच्छत् । तं ददर्शाथ नागेन्द्रस्तक्षकः काश्यपं तदा ।।१७।

सुनी । चुप चाप बैठे तुम्हारे पिता के गले में मरा सर्प पड़ा हुआ है । वे मुनि युवा तपस्वी थे, जितेन्द्रिय और विशुद्धात्मा थे उत्तम कर्म कर रहे थे, तपस्या के द्वारा उनकी आत्मा प्रकाशित हो रही थी, मन और इन्द्रियां उनके आधीन थीं । वे सुन्दर आचरण और बोलने वाले थे । निर्लोभ थे, समाधिस्थ थे । छोटे विचार के न थे, ईर्ष्या करनेवाले न थे वृद्ध मौनव्रतधारी थे, वे समस्त प्राणियों को आश्रय देते थे । उनको तुम्हारे पिता ने अपमानित किया ।।३, ४, ५, ६, ७।। तेजस्वी मुनिपुत्र ने क्रोध करके तुम्हारे पिता को शाप दिया । वह ऋषिपुत्र बड़ा तेजस्वी था । बालक होने पर भी वृद्धों के समान दीप्तिमान् था ।।८।। वह शीघ्र ही जल-स्पर्श करके क्रोध से तुम्हारे पिता के प्रति इस प्रकार बोला, उस समय वह मानों तेज से जल रहा हो ।।९।। अनपराधी मेरे पिता के गले में जिसने सर्प लपेटा है उसको क्रोध करके तक्षक अपने तेज से जला देगा ।।१०।। विषैले दांतोंवाला तीक्ष्ण नेत्रवाला वह सर्प मेरे कहने के अनुसार आज की सातवीं रात को उस पापी राजा को जलावेगा । तुम मेरी तपस्या का बल देखो ।।११।। ऐसा कह कर वह वहां गया जहां उसके पिता थे । पिता को देखकर उसने राजा को जो शाप दिया था, वह उन्हें बतलाया ।।१२।। उन मुनिश्रेष्ठ ने भी तुम्हारे पिता के पास अपने गुणवान् और शीलवान् शिष्य गौरमुख को भेजा ।।१३।। विश्राम करके उस शिष्य ने ऋषि का समस्त सन्देश कह सुनाया "राजन्, मेरे पुत्र ने तुम्हें शाप दिया है, तुम सावधान हो जाओ, महाराज, यह तक्षक अपने तेज से तुमको जलावेगा । जनमेजय, उस भयंकर वचन को सुनकर तुम्हारे पिता ने भयभीत होकर सर्पराज तक्षक से अपनी रक्षा करने के लिए सावधान हो गये । उस सातवें दिन के उपस्थित

तमब्रवीत् पन्नगेन्द्रः काश्यपं त्वरितं द्विजम् । क्व भवांस्त्वरितो याति किंच कार्यं चिकीर्षति१८

काश्यप उवाच

यत्र राजा कुरुश्रेष्ठः परिक्षिन्नाम वै द्विज । तक्षकेण भुजंगेन धक्ष्यते किल सोऽद्य वै ॥१९॥
गच्छाम्यहं तं त्वरितः सद्यः कर्तुमपज्वरम् । मयाभिपन्नं तं चापि न सर्पो धर्षयिष्यति ॥२०॥

तक्षक उवाच

किमर्थं तं मया दष्टं संजीवयितुमिच्छसि । अहं स तक्षको ब्रह्मन् पश्य मे वीर्यमद्भुतम् ॥२१॥
न शक्तस्त्वं मया दष्टं तं संजीवयितुं नृपम् । इत्युक्त्वा तक्षकस्तत्र सोऽदशद्वै वनस्पतिम् २२॥
स दष्टमात्रो नागेन भस्मीभूतो भवन्नगः । काश्यपश्च ततो राजन्नजीवयत तं नगम् ॥२३॥
ततस्तं लोभयामस कामं ब्रूहीति तक्षकः । स एवमुक्तस्तं प्राह काश्यपस्तक्षकं पुनः ॥२४॥
धनलिप्सुरहं तत्र यामीत्युक्तश्च तेन सः । तमुवाच महात्मानं तक्षकः श्लक्ष्णया गिरा ॥२५॥
यावद्धनं प्रार्थयसे राज्ञस्तस्मात्ततोधिकम् । गृहाण मत्त एव त्वं सन्निवर्तस्व चानघ ॥२६॥
स एवमुक्तो नागेन काश्यपो द्विपदांवरः । लब्ध्वा वित्तं निववृते तक्षकाद् यावदीप्सितम् ॥२७॥
तस्मिन् प्रतिगते विप्रे छद्मनोपेत्य तक्षकः । तं नृपं नृपतिश्रेष्ठं पितरं धार्मिकं तव ॥२८॥
प्रासादस्थं यत्तमपि दग्धवान् विषवन्हिना । ततस्त्वं पुरुषव्याघ्र विजयायाभिषेचितः ॥२९॥

होने पर ब्रह्मर्षि काश्यप राजा के समीप जाने लगे । उस समय सर्पराज तक्षक ने काश्यप को देखा ॥१४, १५, १६, १७॥ तक्षक शीघ्र ही ब्राह्मण काश्यप से बोला आप शीघ्रता पूर्वक कहां जा रहे हैं और क्या करना चाहते हैं ॥१८॥ काश्यप बोले, ब्राह्मण, जहां कुरुश्रेष्ठ, परीक्षित् नाम के राजा हैं, आज उन्हें तक्षक सर्प जलावेगा ॥१६॥ मैं उनको शीघ्र ही निरोग करने के लिए जा रहा हूं । मैं जब उनकी रक्षा करूँगा तब सर्प उनको जला नहीं सकेगा ॥२०॥ तक्षक बोला, मेरे डसे हुए राजा को तुम क्यों जिलाना चाहते हो, ब्रह्मन्, मैं ही वह तक्षक हूँ, मेरा अद्भुत पराक्रम देखो, ॥२१॥ मेरे द्वारा डसे हुए राजा को तुम जिला नहीं सकते । मन्त्री बोले, ऐसा ब्राह्मण से कहकर उस तक्षक ने एक वनस्पति को काटा ॥२२॥ सांप के काटते ही वह वृक्ष जल गया । काश्यप ने उस वृक्ष को पुनः जीवित कर दिया ॥२२॥ तब तक्षक ने उनको लोभ दिया । उसने पूछा कि तुम क्या चाहते हो, तक्षक के पूछने पर काश्यप ने उससे पुनः कहा ॥२४॥ धन के लिए मैं उनके पास जा रहा हूँ । ब्राह्मण के ऐसा कहने पर तक्षक मधुर स्वर से उन महात्मा से बोला ॥२५॥ उस राजा से तुम जितना धन चाहते हो, उतना तुम मुझसे ही ले लो और हे निष्पाप, तुम लौट जाओ ॥२६॥ सर्प के ऐसा कहने पर मनुष्य श्रेष्ठ काश्यप इच्छानुसार तक्षक से धन लेकर लौट गये ॥२६॥ उस ब्राह्मण के लौट जाने पर तक्षक छल से राजश्रेष्ठ धार्मिक तुम्हारे पिता के पास गया ॥२८॥ राजा अटारी पर थे और बड़े सावधान थे, तौ भी उसने उन्हें विष की आग से जला दिया ॥२८॥ पुरुषसिंह, उसके पश्चात विजय के लिए तुम्हारा अभिषेक किया गया ॥२६॥ नृपश्रेष्ठ, यही हम लोगों का देखा और सुना है । यह समस्त

एतद्दृष्टं श्रुतं चापि यथावन्नृपसत्तम। अस्माभिर्निखिलं सर्वं कथितं तेऽतिदारुणम् ॥३०॥
श्रुत्वा चैनं नरश्रेष्ठ पार्थिवस्य पराभवम्। अस्य चर्षेरुतंकस्य विधत्स्व यदनन्तरम् ॥३१॥
सौतिरुवाच।
एतस्मिन्नेव काले तु स राजा जनमेजयः। उवाच मन्त्रिणः सर्वानिदं वाक्यमरिन्दमः ॥३२॥
जनमेजय उवाच।
अथ तत्कथितं केन यद्वृत्तं तद्वनस्पतौ। आश्चर्यभूतं लोकस्य भस्मराशीकृतं तदा ॥३३॥
यद्वृक्षं जीवयामास काश्यपस्तक्षकेण वै। नैनं मन्त्रैर्हतविषो न प्रणश्येत् काश्यपात् ॥३४॥
चिन्तयामास पापात्मा मनसा पन्नगाधमः। दष्टं यदि मया विप्रः पार्थिवं जीवयिष्यति ॥३५॥
तक्षकः संहतविषो लोके यास्यति हास्यताम्। विचिन्त्यैवं कृता तेन ध्रुवं तुष्टिर्द्विजस्य वै ॥३६॥
भविष्यति ह्युपायेन यस्य दास्यामि यातनाम्। एकं तु श्रोतुमिच्छामि तद्वृत्तं निर्जने वने ॥३७॥
संवादं पन्नगेन्द्रस्य काश्यपस्य च कस्तदा। श्रुतवान् दृष्टवांश्चापि भवत्सु कथमागतम्
श्रुत्वा तस्य विधास्येऽहं पन्नगान्तकरीं मतिम् ॥३८॥ मन्त्रिण ऊचुः।
शृणु राजन् यथास्माकं येन तत् कथितं पुरा। समागतं द्विजेन्द्रस्य पन्नगेन्द्रस्य चाध्वनि ॥३९॥
तस्मिन् वृक्षे नरः कश्चिदिन्धनार्थाय पार्थिव। विचिन्वन् पूर्वमारूढः शुष्कशाखां वनस्पतौ ॥४०॥
न बुध्येतामुभौ तौ च नगस्थं पन्नगद्विजौ। सह तेनैव वृक्षेण भस्मीभूतोऽभवन्नृप ॥४१॥

दारुण वृत्तान्त हम लोगों ने आप से कहा ॥३०॥ राजन्, राजा के मरने का वृत्तान्त सुनकर तथा ऋषि उतंककी बातें सुनकर आगे जो कर्तव्य हो, उसका निश्चय कीजिए ॥३१॥

सौति बोले—इसी समय शत्रु नाशकारी राजा जनमेजय ने समस्त मन्त्रियों से यह वचन कहा ॥३२॥ जनमेजय बोले, उस वनस्पति के पास जो बातें हुई थीं वह किसने कही, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि तक्षक ने जिस वृक्ष को भस्म की ढेर बना दिया था, उसे काश्यप ने जिला दिया। यह निश्चय है कि विष से मारा हुआ कश्यप के द्वारा नष्ट नहीं हो सकता। अर्थात् काश्यप उसे जिला सकते हैं ॥३३, ३४॥ उस पापी नीच सर्प ने मन में सोचा होगा कि मेरे डसे हुए राजा को यह ब्राह्मण यदि जिला देगा, तो लोग तक्षक को हसेंगे, कहेंगे कि तक्षक का विष हटा दिया गया। यही सोचकर उसने ब्राह्मण को प्रसन्न कर लिया ॥३५, ३६॥ अच्छा, मैं भी उसको दुःख देने का उपाय करूँगा, मैं भी उससे बदला लूँगा, पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि उस निर्जन वन में काश्यप और तक्षक में जो संवाद हुआ था, उसको किसने सुना किसने देखा, और वह आप लोगों के पास तक कैसे आया। यह सुनकर सर्पों का नाश करने का मैं विचार करूँगा ॥३७, ३८॥ मन्त्री बोले, तक्षक और काश्यप से जो बातें हुईं थीं, वे बातें हम लोगों तक कैसे आईं, किसने कही, यह आप सुनें ॥३९॥

राजन्, उस वृक्ष पर एक मनुष्य लकड़ी के लिए पहले ही से चढ़ा था। वह लकड़ी ढूँढ़ने के लिए उस वृक्ष की सूखी डाल पर बैठा था ॥४०॥ एक आदमी वृक्ष पर बैठा है, यह बात न तो

द्विजप्रभावाद्राजेन्द्र व्यजीवत्स वनस्पतिः । तेनागम्य द्विजश्रेष्ठ पुंसास्मासु निवेदितम् ॥४२॥
यथावृत्तं तु तत्सर्वं तक्षकस्य द्विजस्य च । एतत्ते कथितं राजन् यथा दृष्टं श्रुतं च यत्
श्रुत्वा च नृपशार्दूल विधत्स्व यदनन्तरम् ॥४३॥ सौतिरुवाच ।
मन्त्रिणां तु वचः श्रुत्वा स राजा जनमेजयः । पर्यतप्यत दुःखार्तः प्रत्यपिंषत्करं करे ॥४४॥
निःश्वासमुष्णमसकृद्दीर्घं राजीवलोचनः । मुमोचाश्रूणि च तदा नेत्राभ्यां प्ररुदन्नृपः ॥४५॥
उवाच च महीपालो दुःखशोकसमन्वितः । दुर्धरं वाष्पमुत्सृज्य स्पृष्ट्वा चापो यथाविधि ॥४६॥
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा निश्चित्य मनसा नृपः । अमर्षी मन्त्रिणः सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥४७॥
जनमेजय उवाच ।
श्रुत्वैतद् भवतो वाक्यं पितुर्मे स्वर्गतिं प्रति । निश्चितेयं मम मतिर्या च तां मे निबोधत
अनन्तरं च मन्येहं तक्षकाय दुरात्मने ॥४८॥
प्रतिकर्तव्यमित्येवं येन मे हिंसितः पिता । शृङ्गिणं हेतुमात्रं यः कृत्वा दग्ध्वा च पार्थिवम् ॥४९॥
इयं दुरात्मता तस्य काश्यपं यो न्यवर्तयत् । यद्यागच्छेत् स वै विप्रो ननु जीवेत् पिता मम ॥५०॥
परिहीयेत किंतस्य यदि जीवेत्स पार्थिवः । काश्यपस्य प्रसादेन मन्त्रिणां विनयेन च ॥५१॥
स तु वारितवान मोहात्काश्यपं द्विजसत्तमम् । संजिजीवयिषुं प्राप्तं राजानमपराजितम् ॥५२॥
महानतिक्रमो ह्येष तक्षकस्य दुरात्मनः । द्विजस्य योऽददद्द्रव्यं मा नृपं जीवयेदिति ॥५३॥

तक्षक ने जानी और न ब्राह्मणने, वह मनुष्य भी वृक्ष के साथ ही जल गया ॥४१॥ राजेन्द्र, ब्राह्मण के प्रभाव से वह वृक्ष जीवित हो गया और वह मनुष्य भी। उसी मनुष्य ने आकर यह बात महात्माओं से कही है ॥४२॥ तक्षक और ब्राह्मण में जो बातें हुई थीं वह उसीने आकर हम लोगों से कही। राजन्, जो हम लोगों ने देखा सुना था, वह हमलोगों ने तुमसे कहा। यह सुन कर आगे जो कुछ करना हो वह तुम करो ॥४३॥ सौति बोले, मन्त्रियों के बचन सुनकर राजा जनमेजय ने बड़ा शोक किया। वे दुःखी होकर हाथ पर हाथ रखकर उसे मलने लगे ॥४४॥ राजीवलोचन ने कई बार गर्म सांस लीं, आंखों से आंसू गिराते हुए वे रोने लगे ॥४५॥ दुःख शोक से युक्त होकर राजा बोले, उनकी आंखों से झर झर आंसू बह रहा था। विधिपूर्वक जल-स्पर्श करके वे बोले, ॥४६॥ थोड़ी देर सोचकर मनही मन निश्चय करके क्रोध करके वे सब मन्त्रियों से यह बोले ॥४७॥ जनमेजय बोले, पिता के स्वर्ग जाने के विषय की आप लोगों की बातें सुनकर मैंने जो निश्चय किया है, वह आप लोग मुझसे सुनें, मैं तो आगे का कर्तव्य यही समझता हूं कि दुरात्मा तक्षक से बदला लिया जाय जिसने मेरे पिता को मारा है। शृंगी को केवल निमित्त बनाकर उसने मेरे पिता को जलाया है ॥४८,४९॥ यह उसकी दुर्जनता है, जो उसने काश्यप को लौटा दिया, यदि वह ब्राह्मण आजाता तो मेरे पिता जी जाते ॥५०॥ यदि काश्यप की कृपा और मन्त्रियों के विनय से राजा जी जाते तो उसकी क्या हानि हो जाती ॥५१॥ उसने अज्ञान से मेरी शक्ति न जानकर उन ब्राह्मण काश्यप को रोका जो अपराजित राजा को जिलाने के लिये आये थे ॥५२॥ यह दुरात्मा तक्षक का बड़ा भारी अपराध है कि उसने ब्राह्मण को इस

उत्तंकस्य प्रियं कर्तुमात्मनश्च महत्प्रियम् । भवतां चैव सर्वेषां गच्छाम्यपचितिं पितुः ॥५४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि पारीक्षित्मन्त्रिसंवादे पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥

सौतिरुवाच ।

एवमुक्त्वा ततः श्रीमान् मन्त्रिभिश्चानुमोदितः । आरुरोह प्रतिज्ञां स सर्पसत्राय पार्थिवः ॥१॥

ब्रह्मन् भरतशार्दूलो राजा पारिक्षितस्तदा । पुरोहितमथाहूय ऋत्विजो वसुधाधिपः ॥२॥

अब्रवीद्वाक्यसंपन्नः कार्यसंपत्करं वचः । यो मे हिंसितवांस्तातं तक्षकः स दुरात्मवान् ॥३॥

प्रतिकुर्यां तथा तस्य तद्भवन्तो ब्रुवन्तु मे । अपि तत्कर्म विदितं भवतां येन पन्नगम् ॥४॥

तक्षकं संप्रदीप्तेऽग्नौ प्रक्षिपेयं सबान्धवम् । यथा तेन पिता मह्यं पूर्वं दग्धो विषाग्निना

तथाहमपि तं पापं दग्धुमिच्छामि पन्नगम् ॥५॥

ऋत्विज ऊचुः ।

अस्ति राजन् महत्सत्रं त्वदर्थं देवनिर्मितम् । सर्पसत्रमिति ख्यातं पुराणे परिपठ्यते ॥६॥

आहर्ता तस्य सत्रस्य त्वन्नान्योस्ति नराधिप । इति पौराणिकाः प्राहुरस्माकं चास्ति स क्रतुः ७

एमुक्तः स राजर्षिर्मेने दग्धं हि तक्षकम् । हुताशनमुखे दीप्ते प्रविष्टमिति सत्तम ॥८॥

ततोब्रवीन्मन्त्रविदस्तान् राजा ब्राह्मणाँस्तदा । आहरिष्यामि तत्सत्रं सम्भारा संभ्रियन्तु मे ॥९॥

ततस्त ऋत्विजस्तस्य शास्त्रतो द्विजसत्तम । तं देशं मापयामासुर्यज्ञायतनकारणात् ॥१०॥

लिए धन दिया कि राजा जीने न पावें ॥५३॥ उतङ्क का प्रिय, अपना और आप लोगों का अत्यन्त प्रिय करने के लिए मैं पिता के वैर का बदला लूंगा ॥५४॥ पंचाशत् अध्याय ।

सौति बोले, ऐसा कहकर और मन्त्रियों के द्वारा अनुमोदित होने पर श्रीमान् राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञ करने की प्रतिज्ञा की ॥१॥ ब्रह्मन् भरतवंश में श्रेष्ठ परीक्षित पुत्र राजा जनमेजय ने ऋत्विक और पुरोहित को बुला कर कार्य सिद्ध करने वाले वचन बोले । वे बोलने में बड़े निपुण हैं । उन्होंने कहा दुरात्मा तक्षक ने मेरे पिता को मारा है । उसका किस प्रकार मैं प्रतीकार कर सकता हूँ वह आप लोग बतलावें । क्या आप लोग वह क्रिया जानते हैं जिससे मैं तक्षक सर्प को बान्धवों के साथ जलती आग में झोंक सकूँ । जिस प्रकार उसने मेरे पिता को विष की आग से जलाया है, उसी तरह मैं भी उस पापी सर्प को आग में जलाना चाहता हूँ । २,३,४,५ । ऋत्विज बोले, राजन् बहुत बड़ा एक यज्ञ है, और देवताओं ने तुम्हारे लिए ही उसे बनाया है । वह "सर्प सत्र" के नाम से प्रसिद्ध है, उसका उल्लेख पुराणों में है ॥६॥ नराधिप उस यज्ञ का करने वाला तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा नहीं है, यह पुराण जाननेवाले कहते हैं । हम लोग भी उस यज्ञ के विषय में जानते हैं ॥७॥ हे श्रेष्ठ ऋत्विजों के ऐसा कहने पर उस राजर्षि ने तक्षक को जला हुआ समझा । उन्होंने समझा कि जलती आग में वह घुस रहा है ॥८॥ अनन्तर, मन्त्र वेत्ता उन ब्राह्मणों से राजा बोले, मैं उस यज्ञ को करूंगा, आप लोग सामग्री मेरे लिए एकत्र करें ॥९॥ सौति बोले, ब्राह्मण श्रेष्ठ, अनन्तर उन ऋत्विजों ने शास्त्रानुसार उस स्थान को मापा, जहाँ यज्ञ भूमि बनायी जाने वाली थी ॥१०॥ वे सभी वेद विद्या

यथावद्वेदविद्वांसः सर्वे बुद्धेः परंगताः । ऋद्धया परमया युक्तमिष्टं द्विजगणैर्युतम् ॥११॥
प्रभूतधनधान्याढ्यमृत्विग्भिः सुनिषेवितम् । निर्माय चापि विधिवद्यज्ञायतनमीप्सितम् ॥१२॥
राजनं दीक्षयामासुः सर्पसत्राप्तये तदा । इदं चासीत्तत्र पूर्वं सर्पसत्रे भविष्यति ॥१३॥
निमित्तं महदुत्पन्नं यज्ञविघ्नकरं तदा । यज्ञस्यायतने तस्मिन् क्रियमाणे वचोऽब्रवीत् ॥१४॥
स्थपतिर्बुद्धिसम्पन्नो वास्तुविद्याविशारदः । इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तदा ॥१५॥
यस्मिन् देशे च काले च मापनेयं प्रवर्तिता । ब्राह्मणं कारणं कृत्वा नायं संस्थास्यते क्रतुः॥१६॥
एतच्छ्रुत्वा तु राजासौ प्राग्दीक्षाकालमब्रवीत् । क्षत्तारं नहि मे कश्चिदज्ञातः प्रविशेदिति॥१७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पसत्रोपक्रमे एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥

सौतिरुवाच

ततः कर्म प्रववृते सर्पसत्रविधानतः । पर्यक्रमश्च विधिवत् स्वे स्वे कर्मणि याजकाः ॥१॥
प्रावृत्य कृष्णवासांसि धूम्रसंरक्तलोचनाः । जुहुवुर्मन्त्रवच्चैव समिद्धं जातवेदसम् ॥२॥
कम्पयन्तश्च सर्वेषामुरगाणां मनांसि च । सर्पानाजुहुवुस्तत्र सर्वानग्निमुखे तदा ॥३॥
ततः सर्पाः समापेतुः प्रदीप्ते हव्यवाहने । विचेष्टमानाः कृपणमाह्वयन्तः परस्परम् ॥४॥
विस्फुरन्तः श्वसन्तश्च वेष्टयन्तः परस्परम् । पुच्छैः शिरोभिश्च भृशं चित्रभानुं प्रपेदिरे ॥५॥

के ज्ञाता और परम बुद्धिमान थे । जो यज्ञ भवन बनाया गया, उसमें बड़ी शोभा थी । बहु मूल्य सामग्रियां थी, ब्राह्मण वहां वर्तमान थे । खूब धन धान्य भरा हुआ था, ऋत्विज लोग वहां वर्तमान थे । इस प्रकार जैसा होना चाहिए वैसा यज्ञ मण्डप बनाया गया ॥११,१२॥ यज्ञ मण्डप बन जाने पर ऋत्विजों ने यज्ञ करने के लिए राजा को दीक्षित किया । उस समय होनेवाले यज्ञ के सम्बन्ध में एक निमित्त ऐसा मालूम पड़ा, जो यज्ञ में विघ्न करने वाला था । जिस समय यज्ञ मण्डप बनाया जा रहा था, उसी समय एक बढ़ई, जो वास्तु विद्या में निपुण था, बुद्धिमान था और पुराणों को जाननेवाला था, उसने कहा था कि जिस समय जिस स्थान में जमीन नापी जा रही है, उससे मालूम होता है कि एक ब्राह्मण के कारण यह यज्ञ बीच ही में रुक जायगा, समाप्त न होगा ॥१३,१४,१५,१६॥ यह सुन कर दीक्षा लेने के पहले राजा ने उस बढ़ई से कहा कि बिना मेरी आज्ञा के यहां कोई आने न पावे ॥१६॥ एक पंचाशत् अध्याय ।

सौति बोले—इसके बाद सर्प यज्ञ का विधि के अनुसार कार्य प्रारम्भ हुआ । यज्ञ कराने वाले अपने अपने काम में लग गये ॥१॥ काले वस्त्र ओढ़ कर मन्त्रों से जलती आग में वे हवन करने लगे । धूएँ से उनकी आंखें लाल हो गयी थीं ॥२॥ समस्त सर्पों के मन को कंपाते हुए वे सर्पों का हवन आग में करने लगे ॥३॥ अनन्तर सर्प जलती हुई आग में छटपटाते हुए और परस्पर एक दूसरे को पुकारते हुए गिरने लगे ॥४॥ कोई फड़कते हुए कोई लम्बी सांस लेते हुए, कोई आपस में लिपटे हुए, कोई सिर की ओर से और कोई माथे की ओर से आग में गिरने लगे ॥५॥ सफेद, काले, नीले, बूढ़े बच्चे सर्प अनेक तरह से चिल्लाते हुए धधकती आग में

श्वेताः कृष्णाश्च नीलाश्च स्थविराः शिशवस्तथा। नदन्तो विविधान्नादान् पेतुर्दीप्ते विभावसौ॥६॥
क्रोशयोजनमात्राहि गोकर्णस्य प्रमाणतः। पतन्त्यजस्रं वेगेन वह्नावग्निमतांवर॥ ७॥
एवं शतसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च। अवशानि विनष्टानि पन्नगानां तु तत्र वै॥ ८॥
तुरगा इव तत्रान्ये हस्तिहस्ता इवापरे। मत्ता इव च मातंगा महाकाया महाबलाः॥ ९॥
उच्चावचाश्च बहवो नानावर्णा विषोल्बणाः। घोराश्च परिघप्रख्या दन्दशूका महाबलाः॥
प्रपेतुरग्नावुरगा मातृवाग्दंडपीडिताः॥ १०॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पसत्रोपक्रमे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः॥

शौनक उवाच

सर्पसत्रे तदा राज्ञः पांडवेयस्य धीमतः। जनमेजयस्य के त्वासन्नृत्विजः परमर्षयः॥१॥
के सदस्या बभूवुश्च सर्पसत्रे सुदारुणे। विषादजननेऽत्यर्थं पन्नगानां महाभये॥२॥
सर्वं विस्तरशस्तात भवाञ्छंसितुमर्हति। सर्पसत्रविधानज्ञविज्ञेयाः के च सूतज॥३॥

सौतिरुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि नामानीह मनीषिणाम्। ये ऋत्विजः सदस्याश्च तस्यासन्नृपतेस्तदा॥४॥
तत्र होता बभूवाथ ब्राह्मणश्चंडभार्गवः। च्यवनस्यान्वये ख्यातो जातो वेदविदांवर॥५॥
उद्गाता ब्राह्मणो वृद्धो विद्वान्कौत्सोऽथ जैमिनिः। ब्रह्माऽभवच्छाङ्र्गरवोऽथाध्वर्युश्चापि पिंगलः॥६॥
सदस्यश्चाभवद् व्यासः पुत्रशिष्यसहायवान्। उद्दालकः प्रमतकः श्वेतकेतुश्चपिंगलः॥७॥

गिरने लगे॥६॥ जो सर्प एक योजन लम्बे थे, वे भी सिमिट कर गौ के कान के बराबर हो गये और वेग से अग्नि में अविरत गिरने लगे॥७॥ इस प्रकार सैकड़ों हजारों लाखों सर्प विवश होकर नष्ट हो गये॥८॥ उनमें बहुत से सर्प घोड़े के समान, बहुत से हाथी की सूँड़ के समान, कई मतवाले हाथी के समान मोटे और बली थे॥९॥ छोटे बड़े अनेक वर्ण के विषैले भयंकर परिघ के समान मोटे और लम्बे महाबली सर्प थे। ये सब माता के शाप से पीड़ित होकर आग में गिरे॥१०॥ द्विपंचाशत् अध्याय।

शौनक बोले, पाण्डुवंशी बुद्धिमान् राजा जनमेजय के यज्ञ में कौन ऋषि ऋत्विज थे॥१॥ उस भयंकर सर्पयज्ञ के कौन सदस्य थे। जो यज्ञ सर्पों को भयभीत और दुखी करनेवाला था॥२॥ तात, यह सब आप विस्तार के साथ कहें। सर्पयज्ञ की विधि जानने वालों में कौन प्रवीण हैं यह आप कहें॥३॥ सौति बोले, उन बुद्धिमानों के नाम मैं कहता हूँ। उस राजा के जो उस समय सदस्य थे और ऋत्विज थे॥४॥ चण्डभार्गव नाम के ब्राह्मण उस यज्ञ में होता थे, जो च्यवन वंश में उत्पन्न हुए थे और श्रेष्ठ वेदज्ञ थे॥५॥ वृद्ध विद्वान् कौत्स और जैमिनि उद्गाता थे। शाङ्र्गरव ब्रह्मा और पिंगल अध्वर्यु हुए थे॥६॥ पुत्रों और शिष्यों के साथ व्यास सदस्य हुए थे। उद्दालक, प्रमतक श्वेतकेतु पिंगल असित, देवल, नारद, पर्वत आत्रेय, कुण्ड, जठर, कालघट वत्सगोत्री

असितो देवलश्चैव नारदः पर्वतस्तथा । आत्रेयः कुण्डजठरौ द्विजः कालघटस्तथा ॥८॥
वात्स्यः श्रुतश्रवा वृद्धो जपस्वाध्यायशीलवान् । कोहलो देवशर्मा च मौद्गल्यः समसौरभः ॥९॥
एते चान्ये च बहवो ब्राह्मणा वेदपारगाः । सदस्याश्चाभवंस्तत्र सत्रे पारिक्षितस्य ह ॥१०॥
जुह्वत्स्वृत्विक्ष्वथ तदा सर्पसत्रे महाक्रतौ । अहयः प्रापतंस्तत्र घोराः प्राणिभयावहाः ॥११॥
वसामेदोवहाः कुल्या नागानां संप्रवर्तिताः । ववौ गन्धश्च तुमुलो दह्यतामनिशं तदा ॥१२॥
पततां चैव नागानां धिष्ठितानां तथाम्बरे । अश्रूयतानिशं शब्दः पच्यतां चाग्निना भृशम् १३
तक्षकस्तु स नागेन्द्रः पुरन्दरनिवेशनम् । गतः श्रुत्वैव राजानं दीक्षितं जनमेजयम् ॥१४॥
ततः सर्वं यथावृत्तमाख्याय भुजगोत्तमः । अगच्छच्छरणं भीत आगस्कृत्वा पुरन्दरम् ॥१५॥
तमिन्द्रः प्राह सुप्रीतो न तवास्तीह तक्षक । भयं नागेन्द्र तस्माद्वै सर्पसत्रात्कदाचन ॥१६॥
प्रसादितो मया पूर्वं तवार्थाय पितामहः । तस्मात्तव भयं नास्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥१७॥

सौतिरुवाच

एवमाश्वासितस्तेन ततः स भुजगोत्तमः । उवास भवने तस्मिन् शक्रस्य मुदितःसुखी ॥१८॥
अजस्रं निपतत्स्वग्नौ नागेषु भृशदुःखितः । अल्पशेषपरीवारो वासुकिः पर्यतप्यत ॥१९॥
कश्मलं चाविशद्घोरं वासुकिं पन्नगोत्तमम् । स घूर्णमानहृदयो भगिनीमिदमब्रवीत् ॥२०॥
दह्यन्त्यंगानि मे भद्रे न दिशः प्रतिभान्ति च । सीदतीव च संमोहात् घूर्णतीव च मे मनः ॥२१

श्रुतश्रवा जो वृद्ध थे और जप स्वाध्याय करने वाले थे, कोहल, देवशर्मा, मौद्गल्य, समसौरभ ये तथा और अनेक ब्राह्मण परीक्षित् पुत्र जनमेजय के यज्ञ में सदस्य थे ॥६,७,८,९,१०॥ उस सर्प महायज्ञ में ऋत्विजों के हवन करने के समय भयंकर सर्प गिरने लगे जो प्राणियों के लिए भयंकर थे ॥११॥ सर्पों की चर्बी और मेदे की धारा बहने लगी और उनके जलने की गन्ध चारों ओर फैलने लगी ॥१२॥ जो सर्प आकाश से गिर रहे थे जो आकाश में वर्तमान थे और जो आग में जल रहे थे, उनके शब्द अविरत सुनायी पड़ रहे थे ॥१३॥ राजा जनमेजय ने यज्ञ की दीक्षा ली है यह सुन कर सर्पराज तक्षक इन्द्र के घर चला गया ॥१४॥ अपराध से डरा हुआ तक्षक सब बातें यथावत् बतलाकर इन्द्र की शरणागत हुआ ॥१५॥ इन्द्र ने प्रसन्न होकर उससे कहा, तक्षक, उस सर्पयज्ञ से तुम्हें किसी तरह का भय कभी न होगा ॥१६॥ तुम्हारे लिए मैंने ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया है । इस कारण तुम भय छोड़ दो, मन का दुःख हटा दो ॥१७॥ सौति बोले, इस प्रकार इन्द्र के ढाढ़स देने पर वह सर्पराज प्रसन्न होकर इन्द्र के यहां रहने लगा ॥१८॥ निरन्तर सर्पों के आग में गिरने के कारण सर्पराज वासुकि बहुत दुःखी हुए, उनका परिवार थोड़ा ही बच रहा । वे अधिक दुःखी हुए ॥१७॥ सर्पराज वासुकि घबड़ा गये उनका कलेजा हिलने लगा, उन्होंने अपनी बहिन से कहा ॥२०॥ भद्रे, मेरे अंग जल रहे हैं, कुछ दीख नहीं पड़ता । व्याकुलता के कारण मैं निश्चेष्ट हो गया हूँ, मेरा मन घूम रहा है ॥२१॥ मेरी आँखें चक्कर खा

दृष्टिर्भ्राम्यति मेऽतीव हृदयं दीर्यतीव च । पतिष्याम्यवशोऽद्याहं तस्मिन्दीप्ते विभावसौ ॥२२॥
पारिक्षितस्य यज्ञोऽसौ वर्ततेऽस्मज्जिघांसया । व्यक्तं मयाऽपि गन्तव्यं प्रेतराजनिवेशनम् ॥२३॥
अयं स कालः सम्प्राप्तो यदर्थमसि मे स्वसः। जरत्कारौ मया दत्ता त्रायस्वास्मान्सबान्धवान् ॥२४॥
आस्तीकः किल यज्ञं तं वर्तन्तं भुजगोत्तमे । प्रतिषेत्स्यति मां पूर्वं स्वयमाह पितामहः ॥२५॥
तद्वत्से ब्रूहि वत्सं स्वं कुमारं वृद्धसंमतम् । ममाद्य त्वं सभृत्यस्य मोक्षार्थं वेदवित्तमम् ॥२६॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पसत्रे वासुकिवाक्ये त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥

सौतिरुवाच ।
तत आहूय पुत्रं स्वं जरत्कारुर्भुजंगमा । वासुकेर्नागराजस्य वचनादिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
अहं तव पितुः पुत्र भ्रात्रा दत्ता निमित्ततः । कालः स चायं संप्राप्तस्तत्कुरुष्व यथातथम् ॥२॥
आस्तीक उवाच ।
किं निमित्तं मम पितुर्दत्ता त्वं मातुलेन मे । तन्ममाचक्ष्व तत्वेन श्रुत्वा कर्तास्मि तत्तथा ॥३॥
सौतिरुवाच ।
तत आचष्ट सा तस्मै बान्धवानां हितैषिणी । भगिनी नागराजस्य जरत्कारुरविक्लवा ॥४॥
जरत्कारुरुवाच ।
पन्नगानामशेषाणां माता कद्रूरिति श्रुता । तया शप्ता रुषितया सुता यस्मान्निबोध तत् ॥५॥

रही हैं, हृदय फटता जा रहा है, मैं भी उस जलती हुई आग में गिरने ही वाला हूँ ॥२२॥ परीक्षित् के पुत्र जनमेजय का यज्ञ अभी हो रहा है, जो हम लोगों की हिंसा करने के लिए किया जा रहा है । निश्चय मुझे भी यमराज के घर जाना पड़ेगा ॥२३॥ बहन, यही वह समय आया है, जिसके लिए मैंने तुम्हें पहले जरत्कारु को दिया था, बान्धवों के साथ मेरी तुम रक्षा करो ॥२४॥ सर्पिणी, वह जो यज्ञ हो रहा है, उसे आस्तीक रोक सकता है यह बात मुझसे स्वयं ब्रह्मा ने कही है । ॥२५॥ वत्से, इस कारण तुम अपने पुत्र से कहो, जो बूढ़ों को प्रिय है । परिवार के साथ मेरी रक्षा के लिए उस वेदज्ञ से तुम कहो ॥२६॥ त्रिपंचाशत् अध्याय ।

—o—

आस्तीक और उनकी माता का संवाद । वासुकि को धैर्य देना आस्तीक का सर्प यज्ञ में जाना ।

सौति बोले—अनन्तर पुत्र को बुलाकर वह सर्पिणी नागराज वासुकि के कहने से उससे यह बोली ॥१॥ पुत्र, मेरे भाई ने किसी कारण से मुझे तुम्हारे पिता को दिया था अब वह समय आ गया, तुम अब उचित उपाय करो ॥२॥ आस्तीक बोला, किस कारण मेरे मामा ने तुम्हें मेरे पिता को दिया था । वह सब तुम ठीक ठीक कहो, सुनकर उसीके अनुसार मैं करूँगा, ॥३॥ सौति बोले, अनन्तर अपने बान्धवों का हित चाहनेवाली नागराज की बहन ने बिना घबड़ाये सब बातें उससे कहीं ॥४॥ जरत्कारु बोली, समस्त सर्पों की माता कद्रू हैं यह बात तुमको मालूम है । उसने क्रोध करके जिस कारण पुत्रों को शाप दिया वह सुनो ॥५॥ उसने कहा—विनता

उच्चैःश्रवाः सोऽश्वराजो यन्मिथ्या न कृतो मम् । विनतार्थे च पणिते दासभावाय पुत्रकाः ॥६॥
जनमेजयस्य वो यज्ञे धक्षत्यनिलसारथिः । तत्र पञ्चत्वमापन्नाः प्रेतलोकं गमिष्यथ ॥ ७ ॥
तां च शप्तवतीं देवः साक्षाल्लोकपितामहः । एवमस्त्विति तद्वाक्यं प्रोवाचानुमुमोद च ॥ ८ ॥
वासुकिश्चापि तच्छ्रुत्वा पितामहवचस्तदा । अमृते मथिते तात देवाञ्छरणमीयिवान् ॥ ९ ॥
सिद्धार्थाश्च सुराः सर्वे प्राप्यामृतमनुत्तमम् । भ्रातरं मे पुरस्कृत्य पितामहमुपागमन् ॥ १० ॥
ते तं प्रसादयामासुः सुराः सर्वेऽब्जसंभवम् । राज्ञा वासुकिना सार्धं शापोऽसौ न भवेदिति॥११॥

देवा ऊचुः ।

वासुकिर्नागराजोऽयं दुःखितो ज्ञातिकारणात् । अभिशापः स मातुस्तु भगवन्न भवेत्कथम्॥१२॥

ब्रह्मोवाच ।

जरत्कारुर्जरत्कारुं यां भार्यां समवाप्स्यति । तत्र जातो द्विजःशापान्मोक्षयिष्यति पन्नगान् ॥१३॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वासुकिः पन्नगोत्तमः । प्रादान्मामसरप्रख्य तव पित्रे महात्मने ॥ १४ ॥
प्रागेवानागते काले तस्मात्त्वं मय्यजायथाः । अयं स कालः सम्प्राप्तो मयात्वं त्रातुमर्हसि ॥१५॥
भ्रातरं चापि मे तस्मात्त्रातुमर्हसि पावकात् । न मोघं तु कृतं तत्स्याद्यदहं तव धीमते ॥
पित्रे दत्ता विमोक्षार्थं कथं वा पुत्र मन्यसे ॥ १६ ॥ सौतिरुवाच ।

से दासी बनने की मैंने बाजी लगायी थी, उस समय तुम लोगों ने अश्वराज उच्चैःश्रवा का रूप बदला नहीं, उसकी पूछ में लिपट कर उसे काला नहीं बनाया ॥६॥ इस कारण जनमेजय के यज्ञ में तुम लोगों को आग जलावेगी और तुम लोग मर कर प्रेत लोक में जाओगे ॥७॥ उसके शाप देने पर लोकपितामह ब्रह्माने भी "ठीक है" ऐसा कहकर उसका अनुमोदन किया ॥८॥ वासुकि ने भी पितामह का वह वचन सुन रखा था । समुद्र मथन होने के पश्चात् वे देवताओं की शरण गये ॥९॥ अमृत मिल जाने से देवताओं का मनोरथ पूरा हो गया था, वे प्रसन्न थे । वे मेरे भाई को साथ लेकर ब्रह्मा के पास गये ॥१०॥ उन देवताओं ने राजा वासुकि के साथ ब्रह्मा को प्रसन्न किया, जिससे यह शाप न लगे, इसका फल सर्पों को भोगना न पड़े ॥११॥ देवता बोले, भगवन् ये नागराज वासुकि अपने बान्धवों के लिए दुःखी हैं । माता का शाप इन लोगों को न लगे इसके लिए क्या उपाय किया जाय ॥१२॥ ब्रह्मा बोले, जरत्कारु नामके ऋषि जरत्कारु नामकी स्त्री को व्याहेंगे, उनसे जो ब्राह्मण उत्पन्न होगा, वही सर्पों की रक्षा कर सकेगा ॥१३॥ यह वचन सुनकर सर्पराज वासुकि ने, हे देवोपम, तुम्हारे पिता महात्मा को मुझे दिया ॥१४॥ उन ऋषिसे तुम सर्पयज्ञ के पहले ही मुझ से उत्पन्न हुए । आज वह समय आया है, तुम हम लोगों की रक्षा करो ॥१५॥ उस आग से मेरे भाई की भी रक्षा करो, ऐसा करने से अपनी रक्षा के लिए जो तुम्हारे पिता को दान में मुझे दिया था, वह व्यर्थ न होगा । बेटा, तुम्हारी क्या राय है ॥१६॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सोऽस्तीको मातरं तदा । अब्रवीद्दुःखसन्तप्तं वासुकिं जीवयन्निव ॥१७॥
अहं त्वां मोक्षयिष्यामि वासुके पन्नगोत्तम । तस्माच्छापान्महासत्व सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१८॥
भव स्वस्थमना नाग न हि ते विद्यते भयम् । प्रयतिष्ये तथा राजन्यथाश्रेयो भविष्यति ॥१९॥
न मे वागनृतं प्राह स्वैरेष्वपि ततोन्यथा । तं वै नृपवरं गत्वा दीक्षितं जनमेजयम् ॥२०॥
वाग्भिर्मंगलयुक्ताभिस्तोषयिष्येऽद्य मातुल । यथा स यज्ञो नृपतेर्निवर्तिष्यति सत्तम ॥२१॥
स सम्भावय नागेन्द्र मयि सर्वं महामते । न ते मयि मनो जातु मिथ्या भवितुमर्हति ॥२२॥
वासुकिरुवाच ।
आस्तीक परिघूर्णामि हृदयं मे विदीर्यते । दिशो न प्रतिजानामि ब्रह्मदंडनिपीडितः ॥२३॥
आस्तीक उवाच ।
न सन्तापस्त्वया कार्यः कथंचित्पन्नगोत्तम । प्रदीप्ताग्नेः समुत्पन्नं नाशयिष्यामि ते भयम् ॥२४॥
ब्रह्मदंडं महाघोरं कालाग्निसमतेजसम् । नाशयिष्यामि माऽत्र त्वं भयं कार्षीः कथंचन॥२५॥
सौतिरुवाच ।
ततः सवासुकेर्घोरमपनीय मनोज्वरम् । आधाय चात्मनोऽगेषु जगाम त्वरितोभृशम् ॥२६॥
जनमेजस्य तं यज्ञं सर्वैः समुदितैर्गुणैः । मोक्षाय भुजगेन्द्राणामास्तीको द्विजसत्तमः ॥ २७ ॥
स गत्वापश्यदास्तीको यज्ञायतनमुत्तमम् । वृतं सदस्यैर्बहुभिः सूर्यवह्निसमप्रभैः ॥ २८ ॥
स तत्र वारितो द्वाःस्थैः प्रविशन्द्विजसत्तमः । अभितुष्टाव तं यज्ञं प्रवेशार्थी परंतपः ॥२९॥

सौति बोले, आस्तीक ने माता की बातें स्वीकार कीं। दुःख से पीड़ित वासुकि को जीवन दान देते हुए वे बोले, सर्प राज वासुकि महाप्राण, उस शाप से मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा, यह तुमसे मैं सच सच कहता हूँ ॥१७,१८॥ सर्प, तुम निश्चिन्त हो जाओ तुम्हें कोई भय नहीं हो। मैं वैसा प्रयत्न करूंगा जिससे तुम्हारा कल्याण हो ॥१९॥ साधारण बात चीत में भी मेरी जीभ झूठ नहीं बोलती, फिर ऐसे समय में वह झूठ कैसे बोलेगी। यज्ञ में दीक्षित उन राजा के यहां जाकर मंगलमयी बातों से मैं उन्हें सन्तुष्ट करूंगा। मातुल, जिससे राजा का वह यज्ञ बन्द हो जायगा ॥२०,२१॥ बुद्धिमान् नागराज, तुम मुझसे इस बात की आशा रखो। मेरे मनमें कभी झूठी बात नहीं आ सकती ॥२२॥ वासुकि बोले, आस्तीक, मैं घूम रहा हूं हृदय फट रहा है, शाप के कारण मुझे दिशाओं का ज्ञान नहीं है ॥२३॥ आस्तीक बोले, नागराज, तुम किसी तरह भी शोक न करो, जलती आग से तुम्हें जो भय हो गया है, उसे मैं नष्ट कर दूंगा ॥२४॥ अग्नि के समान तेजस्वी महा भयंकर जो यह शाप तुम पर लगा है उसको मैं नष्ट कर दूंगा, तुम किसी प्रकार का भय न करो ॥२५॥

वासुकि बोले, अनन्तर वासुकि का भयंकर मानसिक कष्ट हटाकर और स्वयं उसको अपने शरीर में धारण कर अर्थात् वासुकि का दुःख स्वयं लेकर आस्तीक शीघ्र वहां से सर्पों की

स प्राप्य यज्ञायतनं वरिष्ठं द्विजोत्तमः पुण्यकृतां वरिष्ठः ।
तुष्टाव राजानमनन्तकीर्तिमृत्विक्सदस्यांश्च तथैव चाग्नीन् ॥३०॥

इतिश्रीमहाभारते आदिपर्वणि अस्तीकपर्वणि सर्पसत्रे आस्तीकागमने चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥

आस्तीक उवाच ।

सोमस्य यज्ञो वरुणस्य यज्ञः प्रजापतेर्यज्ञ आसीत्प्रयागे ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥१॥
शक्रस्य यज्ञः शतसंख्य उक्तस्तथापरं तुल्यसंख्यं शतं वै ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥२॥
यमस्य यज्ञो हरिमेधसश्च यथा यज्ञो रन्तिदेवस्य राज्ञः ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥३॥
गयस्य यज्ञः शशविन्दोश्च राज्ञो यज्ञस्तथा वैश्रवणस्य राज्ञः ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारतग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥४॥
नृगस्य यज्ञस्त्वजमीढस्य चासीद्यथा यज्ञो दाशरथेश्च राज्ञः ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारतग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥५॥

रक्षा करने के लिए जनमेजय के यज्ञ में गया, जिसमें समस्त सामग्रियां वर्तमान थीं। ॥२६,२७॥ वहां जाकर आस्तीक ने सुन्दर यज्ञ मण्डप देखा, जहां सूर्य और अग्नि के समान बहुत से सदस्य बैठे थे ॥२८॥ उस ब्राह्मणश्रेष्ठ को द्वारपालों ने भीतर जाने से रोका। वह भीतर जाने के लिए उस यज्ञ का स्तुति करने लगा ॥२९॥ श्रेष्ठ, पुण्यात्मा वह द्विजोत्तम उत्तम यज्ञमण्डप में जाकर अनन्त कीर्ति राजा की, ऋत्विजों, सदस्यों और अग्नि की स्तुति करने लगा ॥३०॥

चतुः पंचाशत् अध्याय ।

—o—

आस्तीक के द्वारा जनमेजय के यज्ञ की प्रशंसा ।

प्रयाग में जिस प्रकार चन्द्रमा का यज्ञ हुआ था, वरुण का यज्ञ हुआ था और प्रजापति का यज्ञ हुआ था, हे भरतकुलश्रेष्ठ उसी प्रकार यह आपका भी यज्ञ है, यह हमारे प्रियजनों का कल्याणकारी हो ॥१॥ इन्द्र के सौ यज्ञ कहे गये हैं, क्योंकि वे शतक्रतु कहे जाते हैं। उतनी ही संख्या में सौ और यज्ञ हो, उनके समान तुम्हारा यह यज्ञ है। हे भरतकुल श्रेष्ठ जनमेजय, तुम्हारा यह यज्ञ हमारे प्रिय जनोंका कल्याणकारी हो ॥३॥ राजा गय का यज्ञ हुआ था, राजा शशिविन्दु का यज्ञ हुआ था, और राजा वैश्रवण का यज्ञ हुआ था। हे भरतकुलश्रेष्ठ आपका यह यज्ञ भी वैसा ही है, यह हमारे प्रियजनों का कल्याणकारी हो ॥४॥ जैसा राजा नृग का यज्ञ हुआ था, अजमीढ़ का यज्ञ हुआ था और राजा रामचन्द्र का यज्ञ हुआ था, हे भरतकुल श्रेष्ठ जनमेजय, आपका यह यज्ञ भी वैसा ही है। यह हमारे प्रियजनों का कल्याणकारी हो ॥५॥ स्वर्ग में धर्मराज के पुत्र युधिष्ठिर का यज्ञ हुआ था ऐसा सुना

यज्ञः श्रुतो दिवि देवस्य सूनोर्युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥६॥
कृष्णस्य यज्ञः सत्यवत्याः सुतस्य स्वयं च कर्म प्रचकार यत्र ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥७॥
इमे च ते सूर्यसमानवर्चसः समासते वृत्रहणः क्रतुं यथा ।
नैषां ज्ञातुं विद्यते ज्ञानमद्य दत्तं येभ्यो न प्रणश्येत्कदाचित् ॥८॥
ऋत्विक्समो नास्ति लोकेषु चैव द्वैपायनेनेति विनिश्चितं मे ।
एतस्य शिष्या हि क्षितिं संचरन्ति सर्वर्त्विजः कर्मसु स्वेषु दक्षा ॥९॥
विभावसुश्चित्रभानुर्महात्मा हिरण्यरेता हुतभुक्कृष्णवर्त्मा ।
प्रदक्षिणावर्तशिखः प्रदीप्तो हव्यंन्त वेदं हुतभुग्वष्टि देवः ॥१०॥
नेह त्वदन्यो विद्यते जीवलोके समोनृपः पालयिता प्रजानाम् ।
धृत्या च ते प्रीतमनाः सदाहं त्वं वा वरुणो धर्मराजो यमो वा ॥११॥
शक्रः साक्षाद्वज्रपाणिर्यथेह त्राता लोके स्मिंस्त्वं तथेह प्रजानाम् ।
मतस्त्वं नः पुरुषेन्द्रेह लोके न च त्वदन्यो भूपतिरस्ति जज्ञे ॥१२॥

जाता है, और राजा अजमीढ़ का यज्ञ हुआ था, आपका यह यज्ञ वैसा ही है, हे भरतकुल श्रेष्ठ जनमेजय, आपका यह यज्ञ हमारे प्रियजनों का कल्याण कारी हो ॥६॥ सत्यवती पुत्र कृष्ण द्वैपायन का यज्ञ हुआ था, उस यज्ञ में स्वयं उन्होंने कर्म किये थे, भरतकुल श्रेष्ठ जनमेजय, आप का यह यज्ञ भी वैसा ही है, यह यज्ञ हमारे प्रियजनों का कल्याणकारी हो ॥७॥ सूर्य के समान तेजस्वी ये आपके यज्ञ में बैठे हैं, जिस प्रकार इन्द्र के यज्ञ में बैठते हैं। अब इनको कुछ जानना नहीं है, ये सब कुछ जान चुके हैं, इनको दान देने का फल कभी नष्ट न होगा ॥८॥ यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि द्वैपायन के समान ऋत्विक् इस संसार में कोई नहीं है, इनके शिष्य पृथिवी में फैले हैं, सभी ऋत्विज अपने अपने काम में निपुण हैं। अर्थात् द्वैपायन के शिष्य आपके ऋत्विज हैं और वे अपने काम में दक्ष हैं ॥९॥

महात्मा अग्नि चित्रभानु हैं, उनकी किरणें रंगविरंगी हैं हिरण्यरेता है, हवन भोजन करने वाले हैं, कृष्णवर्त्मा हैं, वे जिस राह चलते हैं वह काला हो जाता है। उनकी ज्वाला दक्षिणावर्त होकर निकलती हैं। वे देव प्रदीप्त होकर तुम्हारी दी हुई हवि की कामना करते हैं ॥१०॥

राजन्, इस संसार में आपके समान प्रजा का पालन करनेवाला दूसरा नहीं है। तुम्हारा धैर्य देखकर मैं सदा प्रसन्न हूँ। राजा तुम हो वरुण हैं और धर्मराज यम हैं ॥११॥ वज्रपाणि इन्द्र के समान तुम इस लोक में प्रजाओं के रक्षक हो। इस लोक में मैं तुम्हें पुरुषेन्द्र समझता हूँ। तुम्हारे समान कोई राजा नहीं है, और पहले भी उत्पन्न नहीं हुआ है ॥१२॥ तुम

खट्वांगनाभागदिलीपकल्प ययातिमान्धातृसमप्रभाव ।
आदित्यतेजःप्रतिमानतेजा भीष्मो यथा राजसि सुव्रतस्त्वम् ॥१३॥
वाल्मीकिवत्ते निभृतं स्ववीर्यं वसिष्ठवत्ते नियतश्च कोपः ।
प्रभुत्वमिन्द्रत्वसमं मतं मे द्युतिश्च नारायणवद्विभाति ॥१४॥
यमो यथा धर्मविनिश्चयज्ञः कृष्णो यथा सर्वगुणोपपन्नः ।
श्रियां निवासोऽसि यथा वसूनां निधानभूतोऽसि तथा क्रतूनाम् ॥१५॥
दम्भोद्भवेनासि समो बलेन रामो यथा शास्त्रविदस्त्रविच्च ।
और्वत्रिताभ्यामसि तुल्यतेजा दुष्प्रेक्षणीयोऽसि भगीरथेन ॥१६॥
सौतिरुवाच ।
एवं स्तुताः सर्व एव प्रसन्ना राजा सदस्या ऋत्विजो हव्यवाहः ।
तेषां दृष्ट्वा भावितानींगितानि प्रोवाच राजा जनमेजयोऽथ ॥१७॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पसत्रे आस्तीककृतराजस्तवे पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः
जनमेजय उवाच ।
बालोऽप्ययं स्थविर इवावभाषते नायं बालः स्थविरोऽयं मतो मे ।
इच्छाम्यहं वरमस्मैप्रदातुं तन्मे विप्राः संविदध्वं यथावत् ॥१॥

खट्वाङ्ग नाभाग और दिलीप के समान हो । ययाति और मान्धाता के समान तुम्हारा प्रभाव है । सूर्य के तेज के समान तुम्हारा तेज है । भीष्म के समान व्रत में दृढ़ तुम दीप्तिमान् हो रहे हो ॥१३॥ वालमीकि के समान तुमने अपना पराक्रम छिपा रखा है, वसिष्ठ के समान तुम अपना क्रोध छिपा सकते हो । इन्द्र के समान तुम्हारा प्रभुत्व है और नारायण के समान तुम्हारी दीप्ति है ॥१४॥ यमराज के समान तुम धर्म का निर्णय करने वाले हो, कृष्ण के समान समस्त गुणों से युक्त हो, आठों वसुओं की शोभा तुममें वर्तमान है और तुम यज्ञों के भाण्डार हो ॥१५॥ दम्भ के पुत्र के समान तुम बली हो, परशुराम जिस प्रकार शास्त्रवेत्ता थे वैसे ही तुम भी शास्त्रवेत्ता हो, और्व त्रित ऋषियों के समान तुम तेजस्वी हो और भगीरथ के समान तेज के कारण तुम्हारी ओर कोई देख नहीं सकता ॥१६॥

सौति बोले— इस प्रकार स्तुति करने पर सभी प्रसन्न हुए । राजा, सदस्य, ऋत्विज और अग्नि सभी प्रसन्न हुए । इनकी चेष्टाओं को, भावों को देखकर राजा जनमेजय बोले ॥१७॥

पंच पंचाशत् अध्याय

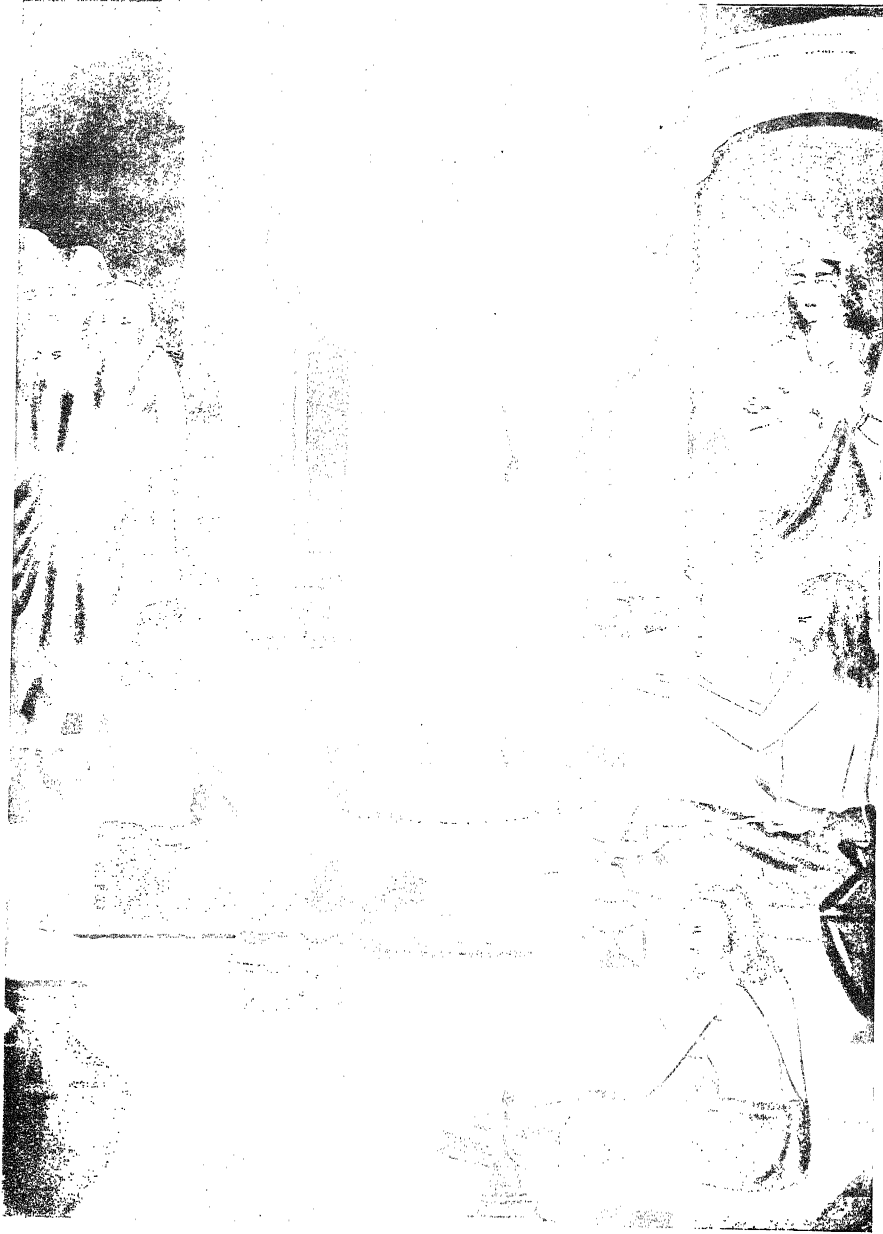
—o—

प्रशंसा से प्रसन्न जनमेजय का ऋत्विजों से परामर्श, यज्ञ में इन्द्र के साथ तक्षक का आना, भय से इन्द्र का भाग जाना और तक्षक का अग्नि के पास आना, यज्ञ समाप्त करने का वर मांगना ।

जनमेजय बोले—यह बालक होने पर भी वृद्ध के समान बोलता है, यह बालक नहीं है, किन्तु वृद्ध है ऐसा मैं समझता हूं । मैं इसको वर देना चाहता हूँ । ब्राह्मणों, आप लोग मुझे

सदस्या ऊचुः ।
बालोऽपि विप्रो मान्य एवेह राज्ञां यश्चाविद्वान्यश्चविद्वान्यथावत् ।
सर्वान्कामांस्त्वत्त एवार्हतेऽद्य यथा च नस्तक्षक एति शीघ्रम् ॥२॥
सौतिरुवाच ।
व्याहर्तुकामे वरदे नृपे द्विजं वरं वृणीष्वेति ततोऽभ्युवाच ।
होता वाक्यं नातिहृष्टान्तरात्मा कर्मण्यस्मिंस्तक्षको नैति तावत् ॥३॥
जनमेजय उवाच ।
यथा चेदं कर्म समाप्यते मे यथा च वै तक्षक एति शीघ्रम् ।
तथा भवन्तः प्रयतन्तु सर्वे परं शक्त्या स हि मे विद्विषाणः ॥४॥
ऋत्विज ऊचुः ।
यथा शास्त्राणि नः प्राहुर्यथा शंसति पावकः । इन्द्रस्य भवने राजंस्तक्षको भयपीडितः ॥५॥
यथा सूतो लोहिताक्षो महात्मा पौराणिको वेदितवान्पुरस्तात् ।
स राजानं प्राह पृष्टस्तदानीं यथाहुर्विप्रास्तद्वेदेतन्नृदेव ॥६॥
पुराणमागम्य ततो ब्रवीम्यहं दत्तं तस्मै वरमिन्द्रेण राजन्
वसेऽह त्वं मत्सकाशे सुगुप्तो न पावकस्त्वां प्रदहिष्यतीति ॥७॥

सम्मति दें ॥१॥ सदस्य बोले, बालक ब्राह्मण का भी राजाओं को सम्मान करना ही चाहिए। उनमें जो विद्वान् हों उनका और विधिपूर्वक आदर करना चाहिए इनके समस्त मनोरथों को पूर्ति तुम्हें ही करनी चाहिए । तक्षक भी अब शीघ्र ही आता है। अर्थात् तुम्हारा भी मनोरथ अब शीघ्र ही पूरा होनेवाला है। अतएव तुम्हें उदारता पूर्वक इस ब्राह्मण का सम्मान करना चाहिए ॥२॥ वर देने के लिए उद्यत राजा उससे कहना चाहते थे कि वर मांगो, इसी समय बहुत प्रसन्न होकर नहीं, किन्तु कुछ रुखाई के साथ होता बोले। जब तक तक्षक नहीं आता है तबतक ठहरिए ॥३॥ जनमेजय बोले, जिस प्रकार हमारा यह कम समाप्त हो, जिस प्रकार तक्षक शीघ्र ही आ जाय, पूरी शक्ति से आप लोग वैसा प्रयत्न करें क्योंकि वही मेरा प्रधान विद्वेषी है ॥४॥ ऋत्विज बोले, शास्त्रों ने हम लोगों को जैसा बतलाया है और जिस प्रकार अग्नि देव बतला रहे हैं, उससे मालूम होता है कि तक्षक इन्द्र के यहां है ॥५॥ राजा ने उस पौराणिक महात्मा सूत से कहा, जिसनेइस यज्ञ के सम्बन्ध में पहले ही कहा था। उन्होंने कहा कि ये ब्राह्मण जो कह रहे हैं वह ठीक है, ॥६॥ पुराणों के द्वारा जानकर मैं कहता हूँ राजन्, इन्द्र ने उसे वर दिया है कि तुम यहां मेरे पास रक्षित होकर रहो। आग तुमको नहीं जला सकती ॥७॥ यह सुनकर यज्ञ में दीक्षित राजा बहुत दुःखी हुए। उन्होंने कर्म के लिए होता को ताकीद की, होता ने सावधान होकर मंत्रों से हवन किया, अनन्तर इन्द्र ही वहां से चले, मन्त्र के प्रभाव से विवश होकर इन्द्र को चलना



राजा जनमेजयका नागयज्ञ

[चित्रकार—पी० मुकर्जी

एतच्छ्रुत्वा दीक्षितस्तप्यमान आस्ते होतारं चोदयन्कर्म काले ।
होता च यत्तोऽस्याजुहावाथ मन्त्रैरथो महेन्द्रः स्वयमाजगाम ॥८॥
विमानमारुह्य महानुभावः सर्वैर्देवैः परिसंस्तूयमानः ।
बलाहकैश्चाप्यनुगम्यमानो विद्याधरैरप्सरसां गणैश्च ॥९॥
तस्योत्तरीये निहितः स नागो भयोद्विग्नः शर्म नैवाभ्यगच्छत् ।
ततो राजा मन्त्रविदोऽब्रवीत्पुनः क्रुद्धो वाक्यं तक्षकस्यान्तमिच्छन् ॥१०॥
जनमेजय उवाच ।
इन्द्रस्यभवने विप्रा यदि नागः स तक्षकः । तमिन्द्रेणैव सहितं पातयध्वं विभावसौ ॥११॥
सौतिरुवाच ।
जनमेजयेन राज्ञा तु नोदितस्तक्षकं प्रति । होता जुहाव तत्रस्थं तक्षकं पन्नगं तथा ॥१२॥
हूयमाने तथा चैव तक्षकः सपुरन्दरः । आकाशे ददृशे तत्र क्षणेन व्यथितस्तदा ॥१३॥
पुरन्दरस्तु तं यज्ञं दृष्ट्वोरुभयमाविशत् । हित्वा तु तक्षकं त्रस्तः स्वमेव भवनं ययौ ॥१४॥
इन्द्रे गते तु राजेन्द्र तक्षको भयमोहितः । मन्त्रशक्त्या पावकार्चिस्समीपमवशो गतः ॥१५॥
ऋत्विज ऊचुः ।
वर्तते तव राजेन्द्र कर्मैतद्विधिवत्प्रभो । अस्मै तु द्विजमुख्याय वरं त्वं दातुमर्हसि ॥१६॥
जनमेजय उवाच ।
बालाभिरूपस्य तवाप्रमेय वरं प्रयच्छामि यथानुरूपम् ।

पड़ा ॥८॥ महानुभाव इन्द्र विमान पर चढ़कर चले, समस्त देवताओं ने उनकी स्तुति की । मेघ विद्याधर और अप्सराएँ उनके पीछे पीछे चलीं ॥९॥ इन्द्र के दुपट्टे में वह सर्प छिपा हुआ था, तौ भी घबड़ा रहा था, उसे शान्ति नहीं मिलती थी । अनन्तर क्रोध करके तक्षक के अन्त करने की इच्छा से राजा ने मन्त्रवेत्ताओं से कहा, ॥१०॥ जनमेजय बोले, ब्राह्मणों, यदि वह तक्षक सर्प इन्द्र के यहां हो तो इन्द्र के साथ ही आप लोग उसे आग में जला दो ॥११॥ राजा जनमेजय के प्रेरित करने पर, होता ने इन्द्र भवन में वर्तमान तक्षक को उद्देश्य करके हवन किया ॥१२॥ उस प्रकार हवन करने पर इन्द्र के साथ आकाश में तक्षक शीघ्र दीख पड़ा और वह बहुत दुःखी हुआ, ॥१३॥ उस यज्ञ को देखकर इन्द्र बहुत ही भयभीत हुआ । वह डर गया और तक्षक को छोड़कर घर लौट गया ॥१४॥ इन्द्र के चले जाने पर तक्षक भय के कारण बेहोश हो गया, मन्त्र के प्रभाव अपने से विवश होकर वह अग्नि ज्वाला के समीप आया ॥१५॥ ऋत्विज बोले, राजेन्द्र, तुम्हारा यह कार्य विधि पूर्वक हो रहा है । अब तुम्हें इस ब्राह्मण श्रेष्ठ को वर देना चाहिए ॥१६॥ जनमेजय बोले, बालक, तुम जैसे श्रेष्ठ हो तुमको वर भी मैं ऐसा ही देना चाहता हूँ, जो तुम्हारे मनमें अभिमत हो, मनोरथ हो, वह माँगो वह मैं तुमको दूंगा चाहे वह देने लायक न

वृणीष्व यत्तेऽभिमतं हृदि स्थितं तत्ते प्रदास्याम्यपि चेददेयम् ॥१७॥

ऋत्विज ऊचुः ।

अयमायाति तूर्णं स तक्षकस्ते वशं नृप । श्रूयतेऽस्य महान्नादो नदतो भैरवं रवम् ॥१८॥

नूनं मुक्तो वज्रभृता स नागो भ्रष्टो नाकान्मन्त्रविस्रस्तकायः ।

घूर्णन्नाकाशे नष्टसंज्ञोऽभ्युपैति तीव्रान्निःश्वासान्निःश्वसन्पन्नगेन्द्रः ॥१९॥

सौतिरुवाच ।

पतिष्यमाणे नागेन्द्रे तक्षके जातवेदसि । इदमन्तरमित्येवं तदाऽऽस्तीकोऽभ्यचोदयत् ॥२०॥

आस्तीक उवाच ।

वरं ददासि चेन्मह्यं वृणोमि जनमेजय । सत्रं ते विरमत्वेतन्न पतेयुरिहोरगाः ॥२१॥

एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मन्पारिक्षितस्तु सः । नातिहृष्टमनश्चेदमास्तीकं वाक्यमब्रवीत् ॥२२॥

सुवर्णं रजतं गाश्च यच्चान्यन्मन्यसे विभो । तत्ते दद्यां वरं विप्र न निवर्तेत्क्रतुर्मम ॥२३॥

आस्तीक उवाच ।

सुवर्णं रजतं गाश्च न त्वां राजन्वृणोम्यहम् । सत्रं ते विरमत्वेतत्स्वस्ति मातृकुलस्य नः ॥२४॥

सौतिरुवाच ।

आस्तीकेनैव मुक्तस्तु राजा पारिक्षितस्तदा । पुनः पुनरुवाचेदमास्तीकं वदतांवरः ॥२५॥

अन्यं वरय भद्रं ते वरं द्विजवरोत्तम । अयाचत न चाप्यन्यं वरं स भृगुनन्दन ॥२६॥

भी हो ॥१७॥ ऋत्विज बोले, राजन्, यह तक्षक शीघ्र ही तुम्हारे वश में आ रहा है। उसके चिल्लाने के हुंकार का भयंकर शब्द सुनायी पड़ रहा है ॥१८॥ निश्चय उस सर्प को वज्रधारी इन्द्रने छोड़ दिया है। मन्त्र के प्रभाव से उसका शरीर शिथिल हो गया है और वह स्वर्ग से गिर चुका है, यह देखिए वह वेहोश होकर आकाश में घूम रहा है और वह सर्पराज लम्बी सांसे ले रहा है ॥१९॥

सौति बोले, जब सर्पराज तक्षक गिर रहा था, उसी समय अवसर देखकर आस्तीक ने राजा से कहा ॥२०॥ आस्तीक बोले, राजन् यदि आप मुझे वर दे रहे हैं, तो मैं वर मांगता हूँ। अब आपका यह यज्ञ बन्द हो जाय, अब इसमे सांप भस्म नहो ॥२१॥ ब्रह्मन्, आस्तीक के ऐसा कहने पर वे परीक्षित के पुत्र जनमेजय बहुत प्रसन्न नहीं हुए और वे आस्तीक से बोले ॥२२॥ सोना चाँदी, गौ अथवा और जो कुछ तुम उचित समझो, वह मैं तुमको दूंगा, पर ब्राह्मण, यह यज्ञ बन्द नहीं हो सकता ॥२३॥ आस्तीक बोले,राजन्, सोना चांदी और गौ यह कुछ भी मैं तुमसे नहीं मांगता, तुम्हारा यह यज्ञ रुक जाय, जिससे मेरी मेरी माता के कुलवालों की रक्षा हो, उनका कल्याण हो ॥२४॥ सौति बोले, परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने आस्तीक के ऐसा कहने पर बारबार उनसे कहा, ब्राह्मण श्रेष्ठ आप दूसरा वर मांगिए, आपका कल्याण हो, पर भृगुनन्दन,

ततो वेदविदस्तात सदस्याः सर्व एव तम् । राजानमूचुः सहिताल्लभतां ब्राह्मणो वरम् ॥२७॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि आस्तीकवरप्रदानं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।
शौनक उवाच ।
ये सर्पाः सर्पसत्रेऽस्मिन्पतिता हव्यवाहने । तेषां नामानि सर्वेषां श्रोतुमिच्छामि सूतज ॥१॥
सौतिरुवाच ।
सहस्राणि बहून्यस्मिन्प्रयुतान्यर्बुदानि च । न शक्यं परिसंख्यातुं बहुत्वाद् द्विजसत्तम ॥२॥
यथास्मृति तु नामानि पन्नगानां निबोध मे । उच्यमानानि मुख्यानां हुतानां जातवेदसि ॥३॥
वासुकेः कुलजातांस्तु प्राधान्येन निबोध मे । नीलरक्तान्सितान्घोरान्महाकायान्विषोल्बणान् ॥४॥
अवशान्मातृवाग्दंडपीडितान्कृपणान्हुतान् । कोटिशो मानसः पूर्णः शलः पालो हलीमकः ॥५॥
पिच्छलः कौणपश्चक्रः कालवेगः प्रकालनः । हिरण्यबाहुः शरणः कक्षकः कालदन्तकः ॥६॥
एते वासुकिजा नागाः प्रविष्टा हव्यवाहने । अन्ये च बहवो विप्र तथा वै कुलसंभवाः ।
महाकाया हुताः सर्वे घोररूपा महाबलाः ॥७॥
तक्षकस्य कुले जातान्प्रवक्ष्यामि निबोध तान् । पुच्छाण्डको मंडलकः पिंडसेक्ता रभेणकः ॥८॥
उच्छिखः शरभो भंगो बिल्वतेजा विरोहणः । शिली शलकरो मूकः सुकुमारः प्रवेपनः ॥९॥

उसने दूसरा वर न मांगा ॥२५,२६॥ तात, उस समय उन दक्ष सदस्यों ने एक साथ राजा से कहा कि ब्राह्मण को वर मिलना चाहिए ॥२७॥

षट पंचाशत् अध्याय ।

—o—

सर्प यज्ञ में सर्पों के नाम ।

शौनक बोले, हे सूतपुत्र, इस सर्पयज्ञ में जो सर्प आग में गिर कर भस्म हुए, उनके नाम मैं सुनना चाहता हूं ॥१॥ सौति बोले, हजारों लाखों और अरबों सांप इस यज्ञ में मारकर भस्म हो गये हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती, क्योंकि वे बहुत हैं ॥२॥ पर जिन के नाम याद हैं, जो आग में जलाये गये हैं उनके नाम मैं कहता हूँ, सुनिए ॥३॥ पहले आप वासुकि के वंशवालों के नाम प्रधानता से सुनें जो काले और लाल थे, जो बड़े विशाल शरीरवाले भयंकर और जहरीले थे। जो माता के शाप से विवश होकर आग में जल गये हैं। उनके नाम ये हैं, मानस, पूर्ण, शल, पाल, हलीमक, ॥४,५॥ पिच्छल, कौणप, चक्र, कालवेग प्रकालन हिरण्यबाहु, शरण, कक्षक, कालदंतक, ॥६॥ वासुकि वंश के इतने सर्प आग में जल मरे हैं। इनके अतिरिक्त और अनेक सर्प इस कुल के हैं जो महाबली और भयंकर थे तथा आगमें जल मरे थे ॥७॥ तक्षक के कुल के सर्पों को मैं कहता हूं सुनो, पुच्छांडक, मण्डलक, पिण्डसेक्ता, रभेणक, ॥८॥ उच्छिख, शरभ, भंग, बिल्वतेजा, विरोहण, शिली, शलकर, मूक, सुकुमार, प्रवेपन, ॥९॥ मुग्दर शिशु रोमा, सुरोमा, महाहनु, तक्षक वंशी इतने सर्प अग्नि में मरे हैं ॥१०॥ पारा-

मुद्गरः शिशुरोमा च सुरोमा च महाहनुः। एते तक्षकजा नागाः प्रविष्टा हव्यवाहनम् ॥१०॥
पारावतः पारियातः पांडरो हरिणः कृशः। विहंगः शरभो भेदः प्रमोदः संहतापनः ॥११॥
ऐरावतकुलादेते प्रविष्टा हव्यवाहनम्। कौरव्यकुलजान्नागाञ्शृणु मे त्वं द्विजोत्तम ॥१२॥
एरकः कुण्डलो वेणी वेणीस्कंधः कुमारकः। बाहुकः शृङ्गवेरश्च धूर्तकः प्रातरातकौ ॥१३॥
कौरव्यकुलजास्त्वेते प्रविष्टा हव्यवाहनम्। धृतराष्ट्रकुले जातान्शृणु नागान्यथातथम् ॥१४॥
कीर्त्यमानान्मया ब्रह्मन्वातवेगान्विषोल्बणान्। शंकुकर्णः पिठरकः कुठारमुखसेचकौ ॥१५॥
पूर्णांगदः पूर्णमुखः प्रहासः शकुनिर्दरिः। अमाहठः कामठकः सुषेणो मानसोऽव्ययः ॥१६॥
भैरवो मुंडवेदांगः पिशंगश्चोद्रपारकः। ऋषभो वेगवान्नागः पिंडारकमहाहनू ॥१७॥
रक्तांगः सर्वसारंगः समृद्धपटवासकौ। वराहको वीरणकः सुचित्रश्चित्रवेगिकः ॥१८॥
पराशरस्तरुणको मणिःस्कन्धस्तथाऽऽरुणिः। इति नागा मया ब्रह्मन्कीर्तिताः कीर्तिवर्धना॥१९॥
प्राधान्येन बहुत्वात्तु न सर्वे परिकीर्तिताः। एतेषां प्रसवो यश्च प्रसवस्य च सन्ततिः ॥२०॥
न शक्यं परिसंख्यातुं ये दीप्तं पावकं गताः। त्रिशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च दशशीर्षास्तथाऽपरे॥२१॥
कालानलविषा घोरा हुताः शतसहस्रशः। महाकाया महावेगाः शैलशृंगसमुच्छ्रयाः ॥२२॥
योजनायामविस्तारा द्वियोजनसमायताः। कामरूपाः कामबला दीप्तानलविषोल्बणाः ॥२३॥
दग्धास्तत्र महासत्रे ब्रह्मदंडनिपीडिताः ॥ २४ ॥

इतिश्री महाभारते आदिपर्वणि सर्पनामकथने सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥

वत पारियात, पांडर, हिरण, कृश, विहंग, शरभ, भेद, प्रमोद, संहतापन, ॥११॥ ऐरावत कुल के इतने सर्प आग में गिरे। द्विजोत्तम, कौरव्य कुल वाले सर्पों को तुम मुझसे सुनो ॥१२॥ एरक, कुण्डल, वेणी, वेणीस्कन्ध, कुमारक, वाहुक, शृंगवेर, धूर्तक, प्रातरातक, ॥१३॥ कौरव्य कुल के इतने सर्प अग्नि में गिरे। धृतराष्ट्र कुल के सर्पों को सुनो ॥१४॥ ब्रह्मन्, उनके नाम मैं बतलाता हूं आप सुनें। वे वायु के समान वेगवान् और बड़े जहरीले थे। शंकुकर्ण, पिठरक, कुठार, मुखसेचक, ॥१५॥ पूर्णाङ्गद, पूर्णमुख, प्रहास शकुनिदरि, अमाहठ, कामठक, सुषेण, मानस, अव्यय, ॥ १६ ॥ भैरव मुंडवेदांग पिशंग, उद्रपारक, ऋषभ, वेगवान्, पिंडराक, महाहनु ॥१६॥ रक्तांग, सर्वसारंग, समृद्ध, पटवासक, वराहक, वीरणक, सुचिन्त, चित्र वेगिक, ॥१८॥ पराशर, तरुणक, मणि, स्कन्ध, अरुणि, ब्रह्मन् ये नाग हैं, ये यशस्वी हैं जिन्हें मैंने बतलाया है ॥१६॥ प्रधान नागों के नाम मैंने बतलाये हैं। वे बहुत हैं, इससे सब के नाम मैंने नहीं गिनाये। इनके वंशज और उन वंशजों के वंशज इस प्रकार इनकी संख्या बहुत हो जाती है ॥२०॥ जलती आग में जो सर्प गिरे हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती है। तीन सिर, सात सिर और दस सिरवाले सर्प जिनका विष कालाग्नि के समान था, जो भयंकर थे, वैसे सैकड़ों हजारों विशाल शरीरवाले तेज चलनेवाले और पर्वत शिखर के समान ऊँचे, एक योजन, दो योजन लम्बे, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले और बलवान बनने वाले, धधकती आग के समान विषैले उस महायज्ञ में, शाप से पीड़ित होकर जल गये ॥२१,२२,२३,२४॥ सप्त पंचाशत् अध्याय।

सौतिरुवाच ।

इदमत्यद्भुतं चान्यदास्तीकस्यानुशुश्रुम । तथावरैश्छन्द्यमाने राज्ञा पारिक्षितेन हि ॥ १ ॥

इन्द्रहस्ताच्च्युतो नागः ख एव यदतिष्ठत । ततश्चिन्तापरो राजा बभूव जनमेजयः ॥ २ ॥

हूयमाने भृशं दीप्ते विधिवद्वसुरेतसि । न स्म स प्रापतद्वह्नौ तक्षको भयपीडितः ॥ ३ ॥

शौनक उवाच ।

किं सूत तेषां विप्राणां मन्त्रग्रामो मनीषिणाम् । न प्रत्यभात्तदाऽग्नौ यत्स पपात न तक्षकः ॥४॥

सौतिरुवाच ।

तमिन्द्रहस्ताद्विस्रस्तं विसंज्ञं पन्नगोत्तमम् । आस्तीकस्तिष्ठतिष्ठेति वाचस्तिस्रोऽभ्युदैरयत् ॥५॥

वितस्थे सोऽन्तरिक्षे च हृदयेन विदूयता । यथा तिष्ठति वै कश्चित्खं च गां चान्तरा नरः ॥६॥

ततो राजाऽब्रवीद्वाक्यं सदस्यैश्चोदितो भृशम् । काममेतद्भवत्वेवं यथाऽऽस्तीकस्य भाषितम्॥७॥

समाप्यतामिदं कर्म पन्नगाः सन्त्वनामयाः । प्रीयतामयमास्तीकः सत्यं सूतवचोऽस्तु तत् ॥८॥

ततो हलहलाशब्दः प्रीतिदः समजायत । आस्तीकस्य वरे दत्ते तथैवोपरराम च ॥९॥

स यज्ञः पांडवेयस्य राज्ञः पारिक्षितस्य ह । प्रीतिमांश्चाभवद्राजा भारतो जनमेजयः ॥१०॥

ऋत्विग्भ्यः स सदस्येभ्यो ये तत्रासन्समागताः । तेभ्यश्च प्रददौ वित्तं शतशोऽथ सहस्रशः॥११॥

आस्तीक के द्वारा यज्ञ की समाप्ति । आस्तीक का सर्पों से वर पाना ।

सौति बोले—उस सम्बन्ध में आस्तीक की एक और अद्भुत बात हम लोग सुनते हैं। जिस समय राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय उनसे वर मांगने के लिए कह रहे थे ॥१॥ उस समय तक्षक इन्द्र के हाथ से छूटकर आकाश ही में ठहर गया था और उस समय राजा जनमेजय बहुत ही चिन्तित हो गये थे ॥२॥ प्रज्वलित अग्नि में हवन हो रहा था, तक्षक को जलाने के लिए आहुति दी जा रही थी। पर भयभीत तक्षक आग में नहीं पड़ा ॥३॥ शौनक बोले, सूत, क्या उन मनस्वी ब्राह्मणों को मन्त्रसमूह का स्मरण न हुआ जिससे वह तक्षक आग में न पड़ा। अर्थात् ब्राह्मण अपने मन्त्र भूल गये जिससे वे अपने मन्त्रों का प्रयोग न कर सके ॥४॥ सौति ने कहा—इन्द्र के हाथ से छूटने पर तक्षक बेहोश हो गया, उस समय आस्तीक ने उससे तीन बार कहा कि ठहरो, ठहरो, ठहरो, ॥५॥ इससे वह दुखी हृदय से वहीं अन्तरिक्ष में ठहरा रहा, जिस प्रकार कोई मनुष्य आकाश और पृथिवी के बीच में खड़ा रहे ॥६॥ अनन्तर सदस्यों की बार बार प्रेरणा से राजा बोले, ठीक है, जैसा आस्तीक कहता है वैसा ही हो ॥७॥ इस कर्म को समाप्त कर दो, सर्पों के प्राण बचें, यह आस्तीक प्रसन्न हो, और सूत का बचन भी सत्य हो (जिसने ब्राह्मण के द्वारा यज्ञ रुकने की बात पहले ही कही थी) ॥ ८ ॥ अनन्तर प्रसन्नता सूचक हलहल शब्द चारों ओर होने लगे। राजा ने जब आस्तीक को वर दिया, तब वह परीक्षित पुत्र राजा जनमेजय का यज्ञ बन्द हो गया। भरतवंशी राजा जनमेजय इससे प्रसन्न हुए ॥९, १०॥ ऋत्विजों, सदस्यों और जो वहां आये थे, उन सब को राजा ने सैकड़ों हजारों रुपये दिये ॥११॥

लोहिताक्षाय सूताय तथा स्थपतये विभुः । येनोक्तं तस्य तत्राग्रे सर्पसत्रनिवर्तने ॥१२॥
निमित्तं ब्राह्मण इति तस्मै वित्तं ददौ बहु । दत्वा द्रव्यं यथान्यायं भोजनाच्छादनान्वितम्॥१३॥
प्रीतस्तस्मै नरपतिरप्रमेयपराक्रमः । ततश्चकारावभृथं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १४ ॥
आस्तीकं प्रेषयामास गृहानेव सुसंस्कृतम् । राजा प्रीतमनाः प्रीतं कृतकृत्यं मनीषिणम् ॥१५॥
पुनरागमनं कार्यमिति चैनं वचोऽब्रवीत् । भविष्यसि सदस्यो मे वाजिमेधे महाक्रतौ ॥१६॥
तथेत्युक्त्वा प्रदुद्राव तदाऽऽस्तीको मुदा युतः । कृत्वा स्वकार्यमतुलं तोषयित्वा च पार्थिवम्॥१७॥
स गत्वा परमप्रीतो मातुलं मातरं च ताम् । अभिगम्योपसंगृह्य तथा वृत्तं न्यवेदयत् ॥१८॥
सौतिरुवाच ।

एतच्छ्रुत्वा प्रीयमाणाः समेता ये तत्रासन्पन्नगा वीतमोहा ।
आस्तीके वै प्रीतिमन्तो बभूवुरूचुश्चैनं वरमिष्टं वृणीष्व ॥ १९ ॥
भूयोभूयः सर्वशस्तेऽब्रुवँस्तं किं ते प्रियं करवामाद्य विद्वन् ।
प्रीता वयं मोक्षिताश्चैव सर्वे कामं किं ते करवामाद्य वत्स ॥ २० ॥

आस्तीक उवाच ।

सायं प्रातर्ये प्रसन्नात्मरूपा लोके विप्रा मानवा ये परेऽपि ।
धर्माख्यानं ये पठेयुर्ममेदं तेषां युष्मन्नैव किंचिद्भयं स्यात् ॥ २१ ॥

राजा ने उस पौराणिक बढ़ई को जिसकी आंखें लाल थीं और जिसने पहले ही यह कह दिया था कि ब्राह्मण के कारण यह सर्प यज्ञ बीच ही में रुक जायगा—बहुत धन दिया । भोजन वस्त्र के साथ उसको न्यायपूर्वक असीम पराक्रमी राजाने प्रसन्न होकर धन दिया। अनन्तर शास्त्रीय विधि के अनुसार उन्होंने अवभृथ—यज्ञ समाप्ति का स्नान किया ॥१२,१३,१४॥ मनोरथ पूर्ण होने से प्रसन्न आस्तोक का राजा ने प्रसन्न होकर सत्कार किया और उन्हें घर लौटा दिया ॥१५॥ राजा ने आस्तीक से कहा कि पुनः आना। तुमको मैं अपने अश्वमेध महायज्ञ में सदस्य बनाऊँगा ॥१६॥ राजा की बातें स्वीकार करके आस्तीक प्रसन्नता पूर्वक वहां से चला गया। अपना काम करके तथा राजा को सन्तुष्ट करके वह चला गया ॥१७॥ वह प्रसन्नता पूर्वक मामा और माता के पास गया और उनको प्रणाम कर के जो कुछ हुआ था, वह सब उसने बतलाया ॥१८॥ सौति बोले, आस्तीक की बातें सुनकर वहां जितने सर्प एकत्र थे, वे सब प्रसन्न हुए, उनका मोह—दुःख दूर हो गया। वे आस्तीक से प्रेम करने लगे और उन लोगों ने उनसे अपना इच्छित वर मांगने के लिए कहा ॥१९॥ बार बार चारों ओर से वे सब उनसे कहने लगे कि विद्वन्, हम लोग तुम्हारा कौन प्रिय काम करें। हम सब लोग प्रसन्न हैं, तुमने हम लोगों की रक्षा की है, बच्चे, तुम्हारा कौन उपकार हम करें ॥२०॥ आस्तीक बोले, सायंकाल या प्रातःकाल प्रसन्न होकर जो ब्राह्मण मनुष्य अथवा और कोई मेरी इस धर्मकथा को पढ़े उनको आप लोगों का कोई भय न हो ॥२१॥ उन सर्पों ने भी प्रसन्न होकर भानजे से कहा—

तैश्चाप्युक्तो भागिनेयः प्रसन्नैरेतत्सत्यं काममेवं वरं ते ।
प्रीत्या युक्ताः कामितं सर्वशस्ते कर्तारः स्म प्रवणा भागिनेय ॥२२॥

असितं चार्तिमन्तं च सुनीथं चापि यः स्मरेत् । दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्य सर्पभयं भवेत् ॥२३॥
यो जरत्कारुणा जातो जरत्कारौ महायशाः । आस्तीकः सर्पसत्रे वः पन्नगान्योऽभ्यरक्षत ॥
तं स्मरन्तं महाभागा न मां हिंसितुमर्हथ ॥ २४ ॥

सर्पापसर्प भद्रं ते गच्छ सर्प महाविष । जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर ॥२५॥
आस्तीकस्य वचः श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते । शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्षफलं यथा ॥२६॥

सौतिरुवाच ।

स एवमुक्तस्तु तदा द्विजेन्द्र समागतैस्तैर्भुजगेन्द्रमुख्यैः ।
सम्प्राप्य प्रीतिं विपुलां महात्मा ततो मनो गमनायाथ दध्रे ॥२७॥
मोक्षयित्वा तु भुजगान्सर्पसत्राद्द्विजोत्तम । जगाम काले धर्मात्मा दिष्टान्तं पुत्रपौत्रवान्॥२८॥
इत्याख्यानं मयाऽऽस्तीकं यथावत्तव कीर्तितम् । यत्कीर्तयित्वा सर्पेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित् ॥२९॥
यथा कथितवान्ब्रह्मन्प्रमतिः पूर्वजस्तव । पुत्राय रुरवे प्रीतः पृच्छते भार्गवोत्तम ॥३०॥
यद्वाक्यं श्रुतवाँश्चाहं तथा च कथितं मया । आस्तीकस्य कवेर्विप्र श्रीमच्चरितमादितः ॥३१॥

तुम्हारा यह मनोरथ, तुम्हारा यह वर सत्य हो, भानजे, हम लोग प्रसन्न होकर तुम्हारे अन्य सब प्रकार के मनोरथों को भी नम्रतापूर्वक पूर्ण करने के लिए तैयार हैं ॥२२॥ असित आर्तिमन्त, और सुनीथ को जो रात्रि को या दिन को स्मरण करेगा उसको सर्प का भय नहीं होगा ॥२३॥ जो मनुष्य जरत्कारु में जरत्कारु के द्वारा उत्पन्न महायशस्वी आस्तीक को— जिसने सर्पयज्ञ से सर्पों की रक्षा की है स्मरण करे, उसको हे महाभाग, सर्पो आपलोग न मारें ॥२४॥ हे महाविषधर सर्प, तुम यहां से हटो, तुम्हारा कल्याण हो, जनमेजय के यज्ञ के अन्त में आस्तीक के वचन को स्मरण करो ॥२५॥ आस्तीक के वचन सुनकर जो सर्प नहीं हट जाता उसका मस्तक सौ टुकड़े होजाता है। जिस प्रकार शिंशवृक्ष का फल फट जाता है॥२६॥ सौति बोले, उन प्रधान सर्पों के ऐसा कहने पर वे ब्राह्मणश्रेष्ठ बहुत प्रसन्न हुए तथा उन महात्मा ने वहां से जाने की इच्छा की ॥२७॥ सर्पयज्ञ से सर्पों की रक्षा करके ब्राह्मण श्रेष्ठ धर्मात्मा आस्तीक पुत्र पौत्रों को छोड़कर मुक्त हो गये ॥२८॥ यह आस्तीक की कथा यथावत् मैंने तुमसे कही । जिसके कहने सुनने से सर्पों का भय नहीं रहता ॥२९॥ भार्गव बोले, आप के पूर्वज, प्रमति ने अपने पुत्र रुरु के पूछने पर यह कथा जिस रूप में कही थी, वह मैंने आपको सुनायी ॥३०॥ कवि आस्तीक के चरित सम्बन्धी जो बातें मैंने सुनी थीं वह मैंने आदि से लेकर आप को सुनायी ॥३१॥ ब्रह्मन् डुंडुभ के वचन सुनकर आपने मुझसे जो पूछा था, इस धर्मयुक्त तथा पुण्य

श्रुत्वा धर्मिष्ठमाख्यानमास्तीकं पुण्यवर्धनम् । यन्मां त्वं पृष्टवान्ब्रह्मञ्छ्रुत्वा द्विजमभाषितम् ।
व्येतु ते सुमहद्ब्रह्मन्कौतूहलमरिन्दम ॥३२॥
इति श्री महाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पसत्रे अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ।
समाप्तंचास्तीक पर्व ।

बढ़ानेवाली आस्तीक की कथा के सुनने से अब आपका वह बड़ा कुतूहल दूर हो ॥३२॥
अष्टपंचाशत अध्याय ।

आस्तीक पर्व समाप्त ।

—०—

अथांशावतरण पर्व

शौनक उवाच ।
भृगुवंशात्प्रभृत्येव त्वया मे कीर्तितं महत् । आख्यानमखिलं तात सौते प्रीतोऽस्मि तेन ते ॥१॥
वक्ष्यामि चैवं भूयस्त्वां तथावत्सूतनन्दन । याः कथा व्याससम्पन्नास्ताश्च भूयो विचक्ष्व मे ॥२॥
तस्मिन्परमदुष्पारे सर्पसत्रे महात्मानाम् । कर्मान्तरेषु यज्ञस्य सदस्यानां तथाऽध्वरे ॥३॥
या बभुवुः कथाश्चित्रा येष्वर्थेषु यथातथम् । त्वत्त इच्छामहे श्रोतुं सौते त्वं वै प्रचक्ष्व न ॥४॥
सौतिरुवाच ।
कर्मान्तरेष्वकथयन् द्विजावेदाश्रयाः कथाः । व्यासस्त्वकथयच्चित्रमाख्यानं भारतं महत् ॥५॥
सौनक उवाच ।
महाभारतमाख्यानं पांडवानां यशस्करम् । जनमेजयेन पृष्टः सन् कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥६॥

सौति के द्वारा महाभारत कथा का आरम्भ ।

शौनक बोले, भृगुवंश के प्रारम्भ से लेकर तुमने यह महती कथा मुझसे कही है । तात सौति, इससे मैं तुम पर प्रसन्न हूँ ॥१॥ सूतनन्दन, मैं तुमसे पुनः पूछता हूं । जो कथा व्यास के द्वारा कही गई है, वह तुम मुझसे पुनः कहो ॥२॥ उस परम दुष्पार—जिसका समाप्त होना कठिन है, सर्पयज्ञ के अवकाश काल में तथा यज्ञ के समय में महात्मा सदस्यों के सामने व्यासदेव की कही जो विचित्र कथाएँ हुई थीं, और जिस प्रसङ्ग में हुई थी वह उसी रूप में हमलोग आपसे सुनना चाहते हैं, आप कहें ॥३,४॥ सौति बोले, यज्ञ के अवकाश काल में ब्राह्मणगण वेद सम्बन्धिनी कथाएँ कहते थे और व्यासदेव ने विचित्र महा भारत की कथा कही थी ॥५॥

शौनक बोले, महाभारत की कथा पाण्डवों का यश बढ़ानेवाली है, राजा जनमेजय के पूछने पर कृष्ण द्वैपायन ने विधि पूर्वक यज्ञ के अवकाश काल में वह कथा सुनायी



वैशम्पायनका व्यासकी आज्ञासे कुरुवंशका वर्णन करना

[चित्रकार—पी० मुकर्जी

श्रावयामास विधिवत्तदा कर्मान्तरे तु सः । तामहं विधिवत्पुण्यां श्रोतुमिच्छामि वै कथाम् ॥७॥
मनःसागरसम्भूतां महर्षेर्भावितात्मनः । कथयस्व सतां श्रेष्ठ सर्वरत्नमयीमिमाम् ॥८॥
सौतिरुवाच ।
हन्त ते कथयिष्यामि महदाख्यानमुत्तमम् । कृष्णद्वैपायनमतं महाभारतमादितः ॥९॥
शृणु सर्वमशेषेण कथ्यमानं मया द्विज । शंसितुं तन्महान्हर्षो ममापीह प्रवर्तते ॥१०॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अंशावतरणपर्वणि कथानुबन्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ।

सौतिरुवाच ।
श्रुत्वा तु सर्पसत्राय दीक्षितं जनमेजयम् । अभ्यगच्छदृषिर्विद्वान्कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥१॥
जनयामास यं काली शक्तेः पुत्रात्पराशरात् । कन्यैव यमुनाद्वीपे पांडवानां पितामहम् ॥२॥
जातमात्रश्च यः सद्य इष्ट्या देहमवीवृधत् । वेदांश्चाधिजगे सांगान्सेतिहासान्महायशाः ॥३॥
यन्नैति तपसा कश्चिन्न वेदाध्ययनेन च । न व्रतैर्नोपवासैश्च न प्रसूत्या न मन्युना ॥४॥
विव्यासैकं चतुर्धा यो वेदं वेदविदां वरः । परावरज्ञो ब्रह्मर्षिः कविः सत्यव्रतः शुचिः ॥५॥
यः पाण्डुं धृतराष्ट्रं च विदुरं चाप्यजीजनत् । शान्तनोः सन्ततिं तन्वन्पुण्यकीर्तिर्महायशाः ॥६॥
जनमेजयस्य राजर्षेः स महात्मा सदस्तथा । विवेश सहितः शिष्यैर्वेदवेदांगपारगैः ॥७॥

थी । वह पवित्र कथा विधिपूर्वक मैं सुनना चाहता हूँ ॥६,७॥ विशुद्धात्मा महर्षि के मन रूपी समुद्र से उत्पन्न, वह रत्नमयी कथा हे सज्जन श्रेष्ठ, तुम कहो ॥८॥ सौति बोले, अच्छा, वह उत्तम महत् आख्यान कृष्ण द्वैपायनका कहा हुआ महाभारत प्रारम्भ से मैं कहता हूं ॥९॥ मेरा कहा हुआ वह समस्त आख्यान आप सुनें । उस आख्यान के कहने में मुझे भी बड़ा आनन्द आ रहा है ॥१०॥ एकोनषष्टितम अध्याय ।

—o—

भारतीय कथा की भूमिका ।

सौति बोले, राजा जनमेजय ने अपने सर्पयज्ञ की दीक्षा ली है यह सुनकर विद्वान् ऋषि कृष्णद्वैपायन वहां गये ॥१॥ जिन्हें सत्यवती ने शक्ति के पुत्र पराशर से उत्पन्न किया था । उस समय सत्यवती कन्या थी, उसने यमुना के द्वीप में उन्हें उत्पन्न किया । ये कृष्ण द्वैपायन पाण्डवों के पितामह थे ॥२॥ जो कृष्ण द्वैपायनने उत्पन्न होते ही अपनी इच्छा से शीघ्र ही अपना शरीर बढ़ा लिया था । उन महायशस्वी ने इतिहास और अंगों के साथ वेदों का ज्ञान प्राप्त किया ॥३॥ जिस आत्मतत्व को कोई तपस्या के द्वारा नहीं पा सकता, जिसे वेदाध्ययन के द्वारा कोई नहीं पा सकता, व्रत उपवास या पुत्र के द्वारा जो नहीं पाया जा सकता और यज्ञों के द्वारा भी जो नहीं पाया जा सकता वह आत्मतत्व उन्होंने जन्म लेते ही पा लिया ॥४॥ जिस वेदज्ञ श्रेष्ठ ने एक वेद को चार भागों में विभक्त किया । वे जीवात्मा परमात्मा के ज्ञाता थे । वे सत्यव्रत कवि ब्रह्मर्षि और शुद्ध थे ॥५॥ जिस महाकीर्ति यशस्वी ने, शान्तनु के वंश बढ़ाने के लिए पाण्डु धृतराष्ट्र और विदुर को उत्पन्न किया था ॥६॥ वे महात्मा वेद वेदाङ्ग के ज्ञाता अपने शिष्यों के साथ राजर्षि जनमेजय की सभा में गये ॥७॥ वहां उन्होंने राजा जनमेजय को देखा, वे अनेक सदस्यों से घिरे

तत्र राजानमासीनं ददर्श जनमेजयम् । वृतं सदस्यैर्बहुभिर्देवैरिव पुरन्दरम् ॥८॥
तथामूर्धाभिषिक्तैश्च नानाजनपदेश्वरैः । ऋत्विग्भिर्ब्रह्मकल्पैश्च कुशलैर्यज्ञसंस्तरे ॥९॥
जनमेजयस्तु राजर्षिर्दृष्ट्वा तमृषिमागतम् । सगणोऽभ्युद्ययौ तूर्णं प्रीत्या भरतसत्तमः ॥१०॥
कांचनं विष्टरं तस्मै सदस्यानुमतः प्रभुः । आसनं कल्पयामास यथा शक्रो बृहस्पतेः ॥११॥
तत्रोपविष्टं वरदं देवर्षिगणपूजितम् । पूजयामास राजेन्द्रः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥१२॥
पाद्यमाचमनीयं च अर्घ्यं गां च विधानतः । पितामहाय कृष्णाय तदर्हाय न्यवेदयत् ॥१३॥
प्रतिगृह्य तु तां पूजां पाण्डवाज्जनमेजयात् । गां चैव समनुज्ञाप्य व्यासः प्रीतोऽभवत्तदा ॥१४॥
तथा च पूजयित्वा तं प्रणयात्प्रपितामहम् । उपोपविश्य प्रीतात्मा पर्यपृच्छदनामयम् ॥१५॥
भगवानपि तं दृष्ट्वा कुशलं प्रतिवेद्य च । सदस्यैः पूजितः सर्वैः सदस्यान्प्रत्यपूजयत् ॥१६॥
ततस्तु सहितः सर्वैः सदस्यैर्जनमेजयः । इदं पश्चाद् द्विजश्रेष्ठं पर्यपृच्छत्कृतांजलिः ॥१७॥

जनमेजय उवाच ।

कुरूणां पाण्डवानां च भवान्प्रत्यक्षदर्शिवान् । तेषां चरितमिच्छामि कथ्यमानं त्वया द्विज ॥१८॥
कथं समभवद्भेदस्तेषामक्लिष्टकर्मणाम् । तच्च युद्धं कथं वृत्तं भूतान्तकरणं महत् ॥१९॥
पितामहानां सर्वेषां दैवेनाविष्टचेतसाम् । कार्त्स्न्येनैतन्ममाचक्ष्व यथा वृत्तं द्विजोत्तम ॥२०॥

हुए थे, जिस प्रकार इन्द्र देवताओं से घिरे रहते हैं ॥८॥ अनेक राजाओं तथा जनपद के स्वामियों से वे घिरे थे, ब्रह्मा के तुल्य ऋत्विज भी वहां बैठे थे जो यज्ञ की रचना में दक्ष थे ॥९॥ ब्रह्मर्षि को आया देखकर अपने समस्त साथियों के साथ प्रेमपूर्वक अगवानी के लिए राजा चले ॥१०॥ सदस्यों की आज्ञा से उन्होंने सुवर्ण का आसन उनको दिया । जिस प्रकार इन्द्र बृहस्पति को आसन देते हैं ॥११॥ उस आसन पर बैठे हुए उन देवता और ऋषियों के द्वारा पूजित ऋषि को राजा ने शास्त्रीय विधान के अनुसार पूजन किया ॥१२॥ पाद्य आचमनीय अर्घ्य तथा गौ विधि के अनुसार उन्होंने अपने पितामह कृष्ण द्वैपायन को दी, जो इनके योग्य थे ॥१३॥ पाण्डुवंशी जनमेजय की दी हुई पूजा ग्रहण करके तथा गौ को छोड़ देने की आज्ञा देकर महर्षि व्यास प्रसन्न हुए ॥१४॥ इस प्रकार प्रेमपूर्वक अपने प्रपितामह की पूजा करके राजा जनमेजय उनके पास बैठ कर तथा प्रसन्न होकर उनसे कुशल प्रश्न करने लगे ॥१५॥ भगवान् द्वैपायन ने राजा को देखा उनसे कुशल कहा । अनन्तर सदस्यों के द्वारा पूजित होकर उन्होंने भी उन सदस्यों की पूजा की ॥१६॥ पुनः राजा जनमेजय ने सब सदस्यों के साथ हाथ जोड़कर उनसे यह पूछा ॥१७॥

जनमेजय बोले—कौरव और पाण्डवों के आप प्रत्यक्षदर्शी हैं । हम लोग चाहते हैं कि उनका चरित आप कहें ॥१८॥ रागद्वेष-रहित उन महात्माओं में विरोध कैसे हुआ और प्राणियों का नाश करनेवाला यह महायुद्ध कैसे हुआ ॥१९॥ मेरे उन समस्त प्रपितामहों के चित्त में भाग्य के कारण ही अनिष्ट बुद्धि उत्पन्न हो गयी थी । ब्राह्मणश्रेष्ठ, यह सब आप मुझसे

सौतिरुवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनस्तदा । शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके ॥२१॥

व्यास उवाच ।

कुरूणां पाण्डवानां च यथाभेदोऽभवत्पुरा । तदस्मै सर्वमाचक्ष्व यन्मत्तः श्रुतवानसि ॥२२॥
गुरोर्वचनमाज्ञाय स तु विप्रर्षभस्तदा । आचचक्षे ततः सर्वमितिहासं पुरातनम् ॥२३॥
राज्ञे तस्मै सदस्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च सर्वशः । भेदं सर्वविनाशं च कुरुपांडवयोस्तदा ॥२४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अंशावतरणपर्वणि कथानुबन्धे षष्टितमोऽध्यायः ॥

वैशम्पायन उवाच ।

गुरवे प्राङ् नमस्कृत्य मनोबुद्धिसमाधिभिः। सम्पूज्य च द्विजान् सर्वांस्तथान्यान् विदुषो जनान्॥१॥
महर्षेर्विश्रुतस्येह सर्वलोकेषु धीमतः । प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं व्यासस्यास्य महात्मनः ॥२॥
श्रोतुं पात्रं च राजंस्त्वं प्राप्येमां भारतीं कथाम् । गुरोर्वक्त्रपरिस्पन्दो मनः प्रोत्साहतीव मे ॥३॥
शृणु राजन् यथा भेदः कुरुपांडवयोरभूत् । राज्यार्थे द्यूतसम्भूतो वनवासस्तथैव च ॥४॥
यथा च युद्धमभवत्पृथिवीक्षयकारकम् । तत्तेऽहं कथयिष्यामि पृच्छते भरतर्षभ ॥५॥
मृते पितरि ते वीरा वनादेत्य स्वमन्दिरम् । न चिरादेव विद्वांसो वेदे धनुषि चाभवन् ॥ ६ ॥
तांस्तथा सत्ववीर्यौजःसम्पन्नान्पौरसम्मतान् । नामृष्यन् कुरवो दृष्ट्वा पांडवाञ्श्रीयशोभृतः ॥७॥

कहें । जैसा हुआ था वह कहें ॥२०॥ सौति बोले—राजा के वचन सुनकर महर्षि कृष्णद्वैपायन ने पास बैठे हुए शिष्य वैशम्पायन को आज्ञा दी ॥२१॥

व्यास बोले—कौरवों और पाण्डवों में जिस कारण से विरोध हुआ वह सब तुम इनसे कहो । जो तुम मुझसे पहले सुन चुके हो ॥२२॥ गुरु के वचन सुनकर उन ब्राह्मणश्रेष्ठ ने वह समस्त पुराना इतिहास कहा ॥२३॥ राजा जनमेजय से, समस्त सदस्यों तथा अन्य राजाओं से उन्होंने कौरव पाण्डवों का विरोध तथा सब का नाश कहा ॥२४॥ षष्टितम अध्याय ।

वैशम्पायन का जनमेजय से संक्षिप्त भारत की कथा कहना ।

वैशम्पायन बोले—श्रद्धा भक्ति के साथ मन को एकाग्र करके, नमस्कार आदि के द्वारा सम्मान प्रदर्शन करके, तथा अन्य ब्राह्मणों और विद्वानों को प्रणाम करके, समस्त संसार में प्रसिद्ध, बुद्धिमान् महात्मा महर्षि व्यास देव का समस्त मत मैं कहता हूँ ॥१, २॥ राजन्, इस महाभारत की कथा सुनने के योग्य पात्र तुमको पाकर, कथा कहने की गुरु की आज्ञा मेरे मन को उत्साहित कर रही है ॥३॥ राजन् सुनो, जिस कारण कौरवों और पाण्डवों में विरोध हुआ था । राज्य के लिए जूआ तथा बनवास द्वारा वह विरोध उत्पन्न हुआ ॥४॥ पृथिवी का नाश करने वाला वह युद्ध जिस कारण से हुआ, हे भरतश्रेष्ठ वह मैं आपके पूछने पर कहता हूँ ॥५॥ पिता की मृत्यु होने पर वे वीर पाण्डव बन से घर लौट आये और शीघ्र ही वे वेदों के और धनुर्विद्या के विद्वान् हो गये ॥६॥ उन पाण्डवों को उस प्रकार का बली, पराक्रमी, तेजस्वी तथा लोकप्रिय देखकर और सम्पत्ति और यश से पूर्ण पाण्डवों को कौरव न देख सके ।

ततो दुर्योधनः क्रूरः कर्णश्च सहसौबलः । तेषां निग्रहनिर्वासान्विविधांस्ते समारभन् ॥८॥
ततो दुर्योधनः क्रूरः कुलिंगस्य मते स्थितः । पांडवान्विविधोपायै राज्यहेतोरपीडयत् ॥९॥
ददावथ विषं पापो भीमाय धृतराष्ट्रजः । जरयामास तद्वीरः सहान्नेन वृकोदरः ॥१०॥
प्रमाणकोट्यां संसुप्तं पुनर्बद्ध्वा वृकोदरम् । तोयेषु भीमं गंगायाः प्रक्षिप्य पुरमाव्रजत् ॥११॥
यदा विबुद्धः कौन्तेयस्तदा संछिद्य वन्धनम् । उद्तिष्ठन् महाबाहुर्भीमसेनो गतव्यथः ॥१२॥
आशीविषैः कृष्णसर्पैः सुप्तं चैनमदंशयत् । सर्वेष्वेवांगदेशेषु न ममार स शत्रुहा ॥१३॥
तेषां तु विप्रकारेषु तेषु तेषु महामतिः । मोक्षणे प्रतिकारे च विदुरोऽवहितोऽभवत् ॥१४॥
स्वर्गस्थो जीवलोकस्य यथा शक्रः सुखावहः । पांडवानां तथा नित्यं विदुरोऽपि सुखावहः ॥१५॥
यदा तु विविधोपायैः संवृतैर्विवृतैरपि । नाशकद्विनिहन्तुं तान्दैवभाव्यर्थरक्षितान् ॥१६॥
ततः संमन्त्र्य सचिवैर्वृषदुःशासनादिभिः । धृतराष्ट्रमनुज्ञाप्य जातुषं गृहमादिशत् ॥१७॥
सुतप्रियैषी तान्राजा पांडवानम्बिकासुतः । ततो विवासयामास राज्यभोगबुभुक्षया ॥१८॥

वे उनसे ईर्ष्या करने लगे ॥७॥ अनन्तर, क्रूर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि के साथ पाण्डवों को तंग करने लगे और उन लोगों को उसने देश से निर्वासित करना प्रारम्भ किया ॥८॥ अनन्तर, क्रूर दुर्योधन कुलिंग* पक्षी के समान राज्य के लिए पाण्डवों को अनेक उपायों से पीड़ा देने लगा ॥९॥ धृतराष्ट्र के पापी पुत्र ने भीमसेन को विष दिया। वीर वृकोदर ने उस विष को अन्न के साथ पचा लिया ॥१०॥ गंगा के प्रमाणकोटि नामक तीर्थ विशेष में सोते हुए वृकोदर भीम को बांधकर दुर्योधन ने गंगा में छोड़ दिया और वह नगर को लौट आया ॥११॥ जब कुन्ती के पुत्र भीमसेन उठे, तब उन्होंने अपना बन्धन तोड़ दिया और वे उठ खड़े हुए। महाबाहु भीमसेन को उस समय कोई पीड़ा न रही ॥१२॥ जिस समय भीमसेन सो रहे थे, उस समय इनके समस्त अंगों में जहरी दांतवाले कृष्णसर्पों ने काटा था। पर शत्रु हन्ता ये वीर मरे नहीं ॥१३॥ पाण्डवों के तरह तरह के अपमानों से रक्षा करने तथा उन विपत्तियों के दूर करने के लिए बुद्धिमान् विदुर सदा लगे रहते थे ॥१४॥ जिस प्रकार स्वर्ग में रहनेवाले इन्द्र मर्त्यलोक के प्राणियों को सदा सुख देते हैं, उसी प्रकार विदुर भी पाण्डवों को सदा सुख देने लगे॥१५॥ जब गुप्त और प्रकाश अनेक उपायों से दुर्योधन पाण्डवों को मार न सका। जो पाण्डव कुरुकुल के नाश के लिए भाग्य के द्वारा रक्षित थे ॥१६॥ तब कर्ण दुःशासन आदि सलाहकारों से सलाह करके तथा धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर दुर्योधन ने पाण्डवों को लाक्षागृह में भेजने का निश्चय किया ॥१७॥ पुत्रों का कल्याण चाहने वाले, अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्र ने राज्य भोगने की इच्छा से पाण्डवों को निर्वासित कर दिया ॥१८॥ वे पाण्डव हस्तिनापुर नगर से साथ ही प्रस्थित हुए, उन महात्माओं के

* इस नामका एक पक्षी होता है। जो बड़ा साहसी प्रसिद्ध है। वह सिंह के मुंह में घुस कर उसका मांस खाने का साहस करता है पर वहीं नष्ट हो जाता है।

ते प्रातिष्ठन्त सहिता नगरान्नागसाह्वयात् । प्रस्थाने चाभवन्मन्त्री क्षत्ता तेषां महात्मनाम् ॥१९॥
तेन मुक्ता जतुगृहान्निशीथे प्राद्रवन्वनम् । ततः सम्प्राप्य कौन्तेया नगरं वारणावतम्॥२०॥
न्यवसन्त महात्मानो मात्रा सह परन्तपाः । धृतराष्ट्रेण चाज्ञप्ता उषिता जातुषे गृहे ॥ २१ ॥
पुरोचनाद्रक्षमाणाः संवत्सरमतन्द्रिताः । सुरुंगां कारयित्वा तु विदुरेण प्रचोदिताः ॥२२॥
आदीप्य जातुषं वेश्म दग्ध्वा चैव पुरोचनम् । प्राद्रवन् भयसंविग्ना मात्रा सह परंतपाः॥२३॥
ददृशुर्दारुणं रक्षो हिडिम्बं वननिर्झरे । हत्वा च तं राक्षसेंद्रं भीताः समववोधनात् ॥२४॥
निशि संप्राद्रवन्पार्था धार्त्तराष्ट्रभयार्दिताः। प्राप्ता हिडिम्बा भीमेन यत्र जातो घटोत्कचः ॥२५॥
एकचक्रां ततो गत्वा पांडवाः संशितव्रताः । वेदाध्ययनसंपन्नास्तेऽभवन् ब्रह्मचारिणः ॥२६॥
ते तत्र नियताः कालं कंचिदूषुर्नरर्षभाः । मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥२८॥
तत्राससाद क्षुधितं पुरुषादं वृकोदरः । भीमसेनो महाबाहुर्वकं नाम महाबलम् ॥२९॥
तं चापि पुरुषव्याघ्रो बाहुवीर्येण पांडवः । निहत्य तरसा वीरो नागरान्पर्यसान्त्वयत् ॥३०॥
ततस्ते शुश्रुवुः कृष्णां पंचालेषु स्वयंवराम् । श्रुत्वा चैवाभ्यगच्छन्त गत्वा चैवालभन्त ताम् ॥३१॥

प्रस्थान के समय महात्मा विदुर ने उन्हें कुछ उपदेश दिए ॥१९॥ अर्धरात्रि के समय विदुर से अलग हो कर वे लाक्षागृह को ओर चले। अनन्तर, कुन्ती के पुत्र वारणावत नगर में पहुँचे ॥२०॥ वे परन्तप महात्मा, माता के साथ धृतराष्ट्र की आज्ञा से एक वर्ष तक लाक्षागृह में रहे। वहां पुरोचन नामक मनुष्य जो दुर्योधन की ओर से उन्हें मारने के लिए नियुक्त था, वे उससे अपनी रक्षा करते रहे। विदुर के परामर्श से उन लोगों ने उस लाक्षागृह में एक सुरंग बनाया ॥२१,२२॥ परंतप पाण्डव लाक्षागृह में आग लगा कर और पुरोचन को जलाकर भय से व्याकुल होकर वहां से भगे ॥२३॥ उन लोगों ने वन में एक सोते के पास हिडिम्ब नामक राक्षस को देखा। उस राक्षस को मार कर वे अपने प्रकाशित होने के कारण भयभीत हुए। अर्थात् हिडिम्ब के वध से पाण्डवों के जीवित होने का अनुमान किया जा सकता है और इससे उन लोगों को पता लग सकता है, इसी कारण वे भयभीत हुए ॥२४॥ अतएव धृतराष्ट्र के पुत्रों के भय से पीड़ित होकर पांडव रात ही को वहां से भगे। वहां हिडिम्बा नाम की राक्षसी भीमसेन से मिली, जिससे घटोत्कच उत्पन्न हुआ ॥२५॥ वहां से उग्रव्रतधारी पांडव एक-चक्रा नाम की नगरी में गये। वहां वेद पढ़ने वाले, ब्रह्मचारी के रूप में रहने लगे ॥२६॥ वे नरश्रेष्ठ एक ब्राह्मण के घर में माता के साथ कुछ समय तक रहे ॥२७॥ वहां मनुष्यभक्षी बक नामका महाबली राक्षस महाबाहु वृकोदर भीमसेन से मिला। उस समय वह राक्षस भूखा था ॥२८॥ पुरुषसिंह भीमसेन ने अपने बाहुबल से, उसे शीघ्र ही मार डाला। और वीर उस पांडव ने नगरवासियों को प्रसन्न किया॥ २९ ॥ अनन्तर, उन लोगों ने सुना कि पांचाल देश में कृष्णा द्रौपदी का स्वयंवर हो रहा है। यह सुनकर वे वहां गये और उन लोगों ने द्रौपदी को पाया ॥३०॥ द्रौपदी को पाकर वे वहां एक वर्ष से भी अधिक रहे।

ते तत्र द्रौपदीं लब्ध्वा परिसंवत्सरोषिताः । विदिता हास्तिनपुरं प्रत्याजग्मुररिन्दमाः ॥३२॥
ते उक्ता धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च । भ्रातृभिर्विग्रहस्तात कथं वो न भवेदिति ॥३२॥
अस्माभिः खांडवप्रस्थे युष्मद्वासोऽनुचिन्तितः । तस्माज्जनपदोपेतं सुविभक्तमहापथम् ॥३३॥
वासाय खांडवप्रस्थं व्रजध्वं गतमत्सराः । तयोस्ते [illegible] सह सर्वैः सुहृज्जनैः ॥३४॥
नगरं खांडवप्रस्थं रत्नान्यादायसर्वशः । तत्र ते न्यवसन्पार्थाः संवत्सरगणान्बहून् ॥३५॥
वशे शस्त्रप्रतापेन कुर्वन्तोऽन्यान्महीभृतः । एवंधर्मप्रधानास्ते सत्यव्रतपरायणाः ॥३६॥
अप्रमोत्तोत्थिताः क्षान्ताः प्रतपंतोऽहितान्बहून् । अजयद्भीमसेनस्तु दिशंप्राचीं महायशाः॥३७॥
उदीचीमर्जुनो वीरः प्रतीचीं नकुलस्तथा । दक्षिणां सहदेवस्तु विजिग्ये परवीरहा ॥३८॥
एवं चक्रुरिमां सर्वे वशे कृत्स्नां वसुन्धराम् । पंचभिः सूर्यसंकाशैः सूर्येण च विराजता ॥३९॥
षट्सूर्येवाभवत्पृथ्वी पांडवैः सत्यविक्रमैः । ततो निमित्ते कस्मिंश्चिद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥४०॥
वनं प्रस्थापयामास तेजस्वी सत्यविक्रमः । प्राणेभ्योऽपि प्रियतरं भ्रातरं सव्यसाचिनम् ॥४१॥
अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं स्थिरात्मानं गुणैर्युतम् । स वै संवत्सरं पूर्णं मासं चैकं वने वसन् ॥४२॥

पुनः उनके वर्तमान होने का पता जब सब को लग गया, तब वे हस्तिनापुर चले आये ॥३१॥ राजा धृतराष्ट्र तथा भीष्म ने उन लोगों से कहा कि तात ! भाइयों से किसी प्रकार तुम लोगों का विरोध न होगा ॥३२॥ हम लोगों ने खाण्डव प्रस्थ नामक नगर में तुम लोगों के निवास करने का निश्चय किया है, अतएव द्वेष छोड़कर तुम लोग खाण्डवप्रस्थ जाओ। खाण्डवप्रस्थ के अधीन बहुत से प्रान्त हैं तथा वहां अच्छी सड़कें हैं। उन दोनों के कहने से पाण्डव अपने समस्त मित्रों के साथ गये ॥३३,३४॥ सब प्रकार के रत्नों को लेकर वे खाण्डवप्रस्थ नगर में गये, और वहां वे अनेक वर्षों तक रहे ॥३५॥ शस्त्र के प्रताप से उन लोगों ने अनेक राजाओं को वश में किया। वे धर्मात्मा, सत्य और नियम का पालन करने लगे। वे सदा सावधान रहने के कारण उन्नत हुए ॥३६॥ क्षमाशील पाण्डवों ने अनेक शत्रुओं को तपाया। यशस्वी भीमसेन ने पूर्व दिशा को जीता ॥३७॥ वीर अर्जुन ने उत्तर दिशा को, नकुल ने पश्चिम दिशा को और सहदेव ने दक्षिण दिशा को जीता ॥३८॥ इस प्रकार उन वीरों ने समस्त पृथिवी को वश में कर लिया। उस पर अपना अधिकार स्थापित किया। वे पांचों पाण्डव प्रकाशमान् सूर्य के समान प्रकाशित होने लगे ॥३९॥ सत्य पराक्रमी पाण्डवों के कारण पृथिवी में छः सूर्य प्रकाशित हुए, अर्थात् एक सूर्य और पांच सूर्य के समान तेजस्वी पाण्डव। अनन्तर किसी कारण विशेष से तेजस्वी सत्य पराक्रमी, राजा युधिष्ठिर ने प्राणों से भी अधिक प्रिय भाई अर्जुन को वन भेजा ॥४०,४१॥ पुरुष सिंह दृढ़ चित्त गुणवान् अर्जुन को एक वर्ष और एक मास*वन में रहने के लिए भेजा ॥४२॥

*टीकाकारों ने पूर्ण शब्द का अर्थ समझा है दस, इस लिए पूर्ण वर्ष का अर्थ समझते हैं दस वर्ष। इसी प्रकार पूर्ण एक मास का अर्थ वे ग्यारह महीने करते हैं। यह सौर मास की गणना है। इसके सावन वर्ष बारह हुए,

ततोऽगच्छद्धृषीकेशं द्वारवत्यां कदाचन । लब्धवांस्तत्र बीभत्सुर्भार्यां राजीवलोचनाम् ॥४३॥
अनुजां वासुदेवस्य सुभद्रां भद्रभाषिणीम् । सा शचीव महेन्द्रेण श्रीः कृष्णेनेव संगता ॥४४॥
सुभद्रा युयुजे प्रीत्या पांडवेनार्जुनेन ह । अतर्पयच्च कौन्तेयः खांडवे हव्यवाहनम् ॥४५॥
बीभत्सुर्वासुदेवेन सहितो नृपसत्तम । नातिभारो हि पार्थस्य केशवेन सहाभवत् ॥४६॥
व्यवसायसहायस्य विष्णोः शत्रुवधेष्विव । पार्थायाग्निर्ददौ चापि गाण्डीवं धनुरुत्तमम् ॥४७॥
इषुधी चाक्षयैर्बाणै रथं च कपिलक्षणम् । मोक्षयामास बीभत्सुर्मयं यत्र महासुरम् ॥४८॥
स चकार सभां दिव्यां सर्वरत्नसमाचिताम् । तस्यां दुर्योधनो मन्दो लोभं चक्रेसुदुर्मतिः ॥४९॥
ततोऽक्षैर्वंचयित्वा च सौबलेन युधिष्ठिरम् । वनं प्रस्थापयामास सप्तवर्षाणि पंच च ॥५०॥
अज्ञातमेकं राष्ट्रे च ततो वर्षं त्रयोदशम् । ततश्चतुर्दशे वर्षे याचमानाः स्वकं वसु ॥५१॥
नालभन्त महाराज ततो युद्धमवर्तत । ततस्ते क्षत्रमुत्साद्य हत्वा दुर्योधनं नृपम् ॥५२॥

अर्जुन वहाँ से हृषीकेश गये, पुनः वहां से द्वारिकापुरी गये, वहां उन्हों ने कमलनेत्रा स्त्री पायी ॥४३॥ वह स्त्री श्रीकृष्ण की छोटी बहन सुभद्रा थी, जो धीरे धीरे बोलनेवाली थी। इन्द्र के साथ शची और कृष्ण के साथ लक्ष्मी के समान वह अर्जुन के साथ हुई ॥४४॥ सुभद्रा पाण्डु पुत्र अर्जुन के साथ प्रेमपूर्वक मिली। अर्जुन ने खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया ॥४५॥ नृपश्रेष्ठ श्रीकृष्ण के साथ रहने से अर्जुन के लिए यह कोई भार नहीं हुआ अर्जुन ने इसे कोई बड़ा काम नहीं समझा ॥४६॥ जिस प्रकार शत्रु वध का दृढ़ निश्चय करने पर विष्णु के लिए कोई कार्य भारी नहीं होता है। कठिन से कठिन कार्य कर डालते हैं। अग्नि ने अर्जुन को गाण्डीव नामक उत्तम धनुष दिया ॥४७॥ दो तरकश अग्नि ने दिये, जिसमें बाण कभी न घट सकें। और एक रथ दिया जिसकी ध्वजा पर वानर का चिन्ह था। अर्जुन ने खाण्डव दाह के समय मय नामक महासुर की रक्षा की ॥४८॥ उसने दिव्य सभा भवन बनाया। जिसमें समस्त रत्न जड़े हुए थे। उस सभा भवन को देखकर अभागी मूर्ख दुर्योधन को लोभ हुआ ॥४९॥ अनन्तर शकुनि के द्वारा युधिष्ठिर को जूआ में ठग कर, सात पांच अर्थात् बारह वर्षों के लिए वन भेजा ॥५०॥ और किसी नगर में, किसी राज्य में एक वर्ष तक अज्ञातवास करने के लिए कहा। इस प्रकार तेरह वर्षों तक बनवास करके पाण्डव चौदहवें वर्ष लौटे और अपना राज्य मांगने लगे ॥५१॥ महाराज, पर उनको राज्य न मिला। अनन्तर उन लोगों ने दुर्योधन को मारा और क्षत्रियों का संहार किया ॥५२॥ अन्त में पाण्डवों ने नष्टप्राय राज्य पाया। उन महात्माओं का यही इति-

क्योंकि सावन वर्ष मे सौर वर्ष में सवा पांच दिन अधिक होते हैं। उनके मत से अर्जुन दस वर्ष ग्यारह महीने के लिए बन में भेजे गये थे। पर पूर्ण संख्या नौ है, दस नहीं। क्योंकि दस तो संयुक्त संख्या है, और संयुक्त संख्या की अवधि नहीं होती।

राज्यं विहतभूयिष्ठं [illegible] पांडवाः । एवमेतत्पुरावृत्तं तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ॥
भेदो [illegible] जयश्च जयतांवरः ॥५३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि भारतसूत्रं नामएकषष्टितमोऽध्यायः ।

[illegible] उवाच

कथितं वै समासेन त्वया सर्वं द्विजोत्तम । महाभारतमाख्यानं कुरूणां चरितं महत् ॥१॥
कथां त्वनघ चित्रार्थां कथयस्य तपोधन । विस्तरश्रवणे जातं कौतूहलमतीव मे ॥२॥
स भवान्विस्तरेणेमां पुनराख्यातुमर्हति । न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥३॥
न तत्कारणमल्पं वै धर्मज्ञा यत्र पांडवाः । अवध्यान्सर्वशो जघ्नुः प्रशस्यन्ते च मानवैः ॥४॥
किमर्थं ते नरव्याघ्राः शक्ताःसन्तो ह्यनागसः । प्रयुज्यमानान्संक्लेशान्क्षान्तवन्तो दुरात्मनाम् ॥५॥
कथं नागायुतप्राणो बाहुशाली वृकोदरः । परिक्लिश्यन्नपि क्रोधं धृतवान्वै द्विजोत्तम ॥६॥
कथ सा द्रौपदी कृष्णा क्लिश्यमाना दुरात्मभिः । शक्ता सती धार्तराष्ट्रान्नादहत्क्रोधचक्षुषा ॥७॥
कथं व्यसनिनं द्यूते पार्थौ माद्रीसुतौ तदा । अन्वयुस्ते नरव्याघ्रा बाध्यमाना दुरात्मभिः ॥८॥
कथं धर्मभृतां श्रेष्ठः सुतो धर्मस्य धर्मवित् । अनर्हःपरमं क्लेशं सोढवान्स युधिष्ठिरः ॥९॥

हास है । इसी कारण राज्य नाश के लिए उनमें विरोध हुआ और पाण्डव विजयी हुए ॥५३॥

एकषष्टितम अध्याय ।

—o—

भारत की प्रशंसा और उसके सुनने का फल ।

जनमेजय बोले, ब्राह्मण श्रेष्ठ, आपने महाभारत की समस्त और कौरवों का महान् चरित संक्षेप से कहा ॥१॥ हे निष्पाप तपोधन, अद्भुत अर्थों वाली कथा आप कहें । क्यों कि विस्तार के साथ उसके सुनने की मुझे अत्यन्त कुतूहल उत्पन्न हुआ है ॥२॥ अतएव आप विस्तार पूर्वक इस कथा को पुनः कहें । अपने पूर्वजों के महान् चरित सुनने से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ॥३॥ इसका कोई छोटा कारण नहीं होना चाहिए कि धर्मात्मा पाण्डवों ने अवध्यों का वध किया और सब मनुष्य उनकी प्रशंसा करते हैं । अर्थात् अवध्यों का वध करना अनुचित है । जो ऐसा करता है वह निन्दित होता है। पर पाण्डव निन्दित नहीं हुए । वे पुरुषसिंह समर्थ थे, निरपराधी थे, फिर भी दुरात्माओं के द्वारा दिए गये दुखों को उन लोगों ने क्यों सहन किया ॥४, ५॥ हजार हाथियों का बल रखने वाले वृकोदर ने क्लेश उठाते हुए भी क्रोध को कैसे रोक लिया ॥६॥ कृष्ण द्रौपदी ने दुर्जनों के कारण बहुत कष्ट उठाया । वह सती उनको जलाने के लिए समर्थ थी, फिर भी उन्होंने धृतराष्ट्र के पुत्रों को क्रोध से क्यों नहीं जलाया । राजा युधिष्ठिर को जब जूए का व्यसन था तब तो भीमसेन अर्जुन नकुल और सहदेव इन नरसिंहों ने उनका अनुगमन क्यों किया । दुर्जनों के द्वारा दुखी होकर भी इन लोगों ने युधिष्ठिर का साथ क्यों दिया ॥८॥ धर्मात्माओं में श्रेष्ठ धर्मराज के पुत्र और स्वयं धर्मात्मा, युधिष्ठिर ने जो क्लेश सहने के योग्य नहीं

कथं च बहुलाः सेनाः पांडवः कृष्णसारथिः । अश्यन्नेको नयत्सर्वाः पितृलोकं धनंजयः ॥१०॥
एतदाचक्ष्व मे सर्वं यथावृत्तं तपोधन । यद्यच्च कृतवन्तस्ते तत्रतत्र महारथाः ॥११॥
वैशम्पायन उवाच
क्षणं कुरु महाराज विपुलोऽयमनुक्रमः । पुण्याख्यानस्य वक्तव्यः कृष्णद्वैपायनेरितः ॥१२॥
महर्षेः सर्वलोकेषु पूजितस्य महात्मनः । प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं व्यासस्यामिततेजसः ॥१३॥
इदं शतसहस्रं हि श्लोकानां पुण्यकर्मणाम् । सत्यवत्यात्मजेनेह व्याख्यातममितौजसा ॥१४॥
य इदं श्रावयेद्विद्वान्ये चेदं शृणुयुर्नराः । ते ब्रह्मणः स्थानमेत्य प्राप्नुयुर्देवतुल्यताम् ॥१५॥
इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम् । श्राव्याणामुत्तमं चेदं पुराणमृषिसंस्तुतम् ॥१६॥
अस्मिन्नर्थश्च कामश्च निखिलेनोपदेक्ष्यते । इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी ॥१७॥
अक्षुद्रान्दानशीलांश्च सत्यशीलाननस्तिकान् । कार्ष्णं वेदमिमं विद्वान्श्रावयित्वार्थमश्नुते॥१८॥
भ्रूणहत्याकृतं चापि पापं जह्यादसंशयम् । इतिहासमिमं श्रुत्वा पुरुषोपि सुदारुणः ॥१९॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो राहुणा चंद्रमा यथा । जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा॥२०॥
महीं विजयते राजा शत्रूँश्चापि पराजयेत् । इदं पुंसवनं श्रेष्ठमिदं स्वस्त्ययनं महत् ॥२१॥

थे। उन्होंने क्लेश क्यों उठाया ॥९॥ इतनी बड़ी सेना, अर्जुन, उनके सारथि श्रीकृष्ण, इन लोगों ने कष्ट क्यों उठाया। क्योंकि अर्जुन अकेला ही बाण चलाकर सब को यमपुरी भेज सकते थे ॥१०॥ हे तपोधन, यह सब जैसा हुआ था वह सब मुझसे कहें। उन महारथों ने जो जो किया था, वह मुझसे कहें ॥११॥

वैशम्पायन बोले—महाराज, इस कथा के लिए आप समय निकालिए। क्योंकि यह बहुत बड़ी कथा है। यह पवित्र कथा कृष्ण द्वैपायन की कही हुई है। इसके कहने में अधिक समय लगेगा ॥१२॥ सर्वत्र पूजित महात्मा तेजस्वी महर्षि व्यास का सब मत मैं कहूँगा। उन्होंने जो कहा था, वह मैं कहूँगा ॥१३॥ सौ हजार श्लोकों में ओजस्वी सत्यवती पुत्र व्यास ने पुण्यात्मा और यशस्वी पाण्डवों का चरित कहा है ॥१४॥ जो विद्वान् इस कथा को सुनाते हैं और जो मनुष्य इस कथा को सुनते हैं, वे ब्रह्मलोक में जाते हैं और देवताओं के तुल्य हो जाते हैं। यह महाभारत आख्यान वेद के अनुकूल है, पवित्र है, श्रेष्ठ है। सुनने योग्य कथाओं में श्रेष्ठ है। इस पुराण की ऋषियों ने प्रशंसा की है ॥१६॥ इस पवित्र इतिहास में अर्थ काम और मोक्ष विषयक ज्ञान का उपदेश किया गया है ॥१७॥ जो छोटे नहीं हैं, दानी और शक्तिप्रेमी हैं, जो नास्तिक नहीं हैं उनको यह समस्त कथा सुनाकर विद्वान् धन पाते हैं ॥१८॥ भयंकर मनुष्य भी इस इतिहास को सुनकर निस्सन्देह भ्रूणहत्या के पाप से छूट जाता है ॥१९॥ जिस प्रकार राहु से चन्द्रमा मुक्त हो जाता है। अर्थात् मुक्त होकर शोभित होता है। उसी प्रकार इस कथा के सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। अतएव जय की इच्छा रखनेवालों को यह जय नामक इतिहास सुनना चाहिए ॥२०॥ इसके सुनने से राजा पृथिवी जीतता है, शत्रुओं को परा-

महिषीयुवराजाभ्यां श्रोतव्यं बहुशस्तथा । वीरं जनयते पुत्रं कन्यां वा राज्यभागिनीम् ॥२२॥
धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम् । मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ॥२३॥
संप्रत्याचक्षते चेदं तथा श्रोष्यन्ति चापरे । पुत्राः शुश्रूषवः सन्ति प्रेष्याश्च प्रियकारिणः ॥२४॥
शरीरेण कृतं पापं वाचा च मनसैव च । सर्वं संत्यजति क्षिप्रं य इदं शृणुयान्नरः ॥२५॥
भरतानां महज्जन्म शृण्वतामनसूयताम् । नास्ति व्याधिभयं तेषां परलोकभयं कुतः ॥२६॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वर्ग्यं तथैव च । कृष्णद्वैपायनेनेदं कृतं पुण्यचिकीर्षुणा ॥२७॥
कीर्तिं प्रथयता लोके पांडवनां महात्मनाम् । अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ॥२८॥
सर्वविद्यावदातानां लोके प्रथितकर्मणाम् । य इदं मानवो लोके पुण्यार्थे ब्रह्मणाँच्छुचीन् ॥२९॥
श्रावयेत महापुण्यं तस्य धर्मः सनातनः । कुरूणां प्रथितं वंशं कीर्तयन्सततं शुचिः ॥३०॥
वंशमाप्नोति विपुलं लोके पूज्यतमो भवेत् । योऽधीते भारतं पुण्यं ब्राह्मणो नियतव्रतः ॥३१॥
चतुरो वार्षिकान् मासान् सर्वपापैः प्रमुच्यते । विज्ञेयः सच वेदानां पारगो भारतं पठन् ॥३२॥
देवराजर्षयो ह्यत्र पुण्या ब्रह्मर्षयस्तथा । कीर्त्यन्ते धूतपाप्मानः कीर्त्यते केशवस्तथा ॥३३॥

जित करता है । इस इतिहास का श्रवण पुत्र देनेवाले कार्यों में श्रेष्ठ है और महान् कल्याणकारी है ॥२१॥ महारानी और राजपुत्र को इस कथा का श्रवण अवश्य करना चाहिए । इससे महारानी वीरपुत्र पाती हैं और युवराज राज्याधिकारिणी कन्या पाता है ॥२२॥ यह पवित्र धर्मशास्त्र है, श्रेष्ठ अर्थशास्त्र है, और मोक्षशास्त्र है । परम बुद्धिमान् व्यास ने इसको कहा है ॥२३॥ इसका श्रवण आज भी लोग करते हैं और आगे भी करेंगे । जो इस कथा को सुनते हैं, उनके पुत्र आज्ञाकारी और भृत्य प्रियकार्य करनेवाले होते हैं ॥२४॥ जो मनुष्य इस कथा को सुनता है, उसके शारीरिक वाचिक और मानसिक समस्त पाप शीघ्र ही छूट जाते हैं ॥२५॥ द्वेष का त्याग कर जो भरतवंशियों के महान् जन्म की कथा सुनते हैं, उन्हें किसी रोग का भय नहीं होता, फिर परलोक भय कैसे हो सकता है ॥२६॥ पुण्य करने की इच्छा से महर्षि कृष्ण द्वैपायन ने इसका निर्माण किया है, यह धन, यश, आयु, तथा स्वर्ग देनेवाला है । यह पवित्र है ॥२७॥ महर्षि व्यास ने इसका निर्माण करके महात्मा पाण्डवों की कीर्ति बढ़ायी तथा अधिक ऐश्वर्यशाली और तेजस्वी अन्य क्षत्रियों की भी उन्होंने कीर्ति बढ़ायी ॥२८॥ समस्त विद्याओं के ज्ञान से जिनका निर्मल यश फैला था तथा लोक में जिनके कर्म प्रसिद्ध थे, उनकी भी कीर्ति उन्होंने बढ़ायी । जो मनुष्य यह कथा पवित्र ब्राह्मणों को सुनाता है, उसको महान् पुण्य होता है और वह सनातन धर्म का पालन करता है । जो पवित्र मनुष्य कुरुवंश की प्रसिद्ध कीर्ति का सदा कीर्तन करता है, वह विपुल वंश पाता है और लोक में प्रशंसित होता है । जो ब्राह्मण नियमपूर्वक महाभारत का अध्ययन करता है, चार वर्ष या चार महीना, उसके समस्त पाप दूर होते हैं और वह भारत पढ़ता पढ़ता वेदों का ज्ञाता हो जाता है ॥२९, ३०, ३१, ३२॥ देवता राजर्षि तथा पवित्र ब्रह्मर्षि जो निष्पाप हैं, उनका कीर्तन इस इतिहास में किया गया है । भगवान्

भगवाँश्चापि देवेशो यत्र देवी च कीर्त्यते। अनेकजननो यत्र कार्तिकेयस्य संभवः ॥३४॥
ब्राह्मणानां गवां चैव माहात्म्यं यत्र कीर्त्यते। सर्वश्रुतिसमूहोऽयं श्रोतव्यो धर्मबुद्धिभिः॥३५॥
य इदं श्रावयेद्विद्वान् ब्राह्मणानिह पर्वसु। धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्म गच्छति शाश्वतम् ॥३६॥
श्रावयेद् ब्राह्मणान् श्राद्धे यश्चेमं पादमन्ततः। अक्षय्यं तस्य तच्छ्राद्धमुपावर्तेत पितॄनिह ॥३७॥
अह्ना यदेनः क्रियते इन्द्रियैर्मनसापि वा। ज्ञानादज्ञानतो वापि प्रकरोति नरश्च यत् ॥३८॥
तन्महाभारताख्यानं श्रुत्वैव प्रविलीयते। भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते ॥३९॥
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते। भरतानां यतश्चायमितिहासो महाद्भुतः ॥४०॥
महतो ह्येनसो मर्त्यान्मोचयेदनुकीर्तितः। त्रिभिर्वर्षैर्लब्धकामः कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥४१॥
नित्योत्थित शुचिः शक्तो महाभारतमादितः। तपो नियममास्थाय कृतमेतन्महर्षिणा ॥४२॥
तस्मान्नियमसंयुक्तैः श्रोतव्यं ब्राह्मणैरिदम्। कृष्णप्रोक्तामिमां पुण्यां भारतीममुत्तमां कथाम्।४३।
श्रावयिष्यन्ति ये विप्रा येच श्रोष्यन्ति मानवाः। सर्वथा वर्तमाना वै न ते शोच्याः कृताकृतैः॥४४
नरेण धर्मकामेन सर्वः श्रोतव्य इत्यपि। निखिलेनेतिहासोऽयं ततः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥४५॥

श्रीकृष्ण का कीर्तन इसमें हैं ॥३३॥ देवेश भगवान महादेव तथा देवी पार्वती का कीर्तन इसमें है। अनेक माताओं के पुत्र अर्थात् कृत्तिका आदि छ माताओं के पुत्र कार्तिकेय के जन्म की कथा भी इसमें वर्तमान है ॥३४॥ इसमें ब्राह्मणों और गौओं का महात्म्य कहा गया है। यह आख्यान समस्त श्रुतियों का समूह है अर्थात् ज्ञान का वर्णन इसमें है, अतएव धर्मबुद्धि मनुष्यों को यह सुनना चाहिए ॥३५॥ जो विद्वान् पर्वों-अमावास्या तथा पवित्र तिथियों को यह कथा ब्राह्मणों को सुनाता है, वह पापों को नष्ट कर स्वर्ग को जीत कर शाश्वत ब्रह्म प्राप्त करता है अर्थात् मुक्त हो जाता है ॥३६॥ जो मनुष्य इस इतिहास के एक श्लोक का एक चरण भी श्राद्ध में ब्राह्मणों को सुनाता है, उसका श्राद्ध अक्षय होकर पितरों को प्राप्त होता है ॥३७॥ दिन में इन्द्रियों और मन से जो पाप होता है और ज्ञान अथवा अज्ञान से मनुष्य जो पाप करता है, वह सब महाभारत की कथा सुनते ही नष्ट हो जाता है। भरतवंश का इसमें वर्णन है इसलिए यह महाभारत कहा जाता है ॥३८, ३९॥ जो महाभारत शब्द का अर्थ जानता है,वह सब पापों से छूट जाता है। इसमें भरतवंशियों का अद्भुत इतिहास है, अतएव इस इतिहास के कीर्तन से मनुष्य का पाप दूर होता है। लब्धकाम (जिसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो गये हैं) मुनि कृष्ण द्वैपायन ने तीन वर्षों में इस इतिहास का निर्माण किया। नित्य प्रातः काल उठते थे। शुद्ध होकर नियमों का पालन करते हुए उन शक्तिमान् मुनि ने इसका निर्माण किया ॥४०, ४१, ४२॥ अतएव ब्राह्मणों को नियम पूर्वक इसका श्रवण करना चाहिए। कृष्ण द्वैपायन की बनाई हुई पवित्र और उत्तम इस भारती कथा को जो ब्राह्मण सुनाते हैं अथवा सुनते हैं, वे चाहे जिस प्रकार रहें, सदाचारी या असदाचारी ही क्यों नहो, पाप करें या पुण्य, उनको दुःख नहीं होता। अर्थात् इसके सुनने से सब पाप दूर हो जाते हैं ॥४३, ४४॥ धर्म की कामना रखनेवाले समस्त मनुष्यों को यह समस्त इतिहास सुनना

न तां स्वर्गगतिं प्राप्य तुष्टिं प्राप्नोति मानवः। यां श्रुत्वैवं महापुण्यमितिहासमुपाश्नुते ॥४६॥
शृण्वञ्छ्राद्धः पुण्यशीलः श्रावयँश्चेदमद्भुतम्। नरः फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥४७॥
यथा समुद्रो भगवान् यथा मेरुर्महागिरिः। उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥४८॥
इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम्। श्रव्यं श्रुतिसुखं चैव पावनं शीलवर्धनम् ॥४९॥
य इदं भारतं राजन् वाचकाय प्रयच्छति। तेन सर्वा मही दत्ता भवेत् सागरमेखला ॥५०॥
पारीक्षितकथां दिव्यां पुण्याय विजयाय च। कथ्यमानां मया कृत्स्नां शृणु हर्षकरीमिमाम्॥५१॥
त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः। महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमद्भुतम् ॥५२॥
शृणु कीर्तयतस्तन्म इतिहासं पुरातनम् ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अंशावतरणपर्वणि द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

वैशंपायन उवाच।
राजोपरिचरो नाम धर्मनित्यो महीपतिः। बभूव मृगयाशीलः शश्वत्स्वाध्यायवाञ्छुचिः ॥१॥

चाहिए। ऐसा करने से उन्हे सिद्धि प्राप्त होती है वे धर्म का फल पाते हैं ॥४५॥ स्वर्ग पाने से मनुष्य को इतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी कि उसे इस इतिहास के सुननेसे प्रसन्नता होती है ॥४६॥ जो पुण्यात्मा श्रद्धा के साथ इस इतिहास को सुनता है और सुनाता है, उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ॥४७॥ जिस प्रकार समुद्र और मेरु पर्वत रत्न भाण्डार के नाम से प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार यह महाभारत भी रत्नों का भाण्डार है ॥४८॥ यह आख्यान वेदों के अनुकूल है पवित्र और उत्तम है। इसके शब्द और अर्थ दोनों रमणीय हैं, यह पवित्र करनेवाला और शील बढ़ानेवाला है ॥४९॥ राजन्, जो भारत की पुस्तक कथा बाचने वाले को दान देता है उसे समुद्र पर्यन्त समस्त पृथिवी के दान का फल मिलता है ॥५०॥ जनमेजय, यह दिव्यकथा पुण्य के लिए और विजय के लिए है। हर्ष बढ़ानेवाली इस समस्त कथा को मैं कहता हूँ, आप सुनें। तीन वर्षों तक सदा तत्पर रहकर मुनि कृष्ण द्वैपायन ने इस अद्भुत महाभारत आख्यान का निर्माण किया ॥५२॥ धर्म अर्थ काम और मोक्ष के लिए जो कुछ इस आख्यान में है, वही दूसरी जगह भी है। जो यहां नहीं है, वह कहीं नहीं है ॥५३॥

द्विषष्टितम अध्याय

राजा उपरिचर का आख्यान। इन्द्रध्वजोत्सव का वृत्तान्त। गिरिका की उत्पत्ति और उसके साथ उपरिचर का विवाह। शिकार के लिए उपरिचर का जाना और पत्नी के स्मरण से उनका वीर्यपात होना। बाज पक्षी के द्वारा उसका भेजना तथा यमुना के जल में उसका गिरना। ब्रह्मा के शाप से मछली बनी हुई अद्रिका का वीर्यपान करना। उसके गर्भ से एक पुत्र और एक कन्या का जन्म होना। पुत्र को उपरिचर वसु का ले जाना और कन्या का धीवर के घर में रहना। धीवर की कन्या सत्यवती का नाव चलाने के समय पराशर से द्वैपायन को उत्पन्न करना और उनका व्यास नाम प्राप्त करना। भीष्मादिकों का संक्षिप्त वंश वर्णन।

वैशम्पायन बोले—राजा उपरिचर नामक एक राजा थे। वे धर्मात्मा और पृथ्वी का

स चेदिविषयं रम्यं वसुः पौरवनन्दनः। इन्द्रोपदेशाज्जग्राह रमणीयं महीपतिः ॥२॥
तमाश्रमे न्यस्तशस्त्रं निवसन्तं तपोनिधिम्। देवाः शक्रपुरोगा वै राजानमुपतस्थिरे ॥३॥
इन्द्रत्वमर्हो राजायं तपसेत्यनुचिन्त्य वै। तं सान्त्वेन नृपं साक्षात्तपसः संन्यवर्तयन् ॥४॥
देवा ऊचुः।
न संकीर्येत धर्मोऽयं पृथिव्यां पृथिवीपते। त्वया हि धर्मो विधृतः कृत्स्नं धारयेत् जगत् ॥५॥
इन्द्र उवाच।
लोके धर्मं पालय त्वं नित्ययुक्तः समाहितः। धर्मयुक्तस्ततो लोकान्पुण्यान्प्राप्स्यसि शाश्वतान् ॥६॥
दिविष्ठस्य भुविष्ठस्त्वं सखाभूतो मम प्रियः। ऊधः पृथिव्या यो देशस्तमावस नराधिप ॥७॥
पशव्यश्चैव पुण्यश्च प्रभूतधनधान्यवान्। स्वारक्ष्यश्चैव सौम्यश्च भोग्यैर्भूमिगुणैर्युतः ॥८॥
अर्थवानेष देशो हि धनरत्नादिभिर्युतः। वसुपूर्णा च वसुधा वस चेदिषु चेदिप ॥९॥
धर्मशीला जनपदाः सुसंतोषाश्च साधवः। न च मिथ्याप्रलापोऽत्र स्वैरेष्वपि कुतोन्यथा ॥१०॥
न च पित्रा विभज्यन्ते पुत्रा गुरुहिते रताः। युंजते धुरि नो गाश्च कृशान्संधुक्षयन्ति च ॥११॥
सर्वे वर्णाः स्वधर्मस्थाः सदा चेदिषु मानद। न तेऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु यद्भवेत् ॥१२॥

पालन करने वाले थे। वे सदा शिकार खेलने जाया करते थे ॥१॥ उन्होंने इन्द्र के कहने से रमणीय चेदि देश को ग्रहण किया। वे राजा वहीं राज्य करने लगे ॥२॥ अपने आश्रम में शस्त्रत्याग करके वे रहने लगे और तपस्या करने लगे। एक समय इन्द्र आदि देवता उनके पास गये ॥३॥ ये राजा इन्द्र होने के योग्य है, ऐसा मन में सोच कर उन लोगों ने कोमलता के साथ समझा बुझा कर राजा को तपस्या करने से रोका ॥४॥ देवता बोले, राजन्, पृथिवी में धर्म की संकरता न होने पावे, दूसरे के धर्म का पालन दूसरा न करे। आप राजा हैं, आप धर्म की सुव्यस्था करेंगे तो यह धर्म समस्त जगत् को धारण करेगा ॥५॥ इन्द्र बोले, महाराज, सावधान होकर तत्परता के साथ आप लौकिक धर्मों का पालन करें। धर्म पालन करने पर ही आप पवित्र और अविनाशी लोकों को पा सकेंगे ॥६॥ मैं स्वर्ग में रहनेवाला हूँ और आप पृथिवी में रहनेवाले हैं। फिर भी आप मेरे प्रियमित्र हैं। राजन्, पृथिवी में जो रमणीय देश हो, वहां आप निवास करें ॥७॥ जिस देश में पशुओं को सुख हो, प्रचुर धनधान्य हो, स्वर्ग के समान सुखकारी हो। पवित्र और रमणीय हो और जहां की भूमि में भोग के सब गुण वर्तमान हों ॥८॥ यह चेदिदेश धन से पूर्ण है यहां रत्न आदि अधिक परिमाण में हैं, यहां की पृथिवी धन रत्नों से पूर्ण है। आप इस चेदि देश में निवास करें और इसका पालन करें ॥९॥ यहां के निवासी धर्मात्मा, सन्तोषी और सज्जन हैं। ये हंसी में भी झूठ नहीं बोलते, फिर अन्य किसी कारण से झूठ कैसे बोल सकते हैं ॥१०॥ यहां पिता पुत्रों का विभाग नहीं करता है, अर्थात् वे अलग नहीं होते हैं। शिष्य गुरु के हित में तत्पर रहते हैं। यहां बैल हल में नहीं जोते जाते। अर्थात् बिना जोते ही अन्न उत्पन्न होता है। दुर्बल बैल यहां बलवान बनाए जाते हैं ॥११॥ हे मानद, चेदि देश के सब वर्णवाले अपने अपने धर्म का

देवोपभोग्यं दिव्यं त्वामाकाशे स्फाटिकं महत् । आकाशगं त्वां मद्दतं विमानमुपपत्स्यते ॥१३॥
त्वमेकः सर्वमर्त्येषु विमानवरमास्थितः । चरिष्यस्युपरिस्थो हि देवो विग्रहवानिव ॥१४॥
ददामि ते वैजयन्तीं मालामम्लानपंकजाम् । धारयिष्यति संग्रामे या त्वां शस्त्रैरविक्षतम् ॥१५॥
लक्षणं चैतदेवेह भविता ते नराधिप । इन्द्रमालेति विख्यातं धन्यमप्रतिमं महत् ॥१६॥
यष्टिं च वैणवीं तस्मै ददौ वृत्रनिषूदनः । इष्टप्रदानमुद्दिश्य शिष्टानां प्रतिपालिनीम् ॥१७॥
तस्याः शक्रस्य पूजार्थं भूमौ भूमिपतिस्तदा । प्रवेशं कारयामास गते संवत्सरे तदा ॥१८॥
ततः प्रभृति चाद्यापि यष्टेः क्षितिपसत्तमैः । प्रवेशः क्रियते राजन्यथा तेन प्रवर्तितः ॥१९॥
अपरेद्युस्ततस्तस्याः क्रियतेऽत्युच्छ्रयो नृपैः । अलंकृतायाः पिटकैर्गन्धमाल्यैश्च भूषणैः ॥२०॥
माल्यदामपरिक्षिप्ता विधिवत्क्रियतेऽपि च । भगवान्पूज्यते चात्र हंसरूपेण चेश्वरः ॥२१॥
स्वयमेव गृहीतेन वसोःप्रीत्या महात्मनः । स तां पूजां महेन्द्रस्तु दृष्ट्वा देवः कृतां शुभाम् ॥२२॥
वसुना राजमुख्येन प्रीतिमानब्रवीत्प्रभुः । ये पूजयिष्यंति नरा राजानश्च महं मम ॥२३॥
कारयिष्यंति च मुदा यथा चेदिपतिर्नृपः । तेषां श्रीर्विजयश्चैव सराष्ट्राणां भवष्यति ॥२४॥

पालन करते हैं। तीनों लोकों में ऐसी कोई भी बात नहीं है, जिसे आप न जानते हों ॥१२॥ मेरा दिया हुआ स्फटिक का विमान आपके पास उपस्थित होगा, वह आकाश में चल सकेगा। उस दिव्य विमान का उपयोग देवता ही कर सकते हैं ॥१३॥ मनुष्यों में तुम ही एक उस विमान पर बैठ सकोगे और शरीरधारी देवताओं के समान आकाश में परिभ्रमण कर सकोगे ॥१४॥ मैं तुम्हें एक वैजयन्ती माला देता हूँ, जिसके कमल कभी मुरझाते नहीं। उस माला से संग्राम में तुम कभी घायल न हो सकोगे ॥१५॥ राजन्, यह माला आप का एक चिन्ह होगी, इस माला के द्वारा आप पहिचाने जा सकेंगे। यह इन्द्रमाला के नाम से प्रसिद्ध होगी और आप धन्य तथा सर्वश्रेष्ठ समझे जांयगे ॥१६॥ वृत्रहन्ता ने उन्हें बांस की एक छड़ी मित्रता के चिन्ह स्वरूप भेंट दी। जो सज्जनों की रक्षा करनेवाली थी ॥१७॥

एक वर्ष बीतने पर इन्द्र का सम्मान करने के लिए राजा ने उस छड़ी को पृथिवी में रोपा ॥१८॥ उस समय से आज तक प्रधान राजा उसी प्रकार बांस की छड़ी वर्ष के अन्त में रोपते हैं ॥१९॥ दूसरे दिन अर्थात् दूसरे वर्ष के प्रारम्भ के दिन, उस छड़ी को ऊपर उठाते हैं और छोटी छोटी पिटारियों सुगंधित मालाओं और भूषणों से उसे अलंकृत करते हैं ॥२०॥ विधिपूर्वक उस छड़ी को मालाओं में लपेट देते हैं और हंस के रूप में भगवान इन्द्र की पूजा की जाती है ॥२१॥ उस इन्द्रध्वज की, की गयी उत्तम पूजा देखकर इन्द्र ने उस पूजा को महात्मा वसु को प्रसन्न करने के लिए स्वयं ग्रहण किया और प्रसन्न होकर वे बोले। जो मनुष्य मेरी यह पूजा करेंगे तथा जो मेरा उत्सव करावेंगे, जिस प्रकार चेदि के राजा ने किया है, उनको विजय-लक्ष्मी प्राप्त होगी, तथा उनके देश का कल्याण होगा ॥२२, २३, २४॥ वह देश धनी तथा प्रसन्न होगा। राजा जनमेजय, इस प्रकार महात्मा इन्द्र ने प्रेमपूर्वक, महाराज वसु को प्रसन्न किया

तथा स्फीतो जनपदो मुदितश्च भविष्यति । एवं महात्मना तेन महेन्द्रेण नराधिप ॥२५॥
वसुप्रीत्या मघवता महाराजोऽभिसत्कृतः । उत्सवं कारयिष्यन्ति सदा शक्रस्य ये नराः ॥२६॥
भूमिरत्नादिभिर्दानैस्तथा पूज्या भवन्ति ते । वरदानमहायज्ञैस्तथा शक्रोत्सवेन च ॥२७॥
संपूजितो मघवता वसुश्चेदीश्वरो नृपः । पालयामास धर्मेण चेदिस्थः पृथिवीमिमाम् ॥२८॥
इन्द्रप्रीत्या चेदिपतिश्चकारेन्द्रमहं वसुः । पुत्राश्चास्य महावीर्याः पंचासन्नमितौजसः ॥२९॥
नानाराज्येषु च सुतान्स सम्राडभ्यषेचयत् । महारथो मागधानां विश्रुतो यो बृहद्रथः ॥३०॥
प्रत्यग्रहः कुशाम्बश्च यमाहुर्मणिवाहनम् । मावेल्लश्च यदुश्चैव राजन्यश्चापराजितः ॥३१॥
एते तस्य सुता राजन् राजर्षेर्भूरितेजसः । न्यवेशयन्नामभिः स्वैस्ते देशाँश्च पुराणि च ॥३२॥
वासवाः पंच राजानः पृथग्वंशाश्च शाश्वताः । वसन्तमिंद्रप्रासादे आकाशे स्फाटिके च तम् ॥३३॥
उपतस्थुर्महात्मानं गंधर्वाप्सरसो नृपम् । राजोपरिचरेत्येवं नाम तस्याथ विश्रुतम् ॥३४॥
पुरोपवाहिनीं तस्य नदीं शुक्तिमतीं गिरिः । अरौत्सीच्चेतनायुक्तः कामात्कोलाहलः किल ॥३५॥
गिरिं कोलाहलं तं तु पदा वसुरताडयत् । निश्चक्राम ततस्तेन प्रहारविवरेण सा ॥३६॥
तस्यां नद्यां स जनयन्मिथुनं पर्वतःस्वयम् । तस्माद्विमोक्षणात्प्रीता नदी राज्ञे न्यवेदयत् ॥३७॥
यः पुमानभवत्तत्र तं स राजर्षिसत्तमः । वसुर्वसुप्रदश्चक्रे सेनापतिमरिंदमः ॥३८॥

उनका सत्कार किया। जो मनुष्य सदा इन्द्र का उत्सव करावेंगे और भूमि तथा रत्न आदि का दान करेंगे, वे वरदान, महायज्ञ तथा इन्द्रोत्सव के द्वारा धन्य होंगे ॥२५, २६, २७॥ मघवा इन्द्र ने चेदिराज का सम्मान किया। वे राजा, चेदि देश में रहकर धर्मपूर्वक पृथिवी का पालन करने लगे ॥२८॥ इन्द्र प्रेम के कारण चेदिराज प्रतिवर्ष इन्द्रोत्सव करते रहे। इनके पांच पुत्र हुए जो पांचों बड़े पराक्रमी थे ॥२९॥ उस सम्राट् ने अपने पुत्रों का अनेक राज्यों पर अभिषेक किया अर्थात् उन्हे राजा बनाया। बृहद्रथ मगध का राजा हुआ, जो महारथी था, अर्थात् बड़ा वीर था। दूसरा पुत्र प्रत्यग्रह और कुशाम्ब था। इसको मणिवाहन भी कहते हैं। चौथा मावेल्ल और पांचवा यदु था जो सदा अपराजित था ॥३०, ३१॥ राजन्, उस राजर्षि के ये तेजस्वी पुत्र थे। इन लोगों ने अपने नामों के अनुसार नगर तथा देश बसाये ॥३२॥ राजा वसु के पांचों पुत्र राजा हुए और उनके अलग अलग वंश चले। राजा उपरिचर इन्द्र के दिये स्फटिक विमान में आकाश में रहते थे, उस समय उनके पास गन्धर्व और अप्सराएँ आया करती थीं। सदा आकाश में रहने के कारण उनका नाम ही उपरिचर हो गया था ॥३३, ३४॥

राजा के नगर के पास बहनेवाली शक्तिमती नदी को कोलाहल नामक पर्वत ने सचेतन होकर काम वासना से रोका ॥३५॥ राजा वसु ने उस पर्वत को पैरों से मारा, जिससे उस पर्वत में एक छेद हो गया और उस छेद से वह नदी निकल गयी ॥३६॥ उस नदी से उस पर्वत ने कन्या-पुत्रों का एक जोड़ा उत्पन्न किया। राजा ने नदी को पर्वत से छुटकारा दिला दिया था इस कारण नदी ने वह जोड़ा राजा को दिया ॥३७॥ राजर्षिश्रेष्ठ, शत्रुदमनकारी और धन देने

चकार पत्नीं कन्यां तु तथा तां गिरिकां नृपः। वसोःपत्नी तु गिरिका कामकालं न्यवेदयत् ।३९।
ऋतुकालमनुप्राप्ता स्नाता पुंसवने शुचिः । तदहः पितरश्चैनमूचुर्जहि मृगानिति ।।४०।।
तं राजसत्तमं प्रीतास्तदा मतिमतांवरः । स पितॄणां नियोगेन तामतिक्रम्य पार्थिवः।।४१।।
चकार मृगयां कामी गिरिकामेव संस्मरन् । अतीव रूपसंपन्नां साक्षाच्छ्रियमिवापराम् ।।४२।।
अशोकैश्चंपकैश्चूतैरनेकैरतिमुक्तकैः । पुन्नागैः कर्णिकारैश्च बकुलैर्दिव्यपाटलैः ।।४३।।
पाटलैर्नारिकेलैश्च चंदनैश्चार्जुनैस्तथा । एतै रम्यैर्महावृक्षैःपुण्यैः स्वादुफलैर्युतम् ।।४४।।
कोकिलाकुलसन्नादं मत्तभ्रमरनादितम् । वसन्तकाले तत्पश्यत् वनं चैत्ररथोपमम् ।।४५।।
मन्मथाभिपरीतात्मा नापश्यद्गिरिकां तदा । अपश्यन् कामसंतप्तश्चरमाणो यदृच्छया ।।४६।।
पुष्पसंछन्नशाखाग्रं पल्लवैरुपशोभितम् । अशोकं स्तबकैश्छन्नं रमणीयमपश्यत ।।४७।।
अधस्तात्तस्यच्छायायां सुखासीनो नराधिपः । मधुगंधैश्च संयुक्तं पुष्पगन्धमनोहरम् ।।४८।।
वायुना प्रेर्यमाणस्तु धूम्राय मुदमन्वगात् । तस्य रेतः प्रचस्कन्द चरता गहने वने ।।४९।।
स्कन्नमात्रं च तद्रेतो वृक्षपत्रेण भूमिपः । प्रतिजग्राह मिथ्या मे न पतेद्रेत इत्युत ।।५०।।

वाले राजा ने उस जोड़ें में जो पुरुष था, उसको अपना सेनापति बनाया ।।३८।। उस जोडे की कन्या को, जिसका नाम गिरिका था राजा ने अपनी स्त्री बनाया, वसुकी पत्नी गिरिका ने काम का समय उपस्थित हुआ यह बात अपने पति को सूचित कर दी ।।३९।। उसको ऋतुदर्शन हुआ था, स्नान करके शुद्ध होकर वह पुंसवन विधि के लिए तैयार थी । उसी दिन पितरों ने उस राजा से कहा था कि मृगों का वध करो ।।४०।। पितरों की आज्ञा का उल्लङ्घन न करके कामी राजा गिरिका का स्मरण करता हुआ शिकार के लिए गया । गिरिका दूसरी लक्ष्मी के समान अत्यन्त रूपवती थी ।।४१, ४२।।

राजा जिस वन में शिकार के लिए गये थे, वह वन चैत्ररथ वन के समान सुन्दर था । अशोक, चम्पक, आम, अतिमुक्तक, पुंनाग, कर्णिकार, वकुल, दिव्यपाटल, पाटल, नारिकेल, चन्दन, अर्जुन आदि सुन्दर बड़े बड़े वृक्ष उस बन में थे, और इनके फल सुस्वादु थे ।।४३,४४।। कोकिल और भ्रमर के शब्द से वह बन गूँज रहा था और वसन्त का समय था ।।४५।। राजा का मन कामवश हो गया था, पर उन्होंने वहां अपनी स्त्री गिरिका को नहीं देखा । अतएव काम सन्तप्त राजा इच्छानुसार घूमने लगे ।।४६।। वहां उन्होंने सुन्दर एक अशोक वृक्ष देखा । उसकी शाखाओं का अगला हिस्सा पुष्पों से ढँक गया था, कोमल पत्ते उसकी शोभा बढ़ा रहे थे, गुच्छों से वह वृक्ष ढँक सा रहा था ।।४७।। उस वृक्ष के नीचे राजा सुखपूर्वक बैठ गये। वह अशोक वृक्ष, मधु और पुष्पों की गन्ध से सुगन्धित हो रहा था ।।४८।। सुगन्धित वायु के लगने से राजा कामवश हो गये और वे गिरिका का मन ही मन ध्यान करने लगे । उसी समय वन में भ्रमण करते करते राजा का वीर्यपात हुआ ।।४९।। यह वीर्य व्यर्थ न जाय यह सोचकर राजा ने उसे वृक्ष के पत्ते में ले लिया ।।५०।। यह मेरा वीर्य व्यर्थ न हो और न

इदं मिथ्या परिस्कन्नं रेतो मे न भवेदिति । ऋतुश्च तस्याः पत्न्या मे न मोघःस्यादितिप्रभुः॥५१॥
संचिंत्यैवं तदा राजा विचार्य च पुनः पुनः । अमोघत्वं च विज्ञाय रेतसो राजसत्तमः ॥५२॥
शुक्रप्रस्थापने कालं महिष्याः प्रसमीक्ष्य वै । अभिमंत्र्याथ तच्छुक्रमारात्तिष्ठन्तमाशुगम् ॥५३॥
सूक्ष्मधर्मार्थतत्त्वज्ञो गत्वा श्येनं ततोऽब्रवीत् । मत्प्रियार्थमिदं सौम्य शुक्रं मम गृहं नय ॥५४॥
गिरिकायाः प्रयच्छाशु तस्या ह्यार्तवमद्य वै । गृहीत्वा तत्तदा श्येनस्तूर्णमुत्पत्य वेगवान् ॥५५॥
जवं परममास्थाय प्रदुद्राव विहंगमः । तमपश्यदथायान्तं श्येनं श्येनस्तथाऽपरः ॥५६॥
अभ्यद्रवच्च तं सद्यो दृष्ट्वैवामिषशंकया । तुंडयुद्धमथाकाशे तावुभौ संप्रचक्रतुः ॥५७॥
युध्यतोरपतद्रेतस्तच्चापि यमुनांभसि । तत्राद्रिकेति विख्याता ब्रह्मशापाद्वराप्सरा ॥५८॥
मीनभावमनुप्राप्ता बभूव यमुनाचरी । श्येनपादपरिभ्रष्टं तद्वीर्यमथ वासवम् ॥५९॥
जग्राह तरसोपेत्य साऽद्रिका मत्स्यरूपिणी । कदाचिदपि मत्सीं तां बवंधुर्मत्स्यजीविनः ॥६०॥
मासे च दशमे प्राप्ते तदा भरतसत्तम । उज्जह्रुरुदरात्तस्याः स्त्रीपुमांसं च मानुषम् ॥६१॥
आश्चर्यभूतं तद्गत्वा राज्ञेऽथ प्रत्यवेदयन् । काये मत्स्या इमौ राजान्संभूतौ मानुषाविति ॥६२॥
तथा पुमांसं जग्राह राजोपरिचरस्तदा । स मत्स्यो नाम राजाऽसीद्धार्मिकःसत्यसंगरः ॥६३॥

मेरी स्त्री का ऋतुकाल ही व्यर्थ जाने पावे इसका बार बार राजा ने विचार किया, "मेरा वीर्य अमोघ है, निष्फल होनेवाला नहीं है" यह जानकर तथा महारानी के पास वीर्य भेजने का उपयुक्त समय है, ऐसा समझकर राजा ने वीर्य को अभिमन्त्रित किया । अनन्तर धर्म के सूक्ष्म तत्वों को जाननेवाले राजा ने पास ही बैठे एक बाज पक्षी से कहा । सौम्य, मेरी प्रसन्नता के लिए मेरा यह वीर्य शीघ्र ही मेरे घर पहुंचा दो ॥ ५१, ५२, ५३, ५४ ॥ जाकर यह वीर्य गिरिका को दो, क्योंकि उसका यह ऋतुकाल है । वीर्य लेकर वह बाज शीघ्र ही वेग पूर्वक उड़ा ॥५५॥ वह पक्षी बड़े वेग से वहां से चला । उसको आता हुआ एक दूसरे बाज ने देखा ॥५६॥ यह मांस लिये जा रहा है ऐसा समझ कर दूसरा बाज देखते ही उस पर टूट पड़ा । दोनों आकाश ही में तुण्ड युद्ध करने लगे, दोनों चोंच से लड़ने लगे ॥५७॥ उन दोनों के युद्ध करने से वह वीर्य यमुना के जल में गिर पड़ा । वहां अद्रिका नाम की एक अप्सरा थी, जो ब्रह्मा के शाप से मछली बन गई थी और यमुना में रहती थी । बाज के पंजे से छूटकर गिरा हुआ वसु के उस वीर्य को मछली बनी उस अद्रिका ने शीघ्र जाकर ले लिया । एक समय मछली पकड़नेवाले ने उस मछली को पकड़ लिया ॥५८, ५९, ६०॥ भरतश्रेष्ठ, जब दसवाँ महीना आया तब उस धीवर ने उस मछली के पेट से मनुष्य स्त्री और पुरुष को निकाला ॥६१॥ उस धीवर ने यह आश्चर्य वृत्तान्त जाकर राजा से कहा—महाराज, मछली के शरीर से ये दो मनुष्य निकले हैं ॥६२॥ राजा उपरिचर ने उन दो मनुष्यों में से पुरुष को ले लिया, वह पुरुष मत्स्य नाम का राजा था वह धर्मात्मा और सत्यप्रेमी था ॥६३॥

साऽप्सरा मुक्तशापा च क्षणेन समपद्यत । या पुरोक्ता भगवता तिर्यग्योनिगता शुभा ॥६४॥
मानुषौ जनयित्वा त्वं शापमोक्षमवाप्स्यसि । ततःसा जनयित्वा तौ विशस्ता मत्स्यघातिना ॥६५॥
संत्यज्य मत्स्यरूपं सा दिव्यं रूपमवाप्य च । सिद्धर्षिचारणपथं जगामाथ वराप्सरा ॥६६॥
सा कन्या दुहिता तस्या मत्स्या मत्स्यसगंधिनी । राज्ञा दत्ता च दाशाय कन्येयं तेभवत्विति ॥६७॥
रूपसत्वसमायुक्ता सर्वैः समुदिता गुणैः । सातु सत्यवती नाम मत्स्यघात्यभिसंश्रयात् ॥६८॥
आसीत्सा मत्स्यगंधैव कंचित्कालं शुचिस्मिता । शुश्रूषार्थं पितुर्नावं वाहयंती जले च ताम् ॥६९॥
तीर्थयात्रां परिक्रामन्नपश्यद्वै पराशरः । अतीवरूपसंपन्नां सिद्धानामपि कांक्षिताम् ॥७०॥
दृष्ट्वैव स च तां धीमांश्चकमे चारुहासिनीम् । दिव्यां तां वासवीं कन्यां रंभोरुं मुनिपुंगवः ॥७१॥
संगमं मम कल्याणि कुरुष्वेत्यभ्यभाषत । साऽब्रवीत्पश्य भगवन्पारावारे स्थितानृषीन् ॥७२॥
आवयोर्दृष्टयोरेभिः कथंतु स्यात्समागमः । एवं तथोक्तो भगवान्नीहारमसृजत्प्रभुः ॥७३॥
येन देशः स सर्वस्तु तमोभूत इवाभवत् । दृष्ट्वा सृष्टं तु नीहारं ततस्तं परमर्षिणा ॥७४॥
विस्मिता साऽभवत्कन्या व्रीडिता च तपस्विनी । विद्धि मां भगवन्कन्यां सदा पितृ वशानुगाम् ॥७५॥
सत्यवत्युवाच ।
त्वत्संयोगाच्च दुष्येत कन्याभावो ममाऽनघ । कन्यात्वे दूषिते वापि कथं शक्ष्ये द्विजोत्तम ॥७६॥

वह अद्रिका अप्सरा भी शीघ्र ही शापमुक्त हो गयी। जिससे पहले ब्रह्मा ने कहा था कि तुम दो मनुष्यों को जन्म देकर तिर्यग्योनि से मुक्त हो जाओगी। उस मछली ने दो मनुष्यों को उत्पन्न किया, धीवर के द्वारा काटी गयी। उस समय उसने मछली का रूप छोड़कर दिव्यरूप धारण किया, अनन्तर वह सुन्दरी अप्सरा, सिद्ध ऋषि और चारणों के विचरण करनेवाले पथ में चली गयी ॥६४, ६५, ६६॥

मछली के पेट से निकली उस कन्या के शरीर से मछली की गन्ध आती थी। राजा ने वह कन्या उस धीवर को दे दी और कहा—यह तुम्हारी कन्या हो ॥६७॥ वह कन्या रूपवती बलवती और सब गुणों से युक्त थी। उसका सत्यवती नाम था। मछली पकड़नेवाले के साथ रहने से उसके शरीर से कुछ दिनों तक मछली की गन्ध आती रही। वह पिता की सेवा करने के लिए जल में नाव चलाया करती थी ॥६८, ६९॥ तीर्थयात्रा के लिए घूमते हुए पराशर ने एक बार उस रूपवती स्त्री को देखा। उसके रूप पर सिद्ध भी मोहित हो सकते थे ॥७०॥ उस दिव्य वसुकी कन्या को देखते ही पराशर उस पर मोहित हो गये और उन्होंने उसको चाहा ॥७१॥ मुनि ने कहा—कल्याणि, तुम मेरे साथ सङ्गम करो। उसने कहा—महाराज, तीर पर के ऋषियों को देखिए ॥७२॥ ये हमलोगों को देख रहे हैं फिर हमारा समागम कैसे हो सकता है। उसके ऐसा कहने पर मुनि ने कुहासे की सृष्टि की ॥७३॥ जिससे वहां सर्वत्र अन्धकार हो गया। उस महर्षि के द्वारा कुहासे की सृष्टि देखकर वह विचारी कन्या लजा गयी और विस्मित हो गयी। सत्यवती बोली, भगवन् पिता की आज्ञा के अधीन सदा रहनेवाली आप मुझे कन्या समझें



अद्रिकाकी शापमुक्ति

[चित्रकार—पी० मुकर्जी

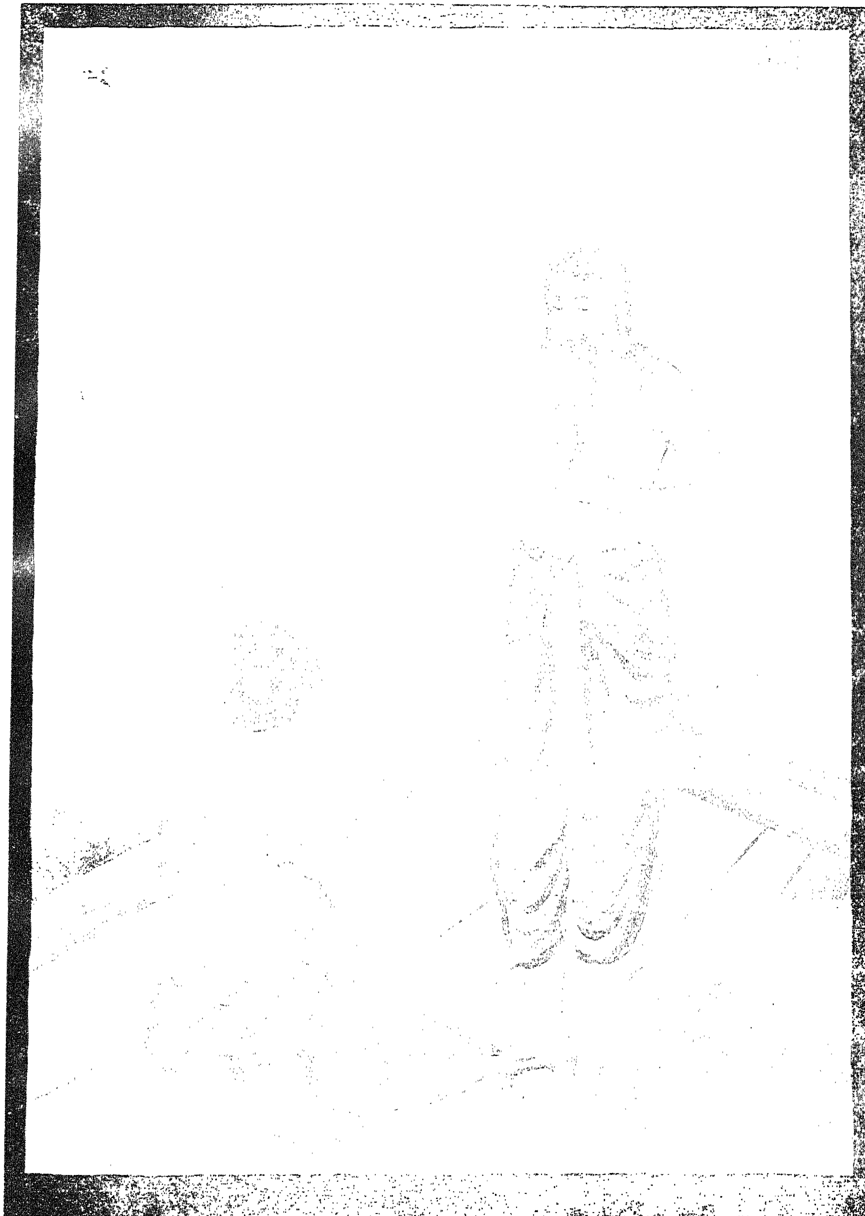
गृहं गंतुमृषे चाहं धीमन्न स्थातुमुत्सहे । एतत्संचिंत्य भगवन्विधत्स्व यदनंतरम् ॥७७॥
एवमुक्तवतीं तां तु प्रीतिमानृषिसत्तमः । उवाच मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥७८॥
वृणष्व च वरं भीरु यं त्वमिच्छसि भाविनि । वृथाहि न प्रसादो मे भूतपूर्वः शुचिस्मिते ॥७९॥
एवमुक्ता वरं वव्रे गात्रसौगंध्यमुत्तमम् । स चास्यै भगवान्प्रादान्मनसः कांक्षितं भुवि ॥८०॥
ततो लब्धवरा प्रीतास्त्रीभावगुणभूषिता । जगाम सह संसर्गमृषिणाऽद्भुतकर्मणा ॥८१॥
तेन गंधवतीत्येवं नामास्याः प्रथितं भुवि । तस्यास्तु योजनाद्गंधमाजिघ्रन्त नरा भुवि ॥८२॥
तस्या योजनगन्धेति ततो नामापरं स्मृतम् । इति सत्यवती हृष्टा लब्ध्वा वरमनुत्तमम् ॥८३॥
पराशरेण संयुक्ता सद्योगर्भं सुषाव सा । जज्ञे च यमुनाद्वीपे पाराशर्यः स वीर्यवान् ॥८४॥
स मातरमनुज्ञाप्य तपस्येव मनो दधे । स्मृतोऽहं दर्शयिष्यामि कृत्येष्विति च सोऽब्रवीत् ॥८५॥
एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात् । न्यस्तो द्वीपे स यद्बालस्तस्माद्द्वैपायनः स्मृतः ॥८६॥
पादापसारिणं धर्मं स तु विद्वान्युगेयुगे । आयुः शक्तिं च मर्त्यानां युगावस्थामवेक्ष्य च ॥८७॥
ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च तथाऽनुग्रहकांक्षया । विव्यास वेदान्यस्मात्स तस्माद्व्यास इति स्मृतः ॥८८॥

॥७४, ७५॥ हे निष्पाप, आपके सम्पर्क से मेरा कन्याभाव दूषित हो जायगा, मैं कन्या न रह जाऊँगी । ब्राह्मणश्रेष्ठ, कन्याभाव के नष्ट हो जाने पर मैं घर कैसे जाऊँगी, और यहाँ कैसे रह सकूँगी, इस बात का विचार करके आगे आपको जो कुछ करना हो वह आप करें ॥७६, ७७॥ उसके ऐसा कहने पर ऋषिश्रेष्ठ ने प्रसन्न होकर कहा—मेरा प्रिय काम करने के बाद भी तुम कन्या ही रहोगी ॥७८॥ भीरु, जो तुम चाहो, वह मांगो, शुचिस्मिते, मेरी प्रसन्नता आज तक व्यर्थ नहीं हुई है । अर्थात् वह आगे भी व्यर्थ न होगी ॥७९॥ मुनि के ऐसा कहने पर उसने अपने शरीर के सुगन्धित हो जाने का वर मांगा । भगवान् पराशर ने उसका मनचाहा वर उसे दिया ॥८०॥ वर पाने से वह प्रसन्न हुई, उसमें स्त्रीत्व के सभी भाव वर्तमान थे। अद्भुतकर्मा ऋषि के साथ उसने संसर्ग किया ॥८१॥ उसका शरीर सुगन्धित हो गया था इस कारण वह गन्धवती नाम से प्रसिद्ध हुई । उसकी गन्ध एक योजन से ही लोगों को मालूम पड़ती थी, इस कारण उसका दूसरा नाम योजनगन्धा हो गया । इस प्रकार श्रेष्ठ वर पाकर सत्यवती बहुत प्रसन्न हुई ॥८२, ८३॥ पराशर के संसर्ग से उसने गर्भ धारण किया और पुत्र उत्पन्न किया । वह पराशर का बलीपुत्र यमुना के द्वीप में उत्पन्न हुआ ॥८४॥ माता की आज्ञा से उस पुत्र ने तपस्या में ही अपना मन लगाया । उसने अपनी माता से कहा कि आवश्यकता पड़ने पर जब आप मेरी याद करेंगी, तब मैं उपस्थित हो जाया करूँगा ॥८५॥ इस प्रकार पराशर के द्वारा सत्यवती से द्वैपायन उत्पन्न हुए । वह बालक द्वीप में ही रखा गया अर्थात् द्वीप में ही वह उत्पन्न हुआ, इस कारण उसका नाम द्वैपायन पड़ा ॥८६॥ उस विद्वान् ने प्रत्येक युग में एक एक पाद धर्म का ह्रास देखकर मनुष्यों की आयु शक्ति तथा युगकी अवस्था देखकर वेदों तथा ब्राह्मणों की रक्षा के लिए वेदों का विभाग किया । इस कारण उसका नाम व्यास पड़ा ॥८७, ८८॥ सुमन्तु, जैमिनि,

वेदानध्यापयामास महाभारतपंचमान् । सुमंतुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥८९॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशंपायनमेव च । संहितास्तैः पृथकत्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ॥९०॥
तथा भीष्मः शांतनवो गंगायाममितद्युतिः। वसुवीर्यात्समभवन्महाबाहोर्महायशाः ॥९१॥
वेदार्थविच्च भगवानृषिर्विप्रो महायशा । शूले प्रोतः पुराणर्षिरचौरश्चौरशंकया ॥९२॥
अणीमांडव्य इत्येवं विख्यातः स महायशाः । स धर्ममाहूय पुरा महर्षिरिदमुक्तवान् ॥९३॥
इषीकया मया बाल्याद्विद्धा ह्येका शकुंतिका । तत्किल्बिषं स्मरे धर्म नान्यत्पापमहं स्मरे ॥९४॥
तन्मे सहस्रममितं कस्मान्नेहाजयत्तपः । गरीयान्ब्राह्मणवधः सर्वभूतवधाद्यतः ॥९५॥
तस्मात्वं किल्बिषी धर्म शूद्रयोनौ जनिष्यसि । तेन शापेन धर्मोऽपि शूद्रयोनावजायत ॥९६॥
विद्वान्विदुररूपेण धर्मीतनुरकिल्बिषी । संजयो मुनिकल्पस्तु जज्ञे सूतो गवल्गणात् ॥९७॥
सूर्याच्च कुंतिकन्यायां जज्ञे कर्णो महाबलः । सहजं कवचं बिभ्रत्कुंडलोद्योतिताननः ॥९८॥
अनुग्रहार्थं लोकानां विष्णुर्लोकनमस्कृतः । वसुदेवात्तु देवक्यां प्रादुर्भूतो महायशाः ॥९९॥
अनादिनिधनो देवः स कर्ता जगतः प्रभुः । अव्यक्तमक्षरं ब्रह्मप्रधानं त्रिगुणात्मकम् ॥१००॥

पैल, अपने पुत्र शुक तथा वैशम्पायन को उन श्रेष्ठ बर देनेवाले प्रभु ने चारों वेदों तथा पांचवें महाभारत का अध्ययन कराया। उन शिष्यों ने अपने अपने नाम से अलग अलग महाभारत संहिता प्रकाशित की ॥ ८९,९०॥

अनन्तर बड़े दीप्तिमान भीष्म, शन्तनु से गंगा में उत्पन्न हुए। ये महायशस्वी और महाबली थे, भीष्म वसु के वीर्य से उत्पन्न हुए ॥९१॥ वेदार्थों के ज्ञाता महायशस्वी ब्राह्मण ऋषि शूल (फांसी) पर चढ़ाये गये थे। वे प्राचीन ऋषि चोर नहीं थे, पर उन पर चोरी का सन्देह किया गया था। वे महायशस्वी अणीमांडव्य के नाम से प्रसिद्ध थे। उस समय धर्म को बुलाकर उन महर्षि ने कहा ॥९२॥ धर्म, बालयवस्था में मैंने एक तिनके से एक चिड़िया को छेदा है, यही एक पाप मुझे स्मरण है दूसरा कोई पाप मुझे स्मरण नहीं है ॥९३॥ इसके पश्चात् मैंने बहुत सी तपस्या की है, उन तपस्याओं ने मेरे उस पाप को क्यों नहीं जीत लिया। जो आज मुझे शूल पर लटकना पड़ रहा है। सब प्राणियों के बध से ब्राह्मण वध भयानक पाप है ॥९४, ९५॥ वह पाप तुमने किया है अर्थात् मेरा बध तुम कर रहे हो, इसलिए तुम पापी हो, अतएव तुम्हें शूद्र योनि में जन्म लेना पड़ेग। उसी शाप से धर्म को भी शूद्र योनि में उत्पन्न होना पड़ा ॥९६॥ धर्म ने विद्वान् निष्पाप विदुर के रूप में जन्म ग्रहण किया। इनका शरीर धर्म का था। मुनि तुल्य संजय गावल्गण से सूत वंश में उत्पन्न हुए ॥९७॥ कुन्तीभोज की कन्या में सूर्य से महाबली कर्ण उत्पन्न हुए। स्वाभाविक कवच और कुंडल उन्होंने धारण किये थे। कुंडल से उनका मुँह शोभित हो रहा था ॥९८॥ लोकपूजित विष्णु संसार की रक्षा के लिए वसुदेव से देवकी में उत्पन्न हुए ॥९९॥ वे अनादि निधन हैं, स्थूल शरीर के होने वाले धर्म-जन्म मरण उनके नहीं होते। वे जगत् के कर्ता हैं। वे अव्यक्त हैं, उनमें किसी प्रकार का विकार नहीं



पराशर मुनिका मत्स्यगन्धाको वर देना

[चित्रकार—पी० मुकर्जी

आत्मानमव्ययं चैव प्रकृतिं प्रभवं प्रभुम्। पुरुषं विश्वकर्माणं सत्वयोगं ध्रुवाक्षरम् ॥१०१॥
अनंतमचलं देवं हंसं नारायणं प्रभुम् । धातारमजमव्यक्तं यमाहुः परमव्ययम् ॥१०२॥
कैवल्यं निर्गुणं विश्वमनादिमजमव्ययम्। पुरुषः स विभुः कर्ता सर्वभूतपितामहः ॥१०३॥
धर्मसंवर्धनार्थाय प्रजज्ञेऽन्धकवृष्णिषु। अस्त्रज्ञौ तु महावीर्यौ सर्वशास्त्रविशारदौ ॥१०४॥
सात्यकिः कृतवर्मा च नारायणमनुव्रतौ। सत्यकाद्धृदिकाच्चैव जज्ञातेऽस्त्रविशारदौ ॥१०५॥
भरद्वाजस्य चस्कन्नं द्रोण्यां शुक्रमवर्धत। महर्षेरुग्रतपसस्तस्माद्द्रोणो व्यजायत ॥१०६॥
गौतमान्मिथुनं जज्ञे शरस्तंबाच्छरद्वतः। अश्वत्थाम्नश्च जननी कृपश्चैव महाबलः ॥१०७॥
अश्वत्थामा ततो जज्ञे द्रोणादेव महाबलः। तथैव धृष्टद्युम्नोऽपि साक्षादग्निसमद्युतिः ॥१०८॥
वैताने कर्मणि तते पावकात्समजायत। वीरो द्रोणविनाशाय धनुरादाय वीर्यवान् ॥१०९॥
तत्रैव वेद्यां कृष्णाऽपि जज्ञे तेजस्विनी शुभा। विभ्राजमाना वपुषा बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥११०॥
प्रह्लादशिष्यो नग्नजित्सुबलश्चाभवत्ततः। तस्य प्रजा धर्महंत्री जज्ञे देवप्रकोपनात् ॥१११॥

होता है, अक्षर हैं अविनाशी हैं, और त्रिगुणात्मक प्रधान हैं। संसार के मूलकारण हैं ॥१००॥ वे आत्मा हैं, अविनाशी हैं, वे प्रकृति प्रभव और प्रभु हैं। अर्थात् वे उपादान निमित्त और स्वामी हैं। वे व्यापक हैं, पुरुष हैं, वे चेतन अचेतन समस्त विश्व के कर्ता हैं, धर्मज्ञान और वैराग्य के द्वारा उनकी प्राप्ति होती है। वे ओंकार स्वरूप हैं ॥१०१॥ वे अनन्त हैं देश काल से परे हैं, अचल हैं अबाधित हैं, वे ज्ञानमय देव हैं, वे हंस हैं सन्यासाश्रमस्वरूप हैं नारायण हैं, कार्य में सत्ता और स्फूर्ति देने वाले हैं। वे अजन्मा हैं अव्यक्त हैं। जिनको कारण से पृथक् कहते हैं। वे अव्यय हैं, उनका नाश नहीं होता और विकार नहीं होता ॥१०२॥ वे संगहीन हैं रूप चक्षु आदि रहित हैं। वे विश्व में व्याप्त अनादि अजन्मा और अविनाशी हैं, वे व्यापक पुरुष हैं कर्ता हैं और सब प्राणियों के पितामह हैं ॥१०३॥ धर्म की वृद्धि के लिए अन्धक वृष्णि वंश में उनका जन्म हुआ है। अस्त्र जानने वाले महाबली और समस्त शास्त्रों के विद्वान् सात्यकि और कृतवर्मा नारायण के अनुगामी थे। सत्यक और हृदिक से ये दोनों अस्त्रवेत्ता उत्पन्न हुए थे ॥१०४,१०५॥ महर्षि भरद्वाज का वीर्यपात हुआ और वह द्रोणी (एक बड़ा पात्र) में रखा जाकर बढ़ा। इस प्रकार उग्र तपस्वी महर्षि भरद्वाज से द्रोण की उत्पत्ति हुई ॥१०६॥ गौतमवंशी शरद्वान के द्वारा, शरपत की झाड़ी से एक कन्या और एक बालक उत्पन्न हुए। उनमें एक अश्वत्थामा की माता कृपी थी और दूसरा महाबली कृप ॥१०७॥ महाबली अश्वत्थामा द्रोण से ही उत्पन्न हुए। साक्षात् अग्नि के समान तेजस्वी धृष्टद्युम्न भी यज्ञ के समय अग्नि से उत्पन्न हुआ। वह पराक्रमी वीर द्रोण के विनाश के लिए धनुष लेकर उत्पन्न हुआ था ॥१०८,९॥ उसी वेदी पर तेजस्विनी कृष्णा भी उत्पन्न हुई, वह शरीर से शोभित हो रही थी, वह बड़ी सुन्दरी थी ॥११०॥

अनन्तर प्रह्लाद के शिष्य नग्नजित और सुबल हुए। पर देव के कोप से सुबल की सन्तान धर्मनाश करनेवाली हुई ॥१११॥ गान्धार राज सुबल का पुत्र शकुनि हुआ, और

गांधारराजपुत्रोऽभूच्छकुनिः सौबलस्तथा । दुर्योधनस्य जननी जज्ञातेऽर्थविशारदौ ॥११२॥
कृष्णद्वैपायनाज्जज्ञे धृतराष्ट्रो जनेश्वरः । क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य पांडुश्चैव महाबलः ॥११३॥
धर्मार्थकुशलो धीमान्मेधावी धूतकल्मषः । विदुरः शूद्रयोनौ तु जज्ञे द्वैपायनादपि ॥११४॥
पांडोस्तुजज्ञिरे पंच पुत्रा देवसमाः पृथक् । द्वयोः स्त्रियोर्गुणज्येष्ठस्तेषामासीद्युधिष्ठिरः ॥११५॥
धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्चवृकोदरः । इन्द्राद्धनंजयः श्रीमान्सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥११६॥
जज्ञाते रूपसंपन्नावश्विभ्यां च यमावपि । नकुलः सहदेवश्च गुरुशुश्रूषणे रतौ ॥११७॥
तथा पुत्रशतं जज्ञे धृतराष्ट्रस्य धीमतः । दुर्योधनप्रभृतयो युयुत्सुः करणस्तथा ॥११८॥
ततो दुःशासनश्चैव दुःसहश्चापि भारत । दुर्मर्षणो विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः ॥११९॥
जयः सत्यव्रतश्चैव पुरुमित्रश्च भारत । वैश्यापुत्रो युयुत्सुश्च एकादश महारथाः ॥१२०॥
अभिमन्युः सुभद्रायामर्जुनादभ्यजायत । स्वस्रीयो वासुदेवस्य पौत्रः पांडोर्महात्मनः ॥१२१॥
पांडवेभ्यो हि पांचाल्यां द्रौपद्यां पंचजज्ञिरे । कुमारा रूपसंपन्नाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥१२२॥
प्रतिविंध्यो युधिष्ठिरात्सुतसोमोवृकोदरात् । अर्जुनाछ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥१२३॥
तथैवसहदेवाच्च श्रुतसेनः प्रतापवान् । हिडिंबायांच भीमेन बने जज्ञे घटोत्कचः ॥१२४॥
शिखंडी द्रुपदाज्जज्ञे कन्यापुत्रत्वमागता । यां यक्षः पुरुषंचक्रे स्थूणः प्रियचिकीर्षया ॥१२५॥

दुर्योधन की माता कन्या हुई, ये दोनों अपने मतलब के बड़े चतुर थे ॥११२॥ कृष्ण द्वैपायन से राजा धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए। विचित्र वीर्य की स्त्री से माहाबली पांडु भी उत्पन्न हुए ॥११३॥ धर्म और अर्थ के ज्ञाता बुद्धिमान निष्पाप विदुर शूद्रा के गर्भ से कृष्ण द्वैपायन के द्वारा उत्पन्न हुए ॥११४॥ पांडु के देव समान पांच पुत्र उत्पन्न हुए। ये पांचों पुत्र उनकी दो स्त्रियों से हुए थे। उनमें युधिष्ठिर सब से बड़े थे ॥११५॥ युधिष्ठिर धर्म से उत्पन्न हुए थे, वायु से भीमसेन, इन्द्र से अर्जुन, जो समस्त शास्त्र धारियों में श्रेष्ठ थे ॥११६॥ अश्विकुमारों से यमज उत्पन्न हुए, वे दोनों बड़े सुन्दर थे, वे अपने बड़े भाइयों की सेवा में तत्पर रहते थे। उनके नाम नकुल और सहदेव था ॥११७॥ बुद्धिमान धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए। इनके अतिरिक्त युयुत्सु और करण भी उनके हुए ॥११८॥ इनमें ग्यारह महारथ थे। दुःशासन दुर्योधन दुःसह दुर्मर्षण, विकर्ण चित्रसेन, विविंशति, जय, सत्यव्रत पुरुमित्र, और वैश्यापुत्र युयुत्सु ये ग्यारह महारथ थे ॥११९,१२०॥ अर्जुन के द्वारा सुभद्रा के गर्भ से अभिमन्यु उत्पन्न हुआ। यह वासुदेव की बहिन का बेटा था और पांडु का पोता ॥१२१॥ पांचों पांडवों से द्रौपदी के पांच पुत्र उत्पन्न हुए। वे पांचों कुमार बड़े सुन्दर और समस्त शास्त्रों के ज्ञाता थे ॥१२२॥ युधिष्ठर का पुत्र प्रतिविन्ध्य, भीम का पुत्र सुतसोम, अर्जुन का श्रुतकीर्ति, नकुल का शतानीक, और सहदेव का प्रतापी श्रुतसेन पुत्र हुए। भीमसेन से हिडिम्बा में घटोत्कच उत्पन्न हुआ ॥१२३,१२४॥ शिखंडी द्रुपद से हुआ, कन्या से यह पुत्र हो गया था। स्थूण नामक यक्ष ने राजा को प्रसन्न करने

कुरूणां विग्रहे तस्मिन्समागच्छन्बहून्यथ । राज्ञां शतसहस्राणि योत्स्यमानानि संयुगे ॥१२६॥
तेषामपरिमेयानां नामधेयानि सर्वशः । न शक्यानि समाख्यातुं वर्षाणामयुतैरपि ॥
एते तु कीर्तिता मुख्या यैराख्यानमिदं ततम् ॥१२७॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अंशावतरणपर्वणि व्यासाद्युत्पत्तौ त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥
जनमेजय उवाच ।
य एते कीर्तिता ब्रह्मन्ये चान्ये नानुकीर्तिताः।सम्यक् तान् श्रोतुमिच्छामि राज्ञश्चान्यान्सहस्रशः १
यदर्थमिह संभूता देवकल्पामहारथाः । भुवि तन्मे महाभाग सम्यगाख्यातुमर्हसि ॥२॥
वैशम्पायन उवाच ।
रहस्यं खल्विदं राजन्देवानामिति नः श्रुतम् । तत्तु ते कथयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे ॥३॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृत्वा निःक्षत्रियांपुरा । जमदग्न्यस्तपस्तेपे महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ॥४॥
तदा निःक्षत्रिये लोके भार्गवेण कृते सति । ब्राह्मणान् क्षत्रियाराजन्सुतार्थिन्योऽभिचक्रमुः ॥५॥
ताभिः सहसमापेतुर्ब्राह्मणाः संशितव्रताः । ऋतावृतौ नरव्याघ्र न कामान्नानृतौ तथा ॥६॥
तेभ्यश्च लेभिरेगर्भं क्षत्रियास्ताः सहस्रशः । ततः सुषुविरे राजन्क्षत्रियान्वीर्यवत्तरान् ॥७॥
कुमारांश्च कुमारीश्च पुनः क्षत्राभिवृद्धये । एवं तद्ब्राह्मणैः क्षत्रं क्षत्रियासु तपस्विभिः ॥८॥

के लिए इसे पुत्र बना दिया ॥१२५॥ कौरवों के उस युद्ध में अनेक कई सौ हजार राजा आये और उन लोगों ने रण में युद्ध किया ॥१२६॥ वे अनेक हैं उनके नामों की गणना नहीं हो सकती, हजार वर्षों में भी उनकी गणना नहीं हो सकती, अतएव सब प्रधान लोगों के नाम मैंने बतला दिये । जिनसे यह अख्यान बना है ॥१२७॥ त्रिषष्टितम अध्याय ।

क्षत्रियों की पुनः उत्पत्ति, धर्म को प्रधानता, दानवों की पृथिवी में उत्पत्ति, भार से पीडित होकर पृथिवी का ब्रह्मा के पास जाना इन्द्र की प्रार्थना ।

जनमेजय बोले, ब्रह्मन्, आपने जिनका वर्णन किया है और जिनका वर्णन अभी नहीं किया है उन हजारों राजाओं का अच्छी तरह वर्णन मैं सुनना चाहता हूँ ॥१॥ हे महाभाग, ये देवसमान महारथ जिस लिए इस पृथिवी में उत्पन्न हुए वह आप अच्छी तरह कहें ॥२॥ वैशम्पायन बोले, यह आख्यान देवताओं के लिए रहस्य है, गोप्य है ऐसा मैंने सुना है । वह मैं स्वयंभु को नमस्कार करके आपसे कहता हूँ ॥३॥ पहले समय में इक्कीशवार पृथिवी को क्षत्रियों से रहित बनाकर जामदग्न्य महेन्द्र नामक श्रेष्ठ पर्वत पर तपस्या करने लगे ॥४॥ भार्गव परशुराम के द्वारा समस्त लोक के क्षत्रियहीन हो जाने पर क्षत्रियस्त्रियां पुत्र प्राप्ति की इच्छा से ब्राह्मणों के पास जाने लगीं ॥५॥ नरश्रेष्ठ, ब्राह्मणों ने प्रत्येक ऋतु में उनका साथ किया । ब्राह्मणों ने जो कुछ किया वह काम से नहीं किया और न ऋतु के भिन्न समय में किया ॥६॥ उन ब्राह्मणों के द्वारा उन हजारों क्षत्राणियों ने गर्भ धारण किया और समय पर उन लोगों ने बड़े बली क्षत्रिय उत्पन्न किये ॥७॥ क्षत्रिय जाति की वृद्धि के लिये कुमार और कुमारी उत्पन्न हुईं । इस प्रकार तपस्वी ब्राह्मणों के द्वारा क्षत्राणियों से क्षत्रिय उत्पन्न हुए और बढ़े, वे सभी धर्म के कारण दीर्घायु

जातं वृद्धं च धर्मेण सुदीर्घेणायुषाऽन्वितम्। चत्वारोऽपि ततो वर्णा अभूवन्ब्राह्मणोत्तराः ॥ ९॥
अभ्यगच्छन्नृतौ नारीं न कामान्नानृतौ तथा। तथैवान्यानि भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥१०॥
ऋतौ दारांश्च गच्छंति तत्तथा भरतर्षभ। ततोवर्धत धर्मेण सहस्रशतजीविनः ॥११॥
ताः प्रजाः पृथिवीपाल धर्मव्रतपरायणाः। आधिभिर्व्याधिभिश्चैव विमुक्ताः सर्वशो नराः॥१२॥
अथेमां सागरोपान्ता गां गजेन्द्रगताखिलाम्। अध्यतिष्ठत्पुनः क्षत्रं सशैलवनपत्तनाम् ॥१३॥
प्रशासति पुनः क्षत्रे धर्मेणेमां वसुंधराम्। ब्राह्मणाद्यास्ततो वर्णा लेभिरे मुदमुत्तमाम् ॥१४॥
कामक्रोधोद्भवान्दोषान्निरस्य च नराधिपाः। धर्मेण दंडं दंड्येषु प्रणयन्तोऽन्वपालयन् ॥१५॥
तथा धर्मपरे क्षत्रे सहस्राक्षः शतक्रतुः। स्वादु देशे च काले च वर्षेणापालयत्प्रजाः ॥१६॥
न बाल एव म्रियते तदा कश्चिज्जनाधिप। न च स्त्रियं प्रजानाति कश्चिदप्राप्तयौवनाम् ॥१७॥
एवमायुष्मतीभिस्तु प्रजाभिर्भरतर्षभ। इयं सागरपर्यन्ता समापूर्यत मेदिनी ॥१८॥
ईजिरे च महायज्ञैः क्षत्रिया बहुदक्षिणैः। साङ्गोपनिषदान्वेदान्विप्राश्चाधीयते तदा ॥१९॥
न च विक्रीणते ब्रह्म ब्राह्मणाश्च तदा नृप। न च शूद्रसमभ्यासे वेदानुच्चारयंत्युत ॥२०॥
कारयंतः कृषिं गोभिस्तथा वैश्याःक्षिताविह। युञ्जते धुरि नो गाश्च कृशाङ्गाश्चाप्यजीवयन्। २१।
फेनपांश्च तथा वत्सान्न दुहन्तिस्म मानवाः। न कूटमानैर्वणिजः पण्यं विक्रीणते तदा ॥२२॥

हुए। अनन्तर चारों वर्ण हुए और ब्राह्मण उनमें श्रेष्ठ हुए ॥८, ९॥ सभी पशु पक्षी तक ऋतु काल में अपनी स्त्रियों के यहां जाते थे, कोई काम से या ऋतु काल के भिन्न समय में स्त्रीसङ्ग नहीं करता था ॥१०॥ भरतश्रेष्ठ, वे ऋतुकाल में स्त्रीसङ्ग करते थे, इस धर्म के कारण उनकी वृद्धि हुई और वे सैकड़ों हजारों वर्ष जीनेवाले हुए ॥११॥ पृथिवीपाल, वह प्रजा धार्मिक और व्रत करने वाली थी, शरीर और मानसिक व्याधियों से वह सदा मुक्त थी ॥१२॥ अनन्तर इस समस्त समुद्रान्त वन पर्वत युक्त पृथिवी का शासन क्षत्रियों ने अपने हाथ में लिया ॥१३॥ क्षत्रियों के पुनः धर्मपूर्वक पृथिवी का शासन करने पर ब्राह्मण आदि वर्णों ने विशेष प्रसन्नता प्राप्त की ॥१४॥ काम क्रोध से उत्पन्न दोषों को दूर करके राजा धर्म पूर्वक दण्डनीयों को दण्ड देते हुए पृथिवी का पालन करने लगे ॥१५॥ इस प्रकार जब राजालोग धर्मपरायण थे; उस समय सहस्राक्ष इन्द्र ने समय पर तथा उपयुक्त स्थान पर स्वादु जल बरसा कर प्रजा का पालन किया ॥१६॥ राजन्, उस समय बाल्यावस्था में कोई नहीं मरता था और युवा अवस्था प्राप्त होने के पहले कोई स्त्री को ही पहचानता था ॥१७॥ भरतश्रेष्ठ, इस प्रकार समुद्र पर्यन्त यह समस्त पृथिवी दीर्घजीवी प्रजा से भर गयी थी ॥१८॥ राजा बड़ी दक्षिणावाले बड़े बड़े यज्ञ करते थे, ब्राह्मण अङ्गों और उपनिषदों के साथ वेदों का अध्ययन करते थे ॥१९॥ उस समय ब्राह्मण वेदविक्रय नहीं करते थे और न शूद्रों के सामने वेदों का उच्चारण करते थे ॥२०॥ वैश्य बैलों से खेती कराते थे, गोओं को हल में नही जोतते थे और दुर्बल गौओं की भी रक्षा

कर्माणि च नरव्याघ्र धर्मोपेतानि मानवाः । धर्ममेवानुपश्यन्तश्चक्रुर्धर्मपरायणाः ॥२३॥
स्वकर्मनिरतास्त्वन्सर्वे वर्णा नराधिप । एवं तदा नरव्याघ्र धर्मो न ह्रसते क्वचित् ॥२४॥
काले गावः प्रसूयन्ते नार्यश्च भरतर्षभ । भवन्त्यृतुषु वृक्षाणां पुष्पाणि च फलानि च ॥२५॥
एवं कृतयुगे सम्यग्वर्तमाने तदा नृप । आपूर्यत मही कृत्स्ना प्राणिभिर्बहुभिर्भृशम् ॥२६॥
एवं समुदिते लोके मानुषे भरतर्षभ । असुरा जज्ञिरे क्षेत्रे राज्ञां तु मनुजेश्वर ॥२७॥
आदित्यैर्हि तदा दैत्या बहुशो निर्जिता युधि । ऐश्वर्याद्भ्रंशिताः स्वर्गात्संबभूवुः क्षिताविह ॥२८॥
इह देवत्वमिच्छन्तो मानुषेषु मनस्विनः । जज्ञिरे भुवि भूतेषु तेषु तेष्वसुरा विभो ॥२९॥
गोष्वश्वेषु च राजेन्द्र खरोष्ट्रमहिषेषु च । क्रव्यात्सु चैव भूतेषु गजेषु च मृगेषु च ॥३०॥
जातैरिह महीपाल जायमानैश्च तैर्मही । न शशाकात्मनात्मानमियं धारयितुं धरा ॥३१॥
अथ जाता महीपालाः केचिद्बहुमदान्विताः । दितेः पुत्रा दनोश्चैव तदा लोकादिह च्युताः ॥३२॥
वीर्यवंतोऽवलिप्तास्ते नानारूपधरा महीम् । इमां सागरपर्यन्तां परीयुररिमर्दनाः ॥३३॥
ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्यान्शूद्रांश्चैवाप्यपीडयन् । अन्यानि चैव सत्वानि पीडयामासुरोजसा ॥३४॥
त्रासयन्तोऽभिनिघ्नन्तः सर्वभूतगणांश्च ते । विचेरुः सर्वशो राजन्महीं शतसहस्रशः ॥३५॥

करते थे ॥२१॥ जब तक बच्चे घास नहीं खाने लगते थे तब तक वे गौओं को नहीं दुहते थे। बनिये झूठे तौल से माल नहीं तौलते थे ॥२२॥ नरव्याघ्र, उस समय के मनुष्य धर्म को प्रधान समझ कर धर्मपूर्वक ही सब काम करते थे और वे सदा धर्माचरण करते थे ॥२३॥ नराधिप इस प्रकार सभी वर्णों के लोग अपने अपने धर्म का पालन करते थे, इस कारण उस समय धर्म का ह्रास नहीं होता था ॥२४॥ भरतश्रेष्ठ, उचित समय पर गौ और स्त्रियां प्रसव करती थीं और अपनी अपनी ऋतुओं में वृक्षों में फल फूल लगते थे ॥२५॥ इस प्रकार उस समय सत्ययुग के बीतते रहने पर यह समस्त पृथिवी अनेक प्राणियों से भर गयी ॥२६॥ भरतश्रेष्ठ, इस प्रकार जब समस्त लोक मनुष्यों से भर गया, तब क्षत्राणियों के गर्भ से असुरों की उत्पत्ति हुई ॥२७॥ उस समय देवताओं ने अनेक युद्धों में दैत्यों को हराया तथा स्वर्ग की उनकी सम्पत्ति छीन ली। तब वे मर्त्यलोक में आये ॥२८॥ मनस्वी असुर मर्त्यलोक में मनुष्यों में देवता बनने का प्रयत्न करने लगे। वे भिन्न भिन्न प्राणियों में उत्पन्न हुए ॥२९॥ राजेन्द्र, गौ घोड़े गधा ऊँट भैंस मांस खानेवाले प्राणी, हाथी तथा अन्य पशुओं में वे उत्पन्न हुए ॥३०॥ इस प्रकार उत्पन्न हुए असुरों तथा उत्पन्न होनेवाले असुरों के कारण यह पृथिवी अपना भार धारण करने में स्वयं असमर्थ हो गयी। यह स्वयं अपने को धारण न कर सकी ॥३१॥ उस समय कई राजा बड़े मदोन्मत्त उत्पन्न हुए। उनमें कई दिति के और कई दनु के पुत्र थे। अर्थात् कई दैत्य थे और कई दानव ॥३२॥ वे पराक्रमी और अहंकारी थे। वे शत्रुओं का दमन करनेवाले असुर समुद्र पर्यन्त इस समस्त पृथिवी में फैल गये ॥३३॥ ब्राह्मणों क्षत्रियों और वैश्यों को वे पीड़ा देने लगे। अन्य प्राणियों को भी वे बल से पीड़ित करने लगे ॥३४॥ राजन् सैकड़ों हजारों साथ होकर

आश्रमस्थान्महर्षींश्च धर्षयन्तस्ततस्ततः । अब्रह्मण्या वीर्यमदा मत्ता मदबलेन च ॥३६॥
एवं वीर्यबलोत्सिक्तैर्भूरियं तैर्महासुरैः । पीड्यमाना मही राजन्ब्रह्माणमुपचक्रमे ॥३७॥
न ह्यमी भूतसत्त्वौघाः पन्नगाः सनगां महीम् । तदा धारयितुं शेकुराक्रान्तां दानवैर्बलात् ॥३८॥
ततो मही महीपाल भारार्ता भयपीडिता । जगाम शरणं देवं सर्वभूतपितामहम् ॥३९॥
सा संवृतं महाभागैर्देवद्विजमहर्षिभिः । ददर्श देवं ब्रह्माणं लोककर्तारमव्ययम् ॥४०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च बन्दिकर्मसु निष्ठितैः । वन्द्यमानं मुदोपेतैर्ववन्दे चैनमेत्य सा ॥४१॥
अथ विज्ञापयामास भूमिस्तं शरणार्थिनी । सन्निधौ लोकपालानां सर्वेषामेव भारत ॥४२॥
तत्प्रधानात्मनस्तस्य भूमेः कृत्यं स्वयंभुवः । पूर्वमेवाभवद्राजन्विदितं परमेष्ठिनः ॥४३॥
स्रष्टा हि जगतः कस्मान्न संबुध्येत भारत । स सुरासुरलोकानामशेषेण मनोगतम् ॥४४॥
तामुवाच महाराज भूमिं भूमिपतिः प्रभुः । प्रभवः सर्वभूतानामीशः शंभुः प्रजापतिः ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

यदर्थमभिसंप्राप्ता मत्सकाशं वसुन्धरे । तदर्थं सन्नियोक्ष्यामि सर्वानेव दिवौकसः ॥४६॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा स महीं देवो ब्रह्मा राजन्विसृज्य च । आदिदेश तदा सर्वान्विबुधान्भूतकृत्स्वयम् ॥४७॥

पृथिवी पर भ्रमण करते थे और समस्त प्राणियों को भयभीत करते थे, तथा उनका वध करते थे ॥३५॥ आश्रम में रहने वाले महर्षियों का भी वे इधर उधर तिरस्कार करने लगे । वे ब्रह्मद्वेषी बलगर्वित और मदोन्मत्त थे ॥३६॥

राजन्, इस प्रकार पराक्रम और बल का घमंड रखनेवाले उद्योगी असुरों के द्वारा पीड़ित होने पर यह पृथिवी ब्रह्मा की शरण जाने के लिए तैयार हुई ॥३६॥ उस समय दानवों के आक्रमण से शेष कूर्म दिग्गज आदि प्राणिसमूह तथा शेषनाग पर्वतों के सहित इस पृथिवी को धारण न कर सके ॥३८॥ महीपाल, तब यह पृथिवी भार और भय से पीड़ित होकर सब प्राणियों के पितामह ब्रह्मा की शरण गयी ॥३९॥ उसने देवता ब्राह्मण और महर्षियों से घिरे हुए लोककर्त्ता अविनाशी ब्रह्मा को देखा ॥४०॥ देवकर्म में निपुण गन्धर्व और अप्सराएं प्रसन्नतापूर्वक उनकी स्तुति कर रही थीं, पृथिवी ने उनके पास जाकर प्रणाम किया ॥४१॥ भारत, शरण चाहने वाली पृथिवी ने समस्त लोकपालों के सामने ब्रह्मा से निवेदन किया ॥४२॥ स्वयंभु ब्रह्मा प्रधानात्मा हैं, कारण स्वरूप हैं । अतएव सर्वज्ञ हैं, अतएव पृथिवी की बात उन्हें पहले ही से मालूम थी ॥४३॥ भारत, वे जगत को उत्पन्न करने वाले हैं अतएव सुर असुर आदि के मन की सब बातों को क्यों नहीं जान लेंगे ॥४४॥ महाराज, भूमिपति प्रभु उस भूमि से बोले । वे सब प्राणियों के उत्पादक हैं स्वामी हैं प्रजापति हैं ॥४५॥

ब्रह्मा बोले, वसुन्धरे तुम जिस काम के लिए मेरे पास आयी हो उस काम के लिए मैं समस्त देवताओं को नियुक्त करता हूँ ॥४६॥ वैशम्पायन बोले, राजन्, पृथिवी से ऐसा कह कर

अस्या भूमेर्निरसितुं भारं भागैः पृथक्पृथक् । अस्यामेव प्रसूयध्वं तिरोधायेति चाब्रवीत् ॥४८॥
तथैव च समानीय गन्धर्वाप्सरसां गणान् । उवाच भगवान्सर्वानिदं वचनमर्थवत् ॥४९॥
ब्रह्मोवाच
स्वैः स्वैरंशैः प्रसूयध्वं यथेष्टं मानुषेषु च । अथ शक्रादयः सर्वे श्रुत्वा सुरगुरोर्वचः ।
तथ्यमर्थ्यं च पथ्यं च तस्य ते जगृहुस्तदा ॥५०॥
अथ ते सर्वशोंऽशैः स्वैर्गन्तुं भूमिं कृतक्षणाः । नारायणममित्रघ्नं वैकुण्ठमुपचक्रमुः ॥५१॥
यः स चक्रगदापाणिः पीतवासाः शितिप्रभा । पद्मनाभः सुरारिघ्नः पृथुचार्वञ्चितक्षणः ॥५२॥
प्रजापतिपतिर्देवः सुरनाथो महाबलः । श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः ॥५३॥
तं भुवः शोधनायेन्द्र उवाच पुरुषोत्तमम् । अंशेनावतरेत्येवं तथेत्याह च तं हरिः ॥५४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अंशावतरणपर्वणि चतुः षष्टिमोऽध्यायः ॥६४॥

तथा उसे जाने की आज्ञा देकर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने समस्त देवताओं को आज्ञा दी ॥४७॥ इस भूमि के भार को नाश करने के लिए आपलोग पृथक् पृथक् अंशों से इसी भूमि पर जन्म ग्रहण करें और विरोध के कारण उत्पन्न भार को नष्ट करें ॥४८॥ इसी प्रकार गन्धर्वों और अप्सराओं को भी बुलाकर उन्होंने उन लोगों से भी यही अर्थयुक्त बचन कहा ॥४९॥ ब्रह्मा बोले, अपने अपने अंशों के साथ आपलोग अधिकता से मर्त्यलोक में जन्म ग्रहण करें । अनन्तर देवगुरु ब्रह्मा के बचन सुनकर इन्द्र आदि देवताओं ने उसे यथार्थ हितकारी तथा अर्थयुक्त समझकर उसे ग्रहण किया ॥५०॥ अनन्तर, अपने अपने अंशों से पृथिवी पर जाने के लिए निश्चय किया और शत्रुनाशी वैकुण्ठनाथ विष्णु के पास वे गये ॥५१॥ शंख चक्र गदा धारण करनेवाले पीताम्बरधारी श्यामवर्ण पद्मनाभ देवशत्रुनाशी विष्णु से इन्द्र बोले, जिनकी आंखें विशाल और सुन्दर थीं, जो प्रजापति ब्रह्मा के स्वामी, देवताओं के नाथ श्रीवत्सांक और हृषीकेश (इन्द्रियों के स्वामी) है। समस्त देवता जिनकी पूजा करते हैं। उनसे पृथिवी का भार दूर करने के लिए इन्द्र बोले। अंशों के साथ आप पृथिवी पर अवतार धारण करें । विष्णु ने इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार की ॥५२, ५३, ५४॥

चतुःषष्टितम अध्याय, अंशावतरणपर्व समाप्त।

—०—

अथ संभव पर्व

वैशम्पायन उवाच ।

अथ नारायणेनेन्द्रश्चकार सह संविदम् । अवतर्तुं महीं स्वर्गादंशतः सहितः सुरैः ॥१॥
आदिश्य च स्वयं शक्रः सर्वानेव दिवौकसः । निर्जगाम पुनस्तस्मात्क्षयान्नारायणस्य ह ॥२॥
तेऽमरारिविनाशाय सर्वलोकहिताय च । अवतेरुः क्रमेणैव महीं स्वर्गाद्दिवौकसः ॥३॥
ततो ब्रह्मर्षिवंशेषु पार्थिवर्षिकुलेषु च । जज्ञिरे राजशार्दूल यथाकामं दिवौकसः ॥४॥
दानवान् राक्षसांश्चैव गंधर्वान् पन्नगास्तथा । पुरुषादानि चान्यानि जघ्नुः सत्वान्यनेकशः ॥५॥
दानवा राक्षसाश्चैव गन्धर्वाः पन्नगास्तथा । न तान्बलस्थान्बाल्येऽपि जघ्नुर्भरतसत्तम ॥६॥

जनमेजय उवाच ।

देवदानवसङ्घानां गंधर्वाप्सरसां तथा । मानवानां च सर्वेषां तथा वै यक्षरक्षसाम् ॥७॥
श्रोतुमिच्छामि तत्वेन संभवं कृत्स्नमादितः । प्राणिनां चैव सर्वेषां संभवं वक्तुमर्हसि ॥८॥

वैशम्पायन उवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि नमस्कृत्य स्वयंभुवे । सुरादीनामहं सम्यग्लोकानां प्रभवाव्ययम् ॥९॥
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः । मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥१०॥
मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपात्तु इमा प्रजाः । प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश ॥११॥

संभव पर्व

दक्ष की कन्याओं का वंश वर्णन ।

बैशम्पायन बोले, अनन्तर स्वर्ग से देवताओं के साथ पृथिवी पर अंश से अवतार ग्रहण करने के विषय में इन्द्रने नारायण से सलाह की ॥१॥ समस्त देवताओं को पृथिवी पर अवतार लेने की आज्ञा देकर इन्द्र नारायण के घर से निकले ॥२॥ अनन्तर सब देवताओं ने देवशत्रुओं के नाश के लिए तथा समस्तलोक के कल्याण के लिए स्वर्ग से पृथिवी में क्रम से अवतार लेने लगे ॥३॥ हे राजसिंह, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षि वंशों में इच्छानुसार देवताओं ने जन्म धारण किया ॥४॥ दानवों, राक्षसों गन्धर्वों, नागों तथा मनुष्यभक्षी अन्य अनेक प्राणियों को उन लोगोंने मार डाला ॥५॥ भरतश्रेष्ठ, दानव, राक्षस, गन्धर्व तथा नाग, बालक देवताओं को भी मार न सकें क्योंकि देवता बलवान् थे ॥६॥

जनमेजय बोले, देवों, दानवों, गन्धर्वों, अप्सराओं, समस्त मनुष्यों, यक्षों, राक्षसों तथा समस्त प्राणियों का जन्म वृत्तान्त आदि से मैं सुनना चाहता हूँ। आप सब वृतान्त कहें ॥७, ८॥

बैशम्पायन बोले, अच्छा, स्वयम्भु को नमस्कार करके देवता आदि का तथा लोकों का जन्म तथा नाश का समस्त वृतान्त आदि से मैं कहूँगा ॥९॥ ब्रह्मा के छ मानस पुत्र प्रसिद्ध हैं, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु ॥१०॥ मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। जिनसे इस समस्त प्रजा की उत्पत्ति हुई। दक्ष की तेरह श्रेष्ठ कन्याएँ उत्पन्न हुईं ॥११॥

अदितिर्दितिर्दनुःकाला दनायुःसिंहिका तथा। क्रोधा प्राधा च विश्वाच विनता कपिला मुनिः१२
कद्रूश्च मनुजव्याघ्र दक्षकन्यैव भारत। एतासां वीर्यसंपन्नं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥१३॥
अदित्यां द्वादशादित्याः संभूता भुवनेश्वराः। ये राजन्नामतस्तांस्ते कीर्तयिष्यामि भारत ॥१४॥
धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणस्त्वंश एव च। भगो विवस्वान्पूषा च सविता दशमस्तथा ॥१५॥
एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते। जघन्यजस्तु सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः ॥१६॥
एक एव दितेः पुत्रो हिरण्यकशिपुः स्मृतः। नाम्ना ख्यातास्तु तस्येमे पंच पुत्रा महात्मनः॥१७॥
प्रह्लादः पूर्वजस्तेषां संह्लादस्तदनन्तरम्। अनुह्लादस्तृतीयोऽभूत्तस्माच्च शिविबाष्कलौ ॥१८॥
प्रह्लादस्य त्रयः पुत्राः ख्याताः सर्वत्र भारत। विरोचनश्च कुम्भश्च निकुम्भश्चेति भारत ॥१९॥
विरोचनस्य पुत्रोऽभूद्बलिरेकः प्रतापवान्। बलेश्च प्रथितः पुत्रो बाणो नाम महासुरः ॥२०॥
रुद्रस्यानुचरः श्रीमान्महाकालेति यं विदुः। चत्वारिंशद्दनोः पुत्राः ख्याताः सर्वत्र भारत ॥२१॥
तेषां प्रथमजो राजा विप्रचित्तिर्महायशाः। शंबरो नमुचिश्चैव पुलोमा चेति विश्रुतः ॥२२॥
असिलोमा च केशी च दुर्जयश्चैव दानवः। अयः शिरा अश्वशिरा अश्वशङ्कुश्च वीर्यवान्॥२३॥
तथा गगनमूर्धा च वेगवान्केतुमाँश्च सः। स्वर्भानुरश्वोऽश्वपतिर्वृषपर्वाऽजकस्तथा ॥२४॥
अश्वग्रीवश्च सूक्ष्मश्च तुहुडुश्च महाबलः। इषुपादेकचक्रश्च विरूपाक्षहराहरौ ॥२५॥

आदिति दिति, दनु, कला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि और कद्रू ये तेरह दक्ष की कन्याएँ हैं। इनके पराक्रमी पुत्र पौत्र अनन्त हैं ॥ १२, १३ ॥ आदिति से बारह आदित्य (देवता) उत्पन्न हुए जो भुवनों के स्वामी हुए। राजन् उनके नाम मैं आप को बतलाता हूँ ॥१४॥ धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, ये दस हुए। ग्यारहवें त्वष्टा हैं और बारहवें विष्णु कहे जाते हैं। विष्णु इन आदित्यों में सबसे पीछे उत्पन्न हुए और सबसे अधिक गुणवान हुए ॥१५,१६॥ दिति का एक ही पुत्र हिरण्यकशिपु हुआ। उस महात्मा के पांच पुत्र ये थे ॥१७॥ उन पांचों में सब से पहले प्रह्लाद हुआ उसके बाद संह्लाद, अनुह्लाद तीसरा हुआ उसके बाद शिवि और बाष्कल हुए ॥१८॥ भारत, प्रह्लाद के तीन पुत्र सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। विरोचन कुम्भ और निकुम्भ ॥१९॥ विरोचन का एक प्रतापी पुत्र बलि हुआ। बलि का प्रतापी पुत्र बाण नामक महा असुर हुआ ॥२०॥ यह रुद्र का सेवक था, लोग इसे महाकाल भी कहते थे। भारत, दनु के चालीस पुत्र हुए जो सर्वत्र प्रसिद्ध हैं ॥२१॥ इनमें विप्रचित्ति हुआ, जो राजा और महायशस्वी हुआ। इसके अनन्तर शंबर नमुचि, पुलोमा हुए ॥२२॥ असिलोमा, केशी, दुर्जय, अयः शिरा, अश्वशिरा, अश्वशंकु, गगनमूर्धा केतुमान्, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा अजक अश्वग्रीव,सूक्ष्म महाबली तुहुंड,इषुपाद,एकचक्र विरूपाक्ष, हर आहर, निचन्द्र, निकुम्भ कुपट कपट, शरभ शलभ सूर्य और चन्द्रमा, ये इनके

निचंद्रश्च निकुंभश्च कुपटः कपटस्तथा। शरभः शलभश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥२७॥
इमे च वंशाः प्रथिताः सत्ववन्तो महाबलाः। दनुपुत्रा महाराज दश दानववंशजाः ॥२८॥
एकाक्षो मृतपो वीरः प्रलम्बनरकावपि। वातापिः शत्रुतपनः शठश्चैव महासुरः ॥२९॥
गविष्ठश्च वनायुश्च दीर्घजिह्वश्च दानवः। असंख्येयाः स्मृतास्तेषां पुत्राः पौत्राश्च भारत ॥३०॥
सिंहिका सुषुवे पुत्रं राहुं चंद्रार्कमर्दनम्। सुचन्द्रं चंद्रहर्तारं तथा चंद्रप्रमर्दनम् ॥३१॥
क्रूरस्वभावं क्रूरायाः पुत्रपौत्रमनंतकम्। गणः क्रोधवशो नाम क्रूरकर्माऽरिमर्दनः ॥३२॥
दनायुषः पुनः पुत्राश्चत्वारोऽसुरपुंगवाः। विक्षरा बलवीरौ च वृत्रश्चैव महासुरः ॥३३॥
कालायाः प्रथिताः पुत्राः कालकल्पाः प्रहारिणः। प्रविख्याता महावीर्या दानवेषु परंतपाः ॥३४॥
विनाशनश्च क्रोधश्च क्रोधहंता तथैव च। क्रोधशत्रुस्तथैवान्ये कालकेया इति श्रुताः ॥३५॥
असुराणामुपाध्यायः शुक्रस्त्वृषिसुतोऽभवत्। ख्याताश्चोशनसः पुत्राश्चत्वारोऽसुरयाजकाः ॥३६
त्वष्टा धरस्तथात्रिश्चद्वावन्यौ रौद्रकर्मिणौ। तेजसा सूर्यसंकाशा ब्रह्मलोकपरायणाः ॥३७॥
इत्येष वंशप्रभवः कथितस्ते तरस्विनाम्। असुराणां सुराणां च पुराणे संश्रुतो मया ॥३८॥
एतेषां यदपत्यं तु शक्यं तदशेषतः। प्रसंख्यातुं महीपाल गुणभूतमनंतकम् ॥३९॥

प्रसिद्ध वंश हैं और दानव कहे जाते हैं ॥२३,२४,२५,२६॥ देवताओं के सूर्य चन्द्रमा दूसरे हैं। और दानवों के सूर्य चन्द्रमा दूसरे ॥२७॥ दानव वंश प्रसिद्ध पराक्रमी और बली हैं। महाराज दनु के दस और पुत्र हैं वे भी दानव वंशज कहे जाते हैं ॥२८॥ एकाक्ष, मृतपा, प्रलंब, नरक वातापी, शत्रुतपन, शठ, गविष्ठ, वनायु और दीर्घ जिह्व। भारत, इनके पुत्र पौत्र असंख्य हैं ॥२९,३०॥ सिंहिका ने राहु को उत्पन्न किया जो चन्द्रमा और सूर्य को पीडा देता है। सुचन्द्र, चन्द्र हर्ता और चन्द्रमर्दन ये पुत्र हुए ॥३१॥ क्रूरस्वभाव वाली क्रूराके क्रूर स्वभाव वाले अनन्त पुत्र पौत्र हुए उनका गण क्रोधवंश नाम से प्रसिद्ध है, वह क्रूर कर्म करनेवाला तथा शत्रुओं का नाश करनेवाला है ॥३२॥ दनायु के पुनः चार पुत्र हुए ये चारों असुरों में श्रेष्ठ हुए। विक्षर, बल, वीर, वृत्र ॥३३॥ कलाके पुत्र बड़े प्रसिद्ध हुए। ये काल के समान थे और प्रहार के करने वाले थे। ये महाबली दानव बड़े प्रसिद्ध थे और शत्रुओं के नाश करने वाले थे ॥३४॥ विनाशन, क्रोध, क्रोधहन्ता तथा क्रोधशत्रु इनके अतिरिक्त और भी कला के पुत्र हुए ॥३५॥ असुरों के आचार्य शुक्र थे जो ऋषिपुत्र थे। शुक्र के चार पुत्र थे जो असुरों के यज्ञ कराने वाले थे ॥३६॥ त्वष्टा धर और अत्रि, इनके अतिरिक्त दो और थे जो क्रूर कर्म करने वाले थे। ये चारों सूर्य के समान तेजस्वी और ब्रह्मपरायण थे ॥३७॥ यह देवताओं और असुरों का वंश मैंने आपको सुनाया, जो मैंने पुराणों में सुना था ॥३८॥ इनके जो पुत्र हुए उनकी गणना नहीं की जा सकती। क्योंकि वे अप्रधान हैं और अनन्त हैं ॥३९॥ तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड़, अरुण, आरुणि और वारुणि ये विनता

ताक्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च तथैव गरुडारुणौ । आरुणिर्वारुणिश्चैव वैनतेयाः प्रकीर्तिताः ॥४०॥
शेषोऽनंतो वासुकिश्च तक्षकश्च भुजंगमः । कूर्मश्च कुलिकश्चैव काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः ॥४१॥
भीमसेनोग्रसेनौ च सुपर्णो वरुणस्तथा । गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च सप्तमः ॥४२॥
सत्यवागर्कपर्णश्च प्रयुतश्चापि विश्रुतः । भीमश्चित्ररथश्चैव विख्यातः सर्वविद्वशी ॥४३॥
तथा शालिशिरा राजन् पर्जन्यश्च चतुर्दशः । कलिः पंचदशस्तेषां नारदश्चैव षोडशः॥
इत्येते देवगंधर्वा मौनेयाः परिकीर्तिताः ॥४४॥
अथ प्रभूतान्यन्यानि कीर्तयिष्यामि भारत । अनवद्यां मनुं वंशामसुरां मार्गणप्रियाम् ॥४५॥
अरूपां सुभगां भासीमिति प्राधा व्यजायत । सिद्धः पूर्णश्च बर्हिश्च पूर्णायुश्च महायशाः ॥४६॥
ब्रह्मचारी रतिगुणः सुपर्णश्चैव सप्तमः । विश्वावसुश्च भानुश्च सुचन्द्रो दशमस्तथा ॥४७॥
इत्येते देवगन्धर्वाः प्राधेयाः परिकीर्तिताः । इमं त्वप्सरसां वंशं विदितं पुण्यलक्षणम् ॥४८॥
प्राधाऽसूत महाभागा देवी देवर्षितः पुरा । अलंबुषा मिश्रकेशी विद्युत्पर्णा तिलोत्तमा ॥४९॥
अरुणा रक्षिता चैव रम्भा तद्वन्मनोरमे । केशिनी च सुबाहुश्च सुरता सुरजा तथा ॥५०॥
सुप्रिया चातिबाहुश्च विख्यातौ च हाहा हूहूः । तुम्बुरुश्चेति चत्वारः स्मृता गन्धर्वसत्तमाः ॥५१॥
अमृतं ब्राह्मणा गावो गन्धर्वाप्सरसस्तथा । अपत्यं कपिलायास्तु पुराणे परिकीर्तितम् ॥५२॥
इति ते सर्वभूतानां संभवः कथितो मया । यथावत्संपरिख्यातो गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥५३॥

के पुत्र हुए ॥४०॥ शेष, अनन्त, वासुकि, तक्षक, कूर्म और कुलिक ये सर्प कद्रू से उत्पन्न हुए ॥४१॥ भीमसेन, उग्रसेन, सुपर्ण, वरुण, गोपति, धृतराष्ट्र सातवां सूर्यवर्च सत्यवाक, अर्कपर्ण, प्रयुत, भीम, चित्ररथ ये दोनों प्रसिद्ध सर्वज्ञ और वंशी थे, शालिशिरा और चौदहवां पर्जन्य हुआ। इनमें पन्द्रहवाँ कलि और सोलहवाँ नारद हुए। ये देव गन्धर्व कहे जाते हैं और मुनि से उत्पन्न हुए हैं ॥४२,४३,४४॥ भारत, और भी अनेक अन्य वंशों का वर्णन मैं करता हूँ। अनवद्या मनु, वंशा, असुरा, मार्गणप्रिया, अरूपा, सुभगा और भासी प्राधा ने ये कन्याएँ उत्पन्न कीं। इनके अतिरिक्त प्राधा ने इन दस देवगन्धर्वों को भी उत्पन्न किया। सिद्ध, पूर्ण, बर्ति, पूर्णायु, ब्रह्मचारी रतिगुण, सुपर्ण, विश्वावसु, चन्द्र और भानु। अब आगे अप्सरा का वंश कहा जाता है जो पवित्र है ॥४५,४६,४७,४८॥ देवी प्राधा ने देवर्षि से इन कन्याओं को उत्पन्न किया। अलम्बुषा, मिश्रकेशी विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अरुणा, रक्षिता, रंभा, मनोरमा, केशिनी सुबाहु, सुरता, सुरजा और सुप्रिया इनके अतिरिक्त विख्यात अतिबाहु, हाहा, हूहू और तुम्बरु ये चार गन्धर्वों को उत्पन्न किया ॥४९,५०,५१॥ अमृत, ब्राह्मण, गौ, गन्धर्व और अप्सराएँ ये कपिला के पुत्र हैं ऐसा पुराणों में लिखा है ॥५२॥

इस प्रकार सब प्राणियों की उत्पत्ति मैंने तुमको बतलायी, इनकी तथा गन्धर्व और अप्सराओंकी संख्या भी मैंने बतलायी ॥५३॥ भुजंगों, पक्षियों, रुद्रों, गौओं, और पुण्यात्मा ब्राह्मणों की

भुजंगानां सुपर्णानां रुद्राणां मरुतां तथा । गवां च ब्राह्मणानां च श्रीमतां पुण्यकर्मणाम् ॥५४॥
आयुष्यश्चैव पुण्यश्च धन्यः श्रुतिसुखावहः । श्रोतव्यश्चैव सततं श्राव्यश्चैवानसूयता ॥५५॥
इमं तु वंशं नियमेन यः पठेन्महात्मनां ब्राह्मणदेवसन्निधौ ।
अपत्यलाभं लभते स पुष्कलं श्रियं यशः प्रेत्य च शोभनां गतिम् ॥५६॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि आदित्यदि वंशकथने पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

वैशम्पायन उवाच ।
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः । एकादश सुताः स्थाणोः ख्याताः परमतेजसः॥१॥
मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महायशाः । अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी च परन्तपः ॥ २ ॥
दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च महाद्युतिः । स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रा एकादश स्मृताः॥३॥
मरीचिरंगिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । षडेते ब्रह्मणः पुत्रा वीर्यवन्तो महर्षयः ॥४॥
त्रयस्त्वंगिरसः पुत्रा लोके सर्वत्र विश्रुताः । बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तश्च धृतव्रताः ॥५॥
अत्रेस्तु बहवः पुत्राः श्रूयंते मनुजाधिप । सर्वे वेदविदः सिद्धाः शांतात्मानो महर्षयः ॥६॥
राक्षसाश्च पुलस्त्यस्य वानराः किन्नरास्तथा । यक्षाश्च मनुज-व्याघ्र पुत्रास्तस्य च धीमतः ॥७॥
पलहस्य सुता राजन्शरभाश्च प्रकीर्तिताः । सिंहाः किंपुरुषा व्याघ्रा ऋक्षा ईहामृगास्तथा ॥८॥

उत्पत्ति मैंने तुमको बतलायी ॥५४॥ यह आयु बढ़ाने वाला पवित्र करने वाला और कानों को सुख देने वाला है । द्वेषहीन होकर सदा इसका श्रवण करना चाहिए और सुनाना चाहिए ॥५५॥ जो नियम पूर्वक इस वंशक्रम को ब्राह्मण और देवता के समीप सुनता है, वह पुत्र पाता है, पुष्कल धन पाता है यश पाता है और परलोक में उत्तमगति पाता है ।।५६॥

पंच षष्टितम अध्याय ।

—o—

ऋषियों का वंश वर्णन ।

वैशम्पायन बोले, ब्रह्मा के मानस पुत्र छ महर्षि थे यह बात प्रसिद्ध है इनके अतिरिक्त सातवें पुत्र स्थाणु भी थे जिनके परम तेजस्वी ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए। १ मृगव्याध, सर्प महायशा, निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, परतंप पनाकी, दहन, ईश्वर, महाद्युति, कपाली, स्थाणु और भगवान् भग ये एकादश रुद्र के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥२,३॥ मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु ये छ ब्रह्माके पुत्र थे ये पराक्रमी थे और महर्षि थे।॥४॥ अङ्गिरा के तीन पुत्र हुए जो सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त ये तीनों व्रतधारण करने वाले थे ॥५॥ राजन्, अत्रि के अनेक पुत्र सुने जाते हैं सभी वेदज्ञ, सिद्ध, शान्तात्मा और महर्षि थे ॥६॥ मनुष्य श्रेष्ठ, बुद्धिमान् पुलस्त्य के पुत्र राक्षस, बानर, किन्नर और यक्ष हुए ॥७॥ राजन्, पुलह के पुत्र शलभ (शायद कीड़े मकोड़े) कहे जाते हैं, सिंह, किंपुरुष, व्याघ्र, यक्ष भेड़िये भी पुल के वंशज है ॥८॥

क्रतोः क्रतुसमाः पुत्राः पतंगसहचारिणः । विश्रुतास्त्रिषु लोकेषु सत्यव्रतपरायणाः ॥९॥
दक्षस्त्वजायतांगुष्ठाद्दक्षिणाद्भगवानृषिः । ब्रह्मणः पृथिवीपाल शान्तात्मा सुमहातपाः ॥१०॥
वामादजायतांगुष्ठाद्भार्या तस्य महात्मनः । तस्यां पंचाशतं कन्याः स एवाजनयन्मुनिः ॥११॥
ताः सर्वास्त्वनवद्यांग्यः कन्याः कमललोचनाः । पुत्रिकाः स्थापयामास नष्टपुत्रः प्रजापतिः ॥१२॥
ददौ स दश धर्माय सप्तविंशतिमिन्दवे । दिव्येन विधिना राजन्कश्यपाय त्रयोदश ॥१३॥
नामतो धर्मपत्न्यस्ताः कीर्त्यमाना निबोध मे । कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया तथा ॥१४॥
बुद्धिर्लज्जा मतिश्चैव पत्न्यो धर्मस्य ता दश । द्वाराण्येतानि धर्मस्य विहितानि स्वयंभुवा ॥१५॥
सप्तविंशतिः सोमस्य पत्न्यो लोकस्य विश्रुताः । कालस्य नयने युक्ताः सोमपत्न्यः शुचिव्रताः ॥१६॥
सर्वा नक्षत्रयोगिन्यो लोकयात्राविधानतः । पैतामहो मुनिर्देवस्तस्य पुत्रः प्रजापतिः ॥
तस्याष्टौ वसवः पुत्रास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥१७॥
धरो ध्रुवश्च सोमश्च अहश्चैवानिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥१८॥
धूम्रायास्तु धरः पुत्रो ब्रह्मविद्यो ध्रुवस्तथा । चन्द्रमास्तु मनस्विन्याः श्वासायाः श्वसनस्तथा ॥१९॥
रतायाश्चाप्यहः पुत्रः शाण्डिल्याश्च हुताशनः । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च प्रभातायाः सुतौ स्मृतौ ॥२०॥
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा । ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्कालो लोक कालनः ॥२१॥

क्रतुके पुत्र यज्ञ के समान (पवित्र) हैं और सूर्य के साथ रहने वाले हैं, ये तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं, सत्यवादी हैं व्रतधारण करने वाले हैं ॥९॥ पृथिवीपाल; शान्तचित्त, महातपस्वी ऋषि दक्ष ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से उत्पन्न हुए ॥१०॥ ब्रह्मा के बाएँ अँगूठे से उसी महात्मा की स्त्री उत्पन्न हुई। उससे पचास कन्याएँ उन्होंने उत्पन्न कीं ॥११॥ वे सभी कन्याएँ सुन्दरी थीं, कमल के समान उनकी आंखें थीं, प्रजापति दक्ष के जब पुत्र न रहे तब उन्होंने पुत्री को पुत्र बनाया ॥१२॥ दिव्य विधान से प्रजापति ने दस कन्याएँ धर्म को दीं, चन्द्रमा को सत्ताइस, और कश्यप को तेरह ॥१३॥ इन धर्म पत्नियों के नाम मैं कहता हूँ तुम सुनो, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति. मेधा. पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति ये दस धर्म की स्त्रियों के नाम हैं। ब्रह्मा ने इन दसों को धर्म पालन का द्वार बनाया है ॥१५॥ चन्द्रमा की सत्ताइस स्त्रियां संसार में प्रसिद्ध हैं। चन्द्रमा की ये स्त्रियां समय का ज्ञान कराती हैं ॥१६॥ ये नक्षत्र नाम से प्रसिद्ध हैं और इनके द्वारा लोक व्यवहार चलता है। पितामह के पुत्र दक्ष प्रजापति की कन्या वसु के गर्भ से धर्म के द्वारा आठ वसुओं की उत्पत्ति हुई है। उनका विस्तार कहता हूँ ॥१७॥ धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु कहे जाते हैं ॥१८॥ धूम्रा के पुत्र धर और ब्रह्मज्ञानी ध्रुव हुए, मनस्विनी के पुत्र सोम और श्वसा के पुत्र अनिल हुए, रता के पुत्र अह हुए और शाण्डिल्या के पुत्र अनल हुए। प्रत्यूष और प्रभास दोनों प्रभाता के पुत्र हुए। (धूम्राआदि वसु का ही नामान्तर था। कोई कहते हैं ये आठ वसु एक माता से उत्पन्न नहीं थे। इनकी माताएँ भिन्न भिन्न थीं और वे दक्ष की कन्या नहीं थीं।) ॥१९, २०॥

सोमस्य तु सुतो वर्चा वर्चस्वी येन जायते । मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥२२॥
अह्नः सुतस्तथा ज्योतिः शमः शान्तस्तथा मुनिः । अग्नेः पुत्रः कुमारस्तु श्रीमाञ्छरवणालयः ॥२३
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजः । कृत्तिकाऽभ्युपपत्तेश्च कार्तिकेय इति स्मृतः ॥२४॥
अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रो मनोजवः । अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥२५॥
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्नाऽथ देवलम् । द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ।
बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मवादिनी ॥२६॥
योगसक्ता जगत्कृत्स्नमसक्ता विचचार ह । प्रभासस्य तु भार्या सा वसूनामष्टमस्य ह ॥२७॥
विश्वकर्मा महाभागो जज्ञे शिल्पप्रजापतिः । कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः ॥२८॥
भूषणानां च सर्वेषां कर्त्ता शिल्पवतां वरः । यो दिव्यानि विमानानि त्रिदशानां चकार ह ॥२९॥
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः । पूजयन्ति च यं नित्यं विश्वकर्माणमव्ययम् ॥३०॥
स्तनं तु दक्षिणं भित्वा ब्रह्मणो नरविग्रहः । निःसृतो भगवान्धर्मः सर्वलोकसुखावहः ॥३१॥
त्रयस्तस्य वराः पुत्राः सर्वभूतमनोहराः । शमः कामश्च हर्षश्च तेजसा लोकधारिणः ॥३२॥
कामस्य तु रतिर्भार्या शमस्य प्राप्तिरंगना । नंदा तु भार्या हर्षस्य यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥३३॥

धर के पुत्र द्रविण और हुतहव्यवह हुए, ध्रुव के पुत्र भगवान् काल हुए जो लोक की संख्या करते हैं ॥२१॥ सोम के पुत्र वर्चा हुए जिनके कारण लोग वर्चस्वी-तेजस्वी, होते हैं। मनोहर (सोम की दूसरी स्त्री) के गर्भ से शिशिर, रमण और प्राण ये पुत्र उत्पन्न हुए ॥२२॥ अहः के पुत्र ज्योति, शम, शान्त तथा मुनि हुए। अनल-अग्नि के पुत्र कुमार हुए। ये सरपत के वन में उत्पन्न हुए थे। इनके बाद अग्नि के शाखा विशाख और नैगमेय ये पुत्र उत्पन्न हुए। कृत्तिकाओं के द्वारा पालन होने के कारण कुमार को कार्तिकेय भी कहते हैं ॥२३, २४॥ अनिल की पत्नी का नाम शिवा था उसके दो पुत्र हुए, मनोजव और अविज्ञातगति ॥२५॥ प्रत्यूष के पुत्र देवल ऋषि हुए। देवल के दो पुत्र हुए, क्षमावान् और मनीषी। बृहस्पति की बहिन सुन्दरी और ब्रह्मवादिनी थी ॥२६॥ वह योगाभ्यास करती थी, वह बिना किसी उद्देश्य के जगत् का भ्रमण करती थी। आठवें वसु प्रभास की वह स्त्री थी ॥२७॥ इन्हीं से विश्वकर्मा उत्पन्न हुए जो शिल्प के प्रजापति हैं, आचार्य हैं। हज़ारों तरह के शिल्पों का उन्होंने निर्माण किया है। वे देवताओं के बढ़ई हैं ॥२८॥ वे सब प्रकार के आभूषणों के बनाने वाले और शिल्पियों में श्रेष्ठ हैं। इन्होंने देवताओं के लिए दिव्य विमान बनाये हैं ॥२९॥ उन्हीं महात्मा विश्वकर्मा के शिल्प से मनुष्य जीविका चलाते हैं और अविनाशी विश्वकर्मा की नित्य पूजा करते हैं ॥३०॥ ब्रह्मा की दाहिनी छाती फोड़कर सब लोकों के सुखकारी भगवान धर्म नर शरीर धर कर उत्पन्न हुए थे ॥३१॥ उनके तीन उत्तम पुत्र उत्पन्न हुए, ये सब से मनोहर थे। उनके नाम ये थे, शम, काम और हर्ष। ये अपने तेज से लोक की रक्षा करते हैं ॥३२॥ काम की स्त्री का नाम रति और शम की स्त्री

मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य सुरासुराः । जज्ञिरे नृपशार्दूल लोकानां प्रभवस्तु सः ॥३४॥
त्वाष्ट्री तु सवितुर्भार्या वडवारूपधारिणी । असूयत महाभागा साऽन्तरिक्षेऽश्विनावुभौ ॥३५॥
द्वादशैवादितेः पुत्राः शक्रमुख्या नराधिपः । तेषामवरजो विष्णुर्यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥३६॥
त्रयस्त्रिंशत इत्येते देवास्तेषामहं तव । अन्वयं संप्रवक्ष्यामि पक्षैश्च कुलतो गणान् ॥३७॥
रुद्राणामपरः पक्षः साध्यानां मरुतां तथा । वसूनां भार्गवं विद्याद्विश्वेदेवाँस्तथैव च ॥३८॥
वैनतेयस्तु गरुडो बलवानरुणस्तथा । बृहस्पतिश्च भगवानादित्येष्वेव गण्यते ॥३९॥
अश्विनौ गुह्यकान्विद्धि सर्वौषध्यस्तथा पशून् । एते देवगणा राजन्कीर्तितास्तेऽनुपूर्वशः ॥४०॥
यान्कीर्तयित्वा मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते । ब्रह्मणो हृदयं भित्वा निःसृतो भगवान्भृगुः ॥४१॥
भृगोः पुत्रः कविर्विद्वाञ्छुक्रः कविसुतो ग्रहः । त्रैलोक्यप्राणयात्रार्थं वर्षावर्षे भयाभये ॥
स्वयंभुवा नियुक्तः सन्भुवनं परिधावति ॥४२॥
योगाचार्यो महाबुद्धिर्दैत्यानामभवद्गुरुः । सुराणां चापि मेधावीब्रह्मचारी यतव्रतः ॥४३॥
तस्मिन्नियुक्ते विधिना योगक्षेमाय भार्गवे । अन्यमुत्पादयामास पुत्रं भृगुरनिन्दितम् ॥४४॥
च्यवनं दीप्ततपसं धर्मात्मानं यशस्विनम् । यः सरोषाच्च्युतो गर्भान्मातुर्मोक्षाय भारत ॥४५॥

प्राप्ति थी, हर्ष की स्त्री नन्दा थी, इन पर लोकों की स्थिति अवलम्बित है ॥३३॥ मरीचि के पुत्र कश्यप हुए और कश्यप से देवता तथा असुरों की उत्पत्ति हुई, राजश्रेष्ठ, वे लोकों को उत्पन्न करने वाले हैं ॥३४॥ सूर्य की स्त्री त्वाष्ट्री थी, जिसने घोड़ी का रूप धर कर आकाश में दोनों अश्विकुमारों को उत्पन्न किया ॥३५॥ नराधिप, अदिति के बारह पुत्र हुए जिनमें इन्द्र प्रधान थे, इन बारहों से छोटे विष्णु थे, जिन पर लोक रक्षा का भार है ॥३६॥ इस प्रकार तेंतीस देवता हुए। (आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट् कार) इनके वंश कुल पक्ष तथा गण का वर्णन किया जाता है ॥३७॥ रुद्रों, साध्यों, मरुतों वसुओं भार्गवों और विश्वेदेवों का अलग अलग अपना गण है ॥३८॥ विनतापुत्र गरुड़, बलवान् अरुण, और भगवान् बृहस्पति इनकी गणना आदित्यों (देवों) में ही होती है ॥३९॥ अश्विनीकुमार, गुह्यक, समस्त औषधियां और पशु राजन् इनकी गणना देवताओं में ही है। अर्थात् ये देवताओं के गण के हैं ॥४०॥ इन गणों का कीर्तन कर के मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। ब्रह्मा के हृदय से भगवान् भृगु उत्पन्न हुए थे ॥४१॥ भृगु के पुत्र शुक्राचार्य हुए जो विद्वान् कवि तथा ग्रह हुए। इन शुक्रग्रह से त्रिलोक के निर्वाह के लिए वृष्टि, अवृष्टि, भय, अभय आदि की सूचना होती है। ये ब्रह्मा की आज्ञा से संसार का परिभ्रमण करते हैं ॥४२॥ ये योगाचार्य महाबुद्धिमान् शुक्र दैत्यों के गुरु हुए। ये बुद्धिमान् व्रतधारी तथा ब्रह्मचारी देवताओं के भी गुरु हुए (कहते हैं कि देवगुरू बृहस्पति शुक्राचार्य से बीच बीच में सलाह लिया करते थे और वे भी निष्कपट होकर सलाह दिया करते थे, इसी कारण शुक्राचार्य को देव गुरु भी कहा गया है) ॥४३॥ जब ब्रह्मा ने भगवान् शुक्राचार्य को लोक के काम में नियुक्त कर दिया तब भृगु ने एक दूसरा उत्तम पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४४ ॥

आरुषी तु मनोः कन्या तस्य पत्नी मनीषिणः । और्वस्तस्यां समभवदूरुं भित्वा महायशाः ॥४६॥
महातेजा महावीर्यो बाल एव गुणैर्युतः । ऋचीकस्तस्य पुत्रस्तु जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥४७॥
जमदग्नेस्तु चत्वार आसन्पुत्रा महात्मनः । रामस्तेषां जघन्योऽभूदजघन्यैर्गुणैर्युतः ।
सर्वशस्त्रेषु कुशलः क्षत्रियान्तकरो वशी ॥४८॥
और्वस्यासीत्पुत्रशतं जमदग्निपुरोगमम् । तेषां पुत्रसहस्राणि बभूवुर्भुवि विस्तरः ॥४९॥
द्वौ पुत्रौ ब्रह्मणस्त्वन्यौ ययोस्तिष्ठति लक्षणम्। लोके धाता विधाता च यौ स्थितौ मनुना सह ॥५०॥
तयोरेव स्वसा देवी लक्ष्मीः पद्मगृहा शुभा । तस्यास्तु मानसाः पुत्रास्तुरगा व्योमचारिणः ॥५१॥
वरुणस्य भार्या या ज्येष्ठा शुक्राद्देवी व्यजायत। तस्याःपुत्रं बलं विद्धि सुरां च सुरनन्दिनीम्॥५२॥
प्रजानामन्नकामानामन्योन्यपरिभक्षणात् । अधर्मस्तत्र संजातः सर्वभूतविनाशकः ॥५३॥
तस्यापि निर्ऋतिर्भार्या नैर्ऋता येन राक्षसाः । घोरास्तस्यास्त्रयःपुत्राःपापकर्मरताःसदा ॥५४॥
भयो महाभयश्चैव मृत्युर्भूतान्तकस्तथा । न तस्य भार्या पुत्रो वा कश्चिदस्त्यन्तको हि सः॥५५॥
काकीं श्येनीं तथा भासीं धृतराष्ट्रीं तथा शुकीम् । ताम्रा तु सुषुवे देवी पंचैता लोकविश्रुताः ॥५६॥

उनका नाम च्यवन था, वे तपस्वी धर्मात्मा और यशस्वी थे। वे माता की रक्षा के लिए क्रोध से माता के गर्भच्युत हुए इसी से उनका नाम च्यवन पड़ा ॥४५॥ मनु की कन्या आरुषी उन बुद्धिमान् च्यवन की स्त्री हुई। उससे उसकी ऊरु (जंघा) फोड़ कर और्व उत्पन्न हुए ॥४६॥ वे महातेजस्वी महाबली थे। बाल्यावस्था में ही वे सब गुणों से भरपूर हो गये थे। और्व के पुत्र ऋचीक हुए और उनके पुत्र जमदग्नि हुए ॥४७॥ महात्मा जमदग्नि के चार पुत्र हुए। जिनमें सब से छोटे परशुराम थे, पर छोटे होने पर भी इनमें बड़े बड़े गुण वर्तमान थे। ये सब शस्त्रों के ज्ञाता क्षत्रियों का नाश करने वाले और वशी थे ॥४८॥ और्व के सौ पुत्र थे। जिनमें जमदग्नि प्रधान थे अर्थात् सब से बड़े थे। इन पुत्रों के हजारों पुत्र हुए इस प्रकार इस कुल का पृथिवी में विस्तार हुआ ॥४९॥ ब्रह्मा के दो पुत्र और थे जिनका चिन्ह वर्तमान है। उनके नाम धाता और विधाता थे और वे मनु के साथ सदा रहते थे ॥५०॥ उन्हीं की बहिन लक्ष्मी देवी थीं, जो कमल में निवास करती हैं। उनके मानस पुत्र घोड़े थे जो आकाशगामी हैं ॥५१॥ वरुण की जो बड़ी स्त्री है वह शुक्र से उत्पन्न हुई है। उससे बल नाम का पुत्र और सुरा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई, सुरा देवताओं को बड़ी प्यारी है ॥५२॥

जब प्रजा बढ़ गई उसे जीविका की आवश्यकता हुई, वह खाने के लिए अन्न ढूंढने लगी और अन्न के नाम लेने से एक दूसरे को खाने लगी उस समय अधर्म उत्पन्न हुआ जो सब प्राणियों का नाशक है ॥५३॥ उसकी स्त्री का नाम निर्ऋति था, जिससे नैर्ऋत नाम के राक्षस उत्पन्न हुए। उसके भयंकर तीन पुत्र थे जो सदा पाप करते थे ॥५४॥ भय महाभय और प्राणियों का नाश करने वाला मृत्यु। मृत्यु की न कोई स्त्री थी और न पुत्र, वह स्वयं सब का विनाशक था ॥५५॥ देवी ताम्रा ने लोक प्रसिद्ध पांच कन्याएँ उत्पन्न कीं, उनके नाम ये हैं, काकी,

उलूकान्सुषुवे काकी श्येनी श्येनान्व्यजायत। भासी भासानजनयद्गृध्रांश्चैव जनाधिप ॥५७॥
धृतराष्ट्री तु हंसांश्च कलहंसांश्च सर्वशः। चक्रवाकांश्च भद्रा तु जनयामास सैव तु ॥५८॥
शुकी च जनयामास शुकानेव यशस्विनी। कल्याणगुणसंपन्ना सर्वलक्षणपूजिता ॥५९॥
नव क्रोधवशा नारीः प्रजज्ञे क्रोधसंभवाः। मृगी च मृगमंदा च हरी भद्रमना अपि ॥६०॥
मातंगी त्वथ शार्दूली श्वेता सुरभिरेव च। सर्वलक्षणसंपन्ना सुरसा चैव भामिनी ॥६१॥
अपत्यं तु मृगाः सर्वे मृग्या नरवरोत्तम। ऋक्षाश्च मृगमंदायाः सृमराश्च परंतप ॥६२॥
ततस्त्वैरावतं नागं जज्ञे भद्रमनाः सुतम्। ऐरावतः सुतस्तस्या देवनागा महागजाः ॥६३॥
हर्याश्च हरयोऽपत्यं वानराश्च तरस्विनः। गोलांगूलांश्च भद्रं ते हर्याः पुत्रान्प्रचक्षते ॥६४॥
प्रजज्ञे त्वथ शार्दूली सिंहान् व्याघ्राननेकशः। द्वीपिनश्च महासत्वान्सर्वानेव न संशयः ॥६५॥
मातंग्यपि च मातंगानपत्यानि नराधिप। दिशां गजं तु श्वेताख्यं श्वेताऽजनयदाशुगम् ॥६६॥
तथा दुहितरौ राजन्सुरभिर्वै व्यजायत। रोहिणी चैव भद्रं ते गन्धर्वी तु यशस्विनी ॥६७॥
विमलामपि भद्रं ते अनलामपि भारत। रोहिण्यां जज्ञिरे गावो गंधर्व्यां वाजिनः सुताः ॥६८॥
सप्तपिण्डफलान्वृक्षान नलापि व्यजायत। अनलायाः शुकीपुत्री कंकस्तु सुरसा सुतः ॥
अरुणस्य भार्या श्येनी तु वीर्यवन्तौ महाबलौ ॥६९॥

श्येनी, धृतराष्ट्री भासी और शुकी ॥५६॥ काकी ने उल्लुओं को पैदा किया श्येनी ने श्येनों (बाजों) को उत्पन्न किया, भासी ने मुर्गों और गीधों को उत्पन्न किया ॥५७॥ धृतराष्ट्री ने हंस कलहंस और चक्रवाकों को उत्पन्न किया, इसका दूसरा नाम भद्रा भी था ॥५८॥ यशस्विनी शुकी ने शुकों को उत्पन्न किया। शुकी में समस्त गुण थे और समस्त लक्षणों से युक्त होने के कारण आदर के योग्य थी ॥५९॥ क्रोधी स्वभाव की क्रोधा ने नव कन्याएँ उत्पन्न कीं, उनके नाम ये हैं—मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमना, मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि और सब उत्तम लक्षणों से युक्त सुरसा ॥६०, ६१॥ राजश्रेष्ठ, जितने प्रकार के मृगा हैं वे मृगी से उत्पन्न हुए। मृगमन्दा से रीछ और सूअर पैदा हुए ॥६२॥ भद्रमना ने ऐरावत नामक हाथी को पुत्र उत्पन्न किया। उसका पुत्र ऐरावत था जो इन्द्र का हाथी था और बड़ा विशाल अर्थात् दिग्गज था ॥६३॥ वानर और लङ्गूर हरि के पुत्र है। चंवरी गौ को भी लोग हरि का पुत्र कहते हैं ॥६४॥ शार्दूली ने सिंह व्याघ्र तथा महाबली चीते को उत्पन्न किया ॥६५॥ मातंगी ने हाथियों को उत्पन्न किया। शीघ्र चलनेवाले श्वेत नामक दिग्गज को श्वेता ने उत्पन्न किया ॥६६॥ राजन्, सुरभि ने दो कन्याएँ उत्पन्न कीं रोहिणी और यशस्विनी गन्धर्वी ॥६७॥ पुनः उसने अनला और विमला नाम की दो कन्याएँ और उत्पन्न कीं। रोहिणी से गौ और गन्धर्वों से घोड़े उत्पन्न हुए ॥६८॥ अनला ने पिण्डफलवाले सात वृक्षों को उत्पन्न किया (पिण्डफल वाले वृक्ष ये हैं, खजूर, ताल, हिंताल, ताली, खर्जूरिका सुपारी और नारियल) ॥६९॥ अनला ने शुकी नाम की एक कन्या भी उत्पन्न की। सुरजा का

संपातिं जनयामास वीर्यवंतं जटायुषम् । सुरसाऽजनयन्नागान्कद्रूः पुत्रांस्तु पन्नगान् ॥ ७० ॥
द्वौ पुत्रौ विनतायास्तु विख्यातौ गरुडारुणौ । इत्येष सर्वभूतानां महतां मनुजाधिके ॥
प्रभवः कीर्तितः सम्यङ् मया मतिमतांवर ॥७१॥
यं श्रुत्वा पुरुषः सम्यङ्मुक्तो भवति पाप्मनः । सर्वज्ञतां च लभते रतिमग्र्यां च विन्दति ॥७२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

जनमेजय उवाच
देवानां दानवानां च गंधर्वोरगरक्षसाम् । सिंहव्याघ्रमृगाणां च पन्नगानां पतत्त्रिणाम् ॥१॥
सर्वेषां चैव भूतानां संभवं भगवन्नहम् । श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन मानुषेषु महात्मनाम् ॥
जन्म कर्म च भूतानामेतेषामनुपूर्वशः ॥२॥

वैशम्पायन उवाच
मानुषेषु मनुष्येन्द्र संभूता ये दिवौकसः । प्रथमं दानवांश्चैव तांस्ते वक्ष्यामि सर्वशः ॥३॥
विप्रचित्तिरिति ख्यातो य आसीद्दानवर्षभः । जरासन्ध इति ख्यातः स आसीन्मनुजर्षभः ॥४॥
दितेः पुत्रस्तु यो राजन्हिरण्यकशिपुः स्मृतः । स जज्ञे मानुषे लोके शिशुपालो नरर्षभः ॥५॥
संह्लाद इति विख्यातः प्रह्लादस्यानुजस्तु यः । स शल्य इति विख्यातो जज्ञे वाहीकपुंगवः ॥६॥

पुत्र कंक नामक पक्षी हुआ। अरुण की भार्या श्येनी ने दो बलवान् और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किये, सम्पाति और जटायु। सुरसा ने नागों को उत्पन्न किया। कद्रू ने पन्नगों (साँपों) को उत्पन्न किया ॥७०॥ विनता के दो पुत्र गरुड़ और अरुण, ये दोनों ही प्रसिद्ध हैं। मनुजाधिप, यह मैंने सब प्राणियों के उत्पत्ति क्रम आपको बतलाया ॥७१॥ इस उत्पत्ति क्रम को सुनकर मनुष्य पापों से छूट जाता है सर्वज्ञ होता है और श्रेष्ठ गति पाता है ॥७२॥

षट्षष्टितम अध्याय।

—o—

महाभारत के प्रधान पात्रों का जन्म वृत्तान्त

जनमेजय बोले, देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, सिंह व्याघ्र; मृग, पन्नग, पक्षी आदि समस्त प्राणियों की मनुष्यों में उत्पति कैसे हुई यह मैं सुनना चाहता हूँ। इन प्राणियों के जन्म और कर्म भी मैं सुनना चाहता हूँ ॥१, २॥

वैशम्पायन बोले, मनुष्य रूप में जो देवता दानव उत्पन्न हुए उनमें मैं दानवों के मनुष्यरूप में उत्पन्न होने का वर्णन करता हूँ ॥३॥ विप्रचित्ति नाम का जो दानवराज था वह जरासन्ध नाम से प्रसिद्ध मनुष्य राजा हुआ ॥४॥ राजन्, दिति का पुत्र जो हिरण्यकशिपु था वह मनुष्य लोक में राजा शिशुपाल के रूप में प्रकट हुआ ॥५॥ जो प्रह्लाद पुत्र संह्लाद के नाम से प्रसिद्ध था, वह शल्य नामक वाहीक देश का राजा हुआ ॥६॥ प्रह्लाद का छोटा बेटा तेजस्वी अनुह्लाद के नाम

अनुह्लादस्तु तेजस्वी योऽभूत्ख्यातो जघन्यजः । धृष्टकेतुरिति ख्यातः स बभूव नरेश्वरः ।।७।।
यस्तु राजन्शिबिर्नाम दैतेयः परिकीर्तितः । द्रुम इत्यभिविख्यातो स आसीद्भुवि पार्थिवः ।।८।।
बाष्कलो नाम यस्तेषामासीदसुरसत्तमः । भगदत्त इति ख्यातः स जज्ञे पुरुषर्षभः ।।९।।
अयःशिरा अश्वशिरा अयःशंकुश्च वीर्यवान् । तथा गगनमूर्धा च वेगवांश्चात्र पंचमः ।।१०।।
पंचैते जज्ञिरे राजन्वीर्यवन्तो महासुराः । केकयेषु महात्मानः पार्थिवर्षभसत्तमाः ।।
केतुमानिति विख्यातो यस्ततोऽन्यः प्रतापवान् ।।११।।
अमितौजा इति ख्यात उग्रकर्मा नराधिपः । स्वर्भानुरिति विख्यातः श्रीमान्यस्तु महासुरः ।।१२।।
उग्रसेन इति ख्यात उग्रकर्मा नराधिपः । यस्त्वश्व इति विख्यातः श्रीमानासीन्महासुरः ।।१३।।
अशोको नाम राजाऽभून्महावीर्यो पराजितः । तस्मादवरजो यस्तु राजन्नश्वपतिः स्मृतः ।।१४।।
दैतेयः सोऽभवद्राजा हार्दिक्यो मनुजर्षभः । वृषपर्वेति विख्यातः श्रीमान्यस्तु महासुरः ।।१५।।
दीर्घप्रज्ञ इति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः । अजकस्त्ववरो राजन्य आसीद्वृषपर्वणः ।।१६।।
स शाल्व इति विख्यातः पृथिव्यामभवन्नृपः । अश्वग्रीव इति ख्यातः सत्ववान्यो महासुरः१७
रोचमान इति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः । सूक्ष्मस्तु मतिमान्राजन्कीर्तिमान्यः प्रकीर्तितः।।१८
बृहद्रथ इति ख्यातः क्षितावासीत्स पार्थिवः । तुहुंड इति विख्यातः य आसीदसुरोत्तमः ।।१९।।
सेनाविन्दुरिति ख्यातः स बभूव नराधिपः । इषुमान्नाम यस्तेषामसुराणां बलाधिकः ।।२०।।
नग्नजिन्नाम राजासीद्भुवि विख्यातविक्रमः । एकचक्र इति ख्यात आसीद्यस्तु महासुरः ।।२१।।
प्रतिविन्ध्य इति ख्यातो बभूव प्रथितः क्षितौ । विरूपाक्षस्तु दैतेयश्चित्रयोधी महासुरः ।।२२।।

से प्रसिद्ध था वह धृष्टकेतु नाम का प्रसिद्ध राजा हुआ ।।७।। राजन् , जो शिवि नाम का दैत्य था वह पृथिवी में द्रुम नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।८।। बाष्कल नाम का जो असुर राज था वह भगदत्त नाम का राजा हुआ ।।९।। अयः शिरा, अश्वशिरा, वीर्यवान् अयःशंकु गगनमूर्धा और पांचवें वेगवान् ये पांचों महापराक्रमी असुर केकय देशके राजा के रूप में उत्पन्न हुए। केतुमान् नाम से प्रसिद्ध जो दूसरा प्रतापी असुर था वह अमितौजा प्रसिद्ध राजा हुआ । जो क्रूर कर्म करता था। स्वर्भानु नाम से प्रसिद्ध जो महा असुर था वह उग्र कर्म करने वाला उग्रसेन नाम से प्रसिद्ध हुआ । जो अश्व नाम का विख्यात महा असुर था वह अशोक नामक राजा हुआ । जो बड़ा पराक्रमी और पराजित होने वाला न था । उसका छोटा भाई जो अश्वपति कहा जाता था, वह दैत्य हार्दिक्य नामक मनुष्य राज हुआ । वृषपर्वा नाम से प्रसिद्ध जो महा असुर था, वह पृथिवी में दीर्घप्रज्ञ नाम का राजा हुआ । वृषपर्वा का छोटा भाई जो अजक था वह शाल्व नाम से प्रसिद्ध पृथिवी में राजा हुआ । अश्वग्रीव नाम से प्रसिद्ध जो बली असुर था वह पृथिवी में रोचमान नाम से प्रसिद्ध राजा हुआ । मतिमान् और कीर्तिमान् सूक्ष्म नाम का असुर पृथिवी में बृहद्रथ नाम का प्रसिद्ध राजा हुआ । तुहुंड नाम का विख्यात जो असुर था वह सेनाविन्दु नाम का

चित्रधर्मेति विख्यातः क्षितावासीत्स पार्थिवः । हरस्त्वरिहरो वीर आसीद्यो दानवोत्तमः ॥२३॥
सुबाहुरिति विख्यातः श्रीमानासीत्स पार्थिवः । अहरस्तु महातेजाः शत्रुपक्षक्षयंकरः ॥२४॥
बाह्लिको नाम राजा स बभूव प्रथितः क्षितौ । निचन्द्रश्चन्द्रवक्रस्तु य आसीदसुरोत्तमः ॥२५॥
मुंजकेश इति ख्यातः श्रीमानासीत्स पार्थिवः । निकुम्भस्त्वजितः संख्ये महामतिरजायत ॥२६॥
भूमौ भूमिपतिश्रेष्ठो देवाधिप इति स्मृतः । शरभो नाम यस्तेषां दैतेयानां महासुरः ॥२७॥
पौरवो नाम राजर्षिः स बभूव नरोत्तमः । कुपटस्तु महावीर्यः श्रीमान्राजन्महासुरः ॥२८॥
सुपार्श्व इति विख्यातः क्षितौ जज्ञे महामतिः । कपटस्तु राजन्राजर्षिः क्षितौ जज्ञे महासुरः ॥२९॥
पार्वतेय इति ख्यातः कांचनाचलसन्निभः । द्वितीयः शलभस्तेषामसुराणां बभूव हः ॥३०॥
प्रह्लादो नाम बाह्लीकः स बभूव नराधिपः । चन्द्रस्तु दितिजश्रेष्ठो लोके ताराधिपोपमः ॥३१॥
चन्द्रवर्मेति विख्यातः काम्बोजानां नराधिपः । अर्क इत्यभिविख्यातो यस्तु दानवपुङ्गवः ॥३२॥
ऋषिको नाम राजर्षिर्बभूव नृपसत्तमः । मृतपा इति विख्यातो य आसीदसुरोत्तमः ॥३३॥
पश्चिमानूपकं विद्धि तं नृपं नृपसत्तम । गविष्ठस्तु महातेजा यः प्रख्यातो महासुरः ॥३४॥
द्रुमसेन इति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः । मयूर इति विख्यातः श्रीमान्यस्तु महासुरः ॥३५॥
स विश्व इति विख्यातो बभूव पृथिवीपतिः । सुपर्ण इति विख्यातस्तस्मादवरजस्तु यः ॥३६॥
कालकीर्तिरिति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः । चन्द्रहन्तेति यस्तेषां कीर्तितः प्रवरोऽसुरः ॥३७॥

प्रसिद्ध राजा हुआ। इषुपात् नाम का जो असुर असुरों में सब से बलवान् था वह नग्नजित् नाम का राजा पृथिवी में हुआ, वह प्रसिद्ध पराक्रमी था। एकचक्र नाम से प्रसिद्ध जो महाअसुर था, वह प्रतिविन्ध्य नाम का पृथिवी में प्रसिद्ध राजा हुआ। चित्र युद्ध करने वाला विरूपाक्ष नाम का दैत्य चित्रवर्मा नाम से पृथिवी में प्रसिद्ध राजा हुआ। शत्रुओं का नाश करने वाला हर नाम का जो श्रेष्ठ दानव था वह पृथिवी में सुबाहु नाम से प्रसिद्ध राजा हुआ। महा तेजस्वी असुर जो शत्रु दल का नाश करने वाला था वह बाल्हीक नाम से पृथिवी में प्रसिद्ध राजा हुआ। चन्द्रमुख निचन्द्र नाम का असुर मुंजकेश नाम का पृथिवी में प्रसिद्ध राजा हुआ। निकुंभ युद्ध में अजेय था और बड़ा बुद्धिमान था वह पृथिवी में देवाधिप नाम का राजा हुआ। दैत्यों में शरभ नाम का जो महा असुर था वह नर श्रेष्ठ पौरव नाम का राजर्षि हुआ। राजन्, कुपट नाम का महापराक्रमी असुर सुपार्श्व नाम से प्रसिद्ध पृथिवी का राजा हुआ। कपट नाम का असुर, मेरुपर्वत के समान ऊँचा पार्वतेय नाम का राजा हुआ। असुरों में एक दूसरा शलभ था, वह बाल्हीक देश का प्रह्लाद नाम का राजा हुआ। चन्द्र नाम का दैत्य चन्द्रवर्मा नाम से प्रसिद्ध कांबोज का राजा हुआ यह स्वयं चन्द्रमा के तुल्य था। अर्क नाम से प्रसिद्ध जो दानवराज था। वह ऋषिक नाम का राजर्षि हुआ। मृतपा नाम से प्रसिद्ध जो असुर राज था वह पश्चिम अनूप (समुद्रवर्ती) देश का राजा हुआ। जविष्ठ नाम का महा तेजस्वी प्रसिद्ध जो असुर था वह द्रुम-सेन नाम से प्रसिद्ध पृथिवी का राजा हुआ। मयूर नाम का जो असुर था वह विश्वनाभ का

शुनको नाम राजर्षिः स बभूव नराधिपः । विनाशनस्तु चन्द्रस्य य आख्यातो महासुरः ॥३८॥
जानकिर्नाम विख्यातः सोऽभवन्मनुजाधिपः । दीर्घजिह्वस्तु कौरव्य य उक्तो दानवर्षभः ॥३९॥
काशिराजः स विख्यातः पृथिव्यां पृथिवीपते । ग्रहं तु सुषुवे यं तु सिंहिकार्केन्दुमर्दनम् ॥
स क्राथ इति विख्यातो बभूव मनुजाधिपः ॥४०॥
दनायुषस्तु पुत्राणां चतुर्णां प्रवरोऽसुरः । विक्षरो नाम तेजस्वी वसुमित्रो नृपः स्मृतः ॥४१॥
द्वितीयो विक्षराद्यस्तु नराधिप महासुरः । पौण्ड्यराष्ट्राधिप इति विख्यातः सोऽभवन्नृपः ॥४२॥
बलो वीर इति ख्यातो यस्त्वासीदसुरोत्तमः । पौंड्मत्स्यक इत्येवं बभूव स नराधिपः ॥४३॥
वृत्र इत्यभिविख्यातो यस्तु राजन्महासुरः । मणिमान्नाम राजर्षिः स बभूव नराधिपः ॥४४॥
क्रोधहन्तेति यस्तस्य बभूवावरजोऽसुरः । दंड इत्यभिविख्यातः स आसीन्नृपतिः क्षितौ ॥४५॥
क्रोधवर्धन इत्येवं यस्त्वन्यः परिकीर्तितः । दंडधार इति ख्यातः सोऽभवन्मनुजर्षभः ॥४६॥
कालेयानां तु ये पुत्रास्तेषामष्टौ नराधिपाः । जज्ञिरे राजशार्दूल शार्दूलसमविक्रमाः ॥४७॥
मगधेषु जयत्सेनस्तेषामासीत्स पार्थिवः । अष्टानां प्रवरस्तेषां कालेयानां महासुरः ॥४८॥
द्वितीयस्तु ततस्तेषां श्रीमान्हरिहयोपमः । अपराजित इत्येवं स बभूव नराधिपः ॥४९॥
तृतीयस्तु महातेजा महामायो महासुरः । निषादाधिपतिर्जज्ञे भुवि भीमपराक्रमः ॥५०॥
तेषामन्यतमो यस्तु चतुर्थः परिकीर्तितः । श्रेणिमानिति विख्यातः क्षितौ राजर्षिसत्तमः ॥५१॥

प्रसिद्ध राजा हुआ। उसका छोटा भाई जो सुपर्ण नाम से प्रसिद्ध था, वह कालकीर्ति नाम से प्रसिद्ध पृथिवी का राजा हुआ। चन्द्रहन्ता नाम का जो असुर उनका मुखिया था, वह शुनक नाम का राजर्षि हुआ। चन्द्रविनाशन नामवाला असुर जानकि नाम का राजा हुआ। हे कुरुवंशज, दीर्घजिह्व नाम का जो असुरराज था वह पृथिवी में विख्यात राजा काशिराज हुआ। सिंहिका ने जिस ग्रह को उत्पन्न किया था, जो सूर्य और चन्द्रमा को पीडा देता है, वह क्राथ नाम का विख्यात राजा हुआ ॥१०,४०॥ दनायु के चार पुत्रों में जो बड़ा पुत्र विक्षर नाम का था, वह वसुमित्र नाम का राजा हुआ ॥४१॥ नराधिप, विक्षर का भाई जो असुर था, वह पांड्य देश का विख्यात राजा हुआ ॥४३॥ राजन् वृत्र नाम से प्रसिद्ध जो असुर था, वह मणिमान् नाम का राजर्षि हुआ ॥४४॥ वृत्र का छोटा भाई जो क्रोधहन्ता के नाम से प्रसिद्ध असुर था, वह दण्ड नाम का प्रसिद्ध राजा हुआ ॥४५॥ दूसरा जो क्रोधवर्धन नाम से प्रसिद्ध था, वह दण्डधार नामक प्रसिद्ध राजा हुआ ॥४६॥ राजश्रेष्ठ, कालकेयों के पुत्रों में आठ पुत्र राजा के रूप में उत्पन्न हुए, ये सिंह के समान पराक्रमी थे ॥४७॥ उन आठों कालकेयों में जो सबसे बड़ा था वह मगध का राजा जयत्सेन हुआ ॥४८॥ इनमें का दूसरा जो सूर्य के घोड़े के समान था वह अपराजित नाम का राजा हुआ ॥४९॥ तीसरा असुर जो तेजस्वी और माया जाननेवाला था वह पृथिवी में निषादाधिपति के नाम से उत्पन्न हुआ, वह बड़ा पराक्रमी था ॥५०॥ उनमें का जो चौथा असुर

पंचमस्त्वभवत्तेषां प्रवरो यो महासुरः । महौजा इति विख्यातो बभूवेह परन्तप: ॥५२॥
षष्ठस्तु मतिमान्यो वै तेषामासीन्महासुरः । अभीरुरिति विख्यातः क्षितौ राजर्षिसत्तमः ॥५३॥
समुद्रसेनस्तु नृपस्तेषामेवाभवद्गणात् । विश्रुतः सागरान्तायां क्षितौ धर्मार्थतत्त्ववित् ॥५४॥
बृहन्नामाष्टमस्तेषां कालेयानां नराधिप । बभूव राजा धर्मात्मा सर्वभूतहिते रतः ॥५५॥
कुक्षिस्तु राजन्विख्यातो दानवानां महाबलः । पार्वतीय इति ख्यातः कांचनाचलसन्निभः ॥५६॥
क्रथनश्च महावीर्यः श्रीमान्राजा महासुरः । सूर्याक्ष इति विख्यातः क्षितौ जज्ञे महीपतिः ॥५७॥
असुराणां तु यः सूर्यः श्रीमांश्चैव महासुरः । दरदो नाम बाह्लीको वरः सर्वमहीक्षिताम् ॥५८॥
गणः क्रोधवशो नाम यस्ते राजन्प्रकीर्तितः । ततः संजज्ञिरे वीराः क्षिताविह नराधिपाः ॥५९॥
मद्रकः कर्णवेष्टश्च सिद्धार्थः कीटकस्तथा । सुवीरश्च सुबाहुश्च महावीरोऽथ बाह्लीकः ॥६०॥
क्रथो विचित्रः सुरथः श्रीमान्नीलश्च भूमिपः । चीरवासाश्च कौरव्य भूमिपालश्च नामतः ॥६१॥
दन्तवक्रश्च नामासीद्दुर्जयश्चैव दानवः । रुक्मी च नरशार्दूलो राजा च जनमेजयः ॥६२॥
आषाढो वायुवेगश्च भूरितेजास्तथैव च । एकलव्यः सुमित्रश्च वाटधानोऽथ गोमुखः ॥६३॥
कारूषकाश्च राजानः क्षेमधूर्तिस्तथैव च । श्रुतायुरुद्वहश्चैव बृहत्सेनस्तथैव च ॥६४॥
क्षेमोग्रतीर्थः कुहरः कलिंगेषु नराधिपः । मतिमांश्च मनुष्येन्द्र ईश्वरश्चेति विश्रुतः ॥६५॥
गणात्क्रोधवशादेष राजपूगोऽभवत्क्षितौ । जातः पुरा महाभागो महाकीर्तिर्महाबलः ॥६६॥

था वह श्रेणिमान् नाम से पृथिवी में श्रेष्ठ राजर्षि हुआ ॥५१॥ पांचवां असुर, जो उनमें श्रेष्ठ था वह पृथिवी में महौजा नाम का राजा हुआ ॥५२॥ उनमें छठवां असुर जो बुद्धिमान था वह अभीरू नाम का राजा हुआ ॥५३॥ समुद्रसेन नाम का राजा इन्हीं के गण का था वह समस्त पृथिवी में धर्म और अर्थ का तत्वज्ञ के नाम से प्रसिद्ध था ॥५४॥ राजन्, उन कालकेयों में आठवां बृहत् नाम का असुर था वह धर्मात्मा राजा हुआ, वह सबका कल्याण करता था ॥५५॥ कुक्षि दानवों में महाबलवान समझा जाता था, वह सुमेरुपर्वत के समान ऊँचा पार्वतीय नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥५६॥ क्रथन नाम का असुर बड़ा पराक्रमी था वह पृथिवी में सूर्याक्ष नाम का राजा हुआ ॥५७॥ असुरों में सूर्य नाम का जो महा असुर था, वह वाल्हीक देश में दरद नामका राजा हुआ, वह राजाओं में श्रेष्ठ समझा जाता था ॥५८॥ राजन्, क्रोधवश नाम का जो गण मैंने आप को बतलाया है उसके सभी असुर पृथिवी में वीर राजा के रूप में उत्पन्न हुए ॥५९॥ उन राजाओं के नाम ये हैं । मद्रक, कर्णवेष्ट, सिद्धार्थ, कटिक, सुवीर, सुबाहु, महावीर, वाल्हीक, क्रथ, विचित्र, सुरथ, नील, चीरवासा, भूमिपाल, दन्तवक्र, दुर्जय, रुक्मी, जनमेजय (ये दूसरे जनमेजय हैं) आषाढ, वायुवेग, भूरितेजा, एकलव्य, सुमित्र, वाटधान, गोमुख, करुष देशवाले राजा क्षेमधूर्ति, श्रुतायु, उद्वह बृहत्सेन, क्षेम, उग्रतीर्थ, कलिंगराज कुहर मतिमान् और ईश्वर ये राजा हुए ॥६०,६५॥ क्रोधवश गण से पृथिवी में ये सब राजा हुए । पहले कीर्तिमान और

कालनेमिरिति ख्यातो दानवानां महाबलः । स कंस इति विख्यात उग्रसेनसुतो बली ॥६७॥
यस्त्वासीद्देवको नाम देवराजसमद्युतिः । स गंधर्वपतिर्मुख्यः क्षितौ जज्ञे नराधिपः ॥६८॥
बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तेर्देवर्षेर्विद्धि भारत । अंशाद् द्रोणं समुत्पन्नं भारद्वाजमयोनिजम् ॥६९॥
धन्विनां नृपशार्दूल यः सर्वास्त्रविदुत्तमः । महाकीर्तिर्महातेजाः स जज्ञे मनुजेश्वर ॥७०॥
धनुर्वेदे च वेदे च यं तं वेदविदो विदुः । वरिष्ठं चित्रकर्माणं द्रोणं स्वकुलवर्धनम् ॥७१॥
महादेवान्तकाभ्यां च कामात्क्रोधाच्च भारत । एकत्वमुपपन्नाभ्यां जज्ञे शूरः परन्तपः ॥७२॥
अश्वत्थामा महावीर्यः शत्रुपक्षभयावहः । वीरः कमलपत्राक्षः क्षितावासीन्नराधिपः ॥७३॥
जज्ञिरे वसवस्त्वष्टौ गंगायां शान्तनोः सुताः । वसिष्ठस्य च शापेन नियोगाद्वासवस्य च ॥७४॥
तेषामवरजो भीष्मः कुरूणामभयंकरः । मतिमान्वेदविद् वाग्मी शत्रुपक्षक्षयंकरः ॥७५॥
जामदग्न्येन रामेण सर्वास्त्रविदुषां वरः । यो ऽयुध्यत महातेजा भार्गवेण महात्मना ॥७६॥
यस्तु राजन्कृपो नाम ब्रह्मर्षिरभवत्क्षितौ । रुद्राणां तु गणाद्विद्धि संभूतमतिपौरुषम् ॥७७॥
शकुनिर्नाम यस्त्वासीद्राजा लोके महारथः । द्वापरं विद्धि तं राजन्संभूतमरिमर्दनम् ॥७८॥
सात्यकिः सत्यसन्धश्च योऽसौ वृष्णिकुलोद्वहः । पक्षात्स जज्ञे मरुतां देवानामरिमर्दनः ॥७९॥
द्रुपदश्चैव राजर्षिस्तत एवाभवद्गणात् । मानुषे नृप लोकेऽस्मिन्सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥८०॥

बलवान् कालनेमि नाम का एक असुर हुआ था। वह दानवों में बड़ा बली था। वह उग्रसेन का पुत्र कंस नाम का राजा हुआ ॥६६,६७॥ इन्द्र के समान दीप्तिमान देवक नाम का जो असुर था वह गन्धर्व पति नाम का प्रधान राजा हुआ ॥६८॥

बृहत्कीर्ति देवर्षि बृहस्पति के अंश से द्रोण उत्पन्न हुए थे, जो अयोनिज हैं और भरद्वाज के पुत्र हैं ॥६९॥ राजश्रेष्ठ, जो धनुर्धारियों में उत्तम थे सब प्रकार के अस्त्रों के ज्ञाता थे ॥७०॥ वे कीर्तिमान और तेजस्वी थे ॥७०॥ वेदों के जानने वाले थे, वे धनुर्वेद और वेदों के श्रेष्ठ ज्ञाता थे, वे अद्भुत कर्म करने वाले तथा अपने कुल को बढ़ाने वाले थे ॥७१॥ महादेव यम काम और क्रोध इनके अंश के एकत्र होने से शत्रु पक्ष को भय देने वाले महा पराक्रमी अश्वत्थामा उत्पन्न हुए। वे वीर थे उनके नेत्र कमल के समान थे। अश्वत्थामा द्रोण के पुत्र थे ॥७२,७३॥ वसिष्ठ के शाप तथा इन्द्र की आज्ञा से आठों वसु राजा शान्तनु के द्वारा गंगा से उत्पन्न हुए ॥७४॥ आठों वसुओं में भीष्म सबसे छोटे थे, वे कुरुओं का भय छुड़ाने वाले थे। ये बुद्धिमान् वेद के वक्ता और शत्रु पक्ष को नष्ट करने वाले थे ॥७४॥ समस्त अस्त्रों को जानने वाले भीष्म ने भृगुवंशी जमदग्नि पुत्र महात्मा राम से युद्ध किया था ॥७ ॥ राजन्, कृप नाम के जो ब्रह्मर्षि पृथिवी में प्रसिद्ध हैं वे अत्यन्त पराक्रमी ऋषि, रुद्रगण के अंश से उत्पन्न हुए थे ॥७७॥ शकुनि नाम का जो महारथ राजा था, शत्रु नाशक वह राजा द्वापर के अंश से उत्पन्न हुआ था ॥७८॥ सत्यसन्ध सात्यकि जो यदुकुल का मुखिया था, वह मरुद्गण के पक्ष से उत्पन्न हुआ था ॥७९॥ राजर्षि द्रुपद भी मरुद्गण से ही उत्पन्न हुए थे। वे साधारण मनुष्यों तथा राजाओं में समस्त शास्त्रों के ज्ञाता थे ॥८०॥

ततश्च कृतवर्माणं विद्धि राजन्नराधिपम् । [illegible]कर्माणं क्षत्रियर्षभसत्तमम् ॥८१॥
मरुतां तु गणं विद्धि संजातमरिमर्दनम् । विराटं नाम राजानं परराष्ट्रप्रतापनम् ॥८२॥
अरिष्टायास्तु यः पुत्रो हंस इत्यभिविश्रुतः । स गंधर्वपतिर्जज्ञे कुरुवंशविवर्धनः ॥८३॥
धृतराष्ट्र इति ख्यातः कृष्णद्वैपायनात्मजः । दीर्घबाहुर्महातेजाः प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः ।
मातुर्दोषादृषेः कोपादन्ध एव व्यजायत ॥८४॥
तस्यैवावरजो भ्राता महासत्वो महाबलः । स पांडुरिति विख्यातः सत्यधर्मरतः शुचि ॥८५॥
धर्मात्तु सुमहाभागं पुत्रं पुत्रवतांवरम् । विदुरं विद्धि तं लोके जातं बुद्धिमतांवरम् ॥८६॥
कलेरंशस्तु संजज्ञे भुवि दुर्योधनो नृपः । दुर्बुद्धिर्दुर्मतिश्चैव कुरूणामयशस्करः ॥८७॥
जगतो यस्तु सर्वस्य विद्विष्टः कलिपूरुषः । यः सर्वां घातयामास पृथिवीं पृथिवीपते ॥८८॥
उद्दीपितं येन वैरं भूतान्तकरणं महत् । पौलस्त्या भ्रातरश्चास्य जज्ञिरे मनुजेष्विह ॥८९॥
शतं दुःशासनादीनां सर्वेषां क्रूरकर्मणाम् । दुर्मुखो दुःसहश्चैव ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥९०॥
दुर्योधनसहायास्ते पौलस्त्या भरतर्षभ । वैश्यापुत्रो युयुत्सुश्च धार्तराष्ट्रः शताधिकः ॥९१॥
जनमेजय उवाच
ज्येष्ठानुज्येष्ठतामेषां नामधेयानि वा विभो । धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामानुपूर्व्येण कीर्तय ॥९२॥

राजा कृतवर्मा मरुद्गण के अंश से उत्पन्न हुए थे। ये क्षत्रियश्रेष्ठ जो काम कर डालते थे वैसा दूसरा नहीं कर पाता था ॥८१॥ मरुद्गण के अंश से राजा विराट् उत्पन्न हुए थे, वे शत्रुओं को मर्दन करने वाले थे तथा शत्रु राज्यों को नष्ट करने वाले थे ॥८२॥ अरिष्टा का जो हँस नाम का गन्धर्व राजपुत्र था उसके अंश से कुरुवंश को बढ़ाने वाला धृतराष्ट्र कृष्णद्वैपायन से उत्पन्न हुआ। वह विशालबाहु महातेजस्वी राजा अन्धा था। माता के दोष और ऋषि के क्रोध से वह अन्धा ही उत्पन्न हुआ था ॥८३, ८४॥ उसका छोटा भाई महापराक्रमी महाबली पाण्डु नाम का से प्रसिद्ध हुआ, वह पवित्र था और धर्म में अनुराग रखनेवाला था ॥८५॥ पुत्रवानों के श्रेष्ठ पुत्र महाभाग विदुर धर्म के अंश से उत्पन्न हुए। विदुर लोक में श्रेष्ठ बुद्धिमान् हैं ॥८६॥ कुरुकुल कलंक दुर्बुद्धि दुर्योधन कलि के अंश से उत्पन्न हुआ ॥८७॥ कलि का अवतार वह दुर्योधन समस्त लोक का द्वेषी था, राजन्, उसने समस्त पृथिवी को मरवा डाला ॥८८॥ प्राणियों का अन्त करनेवाला बहुत बड़ा बैर उसने उत्पन्न किया था, पुलस्त्यवंशी राक्षस मनुष्य के रूप में इसके भाई हुए ॥८९॥ क्रूरकर्म करने वाले दुर्मुख, दुःसह दुःशासन आदि जिनकी गणना नहीं की है वे दुर्योधन की सहायता करने वाले उसके सौ भाई भी पुलस्त्य वंशी राक्षस ही है। धृतराष्ट्र का एक और युयुत्सु नाम का पुत्र था, वह वैश्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। वह सौ से अधिक था ॥९०, ९ ॥

जनमेजय बोले, ज्येष्ठ के क्रम से धृतराष्ट्र के पुत्रों के नाम क्रमपूर्वक आप कहें ॥९२॥

वैशंपायन उवाच

दुर्योधनो युयुत्सुश्च राजन्दुःशासनस्तथा । दुःसहो दुःशलश्चैव दुर्मुखश्च तथापरः ॥९३॥
विविंशतिर्विकर्णश्च जलसन्धः सुलोचनः । विन्दानुविन्दौ दुर्धर्षः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ॥९४॥
दुर्मर्षणो दुर्मुखश्च दुष्कर्णः कर्ण एव च । चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुचित्रांगदश्च ह ॥९५॥
दुर्मदो दुष्प्रहर्षश्च विवित्सुर्विकटः समः । ऊर्णनाभः पद्मनाभस्तथा नन्दोपनन्दकौ ॥९६॥
सेनापतिः सुषेणश्च कुंडोदरमहोदरौ । चित्रबाहुश्चित्रवर्मा सुवर्मा दुर्विरोचनः ॥९७॥
अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्रचापसुकुंडलौ । भीमवेगो भीमबलो बलाकी भीमविक्रमः ॥९८॥
उग्रायुधो भीमशरः कनकायुर्दृढायुधः । दृढवर्मा दृढक्षत्रः सोमकीर्तिरनूदरः ॥९९॥
जरासन्धो दृढसन्धः सत्यसन्धः सहस्रवाक् । उग्रश्रवा उग्रसेनः क्षेममूर्तिस्तथैव च ॥१००॥
अपराजितः पंडितको विशालाक्षो दुराधनः । दृढहस्त सुहस्तश्च वातवेगसुवर्चसौ ॥१०१॥
आदित्यकेतुर्बह्वाशी नागदत्तानुयायिनौ ॥१०२॥
कवची निषंगी दंडी दंडधारी धनुर्ग्रहः । उग्रभीमरथो वीरो वीरबाहुरलोलुपः ॥१०३॥
अभयो रौद्रकर्मा च तथा दृढरथश्च यः । अनाधृष्यः कुंडभेदी विरावी दीर्घलोचनः ॥१०४॥
दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोरुः कनकांगदः । कुंडजश्चित्रकश्चैव दुःशला च शताधिका ॥१०५॥
वैश्यापुत्रो युयुत्सुश्च धार्तराष्ट्रः शताधिकः । एतदेकशतं राजन्कन्या चैका प्रकीर्तिता ॥१०६॥
नामधेयानुपूर्व्या च ज्येष्ठानुज्येष्ठतां विदुः । सर्वे त्वतिरथाः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ॥१०७॥

वैशम्पायन बोले, दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःशल, दुःसह, दुर्मुख, विविंशति, विकर्ण, जलसन्ध, सुलोचन, विन्द, अनुबिन्द, दुर्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्रांगद, दुर्मद, दुष्प्रहर्ष, विवित्सु, विकट, सम, ऊर्णनाभ, पद्मनाभ, नन्द, उपनन्द, सेनापति, सुषेण, कुण्डोदर, महोदर, चित्रवर्मा, चित्रबाहु सुवर्मा दुर्विरोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्रचाप, सुकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, भीमविक्रम, उग्रायुध, भीमशर, कनकायुध, दृढ़ायुध, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्ति, अनूदर, जरासन्ध, दृढ़सन्ध, सत्यसन्ध सहस्रवाक्, उग्रश्रवा, उग्रसेन, क्षेममूर्ति, अपराजित, पण्डितक, विशालाक्ष, दुराधन, दृढ़हस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चस, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अनुयायी, कवची, निषंगी, दण्डी, दण्डधार, धनुर्ग्रह, उग्र, भीमरथ, वीर वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा दृढ़रथ, अनाधृष्य, कुंडभेदी, विरावी दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरु, कनकांगद, कुण्डज, और चित्रक, ये सौ और दुःशला नाम की एक कन्या जो सौ से अधिक थी, ॥९३, १०५॥ इन सौ के अतिरिक्त वैश्या से उत्पन्न युयुत्सु नाम का एक और पुत्र धृतराष्ट्र के था। राजन्, ये एक सौ एक और एक कन्या धृतराष्ट्र की सन्तान है ॥१०६॥ धृतराष्ट्र के पुत्रों के ये ही क्रमशः नाम है। बड़े से लेकर छोटे तक ये ही नाम क्रम से हैं ॥१०७॥ ये सभी वेदों और शास्त्रों के ज्ञाता थे। सभी संग्राम

सर्वे वेदविदश्चैव राजन् शास्त्रे च पारगाः। सर्वे संग्रामविद्यासु विद्याभिजनशोभिनः ॥१०८॥
सर्वेषामनुरूपाश्च कृता दारा महीपते। दुःशलां समये राजसिन्धुराजाय कौरवः ॥१०९॥
जयद्रथाय प्रददौ सौबलानुमते तदा। धर्मस्यांशं तु राजानं विद्धि राजन्युधिष्ठिरम् ॥११०॥
भीमसेनं तु वातस्य देवराजस्य चार्जुनम्। अश्विनोस्तु तथैवांशौ रूपेणाप्रतिमौ भुवि ॥१११॥
नकुलः सहदेवश्च सर्वभूतमनोहरौ। यस्तु वर्चा इतिख्यातः सोमपुत्रः प्रतापवान् ॥११२॥
सोऽभिमन्यु र्बृहत्कीर्तिरर्जुनस्य सुतोऽभवत्। यस्यावतरणे राजन्सुरान्सोमोऽब्रवीदिदम् ॥११३॥
नाहं दद्यां प्रियं पुत्रं ममप्राणैर्गरीयसम्। समयः क्रियतामेष न शक्यमतिवर्तितुम् ॥११४॥
सुरकार्यं हि नः कार्यमसुराणां क्षितौ वधः। तत्र यास्यत्ययं वर्चा नच स्थास्यति वै चिरम् ॥११५॥
ऐन्द्रिर्नरस्तु भविता यस्य नारायणःसखा। सोऽर्जुनेत्यभिविख्यातःपांडो पुत्रःप्रतापवान् ॥११६॥
तस्यायं भविता पुत्रो बालो भुवि महारथः। ततः षोडशवर्षाणि स्थास्यत्यमरसत्तमाः ॥११७॥
अस्य षोडशवर्षस्य स संग्रामो भविष्यति। यत्रांशा वै करिष्यन्ति कर्म वीरीनिषूदनम् ॥११८॥
नरनारायणाभ्यां तु स संग्रामो विनाकृतः। चक्रव्यूहं समास्थाय योधयिष्यन्ति वः सुराः ११९
विमुखान् शात्रवान्सर्वान्कारयिष्यति मे सुतः। बालः प्रविश्य च व्यूहमभेद्यं विचरिष्यति ॥१२०॥
महारथानां वीराणां कदनं च करिष्यति। सर्वेषामेव शत्रूणा चतुर्थांशं नयिष्यति ॥१२१॥

विद्या में दक्ष थे, विद्या और कुल में श्रेष्ठ थे ॥१०८॥ राजन् अनुरूप स्त्रियों से इनका व्याह हुआ था। राजा धृतराष्ट्र ने दुःशला सौवल के कहने से सिन्धुराज जयद्रथ को दी। राजन्, राजा युधिष्ठिर को धर्म का अंश समझो ॥१०९, ११०॥ भीमसेन वायु के और अर्जुन इन्द्र के अंश से उत्पन्न हुए हैं। सब प्राणियों के प्रिय नकुल और सहदेव अश्विनकुमारों के अंश से उत्पन्न हुए हैं, ये पृथिवी में सबसे सुन्दर थे। सोम के पुत्र प्रतापी जो वर्चा नाम से प्रसिद्ध हैं उनके अंश से अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु हुआ जो बड़ा कीर्तिमान था। जिसके अवतार के समय सोम ने देवताओं से यह कहा था ॥१११, ११३॥ मैं अपने प्रिय पुत्र को न दूँगा यह मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है, अतएव आप लोग मुझसे प्रण करें और ऐसा प्राण करें जिसका उलङ्घन न हो ॥११४॥ पृथिवी में राक्षसों का बध करना यह देवताओं का काम अपना काम है, उस काम के लिए यह वर्चा वहां जायगा, पर वहां बहुत दिनों तक रहेगा नहीं ॥११५॥ इन्द्र का पुत्र नररूप में उत्पन्न होगा, जिसके सखा नारायण होंगे। वह प्रतापी अर्जुन के नाम से प्रसिद्ध होगा, वह पाण्डु का पुत्र होगा ॥११६॥ उसीका यह वर्चा पुत्र होगा, और बाल्यावस्था में ही महारथ होगा। देवताओं, यह सोलह वर्ष की अवस्था तक पृथिवी में रहेगा ॥११७॥ इसके सोलहवें वर्ष में वह युद्ध होगा, जिसमें आपलोगों के अंश वीरों के नाश का काम करेंगे ॥११८॥ उस संग्राम में नर नारायण नहीं रहेंगे, चक्रव्यूह की रचना करके शत्रु दल आपलोगों से युद्ध करेगा ॥११९॥ अभेद्य चक्रव्यूह का भेदन करके मेरा बालक पुत्र निर्भय हो कर विचरण करेगा और शत्रुओं का मुँह मोड़ देगा ॥१२०॥ महारथ वीरों के छक्के छुड़ा देगा, और समस्त शत्रुओं के चौथाई हिस्से को आधे दिन में यमपुर भेज

दिवार्धेन महाबाहुः प्रेतराजपुरं प्रति। ततो महारथैर्वीरैः समेत्य बहुशो रणे ॥१२२॥
दिनक्षये महाबाहुर्मया भूयः समेष्यति। एकं वंशकरं पुत्रं वीरं वै जनयिष्यति ॥१२३॥
प्रनष्टं भारतं वंशं स भूयो धारयिष्यति। एतत्सोमवचः श्रुत्वा तथास्त्विति दिवौकसः ॥१२४॥
प्रत्यूचुः सहिताः सर्वे ताराधिपमपूजयन्। एवं ते कथितं राजंस्तव जन्म पितुः पितुः ॥१२५॥
अग्नेर्भागं तु विद्धि त्वं धृष्टद्युम्नं महारथम्। शिखण्डिनमथो राजं स्त्रीपूर्वं विद्धि राक्षसम् ॥१२६॥
द्रौपदेयाश्च ये पंच बभूवुर्भरतर्षभ। विश्वान्देवगणान्विद्धि संजातान्भरतर्षभ ॥१२७॥
प्रतिविंध्यः सुतसोमः श्रुतकीर्तिस्तथापरः। नाकुलिस्तु शतानीकः श्रुतसेनश्च वीर्यवान् ॥१२८॥
शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेवपिताऽभवत्। तस्य कन्या पृथा नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥१२९॥
पितुः स्वस्रीयपुत्राय सोऽनपत्याय वीर्यवान्। अग्रमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्यापत्यस्य वै तदा ॥१३०॥
अग्रजातेति तां कन्यां शूरोनुग्रहकांक्षया। अददत्कुन्तिभोजाय स तां दुहितरं तदा ॥१३१॥
सा नियुक्ता पितुर्गेहे ब्राह्मणातिथिपूजने। उग्रं पर्यचरद्घोरं ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥१३२॥
निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः। तमुग्रं शंसितात्मानं सर्वयत्नैरतोषयत् ॥१३३॥
तुष्टोऽभिचारसंयुक्तमाचचक्षे यथाविधि। उवाच चैनां भगवान्प्रीतोस्मि सुभगे तव ॥१३४॥

देगा। अनन्तर युद्ध क्षेत्र में कई बार महारथ वीरों से लड़कर दिन की समाप्ति में आकर पुनः मुझसे मिलेगा। यह एक पुत्र उत्पन्न करेगा, जो इसके वंश को चलावेगा ॥१२२,१२३॥ यही पुत्र नष्ट होते हुए भारत वंश को चलावेगा। सोम के ये वचन सुनकर देवाओं ने कहा—ठीक है, आपके कहने के ही अनुसार होगा। ऐसा कहकर उनलोगों ने सोम की पूजा की। राजन्, यही तुम्हारे पिता के पिता का जन्म वृत्तान्त है ॥१२४,१२५॥ महारथ धृष्टद्युम्न को तुम अग्नि का अंश समझो राजन् शिखण्डी जो पहले स्त्री था, वह राक्षस के अंश से उत्पन्न हुआ था ॥१२६॥ राजश्रेष्ठ द्रौपदी के पांच पुत्र हुए, वे विश्वेदेव के अंश से हुए थे ऐसा तुम समझो ॥१२७॥ प्रतिविन्ध्य, सुतसोम श्रुतकीर्ति, नकुल पुत्र शतानीक, और पराक्रमी श्रुतसेन ये पांच द्रौपदी के पुत्र थे ॥१२८॥

यदुवंश के मुखिया शूर थे, जो वसुदेव के पिता थे, उनकी कन्या पृथा थी, जो सबसे सुन्दरी थी ॥१२९॥ शूर के पिता की बहिन के पुत्र के पुत्र अर्थात् उनकी बुआ के पोते के कोई सन्तान न थी, अतएव शूर ने उनसे यह प्रतिज्ञा की थी कि जो मेरी पहली सन्तान होगी वह मैं तुम्हें दूँगा ॥१३०॥ पहले वह कन्या उत्पन्न हुई थी, इस कारण अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उन्होंने कुन्तिभोज को वह कन्या दे दी ॥१३१॥ पिता ने उस कन्या को ब्राह्मणों अतिथियों का सत्कार करने के लिए नियुक्त किया था। उसने एक बार तपस्वी क्रोधी भयंकर एक ब्राह्मण की सेवा की ॥१३२॥ वे धर्म के गूढ़ रहस्यों को जाननेवाले थे, उनको लोग दुर्वासा कहते हैं। उन क्रोधी दुर्वासा को उस कन्याने सब प्रकार से सन्तुष्ट किया ॥१३३॥ प्रसन्न हो कर उन्होंने एक मन्त्र उसे बतलाया और उसकी विधि भी बतलायी तथा वे उससे बोले--सुभगे मैं तुमसे प्रसन्नहूँ ॥१३४॥

यं यं देवं त्वमेतेन मंत्रेणावाहयिष्यसि । तस्य तस्य प्रसादात्त्वं देवि पुत्रान्जनिष्यसि ॥१३५॥
एवमुक्ता च सा बाला तदा कौतुहलान्विता । कन्या सती देवमर्कमाजुहाव यशस्विनी ॥१३६॥
प्रकाशकर्ता भगवांस्तस्यां गर्भं दधौ तदा । अजीजनत्सुतं चास्यां सर्व शास्त्रभृतां वरम् ॥१३७॥
सकुंडलं सकवचं देवगर्भश्रियान्वितम् । दिवाकरसमं दीप्त्या चारुसर्वाङ्गभूषितम् ॥१३८॥
निगूहमाना जातं वै बन्धुपक्षभयात्तदा । उत्ससर्ज जले कुन्ती तं कुमारं यशस्विनम् ॥१३९॥
तमुत्सृष्टं जले गर्भं राधाभर्ता महायशाः । राधायाः कल्पयामास पुत्रं सोऽधिरथस्तदा ॥१४०॥
चक्रतुर्नामधेयं च तस्य बालस्य तावुभौ । दंपती वसुषेणेति दिक्षु सर्वासु विश्रुतम् ॥१४१॥
संवर्धमानो बलवान्सर्वास्त्रेषूत्तमोऽभवत् । वेदांगानि च सर्वाणि जजाप जपतां वरः ॥१४२॥
यस्मिन्कालेजपन्नास्ते धीमान्सत्यपराक्रमः । नादेयं ब्राह्मणेष्वासीत्तस्मिन्काले महात्मनः ॥१४३॥
तमिन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा पुत्रार्थे भूतभावनः । ययाचे कुंडले वीरं कवचं च सहांगजम् ॥१४४॥
उत्कृत्य कर्णो ह्यददत्कवचं कुंडले तथा । शक्तिं शक्रो ददौ तस्मै विस्मितश्चेदमब्रवीत् ॥१४५॥
देवासुरमनुष्याणां गंधर्वोरगरक्षसाम् । यस्मिन्क्षेप्स्यसि दुर्धर्ष स एको न भविष्यति ॥१४६॥
वैशंपायन उवाच
पुरा नाम च तस्यासीद्वसुषेण इति क्षितौ । ततो वैकर्तनः कर्णः कर्मणा तेन सोऽभवत् ॥१४७॥

इस मन्त्र से तुम जिस जिस देवता का आवाहन करोगी उसकी कृपा से तुम पुत्र उत्पन्न कर सकोगी ॥१३५॥ मन्त्र का ऐसा प्रभाव सुनने से उस कन्या के मनमें कुतूहल उत्पन्न हुआ, उसने उस मन्त्र के द्वारा सूर्य देव का आह्वान किया ॥१३६॥ प्रकाश फैलाने वाले भगवान् सूर्य ने उसको गर्भ धारण कराया और उस कन्या ने एक पुत्र उत्पन्न किया जो सब शास्त्रों का ज्ञाता था ॥१३७॥ वह पुत्र कुण्डल और कवच धारण किये हुए था, वह देव कुमार के समान सुन्दर था सूर्य के समान दीप्तिमान था और उसका सर्वाङ्ग सुडौल था ॥१३८॥ कुन्ती उस उत्पन्न पुत्र को बान्धवों के भय से छिपाना चाहती थी अतएव उसने उस सुन्दर बालक को जल में छोड़ दिया ॥१३९॥ जलमें बहते उस बालकको राधा के पतिने राधा को पुत्र रूप में दिया। वह अधिरथ था ॥१४०॥ उन स्त्री पुरुषों ने उस बालक का नाम वसुषेण रखा और उसका यह नाम प्रसिद्ध हुआ ॥१४१॥ वह बढ़ने लगा, बली और सब शास्त्रों का ज्ञात हुआ और उसने समस्त वेदाङ्गों का ज्ञान प्राप्त कर लिया ॥१४२॥ जिस समय वह बुद्धिमान और सत्यपराक्रमी बालक पूजा करता था उस समय ब्राह्मणों के लिए उसे कुछ भी अदेय नहीं था। ब्राह्मण जो कुछ मांगे वही वह दे सकता था ॥१४३॥ इन्द्रने अपने पुत्र अर्जुन के लिए उससे कुण्डल और कवच मांगे। जो कवच उसके साथ उत्पन्न हुआ था ॥१४४॥ कर्ण ने कवच और कुण्डल निकाल कर उनको दिये। इससे इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और एक शक्ति देकर वे उससे बोले ॥१४५॥ देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, जिस पर तुम यह शक्ति चलाओगे, वहीं नहीं रहेगा वह नष्ट हो जायगा, पर वह एक ही। अर्थात् इस शक्ति का उपयोग एक ही आदमी पर हो सकता है ॥१४६॥ पहले उसका नाम वसुषेण था पर इस काम के करने

आमुक्तकवचो वीरो यस्तु जज्ञे महायशाः। स कर्ण इति विख्यातः पृथायाः प्रथमःसुतः ॥१४८॥
स तु सूतकुले वीरो वृद्धे राजसत्तम। कर्णं नरवरश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतांवरम् ॥१४९॥
दुर्योधनस्य सचिवं मित्रं शत्रुविनाशनम्। दिवाकरस्य तं विद्धि राजन्नंशमनुत्तमम् ॥१५०॥
यस्तु नारायणो नाम देवदेवः सनातनः। तस्यांशो मानुषेष्वासीद् वासुदेवः प्रतापवान् ॥१५१॥
शेषस्यांशश्च नागस्य बलदेवो महाबलः। सनत्कुमारं प्रद्युम्नं विद्धि राजन्महौजसम् ॥१५२॥
एवमन्ये मनुष्येन्द्रा बहवोंशा दिवौकसाम्। जज्ञिरे वसुदेवस्य कुले कुलविवर्धनाः ॥१५३॥
गणस्त्वप्सरसां यो वै मया राजन्प्रकीर्तितः। तस्य भागः क्षितौ जज्ञे नियोगाद्वासवस्यह ॥१५४॥
तानि षोडशदेवीनां सहस्राणि नराधिप। बभूवुर्मानुषे लोके वासुदेवपरिग्रहाः ॥१५५॥
श्रियस्तु भागः संजज्ञे रत्यर्थं पृथिवीतले। भीष्मकस्य कुले साध्वी रुक्मिणी नाम नामतः ॥१५६॥
द्रौपदी त्वथ संजज्ञे शचीभागादनिन्दिता। द्रुपदस्य कुले जाता वेदिमध्यादनिन्दिता ॥१५७॥
नातिह्रस्वा न महती नीलोत्पलसुगन्धिनी। पद्मायताक्षी सुश्रोणी स्वसितांचितमूर्धजा ॥१५८॥
सर्वलक्षणसंपन्ना वैदूर्यमणिसंनिभा। पंचानां पुरुषेन्द्राणां चित्तप्रमथनी रहः ॥१५९॥
सिद्धिर्धृतिश्च ये देव्यौ पंचानां मातरौ तु ते। कुन्ती माद्री च जज्ञाते मतिस्तुसुबलात्मजा ॥१६०॥
इति देवासुराणां ते गन्धर्वाप्सरसां तथा। अंशावतरणं राजन्राक्षसानां च कीर्तितम् ॥१६१॥

के पश्चात् उसका नाम वैकर्तन कर्ण हो गया ॥१४७॥ कवच पहने हुए जो यशस्वी वीर उत्पन्न हुआ, उसका नाम कर्ण था वह पृथा का पहला बेटा था ॥१४८॥ उस वीर का लालन पालन सूत कुल में हुआ। शस्त्रधारियों में अग्रगामी नरश्रेष्ठ कर्ण, जो दुर्योधन का सलाहकार और मित्र था वह सूर्य के अंश से उत्पन्न हुआ था ॥१४९, १५०॥ जो सनातन देवदेव नारायण हैं, उनके अंशसे मनुष्य लोक में प्रतापी वासुदेव उत्पन्न हुए थे ॥१५१॥ महाबली बलदेव शेषनाग के अंश से उत्पन्न हुए थे। राजन्, महाबली प्रद्युम्न सनत्कुमार के अंश से उत्पन्न हुए थे ॥१५२॥ इस प्रकार देवताओं के अंश से अनेक राजा वसुदेव के कुल में उत्पन्न हुए, वे सब कुल को बढ़ाने वाले थे ॥१५३॥ राजन्, अप्सराओं के जिस गण का परिचय मैंने आपको दिया है, इन्द्र की आज्ञा से उस गण के अंश से पृथिवी में सोलह हजार स्त्रियां उत्पन्न हुईं और वे सब वासुदेव की स्त्रियाँ हुईं ॥१५४,१५५॥ लक्ष्मी के अंश से पृथिवी में राजा भीष्मक के कुल में साध्वी रुक्मिणी उत्पन्न हुईं। इन्द्राणी के अंश से द्रुपद के कुल में यज्ञवेदी से सुन्दर द्रौपदी उत्पन्न हुई ॥१५६,१५७॥ वह न बहुत बड़ी थी न छोटी, उसके शरीर से नील कमल की गन्ध आती थी। कमल के समान उसके नेत्र थे और उसके काले केश सुन्दर थे ॥१५८॥ वह सब लक्षणों से युक्त थी, वैदूर्य मणि के समान उसका वर्ण था, उसने पाँच पुरुषसिंहों का मन वश में कर लिया था ॥१५९॥ सिद्धि और धृति इन दोनों देवियों के अंश से कुन्ती और माद्री उत्पन्न हुई थीं जो पाण्डवों की माताएँ थी। मति के अंश से सुबल की पुत्री गान्धारी उत्पन्न हुई थी ॥१६०॥ राजन्, देवता, असुर, गन्धर्व, अप्सरा, तथा राक्षसों के अंशावतार का वृत्तान्त मैंने आपको

ये पृथिव्यां समुद्भूता राजानो युद्धदुर्मदाः । महात्मानो यदूनां च ये जाता विपुले कुले ॥१६२॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मया ते परिकीर्तिताः। धन्यं यशस्यं पुत्रीयमायुष्यं विजयावहम् ।
इदमंशावतरणं श्रोतव्यमनसूयता ॥१६३॥
अंशावतरणं श्रुत्वा देवगंधर्वरक्षसाम् । प्रभवाप्ययवित्प्राज्ञो न कृच्छ्रेष्ववसीदति ॥१६४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वण्यंशावतरणसमाप्तौ सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

जनमेजय उवाच ।
त्वत्तः श्रुतमिदं ब्रह्मन्देवदानवरक्षसाम् । अंशावतरणं सम्यग्गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥१॥
इमं तु भूय इच्छामि कुरूणां वंशमादितः । कथ्यमानं त्वया विप्र विप्रर्षिगणसन्निधौ ॥२॥
वैशम्पायन उवाच ।
पौरवाणां वंशकरो दुष्यंतो नाम वीर्यवान् । पृथिव्याश्चतुरन्ताया गोप्ता भरतसत्तम ॥३॥
चतुर्भागं भुवः कृत्स्नं यो भुंक्ते मनुजेश्वरः । समुद्रावरणांश्चापि देशान्स समितिंजयः ॥४॥
आम्लेच्छावधिकान्सर्वान्स भुङ्क्ते रिपुमर्दनः । रत्नाकरसमुद्रांतांश्चातुर्वर्ण्यजनवृतान् ॥५॥
न वर्णसंकरकरो न कृष्याकरकृज्जनः । न पापकृत्कश्चिदासीत्तस्मिन् राजनि शासति ॥६॥

सुनाया ॥१६१॥ युद्ध के उत्साही जो वीर पृथिवी में उत्पन्न हुए थे, जो महात्मा यदु के विशाल कुल में उत्पन्न हुए थे और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि जो उत्पन्न हुए थे उनका वर्णन मैंने किया। यह अंशावतरण धन, यश, आयु और विजय देने वाला है। श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करना चाहिए ॥१६२॥,॥१६३॥ देव, गन्धर्व और राक्षसों का अंशावतार सुनकर मनुष्य, उत्पत्ति और प्रलय का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, और कष्ट के समय भी वह घबराता नहीं ॥१६४॥

सप्तषष्टितम अध्याय ।

—o—

शकुन्तलोपाख्यान ।

जनमेजय बोले, ब्रह्मन् मैंने आपसे देव, दानव, गन्धर्व राक्षस, अप्सरा आदि का अंशावतरण अच्छी तरह से सुना ॥१॥ आदि से कुरुवंश को मैं पुनः सुनना चाहता हूँ। आप यहाँ ब्राह्मणों और ऋषियों के पास ही कहें ॥२॥

वैशम्पायन बोले, कौरववंश के बढ़ाने वाले प्रतापी राजा दुष्यन्त थे। वे समस्त पृथिवी के रक्षक थे ॥३॥ पृथिवी के चारों भागों पर उनका अधिकार था, युद्धविजयी राजा दुष्यन्त समुद्र पर्यन्त देशों का शासन करते थे ॥४॥ म्लेच्छ देश तक के देशों पर उनका आधिपत्य था, रत्नाकर समुद्र तक के देशों पर जहाँ चातुर्वर्ण्य का निवास था, राजा दुष्यन्त शासन करते थे ॥५॥ उनके राज्य के समय में कोई वर्णसंकर न था, कोई खेती करने वाला न था, क्योंकि

धर्मे रतिं सेवमाना धर्मार्थावभिपेदिरे । तदा नरा नरव्याघ्र तस्मिन् जनपदेश्वरे ॥७॥
नासीच्चौरभयं तात न क्षुधाभयमण्वपि । नासीद्व्याधिभयं चापि तस्मिन् जनपदेश्वरे ॥८॥
स्वधर्मे रेमिरे वर्णा दैवे कर्मणि निःस्पृहाः । तमाश्रित्य महीपालमासंश्चैवाकुतोभयाः ॥९॥
कालवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि रसवंति च । सर्वरत्नसमृद्धा च मही पशुमती तथा ॥१०॥
स्वकर्मनिरता विप्रा नानृतं तेषु विद्यते । स चाद्भुतमहावीर्यो वज्रसंहननो युवा ॥११॥
उद्यम्य मंदरं दोर्भ्यां वहेत्सवनकाननाम् । चतुष्पथगदायुद्धे सर्वप्रहरणेषु च ॥१२॥
नागपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च बभूव परिनिष्ठितः । बले विष्णुसमश्चासीत्तेजसा भास्करोपमः ॥१३॥
अक्षोभ्यत्वेऽर्णवसमः सहिष्णुत्वे धरासमः । संमतः स महीपालः प्रसन्नपुरराष्ट्रवान् ॥१४॥
भूयोधर्मपरैर्भावैर्मुदितं जनमादिशत् ॥१५॥

इति श्रीमहाभरते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुंतलोपाख्याने अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८॥

जनमेजय उवाच
सम्भवं भरतस्याहं चरितं च महामतेः । शकुन्तलायाश्चोत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥१॥

बिना जोते बोये ही अन्न उत्पन्न होता था । और न कोई पाप करने ही वाला था ॥६॥ राजन्, उस राजा के राज्यकाल में सभी मनुष्य धर्म में अनुराग रखते थे, जिससे उन्हें धर्म और अर्थ प्राप्त होता था ॥७॥ उस समय चोरों का भय न था, भूखका भय थोड़ा भी न था और न रोगों का ही भय था ॥८॥ सभी अपने अपने धर्म में अनुराग रखते थे । देवताओं के लिए यज्ञ याग आदि भी न होते थे, क्योंकि कोई जरूरत ही नहीं थी । उस राजा के आश्रय से उस समय की प्रजा निर्भय होकर विचरती थी ॥९॥ मेघ समय पर वृष्टि करते थे, अन्न मधुर होते थे, पृथिवी सब रत्नों से पूर्ण थी और पशुओं से भरी थी ॥१०॥ ब्राह्मण अपने कर्म में लगे रहते थे, वे न तो झूठ बोलते थे न असत्य व्यवहार करते थे । वे राजा बड़े पराक्रमी, वज्र के समान दृढ़ांग और युवा थे ॥११॥ वे वनों के साथ मन्दर पर्वत को अपनी भुजाओं से उठा सकते थे, वे गदा युद्धमें तथा अन्य प्रकार के अस्त्रों के चलाने में निपुण थे ॥१२॥ घोड़े और हाथी की सवारी में भी वे दक्ष थे । बलमें विष्णु के समान और तेज में सूर्य के समान थे ॥१३॥ समुद्र के समान गम्भीर और पृथिवी के समान सहनशील थे । वे सभी के प्रिय थे । उनका नगर और राज्य सुखी था ॥१४॥ धर्म के अनुसार वे सुखी प्रजा का पालन करते थे ॥१५॥

अष्ट षष्टितम अध्याय ।

—o—

दुष्यन्त का शिकार के लिए वन जाना ।

जनमेजय बोले, महामति भरत का जन्म वृत्तान्त और उनका चरित तथा शकुन्तला की उत्पत्ति मैं सुनना चाहता हूँ ॥१॥ दुष्यन्त को शकुन्तला कैसे मिली यह मैं जानना चाहता हूँ ।

दुष्यन्तेन च वीरेण यथा प्राप्ता [illegible] । तं वै पुरुषसिंहस्य भगवन्विस्तरं त्वहम् ॥२॥
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वज्ञ सर्वं मतिमतां वर ।
वैशम्पायन उवाच
स कदाचिन्महाबाहुः [illegible]वाहनः । ॥३॥
वनं जगाम गहनं [illegible]र्वृतः । बलेन चतुरंगेण वृतः परमवल्गुना ॥४॥
[illegible] । प्रासतोमरहस्तैश्च ययौ योधशतैर्वृतः ॥५॥
सिंहनादैश्च योधानां शंखदुंदुभिनिःस्वनैः । रथनेमिस्वनैश्चैव सनागवरबृंहितैः ॥६॥
नानायुधधरैश्चापि [illegible]रैस्तथा । हे[illegible]षितस्वनमिश्रैश्च क्ष्वेडितास्फोटितस्वनैः ॥७॥
[illegible]स्तस्मिन् गच्छति पार्थिवे । प्रासादवरशृंगस्थाः परया नृपशोभया ॥८॥
ददृशुस्तं स्त्रियस्तत्र शूरमात्मयशस्करम् । शक्रोपममित्रघ्नं परवारणवारणम् ॥९॥
पश्यंतः स्त्रीगणास्तत्र वज्रपाणिं स्म मेनिरे । अयं स पुरुषव्याघ्रो रणे वसुपराक्रमः ॥१०॥
यस्य बाहुबलं प्राप्य न भवंत्यसुहृद्गणाः। इतिवाचो ब्रुवंत्यस्ताः स्त्रियः प्रेम्णा नराधिपम् ॥११॥
तुष्टुवुः पुष्पवृष्टिश्च ससृजुस्तस्य मूर्धनि । तत्रतत्र च विप्रेन्द्रैः स्तूयमानः समंततः ॥१२॥
निर्ययौ परमप्रीत्या वनं मृगजिघांसया । तं देवराजप्रतिमं मत्तवारणधूर्गतम् ॥१३॥
द्विजक्षत्रियविट्शूद्रानियन्तिमनुजग्मिरे । ददृशुर्वर्धमानास्ते आशीर्भिश्च जयेन च ॥१४॥

उस पुरुषसिंह दुष्यन्त का वृत्तान्त मैं विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ। हे तत्वज्ञ आप कहें। वैशम्पायन बोले। किसी समय वे महाबाहु बड़ी सेना और बाहनों के साथ गहन वन में गये, सैकड़ों हाथी और घोड़े उनके साथ थे। सुन्दरी चतुरङ्गिणी सेना भी उनके साथ थी ॥२,३,४॥ तलवार, शक्ति, गदा, मुसल, प्रास, तोमर धारण करनेवाले सैकड़ों वीरों के साथ वे राजा वनमें गये ॥५॥ योधाओं के सिंहनाद, शंख दुन्दुभि आदि के शब्द, रथों के पहियों के घड़-घड़ाहट हाथियों का गर्जन, घोड़ों की हिनहिनाहट, कूदने का शब्द, ये सबके सब मिलने से उस राजा के जाने के समय बड़ा कोलाहल हो गया था। अटारियों पर से स्त्रियोंने राजा को देखा, उनकी शोभा उन लोगों ने देखी। शत्रु के हाथियों को रोकने वाले, शत्रुओं को मारने वाले, इन्द्र के समान उन राजा को स्त्रियों ने देखा ॥८,९॥ राजा को देखकर स्त्रियों ने उन्हें इन्द्र समझा। उन लोगों ने कहा—यही वह पुरुष सिंह हैं जो युद्ध में वसुके समान पराक्रमी है ॥१०॥ इनके बाहुबल से शत्रु नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार बातें करती हुई स्त्रियों ने प्रेम से राजा की स्तुति की और उनके मस्तक पर पुष्पवृष्टि की। जहां तहां ब्राह्मणों ने राजा की स्तुति की ॥११,१२॥ इस प्रकार शिकार के लिए वन जाने वाले राजा अपने नगर से प्रस्थित हुए। इन्द्रतुल्य राजा हाथी पर बैठे थे ॥१३॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंने बन जाते हुए राजा का अनुगमन किया। उन लोगों ने राजा को आशीर्वाद दिये; बढ़तियां मनाई ॥१४॥

सुदूरमनुजग्मुस्तं पौरजानपदास्तथा । न्यवर्तन्त ततः पश्चादनुज्ञाता नृपेण ह ॥१५॥
सुपर्णप्रतिमेनाथ रथेन वसुधाधिपः । महीमापूरयामास घोषेण त्रिदिवं तथा ॥१६॥
सगच्छन्ददृशे धीमान्नंदनप्रतिमं वनम् । बिल्वार्कखदिराकीर्णं कपित्थधवसंकुलम् ॥१७॥
विषमं पर्वतस्रस्तै रश्मभिश्च समावृतम् । निर्जलं निर्मनुष्यं च बहुयोजनमायतम् ॥१८॥
मृगसिंहैर्वृतं घोरैरन्यैश्चापि वनेचरैः । तद्वनं मनुजव्याघ्रः सभृत्यबलवाहनः ॥१९॥
लोडयामास दुष्यन्तः सूदयन्विविधान्मृगान् । बाणगोचरसंप्राप्तांस्तत्र व्याघ्रगणान्बहून् ॥२०॥
पातयामास दुष्यंतो निर्बिभेद च सायकैः । दूरस्थान्सायकैः कांश्चिदभिनत्स नराधिपः ॥२१॥
अभ्याशमागतांश्चान्या न्खड्गेन निरकृन्तत । कांश्चिदेणान्समाजघ्ने शक्त्या शक्तिमतां वरः २२
गदामण्डलतत्त्वज्ञश्चचारामितविक्रमः । तोमरैरसिभिश्चापि गदामुसलकंपनैः ॥२३॥
चचार स विनिघ्नन्वै वन्यांस्तत्र मृगद्विजान् । राज्ञा चाद्भुतवीर्येण योधैश्च समरप्रियैः ॥२४॥
लोड्यमानं महारण्यं तत्यजुः स्म मृगाधिपाः । तत्र विद्रुतयूथानि हतयूथपतीनि च ॥२५॥
मृगयूथान्यथौत्सुक्याच्छब्दं चक्रुस्ततस्ततः । शुष्काश्चापि नदीर्गत्वा जलनैराश्यकर्शिताः ॥२६॥
व्यायामक्लांतहृदयाः पतंति स्म विचेतसः । क्षुत्पिपासापरीताश्च श्रांताश्च पतिता भुवि ॥२७॥
केचित्तत्र नरव्याघ्रैरभक्ष्यंत बुभुक्षितैः । केचिदग्निमथोत्पाद्य संसाध्य च वनेचराः ॥२८॥

पुरवासी तथा राज्यवासी बहुत दूर तक राजा के साथ गये । पुनः राजा की आज्ञा से वे लौट आये ॥१५॥ राजा दुष्यन्त की यात्रा के समय सुवर्ण के समान रथों से पृथिवी भर गयी और उनके शब्दों से आकाश भर गया ॥१६॥ जाते हुए राजाने नन्दन वन के समान बन देखा, जिसमें बेल, आंक, खैर के पेड़ भरे थे । कैथा, और धव के पेड़ फैले थे ॥१७॥ वह वन दुर्गम था, पर्वत से लुढ़के पत्थर वहां फैले थे, वह वन जलहीन और मनुष्यहीन था, कई योजन लम्बा था ॥१८॥ उस बन में मृगा सिंह तथा अन्य भयंकर वनजन्तु थे । राजा दुष्यन्त ने भृत्य, सेना तथा वाहनों के साथ उस वन में प्रवेश किया । अनेक पशुओं को मारते हुए राजा ने उस वन को रौंद डाला । राजा दुष्यन्त ने बाण के सामने आये हुए अनेक बाघों को गिरा दिया और उन्हें बाणों से भेदा । जो बाघ आये राजाने उन्हें बाणों से मारा ॥१९,२०,२१॥ जो बाघ पास आगये उन्हें राजाने तलवार से मारा । पराक्रमी राजाने अनेक मृगों को शक्ति (सांग) से मारा ॥२२॥ गदा का मण्डल बाँधने में चतुर पराक्रमी राजा तोमर तलवार गदा मुशल आदि घुमाते हुए उस वन में विचरण करने लगे ॥२३॥ वनैले पशुपक्षियों को मारते हुए राजा उस वन में विचरण करने लगे । अद्भुत पराक्रमी राजा तथा युद्ध प्रिय वीरों के परिभ्रमण करने से सिंहों ने उस वन को छोड़ दिया । यूथपति के मारे जाने से उनका यूथ बिखर गया, यूथवाले भगकर इधर उधर चले गये ॥२४, २५॥ राजा के वनमें भ्रमण करने के समय व्याकुल होकर मृगाओं के यूथ चिल्लाने लगे । जल के लिए सूखी नदियों में गये वहाँ निराशा होकर बड़े दुखी हुए ॥२६॥ अधिक परिश्रम पड़ने से वे थक गये और बेहोश होकर गिर पड़े । बहुत से भूखे प्यासे और थके होने के कारण गिर पड़े ॥२७॥ कई

भक्षयंतिस्म मांसानि प्रकुव्य विधिवत्तदा । तत्रकेचिद्गजा मत्ता बलिनः शस्त्रविक्षताः ॥२९॥
संकोच्याग्रकरान्भीताः प्राद्रवंतिस्म वेगिताः । शकृन्मूत्रं सृजन्तश्च क्षरन्तः शोणितं बहु ॥३०॥
वन्या गजवरास्तत्र ममृदुर्मनुजान्बहून् । तद्वनं बलमेघेन शरधारेण संवृतम् ॥
व्यरोचत मृगाकीर्णं राज्ञा हतमृगाधिपम् ॥३१॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुंतलोपाख्याने एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

वैशंपायन उवाच ।
ततोमृगसहस्राणि हत्वा सबलवाहनः । राजा मृगप्रसंगेन वनमन्यद्विवेशह ॥१॥
एक एवोत्तमबलः क्षुत्पिपासाश्रमान्वितः । स वनस्यान्तमासाद्य महच्छून्यं समासदत् ॥२॥
तच्चाप्यतीत्य नृपतिरुत्तमाश्रमसंयुतम् । मनःप्रह्लादजननं दृष्टिकांतमतीव च ॥३॥
शीतमारुतसंयुक्तं जगामान्यन्महद्वनम् । पुष्पितैः पादपैः कीर्णमतीवसुखशाद्वलम् ॥४॥
विपुलं मधुरारावैर्नादितं विहगैस्तथा । पुंस्कोकिलनिनादैश्च झिल्लीकगणनादितम् ॥५॥
प्रवृद्धविटपैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् । षट्पदाघूर्णितं तलं लक्ष्म्या परमया युतम् ॥६॥

योद्धा भूखके कारण उन्हीं पशुपक्षियों को खाने लगे। कइयों ने आग बनाकर बनचरों का मांस कूटकर तथा पकाकर खाया। वहां कई मतवाले बलवान हाथी थे, वे शस्त्रों से घायल होगये वे अपनी सूंड़ समेट कर भयभीत होकर पाखाना पेशाब करते और खून बहाते वेग से भगे ॥२८,३०॥ वहां जो बड़े बड़े हाथी थे उन्होंने कई मनुष्यों को मसल डाला। वह वन सेना रूपी मेघोंसे तथा बाणों की वृष्टि से भर गया। राजाने वहां सिंहों को मारा, वह बन बड़ा शोभित हो रहा था ॥३१॥

एकोनसप्तति अध्याय।

राजा का कण्व मुनि के आश्रम में जाना।

वैशम्पायन बोले, अनन्तर हजारों पशुओं को मारकर सेना और वाहनों के साथ राजा एक मृग का पीछा करते करते दूसरे बनमें गये। राजा के पास अच्छी सेना थी पर उस समय वे अकेला हो गये थे और वे भूख प्यास से थके हुए थे। राजा उस बनको पार करके एक मैदान में पहुँचे। वह मैदान बिलकुल सूना था, न पेड़ थे और न गाँव ॥३॥ उस मैदान को पार करके राजा दूसरे एक सुन्दर बन में पहुंचे। उसमें सुन्दर सुन्दर आश्रम थे। उसमें मन प्रसन्न होता था, वहां का दृश्य बड़ा रमणीय था ॥३॥ वहां की हवा ठंढी थी। उसमें फूले हुए वृक्ष भरे हुए थे, वहाँ हरी हरी घास थी ॥४॥ पक्षियों के मधुर शब्द गूंज रही थी, कोयल बोल रही थी, झिल्लियों का झंकार हो रहा था ॥५॥ वहाँ अनेक बड़े बड़े वृक्ष थे, जिनकी सुन्दर छाया थी, उन



शकुन्तला-जन्म

नापुष्पः पादपः कश्चिन्नाफलो नापि कंटकी । षट्पदैर्नाप्यनाकीर्णस्तस्मिन्वै काननेऽभवत् ॥७॥
विहगैर्नादितं पुष्पैरलंकृतमतीव च । सर्वर्तुकुसुमैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् ॥८॥
मनोरमं महेष्वासो विवेश वनमुत्तमम् । मारुताकलितास्तत्र द्रुमाः कुसुमशाखिनः ॥९॥
पुष्पवृष्टिं विचित्रां तु व्यसृजंस्ते पुनः पुनः । दिवस्पृशोऽथ संघुष्टाः पक्षिभिर्मधुरस्वनैः ॥१०॥
विरेजुः पादपास्तत्र विचित्रकुसुमांबराः । तेषां तत्र प्रवालेषु पुष्पभारावनामिषु ॥११॥
रुवन्ति रावान्मधुरान्षट्पदा मधुलिप्सवः । तत्र प्रदेशांश्च बहून्कुसुमोत्करमंडितान् ॥१२॥
लतागृहपरिक्षिप्तान्मनसः प्रीतिवर्धनान् । संपश्यन्सुमहातेजा बभूव मुदितस्तदा ॥१३॥
परस्पराश्लिष्टशाखैः पादपैः कुसुमान्वितैः । अशोभत वनं तत्तु महेन्द्रध्वजसन्निभैः ॥१४॥
सिद्धचारणसङ्घैश्च गंधर्वाप्सरसां गणैः । सेवितं वनमत्यर्थं मत्तावानरकिन्नरः ॥१५॥
सुखः शीतः सुगंधी च पुष्परेणुवहोऽनिलः । परिक्रामन्वने वृक्षानुपैतीव रिरंसया ॥१६॥
एवं गुणसमायुक्तं ददर्श स वनं नृपः । नदीकच्छोद्भवं कांतमुच्छ्रितध्वजसन्निभम् ॥१७॥
प्रेक्षमाणो वनं तत्तु सुप्रहृष्टविहंगमम् । आश्रमप्रवरं रम्यं ददर्श च मनोरमम् ॥१८॥
नानावृक्षसमाकीर्णं संप्रज्वलितपावकम् । तं तदाऽप्रतिमं श्रीमानाश्रमं प्रत्यपूजयत् ॥१९॥

वृक्षों पर भौंरे मँडरा रहे थे। वहाँ की बड़ी रमणीय शोभा थी।६॥ वहां कोई वृक्ष ऐसा न था जिसमें फूल न हों, कोई ऐसा न था जिसमें फल न हो और कोई वृक्ष कटीला न था। वहाँ ऐसा एक भी वृक्ष नहीं था जहाँ भौंरे न मँडराते हों ॥७॥ उस वनमें पक्षी बोल रहे थे, पुष्पों से वह वन शोभित हो रहा था। सब ऋतुओं में फूलनेवाले वृक्ष उस वन में थे और उनकी सघन छाया थी। ॥८॥ ऐसे मनोहर और श्रेष्ठ वन में राजा गये। वहाँ वे फूलवाले वृक्ष हवा लगने से काँप रहे थे ॥९॥ अतएव बारबार उन वृक्षों से पुष्प वृष्टि हो रही थी। वे आकाश को छूनेवाले ऊंचे ऊंचे पेड़ मानों पक्षियों के मधुर स्वर से बोल रहे हों ॥१०॥ वहाँ के वृक्ष पुष्पों के वस्त्र धारण किए हुए बड़े सुन्दर मालूम होते थे। उन वृक्षों के छोटे छोटे पत्तों पर, जो पुष्पभार से झुक गये थे, मधु लोभी भौंरे मधुर गुंजार कर रहे थे। वहाँ राजा ने बहुत से ऐसे स्थान देखे जो पुष्प समूह से शोभित हो रहे थे। वहाँ लताओं के घर से बन गये थे जिन्हें देखकर प्रसन्नता होती थी, इन स्थानों को देखकर तेजस्वी राजा प्रसन्न हुए ॥११,१३॥ फूलवाले वृक्षों की शाखाएं आपस में मिल गयी थी, अतएव इन्द्र ध्वज के समान इन वृक्षों से उस वनकी शोभा हो रही थी ॥१४॥ सिद्ध चारणों का समूह गन्धर्व अप्सराओं का दल वहाँ घूमता रहता था, वहाँ अनेक बानर और किन्नर थे ॥१५॥ पुष्पपराग लेकर बहने वाली हवा सुखकारी शीतल और सुगन्धित थी। वह घूमती हुई मानों वृक्षों के पास आती हो ॥१६॥ राजा ने ऐसा सुन्दर बन देखा । वह वन नदीके तीर पर था, सुन्दर था, और खड़े हुए झंडे के समान था ॥१७॥ राजा उस बन को देख रहे थे जिसमें पक्षी बड़े प्रसन्न रहते थे। वहाँ उन्होंने एक रमणीय और सुन्दर श्रेष्ठ आश्रम देखा ॥१८॥ उस आश्रम में अनेक वृक्ष थे, आग जल रही थी। राजाने उस सुन्दर आश्रम को देखकर

यतिभिर्वालखिल्यैश्च वृतं मुनिगणान्वितम् । अग्न्यगारैश्च बहुभिः पुष्पसंस्तरसंस्तृतम् ॥२०॥
महाकच्छैर्बृहद्भिश्च विभ्राजितमतीव च । मालिनीमभितो राजन्नदीं पुण्यां सुखोदकाम् ॥२१॥
नैकपक्षिगणाकीर्णां तपोवन मनोरमाम् । तत्र व्यालमृगान्सौम्यान्पश्यन्प्रीतिमवाप सः ॥२२॥
तं चाप्रतिरथः श्रीमानाश्रमं प्रत्यपद्यत । देवलोकप्रतीकाशं सर्वतः सुमनोहरम् ॥२३॥
नदीं चाश्रमसंश्लिष्टां पुण्यतोयां ददर्श सः । सर्वप्राणभृतां तत्र जननीमिव धिष्ठिताम् ॥२४॥
सचक्रवाकपुलिनां पुष्पफेनप्रवाहिनीम् । सकिन्नरगणावासां वानरर्क्षनिषेविताम् ॥२५॥
पुण्यस्वाध्यायसंघुष्टां पुलिनैरुपशोभिताम् । मत्तवारण शार्दूल भुजगेंद्रनिषेविताम् ॥२६॥
तस्यास्तीरे भगवतः काश्यपस्य महात्मनः । आश्रमप्रवरं रम्यं महर्षिगणसेवितम् ॥२७॥
नदीमाश्रमसंबद्धां दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं तथा । चकाराभिप्रवेशाय मतिं स नृपतिस्तदा ॥२८॥
अलंकृतं द्वीपवत्या मालिन्यारम्यतीरया । नरनारायणस्थानं गंगयेवोपशोभितम् ॥२९॥
मत्तबर्हिणसंघुष्टं प्रविवेश महद्वनम् । तत्स चैत्ररथप्रख्यं समुपेत्य नरर्षभः ॥३०॥
अतीवगुणसंपन्नमनिर्देश्यं च वर्चसा । महर्षिं काश्यपं द्रष्टुमथ कण्वं तपोधनम् ॥३१॥
ध्वजनीमश्वसंबाधां पदातिगज संकुलाम् । अवस्थाप्य वनद्वारि सेनामिदमुवाच सः ॥३२॥

उसकी प्रसंशा की ॥१९॥ मुनियों का वह आश्रम यतियों और बालखिल्यों से शोभित था। वहाँ बहुत सी अग्निहोत्र शालाएं थीं और वहाँ फूल बिछे हुए थे ॥२०॥ मालिनी नदी के दोनों तीर, खिन्नी के मोटे और ऊंचे पेड़ों से सुशोभित थे। वह नदी बड़ी पवित्र थी और उसका जल सुखकारी था ॥२१॥ उस नदी के तीर पर अनेक प्रकार के पक्षी थे। पासही आश्रम था। जिससे वह तीर मनोहर हो गया था। वहां के हिंस्रक पशु भी सीधे थे यह देखकर राजा प्रसन्न हुए।२२। देवलोक के समान सुन्दर और मनोहर उस आश्रम में अप्रितम वीर वे राजा गये ॥२३॥ राजा ने आश्रम से लगी हुई स्वच्छ जल वाली नदी देखी। वह नदी सब प्राणियों की माता के समान वहां विराज रही थी ॥२४॥ नदी तीर पर चक्रवाक पक्षी हैं। उसकी धारा में फूल और फेन बह रहा है। किन्नर वानर और रिच्छ उसके तीर पर रहते थे ॥२४॥ उस नदी के तीर सुन्दर थे, वह स्थान पवित्र वेद पाठ से मुखरित हो रहा था। हाथी बाघ और बड़े बड़े सांप वहां रहते थे ॥२५। उस नदी के तीर पर कश्यप वंशी भगवान कण्व का बड़ा ही सुन्दर आश्रम था, वहां अनेक महर्षि रहते थे ॥२७॥ आश्रम से लगी हुई नदी तथा उस आश्रम को देखकर राजा ने उसमें जाने का विचार किया ॥२८॥ वह आश्रम सुन्दर तोरवाली मालिनी नदी से शोभित होता था। मलिनी नदी के बीच में जगह जगह मैदान निकल आया था, जिससे द्वीप वाली नदी हो गयी थी। मालूम होता था जैसे,नरनारायण मुनि का आश्रम गंगा से घिरा हो॥२९॥ उस बड़े वन में जिसमें मोर बार बार बोल रहे थे, राजा ने प्रवेश किया। चैत्ररथ के समान उस वन में जाकर राजा ने अनेक गुणों से युक्त अत्यन्त तेजस्वी और तपस्वी महर्षि कण्व का दर्शन करने के लिए अपनी सेना को बन के बहार ठहरा कर उससे बोले। राजा की सेना, हाथी, घोड़ों, पैदलों और ध्वज वाले रथों से भरी थी ॥३०,३१,३२॥

विषय-सूची

स्थापनाक्षेपसिद्धान्तपरमार्थज्ञतां गतैः । शब्दच्छन्दोनिरुक्तज्ञैः कालज्ञानविशारदैः ॥४४॥
द्रव्यकर्मगुणज्ञैश्च कार्यकारणवेदिभिः । पक्षिवानररुतज्ञैश्च व्यासग्रन्थसमाश्रितैः ॥४५॥
नानाशास्त्रेषु मुख्यैश्च शुश्राव स्वनमीरितम् । लोकायतिकमुख्यैश्च समन्तादनुनादितम् ॥४६॥
तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान्नियतान्संशितव्रतान् । जपहोमपरान्विप्रान्ददर्श परवीरहा ॥४७॥
आसनानि विचित्राणि रुचिराणि महीपतिः । प्रयत्नोपहितानि स्म दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥४८॥
देवतायतनानां च प्रेक्ष्य पूजां कृतां द्विजैः । ब्रह्मलोकस्थमात्मानं मेने स नृपसत्तमः ॥४९॥
स काश्यपतपोगुप्तमाश्रमप्रवरं शुभम् । नातृप्यत्प्रेक्षमाणो वै तपोवनगुणैर्युतम् ॥५०॥
स काश्यपस्यायतनं महाव्रतैर्वृतं समन्तादृषिभिस्तपोधनैः ।
विवेश सामात्यपुरोहितोऽरिहा विविक्तमत्यर्थमनोहरं शुभम् ॥५१॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

वैशम्पायन उवाच
ततो गच्छन्महाबाहुरेकोऽमात्यान्विसृज्य तान् । नापश्यच्चाश्रमे तस्मिंस्तमृषिं संशितव्रतम् ॥१॥

और सिद्धान्त के द्वारा यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेवालों, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, और ज्योतिष के पण्डितों, द्रव्य (व्रीहि आदि हवन की सामग्री) कर्म (हवन) गुण (फल) कार्य (स्वर्ग आदि) कारण (यज्ञ आदि) के जानने वालों, पक्षी वानर आदि की बोलियों के समान दुर्बोध्य मन्त्रों के अर्थ जानने वालों, प्रामाणिक रीति से मन्त्रों की व्याख्या करने वालों तथा भिन्न भिन्न विषयों के प्रधान प्रधान ज्ञाताओं के द्वारा कही बातें राजा ने सुनीं। लोकरंजन करनेवालों से वह आश्रम प्रतिध्वनित हो रहा था ॥४२ ४६॥ शत्रु हन्ता राजा ने जहाँ तहाँ नियम-व्रतधारी, जप-होम आदि करते हुए ब्राह्मणों को देखा ॥४७॥ विचित्र, सुन्दर तथा प्रयत्न से बनाये वहाँ के आसनों को देखकर राजा विस्मित हुए ॥४८॥ ब्राह्मणों के द्वारा की हुई देवता तथा देवायतनों की पूजा देखकर राजा ने अपने को ब्रह्मलोक में वर्तमान समझा ॥४९॥ काश्यप की तपस्या से सुरक्षित उस सुन्दर और श्रेष्ठ आश्रम को देखकर राजा तृप्त नहीं हुए। उस आश्रम में तपोवन के समस्त गुण वर्तमान थे ॥५०॥ राजा ने काश्यप के आश्रम में प्रवेश किया। वह स्थान महा व्रतधारी तपोधन ऋषियों से भरा हुआ था। अत्यन्त सुन्दर तथा पवित्र उस आश्रम में राजा ने अपने पुरोहित तथा दीवान के साथ प्रवेश किया ॥५१॥

सप्ततितम अध्याय ।

कण्व के आश्रम में दुष्यन्त और शकुन्तला की बातचीत; शकुन्तला का निज जन्म वृत्तान्त कथन ।

वैशम्पायन बोले—अनन्तर आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् राजा ने अपने साथी, दीवान और पुरोहित को भी एक स्थान पर ठहरा दिया और वे मुनि के स्थान में गये; पर वहाँ उन्होंने

सोऽपश्यमानस्तमृषिं शून्यं दृष्ट्वा तथाऽऽश्रमम् । उवाच क इहेत्युच्चैर्वनं सन्नादयन्निव ॥ २ ॥
श्रुत्वाऽथ तस्य तं शब्दं कन्या श्रीरिव रूपिणी । निश्चक्रामाश्रमात्तस्मात्तापसीवेषधारिणी ॥ ३ ॥
सा तं दृष्ट्वैव राजानं दुष्यन्तमसितेक्षणा । स्वागतं त इति क्षिप्रमुवाच प्रतिपूज्य च ॥ ४ ॥
आसनेनार्चयित्वा च पाद्येनार्घ्येण चैव हि । पप्रच्छानामयं राजन्कुशलं च नराधिपम् ॥ ५ ॥
यथावदर्चयित्वाऽथ पृष्ट्वा चानामयं तदा । उवाच स्मयमानेव किं कार्यं क्रियतामिति ॥ ६ ॥
तामब्रवीत्ततो राजा कन्यां मधुरभाषिणीम् । दृष्ट्वा चैवानवद्यांगीं यथावत्प्रतिपूजितः ॥ ७ ॥
आगतोऽहं महाभागमृषिं कण्वमुपासितुम् । क्व गतो भगवान्भद्रे तन्ममाचक्ष्व शोभने ॥ ८ ॥

शकुन्तलोवाच

गतः पिता मे भगवान्फलान्याहर्तुमाश्रमात् । मुहूर्तं संप्रतीक्षस्व द्रष्टास्येनमुपागतम् ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

अपश्यमानस्तमृषिं तथा चोक्तस्तया च सः । तां दृष्ट्वा च वरारोहां श्रीमतीं चारुहासिनीम् ॥१०॥
विभ्राजमानां वपुषा तपसा च दमेन च । रूपयौवनसम्पन्नामित्युवाच महीपतिः ॥११॥
का त्वं कस्यासि सुश्रोणि किमर्थं चागता वनम् । एवंरूपगुणोपेता कुतस्त्वमसि शोभने ॥१२॥

प्रसिद्ध व्रतधारी मुनि को नहीं देखा ॥१॥ राजा ने मुनि को वहाँ नहीं देखा, आश्रम सूना था, तब राजा ने "यहाँ कौन है" इस प्रकार पुकारा, राजा का शब्द उस वन में गूँज गया ॥२॥ राजा के शब्द सुनकर शरीरधारी लक्ष्मी के समान एक कन्या उस आश्रम से निकली, जो तापसी के वेश में थी ॥३॥ राजा दुष्यन्त को देखकर उस असितेक्षणा कन्या ने "आपका स्वागत हो" ऐसा कहकर उनका सत्कार किया ॥४॥ आसन पाद्य और अर्घ्य देकर उस कन्या ने राजा का सत्कार किया और उनका तथा उनके राज्य का कुशल सम्वाद पूछा ॥५॥ यथोचित राजा का सत्कार करके, उनसे कुशल संवाद पूछकर, उस कन्या ने राजा से मुस्कुराकर पूछा—"क्या आज्ञा है ? कौन सी सेवा करूँ ?" ॥६॥

उस सुन्दरी कन्या को देखने से ही राजा अपने को सत्कृत समझ चुके थे। वे उस मधुर भाषिणी कन्या से बोले ॥७॥ भद्रे, मैं महर्षि कण्व की सेवा करने, उनका दर्शन करने आया हूँ। भगवान् कण्व कहाँ गये हैं ? शोभने, आप उत्तर दें ॥८॥

शकुन्तला बोली—मेरे पिता भगवान् काश्यप आश्रम से फल लाने गये हैं। आप थोड़ी देर प्रतीक्षा करें। शीघ्र ही वे आवेंगे और आप उनको देख सकेंगे ॥९॥

वैशम्पायन बोले—राजा ने ऋषि को नहीं देखा और उस कन्या से ऐसा उत्तर सुना। उन्होंने उस सुन्दरी कन्या को भी देखा, जिसके अंग सुडौल थे, हँसी सुन्दर थी; तपस्या, संयम और सौन्दर्य के कारण उसका शरीर दमक रहा था। उस सुन्दरी युवती से राजा इस प्रकार बोले ॥१०, ११॥ सुश्रोणि, तुम कौन हो, किसकी हो और किस कारण से वन में आयी हो ? शोभने, तुम ऐसी रूपवती और गुणवती होकर इस वन में क्यों पड़ी हो ? ॥१२॥ शुभे, दर्शन होते

दर्शनादेव हि शुभे त्वया मेऽपहृतं मनः । इच्छामि त्वामहं ज्ञातुं तन्ममाचक्ष्व शोभने ॥१३॥
एवमुक्ता तु सा कन्या तेन राज्ञा तमाश्रमे । उवाच हसती वाक्यमिदं सुमधुराक्षरम् ॥१४॥
कण्वस्याहं भगवतो दुष्यन्त दुहिता मता । तपस्विनो धृतिमतो धर्मज्ञस्य महात्मनः ॥१५॥

दुष्यन्त उवाच

ऊर्ध्वरेता महाभागे भगवाँल्लोकपूजितः । चलेद्धि वृत्ताद्धर्मोऽपि न चलेत्संशितव्रतः ॥१६॥
कथं त्वं तस्य दुहिता संभूता वरवर्णिनी । संशयो मे महानत्र तन्मे छेत्तुमिहार्हसि ॥१७॥

शकुन्तलोवाच

यथाऽयमागमो मह्यं यथा चेदमभूत्पुरा । शृणु राजन्यथातत्त्वं यथाऽस्मि दुहिता मुनेः ॥१८॥
ऋषिः कश्चिदिहागम्य मम जन्माभ्यचोदयत् । तस्मै प्रोवाच भगवान्यथा तच्छृणु पार्थिव ॥१९॥

कण्व उवाच

तप्यमानः किल पुरा विश्वामित्रो महत्तपः । सुभृशं तापयामास शक्रं सुरगणेश्वरम् ॥२०॥
तपसा दीप्तवीर्योऽयं स्थानान्मां च्यावयेदिति । भीतः पुरन्दरस्तस्मान्मेनकामिदमब्रवीत् ॥२१॥
गुणैरप्सरसां दिव्यैमनके त्वं विशिष्यसे । श्रेयो मे कुरु कल्याणि यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ॥२२॥
असावादित्यसंकाशो विश्वामित्रो महातपाः । तप्यमानस्तपो घोरं मम कम्पयते मनः ॥२३॥

ही तुमने मेरा मन हरण कर लिया है अर्थात् देखते ही मैं तुम पर अनुरक्त हो गया हूँ। अतएव मैं तुम्हारा परिचय जानना चाहता हूँ। वह तुम मुझ से कहो ॥१३॥

उस आश्रम में राजाके द्वारा ऐसा कहने पर वह कन्या राजा से मधुराक्षर यह वाक्य बोली ॥१४॥ दुष्यन्त, धर्मज्ञ तपस्वी धीर महात्मा कण्व की मैं कन्या कही जाती हूँ ॥१५॥ दुष्यन्त बोले—महाभागे, लोक प्रसिद्ध भगवान् कण्व ऊर्ध्वरेता हैं, आजन्म ब्रह्मचारी हैं। स्वयं धर्म विचलित हो सकता है, वह पथ भ्रष्ट हो सकता है, पर व्रतनिष्ठ इन मुनि का विचलित होना असम्भव है ॥१६॥ अतः हे सुन्दरी, तुम उन मुनि की कन्या कैसे हुई, इस मेरे महान् सन्देह को तुम दूर करो ॥१७॥

शकुन्तला बोली—पहले जिस तरह यह घटना हुई थी और जिस तरह मैंने यह सुनी है तथा जिस कारण मैं मुनि कण्व की कन्या कही जाती हूँ, वह सब यथावत् आप मुझसे सुनें ॥१८॥ एक कोई ऋषि यहाँ आये थे और उन्होंने महर्षि कण्व से मेरे जन्म के विषय में पूछा था। महर्षि ने उनसे जो कुछ कहा था, वह सब आप मुझसे सुनें ॥१९॥

कण्व बोले—पहले विश्वामित्र उग्र तपस्या कर रहे थे, ऐसा सुना जाता है। उनकी तपस्या से देवराज इन्द्र बहुत दुःखी हुए ॥२०॥ तपस्या के द्वारा बलवान् होकर ये विश्वामित्र मुझे इन्द्र पद से हटा देंगे, इस शंका से भयभीत होकर इन्द्र मेनका नाम की अप्सरा से इस प्रकार बोले ॥२१॥ मेनके, तुम अपने दिव्य गुणों के कारण सब अप्सराओं में श्रेष्ठ हो : कल्याणि, तुम मेरा कल्याण करो, जो तुम से मैं कहता हूँ वह सुनो ॥२२॥ सूर्य के समान तेजस्वी

मेनके तव भारोऽयं विश्वामित्रः सुमध्यमे । शंसितात्मा सुदुर्धर्ष उग्रे तपसि वर्तते ॥२४॥
स मां न च्यावयेत्स्थानात्तं वै गत्वा प्रलोभय । चर तस्य तपोविघ्नं कुरु मेऽविघ्नमुत्तमम् २५॥
रूपयौवनमाधुर्यचेष्टितस्मितभाषणैः । लोभयित्वा वरारोहे तपसस्तं निवर्तय ॥२६॥

मेनकोवाच

महातेजाः स भगवाँस्तथैव च महातपाः । कोपनश्च तथाह्येनं जानाति भगवानपि ॥२७॥
तेजसस्तपसश्चैव कोपस्य च महात्मनः । त्वमप्युद्विजसे यस्य नोद्विजेयमहं कथम् ॥२८॥
महाभागं वसिष्ठं यः पुत्रैरिष्टैर्व्ययोजयत् । क्षत्रजातश्च यः पूर्वमभवद्ब्राह्मणो बलात् ॥२९॥
शौचार्थं यो नदीं चक्रे दुर्गमां बहुभिर्जलैः । यां तां पुण्यतमां लोके कौशिकीति विदुर्जनाः ॥३०॥
बभार यत्रास्य पुरा काले दुर्गे महात्मनः । दारान्मतङ्गो धर्मात्मा राजर्षिर्व्याधतां गतः ॥३१॥
अतीतकाले दुर्भिक्षे अभ्येत्य पुनराश्रमम् । मुनिः पारेति नद्या वै नाम चक्रे तदा प्रभुः ॥३२॥
मतङ्गं याजयाञ्चक्रे यत्र प्रीतमनाः स्वयम् । त्वं च सोमं भयाद्यस्य गतः पातुं सुरेश्वर ॥३३॥
चकारान्यं च लोकं वै क्रुद्धो नक्षत्रसम्पदा । प्रतिश्रवणपूर्वाणि नक्षत्राणि चकार यः ।
गुरुशापहतस्यापि त्रिशंकोः शरणं ददौ ॥३४॥

महातपस्वी विश्वामित्र उग्र तप कर रहे हैं, जिससे मेरा मन काँप रहा है, मैं भयभीत हो रहा हूँ ॥२३॥ सुमध्यमे मेनके, विश्वामित्र का भार तुम पर है; इनसे मुझे जो भय उत्पन्न हुआ है, उसको तुम दूर करो: इनका मन बड़ा ही दृढ़ है, ये बड़े कठोर प्रकृति के हैं और उग्र तपस्या कर रहे हैं ॥२४॥ वे मुझे इन्द्र पद से हटा न सकें, इसके लिए तुम उनके पास जाओ और उन्हें लुभाओ, उनकी तपस्या में विघ्न डालो और मेरा विघ्न हटाओ ॥२५॥ वरारोहे, रूप, यौवन, मधुरिमा, कटाक्ष, मुस्कान, आलाप आदि के द्वारा उनको लुभाकर तपस्या से उनको हटाओ ॥२६॥

मेनका बोली—भगवान् विश्वामित्र बड़े तेजस्वी और तपस्वी हैं । वे कितने क्रोधी हैं,यह आप भी जानते हैं ॥२७॥ उस महात्मा के तेज, तपस्या और क्रोध से आप भी व्याकुल होगये हैं । फिर मेरा व्याकुल हो जाना कौन बड़ी बात है? ॥२८॥ उन्होंने महाभाग वशिष्ठ का उनके प्रिय पुत्रों से वियोग कराया । महर्षि विश्वामित्र क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे और अपने बल से वे ब्राह्मण हो गये हैं ॥२९॥ उन्होंने अपने स्नान के लिए एक नदी बनायी है, जिसमें बहुत जल है, जिसका पार करना लोगों के लिए कठिन है,—वह पवित्र नदी कौशिकी के नाम से प्रसिद्ध है ॥३०॥ इस महात्मा के दुःख के समय में, इसकी स्त्रियों को चाण्डाल बने हुए, धर्मात्मा राजा ने पालन किया था ॥३१॥ जब दुर्भिक्ष का समय बीत गया और मुनि पुनः अपने आश्रम में आये, तो उन्होंने उस नदी का नाम-करण किया अर्थात् उसका कौशिकी नाम रखा ॥३२॥ उन्होंने अकाल के समय अपने परिवार के पालन करनेवाले मतङ्ग नामक राजा को प्रसन्नता पूर्वक स्वयं यज्ञ कराया था । देवराज ! जिसके भय से आप भी उस यज्ञ में सोमपान करने गये थे । (वह यज्ञ वैदिक-विधान के अनुकूल नहीं था, इसीलिए वशिष्ठ-आदि कई ऋषियों ने उसमें योग नहीं दिया था; पर, मन्त्र प्रभाव से विवश होकर इन्द्र-आदि देवताओं को उस यज्ञ में सम्मिलित होना पड़ा) ॥३३॥ क्रोध

एतानि यस्य कर्माणि तस्याहं भृशमुद्विजे । यथाऽसौ न दहेत्क्रुद्धस्तथाऽऽज्ञापय मां विभो ॥३५॥
तेजसा निर्दहेल्लोकान्कम्पयेद्धरणीं पदा । संक्षिपेच्च महामेरुं तूर्णमावर्तयेद्दिशः ॥३६॥
तादृशं तपसा युक्तं प्रदीप्तमिव पावकम् । कथमस्मद्विधा नारी जितेन्द्रियमभिस्पृशेत् ॥३७॥
हुताशनमुखं दीप्तं सूर्यचन्द्राक्षितारकम् । कालजिह्वं सुरश्रेष्ठ कथमस्मद्विधा स्पृशेत् ॥३८॥
यमश्च सोमश्च महर्षयश्च साध्या विश्वे वालखिल्याश्च सर्वे ।
एतेऽपि यस्योद्विजन्ते प्रभावात्तस्मात्कस्मान्मादृशी नोद्विजेत ॥३९॥
त्वयैवमुक्ता च कथं समीपमृषेर्न गच्छेयमहं सुरेन्द्र ।
रक्षां तु मे चिन्तय देवराज यथा त्वदर्थं रक्षिताऽहं चरेयम् ॥४०॥
कामं तु मे मारुतस्तत्र वासः प्रक्रीडिताया विवृणोतु देव ।
भवेच्च मे मन्मथस्तत्र कार्ये सहायभूतस्तु तव प्रसादात् ॥४१॥
वनाच्च वायुः सुरभिः प्रवायात्तस्मिन्काले तमृषिं लोभयन्त्याः ।
तथेत्युक्त्वा विहिते चैव तस्मिंस्ततो ययौ साऽऽश्रमं कौशिकस्य ॥४२॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

करके उन्होंने दूसरा लोक बनाया । उसमें श्रवण-आदि नवीन नक्षत्रों की सृष्टि की; क्योंकि नक्षत्रों ही पर उनका क्रोध था । गुरु वशिष्ठ के शापसे तिरस्कृत त्रिशङ्कु को शरण दी ॥३४॥ जिसके ऐसे काम हैं, उससे मैं बहुत भयभीत होती हूँ । प्रभो ! आप वैसी आज्ञा दें, वैसा काम करने को कहें, जिससे क्रोध करके वे मुनि मुझे जला न डालें ॥३५॥ वे अपने तेज से लोकों को जला सकते हैं, पैरों से पृथ्वी को कँपा सकते हैं, मेरु को चूर कर सकते हैं और दिशाओं को उलट-पलट सकते हैं ॥३६॥ इस प्रकार के तपस्वी—जो जलती आग के समान हैं—उनको मेरे समान एक स्त्री कैसे छू सकती है ? उस जितेन्द्रिय के पास कैसे जा सकती है ? ॥३७॥ जिसका मुँह अग्नि के समान प्रदीप्त हो, जिसकी आँखें चन्द्रमा और सूर्य के समान हों, जिसकी जिह्वा काल की जिह्वा के समान हो, उसका स्पर्श, मेरे समान स्त्री कैसे कर सकती है ? ॥३८॥ यमराज, सोम, महर्षि, साध्यगण, विश्वेदेव, तथा समस्त वालखिल्य जिसके उग्र प्रभाव से भयभीत हो जाते हैं, उससे मेरे समान स्त्री भयभीत क्यों न होगी ? ॥३९॥ देवराज, आपके इस प्रकार कहने पर मैं उस ऋषि के पास क्यों न जाऊँगी ? मुझे तो जाना पड़ेही गा । पर आप मेरी रक्षा का भी उपाय सोच रक्खें । मैं सुरक्षित होकर आपके कार्य में प्रवृत्त होना चाहती हूँ ॥४०॥ देव ! आप की आज्ञा से जब मैं मुनि के पास जाऊँ और वहाँ, इधर-उधर मैं खेल में लगी रहूँ, उस समय वायु मेरा वस्त्र हटा दे । मेरे इस काम में कामदेव भी सहायक हो ॥४१॥ जिस समय मैं उन ऋषि को प्रसन्न करने में लगी रहूँ, उस समय वन में सुरभित हवा चले । इन्द्र ने उसकी बातें स्वीकार कीं और वैसी व्यवस्था उन्होंने कर दी । वह भी कौशिक मुनि के आश्रम की ओर चली ॥४२॥

एकसप्ततितम अध्याय ।

कण्व उवाच

एवमुक्तस्तया शक्रः संदिदेश सदागतिम् । प्रातिष्ठत तदा काले मेनका वायुना सह ॥१॥
अथापश्यद्वरारोहा तपसा दग्धकिल्बिषम् । विश्वामित्रं तप्यमानं मेनका भीरुराश्रमे ॥२॥
अभिवाद्य ततः सा तं प्राक्रीडदृषिसन्निधौ । अपोवाह च वासोऽस्याः मारुतः शशिसन्निभम् ॥३॥
सागच्छत्त्वरिता भूमिं वासस्तदभिलिप्सती । कुत्सयन्तीव सव्रीडं मारुतं वरवर्णिनी ॥४॥
पश्यतस्तस्य राजर्षेरप्यग्निसमतेजसः । विश्वामित्रस्ततस्तां तु विषमस्थामनिन्दिताम् ॥५॥
गृद्धां वाससि सम्भ्रान्तां मेनकां मुनिसत्तमः । अनिर्देश्यवयोरूपामपश्यद्विवृतां तदा ॥६॥
तस्या रूपगुणान्दृष्ट्वा स तु विप्रर्षभस्तदा । चकार भावं संसर्गे तया कामवशं गतः ॥७॥
न्यमन्त्रयत चाप्येनां सा चाप्यैच्छदनिन्दिता । तौ तत्र सुचिरं कालमुभौ व्यहरतां तदा ॥८॥
रममाणौ यथाकामं यथैकदिवसं तथा । जनयामास स मुनिर्मेनकायां शकुन्तलाम् ॥९॥
प्रस्थे हिमवतो रम्ये मालिनीमभितो नदीम् । जातमुत्सृज्य तं गर्भं मेनका मालिनीमनु ॥१०॥
कृतकार्या ततस्तूर्णमगच्छच्छक्रसंसदम् । तं वने विजने गर्भं सिंहव्याघ्रसमाकुले ॥११॥

विश्वामित्र और मेनका से शकुन्तला का जन्म ।

कण्व बोले—मेनका के ऐसा कहने पर इन्द्र ने वायु को आज्ञा दी । उसी समय मेनका वायु के साथ चली ॥१॥ सुन्दरी मेनका ने विश्वामित्र को तपस्या करते देखा, जिन्होंने तपस्या के द्वारा अपने पापों को नष्ट कर दिया है । आश्रम में जाकर मेनका डर गई ॥२॥ उसने मुनि को प्रणाम किया और उनके पास ही क्रीड़ा करने लगी । उस समय चन्द्रमा के समान उज्वल उसके वस्त्र को वायु ने हटा दिया ॥३॥ अपने गिरे वस्त्र को सँभालने के लिए शीघ्रही वह पृथ्वी पर बैठ गयी । उस सुन्दरी ने लज्जा के साथ वायु पर क्रोध प्रकट किया ॥४॥ अग्नि-तुल्य तेजस्वी महर्षि विश्वामित्र उसको देख रहे थे । वह अनिन्द्य सुन्दरी कठिनाई में पड़ी हुई थी, वस्त्र के हट जाने और नीचे की ओर लिपट जाने से घबड़ाई हुई थी; उस समय, अवर्णनीय अवस्था में पड़ी हुई उस सुन्दरी स्त्री को विश्वामित्र ने नग्न देखा ॥५,६॥ ब्राह्मण श्रेष्ठ विश्वामित्र उस मेनका के रूप और गुण देखकर, उसकी ओर आकृष्ट हुए और कामवश होकर उन्हों ने उसके साथ सम्बन्ध करना चाहा मुनि ने उसको अपने पास आने के लिए निमन्त्रित किया । उस अनिन्द्य सुन्दरी ने भी मुनि के निमन्त्रण को स्वीकार किया । इस प्रकार उन दोनों ने बहुत दिनों तक वहाँ विहार किया ॥८॥ उन दोनों ने इच्छा पूर्वक बहुत दिनों तक विहार किया; पर, वे उसे एक दिन के समान ही समझते रहे, अर्थात् तृप्त न हुए । उस मुनि ने मेनका के गर्भ से शकुन्तला नाम की कन्या उत्पन्न की ॥९॥ हिमवान् पर्वत के पास रमणीय स्थान में, जहाँ दो ओर से मालिनी नदी बहती है, मेनका ने उत्पन्न गर्भ को मालिनी के तीर पर रख दिया ॥१०॥ इन्द्र ने जिस काम के लिए उसे भेजा था, वह काम कर के पुनः वह इन्द्र के पास चली गयी । उस जनहीन सिंह-बाघों से भरे बन में सोते हुए गर्भ को देखकर पक्षियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया, जिससे मांस-लोभी राक्षस उस

दृष्ट्वा शयानं शकुनाः समन्तात्पर्यवारयन् । नेमां हिंस्युर्वने बालां क्रव्यादा मांसगृद्धिनः ॥१२॥
पर्यरक्षन्त तां तत्र शकुन्ता मेनकात्मजाम् । उपस्प्रष्टुं गतश्चाहमपश्यं शयितामिमाम् ॥१३॥
निर्जने विपिने रम्ये शकुन्तैः परिवारिताम् । आनयित्वा ततश्चैनां दुहितृत्वे न्यवेशयम् ॥१४॥
शरीरकृत्प्राणदाता यस्य चान्नानि भुञ्जते । क्रमेणैते त्रयोऽप्युक्ताः पितरो धर्मशासने ॥१५॥
निर्जने तु वने यस्माच्छकुन्तैः परिवारिता । शकुन्तलेति नामास्याः कृतं चापि ततो मया ॥१६॥
एवं दुहितरं विद्धि मम विप्र शकुन्तलाम् । शकुन्तला च पितरं मन्यते मामनिन्दिता ॥१७॥

शकुन्तलोवाच

एतदाचष्ट पृष्टः सन्मम जन्म महर्षये । सुतां कण्वस्य मामेवं विद्धि त्वं मनुजाधिप ॥१८॥
कण्वं हि पितरं मन्ये पितरं स्वमजानती । इति ते कथितं राजन्यथावृत्तं श्रुतं मया ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

दुष्यन्त उवाच

सुव्यक्तं राजपुत्री त्वं यथा कल्याणि भाषसे । भार्या मे भव सुश्रोणि ब्रूहि किं करवाणि ते ॥१॥

बालिका को मारने न पावें ॥११, १२॥ इस प्रकार मेनका की पुत्री की रक्षा शकुन्तों—पक्षियों—ने की । मैं मालिनी-तीर पर आह्निक करने गया था । वहाँ इस कन्या को मैंने पड़ी देखा ॥१३॥ निर्जन पर रमणीय वन में, पक्षिया के द्वारा रक्षित, इस कन्या को ले आकर मैंने पुत्री बनाकर अपने यहाँ रक्खा ॥१४॥ उत्पन्न करने वाला, प्राण देने वाला अर्थात् प्राण-भय से रक्षा करने वाला तथा जिसका अन्न खाया जाता हो, क्रम से ये तीनों धर्मशास्त्र में पिता बतलाये गये हैं ॥१५॥ निर्जन बन में शकुन्तों ने घेरकर इसकी रक्षा की है, इसलिए मैंने इसका नाम शकुन्तला रख दिया है ॥१६॥ ब्राह्मण ! इस प्रकार शकुन्तला को तुम मेरी पुत्री समझो । सुन्दरी शकुन्तला भी मुझे पिता समझती है ॥१७॥

शकुन्तला बोली—उस महर्षि से, महर्षि कण्व ने मेरे जन्म के सम्बन्ध में ये बातें कही हैं । राजन् ! इस प्रकार आप मुझे महर्षि कण्व की पुत्री समझें ॥१८॥ मैं कण्व को ही पिता समझती हूँ, क्योंकि मुझे अपने पिता के बारे में कुछ भी मालूम नहीं । राजन् ! मैंने आप से वे सब बातें कहीं, जो मैंने सुनी थीं ॥१९॥ द्विसप्ततितम अध्याय ।

दुष्यन्त का शकुन्तला के साथ गान्धर्व विवाह; कण्व का आश्रम में लौटना; कण्व और शकुन्तला का संवाद; कण्व का शकुन्तला को वर देना ।

दुष्यन्त बोले—कल्याणि ! यह तो स्पष्ट है कि तुम राजपुत्री हो, और तुम भी वैसा ही कह रही हो । सुश्रोणि ! तुम मेरी स्त्री बनना स्वीकार करो । मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ ? ॥१॥ सोने की माला,

सुवर्णमालां वासांसि कुण्डले परिहाटके । नानापत्तनजे शुभ्रे मणिरत्ने च शोभने ॥२॥
आहरामि तवाद्याहं निष्कादीन्यजिनानि च । सर्वं राज्यं तवाद्यास्तु भार्या मे भव शोभने ॥३॥
गान्धर्वेण च मां भीरु विवाहेनैहि सुन्दरि । विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥४॥
शकुन्तलोवाच
फलाहारो गतो राजन्पिता मे इत आश्रमात् । मुहूर्तं सम्प्रतीक्षस्व स मां तुभ्यं प्रदास्यति ॥५॥
दुष्यन्त उवाच
इच्छामि त्वां वरारोहे भजमानामनिन्दिते । त्वदर्थं मां स्थितं विद्धि त्वद्गतं हि मनो मम ॥६॥
आत्मनो बन्धुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः । आत्मनैवात्मनो दानं कर्तुमर्हसि धर्मतः ॥७॥
अष्टावेव समासेन विवाहा धर्मतः स्मृताः । ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ॥८॥
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमः स्मृतः । तेषां धर्म्यान्यथापूर्वं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥९॥
प्रशस्तांश्चतुरः पूर्वान्ब्राह्मणस्योपधारय । षडानुपूर्व्या क्षत्रस्य विद्धि धर्म्याननिन्दिते ॥१०॥
राज्ञां तु राक्षसोऽप्युक्तो विट्शूद्रेष्वासुरःस्मृतः । पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या अधर्म्यौ द्वौ स्मृताविह ॥११॥
पैशाच आसुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन । अनेन विधिना कार्यो धर्मस्यैषा गतिः स्मृता ॥१२॥

अनेक वस्त्र, सुवर्ण के कुण्डल, अनेक नगरों के सुन्दर मणि, रत्न, तुम्हारे लिए आज मैं लाता हूँ। निष्क (इस नाम के सिक्के की माला), अनेक प्रकार के चर्म भी तुम्हारे लिए लाता हूँ। आज से मेरे समस्त राज्य की तुम स्वामिनी हो। शोभने ! तुम मेरी स्त्री बनना स्वीकार करो ॥२,३॥ भीरु ! (पिता और समाज का सङ्कोच रखने वाली !) गान्धर्व विवाह के द्वारा तुम मेरे पास आओ। रम्भोरु ! क्योंकि गान्धर्व-विवाह सब विवाहों में श्रेष्ठ है ॥४॥

शकुन्तला बोली—राजन् ! मेरे पिता फल लाने के लिए इस आश्रम से बाहर गये हुए हैं। थोड़ी देर आप प्रतीक्षा कीजिए। वे ही मेरा प्रदान आप को करेंगे ॥५॥

दुष्यन्त बोले—अनिन्द्य सुन्दरी ! मैं तुम्हें चाहता हूँ, क्योंकि तुम्हारा भी मुझ पर अनुराग है। मैं यहाँ तुम्हारे लिये ठहरा हूँ। मेरा मन तुम में रम गया है ॥६॥ मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु है। वह अपने कल्याण की बात स्वयं कर सकता है, अतएव तुम भी धर्मपूर्वक अपना दान स्वयं कर सकती हो ॥७॥ संक्षेप से आठ ही विवाह धर्मानुकूल कहे गये हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और आठवाँ पैशाच। ये आठ क्रम से धर्मानुकूल हैं, ऐसा स्वायम्भु मुनि ने कहा है ॥८, ९॥ मनु कहते हैं कि इनमें पहले के चार ब्राह्मण के लिए धर्मानुकूल हैं और क्षत्रिय के लिए पहले से छः तक धर्मानुकूल हैं। सुन्दरि ! तुम ऐसा समझो ॥१०॥ राजाओं के लिए तो राक्षस विवाह की भी आज्ञा है। वैश्य और शूद्रों के लिए आसुर विवाह कहा गया है। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य तथा आसुर, इन पाँचों में से तीन प्रकार के विवाह धर्मानुकूल और दो प्रकार के विवाह धर्म-विरुद्ध कहे गये हैं ॥११॥ पैशाच और आसुर विवाह कभी न करना चाहिए। विवाह करने

सुवर्णमालां वासांसि कुण्डले परिहाटके । नानापत्तनजे शुभ्रे मणिरत्ने च शोभने ॥२॥
आहरामि तवाद्याहं निष्कादीन्यजिनानि च। सर्वं राज्यं तवाद्यास्तु भार्या मे भव शोभने ॥३॥
गान्धर्वेण च मां भीरु विवाहेनैहि सुन्दरि । विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥४॥
शकुन्तलोवाच
फलाहारो गतो राजन्पिता मे इत आश्रमात् । मुहूर्तं सम्प्रतीक्षस्व स मां तुभ्यं प्रदास्यति ॥५॥
दुष्यन्त उवाच
इच्छामि त्वां वरारोहे भजमानामनिन्दिते । त्वदर्थं मां स्थितं विद्धि त्वद्गतं हि मनो मम ॥६॥
आत्मनो बन्धुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः । आत्मनैवात्मनो दानं कर्तुमर्हसि धर्मतः ॥७॥
अष्टावेव समासेन विवाहा धर्मतः स्मृताः । ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ॥८॥
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमः स्मृतः । तेषां धर्म्यान्यथापूर्वं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥९॥
प्रशस्तांश्चतुरः पूर्वान्ब्राह्मणस्योपधारय । षडानुपूर्व्या क्षत्रस्य विद्धि धर्म्याननिन्दिते ॥१०॥
राज्ञां तु राक्षसोऽप्युक्तो विट्शूद्रेष्वासुरः स्मृतः । पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या अधर्म्यौ द्वौ स्मृताविह ॥११॥
पैशाच आसुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन । अनेन विधिना कार्यो धर्मस्यैषा गतिः स्मृता ॥१२॥

अनेक वस्त्र, सुवर्ण के कुण्डल, अनेक नगरों के सुन्दर मणि, रत्न, तुम्हारे लिए आज मैं लाता हूँ। निष्क (इस नाम के सिक्के की माला), अनेक प्रकार के चर्म भी तुम्हारे लिए लाता हूँ। आज से मेरे समस्त राज्य की तुम स्वामिनी हो। शोभने ! तुम मेरी स्त्री बनना स्वीकार करो ॥२,३॥ भीरु ! (पिता और समाज का सङ्कोच रखने वाली !) गान्धर्व विवाह के द्वारा तुम मेरे पास आओ। रम्भोरु ! क्योंकि गान्धर्व-विवाह सब विवाहों में श्रेष्ठ है ॥४॥

शकुन्तला बोली—राजन् ! मेरे पिता फल लाने के लिए इस आश्रम से बाहर गये हुए हैं। थोड़ी देर आप प्रतीक्षा कीजिए। वे ही मेरा प्रदान आप को करेंगे ॥५॥

दुष्यन्त बोले—अनिन्द्य सुन्दरी ! मैं तुम्हें चाहता हूँ, क्योंकि तुम्हारा भी मुझ पर अनुराग है। मैं यहाँ तुम्हारे लिये ठहरा हूँ। मेरा मन तुम में रम गया है ॥६॥ मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु है। वह अपने कल्याण की बात स्वयं कर सकता है, अतएव तुम भी धर्मपूर्वक अपना दान स्वयं कर सकती हो ॥७॥ संक्षेप से आठ ही विवाह धर्मानुकूल कहे गये हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और आठवाँ पैशाच। ये आठ क्रम से धर्मानुकूल हैं, ऐसा स्वायम्भु मुनि ने कहा है ॥८, ९॥ मनु कहते हैं कि इनमें पहले के चार ब्राह्मण के लिए धर्मानुकूल हैं और क्षत्रिय के लिए पहले से छः तक धर्मानुकूल हैं। सुन्दरि ! तुम ऐसा समझो ॥१०॥ राजाओं के लिए तो राक्षस विवाह की भी आज्ञा है। वैश्य और शूद्रों के लिए आसुर विवाह कहा गया है। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य तथा आसुर, इन पाँचों में से तीन प्रकार के विवाह धर्मानुकूल और दो प्रकार के विवाह धर्म-विरुद्ध कहे गये हैं ॥११॥ पैशाच और आसुर विवाह कभी न करना चाहिए। विवाह करने

गान्धर्वराक्षसौ क्षत्रे धर्म्यौ तौ मा विशंकिथाः। पृथग्वा यदि वा मिश्रौ कर्तव्यौ नात्र संशयः ॥१३॥
सा त्वं मम सकामस्य सकामा वरवर्णिनी। गान्धर्वेण विवाहेन भार्या भवितुमर्हसि ॥१४॥

शकुन्तलोवाच

यदि धर्मपथस्त्वेष यदि चात्मा प्रभुर्मम। प्रदाने पौरवश्रेष्ठ शृणु मे समयं प्रभो ॥१५॥
सत्यं मे प्रतिजानीहि यथा वक्ष्याम्यहं रहः। मयि जायेत यः पुत्रः स भवेत्त्वदनन्तरः ॥१६॥
युवराजो महाराज सत्यमेतद्ब्रवीमि ते। यद्येतदेवं दुष्यन्त अस्तु मे संगमस्त्वया ॥१७॥

वैशम्पायन उवाच

एवमस्त्विति तां राजा प्रत्युवाचाविचारयन्। अपि च त्वां हि नेष्यामि नगरं स्वं शुचिस्मिते ॥१८॥
यथा त्वमर्हा सुश्रोणि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते। एवमुक्त्वा स राजर्षिस्तामनिन्दितगामिनीम् ॥१९॥
जग्राह विधिवत्पाणावुवास च तया सह। विश्वास्य चैनां स प्रायाद्ब्रवीच्च पुनः पुनः ॥२०॥
प्रेषयिष्ये तवार्थाय वाहिनीं चतुरंगिणीम्। तया त्वाऽऽनाययिष्यामि निवासं स्वं शुचिस्मिते॥२१॥

वैशम्पायन उवाच

इति तस्याः प्रतिश्रुत्य स नृपो जनमेजय। मनसा चिन्तयन्प्रायात्काश्यपं प्रति पार्थिवः ॥२२॥

का यही विधान है। यही धर्म की आज्ञा है ॥१२॥ गान्धर्व-विवाह और राक्षस-विवाह की आज्ञा क्षत्रिय के लिए है, इसमें तुम सन्देह न करो। या तो ये शुद्ध रूप में पृथक् पृथक् किये जायँ, अथवा गान्धर्व और राक्षस दोनों को मिलाकर किया जाय, धर्मानुकूल ही है; इसमें सन्देह नहीं ॥१३॥ सुन्दरी! मैं तुम पर अनुरक्त हूँ, तुम भी मुझ पर अनुरक्त हो; अतएव, गान्धर्व-विधि के द्वारा तुम मेरी भार्या बनना स्वीकार करो ॥१४॥

शकुन्तला बोली—यदि तुम्हारा बतलाया मार्ग धर्मानुकूल है, अपना दान करने का मुझे अधिकार है, तो हे पौरव-राज! मेरी एक शर्त है। उसे आप सुनें ॥१५॥ आप मुझसे सत्य-सत्य प्रतिज्ञा करें; जो एकान्त में मैं कह रही हूँ, उसके पालन का आप विश्वास दिलावें। मुझसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, आपके बाद वही राजा होगा ॥१६॥ महाराज! यदि आप मेरे पुत्र को युवराज बनाना स्वीकार करें, जो मेरी सच्ची शर्त है, तो दुष्यन्त! आपका और मेरा साथ हो सकता है ॥१७॥

वैशम्पायन बोले—राजा ने बिना सोचे-विचारे शकुन्तला से हामी भर ली। उन्होंने कहा—मैं तुमको अपने नगर में ले चलूँगा ॥१८॥ तुम जिस योग्य हो, वह स्थान मैं तुम्हें दूँगा। सुश्रोणि! मैं तुमसे यह सत्य कह रहा हूँ। राजर्षि ने उस सुन्दर चालवाली से ऐसा कहकर, विधिपूर्वक उसका पाणिग्रहण किया और उसके साथ निवास किया। जाने के समय राजा ने उसे विश्वास दिलाकर बार-बार कहा ॥१९, २०॥ —"शुचिस्मिते! तुम्हारे लिए मैं चतुरङ्गिणी सेना भेजूँगा। उसके साथ मैं तुम्हें अपने नगर में बुलाऊँगा" ॥२१॥

वैशम्पायन बोले—जनमेजय! इस प्रकार शकुन्तला से प्रतिज्ञा करके राजा दुष्यन्त, मन-

भगवांस्तपसा युक्तः श्रुत्वा किं नु करिष्यति । एवं संचिन्तयन्नेव प्रविवेश स्वकं पुरम् ॥२३॥
मुहूर्तयाते तस्मिंस्तु कण्वोऽप्याश्रममागमत् । शकुन्तला च पितरं ह्रिया नोपजगाम तम् ॥२४॥
विज्ञायाथ च तां कण्वो दिव्यज्ञानो महातपाः । उवाच भगवान्प्रीतः पश्यन्दिव्येन चक्षुषा ॥२५॥
त्वयाऽद्य भद्रे रहसि मामनादृत्य यः कृतः । पुंसा सह समायोगो न स धर्मोपघातकः ॥२६॥
क्षत्रियस्य हि गान्धर्वो विवाहः श्रेष्ठ उच्यते । सकामायाः सकामेन निर्मन्त्रो रहसि स्मृतः ॥२७॥
धर्मात्मा च महात्मा च दुष्यन्तः पुरुषोत्तमः । अभ्यगच्छः पतिं यत्त्वं भजमानं शकुन्तले ॥२८॥
महात्मा जनिता लोके पुत्रस्तव महाबलः । य इमां सागरापांगीं कृत्स्नां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥२९॥
परं चाभिप्रयातस्य चक्रं तस्य महात्मनः । भविष्यत्यप्रतिहतं सततं चक्रवर्तिनः ॥३०॥
ततः प्रक्षाल्य पादौ सा विश्रान्तं मुनिमब्रवीत् । विनिधाय ततो भारं सन्निधाय फलानि च ॥३१॥
शकुन्तलोवाच
मया पतिर्वृतो राजा दुष्यन्तः पुरुषोत्तमः । तस्मै ससचिवाय त्वं प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥३२॥
कण्व उवाच
प्रसन्न एव तस्याहं त्वत्कृते वरवर्णिनि । गृहाण च वरं मत्तस्त्वं शुभे यदभीप्सितम् ॥३३॥

ही-मन, महर्षि कण्व के सम्बन्ध की चिन्ता करते हुए चले ॥२२॥ भगवान कण्व तपस्वी हैं। वे मेरे इस वृत्तान्त को सुनकर क्या करेंगे, ऐसा सोचते-सोचते वे अपनी राजधानी में पहुँचे ॥२३॥ राजा के जाने के एक मुहूर्त बाद ही महर्षि कण्व आश्रम में आये। पर, शकुन्तला लज्जा के कारण अपने पिता के पास न जा सकी ॥२४॥ कण्व ने शकुन्तला की बातें जान लीं, क्योंकि वे महातपस्वी, दिव्य-ज्ञानी थे। दिव्य-दृष्टि से सब देखकर तथा प्रसन्न होकर वे बोले ॥२५॥ —भद्रे! एकान्त में मुझसे बिना पूछे, तुमने पुरुष के साथ जो संयोग किया है, वह धर्म का विनाशक नहीं है ॥२६॥ गान्धर्व-विवाह क्षत्रिय के लिए श्रेष्ठ है। दोनों, स्त्री और पुरुष, परस्पर अनुरागयुक्त होकर, मन्त्र-हीन विवाह कर सकते हैं ॥२७॥ महात्मा दुष्यन्त धार्मिक और श्रेष्ठ पुरुष हैं, शकुन्तले! जिनको अनुरक्त जानकर तुमने अपना पति बनाया है ॥२८॥ तुम्हारा पुत्र श्रेष्ठ और बलवान् होगा, जो समुद्र से घिरी, इस समस्त पृथ्वी का भोग करेगा ॥२९॥ उस महात्मा, चक्रवर्ती की सेना जब शत्रु पर चढ़ाई करेगी, उसे कोई रोक नहीं सकेगा ॥३०॥

अनन्तर शकुन्तला ने मुनि के पैर धोये। उनके हाथ से बोझ ले लिया। उनके सामने फल रक्खा। इस प्रकार मुनि के विश्राम करने पर, शकुन्तला बोली ॥३१॥

शकुन्तला बोली—मैंने पुरुष-श्रेष्ठ राजा दुष्यन्त को अपना पति बनाया है। आप सचिवों के साथ राजा पर प्रसन्न हों ॥३२॥

कण्व बोले—सुन्दरि! तुम्हारे कारण से मैं उस राजा पर प्रसन्न ही हूँ। शुभे! जो तुम्हें अभीष्ट हो, वह वर तुम मुझसे ले लो ॥३३॥

वैशम्पायन उवाच

ततो धर्मिष्ठतां वव्रे राज्याच्चास्खलनं तथा। शकुन्तला पौरवाणां दुष्यन्तहितकाम्यया ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

वैशम्पायन उवाच

प्रतिज्ञाय तु दुष्यन्ते प्रतियाते शकुन्तलाम्। गर्भं सुषाव वामोरूः कुमारममितौजसम् ॥ १ ॥
त्रिषु वर्षेषु पूर्णेषु दीप्तानलसमद्युतिम्। रूपौदार्यगुणोपेतं दौष्यन्तिं जनमेजय ॥ २ ॥
जातकर्मादिसंस्कारं कण्वः पुण्यकृतांवरः। विधिवत्कारयामास वर्धमानस्य धीमतः ॥ ३ ॥
दन्तैः शुक्लैः शिखरिभिः सिंहसंहननो महान्। चक्रांकितकरः श्रीमान्महामूर्धा महाबलः ॥ ४ ॥
कुमारो देवगर्भाभः स तत्राशु व्यवर्धत। षड्वर्ष एव बालः स कण्वाश्रमपदं प्रति ॥ ५ ॥
सिंहव्याघ्रान्वराहाँश्च महिषाँश्च गजाँस्तथा। बबन्ध वृक्षे बलवानाश्रमस्य समीपतः ॥ ६ ॥
आरोहन्दमयँश्चैव क्रीडँश्च परिधावति। ततोऽस्य नामचक्रुस्ते कण्वाश्रमनिवासिनः ॥ ७ ॥
अस्त्वयं सर्वदमनः सर्वं हि दमयत्यसौ। स सर्वदमनो नाम कुमारः समपद्यत ॥८॥

वैशम्पायन बोले—दुष्यन्त के हित की कामना से, शकुन्तला ने पुरु-वंश के सदा धार्मिक बने रहने तथा राज्य-च्युत न होने का वर माँगा ॥३४॥

त्रिसप्ततितम अध्याय।

शकुन्तला के पुत्र का जन्म; शकुन्तला का पति-गृह जाना; दुष्यन्त और शकुन्तला का विवाद।

वैशम्पायन बोले—शकुन्तला से प्रतिज्ञा करके राजा दुष्यन्त के जाने पर शकुन्तला ने पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया ॥१॥ तीन वर्ष के बीतने पर अग्नि के समान तेजस्वी, रूपवान् और गुणवान्, दुष्यन्त के पुत्र का, पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ महर्षि कण्व ने जातकर्म आदि संस्कार कराये। इन संस्कारों को विधिपूर्वक उन्होंने सम्पन्न कराया। वह बालक होनहार और बुद्धिमान था ॥२,३॥ उसके दाँत सफ़ेद और तीखे थे। उसका शरीर सिंह के समान गठीला था। उसके हाथ में चक्र का चिन्ह था। उसका मस्तक बड़ा था और वह बलवान् था ॥४॥ वह बालक देवपुत्र के समान था और कण्व के आश्रम में रहकर बढ़ रहा था। छः बरस की उम्र में महर्षि कण्व के आश्रम के सिंह, बाघ, बराह, भैंसे तथा हाथियों को पकड़कर, आश्रम के पास ही वृक्षों में बाँध देता था ॥५, ६॥ वह उन पर चढ़ता था, उनको तङ्ग करता था, उनके साथ खेलता था और उन्हें दौड़ाता था। इससे कण्व के आश्रम में रहनेवाले ऋषियों ने उसका नाम सर्वदमन रक्खा, क्योंकि वह सब का दमन करता था; तब से वह कुमार सर्वदमन-नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ७, ८ ॥

विक्रमेणौजसा चैव बलेन च समन्वितः। तं कुमारमृषिर्दृष्ट्वा कर्म चास्यातिमानुषम् ॥९॥
समयो यौवराज्यायेत्यब्रवीच्च शकुन्तलाम्। तस्य तद्बलमाज्ञाय कण्वः शिष्यानुवाच ह ॥१०॥
शकुन्तलामिमां शीघ्रं सहपुत्रामितो गृहात्। भर्तुः प्रापयतागारं सर्वलक्षणपूजिताम् ॥११॥
नारीणां चिरवासोहि वान्धवेषु न रोचते। कीर्तिचारित्रधर्मघ्नस्तस्मान्नयत मा चिरम् ॥१२॥
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे प्रातिष्ठन्त महौजसः। शकुन्तलांपुरस्कृत्य सपुत्रां गजसाह्वयम् ॥१३॥
गृहित्वाऽमरगर्भाभं पुत्रं कमललोचनम्। आजगाम ततः सुभ्रूर्दुष्यन्तं विदिताद्वनात् ॥१४॥
अभिसृत्य च राजानं विदिता च प्रवेशिता। सह तेनैव पुत्रेण बालार्कसमतेजसा ॥१५॥
निवेदयित्वा ते सर्वे आश्रमं पुनरागताः। पूजयित्वा यथान्यायमब्रवीच्च शकुन्तला ॥१६॥
अयं पुत्रस्त्वया राजन्यौवराज्येऽभिषिच्यताम्।
त्वयाह्ययं सुतोराजन्मय्युत्पन्नः सुरोपमः। यथा समयमेतस्मिन्वर्त्तस्व पुरुषोत्तम ॥१७॥
यथामत्संगमे पूर्वं यः कृतः समयस्तथा। तं स्मरस्व महाभाग कण्वाश्रमपदंप्रति ॥१८॥
सोऽथ श्रुत्वैव तद्वाक्यं तस्या राजा स्मरन्नपि। अब्रवीन्नस्मरामीति कस्य त्वं दुष्ट तापसि ॥१९॥
धर्मकामार्थसम्बन्धं न स्मरामि त्वया सह। गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद्वापीच्छसि तत्कुरु ॥२०॥
सैवमुक्ता वरारोहा व्रीड़ितेव तपस्विनी। निःसंज्ञेव च दुःखेन तस्थौ स्थूणेव निश्चला ॥२१॥

पराक्रम, तेज, और बल से युक्त उस कुमार सर्वदमन को तथा उसके अतिमानुष कर्म को देखकर ऋषि ने शकुन्तला से कहा कि युवराज पद के लिए यही उचित समय है। पुनः उन्होंने अपने शिष्यों से कहा ॥९, १०॥ —शकुन्तला को पुत्र तथा जाने-योग्य सामग्रियों के साथ, शीघ्र ही यहाँ से इसके पति के घर ले जाओ ॥११॥ स्त्रियों का अपने पितृकुल में बहुत दिनों तक रहना अच्छा नहीं है। इससे कीर्त्ति, चरित्र और धर्म के नष्ट होने की शङ्का रहती है। इसे जल्दी ले जाओ। देर न करो ॥१२॥ मुनि के कहने के अनुसार पुत्र के साथ शकुन्तला को लेकर, शिष्य इन्द्रप्रस्थ के लिए चले ॥१३॥ देवकुमार-तुल्य, कमलनेत्र पुत्र को साथ लेकर, सुभ्रू शकुन्तला अपने परिचित बन को छोड़कर आयी ॥१४॥ वह राजा के पास गयी। राजा को खबर की गयी और शकुन्तला बालसूर्य के समान तेजस्वी पुत्र के साथ वहाँ पहुँचायी गयी ॥१५॥ ऋषि के शिष्य राजा के सामने शकुन्तला को उपस्थित करके लौट आये। विधि-पूर्वक राजा का सत्कार करके शकुन्तला उनसे बोली ॥१६॥—राजन्! आप इस लड़के का युवराज पद पर अभिषेक करें। यह देव-पुत्र तुल्य बालक आपके द्वारा मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ है। पुरुष-श्रेष्ठ! समय के अनुसार आप इससे बर्ताव करें ॥१७॥ महाभाग! कण्व ऋषि के आश्रम में मेरे साथ समागम होने के समय जो प्रतिज्ञा आपने की है, उसका स्मरण करें ॥१८॥ राजा ने उसका वाक्य सुनकर कहा—"दुष्ट तापसि! तू किसकी है? मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है।" यद्यपि राजा को सब स्मरण था ॥१९॥ तुम्हारे साथ मेरा वैवाहिक सम्बन्ध हुआ है, इसका मुझे स्मरण नहीं है। तुम चाहे जाओ या रहो; जैसी इच्छा हो, वैसा करो ॥२०॥ दुष्यन्त के ऐसा कहने पर बेचारी शकुन्तला लज्जित हो गयी। दुःख से वह संज्ञाहीन हो गयी, खुरथ के समान निश्चल खड़ी रही ॥२१॥ क्रोध और अमर्ष से

संरम्भामर्षताम्राक्षी स्फुरमाणौष्ठसम्पुटा । कटाक्षैर्निर्दहन्तीव तिर्यग्राजानमैक्षत ॥२२॥
आकारं गूहमाना च मन्युना च समीरिता । तपसा सम्भृतं तेजो धारयामास वै तदा ॥२३॥
सा मुहूर्त्तमिवध्यात्वा दुःखामर्षसमन्विता । भर्तारमभिसम्प्रेक्ष्य क्रुद्धा वचनमब्रवीत् ॥२४॥
जानन्नपि महाराज कस्मादेवं प्रभाषसे । न जानामीति निश्शङ्कं यथाऽन्यः प्राकृतो जनः ॥२५॥
अत्र ते हृदयं वेद सत्यस्यैवानृतस्य च । कल्याणं वद साक्ष्येणऽमात्मानमवमन्यथाः ॥२६॥
योऽन्यथासन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते । किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा ॥२७॥

एकोऽहमस्मीति च मन्यसे त्वं न हृच्छयं वेत्सि मुनिं पुराणम् ।
यो वेदिता कर्मणः पापकस्य तस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि ॥२८॥

मन्यते पापकं कृत्वा न कश्चिद्वेत्ति मामिति । विदन्ति चैनं देवाश्च यश्चैवान्तरपूरुषः ॥२९॥

आदित्यचन्द्रावनिला नलौ च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्ताम् ॥३०॥

यमो वैवस्वतस्तस्य निर्यातयति दुष्कृतम् । हृदि स्थितः कर्मसाक्षी क्षेत्रज्ञो यस्य तुष्यति ॥३१॥
न तु तुष्यति यस्यैष पुरुषस्य दुरात्मनः । तं यमः पापकर्माणं निर्यातयति दुष्कृतम् ॥३२॥

उसकी आँखें लाल हो गयीं, ओंठ फड़कने लगे । उसने राजा को टेढ़ी नज़र से देखा, मानो उन्हें जला रही हो ॥२२॥ उसे क्रोध तो बहुत आया, पर अपने को उसने सँभाल लिया । तपस्या का तेज, जो एकत्र था, उसे रोका अर्थात् राजा को कोई शाप नहीं दिया ॥२३॥ दुःखिनी शकुन्तला ने थोड़ी देर तक विचार किया, पुनः पति की ओर देखकर वह क्रोध से बोली ॥२४॥—महाराज ! जानकर भी, नहीं जानता हूँ, निःशङ्क होकर आप ऐसी बातें क्यों बोलते हैं? ऐसी बातें तो साधारण श्रेणि के आदमी बोला करते हैं ॥२५॥ आपसे जो मैं कहती हूँ, वह सच है या झूठ, इसका साक्षी आप का हृदय है । आप सच-सच कहिए, आत्मा को साक्षी बनाकर कहिये, उसका तिरस्कार न कीजिए ॥२६॥ जो एक तरह की बात को दूसरी तरह की करके प्रकाशित करता है; जो बात जैसी नहीं है, उसको वैसी बतलाता है; वह अपने को धोखा देने वाला चोर है । उस पापी ने कौन-सा पाप नहीं किया ? ॥२७॥ तुम समझते हो कि उस समय मैं अकेला था, मेरे काम को किसी ने देखा नहीं, कोई जानता नहीं, पर हृदय में रहनेवाले प्राचीन मुनि को तुम भूल गये हो । वह पाप-पुण्य सब प्रकार के कर्मों को जानता है । तुम उस आत्मा के सामने पाप कर रहे हो । उसके सामने अपराधी हो रहे हो ॥२८॥ मनुष्य पाप कर के समझता है कि मुझे कोई नहीं जानता, परन्तु देवता उसको जानते हैं और हृदयस्थ आत्मा जानता है ॥२९॥ सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यमराज दिन और रात, दोनों सन्ध्याएँ तथा धर्म, ये मनुष्य के वृत्तान्त को जानते हैं । उसके कोई कर्म इनसे छिप नहीं सकते ॥३०॥ वैवस्वत यम, उनके सब पापों को नष्ट अर्थात् क्षमा कर देते हैं, जिनपर कर्मों के साक्षी हृदयस्थ आत्मा प्रसन्न रहता है ॥३१॥ जिस पापी पर आत्मा प्रसन्न

योऽवमन्यात्मनात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते । न तस्य देवाः श्रेयांसो ह्यस्यात्मापि न कारणम् ॥३३॥
स्वयं प्राप्तेति मामेवं मावमंस्थाः पतिव्रताम् । अर्चार्हां नार्चयसि मां स्वयं भार्यामुपस्थिताम् ॥३४॥
किमर्थं मां प्राकृतवदुपप्रेक्षसि संसदि । नखल्वहमिदं शून्ये रौमि किं न शृणोषि मे ॥३५॥
यदि मे याचमानाया वचनं न करिष्यसि । दुष्यन्त शतधा मूर्धा ततस्तेऽद्यस्फुटिष्यति ॥३६॥
भार्यां पतिः सम्प्रविश्य स यस्माज्जायते पुनः । जायायास्तद्धि जायात्वं पौराणाः कवयो विदुः ॥३७॥
यदागमवतः पुंसस्तदपत्यं प्रजायते । तत्तारयति संतत्या पूर्वप्रेतान्पितामहान् ॥३८॥
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥३९॥

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥४०॥

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥४१॥
भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः । भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः ॥४२॥
सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियम्वदाः । पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः ॥४३॥

नहीं होता, उसको यमराज बहुत पीड़ा देता है, क्योंकि वह उसे पापी समझता है। तात्पर्य यह कि मनुष्य को आत्मा के सामने अपराधी या पापी बनना उचित नहीं है ॥३२॥ जो स्वयं अपने आत्मा का तिरस्कार करके असत्य बात प्रकाशित करता है, देवता उसका कल्याण नहीं करते, आत्मा भी उसकी सहायता नहीं करता ॥३३॥ मैं स्वयं आप के यहाँ उपस्थित हुई हूँ। आप मेरा अपमान न करें। मैं पतिव्रता हूँ। मैं सत्कार के योग्य हूँ। मैं स्वयं आपके यहाँ आयी हूँ, आपकी स्त्री हूँ, आप मेरा सत्कार नहीं करते ॥३४॥ छोटे आदमियों के समान, सभा में आप मेरा तिरस्कार कर रहे हैं। मैं क्या जङ्गल में रो रही हूँ?—जिसे आप सुनते नहीं? ॥३५॥ राजन्! मैं आपके सामने प्रार्थना कर रही हूँ। दुष्यन्त! यदि तुमने मेरी बात न मानी, तो तुम्हारा मस्तक टुकड़े टुकड़े हो जायगा ॥३६॥ पति, भार्या में प्रवेश करके उससे उत्पन्न होता है अर्थात् पति ही पुत्र रूप में उत्पन्न होता है। इसीसे स्त्री जाया कही जाती है, ऐसा प्राचीन विद्वानों का मत है ॥३७॥ विद्वान् पुरुष के जो पुत्र उत्पन्न होता है, उस उत्पन्न पुत्र के द्वारा वह अपने पूर्व-पुरुषों का उद्धार करता है ॥३८॥ पुंनामक नरक से पितरों का वह उद्धार करता है; अतएव स्वयं स्वयंभू ने उसे पुत्र नाम दिया है ॥३९॥ वही भार्या है, जो घर के कामों में कुशल हो, जो पुत्रवती हो जो पति में प्रेम रखने वाली हो तथा पतिव्रता हो ॥४०॥ स्त्री पुरुष का आधा अङ्ग है। वह उसका श्रेष्ठ साथी है। धर्म, अर्थ, और काम की सिद्धि स्त्री के द्वारा होती है। स्त्री के द्वारा मनुष्य अपना उद्धार कर सकता है ॥४१॥ जिनके स्त्री है, उन्हीं की क्रियाएँ सफल होती हैं। उन्हीं को गृहस्थाश्रम का सुख प्राप्त होता है। वे ही प्रसन्न रहते हैं और ऐश्वर्य सम्पन्न रहते हैं ॥४२॥ प्रिय बोलने वाली स्त्रियाँ, जिस समय कोई भी साथी नहीं रहता, मित्र का काम देती हैं। धर्म-कार्यों में पिता के समान उपदेश देती हैं और पीड़ा के समय माता के

कान्तारेष्वपि विश्रामो जनस्याध्वनिकस्य वै । यःसदारःसविश्वास्यस्तस्माद्दाराः परा गतिः॥४४॥
संसरन्तमपि प्रेतं विषमेष्वेकपातिनम् । भार्यैवान्वेति भर्तारं सततं या पतिव्रता ॥४५॥
प्रथमं संस्थिता भार्या पतिं प्रेत्य प्रतीक्षते । पूर्वंमृतं च भर्तारं पश्चात्साध्व्यनुगच्छति ॥४६॥
एतस्मात्कारणाद्राजन्पाणिग्रहणमिष्यते । यदाप्नोति पतिर्भार्यामिहलोके परत्र च ॥४७॥
आत्मात्मनैव जनितः पुत्र इत्युच्यते बुधैः । तस्माद्भार्यां नरः पश्येन्मातृवत्पुत्रमातरम् ॥४८॥
भार्यायां जनितं पुत्रमादर्शेष्विव चाननम् । ह्लादते जनिता प्रेक्ष्य स्वर्गं प्राप्येव पुण्यकृत् ॥४९॥
दह्यमाना मनोदुःखैर्व्याधिभिश्चातुरा नराः । ह्लादन्ते स्वेषु दारेषु घर्मार्ताः सलिलेष्विव ॥५०॥
सुसंरब्धोऽपि रामाणां न कुर्यादप्रियं नरः । रतिं प्रीतिं च धर्मं च तास्वायत्तमवेक्ष्य हि ॥५१॥
आत्मनो जन्मनः क्षेत्रं पुण्यं रामाः सनातनम् । ऋषीणामपि काशक्तिः स्रष्टुं रामामृतेप्रजाम्॥५२॥
प्रतिपद्य यदा सूनुर्धरणीरेणुगुंठितः । पितुराश्लिष्यतेऽङ्गानि किमस्त्यभ्यधिकं ततः ॥५३॥
स त्वं स्वयमभिप्राप्तं साभिलाषमिमं सुतम् । प्रेक्षमाणं कटाक्षेण किमर्थमवमन्यसे ॥५४॥
अण्डानि बिभ्रति स्वानि न भिन्दंति पिपीलिकाः । नभरेथाःकथंनुत्वंधर्मज्ञःसन्स्वमात्मजम् ॥५५॥

समान सेवा करती हैं ॥४३॥ बीहड़ बन में जाने वाले पति को स्त्री के द्वारा ही विश्राम मिलता है। जिसके स्त्री है, वही समाज में विश्वसनीय समझा जाता है; अतएव पुरुष के लिए स्त्री आवश्यक है। उसके बिना पुरुष की दूसरी गति नहीं है ॥४४॥ जब पति परलोकगामी होता है, निःसहाय होकर, अकेला नरक में जाता है, उस समय उस पति का साथ देनेवाली पतिव्रता स्त्री ही होती है ॥४५॥ यदि पति के पहले स्त्री की मृत्यु हुई, तो वह परलोक में पति की राह देखती रहती है। यदि पति की मृत्यु पहले हुई, तो उस समय स्त्री उसका साथ देती है, वह भी मर जाती है ॥४६॥ राजन्! इसी कारण ब्याह किया जाता है, क्योंकि पति को इस लोक तथा परलोक में एक स्त्री मिल जाती है ॥४७॥ मनुष्य पुत्र रूप में स्वयं उत्पन्न होता है, अतएव उसकी आत्मा ही पुत्र होती है। इसी कारण, पुत्र की माता को मनुष्य अपनी माता के समान समझता है ॥४८॥ स्त्री से जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसका मुँह, पिता के समान होता है, उस मुँह को देखकर पिता प्रसन्न होता है, जिस प्रकार पुण्यात्मा स्वर्ग में जाकर प्रसन्न होता है ॥४९॥ जो मानसिक दुःखों से जल रहे हों, शारीरिक पीड़ा से व्याकुल हों, वे भी अपनी स्त्री के पास जाकर प्रसन्न हो जाते हैं; जिस प्रकार धूप से पीड़ित, जल पाकर प्रसन्न होता है ॥५०॥ क्रुद्ध होने पर भी मनुष्य को स्त्री का अनादर नहीं करना चाहिए, उसको दुःख नहीं पहुँचाना चाहिए, क्योंकि अनुराग, प्रेम और धर्म उसके ही अधीन हैं ॥५१॥ सनातन काल से अपने जन्म लेने का पवित्र क्षेत्र स्त्रियाँ ही हैं। स्त्रियों के बिना ऋषि भी क्या पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति रखते हैं? ॥५२॥ जिस समय पुत्र धूल में भरकर पिता के शरीर से लिपट जाता है, उससे बढ़ कर दूसरा आनन्द क्या हो सकता है? ॥५३॥ यह आपका पुत्र बड़ी उत्कण्ठा से आपके पास आया है। आप की ओर कटाक्ष से देख रहा है, आप इसका तिरस्कार क्यों करते हैं? ॥५४॥ चींटियाँ अण्डे देती हैं, पर उनको नष्ट नहीं करतीं; उनका पालन करती हैं,

न वाससां न रामाणां नापांस्पर्शस्तथाविधः । शिशोरालिङ्ग्यमानस्य स्पर्शः सूनोर्यथा सुखः ॥५६॥
ब्राह्मणो द्विपदां श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् । गुरुर्गरीयसां श्रेष्ठः पुत्रः स्पर्शवतां वरः ॥५७॥
स्पृशतु त्वां समाश्लिष्य पुत्रोऽयं प्रियदर्शनः । पुत्रस्पर्शात्सुखतरः स्पर्शोलोके न विद्यते ॥५८॥
त्रिषु वर्षेषु पूर्णेषु प्रजाताऽहमरिन्दम । इमं कुमारं राजेन्द्र तव शोक विनाशनम् ॥५९॥
आहर्ता वाजिमेधस्य शतसंख्यस्य पौरव । इतिवागन्तरिक्षेमां सूतकेभ्यवदत्पुरा ॥६०॥
ननु नामांकमारोप्य स्नेहाद्ग्रामान्तरं गताः । मूर्ध्नि पुत्रानुपाघ्राय प्रतिनन्दन्ति मानवाः ॥६१॥
वेदेष्वपि वदन्तीमं मन्त्रग्रामं द्विजातयः । जातकर्मणि पुत्राणां तवापि विदितं तथा ॥६२॥
अंगादंगात्संभवसि हृदयादधिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥६३॥
जीवितं त्वदधीनं मे सन्तानमपि चाक्षयम् । तस्मात्त्वं जीव मे पुत्र सुसुखी शरदां शतम् ॥६४॥
त्वदंगेभ्यः प्रसूतोऽयं पुरुषात्पुरुषोऽपरः । सरसीवामलेत्मानं द्वितीयं पश्य वै सुतम् ॥६५॥
यथाह्याहवनीयोऽग्निर्गार्हपत्यात्प्रणीयते । तथा त्वत्तःप्रसूतोऽयं त्वमेकः सन्द्विधाकृतः ॥६६॥
मृगावकृष्टेन पुरा मृगयां परिधावता । अहमासादिता राजन्कुमारी पितुराश्रमे ॥६७॥
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च सहजन्या च मेनका । विश्वाची च घृताची च षडेवाप्सरसां वरः ॥६८॥

फिर धर्मज्ञ होकर तुम अपने पुत्र का पालन क्यों न करोगे ? ॥५५॥ वस्त्र, स्त्री तथा जल के स्पर्श से वैसा आनन्द नहीं होता, जैसा छोटे लड़के के लिपटने से होता है ॥५६॥ द्विपदों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, चतुष्पदों में गौ श्रेष्ठ है । बड़ों में गुरु श्रेष्ठ है और स्पर्श-सुख देने वालों में पुत्र श्रेष्ठ है ॥५७॥ यह देखने में सुन्दर पुत्र तुम्हारे शरीर में लिपटे और तुम्हारा स्पर्श करे । पुत्र-स्पर्श से बढ़कर सुख देने वाला दूसरा स्पर्श नहीं है ॥५८॥ अरिन्दम ! तुम्हारे दुःखों को दूर करने वाले इस कुमार को उत्पन्न कर के तीन वर्षों के बाद मैं तुम्हारे पास आयी हूँ ॥५९॥ पौरव! सूतिकागृह में, आकाशवाणी ने मुझसे कहा था कि तुम्हारा यह पुत्र सौ अश्वमेधों का करने वाला होगा ॥६०॥ दूसरे गाँव से लौटे हुए मनुष्य, अपने पुत्रों का माथा सूँघते हैं) स्नेहपूर्वक उन्हें गोद में लेकर प्रसन्न होते हैं ॥६१॥ द्विजाति के पुत्रों के जातकर्म के समय जिन वैदिक मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है, वे आपको मालूम हैं ॥६२॥ (वैदिक मन्त्र आगे लिखे जाते हैं) "तुम मेरे अङ्गों से उत्पन्न हुए हो, तुम मेरे हृदय से उत्पन्न हुए हो; तुम पुत्र नामक मेरी आत्मा हो, तुम सौ वर्षों तक जिओ ॥६३॥ मेरा जीवन तुम्हारे अधीन है, मेरी वंश-परम्परा तुम्हारे अधीन है, अतएव मेरे पुत्र ! सौ वर्षों तक सुखी रहकर तुम जीवित रहो" ॥६४॥ तुम्हारे शरीर से यह उत्पन्न हुआ है, एक पुरुष से दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ है, तुम अपना प्रतिबिम्ब निर्मल तालाब के जल के समान इस पुत्र के रूप में देख सकते हो ॥६५॥ जिस प्रकार गार्हपत्य अग्नि से आहवनीय अग्नि उत्पन्न होती है, यह पुत्र तुम से उत्पन्न हुआ है । तुम एक थे. अब दो हो गये ॥६६॥ राजन् ! शिकार के लिए निकले हुए मृगा के पीछे दौड़ते-दौड़ते आप मेरे पिता के आश्रम में गये और उस समय कुमारी मैं आपको मिली ॥६७॥

तासां सा मेनका नाम ब्रह्मयोनिर्वराप्सराः । दिवः सम्प्राप्य जगतीं विश्वामित्रादजीजनत् ॥६९॥
सा मां हिमवतः प्रस्थे सुषुवे मेनकाऽप्सराः । अवकीर्य च मां याता परात्मजमिवासती ॥७०॥
किं नु कर्माशुभं पूर्वं कृतवत्यन्यजन्मनि । यदहं बान्धवैस्त्यक्ता बाल्ये सम्प्रति च त्वया ॥७१॥
कामं त्वया परित्यक्ता गमिष्याम्यस्वमाश्रमम् । इमं तु बालं संत्यक्तुं नार्हस्यात्मजमात्मनः ॥७२॥

दुष्यन्त उवाच

न पुत्रमभिजानामि त्वयि जातं शकुन्तले । असत्यवचनानार्यः कस्ते श्रद्धास्यते वचः ॥७३॥
मेनका निरनुक्रोशा बन्धकी जननी तव । यया हिमवतः पृष्ठे निर्माल्यमिव चोज्झिता ॥७४॥
स चापि निरनुक्रोशः क्षत्रयोनिः पिता तव । विश्वामित्रो ब्राह्मणत्वे लुब्धः कामवशंगतः ॥७५॥
मेनकाऽप्सरसां श्रेष्ठा महर्षीणां पिता च ते । तयोरपत्यं कस्मात्त्वं पुंश्चलीव प्रभाषसे ॥७६॥
अश्रद्धेयमिदं वाक्यं कथयन्ती न लज्जसे । विशेषतो मत्सकाशे दुष्टतापसि गम्यताम् ॥७७॥
क्व महर्षि सचैवाग्र्यः साऽप्सरा क्व च मेनका । क्व च त्वमेवं कृपणा तापसी वेषधारिणी ॥७८॥
अतिकायश्च ते पुत्रो बालोऽतिबलवानयम् । कथमल्पेन कालेन शालस्तम्भ इवोद्गतः ॥७९॥
सुनिकृष्टा च ते योनिः पुंश्चलीव प्रभाषसे । यदृच्छया कामरागाज्जाता मेनकया ह्यसि ॥८०॥

उर्वशी, पूर्वचित्ति, सहजन्या, मेनका, विश्वाची और घृताची, ये ही छः श्रेष्ठ अप्सराएँ हैं ॥६८॥ इन में भी ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण मेनका सर्वश्रेष्ठ है। वह स्वर्ग से पृथ्वी पर आयी और विश्वामित्र के द्वारा उसने मुझे उत्पन्न किया ॥६९॥ हिमालय की तराई में उस मेनका अप्सरा ने मुझे उत्पन्न किया और वहाँ दूसरे के बच्चे के समान मुझे छोड़कर वह कुलटा चली गयी ॥७०॥ न मालूम पूर्व-जन्म में मैंने कौन-सा ऐसा पाप किया है, जो बाल्यावस्था में बान्धवों ने मेरा त्याग किया और इस समय तुम मेरा त्याग कर रहे हो ॥७१॥ अच्छा, यदि तुम मेरा त्याग ही करते हो तो करो, मैं अपने आश्रम में चली जाऊँगी; पर इस बालक का त्याग न करो क्योंकि यह तुम्हारा पुत्र है ॥७२॥

दुष्यन्त बोले—तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न पुत्र को मैं नहीं पहिचानता। स्त्रियाँ झूठी होती हैं। तुम्हारी बात पर विश्वास कौन करेगा?॥७३॥ तुम्हारी माता मेनका निर्दय थी, असती थी, जिसने हिमालय पर तुम्हें सूखी माला के समान फेंक दिया था ॥७४॥ वह तुम्हारा पिता जो क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ था, निर्दय था। ब्राह्मणत्व का लोभी वह विश्वामित्र कामी था ॥७५॥ मेनका अप्सराओं में श्रेष्ठ थी, जो तुम्हारी माता थी। तुम्हारे पिता महर्षियों में श्रेष्ठ थे। उनकी सन्तान होकर तुम पुंश्चली के समान क्यों बातें कर रही हो? ॥७६॥ जो बात तुम मेरे सामने कह रही हो, वह विश्वास के योग्य नहीं है। उसको मेरे सामने कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? दुष्ट तापसि! तू यहाँ से चली जा ॥७७॥ वे महर्षियों में श्रेष्ठ कहाँ विश्वामित्र, कहाँ वह अप्सरा मेनका और तपस्विनी का वेष धारण करने वाली कहाँ बेचारी तू! ॥७८॥ तेरा यह पुत्र बहुत मोटा है, बहुत बलवान् है, यह इतने ही थोड़े काल में शालवृक्ष के समान कैसे हो गया? ॥७९॥

सर्वमेतत्परोक्षं मे यत्त्वं वदसि तापसि । नाहं त्वामभिजानामि यथेष्टं गम्यतां त्वया ॥८१॥

शकुन्तलोवाच

राजन्सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यसि । आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यसि ॥८२॥

मेनका त्रिदशेष्वेव त्रिदशाश्चानुमेनकाम् । ममैवोच्छ्रिच्यते जन्म दुष्यन्त तव जन्मनः ॥८३॥

क्षितावटसि राजेन्द्र अन्तरिक्षे चराम्यहम् । आवयोरन्तरं पश्य मेरुसर्षपयोरिव ॥८४॥

महेन्द्रस्य कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च । भवनान्यनुसंयामि प्रभावं पश्य मे नृप ॥८५॥

सत्यश्चापिप्रवादोऽयं यं प्रवक्ष्यामि तेऽनघ । निदर्शनार्थं न द्वेषात्तच्छ्रुत्वा तं क्षन्तुमर्हसि ॥८६॥

विरूपो यावदादर्शे नात्मनः पश्यते मुखम् । मन्यते तावदात्मानमन्येभ्यो रूपवत्तरम् ॥८७॥

यदा स्वमुखमादर्शे विकृतं सोऽभिवीक्षते । तदान्तरं विजानीते आत्मानं चेतरं जनम् ॥८८॥

अतीवरूप सम्पन्नो न कंचिदवमन्यते । अतीव जल्पन्दुर्वाचो भवतीह विहेठकः ॥८९॥

मूर्खो हि जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः । अशुभं वाक्यमादत्ते पुरीषमिव सूकरः ॥९०॥

प्राज्ञस्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः । गुणवद्वाक्यमादत्ते हंसः क्षीरमिवाम्भसः ॥९१॥

तुम्हारा जन्म बड़ा ही निन्दित है, अतएव तुम पुंश्चली के समान बातें करती हो। अकस्मात् काम से अन्धी होकर मेनका ने शायद तुम्हें उत्पन्न किया है ॥८०॥ तापसि ! तुम जो कुछ कह रही हो, वह सब मैं नहीं जानता। मैं तुमको भी नहीं जानता। तुम जहाँ चाहो, जा सकती हो ॥८१॥

शकुन्तला बोली—राजन् ! दूसरे के सरसों के बराबर दोष को तुम देख रहे हो; पर अपने बिल्व के समान बड़े अपराध को देखकर भी नहीं देखते ॥८२॥ मेनका देवताओं की है और देवता मेनका के हैं अर्थात् इन्हीं का सम्बन्ध है। अतएव दुष्यन्त ! मेरा जन्म तुम्हारे जन्म से श्रेष्ठ है ॥८३॥ राजेन्द्र ! तुम पृथ्वी पर भटकते हो और मैं आकाश में चलती हूँ। हम दोनों का भेद तुम देखो, पहाड़ और सरसों के समान है ॥८४॥ मैं इन्द्र, कुबेर, यम और वरुण के घरों में जा सकती हूँ। राजन् ! तुम मेरा प्रभाव देखो ॥८५॥ निष्पाप ! यह कहावत बिल्कुल ठीक है, जो मैं कहती हूँ, सिर्फ् तुम्हें समझाने के लिए कहती हूँ, क्रोध से नहीं। सुनकर तुम मुझे क्षमा करना ॥८६॥ जब तक मनुष्य अपना टेढ़ा मुँह दर्पण में नहीं देखता, तबतक वह अपने को बहुत सुन्दर समझता है ॥८७॥ पर, जब वह अपना टेढ़ा मुँह दर्पण में देख लेता है, तब अपनी और दूसरों का भेद समझ पाता है ॥८८॥ जो बहुत सुन्दर है, वह दूसरे का अपमान नहीं करता। जो अधिक बोलता है, वह दुर्वादी और पर-निन्दक कहा जाता है ॥८९॥ वक्ता के मुँह से निकली अच्छी और बुरी बातों में से मूर्ख मनुष्य बुरी बातों को ही ग्रहण करता है, जिस प्रकार सुअर और वस्तुओं की ओर ध्यान न देकर केवल विष्ठा ही ढूँढ़ता है ॥९०॥ जो मनुष्य बुद्धिमान हैं, वे वक्ता की अच्छी बुरी बातें सुनकर उनमें जो अच्छी बात होती है, उसे ले लेते हैं और बुरी को छोड़ देते हैं; जिस प्रकार हंस दूध ले लेता है और पानी को छोड़ देता है ॥९१॥ सज्जन मनुष्य

अन्यान्परिवदन्साधुर्यथाहि परितप्यते । तथा परिवदन्नन्याँस्तुष्टो भवति दुर्जनः ॥९२॥
अभिवाद्य यथा वृद्धान्सन्तो गच्छन्ति निर्वृतिम् । एवं सज्जनमाक्रुश्यमूर्खोभवति निर्वृतः ॥९३॥
सुखं जीवन्त्यदोषज्ञा मूर्खा दोषानुदर्शिनः । यत्रवाच्याःपरैः संतः परानाहुस्तथाविधान् ॥९४॥
अतो हास्यतरं लोके किंचिदन्यन्न विद्यते । यत्रदुर्जनमित्याह दुर्जनः सज्जनं स्वयम् ॥९५॥
सत्यधर्मच्युतात्पुंसः क्रुद्धादाशीविषादिव । अनास्तिकोप्युद्विजते जनः किं पुनरास्तिकः ॥९६॥
स्वयमुत्पाद्य वै पुत्रं सदृशं यो न मन्यते । तस्य देवाः श्रियंघ्नन्ति न च लोकानुपाश्नुते ॥९७॥
कुलवंशप्रतिष्ठां हि पितरः पुत्रमब्रुवन् । उत्तमं सर्वधर्माणां तस्मात्पुत्रं न संत्यजेत् ॥९८॥
स्वपत्नीप्रभवान्पञ्चलब्धान्क्रीतान्विवर्धितान् । कृतानन्या सुचोत्पन्नान्पुत्रान्वै मनुरब्रवीत् ॥९९॥
धर्मकीर्त्यावहा नृणां मनसः प्रीतिवर्धनाः । त्रायन्ते नरकाज्जाताःपुत्राधर्मप्लवाः पितॄन् ॥१००॥
स त्वं नृपतिशार्दूल पुत्रं न त्यक्तुमर्हसि । आत्मानं सत्यधर्मौ च पालयन्पृथिवीपते ॥
नरेन्द्रसिंह कपटं न वोढुं त्वमिहार्हसि ॥१०१॥
वरं कूपशताद्वापि वरं वापीशतात्क्रतुः । वरं क्रतुशतात्पुत्रः सत्यं पुत्रशताद्वरम् ॥१०२॥

दूसरों की निन्दा करके दुखी होता है; पर दुर्जन दूसरों की निन्दा करके प्रसन्न होता है ॥९२॥ जिस प्रकार सज्जन मनुष्य बड़ों को प्रणाम करके प्रसन्न होता है, उसी प्रकार मूर्ख बड़ों की निन्दा करके खुश होता है ॥९३॥ विद्वान् दूसरों के दोषों को नहीं देखते और वे सुख पूर्वक रहते हैं। मूर्ख मनुष्य दूसरों के दोषों को देखकर प्रसन्न होते हैं। जिन दुर्गुणों के कारण मूर्खों की निन्दा होती है, मूर्ख उन्हीं दुर्गुणों को दूसरों में बतलाते हैं ॥९४॥ इससे बढ़कर संसार में हँसी की बात और क्या हो सकती है? जो स्वयं दुर्जन है, वह सज्जन को दुर्जन कहता है ॥९५॥ जिस मनुष्य ने सत्य-धर्म का त्याग कर दिया, उससे क्रुद्ध सर्प के समान नास्तिक मनुष्य भी भयभीत होता है, फिर आस्तिक के भयभीत होने की तो क्या बात है! ॥९६॥ जिसने स्वयं अपने समान पुत्र उत्पन्न किया, अब वह उसे अपना पुत्र नहीं मानता। देवता ऐसे मनुष्य का ऐश्वर्य नष्ट कर देते हैं और उसका परलोक भी नष्ट हो जाता है ॥९७॥ पितरों ने कहा है कि पुत्र कुल की प्रतिष्ठा है। उससे वंश चलता है और उसका उत्पन्न होना श्रेष्ठ धर्म है। ऐसे पुत्र का त्याग न करना चाहिए ॥९८॥ अपनी स्त्री से उत्पन्न पाँच प्रकार के पुत्र (औरस, क्षेत्रज, कानीन, गूढ़ज और सहोढ़) और क्रीत, पालित, स्वीकृत आदि दूसरी स्त्री में उत्पन्न पुत्र मनु ने बतलाये हैं ॥९९॥ ये पुत्र मनुष्यों के धर्म और कीर्ति बढ़ाने वाले हैं। उन्हें प्रसन्न रखनेवाले हैं। ये नरक से पितरों की रक्षा करते हैं। ये पितरों के लिए एक धार्मिक नौका हैं ॥१००॥ अतएव राजश्रेष्ठ! आपको अपने पुत्र का त्याग न करना चाहिए। राजन्! आप अपनी, सत्य और धर्म की रक्षा कीजिए। नरेन्द्र-सिंह! आपको छल नहीं करना चाहिए ॥१०१॥ सौ कुएँ बनवाने की अपेक्षा एक तालाब बनवाना उत्तम है। सौ तालाब की अपेक्षा एक यज्ञ करना उत्तम है, सौ यज्ञों की अपेक्षा एक पुत्र उत्पन्न करना श्रेष्ठ है और सौ पुत्रों की अपेक्षा एक सत्य-धर्म का पालन करना श्रेष्ठ है ॥१०२॥ हज़ार अश्वमेध

अश्वमेध सहस्रं च सत्यं च तुलयाधृतम् । अश्वमेध सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥१०३॥
सर्ववेदाधिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् । सत्यं च वचनं राजन् समंवास्यान्नवासमम् ॥१०४॥
नास्ति सत्य समो धर्मो न सत्याद्विद्यते परम् । न हि तीव्रतरं किञ्चिदनृतादिह विद्यते ॥१०५॥
राजन्सत्यं परं ब्रह्म सत्यं च समयःपरः । मात्याक्षीः समयं राजन् सत्यं संगतमस्तु ते ॥१०६॥
अनृतेचेत्प्रसंगस्ते श्रद्दधासि न चेत्स्वयम् । आत्मनाहंत गच्छामि त्वादृशेनास्ति संगतम् ॥१०७॥
त्वामृतेऽपि हि दुष्यन्त शैलराजावतंसकाम् । चतुरं तामिमामुर्वीं पुत्रो मे पालयिष्यति ॥१०८॥
वैशम्पायन उवाच
एतावदुक्त्वा राजानं प्रातिष्ठत शकुन्तला । अथांतरिक्षा दुष्यन्तं वागुवाचा शरीरिणी ॥१०९॥
ऋत्विक् पुरोहिताचार्यैर्मन्त्रिभिश्च वृतं तदा । भस्त्रा माता पितुःपुत्रो येन जातः स एव सः ॥११०॥
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् । रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात् ॥१११॥
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला । जाया जनयते पुत्रमात्मनोऽङ्गं द्विधाकृतम् ॥११२॥
तस्माद्भरस्व दुष्यन्त पुत्रं शाकुन्तलं नृप । अभूतिरेषा यत्त्यक्ता जीवेज्जीवंतमात्मजम् ॥११३॥

यज्ञ और एक सत्य तुला पर रखा जाय तो हज़ारों अश्वमेधों से एक सत्य बढ़ जायगा ॥१०३॥ सब वेदों का अध्ययन करना, सब तीर्थों का परिभ्रमण करना, ये सत्य के समान हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते ॥१०४॥ सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। राजन्! असत्य से बढ़कर कठोर पाप भी दूसरा नहीं है ॥१०५॥ राजन्! सत्य परब्रह्म है, वही नियम है, उसका त्याग मत करो। अपनी मैत्री को सत्य बनाओ ॥१०६॥ यदि तुम असत्य से प्रेम करते हो, मेरी बातों पर स्वयं तुम्हें विश्वास नहीं है तो मैं यहाँ से अपने आप ही जाती हूँ, क्योंकि तुम्हारे समान मनुष्य से मैत्री नहीं हो सकती ॥१०७॥ दुष्यन्त! तुम्हारे बिना भी मेरा यह पुत्र चारों ओर समुद्र से घिरी हुई और हिमालय का कुण्डल धारण करनेवाली पृथ्वी का शासन करेगा ॥१०८॥

वैशम्पायन बोले—राजा से ऐसा कहकर शकुन्तला वहाँ से लौटी। उसी समय राजा दुष्यन्त को सम्बोधन करके आकाशवाणी ने उनसे यह कहा—उस समय राजा के पास पुरोहित, ऋत्विक्, आचार्य और मन्त्री वर्त्तमान थे—"माता पुत्र को गर्भ में केवल धारण करनेवाली है। पुत्र तो उसी का होता है, जिस से उत्पन्न होता है ॥१०९—११०॥ दुष्यन्त! पुत्र का पालन करो, शकुन्तला का तिरस्कार मत करो। राजन्! पिता ही पुत्र रूप में उत्पन्न होता है और वह पितरों का नरक से उद्धार करता है ॥१११॥ इस गर्भ के धारण करानेवाले तुम हो, यह शकुन्तला ने सत्य कहा है। पुरुष का जो अङ्ग दो भागों में बट जाता है, स्त्री उसी एक अङ्ग को पुत्र रूप में उत्पन्न करती हैः अर्थात् पुरुष का रूप गर्भ में धारण कर के स्त्री उसे पुत्र के रूप में उत्पन्न करती है ॥११२॥ राजन्! इस कारण शकुन्तला के पुत्र का तुम पालन करो। यह बड़े अभाग्य की बात है कि जीते हुए पुत्र को छोड़कर पिता जीवित रहे ॥११३॥ हे पौरव! शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न दुष्यन्त के इस

शाकुन्तलं महात्मानं दौष्यन्तिं भर पौरव। भर्तव्योऽयं त्वया यस्मादस्माकं वचनादपि ॥११४॥
तस्माद्भवत्वयं नाम्ना भरतो नाम ते सुतः। तच्छ्रुत्वा पौरवो राजा व्याहृतं त्रिदिवौकसाम् ॥११५॥
पुरोहितममात्यांश्च संप्रहृष्टो ब्रवीदिदम्। शृण्वंत्वेतद्भवंतोऽस्य देवदूतस्य भाषितम् ॥११६॥
अहं चाप्येवमेवैनं जानामि स्वयमात्मजम्। यद्यहं वचनादेव गृह्णीयामि स्वमात्मजम्।
भवेद्धि शंक्यो लोकस्य नैवशुद्धो भवेदयम् ॥११७॥

वैशम्पायन उवाच

तं विशोध्य तदा राजा देवदूतेन भारत। हृष्टः प्रमुदितश्चापि प्रतिजग्राह तं सुतम् ॥११८॥
ततस्तस्य तदा राजा पितृकर्माणि सर्वशः। कारयामास मुदितः प्रीतिमानात्मजस्य ह ॥११९॥
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय सस्नेहं परिषस्वजे। सभाज्यमानो विप्रैश्च स्तूयमानश्च वन्दिभिः ॥
स मुदं परमालेभे पुत्रसंस्पर्शजां नृपः ॥१२०॥
तां चैव भार्यां दुष्यन्तः पूजयामास धर्मतः। अब्रवीच्चैव तां राजा सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥१२१॥
कृतो लोकपरोक्षोऽयं संबन्धोऽयं त्वया सह। तस्मादेतन्मया देवि त्वच्छुद्धयर्थं विचारितम् ॥१२२॥
मन्यते चैवलोकस्ते स्त्रीभावान्मयिसंगतम्। पुत्रश्चायंवृतोराज्येमयातस्माद्विचारितम् ॥१२३॥

महात्मा पुत्र का तुम पालन करो; क्यों कि तुम्हें इसका पालन करना चाहिए। हम लोग भी तुम्हें पालन करने की आज्ञा देते हैं ॥११४॥ अतएव, तुम्हारे इस पुत्र का नाम भरत होगा।" देवताओं के इस वचन को सुनकर राजा दुष्यन्त ने प्रसन्न होकर पुरोहित तथा सचिवों से कहा—"आप लोग देवदूत के इस वचन को सुनें, मैं इस बालक को अपना पुत्र जानता हूँ, परन्तु मैं स्वयं इसको पुत्र-रूप में ग्रहण कर लेता तो लोग अनेक प्रकार के सन्देह करते। इसको शुद्ध न समझते" ॥११५—११७॥

वैशम्पायन बोले—देवदूत के कहने से उस पुत्र के विषय में लोगों का सन्देह दूर हो गया, ऐसा समझकर दुष्यन्त ने प्रसन्न और गद्गद होकर उसको अपने यहाँ रख लिया ॥११८॥ अनन्तर राजाने प्रसन्न होकर अपने पुत्र के संस्कार कराये, जो पिता के द्वारा सम्पादित होते हैं॥११९॥ब्राह्मणों तथा वन्दियों ने राजा का सत्कार किया, उनकी स्तुति की। राजा ने स्नेहपूर्वक पुत्र का आलिङ्गन किया और उसका माथा सूँघा। पुत्र के स्पर्श से राजा अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥१२०॥ राजा दुष्यन्त ने धर्मपूर्वक अपनी स्त्री का सत्कार किया और समझाते हुए उन्होंने उससे कहा ॥१२१॥—"मेरा-तुम्हारा सम्बन्ध एकान्त में हुआ था, उसकी खबर किसी को नहीं थी। इससे लोग सन्देह कर सकते थे। उसी सन्देह को दूर करने के लिए, देवि! मैंने यह व्यवहार किया, जिससे लोग तुम्हें पवित्र समझें ॥१२२॥ अविवाहित स्त्री-रूप में तुम्हारा मेरा साथ हुआ है, ऐसा लोग समझ सकते थे। यह पुत्र अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न है और राज्य पर बैठाया गया है, यह भाव लोगों के मन में आ सकता था। इसीलिए मैंने वैसा विचार किया था और तुम्हारे साथ वैसा व्यवहार किया ॥१२३॥ प्रिये! मेरे व्यवहार से क्रुद्ध होकर तुमने मुझे अप्रिय बातें कही हैं। विशालाक्षि!

यच्चकोपि तयाऽत्यर्थं त्वयोक्तोऽस्म्यप्रियंप्रिये। प्रणयिन्याविशालाक्षि तत्क्षान्तं ते मयाशुभे॥१२४॥
तामेवमुक्त्वा राजर्षिर्दुष्यन्तो महिषीं प्रियाम्। वासोभिरन्नपानैश्च पूजयामास भारत ॥१२५॥
दुष्यन्तस्तु तदा राजा पुत्रं शाकुन्तलं तदा। भरतं नामतः कृत्वा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥१२६॥
तस्य तत्प्रथितं चक्रं प्रावर्तत महात्मनः। भास्वरं दिव्यमजितं लोकसन्नादनं महत् ॥१२७॥
स विजित्य महीपालांश्चकार वशवर्तिनः। चचार च सतांधर्मं प्रापचानुत्तमं यशः ॥१२८॥
स राजा चक्रवर्त्यासीत्सार्वभौमः प्रतापवान्। ईजे च बहुभिर्यज्ञैर्यथा शक्रो मरुत्पतिः ॥१२९॥
याजयामास तं कण्वो विधिवद्भूरि दक्षिणम्। श्रीमान् गोविततं नाम वाजिमेधमवाप सः ॥
यस्मिन्सहस्रं पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥१३०॥
भरताद्भारतीकीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम्। अपरे ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः ॥१३१॥
भरतस्यान्ववायेहि देवकल्पा महौजसः। बभूवुर्ब्रह्मकल्पाश्च बहवोराजसत्तमाः ॥१३२॥
येषामपरिमेयानि नामधेयानि सर्वशः। तेषां तु ते यथामुख्यं कीर्तयिष्यामि भारत ॥
महाभागान्देवकल्पान्सत्यार्जव परायणान् ॥१३३॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने चतुः सप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

उन बातों को अपनी प्रेमिका की कही हुई जानकर मैंने क्षमा कर दिया'' ॥१२४॥ राजर्षि दुष्यन्त ने अपनी प्रिय महारानी से ऐसा कहकर उसे वस्त्र, अन्न, पान आदि देकर प्रसन्न किया ॥१२५॥ राजा ने शकुन्तला के पुत्र भरत को युवराज-पद दिया ॥१२६॥ महात्मा भरत की आज्ञा सब जगह प्रचलित हुई। वह महान् आज्ञा, अजेय तथा लोक को गुँजानेवाली और शुद्ध थी अर्थात् प्रजा के हित के लिए प्रचारित होती थी ॥१२७॥ उन्होंने राजाओं को जीतकर अपने अधीन किया, धर्म-पालन किया और वे यशस्वी हुए ॥१२८॥ वे प्रतापी राजा चक्रवर्ती थे। समस्त पृथ्वी के स्वामी थे। देवराज इन्द्र के समान उन्होंने अनेक यज्ञ किये ॥१२९॥ कण्व ने यज्ञ कराये, जिनमें बहुत दक्षिणा मिली। अनन्तर राजा भरत ने गोवितत नामक अश्वमेध यज्ञ किया और हजारों पद्म गौ भरत ने कण्व को दी। (गोवितत का अर्थ है, गौओं का विस्तार अर्थात् जिस यज्ञ में बहुत अधिक गो-दान किया जाय) ॥१३०॥ राजा भरत की कीर्ति संसार में फैली। भारत नाम से उनका वंश प्रसिद्ध हुआ; और जो राजा हुए, वे भी भारत कहलाये ॥१३१॥ भरत-वंश में देवतुल्य पराक्रमी, ब्रह्मतुल्य ज्ञानी राजा हुए ॥१३२॥ उनके नाम बहुत अधिक हैं। उनमें जो प्रधान हैं, उन सत्यवादी, विनयी, देवतुल्य राजाओं का नाम मैं आपके सामने कहूँगा ॥१३३॥

चतुःसप्ततितम सर्ग।

वैशम्पायन उवाच

प्रजापतेस्तु दक्षस्य मनोर्वैवस्वतस्य च । भरतस्यकुरोः पूरोराजमीढस्य चानघ ॥ १ ॥
यादवानामिमं वंशं कौरवाणां च सर्वशः । तथैव भरतानां च पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ २ ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं कीर्त्तयिष्यामितेऽनघ । तेजोभिरुदिताः सर्वे महर्षि समतेजसः ॥ ३ ॥
दश प्राचेतसः पुत्राः संतः पुण्यजनाः स्मृताः । मुखजेनाग्निनायैस्ते पूर्वं दग्धा महौजसः ॥ ४ ॥
तेभ्यः प्राचेतसो जज्ञे दक्षोदक्षादिमाः प्रजाः । सम्भूताः पुरुषव्याघ्र स हि लोकपितामहः ॥ ५ ॥
वीरिण्या सह संगम्य दक्षः प्राचेतसो मुनिः । आत्मतुल्यानजनयत्सहस्रं संशितव्रतान् ॥ ६ ॥
सहस्र संख्यान्सम्भूतान्दक्षपुत्रांश्च नारदः । मोक्षमध्यापयामास सांख्य ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ७ ॥
ततः पञ्चाशतं कन्याः पुत्रिका अभिसन्दधे । प्रजापतिः प्रजादक्षः सिसृक्षुर्जनमेजय ॥ ८ ॥
ददौ दशसधर्माय कश्यपाय त्रयोदश । कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥ ९ ॥
त्रयोदशानां पत्नीनां यातु दाक्षायणीवरा । मारीचः कश्यपस्त्वस्यामादित्यान्समजीजनत् ॥१०॥
इन्द्रादीन्वीर्यसम्पन्नान्विवस्वन्तमथापि च । विवस्वतः सुतो जज्ञे यमो वैवस्वतः प्रभुः ॥११॥
मार्त्तण्डस्य मनुर्धीमानजायत सुतः प्रभुः । यमश्चापि सुतोजज्ञे ख्यातस्तस्यानुजः प्रभुः ॥१२॥

भरत वंश का परिचय ।

वैशम्पायन बोले—प्रजापति दक्ष, वैवस्वत मनु और भरतवंशी कुरु, पुरु, अजमीढ़ और यादवों का वंश वर्णन मैं करता हूँ। ये भरत-वंश के अन्तर्गत हैं। ये पवित्र और मङ्गलमय हैं। यश और आयु देने वाले हैं। निष्पाप! इनका वर्णन मैं करता हूँ। ये सभी महर्षियों के समान तेजस्वी उत्पन्न हुए थे ॥१-३॥ प्रचेता के दस पुत्र उत्पन्न हुए, वे दसों तपस्वी और पवित्र थे। उन्होंने मुँह से अग्नि को प्रकट किया और उस अग्नि से, फैले वृक्षों और लताओं को जलाया ॥४॥ उनसे प्रचेता-वंश में दक्ष उत्पन्न हुए, जिनसे अन्य प्रजाओं की उत्पत्ति हुई। पुरुषसिंह! इसी कारण दक्ष लोक-पितामह कहे जाते हैं ॥५॥ वीरिणी नाम की स्त्री से सम्बन्ध करके प्रचेता-वंशी दक्ष ने अपने समान हज़ार पुत्र उत्पन्न किये, जो प्रसिद्ध व्रतधारी हुए ॥६॥ दक्ष के उन हज़ारों पुत्रों को नारद ने मोक्ष-शास्त्र का उपदेश दिया। सांख्य का उत्तम ज्ञान पढ़ाया, जिससे वे संसार से विरक्त हो गये ॥७॥ जनमेजय! प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से प्रजापति दक्ष ने पचास कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥८॥ उनमें दस धर्म को, तेरह कश्यप को और सत्ताइस चन्द्रमा को दीं। ये सत्ताइस कन्याएँ काल का नियन्त्रण करने वाली थीं ॥९॥ बारह स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ दाक्षायणी थी। उससे मरीचि-पुत्र कश्यप ने देवताओं को उत्पन्न किया ॥१०॥ बलवान् इन्द्र आदि देवताओं तथा सूर्य को उन्होंने उत्पन्न किया। सूर्य से यमराज उत्पन्न हुआ, जो विवस्वन सूर्य का पुत्र होने से वैवस्वत कहा जाता है ॥११॥ सूर्य के मनु नाम का बुद्धिमान पुत्र हुआ, यम भी सूर्य ही का बेटा था और मनु का छोटा भाई ॥१२॥ बुद्धिमान् मनु धर्मात्मा थे। उनका वंश चला।

धर्मात्मा स मनुर्धीमान्यत्रवंशः प्रतिष्ठितः। मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् ॥१३॥
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तु मानवाः। ततोऽभवन्महाराज ब्रह्मक्षत्रेण संगतम् ॥१४॥
ब्राह्मणा मानवास्तेषां साङ्गंवेदमधारयन्। वेनं धृष्णुं नरिष्यन्तं नाभागेक्ष्वाकुमेव च ॥१५॥
कारूषमथशर्यातिं तथाचैवाष्टमीमिलाम्। पृषध्रं नवमं प्राहुः क्षत्रधर्मपरायणम् ॥१६॥
नाभागारिष्टं दशमान्मनोः पुत्रान्प्रचक्षते। पंचाशत्तु मनोःपुत्रास्तथैवान्येऽभवन् क्षितौ ॥१७॥
अन्योन्य भेदात्ते सर्वे विनेशुरिति नः श्रुतम्। पुरूरवास्ततो विद्वानिलायां समपद्यत ॥१८॥
सा वै तस्या भवन्माता पिता चैवेति नः श्रुतम्। त्रयोदश समुद्रस्य द्वीपानश्नन्पुरूरवाः ॥१९॥
अमानुषैर्वृतः सत्वैर्मानुषः सन्महायशाः। विप्रैः स विग्रहं चक्रे वीर्योन्मत्तः पुरूरवाः ॥२०॥
जहार च स विप्राणां रत्नान्युत्क्रोशतामपि। सनत्कुमारस्तं राजन् ब्रह्मलोकादुपेत्य ह ॥२१॥
अनुदर्शं ततश्चक्रे प्रत्यगृह्णान्नचाप्यसौ। ततो महर्षिभिः क्रुद्धैः सद्यः शप्तोव्यनश्यत ॥२२॥
लोभान्वितो बलमदान्नष्टसंज्ञो नराधिपः। सहि गंधर्वलोकस्थानुर्वश्यासहितोविराट् ॥२३॥
आनिनाय क्रियार्थेऽग्नीन्यथावद्विहितांस्त्रिधा। षटसुता जज्ञिरे चैलादायुर्धीमानमावसुः ॥२४॥
दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशी सुताः। नहुषं वृद्धशर्माणंरजिंगयमनेनसम् ॥२५॥

मनु का वंश मानव नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१३॥ ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि मानव, मनु से उत्पन्न हुए। राजन्! अनन्तर ब्राह्मण और क्षत्रियों का परस्पर सम्बन्ध हुआ। ब्राह्मणों ने क्षत्रिय कन्याओं में पुत्र उत्पन्न किये ॥१४॥ उन मनुवंशी ब्राह्मणों ने साङ्गवेद का अध्ययन किया। वेन, धृष्णु, नरिष्यन्त, नाभाग, इक्ष्वाकु, कारुष, शर्याति, आठवीं इला नाम की कन्या, क्षत्रधर्म पालने वाले नवें वृषध्र और दशवें नाभागारिष्ट ये मनु के पुत्र कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त और भी मनु के पचास पुत्र उत्पन्न हुए ॥१५—१७॥ हमलोगों ने सुना है कि वे सब पुत्र आपस के विरोध से नष्ट हो गये। अनन्तर विद्वान् पुरूरवा इला से उत्पन्न हुए ॥१८॥ ऐसा सुना जाता है कि वह इला ही पुरूरवा का पिता और माता थी। पुरूरवा समुद्र के तेरह द्वीपों का भोग करता था ॥१९॥ यशस्वी पुरूरवा मनुष्य थे, पर वे ऐसे प्राणियों के साथ रहते थे जो मनुष्य न थे। एक बार बल के घमण्ड में आकर उन्होंने ब्राह्मणों से विरोध कर लिया ॥२०॥ उन्होंने ब्राह्मणों के धन रत्न हर लिये। ब्राह्मण रोते चिल्लाते रहे। इसके पश्चात् ब्रह्मलोक से सनत्कुमार ऋषि उनके पास आये ॥२१॥ उन्होंने राजा को श्रुतिसम्मत उपदेश दिया, राजधर्म बतलाया, पर राजा ने कोई बात न सुनी। इससे क्रोध करके महर्षियों ने राजा को शाप दिया और उनका नाश हो गया। वह राजा बल के घमंड में आकर बुद्धि खो चुका था और लोभी हो गया था ॥२२, २३॥

वे राजा गंधर्व लोक से उर्वशी के साथ तीनों, गार्हपत्य, दाक्षिणाग्नि और आहवनीय अग्नियों को क्रिया के लिए ले आये थे। इला पुत्र पुरूरवा के छः पुत्र उत्पन्न हुए थे। आयु, धीमान्, अमावसु, दृढ़ायु, वनायु, और श्रुतायु, ये छः उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। स्वर्भानु की कन्या से आयु के ये पुत्र हुए। नहुष, वृद्धशर्म्मा, रजि, गय और अनेनस्। आयु का पुत्र नहुष, बुद्धिमान्

स्वर्भानवीसुतानेतानायोः पुत्रान्प्रचक्षते । आयुषो नहुषः पुत्रोधीमान्सत्यपराक्रमः ॥२६॥
राज्यं [illegible] पृथिवीपते । पितॄन्देवानृषीन्विप्रान्गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥२७॥
नहुषः पालयामास ब्रह्मक्षत्रमथोविशः । सहत्वादस्यु संघातानृषीन्करमदापयत् ॥२८॥
पशुवच्चैव तान्पृष्ठे वाहयामास वीर्यवान् । कारयामासचेन्द्रत्वमभिभूय दिवौकसः ॥२९॥
तेजसा तपसा चैव विक्रमेणौजसा तथा । यतिं ययातिं संयातिमायातिमयतिंध्रुवम् ॥३०॥
नहुषो जनयामास षट् सुतान्प्रियवादिनः । यतिस्तुयोगमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ॥३१॥
ययातिर्नाहुषः सम्राडासीत्सत्यपराक्रमः । स पालयामास महीमीजे च बहुभिर्मखैः ॥३२॥
अतिभक्त्या पितॄनर्चन्देवांश्च प्रयतः सदा । अन्वगृह्णात्प्रजाः सर्वाययातिरपराजितः ॥३३॥
तस्य पुत्रा महेष्वासाः सर्वैः समुदितागुणैः । देवयान्यां महाराज शर्मिष्ठायां च जज्ञिरे ॥३४॥
देवयान्यामजायेतां यदुस्तुर्वसुरेव च । द्रुह्युश्चानुश्चपूरुश्च शर्मिष्ठायां च जज्ञिरे ॥३५॥
स शाश्वतीः समाराजन्प्रजाधर्मेण पालयन् । जरामार्च्छन्महाघोरां नाहुषो रूपनाशिनीम् ॥३६॥
जराऽभिभूतः पुत्रान्स राजा वचनमब्रवीत् । यदुंपूरुंतुर्वसुं च द्रुह्युंचानुंच भारत ॥३७॥
यौवनेन चरन्कामान्युवायुवतिभिः सह । विहर्तुमहमिच्छामि साह्यं कुरुत पुत्रकाः ॥३८॥
तं पुत्रो दैवयानेयः पूर्वजो वाक्यमब्रवीत् । किं कार्यं भवतः कार्यमस्माकं यौवनेन ते ॥३९॥

और पराक्रमी था ॥२४—२६॥ राजन्, वह नहुष धर्मपूर्वक राज्य का शासन करता था। पितर, देवता, ऋषि, गन्धर्व, नाग, राक्षस, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का पालन वह धर्मपूर्वक करता था। उस राजा ने लुटेरों के दल का नाश किया था और ऋषियों को करद बनाया था अर्थात् वह उनसे कर वसूल करता था ॥२७, २८॥ तेज, तपस्या, पराक्रम और बल से देवताओं को हराकर नहुष ने इन्द्रपद पाया था और ब्राह्मणों को बलपूर्वक अपना वाहन बनाया था। नहुष ने छः पुत्र उत्पन्न किये। वे सभी प्रियवादी थे। उनके नाम ये थे—यति, ययाति, संयाति, आयाति, अयति और ध्रुव। यति ने योगमार्ग ग्रहण किया, वह ब्रह्मपरायण होकर मुनि बन गया ॥२९—३१॥ सत्य पराक्रमी नहुष-पुत्र ययाति सम्राट् हुए। इन्होंने पृथिवी का पालन किया और अनेक यज्ञ किये ॥३२॥ भक्तिपूर्वक तथा तत्परता के साथ वे पितरों और देवताओं की पूजा करते थे। अपराजित ययाति ने समस्त प्रजा पर अनुग्रह किया ॥३३॥ राजन्! ययाति के देवयानी और शर्मिष्ठा के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी वीर थे और समस्त गुणों से गुणवान् थे ॥३४॥ देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पुरु ये पुत्र उत्पन्न हुए ॥३५॥ राजा ने बहुत दिनों तक धर्मपूर्वक प्रजा का पालन किया। अनन्तर वे राजा रूप नष्ट करनेवाली भयंकर बुढ़ाई के शिकार हुए अर्थात् वे बूढ़े हुए ॥३६॥ बूढ़े होकर राजा ने यदु, तुर्वसु, अनु, द्रुह्यु अपने इन पुत्रों से कहा ॥३७॥ मैं युवा होकर युवतियों के साथ यौवन का सुख भोगना चाहता हूँ, मैं युवतियों के साथ बिहार करना चाहता हूँ। तुम लोग मेरी सहायता करो अर्थात् मेरे बुढ़ापे का दुःख भोगने का कष्ट स्वीकार करो ॥३८॥

ययातिरब्रवीत्तं वै जरा मे प्रतिगृह्यताम् । यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम् ॥४०॥
यजतो दीर्घसत्रैर्मे शापाच्चोशनसो मुनेः । कामार्थः परिहीणोऽयं तप्येयं तेन पुत्रकाः ॥४१॥
मामकेन शरीरेण राज्यमेकः प्रशास्तु वः । अहं तन्वाऽभिनवया युवा काममवाप्नुयाम् ॥४२॥
तेन तस्य प्रत्यगृह्णन्यदुप्रमुखास्तदा जराम् । तमब्रवीत्ततः पूरुः कनीयान्सत्यविक्रमः ॥४३॥
राजंश्चराभिनवया तन्वा यौवनगोचरः । अहं जरां समादाय राज्ये स्थास्यामि तेऽऽज्ञया ॥४४॥
एवमुक्तः स राजर्षिस्तपोवीर्य समाश्रयात् । संचारयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि ॥४५॥
पौरवेणाथ वयसा राजा यौवनमास्थितः । यायातेनापि वयसा राज्यं पूरुरकारयत् ॥४६॥
ततो वर्ष सहस्रान्ते ययातिरपराजितः । स्थितः स नृपशार्दूलः शार्दूलसमविक्रमः ॥४७॥
ययातिरपि पत्नीभ्यां दीर्घकालं विहृत्य च । विश्वाच्या सहितो रेमे पुनश्चैत्ररथे वने ॥४८॥
नाध्यगच्छत्तदातृप्तिं कामानां स महायशाः । अवेत्य मनसाराजन्निमांगाथां तदा जगौ ॥४९॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥५०॥
पृथिवीरत्नसम्पूर्णा हिरण्यं पशवः स्त्रियः । नालमेकस्य तत्सर्वमितिमत्वाशमं व्रजेत् ॥५१॥

देवयानी का बड़ा पुत्र यदु बोला—आपको हमलोगों का यौवन लेकर क्या करना है ? अर्थात् हमलोगों के यौवन से आप क्या करेंगे ॥३९॥ ययाति ने कहा—तुम मेरा बुढ़ापा ले लो । मैं तुम्हारे यौवन से विषय भोग करूँगा ॥४०॥ बड़े बड़े यज्ञों के करने से अर्थात् व्रतों के नियम पालन से और शुक्र मुनि के शाप से मेरी काम-शक्ति नष्ट हो गयी है, जिससे पुत्रों ! मैं दुखी हो रहा हूँ ॥४१॥ तुम लोगों में का कोई एक मेरे शरीर से अर्थात् बुढ़ापा से राज्य शासन करे और मैं नये शरीर से युवा बनकर विषय भोग करूँ ॥४२॥ यदु आदि पुत्रों ने राजा ययाति का बुढ़ापा नहीं लिया । अनन्तर सबसे छोटा पुरु बोला, जो सत्य पराक्रमी था ॥४३॥ महाराज ! आप नया शरीर धारण कीजिए, युवा बनिए । आपकी आज्ञा से बुढ़ापा लेकर मैं राज्य-शासन करूँगा ॥४४॥

पुरु के ऐसा कहने पर उस राजर्षि ने तपस्या और पराक्रम के प्रभाव से अपना बुढ़ापा उदारचेता पुत्र को दिया ॥४५॥ पुरु की अवस्था लेकर राजा ययाति युवा हो गये और ययाति की अवस्था लेकर पुरु राज्य करने लगे ॥४६॥ राजसिंह अपराजित ययाति, हजार वर्ष बीतने पर भी सिंह के समान पराक्रमी बने रहे ॥४७॥ वे अपनी दोनों स्त्रियों के साथ बहुत दिनों तक विहार करके चैत्ररथ वन में विश्वाची के साथ रमण करने लगे ॥४८॥ इतने पर भी जब यशस्वी ययाति की वासनाएँ तृप्त न हुईं, उनकी भोगतृष्णा शान्त न हुई तब उन्होंने मन में सोचकर यह कहावत पढ़ी ॥४९॥ काम भोग से कभी वासनाओं को तृप्ति नहीं होती । इस प्रकार तो वह बढ़ती है, जिस प्रकार घी पड़ने से आग बढ़ती है ॥५०॥ रत्नों से भरी यह पृथिवी, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ ये सब एक अभिलाषी के लिए भी पर्याप्त नहीं है, यह समझकर मनुष्य को शान्ति धारण करनी चाहिए, उसे सन्तोष करना चाहिए ॥५१॥ जब मनुष्य किसी प्रकार का पाप नहीं

यदा न कुरुते पापं सर्वभूतेषु कर्हिचित् । कर्मणामनसावाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥५२॥
यदाचायं न बिभेति यदाचास्मान्नबिभ्यति । यदानेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्मसम्पद्यते तदा ॥५३॥
इत्यवेक्ष्य महाप्राज्ञः कामानां फलगुतां नृपः । समाधाय मनोबुद्ध्या प्रत्यगृह्णाज्जरांसुतात् ॥५४॥
दत्वा च यौवनं राजा पूरुं राज्येऽभिषिच्य च । अतृप्त एव कामानां पूरुं पुत्रमुवाच ह ॥५५॥
त्वया दायादवानस्मि त्वं मे वंशकरः सुतः । पौरवोवंश इति ते ख्यातिं लोके गमिष्यति ॥५६॥
वैशम्पायन उवाच
ततः स नृपशार्दूल पूरुं राज्येभिषिच्य च । ततः सुचरितं कृत्वा भृगुतुंगे महातपाः ॥५७॥
कालेन महतापश्चात्काल धर्ममुपेयिवान् । कारयित्वा त्वनशनं सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥५८॥
इति श्री महाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

जनमेजय उवाच
ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः । कथं स शुक्रतनयां लेभे परमदुर्लभाम् ॥ १ ॥

करता, प्राणि सम्बन्धी किसी भी दुराचार में लिप्त नहीं होता, कर्म मन और बचन से इन से अलग हो जाता है, तभी वह ब्रह्म हाता है अर्थात् तभी उसे ब्रह्मज्ञान होता है ॥५२॥ जिस समय इसका भय नष्ट हो जाता है, न यह किसी से डरता है और न इससे कोई डरता है, जब इसकी किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती, यह किसी से द्वेष नहीं करता तब यह ब्रह्म हो जाता है ॥५३॥ राजन् इस प्रकार राजा ययाति ने सांसारिक विषयों की निःसारता का विचार किया और विचार के द्वारा मन को शान्त किया, उसे समझाया और पुत्र से बुढ़ापा ले लिया ॥५४॥ राजा ययाति विषय भोग से तृप्त नहीं हुए थे, फिर भी उन्होंने पुत्र पुरु को उसका यौवन लौटा दिया, उसका राज्याभिषेक कर दिया और उससे कहा ॥५५॥ तुम्हारे ही कारण मैं सबान्धव हूँ। तुम्हीं वंश बढ़ानेवाले मेरे पुत्र हो। यह वंश तुम्हारे नाम पर पौरव वंश के नाम से संसार में प्रसिद्ध होगा ॥५६॥

वैशम्पायन बोले—राजन्! ययाति ने पुरु का राज्याभिषेक किया और भृगुतुंग नामक पर्वत पर तपस्वी राजा ने अनेक पुण्य किये ॥५७॥ इस प्रकार बहुत दिनों तक पुण्य संचय करके राजा ययाति ने स्त्रियों के साथ उपवास करके प्राणत्याग किया और वे स्वर्गगामी हुए ॥५८॥

पंचसप्ततितम अध्याय।

ययाति और कच की कथा।

जनमेजय बोले—हम लोगों के पूर्वज ययाति ने जो प्रजापति से दसवीं पीढ़ी में थे, शुक्र की कन्या को कैसे पाया, क्योंकि उसको पाना बड़ा ही दुर्लभ है ॥१॥ तपोधन! यह मैं

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन । आनुपूर्व्या च मे शंस राज्ञो वंशकरान्पृथक् ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

ययातिरासीन्नृपतिर्देवराजसमद्युतिः । तं शुक्र वृषपर्वाणौ वव्राते वै यथा पुरा ॥ ३ ॥
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि पृच्छते जनमेजय । देवयान्याश्च संयोगं ययातेर्नाहुषस्य च ॥ ४ ॥
सुराणामसुराणां च समजायत वै मिथः । ऐश्वर्यं प्रतिसंघर्षस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ५ ॥
जिगीषया ततो देवा वव्रिरेऽङ्गिरसंमुनिम् । पौरोहित्ये न याज्यार्थे काव्यं तूशनसं परे ॥ ६ ॥
ब्राह्मणौ तावुभौनित्यमन्योन्यस्पर्धिनौ भृशम् । तत्र देवानिजघ्नुर्यान्दानवान्युधि संगतान् ॥ ७ ॥
तान्पुनर्जीवयामास काव्योविद्याबलाश्रयात् । ततस्ते पुनरुत्थाय योधयां चक्रिरे सुरान् ॥ ८ ॥
असुरास्तु निजघ्नुर्यान्सुरान्समरमूर्धनि । न तान्संजीवयामास बृहस्पतिरुदारधीः ॥ ९ ॥
न हि वेद सतां विद्यां यां काव्योवेत्ति वीर्यवान् । संजीवनीं ततो देवाविषादमगमन्परम् ॥१०॥
ते तु देवा भयोद्विग्नाः काव्यादुशनसस्तदा । ऊचुः कचमुपागम्य ज्येष्ठंपुत्रं बृहस्पतेः ॥११॥
भजमानान्भजस्वास्मान्कुरु नः साह्यमुत्तमम् । या सा विद्या निवसति ब्राह्मणेऽमिततेजसि ॥१२॥
शुक्रेतामाहरक्षिप्रं भाग्भाङ्नोभविष्यसि । वृषपर्वसमीपे हि शक्यो द्रष्टुं त्वया द्विजः ॥१३॥

विस्तार से सुनना चाहता हूँ, साथ ही राजा के वंशजों का भी वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ। आप यथाक्रम कहें ॥२॥

वैशम्पायन बोले—राजा ययाति देवराज इन्द्र के समान थे, उनको शुक्र और वृषपर्वा ने पहले जिस प्रकार वरण किया था, जनमेजय, वह मैं आप के पूछने पर कहता हूँ। नहुष-पुत्र ययाति से देवयानी का सम्बन्ध जिस प्रकार हुआ वह भी मैं कहता हूँ ॥३,४॥

देवता और दानवों में सर्वत्र ऐश्वर्य के लिए परस्पर बड़ी ईर्ष्या थी। जहाँ जहाँ देवता दानव एक साथ रहते थे, वहाँ उनमें परस्पर विरोध था, एक दूसरे से बढ़कर रहना चाहता था ॥५॥ दानवों को जीतने के लिए देवताओं ने अङ्गिरापुत्र बृहस्पति को अपना पुरोहित बनाया जो यज्ञ कराया करते थे, और दानवों ने शुक्र को पुरोहित बनाया ॥६॥ इन दोनों ब्राह्मणों में सदा परस्पर स्पर्धा रहा करती थी, एक दूसरे से बढ़ जाना चाहता था ॥ युद्ध में आये जिन दानवों का वध देवता करते थे, उन सब को अपने विद्या बल से शुक्र जीवित कर दिया करते थे। वे दानव जीवित होकर पुनः उठते थे और देवताओं से युद्ध करते थे ॥७,८॥ दानव जिन देवताओं को युद्ध-क्षेत्र में मारते थे, उनको बुद्धिमान् होने पर भी बृहस्पति जिला नहीं सकते थे ॥९॥ जिस संजीविनी विद्या को शुक्राचार्य जानते थे उस विद्या को बृहस्पति नहीं जानते थे, जिससे देवता बड़े दुःखी हुए ॥१०॥ शुक्राचार्य से भयभीत होकर देवता बृहस्पति के ज्येष्ठ पुत्र कच के पास गये और उनसे बोले ॥११॥ महाराज, हम लोग आपके भक्त हैं, आप भी हमारी रक्षा करें, आप हमारी सहायता करें। अमित तेजस्वी ब्राह्मण शुक्राचार्य जो विद्या जानते, हैं आप उसे शीघ्र ले आवें, आपको हम लोग अपने यज्ञ भाग में भाग देंगे। आप दानवराज वृषपर्वा के यहाँ शुक्रा-

रक्षते दानवांस्तत्र न स रक्षत्यदानवान् । तमाराधयितुं शक्तो भवान्पूर्ववयाः कविम् ॥१४॥
देवयानीं च दयितां सुतां तस्य महात्मनः । त्वमाराधयितुं शक्तोनान्यःकश्चनविद्यते ॥१५॥
शीलदाक्षिण्य माधुर्यैराचारेण दमेन च । देवयान्यां हि तुष्टायां विद्यां तां प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥१६॥
तथेत्युक्त्वा ततः प्रायाद्बृहस्पतिसुतः कचः । तदाऽभिपूजितो देवैः समीपे वृषपर्वणः ॥१७॥
स गत्वा त्वरितो राजन्देवैः संप्रेषितः कचः । असुरेन्द्रपुरे शुक्रं दृष्ट्वा वाक्यमुवाच ह ॥१८॥
ऋषेरंगिरसः पौत्रं पुत्रं साक्षाद्बृहस्पतेः । नाम्ना कचमितिख्यातं शिष्यं गृह्णातु मां भवान् ॥१९॥
ब्रह्मचर्यं चरिष्यामि त्वय्यहं परमंगुरो । अनुमन्यस्व मां ब्रह्मन्सहस्रं परिवत्सरान् ॥२०॥
शुक्र उवाच
कच सुस्वागतं तेऽस्तु प्रतिगृह्णामि ते वचः । अर्चयिष्येऽहमर्च्यंत्वामर्चितोऽस्तु बृहस्पतिः ॥२१॥
वैशम्पायन उवाच
कचस्तु तं तथेत्युक्त्वा प्रतिजग्राहतद्व्रतम् । आदिष्टं कविपुत्रेण शुक्रेणोशनसास्वयम् ॥२२॥
व्रतस्य प्राप्त कालं स यथोक्तंप्रत्यगृह्णत । आराधयन्नुपाध्यायं देवयानीं च भारत ॥२३॥
नित्यमाराधयिष्यँस्तौ युवायौवनगोचरे । गायन्नृत्यन्वादयँश्च देवयानीमतोषयत् ॥२४॥

चार्य को देख सकेंगे ॥१२,१३॥ वे केवल दानवों की ही रक्षा करते हैं, जो दानव नहीं हैं उनकी रक्षा नहीं करते, आप नयी उमर के हैं, आप उनको प्रसन्न कर सकते हैं ॥१४॥ उन महात्मा की प्रिय कन्या देवयानी है। उसको आप ही प्रसन्न कर सकते हैं। आपके अतिरिक्त दूसरा कोई उसको प्रसन्न करनेवाला नहीं है ॥१५॥ तुम्हारा शील, निपुणता, माधुर्य, आचार और संयम से देवयानी जब तुम पर प्रसन्न हो जायगी, तब तुम अवश्य ही उस संजीविनी विद्या को पा सकोगे ॥१६॥ देवताओं के कहने से बृहस्पति के पुत्र वृषपर्वा के पास जाने के लिए उपस्थित हुए। प्रस्थान के समय देवताओं ने उनका सत्कार किया ॥१७॥ देवताओं के द्वारा प्रेषित कच शीघ्र ही दानवराज की राजधानी में गये और शुक्र के पास जाकर वे इस प्रकार बोले ॥१८॥ मैं महर्षि अङ्गिरा का पौत्र हूँ और बृहस्पति का पुत्र, मेरा नाम कच है, आप मुझे अपना शिष्य बनावें ॥१९॥ हजार वर्षों तक मैं आपके यहाँ ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। ब्रह्मन्, आप ब्रह्मचर्य पूर्वक अपने यहाँ निवास करने की मुझे आज्ञा दें ॥२०॥

शुक्र बोले—कच, तुम्हारा मैं स्वागत करता हूँ। तुम्हारी प्रार्थना मुझे स्वीकार है। तुम हमारे पूजनीय हो, मैं तुम्हारी पूजा करूँगा। तुम्हारी पूजा से बृहस्पति भी पूजित होंगे ॥२१॥

वैशम्पायन बोले—कच ने शुक्राचार्य से "हाँ" कहा और वे उनके यहाँ ब्रह्मचारी बनकर रहने लगे, जिस व्रत के अनुष्ठान के लिए स्वयं शुक्र ने कच को आज्ञा दी थी ॥२२॥ व्रत के लिए शुक्राचार्य ने जो नियम तथा विधान बतलाये थे, उन सब का यथावत् पालन करते हुए कच देवयानी तथा गुरु शुक्र की आराधना करने लगे ॥२३॥ युवती देवयानी की आराधना युवा कच तत्पर होकर करने लगे। गाना, नाचना और बाजा बजाना आदि के द्वारा उन्होंने देवयानी को

सशीलयन्देवयानीं कन्यां संप्राप्त यौवनाम् । पुष्पैः फलैः प्रेषणैश्च तोषयामास भारत ॥२५॥
देवयान्यपि तं विप्रं नियमव्रतधारिणम् । गायंती च ललंती च रहःपर्यचरत्तथा ॥२६॥
पंचवर्षशतान्येवं कचस्य चरतोव्रतम् । तत्रातीयुरथोबुद्ध्वा दानवास्तं ततः कचम् ॥२७॥
गा रक्षन्तं वने दृष्ट्वा रहस्येकममर्षिताः । जघ्नुर्बृहस्पतेर्द्वेषाद्विद्यारक्षार्थमेव च ॥२८॥
हत्वा शालावृकेभ्यश्च प्रायच्छँल्लवशःकृतम् । ततो गावो निवृत्तास्ता अगोपाःस्वं निवेशनम् ॥२९॥
सा दृष्ट्वा रहिता गाश्च कचेनाभ्यगतावनात् । उवाच वचनं कालेदेवयान्यथ भारत ॥३०॥
देवयान्युवाच
आहुतं चाग्निहोत्रं ते सूर्यश्चास्तं गतः प्रभो । अगोपाश्चागतागावः कचस्तात न दृश्यते ॥३१॥
व्यक्तं हतो मृतो वापि कचस्तात भविष्यति । तं विना न च जीवेयमिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥३२॥
शुक्र उवाच
अयमेहीति संशब्द्य मृतं संजीवयाम्यहम् । ततः संजीवनीं विद्यां प्रयुज्य कचमाह्वयत् ॥३३॥
भित्वा भित्वा शरीराणि वृकानां स विनिर्गतः । आहूतः प्रादुरभवत्कचो हृष्टोऽथ विद्यया ॥३४॥
कस्माच्चिरायितोऽसीति पृष्टस्तामाह भार्गवीम् । समिधश्च कुशादीनि काष्ठभारं च भाविनि ॥३५॥

सन्तुष्ट किया ॥२४॥ युवती कन्या देवयानी का अनुसरण करते हुए कच ने पुष्प-फल तथा आज्ञा पालन के द्वारा उसको सन्तुष्ट किया ॥२५॥ देवयानी भी उस नियम तथा व्रत धारण करनेवाले ब्राह्मण की, गान तथा दुलार के द्वारा, एकान्त में सेवा करती थी ॥२६॥

इस प्रकार व्रत पालन करते हुए कच के पाँच सौ वर्ष बीत गये। इतने दिनों में दानवों ने भी कच को पहचान लिया। उन्हें मालूम हो गया कि यह बृहस्पति का पुत्र कच है और संजीविनी विद्या सीखने आया है। ॥२७॥ कच एकबार बन में अकेले गौ की रक्षा करते थे। उस समय बृहस्पति के द्वेष तथा संजीविनी विद्या की रक्षा के लिये दानवों ने क्रोध करके उनको मार डाला ॥२८॥ मारकर तथा टुकड़े टुकड़े करके दानवों ने भेड़ियों को खिला दिया। सायंकाल विना रक्षक के ही गौ बन से लौटीं ॥२९॥ गौ बन से लौट आयीं और कच नहीं आये, यह देखकर देवयानी ने पिता से कहा ॥३०॥ देवयानी बोली—पिता, आपने अग्निहोत्र कर लिया, सूर्यास्त भी हो गया, गौ बिना रक्षक के ही लौटी हैं, पर कच नहीं लौटे। वे आज नहीं दीख पड़े ॥३१॥ इससे मालूम होता है कि कच का या तो बध किया गया या वे स्वयं मर गये। उनके बिना मैं जी नहीं सकती, यह मैं आप से सत्य कहती हूँ ॥३२॥

शुक्रबोले—मैं उन्हें पुकार कर "आओ" ऐसा कह कर जिला देता हूँ। ऐसा कहकर संजीविनी विद्या का प्रयोग कर के उन्होंने कच को पुकारा ॥३३॥ शुक्राचार्य के बुलाने पर विद्या के प्रभाव से कच प्रसन्नता से साथ प्रकट हुए। वे भेड़ियों का शरीर फोड़ कर निकले ॥३४॥ तुमने देर क्यों की, यह पूछे जाने पर कच ने देवयानी से कहा—सुन्दरि, हवन की लकड़ियाँ, कुश तथा जलाने की लकड़ियाँ लेकर मैं आश्रम के पासवाले वट वृक्ष के पास आया। मेरे साथ ही

गृहीत्वाऽऽश्रममारात्तं वटवृक्षं समाश्रित. । गावश्च सहिताः सर्वा वृक्षच्छायामुपाश्रिताः ॥३६॥
असुरास्तत्र मां दृष्ट्वा कस्त्वमित्यभ्यचोदयन् । बृहस्पतिसुतश्चाहं कचइत्यभिविश्रुतः ॥३७॥
इत्युक्तमात्रे मां हत्वा पेषीकृत्वा तु दानवाः । दत्वा शालावृकेभ्यस्तु सुखं जग्मुः स्वमालयम् ॥३८॥
आहूतो विद्यया भद्रे भार्गवेण महात्मना । त्वत्समीपमिहायातः कथंचित्समजीवितः ॥३९॥
हतोऽहमिति चाचख्यौ पृष्टो ब्राह्मणकन्यया । स पुनर्देवयान्योक्तः पुष्पाहारो यदृच्छया ॥४०॥
वनं ययौ कचो विप्रो ददृशुर्दानवाश्च तम् । पुनस्तं पेषयित्वा तु समुद्रांभस्यमिश्रयन् ॥४१॥
चिरं गतं पुनः कन्या पित्रे तं संन्यवेदयत् । विप्रेण पुनराहूतो विद्यया गुरु देहजः ॥
पुनरावृत्य तद्वृत्तं न्यवेदयत तद्यथा ॥४२॥
ततस्तृतीयं हत्वा तं दग्ध्वा कृत्वा च चूर्णशः । प्रायच्छन् ब्राह्मणायैवसुरायामसुरास्तथा ॥४३॥
देवयान्यथ भूयोऽपि पितरं वाक्यमब्रवीत् । पुष्पाहारः प्रेषणकृत्कचस्तात न दृश्यते ॥४४॥
व्यक्तं हतो मृतो वापि कचस्तात भविष्यति । तं विना न च जीवेयं कचं सत्यं ब्रवीमि ते ॥४५॥
शुक्र उवाच
बृहस्पतेः सुतः पुत्रि कचः प्रेतगतिं गतः । विद्यया जीवितोऽप्येवं हन्यते करवामकिम् ॥४६॥
मैवं शुचो मा रुद देवयानि न त्वादृशी मर्त्यमनुप्रशोचते ।
यस्यास्तव ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चसेन्द्रा देवा वसवोऽथाश्विनौच ॥४७॥

सब गौ भी उसी वट वृक्ष की छाया में आकर एकत्र हुई ॥३५, ३६॥ वहाँ असुरों ने मुझे देखकर पूछा कि तुम कौन हो । "बृहस्पति का पुत्र मैं कच हूँ" इतना कहते ही मुझे मारकर तथा पीस कर उनलोगों ने भेड़ियों को दे दिया और वे प्रसन्नता पूर्वक अपने अपने घर चले गये ॥३७, ३८॥ कल्याणी, महात्मा शुक्राचार्य के बुलाने पर किसी प्रकार मैं जीवित हुआ और यहाँ तुम्हारे पास आया ॥३९॥ ब्राह्मण कन्या देवयानी के पूछने पर कच ने अपने वध का वृत्तान्त इस प्रकार कहा । पुनः एक बार अकस्मात देवयानी ने फूल ले आने के लिए उनसे कहा । कच वन में फूल लाने के लिए गये । दानवों ने उन्हें वहाँ देख लिया और उनलोगों ने कच को पीसकर समुद्र के जल में मिला दिया ॥४०, ४१॥ कच को गये जब बहुत देर हो गयी, तब पुत्री देवयानी ने अपने पिता से यह बात कही । शुक्र ने बृहस्पति पुत्र को पुनः विद्या के द्वारा बुलाया, जिससे वे पुनः लौट आये और आकर उन्होंने समस्त वृत्तान्त कहा ॥४२॥

असुरों ने कच को तीसरी बार फिर मारा, उन्हें जलाया और पीसा और शराब में मिलाकर शुक्राचार्य को ही दे दिया ॥४३॥ देवयानी पुनः पिता से बोली—पिता, हमारे लिए फूल लेआनेवाला और हमारी आज्ञाओं का पालन करनेवाला कच दिखायी नहीं पड़ता ॥४४॥ निश्चय वह मर गया, या मारा गया, पर कच के बिना मैं जी नहीं सकती, यह मैं आप से सत्य कहती हूँ ॥४५॥ शुक्राचार्य बोले—बृहस्पति पुत्र मर गया । पुत्री, मैं विद्या के प्रभाव से उसे जिलाता हूँ, फिर भी वह मारा जाता है, अब मैं क्या करूँ ? ॥४६॥ देवयानी, शोक मत करो, रोओ मत,

सुरद्विषश्चैव जगच्च सर्वमुपस्थाने सन्नमन्ति प्रभावात् ।
अशक्योऽसौ जीवयितुं द्विजातिः संजीवितो वध्यते चैव भूयः ॥४८॥

देवयान्युवाच

यस्यां गिरां बृद्धतमः पितामहो बृहस्पतिश्चापि पिता तपोनिधिः ।
ऋषेः पुत्रं तमथो वापि पौत्रं कथं न शोचेयमहं न रुद्याम् ॥४९॥
स ब्रह्मचारी च तपोधनश्च सदोत्थितः कर्मसु चैव दक्षः ।
कचस्य मार्गं प्रतिपत्स्ये न भोक्ष्ये प्रियो हि मे तात कचोऽभिरूपः ॥५०॥

वैशम्पायन उवाच

स पीड़ितो देवयान्या महर्षिः समाह्वयत्संरम्भाच्चैव काव्यः ।
असंशयं मामसुरा द्विषन्ति मे शिष्यानागतान्सूदयन्ति ॥५१॥
अब्राह्मणं कर्तुमिच्छन्तिरौद्रास्ते मां यथा व्यभिचरन्ति नित्यम् ।
अप्यस्य पापस्य भवेदिहान्तः कं ब्रह्महत्या न दहेदपीन्द्रम् ॥५२॥
गुरोर्हि भीतो विधया चोपहूतः शनैर्वाक्यं जठरे व्याजहार ।

वैशम्पायन उवाच

तमब्रवीत्केन पथोपनीतस्त्वंचोदरे तिष्ठसि ब्रूहि विप्र ॥५३॥

तुम्हारी जैसी स्त्री मृतक के लिए शोक नहीं करती । तुम्हारे सम्मान के लिए वेद, ब्राह्मण, इन्द्रादि देवता, बसुगण, अश्विनीकुमार, दानव तथा समस्त संसार नम्र होता है, तुम्हें प्रणाम करता है । अब उसका जिलाना भी कठिन है, यदि जिलाऊँ भी तो वह पुनः मारा जायगा ॥४७, ४८॥ देवयानी बोली—बड़े बूढ़े अङ्गिरा जिनके पितामह हैं और तपोनिधि बृहस्पति जिनके पिता हैं, उन ऋषि-पुत्र और पौत्र कच के लिए मैं शोक क्यों न करूँ, उनके लिए मैं क्यों न रोऊँ ? ॥४९॥ वह ब्रह्मचारी था, तपस्वी था, काम करने में जाग्रत तथा निपुण था । कच का जबतक पता न लगेगा, मैं भोजन न करूँगी । पिता, सुन्दर कच मुझे बड़ा ही प्रिय है ॥५०॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार देवयानी के बार बार दबाने पर शुक्राचार्य ने दैत्यों को बुलाकर उन्हें डाँटा । उन्होंने कहा—निश्चय ये दैत्य मुझ से द्वेष करने लगे हैं, क्योंकि मेरे यहाँ जो शिष्य आता है, उसे ये मार डालते हैं ॥ ५१॥ ये क्रूर दानव मुझ को भी अब्राह्मण बनाना चाहते हैं, अर्थात् कच मेरे पेट में पच जाय तो इस ब्रह्महत्या का पाप भी मुझ को ही लगेगा । इसी से ये मेरा सदा विरोधाचरण कर रहे हैं । क्या इस पाप का अन्त है ? ब्रह्महत्या किसको नहीं जलाती ? यह तो इन्द्र तक को जला देती है ॥५२॥ दानवों से ऐसा कहकर शुक्राचार्य ने कच को पुकारा । पर कच गुरु से डरते थे, गुरु के मरने का उन्हें भय था, अतएव धीरे धीरे वे उनके पेट में बोले । वैशम्पायन बोले—शुक्राचार्य ने कच से पूछा कि तुम किस मार्ग से जाकर मेरे पेट में वर्तमान हो, कहो ॥५३॥

कच उवाच

तव प्रसादान्न जहाति मां स्मृतिः स्मरामि सर्वं यच्च यथा च वृत्तम् ।
नत्वेवं स्यात्तपसः संक्षयो मे ततः क्लेशं घोरमिमं सहामि ॥५४॥
असुरैः सुरायां भवतोऽस्मि दत्तो हत्वा दग्ध्वा चूर्णयित्वा च काव्य ।
ब्राह्मीं मायां चासुरीं विप्र मायां त्वयि स्थिते कथमेवातिवर्तेत् ॥५५॥

शुक्र उवाच

किं ते प्रियं करवाण्यद्य वत्से वधेन मे जीवितं स्यात्कचस्य ।
नान्यत्र कुक्षेर्मम भेदनेन दृश्येत्कचो मद्गतो देवयानि ॥५६॥

देवयान्युवाच

द्वौ मां शोकावग्निकल्पौ दहेतां कचस्य नाशस्तव चैवोपघातः ।
कचस्य नाशे मम शर्म नास्ति तवोपघाते जीवितुं नास्मि शक्ता ॥५७॥

शुक्र उवाच

संसिद्धरूपोऽसि बृहस्पतेः सुत यत्त्वां भक्तं भजते देवयानी ।
विद्यामिमां प्राप्नुहि जीवनीं त्वं न चेदिन्द्रः कचरूपी त्वमद्य ॥५८॥
न निवर्तेत्पुनर्जीवन्कश्चिदन्यो ममोदरात् । ब्राह्मणं वर्जयित्वैकं तस्माद्विद्यामवाप्नुहि ॥५९॥

कच बोले—आप की कृपा से मेरी स्मृति नष्ट नहीं हुई है, जो कुछ जैसा हुआ है, वह सब मुझे स्मरण है। अतएव यहीं आप के पेट में मैं पड़ा हूँ। यदि आपका पेट फोड़कर निकलूँ तो आपको कष्ट देने के कारण मेरी तपस्या नष्ट हो जायगी, इसी से यह भयङ्कर कष्ट सह रहा हूँ ॥५४॥ काव्य, दानवों ने मुझे मारकर जलाकर और पीसकर शराब के साथ मुझे आप को दिया है। विप्र, आप ब्राह्मी और आसुरी दोनों मायाओं को जानते हैं; फिर आप का अतिक्रम कौन कर सकता है अर्थात् आप के पेट से निकलने की शक्ति मुझ में नहीं है ॥५५॥

शुक्र बोले—बेटी, अब मैं तुम्हारा प्रिय कार्य कैसे करूँ? मेरे वध से कच जीवित हो सकता है। कच मेरे पेट में है। मेरे पेट के फटे बिना वह दिखलायी नहीं पड़ सकता ॥५६॥

देवयानी बोली—यह दोनों ही मेरे लिए अग्नि के समान जलाने वाले हैं। कच का विनाश अथवा आप की मृत्यु, दोनों ही मेरे लिए दुःखदायी है। कच के नाश से मेरा कल्याण नष्ट हो जायगा और आपकी मृत्यु होने से मैं जी नहीं सकती ॥५७॥

शुक्र बोले—बृहस्पति पुत्र कच, अब तुम्हारी सिद्धि का समय आ गया, क्योंकि तुम देवयानी पर अनुराग करते हो और देवयानी तुम पर अनुराग करती है। यदि तुम कच रूपधारी इन्द्र नहींहो, तो इस संजीविनी विद्या को आज तुम पा लो, आज तुम्हें इसका ज्ञान हो जाय ॥५८॥ एक ब्राह्मण को छोड़कर दूसरा कोई मेरे पेट से जीता हुआ नहीं निकलता; अतएव तुम इन्द्र नहीं हो;

पुत्रो भूत्वा भावय भावितो मामस्मद्देहादुपनिष्क्रम्य तात ।
समीक्षेथा धर्मवतीमवेक्षां गुरोः सकाशात्प्राप्य विद्यां सविद्यः ॥६०॥

वैशम्पायन उवाच

गुरोः सकाशात्समवाप्य विद्यां भित्त्वा कुक्षिं निर्विचक्राम विप्रः ।
कचोऽभिरूपस्तत्क्षणाद्ब्राह्मणस्य शुक्लात्यये पौर्णमास्यामिवेन्दुः ॥६१॥
दृष्ट्वा च तं पतितं ब्रह्मराशिमुत्थापयामास मृतं कचोऽपि ।
विद्यां सिद्धां तामवाप्याभिवाद्य ततः कचस्तं गुरुमित्युवाच ॥६२॥
यः श्रोत्रयोरमृतं सन्निषिंचेद्योपे न विद्यस्य यथाममायम् ।
तं मन्येऽहं पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत्कृतमस्य जानन् ॥६३॥
ऋतस्य दातारमनुत्तमस्य निधिं निधीनामपि लब्धविद्याः ।
ये नाद्रियन्ते गुरुमर्चनीयं पापाँल्लोकाँस्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठाः ॥६४॥

वैशम्पायन उवाच

सुरापानाद्वञ्चनां प्राप्य विद्वान्संज्ञानाशं चैव महातिघोरम् ।
दृष्ट्वा कचं चापि तथाभिरूपं पीतं तदा सुरया मोहितेन ॥६५॥
समन्युरुत्थाय महानुभावस्तदोशना विप्रहितं चिकीर्षुः ।
सुरापानंप्रति संजातमन्युः काव्यः स्वयं वाक्यमिदं जगाद ॥६६॥

इस कारण आज तुम विद्या पा लो ॥५९॥ मैं तुम्हें जीवित करता हूँ। पुत्र होकर तुम मेरे शरीर से निकलो और मुझे जीवित करो। गुरु से विद्या पाने पर विद्वान् बनकर तुम धार्मिक बुद्धि रखना, मुझे सदा गुरु समझना ॥६०॥

वैशम्पायन बोले—गुरु से विद्या पाकर ब्राह्मण, सुन्दर कच उनका पेट फाड़कर उसी समय निकले, जिस प्रकार पूर्णमासी के दिन के अन्त होने पर चन्द्रमा उदित होता है ॥६१॥ कच ने वेदज्ञ शुक्राचार्य को मरा और पड़ा देखा तथा उनको जीवित कर के उठाया। उस सिद्ध विद्या को पाकर कच ने उन्हें प्रणाम किया और पुनः वे गुरु से इस प्रकार बोले ॥६२॥ जिसप्रकार शुक्राचार्य ने मेरे कानों में अमृत डाला है, उसी प्रकार यदि कोई दूसरा भी अमृत डालेगा तो मैं उसे माता पिता के समान आदरणीय समझूँगा। उसके उपकारों का स्मरण करके कभी उसका द्रोह न करूँगा ॥६३॥ श्रेष्ठ ज्ञान देने वाले, समस्त रत्न भाण्डारों से श्रेष्ठ भाण्डार गुरु का आदर जो लोग विद्या पाकर नहीं करते, जो पूज्य गुरु की पूजा नहीं करते, उनकी संसार में कोई स्थिति नहीं होती, वे निन्दित लोकों में जाते हैं ॥६४॥

वैशम्पायन बोले—विद्वान् होने पर भी मदिरा पीने से शुक्राचर्य ठगे गये, उससे उन्हें भयंकर बेहोशी हुई। उस समय मदिरा से बेहोश होकर मैं कुलीन कच को पी गया ॥६५॥ इस

यो ब्राह्मणोऽद्यप्रभृतीह कश्चिन्मोहात्सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः ।
अपेतधर्मा ब्रह्म चैव सस्यादस्मिँल्लोकेगर्हितः स्यात्परे च ॥६७॥
मया चैतां विप्रधर्मोक्तिसीमां मर्यादा वै स्थापितां सर्वलोके ।
संतो विप्राः शुश्रुवांसोगुरूणां देवा लोकाश्चोपश्रृण्वन्तु सर्वे ॥६८॥
इतीदमुक्त्वा स महानुभावस्तपोनिधीनां निधिरप्रमेयः ।
तान्दानवान्दैवविमूढ़बुद्धीनिदं समाहूयवचोऽभ्युवाच ॥६९॥
आचक्षे वो दानवा बालिशाःस्थसिद्धः कचोवत्स्यतिमत्सकाशे ।
संजीवनीं प्राप्य विद्यां महात्मा तुल्यप्रभावो ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः ॥७०॥
एतावदुक्त्वा वचनं विरराम स भार्गवः । दानवाविस्मयाविष्टाः प्रययुः स्वं निवेशनम् ॥७१॥
गुरोरुष्य सकाशे तु दशवर्षशतानि सः । अनुज्ञातः कचो गन्तुमियेष त्रिदशालयम् ॥७२॥
इति श्री महाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि ययात्युपाख्याने षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

वैशम्पायन उवाच
समावृतव्रतं तं तु विसृष्ट गुरुणा तदा । प्रस्थितं त्रिदशावासं देवयान्यब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

विचार से महानुभाव शुक्राचार्य को क्रोध आया, उसी क्रोध में वे ब्राह्मणों का कल्याण करना चाहते थे। अतएव मदिरा पान पर क्रोध करके वे स्वयं इस प्रकार बोले ॥६६॥ जो मूर्ख ब्राह्मण आज से मोह के कारण मद्यपान करेगा, उसका धर्म नष्ट हो जायगा, उसे ब्रह्महत्या का पाप होगा। इस लोक में तथा परलोक में वह निन्दित होगा ॥६७॥ "मैंने आज से ब्राह्मण धर्म की यह मर्यादा बाँधी है" यह बात सभी सज्जन, ब्राह्मण, गुरु के उपदेश सुनने वाले, देवता तथा और सब लोग सुन लें ॥६८॥ ऐसा कहकर तपस्वियों में श्रेष्ठ महानुभाव शुक्राचार्य ने भाग्य के फेर से मूर्ख बने दानवों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा ॥६९॥ मूर्ख दानवों, मैं तुम लोगों से कहता हूँ, विद्या के प्रभाव से कच सिद्ध हो गया है, यह मेरे पास रहेगा। संजीविनी विद्या पाकर ये महात्मा ब्रह्मा के समान प्रभावशाली हो गये हैं और ब्रह्मस्वरूप हो गये हैं ॥७०॥ इतना कहकर भृगुवंशी शुक्राचार्य चुप हो गये, दानव भी अत्यन्त विस्मित होकर अपने अपने घर गये ॥७१॥ गुरु के समीप दस सौ वर्ष रहकर तथा उनकी आज्ञा पाकर कच देवलोक जाने के लिए तयार हुए ॥७२॥

षट् सप्ततितम अध्याय ।

कच और देवयानी का एक दूसरे को शाप देना ।

वैशम्पायन बोले—विद्याध्ययन का व्रत समाप्त होने पर गुरु की आज्ञा से कच देवलोक



कच और देवयानी

[चित्रकार—चंद्र मुकर्जी]

ऋषेरंगिरसः पौत्र वृत्तेनाभिजनेन च । भ्राजसे विद्यया चैव तपसा च दमेन च ॥ २ ॥
ऋषिर्यथाऽङ्गिरामान्यः पितुर्मम महायशाः । तथामान्यश्च पूज्यश्च मम भूयो बृहस्पतिः ॥ ३ ॥
एवं ज्ञात्वा विजानीहि यद्ब्रवीमि तपोधन । व्रतस्थे नियमोपेते यथावर्ताम्यहं त्वयि ॥ ४ ॥
स समावृत्तविद्यो मां भक्तां भजितुमर्हसि । गृहाण पाणिं विधिवन्मम मंत्रपुरस्कृतम् ॥ ५ ॥

कच उवाच

पूज्यो मान्यश्च भगवान्यथा तव पिता मम । तथा त्वमनवद्यांगि पूजनीयतरा मम ॥ ६ ॥
प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा भार्गवस्य महात्मनः । त्वं भद्रे धर्मतः पूज्या गुरुपुत्री सदा मम ॥ ७ ॥
यथा मम गुरुर्नित्यं मान्यः शुक्रः पिता तव । देवयानि तथैव त्वं नैवं मां वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

देवयान्युवाच

गुरुपुत्रस्य पुत्रो वै न त्वं पुत्रश्च मे पितुः । तस्मात्पूज्यश्च मान्यश्च ममापि त्वं द्विजोत्तम ॥ ९ ॥
असुरैर्हन्यमाने च कच त्वयि पुनः पुनः । तदा प्रभृति या प्रीतिस्तां त्वमद्य स्मरस्व मे ॥१०॥
सौहार्दे चानुरागे च वेत्थ मे भक्तिमुत्तमाम् । नमामर्हसि धर्मज्ञ त्यक्तुं भक्तामनागसम् ॥११॥

कच उवाच

अनियोज्ये नियोगे मां नियुनंक्षि शुभव्रते । प्रसीद सुभ्रु त्वं मह्यं गुरोर्गुरुतरा शुभे ॥१२॥

में जाने के लिए प्रस्थान करने लगे । उस समय देवयानी उनसे इस प्रकार बोलीं ॥१॥ तुम अङ्गिरा ऋषि के पौत्र हो, तुम्हारा कुल श्रेष्ठ है । विद्या, तपस्या तथा इन्द्रिय-जय के कारण तुम और बड़े हो गये हो ॥२॥ यशस्वी अङ्गिरा ऋषि, जैसे मेरे पिता के मान्य हैं, उसी प्रकार बृहस्पति भी मेरे पूज्य और मान्य हैं ॥३॥ तपोधन, इन बातों को जानकर मैं जो कुछ कहती हूँ उसे समझो। जब तुमने व्रत का नियम लिया था, उस समय मैंने जो कुछ किया है, वह तुम्हें मालूम है ॥४॥ अब तुम्हारा व्रत पूरा हो गया । मैं तुम पर अनुराग रखती हूँ, तुम मुझे अङ्गीकार करो ॥५॥

कच बोले—सुन्दरि, तुम्हारे पिता जिस प्रकार मेरे मान्य और पूज्य हैं, उसी प्रकार तुम भी मेरी पूजनीया हो ॥६॥ महात्मा शुक्राचार्य की तुम प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हो । कल्याणि, तुम मेरी गुरु-पुत्री हो, तुम धर्मतः मेरी सदा पूज्य हो ॥७॥ देवयानी, जिस प्रकार तुम्हारे पिता शुक्राचार्य मेरे गुरु हैं और सदा माननीय हैं, इसी प्रकार तुम भी मेरी माननीया हो, तुम्हें मुझ से ऐसा नहीं कहना चाहिए ॥८॥

देवयानी बोली—तुम गुरु-पुत्र के पुत्र हो, मेरे पिता के पुत्र नहीं हो, अतएव द्विजश्रेष्ठ तुम भी मेरे माननीय और पूजनीय हो ॥९॥ कच, असुरों ने बराबर तुम्हारा वध किया, उस समय से तुम पर मेरा जो अनुराग है, उसका तुम स्मरण करो ॥१०॥ सौहार्द तथा अनुराग मेरा कैसा है, मेरी मति कैसी है, यह तुम स्वयं जानते हो; अतएव धर्मज्ञ, निरपराधिनी मेरा त्याग तुम को नहीं करना चाहिए ॥११॥

कच बोले—सुव्रते, जिस विषय के लिए तुम्हें आज्ञा नहीं देनी चाहिए, उसी के लिए

यत्रोषितं विशालाक्षि त्वया चन्द्रनिभानने । तत्राहमुषितो भद्रे कुक्षौ काव्यस्य भाविनि ॥१३॥
भगिनी धर्मतो मे त्वं मैवं वोचः सुमध्यमे । सुखमस्म्युषितो भद्रे न मन्युर्विद्यते मम ॥१४॥
आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शिवमाशंस मे पथि । अविरोधेन धर्मस्य स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरे ॥
अप्रमत्तोत्थिता नित्यमाराधय गुरुं मम ॥१५॥

देवयान्युवाच
यदि मां धर्मकामार्थे प्रत्याख्यास्यसि याचितः । ततः कच न ते विद्या सिद्धिमेषा गमिष्यति ॥१६॥
कच उवाच
गुरुपुत्रीति कृत्वाऽहं प्रत्याचक्षे न दोषतः । गुरुणा चाननुज्ञातः काममेवं शपस्व माम् ॥१७॥
आर्षधर्मं ब्रुवाणोऽहं देवयानि यथा त्वया । शप्तो नार्होऽस्मि शापस्य कामतोऽद्य न धर्मतः ॥१८॥
तस्माद्भवत्या यः कामो न तथा स भविष्यति । ऋषिपुत्रो न ते कश्चिज्जातु पाणिं ग्रहीष्यति ॥१९॥
फलिष्यति न ते विद्या यत्त्वं मामात्थ तत्तथा । अध्यापयिष्यामि तु यं तस्य विद्या फलिष्यति ॥२०॥
वैशम्पायन उवाच
एवमुक्त्वा द्विजश्रेष्ठो देवयानीं कचस्तदा । त्रिदशेशालयं शीघ्रं जगाम द्विजसत्तमः ॥२१॥

तुम आज्ञा देती हो । सुभ्रु, तुम मुझपर कृपा करो, तुम गुरु से भी बढ़कर मेरे लिए मान्य हो ॥१२॥ हे चन्द्रानने, विशालाक्षी, शुक्राचार्य के जिस कोख में तुमने निवास किया है, उसी में मैंने भी निवास किया है ॥१३॥ अतएव धर्मानुसार तुम मेरी बहन होती हो, तुम ऐसी बात मत कहो । मैं बहुत दिन तक तुम्हारे साथ रहा हूँ, मेरा कोई उलहना नहीं है । अर्थात् तुम्हारे इस आचरण से मुझे क्रोध नहीं है ॥१४॥ मैं तुम से आज्ञा चाहता हूँ, अब जाता हूँ, मार्ग में मेरे कल्याण की कामना करो, धर्म में बिना आघात पहुँचाये बातचीत के अवसर पर तुम कभी कभी मेरा स्मरण कर लिया करना । सदा सावधान और आलस्यरहित होकर मेरे गुरु की सेवा करना ॥१५॥

देवयानी बोली—कच, धर्माचरण और कामभोग के लिए मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, पर तुम मेरा तिरस्कार करते हो; अतएव कच, तुम्हारी यह विद्या सिद्ध न होगी, यह फलवती न होगी ॥१६॥

कच बोले—तुम मेरी गुरु-पुत्री हो, इसी कारण मैंने तुम्हारी प्रार्थना अस्वीकार की है; तुममें कोई त्रुटि है, इस कारण नहीं । इस विषय में गुरु की भी कोई आज्ञा मुझे नहीं मिली है । ऐसी दशा में इच्छानुसार तुम शाप दे सकती हो ॥१७॥ देवयानी, मैंने तुमसे जो बातें कही हैं, वे ऋषियों के धर्म के अनुसार हैं । मैं शाप के योग्य न था, अतएव तुमने जो मुझे शाप दिया है, वह कामवश होकर, धर्मानुकूल नहीं ॥१८॥ अतएव तुम्हारा मनोरथ कभी पूरा न होगा, कोई ऋषि पुत्र, तुम्हारा पाणिग्रहण कभी न करेगा ॥१९॥ 'मेरी विद्या फलवती न होगी' तुमने मेरे लिए ऐसा कहा है, इसे मैं स्वीकार करता हूँ । पर इससे मेरी कोई हानि नहीं है । क्योंकि यह विद्या मैं जिसको पढ़ाऊँगा, उसकी विद्या तो फलवती होगी ॥२०॥

वैशम्पायन बोले—ब्राह्मणश्रेष्ठ कच, देवयानी से इस प्रकार कहकर शीघ्र ही वहाँ से

ततस्तयोर्मिथस्तत्र विरोधः समजायत । देवयान्याश्च राजेन्द्र शर्मिष्ठायाश्च तत्कृते ॥ ७ ॥
देवयान्युवाच
कस्माद्गृह्णासि मे वस्त्रं शिष्या भूत्वा ममासुरि । समुदाचारहीनाया न ते साधु भविष्यति ॥ ८ ॥
शर्मिष्ठोवाच
आसीनं च शयानं च पिता ते पितरं मम। स्तौति बन्दीव चाभीक्ष्णंनीचैःस्थित्वा विनीतवत् ॥ ९ ॥
याचतस्त्वं हि दुहिता स्तुवतः प्रतिगृह्णतः । सुताहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः ॥१०॥
आदुन्वस्व विदुन्वस्व द्रुह्य कुप्यस्व याचकि । अनायुधासायुधाया रिक्ताक्षुभ्यसि भिक्षुकि ॥११॥
लप्स्यसे प्रतियोद्धारं न हि त्वां गणयाम्यहम् ।
वैशम्पायन उवाच
समुच्छ्रयं देवयानीं गतां सक्तां च वाससि ॥१२॥
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे ततः स्वपुरमागमत् । हतेयमिति विज्ञाय शर्मिष्ठा पापनिश्चया ॥१३॥
अनवेक्ष्य ययौ वेश्म क्रोधवेगपरायणा । अथ तं देशमभ्यागाद्ययातिर्नहुषात्मजः ॥१४॥
श्रान्तयुग्यः श्रान्तहयो मृगलिप्सुः पिपासितः । स नाहुषः प्रेक्षमाण उदपानं गतोदकम् ॥१५॥
ददर्श राजा तां तत्र कन्यामग्निशिखामिव । तामपृच्छत्स दृष्ट्वैव कन्याममरवर्णिनीम् ॥१६॥

लोगों के वस्त्र मिल गये हैं ॥६॥ इसी को लेकर देवयानी और शर्म्मिष्ठा में विरोध खड़ा हो गया ॥७॥ देवयानी बोली—दानवि, तुम मेरी शिष्या होकर मेरा वस्त्र क्यों ले रही हो । तुम्हारा यह कार्य सदाचार का विरोधी है । इससे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥८॥ शर्मिष्ठा बोली—मेरे पिता बैठे हों या सोते हों ; तुम्हारे पिता सदा वन्दी के समान उनकी स्तुति करते हैं, वे उनके सामने नम्र होकर खड़े रहते हैं ॥९॥ तू माँगनेवाले स्तुति करनेवाले और दान लेनेवाले की कन्या है और मैं उसकी कन्या हूँ, जिसकी स्तुति होती है, जो दान देता है, पर दान नहीं लेता ॥१०॥ तुम स्वयं छाती कूटकर विलाप करो, भूमि में लोटो, सदा के लिए क्रोध करो या बदला लेने के लिए तयार हो जाओ । भिक्षुकि, तुम अस्त्रहीना हो और मैं अस्त्रधारिणी हूँ; तुम दरिद्र हो, व्यर्थ क्रोध करती हो ॥११॥ तुम यदि युद्ध करना चाहो तो तुमको जवाब देनेवाला मिलेगा । मैं तुमको कोई चीज़ नहीं समझती । वैशम्पायन बोले—देवयानी बहुत बढ़ गयी है, वस्त्र के लिए वह झगड़ा करने पर उतारू है, यह देखकर शर्मिष्ठा ने उसे कुएँ में ढकेल दिया और वह अपने नगर में चली गयी । बुरा अभिप्राय रखनेवाली शर्मिष्ठा ने देवयानी को मरी समझ लिया ॥१२, १३॥ शर्मिष्ठा को बड़ा क्रोध हो आया था, अतएव बिना इस बात का पता लगाये कि देवयानी जीती है या मरी, वह घर चली गयी । अनन्तर नहुष-पुत्र ययाति वहाँ आये ॥१४॥ वे मृगा का शिकार करना चाहते थे, पर उनके रथ और सवारी के घोड़े थक गये थे । वे बहुत प्यासे थे । उन्होंने एक कुआं देखा, जिसमें जल नहीं था ॥१५॥ अग्निशिखा के समान दीप्तिमती एक कन्या राजा ने वहाँ देखी । देवकन्या के समान उस कन्या को देखकर राजा ने उससे अति मनोहर और कोमल शब्दों

सान्त्वयित्वा नृपश्रेष्ठः साम्ना परमवल्गुना । का त्वं ताम्रनखी श्यामा सुमृष्टमणिकुण्डला ॥१७॥
दीर्घं ध्यायसि चात्यर्थं कस्माच्छोचसि चातुरा । कथं च पतिताऽस्यस्मिन्कूपे वीरुत्तृणावृते ॥१८॥
दुहिता चैव कस्य त्वं वद सत्यं सुमध्यमे ।

देवयान्युवाच

योऽसौ देवैर्हतान्दैत्यानुत्थापयति विद्यया ॥१९॥
तस्य शुक्रस्य कन्याऽहं स मां नूनं न बुध्यते । एष मे दक्षिणो राजन्पाणिस्ताम्रनखांगुलिः ॥२०॥
समुद्धर गृहीत्वा मां कुलीनस्त्वं हि मे मतः । जानामिहि त्वां संशान्तं वीर्यवन्तं यशस्विनम् ॥२१॥
तस्मान्मां पतितामस्मात्कूपादुद्धर्तुमर्हसि ।

वैशम्पायन उवाच

तामथो ब्राह्मणीं राजा विज्ञाय नहुषात्मजः ॥२२॥
गृहीत्वा दक्षिणे पाणावुज्जहार ततोऽवटात् । उद्धृत्य चैनां तरसा तस्मात्कूपान्नराधिपः ॥२३॥
आमन्त्रयित्वा सुश्रोणीं ययातिः स्वपुरं ययौ । गते तु नाहुषे तस्मिन्देवयान्यप्यनिन्दिता ॥२४॥
उवाच शोकसन्तप्ता घूर्णिकामागतां पुरः ।

देवयान्युवाच

त्वरितं घूर्णिके गच्छ शीघ्रमाचक्ष्व मे पितुः ॥२५॥
नेदानीं सम्प्रवेक्ष्यामि नगरं वृषपर्वणः ।

वैशम्पायन उवाच

सा तत्र त्वरितं गत्वा घूर्णिकाऽसुरमन्दिरम् ॥२६॥

में उसको समझाकर पूछा—हे लाल नखवाली सुन्दरि, उज्ज्वल मणि-कुण्डल धारण करनेवाली, तू कौन है ॥१६, १७॥ तू क्यों इतना अधिक विचारमग्न हो गयी है, दुःखिनी होकर क्यों शोक कर रही है? घास-पात से ढके इस कुएँ में कैसे गिर पड़ी हो ॥१८॥ सुमध्यमे, सच कहो तुम किसकी कन्या हो? देवयानी बोली—देवताओं के द्वारा मारे गये दैत्यों को जो अपनी विद्या के प्रभाव से जीवित कर देते हैं, उन्हीं शुक्राचार्य की मैं कन्या हूँ; पर उन्हें यह मालूम नहीं है कि मैं इस प्रकार यहाँ कुएँ में पड़ी हुई हूँ। राजन्! यह मेरा दाहिना हाथ है, जिसकी अँगुलियों में लाल नख हैं। मेरा हाथ पकड़कर तुम मुझे निकाल लो। मैं समझती हूँ कि तुम कुलीन हो, मैं तुम को शान्तचित्त, पराक्रमी और यशस्वी समझती हूँ ॥१९—२१॥ अतएव इस कुएँ में पड़ी हुई मुझे तुम निकाल लो। वैशम्पायन बोले—अनन्तर नहुष-पुत्र ययाति ने उस ब्राह्मणी का परिचय पाकर दाहिना हाथ पकड़कर उसे उस कुएँ से बाहर निकाला और उससे आज्ञा लेकर वे अपनी राजधानी में चले गये। राजा के चले जाने पर सुन्दरी देवयानी शोक-पीड़ित होकर घूर्णिका नाम की दासी से बोली, जो उस समय नगर से आ गयी थी,—घूर्णिका, तू शीघ्र जा

दृष्ट्वा काव्यमुवाचेदं सम्भ्रमाविष्टचेतना । आचचक्षे महाप्राज्ञं देवयानीं वने हताम् ॥२७॥
शर्मिष्ठया महाभाग दुहित्रा वृषपर्वणः । श्रुत्वा दुहितरं काव्यस्तत्र शर्मिष्ठया हताम् ॥२८॥
त्वरया निर्ययौ दुःखान्मार्गमाणः सुतां वने । दृष्ट्वा दुहितरं काव्यो देवयानीं ततो वने ॥२९॥
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् । आत्मदोषैर्नियच्छन्ति सर्वे दुःखसुखेजनाः ॥३०॥
मन्ये दुश्चरितं तेऽस्ति यस्येयं निष्कृतिः कृता ।

देवयान्युवाच

निष्कृतिर्मेऽस्तु वा मास्तु श्रृणुष्वावहितो मम ॥३१॥
शर्मिष्ठया यदुक्ताऽस्मि दुहित्रा वृषपर्वणः । सत्यं किलैतत्साप्राह दैत्यानामसि गायनः ॥३२॥
एवं हि मे कथयति शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । वचनं तीक्ष्णपरुषं क्रोधरक्तेक्षणा भृशम् ॥३३॥
स्तुवतो दुहिता नित्यं याचतः प्रतिगृह्णतः । अहं तु स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः ॥३४॥
इदं मामाह शर्मिष्ठा दुहिता वृषपर्वणः । क्रोधसंरक्तनयना दर्पपूर्णा पुनः पुनः ॥३५॥
यद्यहं स्तुवतस्तात दुहिता प्रतिगृह्णतः । प्रसादयिष्ये शर्मिष्ठामित्युक्ता तु सखी मया ॥३६॥

शुक्र उवाच

स्तुवतो दुहिता न त्वं याचतः प्रतिगृह्णतः । अस्तोतुः स्तूयमानस्य दुहिता देवयान्यसि ॥३७॥

और मेरे पिता से कह कि मैं वृषपर्वा के नगर में पैर न रक्खूँगी। वैशम्पायन बोले—घूर्णिका शीघ्र ही दानवराज के घर गयी। शुक्राचार्य को देखकर वह बोली—वह बहुत घबड़ा गयी थी—उसने कहा कि वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा ने देवयानी को वन में मार डाला है। वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के द्वारा अपनी कन्या के मारे जाने का वृत्तान्त सुनकर शुक्राचार्य दुःख से कन्या को वन में ढूँढ़ने के लिए वहाँ से शीघ्र चले। उन्होंने अपनी कन्या को वन में देखा ॥२२—२९॥ शुक्राचार्य उसे गोद में लेकर तथा दुःखी होकर उससे बोले—मनुष्य अपने ही कर्मों से दुःख सुख पाता है ॥३०॥ मैं समझता हूँ कि तुम्हारा कोई पाप था, जिसका यह प्रायश्चित्त हुआ है। देवयानी बोली—मेरा प्रायश्चित्त हो या न हो, तुम सावधान होकर मेरी बात सुनो ॥३१॥ वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने जो कहा है, क्या वह सत्य है? क्या सच-मुच तुम दानवों की स्तुति करनेवाले बन्दी हो? ॥३२॥ वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा क्रोध से आँखें लाल करके मुझ से ऐसा कठोर और तीखा वचन कहती है ॥३३॥ उसने मुझसे कहा है कि तू स्तुति करनेवाले, माँगनेवाले, तथा दान लेनेवाले की कन्या है और मैं स्तुति सुननेवाले, दान देनेवाले और दान न लेनेवाले की कन्या हूँ ॥३४॥ क्रोध से आँखें लाल कर तथा अहंकार से वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा ने मुझ से बारबार ऐसा कहा है ॥३५॥ मैंने अपनी सखी से कहा कि यदि मैं स्तुति करनेवाले तथा दान लेनेवाले की कन्या होऊँगी तो तुम्हारी स्तुति करूँगी, तुम्हें मनाऊँगी ॥३६॥

शुक्राचार्य बोले—तू स्तुति करनेवाले, माँगनेवाले और दान लेनेवाले की कन्या नहीं है, किन्तु उसी की कन्या है, जिसकी स्तुति की जाती है और जो स्वयं किसी की स्तुति नहीं

वृषपर्वैव तद्वेद शक्रो राजा च नाहुषः । अचिन्त्यं ब्रह्म निर्द्वन्द्वमैश्वरं हि बलं मम ॥३८॥
यच्च किंचित्सर्वगतं भूमौ वा यदि वा दिवि। तस्याहमीश्वरो नित्यं तुष्टेनोक्तः स्वयंभुवा ॥३९॥
अहं जलं विमुञ्चामि प्रजानां हितकाम्यया । पुष्णाम्योषधयः सर्वा इति सत्यं ब्रवीमि ते ॥४०॥
वैशम्पायन उवाच
एवं विषादमापन्नां मन्युना सम्प्रपीडिताम् । वचनैर्मधुरैः श्लक्ष्णैः सान्त्वयामास तां पिता ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्यानेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

शुक्र उवाच
यः परेषां नरो नित्यमतिवादाँस्तितिक्षते । देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम् ॥ १ ॥
यः समुत्पतितं क्रोधं निगृह्णाति हयं यथा । सयन्तेत्युच्यतेसद्भिर्नयोरश्मिषु लम्बते ॥ २ ॥
यः समुत्पतितं क्रोधमक्रोधेन निरस्यति । देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम् ॥ ३ ॥
यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयेह निरस्यति । यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥ ४ ॥
यः संधारयते मन्युं योऽतिवादाँस्तितिक्षते । यश्च तप्तो न तपति दृढं सोऽर्थस्य भाजनम् ॥ ५ ॥

करता ॥३७॥ यह बात स्वयं वृषपर्वा जानता है, इन्द्र और राजा ययाति जानते हैं। मेरी प्रभुता का बल अचिन्तनीय है, उसका कोई प्रतिपक्षी नहीं है ॥३८॥ स्वयं प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने मुझ से कहा है कि पृथिवी और स्वर्ग में जो कुछ है, उस सब का स्वामी मैं ही हूँ ॥३९॥ मैं तुम से सच-सच कहता हूँ कि प्रजा के कल्याण के लिए मैं ही जल की वृष्टि करता हूँ, ओषधियों को पुष्ट करता हूँ, अन्न आदि उत्पन्न करता हूँ ॥४०॥ वैशम्पायन बोले—दुःखिनी और क्रोधपीड़ित कन्या को इस प्रकार मधुर और कोमल वचनों से पिता ने समझाया ॥४१॥

अष्टसप्ततितम सर्ग ।

शुक्राचार्य और देवयानी का संवाद ।

शुक्राचार्य बोले—जो मनुष्य दूसरों की निन्दा सदा सहता है, देवयानी! समझो, उसने इस समस्त संसार को जीत लिया ॥१॥ जो उत्पन्न क्रोध को घोड़े के समान रोक लेता है, वही सवार है; लगाम पकड़कर बैठनेवाला सवार नहीं होता। क्रोध रोकनेवाला ही मनुष्य है, क्रोध के पीछे पागल बननेवाला नहीं ॥२॥ जो अक्रोध,सहनशीलता से क्रोध को दूर कर देता है, देवयानी! समझो कि उसने समस्त संसार जीत लिया ॥३॥ जो मनुष्य क्रोध को क्षमा के द्वारा दूर कर देता है, जिस प्रकार साँप अपनी पुरानी केंचुल छोड़ता है, वही पुरुष कहा जाता है ॥४॥ जो क्रोध को रोक लेता है,

यो यजेदपरिश्रान्तो मासिमासि शतं समाः । न क्रुध्येद्यश्च सर्वस्य तयोरक्रोधनोऽधिकः ॥६॥
यत्कुमाराः कुमार्यश्च वैरं कुर्युरचेतसः । न तत्प्राज्ञोऽनुकुर्वीत न विदुस्ते बलाबलम् ॥७॥
देवयान्युवाच
वेदाहं तातबालाऽपि धर्माणां यदिहान्तरम् । अक्रोधे चापि वादे च वेद चापि बलाबलम् ॥८॥
शिष्यस्या शिष्यवृत्तेस्तु न क्षन्तव्यंबुभूषता । तस्मात्संकीर्णवृत्तेषु वासो मम न रोचते ॥९॥
पुमांसो ये हि निन्दन्ति वृत्तेनाभिजनेन च । न तेषु निवसेत्प्राज्ञः श्रेयोऽर्थी पापबुद्धिषु ॥१०॥
ये त्वेनमभिजानन्ति वृत्तेनाभिजनेन वा । तेषु साधुषु वस्तव्यं स वासः श्रेष्ठ उच्यते ॥११॥
वाग्दुरुक्तं महाघोरं दुहितुर्वृषपर्वणः । मम मथ्नाति हृदयमग्निकामइवारणिम् ॥१२॥
न ह्यतो दुष्करतरं मन्ये लोकेष्वपि त्रिषु । यः सपत्नश्रियं दीप्तां हीनश्रीः पर्युपासते ॥
मरणं शोभनं तस्य इति विद्वज्जना विदुः ॥१३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

निन्दा को सह लेता है, क्रोध होने पर भी जो उबल नहीं पड़ता, वही मनुष्य अर्थ का अधिकारी है, उसे ही संसार में सफलता मिलती है ॥५॥ एक मनुष्य प्रत्येक मास उत्साह के साथ यज्ञ करता है, दूसरा कभी किसी पर क्रोध नहीं करता ; इन दोनों में क्रोध न करनेवाला ही बड़ा है ॥६॥ लड़के और लड़कियाँ जो आपस में विरोध कर लेते हैं, इस कारण बड़ों को भी आपस में विरोध नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे अज्ञान होते हैं, उन्हें उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं होता ॥७॥ देवयानी बोली—पिताजी, बालिका होने पर भी मैं धर्म का रहस्य जानती हूँ । अक्रोध और निन्दा का बलाबल भी जानती हूँ । इनके औचित्य-अनौचित्य का भी मुझे ज्ञान है ॥८॥ जो शिष्य होकर शिष्य का-सा व्यवहार नहीं करता, उन्नतिकामी को उसे क्षमा नहीं करना चाहिए, अतएव सङ्कुचित व्यवहार करनेवाले इन लोगों के देश में रहने की मेरी इच्छा नहीं होती ॥९॥ जो मनुष्य चरित्र और कुल के कारण किसी की निन्दा करते हैं, ऐसे पापियों के साथ कल्याण चाहनेवाले मनुष्यों को नहीं रहना चाहिए ॥१०॥ जहाँ के लोग चरित्र का और कुल का आदर करनेवाले हों, उन्हीं सज्जनों के साथ निवास करना चाहिए । वही निवास श्रेष्ठ कहा जा सकता है ॥११॥ वृषपर्वा की बेटी की कटूक्तियाँ मेरे हृदय को मथती हैं, जिस प्रकार आग निकालने-वाला अरणियों (दो लकड़ियों) को मथता है ॥१२॥ दरिद्र मनुष्य अपने शत्रु की विशाल सम्पत्ति की उपासना करे, इससे बढ़कर दूसरा कोई कठोर काम तीनों लोकों में नहीं है । विद्वान् कहते हैं कि ऐसे मनुष्य का मर जाना ही अच्छा है ॥१३॥

ऊनाशीतितम अध्याय ।

वैशम्पायन उवाच

ततः काव्यो भृगुश्रेष्ठः समन्युरुपगम्य ह। वृषपर्वाणमासीनमित्युवाचाविचारयन् ॥१॥
नाधर्मश्चरितो राजन्सद्यः फलति गौरिव । शनैरावर्त्यमानो हि कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥२॥
पुत्रेषु वा नप्तृषु वा न चेदात्मनि पश्यति । फलत्येव ध्रुवं पापं गुरुभुक्तमिवोदरे ॥३॥
यदघातयथा विप्रं कचमाङ्गिरसं तदा । अपापशीलं धर्मज्ञं शुश्रूषुं मद्गृहे रतम् ॥४॥
वधादनर्हतस्तस्य वधाच्च दुहितुर्मम । वृषपर्वन्निबोधेदं त्यक्ष्यामि त्वां सबान्धवम् ॥
स्थातुं त्वद्विषये राजन्न शक्ष्यामि त्वयासह ॥५॥
अहो मामभिजानासि दैत्य मिथ्याप्रलापिनम् । यथेममात्मनोदोषं न नियच्छस्युपेक्षसे ॥६॥

वृषपर्वोवाच

नाधर्मं न मृषावादं त्वयि जानामि भार्गव । त्वयि धर्मश्च सत्यं च तत्प्रसीदतु नो भवान् ॥७॥
यद्यस्मानपहायत्वमितो गच्छसि भार्गव । समुद्रं सम्प्रवेक्ष्यामो नान्यदस्ति परायणम् ॥८॥

शुक्र उवाच

समुद्रं प्रविशध्वं वा दिशो वा द्रवतासुराः । दुहितुर्नाप्रियं सोढुं शक्तोऽहं दयिता हि मे ॥९॥

शर्मिष्ठा का देवयानी की दासी बनना ।

वैशम्पायन बोले—देवयानी की बातें सुनकर भृगुकुल-श्रेष्ठ शुक्राचार्य क्रोध कर के वृषपर्वा के यहाँ गये । वह बैठा हुआ था । वे परिणाम सोचे बिना ही उससे बोले ॥१॥ राजन्, अधर्माचरण शीघ्र फल नहीं देता, वह पृथिवी के समान धीरे धीरे देर में फल देता है । वह यदि बार बार किया जाय तो कर्ता का मूलोच्छेद कर देता है ॥२॥ यदि अधर्म का फल स्वयं कर्ता को नहीं मिलता तो उसके पुत्र या नाती को अवश्य ही मिलता है । जिस प्रकार गुरु-भोजन पेट में अवश्य ही विकार पैदा करता है, शीघ्र या देर से ॥३॥ अङ्गिरा के पौत्र ब्राह्मण कच को तुमने मरवा डाला था, वह निरपराध था, धर्मात्मा था, मेरे यहाँ पढ़ने के लिए रहता था । उसके मारने का कोई कारण न था । फिर मेरी कन्या के बध का भी प्रयत्न किया गया, वृषपर्वा ! इन कारणों से मैं अब बान्धवों के सहित तुम्हारा त्याग करूँगा । राजन् ! तुम्हारे साथ तुम्हारे राज्य में मैं नहीं रह सकता ॥४, ५॥ दैत्य, आश्चर्य है कि तुम मुझे झूठा समझ रहे हो, अतएव तुम अपने दोषों को दूर नहीं करते, केवल उनकी उपेक्षा कर देते हो ॥६॥

वृषपर्वा बोले—भार्गव ! मैं आप को असत्यवादी और अधर्मी नहीं समझता । मैं आप को सत्यवादी और धर्मात्मा समझता हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥७॥ भार्गव, आप हम लोगों को छोड़कर यहाँ से दूसरी जगह चले जायँगे तो हम समुद्र में डूब मरेंगे, क्योंकि हमारा दूसरा तो कोई रक्षक नहीं है ॥८॥

शुक्राचार्य बोले—दैत्यों, तुमलोग समुद्र में डूबो या दिशाओं में भाग जाओ, मैं अपनी

प्रसाद्यतां देवयानी जीवितं यत्र मे स्थितम् । योगक्षेमकरस्तेऽहमिंद्रस्येवबृहस्पतिः ॥१०॥
वृषपर्वोवाच
यत्किंचिदसुरेन्द्राणां विद्यते वसु भार्गव । भुविहस्तिगवाश्वञ्च तस्य त्वं मम चेश्वरः ॥११॥
शुक्र उवाच
यत्किंचिदस्ति द्रविणं दैत्येन्द्राणां महासुर । तस्येश्वरोऽस्मि यद्येषा देवयानी प्रसाद्यताम् ॥१२॥
वैशम्पायन उवाच
एवमुक्तस्तथेत्याह वृषपर्वा महाकविः । देवयान्यन्तिकं गत्वा तमर्थं प्राह भार्गवः ॥१३॥
देवयान्युवाच
यदि त्वमीश्वरस्तात राज्ञो वित्तस्य भार्गव । नाभिजानामि तत्तेऽहं राजा तु वदतु स्वयम् ॥१४॥
वृषपर्वोवाच
यं काममभिकामाऽसि देवयानि शुचिस्मिते । तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि यदि वापि हि दुर्लभम् ॥१५॥
देवयान्युवाच
दासीं कन्यासहस्रेण शर्मिष्ठामभिकामये । अनु मां तत्र गच्छेत्सा यत्र दद्याच्च मे पिता ॥१६॥
वृषपर्वोवाच
उत्तिष्ठ त्वं गच्छ धात्रि शर्मिष्ठां शीघ्रमानय । यं च कामयते कामं देवयानी करोतु तम् ॥१७॥

कन्या का अपमान नहीं कर सकता, उसे दुःखी नहीं बना सकता, क्योंकि वह मुझे बहुत ही प्रिय है ॥९॥ मेरा जीवन देवयानी के अधीन है, अतएव तुम उसको प्रसन्न करो। इससे तुमको लाभ ही होगा, क्योंकि बृहस्पति जिस प्रकार इन्द्र की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी रक्षा करता हूँ ॥१०॥

वृषपर्वा बोले—भार्गव, दैत्यों का जो कुछ धन है. हाथी घोड़े गौ आदि जो कुछ हैं, उन सब के स्वामी तुम हो ॥११॥

शुक्र बोले— दैत्यराज, दैत्यों का जो कुछ है उसका स्वामी यदि मैं हूँ, तो तुमलोग देवयानी को प्रसन्न करो ॥१२॥

वैशम्पायन बोले—शुक्राचार्य की बात वृषपर्वा ने मानी, देवयानी के पास जाकर शुक्राचार्य ने वृषपर्वा की कही बातें कह सुनायीं ॥१३॥

देवयानी बोली—पिता, आप राजा की समस्त सम्पत्ति के स्वामी हैं, यह बात मैं नहीं जानती; अतएव राजा स्वयं इस बात को कहें ॥१४॥

वृषपर्वा बोले—देवयानी, तुम जो चाहो, मैं तुमको वही दूँगा; चाहे वह वस्तु दुर्लभ ही क्यों न हो ॥१५॥

देवयानी बोली—मैं चाहती हूँ कि शर्मिष्ठा हजार कन्याओं के साथ मेरी दासी बने और पिता के दान करने पर मैं जहाँ जाऊँ, वहाँ भी वह मेरे साथ जाय ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच

ततो धात्री तत्र गत्वा शर्मिष्ठां वाक्यमब्रवीत् । उत्तिष्ठ भद्रे शर्मिष्ठे ज्ञातीनां सुखमावह ॥१८॥
त्यजति ब्राह्मणः शिष्यान्देवयान्या प्रचोदितः । सा यं कामयते कामं सकार्योऽद्यत्वयाऽनघे ॥१९॥

शर्मिष्ठोवाच

यं सा कामयते कामं करवाण्यहमद्यतम् । यद्येवमाह्वयेच्छुक्रो देवयानीकृते हि माम् ।
मद्दोषान्मागमच्छुक्रो देवयानी चमत्कृते ॥२०॥

वैशम्पायन उवाच

ततः कन्यासहस्रेण वृता शिविकया तदा । पितुर्नियोगात्त्वरिता निश्चक्राम पुरोत्तमात् ॥२१॥

शर्मिष्ठोवाच

अहं दासीसहस्रेण दासी ते परिचारिका । अनु त्वां तत्र यास्यामि यत्र दास्यति ते पिता ॥२२॥

देवयान्युवाच

स्तुवतो दुहिताऽहं ते याचतः प्रतिगृह्णतः । स्तूयमानस्य दुहिता कथं दासी भविष्यसि ॥२३॥

शर्मिष्ठोवाच

येनकेनचिदार्तानां ज्ञातीनां सुखमावहेत् । अतस्त्वामनुयास्यामि यत्र दास्यति ते पिता ॥२४॥

वृषपर्वा बोले—धात्री, (इस नाम की दासी) तुम जाकर शीघ्र शर्मिष्ठा को ले आओ; देवयानी जो चाहती है, उसको वह शीघ्र पूरा करे ॥१७॥

वैशम्पायन बोले—धात्री शर्मिष्ठा के पास गयी और उससे बोली—कल्याणि शर्मिष्ठा, उठो, अपने बान्धवों का कल्याण करो ॥१८॥ देवयानी के कहने से शुक्राचार्य अपने शिष्यों का त्याग कर रहे हैं; निष्पापे, देवयानी की इच्छा तुम पूरी करो ॥१९॥

शर्मिष्ठा बोली—यदि शुक्राचार्य ऐसा चाहते हैं, यदि वे चाहते हैं कि मैं देवयानी की इच्छा पूरी करूँ, तो मैं उसकी इच्छा पूरी करने के लिए इसी समय तयार हूँ । मेरे अपराध से शुक्र और देवयानी यहाँ से न जाँय ॥२०॥

वैशम्पायन बोले—पिता की आज्ञा से हजार दासियों को लेकर शर्मिष्ठा सवारी पर चढ़कर अपने नगर से निकली ॥२१॥

शर्मिष्ठा बोली—मैं हजार दासियों के साथ दासी बनकर तुम्हारी सेवा करूँगी, मैं तुम्हारे साथ वहाँ भी जाऊँगी, जहाँ तुम्हारे पिता तुम्हारा दान करेंगे ॥२२॥

देवयानी बोली—स्तुति करनेवाले, माँगनेवाले और दान लेनेवाले की मैं बेटी हूँ और तुम स्तुति सुननेवाले की बेटी हो, फिर तुम मेरी दासी कैसे हो सकोगी ॥२३॥ शर्मिष्ठा बोली—मेरे बान्धव इस समय दुखी हैं, उन्हें चाहे जिस उपाय से मैं सुखी करना चाहती हूँ । अतएव तुम्हारे पिता जहाँ तुम्हारा ब्याह करेंगे वहाँ मैं तुम्हारे साथ जाऊँगी ॥२४॥

वैशम्पायन उवाच
प्रतिश्रुते दासभावे दुहित्रा वृषपर्वणः। देवयानी नृपश्रेष्ठ पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥२५॥
देवयान्युवाच
प्रविशामि पुरं तात तुष्टाऽस्मि द्विजसत्तम। अमोघं तव विज्ञानमस्ति विद्याबलं च ते ॥२६॥
वैशम्पायन उवाच
एवमुक्तो दुहित्रा स द्विजश्रेष्ठो महायशाः। प्रविवेश पुरं हृष्टः पूजितः सर्वदानवैः ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्यानेऽशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

वैशम्पायन उवाच
अथ दीर्घस्य कालस्य देवयानी नृपोत्तम। वनं तदेव निर्याता क्रीडार्थं वरवर्णिनी ॥ १ ॥
तेन दासी सहस्रेण सार्धं शर्मिष्ठया तदा। तमेव देशं सम्प्राप्ता यथाकामं चचार सा ॥ २ ॥
ताभिःसखीभिःसहितासर्वाभिर्मुदिताभृशम्। क्रीडन्त्योऽभिरताःसर्वाःपिबन्त्योमधुमाधवीम् ॥ ३ ॥
खादन्त्यो विविधान्भक्ष्यान्विदशन्त्यः फलानि च। पुनश्च नाहुषो राजा मृगलिप्सुर्यदृच्छया ॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले—राजन्, वृषपर्वा की कन्या ने जब दासी होना स्वीकार कर लिया, तब देवयानी अपने पिता से बोली ॥२५॥

देवयानी बोली—पिता, मैं सन्तुष्ट हो गयी, अब मैं नगर में जाऊँगी। तुम्हारा विज्ञान सफल है और तुम्हारा विद्या-बल भी अमोघ है ॥२६॥

वैशम्पायन बोले—कन्या के ऐसा कहने पर ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्राचार्य ने दानवों के द्वारा अभिनन्दित अतएव प्रसन्न होकर नगर में प्रवेश किया ॥२७॥

अशीतितम अध्याय।

ययाति और देवयानी का विवाह।

वैशम्पायन बोले—राजश्रेष्ठ, बहुत दिनों के बाद देवयानी उसी वन में खेलने की इच्छा से गयी ॥१॥ शर्मिष्ठा और उसकी हजार दासियों के साथ वह वहाँ गयी और इच्छानुसार इधर-उधर विचरण करने लगी ॥२॥ वे सब अपनी सखियों के साथ वहाँ प्रसन्नतापूर्वक खेल में लग गयीं। महुए के फूल का रस पीने लगीं, विविध पदार्थ खाने लगीं, फलों को कुतरने लगीं। उसी वन में अकस्मात् नहुषपुत्र राजा ययाति भी शिकार के लिए आये। वे थके और प्यासे हुए थे। राजा ने वहाँ देवयानी, शर्मिष्ठा तथा उसकी सखियों

तमेव देशं सम्प्राप्तो जलार्थी श्रमकर्शितः । ददर्श देवयानीं स शर्मिष्ठां ताश्च योषितः ॥ ५ ॥
पिबन्तीर्ललमानाश्च दिव्याभरणभूषिताः । उपविष्टां च ददर्शे देवयानीं शुचिस्मिताम् ॥ ६ ॥
रूपेणाप्रतिमां तासां स्त्रीणां मध्ये वराङ्गनाम् । शर्मिष्ठया सेव्यमानां पादसंवाहनादिभिः ॥ ७ ॥

ययातिरुवाच

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां द्वे कन्ये परिवारिते । गोत्रे च नामनी चैव द्वयोः पृच्छाम्यहं शुभे ॥ ८ ॥

देवयान्युवाच

आख्यास्याम्यहमादत्स्व वचनं मे नराधिप । शुक्रोनामासुरगुरुः सुतां जानीहि तस्य माम् ॥ ९ ॥
इयं च मे सखी दासी यत्राहं तत्र गामिनी । दुहिता दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा वृषपर्वणः ॥ १० ॥

ययातिरुवाच

कथं तु ते सखी दासी कन्येयं वरवर्णिनी । असुरेन्द्रसुता सुभ्रूः परं कौतूहलं हि मे ॥ ११ ॥

देवयान्युवाच

सर्व एव नरश्रेष्ठ विधानमनुवर्तते । विधानविहितं मत्वा मा विचित्राः कृथाः कथाः ॥ १२ ॥
राजवद्रूपवेषौ ते ब्राह्मीं वाचं बिभर्षि च । को नाम त्वं कुतश्चासि कस्य पुत्रश्च शंस मे ॥ १३ ॥

ययातिरुवाच

ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृत्स्नः श्रुतिपथं गतः । राजाहं राजपुत्रश्च ययातिरिति विश्रुतः ॥ १४ ॥

को देखा, जो रस पी रही थीं और खेल रही थीं, उन लोगों ने दिव्य भूषण पहने थे। राजा ने शुचिस्मिता देवयानी को वहाँ बैठी देखा। उन सब स्त्रियों में वह सब से सुन्दरी थी, उसके समान कोई रूपवती न थी। शर्मिष्ठा उसकी सेवा कर रही थी, पैर दबा रही थी॥ ३—७॥

ययाति बोले—तुम दोनों दो हजार कन्याओं से घिरी हो, मैं तुम दोनों के गोत्र और नाम जानना चाहता हूँ ॥ ८॥

देवयानी बोली—नराधिप ! मैं कहती हूँ, सुनिए। दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य हैं, मैं उनकी कन्या हूँ ॥ ९॥ यह मेरी सखी मेरी दासी है. जहाँ मैं जाती हूँ वहीं यह भी जाती है। दैत्यराज वृषपर्वा की यह कन्या है, इसका नाम शर्मिष्ठा है ॥ १०॥

ययाति बोले—यह सुन्दरी दैत्यराज की कन्या तुम्हारी सखी, दासी कैसे हुई, यह मैं जानना चाहता हूँ; इसके जानने का मुझे बड़ा कौतूहल है ॥ ११॥ देवयानी बोली—राजन् ! सभी भाग्य का अनुवर्तन करते हैं। इसका दासी होना भी भाग्य का ही खेल है, ऐसा समझकर इस सम्बन्ध में आप और प्रश्न न करें ॥ १२॥ आपका रूप और वेष राजाओं के समान है, और आप शुद्ध संस्कृत भाषा बोलते हैं। राजन्, आपका नाम क्या है ? आप कहाँ से आये हैं ? किसके पुत्र हैं ? यह सब आप मुझसे कहें ॥ १३॥ ययाति बोले—ब्रह्मचर्यपूर्वक मैंने वेदाध्ययन किया है। मैं राजा हूँ और राजपुत्र हूँ, मेरा नाम ययाति है ॥ १४॥

देवयान्युवाच

केनास्यर्थेन नृपते इमं देशमुपागतः। जिघृक्षुर्वारिजं किंचिदथवा मृगलिप्सया ॥१५॥

ययातिरुवाच

मृगलिप्सुरहं भद्रे पानीयार्थमुपागतः । बहुधाऽप्यनुयुक्तोऽस्मि तदनुज्ञातुमर्हसि ॥१६॥

देवयान्युवाच

द्वाभ्यां कन्या सहस्राभ्यां दास्या शर्मिष्ठयासह। त्वदधीनाऽस्मि भद्रं ते सखा भर्ता च मे भव ॥१७॥

ययातिरुवाच

विद्ध्यौशनसि भद्रं ते नत्वामर्होऽस्मि भाविनि। अविवाह्याहि राजानोदेवयानिपितुस्तव ॥१८॥

देवयान्युवाच

संसृष्टं ब्रह्मणाक्षत्रं क्षत्रेण ब्रह्मसंहितम्। ऋषिश्चाप्यृषिपुत्रश्च नाहुषांगवहस्वमाम् ॥१९॥

ययातिरुवाच

एकदेहोद्भवावर्णाश्चत्वारोऽपि वरांगने । पृथग्धर्माः पृथक्शौचास्तेषां तु ब्राह्मणोवरः ॥२०॥

देवयान्युवाच

पाणिधर्मो नाहुषाऽयं न पुंभिः सेवितः पुरा। तं मे त्वमग्रहीरग्रे वृणोमित्वामहंततः ॥२१॥

कथं नु मे मनस्विन्याः पाणिमन्यःपुमान्स्पृशेत्। गृहीतमृषिपुत्रेण स्वयं वाप्यृषिणात्वया ॥२२॥

देवयानी बोली—राजन्, आप किस काम के लिए यहाँ आये हुए हैं? कमल आदि लेने या शिकार खेलने आये हैं ॥१५॥

ययाति बोले—भद्रे, शिकार के लिए मैं यहाँ आया था और पानी ढूँढ़ता यहाँ आया हूँ। बहुत थक गया हूँ। अब आप जाने की आज्ञा दें ॥१६॥ देवयानी बोली—दो हजार कन्याओं तथा दासी शर्मिष्ठा के साथ मैं तुम्हारे अधीन हूँ, तुम्हारे वश में हूँ, तुम मेरा प्रिय पति होना स्वीकार करो ॥१७॥ ययाति बोले—शुक्रपुत्रि, तुम्हारा मङ्गल हो. मैं इस योग्य नहीं हूँ। देवयानी, तुम्हारे पिता राजाओं के साथ तुम्हारा व्याह न करेंगे ॥१८॥ देवयानी बोली—ब्राह्मणों के साथ क्षत्रिय और क्षत्रियों के साथ ब्राह्मण मिले हुए हैं। इस प्रकार तुम भी ऋषि तथा ऋषिपुत्र हुए। हे नहुषपुत्र, प्रिय, हमारे साथ व्याह करो ॥१९॥

ययाति बोले—सुन्दरी, चारों वर्ण एक ही शरीर से उत्पन्न हुए हैं, यह ठीक है; पर उनके धर्म भिन्न हैं, उनकी क्रियायें भिन्न हैं। उनमें ब्राह्मण सब से श्रेष्ठ है ॥२०॥

देवयानी बोली—नहुषपुत्र, मेरा हाथ किसी पुरुष ने नहीं पकड़ा था, तुम्हीं ने सबसे पहले मेरा हाथ पकड़ा था, इसी कारण मैं तुम्हारा वरण करती हूँ ॥२१॥ ऋषिपुत्र या ऋषि के रूप में स्वयं तुमने मेरा हाथ पकड़ा है, अब दूसरा कोई पुरुष इस हाथ को कैसे पकड़ सकता है? मैं मनस्विनी हूँ, सम्मान रखने वाली स्त्री हूँ, मेरा हाथ दूसरा पुरुष नहीं पकड़ सकता ॥२२॥

ययातिरुवाच

क्रुद्धादाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् । दुराधर्षतरोविप्रो ज्ञेयः पुंसाविजानता ॥२३॥

देवयान्युवाच

कथमाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतो मुखात् । दुराधर्षतरो विप्र इत्यात्थ पुरुषर्षभ ॥२४॥

ययातिरुवाच

एकमाशीविषोहंति शस्त्रेणैकश्चवध्यते । हन्ति विप्रः सराष्ट्राणि पुराण्यपि हि कोपितः ॥२५॥

दुराधर्षतरो विप्रस्तस्माद्भीरुमतो मम । अतोऽदत्तां च पित्रात्वां भद्रे न विवहाम्यहम् ॥२६॥

देवयान्युवाच

दत्तांवहस्व तन्मात्वं पित्रा राजन्वृतोमया । अयाचतो भयं नास्ति दत्तां च प्रतिगृह्णतः ॥२७॥

वैशम्पायन उवाच

त्वरितं देवयान्याऽथ संदिष्टं पितुरात्मनः । सर्वं निवेदयामास धात्री तस्मै यथातथम् ॥२८॥

श्रुत्वैव च स राजानं दर्शयामास भार्गवः । दृष्ट्वैवचागतं शुक्रं ययातिः पृथिवीपतिः

ववन्दे ब्राह्मणं काव्यं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ॥२९॥

देवयान्युवाच

राजाऽयं नाहुषस्तात दुर्गमे पाणिमग्रहीत् । नमस्ते देहि मामस्मै लोके नान्यं पतिं वृणे ॥३०॥

यताति बोले—कुपित जहरीले सर्प से तथा चारों ओर से धधकती अग्नि से भी ब्राह्मण भयंकर होते हैं, ऐसा ज्ञानी मनुष्य समझते हैं ॥२३॥ देवयानी बोली—पुरुषश्रेष्ठ, क्रुद्ध जहरीले सर्प तथा चारों ओर से धधकती आग से भी ब्राह्मण भयंकर होता है, यह आप क्यों कहते हैं ॥२४॥ ययाति बोले—सर्प एक ही मनुष्य को मारता है, शस्त्र से एक ही मनुष्य मारा जाता है, पर ब्राह्मण क्रोध करके राज्य तथा समस्त नगर का नाश कर देता है ॥२५॥ भीरु, इसी कारण मैं ब्राह्मण को सब से अधिक भयंकर समझता हूँ। अतएव पिता की अनुमति के बिना मैं तुमसे ब्याह करना नहीं चाहता ॥२६॥

देवयानी बोली—राजन्, मैंने आपका वरण किया है। पिता के दान करने पर आप मुझसे ब्याह करें। प्रार्थना के बिना पिता का दान आप ग्रहण करें, तो इसमें आप को भय क्या है ॥२७॥

वैशम्पायन बोले—देवयानी ने यह वृत्तान्त पिता के पास भेजा। धात्री नामकी दासी ने सभी बातें यथावत् शुक्राचार्य से कहीं ॥२८॥ इस संवाद के सुनने पर शुक्राचार्य उस स्थान पर आये, जहाँ राजा ययाति थे। शुक्र को देखकर राजा ययाति ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और नम्रतापूर्वक वे उनके सामने खड़े हो गये ॥२९॥

देवयानी बोली—पिताजी, ये नहुषपुत्र राजा ययाति हैं। संकट के समय इन्होंने मेरा हाथ पकड़ा था, मैं आपको प्रणाम करती हूँ। मैं इनके अतिरिक्त दूसरा पति वरण न करूँगी,

शुक्र उवाच
वृतोऽनया पतिर्वीर सुतया त्वं समेष्टया। गृहाणेमां मयादत्तां महिषीं नहुषात्मज ॥३१॥
ययातिरुवाच
अधर्मो न स्पृशेदेष महान्मामिह भार्गव। वर्णसंकरजो ब्रह्मन्निति त्वां प्रवृणोम्यहम् ॥३२॥
शुक्र उवाच
अधर्मात्त्वां विमुञ्चामि वृणु त्वं वरमीप्सितम्। अस्मिन्विवाहे माम्लासीरहं पापं नुदामि ते ॥३३॥
वहस्व भार्यां धर्मेण देवयानीं सुमध्यमाम्। अनया सह सम्प्रीतिमतुलां समवाप्नुहि ॥३४॥
इयं चापि कुमारी ते शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। सम्पूज्या सततं राजन्मा चैनां शयने ह्वयेः ॥३५॥
वैशम्पायन उवाच
एवमुक्तो ययातिस्तु शुक्रं कृत्वा प्रदक्षिणम्। शास्त्रोक्त विधिना राजा विवाहमकरोच्छुभम् ॥३६॥
लब्ध्वा शुक्रान्महद्वित्तं देवयानीं तदोत्तमाम्। द्विसहस्रेण कन्यानां तथा शर्मिष्ठया सह ॥३७॥
सम्पूजितश्च शुक्रेण दैत्यैश्च नृपसत्तमः। जगाम स्वपुरं हृष्टोऽनुज्ञातोऽथ महात्मना ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने एकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

आप मुझे इनको दें ॥३०॥ शुक्र बोले—राजन्, मेरी प्रिय पुत्री ने तुम्हारा वरण किया है। मैं इसका दान करता हूँ, तुम ग्रहण करो और इसको अपनी महारानी बनाओ ॥३१॥

ययाति बोले—भार्गव, इस कार्य से मुझे किसी बड़े अधर्म का भागी न होना पड़े, वर्णसङ्कर उत्पन्न करने का पाप मुझे न लगे, यह वर मैं आपसे माँगता हूँ ॥३२॥

शुक्र बोले—राजन्, मैं तुमको अधर्म से मुक्त करता हूँ, जो चाहो वह वर तुम माँगो। इस विवाह के लिए तुम दुःख न करो, मैं तुम्हारे सब पापों को दूर करूँगा ॥३३॥ सुन्दरी देवयानी को धर्मानुसार तुम अपनी स्त्री बनाओ। इसके साथ तुम अतुल प्रीति प्राप्त करो ॥३४॥ यह वृषपर्वा की कन्या कुमारी शर्मिष्ठा भी तुम्हारे यहाँ जायगी। राजन्, इसका तुम आदर करना पर इसको अपने पलँग पर न बुलाना, इसे अपनी स्त्री न बनाना ॥३५॥ वैशम्पायन बोले—ऐसा आश्वास देने पर ययाति ने शुक्राचार्य की प्रदक्षिणा की और शास्त्रोक्त विधि से उन्होंने देवयानी से व्याह किया ॥३६॥ राजा ने शुक्राचार्य से बहुत धन पाया और सुन्दरी देवयानी को पाया, दो हजार कन्याओं के साथ शर्मिष्ठा को भी पाया ॥३७॥ शुक्राचार्य तथा दैत्यों के द्वारा आदर पाकर राजश्रेष्ठ ययाति महात्मा शुक्र से विदा होकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी राजधानी में गये ॥३८॥

एकाशीतितम अध्याय।

वैशम्पायन उवाच

ययातिः स्वपुरं प्राप्य महेन्द्रपुरसन्निभम् । प्रविश्यान्तःपुरं तत्र देवयानीं न्यवेशयत् ॥ १ ॥

देवयान्याश्चानुमते सुतां तां वृषपर्वणः । अशोकवनिकाभ्याशे गृहं कृत्वा न्यवेशयत् ॥ २ ॥

वृतां दासी सहस्रेण शर्मिष्ठां वार्षपर्वणी । वासोभिरन्नपानैश्च संविभाज्य सुसत्कृताम् ॥ ३ ॥

देवयान्यातु सहितः स नृपो नहुषात्मजः । विजहार बहूनब्दान्देववन्मुदितः सुखी ॥ ४ ॥

ऋतुकाले तु सम्प्राप्ते देवयानी वरांगना । लेभे गर्भं प्रथमतः कुमारं च व्यजायत ॥ ५ ॥

गते वर्ष सहस्रे तु शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । ददर्श यौवनं प्राप्ता ऋतुं सा चान्वचिन्तयत् ॥ ६ ॥

ऋतुकालश्च सम्प्राप्तो न च मेऽस्ति पतिर्वृतः । किं प्राप्तं किं नु कर्तव्यं किंवा कृत्वा कृतंभवेत् ॥ ७ ॥

देवयानी प्रजाताऽसौ वृथाऽहं प्राप्तयौवना । यथा तया वृतो भर्त्ता तथैवाहं वृणोमि तम् ॥ ८ ॥

राज्ञा पुत्रफलंदेयमिति मे निश्चितामतिः । अपीदानीं स धर्मात्मा इयान्मे दर्शनंरहः ॥ ९ ॥

अथ निष्क्रम्य राजाऽसौतस्मिन्कालेयदृच्छया । अशोकवनिकाभ्याशे शर्मिष्ठांप्रेक्ष्यधिष्ठितः ॥१०॥

तमेकंरहिते दृष्ट्वा शर्मिष्ठा चारुहासिनी । प्रत्युद्गम्याञ्जलिं कृत्वा राजानं वाक्यमब्रवीत् ॥११॥

शर्मिष्ठोवाच

सोमस्येन्द्रस्य विष्णोर्वायमस्य वरुणस्य च । तव वा नाहुष गृहे कः स्त्रियं द्रष्टुमर्हति ॥१२॥

देवयानी और शर्मिष्ठा को पुत्र होना ।

वैशम्पायन बोले—इन्द्र-नगर के तुल्य अपने नगर में आकर ययाति अपने महल में गये और वहाँ उन्होंने देवयानी को ठहराया ॥१॥ देवयानी के कहने से राजा ने अशोक वाटिका के पास नया घर बनवाकर उस वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा को ठहराया ॥२॥ वृषपर्वा-पुत्री शर्मिष्ठा को उसकी हजार दासियों के साथ वहाँ वस्त्र, अन्न, पान आदि देकर सत्कारपूर्वक रखा ॥३॥ सुखी नहुषपुत्र ययाति बहुत वर्षों तक देवता के समान प्रसन्न होकर देवयानी के साथ विहार करते रहे ॥ ४ ॥ ऋतुकाल आने पर सुन्दरी देवयानी ने गर्भ धारण किया और समय पर उसने पुत्र उत्पन्न किया ॥५॥ एक हजार वर्ष बीतने पर वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा युवती हुई और ऋतुदर्शन होने पर विचार करने लगी ॥६॥ मेरा ऋतु काल आ गया, पर अभी तक मैंने अपने लिए पति का वरण नहीं किया। इस समय उचित क्या है, कर्तव्य क्या है और क्या करने से मनोरथ पूरा होगा ॥७॥ देवयानी को पुत्र हो गया, मेरा यौवन व्यर्थ ही हुआ। अथवा देवयानी ने जिस प्रकार पति वरण किया है, मैं भी उन्हीं को उसी प्रकार पति बनाऊँगी ॥८॥ राजा मुझे पुत्र रूपी फल देंगे, इसका दृढ़ विश्वास है। इस समय राजा यदि एकान्त में दिखायी पड़ जाते ॥६॥

इसी समय राजा अकस्मात् अपने महल से निकले और अशोक वाटिका के पास शर्मिष्ठा को देखकर वे खड़े हो गये ॥१०॥ चारुहासिनी शर्मिष्ठा ने राजा को एकान्त में देखा, वह उनके पास गयी और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली ॥११॥

रूपाभिजनशीलैर्हि त्वं राजन्वेत्थ मां सदा । सा त्वां याचे प्रसाद्याहमृतुंदेहि नराधिप ॥१३॥

ययातिरुवाच

वेद्मि त्वां शीलसंपन्नां दैत्यकन्यामनिन्दिताम् । रूपं च ते न पश्यामि सूच्यग्रमपि निंदितम् ॥१४॥

अब्रवीदुशना काव्यो देवयानीं यदाऽवहम् । नेयमाह्वयितव्या ते शयने वार्षपर्वणी ॥१५॥

शर्मिष्ठोवाच

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन्न विवाहकाले ।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पंचानृतान्याहुरपातकानि ॥१६॥
पृष्टं तु साक्ष्ये प्रवदन्तमन्यथा वदन्ति मिथ्या पतितं नरेन्द्र ।
एकार्थतायां तु समाहितायां मिथ्या वदन्तं त्वनृतं हिनस्ति ॥१७॥

ययातिरुवाच

राजा प्रमाणं भूतानां स नश्येदमृषा वदन् । अर्थं कृच्छ्रमपि प्राप्य न मिथ्या कर्तुमुत्सहे ॥१८॥

शर्मिष्ठोवाच

समावेतौ मतौ राजन्पतिः सख्याश्च यः पतिः । समं विवाहमित्याहुः सख्यामेऽसिवृतःपतिः ॥१९॥

शर्मिष्ठा बोली—नहुषपुत्र ! चन्द्रमा, इन्द्र, विष्णु, यमराज, वरुण तथा तुम्हारे घर की स्त्रियों को कौन देख सकता है ॥१२॥ राजन्, आप मुझे बहुत दिनों से जानते हैं, मेरे रूप-कुल और शील का आप को ज्ञान है। आप मुझसे प्रसन्न हों और मुझे ऋतु-दान दें, यही आप से मैं माँगती हूँ ॥१३॥

ययाति बोले—मैं जानता हूँ कि तुम शीलवती, सुन्दरी दैत्य-कन्या हो, तुम्हारे रूप में सूई के अग्रभाग के बराबर भी कोई दोष नहीं देखता ॥१४॥ पर जिस समय मैंने देवयानी से ब्याह किया था, उस समय शुक्राचार्य ने मुझसे कहा था कि वृषपर्वा की इस कन्या को तुम अपनी स्त्री न बनाना ॥१५॥

शर्मिष्ठा बोली—हँसी में, स्त्रियों के साथ, विवाह के समय, प्राणसङ्कट उपस्थित होने पर और सर्वस्व अपहरण होने के समय, इन पाँच स्थानों में मनुष्य यदि झूठ बोले तो उसे उसका पाप नहीं लगता ॥१६॥ गवाह के रूप में जाकर न्यायाधीश पूछने पर जो उलटी बात कहता है, अर्थात् सत्य नहीं कहता, ऐसे को पतित कहना असत्य है, क्योंकि झूठ बोलने पर भी उसे झूठ बोलने का पाप नहीं लगता। झूठ बोलने का अपराध वहाँ लगता है, जहाँ एक वस्तु पर दो का अधिकार हो और एक का अधिकार स्वीकार किया जाय और दूसरे का अधिकार न माना जाय ॥१७॥

ययाति बोले—राजा प्राणियों का आदर्श होता है, वह जो कुछ करता है, दूसरे भी वही करते हैं, झूठ बोलने से उसका नाश हो जाता है। अतएव बड़े सङ्कट में पड़ने पर भी मैं झूठ बोलना पसन्द नहीं करता ॥१८॥ शर्मिष्ठा बोली—राजन्, अपना पति और सखी का पति दोनों

ययातिरुवाच

दातव्यं याचमानेभ्य इति मे व्रतमाहितम् । त्वं च याचसि मां कामं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥२०॥

शर्मिष्ठोवाच

अधर्मात्पाहि मां राजन्धर्मं च प्रतिपादय । त्वत्तोऽपत्यवतीलोके चरेयं धर्ममुत्तमम् ॥२१॥

त्रय एवाधना राजन्भार्या दासस्तथा सुतः । यत्ते समधिगच्छन्ति यस्यैते तस्य तद्धनम् ॥२२॥

देवयान्या भुजिष्याऽस्मि वश्या च तव भार्गवी । सा चाहं च त्वया राजन्भजनीये भजस्व माम् ॥२३॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु राजा स तथ्यमित्यभिजज्ञिवान् । पूजयामास शर्मिष्ठां धर्मं च प्रत्यपादयत् ॥२४॥

स समागम्य शर्मिष्ठां यथाकाममवाप्य च । अन्योन्यं चाभिसंपूज्य जग्मतुस्तौ यथागतम् ॥२५॥

तस्मिन्समागमे सुभ्रूः शर्मिष्ठा चारुहासिनी । लेभे गर्भं प्रथमतस्तस्मान्नृपतिसत्तमात् ॥२६॥

प्रजज्ञे च ततः काले राजन् राजीवलोचना । कुमारं देवगर्भाभं राजीवनिभलोचनम् ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

ही समान हैं । एक सखी के ब्याह होने से दूसरी का भी ब्याह हुआ समझा जाता है । आप को मेरी सखी ने पति वरण किया है ॥१९॥

ययाति बोले—माँगने वाले को देना चाहिए, यह व्रत मैंने लिया है; तुम मुझसे माँग रही हो, अतएव कहो तुम्हारा कौन मनोरथ मैं पूरा करूँ ॥२०॥

शर्मिष्ठा बोली—राजन्, आप अधर्म से मेरी रक्षा करें, मेरे धर्म की रक्षा करें । आप से पुत्र पाकर मैं श्रेष्ठ पतिव्रता धर्म का पालन करूँगी ॥२१॥ राजन् ! स्त्री, पुत्र और दास, ये ही तीन अधन होते हैं, अर्थात् इनका धन पर अधिकार नहीं होता । इनके धनपर भी उसी का अधिकार होता है, जिसके ये होते हैं । अर्थात् स्त्री के धन पर पति का, पुत्र के धन पर पिता का और दास के धन पर स्वामी का अधिकार होता है ॥२२॥ मैं देवयानी की दासी हूँ और देवयानी तुम्हारी स्त्री है, तुम्हारे अधीन है । अतएव आप देवयानी और मेरा दोनों का उपभोग कर सकते हैं । राजन्, आप मेरा उपभोग करें ॥२३॥ वैशम्पायन बोले—राजा ने शर्मिष्ठा की इन बातों को यथार्थ समझा, उन्होंने शर्मिष्ठा की प्रशंसा की और उसके धर्म की रक्षा की ॥२४॥ समागम से शर्मिष्ठा का मनोरथ पूरा करके तथा परस्पर आदर करके वे दोनों अपने स्थान पर गये ॥२५॥ चारुहासिनी, सुभ्रू शर्मिष्ठा ने राजा के उसी प्रथम समागम से गर्भ-लाभ किया ॥२६॥ राजन्, समय पर कमलनेत्र शर्मिष्ठा ने देवकुमार के समान राजीवलोचन पुत्र उत्पन्न किया ॥२७॥

द्व्यशीतितम अध्याय ।

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा कुमारं जातं तु देवयानी शुचिस्मिता। चिंतयामास दुःखार्ता शर्मिष्ठां प्रति भारत ॥१॥

अभिगम्य च शर्मिष्ठां देवयान्यब्रवीदिदम्।

देवयान्युवाच

किमिदं वृजिनं सुभ्रु कृतं वै कामलुब्धया ॥२॥

शर्मिष्ठोवाच

ऋषिरभ्यागतः कश्चिद्धर्मात्मा वेदपारगः। स मया वरदः कामं याचितो धर्मसंहितम् ॥३॥

नाहमन्यायतः काममाचरामि शुचिस्मिते। तस्मादृषेर्ममापत्यमिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥४॥

देवयान्युवाच

शोभनं भीरु यद्येवमथ संज्ञायते द्विजः। गोत्रनामाभिजनतो वेत्तुमिच्छामि तं द्विजम् ॥५॥

शर्मिष्ठोवाच

तपसा तेजसा चैव दीप्यमानं यथा रविम्। तं दृष्ट्वा मम सम्प्रष्टुं शक्तिर्नासीच्छुचिस्मिते ॥६॥

देवयान्युवाच

यद्येतदेवं शर्मिष्ठे न मन्युर्विद्यते मम। अपत्यं यदि ते लब्धं ज्येष्ठाच्छ्रेष्ठाच्च वै द्विजात् ॥७॥

वैशम्पायन उवाच

अन्योन्यमेवमुक्त्वा तु संप्रहस्य च ते मिथः। जगाम भार्गवीवेश्म तथ्यमित्यवजग्मुषी ॥८॥

ययाति के द्वारा शर्मिष्ठा का पुत्रवती होना जानकर क्रोधित देवयानी का शुक्राचार्य के पास जाना; शुक्राचार्य के शाप से ययाति का बूढ़ा होना।

वैशम्पायन बोले—पुत्र उत्पन्न होने का वृत्तान्त सुनकर शुचिस्मिता देवयानी दुखी हुई और वह शर्मिष्ठा के विषय में विचार करने लगी। शर्मिष्ठा के पास जाकर वह बोली— सुभ्रू, तुम ने कामवश होकर यह क्या पाप कर डाला ॥२॥

शर्मिष्ठा बोली—धर्मात्मा और वेदज्ञ एक ऋषि आये थे। वे दयालु थे, मैंने धर्मानुकूल उनसे काम की प्रार्थना की थी ॥३॥ मैंने अन्यायपूर्वक मनोरथ-पूर्ति नहीं की है। मेरा पुत्र ऋषि का है, यह मैं तुमसे सत्य सत्य कहती हूँ ॥४॥

देवयानी बोली—भीरु, यदि ऐसी बात है, तो ठीक है। क्या तुम उस ब्राह्मण का परिचय जानती हो? उसका गोत्र, नाम और कुल मैं जानना चाहती हूँ ॥५॥

शर्मिष्ठा बोली—तेज और तपस्या से वे सूर्य के समान प्रकाशमान थे। उनको देखने पर इन सब बातों के पूछने की मेरी शक्ति ही न रही, मैं उनके तेज से अभिभूत हो गयी; इसीसे ये सब बातें पूछ न सकी ॥६॥ देवयानी बोली—शर्मिष्ठे! यदि तुमने वर्णज्येष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मण से पुत्र उत्पन्न किया है और यह बात सच है, तब मेरा तुम पर क्रोध नहीं है ॥७॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार आपस में बातें करके दोनों हँसने लगीं। यथार्थ बात

ययातिर्देवयान्यां तु पुत्रावजनयन्नृपः। यदुं च तुर्वसुं चैव शक्रविष्णू इवापरौ ॥९॥
तस्मादेव तु राजर्षेः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। द्रुह्युं चानुं च पूरुं च त्रीन्कुमारानजीजनत् ॥१०॥
ततः काले तु कस्मिंश्चिद्देवयानी शुचिस्मिता। ययातिसहिता राजन् जगाम रहितं वनम् ॥११
ददर्श च तदा तत्र कुमारान्देवरूपिणः। क्रीडमानान्सुविश्रब्धान् विस्मिताचेदमब्रवीत् ॥१२॥
देवयान्युवाच
कस्यैते दारका राजन् देवपुत्रोपमाः शुभाः। वर्चसा रूपतश्चैव सदृशा मे मतास्तव ॥१३॥
वैशम्पायन उवाच
एवं पृष्ट्वा तु राजानं कुमारान्पर्यपृच्छत।
देवयान्युवाच
किं नामधेयं वंशो वः पुत्रकाः कश्च वः पिता। प्रब्रूत मे यथातथ्यं श्रोतुमिच्छामि तं ह्यहम् ॥१४॥
तेऽदर्शयन्प्रदेशिन्या तमेव नृपसत्तमम्। शर्मिष्ठां मातरं चैव तथाऽऽचख्युश्च दारकाः ॥१५॥
वैशम्पायन उवाच
इत्युक्त्वा सहितास्तेतु राजानमुपचक्रमुः। नाभ्यनन्दत तान् राजा देवयान्यास्तदान्तिके ॥१६॥
रुदन्तस्तेऽथ शर्मिष्ठामभ्ययुर्बालकास्ततः। श्रुत्वा तु तेषां बालानां सव्रीड इव पार्थिवः ॥१७॥
दृष्ट्वा तु तेषां बालानां प्रणयं पार्थिवं प्रति। बुद्ध्वा च तत्त्वं सा देवी शर्मिष्ठामिदमब्रवीत् ॥१८॥

जानकर देवयानी अपने घर चली गयी ॥८॥ राजा ययाति ने देवयानी से दो पुत्र उत्पन्न किये—यदु और तुर्वसु; ये दोनों दूसरे इन्द्र और विष्णु के समान थे ॥९॥ उसी राजर्षि से वृषपर्वा-पुत्री शर्मिष्ठा ने तीन पुत्र उत्पन्न किये—द्रुह्यु, अनु और पूरु ॥१०॥ एकबार देवयानी राजा ययाति के साथ एक निर्जन वन में गयी ॥११॥ वहाँ उसने देवकुमारों के समान तीन कुमारों को निर्भय होकर खेलते देखा। वह विस्मित होकर बोली ॥१२॥

देवयानी बोली—ये देवकुमार के समान कुमार किसके हैं? तेज और रूप इनका तुमसे मिलता है, अर्थात् ये तुम्हारे ही समान मालूम पड़ते हैं ॥१३॥

वैशम्पायन बोले—राजा से इस प्रकार पूछकर उसने कुमारों से पूछा। देवयानी बोली—पुत्रो, तुम्हारे वंश का क्या नाम है, तुम्हारा पिता कौन है? मुझसे तुम सचसच कहो, मैं यह सब जानना चाहती हूँ ॥१४॥ उन कुमारों ने उँगली से उन्हों राजा को अपना पिता बतलाया और शर्मिष्ठा को माता कहा ॥१५॥

वैशम्पायन बोले—देवयानी से ऐसा कहकर वे तीनों कुमार राजा के पास आये। उस समय देवयानी राजा के पास थी, इस कारण उन्होंने उन कुमारों का आदर नहीं किया, उन्हें नहीं दुलारा ॥१६ इससे वे बालक रोते हुए शर्मिष्ठा के पास गये। बालकों की कही बातें सुनकर राजा शर्मा गये ॥१७॥ उन बालकों का राजा के ऊपर प्रेम देखकर देवयानी यथार्थ बात समझ

देवयान्युवाच

मदधीनासती कस्मादकार्षीर्विप्रियं मम । तमेवासुरधर्मं त्वमास्थिता न बिभेषि मे ॥१९॥

शर्मिष्ठोवाच

यदुक्तमृषिरित्येव तत्सत्यं चारुहासिनी । न्यायतो धर्मतश्चैव चरन्ती न बिभेमि ते ॥२०॥

यदा त्वया वृतो भर्त्ता वृतएव तदा मया । सखीभर्त्ता हि धर्मेण भर्त्ता भवति शोभने ॥२१॥

पूज्याऽसि मम मान्या च ज्येष्ठा च ब्राह्मणीति हि । त्वत्तोऽपि मे पूज्यतमो राजर्षिः किं न वेत्थ तत् ॥२२॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा तस्यास्ततो वाक्यं देवयान्यब्रवीदिदम् । राजान्नाद्येह वत्स्यामि विप्रियं मे कृतं त्वया ॥२३॥

सहसोत्पतितां श्यामां दृष्ट्वा तां साश्रुलोचनाम् । तूर्णं समीपं काव्यस्य प्रस्थितां व्यथितस्तदा ॥२४॥

अनुवव्राज सम्भ्रान्तः पृष्ठतः सान्त्वयन्नृपः । न्यवर्त्तत न चैव स्म क्रोधसंरक्तलोचना ॥२५॥

अविब्रुवन्ती किंचित्सा राजानं साश्रुलोचना । अचिरादिव सम्प्राप्ता काव्यस्योशनसोऽन्तिकम् ॥२६॥

सा तु दृष्ट्वैव पितरमभिवाद्याग्रतः स्थिता । अनन्तरं ययातिस्तु पूजयामास भार्गवम् ॥२७॥

देवयान्युवाच

अधर्मेण जितो धर्मः प्रवृत्तमधरोत्तरम् । शर्मिष्ठयाऽतिवृत्ताऽस्मि दुहित्रा वृषपर्वणः ॥२८॥

गयी और वह शर्मिष्ठा से इस प्रकार बोली ॥१८॥ देवयानी बोली—तुम मेरी दासी हो, मेरे अधीन हो, फिर मेरा अप्रिय यह काम तुमने क्यों किया ? तुमने असुरों के स्वभाव का परिचय दिया । मुझ से तुम डरती नहीं हो ? ॥१९॥

शर्मिष्ठा बोली—चारुहासिनी, मैंने ऋषि की जो बात कही है, वही सच है । न्याय और धर्म के अनुसार आचरण करने के कारण मैं डरती नहीं हूँ ॥२०॥ जिस समय तुमने पति का वरण किया, उसी समय मेरा भी पति वरण हो गया । जिस समय तुम्हारा ब्याह हुआ, उसी समय मेरा भी ब्याह हो गया । सुन्दरी, सखी का पति धर्मानुसार पति होता है ॥२१॥ तुम मुझसे बड़ी हो, ब्राह्मणी हो, इससे पूज्य हो, मान्य हो, पर राजर्षि ययाति तुम से भी अधिक मेरे मान्य हैं, क्या यह बात तुम नहीं जानतीं ? ॥२२॥

वैशम्पायन बोले—शर्मिष्ठा का उत्तर सुनकर देवयानी ने कहा—राजन् ! अब मैं यहाँ नहीं रह सकूँगी, तुमने मेरा बड़ा अपराध किया है ॥२३॥ इतना कहकर युवती देवयानी आँखों में आँसू भरकर वहाँ से उठ खड़ी हुई और वह शीघ्र ही शुक्राचार्य के पास जाने के लिए प्रस्थित हुई । यह देखकर राजा बहुत व्यथित हुए ॥२४॥ घबड़ाकर उसके पीछे पीछे राजा भी उसे मनाते हुए चले, पर वह लौटी नहीं । उसकी आँखे क्रोध से लाल हो गयी थीं ॥२५॥ उसकी आँखे आँसू से भरी हुई थीं, वह राजा से कुछ भी नहीं बोली । शीघ्र ही वह शुक्राचार्य के पास उपस्थित हुई ॥२६॥ पिता को देखकर उसने प्रणाम किया और वह उनके आगे खड़ी हो गयी । इसके पश्चात् राजा ययाति ने शुक्राचार्य की पूजा की ॥२७॥

त्रयोऽस्यां जनिताः पुत्रा राज्ञाऽनेन ययातिना। दुर्भगाया मम द्वौ तु पुत्रौ तात ब्रवीमि ते ॥२९॥
धर्मज्ञ इति विख्यात एष राजा भृगूद्वह। अतिक्रान्तश्च मर्यादां काव्यैतत्कथयामि ते ॥३०॥
शुक्र उवाच
धर्मज्ञः सन्महाराज योऽधर्ममकृथाः प्रियम्। तस्माज्जरा त्वामचिराद्धर्षयिष्यति दुर्जया ॥३१॥
ययातिरुवाच
ऋतुं वै याचमानाया भगवन्नान्यचेतसा। दुहितुर्दानवेन्द्रस्य धर्म्यमेतत्कृतं मया ॥३२॥
ऋतुं वै याचमानाया न ददाति पुमानृतुम्। भ्रूणहेत्युच्यते ब्रह्मन् स इह ब्रह्मवादिभिः ॥३३॥
अभिकामां स्त्रियं यश्चागम्यां रहसि याचितः। नोपैति स च धर्मेषु भ्रूणहेत्युच्यते बुधैः ॥३४॥
इत्येतानि समीक्ष्याहं कारणानि भृगूद्वह। अधर्मं भयसंविग्नः शर्मिष्ठामुपजग्मिवान् ॥३५॥
शुक्र उवाच
नन्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते मदधीनोऽसि पार्थिव। मिथ्याचारस्य धर्मेषु चौर्यं भवति नाहुष ॥३६॥
वैशम्पायन उवाच
क्रुद्धेनोशनसा शप्तो ययातिर्नाहुषस्तदा। पूर्वं वयः परित्यज्य जरां सद्योऽन्वपद्यत ॥३७॥
ययातिरुवाच
अतृप्तो यौवनस्याहं देवयान्यां भृगूद्वह। प्रसादं कुरु मे ब्रह्मन् जरेयं न विशेच्च माम् ॥३८॥

देवयानी बोली—अधर्म ने धर्म को जीत लिया, छोटा बड़ा हुआ और बड़ा छोटा हुआ। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने मेरे पति का वरण किया ॥२८॥ इस राजा ययाति ने शर्मिष्ठा के तीन पुत्र उत्पन्न किये और अभागिनी मेरे दो ही पुत्र उत्पन्न किये। पिताजी, यह मैं आप से कहती हूँ ॥२९॥ भृगुकुलश्रेष्ठ, यह राजा धर्मात्मा के नाम से प्रसिद्ध हैं, पर इन्होंने धर्म की मर्यादा का लंघन किया है, यह मैं आप से कहती हूँ ॥३०॥

शुक्राचार्य बोले—महाराज, धर्मज्ञ होकर अधर्म को आपने प्रिय समझा है, इस कारण अजेय वृद्धावस्था आप पर आक्रमण करेगी, अर्थात् आप शीघ्र बूढ़े हो जायँगे ॥३१॥

ययाति बोले—भगवन्, दानव-राज की कन्या ने मुझसे ऋतु की प्रार्थना की थी, धर्मानुकूल समझकर मैंने ऐसा किया है, और कोई कारण नहीं है, काम-बुद्धि से मैंने ऐसा नहीं किया ॥३२॥ ऋतु-प्रार्थना करने वाली स्त्री को जो पुरुष ऋतु-दान नहीं देता, उसे ब्रह्मवादी भ्रूणहन्ता कहते हैं ॥३३॥ जो स्त्री एकान्त में कामवशीभूत होकर समागम की प्रार्थना करे और वह समागम योग्य हो, तो जो पुरुष उससे समागम नहीं करता, उसे विद्वान् भ्रूणहन्ता कहते हैं ॥३४॥ भृगुश्रेष्ठ, इन्हीं सब कारणों का विचार करके और अधर्म से डरकर मैं शर्मिष्ठा के पास गया था ॥३५॥ शुक्राचार्य बोले—राजन्, आप मेरे अधीन थे, इस विषय में आपको मेरी आज्ञा लेनी थी। आचार का अतिक्रम करके धर्माचरण करनेवाले को चोरी का अपराध होता है ॥३६॥

शुक्र उवाच

नाहं मृषाब्रवीम्येतज्जरां प्राप्तोऽसि भूमिप। जरान्त्वेतांत्वमन्यस्मिन् संक्रामय यदीच्छसि ॥३९॥

ययातिरुवाच

राज्यभाक्सभवेद्ब्रह्मन्पुण्यभाक्कीर्तिभाक्तथा। यो मे दद्याद्वयः पुत्रस्तद्भवाननुमन्यताम् ॥४०॥

शुक्र उवाच

संक्रामयिष्यसि जरां यथेष्टं नहुषात्मज। मामनुध्याय भावेन न च पापमवाप्स्यसि ॥४१॥

वयो दास्यति ते पुत्रो यः स राजा भविष्यति। आयुष्मान्कीर्तिमांश्चैव बह्वपत्यस्तथैव च ॥४२॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

वैशम्पायन उवाच

जरां प्राप्य ययातिस्तु स्वपुरं प्राप्य चैव हि। पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद्वचः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—क्रोध करके शुक्राचार्य के शाप देने पर नहुष-पुत्र राजा ययाति शीघ्र ही बूढ़े हो गये, उनकी जवानी जाती रही ॥३८॥ ययाति बोले—भृगुश्रेष्ठ, देवयानी के साथ यौवन सुखभोग से मेरी तृप्ति अभी नहीं हुई है। आप कृपा करें, जिससे मुझ पर बुढ़ापे का आक्रमण न हो, मैं बूढ़ा न होऊँ ॥३८॥

शुक्र बोले—राजन्, मैंने तुमसे यह झूठ नहीं कहा है। तुम बूढ़े हो गये। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम यह बुढ़ापा दूसरे को दे सकते हो ॥३९॥

ययाति बोले—भगवन्, आप यह भी आज्ञा दें कि पुत्रों में से जो कोई मुझे अपना यौवन देगा और मेरा बुढ़ापा लेगा, वही राज्य, पुण्य और कीर्ति का भागी होगा ॥४०॥

शुक्र बोले—नहुष-पुत्र, इच्छानुसार तुम अपनी वृद्धावस्था दूसरे को दे सकते हो, श्रद्धापूर्वक मेरा ध्यान करके तुम ऐसा कर सकते हो, तुम्हें पाप नहीं होगा ॥४१॥ जो पुत्र तुम्हें अपना यौवन देगा, वही राजा होगा, उसकी आयु बड़ी होगी, कीर्ति बड़ी होगी और उसके बहुत से पुत्र होंगे ॥४२॥

त्र्यशीतितम अध्याय

ययाति का यदु आदि को शाप और पुरु को वरदान देना।

वैशम्पायन बोले—राजा ययाति बूढ़े होकर अपने नगर में आये और अपने ज्येष्ठ और योग्य पुत्र यदु से इस प्रकार बोले ॥ १ ॥



शुक्राचार्यका राजा ययातिको शाप देना

[चित्रकार—पी० मुकर्जी

यया‍तिरुवाच

जरावली च मां तात पलितानि च पर्यगुः । काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ॥२॥

त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम् ॥३॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनस्ते यौवनंत्वहम् । दत्त्वा स्वं प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥४॥

यदुरुवाच

जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः । तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीष्य इति मे मतिः ॥५॥

सितश्मश्रुर्निरानंदो जरया शिथिलीकृतः । वलीसंगतगात्रस्तु दुर्दर्शो दुर्बलः कृशः ॥६॥

अशक्तः कार्यकरणे परिभूतः स यौवतैः । सहोपजीविभिश्चैव तां जरां नाभिकामये ॥७॥

संति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप । जरां गृहीतुं धर्मज्ञ तस्मादन्यं वृणीष्व वै ॥८॥

ययातिरुवाच

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि । तस्माद्राज्यभाक्तात प्रजा तव भविष्यति ॥९॥

तुर्वसोप्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । यौवनेन चरेयं वै विषयाँस्तव पुत्रक ॥१०॥

पूर्णे वर्ष सहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम् । स्वं चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥११॥

ययाति बोले—पुत्र, शुक्राचार्य के शाप से मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मेरे बाल पक गये हैं, पर यौवन के विषय भोग से मेरी तृप्ति नहीं हुई है ॥ २ ॥ अतएव, यदु, तुम इस बुढ़ापे को लेकर शाप का फल भोगो और तुम्हारे यौवन से मैं विषय भोग करूँ ॥ ३ ॥ एक हजार वर्ष पूरा होने पर मैं तुम्हारा यौवन तुम्हें लौटा दूँगा और वृद्धावस्था के साथ अपना शाप ले लूँगा ॥ ४ ॥

यदु बोले—वृद्धावस्था में अनेक दोष हैं, मनुष्य अच्छी तरह से खा-पी भी नहीं सकता, इसलिए मेरा निश्चय है कि मैं आपकी वृद्धावस्था न लूँ ॥ ५ ॥ बूढ़े मनुष्य की मूँछ सफ़ेद हो जाती है, उसका आनन्द जाता रहता है, बुढ़ापे से अंग शिथिल पड़ जाते हैं। शरीर पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, वह देखने में बुरा मालूम पड़ता है, वह कमजोर और कृश हो जाता है ॥ ६ ॥ कार्य करने में अशक्त हो जाता है, युवती स्त्रियों से उसे हार माननी पड़ती है, अपने साथियों से नीचा देखना पड़ता है, अतएव वैसी वृद्धावस्था को मैं नहीं चाहता ॥ ७ ॥ राजन्, आपके और भी पुत्र हैं, जो मुझसे आपको अधिक प्रिय हैं। अतएव धर्मज्ञ, वृद्धावस्था लेने के लिए आप किसी दूसरे पुत्र को चुनें ॥ ८ ॥

ययाति बोले—तुम मेरे हृदय से उत्पन्न हुए हो और अपना यौवन मुझे नहीं देते, अतएव पुत्र, तुम्हारे वंशजों का राज्य में भाग न होगा, अर्थात् वे राज्याधिकारी न होंगे ॥ ९ ॥ तुर्वसु, तुम मेरी वृद्धावस्था लो और मेरे शाप का फल भोगो, पुत्र ! तुम्हारे यौवन से मैं विषय भोग करूँगा ॥१०॥ हजार वर्ष पूरा होने पर मैं तुम्हारा यौवन तुम्हें लौटा दूँगा और शाप के साथ वृद्धावस्था ले लूँगा ॥११॥

तुर्वसुरुवाच

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम् । बलरूपान्तकरणीं बुद्धिप्राणप्रणाशिनीम् ॥१२॥

ययातिरुवाच

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि । तस्मात्प्रजा समुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति ॥१३॥

संकीर्णाचारधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च । पिशिताशिषु चान्त्येषु मूढ राजा भविष्यसि ॥१४॥

गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु च । पशुधर्मेषु पापेषु म्लेच्छेषु त्वं भविष्यसि ॥१५॥

वैशम्पायन उवाच

एवं स तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः । शर्मिष्ठायाः सुतं द्रुह्युमिदं वचनमब्रवीत् ॥१६॥

ययातिरुवाच

द्रुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् । जरां वर्षसहस्रं मे यौवनं स्वं ददस्व च ॥१७॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम् । स्वं चादास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह ॥१८॥

द्रुह्युरुवाच

न गजं न रथं नाश्वं जीर्णो भुंक्ते न च स्त्रियम् । वाक्संगश्चास्य भवति तां जरां नाभिकामये ॥१९॥

ययातिरुवाच

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि । तस्माद्द्रुह्यो प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित् ॥२०॥

तुर्वसु बोले—पिताजी, कामभोग नष्ट करने वाली इस वृद्धावस्था को मैं नहीं चाहता, इससे बल और रूप का अन्त हो जाता है, यह बुद्धि और प्राण को नष्ट कर देती है ॥१२॥

ययाति बोले—तुम मेरे हृदय से उत्पन्न हुए हो और अपना यौवन मुझे नहीं देते, इस कारण तुम्हारे वंश का नाश हो जायगा ॥१३॥ जो आचार और धर्म से पतित हैं, जो नीच से उत्पन्न प्रतिलोम वर्णसङ्कर हैं, जो मांसभक्षी अन्त्यज हैं, मूर्ख, तू उन्हीं का राजा होगा ॥१४॥ जो गुरु-स्त्री-गामी होंगे, जिनका आचरण पशु-पक्षियों का-सा होगा, उन पापी पशु-धर्म वाले म्लेच्छों में तुम निवास करोगे ॥१५॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार अपने पुत्र तुर्वसु को शाप देकर राजा ययाति शर्मिष्ठा के पुत्र द्रुह्यु से इस प्रकार बोले ॥१६॥

ययाति बोले—पुत्र, वर्ण और रूप नष्ट करने वाली वृद्धावस्था तुम लो और एक हजार वर्षों के लिए अपनी युवावस्था दो ॥१७॥ हजार वर्ष पूरा होने पर मैं तुम्हारा यौवन तुम्हें लौटा दूँगा और शाप के साथ अपनी वृद्धावस्था ले लूँगा ॥१८॥

द्रुह्यु बोले—बूढ़ा मनुष्य हाथी, घोड़े, रथ तथा स्त्रियों का भोग नहीं कर सकता, उसकी बोली भी ठीक नहीं निकलती, इस कारण मैं वृद्धावस्था को नहीं चाहता ॥१९॥

ययाति बोले—तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर अपना यौवन मुझे नहीं देते, इस कारण

यत्राश्वरथमुख्यानामश्वानां स्याद्गतं न च । हस्तिनां पीठकानां च गर्दभानां तथैव च ॥२१॥
बस्तानां च गवां चैव शिबिकायास्तथैव च । उडुपप्लवसन्तारो यत्र नित्यं भविष्यति ॥
अराजा भोज शब्दं त्वं तत्र प्राप्स्यसि सान्वयः ॥२२॥

ययातिरुवाच
अनोत्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । एकं वर्ष सहस्रं तु चरेयं यौवनेन ते ॥२३॥

अनुरुवाच
जीर्णः शिशुवदादत्तेऽकालेऽन्नमशुचिर्यथा । न जुहोति च कालेऽग्निं तां जरां नाभिकामये ॥२४॥

ययातिरुवाच
यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि । जरादोषस्त्वया प्रोक्तस्तस्मात्त्वं प्रतिलप्स्यसे ॥२५॥
प्रजाश्च यौवन प्राप्ता विनशिष्यन्त्यनो तव । अग्निप्रस्कन्दनपरस्त्वं चाप्येवं भविष्यसि ॥२६॥

ययातिरुवाच
पूरो त्वं मे प्रियः पुत्रस्त्वं वरीयान् भविष्यसि । जरावली च मां तात पलितानि च पर्यगुः ॥२७॥
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने । पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ॥
कंचित्कालं चरेयं वै विषयान्वयसा तव ॥२८॥
पूर्णे वर्ष सहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम् । स्वं चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥२९॥

द्रुह्यु, तुम्हारा कोई मनोरथ पूरा न होगा ॥२०॥ जहाँ घोड़े का रथ, घोड़े, हाथी, पीठक (राजा के चलने की सवारी) गधे, बकरे, गौ तथा पालकी आदि न आ-जा सकते हों, जहाँ सदा नाव से अथवा तैरकर आना-जाना होता हो, वहाँ अपने वंशजों के साथ तुम्हें रहना पड़ेगा, तू राजा न होगा, भोज नाम से प्रसिद्ध होगा ॥२१, २२॥

ययाति बोले—तुम वृद्धावस्था के साथ मेरा शाप ले लो, एक हजार वर्षों तक मैं तुम्हारे यौवन का सुख भोगूँगा ॥२३॥

अनु बोले—वृद्ध मनुष्य बालक के समान असमय में ही अन्न ग्रहण करता है, वह अपवित्र रहता है, समय पर अग्निहोत्र भी नहीं करता. अतएव मैं वृद्धावस्था नहीं चाहता ॥२४॥

ययाति बोले— तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर अपना यौवन मुझे नहीं देते और वृद्धावस्था के दोषों को बतलाते हो, इस कारण तुम शीघ्र ही बूढ़े हो जाओगे ॥२५॥ तुम्हारी सन्तान युवा अवस्था में नष्ट हो जायगी, तुम भी श्रौत-स्मार्त कर्मों का त्याग करके इसी प्रकार बूढ़े हो जाओगे ॥२६॥ ययाति बोले—पुरु ! तुम मेरे प्रिय पुत्र हो, तुम महान् होगे, मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मेरे अंग शिथिल हो गये हैं, बाल पक गये हैं, शुक्राचार्य के शाप से ऐसा हुआ है, पर मैं यौवन भोग से तृप्त नहीं हुआ हूँ । पुरु, वृद्धावस्था के साथ तुम मेरा शाप लो: कुछ दिनों तक तुम्हारे यौवन से मैं विषय भोग करूँगा । २७, २८॥ हजार वर्ष पूरा होने पर मैं अपना यौवन लौटा दूँगा और शाप के साथ अपनी वृद्धावस्था ले लूँगा ॥२९॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तं प्रत्युवाच पूरुः पितरमंजसा । यथाऽऽत्थ मां महाराज तत्करिष्यामि ते वचः ॥३०॥

प्रतिपत्स्यामि ते राजन्पाप्मानं जरया सह । गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान्यथेप्सितान् ॥३१॥

जरयाऽहं प्रतिच्छन्नो वयो रूपधरस्तव । यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथाऽऽत्थ माम् ॥३२॥

ययातिरुवाच

पूरो प्रीतोऽस्मि ते वत्स प्रीतश्चेदं ददामि ते । सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति ॥३३॥

एवमुक्त्वा ययातिस्तु स्मृत्वा काव्यं महातपाः । संक्रामयामासजरां तदा पूरौ महात्मनि ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

वैशम्पायन उवाच

पौरवेणाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः । प्रीतियुक्तो नृपश्रेष्ठश्चचार विषयान् प्रियान् ॥ १ ॥

यथाकामं यथोत्साहं यथाकालं यथासुखम् । धर्माविरुद्धं राजेन्द्र यथाऽर्हति स एव हि ॥ २ ॥

देवानतर्पयद्यज्ञैः श्राद्धैस्तद्वत्पितृनपि । दीनाननुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान् ॥ ३ ॥

वैशम्पायन बोले—पिता के ऐसा कहने पर पुरु शीघ्रता से उनसे बोले—पिताजी, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा, आप जैसा कहते हैं, वैसा मैं करूँगा ॥३०॥ मैं बृद्धावस्था के साथ आपका शाप लूँगा, आप मेरा यौवन लें और इच्छानुसार विषय भोग करें ॥३१॥ मैं बूढ़ा होकर और उसके अनुसार रूप धरकर तथा यौवन आप को देकर जैसा आप कहते हैं, उसी प्रकार रहूँगा ॥३२॥

ययाति बोले—पुरु, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ और प्रसन्न होकर तुमको आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारे राज्य में प्रजा सुखी होगी, उसके सब मनोरथ पूरे होंगे ॥३३॥ पुरु से इस प्रकार कहकर तपस्वी राजा ने शुक्राचार्य का स्मरण किया और महात्मा पुरु को अपनी बृद्धावस्था दे दी ॥३४॥

चतुरशीतितम अध्याय ।

ययाति को वैराग्य होना; पुरु का राज्याभिषेक ।

नहुष-पुत्र ययाति पुरु का यौवन पाकर प्रसन्न हुए और अपने प्रिय भोगों को भोगने लगे ॥१॥ मनोरथ और उत्साह के अनुसार, यथासमय, सुखपूर्वक राजा ययाति धर्म में बिना बाधा पहुँचाये विषय भोग करने लगे, वैसा वे ही कर सकते थे ॥२॥ वे राजा देवताओं को यज्ञ से, पितरों को श्राद्ध से तृप्त करते थे। दीनों को कृपा से और ब्राह्मणों को मनोरथ-पूर्ति के द्वारा

अतिथीनन्नपानैश्च विश्वश्च परिपालनैः । आनृशंस्ये न शूद्रांश्च दस्यून्सन्निग्रहेण च ॥ ४ ॥
धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरंजयन् । ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवापरः ॥ ५ ॥
स राजा सिंहविक्रान्तो युवाविषयगोचरः । अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम् ॥ ६ ॥
स सम्प्राप्य शुभान्कामाँस्तृप्तः खिन्नश्च पार्थिवः । कालं वर्ष सहस्रान्तं सस्मार मनुजाधिपः ॥ ७ ॥
परिसंख्याय कालज्ञः कलाः काष्ठाश्च वीर्यवान् । यौवनं प्राप्य राजर्षिः सहस्र परिवत्सरान् ॥ ८ ॥
विश्वाच्या सहितो रेमे व्यभ्राजन्नन्दने वने । अलकायां सकालं तु मेरुशृंगे तथोत्तरे ॥ ९ ॥
यदा स पश्यते कालं धर्मात्मा तं महीपतिः । पूर्णं मत्वा ततः कालं पूरुं पुत्रमुवाच ह ॥१०॥
यथाकामं यथोत्साहं यथाकालमरिन्दम । सेविता विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव ॥११॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥१२॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत् ॥१३॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः । योऽसौप्राणान्तिकोरोगस्तांतृष्णांत्यजतःसुखम् ॥१४॥
पूर्णं वर्ष सहस्रं मे विषयासक्तचेतसः । तथाप्यनुदिनं तृष्णा ममैतेष्वभिजायते ॥१५॥

तृप्त करते थे ॥३॥ अतिथियों को अन्न-जल देकर, प्रजाओं को पालन करके, शूद्रों को दया करके और चोरों को दण्ड देकर वे सन्तुष्ट करते थे ॥४॥ धर्मानुसार समस्त प्रजा को प्रसन्न करके ययाति साक्षात् दूसरे इन्द्र के समान प्रजा का पालन करते थे ॥५॥ सिंह के समान पराक्रमी युवा, वे राजा, विषयों को अपने अधीन रखते थे और धर्म के अविरोध से उत्तम सुखों का भोग करते थे ॥६॥ एक साथ ही समस्त उत्तम मनोरथों को भोगकर राजा प्रसन्न भी हुए और दुःखी भी, क्योंकि राजा को एक हजार वर्ष की समाप्ति की याद आ गयी ॥७॥ काल की गणना जानने वाले राजा ययाति ने यौवन पाकर हजार वर्षों की गणना कला तथा काष्ठा के साथ कर ली थी ॥८॥ उसी अवधि के भीतर वे राजा कभी सुन्दर नन्दनवन में विश्वाची के साथ कभी अलकापुरी में, कभी उत्तर दिशा में, कभी मेरुपर्वत के शिखर पर रमण करते थे ॥९॥ काल भी राजा को ग्रास करने के लिए उनकी ओर देखता था, वे भी प्रतिज्ञा की अवधि गिनते थे। राजा को जब हजार वर्ष के पूरे होने की बात मालूम हुई, तब वे अपने पुत्र पुरु को बुलाकर उससे बोले ॥१०॥ पुत्र, मैंने तुम्हारे यौवन से, उत्साह और मनोरथ के अनुसार, एक हजार वर्ष तक विषय भोग किया ॥११॥ पर काम-भोग से काम की शान्ति कभी नहीं होती, जिस प्रकार घी से आग बढ़ती है, उसी प्रकार विषय भोग से काम भी बढ़ता है ॥१२॥ पृथिवी में जितना अन्न, पशु, सोना स्त्रियाँ आदि हैं, वे एक पुरुष की भी तृष्णा शान्त करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, अतएव तृष्णा का त्याग करना चाहिए ॥१३॥ मूर्खों के लिए जिसका त्याग करना कठिन है; मनुष्य बूढ़ा हो जाता है, पर जो बूढ़ी नहीं होती; जो प्राण के साथ जानेवाला एक प्रकार का रोग है, उस तृष्णा का त्याग करने से ही सुख होता है ॥१४॥ विषयासक्त होकर एक हजार वर्ष मैंने बिताये हैं, तथापि दिनोंदिन इन विषयों में मेरी तृष्णा बढ़ती ही जाती

तस्मादेनामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम्। निर्द्वन्द्वोनिर्ममोभूत्वाचरिष्यामिमृगैःसह ॥१६॥
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाणेदं स्वयौवनम्। राज्यं चेदं गृहाण त्वं त्वं हि मे प्रियकृत्सुतः॥१७॥
वैशम्पायन उवाच
प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नाहुषस्तदा। यौवनं प्रतिपेदे च पूरुः स्वं पुनरात्मनः ॥१८॥
अभिषेक्तुकामं नृपतिं पुरुं पुत्रं कनीयसम्। ब्राह्मणप्रमुखावर्णा इदं वचनमब्रुवन् ॥१९॥
कथं शुक्रस्यनप्तारं देवयान्याःसुतं प्रभो। ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य राज्यं पूरोः प्रयच्छसि ॥२०॥
यदुर्ज्येष्ठस्तव सुतो जातस्तमनुतुर्वसुः। शर्मिष्ठायाः सुतोद्रुह्युस्ततोऽनुः पूरुरेव च ॥२१॥
कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान् राज्यमर्हति। एतत्सम्बोधयामस्त्वां धर्मं त्वं प्रतिपालय ॥२२॥
ययातिरुवाच
ब्राह्मणप्रमुखावर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः। ज्येष्ठं प्रति यथाराज्यं न देयं मे कथंचन ॥२३॥
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः। प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः ॥२४॥
मातापित्रोर्वचन कृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः। स पुत्रः पुत्रवद्यश्च वर्त्तते पितृमातृषु ॥२५॥
यदुनाऽहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनाऽपि च। द्रुह्युना चानुनाचैव मय्यवज्ञा कृता भृशम् ॥२६॥
पूरुणा तु कृतं वाक्यं मानितं च विशेषतः। कनीयान्मम दायादो धृता येन जरा मम ॥२७॥

है ॥१५॥ अतएव इस तृष्णा का त्याग करके मैं अपना मन ब्रह्म में लगाऊँगा, सुख-दुःख तथा मोह का त्याग करके मृगों के साथ बन में विचरण करूँगा ॥१६॥ पुरु, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम्हारा कल्याण हो, यह अपना यौवन लो, यह राज्य भी लो, क्योंकि तुम्हीं मेरे प्रिय करने वाले पुत्र हो ॥१६॥

वैशम्पायन बोले—नहुष-पुत्र राजा ययाति ने पुरु से अपनी वृद्धावस्था लौटा ली। पुरु ने पुनः अपना यौवन पाया ॥१८॥ जब राजा छोटे पुत्र पुरु के राज्याभिषेक का उद्योग करने लगे, तब ब्राह्मण आदि वर्णों के लोग राजा से इस प्रकार बोले ॥१७॥ राजन्, शुक्र के नाती, देवयानी के पुत्र, अपने बड़े पुत्र यदु को छोड़कर छोटे का राज्याभिषेक आप क्यों कर रहे हैं ॥२०॥ यदु आप का सब से बड़ा लड़का है, उससे छोटा तुर्वसु है, तुर्वसु से छोटा शर्मिष्ठा का पुत्र द्रुह्यु है, फिर अनु है और पुरु सब से छोटा है ॥२१॥ बड़ों के रहते छोटा कैसे राज्य पा सकता है? हम-लोग आप से यह निवेदन करते हैं कि आप धर्म का पालन करें ॥२२॥

ययाति बोले—ब्राह्मण आदि वर्णों के लोग, आप सब सावधान होकर मेरी बात सुनें, कि सब से बड़े पुत्र यदु को किस कारण राज्य नहीं दिया जा रहा है ॥२३॥ जेठे यदु ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया है। जो पिता के प्रतिकूल है, सज्जन उसको पुत्र नहीं कहते ॥२४॥ जो पुत्र माता-पिता की बात मानता है, उनका हितकारी और अनुकूल है, वही पुत्र है; और जो पुत्र के समान आचरण करे, वह भी पुत्र है ॥२५॥ यदु ने मेरा तिरस्कार किया है, तुर्वसु ने भी मेरा तिरस्कार किया है। द्रुह्यु और अनु ने भी मेरा तिरस्कार किया है ॥२६॥ पुरु ने मेरी बात मानी है, मेरी

मम कामः स च कृतः पूरुणा मित्ररूपिणा । शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् ॥२८॥
पुत्रो यस्त्वाऽनुवर्तेत स राजा पृथिवीपतिः । भवतोऽनुनयाम्येवं पूरू राज्येऽभिषिच्यताम् ॥२९॥
प्रकृतय ऊचुः
यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा । सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि सत्तमः ॥३०॥
अर्हः पुरुरिदं राज्यं यः सुतः प्रियकृत्तव । वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् ॥३१॥
वैशम्पायन उवाच
पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा । अभ्यषिञ्चत्ततः पूरुं राज्ये स्वे सुतमात्मजम् ॥३२॥
दत्वा च पूरवे राज्यं वनवासाय दीक्षितः । पुरात्स निर्ययौ राजा ब्राह्मणैस्तापसैः सह ॥३३॥
यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः । द्रुह्योःसुतास्तु वै भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः ॥३४॥
पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जतोऽसि पार्थिव । इदं वर्ष सहस्राणि राज्यं कारयितुं वशी ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने पूर्वयायात समाप्तौ
पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

आज्ञा का पालन किया है, इस कारण छोटा पुरु ही मेरा दयाद है, मेरे राज्य का उत्तराधिकारी है ॥२७॥ पुरु रूपी मित्र ने मेरा मनोरथ पूरा किया है। शुक्राचार्य ने भी इस सम्बन्ध में मुझे पहले वर दिया है। जो पुत्र तुम्हारी आज्ञा माने, वही पृथिवी का स्वामी राजा होगा। आप लोगों से भी मैं विनय करता हूँ, आपलोग पुरु का राज्याभिषेक करें ॥२८, २९॥ प्रजाजन बोले—जो पुत्र गुणी हो, पिता-माता का हितकारी हो, वह छोटा होने पर भी बड़ा है,वही अधिकारी है, उसे ही पिता का सब धन मिलना चाहिए ॥३०॥ आप का प्रिय करने वाला पुत्र पुरु ही इस राज्य का अधिकारी है। शुक्राचार्य का वर मिल गया है, इस कारण आगे के लिए कुछ कहा ही नहीं जा सकता अर्थात् अब शुक्र के क्रोध करने का भी भय नहीं है ॥३१॥

वैशम्पायन बोले—प्रसन्न होकर पुरवासी तथा राज्य के लोगों ने जब ऐसा कहा, तब नहुष-पुत्र राजा ययाति ने अपने पुत्र पुरु का राज्याभिषेक किया ॥३२॥ पुरु को राज्य देकर राजा वनवास के लिए उद्यत हुए, वे तपस्वी ब्राह्मणों के साथ नगर से निकले ॥३३॥ यदु से यादव उत्पन्न हुए और तुर्वसु से यवन। द्रुह्य की सन्तान भोज नाम से प्रसिद्ध हुई और अनु की सन्तान म्लेच्छ जाति के लोग हुए ॥३४॥ पुरु का वंश पौरव कहा जाता है, जिस वंश में आपका जन्म हुआ है। आप हजार वर्षों तक राज्य करेंगे ॥३५॥

पंचाशीतितम अध्याय।

वैशम्पायन उवाच

एवं स नाहुषो राजा ययातिः पुत्रमीप्सितम् । राज्येऽभिषिच्य मुदितो वानप्रस्थोऽभवन्मुनिः ॥ १ ॥
उषित्वा च वने वासं ब्राह्मणैः संशितव्रतः । फलमूलाशनो दान्तस्ततः स्वर्गमितो गतः ॥ २ ॥
स गतः स्वर्निवासं तं निवसन्मुदितः सुखी । कालेन नाति महता पुनः शक्रेण पातितः ॥ ३ ॥
निपतन्प्रच्युतः स्वर्गादप्राप्तो मेदिनीतलम् । स्थित आसीदन्तरिक्षे स तदेतिश्रुतं मया ॥ ४ ॥
तत एव पुनश्चापि गतः स्वर्गमिति श्रुतम् । राज्ञा वसुमता सार्धमष्टकेन च वीर्यवान् ॥ ५ ॥
प्रतर्दनेनशिबिना समेत्य किल संसदि ।

जनमेजय उवाच

कर्मणा केन स दिवं पुनः प्राप्तो महीपतिः ॥ ६ ॥
सर्वमेतदशेषेण श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । कथ्यमानं त्वया विप्र विप्रर्षिगणसन्निधौ ॥ ७ ॥
देवराज समो ह्यासीद्ययातिः पृथिवीपतिः । वर्धनः कुरुवंशस्य विभावसुसमद्युतिः ॥ ८ ॥
तस्य विस्तीर्णयशसः सत्यकीर्तेर्महात्मनः । चरितं श्रोतुमिच्छामि दिवि चेह च सर्वशः ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि ययातेरुत्तमां कथाम् । दिविचेह च पुण्यार्थां सर्व पापप्रणाशिनीम् ॥१०॥

ययाति का स्वर्ग जाना ।

वैशम्पायन बोले—नहुष-पुत्र राजा ययाति ने इस प्रकार अपने प्रिय पुत्र का राज्याभिषेक करके प्रसन्नतापूर्वक वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया, वे मुनि होकर बन गये ॥१॥ व्रतधारी राजा बन में फल-मूल आहार करके तथा जितेन्द्रिय रहकर ब्राह्मणों के साथ निवास करने लगे और वहाँ से वे स्वर्ग में गये ॥२॥ स्वर्ग में जाकर राजा ने प्रसन्नता और सुख से वहाँ निवास किया, पुनः बहुत समय के पश्चात् उन्हें इन्द्र ने स्वर्ग से गिरा दिया ॥३॥ स्वर्ग से गिरकर वे पृथिवी पर नहीं आये, बीच ही में कहीं ठहर गये, ऐसा मैंने सुना है ॥४॥ और वहीं से वे राजा, अष्टक तथा राजा वसुमान के साथ, पुनः स्वर्ग गये, यह भी सुना है। राजा प्रतर्दन और शिवि भी उनसे मिले थे और इन लोगों के साथ वे स्वर्ग में गये थे।

राजा जनमेजय बोले—वे राजा किस कर्म के बल से पुनः स्वर्गगामी हुए थे ॥५, ६॥ विप्र, ब्रह्मर्षियों के सामने आप इस वृत्तान्त को विस्तार के साथ कहें, मैं सुनना चाहता हूँ ॥७॥ राजा ययाति इन्द्र के तुल्य प्रतापी थे, वे कुरु-वंश को बढ़ाने वाले और अग्नि के समान तेजस्वी थे ॥८॥ उन विशाल यश वाले,सत्यकीर्ति महात्मा ययाति का मर्त्य तथा स्वर्गलोक का चरित मैं सुनना चाहता हूँ ।९॥

वैशम्पायन बोले—अच्छी बात है, स्वर्ग और मर्त्यलोक की राजा ययाति की सुन्दर कथा मैं कहता हूँ। वह कथा पापों को नष्ट करने वाली और पुण्यदायिनी है ॥१०॥

ययातिर्नाहुषो राजा पूरुं पुत्रं कनीयसम्। राज्येऽभिषिच्य मुदितः प्रवव्राज वनं तदा ॥११॥
अन्त्येषु स विनिक्षिप्य पुत्रान्यदु पुरोगमान्। फलमूलाशनो राजा वने संन्यवसच्चिरम् ॥१२॥
शंसितात्मा जितक्रोधस्तर्पयन्पितृदेवताः। अग्नींश्च विधिवज्जुह्वन्वानप्रस्थ विधानतः ॥१३॥
अतिथीन्पूजयामास वन्येन हविषा विभुः। शिलोञ्छ वृत्तिमास्थाय शेषान्नकृतभोजनः ॥१४॥
पूर्णं वर्ष सहस्रं च एवं वृत्तिरभून्नृपः। अब्भक्षः शरदस्त्रिंशदासीन्नियत वाङ्मनाः ॥१५॥
ततश्च वायुभक्षोऽभूत्संवत्सरमतन्द्रितः। तथा पंचाग्नि मध्ये च तपस्तेपे सवत्सरम् ॥१६॥
एकपादः स्थितश्चासीत् षण्मासानिलाशनः। पुण्यकीर्तिस्ततः स्वर्गं जगामावृत्यरोदसी ॥१७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

वैशम्पायन उवाच

स्वर्गतः स तु राजेन्द्रो निवसन्देववेश्मनि। पूजितस्त्रिदशैः साध्यैर्मरुद्भिर्वसुभिस्तथा ॥ १ ॥
देवलोकं ब्रह्मलोकं संचरन्पुण्यकृद्वशी। अवसत्पृथिवीपालो दीर्घकालमितिश्रुतिः ॥ २ ॥

नहुष-पुत्र राजा ययाति, छोटे पुत्र पुरु का राज्याभिषेक करके प्रसन्नता के साथ वन में गये ॥११॥ यदु आदि पुत्रों को म्लेच्छ प्रधान देश में भेजकर राजा फल-मूल के आहार पर बनवास करने लगे ॥१२॥ वहाँ राजा ने मन और क्रोध को जीता, देवता और पितरों को तृप्त किया, वानप्रस्थ विधान के अनुसार विधिपूर्वक उन्होंने हवन किया ॥१३॥ जंगली फल-मूल तथा हविष्य से उन्होंने अतिथियों का सत्कार किया। शील और उञ्छ वृत्तिसे उनकी जीविका चलती थी, उसमें भी अतिथि-सेवा से बचा अन्न वह खाते थे ॥१४॥ पूरे एक हजार वर्षों तक राजा का यही व्यवहार रहा, जल का आहार करके तथा मन और वाणी को अधीन कर उन्होंने तीस वर्ष बिताये ॥१४॥ अनन्तर एक वर्ष वायु का आहार करके तत्परता के साथ उन्होंने बिताया। अनन्तर एक वर्ष तक पंचाग्नि में उन्होंने तपस्या की ॥१६॥ वायु के आहार पर रहकर, छ महीने तक एक पैर पर खड़ा होकर उन्होंने तपस्या की। इसके पश्चात् पवित्रकीर्ति राजा ययाति मर्त्यलोक और स्वर्गलोक में अपना यश फैलाकर स्वर्ग गये ॥१६॥

षडशीतितम अध्याय।

इन्द्र और ययाति का सम्बाद।

वैशम्पायन बोले—राजा ययाति स्वर्ग में जाकर वहाँ निवास करने लगे। वहाँ देवता साध्य, मरुत और वसुओं ने उनका अभिनन्दन किया ॥१॥ जितेन्द्रिय, पुण्यात्मा राजा ब्रह्मलोक और देवलोक में विचरण करते थे। इस प्रकार वे वहाँ बहुत दिनों तक रहे, ऐसा हमलोगों ने सुना

स कदाचिन्नृपश्रेष्ठो ययातिः शक्रमागमत् । कथांते तत्र शक्रेण स पृष्टः पृथिवीपतिः ॥ ३ ॥

शुक्र उवाच

यदा स पूरुस्तव रूपेण राजन् जरां गृहीत्वा प्रचचार भूमौ ।
तदा च राज्यं सम्प्रदायैव तस्मै त्वया किमुक्तः कथयेह सत्यम् ॥ ४ ॥

ययातिरुवाच

गंगायमुनयोर्मध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्तव । मध्ये पृथिव्यास्त्वं राजा भ्रातरोऽन्त्याधिपास्तव ॥ ५ ॥

अक्रोधनः क्रोधनेभ्यो विशिष्टस्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः ।
अमानुषेभ्योमानुषाश्चप्रधानाविद्वाँस्तथैवाविदुषःप्रधानः ॥ ६ ॥

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः । आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ ७ ॥

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत ।
ययाऽस्यवाचापरउद्विजेतनतांवदेदुषतींपापलोक्याम् ॥ ८ ॥
अरुन्तुदं पुरुषं तीक्ष्णवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान् ।
विद्यादलक्ष्मी कतमंजनानां मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वहन्तम् ॥ ९ ॥
सद्भिः पुरस्तादभिपूजितः स्यातसद्भिस्तथा पृष्ठतोरक्षितः स्यात् ।
सदाऽसतामतिवादाँस्तितिक्षेत्सतां वृत्तं चाददीतार्यवृत्तः ॥१०॥

है ॥२॥ एकबार राजा ययाति इन्द्र के यहाँ गये, इन्द्र ने उनसे कई प्रश्न किये ॥३॥

इन्द्र बोले—राजन्, जिस समय पूरु ने आपकी वृद्धावस्था ली और आपके समान वृद्ध होकर वह पृथ्वी में रहता था तथा जिस समय आपने उसे राज्य दिया, उस समय उससे क्या कहा था, यह सत्य सत्य आप कहें ॥४॥

ययाति बोले—मैंने कहा था, गंगा और यमुना के बीच का यह समस्त देश तुम्हारा है। पृथ्वी के मध्य भाग के राजा तुम हो और पृथ्वी के अन्य भाग के राजा तुम्हारे भाई हैं ॥५॥ क्रोधी से अक्रोधी बड़ा है, असहनशील से सहनशील बड़ा है। अमनुष्य से मनुष्य बड़ा है और मूर्ख से विद्वान बड़ा है ॥६॥ यदि कोई तुम पर क्रोध करे तो उस पर क्रोध न करना। क्योंकि क्षमा करने वाले का क्रोध ही क्रोधी को जला देता है और क्रोधी का पुण्य अक्रोधी को मिलता है ॥७॥ कार्य और वचन से किसी को पीड़ा न देना, नीच उपायों से शत्रु को वश में न करना। जिस बात को सुनने से दूसरों को दुःख हो, वैसी बात नहीं कहनी चाहिए, क्योंकि वह बात जलाने वाली और पापमय है ॥८॥ जो मनुष्य कठोर और तीखे वचन बोलते हैं, वचन रूपी काँटों से मनुष्यों को छेदते हैं, ऐसे मनुष्यों को देखने मात्र से लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। ऐसे मनुष्यों के मुँह में पाप रहता है ॥९॥ मनुष्यों को सज्जनों के बीच में रहना चाहिए, उन्हीं के आचरण के समान अपना आचरण बनाना चाहिये, जिससे सज्जन उसके सामने उसका आदर करें, पीछे

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति राञ्यहानि ।
परस्यनाममर्मसु ते पतन्ति तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥११॥
नहीदृशं संवननं त्रिषुलोकेषु विद्यते । दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा च वाक् ॥१२॥
तस्मात्सान्त्वं सदा वाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित् । पूज्यान्सम्पूजयेद्द्यान्न च याचेत्कदाचन ॥१३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

इन्द्र उवाच
सर्वाणि कर्माणि समाप्य राजन् गृहं परित्यज्य वनं गतोऽसि ।
तत्त्वां पृच्छामि नहुषस्य पुत्र केनासि तुल्यस्तपसा ययाते ॥ १ ॥
ययातिरुवाच
नाहं देव मनुष्येषु गन्धर्वेषु महर्षिषु । आत्मनस्तपसातुल्यं कंचित्पश्यामि वासव ॥ २ ॥
इन्द्र उवाच
यदाऽवमंस्थाः सदृशः श्रेयसश्च अल्पीयसश्चाविदितप्रभावः ।
तस्माल्लोकास्त्वंतवन्तस्तवेमेक्षीणेपुण्येपतिताऽस्यद्य राजन् ॥ ३ ॥

उसकी रक्षा करें । सज्जनों की निन्दा सदा सहे। सज्जनों के आचरण ग्रहण करे, ऐसा करने से ही वह श्रेष्ठ चरित्र का हो सकेगा ॥१०॥ वचन रूपी बाण मुँह से निकलते हैं, जिनसे घायल होकर मनुष्य दिन-रात सोचा करता है, दुःखी रहता है, क्योंकि वे बचन दूसरों के मर्मस्थान पर पड़ते हैं, उनसे मर्मस्थान बिँधता है । अतएव ऐसे बचन विद्वान् को नहीं बोलने चाहिए ॥११॥ सब प्राणियों पर दया, मैत्री, दान और मीठी बात इन चारों के समान तीनों लोकों में भगवान् की आराधना का दूसरा उपाय नहीं है ॥१२॥ इस कारण सदा मधुर वचन बोलना चाहिए, कठोर वचन कभी न बोलना चाहिए । बड़ों का आदर करना चाहिए, दान देना चाहिए माँगना न चाहिए ॥१३॥

सप्ताशीतितम अध्याय ।

यथाति का स्वर्ग से गिरना ।

इन्द्र बोले—नहुष-पुत्र ययाति, आपने सब कर्मों को समाप्त किया, घर छोड़कर आप बन में गये अर्थात् संन्यास लिया, इस कारण मैं आपसे पूछता हूँ कि तपस्या में आप किसके समान हैं अर्थात् किसके समान आपने तपस्या की है ॥१॥

ययाति ने कहा—देवता, मनुष्य, गन्धर्व और महर्षियों में मैं किसी को ऐसा नहीं देखता जो तपस्या में मेरी बराबरी कर सके ॥२॥

ययातिरुवाच

सुरर्षि गन्धर्वनरावमानात्क्षयं गता मे यदि शक्र लोकाः ।
इच्छाम्यहं सुरलोकाद्विहीनः सतां मध्ये पतितुं देवराज ॥ ४ ॥

इन्द्र उवाच

सतां सकाशे पतिताऽसि राजंश्च्युतः प्रतिष्ठां यत्र लब्धाऽसि भूयः ।
एतद्विदित्वा च पुनर्यथाते त्वं माऽवमंस्थाः सदृशः श्रेयसश्च ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रहायामरराजजुष्टान्पुण्याँल्लोकान्पतमानं ययातिम् ।
सम्प्रेक्ष्य राजर्षिवरोऽष्टकस्तमुवाच सद्धर्मविधानगोप्ता ॥ ६ ॥

अष्टक उवाच

कस्त्वं युवा वासवतुल्यरूपः स्वतेजसा दीप्यमानो यथाऽग्निः ।
पतस्युदीर्णाम्बुधरान्धकारात्खात्खेचराणांप्रवरो यथाऽर्कः ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा च त्वां सूर्यपथात्पतन्तं वैश्वानरार्कद्युतिमप्रमेयम् ।
किंनुस्विदेतत्पततीति सर्वे वितर्कयन्तः परिमोहिताःस्मः ॥ ८ ॥

इन्द्र बोले—राजन् , बहुत लोग तपस्या में आपसे बड़े हैं, बहुत छोटे हैं और बहुत से समान भी हैं। आपने बिना जाने उनका अपमान किया है। अतएव आपका स्वर्गलोक का वास पूरा हुआ, आपका पुण्य नष्ट हो गया। आज आप स्वर्गलोक से च्युत होंगे ॥३॥

ययाति बोले—देवता, ऋषि, गन्धर्व और मनुष्यों के अपमान करने से मेरा लोक नष्ट हो गया है, स्वर्गलोक की अवधि समाप्त हो गयी है, तो देवराज, मैं चाहता हूँ कि स्वर्गलोक से हटने पर सज्जनों के साथ मेरा वास हो। मैं सज्जनों के साथ रह सकूँ ॥४॥

इन्द्र बोले—राजन्, तुम यहाँ से सज्जनों के बीच में ही गिराये जाओगे और वहाँ रहने से तुम पुनः स्वर्ग में आ सकोगे। पर अब तुमको अपने बराबर वालों तथा बड़ों का अपमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि अपमान करने का फल आपको मालूम हो गया है ॥५॥

वैशम्पायन बोले—राजा इन्द्र के पवित्र लोक को छोड़कर राजा ययाति जब मर्त्य-लोक में गिरने लगे, उस समय सद्धर्म के रक्षक राजर्षिप्रवर अष्टक ने उन्हें देखा और बोले ॥६॥

अष्टक बोले—इन्द्र के समान सुन्दर तुम कौन युवक हो? तुम अपने तेज से अग्नि के समान प्रकाशमान हो। ग्रहों में श्रेष्ठ सूर्य के समान तुम मेघों के फैलने से अँधेरे आकाश से निकल रहे हो॥ ७ ॥ अग्नि और सूर्य के समान तुम प्रकाशमान हो, सूर्य के मार्ग से तुम को उतरते देखकर हम सब अनुमान बाँध रहे हैं कि यह क्या है, क्या गिरता है, पर कुछ निश्चय नहीं होता॥ ८ ॥ इन्द्र, अग्नि और विष्णु के समान प्रभाव-

दृष्ट्वा च त्वां धिष्ठितं देवमार्गे शक्रार्कविष्णुप्रतिमप्रभावम् ।
अभ्युद्गतास्त्वां वयमद्य सर्वे तत्त्वं प्रपाते तव जिज्ञासमानाः ॥ ९ ॥
न चापि त्वां धृष्णुमः प्रष्टुमग्रे न च त्वमस्मान् पृच्छसि ये वयं स्मः ।
तत्त्वां पृच्छामि स्पृहणीयरूप कस्य त्वं वा किन्निमित्तं त्वमागाः ॥१०॥
भयं तु ते व्येतु विषादमोहौ त्यजाशु चैवेन्द्रसमप्रभाव ।
त्वां वर्त्तमानं हि सतां सकाशे नालं प्रसोढुं बलहापि शक्रः ॥११॥
सन्तः प्रतिष्ठा हि सुखच्युतानां सतां सदैवामरराजकल्प ।
ते संगताः स्थावरजंगमेशाः प्रतिष्ठितस्त्वं सदृशेषु सत्सु ॥१२॥
प्रभुरग्निः प्रतपने भूमिरावपने प्रभुः । प्रभुः सूर्यः प्रकाशित्वे सतां चाभ्यागतः प्रभुः ॥१३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

ययातिरुवाच
अहं ययातिर्नहुषस्य पुत्रः पूरोः पिता सर्वभूतावमानात् ।
प्रभ्रंशितः सुरसिद्धर्षिलोकात्परिच्युतः प्रपताम्यल्पपुण्यः ॥१॥

शाली आप आकाश में स्थित हैं, यह देखकर स्वर्ग से आप के गिरने का कारण जानने के लिए हम सब आप के पास आये हैं ॥ ९ ॥ हम लोगों को आप का परिचय पूछने का पहले साहस नहीं हुआ और न आप ही ने हम लोगों का परिचय पूछा, अतएव, सुन्दर ! मैं आपसे पूछता हूँ, आप किसके पुत्र हैं और किस लिए यहाँ आये हैं ? ॥१०॥ तुम निर्भय हो जाओ, चिन्ता और मोह छोड़ दो, हे इन्द्र-तुल्य प्रभावशाली, अब आप सज्जनों के बीच में हैं। यहाँ बलहन्ता इन्द्र भी आप का कुछ बिगाड़ नहीं सकता ॥११॥ हे इन्द्र-तुल्य पुरुष, दुःख में बड़े सज्जनों की प्रतिष्ठा सज्जन ही करते हैं । आप अपने समान सज्जनों के बीच हैं, ये सब लोग स्थावर और जंगम प्राणियों के अधिष्ठाता स्वामी हैं ॥१२॥ अग्निदेव जलाने के स्वामी हैं, पृथिवी संग्रह करने की स्वामिनी है, प्रकाश फैलाने के प्रभु सूर्य हैं और अतिथि, सज्जनों के प्रभु हैं ॥१३॥

अष्टाशीतितम अध्याय ।

ययाति और अष्टक का सम्वाद ।

ययाति बोले—मैं नहुष का पुत्र और पूरु का पिता ययाति हूँ। प्राणियों के अपमान के कारण मैं देवलोक से गिरा हूँ, क्योंकि मेरा पुण्य क्षीण हो गया था ॥१॥ मैं अवस्था में आप

अहं हि पूर्वो वयसाभवद्भ्यस्तेनाभिवादं भवतां न प्रयुंजे ।
यो विद्यया तपसा जन्मना वा वृद्धः स पूज्यो भवति द्विजानाम् ॥२॥

अष्टक उवाच

अवादीस्त्वं वयसा यः प्रवृद्धः स वै राजन्नाभ्यधिकः कथ्यते च ।
यो विद्यया तपसा सम्प्रवृद्धः स एव पूज्यो भवति द्विजानाम् ॥३॥

ययातिरुवाच

प्रतिकूलं कर्मणां पापमाहुस्तद्वर्त्ततेऽप्रवणे पापलोक्यम् ।
सन्तोऽसतांनानुवर्तन्ति चैतद्यथा चैषामनुकूलास्तथाऽऽसन् ॥४॥
अभूद्धनं मे विपुलं गतं तद्विचेष्टमानो नाधिगन्तातदस्मि ।
एवं प्रधार्यात्महिते निविष्टो यो वर्त्तते स विजानाति धीरः ॥५॥
महाधनो यो यजते सुयज्ञैर्यः सर्वविद्या सुविनीतबुद्धिः ।
वेदानधीत्य तपसा योज्य देहं दिवं समायात्पुरुषो वीतमोहः ॥६॥
न जातु हृष्येन्महताधनेन वेदानधीयीतानहंकृतः स्यात् ।
नाना भावा बहवो जीवलोके दैवाधीना नष्टचेष्टाधिकाराः ।
तत्तत्प्राप्य न विहन्येत धीरोदिष्टं बलीय इति मत्वाऽऽत्मबुद्ध्या ॥७॥

लोगों से बड़ा हूँ, इसी कारण आप लोगों को प्रणाम नहीं करता; क्योंकि विद्या, तपस्या और अवस्था में जो बड़ा होता है, वह द्विजातियों में पूज्य समझा जाता है ॥२॥

अष्टक बोले—राजन्, आपने कहा है कि अवस्था में जो बड़ा होता है, वह पूज्य है, पर यह ठीक नहीं है। द्विजातियों में तो वही पूज्य समझा जाता है जो विद्या और तपस्या में बड़ा हो ॥३॥

ययाति बोले—अहंकार पाप है, सत्कर्मों का नाश करने वाला है। वह पाप अहंकारियों में होता है। नरक में ले जाने वाले दुर्जनों के अहंकार को सज्जन प्रश्रय नहीं देते, वे अहङ्कारी नहीं होते। पहले के लोग भी उत्तम कर्मों को बढ़ाने के लिए अहङ्कार से अलग ही रहते थे ॥४॥ मेरे पास बहुत धन था, वह नष्ट हो गया, अहङ्कार से नष्ट हुआ, आज प्रयत्न भी उसके लिए करूँ तो उतना धन नहीं पा सकता। मेरी अवस्था जान करके जो मनुष्य अपने हितकर कार्यों में लगेंगे, अहङ्कार के वशीभूत न होकर उत्तम काम करेंगे, उन्हीं का ज्ञान यथार्थ ज्ञान होगा, वे ही धीर कहे जायँगे ॥५॥ विद्याओं के ज्ञाता जो धनी यज्ञ करते हैं, वेदों का अध्ययन करके तपस्या में अपना शरीर लगाते अर्थात् तपस्या के द्वारा शरीर-त्याग करते हैं, वे ही अहङ्कार-रहित पुरुष स्वर्ग जाते हैं ॥६॥ बहुत धन पाकर अहङ्कार न करे, वेदों का अध्ययन करके अहङ्कार न करे। संसार में अनेक जीव हैं और उनकी रुचि भिन्न-भिन्न होती है—कोई पाप पसन्द करता है और कोई

सुखं हि जन्तुर्यदिवाऽपि दुःखं दैवाधीनं विन्दते नात्मशक्त्या ॥
तस्माद्दिष्टं बलवन्मन्यमानो न संज्वरेन्नापि हृष्येत्कथंचित् ॥८॥
दुःखैर्न तप्येन्नसुखैः प्रहृष्येत्समेन वर्त्तेत सदैव धीरः ॥
दिष्टं बलीय इति मन्यमानो न संज्वरेन्नापि हृष्येत्कथंचित् ॥९॥
भयेन मुह्याम्यष्टकाहं कदाचित्सन्तापो मे मानसो नास्ति कश्चित् ।
धाता यथा मां विदधीत लोके ध्रुवं तथाऽहं भवितेति मत्वा ॥१०॥
संस्वेदजा अंडजाश्चोद्भिदश्च सरीसृपाः कृमयोऽथाप्सुमत्स्याः ।
तथाश्मानस्तृणकाष्ठं च सर्वे दिष्ट क्षये स्वां प्रकृतिं भजन्ति ॥११॥
अनित्यतां सुखदुःखस्य बुद्ध्वा कस्मात्सन्तापमष्टकाहं भजेयम् ।

ययातिरुवाच

किं कुर्यां वै किं च कृत्वा न तप्ये तस्मात्सन्तापं वर्जयाम्यप्रमत्तः ॥१२॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवाणं नृपतिं ययातिमथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छत् ।
मातामहं सर्वगुणोपपन्नं तत्रस्थितं स्वर्गलोके यथावत् ॥१३॥

पुण्य, क्योंकि ये सभी दैव के अधीन हैं। अतएव उनके उद्योग और योग्यता सभी व्यर्थ हैं, उनकी सिद्धि और असिद्धि दैवाधीन है। इस बात का स्वयं विचार करके धीर मनुष्य दैव को बलवान् समझते हैं और सुख-दुःख आने पर न विचलित होते हैं और न प्रसन्न ॥७॥ मनुष्य को जो सुख-दुःख मिलता है, वह अपनी शक्ति से नहीं किन्तु दैव से, भाग्य से मिलता है। अतएव भाग्य को बलवान् समझकर मनुष्य को न तो दुःखी होना चाहिए और न प्रसन्न ॥८॥ दुःखों से मनुष्य को व्याकुल नहीं होना चाहिए और न सुखों से प्रसन्न होना चाहिए, धीर मनुष्य को सदा समान भाव से रहना चाहिए। भाग्य बली है, यह समझकर सुख-दुःख का त्याग कर देना चाहिए ॥९॥ अष्टक, मैं भी कभी भयभीत रहा करता था, पर आज मुझे कोई भय नहीं है, कोई मानसिक सन्ताप नहीं है; क्योंकि मैं जानता हूँ कि भाग्य जैसा चाहेगा, वैसा मुझे रहना पड़ेगा। वह चाहे सुखी रखे या दुखी, फिर मैं दुखी क्यों होऊँ ? ॥१०॥ स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, सरीसृप (रेंगनेवाले जीव) कीड़े, जलचर, मछली आदि और पत्थर, तृण, काष्ठ ये सभी दैव के अधीन हैं। दैव के नाश होने पर ये सब भी अपनी प्रकृति में आ जाते हैं, ब्रह्म स्वरूप हो जाते हैं ॥११॥ अष्टक, ये दुःख-सुख अनित्य हैं, आते-जाते रहते हैं, यह मैं जानता हूँ; अतएव इसके लिए मुझे कोई कष्ट नहीं है। क्या करने से कष्ट न होगा, इसका निर्णय किसी मनुष्य के लिए कठिन है। अतएव सावधान होकर मैंने सन्ताप का त्याग कर दिया है ॥१२॥

वैशम्पायन बोले—राजा के इस प्रकार कहने पर अष्टक ने सर्व-गुण-सम्पन्न अपने नाना ययाति से, जो अन्तरिक्ष में ठहरे हुए थे, पुनः पूछा ॥१३॥

अष्टक उवाच

ये ये लोकाः पार्थिवेन्द्रप्रधानास्त्वया भुक्ता यं च कालं यथावत् ।
तान्मे राजन् ब्रूहि सर्वान्यथावत्क्षेत्रज्ञवद्भाषसे त्वं हि धर्मान् ॥१४॥

ययाति उवाच

राजाऽहमासमिह सार्वभौमस्ततो लोकान्महतश्चाजयं वै ।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥१५॥
ततः पुरीं पुरुहूतस्य रम्यां सहस्रद्वारां शतयोजनायताम् ।
अध्यावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥१६॥
ततो दिव्यमजरं प्राप्य लोकं प्रजापतेर्लोकपतेर्दुरापम् ।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥१७॥
स देवदेवस्य निवेशने च विहृत्य लोकानवसं यथेष्टम् ।
सम्पूज्यमानस्त्रिदशैः समस्तैस्तुल्यप्रभावद्युतिरीश्वराणाम् ॥१८॥
तथावसं नन्दने कामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
सहाप्सरोभिर्विहरन्पुण्यगन्धान्पश्यन्नगान्पुष्पितांश्चारुरूपान् ॥१९॥
तत्रस्थितं मां देवसुखेषुसक्तं कालेऽतीते महतिततोऽतिमात्रम् ।
दूतो देवानामब्रवीदुग्ररूपो ध्वंसेत्युच्चैस्त्रिः प्लुतेन स्वरेण ॥२०॥

अष्टक बोले—राजन्, जिन-जिन लोकों का कुछ समय के लिए उचित उपभोग आपने किया है, उन सब का वर्णन आप कीजिए, क्योंकि आप आत्मज्ञानी के समान धर्मों का वर्णन कर रहे हैं ॥१४॥

ययाति बोले—मैं चक्रवर्ती राजा था। अनन्तर सुकर्मों से मैंने महान् लोकों को जीता। वहाँ से उससे भी उत्तम लोक में मैं गया ॥१५॥ वहाँ से इन्द्र की रमणीय नगरी में गया, जिसके हजार द्वार हैं और जो सौ योजन लम्बी है। वहाँ एक हजार वर्ष में रहा और वहाँ से पुनः उससे भी उत्तम लोक में गया ॥१६॥ वहाँ से मैं लोकपति ब्रह्मा के लोक में गया—जो लोक दिव्य और सदा नवीन रहता है। इस लोक का पाना बड़ा कठिन है। वहाँ मैंने एक हजार वर्ष वास किया। वहाँ से दूसरे उत्तम लोक में गया ॥१७॥ वहाँ देव-देव के लोक में मैंने बहुत दिनों तक विहार किया, भिन्न-भिन्न लोकों में निवास किया। समस्त देवताओं ने मेरा आदर किया। मेरा प्रभाव और तेज देवताओं के समान था ॥१८॥ नन्दनवन में मैंने दसलाख वर्षों तक निवास किया, वहाँ इच्छानुसार रूप धर सकता था। वहाँ मैंने अप्सराओं के साथ विहार किया। पुष्पित, सुगन्धित और सुन्दर वृक्षों को वहाँ मैंने देखा ॥१९॥ वहाँ मैं बहुत दिनों तक रहा, और खूब देव-भोग मैंने भोगे। उस समय, भयंकर रूप वाला एक देवताओं का दूत आया और उसने ऊँचे

एतावन्मे विदितं राजसिंह ततो भ्रष्टोऽहं नन्दनात्क्षीणपुण्यः ।
वाचोऽश्रौषं चान्तरिक्षे सुराणां सानुक्रोशाः शोचतां मां नरेन्द्र ॥२१॥
अहो कष्टं क्षीणपुण्यो ययातिः पतत्यसौ पुण्यकृत्पुण्यकीर्तिः ।
तानब्रुवं पतमानस्ततोऽहं सतां मध्ये निपतेयं कथं नु ॥२२॥
तैराख्याता भवतां यज्ञभूमिः समीक्ष्य चेमां क्षिप्रमागतोऽस्मि ।
हविर्गन्धं देशिकंयज्ञभूमेर्धूमापांगं प्रतिगृह्य प्रतीतः ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

अष्टक उवाच

यदाऽवसो नन्दने कामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
किं कारणं कार्तयुगप्रधान हित्वा च त्वं वसुधामन्वपद्यः ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

ज्ञातिः सुहृत्स्वजनो वा यथेह क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि ।
तथा तत्र क्षीणपुण्यं मनुष्यं त्यजन्ति सद्यः सेश्वरादेवसंघाः ॥ २ ॥

स्वर से तीन बार कहा—"गिरो, गिरो, गिरो" ॥२०॥ राजश्रेष्ठ, इतना मुझे मालूम है, पुण्य नष्ट हो जाने के कारण मैं स्वर्ग से गिरा। उस समय अन्तरिक्ष में देवताओं के दयापूर्ण वचन मैंने सुने। वे मेरे लिए दुःख कर रहे थे ॥२१॥ उन लोगों ने कहा कि दुःख की बात है कि पुण्य के क्षीण होने से पुण्यात्मा और पुण्यकीर्ति ययाति स्वर्ग से गिर रहे हैं। उस समय गिरते-गिरते मैंने उन लोगों से कहा—किस प्रकार मैं सज्जनों के बीच में जा सकूँगा? ॥२२॥ उन लोगों ने आपकी यज्ञ-भूमि का पता बताया। मैं इसे देखकर शीघ्र यहाँ आ गया। धूम को मैंने इशारा समझा, हवि को गन्ध को यज्ञ-भूमि का पता बतलानेवाला उपदेशक समझा, अतएव प्रसन्न होकर मैं यहाँ चला आया ॥२३॥

एकोननवतितम अध्याय।

स्वर्ग आदि लोकों का भोग कर लेने के बाद जीव के पुनर्जन्म का वृत्तान्त।

अष्टक बोले—इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति पाकर नन्दनवन में आपने दस लाख वर्षों तक निवास किया है। हे सत्ययुग के महाराज, फिर आप किस कारण से पृथ्वी में आये? ॥१॥

अष्टक उवाच

तस्मिन्कथं क्षीणपुण्या भवन्ति सम्मुह्यते मेऽत्रमनोऽतिमात्रम् ।
किंवा विशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति तद्वै ब्रूहि क्षेत्रवित्त्वंमतो मे ॥ ३ ॥

ययातिरुवाच

इमं भौमं नरकं ते पतन्ति लालप्यमाना नरदेव सर्वे ।
ये कंक गोमायु बलाशनार्थे क्षीणा विवृद्धिं बहुधा व्रजन्ति ॥ ४ ॥
तस्मादेतद्वर्जनीयं नरेन्द्र दुष्टं लोके गर्हणीयं च कर्म ।
आख्यातं ते पार्थिव सर्वमेव भूयश्चेदानी वद किं ते वदामि ॥ ५ ॥

अष्टक उवाच

यदा तु तान्वितुदन्ते वयांसि तथा गृध्राः शितिकण्ठाः पतंगाः ।
कथं भवन्ति कथमा भवन्ति न भौममन्यं नरकं शृणोमि ॥ ६ ॥

ययातिरुवाच

ऊर्ध्वं देहात्कर्मणा जृम्भमाणाद्व्यक्तं पृथिव्यामनुसंचरन्ति ।
इमं भौमं नरकं ते पतन्ति नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान् ॥ ७ ॥

ययाति बोले—इस लोक में भाई-बन्धु,मित्र तथा परिवार के लोग धनहीन मनुष्य को छोड़ देते हैं, स्वर्गलोक के देवता भी पुण्यहीन मनुष्य का त्याग कर देते हैं, उसे स्वर्ग से निकाल देते हैं ॥२॥

अष्टक बोले—स्वर्गलोक में पुण्यनाश का कारण क्या है ? इस विषय में मेरे मन में बड़ा सन्देह है । किस विशेषता के कारण मनुष्य किस लोक में जाता है अर्थात् किस लोक में जाने के लिए किस प्रकार का पुण्य-कार्य अपेक्षित है ?—यह आप बतलावें; क्योंकि मैं आपको ब्रह्मज्ञानी समझता हूँ ॥३॥

ययाति बोले—जो बकवादी हैं, अपने मुँह अपनी तारीफ़ करते हैं, वे सब पृथ्वीलोक-रूपी नरक में पड़ते हैं, जो कंक-शृगाल आदि के भोजन बनानेवाले शरीर के लिये खूब परिश्रम करते हैं, और पुत्र-पौत्र आदि के रूप में जिनकी वृद्धि होती है अर्थात् इस प्रकार जो संसार-जाल में अधिक फँसते हैं ॥४॥ अतएव, नरेन्द्र, जो काम बुरा है, जो संसार में निन्दित है, उसका त्याग करना चाहिये । राजन्, आपने जो कुछ पूछा था, वह-सब मैंने कहा । अब मैं क्या कहूँ, यह आप बतलावें ? ॥५॥

अष्टक बोले—गीध आदि मांस-भक्षी शरीर को खा लेते हैं, तो वह शरीर नष्ट हो जाता है, वह तो रहता नहीं और न फिर से उत्पन्न होता है । आप भौम नामक नरक की जो बात कहते हैं, वह नरक क्या है ? यह तो नया नरक है ॥६॥ ययाति बोले—शरीर त्याग करने

षष्टिंसहस्राणि पतन्ति व्योम्नि तथा अशीतिं परिवत्सराणि ।
तान्वै तुदन्ति पततः प्रपातं भीमाभौमारक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ॥ ८ ॥

अष्टक उवाच

यदेनसस्ते पततस्तुदन्ति भीमाभौमाराक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति कथंभूता गर्भभूता भवन्ति ॥ ९ ॥

ययातिरुवाच

अस्रं रेतः पुष्पफलानुपृक्तमन्वेति तद्वै पुरुषेण सृष्टम् ।
स वै तस्या रज आपद्यते वै स गर्भभूतः समुपैति तत्र ॥१०॥

वनस्पतीनोषधीश्चाविशन्ति अपो वायुं पृथिवीं चान्तरिक्षम् ।
चतुष्पदं द्विपदं चाति सर्वमेवंभूता गर्भभूता भवन्ति ॥११॥

अष्टक उवाच

अन्यद्वपुर्विदधातीह गर्भमुताहोस्वित्स्वेन कायेनयाति ।
आपद्यमानो नरयोनि मे तामाचक्ष्व मे संशयात्प्रब्रवीमि ॥१२॥

के पश्चात् मनुष्य कर्मों के विकास होने के कारण पुनः शरीर धरकर पृथिवी में जन्म लेता है और यहाँ निवास करता है। इसी निवास का नाम भौम नरक है, क्योंकि यहाँ वह अनेक वर्ष बिता देता है और कुछ विचार नहीं करता, कर्मभूमि में आकर भी व्यर्थ समय खो देता है ॥ ७ ॥ जो पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से गिरते हैं, वे साठ हजार अथवा अस्सी हजार वर्षों तक अन्तरिक्ष में पड़े रहते हैं, और वहाँ तीखे दाँत वाले भयंकर भूमि के राक्षस उन्हें कष्ट देते हैं ॥ ८ ॥

अष्टक बोले—जो लोग पाप के कारण स्वर्ग से च्युत होते हैं और भूमि के भयंकर, तीखे दाँतवाले राक्षस उन्हें भय देते हैं, वे वर्तमान कैसे रहते हैं, वे उत्पन्न कैसे होते हैं, वे पुनः शरीर धारण कैसे करते हैं ? ॥ ९ ॥ ययाति बोले—स्वर्ग से गिरने वाले जीव दुःख के आँसू बहाते हैं और स्वयं जल के सूक्ष्म रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। वह जल का सूक्ष्म रूप ही वीर्य होता है, जो स्थूल शरीर का कारण है। पुष्प-फल के सम्बन्ध के अनुसार वह वीर्य पुरुष के द्वारा त्यक्त होने पर स्त्री के रज से मिलता है, इस प्रकार दोनों के मिलने से इनका जो आकार होता है, उसका नाम गर्भ पड़ता है ॥१०॥ वे सूक्ष्म जलरूपी जीव, वनस्पतियों, औषधियों, जलवायु, पृथिवी और अन्तरिक्ष में प्रवेश करते हैं, पुनः वे क्रम से गर्भ होते हैं और जिससे द्विपद तथा चतुष्पद प्राणी उत्पन्न होते हैं ॥११॥

अष्टक बोले—जीव जब गर्भ में आता है, तब क्या वह दूसरा शरीर धारण करता है अथवा वह अपने पहले शरीर से ही गर्भ में प्रवेश करता है ? - यह मेरा सन्देह है, इसका आप उत्तर दें ॥१२॥ गर्भ में हाथ-पैर आदि अंग कैसे बढ़ते हैं, आँख-कान-नाक आदि उनके नाम कैसे

शरीरभेदादि समुच्छ्रयं च चक्षुः श्रोत्रे लभते केन संज्ञाम् ।
एतत्तत्वं सर्वमाचक्ष्व पृष्टः क्षेत्रज्ञं त्वां तात मन्याम सर्वे ॥१३॥

ययातिरुवाच

वायुः समुत्कर्षति गर्भयोनि मृतौरेतः पुष्परसानुपृक्तम् ।
स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः क्रमेण संवर्धयतीह गर्भकम् ॥१४॥
स जायमानो विग्रहीत मात्रः संज्ञामधिष्ठाय ततो मनुष्यः ।
स श्रोत्राभ्यां वेदयतीह शब्दं स वै रूपं पश्यति चक्षुषा च ॥१५॥
घ्राणेन गन्धं जिह्वयाऽथोरसं च त्वचास्पर्शं मनसावेद भावम् ।
इत्यष्टकेहोपहितं हि विद्धि महात्मनां प्राणभृतां शरीरे ॥१६॥

अष्टक उवाच

यः संस्थितः पुरुषो दह्यते वा निखन्यते वाऽपि निष्कृष्यते वा ।
अभावभूतः सविनाशमेत्य केनात्मना चेतयते परस्तात् ॥१७॥

ययातिरुवाच

हित्वा सोऽसून्सुप्तवन्निष्टनित्वा पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतं वा ।
अन्यां योनिं पवनाग्रानुसारी हित्वा देहं भजते राजसिंह ॥१८॥

पड़ते हैं?—यह सब आप मेरे प्रश्न के उत्तर में कहें। महाराज, हम सब लोग आपको ब्रह्मज्ञानी समझते हैं ॥१३॥

ययाति बोले—वायु, स्त्री का रज और पुरुष का वीर्य मिलाकर गर्भ उत्पन्न करता है। रज-वीर्य के मिलने का कारण है "अपूर्व" नामक पदार्थ, जिस प्रकार पुष्प, फल उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अपूर्व भी रज और वीर्य को मिलाकर गर्भ उत्पन्न करता है। वहाँ गर्भ में जीव सूक्ष्म रूप से प्रवेश करता है और क्रम से बढ़ता है ॥१४॥ वह गर्भ बढ़ने लगता है, उसके हाथ-पैर आदि अंग-प्रत्यङ्ग होते हैं, उस समय पूर्व जन्म की वासना से उस गर्भ में जीव प्रवेश करता है और गर्भ से बाहर होता है। उसका मनुष्य नाम पड़ता है अर्थात् वह अपने को मनुष्य समझने लगता है। उस समय वह कानों से शब्द सुनता है, आँखों से वस्तुओं का रूप देखता है ॥१५॥ नाक से गन्ध सूँघता है, जीभ से रस का आस्वादन करता है, त्वचा से स्पर्श का अनुभव करता है और मन से अभिप्राय समझता है। अष्टक, महात्मा प्राणियों के शरीर से जीव का यही सम्बन्ध है। इसी प्रकार जीव उनके शरीर में वर्त्तमान है ॥१६॥

अष्टक बोले—जब मनुष्य मर जाता है, तब वह जलाया जाता है या खोदकर गाड़ दिया जाता है, अथवा किसी दूसरी रीति से नष्ट कर दिया जाता है, अर्थात् स्थूल शरीर के साथ लिङ्ग शरीर भी नष्ट हो जाता है, फिर अभाव रूप होकर यह दूसरे स्थूल शरीर को कैसे चेतना-युक्त बनाता है? ॥१७॥

पुण्यां योनिं पुण्यंकृतो व्रजन्ति पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति ।
कीटाः पतंगाश्च भवन्ति पापानमेविवक्षाऽस्ति महानुभाव ॥१९॥
चतुष्पदा द्विपदाः षट्पदाश्च तथाभूता गर्भभूता भवन्ति ।
आख्यातमेतन्निखिलेन सर्वं भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह ॥२०॥

अष्टक उवाच

किंस्वित्कृत्वा लभते तात लोकान्मर्त्यः श्रेष्ठाँस्तपसाविद्यया वा ।
तन्मे पृष्टः शंस सर्वं यथावच्छुभाँल्लोकान्येन गच्छेत्क्रमेण ॥२१॥

ययातिरुवाच

तपश्चदानं च शमोदमश्चह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा ।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तैव महान्तिपुंसाम् ॥
नश्यन्ति मानेन तमोभिभूताः पंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः ॥२२॥
अधीयानः पण्डितं मन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः परेषाम् ।
तस्यान्तवन्तश्च भवन्ति लोका न चास्य तद्ब्रह्म फलं ददाति ॥२३॥
चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।
मानाग्निहोत्रमुतमान मौनं मानेनाधीतमुतमान यज्ञः ॥२४॥

ययाति बोले—राजसिंह, यह लिङ्ग शरीर, स्थूल शरीर को जब छोड़ता है, तब यह वायुमय आतिवाहिक शरीर की सहायता से प्राणों को ले लेता है, पुण्य और पाप इसके साथ रहते हैं। निद्रित मनुष्य स्वप्नावस्था में जिस प्रकार दूसरा शरीर धारण करता है, उसी प्रकार यह भी एक तरह का शब्द करता हुआ दूसरी योनि में जाता है ॥१८॥ जो पुण्यात्मा होते हैं, वे पवित्र योनि में जाते हैं और पापी पापयोनि में जाते हैं । कीट-पतंग आदि पापयोनि हैं। महानुभाव, अब मेरी इच्छा इस ओर नहीं है । अब मैं विषय भोग नहीं करना चाहता और न वंशवृद्धि करना चाहता हूँ ॥१६॥ इसी प्रकार चार पैर, दो पैर और छः पैर वाले प्राणी गर्भ में आते हैं और उत्पन्न होते हैं । जो कुछ तुमने पूछा था, वह सब मैंने कहा । राजसिंह, अब आप आगे क्या पूछते हैं ? ॥२०॥ अष्टक बोले—महाराज, मनुष्य क्या करके, किस तपस्या और विद्या से उत्तम लोक पाता है ?—यह मैं पूछता हूँ, आप विस्तार से कहिए । जिस क्रम से मनुष्य अच्छे लोकों में जाता है, वह आप बतलाइए ॥२१॥

ययाति बोले—तपस्या, दान, शम, दम, लज्जा, विनय और सब प्राणियों पर दया, इन्हीं सात को सज्जनगण स्वर्गलोक का प्रशस्त द्वार बतलाते हैं । ये सात भी पुरुष के अहङ्कार से नष्ट हो जाते हैं; यह सज्जनों की सम्मति है । क्योंकि अहङ्कारी मनुष्य तमोगुण के द्वारा क्रियाहीन हो जाता है ॥२२॥ जो लोग पढ़-लिखकर विद्या का घमण्ड करते हैं और विद्या के द्वारा दूसरों का यश नष्ट करते हैं, उन्हें उत्तम लोक नहीं मिलता, उनका सुख थोड़े दिनों का होता है और पढ़ी हुई विद्या भी फलदायिनी नहीं होती ॥२३॥ चार कर्म्म (अग्निहोत्र, मौन, विद्याध्ययन, यज्ञ)

न मान मान्यो मुदमाददीत न सन्तापं प्राप्नुयाच्चावमानात् ॥
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोकेनासाधवः साधु बुद्धिं लभन्ते ॥२५॥
इतिदद्यामितियजइत्यधीय इतिव्रतम् । इत्येतानि भयान्याहुस्तानि वर्ज्यानि सर्वशः ॥२६॥
ये चाश्रयं वेदयं ते पुराणं मनीषिणो मानसमार्गरुद्धम् ।
तद्वः श्रेयस्ते न संयोगमेत्य परांशान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्यचेह ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

अष्टक उवाच
चरन् गृहस्थः कथमेति धर्मात्कथं भिक्षुः कथमाचार्यकर्मा ।
वानप्रस्थः सत्पथे सन्निविष्टो बहून्यस्मिन्सम्प्रतिवेदयन्ति ॥ १ ॥
ययातिरुवाच
आहूताध्यायी गुरुकर्मस्वचोद्यः पूर्वोत्थायी चरमंचोपशायी ।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः स्वाध्यायशीलः सिद्ध्यति ब्रह्मचारी ॥ २ ॥

अभय देने वाले हैं, पर ये विधिपूर्वक अनुष्ठित न होने पर भयदायी हो जाते हैं। अहङ्कार के साथ किये गये अग्निहोत्र आदि भयदायी हैं ॥२४॥ सम्मान पाने पर प्रसन्न नहीं होना चाहिए और अपमान से दुखी नहीं होना चाहिए। सज्जन ही सज्जनों का आदर करते हैं। दुर्जन कभी सज्जनों का आचरण नहीं कर सकते। वे तो अनादर करेंगे ही ॥२५॥ दान, यज्ञ, अध्ययन और व्रत करके जो अहंकार करते हैं, मैंने ऐसा यज्ञ किया, ऐसा दान दिया, यह कहकर अहंकार दिखाते हैं, यह उनके भय की बात है, अतएव अहङ्कार का सर्वथा त्याग करना चाहिए ॥२६॥ जो बुद्धिमान पुराण-पुरुष को आश्रय बनाते हैं, जहाँ मन भी नहीं जाता, उसका आश्रय ही मनुष्यों के लिए कल्याणकारी है। उस आश्रय-भूत पुराण-पुरुष का साक्षात्कार होने पर मनुष्य इस लोक तथा परलोक में शान्ति पाता है ॥२७॥

नवतितम अध्याय।

ब्रह्मचय आदि आश्रम-धर्मों का वृत्तान्त।

अष्टक बोले—किस प्रकार आचरण करने से ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी सत्पथ में रह सकते हैं तथा धर्मार्जन कर सकते हैं, यह आप कहें; क्योंकि इस विषय में अनेक तरह की बातें कही जाती हैं।

धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात्सदैवातिथीन्भोजयेच्च ।
अनाददानश्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनिषत्पुराणी ॥ ३ ॥
स्ववीर्यजीवी वृजिनान्निवृत्तो दाता परेभ्यो न परोपतापी ।
ताहङ्मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्यां वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः ॥ ४ ॥
अशिल्पजीवी गुणवांश्चैव नित्यं जितेन्द्रियः सर्वतोविप्रमुक्तः ।
अनोकशायीलघुरल्पप्रचारश्चरन्देशानेकचरः स भिक्षुः ॥ ५ ॥
रात्र्या यया वाऽभिजिताश्च लोका भवन्ति कामाभिजिताः सुखाश्च ।
तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वानरण्यसंस्थो भवितुं यतात्मा ॥ ६ ॥
दशैव पूर्वान्दश चापरांश्च ज्ञातीनथात्मानमथैकविंशम् ।
अरण्यवासी सुकृते दधाति विमुच्यारण्ये स्वशरीर धातून् ॥ ७ ॥

अष्टक उवाच

कतिस्विदेव मुनयः कतिमौनानि चाप्युत । भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ८ ॥

ययाति बोले—ब्रह्मचारी को इस प्रकार सिद्धि मिलती है। गुरु के बुलाने पर वह विद्याध्ययन के लिए उनके पास जाय। बिना आज्ञा के ही गुरु के कामों को करे अर्थात् किसी काम को करने के लिए गुरु को बार-बार कहना न पड़े। प्रातःकाल गुरु के उठने के पहले ही उठे और उनके सोने के बाद सोवे। कोमल, जितेन्द्रिय.धीर, सावधान और पढ़ने वाला हो ॥२॥ धर्मपूर्वक धन अर्जन करके यज्ञ करे, दान दे और अतिथियों को भोजन करावे। बिना दिया हुआ किसी का धन न ले। यह गृहस्थधर्म का प्राचीन रहस्य है, यही गृहस्थों का प्राचीन सदाचार है ॥३॥ वानप्रस्थ को अपने परिश्रम से जीविका अर्जन करना चाहिए, समस्त पापों से दूर रहना चाहिए, दूसरों को दान देना चाहिए, ऐसा कोई काम न करना चाहिए, जिससे किसी को कष्ट हो। बनमें रहना चाहिए,भोजन और कार्य नियत कर देना चाहिए। इस प्रकार ये सिद्धि पाते हैं ॥४॥ संन्यासी को अपनी जीविका के लिए किसी शिल्पकला का उपयोग नहीं करना चाहिए। उत्तम गुणों को न छोड़े, इन्द्रियों को वश में रखे और सब से अलग रहे। शून्य गृह में सोवे, जहाँ कोई रहता न हो। बहुत थोड़ा सामान रखे, थोड़ा-थोड़ा भ्रमण करे, एक स्थान पर बहुत दिनों तक न रहे। अकेला देशों का भ्रमण करे। यह भिक्षा का धर्म है ॥५॥ जिस समय इन्द्रिय के विषयों से तृप्ति हो जाय, उनके उपभोग की इच्छा न रहे और सुख देने वाले कार्य भी वश हो जाँय, उनके लिए भी इच्छा न रहे, उसी समय जितेन्द्रिय पुरुष को वन में जाने का उद्योग करना चाहिए ॥६॥ बन-वासी धर्मात्मा, बन में शरीर त्याग करके दस पिछली, दस भावी और एक अपना, इस प्रकार इक्कीस पीढ़ियों को तार देता है ॥७॥

अष्टक बोले—मुनि कितने होते हैं? मौन के कितने भेद हैं? यह आप कहें,हमलोग सुनना चाहते हैं ॥८॥

ययातिरुवाच

अरण्येवसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठतः । ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिः स्याज्जनाधिप ॥ ९ ॥

अष्टक उवाच

कथंस्विद्वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः । ग्रामे वा वसतोऽरण्यं कथं भवति पृष्ठतः ॥१०॥

ययातिरुवाच

न ग्राम्यमुपयुंजीत य आरण्यो मुनिर्भवेत् । तथाऽस्य वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः ॥११॥

अनग्निरनिकेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनिः । कौपिनाच्छादनं यावत्तावदिच्छेच्चचीवरम् ॥१२॥

यावत्प्राणाभिसन्धानं तावदिच्छेच्च भोजनम् । तथाऽस्य वसतो ग्रामेऽरण्यं भवति पृष्ठतः ॥१३॥

यस्तुकामान्परित्यज्य त्यक्तकर्मा जितेन्द्रियः । आतिष्ठेच्चमुनिर्मौनं स लोके सिद्धिमाप्नुयात् ॥१४॥

धौतदन्तं कृत्तनखं सदास्नातमलंकृतम् । असितं सितकर्माणं कस्तमर्हतिनार्चितुम् ॥१५॥

तपसाकर्शितः क्षामः क्षीणमांसास्थिशोणितः । सचलोकमिमंजित्वालोकंविजयतेपरम् ॥१६॥

यदाभवति निर्द्वन्दो मुनिर्मौनं समास्थितः । अथ लोकमिमं जित्वा लोकं विजयतेपरम् ॥१७॥

ययाति बोले—जो बन में निवास करके गाँव को पाठ-पीछा कर दें, उनकी ओर ध्यान न दें, उन्हें अयत्न-लभ्य समझे। जो गाँव में रहकर बन को पीठ-पीछा कर दें अर्थात् वहाँ की वस्तु उन्हें अनायास प्राप्त हो, वे मुनि हैं। अर्थात् मुनि दो प्रकार के होते हैं—योगी मुनि और ज्ञानी मुनि ॥९॥

अष्टक बोले—बन में रहने वाले के पीठ-पीछे गाँव कैसे होता है और गाँव में रहने वाले की पीठ की ओर बन कैसे होता है? ॥१०॥

ययाति बोले—जो बनवासी मुनि गाँव की वस्तुओं का, आचार-व्यवहारों का उपयोग नहीं करता, इस प्रकार वन में निवास करने वालों के लिए गाँव पीठ-पीछे है ॥११॥ जो अग्नि-होत्र न करता हो, जिसके रहने के लिए कोई नियत स्थान न हो, जो जन्म-कुल और विद्या-कुल का त्याग कर दे, उतना ही वस्त्र रखे जो केवल लँगोटी के काम आ सके, भोजन उतना ही करे, जितने से प्राणों की रक्षा हो जाय। इस प्रकार गाँव में रहने वालों के लिए बन पीठ-पीछे हो जाता है ॥१२, १३॥ जो जितेन्द्रिय मुनि वासनाओं और काम्य-कर्मों का त्याग कर देता है और मौन धारण करके रहता है, वही मुनि लोक में सिद्धि पाता है ॥१४॥ जो दाँतों को धोते हैं, नखों को काटते हैं, प्रतिदिन स्नान करते हैं तथा अलंकृत होकर रहते हैं, वासनाओं का त्याग कर देते हैं, हिंसा सम्बन्धी अच्छे कामों को भी छोड़ देते हैं, ऐसे मनुष्य का आदर संसार में कौन नहीं करता? ॥१५॥ जिन्होंने तपस्या के द्वारा अपने को सुखा डाला है, जो दुबले हो गये हैं, जिनके शरीर का माँस-हड्डी और रक्त सूख गया है, वे इस लोक को जीतकर परलोक को भी जीत लेते हैं, उसको भी वश कर लेते हैं ॥१६॥ मुनि जिस समय मौन धारण करके सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है, वह इस लोक को जीतकर परलोक को भी जीत लेता है ॥१७॥ जब मुनि

आस्ये न तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः । अथास्य लोकः सर्वोयंऽसोऽमृतत्वायकल्पते ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते एकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

——०——

अष्टक उवाच

कतरस्त्वनयोः पूर्वं देवानामेतिसात्मताम् । उभयोर्धावतोराजन्सूर्याचन्द्रमसोरिव ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

अनिकेतो गृहस्थेषु कामवृत्तेषु संयतः । ग्राम एव वसन्भिक्षुस्तयोः पूर्वतरंगतः ॥ २ ॥

अप्राप्य दीर्घमायुस्तु यः प्राप्तो विकृतिं चरेत् । तप्यते यदि तत्कृत्वा चरेत्सोऽन्यत्तपस्ततः ॥ ३ ॥

पापानां कर्मणां नित्यं बिभृयाद्यस्तु मानवः । सुखमप्याचरन्नित्यं सोऽत्यन्तं सुखमेधते ॥ ४ ॥

तद्वैनृशंसं तदसत्यमाहुर्यः सेवते धर्ममनर्थबुद्धिः ।
अर्थोऽप्यनीशस्य तथैव राजँस्तदार्जवं स समाधिस्तदार्यम् ॥ ५ ॥

गौ के समान मुँह से ही खाने लगता है, हाथ-पैर नहीं चलाता, सांसारिक आचार-व्यवहार को भूल जाता है, उस समय सभी लोक उसकी आत्मा हो जाते हैं और वह मुक्त हो जाता है ॥१८॥

एकनवतितम अध्याय ।

यथाति से अष्टक और प्रतर्दन की बातचीत ।

अष्टक बोले—सूर्य और चन्द्रमा के समान निरन्तर प्रयत्न करने वाले इन ज्ञानी और योगी दोनों में पहले किसको मोक्ष मिलता है ? ॥१॥ ययाति बोले—गृहत्यागी संन्यासी हो या गृहस्थ, स्वेच्छानुसार व्यवहार करने वाले गृहस्थों में रहकर भी योगी मुनि स्वयं संयत रहता है, धारणा, ध्यान, समाधि आदि योग की क्रियाओं में लगा रहता है और वह मुक्त होता है । ज्ञानी मुनि गाँव में रहकर भी योगी मुनि से पहले मुक्त होता है ॥ २ ॥ जो अपनी आयुपर्यन्त अथवा उचित समय तक योगानुष्ठान न करे, बीच ही में योग-बल से प्राप्त सिद्धियों का उपभोग करने लगे, उसको यदि अपने इस काम से पश्चात्ताप हो तो उसे मोक्ष पाने के लिए दूसरी तपस्या करनी चाहिए ॥ ३ ॥ जो ज्ञानी नित्य-ब्रह्म का सदा चिन्तन करता है, ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता है, वह चाहे जितना पाप करे, उसे पाप नहीं लगता, वह मोक्षरूपी अत्यन्त सुख पाता है ॥ ४ ॥ जिस मनुष्य की अभिलाषा मोक्ष में नहीं है और वह स्वर्ग आदि फल की कामना से धर्म का अनुष्ठान करता है, उसका वह कर्म असत्य है, क्रूर है । जो अजितेन्द्रिय हैं, उनका धन भी असत्य और क्रूर है । धर्म-कर्मों का उचित फल मोक्ष ही है, मोक्ष ही योग-सिद्धि का मूल है और वही धर्म-कर्मों के द्वारा प्राप्य है ॥५॥

अष्टक उवाच

केनासिहूतः प्रहितोऽसि राजन्युवास्रग्वीदर्शनीयःसुवर्चाः ।
कुत आयातः कतरस्यां दिशित्वमुताहोस्वित्पार्थिवं स्थानमस्ति ।। ६ ।।

ययातिरुवाच

इमं भौमं नरकं क्षीणपुण्यः प्रवेष्टुमुर्वीं गगनाद्विप्रहीणः ।
उक्त्वाऽहं वः प्रपतिष्याम्यनन्तरं त्वरन्ति मां लोकपा ब्रह्मणो ये ।।
सतां सकाशे तु वृतः प्रपातस्ते संगता गुणवन्तस्तु सर्वे ।
शक्राच्च लब्धो हि वरो मयैष पतिष्यता भूमितलं नरेन्द्र ।। ८ ।।

अष्टक उवाच

पृच्छामि त्वां मा प्रपत प्रपातं यदि लोकाः पार्थिव सन्तिमेऽत्र ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिविस्थिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ।। ९ ।।

ययातिरुवाच

यावत्पृथिव्यां विहितं गवाश्वं सहारण्यैः पशुभिः पार्वतैश्च ।
तावल्लोका दिवि ते संस्थिता वै तथाविजानीहि नरेन्द्रसिंह ।।१०।।

अष्टक उवाच

ताँस्ते ददामि मा प्रपत प्रपातं ये मे लोका दिवि राजेन्द्रसन्ति ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिविश्रितास्तानाक्रमक्षिप्रमपेतमोहः ।।११।।

अष्टक बोले—आप युवा, सुन्दर और तेजस्वी हैं, आप फूलों की माला पहने हुए हैं। आपको यहाँ किसने बुलाया है, अथवा किसी ने भेजा है क्या ? आप कहाँ से आये हैं और कहाँ जा रहे हैं अथवा पृथिवी में आपका कहीं स्थान है, जहाँ आप जाते हैं ? ।।६।।

ययाति बोले—मैं स्वर्ग से गिरकर भौम नरक में रहने के लिये पृथिवी पर जा रहा हूँ। आप लोगों से विदा होकर वहीं मैं जाऊँगा। इसके लिए लोकपाल लोग मुझे शीघ्रता करने को कह रहे हैं ।।७।। स्वर्ग से पृथिवी पर गिरने के समय मैंने इन्द्र से सज्जनों के बीच में गिरने की प्रार्थना की थी। इन्द्र ने मेरी वह प्रार्थना मान ली थी, इसी से पृथिवी में जाता हुआ मैं, आप लोगों के पास ठहर गया हूँ ।।८।।

अष्टक बोले—आप धर्म से प्राप्त होने वाले सिद्ध स्थानों को जानते हैं, अतएव आप से मैं पूछता हूँ। नक्षत्र-मण्डल में या स्वर्ग में मेरे लिए यदि स्थान हो, तो आप पृथिवी में न जाँय। आप स्वर्ग से न गिरें। मेरे ही लोकों में जाँय ।।९।।

ययाति बोले—नरेन्द्रसिंह, पृथिवी में बन और पर्वतों में जितने गौ-घोड़े आदि पशु हैं, उतने स्वर्ग में आपके लिए स्थान हैं, यह समझिये ।।१०।।

अष्टक बोले—राजेन्द्र, स्वर्ग में मेरे लिए जितने लोक हैं, वे मैं आपको देता हूँ, आप पृथिवी पर मत गिरें। नक्षत्र-मण्डल में या स्वर्ग में जहाँ मेरा स्थान हो, वहाँ आप शीघ्र जाँय,

ययातिरुवाच

नास्मद्विधो ब्राह्मणो ब्रह्मविच्च प्रतिग्रहे वर्तते राजमुख्य ।
यथा प्रदेयं सततं द्विजेभ्यस्तथाऽददं पूर्वमहं नरेन्द्र ॥१२॥
नाब्राह्मणः कृपणो जातु जीवेद्याञ्चापि स्याद्ब्राह्मणी वीरपत्नी ।
सोऽहं नैवाकृतपूर्वं चरेयं विधित्समानः किमु तत्र साधु ॥१३॥

प्रतर्दन उवाच

पृच्छामि त्वां स्पृहणीयरूप प्रतर्दनोऽहं यदि मे सन्ति लोकाः ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिविश्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥१४॥

ययातिरुवाच

सन्ति लोका बहवस्ते नरेन्द्र अप्येकैकः सप्तसप्ताप्यहानि ।
मधुच्युतो घृतपृक्ता विशोकास्ते नान्तवन्तः प्रतिपालयन्ति ॥१५॥

प्रतर्दन उवाच

ताँस्ते ददामि मा प्रपत प्रपातं ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिविश्रितास्तानाक्रमक्षिप्रमपेतमोहः ॥१६॥

ययातिरुवाच

न तुल्यतेजाः सुकृतं कामयेत योगक्षेमं पार्थिव पार्थिवः सन् ।
दैवादेशादापदं प्राप्य विद्वाँश्चरेन्नृशंसं न हि जातु राजा ॥१७॥

संकोच छोड़ दीजिये ॥११॥ ययाति बोले—राजश्रेष्ठ, मेरे समान मनुष्य दान नहीं लेता । ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण ही दान लेता है । राजन्, जैसा दान तुम करना चाहते हो, वैसा दान मैं ब्राह्मणों को पहले दे चुका हूँ ॥१२॥ जो ब्राह्मण नहीं है, उसे याचना करने की दीनता नहीं करनी चाहिए । क्योंकि विद्या के द्वारा दिग्विजय करने वाले ब्राह्मण की ही याचना पत्नी है, अर्थात् याचना पर उसीका अधिकार है । अतएव आज तक जो काम मैंने नहीं किया, वह करना नहीं चाहता । मैं स्वयं पृथिवी पर जाकर पुण्यकर्म करना चाहता हूँ ॥१३॥ प्रतर्दन बोले—हे सुन्दर रूप वाले, मैं प्रतर्दन आपसे पूछता हूँ, नक्षत्र-मण्डल या स्वर्ग में मेरे लिए लोक हैं या नहीं ? क्योंकि धर्मके फलरूप सिद्ध स्थानों को जानने वाला मैं आप को समझता हूँ ॥१४॥

ययाति बोले—राजन्, आपके अनेक लोक हैं, जिनमें सात-सात दिन भी आप रहें तो वे समाप्त न हों । जो सुखकारी प्रकाशमान और निर्भय हैं, वे लोक आपकी प्रतीक्षा करते हैं ॥१५॥

प्रतर्दन बोले—मैं अपने लोक आपको देता हूँ । आप पृथिवी पर न जाँय, स्वर्ग-च्युत न हों । मेरे लोकों को अपना लोक समझिए । वे लोक स्वर्ग में हों या नक्षत्र-मण्डल में, आप शीघ्र ही वहाँ जायँ, सङ्कोच छोड़ दें ॥१६॥ ययाति बोले—राजन्, कोई भी राजा अपने समान राजा

धर्म्यं मार्गं यतमानो यशस्यं कुर्यान्नृपोधर्ममवेक्षमाणः ।
न मद्विधो धर्मबुद्धिः प्रजानन्कुर्यादेवं कृपणं मां यथाऽऽत्थ ॥१८॥
कुर्यादपूर्वं न कृतं यदन्यैर्विधित्समानः किमु तत्र साधु ।
ब्रुवाणमेवं नृपतिं ययातिं नृपोत्तमो वसुमानब्रवीत्तम् ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

वसुमानुवाच
पृच्छामि त्वां वसुमानौषदश्विर्यद्यस्ति लोको दिवि मे नरेन्द्र ।
यद्यन्तरिक्षे प्रथितो महात्मन् क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥१॥

ययातिरुवाच
यदन्तरिक्षं पृथिवी दिशश्च यत्तेजसा तपते भानुमांश्च ।
लोकास्तावन्तो दिवि संस्थिता वै तेनान्तवन्तः प्रतिपालयन्ति ॥२॥

से, अपने निर्वाह के लिए पुराय नहीं ले सकता । भाग्यवश, विपत्ति में पड़कर, किसी विद्वान् राजा को बुरा कर्म नहीं करना चाहिए ॥१७॥ धर्मात्मा राजा को धर्मानुकूल यश बढ़ाने वाले कार्य करने का प्रयत्न करना चाहिए । मैं धर्म जानता हूँ, मेरी बुद्धि धर्म में है । अतएव आप जैसा कहते हैं, वह दीनता का काम मैं न करूँगा, मैं आप का दिया न लूँगा ॥१८॥ पहले के राजाओं ने भी दान नहीं लिया है, फिर मैं ही पहले-पहल दान क्यों लूँ ? मैं स्वयं पृथिवीलोक में जाकर सुकर्म करना चाहता हूँ । राजा ययाति के ऐसा कहने पर राजश्रेष्ठ वसुमान उनसे इस प्रकार बोले ॥१९॥

द्विनवतितम अध्याय ।

वसुमान, शिवि और अष्टक से ययाति का सम्वाद; ययाति का स्वर्ग जाना ।

वसुमान् बोले—मैं औषदश्व का पुत्र वसुमान हूँ । मैं आपसे पूछता हूँ कि नक्षत्र-मराडल या स्वर्ग लोक में मेरे लिए स्थान है या नहीं ?—क्योंकि मैं जानता हूँ कि धर्म के द्वारा प्राप्त होने वाले लोकों को आप जानते हैं ॥१॥

ययाति बोले—जहाँ तक पृथिवी है, आकाश है और दिशाएँ हैं, तथा जहाँ तक सूर्य का प्रकाश पहुँचता है, स्वर्ग में उतने लोक आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं—वे लोक सनातन हैं, उनका अन्त नहीं होता ॥२॥

वसुमानुवाच

तांस्ते ददामि मा प्रपत प्रपातं ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु ।
क्रीणीष्वैनांस्तृणकेनापि राजन्प्रतिग्रहस्ते यदि धीमन्प्रदुष्टः ॥३॥

ययातिरुवाच

न मिथ्याऽहं विक्रयं वै स्मरामि वृथा गृहीतं शिशुकाच्छंकमानः ।
कुर्यां न चैवाकृतपूर्वमन्यैर्विधित्समानः किमु तत्र साधु ॥४॥

वसुमानुवाच

तांस्त्वं लोकान्प्रतिपद्यस्वराजन्मया दत्तान्यदि नेष्टः क्रयस्ते ।
अहं न तान्वै प्रतिगन्ता नरेन्द्र सर्वे लोकास्तव ते वै भवन्तु ॥५॥

शिबिरुवाच

पृच्छामि त्वां शिबिरौशीनरोऽहं ममापि लोका यदि सन्तीह तात ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिविश्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥६॥

ययातिरुवाच

यत्त्वं वाचा हृदयेनापि साधून्परीप्समानान्नावमंस्था नरेन्द्र ।
तेनानन्ता दिवि लोकाः श्रितास्ते विद्युद्रूपाः स्वनवन्तो महान्तः ॥७॥

शिबिरुवाच

तांस्त्वं लोकान्प्रतिपद्यस्व राजन्मया दत्तान्यदि नेष्टः क्रयस्ते ।
न चाहं तान्प्रतिपत्स्येह दत्त्वा यत्र गत्वा नानुशोचन्ति धीराः ॥८॥

वसुमान् बोले—मैं वे लोक आपको देता हूँ। आप स्वर्ग से न गिरें। मेरे लोक आपके हों। राजन्, यदि आप दान लेना बुरा समझते हैं, तो एक तिनके से भी मेरे ये लोक आप खरीद लें ॥३॥

ययाति बोले—काल के भय से भयभीत होकर मैंने इस प्रकार का लेनदेन कभी किया है, इसका मुझे स्मरण नहीं है। मैं उत्तम करने जा रहा हूँ, फिर मैं वैसा कर्म कैसे कर सकता हूँ, जो दूसरों ने भी नहीं किये हैं? ॥४॥

वसुमान् बोले—राजन्, यदि आप मेरे लोक खरीदना नहीं चाहते, तो भी आप मेरे दिये हुए लोक लेलें। मैं उन लोकों में नहीं जाऊँगा, वे सब लोक आपही के लिए रहें ॥५॥

शिवि बोले—मैं उषीनर का पुत्र शिवि हूँ, पूज्य, मैं आपसे पूछता हूँ कि नक्षत्र-मण्डल या स्वर्ग में मेरे लिए भी लोक हैं या नहीं?—क्योंकि धर्म के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले लोकों को आप जानते हैं ॥६॥ ययाति बोले—नरेन्द्र, आपने हृदय से तथा बचन से भी याचकों का अपमान नहीं किया है। अतएव स्वर्ग में आपके लिए अनन्त लोक हैं, जो विद्युत से प्रकाशमान हैं तथा जहाँ सदा मधुर शब्द सुनायी पड़ता है ॥७॥

ययातिरुवाच

यथा त्वमिन्द्रप्रतिमप्रभावस्ते चाप्यनन्ता नरदेव लोकाः ।
तथाऽद्य लोके न रमेऽन्यदत्ते तस्माच्छिवेनाभिनन्दामिदेयम् ॥९॥

अष्टक उवाच

न चेदेकैकशो राजँल्लोकान्नः प्रतिनन्दसि । सर्वे प्रदाय भवते गन्तारो नरकं वयम् ॥१०॥

ययाति रुवाच

यदर्होऽहं तद्यतध्वं सन्तः सत्याभिनन्दिनः । अहं तन्नाभिजानामि यत्कृतं न मया पुरा ॥११॥

अष्टक उवाच

कस्यैते प्रतिदृश्यन्ते रथाः पञ्च हिरण्मयाः । यानारुह्य नरोलोकानभिवाञ्छति शाश्वतान् ॥१२॥

ययातिरुवाच

युष्मानेते वहिष्यन्ति रथाः पञ्च हिरण्मयाः । उच्चैः सन्तः प्रकाशन्तेज्वलन्तोऽग्निशिखाइव॥१३॥

अष्टक उवाच

आतिष्ठस्व रथान् राजन्विक्रमस्वविहायसम् । वयमप्यनुयास्यामो यदाकालोभविष्यति ॥१४॥

ययातिरुवाच

सर्वैरिदानीं गन्तव्यं सह स्वर्गजितो वयम् । एष नो विरजः पन्था दृश्यते देवसद्मनः ॥१५॥

शिवि बोले—राजन्, यदि आप खरीदना नहीं चाहते, तो मेरे दिये हुए लोकों को ग्रहण कीजिए। आपको देने के पश्चात् मैं उन लोकों में न जाऊँगा, आपसे न लौटाऊँगा, जहाँ जाने से मनुष्य को शोच नहीं रहता ॥८॥

ययाति बोले—राजन्, तुम्हारा प्रभाव इन्द्र-तुल्य है, पुण्यार्जित तुम्हारे लोक भी अनेक हैं; पर दूसरे की दी हुई वस्तु का ग्रहण करना मैं अच्छा नहीं समझता, अतएव तुम्हारे दिये हुए लोक मैं लेना नहीं चाहता ॥९॥

अष्टक बोले—राजन्, यदि आप किसी एक के दिये लोकों को लेना नहीं चाहते तो हम सब अपने-अपने लोक देते हैं, आप ग्रहण करें। हमलोग भूमि में निवास करेंगे ॥१०॥

ययाति बोले—आपलोग सत्य-प्रेमी सज्जन हैं, अतएव मैं जिस योग्य होऊँ, उसी के लिए आप को प्रयत्न करना चाहिये। जो काम मैंने कभी नहीं किया, उसे मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता ॥११॥

अष्टक बोले—ये पाँच सोने के रथ किसके हैं, जिनपर चढ़कर मनुष्य अक्षय लोकों में जाता है? ॥१२॥

ययाति बोले—सुवर्ण के ये पाँच रथ आपलोगों को ले जाने के लिए आये हैं, जो ऊँचे हैं और अग्निशिखा के समान प्रकाशमान हैं ॥१३॥

अष्टक बोले—राजन्, आप इन रथों पर बैठें और स्वर्ग को जाँय, हमलोग भी समय होने पर आपके पीछे आवेंगे ॥१४॥

वैशम्पायन उवाच

तेऽधिरुह्य रथान्सर्वे प्रयाता नृपसत्तमाः । आक्रमन्तो दिवं भाभिर्धर्मेणावृत्य रोदसी ॥१६॥

अष्टक उवाच

अहं मन्ये पूर्वमेकोऽस्मि गन्ता सखा चेन्द्रः सर्वथा मे महात्मा ।
कस्मादेवं शिबिरौशीनरोऽयमेकोऽत्यगात्सर्ववेगेन वाहान् ॥१७॥

ययातिरुवाच

अददद्देवयानाय यावद्वित्तमविन्दत । उशीनरस्य पुत्रोऽयं तस्माच्छ्रेष्ठो हि वः शिबिः ॥१८॥
दानं तपः सत्यमथापि धर्मो ह्रीः श्रीः क्षमा सौम्यमथो विधित्सा ।
राजन्नेतान्यप्रमेयाणि राज्ञः शिबेः स्थितान्यप्रतिमस्य बुद्ध्या ॥१९॥
एवंवृत्तो ह्रीनिषेवश्च यस्मात्तस्माच्छिबिरत्यगाद्वै रथेन ॥

वैशम्पायन उवाच

अथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छन्मातामहं कौतुकेनेन्द्रकल्पम् ॥२०॥
पृच्छामि त्वां नृपते ब्रूहि सत्यं कुतश्च कश्चासि सुतश्च कस्य ।
कृतं त्वया यद्धि न तस्य कर्ता लोके त्वदन्यः क्षत्रियो ब्राह्मणो वा ॥२१॥

ययाति बोले—हम सबलोगों को साथ ही चलना चाहिए, क्योंकि हमलोगों ने स्वर्ग को जीत लिया है। उसे पाने के हम अधिकारी हुए हैं। हमलोगों के स्वर्ग जाने का यही निष्कण्टक मार्ग दीख रहा है ॥१५॥

वैशम्पायन बोले—अनन्तर उन रथों पर बैठकर वे श्रेष्ठ राजा स्वर्ग-मार्ग में चले। उनके धर्म से स्वर्ग और मर्त्य भर गया था ॥१६॥

अष्टक बोले—मैंने समझा था कि मैं ही सब से पहले अकेला स्वर्ग में जाऊँगा, क्योंकि महात्मा इन्द्र मेरे मित्र हैं; पर उशीनर के पुत्र शिवि का रथ हमलोगों के रथ से आगे बढ़ गया है। वे ही अकेले हमलोगों से आगे पहुँचेंगे ॥१७॥

ययाति बोले—उशीनर-पुत्र शिवि ने ब्रह्मलोक पाने के लिये अपना सर्वस्व दान कर दिया है। अतएव ये तुम से श्रेष्ठ हैं, पहले जाने के अधिकारी हैं ॥१८॥ दान, तप, सत्य, धर्म, लज्जा, श्री, क्षमा, सौख्य, प्रजा-पालन की इच्छा, ये अनुपम गुण शिवि में हैं, शिवि सब से अधिक बुद्धिमान हैं ॥१९॥ शिवि में इतने गुण हैं और वे लज्जाशील हैं, इस कारण उनका रथ आपलोगों के रथ से आगे चला गया। वैशम्पायन बोले—इसके पश्चात् इन्द्र-तुल्य अपने नाना से अष्टक ने कौतुक से यह पूछा ॥२०॥ राजन्, मैं आप से पूछता हूँ। आप उत्तर दें। आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? कहाँ से आते हैं? आपने मर्त्य-लोक में इतने पुण्य-कर्म किये हैं, जिनका करने वाला आपके अतिरिक्त न कोई ब्राह्मण ही है और न क्षत्रिय ॥२१॥

ययातिरुवाच

यथातिरस्मि नहुषस्यपुत्रः पूरोः पिता सार्वभौमस्त्विहासम् ।
गुह्यं चार्थं मामकेभ्यो ब्रवीमि मातामहोऽहं भवतां प्रकाशम् ॥२२॥
सर्वामिमां पृथिवीं निर्जिगाय प्रादामहं छादनं ब्राह्मणेभ्यः ।
मेध्यानश्वानेकशतान्सुरूपाँस्तदा देवाः पुण्यभाजो भवन्ति ॥२३॥
अदामहं पृथिवीं ब्राह्मणेभ्यः पूर्णामिमामखिलां वाहनेन ।
गोभिः सुवर्णेन धनैश्च मुख्यैस्तदाऽददं गाः शतमर्बुदानि ॥२४॥
सत्येन मे द्यौश्च वसुन्धरा च तथैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु ।
न मे वृथा व्याहृतमेव वाक्यं सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति ॥२५॥
यदष्टक प्रब्रवीमीह सत्यं प्रतर्दनं चौषदश्विं तथैव ।
सर्वे च लोका मुनयश्च देवाः सत्येन पूज्या इति मे मनोगतम् ॥२६॥
यो नः स्वर्गजितः सर्वान्यथावृत्तं निवेदयेत् ।
अनसूयुर्द्विजाग्र्येभ्यः स लभेन्नः सलोकताम् ॥२७॥

वैशम्पायन उवाच

एवं राजा स महात्मा ह्यतीव स्वैर्दौहित्रैस्तारितोमित्रसाहः ।
त्यक्त्वा महीं परमोदारकर्मा स्वर्गंगतः कर्मभिर्व्याप्य पृथ्वीम् ॥२८॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते समाप्तोत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

यथाति बोले—मेरा नाम ययाति है, मैं राजा नहुष का पुत्र हूँ और राजा पुरु का पिता। मैं पृथिवी में चक्रवर्ती राजा था। मैं तुम्हारा नाना हूँ, तुम मेरे अपने हो, इसी कारण गुप्त बात मैं तुम से कहता हूँ ॥२२॥ मैंने यह समस्त पृथिवी जीती, ब्राह्मणों को वस्त्र दान दिया, अच्छे सुन्दर एक सौ घोड़े दिये, जिससे देवता प्रसन्न हुए ॥२३॥ वाहन, गौ, सुवर्ण, धन से भरी पृथिवी तथा सौ अर्ब गौ, मैंने ब्राह्मणों को दान में दी थी ॥२८॥ मेरे सत्य से आकाश और पृथिवी स्थित है, अग्निदेव प्रकाशित हैं। आजतक मैंने असत्य भाषण नहीं किया, अर्थात् जो मैं कहता हूँ, वह सत्य है, क्योंकि सज्जन सत्य का आदर करते हैं ॥२५॥ अष्टक, तुम से, प्रतर्दन से और ओषदश्वि से जो मैं कहता हूँ, वह सत्य है। मैं समझता हूँ कि समस्त लोकों, देवताओं और मुनियों का आदर सत्य के ही कारण होता है ॥२६॥ स्वर्ग जीतने वाले हमलोगों का यथार्थ वृत्तान्त जो लोग ईर्ष्या-हीन होकर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सुनावेंगे, उनको हमलोगों का लोक प्राप्त होगा ॥२७॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार महात्मा ययाति का उद्धार उनके नातियों ने किया था और उत्तम कर्म करने वाले राजा अपने कर्मों का प्रकाश पृथिवी पर फैलाकर स्वर्ग-लोक गये थे ॥२८॥

त्रिनवतितम अध्याय।

जनमेजय उवाच

भगवन्श्रोतुमिच्छामि पूरोर्वंशकरान्नृपान् । यद्वीर्यान्यादृशांश्चापि यावतोयत्पराक्रमान् ॥ १ ॥

नह्यस्मिन्शीलहीनो वा निर्वीर्यो वा नराधिपः । प्रजाविरहितोवाऽपि भूतपूर्वः कथंचन ॥ २ ॥

तेषां प्रथितवृत्तानां राज्ञां विज्ञानशालिनाम् । चरितंश्रोतुमिच्छामिविस्तरेण तपोधन ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि । पूरोर्वंशधरान्वीराञ्छक्रप्रतिमतेजसः ॥

भूरिद्रविणविक्रान्तान्सर्वलक्षणपूजितान् ॥ ४ ॥

प्रवीरेश्वर रौद्राश्वास्त्रयः पुत्रा महारथाः । पूरोः पौष्ट्यामजायन्त प्रवीरो वंशकृत्ततः ॥ ५ ॥

मनस्युरभवत्तस्माच्छूरसेनीसुतः प्रभुः । पृथिव्याश्चतुरन्ताया गोप्ता राजीवलोचन ॥ ६ ॥

शक्तः संहननो वाग्मी सौवीरीतनयास्त्रयः । मनस्योरभवन्पुत्राः शूराः सर्वे महारथाः ॥ ७ ॥

अन्वग्भानुप्रभृतयो मिश्रकेश्यां मनस्विनः । रौद्राश्वस्य महेश्वासा दशाप्सरसि सूनवः ॥ ८ ॥

यज्वानो जज्ञिरे शूराः प्रजावन्तो बहुश्रुताः । सर्वे सर्वास्त्रविद्वांसः सर्वे धर्मपरायणाः ॥ ९ ॥

ऋचेयुरथ कक्षेयुः कृकणेयुश्च वीर्यवान् । स्थण्डिलेयुर्वनेयुश्च जलेयुश्च महायशाः ॥१०॥

तेजेयुर्बलवान्धीमान्सत्येयुश्चेन्द्रविक्रमः । धर्मेयुः सन्नतेयुश्च दशमो देवविक्रमः ॥११॥

पुरु-वंश का वृत्तान्त।

राजा जनमेजय ने वैशम्पायन से पूछा—भगवन्, राजा पूरु के वंशजों का चरित मैं सुनना चाहता हूँ। उनका कैसा बल था? वे कैसे थे? कितने थे? तथा उनका पराक्रम कैसा था? ॥१॥ इस वंश में कोई भी राजा शीलहीन, बलहीन तथा वंशहीन कभी नहीं हुआ है ॥२॥ इन प्रसिद्ध कीर्ति-विज्ञान-वेत्ता राजाओं का चरित मैं विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ ॥३॥

वैशम्पायन बोले—अच्छा, आप मुझसे जो पूछते हैं, वह पूरु के इन्द्र-तुल्य पराक्रमी वंशजों का वृत्तान्त कहता हूँ ॥४॥ जो बड़े समृद्धिशाली, पराक्रमी तथा सब उत्तम लक्षणों से युक्त थे। प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व नामक तीन महारथ पुत्र पूरु के पौष्टी के गर्भ से हुए। इनमें प्रवीर सबसे बड़ा था ॥५॥ शूरसेनी के गर्भ से प्रवीर के मनस्यु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह राजीव-लोचन मनस्यु समुद्र से घिरी पृथिवी का रक्षक था ॥६॥ सौवीरी के गर्भ से मनस्यु के शक्त, संहनन और वाग्मी नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ये तीनों शूर और महारथ थे ॥७॥ मिश्रकेशी नामकी अप्सरा के गर्भ से मनस्वी रौद्राश्व के अन्वग्भानु आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥८॥ ये सभी यज्ञ करने वाले थे, शूर थे, पुत्रवान थे, बहुश्रुत थे, सभी सब प्रकार के अस्त्रों के ज्ञाता थे और सभी धर्मात्मा थे ॥९॥ उनके नाम ये हैं—ऋचेयु, कक्षेयु, पराक्रमी कृकणेयु, स्थण्डिलेयु, वनेयु, और यशस्वी जलेयु, बली तेजेयु, बुद्धिमान् सत्येयु, इन्द्र के समान पराक्रमी धर्मेयु, और देवतुल्य पराक्रमी सन्नतेयु ॥१०,११॥

अनाधृष्टिरभूत्तेषां विद्वान्भुवि तथैकराट् । ऋचेयुरथ विक्रान्तो देवानामिव वासवः ॥१२॥
अनाधृष्टिसुतस्त्वासीद्राजसूयाश्वमेधकृत् । मतिनार इति ख्यातो राजा परमधार्मिकः ॥१३॥
मतिनार सुता राजँश्चत्वारोऽमितविक्रमाः । तंसुर्महानतिरथो द्रुह्युश्चाप्रतिमद्युतिः ॥१४॥
तेषां तंसुर्महावीर्यः पौरवं वंशमुद्वहन् । आजहार यशोदीप्तं जिगाय च वसुन्धराम् ॥१५॥
ईलिनं तु सुतं तंसुर्जनयामास वीर्यवान् । सोऽपि कृत्स्नामिमां भूमिं विजिग्ये जयतांवरः ॥१६॥
रथन्तर्यां सुतान्पञ्च पञ्चभूतोपमाँस्ततः । ईलिनो जनयामास दुष्यन्तप्रभृतीन्नृपान् ॥१७॥
दुष्यन्तं शूरभीमौ च प्रवसुं वसुमेव च । तेषां श्रेष्ठो भवद्राजा दुष्यन्तो जनमेजय ॥१८॥
दुष्यन्ताद्भरतो जज्ञे विद्वाञ्शाकुन्तलो नृपः । तस्माद्भरतवंशस्य विप्रतस्थे महद्यशः ॥१९॥
भरतस्तिसृषु स्त्रीषु नवपुत्रानजीजनत् । नाभ्यनन्दत तान् राजा नानुरूपाममेत्युत ॥२०॥
ततस्तान्मातरः क्रुद्धाः पुत्रान्निन्युर्यमक्षयम् । ततस्तस्य नरेन्द्रस्य वितथं पुत्रजन्मतत् ॥२१॥
ततोमहद्भिः क्रतुभिरीजानो भरतस्तदा । लेभे पुत्रं भरद्वाजाद्भुमन्युं नाम भारत ॥२२॥
ततः पुत्रिणमात्मानं ज्ञात्वा पौरवनन्दनः । भूमन्युं भरतश्रेष्ठ यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥२३॥
ततो दिविरथो नाम भुमन्योरभवत्सुतः । सुहोत्रश्च सुहोता च सुहविः सुयजुस्तथा ॥२४॥
पुष्करिण्यामृचीकश्च भुमन्योरभवन्सुताः । तेषां ज्येष्ठः सुहोत्रस्तु राज्यमाप महीजिताम् ॥२५॥

ऋचेयु का दूसरा नाम अनाधृष्टि था, वह विद्वान् तथा पृथिवी का एकछत्र राजा था। वह पराक्रमी था, जिस प्रकार देवताओं में इन्द्र पराक्रमी हैं ॥१२॥ अनाधृष्टि का पुत्र मतिनार नाम से प्रसिद्ध था, उसने अश्वमेध यज्ञ किया था और वह परम धार्मिक था ॥१३॥ मतिनार के चार पुत्र हुए—ये महापराक्रमी थे तंसु, महान, अतिरथ तथा द्युतिमान द्रुह्यु, ये उनके नाम थे ॥१४॥ उनमें तंसु महापराक्रमी था। उसने पुरुवंश की कीर्ति बढ़ायी और पृथिवी जीती ॥१५॥ पराक्रमी तंसु ने इलिन नाम का पुत्र उत्पन्न किया। उस विजयी ने भी समस्त पृथिवी पर अधिकार किया ॥१६॥ राजा इलिन ने दुष्यन्त आदि पंचभूत-तुल्य पाँच पुत्रों को रथन्तरी के गर्भ से उत्पन्न किया ॥१७॥ वे ये पाँच थे—दुष्यन्त, शूर, भीम, प्रवसु और वसु। उनमें दुष्यन्त सबसे बड़े थे ॥१८॥ विद्वान् भरत शकुन्तला के गर्भ से राजा दुष्यन्त के पुत्र उत्पन्न हुए। इन्हीं से भरतवंश की कीर्ति बढ़ी ॥१९॥ भरत ने तीन स्त्रियों से नौ पुत्र उत्पन्न किये, पर अपने अनुकूल न समझ कर राजा उन पुत्रों से प्रसन्न न हुए ॥२०॥ इससे उन पुत्रों की माताओं को क्रोध हुआ और उन-लोगों ने पुत्रों को मार डाला। अब राजा के कोई पुत्र न रह गया, उनके लिए पुत्रों का होना व्यर्थ हो गया ॥२१॥ अनन्तर राजा ने पुत्र के लिए बड़ा यज्ञ किया और महर्षि भरद्वाज की कृपा से उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम भूमन्यु था ॥२२॥ अब पौरवनन्दन राजा भरत ने अपने को पुत्रवान् समझा और पुत्र भूमन्यु का युवराज पद पर अभिषेक किया ॥२३॥ भूमन्यु के पुत्र दिविरथ, सुहोत्र, सुहोता, सुहवि, सुयजु, तथा ऋचीक हुए, ये पुष्करिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। सुहोत्र उन-सब में बड़े थे, इस कारण उन्होंने ही राज्य पाया ॥२४,२५॥ सुहोत्र ने समस्त पृथिवी का

राजसूयाश्वमेधाद्यैःसोऽयजद्बहुभिः सवैः । सुहोत्रः पृथिवीं कृत्स्नां बुभुजे सागराम्बराम् ॥२६॥
पूर्णां हस्तिगजाश्वैश्च बहुरत्नसमाकुलाम् । ममज्जेव मही तस्य भूरिभारावपीडिता ॥२७॥
हस्त्यश्वरथसम्पूर्णा मनुष्यकलिलाभृशम् । सुहोत्रेराजनि तदाधर्मतः शासति प्रजाः ॥२८॥
चैत्ययूपांकिता चासीद्भूमिः शतसहस्रशः । प्रवृद्धजनसस्या च सर्वदैव व्यरोचत ॥२९॥
ऐक्ष्वाकी जनयामास सुहोत्रात्पृथिवीपतेः । अजमीढं सुमीढं च पुरुमीढं च भारत ॥३०॥
अजमीढो वरस्तेषां तस्मिन्वंशः प्रतिष्ठितः । षट् पुत्रान्सोऽप्यजनयत्तिसृषु स्त्रीषु भारत ॥३१॥
ऋक्षं धूमिन्यथा नीली दुष्यन्तपरमेष्ठिनौ । केशिन्यजनयज्जह्नुं सुतौ व्रजनरूपिणौ ॥३२॥
तथेमे सर्व पञ्चाला दुष्यन्तपरमेष्ठिनोः । अन्वयाः कुशिका राजन् जह्नोरमिततेजसः ॥३३॥
व्रजनरूपिणयोर्ज्येष्ठमृक्षमाहुर्जनाधिपम् । ऋक्षात्सम्वरणो जज्ञे राजन्वंशकरः सुतः ॥३४॥
आर्क्षे सम्वरणे राजन् प्रशासति वसुन्धराम् । संक्षयः सुमहानासीत्प्रजानामिति नः श्रुतम् ॥३५॥
व्यशीर्यत ततो राष्ट्रं क्षयैर्नानाविधैस्तदा । क्षुन्मृत्युभ्यामनावृष्ट्या व्याधिभिश्च समाहतम् ॥३६॥
अभ्यघ्नन्भारतांश्चैव सपत्नानां बलानि च । चालयन्वसुधां चेमां बलेन चतुरंगिणा ॥३७॥
अभ्ययात्तं च पाञ्चाल्यो विजित्य तरसा महीम् । अक्षौहिणीभिर्दशभिः स एनं समरेजयत् ॥३८॥
ततः सदारः सामात्यः सपुत्रः ससुहृज्जनः । राजा सम्वरणस्तस्मात्पलायत महाभयात् ॥३९॥

पालन किया और उन्होंने राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञ किये। हाथी, गौ, घोड़े तथा अनेक प्रकार के रत्नों से भरी पृथिवी का उन्होंने शासन किया। राजा सुहोत्र के धर्मपूर्वक शासन के समय पृथिवी हाथी, घोड़े, रथ तथा मनुष्यों से भर गयी थी और भार से दबकर वह पाताल में धसी जा रही थी ॥२७,२८॥ उनके राज्य के समय में सैकड़ों-हजारों मन्दिर तथा यज्ञ-स्तम्भ स्थापित हुए थे, मनुष्यों की वृद्धि हुई थी और सस्यों से पृथिवी की शोभा बढ़ गयी थी ॥२९॥ ऐक्ष्वाकी के गर्भ से राजा सुहोत्र के अजमीढ़, सुमीढ़ और पुरुमीढ़, तीन पुत्र उत्पन्न हुए॥३०॥ अजमीढ़ इनमें सबसे बड़ा था, और उसी से वंश की प्रतिष्ठा हुई। उन्होंने तीन स्त्रियों से छः पुत्र उत्पन्न किये ॥३१॥ राजा की धूमिनी नामकी स्त्री ने ऋक्ष को, नीली ने दुष्यन्त और परमेष्ठी को तथा केशिनी ने जन्हु, व्रजन और रूपिन को उत्पन्न किया ॥३२॥ दुष्यन्त और श्रेष्ठी के वंशज पाञ्चाल-वंश के नाम से प्रसिद्ध हुए। अमित तेजस्वी जन्हु के वंशज कुशिक नाम से प्रसिद्ध हुए ॥३३॥ व्रजन और रूपिन से बड़े ऋक्ष राजा हुए, ऋक्ष के पुत्र सम्वरण हुए, सम्वरण से वंश आगे बढ़ा ॥३४॥ ऋक्ष-पुत्र सम्वरण के शासन के समय में प्रजा का भयंकर नाश हुआ, ऐसा हमलोगों ने सुना है ॥३५॥ अनेक प्रकार के उपद्रवों से राज्य का नाश होने लगा, प्रजा भूख-प्यास से मरने लगी। अनावृष्टि और रोग से समूचा राज्य नष्ट होने लगा ॥३६॥ इसी समय पाञ्चाल-वंशियों ने सम्वरण पर चढ़ाई की। उनकी दस अक्षौहिणी सेना के आक्रमण से पृथ्वी काँप गयी। शत्रु की सेना ने भरतवंशियों को खूब मारा। उनलोगों ने शीघ्र ही सम्वरण को युद्ध में जीत लिया ॥३७, ३८॥ इससे भयभीत होकर राजा सम्वरण स्त्री-सचिव, पुत्र-मित्र आदि के साथ वहाँ से भाग गये ॥३९॥ सिन्धु नद

सिन्धोर्नदस्य महतो निकुञ्जेन्यवसत्तदा । नदीविषयपर्यन्ते पर्वतस्य समीपतः ॥४०॥
तत्रावसन्बहून्कालान्भारता दुर्गमाश्रिताः । तेषां निवसतां तत्र सहस्रं परिवत्सरान् ॥४१॥
अथाभ्यगच्छद्भरतान्वसिष्ठो भगवानृषिः । तमागतं प्रयत्नेन प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च ॥४२॥
अर्घ्यमभ्याहरँस्तस्मै ते सर्वे भारतास्तदा । निवेद्य सर्वमृषये सत्कारेण सुवर्चसे ॥४३॥
तमासने चोपविष्टं राजा वव्रे स्वयं तदा । पुरोहितो भवान्नोऽस्तु राज्याय प्रयतेमहि ॥४४॥
ओमित्येवं वसिष्ठोऽपि भारतान्प्रत्यपद्यत । अथाभ्यषिञ्चत्साम्राज्ये सर्वक्षत्रस्य पौरवम् ॥४५॥
विषाणभूतं सर्वस्यां पृथिव्यामिति नः श्रुतम् । भरताध्युषितं पूर्वं सोऽध्यतिष्ठत्पुरोत्तमम् ॥४६॥
पुनर्बलिभृतश्चैव चक्रे सर्वमहीक्षितः । ततः स पृथिवीं प्राप्य पुनरीजे महाबलः ॥४७॥
आजमीढो महायज्ञैर्बहुभिर्भूरिदक्षिणैः । ततः सम्वरणात्सौरी तपती सुषुवे कुरुम् ॥४८॥
राजत्वे तं प्रजाः सर्वा धर्मज्ञ इति वव्रिरे । तस्य नाम्नाऽभिविख्यातं पृथिव्यां कुरुजांगलम् ॥४९॥
कुरुक्षेत्रं स तपसा पुण्यं चक्रे महातपाः । अविक्षितमभिष्यन्तं तथा चैत्ररथं मुनिम् । ॥५०॥
जनमेजयं च विख्यातं पुत्राँश्चास्यानुशुश्रुम । पञ्चैतान्वाहिनी पुत्रान्व्यजायत मनस्विनी ॥५१॥
अविक्षतः परिक्षित्तु शबलाश्वस्तु वीर्यवान् । आदिराजो विराजश्च शाल्मलिश्च महाबलः ॥५२॥

के पास एक झाड़ी में उन्होंने निवास किया । वह स्थान पर्वत से नद के पास तक फैला था ॥४०॥ उसी को किला बनाकर भरतवंशियों ने बहुत दिनों तक वहाँ निवास किया । उनको वहाँ रहते एक हजार वर्ष बीत गये ॥४१॥

एक समय भगवान् वसिष्ठ उन भरतवंशियों के पास आये । समस्त भरतवंशियों ने उनके आने पर बड़े आदर से उनकी अगवानी की, प्रणाम किया तथा उन्हें अर्घ्य दिया; इस प्रकार तेजस्वी ऋषि के सामने उनलोगों ने आतिथ्य की समस्त सामग्री रक्खी ॥४२, ४३॥ ऋषि के आसन पर बैठ जाने पर राजा ने स्वयं उनसे कहा—आप हम लोगों के पुरोहित बनें तो हम राज्य लौटाने का प्रयत्न करें ॥४४॥ ऋषि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और वे उनके पुरोहित बने । उन्होंने समस्त क्षत्रियों के साम्राज्य पर पुरुनन्दन सम्वरण का अभिषेक किया ॥४५॥ हमलोगों ने सुना है कि राजा सम्वरण उस समय पृथिवी में सबसे बड़े राजा हो गये। भरत की राजधानी में आकर उन्होंने निवास किया ॥४६॥ अनन्तर उन्होंने राजाओं को करद बनाया । समस्त पृथिवी पर अधिकार पाकर महाबली राजा ने यज्ञ किये ॥४७॥ अजमीढ़वंशी राजा सम्बरण ने अनेक यज्ञ किये और ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा दी । अनन्तर सूर्य-पुत्री तपती से सम्वरण के कुरु नाम का पुत्र हुआ ॥४८॥ कुरु धर्मज्ञ हैं, यह जानकर प्रजा ने उन्हें अपना राजा बनाया । कुरुजाङ्गल नामका देश कुरु के नाम से पृथिवी में प्रसिद्ध हुआ ॥४९॥ उस महातपस्वी राजा ने जिस स्थान पर तपस्या की थी, वह कुरुक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ और पवित्र माना जाने लगा । अविक्षित, अभिष्यन्त, चैत्ररथ, मुनि और जनमेजय, ये कुरु के पुत्र हैं, ऐसा हमने सुना है । इन पाँचों को मनस्विनी वाहिनी ने उत्पन्न किया था ॥५०,५१॥ अविक्षित के पुत्र आठ हुए—परीक्षित्, शबलाश्व, आदिराज, विराज, महाबली शाल्मली, उच्चैःश्रवा,

उच्चैःश्रवा भंगकारो जितारिश्चाष्टमः स्मृतः । एतेषामन्ववाये तु ख्यातास्ते कर्मजैर्गुणैः ॥
जनमेजयादयः सप्त तथैवान्ये महारथाः ॥५३॥
परीक्षितोऽभवन्पुत्राः सर्वे धर्मार्थकोविदाः । कक्षसेनोग्रसेनौ तु चित्रसेनश्च वीर्यवान् ॥५४॥
इन्द्रसेनः सुषेणश्च भीमसेनश्च नामतः । जनमेजयस्य तनया भुविख्याता महाबलाः ॥५५॥
धृतराष्ट्रः प्रथमजः पाण्डुर्बाल्हीक एव च । निषधश्च महातेजास्तथा जाम्बूनदो बली ॥५६॥
कुण्डोदरः पदातिश्च वसातिश्चाष्टमः स्मृतः । सर्वे धर्मार्थकुशलाः सर्वभूतहिते रताः ॥५७॥
धृतराष्ट्रोऽथ राजाऽऽसीत्तस्य पुत्रोऽथ कुण्डिकः । हस्ती वितर्कः क्राथश्च कुण्डिनश्चापि पञ्चमः ॥५८॥
हविःश्रवास्तथेन्द्राभो भुमन्युश्चापराजितः । धृतराष्ट्रसुतानां तु त्रीनेतान्प्रथितान्भुवि ॥५९॥
प्रतीपं धर्मनेत्रं च सुनेत्रं चापि भारत । प्रतीपः प्रथितस्तेषां बभूवाप्रतिमो भुवि ॥६०॥
प्रतीपस्य त्रयः पुत्रा जज्ञिरे भरतर्षभ । देवापिः शान्तनुश्चैव बाल्हीकश्च महारथः ॥६१॥
देवापिश्च प्रवव्राज तेषां धर्महितेप्सया । शान्तनुश्च महीं लेभे बाल्हीकश्च महारथः ॥६२॥
भरतस्यान्वये जाताः सत्ववन्तो नराधिपाः । देवर्षिकल्पा नृपते बहवो राजसत्तमाः ॥६३॥
एवंविधाश्चाप्यपरे देवकल्पा महारथाः । जातामनोरन्ववाये ऐलवंश विवर्धनाः ॥६४॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पूरुवंशानुकीर्तने चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

भंगकार और आठवें जितारि, ये इनके पुत्र हुए । अपने सत्कर्मों और गुणों से इनके वंशमें जनमेजय आदि सात महारथ प्रसिद्ध हुए ॥५२, ५३॥ परीक्षित के सभी पुत्र धर्म और अर्थ के ज्ञाता हुए । कक्षसेन, उग्रसेन, पराक्रमी चित्रसेन, इन्द्रसेन, सुषेण और भीमसेन, उनके पुत्र के ये नाम थे । जनमेजय के महाबली पुत्र पृथिवी में प्रसिद्ध थे ॥५४, ५५॥ जनमेजय का पहला पुत्र धृतराष्ट्र था । पाण्डु, बाल्हीक, तेजस्वी निषध, बली जाम्बूनद, कुण्डोदर, पदाति और आठवें वसाति । ये सब धर्म और अर्थ में दक्ष थे तथा समस्त प्राणियों के हितकारी थे ॥५६, ५७॥ धृतराष्ट्र राजा हुआ । उसके ये पुत्र हुए—कुण्डिक, हस्ती, वितर्क, क्राथ, कुण्डिन, हविःश्रवा, इन्द्राभ, भुमन्यु, अपराजित प्रतीप, धर्मनेत्र और सुनेत्र । धृतराष्ट्र के पुत्रों में प्रतीप, धर्मनेत्र और सुनेत्र ये तीन अत्यन्त प्रसिद्ध थे । इनमें भी प्रतीप की और अधिक प्रसिद्धि थी, उसके समान कोई नहीं था ॥५८—६०॥ देवापि, शान्तनु और महारथ बाल्हीक, ये तीन पुत्र प्रतीप के हुए ॥६१॥ इनमें देवापि धर्माचरण करने के लिए संन्यासी हो गया । शान्तनु और बाल्हीक को राज्य मिला ॥६२॥ भरत-वंश में अनेक प्रतापी, पराक्रमी, देवर्षि-तुल्य राजा हुए हैं ॥६३॥ इस वंश में ऐसे ही और भी अनेक देव-तुल्य महारथ राजा उत्पन्न हुए हैं । मनु के वंश में उत्पन्न होकर जिन्होंने ऐल (बुध) वंश की वृद्धि की है ॥६४॥

चतुर्नवतितम अध्याय ।

जनमेजय उवाच

श्रुतस्त्वत्तो मया ब्रह्मन् पूर्वेषांसम्भवो महान् । उदाराश्चापिवंशेऽस्मिन् राजानो मे परिश्रुताः॥ १ ॥
किन्तु लघ्वर्थसंयुक्तं प्रियाख्यानं नमामति । प्रीणात्यतो भवान्भूयो विस्तरेण ब्रवीतु मे ॥ २ ॥
एतामेव कथां दिव्यामाप्रजापतितो मनोः । तेषामाजननं पुण्यं कस्य न प्रीतिमावहेत् ॥ ३ ॥
सद्धर्मगुणमाहात्म्यैरभिवर्धितमुत्तमम् । विष्टभ्य लोकाँस्त्रीनेषां यशः स्फीतमवस्थितम् ॥ ४ ॥
गुणप्रभाववीर्यौजः सत्वोत्साहवतामहम् । न तृप्यामि कथां शृण्वन्नमृतास्वादसंमिताम् ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन्पुरा सम्यङ् मया द्वैपायनाच्छ्रुतम् । प्रोच्यमानं मया कृत्स्नं स्ववंशजननं शुभम् ॥ ६ ॥
दक्षाददितिरदितेर्विवस्वान्विवस्वतो मनुर्मनोरिला इलायाः पुरूरवा पुरूरवस आयुरायुषो नहुषो नहुषाद्ययातिर्ययातेद्वभार्ये बभूवतुः ॥ ७ ॥ उशनसोदुहिता देवयानी वृषपर्वणश्च दुहिता शर्मिष्ठा नाम ॥ ८ ॥ अत्रानुवंश श्लोको भवति ॥
यदुं च तुर्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत । द्रुह्युञ्चानुश्च पुरुश्च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ९ ॥
तत्र यदोर्यादवाः पूरोः पौरवाः ॥१०॥ पूरोस्तु भार्या कौसल्यानाम तस्यामस्य जज्ञे जनमेजयो नाम यस्त्रीनश्वमेधानाजहार विश्वजिता चेष्ट्वा वनं विवेश ॥११॥ जनमेजयः खल्वनन्तां

भरत-चरित्र और उनके वंश की कथा।

जनमेजय बोले—ब्रह्मन्, अपने पूर्वजों की उत्पत्तिका महान् वर्णन मैं ने सुना, इस वंश के उदारचरित राजाओं का भी वर्णन मैंने सुना है ॥१॥ पर आपने संक्षेप से वर्णन किया। मैं अपने पूर्वजों के इस संक्षिप्त वर्णन से प्रसन्न नहीं हुआ, अतएव आप विस्तार के साथ वर्णन करें ॥२॥ पूर्वजों का यह वर्णन आप प्रजापति मनु से प्रारम्भ करके कहें। उनलोगों के जन्म-वृत्तान्त से कौन प्रसन्न न होगा? ॥३॥ उनलोगों का यश धर्म-गुण और प्रभाव से युक्त है, वह तीनों लोकों में फैला हुआ है ॥४॥ उनके दान आदि गुण, देवताओं को भी वश करने वाला प्रभाव, शारीरिक बल, ओज-धीरता आदि, सत्व-अदीनता आदि और उत्साह, ये गुण उनमें थे; अतएव उनकी कथा अमृत के समान स्वादिष्ट है। उसके सुनने से मेरी तृप्ति नहीं होती ॥५॥

वैशम्पायन बोले—राजन्! सुनिए, जो कथा मैंने द्वैपायन व्यास से सुनी है, वह सब मैं कहता हूँ। आप अपने पूर्वजों का चरित्र सुनें ॥६॥ दक्ष से अदिति, अदिति से सूर्य, सूर्य से मनु, मनु से इला, इला से पुरुरवा, पुरुरवा से आयु, आयु से नहुष, नहुष से ययाति उत्पन्न हुए। ययाति की दो स्त्रियाँ थीं ॥७॥ शुक्राचार्य की कन्या देवयानी और वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा ॥८॥ ययाति के ये पुत्र हुए—देवयानी से यदु और तुर्वसु उत्पन्न हुए। द्रुह्यु, अनु और पूरु को शर्मिष्ठा ने उत्पन्न किया ॥९॥ यदु से यादव और पुरु से पौरव उत्पन्न हुए ॥१०॥ पूरु की स्त्री का नाम कौशल्या था। उससे जनमेजय नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने तीन अश्वमेध यज्ञ किये और विश्वजित नामक यज्ञ करके बनवासी हुआ ॥११॥ जनमेजय ने मधु की कन्या अनन्ता को व्याहा था, उससे

नामोपयेमे माधवीं तस्यामस्य जज्ञे प्राचिन्वान् यः प्राचीं दिशं जिगाय यावत्सूर्योदयात्ततस्तस्य प्राचिन्वत्त्वम् ॥१२॥ प्राचिन्वान्खल्वश्मकीमुपयेमे यादवीं तस्यामस्य जज्ञे संयातिः ॥१३॥ संयातिः खलु दृषद्वतोदुहितरंवरांगींनामोपयेमे तस्यामस्य जज्ञे अहंयातिः ॥१४॥ अहंयातिः खलु कृतवीर्यदुहितरमुपयेमे भानुमतीं नाम तस्यामस्य जज्ञे सार्वभौमः ॥१५॥ सार्वभौमः खलु जित्वा जहार कैकेयीं सुनन्दां नाम तामुपयेमे तस्यामस्य जज्ञे जयत्सेनो नाम ॥१६॥ जयत्सेनः खलु वैदर्भीमुपयेमे सुश्रवां नाम तस्यामस्य जज्ञे अवाचीनः ॥ १७ ॥ अवाचीनोऽपि वैदर्भीमपरामेवोपयेमे मर्यादां नाम तस्यामस्य जज्ञे अरिहः ॥ १८ ॥ अरिहः खल्वांगीमुपयेमे तस्यामस्य जज्ञे महाभौमः ॥ १९ ॥ महाभौमः खलु प्रासेनजितिमुपयेमे सुयज्ञां नाम तस्यामस्य जज्ञे अयुतनायीः पुरुषमेधानामयुतमानयत्तेनास्यायुतनायित्वम् ॥२०॥ अयुतनायी खलु पृथुश्रवसो दुहितरमुपयेमे कामां नाम तस्यामस्य जज्ञे अक्रोधनः ॥२१॥ स खलु कालिंगींकरम्भां नामोपयेमे तस्यामस्य जज्ञे देवातिथिः ॥२२॥ देवातिथिः खलु वैदेहीमुपयेमे मर्यादां नाम तस्यामस्य जज्ञेऽरिहो नाम ॥२३॥ अरिहः खल्वांगेयीमुपयेमे सुदेवां नाम तस्यां पुत्रमजीजनदृक्षम् ॥२४॥ ऋक्षः खलु तक्षक दुहितरमुपयेमे ज्वालां नाम तस्यां पुत्रं मतिनारं नामोत्पादयामास ॥२५॥ मतिनारः खलु सरस्वत्यां गुणसमन्वितं

प्राचीन्वान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसने पूर्व दिशा को उदयाचल पर्वत तक जीता था, इसी से वह प्राचीन्वान् कहा जाता है ॥१२॥ प्राचीन्वान् ने यदुवंशी अश्मकी से ब्याह किया, जिससे संयाति उत्पन्न हुए ॥१३॥ दृषद्वान् की कन्या वराङ्गि को संयाति ने ब्याहा, उससे उनके अहंयाति नाम का पुत्र हुआ ॥१४॥ अहंयाति ने कृतवीर्य की कन्या भानुमती को ब्याहा, जिससे सार्वभौम नामक पुत्र हुआ ॥१५॥ सार्वभौम ने जीतकर केकयराज की कन्या सुनन्दा का हरण किया और उसको ब्याहा, उससे जयत्सेन नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१६॥ जयत्सेन ने विदर्भराज की कन्या सुश्रवा से ब्याह किया,उससे अवाचीन नाम का पुत्र इनके हुआ ॥१७॥ अवाचीन ने दूसरी विदर्भ-राजकुमारी मर्यादा को ब्याहा। जिससे अरिह नामक पुत्र हुआ ॥१८॥ अरिह ने आङ्गी को ब्याहा, जिससे महाभौम नामक पुत्र हुआ ॥१९॥ महाभौम ने प्रसनजित् की कन्या सुयज्ञा से ब्याह किया, जिससे अयुतनायी नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इसने दस हजार पुरुषमेध नामके यज्ञ किये थे, जिससे इसका नाम अयुतनायी पड़ा ॥२०॥ अयुतनायी ने पृथुश्रवा की कन्या कामा को ब्याहा, जिससे अक्रोधन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२१॥ उसने कलिङ्ग-राज की कन्या करम्भा को ब्याहा, जिससे देवातिथि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२२॥ देवातिथि ने विदेह-राजपुत्री मर्यादा से ब्याह किया, जिससे अरिह नामक पुत्र हुआ ॥२३॥ अरिह ने अङ्गदेश की राजकुमारी सुदेवा को ब्याहा, जिससे ऋक्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२४॥ ऋक्ष ने तक्षक की कन्या ज्वाला से ब्याह किया, जिससे मतिनार नामक पुत्र उन्होंने उत्पन्न किया ॥२५॥ मतिनार ने सरस्वती को

द्वादश वार्षिकं सत्रमाहरत् । समाप्ते च सत्रे सरस्वत्यभिगम्य तं भर्तारं वरयामास तस्यां पुत्रमजीजनत्तंसुं नाम ॥२६॥ अत्रानुवंशश्लोको भवति ॥

तंसुं सरस्वतीपुत्रं मतिनारादजीजनत् । ईलिनं जनयामास कालिंग्यां तंसुरात्मजम् ॥२७॥
ईलिनस्तु रथन्तर्यां दुष्यन्ताद्यान्पञ्च पुत्रानजीजनत् ॥२८॥

दुष्यन्तः खलु विश्वामित्र दुहितरं शकुन्तलां नामोपयेमे तस्यामस्य जज्ञे भरतः ॥२९॥ अत्रानुवंशश्लोकौ भवतः ।

भस्त्रा मातापितुः पुत्रो येन जातः स एव सः । भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥३०॥
रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात् । त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥३१॥

ततोऽस्य भरतत्वं भरतः खलुकाशेयीमुपयेमे सार्वसेनीं सुनन्दां नाम तस्यामस्य जज्ञे भुमन्युः ॥३२॥ भुमन्युः खलुदाशार्हीमुपयेमे विजयां नाम तस्यामस्य जज्ञे सुहोत्रः ॥३३॥ सुहोत्रः खल्विक्ष्वाकु कन्यामुपयेमे सुवर्णां नाम तस्यामस्य जज्ञे हस्ती । य इदं हास्तिनपुरं स्थापयामास एतदस्य हास्तिनपुरत्वम् ॥३४॥ हस्ती खलु त्रैगर्तीमुपयेमे यशोधरां नाम तस्यामस्य जज्ञे विकुण्ठनो नाम ॥३५॥ विकुण्ठनः खलुदाशार्हीमुपयेमे सुदेवां नाम तस्यामस्य जज्ञे अजमीढो नाम ॥३६॥ अजमीढस्य चतुर्विंशं पुत्रशतं बभूव कैकेय्यां गान्धार्यां विशालायामृक्षायांचेति

प्रसन्न करने के लिए विधिपूर्वक बारह वर्षों में समाप्त होने वाला यज्ञ किया । यज्ञ समाप्त होने पर सरस्वती उनके पास गयीं और उन्होंने उन्हें पति वरण किया । सरस्वती से तंसु नामका पुत्र हुआ ॥२६॥ इनका वंश-क्रम इस प्रकार चला —सरस्वती ने मतिनार से तंसु नामक पुत्र उत्पन्न किया । तंसु ने कालिङ्गी के गर्भ से ईलिन नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥२७॥ ईलिन ने रथन्तरी के गर्भ से दुष्यन्त आदि पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥२८॥ दुष्यन्त ने विश्वामित्र की कन्या शकुन्तला को व्याहा, जिससे भरत नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२९॥ यहाँ दो श्लोक कहे जाते हैं । शकुन्तला के प्रत्याख्यान के समय में यहाँ आकाशवाणी हुई थी–"माता केवल गर्भ-धारण करने वाली है । पुत्र पिता का है । जो उत्पन्न करता है, उसी का उस पर अधिकार होता है । अतएव दुष्यन्त, तुम पुत्र का भरण करो, शकुन्तला का अपमान न करो ॥३०॥ अपना उत्पन्न किया हुआ पुत्र यम के भय को छुड़ाता है । शकुन्तला यह सत्य कहती है कि यह गर्भ तुम्हारा है" ॥३१॥ इसी कारण वह पुत्र भरत कहा जाता है । भरत ने काशीराज सर्वसेन की कन्या सुनन्दा से व्याह किया, जिससे भुमन्यु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३२॥ भुमन्यु ने दाशार्हराज की कन्या विजया को व्याहा, जिससे सुहोत्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३३॥ सुहोत्र ने इक्ष्वाकु-कन्या सुवर्णा से व्याह किया, जिससे हस्ती नामका पुत्र हुआ । जिसने हास्तिनपुर नामका नगर बसाया । इसी लिए उस नगर का नाम हास्तिनपुर पड़ा ॥३४॥ हस्ती ने त्रिगर्त देश की राजकुमारी यशोधरा से व्याह किया, जिससे विकुण्ठ नामका पुत्र हुआ ॥३५॥ विकुण्ठ ने दाशार्हराज की कन्या सुदेवा से व्याह किया, जिससे अजमीढ़ नामका पुत्र हुआ ॥३६॥ अजमीढ़ की चार रानियाँ थीं—कैकेयी, गान्धारी, विशाला और ऋक्षा । इनसे

पृथक्पृथग्वंशधरानृपतयः । तत्र वंशकरः संवरणः ॥३७॥ संवरणः खलु वैवस्वतीं तपतीं नामोपयेमे तस्यामस्य जज्ञे कुरुः ॥३८॥ कुरुः खलु दाशार्हीमुपयेमे शुभांगीं नाम तस्यामस्य जज्ञे विदूरः ॥३९॥ विदूरस्तुमाधवीमुपयेमे सम्प्रियां नाम तस्यामस्य जज्ञे अनश्वानाम ॥४०॥ अनश्वा खलु मागधीमुपयेमे अमृतां नाम तस्यामस्य जज्ञे परीक्षिन् ॥४१॥ परीक्षित्खलु बाहुदाहुतरदेने सुवशां नाम तस्यामस्य जज्ञे भीमसेनः ॥४२॥ भीमसेनः खलु कैकेयीमुपयेमे कुमारीं नाम तस्यामस्य जज्ञे प्रतिश्रवा नाम ॥४३॥ प्रतिश्रवसः प्रतीपः खलु शैब्यामुपयेमे सुनन्दां नाम तस्यां पुत्रानुत्पादयामास देवापिं शान्तनुं बाल्हीकं चेति ॥४४॥ देवापिः खलु बालएवारण्यं विवेश शान्तनुस्तु महीपालो बभूव ॥४५॥ अत्रानुवंशश्लोको भवति ॥

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं स सुखमश्नुते । पुनर्युवा च भवति तस्मात्तंशान्तनुं विदुः ॥

इति तदस्य शान्तनुत्वम् ॥४६॥ शान्तनुः खलु गंगां भागीरथीमुपयेमे तस्यामस्य जज्ञे देवव्रतो नाम यमाहुर्भीष्ममिति ॥४७॥ भीष्मः खलु पितुः प्रियचिकीर्षया सत्यवतीं मातरमुद्वाहयत् यामाहुर्गन्धकालीमिति ॥४८॥ तस्यां पूर्वं कानीनोगर्भः पराशराद्द्वैपायनोऽभवत् तस्यामेव शान्तनोरन्यौ द्वौ पुत्रौ बभूवतुः ॥४९॥ विचित्रवीर्यश्चित्रांगदश्च तयोरप्राप्तयौवन एव चित्रांगदो गन्धर्वेण हतः विचित्रवीर्यस्तु राजासीत् ॥५०॥ विचित्रवीर्यः खलु कौसल्यात्मजेऽम्बिका-

एक सौ चौबीस पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके अलग-अलग वंश चले ॥३७॥ इनमें सम्वरण का बंश चला। सम्वरण ने सूर्य की कन्या तपती को व्याहा, जिससे कुरु उत्पन्न हुआ ॥३८॥ कुरु ने दाशार्ह-राजकुमारी शुभाङ्गी को व्याहा, जिससे विदूर नामक पुत्र हुआ ॥३९॥ मधु की कन्या सम्प्रिया को विदूर ने व्याहा, जिससे अनश्वा नामके पुत्र का जन्म हुआ ॥४०॥ अनश्वा ने मगध-राजकुमारी अमृता से व्याह किया, जिससे परीक्षित उत्पन्न हुए ॥४१॥ परीक्षित ने वाहुद की कन्या सुयशा से व्याह किया, जिसके गर्भ से भीमसेन उत्पन्न हुए ॥४२॥ भीमसेन ने केकय देश की कुमारी नाम की कन्या को व्याहा, उससे प्रतिश्रवा नामक पुत्र का जन्म हुआ ॥४३॥ प्रतिश्रवा के पुत्र प्रतीप ने शिवि की कन्या सुनन्दा से व्याह किया, जिसके गर्भ से उन्होंने तीन पुत्र उत्पन्न किये— देवापि, शान्तनु और बाल्हीक ॥४४॥ बाल्यावस्था में ही देवापि बन चला गया, शान्तनु राजा हुआ ॥४५॥ यहाँ यह श्लोक कहा जाता है। शान्तनु जिस बूढ़े मनुष्य को हाथों से छू देता था, वह युवा हो जाता था और सुखी हो जाता था, उनके शान्तनु नाम पड़ने का यही कारण है ॥४६॥ शान्तनु ने भगीरथ की कन्या गङ्गा से व्याह किया, जिससे देवव्रत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे भीष्म कहते हैं ॥४७॥ शान्तनु ने पिता का हित करने के लिए माता सत्यवती का व्याह करवाया, जिसका नाम गन्धकाली भी है ॥४८॥ इसकी अविवाहित अवस्था में पराशर से व्यासदेव उत्पन्न हुए थे, उससे शान्तनु ने दो पुत्र उत्पन्न किये ॥४९॥ विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद। बाल्यावस्था में ही चित्राङ्गद को गन्धर्वों ने मार डाला, इससे विचित्रवीर्य राजा हुआ ॥५०॥ इसने कौशल्या के गर्भ

म्बालिके काशिराजदुहितरावुपयेमे ॥५१॥ विचित्रवीर्यस्त्वनपत्य एव विदेहत्वं प्राप्तस्ततः सत्यवत्यचिन्तयन्मादौष्यन्तो वंश उच्छेदं व्रजेदिति ॥५२॥ सा द्वैपायनमृषिं मनसा चिन्तयामास स तस्याः पुरतः स्थितः किं करवाणीति ॥५३॥ सा तमुवाच भ्राता तवानपत्य एव स्वर्यातो विचित्रवीर्यः साध्वपत्यं तस्योत्पादयेति ॥५४॥ स तथेत्युक्त्वा त्रीन्पुत्रानुत्पादयामास धृतराष्ट्रं पाण्डुं विदुरञ्चेति ॥५५॥ तत्र धृतराष्ट्रस्य राज्ञः पुत्रशतं बभूव गान्धार्यां वरदानाद्द्वैपायनस्य ॥५६॥ तेषां धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां चत्वारः प्रधाना बभूवुः दुर्योधनो दुःशासनो विकर्णश्चित्रसेनश्चेति ॥५७॥ पाण्डोस्तु द्वे भार्ये बभूवतुः कुन्ती पृथानाम माद्री चेत्युभे स्त्रीरत्ने ॥५८॥ अथ पाण्डुर्मृगयां चरन्मैथुनगतमृषिमपश्यन्मृग्यां वर्त्तमानं तथैवाद्रु तमनासादित कामरसमतृप्तं च बाणेनाजघान ॥५९॥ स बाणविद्ध उवाच पाण्डुं चरता धर्ममिमं येन त्वयाऽभिज्ञेन कामरसस्याहमनवाप्तकामरसो निहतस्तस्मात्त्वमप्येतामवस्थामासाद्यानवाप्तकामरसः पञ्चत्वमाप्स्यसि क्षिप्रमेवेति स विवर्णरूपस्तथा पाण्डुः शापं परिहरमाणो दारान्नोपैत् भार्ये वाक्यं चोवाच ॥६०॥ स्व चापलयादिदं प्राप्तवानहं शृणोमि च नानपत्यस्य लोकाः सन्तीति । सा त्वं मदर्थे पुत्रानुत्पादयेति कुन्तीमुवाच सा तथोक्ता पुत्रानुत्पादयामास । धर्माद्युधिष्ठिरं मारुताद्भीमसेनं शक्रादर्जुनमिति ॥६१॥ तां संहृष्टः पाण्डुरुवाच। इयं ते सपत्न्यनपत्या साध्वस्या अपत्य-

से उत्पन्न काशीराज की अम्बा और अम्बालिका नाम की दो कन्याओं से व्याह किया था ॥५१॥ पुत्र होने के पहले ही विचित्रवीर्य का शरीरान्त हो गया। तब सत्यवती ने विचार किया कि किस प्रकार दुष्यन्त के इस वंश का नाश न हो ॥५३॥ उसने मन-ही-मन व्यासदेव का स्मरण किया, वे सामने खड़े होकर बोले—कौन काम करूँ? ॥५३॥ सत्यवतीने कहा—तुम्हारा भाई पुत्रहीन होकर स्वर्ग गया, उसके पुत्र उत्पन्न करो ॥५४॥ उन्होंने माता की आज्ञा मानकर तीन पुत्र उत्पन्न किये—धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ॥५५॥ धृतराष्ट्र के गान्धारी से सौ पुत्र हुए। व्यासदेव ने गान्धारी को ऐसा ही वर दिया था ॥५६॥ धृतराष्ट्र के पुत्रों में चार प्रधान हुए—दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रसेन ॥५७॥ पाण्डु को दो स्त्रियाँ थीं—कुन्ती और माद्री; ये दोनों स्त्री-रत्न थीं ॥५८॥

एक बार पाण्डु शिकार के लिए बन में गये। वहाँ उन्होंने मृगी के साथ एक ऋषि को मैथुन करते देखा। उसी अवस्था में जब वे ऋषि काम से तृप्त नहीं हुए थे, पाण्डु ने उन्हें बाण से मारा ॥५६॥ बाण से आहत होकर ऋषि ने पाण्डु से कहा—धर्मात्मा तथा कामरस के ज्ञाता होकर तुमने अतृप्त अवस्था में ही मेरा वध किया है, इस अपराध के कारण तुम भी इसी प्रकार अतृप्त अवस्था में ही शीघ्र मरोगे। इस शाप को सुनकर पाण्डु व्याकुल हो गये। शाप से बचने के लिए स्त्रियों के पास जाना पाण्डु ने छोड़ दिया। वे एक दिन स्त्रियों से इस प्रकार बोले ॥६०॥ अपनी चञ्चलता के कारण मैंने यह शाप पाया है। मैंने सुना है कि पुत्रहीन मनुष्यों की गति नहीं होती, अतएव मेरे लिए तुम पुत्र उत्पन्न करो। पाण्डु के कहने से कुन्ती ने पुत्र उत्पन्न किये—धर्म से युधिष्ठिर, वायु से भीम और इन्द्र से अर्जुन नाम का पुत्र उत्पन्न किया ॥६१॥

मुत्पाद्यतामिति। एवमस्त्विति कुन्ती तां विद्यां माद्र्याः प्रायच्छत् ॥६२॥ माद्र्यामश्विभ्यां नकुल-सहदेवावुत्पादितौ ॥६३॥ माद्रीं स्वलंकृतां दृष्ट्वा पाण्डुर्भावं चक्रे स तां स्पृष्ट्वैव विदेहत्वं प्राप्तः ॥६४॥ तत्रैनं चिताग्निस्थं माद्री समन्वारुरोह। उवाच कुन्तीं [illegible] त्वया भवितव्य-मिति ॥६५॥ ततस्ते पाण्डवाः कुन्त्या सहिता हास्तिनपुरमानीय तापसैर्भीष्मस्य च विदुरस्य च निवेदिताः सर्ववर्णानां च निवेद्यान्तर्हितास्तापसा बभूवुः प्रेक्षमाणानां तेषाम् ॥६६॥ तच्चवाक्य-मुपश्रुत्य भगवतामन्तरिक्षात्पुष्पवृष्टिः पपात देवदुन्दुभयश्च प्रणेदुः ॥६७॥ प्रतिगृहीताश्च पाण्डवाः पितुर्निधनमावेदयन्तस्तस्यौर्ध्वदेहिकं न्यायतश्च कु[illegible]त्र निवसतः पाण्डवान्बाल्यात्प्रभृ-तिदुर्योधनो नामर्षयत् ॥६८॥ पापचारो राक्षसीं बुद्धिमाश्रितोऽनेकैरुपायैरुद्धर्तुं च व्यव-सितो भावित्वाच्चार्थस्य न शकितास्ते समुद्धर्तुम् ॥६९॥ ततश्च धृतराष्ट्रेण व्याजेन वारणावत-मनुप्रेषितागमनमरोचयन् ॥७०॥ तत्रापि जतुगृहे दग्धुं समारब्धा न शकिता विदुर मन्त्रितेनेति ॥७१॥ तस्माच्चहिडिम्बमन्तरा हत्वा एकचक्रां गताः ॥७२॥ तस्यामप्येकचक्रायां बकंनाम राक्षसं हत्वा पाञ्चाल नगरमधिगताः ॥७३॥ तत्र द्रौपदीं भार्यामविन्दन् स्वविषयं चाभिजग्मुः ॥७४॥

प्रसन्न होकर पाण्डु कुन्ती से बोले—यह तुम्हारी सौत पुत्रहीना है, अच्छा हो कि इसके भी पुत्र उत्पन्न करने की व्यवस्था कर दो। पाण्डु की आज्ञा मानकर कुन्ती ने यह विद्या माद्री को भी दी ॥६२॥ अश्विनीकुमारों के द्वारा माद्री ने नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥६३॥ एक दिन पाण्डु माद्रीका सौन्दर्य देखकर उस पर मोहित हुए, पर उसका शरीर स्पर्श करते ही उनकी मृत्यु हुई ॥६४॥ माद्री ने पाण्डु के साथ चितारोहण किया और अपने दोनों पुत्रों को कुन्ती के हाथ सौंपा। उन्होंने कुन्ती से कहा - सावधानी से इन्हें रखना ॥६५॥

वहाँ के तपस्वी पाण्डवों के साथ कुन्ती को हस्तिनापुर ले आये और भीष्म तथा विदुर को सौंपकर चले गये। हस्तिनापुर की जनता से भी पाण्डवों का परिचय देकर वे लोग शीघ्र ही वहाँ से चले गये ॥६६॥ उन तपस्वियों ने जब पाण्डवों का परिचय दिया, उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि और दुन्दुभि-ध्वनि हुई ॥६७॥

भीष्म ने पाण्डवों का आदरपूर्वक रखा। उन लोगों ने पिता की मृत्यु का संवाद कहा और नियमानुसार उनका पारलौकिक संस्कार किया और वे वहीं रहने लगे। दुर्योधन बाल्यावस्था से ही पाण्डवों से द्वेष रखने लगा था ॥६८॥ पापी दुर्योधन ने राक्षसी बुद्धि के द्वारा पाण्डवों को नष्ट करने के अनेक उपाय किये, पर भावी की प्रबलता के कारण वे उनका नाश न कर सके ॥ ६९ ॥ अनन्तर धृतराष्ट्र ने बहाने से पाण्डवों को वारणावत नगर में जाने को कहा। वे जाने के लिए तयार हो गये ॥७०॥ वारणावत नगर में उनलोगों ने पाण्डवों को जलाने का प्रबन्ध किया था, पर विदुर के परामर्श से पाण्डवों की रक्षा हो गयी ॥७१॥ वहाँ से चलकर उनलोगों ने रास्ते में हिडिम्ब नामक राक्षस को मारा और वे एकचक्रा नगरी में पहुँचे ॥७२॥ इस नगरी में बक नामक राक्षस को मारकर वे लोग पाञ्चाल की राजधानी में

कुशलिनः पुत्राँश्चोत्पादयामासुः प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरः सुत सोमं वृकोदरः श्रुतकीर्तिमर्जुनः शतानीकं नकुलः श्रुतकर्माणं सहदेव इति ॥७५॥ युधिष्ठिरस्तु गोवासनस्य शैव्यस्य देविकां नाम कन्यां स्वयंवराल्लेभे तस्यां पुत्रं जनयामास यौधेयं नाम ॥७६॥ भीमसेनोऽपि काश्यां बलन्धरां नामोपयेमे वीर्यशुल्कां तस्यां पुत्रं सर्वगं नामोत्पादयामास ॥७७॥ अर्जुनः खलु द्वारवतीं गत्वा भगिनीं वासुदेवस्य सुभद्रां भद्रभाषिणीं भार्यामुदावहत्। स्व विषयं चास्या जगाम कुशली तस्यां पुत्रमभिमन्युमतीवगुणसम्पन्नं दयितं वासुदेवस्याजनयत् ॥७८॥ नकुलस्तु चैद्यां करेणुमतीं नाम भार्यामुदावहत्तस्यां पुत्रं निरमित्रं नामाजनयत् ॥७९॥ सहदेवोऽपि माद्रीमेवस्वयंवरे विजयां नामोपयेमे मद्रराजस्य द्युतिमतो दुहितरं तस्यां पुत्रमजनयत्सुहोत्रंनाम ॥८०॥ भीमसेनस्तु पूर्वमेव हिडिम्बायां राक्षसं घटोत्कचं पुत्रमुत्पादयामास ॥८१॥ इत्येत एकादश पाण्डवानां पुत्रास्तेषां वंशकरोऽभिमन्युः ॥८२॥ स विराटस्य दुहितरमुपयेमे उत्तरां नाम। तस्यामस्य परासुर्गर्भोऽभवत्तमुत्संगेन प्रतिजग्राह पृथानियोगात् पुरुषोत्तमस्य वासुदेवस्य षाण्मासिकं गर्भमहमेनं जीवयिष्यामीति ॥८३॥ स भगवता वासुदेवेनासञ्जातबलवीर्यपराक्रमोऽकालजातोऽस्त्राग्निना दग्धस्तेजसास्वेन संजीवितः। जीवयित्वा चैनमुवाच परिक्षीणे कुले जातो भवत्वयं परिक्षिन्नामेति ॥८४॥ परिक्षित्खलु माद्रवतीं नामो-

गये ॥७३॥ वहाँ उनका द्रौपदी से व्याह हुआ और वे अपने देश में लौट आये ॥७४॥ कुशलपूर्वक अपने नगर में लौटकर उनलोगों ने पुत्र उत्पन्न किये। युधिष्ठिर ने प्रतिविन्ध्य, भीम ने सुतसोम अर्जुन ने श्रुतकीर्ति, नकुल ने शतानीक और सहदेव ने श्रुतकर्मा नामके पुत्र उत्पन्न किये ॥७५॥ युधिष्ठिर ने गोवासन की कन्या देविका को स्वयम्वर में पाया, ये गोवासन शैव्य देश के राजा थे। उसके गर्भ से यौधेय नामक पुत्र उन्होंने उत्पन्न किया ॥७६॥ भीमसेन ने काशीराज की कन्या बलन्धरा को बलपूर्वक जीतकर व्याहा और उसके गर्भ से सर्वग नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥७७॥ अर्जुन द्वारकापुरी गये। श्रीकृष्ण का बहन, मृदुभाषिणी सुभद्रा, को उन्होंने वहाँ व्याहा। वहाँ से वे कुशल-पूर्वक अपने राज्य में लौट आये। सुभद्रा के गर्भ से उन्होंने अभिमन्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया, जो बड़ा गुणी था और श्रीकृष्ण का बड़ा प्यारा था ॥७८॥ नकुल ने चेदि-देश की करेणुमती नाम की कन्या को व्याहा और उसके गर्भ से निरमित्र नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥७९॥ सहदेव ने मद्रराज द्युतिमान की कन्या विजया को व्याहा और उससे सुहोत्र नाम का पुत्र उत्पन्न किया ॥८०॥ इसके पहले भीमसेन ने हिडिम्बा के गर्भ से घटोत्कच नामका राक्षस पुत्र उत्पन्न किया था ॥८१॥ इस प्रकार पाण्डवों के ग्यारह पुत्र हुए, उनमें अभिमन्यु का वंश चला ॥८२॥ उसने विराट की कन्या उत्तरा से व्याह किया। उत्तरा के गर्भ से अभिमन्यु के एक मृत पुत्र उत्पन्न हुआ। पुरुषोत्तम वासुदेव की आज्ञा से कुन्ती ने उस बालक को गोद में ले लिया। श्रीकृष्ण ने उनसे कहा था कि इस छः महीने के मृतक गर्भ को जिला दूँगा ॥८३॥ उस गर्भ में बल-पराक्रम कुछ भी न था, अकाल में उत्पन्न हुआ था, अश्वत्थामा के अस्त्र से गला हुआ था, श्रीकृष्ण ने अपने तेज

पयेमे त्वन्मातरं तस्यां भवान् जनमेजयः ॥८५॥ भवतो वपुष्टमायां द्वौ पुत्रौ जज्ञाते शतानीकः शंकुकर्णश्च शतानीकस्य वैदेह्यां पुत्र उत्पन्नोऽश्वमेधदत्त इति ॥८६॥ एष पूरोर्वंशः पाण्डवानां च कीर्तितो धन्यः पुण्यः परम पवित्रः सततं श्रोतव्यो ब्राह्मणैर्नियमवद्भिरनन्तरं क्षत्रियैः स्वधर्मनिरतैः प्रजापालनतत्परैर्वैश्यैरपि च श्रोतव्योऽधिगम्यश्च तथा शूद्रैरपि त्रिवर्ण शुश्रूषुभिः श्रद्दधानैरिति ॥८७॥ इतिहासमिमं पुण्यमशेषतः श्रावयिष्यन्ति ये नराः श्रोष्यन्ति-वा नियतात्मानो विमत्सरामैत्रावेदपरास्तेऽभिजितनाकिनः पुण्यलोका भवन्ति सततं देवब्राह्मण-मनुष्याणां मान्याः सम्पूज्याश्च ॥८८॥ परंहीदं भारतं भगवता व्यासेन प्रोक्तं पावनं ये ब्राह्मणादयो वर्णाः श्रद्दधाना अमत्सरा मैत्रावेदसम्पन्नाः श्रोष्यन्ति तेऽपि स्वर्गजितः सुकृतिनो ऽशोच्याः कृताकृते भवन्ति ॥८९॥ भवति चात्र श्लोकः ॥

इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं श्रोतव्यं नियतात्मभिः ॥९०॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पूरुवंशानुकीर्त्तने पंचनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

से उसे जीवित कर दिया और वे बोले—पाण्डवों के परिक्षीण कुल में यह बालक उत्पन्न हुआ है, इस कारण इसका नाम परीक्षित होगा ॥८४॥ परीक्षित ने माद्रवती नाम की कन्या को व्याहा। जिससे आप जनमेजय उत्पन्न हुए ॥८५॥ वपुष्टमा से आप के दो पुत्र हुए हैं, शतानीक और शङ्कुकर्ण। वैदेही से शतानीक के अश्वमेधदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥८६॥ राजन्, पूरु और पाण्डवों के धन्य तथा पवित्र वंश का मैंने कीर्तन किया। नियमपूर्वक रहने वाले ब्राह्मणों को, स्वधर्म-निरत, प्रजा-पालन करने वाले क्षत्रियों को और वैश्यों को सदा इसका श्रवण करना चाहिए। त्रिवर्ण की सेवा करने वाले श्रद्धालु शूद्रों को भी यह सुनना और समझना चाहिए ॥८७॥ जितेन्द्रिय ईर्षा-द्वेष-रहित, सब को मित्र-दृष्टि से देखने वाले, वेदज्ञ, इस पवित्र समस्त इतिहास को जो सुनावेंगे या स्वयं सुनेंगे, उनके अधीन स्वर्ग तथा अन्य पवित्र लोक हो जायँगे, देवता ब्राह्मण और मनुष्यों के वे आदरणीय तथा पूज्य होंगे ॥८८॥ यह भारत नाम का श्रेष्ठ और पवित्र इतिहास भगवान् वेद-व्यास ने बनाया है। श्रद्धालु, ईर्ष्या-रहित, मित्र-दृष्टि रखने वाले, वेदज्ञ जो ब्राह्मण इसे सुनेंगे, वे भी स्वर्ग पावेंगे; वे किसी प्रकार से दुःखी न होंगे; किये और न किये कर्मों के लिए उन्हें पश्चात्ताप न होगा ॥८९॥ नीचे के श्लोक में यह बात कही जाती है। यह ग्रन्थ वेदों के अनुकूल है, पवित्र है, उत्तम है। धन-यश और आयु देने वाला है। अतएव नियत-चित्त मनुष्यों को इसका श्रवण अवश्य करना चाहिए ॥९०॥

पञ्चनवतितम अध्याय।

वैशम्पायन उवाच

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो राजाऽसीत्पृथिवीपतिः । महाभिषगिति विख्यातः सत्यवाक्सत्यविक्रमः ॥१॥
सोऽश्वमेध सहस्रेण राजसूयशतेन च । तोषयामास देवेशं स्वर्गं लेभे ततः प्रभुः ॥ २ ॥
ततः कदाचिद्ब्रह्माणमुपासां चक्रिरे सुराः । तत्र राजर्षयो ह्यासन्स च राजा महाभिषः ॥ ३ ॥
अथ गंगा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात्पितामहम् । तस्या वासः समुद्धूतं मारुतेन शशिप्रभम् ॥ ४ ॥
ततोऽभवन्सुरगणाः सहसाऽवाङ्मुखास्तदा । महाभिषस्तु राजर्षिरशंको दृष्टवान्नदीम् ॥ ५ ॥
सोऽपध्यातो भगवता ब्रह्मणा तु महाभिषः । उक्तश्च जातो मर्त्येषु पनर्लोकानवाप्स्यसि ॥ ६ ॥
यया हृतमनाश्चासि गङ्गया त्वं हि दुर्मते । सा ते वै मानुषे लोके विप्रियाण्या चरिष्यति ॥ ७ ॥
यदा ते भवितामन्युस्तदा शापाद्विमोक्ष्यसे ।

वैशम्पायन उवाच

स चिन्तयित्वा नृपतिर्नृपानन्याँस्तपोधनान् ॥ ८ ॥
प्रतीपं रोचयामास पितरं भूरि तेजसम् । महाभिषं तु तं दृष्ट्वा नदी धैर्याच्च्युतं नृपम् ॥ ९ ॥
तमेव मनसा ध्यायन्त्युपावर्त्तत्सरिद्वरा । सा तु विध्वस्तवपुषः कश्मलाभिहतान्नप ॥१०॥
ददर्श पथि गच्छन्ती वसून्देवान्दिवौकसः । तथा रूपाँश्च तान्दृष्ट्वा पप्रच्छ सरितांवरा ॥११॥

महाभिष की कथा; अष्टावसुओं से गङ्गा की बातचीत ।

वैशम्पायन बोले—इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न महाभिष नाम के एक राजा थे । वे सत्यवादी और सत्यपराक्रमी थे ॥१॥ उन्होंने एक हजार अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञ करके इन्द्र को प्रसन्न किया था और स्वर्ग पाया था ॥२॥ एकबार देवगण ब्रह्मा की सेवा में बैठे थे, वहाँ राजर्षि भी थे और वे महाभिष राजा भी थे ॥३॥ उसी समय नदी-श्रेष्ठ गङ्गा वहाँ आयी, चन्द्रोज्वल गङ्गा का वस्त्र वायु के लगने से उड़ने लगा ॥४॥ उस समय शीघ्र ही देवताओं ने सिर नीचे कर लिये, पर राजा महाभिष निःशङ्क होकर उधर देखते रहे ॥५॥ ब्रह्मा ने महाभिष के सम्बन्ध में विचार किया और उन्हें शाप दिया । उन्होंने कहा—तुम मर्त्य लोक में जन्म ग्रहण करो, उसके पश्चात् पुनः तुम्हें स्वर्ग मिलेगा ॥६॥ दुर्मते, जिस गङ्गा पर तुम मोहित हुए हो, वही मर्त्यलोक में तुम्हारा अहित करेगी । जिस समय तुम्हें क्रोध होगा, उसी समय तुम्हारा यह शाप छूटेगा ।

वैशम्पायन बोले—किसके यहाँ मैं जन्म ग्रहण करूँ, इस विषय में विचार करके राजा ने तेजस्वी प्रतीप को ही अपना पिता बनाना निश्चित किया । गङ्गा ने राजा महाभिष को इस घटना से अधीर देखा । वह मन-ही-मन उन राजा का ध्यान करती हुई लौटी । रास्ते में जाती हुई उस नदी ने देवलोक-वासी बसु नामक देवताओं को देखा । वे मूर्च्छित-से हो गये थे, उनका शरीर अस्तव्यस्त हो रहा था । उनलोगों की वैसी दशा देखकर नदीश्रेष्ठ गङ्गा ने उनलोगों से पूछा ॥७—११॥ आपलोगों की यह क्या दशा हो गयी है ? कुशल तो है ? वसु देवों ने उनसे कहा—

किमिदं नष्टरूपाः स्थ कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम् । तामूचुर्वसवो देवाः शप्ताः स्मो वै महानदि ॥१२॥
अल्पेऽपराधे संरम्भाद्वसिष्ठेन महात्मना । विमूढा हि वयं सर्वे प्रच्छन्नमृषिसत्तमम् ॥१३॥
सन्ध्यां वसिष्ठमासीनं तमत्यभिसृताः पुरा । तेन कोपाद्वयं शप्ता योनौ सम्भवतेति ह ॥१४॥
न तच्छक्यं निवर्त्तयितुं यदुक्तं ब्रह्मवादिना । त्वमस्मान्मानुषी भूत्वा सृज पुत्रान्वसून्भुवि ॥१५॥
न मानुषीणां जठरं प्रविशेम वयं शुभे । इत्युक्ता तैश्च वसुभिस्तथेत्युक्त्वाऽब्रवीदिदम् ॥१६॥
गङ्गोवाच
मर्त्येषु पुरुषश्रेष्ठः को वः कर्त्ता भविष्यति ॥
वसव ऊचुः
प्रतीपस्य सुतो राजा शान्तनुर्लोकविश्रुतः । भविता मानुषे लोके स नः कर्त्ता भविष्यति ॥१७॥
गङ्गोवाच
ममाप्येवं मतं देवा यथा मां वदतानघाः । प्रियं तस्य करिष्यामि युष्माकं चैतदीप्सितम् ॥१८॥
वसव ऊचुः
जातान्कुमारान्स्वानप्सु प्रक्षेप्तुं वै त्वमर्हसि । यथा न चिरकालं नो निष्कृतिः स्यात्त्रिलोकगे ॥१९॥
गंगोवाच
एवमेतत्करिष्यामि पुत्रस्तस्य विधीयताम् । नास्यमोघः संगमः स्यात्पुत्रहेतोर्मया सह ॥२०॥

महानदि, हमलोगों को शाप दिया गया है ॥१२॥ साधरण अपराध से क्रोध करके महात्मा वशिष्ठ ने हमलोगों को शाप दिया है। एक दिन सन्ध्या के समय वसिष्ठ ऋषि एक जगह बैठे थे, हमलोगों को मालूम न था। वे छिपे बैठे थे, अतएव उनको बिना प्रणाम किये ही हमलोग वहाँ से आगे बढ़ गये। इसी अपराध से क्रोध करके ऋषि ने हमलोगों को शाप दिया कि तुमलोग मर्त्यलोक में जन्म ग्रहण करो ॥१४॥ ब्रह्मवादी मुनि ने जो कहा है, वह हटाया नहीं जा सकता। अतएव मानवी होकर तुम हमलोगों को मर्त्यलोक में उत्पन्न करो ॥१५॥ क्योंकि हम अन्य मानवी स्त्रियों के गर्भ में प्रवेश करना नहीं चाहते। वसुओं की इस प्रार्थना को स्वीकार करके गङ्गा उनसे बोली ॥१६॥

गङ्गा बोलीं—मर्त्यलोक में कौन श्रेष्ठ पुरुष आपलोगों का उत्पन्न करने वाला पिता होगा ?

वसु बोले—मनुष्यलोक में राजा प्रतीप के पुत्र लोक-प्रसिद्ध शान्तनु हैं; वही हमलोगों के पिता होंगे ॥१७॥

गङ्गा बोलीं—निष्पाप देवताओं, जैसा आपलोग कहते हैं, वैसा मैं भी करना चाहती हूँ। मैं आपलोगों का मनोरथ पूरा करूँगी और उन राजा का प्रिय करूँगी ॥१८॥

वसु बोले—हे त्रिलोकगामिनी, जिस समय तुम्हें पुत्र उत्पन्न हों, उसी समय उन्हें जल में डाल देना, जिससे हमलोगों को बहुत दिनों तक मर्त्यलोक का कष्ट भोगना न पड़े ॥१९॥

वसव ऊचुः
तुरीयार्धं प्रदास्यामो वीर्यस्यैकैकशो वयम् । तेन वीर्येण पुत्रस्ते भविता तस्य चेप्सितः ॥२१॥
न सम्पत्स्यति मर्त्येषु पुनस्तस्य तु सन्ततिः। तस्मादपुत्रः पुत्रस्ते भविष्यति स वीर्यवान् ॥२२॥
एवं ते समयं कृत्वा गङ्गया वसवः सह । जग्मुः संहृष्टमनसो यथा संकल्पमंजसा ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि महाभिषोपाख्याने षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

वैशम्पायन उवाच
ततः प्रतीपो राजासीत्सर्वभूतहितः सदा । निषसाद समा बह्वीर्गंगाद्वारगतो जपन् ॥१॥
तस्य रूपगुणोपेता गंगा स्त्रीरूपधारिणी । उत्तीर्य सलिलात्तस्माल्लोभनीय तमाकृतिः ॥२॥
अधीयानस्य राजर्षेर्दिव्यरूपा मनस्विनी । दक्षिणं शाल संकाशमूरुं भेजे शुभानना ॥३॥
प्रतीपस्तु महीपालस्तामुवाच यशस्विनीम् । करोमि किं ते कल्याणि प्रियंयत्तेऽभिकांक्षितम् ॥४॥

गङ्गा ने कहा—जैसा आपलोग कहते हैं, वैसा ही करूँगी ; पर एक पुत्र राजा के लिए रहने दूँगी, जिससे पुत्रके लिए मेरे साथ सङ्गम करना राजा का व्यर्थ न हो ॥२०॥

वसु बोले—हम सबलोग अपने-अपने तेज का चौथा हिस्सा देंगे, उन्हीं तेजों से तुम्हें एक पुत्र होगा, जो राजा का पुत्र होकर रहेगा ॥२१॥ पर तुम्हारे उस पुत्र की सन्तति न होगी, तुम्हारा वह पुत्र पराक्रमी, पर पुत्रहीन होगा ॥२२॥ इस प्रकार गङ्गा के साथ निश्चय करके वे प्रसन्नतापूर्वक जहाँ जाना था, वहाँ गये ॥२३॥

षट्नवतितम अध्याय ।

राजा प्रतीप का गङ्गा को बधू अङ्गीकार करना ; शान्तनु की उत्पत्ति और राज्याभिषेक;
शान्तनु और गङ्गा की बातचीत ।

वैशम्पायन बोले—राजा प्रतीप सब प्राणियों पर दया रखते थे । गङ्गा-द्वार में (हरद्वार में) बहुत दिनों तक तपस्या करते हुए उन्होंने निवास किया ॥१॥ गुणवती और सुन्दरी स्त्री का रूप धरकर गङ्गा जल से निकलीं । उनका रूप लोभनीय था ॥२॥ वे राजा पढ़ रहे थे । उस समय वह दिव्य सुन्दरी, सुमुखी, उन राजा की दाहिनी जंघा पर बैठी, जो शाल वृक्ष के समान विशाल था ॥३॥ राजा प्रतीप उस यशस्विनी स्त्री से बोले—कल्याणि, तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करूँ ? तुम्हारा कौन मनोरथ पूरा करूँ ? ॥४॥

स्त्र्युवाच

त्वामहं कामये राजन् भजमानां भजस्व माम् । त्यागः कामवतीनां हि स्त्रीणां सद्भिर्विगर्हितः ॥५॥

प्रतीप उवाच

नाहं परस्त्रियं कामाद्गच्छेयं वरवर्णिनि । न चासवर्णां कल्याणि धर्म्यमेतद्धि मे व्रतम् ॥६॥

स्त्र्युवाच

नाश्रेय यऽस्मि नागम्या न वक्तव्या च कर्हिचित् । भजन्तीं भज मां राजन्दिव्यां कन्यां वरस्त्रियम् ॥७॥

प्रतीप उवाच

त्वया निवृत्तमेतत्तु यन्मां चोदयसि प्रियम् । अन्यथा प्रतिपन्नं मां नाशयेद्धर्मविप्लवः ॥८॥
प्राप्य दक्षिणमूरुं मे त्वमाश्लिष्टा वरांगने । अपत्यानां स्नुषाणां च भीरु विद्ध्येतदासनम् ॥९॥
सव्योरुः कामिनीभोग्यस्त्वया स च विवर्जितः । तस्मादहं नाचरिष्ये त्वयि कामं वराङ्गने ॥१०॥
स्नुषा मे भव सुश्रोणि पुत्रार्थं त्वां वृणोम्यहम् । स्नुषा पक्षं हि वामोरु त्वमागम्य समाश्रिता ॥११॥

स्त्र्युवाच

एवमप्यस्तु धर्मज्ञ संयुज्येयं सुतेन ते । त्वद्भक्त्या तु भजिष्यामि प्रख्यातं भारतं कुलम् ॥१२॥
पृथिव्यां पार्थिवा ये च तेषां यूयं परायणम् । गुणा न हि मया शक्या वक्तुं वर्षशतैरपि ॥१३॥
कुलस्य ये वः प्रथितास्तत्साधुत्वमथोत्तमम् । समयेनेह धर्मज्ञ आचरेयं च यद्विभो ॥१४॥

स्त्री बोली—राजन् , मैं आपको चाहती हूँ, मेरा आप पर अनुराग है, अतएव आप मेरा मनोरथ पूर्ण करें । प्रणय चाहने वाली स्त्रियों के त्याग की सज्जन निन्दा करते हैं ॥५॥

प्रतीप बोले—सुन्दरि, कामवश होकर मैं पर-स्त्री के पास नहीं जाता, जो वर्ण की नहीं है, उसके पास भी मैं नहीं जाता: यही मेरा धार्मिक नियम है ॥६॥ स्त्री बोली—राजन् , मैं अधम नहीं हूँ, सङ्ग करने के अयोग्य भी नहीं हूँ और न निन्दनीय ही हूँ । मैं सुन्दरी, दिव्य-कन्या हूँ । मेरा अनुराग आप पर है । अतएव आप मेरा मनोरथ पूरा कीजिए ॥७॥

प्रतीप बोले—जिस बात की तुम प्रार्थना करती हो, उसका मार्ग तुमने स्वयं रोक दिया है । उसके विपरीत आचरण करने से मेरा धर्म जायगा, जिससे मेरा नाश हो जायगा ॥८॥ सुन्दरि, तुम मेरी दाहिनी जाँघ पर बैठी हो, यह आसन बच्चों और पुत्रवधू के लिए है ॥९॥ कामिनी के लिए बायीं जाँघ है, पर तुमने उसे छोड़ दिया है, अतएव सुन्दरी, मैं तुम्हारा मनोरथ पूरा नहीं कर सकता ॥१०॥ तुम मेरी पुत्रवधू बनो, मैं तुम्हें अपने पुत्र के लिए स्वीकार करता हूं । क्योंकि पुत्रवधू को जिस स्थान पर बैठना चाहिए, उसी स्थान पर आकर तुम बैठी हो ॥११॥

स्त्री बोली—धर्मज्ञ,जैसा आप कहते हैं,वही ठीक है। मैं आपके पुत्र के साथ ही सम्बन्ध करूँगी । मेरी आप में भक्ति है, इस कारण मैं भरत-कुल की सेवा करना चाहती हूँ ॥१२॥ पृथिवी के समस्त राजाओं के रक्षक आप ही हैं । आपके गुणों का वर्णन मैं सौ वर्षों में भी नहीं कर सकती ॥१३॥ आपके कुल में जो प्रसिद्ध राजा हो चुके हैं, वे सज्जन और श्रेष्ठ थे । मैं आपकी

तत्सर्वमेव पुत्रस्ते न मीमांसेत कर्हिचित् । एवं वसन्ती पुत्रे ते वर्धयिष्याम्यहं रतिम् ॥१५॥
पुत्रैः पुण्यैः प्रियैश्चैव स्वर्गं प्राप्स्यति ते सुतः । वैशम्पायन उवाच
तथेत्युक्त्वा तु सा राजंस्तत्रैवांतरधीयत ॥१६॥
पुत्रजन्म प्रतीक्षन्वै स राजा तदधारयत् । एतस्मिन्नेव काले तु प्रतीपः क्षत्रियर्षभः ॥१७॥
तपस्तेपे सुतस्यार्थे सभार्यः कुरुनन्दन । तयोः समभवत्पुत्रो वृद्धयोः स महाभिषक् ॥१८॥
शान्तस्य जज्ञे संतानस्तस्मादासीत्स शान्तनुः । संस्मरंश्चाक्षयाँल्लोकान्विजातान्स्वेन कर्मणा१९
पुण्यकर्मकृदेवासीच्छांतनुः कुरु सत्तमः । प्रतीपः शान्तनुं पुत्र यौवनस्थं ततोऽन्वशात् ॥२०॥
पुरा स्त्री मां समभ्यागाच्छांतनो भूतये तव । त्वामाव्रजेद्यदि रहः सा पुत्र वरवर्णिनी ॥२१॥
कामयानाऽभिरूपाढ्या दिव्य स्त्री पुत्रकाम्यया । सा त्वया नानुयोक्तव्या काऽसि कस्यासिचांगने
यच्च कुर्यान्न तत्कर्म सा प्रष्टव्यात्वयाऽनघ । मन्नियोगाद्भजंतीं तां भजेथा इत्युवाच तम् ॥२३॥
वैशम्पायन उवाच
एवं संदिश्य तनयं प्रतीपः शान्तनुं तदा । स्वे च राज्येऽभिषिच्यैनं वनं राजा विवेश ह ॥२४॥
स राजा शान्तनुर्धीमान्देवराजसमद्युतिः । बभूव मृगयाशीलः सततं वन गोचरः ॥२५॥

आज्ञा का पालन एक शर्त के साथ करूँगी । मैं चाहे जो करूँ, आपके पुत्र उसका विचार न कर, सकेंगे, वे मुझे रोक नहीं सकेंगे । इस प्रकार रहने से मैं आपके पुत्र को प्रसन्न रख सकूँगी ॥१४॥ १५॥ उनके प्रिय काम मैं करूँगी, उनका पुण्य बढ़ाऊँगी, उनके पुत्र उत्पन्न करूँगी और अन्त में आप के पुत्र स्वर्गगामी होंगे । वैशम्पायन बोले—राजन्, राजा प्रतीप से ऐसा कहकर गङ्गा वहीं अन्तर्धान हो गयीं, वहाँ से चली गयीं ॥१६॥

राजा प्रतीप पुत्र होने की प्रतीक्षा करने लगे, पर गङ्गा की बात उनके मन में जमी रही । इसी समय क्षत्रिय-श्रेष्ठ प्रतीप अपनी स्त्री के साथ, पुत्र के लिए, तपस्या करने लगे । उन वृद्ध स्त्री-पुरुषों के यहाँ पुत्र-रूप में वही महाभिष उत्पन्न हुए ॥१७,१८॥ राजा प्रतीप का वंश शान्त—समाप्त—हो गया था, उसको बढ़ाने के लिए यह पुत्र हुआ, इस कारण इसका नाम शान्तनु पड़ा ! शान्तनु को अपने पूर्वकर्मों के कारण वश में आये लोकों का स्मरण था, अतएव वे सदा पुण्य-कर्म ही करते थे । जब वे युवा हुए, तब पिता राजा ने उनसे इस प्रकार कहा ॥१९,२०॥ शान्तन, पहले एक स्त्री तुम्हारी भलाई के ख्याल से मेरे पास आयी थी । पुत्र, वह सुन्दरी यदि एकान्त में तुमसे मिले, वह सुन्दरी दिव्य स्त्री प्रणय प्रकट करके तुमसे पुत्र की याचना करे, तो तुम उसका परिचय न पूछना ॥२१,२२॥ वह जो काम करे, उसके सम्बन्ध में भी तुम उससे कुछ न पूछना । वह तुमसे प्रेम करेगी, तुम भी मेरी आज्ञा से उससे प्रेम करना । राजा ने अपने पुत्र से ये बातें कहीं ॥२३॥

वैशम्पायन बोले— राजा प्रतीप इस प्रकार अपने पुत्र शान्तनु को सिखाकर तथा राज्य पर उनका अभिषेक कर, स्वयं वन में चले गये ॥२४॥

इन्द्र के समान द्युतिमान, राजा शान्तनु मृगया-प्रेमी थे, वे सदा वन में रहा करते

स मृगान्महिषांश्चैव विनिघ्नन् राजसत्तमः। गङ्गामनु चचारैकः सिद्धचारणसेविताम् ॥२६॥
स कदाचिन्महाराज ददर्श परमां स्त्रियम्। जाज्वल्यमानां वपुषा साक्षाच्छ्रियमिवापराम् ॥२७॥
सर्वानवद्यां सुदतीं दिव्याभरणभूषिताम्। सूक्ष्माम्बरधरामेकां पद्मोदरसमप्रभाम् ॥२८॥
तां दृष्ट्वा हृष्टरोमाऽभूद्विस्मितो रूपसंपदा। पिबन्निव च नेत्राभ्यां नातृप्यत नराधिपः ॥२९॥
सा च दृष्ट्वैव राजानं विचरन्तं महाद्युतिम्। स्नेहादागतसौहार्दा नातृप्यत विलासिनी ॥३०॥
तामुवाच ततो राजा सांत्वयन् श्लक्ष्णया गिरा। देवी वा दानवी वा त्वं गंधर्वी चाथवाऽप्सराः ३१
यक्षी वा पन्नगी वाऽपि मानुषी वा सुमध्यमे। याचे त्वां सुरगर्भाभे भार्या मे भव शोभने ३२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शांतनूपाख्याने सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञः सस्मितं मृदु वल्गु च। वसूनां समयं स्मृत्वाऽथाभ्यगच्छदनिन्दिता ॥१॥
उवाच चैव राज्ञः सा ह्लादयन्ती मनो गिरा। भविष्यामि महीपाल महिषी ते वशानुगा ॥२॥

थे ॥२५॥ मृगों और भैंसों का शिकार करके वे राजश्रेष्ठ एक दिन गङ्गा-तीर की ओर चले गये, जहाँ सिद्ध, चारण आदि रहा करते थे ॥२६॥ वहाँ राजा शान्तनु ने एक सुन्दरी स्त्री देखी, जिसका शरीर प्रभा से दमक रहा था, वह दूसरी लक्ष्मी के समान मालूम पड़ती थी ॥२७॥ वह सर्वाङ्ग सुन्दरी थी, उसके दाँत सुन्दर थे, वह दिव्य आभरणों से भूषित थी, पतला वस्त्र धारण किये हुए थी, कमल-गर्भ के समान उसका वर्ण था, वह अकेली थी ॥२८॥ उसको देखने से राजा को रोमाञ्च हो आया, उसके रूप से राजा को विस्मय हुआ। नेत्रों से उसके रूप का पान करके राजा तृप्त न हुए ॥२९॥ वह सुन्दरी भी घूमते हुए द्युतिमान राजा को देखकर स्नेह से अनुरक्त हो गयी, उनको देखने से वह भी तृप्त न हुई ॥३०॥ राजा शान्तनु मधुर वचनों से उसको धैर्य देते हुए बोले—तुम देवी, हो दानवी हो, गन्धर्वी हो, अप्सरा हो, यक्षी हो, नागी हो अथवा मानुषी हो, सुमध्यमे, इनमें से तुम कौन हो? शोभने, अपनी स्त्री बनने के लिए मैं तुम से प्रार्थना करता हूँ ॥३१,३२॥

सप्तनवतितम अध्याय।

शान्तनु और गङ्गा का विवाह, गङ्गा का अपने सात पुत्रों का जन्मते ही वध करना, आठवें पुत्र को मारने जाती गङ्गा से शान्तनु के प्रश्न, गङ्गा का अपने पुत्रों के पूर्व-जन्म का वृत्तान्त कहना।

वैशम्पायन बोले—राजा शान्तनु का सस्मित, मृदु और मधुर वचन सुनकर तथा वसुओं के साथ की अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर, वह सुन्दरी राजा के पास गयी और उनसे

यत्तु कुर्यामहं राजन् शुभं वा यदि वाऽशुभम् । न तद्वारयितव्याऽस्मि न वक्तव्या तथाऽप्रियम् ॥३॥
एवं हि वर्तमानेऽहं त्वयि वत्स्यामि पार्थिव । वारिता विप्रियं चोक्ता त्यजेयं त्वामसंशयम् ॥४॥
तथेति सा यदा तूक्ता तदा भरतसत्तम । प्रहर्षमतुलं लेभे प्राप्य तं पार्थिवोत्तमम् ॥ ५ ॥
आसाद्य शान्तनुस्तां च बुभुजे कामतो वशी । न प्रष्टव्येति मन्वानो न स तां किंचिदूचिवान् ॥६॥
स तस्याः शीलवृत्तेन रूपौदार्यगुणेन च । उपचारेण च रहस्तुतोष जगतीपतिः ॥ ७ ॥
दिव्यरूपा हि सा देवी गंगा त्रिपथगामिनी । मानुषं विग्रहं कृत्वा श्रीमन्तं वरवर्णिनी ॥ ८ ॥
भाग्योपनतकामस्य भार्या चोपनताऽभवत् । शान्तनोर्नृपसिंहस्य देवराजसमद्युतेः ॥ ९ ॥
संभोग स्नेह चातुर्यैर्हावलास्यैर्मनोहरैः । राजानं रमयामास यथा रेमे तथैव सः ॥१०॥
स राजा रतिसक्तत्वादुत्तम स्त्री गुणैर्हृतः । संवत्सरानृतून्मासान् बुबुधेन बहून्गतान् ॥११॥
रममाणस्तया सार्धं यथाकामं नरेश्वरः । अ ावजनयत्पुत्रांस्तस्मादमरसन्निभान् ॥१२॥
जातं जातं च सा पुत्रं क्षिपत्यम्भसि भारत। प्रीणाम्यहं त्वामित्युक्त्वा गङ्गास्रोतस्यमज्जयत् ॥१३॥
तस्य तन्न प्रियं राज्ञः शान्तनोरभवत्तदा । न च तां किंचनोवाच त्यागाद्भीतो महीपतिः ॥१४॥

बोली, उसके वचन से मन प्रसन्न होता था, उसने कहा—महाराज, मैं आपकी रानी होऊँगी और आपके अधीन रहूँगी ॥१२॥ राजन्, चाहे मैं जो करूँ, अच्छा या बुरा, प्रिय या अप्रिय, आप मुझे रोकेंगे नहीं और न मुझसे कोई कड़ी बात कहेंगे ॥३॥ यदि आप ऐसा बर्ताव मेरे साथ करेंगे तो मैं आपके यहाँ रहूँगी। जब आप मुझे रोकेंगे या कोई कड़ी बात कहेंगे, तब मैं आपको छोड़ दूँगी, आपके यहाँ से चली जाऊँगी ॥४॥ जब राजा ने गङ्गा की प्रार्थना स्वीकार की, तब वह बहुत प्रसन्न हुई, और उसने राजा को पति-रूप में पाया ॥५॥ वशी राजा शान्तनु ने भी उस सुन्दरी को पाया और इच्छानुसार उसका उपभोग किया। इससे कुछ पूछना नहीं चाहिए, इस लिए इन्होंने उससे कुछ भी नहीं पूछा। उसके किसी काम में उन्होंने दखल नहीं दिया ॥६॥ वह सुन्दरी भी अपने शील, चरित्र, रूप, औदार्य तथा एकान्त में सेवा के द्वारा राजा को प्रसन्न रखती थी। राजा भी उस पर प्रसन्न थे ॥७॥ त्रिपथगामिनी गङ्गादेवी मनुष्य का सुन्दर रूप धरकर इन्द्र के समान द्युतिमान राजसिंह शान्तनु की स्त्री हुई। भाग्य से ही शान्तनु का यह मनोरथ पूरा हुआ था ॥८,९॥ गङ्गादेवी संभोग, स्नेह, चतुरता, हावभाव, मनोहर विलास से राजा को प्रसन्न रखती थीं और राजा भी उसके साथ रमण करके प्रसन्न होते थे ॥१०॥ उस उत्तम स्त्री के गुणों से उस पर आकृष्ट हो गये थे, उसके प्रणय में वे आसक्त थे. अतएव कितने मास-ऋतु और वर्ष बीत गये, इसका पता राजा को न लगा ॥११॥

उस सुन्दरी के साथ इच्छानुसार रमण करते हुए, राजा ने देव-तुल्य आठ कुमार उत्पन्न किये ॥१२॥ उत्पन्न होते ही पुत्रों को वह गङ्गा के जल में फेंक देती थी और राजा से कहती थी कि मैं आपको प्रसन्न करूँगी ॥१३॥ गङ्गा का यह कार्य राजा शान्तनु को प्रिय न था, पर राजा उससे कुछ बोल न सके, क्योंकि उसके छोड़कर चले जाने के डर से वे डरते थे ॥१५॥ आठवें पुत्र

अथैनामष्टमे पुत्रे जाते प्रहसतीमिव । उवाच राजा दुःखार्त्तः परीप्सन्पुत्रमात्मनः ॥१५॥
मावधीः कस्य काऽसीति किं हिनस्सि सुतानिति । पुत्रघ्नि सुमहत्पापं संप्राप्तं ते सुगर्हितम्॥१६॥
स्त्र्युवाच
पुत्रकाम न ते हन्मि पुत्रं पुत्रवतां वर । जीर्णस्तु मम वासोऽयं यथा स समयः कृतः ॥१७॥
अहं गङ्गा जन्हुसुता महर्षिगणसेविता । देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमुषिताहं त्वया सह ॥१८॥
इमेऽष्टौ वसवो देवा महाभागा महौजसः । वसिष्ठ शाप दोषेण मानुषत्वमुपागताः ॥१९॥
तेषां जनयिता नान्यस्त्वदृते भुवि विद्यते । मद्विधा मानुषी धात्री लोके नास्तीह काचन ॥२०॥
तस्मात्तज्जननीहेतोर्मानुषत्वमुपागता । जनयित्वा वसूनष्टौ जिता लोकास्त्वयाऽक्षयाः ॥२१॥
देवानां समयस्त्वेष वसूनां संश्रुतो मया । जातं जातं मोक्षयिष्ये जन्मतो मानुषादिति ॥२२॥
तत्ते शापाद्विनिर्मुक्ता आपवस्य महात्मनः । स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि पुत्रं पाहि महाव्रतम् ॥२३॥
एष पर्यायवासो मे वसूनां सन्निधौ कृतः । मत्प्रसूतिं विजानीहि गङ्गादत्तमिमं सुतम् ॥२४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि भीष्मोत्पत्तावष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

के होने पर राजा बहुत दुःखी हुए। वे अपने इस पुत्र की रक्षा चाहते थे। उस समय गङ्गादेवी हँस रही थीं। राजा ने कहा - इसको न मारना। तू किसकी कन्या है? तेरा क्या नाम है? इन लड़कों को क्यों मार रही हो? पुत्रघातिनी, तुमने पुत्रों को मारकर बड़ा ही निन्दित पाप किया है ॥१५,१६॥

स्त्री बोली—पुत्रेच्छु, मैं तुम्हारे पुत्र को नहीं मारती। अब मेरा यहाँ का रहना समाप्त हुआ, क्योंकि मैंने यही आपसे प्रतिज्ञा की थी ॥१६॥ मैं जन्हु-पुत्री गङ्गा हूँ, जिसकी सेवा महर्षिगण करते हैं। देवताओं की कार्य-सिद्धि के लिए मैंने आपके साथ निवास किया है, आपकी स्त्री बनकर रही हूँ ॥१८॥ ये आठो महाभाग तेजस्वी आठ वसु हैं। वसिष्ठ के शाप से ये मनुष्य हो गये थे ॥१६॥ उनको जन्म देने वाला तुम्हारे अतिरिक्त मर्त्य लोक में दूसरा नहीं था, और न मेरे समान उनका पालन-पोषण करनेवाली दूसरी धात्री थी ॥२०॥ अतएव उन लोगों की माता बनने के लिए मुझे मनुष्य शरीर धारण करना पड़ा, अष्ट वसुओं को जन्म देकर तुमने अक्षय लोकों को अपने अधिकार में कर लिया ॥२१॥ वसु देवों ने हमसे यह प्रतिज्ञा करायी थी कि मनुष्य-जन्म लेने के बाद ही मैं तुम लोगों को मुक्त कर दूँगी, तुम लोगों को मार डालूँगी ॥२२॥ वे महात्मा आपव (वसिष्ठ) के शापसे मुक्त हो गये। तुम्हारा कल्याण हो, मैं जाती हूँ। अब तुम महाव्रतधारी अपने पुत्र का पालन करो ॥२३॥ मैंने वसुओं से तुम्हारे इस पुत्र के लिए प्रार्थना की थी और यह पुत्र उन्हीं के अंश से उत्पन्न हुआ है। यह मेरा पुत्र है, इसे आप गङ्गा का दिया हुआ समझिएगा ॥२४॥

अष्टनवतितम अध्याय।

शान्तनुरुवाच

आपवो नाम कोन्वेष वसूनां किं च दुष्कृतम् । यस्याभिशापात्ते सर्वे मानुषीं योनिमागताः ॥१॥
अनेन च कुमारेण त्वया दत्तेन किं कृतम् । यस्य चैव कृतेनायं मानुषेषु निवत्स्यति ॥ २ ॥
ईशा वै सर्वलोकस्य वसवस्ते च वै कथम् । मानुषेषूदपद्यन्त तन्ममाचक्ष्व जान्हवि ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता तदा गङ्गा राजानमिदमब्रवीत् । भर्तारं जान्हवी देवी शान्तनुं पुरुषर्षभ ॥ ४ ॥

गङ्गोवाच

यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भरतसत्तम । वसिष्ठनामा स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ॥ ५ ॥
तस्याश्रमपदं पुण्यं मृगपक्षिसमन्वितम् । मेरोः पार्श्वे नगेन्द्रस्य सर्वर्तुकुसुमावृतम् ॥ ६ ॥
स वारुणिस्तपस्तेपे तस्मिन्भरतसत्तम । वने पुण्यकृतां श्रेष्ठः स्वादुमूलफलोदके ॥ ७ ॥
दक्षस्य दुहिता या तु सुरभीत्यभिशब्दिता । गां प्रजाता तु सा देवी कश्यपाद्भरतर्षभ ॥ ८ ॥
अनुग्रहार्थं जगतः सर्वकामदुहां वराम् । तां लेभे गां तु धर्मात्मा होमधेनुं स वारुणिः ॥ ९ ॥
सा तस्मिंस्तापसारण्ये वसन्ती मुनिसेविते । चचार पण्ये रम्ये च गौरपेतभया तदा ॥१०॥
अथ तद्वनमाजग्मुः कदाचिद्भरतर्षभ । पृथ्वाद्या वसवः सर्वे देवा देवर्षिसेवितम् ॥११॥
ते सदारा वनं तच्च व्यचरन्त समन्ततः । रेमिरे रमणीयेषु पर्वतेषु वनेषु च ॥१२॥

वसुओं को वशिष्ठ का शाप, गङ्गा का निज-लोक गमन ।

शान्तनु बोले—यह आपव कौन हैं ? वसुओं का कौन सा अपराध था, जिस कारण शाप से उन्हें मनुष्य योनि में आना पड़ा ? ॥१॥ तुम्हारे दिये हुए इस कुमार ने क्या अपराध किया है ? जिसके कारण इसे मनुष्य-लोक में रहना पड़ेगा ? ॥२॥ वसुगण लोकों के स्वामी हैं, उनको मनुष्य-लोक में क्यों जन्म लेना पड़ा, जान्हवि, यह सब तुम मुझसे कहो ॥३॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार पूछने पर जन्हु-नन्दिनी गङ्गादेवी, अपने पति राजा शान्तनु से इस प्रकार बोलीं ॥४॥

गङ्गा बोलीं—वरुण के जो पुत्र हैं, जिनका नाम वसिष्ठ है, वे ही मुनि आपव कहे जाते हैं ॥५॥ उनका पवित्र आश्रम पर्वतराज मेरु के पास है। वहाँ पशुपक्षी बने रहते हैं, तथा सब ऋतुओं में वहाँ के वृक्ष पुष्पित होते हैं ॥६॥ पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ, उस वरुण-पुत्र ने उस बन में तपस्या की, क्योंकि वहाँ स्वादिष्ट फल-मूल और जल उपलब्ध होता है ॥७॥ प्रजापति दक्ष की कन्या ने जिसका नाम सुरभी है, महर्षि कश्यप द्वारा संसार के कल्याण के लिए गौ उत्पन्न की, जो कामधेनुओं में श्रेष्ठ थी, उस गौ को उन वरुण-पुत्र वशिष्ठ ने होम आदि के लिए लिया ॥८, ९॥ तपस्वी मुनियों के उस पवित्र और रमणीय बन में वह गौ निर्भय होकर विचरती थी ॥१०॥ भरतश्रेष्ठ, एक बार देवर्षि-सेवित उस बन में पृथु आदि वसुगण आये ॥११॥ वे उस बन में

तत्रैकस्याथ भार्या तु वसोर्वासवविक्रम । संचरन्ती वने तस्मिन्गां ददर्श सुमध्यमा ॥१३॥
नन्दिनीं नाम राजेन्द्र सर्वकामधुगुत्तमाम् । सा विस्मयसमाविष्टा शीलद्रविणसम्पदा ॥१४॥
द्यवे वै दर्शयामास तां गां गोवृषभेक्षण । आपीनां च सुदोग्ध्रीं च सुवालधिखुरां शुभाम् ॥१५॥
उपपन्नां गुणैः सर्वैः शीलेनानुत्तमेन च । एवंगुणसमायुक्तां वसवे वसुनन्दिनी ॥१६॥
दर्शयामास राजेन्द्र पुरा पौरवनन्दन । द्यौस्तदा तां तु दृष्ट्वैव गां गजेन्द्रेन्द्रविक्रम ॥१७॥
उवाच राजंस्तां देवीं तस्या रूपगुणान्वदन् । एषा गौरुत्तमा देवी वारुणेरसितेक्षणा ॥१८॥
ऋषेस्तस्य वरारोहे यस्येदं वनमुत्तमम् । अस्याः क्षीरं पिबेन्मर्त्यः स्वादु यो वै सुमध्यमे ॥१९॥
दशवर्षसहस्राणि स जीवेत्स्थिरयौवनः । एतच्छ्रुत्वा तु सा देवी नृपोत्तम सुमध्यमा ॥२०॥
तमुवाचानवद्याङ्गी भर्तारं दीप्ततेजसम् । अस्ति मे मानुषे लोके नरदेवात्मजा सखी ॥२१॥
नाम्नाजितवती नाम रूपयौवनशालिनी । उशीनरस्य राजर्षेः सत्यसन्धस्य धीमतः ॥२२॥
दुहिता प्रथिता लोके मानुषे रूपसम्पदा । तस्या हेतोर्महाभाग सवत्सां गां ममेप्सिताम् ॥२३॥
आनयस्वामरश्रेष्ठ त्वरितं पुण्यवर्धन । यावदस्याः पयः पीत्वा सा सखी मम मानद ॥२४॥
मानुषेषु भवत्वेका जरारोगविवर्जिता । एतन्मम महाभाग कर्तुमर्हस्यनिन्दित ॥२५॥
प्रियं प्रियतरं ह्यस्मान्नास्ति मेऽन्यत्कथंचन । एतच्छ्रुत्वावचस्तस्या देव्याः प्रियचिकीर्षया ॥२६॥

अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ चारों ओर भ्रमण करने लगे और रमणीय पर्वत तथा वन-प्रदेश में वे रमण करने लगे ॥१२॥ इन्द्र-विक्रम, उन वसुओं में से एक वसु की युवती स्त्री उस वन में घूम रही थी, उसने सब कामधेनुओं से श्रेष्ठ उस नन्दिनी नामकी गौ को देखा। उसका शील-सौन्दर्य देखकर वह विस्मित हो गयी। वसु की उस स्त्री ने द्यौ नामक वसुको वह गौ दिखायी, जिसके थन बड़े थे, जो बहुत दूध देने वाली थी, जिसकी पूँछ और खुर सुन्दर थे। गौ के सब उत्तम लक्षण उसमें थे, तथा बड़ी सीधी थी। ऐसी गौ उसने द्यौ नामक वसु को पहले दिखायी थी। उस गौ को देखकर द्यौ ने उसके रूप-गुण की प्रशंसा की और उसने कहा कि असितेक्षणे, यह उत्तम गौ वरुण-पुत्र वसिष्ठ की है। यह उन्हीं ऋषि की है,जिनका यह वन है। सुन्दरि, इस गौ का मधुर दूध जो मनुष्य पीता है, वह दस हजार वर्ष जीता है और उसकी युवा अवस्था स्थिर रहती है। राजश्रेष्ठ, उस सर्वाङ्ग सुन्दरी देवी ने तेजस्वी अपने पति से कहा—मर्त्यलोक में एक राजकुमारी मेरी सखी है ॥१३—२१॥ जितवती उसका नाम है, वह रूपवती और युवती है। सत्यप्रतिज्ञ, बुद्धिमान् राजा उशीनर की वह कन्या है। मनुष्य-लोक में उसके रूप की प्रशंसा है। उसके लिए इस बच्छेवाली गौ को मैं चाहती हूँ। हे पुण्यवर्धन देवश्रेष्ठ, उसे आप ले आवें। मानद, जिससे इसका दूध पीकर मेरी एक सखी मर्त्यलोक में जरा और रोग से रहित होकर रहे। महाभाग,अनिन्दित, आप मेरे लिये यह करें ॥२२-२५॥ यह मुझे अत्यन्त प्रिय है, इससे बढ़कर दूसरा प्रिय नहीं है। उस देवी के ये वचन सुनकर उसे प्रसन्न करने के लिए पृथु आदि अपने भाइयों की सहायता से द्यौ ने उस गौ को हर लिया। उस कमलनयनी स्त्री के कहने से उन्होंने उस गौ का

पृथ्वाद्यैर्भ्रातृभिः सार्धं द्यौस्तदा तां जहार गाम् । तया कमलपत्राक्ष्या नियुक्तो द्यौस्तदा नृप ॥२७॥
ऋषेस्तस्य तपस्तीव्रं न शशाक निरीक्षितुम् । हृता गौः सा तदा तेन प्रपातस्तु न तर्कितः ॥२८॥
अथाश्रमपदं प्राप्तः फलान्यादाय वारुणिः । न चापश्यत्स गां तत्र सवत्सां काननोत्तमे ॥२९॥
ततः स मृगयामास वने तस्मिंस्तपोधनः । नाध्यगच्छच्च मृगयंस्तां गां मुनिरुदारधीः ॥३०॥
ज्ञात्वा तथाऽपनीतां तां वसुभिर्दिव्यदर्शनः । ययौ क्रोधवशं सद्यः शशाप च वसूंस्तदा ॥३१॥
यस्मान्मे वसवो जन्हुर्गां वै दोग्ध्रीं सुवालधिम् । तस्मात्सर्वे जनिष्यन्ति मानुषेषु न संशयः ॥३२॥
एवं शशाप भगवान्वसूंस्तान्भरतर्षभ । वंशक्रोधस्य संप्राप्त आपवो मुनिसत्तमः ॥३३॥
शप्त्वा च तान्महाभागस्तपस्येव मनोदधे । एवं स शप्तवान् राजन्वसूनष्टौ तपोधनः ॥३४॥
महाप्रभावो ब्रह्मर्षिर्देवान् क्रोध समन्वितः । अथाश्रम पदं प्राप्तास्ते वै भूयो महात्मनः ॥३५॥
शप्ताः स्म इति जानन्त ऋषिं तमुपचक्रमुः । प्रसादयन्तस्तमृषिं वसवः पार्थिवर्षभ ॥३६॥
लेभिरे न च तस्मात्ते प्रसादमृषिसत्तमात् । आपवात्पुरुषव्याघ्र सर्वधर्मविशारदात् ॥३७॥
उवाच च स धर्मात्मा शप्ता यूयं धरादयः । अनुसंवत्सरात्सर्वे शापमोक्षमवाप्स्यथ ॥३८॥
अयं तु यत्कृते यूयं मया शप्ताः स वत्स्यति । द्यौस्तदा मानुषे लोके दीर्घ कालं स्वकर्मणः ॥३९॥
नानृतं तच्चिकीर्षामि क्रुद्धो युष्मान्यदब्रुवम् । न प्रजास्यति चाप्येष मानुषेषु महामनाः ॥४०॥

हरण किया । उस समय उन्हें ऋषि की तीव्र तपस्या की ओर ध्यान देने का अवसर न मिला । उस समय उन्होंने गौ का तो हरण कर लिया, पर इस कारण स्वर्ग भ्रष्ट होना होगा, इस ओर उन्होंने ध्यान न दिया ॥२६—२८॥

महर्षि वसिष्ठ अपने आश्रम में फल लेकर आये । वहाँ उन्होंने अपनी गौ और उसके बच्छे को नहीं देखा ॥२९॥ तपोधन मुनि ने उस वन में गौ को ढूँढ़ा । पर उदारबुद्धि मुनि ने ढूँढ़कर भी अपनी गौ नहीं पायी ॥३०॥ दिव्यदृष्टि मुनि ने जान लिया कि गौ को वसु ले गये । मुनि को इससे बड़ा क्रोध आया और उन्होंने वसुओं को शाप दिया ॥३१॥ वसु मेरी दुधार और अच्छी पूँछवाली गौ ले गये हैं, अतएव उनको मनुष्य-योनि में जन्म लेना पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥३२॥ ऋषि-श्रेष्ठ आपव बड़े क्रुद्ध हो गये थे, अतएव उन्होंने वसुओं को इस प्रकार शाप दिया था ॥३३॥ शाप देकर वे महर्षि पुनः तपस्या करने लगे । राजन्, इस प्रकार आठों वसुओं को मुनि ने शाप दिया था । उन ब्रह्मर्षि का बड़ा प्रभाव है, अतएव क्रोध करके उन्होंने देवताओं को भी शाप दिया । अनन्तर वे वसु उन महात्मा के आश्रम पर आये ॥३४,३५॥ हमलोगों को शाप दिया गया है, यह जान कर वे ऋषि के पास आये थे, वे वसु ऋषि को प्रसन्न करना चाहते थे ॥३६॥ पर सर्व-धर्म-विशारद उस ऋषि-श्रेष्ठ आपव को वे प्रसन्न न कर सके ॥३७॥ धर्मात्मा ऋषि उनसे बोले—धर आदि सब वसुओं को मैंने शाप दिया है, यह शाप एक वर्ष के भीतर छूट जायगा ॥३८॥ पर इस द्यौ को, जिसके कारण आपलोगों को मैंने शाप दिया है, बहुत दिनों तक अपने कर्मों के कारण मर्त्य लोक में रहना पड़ेगा ॥३९॥ मैंने क्रोध करके तुमलोगों के लिये जो

भविष्यति च धर्मात्मा सर्व शास्त्र विशारदः । पितुः प्रियहिते युक्तः स्त्रीभोगान्वर्जयिष्यति ॥४१॥
एवमुक्त्वा वसून्सर्वान् सजगाम महानृषिः । ततो मामुपजग्मुस्ते समेता वसवस्तदा ॥४२॥
अयाचन्त च मां राजन्वरं तच्च मया कृतम् । जाताञ्जातान्क्षिपास्मान्स्वयं गंगेत्वमम्भसि ॥४३॥
एवं तेषामहं सम्यक् शप्तानां राजसत्तम । मोक्षार्थं मानुषाल्लोकाद्यथावत्कृतवत्यहम् ॥४४॥
अयं शापादृषेस्तस्य एक एव नृपोत्तम । द्यौ राजन्मानुषे लोके चिरं वत्स्यति भारत ॥४५॥
वैशम्पायन उवाच
एतदाख्याय सा देवी तत्रैवान्तरधीयत । आदाय च कुमारं तं जगामाथ यथेप्सितम् ॥४६॥
स तु देवव्रतो नाम गांगेय इति चाभवत् । द्युनामा शान्तनोः पुत्रः शान्तनोरधिको गुणः ॥४७॥
शान्तनुश्चापिशोकार्तो जगाम स्वपुरं ततः । तस्याहं कीर्तयिष्यामि शान्तनोरधिकान्गुणान् ॥४८॥
महाभाग्यं च नृपतेर्भारतस्य महात्मनः । यस्येतिहासो द्युतिमान्महाभारतमुच्यते ॥४९॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि आपवोपाख्याने नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥

कहा है, उसे असत्य करना नहीं चाहता, यह महामना द्यौ मनुष्य-लोक में पुत्र उत्पन्न न करेगा ॥४०॥ यह सब शास्त्रों का ज्ञाता और धर्मात्मा होगा। यह पिता का हित करने के लिये स्त्री-सङ्ग का त्याग करेगा ॥४१॥ वसुओं से इस प्रकार कहकर वे ऋषि वहाँ से चले गये। अनन्तर वे सब वसु एक साथ मेरे (गङ्गा के) यहाँ आये ॥४२॥ उन लोगों ने मुझसे वर माँगा और मैंने उन्हें वर दिया। गङ्गे, उत्पन्न होते ही तुम हमलोगों को स्वयं गङ्गा में फेंक देना ॥४३॥ राजश्रेष्ठ, शाप प्राप्त उन वसुओं के उद्धार के लिए मैंने यह सब किया है ॥४४॥ नृपोत्तम, उन ऋषि के शाप से यह एक द्यौ बहुत दिनों तक मर्त्यलोक में वास करेगा ॥४५॥

वैशम्पायन बोले—यह कथा सुनाकर देवी गङ्गा वहीं अन्तर्धान होगयीं, वहाँ से चली गयीं। कुमार को लेकर राजा भी अपने इच्छित स्थान को गये ॥४६॥ राजा शान्तनु के पुत्र द्यौ नामक वसु का नाम देवव्रत और गाङ्गेय रखा गया। वह अपने पिता शान्तनु से अधिक गुणी था ॥४७॥ शोक-पीड़ित शान्तनु भी अपने नगर में गये। इनके उत्तम गुणों का मैं वर्णन करूँगा ॥४८॥ मैं उस भरतवंशी महात्मा राजा के ऐश्वर्य का भी वर्णन करूँगा, जिसका प्रकाशमान् इतिहास महाभारत कहा जाता है ॥४९॥

नवनवतितम अध्याय।

वैशम्पायन उवाच

स राजा शान्तनुर्धीमान् देवराजर्षि सत्कृतः । धर्मात्मा सर्वलोकेषु सत्यवागिति विश्रुतः ॥१॥
दमो दानं क्षमा बुद्धिर्ह्रीर्धृतिस्तेज उत्तमम् । नित्यान्यासन्महासत्वे शान्तनौ पुरुषर्षभे ॥२॥
एवं स गुण सम्पन्नो धर्मार्थकुशलोनृपः । आसीद्भरतवंशस्य गोप्ता सर्वजनस्य च ॥३॥
कम्बुग्रीवः पृथुव्यंसो मत्तवारणविक्रमः । अन्वितः परिपूर्णार्थैः सर्वैर्नृपतिलक्षणैः ॥४॥
तस्य कीर्तिमतो वृत्तमवेक्ष्य सततं नराः । धर्म एव परः कामादर्थाच्चेति व्यवस्थिताः ॥५॥
एतान्यासन्महासत्वे शान्तनौ पुरुषर्षभे । न चास्य सदृशः कश्चिद्धर्मतः पार्थिवोऽभवत् ॥६॥
वर्तमानं हि धर्मेषु सर्वधर्मभृतां वरम् । तं महीप महीपालं राजराज्येऽभ्यषेचयन् ॥७॥
वीतशोकभया बाधाः सुखस्वप्नविबोधनाः । पतिं भारतगोप्तारं समपद्यन्त भूमिपाः ॥८॥
तेनकीर्तिमता शिष्टाः शक्रप्रतिमतेजसा । यज्ञदानक्रियाशीलाः समपद्यन्त भूमिपाः ॥९॥
शान्तनुप्रमुखैर्गुप्ते लोके नृपतिभिस्तदा । नियमात्सर्ववर्णानां धर्मोत्तरमवर्त्तत ॥१०॥
ब्रह्म पर्यचरत्क्षत्रं विशः क्षत्रमनुव्रताः । ब्रह्मक्षत्रानुरक्ताश्च शूद्राः पर्यचरन्विशः ॥११॥
स हास्तिनपुरे रम्ये कुरूणां पुटभेदने । वसन्त सागरपर्यंतामन्वशासद्वसुन्धराम् ॥१२॥

गङ्गा का भीष्मको शान्तनु के हाथों सौंपना; भीष्म का युवराज होना; सत्यवती और शान्तनु का विवाह ।

वैशम्पायन बोले—राजा शान्तनु बुद्धिमान् थे, धर्मात्मा और देवर्षि तथा राजर्षियों के द्वारा सम्मानित थे । उनके सत्यवादी होने की संसार में प्रसिद्धि थी ॥१॥ मनको वश में रखना, दान करना, क्षमा, बुद्धि, लज्जा, धैर्य और उत्तम तेज, ये सब पुरुष-श्रेष्ठ, महाबली, शान्तनु में स्वभाव-सिद्ध होगये थे ॥२॥ इस प्रकार के गुणी, धर्म और अर्थ में निपुण, राजा भरतवंश तथा समस्त प्रजा के रक्षक थे ॥३॥ राजा स्वयं भी बड़े सुन्दर थे, शंख के समान उनका गला था, मोटे कन्धे थे, मतवाले हाथी के समान वे पराक्रमी थे । उनमें सभी राज-लक्षण वर्तमान थे ॥४॥ कीर्तिमान् राजा के व्यवहार देखकर उनकी प्रजा, काम और अर्थ से धर्म को ही श्रेष्ठ समझती थी ॥५॥ पुरुषश्रेष्ठ राजा शान्तनु में ये सब श्रेष्ठ गुण वर्तमान थे । उस समय पृथिवी में कोई भी राजा इनके समान धर्मात्मा न था ॥६॥ इस प्रकार धर्माचरण करने वाले तथा समस्त धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राजा शान्तनु का अभिषेक चक्रवर्ती पद पर राजाओं ने किया ॥७॥ इनके चक्रवर्ती होने से राजाओं का शोक, भय तथा बाधा दूर हो गयीं, वे सुख की नींद सोने और जागने लगे । भरतवंश के रक्षक राजा शान्तनु को राजाओं ने अपना रक्षक पाया ॥८॥ इन्द्र के समान तेजस्वी, कीर्तिमान् राजा शान्तनु के द्वारा शासित होने से राजगण यज्ञ-दान आदि करने लगे ॥९॥ शान्तनु आदि राजाओं के द्वारा लोक के रक्षित होने पर सब वर्णों का धर्म, नियमपूर्वक दिनोंदिन बढ़ने लगा ॥१०॥ क्षत्रिय ब्राह्मणों का आदर करते थे, वैश्य क्षत्रियों के अनुयायी थे । शूद्र इन तीनों वर्णों की सेवा करते थे तथा इनके अनुयायी थे ॥११॥ वे राजा, कुरुओं की राजधानी रमणीय हस्तिनापुर में रहकर समुद्र पर्यन्त पृथिवी का शासन करते थे ॥१२॥

स देवराजसदृशो धर्मज्ञः सत्यवागृजुः। दानधर्मतपोयोगाच्छ्रिया परमया युतः ॥१३॥
अरागद्वेषसंयुक्तः सोमवत्प्रियदर्शनः। तेजसा सूर्यकल्पोऽभूद्वायुवेगसमो जवे।
अन्तकप्रतिमः कोपे क्षमया पृथिवीसमः ॥१४॥
वधः पशुवराहाणां तथैव मृगपक्षिणाम्। शान्तनौ पृथिवीपाले नावर्त्तत तथा नृप ॥१५॥
ब्रह्मधर्मोत्तरे राज्ये शान्तनुर्विनयात्मवान्। समं शशास भूतानि कामरागविवर्जितः ॥१६॥
देवर्षिपितृयज्ञार्थमारभ्यन्त तदा क्रियाः। न चाधर्मेण केषांचित्प्राणिनामभवद्वधः ॥१७॥
असुखानामनाथानां तिर्यग्योनिषु वर्त्तताम्। स एव राजा सर्वेषां भूतानामभवत्पिता ॥१८॥
तस्मिन्कुरुपतिश्रेष्ठे राजराजेश्वरे सति। श्रिता वागभवत्सत्यं दानधर्माश्रितं मनः ॥१९॥
स समाः षोडशाष्टौ च चतस्रोऽष्टौ तथाऽपराः। रतिमप्राप्नुवन्स्त्रीषु वभूव वनगोचरः ॥२०॥
तथारूपस्तथाचारस्तथावृत्तस्तथाश्रुतः। गाङ्गेयस्तस्य पुत्रोऽभून्नाम्ना देवव्रतो वसुः ॥२१॥
सर्वास्त्रेषु स निष्णातः पार्थिवेष्वितरेषु च। महावलो महासत्वो महावीर्यो महारथः ॥२२॥
स कदाचिन्मृगं विद्ध्वा गङ्गामनुसरन्नदीम्। भागीरथीमल्पजलां शान्तनुर्दृष्टवान्नृपः ॥२३॥
तां दृष्ट्वा चिन्तयामास शान्तनुः पुरुषर्षभः। स्यन्दते किंन्वियं नाद्य सरिच्छ्रेष्ठा यथापुरा ॥२४॥

इन्द्र-तुल्य वे राजा, धर्मात्मा, सत्यवादी और विनयी थे। दान, धर्म और तप करने के कारण उनकी शोभा बढ़ गयी थी ॥१३॥ उनमें राग-द्वेष न था, चन्द्रमा के समान वे सभी के प्रिय थे। वे सूर्य के समान तेजस्वी और वायु के समान वेगवान थे। यमराज के समान क्रोधी और पृथिवी के समान क्षमाशील थे ॥१४॥ राजा शान्तनु के राज्यकाल में पशु-पक्षियों का भी कोई बध नहीं करता था ॥१५॥ अहिंसा-प्रधान उस राज्य में विनयी और जितचित्त शान्तनु सब प्राणियों का शासन समान रूप से करते थे, क्योंकि उनका न तो कोई निजी अभिलाष था और न क्रोध ॥१६॥ उस समय यदि हिंसा आदि होती भी थी, तो देवता, ऋषि और पितरों के लिए। अधर्मपूर्वक किसी भी प्राणी का वध नहीं होता था ॥१७॥ रोगियों, अनाथों और पशु-पक्षी आदि समस्त प्राणियों के पिता वे राजा ही थे, वे ही उनके रक्षक थे ॥१८॥ कुरुश्रेष्ठ राजराजेश्वर शान्तनु के समय में, लोगों की वाणी सत्यपरायण और मन धर्मानुकूल होता था ॥१९॥ राजा शान्तनु ने इस प्रकार सोलह वर्ष बिताये। अनन्तर स्त्रियों में अनुराग न होने के कारण वे राजा वन में चले गये ॥२०॥

राजा शान्तनु के समान ही रूपवान्, आचारवान्, चरित्रवान् और विद्वान् देवव्रत नामक उनका पुत्र था। वह पूर्व का वसु, गङ्गा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था ॥२१॥ वह देवव्रत मन्त्र के द्वारा चलाये जाने वाले अस्त्रों, पार्थिव अन्य विविध शस्त्रों का ज्ञाता था। वह महाबली, पराक्रमी, और महारथ था ॥२२॥ एक बार राजा शान्तनु मृगों को मारकर गङ्गा-तीर से जा रहे थे। उस समय उन्होंने गङ्गा में बहुत थोड़ा जल देखा ॥२३॥ गङ्गा की यह दशा देखकर पुरुष-श्रेष्ठ शान्तनु विचार करने लगे कि इस बड़ी नदी में पहले के समान धारा क्यों नहीं बहती ? ॥२४॥ वे राजा

ततो निमित्तमन्विच्छन्ददर्श स महामनाः । कुमारं रूपसंपन्नं बृहन्तं चारु दर्शनम् ॥२५॥
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं यथा देवं पुरन्दरम् । कृत्स्नां गङ्गां समावृत्य शरैस्तीक्ष्णैरवस्थितम्॥२६॥
तां शरैराचितां दृष्ट्वा नदीं गङ्गांतदन्तिके । अभवद्विस्मितो राजा दृष्ट्वा कर्मातिमानुषम् ॥२७॥
जातमात्रं पुरा दृष्ट्वा तं पुत्रं शान्तनुस्तदा । नोपलेभे स्मृतिं धीमानभिज्ञातुं तमात्मजम् ॥२८॥
स तु तं पितरं दृष्ट्वा मोहयामास मायया । संमोह्य तु ततः क्षिप्रं तत्रैवान्तरधीयत ॥२९॥
तदद्भुतं ततो दृष्ट्वा तत्र राजा स शान्तनुः । शंकमानः सुतं गङ्गामब्रवीद्दर्शयेति ह ॥३०॥
दर्शयामास तं गङ्गाविभ्रतीरूपमुत्तमम् । गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ तं कुमारमलङ्कृतम् ॥३१॥
अलङ्कृतामाभरणैर्विरजोम्बर संवृताम् । दृष्टपूर्वामपि स तां नाभ्यजानात्स शान्तनुः ॥३२॥

गङ्गोवाच

यं पुत्रमष्टमं राजँस्त्वं पुरामय्यविन्दथाः । स चायं पुरुषव्याघ्र सर्वास्त्रविदनुत्तमः ॥३३॥
गृहाणेमं महाराज मया संवर्धितं सुतम् । आदाय पुरुषव्याघ्र नयस्वैनं गृहं विभो ॥३४॥
वेदानधिजगे साङ्गान्वसिष्ठादेष वीर्यवान् । कृतास्त्रः परमेष्वासो देवराजसमो युधि ॥३५॥
सुराणां संमतो नित्यमसुराणां च भारत । उशना वेद यच्छास्त्रमयं तद्वेद सर्वशः ॥३६॥

इसका कारण ढूँढ़ने लगे। उस समय उन्होंने एक सुन्दर कुमार को देखा, जिसका शरीर विशाल था और जो देखने में मनोहर था ॥२५॥ इन्द्रदेव के समान वह भी दिव्य अस्त्र छोड़ रहा था और तीखे बाणों से समूची गङ्गा को रोककर वह वहीं खड़ा था ॥२६॥ राजा ने देखा कि वह गङ्गा नदी बाणों से ढप गयी हैं, और एक लड़के के द्वारा यह मनुष्यों से न होनेवाला काम हुआ है, इससे उन्हें आश्चर्य हुआ ॥२७॥ यद्यपि वह बालक राजा का पुत्र था; पर उसे वे पहचान न सके, क्योंकि उत्पन्न होने के समय ही उन्होंने उसे देखा था, अतएव उसका उन्हें स्मरण न रहा ॥२८॥ उस बालक ने अपने पिता को पहचाना, पर उनसे अपना परिचय छिपाने के लिये वह वहीं छिप गया। उसने अवसर न दिया, जिससे राजा उसे पहचान सकें ॥२९॥ उस अद्भुत बालक को देखकर राजा के मन में कुछ सन्देह हुआ, अतएव उन्होंने अपनी स्त्री गङ्गा से पुत्र दिखाने को कहा ॥३०॥ मानवी का सुन्दर रूप धरकर गङ्गा ने अपना पुत्र राजा को दिखाया। उन्होंने अलंकृत पुत्र का दहिना हाथ पकड़कर राजा के आगे कर दिया ॥३१॥ स्वयं गङ्गा ने भी आभरण धारण किये थे, श्वेत वस्त्र वे पहने हुए थीं। यद्यपि वे राजा शान्तनु की पूर्व परिचित थीं, फिर भी उन्हें राजा इस समय नहीं पहचान सके ॥३२॥ गङ्गा बोली—महाराज! आपका जो आठवाँ पुत्र मुझसे हुआ था, वह यही है, यह समस्त अस्त्रों का ज्ञाता है और श्रेष्ठ है ॥३३॥ राजन्, अब आप अपना पुत्र लेलें; मैंने पाल पोस दिया है, आप इसे अपने घर ले जाँय ॥३४॥ इस पराक्रमी ने वसिष्ठ से अंगों के साथ समस्त वेदों का अध्ययन किया है। अस्त्रविद्या में निपुण और महाधनुर्धारी है यह इन्द्र के तुल्य पराक्रमी है ॥३५॥ यह देवता और दैत्यों का प्रिय है। शुक्राचार्य को जितने शास्त्र का ज्ञान है, उतने शास्त्रों का ज्ञान इसको भी है ॥३६॥ देवता और दैत्यों के द्वारा सम्मानित

तथैवाङ्गिरसः पुत्रः सुरासुरनमस्कृतः । यद्वेद शास्त्रं तच्चापि कृत्स्नमस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥३७॥
तव पुत्रे महाबाहौ साङ्गोपाङ्गं महात्मनि । ऋषिः परैरनाधृष्यो जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥३८॥
यदस्त्रं वेद रामश्च तदेतस्मिन्प्रतिष्ठितम् । महेष्वासमिमं राजन् राजधर्मार्थकोविदम् ॥३९॥
मया दत्तं निजं पुत्रं वीरं वीर गृहं नय ।
वैशम्पायन उवाच तथैवं समनुज्ञातः पुत्रमादाय शान्तनुः ॥४०॥
भ्राजमानं यथाऽऽदित्यमाययौ स्वपुरं प्रति । पौरवस्तु पुरीं गत्वा पुरन्दरपुरोपमाम् ॥४१॥
सर्वकामसमृद्धार्थं मेने सोऽऽत्मानमात्मना । पौरवेषु ततः पुत्रं राज्यार्थमभयप्रदम् ॥४२॥
गुणवन्तं महात्मानं यौवराज्येऽभ्यषेचयत् । पौरवान् शान्तनोः पुत्रः पितरं च महायशाः ॥४३॥
राष्ट्रं च रञ्जयामास वृत्तेन भरतर्षभ । स तथा सह पुत्रेण रममाणो महीपतिः ॥४४॥
वर्त्तयामास वर्षाणि चत्वार्यमितविक्रमः । स कदाचिद्वनं यातो यमुनामभितो नदीम् ॥४५॥
महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद्गन्धमुत्तमम् । तस्य प्रभवमन्विच्छन् विचचार समन्ततः ॥४६॥
स ददर्श तदा कन्यां दाशानां देवरूपिणीम् । तामपृच्छत्स दृष्ट्वैव कन्यामसितलोचनाम् ॥४७॥
कस्य त्वमसि का चासि किं च भीरु चिकीर्षसि। साऽब्रवीद्दाशकन्याऽस्मि धर्मार्थं वाहये तरीम् ॥४८॥
पितुर्नियोगाद्भद्रं ते दाशराज्ञो महात्मनः । रूप माधुर्य गन्धैस्तां संयुक्तां देवरूपिणीम् ॥४९॥
समीक्ष्य राजा दाशेयीं कामयामास शान्तनुः । स गत्वा पितरं तस्या वरयामास तां तदा ॥५०॥

अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति जितने शास्त्र जानते हैं, उन शास्त्रों का अच्छा ज्ञान आपके इस पुत्र में भी है । शत्रु के द्वारा अजेय, प्रतापी जमदग्नि-पुत्र परशुराम जिन अस्त्रों को जानते हैं, उन अस्त्रों का ज्ञान इसको भी है । राजन्, मैं आपको यह धनुर्धारी, राज-धर्म और अर्थशास्त्र का जानने वाला वीर पुत्र देती हूँ । वीर ! आप इसे घर ले जाँय ।

वैशम्पायन बोले—गङ्गा के ऐसा कहने पर सूर्य के समान प्रकाशमान पुत्र को लेकर राजा शान्तनु अपने नगर में आये । अमरावती-तुल्य अपनी नगरी में जाकर राजा ने अपने समस्त मनोरथों को पूर्ण समझा । अनन्तर राजा ने अपने गुणवान् और पौरवों को निर्भय करने वाले पुत्र का युवराज के पदपर अभिषेक किया । शान्तनु के उस पुत्र ने अपने चरित्र से पुरुवंशियों को, अपने पिता को तथा राज्य को प्रसन्न किया । परम पराक्रमी राजा ने अपने पुत्रके साथ चार वर्ष प्रसन्नतापूर्वक बिताये । एक बार राजा वन में गये, जिसके बीच से यमुना नदी निकली थीं । वहाँ बहुत मनोहर गन्ध उन्होंने सूँघी, पर वह गन्ध कहाँ से आरही है, इसका पता उन्हें न लगा । उस गन्ध का पता लगाने के लिए राजा वनमें चारों ओर भ्रमण करने लगे ॥३७-४६॥ वहाँ उन्होंने देव-सुन्दरी एक दाश-कन्या देखी । काली आँखवाली उस कन्या से राजा ने पूछा ॥४७॥ भीरु ! तुम किसकी कन्या हो ? कौन हो ? और यहाँ क्या कर रही हो ? उसने कहा—मैं महात्मा दाशराज की कन्या हूँ; उन्हीं की आज्ञा से धर्म के लिए मैं नाव चला रही हूँ । आपका कल्याण हो । वह दाश-कन्या देवाङ्गना के समान सुन्दरी थी, रूपवती थी, कोमलाङ्गी थी और

पर्यपृच्छत्ततस्तस्याः पितरं सोऽऽत्मकारणात् । स च तं प्रत्युवाचेदं दाशराजो महीपतिम् ॥५१॥
जात मात्रैव मे देया वराय वरवर्णिनी । हृदि कामस्तु मे कश्चित्तं निबोध जनेश्वर: ॥५२॥
यदीमां धर्मपत्नीं त्वं मत्तः प्रार्थयसेऽनघ । सत्यवागसि सत्येन समयं कुरु मे ततः ॥५३॥
समयेन प्रदद्यां ते कन्यामहमिमां नृप । न हि मे त्वत्समः कश्चिद्वरो जातु भविष्यति ॥५४॥
शान्तनुरुवाच
श्रुत्वा तव वरं दाश व्यवस्येयमहं तव । दातव्यं चेत्प्रदास्यामि न त्वदेयं कथंचन ॥५५॥
दाश उवाच
अस्यां जायेत यः पुत्रः स राजा पृथिवीपते । त्वदूर्ध्वमभिषेक्तव्यो नान्यः कश्चन पार्थिव ॥५६॥
वैशम्पायन उवाच
नाकामयत तं दातुं वरं दाशाय शान्तनुः । शरीरजेन तीव्रेण दह्यमानोऽपि भारत ॥५७॥
सचिन्तयन्नेव तदा दाशकन्यां महीपतिः । प्रत्ययाद्धास्तिनपुरं कामोपहतचेतनः ॥५८॥
ततः कदाचिच्छोचन्तं शान्तनुंध्यानमास्थितम् । पुत्र देवव्रतोऽभ्येत्य पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥५९॥
सर्वतो भवतः क्षेमं विधेयाः सर्वपार्थिवाः । तत्किमर्थमिहाभीक्ष्णं परिशोचसि दुःखितः ॥६०॥
ध्यायन्निवचमांराजन्नभिभाषसि किंचन । न चाश्वेन विनिर्यासि विवर्णो हरिणः कृशः ॥६१॥

उसके शरीर से गन्ध निकल रही थी । राजा शान्तनु उस पर मोहित हो गये । वे उस कन्या के पिता के यहाँ गये और कन्या को वरण किया ॥४८-५०॥ राजा ने उससे अपने ब्याह के सम्बन्ध में उसकी राय पूछी । राजा से दाशराज इस प्रकार बोले—॥५१॥ यह सुन्दरी कन्या अवश्य ही मुझे किसी वर को देनी है, पर मेरे मन में एक मनोरथ है । राजन् ! आप उसे सुन लें ॥५२॥ यदि आप इसे अपनी धर्मपत्नी बनाने के लिए मुझ से चाहते हों तो आप सत्य की शपथ करें, क्योंकि आप सत्यवादी हैं ॥५३॥ राजन् ! आपके समान दूसरा वर मुझे नहीं मिल सकता, पर इसके लिए आपको प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी ॥५४॥ शान्तनु बोले—तुम क्या वर चाहते हो ? कौन सी प्रतिज्ञा कराना चाहते हो ? वह वर तुमसे सुन लेने पर मैं बतलाऊँगा; देने योग्य होगा, दूँगा; अदेय होगा, न दूँगा ॥५५॥ दाश बोला—राजन् ! इस कन्या में तुम से जो पुत्र होगा, तुम्हारे बाद उसी का राज्याभिषेक होगा, दूसरे किसी का नहीं ॥५६॥

वैशम्पायन बोले—राजा शान्तनु काम से नितान्त पीड़ित थे, तथापि उन्होंने दाशराज को वह वर नहीं दिया ॥५७॥ दाशकन्या के सम्बन्ध में विचार करते-करते राजा हस्तिनापुर आये, उस समय वे अपनी सुध-बुध खो चुके थे ॥५८॥ इस प्रकार-चिन्तामग्न, ध्यानस्थ राजा शान्तनु के पास आकर उनका पुत्र देवव्रत उनसे बोला ॥५९॥ सभी प्रकार का कल्याण है, राजा लोग आज्ञा पालक हैं, फिर आप क्यों दुःखी होकर सदा चिन्ता किया करते हैं ? ॥६०॥ राजन्, चिन्तामग्न होने के कारण आप हम से भी बातें नहीं करते, न घोड़े पर चढ़कर निकलते हैं, आप पीले पड़ गये हैं, दुबले हो गये हैं ॥६१॥ आपको क्या रोग है, यह मैं जानना चाहता हूँ और उसे दूर करने का उपाय

व्याधिमिच्छामि ते ज्ञातुं प्रतिकुर्यां हि तत्र वै । एवमुक्तः स पुत्रेण शान्तनुः प्रत्यभाषत ॥६२॥
असंशयं ध्यानपरो यथावत्स तथा शृणु । अपत्यं नस्त्वमेवैकः कुले महति भारत ॥६३॥
शस्त्रनित्यश्च सततं पौरुषे पर्यवस्थितः । अनित्यतां च लोकानामनुशोचामि पुत्रक ॥६४॥
कथंचित्तव गाङ्गेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम् । असंशयं त्वमेवैकः शतादपि वरः सुतः ॥६५॥
न चाप्यहं वृथा भूयोदारान्कर्तुमिहोत्सहे । सन्तानस्याविनाशाय कामये भद्रमस्तु ते ॥६६॥
अनपत्यतैकपुत्रत्वमित्याहुर्धर्मवादिनः । अग्निहोत्रं त्रयी विद्या सन्तानमपि चाक्षयम् ॥६७॥
सर्वाण्येतान्यपत्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् । एवमेतन्मनुष्येषु तच्च सर्वं प्रजास्विति ॥६८॥
यदपत्यं महाप्राज्ञ तत्र मे नास्ति संशयः । एषा त्रयी पुराणानां देवतानां च शाश्वती ॥६९॥
त्वं च शूरः सदाऽमर्षी शस्त्रनित्यश्च भारत । नान्यत्र युद्धात्तस्मात्ते निधनं विद्यते क्वचित् ॥७०॥
सोऽस्मि संशयमापन्नस्त्वयि शान्ते कथं भवेत् । इति ते कारणं तात दुःखस्योक्तमशेषतः ॥७१॥
वैशम्पायन उवाच
ततस्तत्कारणं राज्ञो ज्ञात्वा सर्वमशेषतः । देवव्रतो महाबुद्धिः प्रज्ञया चान्वचिन्तयत् ॥७२॥
अभ्यगच्छत्तदैवाशु वृद्धामात्यं पितुर्हितम् । तमपृच्छत्तदाऽभ्येत्य पितुस्तच्छोक कारणम् ॥७३॥

करना चाहता हूँ। पुत्र के ऐसा कहने पर शान्तनु ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया ॥६२॥ बेटा, ठीक है, मैं आजकल चिन्तामग्न रहता हूँ; क्यों, इसका कारण सुनो। इस विशाल भरत-कुल में तुम्हीं एक वंश हो ॥६३॥ तुम सदा शस्त्र धारण करते हो और पराक्रम का काम करते हो। जीवन अनित्य है, कौन कबतक रहेगा, इसका ठिकाना नहीं है; पुत्र ! मुझे इसीकी चिन्ता है ॥६४॥ गाङ्गेय ! तुम पर यदि कोई विपत्ति आयी, यदि तुम्हारी मृत्यु हुई, तो हमारे कुल का भी अन्त समझो। यह सच है कि जब तक तुम हो, तब तक सौ पुत्रों से भी एक तुम बड़े हो, अच्छे हो ॥६५॥ मैं पुनः व्यर्थ का विवाह भी नहीं करना चाहता। सन्तान का नाश न हो, सन्तान की परम्परा चलती जाय, इसलिये तुम्हारा कल्याण मनाता हूँ ॥६६॥ धर्मवादी कहते हैं कि एक पुत्र का होना न होने के ही बराबर है। अग्निहोत्र, वेद तथा विद्या ये भी अक्षय सन्तान हैं, इनके द्वारा भी मनुष्यों का परलोक बनता है और इस लोक का यश स्थायी होता है, पर ये सब पुत्र के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं हैं। पुत्र से कल्याण होता है, यह बात मनष्य तथा अन्य प्राणी भी समझते हैं ॥६७,६८॥ पुत्र से कल्याण होता है, परलोक बनता है, इसमें मुझे सन्देह नहीं है। पुराणों का मूल यह वेद-विद्या देव-लोक प्राप्त करने के लिए है ॥६९॥ तुम वीर हो, क्रोधी हो सदा शस्त्र धारण करते हो, अतएव युद्ध में ही तुम्हारी मृत्यु होगी, अन्यत्र नहीं ॥७०॥ तुम्हारे मरने पर क्या होगा, यही मुझे सदा संशय बना रहता है। पुत्र ! मेरे दुःख का जो कारण है, वह सब मैंने तुम से कहा ॥७१॥

वैशम्पायन बोले—राजा के बतलाये कारणों को जानकर बुद्धिमान देवव्रत ने स्वयं उस पर विचार किया, अपना कर्तव्य सोचा ॥७२॥ वे उसी बूढ़े सचिव के पास गये, जो उनके पिता के बड़े हितकारी थे। उनसे देवव्रत ने पिता के शोक का कारण पूछा ॥७३॥ कुरुश्रेष्ठ देवव्रत के

तस्मै [illegible] यथावत्परिपृच्छते। वरं शंश स [illegible] भरतर्षभ ॥७४॥
ततो देवव्रतो वृद्धैः क्षत्रियैः सहितस्तदा। अभिगम्य दाशराजं कन्यां वव्रे पितुः स्वयम् ॥७५॥
तं दाशः प्रतिजग्राह विधिवत्प्रतिपूज्य च। अब्रवीच्चैनमासीनं राजसंसदि भारत ॥७६॥
त्वमेव नाथः पर्याप्तः शान्तनोर्भरतर्षभ। पुत्रः शस्त्रभृतांश्रेष्ठ किं नु वक्ष्यामि ते वचः ॥७७॥
को हि संबन्धकं श्लाघ्यमीप्सितं यौनमीदृशम्। अतिक्रामन्नतप्येत साक्षादपि शतक्रतुः ॥७८॥
अपत्यं चैतदार्यस्य यो युष्माकं समो गुणैः। यस्य शुक्रात्सत्यवती सम्भूता वरवर्णिनी ॥७९॥
तेन मे बहुशस्तात पिता ते परिकीर्तितः। अर्हः सत्यवतीं वोढुं धर्मज्ञः स नराधिपः ॥८०॥
असितोह्यपि देवर्षिः प्रत्याख्यातः पुरामया। सत्यवत्या भृशंचार्थी स आसीदृषिसत्तमः ॥८१॥
कन्यापितृत्वात्किंचित्तु वक्ष्यामि त्वां नराधिप। बलवत्सपत्नतामत्र दोषं पश्यामिकेवलम् ॥८२॥
यस्य हि त्वं सपत्नः स्यागन्धर्वस्यासुरस्य वा। न स जातु चिरंजीवेत्त्वयि क्रुद्धे परन्तप ॥८३॥
एतावानत्र दोषोहि नान्यः कश्चन पार्थिव। एतज्जानीहि भद्रं ते दानादाने परन्तप ॥८४॥
एवमुक्तस्तु गाङ्गेयस्तद्युक्तं प्रत्यभाषत। शृण्वतां भूमिपालानां पितुरर्थाय भारत ॥८५॥
इदं मे व्रतमादत्स्व सत्यं सत्यवतांवर। नैवजातोनवाऽजात ईदृशं वक्तुमुत्सहेत् ॥८६॥

पूछने पर बूढ़े सचिव ने उनसे दाश के वरकी बात कही, जो वह अपनी कन्या ब्याह ने के लिए चाहता था ॥७४॥ देवव्रत बूढ़े क्षत्रियों को लेकर उस दाशराज के यहाँ गये और उससे पिता के लिए कन्या की प्रार्थना की ॥७५॥ दाशराज ने उनका स्वागत किया, विधिवत् पूजा की और उनके बैठने पर राज-सभा में, वह, उनसे इस प्रकार बोला ॥७६॥ भरतश्रेष्ठ! आप श्रेष्ठ शस्त्रधारी हैं, राजा शान्तनु के पुत्र हैं, आप ही पर्याप्त स्वामी हैं अर्थात् मेरी कही बातों पर अच्छी तरह विचार कर सकते हैं, अतएव मैं आप से कुछ बातें कहता हूँ ॥७७॥ ऐसा श्लाघ्य और स्पृहणीय विवाह सम्बन्ध का त्याग करके कौन मनुष्य पश्चात्ताप न करेगा? चाहे वह साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो ॥७८ जिससे यह सुन्दरी सत्यवती उत्पन्न हुई है, वह आर्य था और गुणों में वह आपही लोगों के समान था ॥७९॥ उसने तुम्हारे पिता का परिचय कई बार दिया है; उसने कहा है कि धर्मात्मा राजा शान्तनु सत्यवती से ब्याह कर सकते हैं ॥८०॥ मैंने देवर्षि असित को भी इन्कार कर दिया था। उन ऋषि-श्रेष्ठ ने सत्यवती को पाने की बड़ी प्रार्थना की थी ॥८१॥ राजन्, मैं कन्या का पिता हूँ, इस लिए कुछ कहता हूँ, इस ब्याह में मैं एक सपत्नता का दोष देखता हूँ, अर्थात् सत्यवती उससे ब्याही जायगी, जिसका एक पुत्र वर्तमान है जो सपत्न है, अर्थात् शत्रु है अथवा सौतेला है ॥८२॥ तुम जिसके सपत्न होगे, वह गन्धर्व हो या असुर, तुम्हारे क्रोध करने पर कभी नहीं जी सकता ॥८३॥ राजन्! इस विषय में यही दोष है, दूसरा नहीं। परन्तप! देने या न देने के विषय में यही मेरी सम्मति है ॥८४॥

वैशम्पायन बोले—दाश के ऐसा कहने पर गाङ्गेय ने राजाओं के सामने पिता के लिए उसको उचित उत्तर दिया ॥८५॥ हे सत्यवादियों में श्रेष्ठ! यह मेरा सत्य व्रत है, इसे तुम समझो,

एवमेतत्करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे । योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति ॥८७॥
इत्युक्तः पुनरेवाथ तं दाशः प्रत्यभाषत । चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म राज्यार्थे भरतर्षभ ॥८८॥
त्वमेव नाथः सम्प्राप्तः शान्तनोरमितद्युते । कन्यायाश्चैव धर्मात्मन्प्रभुर्दानाय चेश्वरः ॥८९॥
इदं तु वचनं सौम्य कार्यं चैव निबोध मे । कौमारिकाणां शीलेन वक्ष्याम्यहमरिन्दम ॥९०॥
यत्त्वया सत्यवत्यर्थे सत्यधर्मपरायण । राजमध्ये प्रतिज्ञात मनुरूपं तवैव तत् ॥९१॥
नान्यथा तन्महाबाहो संशयोऽत्र न कश्चन । तवापत्यं भवेद्यत्तु तत्र नः संशयोमहान् ॥९२॥
वैशम्पायन उवाच
तस्यैतन्मतमाज्ञाय सत्यधर्मपरायणः । प्रत्यजानात्तदा राजन्पितुः प्रिय चिकीर्षया ॥९३॥
गाङ्गेय उवाच
दाशराज निबोधेदं वचनं मे नृपोत्तम । शृण्वतां भूमिपालानां यद्ब्रवीमि पितुः कृते ॥९४॥
राज्यं तावत्पूर्वमेव मया त्यक्तं नराधिपाः । अपत्यहेतोरपि च करिष्येऽद्य विनिश्चयम् ॥९५॥
अद्य प्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति । अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि ॥९६॥
वैशम्पायन उवाच
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्प्रहृष्ट तनूरुहः । ददानीत्येवतं दाशो धर्मात्मा प्रत्यभाषत ॥९७॥

जो मैं तुमसे कहता हूँ, वैसा दूसरा वर्तमान या भावी मनुष्य नहीं कह सकता ॥८६॥ जैसा तुम कहते हो, वैसा ही मैं करूँगा। इस कन्या से जो पुत्र होगा, वही हमलोगों का राजा होगा ॥८७॥ गाङ्गेय के ऐसा कहने पर दाश उनसे पुनः बोला। वह राज्य के लोभ से बहुत ही भयंकर काम करना चाहता था ॥८८॥ धर्मात्मन्! आप ही राजा शान्तन तथा मेरी कन्या के भी स्वामी हैं, अतएव उसके दान के निर्णय का भी आप को अधिकार है ॥८९॥ सौम्य! पर मेरी यह बात आप समझें और उसके अनुसार कार्य करें, यह मैं कन्या के स्नेह के कारण कह रहा हूँ ॥९०॥ सत्यधर्म-परायण! राजाओं के सामने सत्यवती के सम्बन्ध में आपने जो प्रतिज्ञा की है, वह आप ही के योग्य है ॥९१॥ आपकी यह प्रतिज्ञा असत्य न होगी, इस विषय में मुझे किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। पर आपका जो पुत्र होगा, उसके विषय में मुझे सन्देह है, अर्थात् आपका पुत्र राज्य का अधिकार नहीं छोड़ेगा ॥९२॥

वैशम्पायन बोले—उसका ऐसा अभिप्राय जानकर सत्यधर्म-परायण देवव्रत ने पिता का हित करने के लिए पुनः प्रतिज्ञा की ॥९३॥

गाङ्गेय बोले—दाशराज! मेरी यह बात समझो, जो मैं पिता के लिए राजाओं के सामने कहता हूँ ॥९४॥ राजाओं! मैंने पहले ही राज्य का त्याग कर दिया है। पुत्र के विषय में भी अपना निश्चय प्रकट करता हूँ ॥९५॥ दाश! आज से मेरा ब्रह्मचर्य व्रत होगा, पुत्र के न रहने पर भी स्वर्ग में मेरे लिए अक्षय स्थान होगा ॥९६॥

वैशम्पायन बोले—देवव्रत का यह बचन सुनकर दाशराज प्रसन्न हुआ, उसे रोमाञ्च

ततोऽन्तरिक्षेऽप्सरसो देवाः सर्षिगणास्तदा। अभ्यवर्षन्त कुसुमैर्भीष्मोऽयमिति चाब्रुवन् ॥९८॥
ततः स पितुरर्थाय तामुवाच यशस्विनीम्। अधिरोह रथं मातर्गच्छावः स्व गृहानिति ॥९९॥
वैशम्पायन उवाच
एव मुक्त्वातु भीष्मस्तां रथमारोप्य भाविनीम्। आगम्य हास्तिनपुरं शान्तनोःसंन्यवेदयत् ॥१००॥
तस्य तद्दुष्करं कर्म प्रशशंसुर्नराधिपाः। समेताश्च पृथक् चैव भीष्मोऽयमिति चाब्रुवन् ॥१०१॥
तच्छ्रुत्वा दुष्करं कर्म कृतं भीष्मेण शान्तनुः। स्वच्छन्द मरणं तुष्टो ददौ तस्मै महात्मने ॥१०२॥
न ते मृत्युः प्रभविता यावज्जीवितुमिच्छसि। त्वत्तोह्यनुज्ञां सम्प्राप्य मृत्युः प्रभविताऽनघ ॥१०३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि सत्यवती लाभोपाख्याने शततमोऽध्यायः ॥१००॥

हो आया। उस समय धर्मात्मा दाश ने कहा कि मैं कन्या देता हूँ ॥ ९७॥ उस समय आकाश से देवता,ऋषि और अप्सराओं ने पुष्पवृष्टि की और कहा कि यह भीष्म है ॥९८॥ इसके पश्चात भीष्म अपने पिता के हित के लिये, यशस्विनी सत्यवती से बोले—माता! आप रथ पर बैठें, हमलोग घर चलें ॥९९॥

वैशम्पायन बोले—भीष्म उससे ऐसा कहकर तथा उसको रथ पर बैठाकर हस्तिनापुर आये और उन्होंने राजा शान्तनु के सामने उसे उपस्थित किया ॥१००॥ राजालोग एकत्र होकर तथा अलग-अलग, देवव्रत के उस अदभुत काम की प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि यह भीष्म है ॥१०१॥ राजा शान्तनु ने भी भीष्म का वह दुष्कर कर्म सुना और प्रसन्न होकर उन्होंने उस महात्मा को इच्छानुसार मृत्यु का वरदान दिया ॥१०२॥ जबतक तुम जीना चाहोगे, तब-तक मृत्यु का आक्रमण तुम पर न होगा। निष्पाप! तुम्हारी आज्ञा पाकर मृत्यु तुमपर आक्रमण करेगी ॥१०३॥

शततम अध्याय

विषय-सूची



शान्तनु और सत्यवती [चित्राकार-पो. मुकर्जी

The Onkar Press, Allahabad.

वैशम्पायन उवाच—

ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा शान्तनुर्नृपः । तां कन्यां रूपसम्पन्नां स्वगृहे संन्यवेशयत् ॥१॥
ततः शान्तनवो धीमान्सत्यवत्यामजायत । वीरश्चित्रांगदो नाम वीर्यवान्पुरुषेश्वरः ॥२॥
अथापरं महेष्वासं सत्यवत्यां सुतं प्रभुः । विचित्रवीर्यं राजानं जनयामास वीर्यवान् ॥३॥
अप्राप्तवति तस्मिंस्तु यौवनं पुरुषर्षभे । स राजा शान्तनुर्धीमान् कालधर्ममुपेयिवान् ॥४॥
स्वर्गते शान्तनौ भीष्मश्चित्रांगदमरिन्दमम् । स्थापयामास वै राज्ये सत्यवत्यामतेस्थितः ॥५॥
स तु चित्रांगदः शौर्यात्सर्वांश्चिक्षेप पार्थिवान् । मनुष्यं न हि मेने स कंचित्सदृशमात्मनः ॥६॥
तं क्षिपन्तं सुरांश्चैव मनुष्यानसुरांस्तथा । गन्धर्वराजो बलवांस्तुल्यनामाऽभ्ययात्तदा ॥७॥
तेनास्य सुमहद्युद्धं कुरुक्षेत्रे बभूव ह । तयोर्बलवतोस्तत्र गन्धर्वकुरुमुख्ययोः ।
नद्यास्तीरे सरस्वत्याः समास्तिस्रोऽभवद्रणः ॥८॥
तस्मिन्विमर्दे तुमुले शस्त्रवर्षसमाकुले । मायाधिकोऽवधीद्वीरं गन्धर्वः कुरुसत्तमम् ॥९॥
स हत्वा तु नरश्रेष्ठं चित्रांगदमरिन्दमम् । अन्तायकृत्वा गन्धर्वो दिवमाचक्रमे ततः ॥१०॥
तस्मिन्पुरुषशार्दूले निहते भूरितेजसि । भीष्मः शान्तनवोराजा प्रेतकार्याण्यकारयत् ॥११॥
विचित्रवीर्यं च तदा बालमप्राप्तयौवनम् । कुरुराज्ये महाबाहुरभ्यषिंचदनन्तरम् ॥१२॥

चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य की उत्पत्ति; शान्तनु और चित्राङ्गद की मृत्यु; विचित्रवीर्य का राज्याभिषेक ।

वैशम्पायन बोले—विवाह हो जाने पर राजा शान्तनु ने उस सुन्दरी कन्या को अपने महल में रखा ॥१॥ अनन्तर सत्यवती के गर्भ से शान्तनु का एक पुत्र हुआ, जिसका नाम चित्राङ्गद था और जो पराक्रमी था ॥२॥ बली राजा ने सत्यवती से एक और पुत्र उत्पन्न किया, जो बड़ा धनुर्धारी था ॥३॥ इस पुत्र की बाल्यावस्था में ही बुद्धिमान् राजा शान्तनु की मृत्यु हुई ॥४॥ राजा शान्तनु के स्वर्गगामी होने पर सत्यवती की सलाह से भीष्म ने चित्राङ्गद का राज्य पर अभिषेक किया ॥५॥ चित्राङ्गद ने वीरता के घमण्ड से सभी राजाओं को नाराज़ कर दिया, वे किसी मनुष्य को अपने समान नहीं समझते थे ॥६॥ इस प्रकार देवताओं, मनुष्यों और दैत्यों से उन्होंने विरोध कर लिया । उसी समय उन्हीं के नामवाला गन्धर्वराज उनसे लड़ने के लिए आया ॥७॥ कुरुक्षेत्र के मैदान में उन दोनों का बड़ा युद्ध हुआ । गन्धर्व और कुरुराज, दोनों, बड़े बली थे; सरस्वती नदी के तीर पर तीन वर्षों तक उन दोनों का युद्ध हुआ ॥८॥ अविरत बाण-वर्षा वाले उस भयंकर युद्ध में, छल में निपुण गन्धर्वराज ने कुरुराज का वध कर दिया ॥९॥ युद्ध करके तथा शत्रुघाती राजा चित्राङ्गद का वध करके वह गन्धर्वराज स्वर्ग चला गया ॥१०॥ उस तेजस्वी पुरुषसिंह की मृत्यु होने पर शान्तनु-पुत्र भीष्म ने उसका अन्तिम संस्कार किया ॥११॥ और बालक विचित्रवीर्य का, महाबाहु भीष्म ने, कुरुराज्य के सिंहासन पर अभिषेक किया ॥१२॥ भीष्म की आज्ञा के अनुसार विचित्रवीर्य पिता-पितामहों के राज्य का

विचित्रवीर्यः स तदा भीष्मस्य वचने स्थितः। अन्वशासन्महाराज पितृपैतामहं पदम् ॥१३॥
स धर्मशास्त्रकुशलं भीष्मं शान्तनवं नृपः। पूजयामास धर्मेण स चैनं प्रत्यपालयत् ॥१४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि चित्रांगदोपाख्याने एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

वैशम्पायन उवाच—

हते चित्रांगदे भीष्मो बाले भ्रातरि कौरव। पालयामास तद्राज्यं सत्यवत्यामतेस्थितः ॥१॥
सम्प्राप्तयौवनं दृष्ट्वा भ्रातरं धीमतांवरः। भीष्मो विचित्रवीर्यस्य विवाहायाकरोन्मतिम् ॥२॥
अथ काशिपतेर्भीष्मः कन्यास्तिस्रोऽप्सरोपमाः। शुश्राव सहिताराजन्वृण्वानावैस्वयंवरम् ॥३॥
ततः स रथिनां श्रेष्ठो रथेनैकेन शत्रुजित्। जगामानुमते मातुः पुरीं वाराणसीं प्रभुः ॥४॥
तत्र राज्ञः समुदितान्सर्वतः समुपागतान्। ददर्श कन्यास्ताश्चैव भीष्मः शान्तनुनन्दनः ॥५॥
कीर्त्यमानेषु राज्ञां तु तदानामसु सर्वशः। एकाकिनं तदा भीष्मं वृद्धं शान्तनुनन्दनम् ॥६॥
सोद्वेगा इव तं दृष्ट्वा कन्याः परमशोभनाः। अपाक्रामन्ततः सर्वावृद्धइत्येव चिन्तया ॥७॥

शासन करने लगे ॥१३॥ धर्म-शास्त्र के ज्ञाता शान्तनु-पुत्र भीष्म का वे आदर करते थे और भीष्म उनका पालन करते थे ॥१४॥

एकाधिक शततम अध्याय।

भीष्म के द्वारा काशिराज की कन्याओं का हरण ; शाल्वराज की पराजय, अम्बा और अम्बालिका से विचित्रवीर्य का विवाह, विचित्रवीर्य की मृत्यु।

वैशम्पायन बोले—भाई चित्राङ्गद के बाल्यावस्था में ही मारे जाने पर भीष्म सत्यवती की सलाह से राज्य का पालन करने लगे ॥१॥ विचित्रवीर्य नवयुवक हो गया, तब बुद्धिमान् भीष्म ने उसके ब्याह की इच्छा की ॥२॥ उसी समय भीष्म ने सुना कि काशिराज की अप्सरा के समान तीन सुन्दरी कन्याएँ स्वयम्बर में एकसाथ पतिवरण करनेवाली हैं ॥३॥ अनन्तर माता से आज्ञा लेकर शत्रुविजयी, रथियों में श्रेष्ठ, भीष्म केवल एक रथ लेकर काशी के लिए प्रस्थित हुए ॥४॥ शान्तनु-पुत्र भीष्म ने वहाँ एकत्र अनेक राजाओं तथा उन स्वयम्बरा कन्याओं को देखा ॥५॥ जब राजाओं का परिचय दिया जाने लगा, उनका नाम बतलाया जाने लगा, उस समय वे सुन्दरी कन्याएँ शान्तनु-पुत्र भीष्म को वृद्ध समझकर, शीघ्र ही, व्याकुल के समान, वहाँ से हट

वृद्धः परमधर्मात्मा वलीपलितधारणः। किंकारणमिहायातो निर्लज्जो भरतर्षभः ॥८॥
मिथ्यामतिज्ञो लोकेषु किं वदिष्यति भारत। ब्रह्मचारीति भीष्मो हि वृथैव प्रथितो भुवि ॥९॥
इत्येवं प्रब्रुवन्तस्ते हसन्तिस्म नृपाधमाः।

वैशम्पायन उवाच— क्षत्रियाणां वचः श्रुत्वा भीष्मश्चुक्रोध भारत ॥१०॥
भीष्मस्तदा स्वयं कन्या वरयामासताः प्रभुः। उवाच च महीपालान् राजन् जलदनिःस्वनः ॥११॥
रथमारोप्य ताः कन्या भीष्मः प्रहरतांवरः। आहूयदानं कन्यानां गुणवद्भ्यः स्मृतं बुधैः ॥१२॥
अलंकृत्य यथाशक्ति प्रदाय च धनान्यपि। प्रयच्छन्त्यपरेकन्यां मिथुनेन गवामपि ॥१३॥
वित्तेन कथितेनान्ये बलेनान्येऽनुमान्य च। प्रमत्तामुपयान्त्यन्येस्वयमन्ये च विन्दते ॥१४॥
आर्षं विधिं पुरस्कृत्य दारान्विन्दन्तिचापरे। अष्टमं तमथोवित्तविवाहं कविभिर्वृतम् ॥१५॥
स्वयंवरं तु राजन्याः प्रशंसन्त्युपयान्ति च। प्रमथ्य तु हृतामाहुर्ज्यायसीं धर्मवादिनः ॥१६॥
त इमाः पृथिवीपाला जिहीर्षामि बलादितः। ते यतध्वं परं शक्त्या विजयायेतरायवा ॥१७॥
स्थितोऽहं पृथिवीपाला युद्धाय कृतनिश्चयः। एवमुक्त्वा महीपालान्काशिराजं च वीर्यवान् ॥१८॥

गयीं ॥६,७॥ भरत-वंश का यह निर्लज्ज बूढ़ा यहाँ क्यों आया है? इसके बाल पक गये, झुर्रियाँ पड़ गयीं। यह धर्मात्मा है, फिर क्यों आया? अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर यह लोगों को क्या जवाब देगा? इसके ब्रह्मचारी होने की प्रसिद्धि व्यर्थ ही है; वह झूठी है ॥८,९॥ वे नीच राजा इस प्रकार आपस में बातें करके हँसने लगे।

वैशम्पायन बोले—राजाओं के वचन सुनकर भीष्म ने क्रोध किया ॥१०॥ और स्वयं कन्याओं को ले जाने का उन्होंने निश्चय किया। वीर भीष्म, कन्याओं को रथ पर बैठाकर मेघ-गम्भीर स्वर से राजाओं से बोले—स्मृतियों में लिखा है कि गुणवान् वर को बुलाकर कन्या-दान किया जाय ॥११,१२॥ कन्या को अलंकृत करके तथा धन देकर कई लोग दान करते हैं। कई दो गौ या उनका मूल्य लेकर कन्या दान करते हैं। कई धन देकर, कई बल से छीनकर और कई दोनों के प्रेम से ब्याह करने का आदेश देते हैं। कई कन्या की असावधानता में उससे ब्याह करने की आज्ञा देते हैं ॥१३,१४॥ आर्ष विधान से यज्ञ आदि में ब्याह करने का आदेश कई दूसरे स्मृतिकार देते हैं। धन के द्वारा होनेवाले आठवें ब्याह को भी बहुतों ने पसन्द किया है ॥१५॥ क्षत्रिय स्वयंवर-विधि की प्रशंसा करते हैं और उसी के अनुसार ब्याह भी करते हैं। शत्रुओं को जीतकर, बलपूर्वक जो कन्या ब्याहने की रीति है, धर्मवेत्ता उसकी भी प्रशंसा करते हैं ॥१६॥ राजाओ, मैं बलपूर्वक इन कन्याओं का यहाँ से हरण कर रहा हूँ। अतएव तुम लोग अपने पूरे बल के साथ विजय के लिए प्रयत्न करो, या हार मानो ॥१७॥ राजाओ, मैं युद्ध करने का निश्चय करके खड़ा हूँ। काशिराज तथा अन्य राजाओं से ऐसा कहकर उन्होंने तीनों कन्याओं को अपने रथ पर बैठाया और कन्या पक्ष तथा अन्य राजाओं को युद्ध के लिए आमन्त्रित करके चले ॥१८,१९॥ भीष्म

सर्वाःकन्याःसकौरव्योरथमारोप्यचसत्रकम् । आमन्त्र्य वसनान्दानात्क्रोधं कन्याःप्रगृह्यताः ॥१९॥
ततस्तेपार्थिवाः सर्वे समुत्पेतुरमर्षिताः । संस्पृशन्तः स्वकान्बाहून्दंशतो दशनच्छदान् ॥२०॥
तेषामाभरणान्याशु त्वरितानां विमुञ्चताम् । आमुञ्चतां च वर्माणि सम्भ्रमः सुमहानभूत् ॥२१॥
ताराणामिव सम्पातो बभूव जनमेजय । भूषणानां च सर्वेषां कवचानां च सर्वशः ॥२२॥
सवर्मभिर्भूषणैश्च प्रकीर्यद्भिरितस्ततः । सक्रोधामर्षजिह्मभ्रू कपायीकृतलोचनाः ॥२३॥
सूतोपकॢप्तान् रुचिरान्सदश्वैरुपकल्पितान् । रथानास्थायते वीराः सर्वप्रहरणान्विताः ॥२४॥
प्रयान्तमथकौरव्यमनुसस्रुरुदायुधाः । ततः समभवद्युद्धं तेषां तस्य च भारत ॥
एकस्य च बहूनां च तुमुलं लोमहर्षणम् ॥२५॥
तेत्विषून्दशसाहस्रांस्तस्मिन्युगपदाक्षिपन् । अप्राप्तांश्चैवतानाशु भीष्मः सर्वांस्तथाऽन्तरा ॥२६॥
अच्छिनच्छरवर्षेण महतालोमवाहिना । ततस्ते पार्थिवाः सर्वे सर्वतः परिवार्य तम् ॥२७॥
ववृषुः शरवर्षेण वर्षेणेवाद्रिमम्बुदा । स तं वाणमयंवर्षं शरैरावार्य सर्वतः ॥२८॥
ततः सर्वान्महीपालान्पर्यविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः । एकैकस्तु ततो भीष्मं राजन्विव्याधपञ्चभिः ॥२९॥
स च तान्प्रतिविव्याधद्वाभ्यांद्वाभ्यां पराक्रमन् । तद्युद्धमासीत्तुमुलं घोरं देवासुरोपमम् ॥३०॥
पश्यतांलोकवीराणां शरशक्तिसमाकुलम् । स धनूंषिध्वजाग्राणिवर्माणि च शिरांसि च ॥३१॥

के चलने पर राजालोग क्रोध से एकत्र हुए। वे ओठ काट रहे थे और ताल ठोंक रहे थे ॥२०॥ वे सब राजा शीघ्रतापूर्वक अपने गहने पहनने लगे और कवच धारण करने लगे, इस कारण वहाँ घबड़ाहट फैल गयी ॥२१॥ इधर-उधर फैले भूषणों और कवचों के कारण मालूम होता था कि वहाँ आकाश के तारे फैले हैं ॥२२॥ वे राजा तरह-तरह के गहने और कवच शरीर में इधर-उधर डाल कर, सारथि के लाये रथ पर बैठे। उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयी थीं, आँखें लाल थीं। उनके रथों में अच्छे घोड़े जुते हुए थे, उनमें अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र रखे हुए थे। इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर उनलोगों ने जाते हुए भीष्म का पीछा किया। वहाँ भीष्म का और उन राजाओं का युद्ध हुआ। एक ओर अकेले भीष्म थे, दूसरी ओर अनेक राजा ; उनमें लोमहर्षण, भयंकर युद्ध हुआ ॥२३-२५॥ उन लोगों ने एक ही बार दस हज़ार वाण भीष्म पर छोड़े। पास पहुँचने के पहले ही, बीच ही में, भीष्म ने इन वाणों को काट डाला। इसके बाद राजाओं ने भीष्म को चारों ओर से घेर लिया और वे उनपर वाण-वर्षा करने लगे—मानों मेघ पर्वत पर पानी बरसा रहे हों। भीष्म ने चारों ओर से होनेवाली उस वाण-वर्षा को अपने वाणों से रोक दिया और सभी राजाओं को उन्होंने तीन-तीन वाण मारे। प्रत्येक राजा ने भी भीष्म को पाँच-पाँच वाणों से मारा ॥२६-२९॥ भीष्म ने उन राजाओं को दो-दो वाणों से मारा। वह युद्ध देवासुर-युद्ध के समान भयंकर था ॥३०॥ उस युद्ध में वाणों और शक्तियों की वर्षा हो रही थी। भीष्म ने सैकड़ों-हजारों शत्रु-राजाओं के धनुष, ध्वजा, कवच और मस्तक युद्ध में काट डाले। दूसरों के लिए असम्भव, भीष्म की अस्त्र चलाने की शीघ्रता और अपनी रक्षा-निपुणता की प्रशंसा, शत्रु-राजा भी करने लगे।

चिच्छेद समरे भीष्मः शतशोऽथसहस्रशः । तस्यातिपुरुषानन्यांल्लाघवं रथचारिणः ॥३२॥
रक्षणं चात्मनः संख्ये राजवोऽप्यभ्यपूजयन् । तान्विनिर्जित्य तु रणे सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥३३॥
कन्याभिः सहितः प्रायाद्भारतो भारतान्प्रति । ततस्तं पृष्ठतो राजन्शाल्वराजो महारथः ॥३४॥
अभ्यगच्छदमेयात्मा भीष्मं शान्तनवं रणे । वारणं जघने भिन्दन् दन्ताभ्यामपरो यथा ॥३५॥
वासितामनुसम्प्राप्तो यूथपो बलिनांवरः । स्त्रीकामस्तिष्ठतिष्ठेति भीष्ममाह स पार्थिवः ॥३६॥
शाल्वराजो महाबाहुरमर्षेण प्रचोदितः । ततः स पुरुषव्याघ्रो भीष्मः परबलार्दनः ॥३७॥
तद्वाक्याकुलितः क्रोधाद्विधूमोऽग्निरिवज्वलन् । विततेषु धनुष्पाणिर्विकुञ्चित ललाटभृत् ॥३८॥
क्षत्रधर्मं समास्थाय व्यपेतभयसम्भ्रमः । निवर्तयामास रथं शाल्वंप्रति महारथः ॥३९॥
निवर्त्तमानं तं दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते । प्रेक्षकाः समपद्यन्त भीष्मशाल्वसमागमे ॥४०॥
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे । अन्योन्यमभिवर्तेतां बलविक्रमशालिनौ ॥४१॥
ततो भीष्मं शान्तनवं शरैः शतसहस्रशः । शाल्वराजो नरश्रेष्ठः समवाकिरदाशुगैः ॥४२॥
पूर्वमभ्यर्दितं दृष्ट्वा भीष्मं शाल्वेन ते नृपाः । विस्मिताः समपद्यन्त साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥४३॥
लाघवं तस्य ते दृष्ट्वा समरे सर्वपार्थिवाः । अपूजयन्त संहृष्टा वाग्भिः शाल्वं नराधिपम् ॥४४॥
क्षत्रियाणां ततो वाचः श्रुत्वा परपुरञ्जयः । क्रुद्धः शान्तनवो भीष्मस्तिष्ठतिष्ठेत्यभाषत ॥४५॥

उन सब राजाओं को युद्ध में जीतकर वीर-श्रेष्ठ भीष्म कन्याओं को लेकर भरतवंशियों की राजधानी के लिए चले। वीर, महारथ राजा शाल्व ने युद्ध के लिए भीष्म का पीछा किया। जैसे एक बलवान् हाथी दाँतों से दूसरे हाथी के पैरों में मारकर हथिनी के पास पहुँचता है, वैसे ही वह शाल्वराज स्त्री के लिए भीष्म के पास पहुँचा और उन्हें ठहरने के लिए ललकारा। महाबाहु शाल्वराज क्रोधवश हो गया था। शत्रु-विजयी पुरुषसिंह भीष्म उसके वचन सुनकर व्याकुल हो गये और धूमहीन अग्नि के समान भीतर-ही-भीतर जलने लगे। वे विशाल धनुष और बाण हाथ में लिये हुए थे, उनके माथे पर बल पड़ गया था ॥ ३१-३८ ॥ भीष्म ने क्षत्रिय-धर्म धारण किया, भय और घबराहट छोड़ दिया और शाल्व की ओर अपना रथ मोड़ा ॥ ३९ ॥ भीष्म का लौटना तथा उनकी शाल्व के साथ मुठभेड़ देखकर अन्य राजा दर्शक बन गये। उन लोगों ने किसी का भी साथ न दिया ॥४०॥ बली और पराक्रमी वे दोनों आपस में भिड़ गये, गर्जन करने लगे, मानो दो बैल एक गाय के लिये गर्ज रहे हों ॥ ४१ ॥ शाल्वराज ने सैकड़ों बाणों को बरसाकर शान्तनु-पुत्र भीष्म को ढक दिया ॥ ४२ ॥ राजा शाल्व ने भीष्म को पहले विचलित कर दिया यह देखकर राजाओं को आश्चर्य हुआ और वे शाल्व को साधुवाद देने लगे ॥४३॥ शीघ्र बाण चलाने, में शाल्वराज की निपुणता देखकर राजालोग शब्दों से उनकी प्रशंसा करने लगे और प्रसन्न हुए ॥ ४४ ॥ शाल्व की प्रशंसा में कही गयी राजाओं की बातें सुनकर भीष्म ने क्रोध किया और उसे ठहरने के लिए ललकारा ॥४५॥ उन्होंने अपने सारथि से कहा कि जहाँ यह राजा है, वहाँ

सारथिं चाब्रवीत्क्रुद्धो याहि यत्रैष पार्थिवः । यावदेनं निहन्म्यद्य भुजंगमिव पक्षिराट् ॥४६॥
ततोऽस्त्रं वारुणं सम्यग्योजयामास कौरवः । तेनाश्वांश्चतुरोऽमृद्नाच्छाल्वराजस्य भूपते ॥४७॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शाल्वराजस्य कौरवः । भीष्मो नृपतिशार्दूल न्यवधीत्तस्य सारथिम् ॥४८॥
अस्त्रेण चास्याथैन्द्रेण न्यवधीत्तुरगोत्तमान् । कन्याहेतोर्नरश्रेष्ठ भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥४९॥
जित्वा विसर्जयामास जीवन्तं नृपसत्तमम् । ततः शाल्वः स्वनगरं प्रययौ भरतर्षभ ॥५०॥
स्वराज्यमन्वशाच्चैव धर्मेण नृपतिस्तदा । राजानो ये च तत्रासन् स्वयंवर दिदृक्षवः ॥५१॥
स्वान्येव तेऽपि राष्ट्राणि जग्मुः परपुरञ्जयाः । एवं विजित्य ताः कन्या भीष्मः प्रहरतांवरः ॥५२॥
प्रययौ हास्तिनपुरं यत्र राजा स कौरवः । विचित्रवीर्यो धर्मात्मा प्रशास्ति वसुधामिमाम् ॥५३॥
यथा पिताऽस्य कौरव्यः शान्तनुर्नृपसत्तमः । सोऽचिरेणैव कालेन अत्यक्रामन्नराधिप ॥५४॥
वनानि सरितश्चैव शैलांश्च विविधान्द्रुमान् । अक्षतः क्षपयित्वाऽरीन्संख्येसंख्येयविक्रमः ॥५५॥
आनयामास काश्यस्य सुताः सागरगासुतः । स्नुषाइव स धर्मात्मा भगिनीरिव चानुजाः ॥५६॥
यथा दुहितरश्चैव परिगृह्य ययौ कुरून् । आनिन्ये स महाबाहुर्भ्रातुःप्रियचिकीर्षया ॥५७॥
ताः सर्वगुणसम्पन्ना भ्राता भ्रात्रेयवीयसे । भीष्मो विचित्रवीर्याय प्रददौ विक्रमाहृताः ॥५८॥
एवं धर्मेण धर्मज्ञः कृत्वा कर्मातिमानुषम् । भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य विवाहायोपचक्रमे ॥५९॥
सत्यवत्या सह मिथः कृत्वा निश्चयमात्मवान् । विवाहं कारयिष्यन्तं भीष्मं काशिपतेः सुता ॥
ज्येष्ठा तासामिदं वाक्यमब्रवीद्धसती तदा ॥६०॥

चलो । मैं आज इसको मारूँगा, जिस प्रकार गरुड़ सर्पों को मारता है ॥४६॥ भीष्म ने वरुण अस्त्र से शाल्वराज के चारों घोड़ों को बेदम कर डाला ॥४७॥ भीष्म ने शाल्वराज के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से रोककर उनके सारथि को मार डाला ॥४८॥ उन कन्याओं के लिए शान्तनु-पुत्र भीष्म ने ऐन्द्र नामक अस्त्र से उनके घोड़ों को मार डाला ॥४९॥ इस प्रकार उनको जीतकर भीष्म ने उन्हें छोड़ दिया और वे अपनी राजधानी में लौट आये ॥५०॥ वे धर्मपूर्वक राज्य-शासन करने लगे। वहाँ स्वयंवर देखनेवाले और जो राजालोग थे, वे भी अपनी-अपनी राजधानी में लौट आये। इस प्रकार उन कन्याओं को जीतकर विजयी भीष्म कुरुवंशी राजा विचित्रवीर्य के पास चले। धर्मात्मा विचित्रवीर्य अपने पिता शान्तनु के समान पृथिवी का पालन करते थे। राजन्! वे गङ्गा-पुत्र भीष्म बहुत शीघ्र ही वनों, नदियों और पर्वतों को पीछे छोड़ते काशिराज की कन्याओं को ले आये। युद्ध में शत्रुओं को परास्त करके, वे स्वयं अक्षत शरीर उन कन्याओं को पुत्रवधू के समान तथा छोटी बहन के समान ले आये ॥५१-५६॥ अपनी पुत्रियों के समान उन कन्याओं को लेकर, भाई के हित के लिए, महाबाहु भीष्म कुरुदेश में आये ॥५७॥ पराक्रम से लायी हुई वे सर्व-गुण-सम्पन्न कन्याएँ उन्होंने छोटे भाई विचित्रवीर्य को दीं ॥५८॥ मनुष्यों के द्वारा न-होने-वाला ऐसा अद्भुत काम धर्म-पूर्वक करके धर्मात्मा भीष्म छोटे भाई विचित्रवीर्य के व्याह की तयारी करने लगे ॥५९॥ सत्यवती से सलाह करके काशिराज की कन्याओं का विवाह कराने का उद्योग करते देखकर भीष्म से बड़ी

मया सौभपतिः पूर्वं मनसा हि वृतः पतिः । तेन चास्मि वृता पूर्वमेषकामश्च मे पितुः ॥६१॥
मया वरयितव्योऽभूच्छाल्वस्तस्मिन्स्वयंवरे । एतद्विज्ञाय धर्मज्ञ धर्मतत्वं समाचर ॥६२॥
एवमुक्तस्तया भीष्मः कन्यया विप्रसंसदि । चिन्तामभ्यगमद्वीरो युक्तां तस्यैव कर्मणः ॥६३॥
विनिश्चित्य स धर्मज्ञो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । अनुजज्ञे तदाज्येष्ठामम्बां काशिपतेः सुताम् ॥६४॥
अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद्भ्रात्रे यवीयसे । भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा ॥६५॥
तयोः पाणी गृहीत्वा तु रूपयौवनदर्पितः । विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कामात्मा समपद्यत ॥६६॥
ते चापि बृहतीश्यामे नीलकुञ्चितमूर्धजे । रक्ततुङ्गनखोपेते पीनश्रोणिपयोधरे ॥६७॥
आत्मनः प्रतिरूपोऽसौ लब्धः पतिरितिस्थिते । विचित्रवीर्यं कल्याण्यौ पूजयामाभतुः शुभे ॥६८॥
सचाश्विरूपसदृशो देवतुल्य पराक्रमः । सर्वासामेव नारीणां चित्तप्रमथनोरहः ॥६९॥
ताभ्यां सह समाः सप्त विहरन्पृथिवीपतिः । विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्मणा समगृह्यत ॥७०॥
सुहृदां यतमानानामाप्तैः सहचिकित्सकैः । जगामास्तमिवादित्यः कौरव्योयमसादनम् ॥७१॥
धर्मात्मा स तु गाङ्गेयश्चिन्ताशोकपरायणः । प्रेत कार्याणि सर्वाणि तस्य सम्यगकारयत् ॥७२॥
राज्ञो विचित्रवीर्यस्य सत्यवत्यामतेस्थितः । ऋत्विग्भिः सहितो भीष्मः सर्वश्च कुरुपुंगवैः ॥७३॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि विचित्रवीर्योपरमे द्वाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

कन्या इस प्रकार बोली ॥६०॥ मैंने शाल्वराज को मन ही-मन अपना पति चुना है, उन्होंने भी मुझे चुना है और मेरे पिता की भी इस विषय में सम्मति है ॥६१॥ स्वयंवर सभा में मैं उन्हीं का वरण करती । अब आपको धर्मानुसार जो उचित जान पड़े, वह करें ॥६२॥ कन्या के ऐसा कहने पर ब्राह्मणों की सभा में, उसी विवाह के समय, भीष्म विचार करने लगे। वेदज्ञ ब्राह्मणों से परामर्श करके, काशिराज की बड़ी कन्या अम्बा को उन्होंने शाल्वराज के पास जाने की आज्ञा दे दी ॥६३-६४॥ अनन्तर वैदिक विधान के अनुसार भीष्म ने छोटे भाई विचित्रवीर्य का ब्याह अम्बिका और अम्बालिका से कर दिया ॥६५॥ विचित्रवीर्य ने उन दोनों कन्याओं से ब्याह किया। वे रूपवान् थे, युवा थे। धर्मात्मा होने पर भी वे कामी हो गये ॥६६॥ वे कन्याएँ प्रौढ़ थीं, उनके कोई सन्तान नहीं हुई थी, उनके बाल काले और घुँघराले थे। उनके नख लाल और उठे हुए थे। कमर के पीछे का भाग तथा छाती उठी हुई थीं ॥६७॥ विचित्रवीर्य को अपने योग्य पति पाकर वे दोनों कल्याणी कन्याएँ उनकी आराधना करने लगीं ॥६८॥ राजा अश्विनीकुमारों के समान सुन्दर और देवताओं के समान पराक्रमी थे। वे एकान्त में स्त्रियों का मन हर लेते थे ॥६९॥ राजा ने उन कन्याओं के साथ सात वर्षों तक विहार किया। अनन्तर युवावस्था में ही वे यक्ष्मा रोग से पीड़ित हो गये ॥७०॥ प्रामाणिक वैद्यों के साथ उनके हितैषियों ने बहुत प्रयत्न किये, फिर भी कुरुराज की मृत्यु हो गयी, वे सूर्य के समान अस्त हो गये ॥७१॥ इससे धर्मात्मा गाङ्गेय बहुत चिन्तित हुए। सत्यवती की आज्ञा के अनुसार ऋत्विजों तथा प्रधान कौरवों के साथ उन्हाने राजा विचित्रवीर्य के अन्तिम कृत्य विधिवत् कराये ॥७२,७३॥

द्विअधिक शततम अध्याय ।

वैशम्पायन उवाच—

ततः सत्यवती दीना कृपणा पुत्रगृद्धिनी । पुत्रस्य कृत्वा कार्याणि स्नुषाभ्यां सह भारत ॥१॥
समाश्वास्य स्नुषे ते च भीष्मं शस्त्रभृतांवरम् । धर्मञ्च पितृवंशञ्च मातृवंशञ्च भाविनी ॥
प्रसमीक्ष्य महाभागा गांगेयं वाक्यमब्रवीत् ॥२॥
शान्तनोर्धर्मनित्यस्य कौरव्यस्य यशस्विनः । त्वयि पिण्डश्च कीर्तिश्च सन्तानञ्च प्रतिष्ठितम् ॥३॥
यथाकर्म शुभं कृत्वा स्वर्गोपगमनं ध्रुवम् । यथाचायुर्ध्रुवं सत्ये त्वयि धर्मस्तथा ध्रुवः ॥४॥
वेत्थ धर्मांश्च धर्मज्ञ समासेनेतरेण च । विविधास्त्वं श्रुतीर्वेत्थ वेदांगानि च सर्वशः ॥५॥
व्यवस्थानं च ते धर्मे कुलाचारं च लक्षये । प्रतिपत्तिं च कृच्छ्रेषु शुक्रांगिरसयोरिव ॥६॥
तस्मात्सुभृशमाश्वस्य त्वयि धर्मभृतांवर । कार्ये त्वां विनियोक्ष्यामि तच्छ्रुत्वा कर्तुमर्हसि ॥७॥
मम पुत्रस्तवभ्राता वीर्यवान्सुप्रियश्च ते । बाल एव गतः स्वर्गमपुत्रः पुरुषर्षभ ॥८॥
इमे महिष्यो भ्रातुस्ते काशिराजसुते शुभे । रूपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च भारत ॥९॥
तयोरुत्पादयापत्यं सन्तानाय कुलस्य नः । मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्तुमिहार्हसि ॥१०॥
राज्येचैवाभिषिच्यस्व भारताननुशाधि च । दारांश्च कुरु धर्मेण मानिमज्जीः पिता महान् ॥११॥

सत्यवती का अम्बा और अम्बालिका से नियोग के द्वारा पुत्र उत्पन्न करने का भीष्म से अनुरोध करना और भीष्म की अस्वीकृति ।

वैशम्पायन बोले—पुत्र-प्रेमवती सत्यवती इस घटना से बहुत दुःखी हुई । उस बेचारी ने पुत्रवधुओं के साथ पुत्र के अन्तिम कृत्य किये ॥१॥ उन्होंने पुत्रवधुओं को समझाया, धैर्य बँधाया, वीर भीष्म को भी समझाया । धर्म और पिता-माता के वंश का विचार करके वह भीष्म से बोली ॥२॥ धर्मात्मा और यशस्वी कुरुराज को पिण्ड देनेवाले, उनकी कीर्ति तथा सन्तान बढ़ानेवाले, अब एक तुम्हीं हो ॥३॥ जिस प्रकार पुण्यकर्मों के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति निश्चित है, जिस प्रकार सत्य में आयु की अधिकता निश्चित है, उसी प्रकार तुम में धर्म निश्चित है ॥४॥ धर्मज्ञ ! तुम अनेक प्रकार के धर्मों को संक्षेप और विस्तार रूप से जानते हो, वेदों और वेदाङ्गों को भी तुम जानते हो ॥५॥ शुक्र और अङ्गिरा के समान तुम में धार्मिक दृढ़ता है, कुलाचार में अनुराग है और विपत्ति के समय जागरूकता है ॥६॥ अतएव धार्मिक-श्रेष्ठ ! तुमपर विश्वास करके तुम्हें एक कार्य का भार देती हूँ । तुम सुनो और मेरे कहने के अनुसार कार्य करो ॥७॥ पुरुष-श्रेष्ठ ! मेरा पुत्र और तुम्हारा प्रिय भाई पराक्रमी विचित्रवीर्य बाल्यावस्था में ही मर गया, उसके कोई पुत्र नहीं है ॥८॥ उनकी ये दो रानियाँ, जो काशिराज की कन्याएँ हैं, रूपवती और युवती हैं, पुत्र चाहती हैं ॥९॥ इन दोनों के गर्भ से, कुल की रक्षा के लिए, तुम पुत्र उत्पन्न करो, यह मैं आज्ञा देती हूँ । यह धर्म-कार्य तुमको करना चाहिए ॥१०॥ राज्य पर अपना अभिषेक कराओ, भरतवंशियों का शासन करो । धर्मपूर्वक ब्याह करो, पितरों को डूबने मत दो ॥११॥

वैशम्पायन उवाच—

तथोच्यमानो मात्रा स सुहृद्भिश्च परन्तपः। इत्युवाचाथधर्मात्मा धर्म्यमेवोत्तरं वचः ॥१२॥
असंशयं परोधर्मस्त्वया मातरुदाहृतः। त्वमपत्यंप्रति च मे प्रतिज्ञां वेत्थ वै पराम् ॥१३॥
जानासि च यथावृत्तं शुल्कहेतोस्त्वदन्तरे। स सत्यवति सत्यं ते प्रतिजानाम्यहं पुनः ॥१४॥
परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः। यद्वाऽप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथञ्चन ॥१५॥
त्यजेच्च पृथिवीगंधमापश्च रसमात्मनः। ज्योतिस्तथात्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत् ॥१६॥
प्रभांसमुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मताम्। त्यजेच्छब्दं तथाऽऽकाशं सोमःशीतांशुतां त्यजेत् ॥१७॥
विक्रमं वृत्रहाजह्याद्धर्मंजह्याच्च धर्मराट्। नत्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथञ्चन ॥१८॥
एवमुक्ता तु पुत्रेण भूरिद्रविणतेजसा। माता सत्यवती भीष्ममुवाच तदनन्तरम् ॥१९॥
जानामि ते स्थितिं सत्ये परां सत्यपराक्रम। इच्छन्सृजेथास्त्रींल्लोकानन्यांस्त्वं स्वेन तेजसा ॥२०॥
जानामि चैवं सत्यं तन्मदर्थे यच्च भाषितम्। आपद्धर्मं त्वमावेक्ष्य वहयैता महीधुरम् ॥२१॥
यथा ते कुलतन्तुश्च धर्मश्च न पराभवेत्। सुहृदश्च प्रहृष्येरंस्तथा कुरु परन्तप ॥२२॥
लालप्यमानां तामेवं कृपणां पुत्रगृद्धिनीम्। धर्मादपेतं ब्रुवतीं भीष्मो भूयोऽब्रवीदिदम् ॥२३॥

वैशम्पायन बोले—माता और मित्रों के ऐसा परामर्श देने पर धर्मात्मा भीष्म ने उन-लोगों को धर्मानुकूल इस प्रकार उत्तर दिया ॥१२॥ माता! आपने उत्तम धर्म का उपदेश दिया है, इसमें सन्देह नहीं; पर पुत्र उत्पन्न करने के विषय में मैंने जो प्रतिज्ञा की है, वह आपको मालूम है ॥१३॥ सत्यवति! वह प्रतिज्ञा मैंने तुम्हारे ही लिए की है। उसी प्रतिज्ञा के बदले में मैंने तुम्हारा ब्याह अपने पिता से कराया था, उस अपनी सत्य प्रतिज्ञा को पुनः तुम्हारे सामने दुहराता हूँ ॥१४॥ मैं त्रैलोक्य छोड़ सकता हूँ, देवताओं का राज्य छोड़ सकता हूँ, अथवा इससे भी अधिक कुछ हो तो उसका भी त्याग कर सकता हूँ, पर सत्य का त्याग किसी प्रकार नहीं कर सकता। पृथिवी अपने गुण-गन्ध को छोड़ दे, जल रस छोड़ दे, अग्नि रूप छोड़ दे, वायु अपना स्पर्श-गुण छोड़ दे, सूर्य प्रकाश छोड़ दे, आग गरमी छोड़ दे, आकाश शब्द को छोड़ दे, चन्द्रमा शीतलता छोड़ दे, इन्द्र पराक्रम छोड़ दे, धर्मराज धर्म छोड़ दे, पर मैं सत्य छोड़ने का विचार भी नहीं कर सकना ॥१५-१८॥ बली और उत्साही भीष्म के ऐसा कहने पर माता सत्यवती भीष्म से बोली ॥१९॥ सत्य पराक्रम! सत्य में तुम्हारी अतुल श्रद्धा है, यह मैं जानती हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि इच्छा करते ही तुम दूसरे तीन लोकों की सृष्टि कर सकते हो ॥२०॥ मेरे लिए तुमने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे भी मैं जानती हूँ; पर तुमको आपत्धर्म समझकर पिता-पितामहों के इस भार को सँभालना चाहिए ॥२१॥ जिस तरह कुल का नाश न हो, धर्म की हानि न हो और मित्र भी प्रसन्न हों, वैसा तुमको करना चाहिए ॥२२॥ बेचारी सत्यवती इस प्रकार बार बार कह रही थी। पुत्र की अभिलाषा से वह धर्म-विरुद्ध कह रही थी। उससे भीष्मदेव पुनः बोले ॥२३॥ महारानी!

राज्ञि धर्माननवेक्षस्व मानः सर्वान् व्यनीनशः । सत्याच्च्युतिः क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रशस्यते ॥२४॥
शान्तनोरपि सन्तानं तथास्यादक्षयं भुवि । तत्ते धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम् ॥२५॥
श्रुत्वा तं प्रतिपद्यस्व प्राज्ञैः सहपुरोहितैः । आपद्धर्मार्थकुशलैर्लोकतन्त्रमवेक्ष्य च ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि भीष्मसत्यवतीसम्वादेत्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥१०३॥

भीष्म उवाच—

जामदग्न्येन रामेण पितुर्वधममृष्यता । राजापरशुना पूर्वं हैहयाधिपतिर्हतः ॥१॥
शतानि दशबाहूनां निकृत्तान्यर्जुनस्य वै । लोकस्याचरितो धर्मस्तेनाति किल दुश्चरः ॥२॥
पुनश्च धनुरादाय महास्त्राणि प्रमुञ्चता । निर्दग्धं क्षत्रमसकृद्रथेन जयता महीम् ॥३॥
एवमुच्चावचैरस्त्रैर्भार्गवेण महात्मना । त्रिःसप्त कृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा ॥४॥
एवं निःक्षत्रियो लोके कृते तेन महर्षिणा । ततः सम्भूय सर्वाभिः क्षत्रियाभिः समन्ततः ॥५॥
उत्पादितान्यपत्यानि ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम् ॥६॥
धर्मं मनसि संस्थाप्य ब्राह्मणांस्ताः समभ्ययुः । लोकेऽप्याचरितो दृष्टः क्षत्रियाणां पुनर्भवः ॥७॥

आप धर्म की ओर देखें, हम-सब का नाश न करें। सत्य-भ्रष्ट होना क्षत्रिय के लिए प्रशंसित नहीं है ॥२४। राजा शान्तनु का कुल-नाश न हो, इसका क्षत्रियोचित सनातन उपाय मैं आपको बतलाता हूँ ॥२५॥ जो मैं कहूँ, वह सुनकर आप कर्तव्य निर्णय करें। बुद्धिमान् तथा आपत्धर्म के विषय में ज्ञान रखनेवाले पुरोहितों से सम्मति ले लें तथा लोक-व्यवहार को भी देख लें। ऐसे समय में दूसरे लोग क्या करते हैं, इसका भी विचार कर लें ॥२६॥

त्रिअधिक शततम अध्याय।

दीर्घतमा ऋषि की कथा।

भीष्म बोले—जमदग्नि-पुत्र परशुराम ने पिता के वध से क्रुद्ध होकर परशु से हैहयाधिपति राजा कार्तवीर्य को मार डाला ॥१॥ राजा की हज़ार भुजाओं को उन्होंने काट डाला। इस प्रकार बदला लेने के लोक-व्यवहार का उन्होंने पालन किया ॥२॥ पुनः विशाल धनुष लेकर, उस से महास्त्र छोड़कर, उन्होंने क्षत्रियकुल को जला दिया, रथ पर चढ़कर उन्होंने पृथिवी जीती ॥३॥ महात्मा भार्गव ने इस प्रकार छोटे-बड़े अनेक अस्त्रों से इक्कीस बार इस पृथिवी को क्षत्रियहीन बना दिया॥४॥ जब महर्षि परशुराम ने पृथिवी को निःक्षत्रिय बना दिया, तब क्षत्राणियोंने एकत्र होकर वेदज्ञ ब्राह्मणों से सङ्ग किया और पुत्र उत्पन्न किये। वे पुत्र अपने पिता के नाम से प्रसिद्ध हुए॥५-६॥ ब्राह्मणों ने धर्मानुकूल उन क्षत्रिय-स्त्रियों से सङ्गम किया था। अतः ब्राह्मणों के द्वारा क्षत्राणियों के गर्भ से पुत्र उत्पन्न कराने की विधि लोकाचार के अनुसार भी ठीक है ॥७॥ इस प्रकार क्षत्रिय-

ततः पुनः समुदितं क्षत्रं समभवत्तदा । इमं चैवात्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ॥८॥
अथोतथ्य इतिख्यात आसीद्धीमानृषिः पुरा । ममतानाम तस्यासीद्भार्या परमसम्मता ॥९॥
उतथ्यस्य यवीयांस्तु पुरोधास्त्रिदिवौकसाम् । बृहस्पतिर्बृहत्तेजा ममतामन्वपद्यत ॥१०॥
उवाच ममता तं तु देवरं वदतांवरम् । अन्तर्वत्नीत्वहं भ्रात्रा ज्येष्ठे नारम्यतामिति ॥११॥
अयं च मे महाभाग कुक्षावेव बृहस्पते । औतथ्यो वेदमत्रापि षडङ्गं प्रत्यधीयत ॥१२॥
अमोघरेतास्त्वंचापि द्वयोर्नास्त्यत्र सम्भवः । तस्मादेवं गतेत्वद्य उपारमितुमर्हसि ॥१३॥
एवमुक्तस्तदा सम्यक् बृहस्पतिरुदारधीः । कामात्मानं तदाऽऽत्मानं न शशाक नियच्छितुम् ॥१४॥
स बभूव ततः कामी तया सा धर्मकामया । उत्सृजन्तं तु तं रेतः स गर्भस्थोऽभ्यभाषत ॥१५॥
भोस्तात मागमः कामं द्वयोर्नास्तीह सम्भवः । अल्पावकाशो भगवन्पूर्वं चाहमिहागतः ॥१६॥
अमोघरेताश्च भवान्नपीड़ां कर्तुमर्हति । अश्रुत्वैव तु तद्वाक्यं गर्भस्थस्य बृहस्पतिः ॥१७॥
जगाम मैथुनायैव ममतां चारुलोचनाम् । शुक्रोत्सर्गं ततो बुद्ध्वा तस्यागर्भगतोमुनिः ॥१८॥
पद्भ्यामारोधयन्मार्गं शुक्रस्य च बृहस्पतेः । स्थानमप्राप्तमथतच्छुक्रं प्रतिहतं तदा ॥१९॥
पपात सहसा भूमौ ततः क्रुद्धो बृहस्पतिः । तं दृष्ट्वा पतितं शुक्रं शशाप सरुषाऽन्वितः ॥२०॥

वंश की पुनः उत्पत्ति हुई । इस सम्बन्ध का एक पुराना इतिहास मैं आप से कहता हूँ ॥८॥

उतथ्य नाम से प्रसिद्ध एक बुद्धिमान् ऋषि पहले थे, उनकी स्त्री का नाम ममता था, जो ऋषि को बड़ी प्रिय थी ॥९॥ उतथ्य के छोटे भाई, देवताओं के पुरोहित, तेजस्वी बृहस्पति एक बार ममता के पास गये ॥१०॥ ममता ने उनसे कहा—आप के बड़े भाई से मैं गर्भवती हूँ, अतएव आप यह विचार छोड़ दीजिए । यह इच्छा छोड़िए ॥११॥ महाभाग बृहस्पति ! उतथ्य का यह गर्भ मेरे पेट में ही षड्ङ्ग वेद का अध्ययन कर रहा है ॥१२॥ तुम भी अमोघवीर्य हो, तुम से भी अवश्य गर्भ रहेगा । एक स्थान पर दो गर्भों का रहना सम्भव नहीं है, अतएव ऐसी दशा में तुम्हें अपनी इच्छा का त्याग करना उचित है ॥१३॥ बुद्धिमान् बृहस्पति ममता के इस प्रकार समझाने पर भी अपने काम-परवश मन को नहीं रोक सके । उन्होंने रमण की इच्छा नहीं छोड़ी ॥१४॥ वे कामवश होकर उसके पास गये, जो सङ्गम करना नहीं चाहती थी । जब बृहस्पति का वीर्यपात होने लगा, तब गर्भस्थ बालक उनसे बोला ॥१५॥ तात ! आप काम-परवश न हों, दो गर्भों के लिए यहाँ स्थान नहीं है । यहाँ थोड़ी जगह है और मैं पहले से यहाँ आया हूँ ॥१६॥ आप का वीर्य अमोघ है, उस से गर्भ अवश्य होगा, अतएव आप मुझे दुःख न दें । पर बृहस्पति ने उस गर्भस्थ बालक की बात सुनी ही नहीं ॥१७॥ वे चारुनेत्रा ममता के पास मैथुन करने के लिए गये । बृहस्पति का वीर्यपात देखकर, उस गर्भस्थ बालक ने पैरों से वीर्य के प्रवेश के स्थान को रोक दिया । स्थान न मिलने से वह वीर्य रुका और पृथिवी पर गिर गया । इससे बृहस्पति को बड़ा क्रोध आया । अपना वीर्य पृथिवी पर पड़ा देखकर उन्होंने उतथ्य के गर्भस्थ बालक को डाँटकर शाप दिया । तुमने सब

उतथ्यपुत्रं गर्भस्थं निर्भर्त्स्य भगवानृषिः । यन्मां त्वमीदृशेकाले सर्वभूतेप्सिते सति ॥२१॥
एवमात्थ वचस्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि । स वै दीर्घतमानाम शापादृषिरजायत ॥२२॥
बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तेर्बृहस्पतिरिवौजसा । जात्यन्धो वेदवित्प्राज्ञः पत्नीं लेभे स विद्यया ॥२३॥
तरुणीं रूपसम्पन्नां प्रद्वेषीं नाम ब्राह्मणीम् । स पुत्रान् जनयामास गौतमादीन्महायशाः ॥२४॥
ऋषेरुतथ्यस्य तदा सन्तानकुलवृद्धये । धर्मात्मा च महात्मा च वेदवेदाङ्गपारगः ॥२५॥
गोधर्मं सौरभेयाच्च सोऽधीत निखिलं मुनिः । प्रावर्तत तदाकर्तुं श्रद्धावांस्तमशंकया ॥२६॥
ततो वितथमर्यादं तं दृष्ट्वा मुनिसत्तमाः । क्रुद्धामोहाभिभूतास्ते सर्वे तत्राश्रमौकसः ॥२७॥
अहोऽयं भिन्नमर्यादो नाश्रमेवस्तुमर्हति । तस्मादेनं वयं सर्वे पापात्मानं त्यजामहे ॥२८॥
इत्यन्योऽन्यं समाभाष्य ते दीर्घतमसं मुनिम् । पुत्रलाभा च सा पत्नी न तुतोष पतिं तदा ॥२९॥
प्रद्विषन्तीं पतिर्भार्यां किं मां द्वेक्षीतिचाब्रवीत् ।

प्रद्वेष्युवाच— भार्याया भरणाद्भर्ता पालनाच पतिः स्मृतः ॥३०॥
अहं त्वद्भरणाशक्काजात्यन्धंससुतं तदा । नित्यकालं श्रमेणार्ता न भरेयं महातपः ॥३१॥

प्राणियों के प्रिय समय में मुझे रोका है, मुझ से ऐसी बातें कही हैं, अतएव तुम सदा के लिए अन्धे हो जाओगे । शाप से वह गर्भस्थ बालक दीर्घतमा नामक ऋषि उत्पन्न हुआ ॥ १८-२२ ।

ये दीर्घतमा ऋषि बृहस्पति के समान तेजस्वी थे, जन्मान्ध होने पर भी वेदज्ञ और बुद्धिमान् थे । उन्होंने विद्याबल से सुन्दरी-युवती स्त्री पायी, जिसका नाम प्रद्वेषी था। यशस्वी दीर्घतमा ने गौतम आदि नाम के पुत्र उत्पन्न किये ॥२३-२४॥ अनन्तर उतथ्य ऋषि की वंश-वृद्धि के लिए वेद-वेदाङ्ग-पारग, धर्मात्मा, महात्मा दीर्घतमा ने कामधेनु के पुत्र से समस्त गोधर्म का अच्छी तरह अध्ययन किया । बैलों के समान मैथुन करना सीखा । तब से वे निःशङ्क हो-कर सब के सामने मैथुन करने लगे ॥२५,२६॥ दीर्घतमा के मर्यादा तोड़ने से. वहाँ आश्रम में रहने वाले मुनियों को बड़ा क्रोध हुआ । उनलोगों ने निष्पाप ऋषि को पापी समझा ॥२७॥ उनलोगों ने निश्चय किया कि दीर्घतमा ऋषि ने मर्यादा तोड़ दी है, इनके साथ आश्रम में हमलोग नहीं रह सकते, अतएव हम सब मिलकर इनका त्याग करते हैं ॥२८॥ इस प्रकार आपस में विचार कर उनलोगों ने दीर्घतमा को आश्रम से बाहर कर दिया ।

उस समय अधिक पुत्रों के उत्पन्न होने के कारण उनकी स्त्री भी उनसे प्रसन्न नहीं रहती थी ॥२९॥ स्त्री के द्वेष करने की बात ऋषि को भी मालूम हुई ; अतएव उन्होंने पूछा—तुम मुझसे क्यों द्वेष करती हो ?

प्रद्वेषी ने कहा—भार्या के भरण करने से भर्ता और पालन करने से पति कहा जाता है ॥३०॥ तुम तो मेरा भरण करते नहीं, किन्तु मैं ही तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रों का भरण करती हूँ, पर अब असमर्थ हो गयी हूँ । सदा परिश्रम करने से थक गई हूँ । अब मैं तुमलोगों का भरण न करूँगी ॥३१॥

भीष्म उवाच—

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिः कोपसमन्वितः। प्रत्युवाच ततः पत्नीं प्रद्वेषीं ससुतां तदा ॥३२॥
नीयतां क्षत्रियकुले धनार्थश्च भविष्यति।

प्रद्वेष्युवाच— त्वयादत्तं धनं विप्रनेच्छेयं दुःखकारणम् ॥३३॥
यथेष्टं कुरु विप्रेन्द्र न भरेयं पुरा यथा।

दीर्घतमा उवाच— अद्यप्रभृति मर्यादा मया लोके प्रतिष्ठिता ॥३४॥
एक एव पतिर्नार्या यावज्जीवं परायणम्। मृते जीवति वा तस्मिन्नापरं प्राप्नुयान्नरम् ॥३५॥
अभिगम्य परं नारी पतिष्यति न संशयः। अपतीनां तु नारीणामद्यप्रभृति पातकम् ॥३६॥
यद्यस्ति चेद्धनं सर्वं वृथाभोगा भवन्तु ताः। अकीर्तिः परिवादाश्च नित्यं तासां भवन्तु वै ॥३७॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणी भृशकोपिता। गङ्गायां नीयतामेष पुत्रा इत्येवमब्रवीत् ॥३८॥
लोभमोहाभिभूतास्ते पुत्रास्तंगौतमादयः। बद्ध्वोडुपे परिक्षिप्य गङ्गायां समवासृजन् ॥३९॥
कस्मादन्धश्चवृद्धश्च भर्तव्योऽयमितिस्मते। चिन्तयित्वा ततः क्रूराः प्रतिजग्मुरथो गृहान् ॥४०॥
सोऽनुस्रोतस्तदाविप्रः प्लवमानो यदृच्छया। जगाम सुबहून्देशानन्धस्तेनोडुपेन ह ॥४१॥
तं तु राजा बलिर्नाम सर्वधर्मविदांवरः। अपश्यन्मज्जनगतः स्रोतसाऽभ्याशमागतम् ॥४२॥

भीष्म बोले—प्रद्वेषी के वचन सुनकर ऋषि ने क्रोध किया और वे पुत्रवती प्रद्वेषी से इस प्रकार बोले—यदि ऐसी बात है, तो तुम क्षत्रिय-कुल में जन्म ग्रहण करो, वहाँ धन भी होगा और भोग भी होगा।

प्रद्वेषी बोली—ब्राह्मण! तुम्हारा दिया हुआ धन मुझे न चाहिए, क्योंकि उससे दुःख होगा। अतएव अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिए; अब पहले के समान मैं आपलोगों का भरण न कर सकूँगी अर्थात् अब मैं दूसरा पति करूँगी।

दीर्घतमा बोले—आज से समाज में मैं स्त्रियों के लिए मर्यादा बाँधता हूँ ॥३२-३४॥ आज से कोई स्त्री अपने जीवन-पर्यन्त एक ही पति कर सकेगी। पति के जीवनकाल में या मरने पर वह दूसरा पुरुष नहीं कर सकेगी ॥३५॥ जो स्त्री दूसरे पुरुष के यहाँ जायगी, वह पापिनी होगी। पतिहीना भी दूसरे पुरुष के यहाँ जाकर पाप-भागिनी होगी ॥३६॥ यदि किसी पतिहीना स्त्री के पास धन हो, तो भी वह भोग न कर सकेगी, पुरुष के साथ सङ्गम न कर सकेगी; यदि करेगी तो उसकी निन्दा होगी, अपवाद होगा ॥३७॥ महर्षि के ये वचन सुनकर ब्राह्मणी ने बड़ा क्रोध किया और ऋषि को गंगा में डाल देने की आज्ञा पुत्रों को दी ॥३८॥ लोभी और मूर्ख गौतम आदि पुत्रों ने ऋषि को बाँधकर एक नाव में रखकर गंगा में छोड़ दिया ॥३९॥ इस अन्धे और बूढ़े का भरण कहाँ से कर सकेंगे, इस प्रकार विचार करते हुए, वे निर्दय पुत्र घर लौट आये ॥४०॥

वे अन्धे महात्मा, उस नाव पर बैठकर धारा के साथ बहते हुए अनेक देशों में गये ॥४१॥ एक बार धर्मात्मा राजा बलि ने स्नान करने के समय डूबते हुए दीर्घतमा को अपने पास ही

जग्राह चैनं धर्मात्मा वलिः सत्यपराक्रमः। ज्ञात्वाचैवं स वव्रेऽथ पुत्रार्थे भरतर्षभ ॥४३॥
सन्तानार्थं महाभाग भार्यासु मम मानद। पुत्रान्धर्मार्थकुशलानुत्पादयितुमर्हसि ॥४४॥
एवमुक्तः स तेजस्वी तं तथेत्युक्तवानृषिः। तस्मै स राजा स्वां भार्यां सुदेष्णां प्राहिणोत्तदा ॥४५॥
अन्धंवृद्धं च तं मत्वा न सा देवी जगाम ह। स्वां तु धात्रेयिकां तस्मै वृद्धाय प्राहिणोत्तदा ॥४६॥
तस्यां काक्षीवदादीन्सशूद्रयोनावृषिस्तदा। जनयामास धर्मात्मा पुत्रानेकादशैव तु ॥४७॥
काक्षीवदादीन्पुत्रांस्तान्दृष्ट्वा सर्वानधीयतः। उवाच तमृषिं राजा ममेम इति भारत ॥४८॥
नेत्युवाच महर्षिस्तं ममेम इति चाब्रवीत्। शूद्रयोनौ मयाहीमे जातः काक्षीवदादयः ॥४९॥
अन्धंवृद्धं च मां दृष्ट्वा सुदेष्णा महिषी तव। अवमन्य ददौ मूढा शूद्रां धात्रेयिकां मम ॥५०॥
ततः प्रसादयामास पुनस्तमृषिसत्तमम्। बलिः सुदेष्णां स्वां भार्यां तस्मै स प्राहिणोत्पुनः ॥५१॥
तां स दीर्घतमाऽङ्गेषु स्पृष्ट्वादेवीमथाब्रवीत्। भविष्यन्ति कुमारास्ते तेजसाऽऽदित्यवर्चसः ॥५२॥
अङ्गोवंगः कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्मश्च ते सुताः। तेषां देशाः समाख्याताः स्वनामकथिता भुवि ॥५३॥
अङ्गस्याङ्गोऽभवद्देशो वंगो वङ्गस्य च स्मृतः। कलिङ्गविषयश्चैव कलिङ्गस्य च स स्मृतः ॥५४॥
पुण्ड्रस्यपुण्ड्राःप्रख्याताः सुह्माःसुह्मस्यच स्मृताः। एवं बलेः पुरावंशः प्रख्यातो वै महर्षिजः ॥५५॥

देखा ॥४२॥ धर्मात्मा और सच्चे पराक्रमी बलि ने उन्हें निकाला और उनका परिचय पाकर उन्होंने अपने लिए पुत्र उत्पन्न करने को कहा ॥४३॥ उन्होंने कहा—मानद! आप मेरी स्त्रियों में धर्मार्थ-कुशल पुत्र उत्पन्न करें ॥४४॥ राजा की प्रार्थना तेजस्वी ऋषि ने स्वीकार की। राजा ने अपनी महारानी सुदेष्णा को ऋषि के पास भेजा ॥४५॥ पर ऋषि को अन्धा तथा बूढ़ा देखकर वह देवी उनके पास न गयीं और अपनी दासी उन्होंने उस अन्धे के पास भेज दी ॥४६॥ ऋषि ने उस शूद्रा के गर्भ से काक्षीवत् आदि बारह धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किये ॥४७॥ काक्षीवत् आदि सभी लड़के अध्ययन करने लगे। उनको देखकर राजा ने कहा—ये मेरे पुत्र हैं ॥४८॥ ऋषि ने कहा—नहीं, ये पुत्र मेरे हैं, क्योंकि इन काक्षीवत् आदि को मैंने शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न किया है ॥४९॥ तुम्हारी मूर्ख महारानी, सुदेष्णा, ने मुझे अन्धा और बूढ़ा समझ लिया; अतएव मेरा तिरस्कार करके उन्होंने मेरे यहाँ अपनी दासी भेज दी ॥५०॥ राजा बलि ने मुनि को प्रसन्न किया, पुनः पुत्र उत्पन्न कर देने के लिए राजी किया और महारानी सुदेष्णा को उनके यहाँ भेजा ॥५१॥ ऋषि ने महारानी के अङ्ग स्पर्श किये और वे उनसे बोले—सूर्य के समान तेजस्वी आपके पुत्र होंगे ॥५२॥ अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सुह्म उनके नाम होंगे। ये जिस देश में रहेंगे, उस देश का नाम भी इन्हीं के नाम पर होगा ॥५३॥ अङ्ग का निवास-स्थान अङ्ग देश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बङ्ग के नाम बंगदेश। कलिंग के रहने के कारण, कलिंग देश नाम पड़ा ॥५४॥ पुण्ड्र का निवास-स्थान पुण्ड्र और सुह्म का निवास-स्थान सुह्म हुआ ॥५५॥ इस प्रकार ब्राह्मणों के द्वारा बली, पराक्रमी और

एवमन्ये महेष्वासा ब्राह्मणैः क्षत्रिया भुवि । जाताः परमधर्मज्ञा वीर्यवन्तो महाबलाः ॥
एतच्छ्रुत्वा त्वमप्यत्र मातः कुरु यथेप्सितम् ॥५६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि भीष्मसत्यवतीसंवादे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

भीष्म उवाच--

पुनर्भरतवंशस्य हेतुं सन्तानवृद्धये । वक्ष्यामि नियतं मातस्तन्मे निगदतः शृणु ॥१॥
ब्राह्मणो गुणवान्कश्चिद्धनेनोपनिमन्त्र्यताम् । विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु यः समुत्पादयेत्प्रजाः ॥२॥

वैशम्पायन उवाच--

ततः सत्यवती भीष्मं वाचा संसज्जमानया । विहसन्तीव सव्रीडमिदं वचनमब्रवीत् ॥३॥
सत्यमेतन्महाबाहो यथावदसि भारत । विश्वासात्ते प्रवक्ष्यामि सन्तानाय कुलस्य नः ॥४॥
न ते शक्यमनाख्यातुमापद्धर्मं तथाविधम् । त्वमेव नः कुले धर्मस्त्वं सत्यं त्वं परा गतिः ॥५॥
तस्मान्निशम्य सत्यं मे कुरुष्व यदनन्तरम् । धर्मयुक्तस्य धर्मार्थं पितुरासीत्तरी मम ॥६॥
सा कदाचिदहं तत्र गता प्रथमयौवनम् । अथ धर्मविदां श्रेष्ठः परमर्षिः पराशरः ॥७॥

धर्मात्मा क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई है। माता! यह सुनने के पश्चात् आप जो उचित समझें करें ॥५६॥ चतुरधिक शततम अध्याय।

सत्यवती का अपने कौमार्य में उत्पन्न हुए व्यास की जन्मकथा कहना, व्यासदेव का सत्यवती के अनुरोध से अम्बा तथा अम्बालिका से सन्तान उत्पन्न करने की स्वीकृति देना।

भीष्म बोले—माता! भरतवंश की वृद्धि का उपाय मैं पुनः आप से कहता हूँ। आप सावधान होकर सुनें ॥१॥ आप किसी गुणी ब्राह्मण को धन देकर बुलवावें, जो विचित्रवीर्य की स्त्रियों से पुत्र उत्पन्न करें ॥२॥

वैशम्पायन बोले—सत्यवती हँसती हुई लज्जित होकर भीष्म से बोली; बोलते समय उसकी वाणी रुक-रुक जाती थी ॥३॥ भारत! तुम जो कहते हो, वह सत्य है। मैं तुमको अपना समझती हूँ; अतएव अपने कुल की वृद्धि की बात कहती हूँ ॥४॥ वह आपद्धर्म है; अतएव तुम्हें उसे अस्वीकार नहीं करना चाहिए; क्योंकि हमारे कुल में तुम्हीं एक धर्म-रक्षक हो, तुम्हीं सत्य हो और परम गति हो ॥५॥ मेरी बात सुनकर आगे का जो कर्तव्य है, उसको तुम सत्य करो अर्थात् उसका पालन करो। धर्मात्मा! मेरे पिता की एक नौका थी, उसी से उनका योग-क्षेम चलता था ॥६॥ यौवन के प्रारम्भ में ही मैं एक बार उस नौका पर गयी थी, वहाँ महर्षि पराशर, जो श्रेष्ठ धर्मात्मा थे, यमुना के पार जाने के लिए आये। मैं उन्हें यमुना पार कराने लगी। वे मुनि काम-

आजगाम तरीं धीमांस्तरिष्यन्यमुनां नदीम् । सतार्यमाणो यमुनां मामुपेत्याब्रवीत्तदा ॥८॥
सान्त्वपूर्वं मुनिश्रेष्ठः कामार्तो मधुरं वचः । उक्त्वं जन्मकुलं मह्यमसि दाशसुतेत्यथ ॥९॥
तमहं शापभीता च पितुर्भीता च भारत । वरैरसुलभैरुक्ता न प्रत्याख्यातुमुत्सहे ॥१०॥
अभिभूय स मां बालां तेजसा वशमानयत् । तमसालोकमावृत्य नौगतामेव भारत ॥११॥
मत्स्यगन्धो महानासीत्पुरा मम जुगुप्सितः । तमपास्य शुभं गन्धमिमं प्रादात्स मे मुनिः ॥१२॥
ततो मामाह समुनिर्गर्भमुत्सृज्य मामकम् । द्वीपेऽस्या एव सरितः कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥१३॥
पाराशर्यो महायोगी स बभूव महानृषिः । कन्यापुत्रो मम पुरा द्वैपायन इतिश्रुतः ॥१४॥
योव्यस्यवेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः । लोके व्यासत्वमापेदे कार्ष्ण्यात्कृष्णत्वमेव च ॥१५॥
सत्यवादीशमपरस्तपस्वी दग्धकिल्विषः । समुत्पन्नः स तु महान्सहपित्रा ततो गतः ॥१६॥
स नियुक्तो यथा व्यक्तं त्वयाचाप्रतिमद्युतिः । भ्रातुः क्षेत्रेषु कल्याणमपत्यं जनयिष्यति ॥१७॥
सहिमामुक्तवांस्तत्र स्मरेः कृच्छ्रेषुमामिति । तं स्मरिष्ये महाबाहो यदि भीष्म त्वमिच्छसि ॥१८॥
तवह्यनुमते भीष्म नियतं स महातपाः । विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु पुत्रानुत्पादयिष्यति ॥१९॥

पीड़ित होकर मेरे पास आये और मुझे समझाकर मधुर वचन बोले। उन्होंने अपने जन्म और कुल का परिचय दिया। मैंने भी कहा कि मैं दाश (मल्लाह) की कन्या हूँ ॥७—९॥ मेरी दशा उस समय विचित्र थी। मैं मुनि के शाप से डर रही थी, इधर पिता का भी भय था। मुनि ने मुझे दुर्लभ वर देने का भी प्रलोभन दिया। इससे मैं उनकी प्रार्थना अस्वीकार न कर सकी॥१०॥ मैं मुनि के साथ सङ्गम करना नहीं चाहती थी, पर उन्होंने तेज से अभिभूत कर, उस नौका पर ही मुझे वश में कर लिया; उस समय उन्होंने चारोंओर अन्धकार फैला दिया ॥११॥ उस समय मेरे शरीर से मछली की बुरी गन्ध निकलती थी, मुनि ने वह गन्ध दूर कर दी और यह सुन्दर गन्ध दी ॥१२॥ अनन्तर उन्होंने मुझ से कहा—इसी नदी के द्वीप में मेरा गर्भ प्रसव करने के पश्चात्, तुम पुनः कन्या हो जाओगी; अर्थात् मेरे सङ्गम से तुम्हारा कन्या भाव नष्ट न होगा ॥१३॥ मेरी कन्या अवस्था में पराशर मुनि से जो पुत्र उत्पन्न हुआ था, वह महर्षि एक प्रसिद्ध योगी हुआ है। वह द्वैपायन कहा जाता है ॥१४॥ उस ऋषि ने तपस्या के द्वारा वेदों का चार भागों में विभाग किया। अतएव वे लोक में व्यास कहे जाते हैं और काले होने के कारण कृष्ण भी कहे जाते हैं ॥१५॥ वह सत्यव्रती, शान्त और तपस्वी हैं। उसने पापों को नष्ट कर दिया है। वह महान् पुरुष उत्पन्न होने के पश्चात्, अपने पिता के साथ चला गया ॥१६॥ उस तेजस्वी से मैं और तुम, दोनों, कहें तो वह अवश्य ही तुम्हारे भाई की स्त्रियों के पुत्र उत्पन्न करेगा ॥१७॥ उसने मुझ से कहा था कि सङ्कट के समय में तुम मुझे स्मरण करना। महाबाहो भीष्म ! तुम कहो तो मैं उसका स्मरण करूँ, उसे बुलाऊँ ॥१८॥ भीष्म ! तुम्हारी सम्मति होने पर अवश्य ही वह तपस्वी विचित्रवीर्य की स्त्रियों के पुत्र उत्पन्न करेगा ॥१९॥

वैशम्पायनउवाच—

महर्षेः कीर्तने तस्य भीष्मः प्राञ्जलिरब्रवीत् । धर्ममर्थञ्च कामञ्च त्रीनेतान्योऽनुपश्यति ॥२०॥

अर्थमर्थानुबन्धञ्च धर्मं धर्मानुबन्धनम् । कामं कामानुबन्धञ्च विपरीतान्पृथक्पृथक् ॥२१॥

यो विचिन्त्य धिया धीरो व्यवस्यति स बुद्धिमान् । तदिदं धर्मयुक्तं च हितञ्चैव कुलस्य नः ॥२२॥

उक्तं भवत्या यच्छ्रेयस्तन्मह्यं रोचते भृशम् ।

वैशम्पायन उवाच— ततस्तस्मिन्प्रतिज्ञाते भीष्मेण कुरुनन्दन ॥२३॥

कृष्णद्वैपायनं काली चिन्तयामास वै मुनिम् । स वेदान्विब्रुवन् धीमान्मातुर्विज्ञाय चिन्तितम् ॥२४॥

प्रादुर्बभूवाविदितः क्षणेन कुरुनन्दन । तस्मै पूजां ततः कृत्वा सुताय विधिपूर्वकम् ॥२५॥

परिष्वज्य च बाहुभ्यां प्रस्रवैरभ्यषिञ्चत । मुमोच बाष्पं दाशेयी पुत्रं दृष्ट्वा चिरस्य तु ॥२६॥

तामद्भिः परिषिच्यार्तां महर्षिरभिवाद्य च । मातरं पूर्वजः पुत्रो व्यासो वचनमब्रवीत् ॥२७॥

भवत्या यदभिप्रेतं तदहं कर्तुमागतः । शाधि मां धर्मतत्वज्ञे करवाणि प्रियं तव ॥२८॥

तस्मै पूजां ततोऽकार्षीत्पुरोधाः परमर्षये । स च तां प्रतिजग्राह विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् ॥२९॥

पूजितो मन्त्रपूर्वं तु विधिवत्प्रीतिमाप सः । तमासनगतं माता पृष्ट्वा कुशलमव्ययम् ॥३०॥

सत्यवत्यथ वीक्ष्यैनमुवाचेदमनन्तरम् । मातापित्रोः प्रजायन्ते पुत्राः साधारणाः कवे ॥३१॥

वैशम्पायन बोले—महर्षि की चर्चा सुनकर भीष्म हाथ जोड़कर बोले—धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों का जो विचार करता है, वह बुद्धिमान् है ॥२०॥ अर्थ, उसका परिणाम-सुखकारी फल; धर्म, उसका परिणाम-सुखकारी फल; काम, उसका परिणाम-सुखकारी फल; तथा परिणाम में इनकी हानि आदि बातों का बुद्धिपूर्वक विचार करके जो उद्योग करता है, वह बुद्धिमान है। आपने जो बात कही है, वह हमारे कुल के लिए हितकारी है ॥२१,२२॥ आपने जो कल्याण का मार्ग बतलाया है, वह मुझे पसन्द है।

वैशम्पायन बोले—भीष्म के द्वारा अनुमोदित होने पर सत्यवती ने वेदव्यास का स्मरण किया। वेदाध्ययन करनेवाले बुद्धिमान् व्यास ने जब जाना कि माता मेरा स्मरण कर रही हैं, तब वे शीघ्र ही वहाँ आकर उपस्थित हुए। माता ने विधिपूर्वक पुत्र की पूजा की, उनका आलिंगन किया। बहुत दिनों के बाद पुत्र को देखने से माता के स्तनों से दूध निकलने लगा और आँखों से आँसू बहने लगा ॥२३-२६॥ प्रथम पुत्र व्यास ने दुःखिनी माता पर जल की छींटें दीं और उनको प्रणाम करके वे बोले ॥२७॥ आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मैं आया हूँ। हे धर्म-तत्व जानने वाली, आप मुझे आज्ञा दें, आप का कौनसा हित करूँ ?॥२८॥ पुरोहित ने उस ब्रह्मर्षि की विधान के साथ, मन्त्रपूर्वक, पूजा की। उन्होंने वह पूजा ग्रहण की ॥२९॥ पूजा पाने से वे ब्रह्मर्षि प्रसन्न हुए। जब वे आसन पर बैठे, तब उनकी ओर देखकर सत्यवती बोली—पुत्र माता और पिता से उत्पन्न होते हैं। उनपर जैसा पिता का अधिकार है, वैसा ही माता का भी है, इसमें सन्देह नहीं।

तेषां पिता यथा स्वामी तथा माता न संशयः । विधानविहितः सत्यं यथा मे प्रथमः सुतः ॥३२॥
विचित्रवीर्यो ब्रह्मर्षे तथामेऽवरजः सुतः । यथैव पितृतो भीष्मस्तथा त्वमपि मातृतः ॥३३॥
भ्राता विचित्रवीर्यस्य यथा वा पुत्र मन्यसे । अयं शान्तनवः सत्यं पालयन् सत्यविक्रमः ॥३४॥
बुद्धिं न कुरुतेऽपत्ये तथा राज्याऽनुशासने । स त्वं व्यपेक्षया भ्रातुः सन्तानाय कुलस्य च ॥३५॥
भीष्मस्य चास्य वचनान्नियोगाच्च ममानघ । अनुक्रोशाच्च भूतानां सर्वेषां रक्षणाय च ॥३६॥
आनृशंस्याच्च यद्ब्रूयां तच्छ्रुत्वा कर्तुमर्हसि । यवीयसस्तव भ्रातुर्भार्ये सुरसुतोपमे ॥३७॥
रूपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च धर्मतः । तयोरुत्पादयापत्यं समर्थो ह्यसि पुत्रक ॥३८॥
अनुरूपं कुलस्यास्य सन्तत्याः प्रसवस्य च ।

व्यास उवाच— वेत्थ धर्मं सत्यवति परञ्चापरमेव च ॥३९॥
तथा तव महाप्राज्ञे धर्मे प्रणिहिता मतिः । तस्मादहं त्वन्नियोगाद्धर्ममुद्दिश्य कारणम् ॥४०॥
ईप्सितं ते करिष्यामि दृष्टं ह्येतत्सनातनम् । भ्रातुः पुत्रान्प्रदास्यामि मित्रावरुणयोः समान् ॥४१॥
व्रतं चरेतां ते देव्यौ निर्दिष्टमिह यन्मया । संवत्सरं यथान्यायं ततः शुद्धे भविष्यतः ॥४२॥
न हि मामव्रतोपेता उपेयात्काचिदङ्गना ।

तुम पूर्वपुण्य से उत्पन्न मेरे पहले पुत्र हो ॥३०-३२॥ विचित्रवीर्य मेरा छोटा पुत्र है। पिता की ओर से भीष्म और माता की ओर से तुम विचित्रवीर्य के भाई होते हो। अर्थात् भीष्म और विचित्रवीर्य का पिता एक है, तुम्हारी और विचित्रवीर्य की माता एक है। पुत्र! तुम क्या समझते हो? सत्य-पराक्रमी ये भीष्म सत्य का पालन कर रहे हैं, ये अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हैं। अतएव ये पुत्र उत्पन्न करना तथा राज्य करना नहीं चाहते, अतएव तुम से मैं जो कहती हूँ, वह सुनो और उसके अनुसार काम करो। भाइयों के स्नेह, हमारे कुल की रक्षा, भीष्म के अनुरोध, मेरी आज्ञा, प्राणियों पर स्वाभाविक दया, सब की रक्षा तथा अपने कोमल अन्तःकरण के कारण तुम मेरी बात सुनो और उसके अनुसार काम करो। तुम्हारे छोटे भाई की देव-कन्याओं के समान सुन्दरी दो स्त्रियाँ हैं। वे रूपवती और युवती हैं, वे धर्मानुसार पुत्र उत्पन्न कराना चाहती हैं। उन दोनों के तुम पुत्र उत्पन्न कराओ। पुत्र! तुम इस काम में समर्थ हो ॥३३-३८॥ हमारे कुल के अनुरूप और सन्तति के अनुरूप पुत्र उत्पन्न करो।

व्यास बोले—तुम प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों धर्मों को जानती हो, तुम्हारी बुद्धि धर्म में लगी रहती है। अतएव धर्म के लिए मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा ॥३९,४०॥ मैं तुम्हारी आज्ञा से पुत्र उत्पन्न करूँगा, जो सूर्य और वरुण के समान होंगे। मैं तुम्हारा मनोरथ पूरा करूँगा, क्योंकि इस अवस्था में ऐसा करना सनातन सदाचार है ॥४१॥ अतएव वे दोनों महारानियाँ मेरे बतलाये व्रत का पालन एक वर्ष तक करें, तब वे शुद्ध होंगी ॥४२॥ व्रत-पालन किये बिना कोई स्त्री मेरे पास नहीं आ सकती।

सत्यवत्युवाच— सद्यो यथा प्रपद्येते देव्यौ गर्भं तथा कुरु ॥४३॥
अराजकेषु राष्ट्रेषु प्रजाऽनाथा विनश्यति । नश्यन्ति च क्रियाः सर्वा नास्ति वृष्टिर्न देवता ॥४४॥
कथं चाराजकं राष्ट्रं शक्यं धारयितुं प्रभो । तस्माद्गर्भं समाधत्स्व भीष्मः संवर्धयिष्यति ॥४५॥
व्यास उवाच—
यदि पुत्रः प्रदातव्यो मया भ्रातुरकालिकः । विरूपतां मे सहतां तयोरेतत्परं व्रतम् ॥४६॥
यदि मे सहते गन्धं रूपं वेषं तथा वपुः । अद्यैव गर्भं कौसल्या विशिष्टं प्रतिपद्यताम् ॥४७॥
वैशम्पायन उवाच—
एवमुक्त्वा महातेजा व्यासः सत्यवतीं तदा । शयने सा च कौसल्या शुचिवस्त्रा ह्यलङ्कृता ॥४८॥
समागमनमाकांक्षेदिति सोऽन्तर्हितो मुनिः । ततोऽभिगम्य सा देवी स्नुषां रहसि संगताम् ॥४९॥
धर्म्यमर्थसमायुक्तमुवाच वचनं हितम् । कौसल्ये धर्मतन्त्रं त्वां यद् ब्रवीमि निबोध तत् ॥५०॥
भरतानां समुच्छेदो व्यक्तं मद्भाग्यसंक्षयात् । व्यथितां मां च संप्रेक्ष्य पितृवंशं च पीडितम् ॥५१॥
भीष्मो बुद्धिमदान्मह्यं कुलस्यास्य विवृद्धये । सा च बुद्धिस्त्वय्यधीना पुत्रि प्रापय मां तथा ॥५२॥
नष्टं च भारतं वंशं पुनरेव समुद्धर । पुत्रं जनय सुश्रोणि देवराजसमप्रभम् ॥
स हि राज्यधुरं गुर्वीमुद्वक्ष्यति कुलस्य नः ॥५३॥

सत्यवती बोली—कोई ऐसा उपाय करो, जिससे वे महारानियाँ शीघ्र ही गर्भवती हों ॥४३॥ क्योंकि राजा के न रहने पर प्रजा अनाथ होकर नष्ट हो जाती है, सब धर्म कर्म लुप्त हो जाते हैं, जल नहीं बरसता, देवताओं की शक्ति नष्ट हो जाती है ॥४४॥ प्रभो ! अराजक राष्ट्र की रक्षा का दूसरा कौन उपाय है ? अतएव तुम शीघ्र गर्भ धारण करा दो, भीष्म उसका पालन करेंगे ॥४५॥

व्यास बोले—यदि समय के पहले भाई के पुत्र उत्पन्न करना है, तो महारानियाँ मेरी कुरूपता को सहन करें, मुझे कुरूप देखकर वे घबड़ायँ नहीं, यही उनके लिए श्रेष्ठ व्रत हो जायगा ॥४६॥ यदि कौसल्या (विचित्रवीर्य की महारानी) मेरी गन्ध, कुत्सित रूप और विकट वेष सहन कर सकें, तो उनको आज ही मैं गर्भ धारण करा दूंगा। वे आज ही गर्भवती हो जायँगी ॥४७॥

वैशम्पायन बोले—व्यास ने सत्यवती से कहा कि कौसल्या स्वच्छ वस्त्र पहनकर, अलंकार धारण करके पलँग पर मेरे आने की प्रतीक्षा करें। ऐसा कहकर तेजस्वी व्यास वहाँ से चले गये। सत्यवती भी एकान्त में अपनी पुत्रवधू से मिलीं और उन्होंने धर्म तथा अर्थयुक्त यह वचन उनसे कहे—कौसल्ये ! मैं तुमसे धर्मानुकूल जो बात कहती हूँ, वह सुनो ॥४८-५०॥ मेरे अभाग्य से भरतवंश के नाश का समय आ गया है। मुझको दुःखिनी तथा भरतवंश का विनाश देखकर भीष्म ने इस कुल की वृद्धि के लिए उपदेश दिया है। वह परामर्श तुम्हारे अधीन है, अतएव पुत्रि ! तुम मेरा मनोरथ पूरा करो ॥५१,५२॥ नष्ट होते हुए इस भरतवंश का पुनः उद्धार करो, इन्द्र के

सा धर्मतोऽनुनीयैनां कथंचिद्धर्मचारिणीम् । भोजयामास विप्रांश्च देवर्षीनतिथींस्तथा ॥५४॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि सत्यवत्युपदेशे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

वैशम्पायन उवाच—
ततः सत्यवती काले वधूं स्नातामृतौ तदा । संवेशयन्ती शयने शनैर्वचनमब्रवीत् ॥१॥
कौसल्ये देवरस्तेऽस्ति सोऽद्य त्वाऽनुप्रवेक्ष्यति । अप्रमत्ता प्रतीक्षैनं निशीथे ह्यागमिष्यति ॥२॥
श्वश्र्वास्तद्वचनं श्रुत्वा शयाना शयने शुभे । साऽचिन्तयत्तदा भीष्ममन्यांश्च कुरुपुङ्गवान् ॥३॥
ततोऽम्बिकायां प्रथमं नियुक्तः सत्यवागृषिः । दीप्यमानेषु दीपेषु शरणं प्रविवेश ह ॥४॥
तस्य कृष्णस्य कपिलां जटां दीप्ते च लोचने । बभ्रूणि चैव श्मश्रूणि दृष्ट्वा देवी न्यमीलयत् ॥५॥
संबभूव तया सार्धं मातुः प्रियचिकीर्षया । भयात्काशिसुता तं तु नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ॥६॥
ततोनिष्क्रान्तमागम्य माता पुत्रमुवाच ह । अप्यस्यां गुणवान्पुत्र राजपुत्रो भविष्यति ॥७॥
निशम्य तद्वचो मातुर्व्यासः सत्यवतीसुतः । नागायुतसमप्राणो विद्वान् राजर्षिसत्तमः ॥८॥
महाभागो महावीर्यो महाबुद्धिर्भविष्यति । तस्यचापि शतं पुत्रा भविष्यंति महात्मनः॥९॥

तुल्य पुत्र उत्पन्न करो । वह पुत्र हमारे कुल का तथा राज्य का भार वहन करेगा ॥५३॥ इस प्रकार समझा-बुझाकर, सदाचारिणी कौसल्या को सत्यवती ने राज़ी कर लिया । पुनः उन्होंने ब्राह्मणों, देवर्षियों तथा अतिथियों को भोजन कराया ॥५४॥

पञ्चाधिक शततम अध्याय ।

व्यासदेव के द्वारा अम्बिका के गर्भ से धृतराष्ट्र, अम्बालिका के गर्भ से पाण्डु और दासी के गर्भ से विदुर की उत्पत्ति ।

वैशम्पायन बोले—अनन्तर ऋतुस्नाता पुत्रवधू को पलँग पर लिटाकर सत्यवती ने उनसे यह कहा ॥१॥ कौसल्ये, तुम्हारा देवर आज तुम्हारे पास आवेगा । सावधान होकर उसकी प्रतीक्षा करो, वह आधी रात के समय आवेगा ॥२॥ सास के कहने से वह उस उत्तम शय्या पर सो गयी और भीष्म तथा दूसरे प्रधान-प्रधान कुरुवंशियों को सोचने लगी ॥३॥ सत्यवक्ता ऋषि पहले अम्बिका के पास गये । दीप जल रहे थे, उस समय उन्होंने घर में प्रवेश किया ॥४॥ वे ऋषि काले थे, उनकी जटा भूरी थी, आँखें चमकीली थीं, मूँछ भूरी थी । उनको देखकर अम्बिका ने आँखें बन्द कर लीं ॥५॥ माता का प्रिय कार्य करने के लिए उन्होंने उसके साथ सङ्गम किया । पर वह काशिराज की कन्या भय के कारण उस समय भी उनको देख न सकी ॥६॥ वहाँ से निकलने पर माता ने आकर पूछा—पुत्र ! क्या इसके गुणवान् राजपुत्र उत्पन्न होगा ? ॥७॥ माता के वचन सुनकर सत्यवती-पुत्र व्यास बोले—वह सौ हज़ार हाथियों के समान बलवान्, विद्वान् और श्रेष्ठ राजर्षि होगा, महाबली, महापराक्रमी और बुद्धिमान् होगा । उस महात्मा के भी सौ पुत्र होंगे ॥८,९॥ पर माता के दोष से वह अन्धा होगा । उनके वचन सुनकर माता बोलीं ॥१०॥ अन्धा

किन्तु मातुः स वैगुण्यादन्ध एव भविष्यति । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा माता पुत्रमथाब्रवीत् ॥१०॥
नान्धः कुरूणां नृपतिरनुरूपस्तपोधन । ज्ञातिवंशस्य गोप्तारं पितॄणां वंशवर्धनम् ॥११॥
द्वितीयं कुरुवंशस्य राजानं दातुमर्हसि । स तथेति प्रतिज्ञाय निश्चक्राम महायशाः॥१२॥
साऽपि कालेन कौसल्या सुषुवेऽन्धं तमात्मजम् । पुनरेव तु सा देवी परिभाष्य स्नुषां ततः॥१३॥
ऋषिमावाहयत्सत्या यथा पूर्वमरिन्दम । ततस्तेनैव विधिना महर्षिस्तामपद्यत ॥१४॥
अम्बालिकामथाभ्यागादृषिं दृष्ट्वा च साऽपि तम् । विवर्णा पाण्डुसंकाशा समपद्यत भारत ॥१५॥
तां भीतां पाण्डुसंकाशां विषण्णां प्रेक्ष्य भारत । व्यासःसत्यवतीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥१६॥
यस्मात्पाण्डुत्वमापन्ना विरूपं प्रेक्ष्य मामिह । तस्मादेष सुतस्ते वै पाण्डुरेव भविष्यति ॥१७॥
नाम चास्यैतदेवेह भविष्यति शुभानने । इत्युक्त्वा स निराक्रामद्भगवानृषिसत्तमः॥१८॥
ततो निष्क्रान्तमालोक्य सत्या पुत्रमथाब्रवीत् । शशंस स पुनर्मात्रे तस्य बालस्य पाण्डुताम् ॥१९॥
तं माता पुनरेवान्यमेकं पुत्रमयाचत । तथेति च महर्षिस्तां मातरं प्रत्यभाषत ॥२०॥
ततः कुमारं सा देवी प्राप्तकालमजीजनत् । पाण्डुं लक्षणसम्पन्नं दीप्यमानमिव श्रिया ॥२१॥
यस्य पुत्रा महेष्वासा जज्ञिरे पञ्चपाण्डवाः । ऋतु काले ततो ज्येष्ठां वधूं तस्मै न्ययोजयत् ॥२२॥
सा तु रूपञ्च गन्धञ्च महर्षेः प्रविचिन्त्य तम् । नाकरोद्वचनं देव्या भयात्सुरसुतोपमा ॥२३॥
ततः स्वैर्भूषणैर्दासीं भूषयित्वाऽप्सरोपमाम् । प्रेषयामास कृष्णाय ततः काशिपतेः सुता॥२४॥

राजा कुरुवंश के योग्य नहीं है । ज्ञाति और कुल का रक्षक, पितरों का वंश बढ़ानेवाला एक दूसरा राजा कुरुवंश के लिए दो । यशस्वी ऋषि वैसा करने की प्रतिज्ञा करके वहाँ से चले गये ॥११,१२॥ समय पर कौसल्या ने अन्धा पुत्र उत्पन्न किया । देवी सत्यवती ने पुनः पुत्रवधू को राज़ी किया और पहले के समान ऋषि को पुनः बुलाया । ऋषि उसी पहले की तरह महारानी के पास गये ॥१३,१४॥ ऋषि अम्बालिका के पास गये । वह ऋषि को देखकर डर गयी और पीली पड़ गयी ॥१५॥ डरी, दुःखिनी और पीली देखकर सत्यवती-पुत्र व्यास उससे बोले ॥१६॥ तुम मुझे कुरूप देखकर डर गयी हो, पीली पड़ गयी हो, इस कारण तुम्हारा यह पुत्र पीला होगा ॥१७॥ उसका नाम भी पाण्डु ही होगा । ऐसा कहकर वे ऋषिश्रेष्ठ वहाँ से चले गये ॥१८॥ वहाँ से निकलने पर माता ने पुत्र से पुनः वैसा ही पूछा । उन्होंने बालक के पाण्डु होने की बात कही ॥१९॥ माता ने उनसे पुनः एक पुत्र उत्पन्न कर देने की प्रार्थना की । महर्षि ने माता की प्रार्थना स्वीकार कर ली ॥२०॥ अनन्तर समय पर देवी अम्बालिका ने सर्व-लक्षण-युक्त शोभमान पीला पुत्र उत्पन्न किया , जिनके धनुर्धारी पाँच पुत्र हुए, जो पञ्च पाण्डव के नाम से प्रसिद्ध हैं । ऋतु के समय सत्यवती ने पुनः अपनी बड़ी बहू को ऋषि के पास जाने की आज्ञा दी ॥२१,२२॥ महर्षि की कुरूपता और दुर्गन्ध को सोचकर उस देवी ने भय के कारण सास का कहना न माना ॥२३॥ अपनी दासी को अपने गहने पहनाकर उसने उसे अप्सरा के समान सुन्दरी बना दिया और उसी को ऋषि के पास भेज दिया ॥२४॥ ऋषि के आने पर दासी ने

स तमृषिमनुप्राप्तं प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च। संविवेशाभ्यनुज्ञाता सत्कृत्योपचचार ह ॥२५॥
कामोपभोगेन रहस्तस्यां तुष्टिमगादृषिः। तया सहोषितो राजन्महर्षिः संशितव्रतः॥२६॥
उत्तिष्ठन्नब्रवीदेनामभुजिष्या भविष्यसि। अयं च ते शुभे गर्भः श्रेयानुदरमागतः।
धर्मात्मा भविता लोके सर्वबुद्धिमतांवरः॥२७॥
स जज्ञे विदुरो नाम कृष्णद्वैपायनात्मजः। धृतराष्ट्रस्य वै भ्राता पाण्डोश्चैव महात्मनः॥२८॥
धर्मो विदुररूपेण शापात्तस्य महात्मनः। माण्डव्यस्यार्थतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः॥२९॥
कृष्णद्वैपायनोऽप्येतत्सत्यवत्यै न्यवेदयत्। प्रलम्भमात्मनश्चैव शूद्रायाः पुत्रजन्म च॥३०॥
स धर्मस्यानृणो भूत्वा पुनर्मात्रा समेत्य च। तस्यै गर्भं समावेद्य तत्रैवान्तरधीयत॥३१॥
एते विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रे द्वैपायनादपि। जज्ञिरे देवगर्भाभाः कुरुवंशविवर्धनाः॥३२॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि विचित्रवीर्यसुतोत्पत्तौ षडधिकशततमोऽध्यायः॥१०६॥

जनमेजय उवाच—
किं कृतं कर्म धर्मेण येन शापमुपेयिवान्। कस्य शापाच्च ब्रह्मर्षेः शूद्रयोनावजायत॥१॥

उनका उठकर स्वागत किया, प्रणाम किया। आज्ञा पाकर बैठ गई और आदरपूर्वक उनकी सेवा करने लगी ॥२५॥ एकान्त में उससे काम-भोग करके, उसके साथ निवास करके ऋषि उस पर प्रसन्न हुए ॥२६॥ वहाँ से चलने के समय ऋषि ने उससे कहा—अब तुम दासी न रहोगी। शुभे, तुम्हारा यह गर्भ बड़ा कल्याणकारी होगा। इससे धर्मात्मा और महाबुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न होगा ॥२७॥ उसी गर्भ से कृष्णद्वैपायन का पुत्र विदुर उत्पन्न हुआ, जो धृतराष्ट्र और महात्मा पाण्डु का भाई था ॥२८॥ महात्मा माण्डव्य के शाप से धर्म ने विदुर के रूप में जन्म लिया। वे काम-क्रोध-रहित और व्यवहार शास्त्र को जानने वाले थे ॥२९॥ कृष्ण द्वैपायन ने भी माता से यह बात कही। अपने स्थान पर दासी के भेजने से जो वे ठगे गये थे, वह तथा शूद्रा के गर्भ से पुत्र होने की बात उन्होंने कही ॥३०॥ धर्म पालन करके वे माता से मिले और गर्भ धारण की बात कहकर चले गये ॥३१॥ विचित्रवीर्य की स्त्रियों के गर्भ से कृष्ण द्वैपायन के द्वारा देवकुमार-तुल्य ये पुत्र उत्पन्न हुए, जिनसे कुरुवंश की वृद्धि हुई ॥३२॥

षडधिक शततम अध्याय ॥

अणीमाण्डव्य की कथा।

जनमेजय बोले—धर्म ने कौन काम किया, जिससे उन्हें शाप मिला? किस महर्षि के शाप से उन्हें शूद्रयोनि में जन्म लेना पड़ा? ॥१॥

वैशम्पायन उवाच—

बभूव ब्राह्मणः कश्चिन्माण्डव्य इति विश्रुतः। धृतिमान्सर्वधर्मज्ञः सत्ये तपसि च स्थितः ॥२॥
स आश्रमपदद्वारि वृक्षमूले महातपाः। ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी तस्थौ मौनव्रतान्वितः ॥३॥
तस्य कालेन महता तस्मिंस्तपसि वर्त्ततः। तमाश्रममनुप्राप्ता दस्यवो लोप्त्रहारिणः ॥४॥
अनुसार्यमाणा बहुभी रक्षिभिर्भरतर्षभ। ते तस्यावसथे लोप्त्रं दस्यवः कुरुसत्तम ॥५॥
निधाय च भयाल्लीनास्तत्रैवानागते बले। तेषु लीनेष्वथो शीघ्रं ततस्तद्रक्षिणां बलम् ॥६॥
आजगाम ततोऽपश्यँस्तमृषिं तस्करानुगाः। तमपृच्छँस्ततो राजँस्तथावृत्तं तपोधनम् ॥७॥
कतमेन पथा याता दस्यवो द्विजसत्तम। तेन गच्छामहे ब्रह्मन्यथा शीघ्रतरं वयम् ॥८॥
तथा तु रक्षिणां तेषां ब्रुवतां स तपोधनः। न किञ्चिद्वचनं राजन्नब्रवीत्साध्वसाधु वा ॥९॥
ततस्ते राजपुरुषा विचिन्वानास्तमाश्रमम्। ददृशुस्तत्र लीनाँस्ताँश्चौराँस्तद्द्रव्यमेव च ॥१०॥
ततः शंका समभवद्रक्षिणां तं मुनिं प्रति। संयम्यैनं ततो राज्ञे दस्यूंश्चैव न्यवेदयन् ॥११॥
तं राजा सह तैश्चौरैरन्वशाद्वध्यतामिति। स रक्षिभिस्तैरज्ञातः शूले प्रोतो महातपाः ॥१२॥
ततस्ते शूलमारोप्य तं मुनिं रक्षिणस्तदा। प्रतिजग्मुर्महीपालं धनान्यादाय तान्यथ ॥१३॥
शूलस्थः स तु धर्मात्मा कालेन महता ततः। निराहारोऽपि विप्रर्षिर्मरणं नाभ्यपद्यत ॥१४॥

वैशम्पायन बोले—पहले माण्डव्य नामक एक प्रसिद्ध ब्राह्मण थे,वे धीर, धर्मज्ञ, सत्यवादी और तपस्वी थे ॥२॥ वे तपस्वी आश्रम के द्वार पर एक पेड़ के नीचे ऊर्ध्वबाहु होकर तपस्या करते थे और उन्होंने मौन व्रत ले रखा था ॥३॥ वे ऋषि बहुत दिनों तक वहाँ तपस्या करते रहे। एक बार वहाँ धन चुराकर कई चोर आये ॥४॥ उनके पीछे-पीछे बहुत से सिपाही चोरों को पकड़ने के लिए आ रहे थे। अतएव सिपाहियों के आने के पहले ही चोरों ने चुराया हुआ धन वहीं आश्रम में छिपाकर कहीं रख दिया और भयभीत होकर वे भी कहीं छिप रहे। उनके छिपने के थोड़ी ही देर बाद सिपाहियों का दल वहाँ आया ॥५-६॥ चोरों का पीछा करनेवाले सिपाहियों ने उन मुनि को तपस्या करते देखा। उन लोगों ने मुनि से चोरों का पता पूछा ॥७॥ महाराज, बतलाइए, चोर किस ओर गये हैं ? उसी ओर हम भी शीघ्र जाना चाहते हैं ॥८॥ सिपाहियों के प्रश्न के उत्तर में उन ऋषि ने हाँ या ना, भला या बुरा, कुछ भी न कहा ॥९॥ ऋषि के उत्तर न देने पर वे राजा के कर्मचारी आश्रम की खोज ढूँढ़ करने लगे, वहाँ उन लोगोंने छिपे हुए चोरों को तथा छिपाये धन को देखा ॥१०॥ इससे ऋषि पर उन लोगों का सन्देह हुआ। चोरों के साथ ऋषि को भी बाँधकर वे राजा के पास ले गये ॥११॥ राजा ने चोरों के साथ मुनि को भी प्राण-दण्ड की आज्ञा दी। बिना जानेबूझे सिपाहियों ने भी मुनि को शूली पर चढ़ा दिया ॥१२॥ मुनि को शूली पर चढ़ाकर और चोरी गया धन लेकर वे लौट गये ॥१३॥ शूल से बिंधे होने और निराहार रहने पर भी वे धर्मात्मा ब्रह्मर्षि बहुत दिनों तक जीते रहे, मरे नहीं ॥१४॥ वे महात्मा

धारयामास च प्राणानृषींश्च समुपानयत् । शूलाग्रे तप्यमानेन तपस्तेन महात्मना ॥१५॥
सन्तापं परमं जग्मुर्मुनयस्तपसाऽन्विताः । ते रात्रौ शकुनाभूत्वा सन्निपत्य तु भारत ॥
दर्शयन्तो यथाशक्ति तमपृच्छन्द्विजोत्तमम् ॥१६॥
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् किं पापं कृतवानसि । येनेह समनुप्राप्तं शूले दुःखभयं महत् ॥१७॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि अणीमाण्डव्योपाख्याने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥१०७॥

वैशम्पायन उवाच—
ततः स मुनिशार्दूलस्तानुवाच तपोधनान् । दोषतः कं गमिष्यामि न हि मेऽन्योपराध्यति ॥१॥
तं दृष्ट्वा रक्षिणस्तत्र तथा बहुतिथेऽहनि । न्यवेदयँस्तथाराज्ञे यथावृत्तं नराधिप ॥२॥
श्रुत्वा च वचनं तेषां निश्चित्य सह मन्त्रिभिः । प्रसादयामास तदा शूलस्थमृषिसत्तमम् ॥३॥
राजोवाच—
यन्मयाऽपकृतं मोहादज्ञानादृषिसत्तम । प्रसादये त्वां तत्राहं न मे त्वं क्रोद्धुमर्हसि ॥४॥
एवमुक्तस्ततो राज्ञा प्रसादमकरोन्मुनिः । कृतप्रसादं राजा तं ततः समवतारयत् ॥५॥
अवतार्य च शूलाग्रात्तच्छूलं निश्चकर्ष ह । अशक्नुवँश्च निष्क्रष्टुं शूलं मूले स चिच्छिदे ॥६॥

शूली पर भी तपस्या करते रहे और जीते रहे । उन्होंने तपोबल से मुनियों को स्मरण किया अर्थात् बुलाया ॥१५॥ उनकी दशा देखकर उन तपस्वी मुनियों को बड़ा दुःख हुआ, वे रात को पक्षी के रूप में वहाँ आये । अपना रूप प्रकाशित करके उन लोगों ने महर्षि से पूछा ॥१६॥ ब्रह्मन्, हम लोग जानना चाहते हैं कि आप ने कौन सा पाप किया है, जिससे शूली पर चढ़ने का यह भयङ्कर दुःख आपको मिला है ॥१७॥

सप्ताधिक शततम अध्याय ।

अणीमाण्डव्य का धर्मराज के साथ विवाद होना; अणीमाण्डव्य का धर्मराज को शाप देना ।

वैशम्पायन बोले—उन मुनिश्रेष्ठ ने तपस्वियों से कहा—मैं किसका दोष दूँ? किसी दूसरे ने मेरा अपराध नहीं किया है ॥१॥ सिपाहियों ने महर्षि को उसी अवस्था में बहुत दिनों तक देखा और यह सब वृत्तान्त उन लोगों ने राजा से कहा ॥२॥ उनकी बातें सुनकर तथा मन्त्रियों से परामर्श करके राजा उन महर्षि के पास गये और उन्हें प्रसन्न करने लगे ॥३॥ राजा बोले—ऋषिश्रेष्ठ, अज्ञान से जो कुछ अपराध मैंने आपका किया हो, उसे आप क्षमा करें । आपको मुझ पर क्रोध नहीं करना चाहिए ॥४॥ राजा की प्रार्थना से मुनि उन पर प्रसन्न हुए और प्रसन्न होने पर उनको राजा ने शूली पर से उतरवाया ॥५॥ शूली से उतारकर वे लोग उनके शरीर में धसा हुआ शूल निकालने लगे, पर निकाल न सके, अतएव उसका बाहर निकला हुआ हिस्सा उन



पृष्ठ ४१६]　　सूत के द्वारा कर्ण का उद्धार　　[चित्रकार-पी. मुकर्जी

The Onkar Press, Allahabad.

स तथान्तर्गतेनैव शूलेन व्यचरन्मुनिः । तेनातितपसा लोकान् विजिग्ये दुर्लभान्परैः ॥७॥
अणीमाण्डव्य इति च ततो लोकेषु गीयते । स गत्वा सदनं विप्रो धर्मस्य परमात्मवित् ॥८॥
आसनस्थं ततो धर्मं दृष्ट्वोपालभत प्रभुः । किं नु तद्दुष्कृतं कर्म मया कृतमजानता ॥९॥
यस्येयं फलनिर्वृत्तिरीदृश्यासादिता मया । शीघ्रमाचक्ष्व मे तत्त्वं पश्य मे तपसो बलम् ॥१०॥
धर्म उवाच—
पतङ्गिकानां पुच्छेषु त्वयेषीका प्रवेशिता । कर्मणस्तस्य ते प्राप्तं फलमेतत्तपोधन ॥११॥
स्वल्पमेव यथा दत्तं दानं बहुगुणं भवेत् । अधर्म एवं विप्रर्षे बहुदुःखफलप्रदः ॥१२॥
अणीमाण्डव्य उवाच—
कस्मिन् काले मया तत्तु कृतं ब्रूहि यथातथम् । तेनोक्तो धर्मराजेन बालभावे त्वया कृतम् ॥१३॥
अणीमाण्डव्य उवाच—
बालो हि द्वादशाद्वर्षाज्जन्मतो यत्करिष्यति । न भविष्यत्यधर्मोऽत्र न प्रज्ञास्यन्ति वै दिशः ॥१४॥
अल्पेऽपराधेऽपि महान्मम दण्डस्त्वया धृतः । गरीयान् ब्राह्मणवधः सर्वभूतवधादपि ॥१५॥
शूद्रयोनावतो धर्म मानुषः सम्भविष्यसि । मर्यादां स्थापयाम्यद्य लोके धर्मफलोदयाम् ॥१६॥
आचतुर्दशकाद्वर्षान्न भविष्यति पातकम् । परतः कुर्वतामेव दोष एव भविष्यति ॥१७॥

लोगों ने काट दिया ॥६॥ शूल उनके शरीर में धसा ही रहा और वे विचरण करने लगे । दूसरों के द्वारा असम्भव अपनी अद्भुत तपस्या से उन्होंने सब को जीत लिया॥७॥ तब से वे अणीमाण्डव्य के नाम से प्रसिद्ध हुए । आत्मवेत्ता वे मुनि एक बार धर्मराज के यहाँ गये ॥८॥ आसन पर बैठे हुए धर्मराज को वे धिक्कारने लगे—अज्ञानवश मैंने वह कौन बड़ा पाप किया, जिसका फल मुझे इस रूप में मिला ? शीघ्र ही इसका कारण मुझे बतलाओ, नहीं तो मेरी तपस्या का बल देखो ॥९,१०॥

धर्म बोले—कीड़ों की पूँछ में तुमने लकड़ी घुसेड़ी थी, जिसका फल तुम्हें इस रूप में मिला है ॥११॥ दान थोड़ा ही किया जाता है, पर उसका फल बड़ा होता है, इसी तरह थोड़े अधर्म से भी बहुत बड़ा दुःख प्राप्त होता है ॥१२॥

अणीमाण्डव्य बोले—किस समय मैंने वैसा किया था, यह तुम ठीक-ठीक कहो ।

धर्मराज ने कहा—आप जब बालक थे, तब किया था ॥१३॥

अणीमाण्डव्य बोले—जन्म से बारह वर्ष की अवस्था तक बाल्यावस्था है, बाल्यावस्था में यदि कोई कुछ अपराध भी कर दे तो वह अपराध नहीं समझा जाता । धर्मशास्त्र भी इसके लिए उसे दोषी नहीं ठहराते ॥१४॥ तुमने बालक के अपराध के लिए जो कठोर दण्ड दिया है, इस कारण शूद्रयोनि में तुम्हें मनुष्य होना पड़ेगा ॥१५॥ आज से मैं धर्म की यह मर्यादा स्थापित करता हूँ । चौदह वर्ष की अवस्था तक यदि कोई कुछ पाप करेगा तो उसे पाप न लगेगा । इस अवस्था के बाद के अपराध का ही वह अपराधी होगा ॥१६,१७॥

वैशम्पायन उवाच—

एतेनत्वपराधेन शापात्तस्य महात्मनः। धर्मो विदुररूपेण शूद्रयोनावजायत ॥१९॥
धर्मे चार्थे च कुशलो लोभक्रोधविवर्जितः। दीर्घदर्शी शमपरः कुरूणां च हिते रतः ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि अणीमाण्डव्योपाख्यानेऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

वैशम्पायन उवाच—

तेषु त्रिषु कुमारेषु जातेषु कुरुजांगलम्। कुरवोऽथ कुरुक्षेत्रं त्रयमेतदवर्धत ॥१॥
ऊर्ध्वसस्याऽभवद्भूमिः सस्यानि रसवन्ति च। यथर्तुवर्षी पर्जन्यो बहुपुष्पफला द्रुमाः ॥२॥
वाहनानि प्रहृष्टानि मुदिता मृगपक्षिणः। गन्धवन्ति च माल्यानि रसवन्ति फलानि च ॥३॥
वणिग्भिश्चान्वकीर्यन्त नगराण्यथ शिल्पिभिः। शूराश्च कृतविद्याश्च सन्तश्च सुखिनोऽभवन् ॥४॥
नाभवन्दस्यवः केचिन्नाधर्मरुचयो जनाः। प्रदेशेष्वपि राष्ट्राणां कृतं युगमवर्तत ॥५॥
धर्मक्रिया यज्ञशीलाः सत्यव्रतपरायणाः। अन्योन्यप्रीतिसंयुक्ता व्यवर्धन्त प्रजास्तदा ॥६॥
मानक्रोधविहीनाश्च नरा लोभविवर्जिताः। अन्योऽन्यमभ्यनन्दन्त धर्मोत्तरमवर्तत ॥७॥

वैशम्पायन बोले—इसी अपराध के कारण उस महात्मा के शाप से धर्म शूद्रयोनि में विदुर के रूप में उत्पन्न हुए ॥१८॥ वे धर्म और व्यवहार में निपुण, अलोभी, अक्रोधी, विवेकी, निर्वैर और कुरुवंश के हितकारी थे ॥१७॥

अष्टाधिक शततम अध्याय।

पाण्डु का राज्याभिषेक।

वैशम्पायन बोले—इन तीनों कुमारों के उत्पन्न होने पर कुरुजाङ्गल देश, कुरुवंश और कुरुक्षेत्र की श्रीवृद्धि हुई ॥१॥ खेतों की उपज बढ़ गयी, अन्नों में रस आ गया। मेघ अपनी ऋतु में पानी बरसाने लगे। वृक्षों में खूब फूल और फल लगने लगे ॥२॥ हाथी-घोड़े आदि प्रसन्न हुए, पशु-पक्षियों में आनन्द छा गया, मालाएँ सुगन्धित हो गयीं और फलों का रस बढ़ गया ॥३॥ व्यापारियों और कारीगरों से नगर भर गया, शूर, विद्वान और सज्जन सुखी हुए ॥४॥ उस समय कोई भी चोर न था, कोई भी अधार्मिक न था। उस समय राज्य के प्रदेशों में सत्ययुग बीतने लगा ॥५॥ धर्म करने, यज्ञ करने, सत्यपरायण होने तथा परस्पर प्रेमपूर्वक रहने से प्रजा की वृद्धि होने लगी ॥६॥ कोई अभिमानी, कोई क्रोधी और कोई लोभी न था। वे परस्पर अभिनन्दन करते थे और धर्मपूर्वक रहते थे ॥७॥ समुद्र के समान भरापूरा वह नगर शोभित होता था। वहाँ के

तन्महोदधिवत्पूर्णं नगरं वै व्यरोचत। द्वारतोरणनिर्यूहैर्युक्तमभ्रचयोपमैः ॥८॥
प्रासादशतसंबाधं महेन्द्रपुरसन्निभम्। नदीषु वनखण्डेषु वापीपल्वलसानुषु ॥
काननेषु च रम्येषु विजह्रुर्मुदिता जनाः ॥९॥
उत्तरैः कुरुभिः सार्धं दक्षिणाः कुरवस्तथा। विस्पर्धमाना व्यचरँस्तथा देवर्षिचारणैः ॥१०॥
नाभवत्कृपणः कश्चिन्नाभवन्विधवाः स्त्रियः। तस्मिन् जनपदे रम्ये कुरुभिर्बहुलीकृते ॥११॥
कूपारामसभावाप्यो ब्राह्मणावसथास्तथा। बभूवुः सर्वर्द्धिसम्पन्नास्तस्मिन् राष्ट्रे सदोत्सवाः ॥१२॥
भीष्मेण धर्मतो राजन्सर्वतः परिरक्षिते। बभूव रमणीयश्च चैत्ययूपशताङ्कितः ॥१३॥
स देशः परराष्ट्राणि विमृज्याभिप्रवर्धितः। भीष्मेण विहितं राष्ट्रे धर्मचक्रमवर्त्तत ॥१४॥
क्रियमाणेषु कृत्येषु कुमाराणां महात्मनाम्। पौरजानपदाः सर्वे बभूवुः परमोत्सुकाः ॥१५॥
गृहेषु कुरुमुख्यानां पौराणां च नराधिप। दीयतां भुज्यतां चेति वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः ॥१६॥
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरश्च महामतिः। जन्मप्रभृति भीष्मेण पुत्रवत्परिपालिताः ॥१७॥
संस्कारैः संस्कृतास्ते तु व्रताध्ययनसंयुताः। श्रमव्यायामकुशलाः समपद्यन्त यौवनम् ॥१८॥
धनुर्वेदे च वेदे च गदायुद्धेऽसिचर्मणि। तथैव गजशिक्षायां नीतिशास्त्रेषु पारगाः ॥१९॥

फाटक-तोरण आदि मेघ के समान ऊँचे थे ॥८॥ सैकड़ों महलों से भरा होने के कारण वह नगर इन्द्र की अमरावती के समान मालूम होता था। नदी, बन, तालाब, बावली और रमणीय बगीचों में प्रसन्नतापूर्वक नागरिक विहार करते थे ॥९॥ उत्तर कुरु के निवासियों से दक्षिण कुरु के निवासी स्पर्द्धा करते थे, तथा वे देवर्षि तथा चारणों (देवयोनि) के समान यथेच्छ भ्रमण करते थे ॥१०॥ वहाँ कोई कृपण न था, कोई स्त्री विधवा न थी। कुरुओं के उस राज्य में जगह-जगह कुएँ, उद्यान, सभाभवन, सरोवर तथा ब्राह्मणों की बस्ती थी। वह राज्य सब तरह की समृद्धियों से पूर्ण था और वहाँ सदा उत्सव होते रहते थे ॥११,१२॥ उस राज्य की रक्षा भीष्म के द्वारा धर्मपूर्वक होती थी, अतएव वह राज्य बड़ा सुन्दर हो गया था। वहाँ के सैकड़ों देवस्थान तथा यज्ञीय यूप (यज्ञ का स्तम्भ), यज्ञ आदि सत्कर्मों के प्रमाण थे ॥१३॥ दूसरे राज्य के निवासी सुख की इच्छा से इसी राज्य में आकर रहते थे, जिससे यह राज्य बढ़ गया था। भीष्म ने वहाँ धर्म-चक्र की स्थापना की थी ॥१४॥

महात्मा तीनों कुमारों के सत्कर्मों को देखकर वहाँ के पुरवासी बहुत ही उत्कण्ठित हो गये थे, प्रसन्न हो गये थे ॥१५॥ कुरुवंश के प्रधान पुरुषों के घरों तथा पुरवासियों के घरों में सदा 'दो और खाओ' ये ही शब्द सुन पड़ते थे ॥१६॥ धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर का जन्म से लेकर भीष्म ने पुत्र के समान पालन किया था ॥१७॥ उन कुमारों का संस्कार किया गया, अनन्तर वे वेदव्रत ग्रहण करके वेदाध्ययन करने लगे। शास्त्राभ्यास तथा व्यायाम में वे निपुण हुए। इस प्रकार युवावस्था में उन लोगों ने पैर रखा ॥१८॥ धनुर्वेद, वेद, गदा-युद्ध, ढाल-तलवार, हाथी-घोड़ों की सवारी, नीति-शास्त्र, इतिहास, पुराण तथा अन्य अनेक तरह की शिक्षाओं में वे निपुण हुए। वेद-वेदाङ्गों के तत्त्व

इतिहासपुराणेषु नानाशिक्षासु बोधिताः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वत्र कृतनिश्चयाः ॥२०॥
पाण्डुर्धनुषि विक्रान्तो नरेष्वभ्यधिकोऽभवत्। अन्येभ्यो बलवानासीद् धृतराष्ट्रो महीपतिः॥२१॥
त्रिषु लोकेषु नत्वासीत्कश्चिद्विदुरसंमितः। धर्मनित्यस्तथा राजन्धर्मे च परमं गतः ॥२२॥
प्रनष्टं शान्तनोर्वंशं समीक्ष्य पुनरुद्धृतम्। ततो निर्वचनं लोके सर्वराष्ट्रेष्ववर्त्तत ॥२३॥
वीरसूनां काशिसुते देशानां कुरुजांगलम्। सर्वधर्मविदां भीष्मः पुराणां गजसाह्वयम् ॥२४॥
धृतराष्ट्रस्त्वचक्षुष्ट्वाद्राज्यं न प्रत्यपद्यत। पारसवत्वाद्विदुरो राजा पाण्डुर्बभूव ह ॥२५॥
कदाचिदथ गाङ्गेयः सर्वनीतिमतांवरः। विदुरं धर्मतत्त्वज्ञं वाक्यमाह यथोचितम् ॥२६॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुराज्याभिषेके नवाधिकशततमोऽध्यायः॥१०९॥

भीष्म उवाच—
गुणैः समुदितं सम्यगिदं नः प्रथितं कुलम्। अत्यन्यान्पृथिवीपालान् पृथिव्यामधिराज्यभाक् ॥१॥
रक्षितं राजभिः पूर्वं धर्मविद्भिर्महात्मभिः। नोत्सादमगमच्चेदं कदाचिदिह नः कुलम् ॥२॥
मया च सत्यवत्या च कृष्णेन च महात्मना। समवस्थापितं भूयो युष्मासु कुलतन्तुषु ॥३॥

उन लोगों ने जान लिये। पाण्डु धनुर्विद्या में सब से श्रेष्ठ थे और राजा धृतराष्ट्र बल में अन्य कुमारों से अधिक थे ॥१९-२१॥ विदुर के समान धर्मात्मा तथा आत्मज्ञानी तीनों लोकों में कोई दूसरा न था ॥२२॥ शान्तनु के नष्ट वंश का पुनः उद्धार हुआ, इस कारण उस राज्य की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी ॥२३॥ वीर-माताओं में काशिराज की कन्याएँ, देशों में कुरुजाङ्गल देश, धर्मज्ञों में भीष्म और नगरों में हस्तिनापुर नगर श्रेष्ठ समझे जाते थे ॥२४॥ धृतराष्ट्र अन्धे थे, इस कारण उनको राज्य न मिला, विदुर पराशर ब्राह्मण द्वारा शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न थे, अतः उनको भी राज्य नहीं मिल सकता था, अतएव पाण्डु राजा हुए ॥२५॥ एक बार नीतिवेत्ताओं में श्रेष्ठ गङ्गा-पुत्र भीष्म, धर्मज्ञ महात्मा विदुर से समयानुकूल उचित वचन बोले ॥२६॥

नवाधिक शततम अध्याय।

धृतराष्ट्र के विवाह के विषय में भीष्म और विदुर का संवाद, गान्धारी से धृतराष्ट्र का विवाह।

भीष्म बोले—हम लोगों का यह कुल बड़ा प्रसिद्ध है और सब गुणों से युक्त है। पृथिवी के अन्य सब राजाओं पर इसका प्रभाव है और यह उन पर शासन करता है ॥१॥ पहले धर्मात्मा महात्मा राजाओं ने इसकी रक्षा की है। हमलोगों का यह कुल कभी विच्छिन्न नहीं हुआ है ॥२॥ मैंने, सत्यवती ने तथा महात्मा कृष्ण ने इस कुल की पुनः प्रतिष्ठा तुमलोगों को पाकर की है, तुमलोगों को पाने से हमारा यह कुल पुनः नष्ट होने से बचा है ॥३॥ हमलोगों का यह

तच्चैतद्वर्धते भूयः कुलं सागरवद्यथा। तथा मया विधातव्यं त्वया चैव न संशयः ॥४॥
श्रूयते यादवी कन्या स्वनुरूपा कुलस्य नः। सुबलस्यात्मजा चैव तथा मद्रेश्वरस्य च ॥५॥
कुलीना रूपवत्यश्च ताः कन्याः पुत्र सर्वशः। उचिताश्चैव सम्बन्धे तेऽस्माकं क्षत्रियर्षभाः ॥६॥
मन्ये वरयितव्यास्ता इत्यहं धीमतांवर। सन्तानार्थं कुलस्यास्य यद्वा विदुर मन्यसे ॥७॥
विदुर उवाच—
भवान्पिता भवान्माता भवान्नः परमो गुरुः। तस्मात्स्वयं कुलस्यास्य विचार्य कुरु यद्धितम् ॥८॥
वैशम्पायन उवाच—
अथ शुश्राव विप्रेभ्यो गान्धारीं सुबलात्मजाम्। आराध्य वरदं देवं भगनेत्रहरं हरम् ॥९॥
गान्धारी किल पुत्राणां शतं लेभे वरं शुभा। इति शुश्राव तत्त्वेन भीष्मः कुरुपितामहः ॥१०॥
ततो गान्धारराजस्य प्रेषयामास भारत। अचक्षुरिति तत्रासीत्सुबलस्य विचारणा ॥११॥
कुलं ख्यातिं च वृत्तं च बुद्ध्या तु प्रसमीक्ष्य सः। ददौ तां धृतराष्ट्राय गान्धारीं धर्मचारिणीम् ॥१२॥
गान्धारी त्वथ शुश्राव धृतराष्ट्रमचक्षुषम्। आत्मानं दित्सितं चास्मै पित्रा मात्रा च भारत ॥१३॥
ततः सा पट्टमादाय कृत्वा बहुगुणं तदा। बबन्ध नेत्रे स्वे राजन्पतिव्रतपरायणा ॥१४॥
नाभ्यसूयां पतिमहमित्येवं कृतनिश्चया। ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरभ्ययात् ॥१५॥

कुल पुनः समुद्र के समान बढ़े, इसके लिए हम को और तुम को उद्योग करना चाहिए ॥४॥ यदुवंश में एक कन्या सुनी जाती है, जो हमारे कुल के योग्य है। राजा सुबल तथा मद्रराज की भी एक कन्या है ॥५॥ पुत्र, वे कन्याएँ कुलीन और रूपवती हैं, वे सब प्रकार से योग्य हैं। वे हमलोगों के सम्बन्ध के योग्य हैं, क्योंकि वे श्रेष्ठ क्षत्रिय वंश की हैं ॥६॥ बुद्धिमान्, इन कन्याओं का मैं इस कुल की सन्तान-वृद्धि के लिए वरण करना चाहता हूँ। अथवा जैसी तुम्हारी राय हो ॥७॥

विदुर बोले—आप हम लोगों के पिता हैं, माता हैं तथा लोक-परलोक सुधारने वाले गुरु हैं। आप स्वयं विचारकर इस कुल का जिसमें हित हो, वह करें ॥८॥

वैशम्पायन बोले—भीष्म ने ब्राह्मणों से सुना था कि राजा सुबल की कन्या गान्धारी ने वरद महादेव की आराधना कर के सौ पुत्र पाने का वर पाया है। यह बात भीष्म ने प्रामाणिक रीति से सुनी थी ॥९,१०॥ अनन्तर उन्होंने गान्धारराज के पास दूत भेजा। राजा सुबल पहले धृतराष्ट्र को अन्धा समझकर इस प्रस्ताव से उदासीन हुए। पुनः उन्होंने बुद्धि से विचार किया। धृतराष्ट्र का कुल, प्रसिद्धि तथा व्यवहार, इनका विचार करके उन्होंने धर्मचारिणी गान्धारी, राजा धृतराष्ट्र को दी ॥११,१२॥ गान्धारी ने सुना कि राजा धृतराष्ट्र अन्धे हैं और माता-पिता मुझे उन्हीं को देना चाहते हैं। इससे उन्होंने एक कपड़ा मँगवाया और उसे कई तह करके अपनी आँखें बाँध लीं, क्योंकि वह पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली थीं ॥१३,१४॥ गान्धारी ने यह निश्चय किया कि मैं पति के दोषों को न देखूँगी।

स्वसारं वयसा लक्ष्म्या युक्तामादाय कौरवान् । तां तदा धृतराष्ट्राय ददौ परमसत्कृताम् ॥
भीष्मस्यानुमते चैव विवाहं समकारयत् ॥१६॥
दत्वा स भगिनीं वीरो यथार्हं च परिच्छदम् । पुनरायात्स्वनगरं भीष्मेण प्रतिपूजितः ॥१७॥
गान्धार्यपि वरारोहा शीलाचारविचेष्टितैः । तुष्टिं कुरूणां सर्वेषां जनयामास भारत ॥१८॥
वृत्तेनाराधयतान्सर्वान्गुरून्पतिपरायणा । वाचाऽपि पुरुषानन्यान्सुव्रता नान्वकीर्तयत् ॥१९॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि धृतराष्ट्रविवाहे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

वैशम्पायन उवाच—
शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेवपिताऽभवत् । तस्य कन्या पृथानाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥१॥
पितृस्वस्रीयाय स तामनपत्याय भारत । अग्र्यमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्यापत्यं स सत्यवाक् ॥२॥
अग्रजामथ तां कन्यां शूरोऽनुग्रहकांक्षिणे । प्रददौ कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने॥३॥
नियुक्ता सा पितुर्गेहे ब्राह्मणातिथिपूजने । उग्रं पर्याचरत्तत्र ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥४॥
निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः । तमुग्रं शंसितात्मानं सर्वयत्नैरतोषयत् ॥५॥

धृतराष्ट्र के साथ गान्धारी का ब्याह निश्चित होने पर गान्धार-राजकुमार शकुनि परम सुन्दरी बहन को लेकर कौरवों के पास गये और अलङ्कारों से अलंकृत करके उन्होंने धृतराष्ट्र को कन्यादान दिया और भीष्म की सम्मति से दोनों का ब्याह करा दिया ॥१५,१६॥ वीर शकुनि यथोचित वस्त्र-अलङ्कार आदि के साथ कन्या का दान करके अपने नगर को लौट आये, भीष्म ने बड़े आदर के साथ उन्हें विदा किया ॥१७॥ सुन्दरी गान्धारी ने भी अपने शील और आचरण से समस्त कुरुवंशियों को प्रसन्न किया ॥१८॥ पतिव्रता गान्धारी ने अपने व्यवहार से बड़ों को प्रसन्न किया और दूसरे पुरुषों का नाम उच्चारण करना भी उसने छोड़ दिया ॥१९॥

दशाधिक शततम अध्याय ।

पृथा का चरित्र; दुर्वासा से मन्त्र की प्राप्ति; सूर्य से कर्ण का जन्म; कर्ण का त्याग; सूत के द्वारा कर्ण का नदी से उद्धार और उनका नाम करण; संक्षिप्त कर्ण-चरित्र ।

वैशम्पायन बोले—वसुदेव के पिता का नाम शूर था। वे यदुवंशियों में प्रधान थे। उनकी कन्या का नाम पृथा था, जो बड़ी सुन्दरी थी ॥१॥ उन्होंने बुआ के लड़के को अपनी पहली सन्तान देने की प्रतिज्ञा की थी, क्योंकि उनके कोई सन्तान न थी। उसी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिए शूर ने पहली कन्या-सन्तान, अनुग्रह चाहनेवाले महात्मा कुन्तिभोज को दी, जो उनके मित्र थे ॥२,३॥ पिता कुन्तिभोज के यहाँ वह कन्या अतिथियों और ब्राह्मणों के सत्कार में नियत थी। एक बार उसने व्रतधारी और क्रोधी ब्राह्मण दुर्वासा की सेवा की, जो धर्म के रहस्यों को जानते हैं। उस व्रतधारी मुनि को पृथा ने सब प्रकार से सन्तुष्ट किया ॥४, ५॥ मुनि ने यशस्विनी

तस्यै स प्रददौ मन्त्रमापद्धर्मान्ववेक्षया । अभिचाराभिसंयुक्तमब्रवीच्चैव तां मुनिः ॥६॥
यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि । तस्य तस्य प्रभावेण तव पुत्रो भविष्यति ॥७॥
तथोक्ता सा तु विप्रेण कुन्ती कौतूहलान्विता । कन्या सती देवमर्कमाजुहाव यशस्विनी ॥८॥
सा ददर्श तमायान्तं भास्करं लोकभावनम् । विस्मिता चानवद्याङ्गी दृष्ट्वातन्महदद्भुतम् ॥९॥
तां समासाद्य देवस्तु विवस्वानिदमब्रवीत् । अयमस्म्यसितापाङ्गि ब्रूहि किं करवाणि ते ॥१०॥
कुन्त्युवाच—
कश्चिन्मे ब्राह्मणः प्रादाद्वरं विद्यां च शत्रुहन् । तद्विजिज्ञासयाह्वानं कृतवत्यस्मि ते विभो ॥११॥
एतस्मिन्नपराधे त्वां शिरसाऽहं प्रसादये । योषितो हि सदा रक्ष्याः स्वपराध्यापि नित्यशः॥१२॥
सूर्य उवाच—
वेदाहं सर्वमेवैतद्यद्दुर्वासा वरं ददौ । सन्त्यज्य भयमेवेह क्रियतां सङ्गमो मम ॥१३॥
अमोघं दर्शनं मह्यमाहूतश्चास्मि ते शुभे । वृथाह्वानेऽपि ते भीरु दोषः स्यान्नात्र संशयः॥१४॥
वैशम्पायन उवाच—
एवमुक्ता बहुविधं सान्त्वपूर्वं विवस्वता । सा तु नैच्छद्वरारोहा कन्याहमिति भारत ॥१५॥

पृथा को एक आकर्षण मन्त्र दिया, जो आगे आपत्ति के समय काम आवे, जिससे धर्म-रक्षा हो। मन्त्र देकर मुनि ने कहा ॥६॥ इस मन्त्र से तुम जिस देवता का आवाहन करोगी, उसके प्रभाव से तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा ॥७॥ मुनि के वचन सुनकर कुतूहलवश होकर उस यशस्विनी ने कन्या-वस्था में ही सूर्यदेव का आवाहन किया ॥८॥

उसने लोक-भावन भगवान् सूर्य को आते देखा, इस आश्चर्य वृत्तान्त से वह सुन्दरी बहुत अधिक विस्मित हुई ॥९॥ उसके पास जाकर सूर्यदेव बोले—असितापाङ्गि, मैं यह आया। कहो, तुम्हारे लिए मैं क्या करूँ ?

कुन्ती बोली—शत्रुघातिन्, एक ब्राह्मण ने मुझे वर दिया था और विद्या दी थी, अर्थात् देवताओं के आह्वान का मन्त्र बतलाया था। उसी की परीक्षा करने के लिए विभो ! मैंने आपका आवाहन किया है, आपको बुलाया है ॥११॥ इस अपराध के लिए मैं सिर झुकाकर आपको प्रणाम करती हूँ। आप प्रसन्न हों, क्योंकि अपराधिनी होने पर भी स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए। वे सदा रक्षणीय हैं ॥१२॥

सूर्य बोले—ऋषि दुर्वासा ने तुम्हें जो वर दिया है, वह मैं जानता हूँ। अब भय छोड़-कर तुम आओ, मेरे साथ संगम करो। मेरा दर्शन अमोघ है। तुमने मुझे बुलाया है, उसका फल अवश्य होना चाहिये। यदि तुमने मुझे व्यर्थ ही बुलाया तो इसका फल तुम्हारे लिए बुरा होगा इसमें सन्देह नहीं ॥१३,१४॥

वैशम्पायन बोले—सूर्य ने इस प्रकार प्रेमपूर्वक उसे बहुत समझाया। परन्तु वह

बन्धुपक्षभयाद्भीता लज्जया च यशस्विनी । तामर्कः [illegible] ॥१६॥
मत्प्रसादान्न ते राज्ञि भविता दोष इत्युत । एवमुक्त्वा स भगवान् कुन्तिराजसुतां तदा ॥१७॥
प्रकाशकर्मा तपनः सम्बभूव तया सह । तत्र वीरः समभवत् सर्वशास्त्रभृतांवरः ।
आमुक्तकवचः श्रीमान्देवगर्भः श्रियान्वितः ॥१८॥
सहजं कवचं बिभ्रत् कुण्डलोद्योतिताननः । अजायत सुतः कर्णः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥१९॥
प्रादाच्च तस्यै कन्यात्वं पुनः स परमद्युतिः । दत्त्वा च तपतांश्रेष्ठो दिवमाचक्रमे ततः ॥२०॥
दृष्ट्वा कुमारं जातं सा वार्ष्णेयी दीनमानसा । एकाग्रं चिन्तयामास किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ॥२१॥
गूहमानापचारं सा बन्धुपक्षभयात्तदा । उत्ससर्ज्ज कुमारं तं जले कुन्ती महाबलम् ॥२२॥
तमुत्सृष्टं जले गर्भं राधाभर्त्ता महायशाः । पुत्रत्वे कल्पयामास सभार्य्यः सूतनन्दनः ॥२३॥
नामधेयञ्च चक्राते तस्य बालस्य तावुभौ । वसुना सह जातोऽयं वसुषेणो भवत्विति ॥२४॥
स वर्द्धमानो बलवान् सर्वास्त्रेषूद्यतोऽभवत् । आपृष्ठतापादादित्यमुपातिष्ठत वीर्यवान् ॥२५॥

सुन्दरी राज़ी नहीं हुई । भारत, क्योंकि वह कन्या थी और कन्यावस्था में सूर्य के साथ संगम करने से डरती थी ॥१५॥ वह यशस्विनी अपने बान्धवों के भय से डर रही है और लज्जित हो रही है, यह देखकर सूर्यदेव उससे पुनः बोले—॥१६॥ रानी ! मेरे प्रभाव से तुम्हें दोष न लगेगा अर्थात् तुम्हारा कन्या-भाव बना रहेगा । ऐसा कहकर संसार में प्रकाश फैलानेवाले सूर्यदेव ने कुन्तिराज की कन्या के साथ संगम किया, जिसके फलरूप एक वीर उत्पन्न हुआ, जो सर्व शास्त्रों का श्रेष्ठ ज्ञाता था, जो अस्त्रधारण किये हुए था और देव-कुमार के समान सुन्दर था ॥१७,१८॥ स्वाभाविक कवच और कुण्डल वह धारण किए हुए था । कुण्डल से उसका मुँह शोभित हो रहा था । वह बालक कर्ण के नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुआ ॥१९॥ अनन्तर परम तेजस्वी सूर्य ने पृथा को पुनः कन्या होने का वर दिया और तेजस्वियों में श्रेष्ठ वे आकाश में चले गये ॥२०॥

उस उत्पन्न कुमार को देखकर वृष्णिवंश की कन्या कुन्ती बहुत दुखी हुई । एकाग्र होकर सोचने लगी कि क्या करने से उत्तम होगा अर्थात् इस समय कौन उपाय किया जाय, जिससे मेरी लाज बचे ॥२१॥ वह अपने इस दुराचार को छिपाना चाहती थी, क्योंकि उसे बान्धवों का भय था ; अतएव उस महाबली कुमार को उसने जल में छोड़ दिया ॥२२॥

राधा के पति यशस्वी एक सूत-वंशी ने उस बालक को जल से निकाला और अपनी स्त्री की सम्मति से उसे अपना पुत्र बनाया ॥२३॥ उन स्त्री-पुरुषों ने उस बालक का नामकरण किया । यह बालक वसु अर्थात् धन के साथ उत्पन्न हुआ है, इस कारण इसका नाम वसुसेन रखा जाय, ऐसा उन लोगों ने निश्चय किया ॥२४॥ वह बली बालक बढ़ने लगा और अस्त्र विद्या में निपुण होता गया । वह पराक्रमी सूर्य के अस्ताचल की ओर मुड़ने तक उनकी उपासना करता था अर्थात् दिन के तीसरे पहर तक सूर्योपासना में लगा रहता था ॥२५॥ बुद्धिमान् और वीर



पृष्ठ ४१७] कर्ण का कवच दान [चित्रकार-पी. मुकर्जी

The Onkar Press. Allahabad

तस्मिन् काले तु जपतस्तस्य वीरस्य धीमतः । नादेयं ब्राह्मणेष्वासीत् किञ्चिद्वसु महीतले ॥२६॥
तमिन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा भिक्षार्थी समुपागमत् । कवचं प्रार्थयामास फाल्गुनस्य हितेरतः ॥२७॥
स्वशरीरात्समुत्कृत्य कवचं स्वनिसर्गजम् । विप्ररूपाय शक्राय ददौ कर्णः कृताञ्जलिः ॥२८॥
प्रतिगृह्य तु देवेशस्तुष्टस्तेनास्य कर्मणा । ददौ शक्तिं सुरपतिर्वाक्यं चेदमुवाच ह ॥२९॥
देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । यमेकं जेतुमिच्छेथाः सोऽनया न भविष्यति ॥३०॥
प्राङ्नाम तस्य कथितं वसुषेण इति क्षितौ । कर्णो वैकर्त्तनश्चैव कर्मणा तेन सोऽभवत् ॥३१॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि ऐन्द्रशक्तिलाभे एकादशाधिक
शततमोऽध्यायः ॥१११॥

वैशम्पायन उवाच—

सत्वरूपगुणोपेता धर्मारामा महाव्रता । दुहिता कुन्तिभोजस्य पृथा पृथुललोचना ॥१॥
तां तु तेजस्विनीं कन्यां रूपयौवनशालिनीम् । नावृण्वन् पार्थिवाः केचिदतीवस्त्रीगुणैर्युताम् ॥२॥
ततः सा कुन्तिभोजेन राज्ञाऽहूय नराधिपान् । पित्रा स्वयम्बरे दत्ता दुहिता राजसत्तम ॥३॥
ततः सा रङ्गमध्यस्थं तेषां राज्ञां मनस्विनी । ददर्श राजशार्दूलं पाण्डुं भरतसत्तमम् ॥४॥

कर्ण के उपासना के उस काल में ब्राह्मणों के लिए उसको कुछ भी अदेय नहीं था । उस समय उससे जो कुछ माँगा जाता था, वह वही दे देता था ॥२६॥ एक बार इन्द्र भी ब्राह्मण बनकर उसके पास भिक्षा के लिए गये । अर्जुन के हित के लिए उन्होंने उसका कवच माँगा ॥२७॥ अपने शरीर से स्वाभाविक कवच निकालकर कर्ण ने हाथ जोड़कर ब्राह्मण-वेशधारी इन्द्र को दिया ॥२८॥ देवराज इन्द्र कवच लेकर बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने कर्ण के इस काम को सराहा और कर्ण को शक्ति (अस्त्र) देकर वे उससे इस प्रकार बोले ॥२९॥ देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, इनमें से जिस किसी एक व्यक्ति को तुम मारना चाहोगे, वह इस शक्ति से नष्ट हो जायगा ॥ ३० ॥ पहले उसका नाम वसुसेन प्रसिद्ध था, अब इन्द्र को कवच देने के कारण उसके नाम कर्ण और वैकर्तन हुए ॥३१॥ एकादशाधिक शततम अध्याय ॥

स्वयंवर में कुन्ती का पाण्डु को वरण करना ।

वैशम्पायन बोले—कुन्तिभोज की कन्या, विशाललोचना पृथा, बलवती, रूपवती और गुणवती थी । वह धर्म में अनुराग रखती और बड़े-बड़े व्रत किया करती थी ॥१॥ परन्तु उस रूपवती युवती कन्या को किसी राजा ने ब्याहना न चाहा, क्योंकि वह तेजस्विनी थी और उसमें स्त्रियों के गुण अधिक मात्रा में थे ॥२॥ अतएव राजा कुन्तिभोज ने राजाओं को निमन्त्रण देकर बुलवाया और स्वयम्बर-विधि से पति वरण करने के लिए कन्या कुन्ती को आदेश दिया ॥३॥ वह मनस्विनी कन्या स्वयम्बर-सभा में गयी । वहाँ उसने रंगमञ्च के बीच में भरतवंश-श्रेष्ठ

सिंहदर्पं महोरस्कं वृषभाक्षं महाबलम् । आदित्यमिव सर्वेषां राज्ञां प्रच्छाद्य वै प्रभाः ॥५॥
तिष्ठन्तं राजसमितौ पुरन्दरमिवापरम् । तं दृष्ट्वा साऽनवद्याङ्गी कुन्तिभोजसुता शुभा ॥६॥
ततः कामपरीताङ्गी सकृत् प्रचलमानसा । व्रीडमाना स्रजं कुन्ती राज्ञः स्कन्धे समासृजत् ॥७॥
तं निशम्य वृतं पाण्डुं कुन्त्या सर्वे नराधिपाः । यथागतं समाजग्मुर्गजैरश्वैरथैस्तथा ॥८॥
ततस्तस्याः पिता राजन् विवाहमकरोत्प्रभुः । स तया कुन्तिभोजस्य दुहित्रा कुरुनन्दनः ॥९॥
युयुजेऽमितसौभाग्यः पौलोम्यामघवानिव । कुन्त्या पाण्डोश्च राजेन्द्र कुन्तिभोजो महीपतिः ॥१०॥
कृत्वोद्वाहं तदा तं तु नाना वसुभिरर्चितम् । स्वपुरं प्रेषयामास स राजा कुरुसत्तम ॥११॥
ततो बलेन महता नाना ध्वजपताकिना । स्तूयमानः स चाशीर्भिर्ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ॥१२॥
सम्प्राप्य नगरं राजा पाण्डुः कौरवनन्दनः । न्यवेशयत तां भार्यां कुन्तीं स्वभवने प्रभुः ॥१३॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि कुन्तीविवाहे द्वादशाधिक शततमोऽध्यायः ॥११२॥

वैशम्पायन उवाच—
ततः शान्तनवो भीष्मो राज्ञः पाण्डोर्यशस्विनः । विवाहस्यापरस्यार्थे चकार मतिमान्मतिम् ॥१॥

राजसिंह पाण्डु को देखा ॥४॥ सिंह के समान गर्वीले, चौड़ी छातीवाले, विशाल नयनवाले और महाबली राजा पाण्डु के तेज से वहाँ के राजाओं का तेज छिप गया था। वहाँ की राजसभा में वे दूसरे इन्द्र के समान शोभित हो रहे थे। कुन्तिभोज की सुन्दरी कन्या राजा पाण्डु को देखकर कामवश हो गयी, उसका मन चञ्चल हो गया। वह लज्जित हुई और उसने राजा के गले में माला डाल दी ॥५-७॥

कुन्ती ने राजा पाण्डु का वरण किया है, इस सम्वाद को सुनकर अन्य राजा अपने-अपने स्थान पर चले गये। कोई हाथी-घोड़ा और कोई रथ से गया ॥८॥ अनन्तर पिता ने उसका ब्याह कर दिया। राजा पाण्डु कुन्तिभोज की कन्या कुन्ती के साथ विवाह सम्बन्ध में बँधकर बड़े सौभाग्यशाली हुए, मानो दूसरे इन्द्र का पौलोमी के साथ सम्बन्ध हुआ हो। राजेन्द्र! महामति कुन्तिभोज ने कुन्ती और पाण्डु का विवाह करके तथा धन आदि से राजा को सन्तुष्ट करके अपनी राजधानी में जाने के लिए विदा किया ॥९-११॥ अनन्तर ध्वजा और पताकावाली बड़ी सेना के साथ तथा ब्राह्मणों की स्तुति और ऋषियों का आशीर्वाद ग्रहण करते हुए वे चले ॥१२॥ अपने नगर में जाकर कौरवनन्दन राजा पाण्डु ने यशस्विनी भार्या कुन्ती को अपने भवन में ठहराया ॥१३॥ द्वादशाधिक शततम अध्याय ॥

माद्री से पाण्डु का विवाह; पाण्डु की दिग्विजय-यात्रा ।

अनन्तर शान्तनु-पुत्र बुद्धिमान् भीष्म ने यशस्वी राजा का दूसरा ब्याह कराने की इच्छा की ॥१॥ अतएव वे बूढ़े सचिवों, ब्राह्मणों, महर्षियों तथा चतुरंगिणी सेना के साथ मद्रराज

सोऽमात्यैः स्थविरैः सार्धं ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः। बलेन चतुरङ्गेण ययौ मद्रपतेः पुरम् ॥२॥
तमागतमभिश्रुत्य भीष्मं वाह्लीकपुङ्गवः। प्रत्युद्गम्यार्चयित्वा च पुरं प्रवेशयन्नृपः ॥३॥
दत्वा तस्यासनं शुभ्रं पाद्यमर्घ्यं तथैव च। मधुपर्कञ्च मद्रेशः पप्रच्छागमनेऽर्थिताम् ॥४॥
तं भीष्मः प्रत्युवाचेदं मद्रराजं कुरूद्वहः। आगतं मां विजानीहि कन्यार्थिनमरिन्दम ॥५॥
श्रूयते भवतः साध्वी स्वसा माद्री यशस्विनी। तामहं वरयिष्यामि पाण्डोरर्थे यशस्विनीम् ॥६॥
युक्तरूपोहि सम्बन्धे त्वं नो राजन् वयं तव। एतत्सञ्चिन्त्यमद्रेशगृहाणास्मान्यथाविधि ॥७॥
तमेवं वादिनं भीष्मं प्रत्यभाषत मद्रपः। न हि मेऽन्यो वरस्त्वत्तः श्रेयानिति मतिर्मम ॥८॥
पूर्वैः प्रवर्त्तितं किञ्चित् कुलेऽस्मिन्नृपसत्तमैः। साधु वा यदिवासाधु तन्नातिक्रान्तुमुत्सहे ॥९॥
व्यक्तं तद्भवतश्चापि विदितं नात्र संशयः। न चायुक्तं तथा वक्तुं भवान्देहीति सत्तम ॥१०॥
कुलधर्मः स नो वीर प्रमाणं परमञ्च तत्। तेन त्वां न ब्रवीम्येतदसन्दिग्धं वचोऽरिहन् ॥११॥
तं भीष्मः प्रत्युवाचेदं मद्रराजं जनाधिपः। धर्म एष परो राजन् स्वयमुक्तः स्वयम्भुवा ॥१२॥
नात्र कश्चन दोषोऽस्ति पूर्वैर्विधिरयं कृतः। विदिते यच्च ते शल्य मर्य्यादा साधुसम्मता ॥१३॥
इत्युक्त्वा स महातेजाः शातकुम्भं कृताकृतम्। रत्नानि च विचित्राणि शल्यायादात्सहस्रशः ॥१४॥

की राजधानी में गये ॥२॥ भीष्म के आने का संवाद सुनकर बाल्हीकश्रेष्ठ मद्रराज उन के स्वागत के लिए नगर के बाहर जाकर उन्हें नगर में लिवा ले आये ॥३॥ राजा ने भीष्म को स्वच्छ आसन दिया, पाद्य-अर्घ्य तथा मधुपर्क दिया, अनन्तर मद्रराज ने उनसे आने का कारण पूछा ॥४॥ कुरु-श्रेष्ठ भीष्म ने मद्रराज को यह उत्तर दिया—अरिन्दम! मैं कन्या के लिए आया हूँ, ऐसा आप समझें ॥५॥ आप की साध्वी बहन यशस्विनी माद्री प्रसिद्ध है। मैं उसको राजा पाण्डु के लिए चाहता हूँ ॥६॥ मद्रराज, हमारा-आपका सम्बन्ध उचित है, आप हमारे योग्य हैं, और हम आपके योग्य हैं। अतएव ऐसा विचारकर आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करें, हमें अपनावें ॥७॥ भीष्म के ऐसा कहने पर मद्रराज ने उनसे कहा—इससे बढ़कर दूसरा वर नहीं है, ऐसा मैं समझता हूँ ॥८॥ पर मेरे पूर्वज, श्रेष्ठ राजाओं ने इस कुल में एक रीति चला दी है, अर्थात् हमारे कुल में शुल्क लेने की प्रथा प्रचलित है, वह अच्छी हो या बुरी, मैं उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। वह तो प्रसिद्ध है, आप भी जानते होंगे, इसमें सन्देह नहीं। अतएव मेरा यह कहना अनुचित न होगा कि आप मुझे दें अर्थात् शुल्क देकर कन्या ग्रहण करें ॥१०॥ वीर! यह हमारा कुल-धर्म है और वह अवश्य कर्तव्य है, अतएव मैं आप से खुलकर यह बात नहीं कह सकता हूँ ॥११॥

भीष्म ने उत्तर दिया—यह तो आपका श्रेष्ठ कुल-धर्म है, स्वयं स्वायम्भुव मनु ने यह कहा है ॥१२॥ इसमें कोई दोष नहीं है। शल्य! यह प्रथा आप के पूर्वजों ने चलायी है। यह मर्यादा सज्जनों के द्वारा अनुमत है और प्रसिद्ध है, मैं भी इसे जानता हूँ ॥१३॥

ऐसा उत्तर देकर तेजस्वी भीष्म ने बहुत सा सोना दिया, जिसमें कुछ तो बना था और

गजानश्वान्रथांश्चैव वासांस्याभरणानि च । मणिमुक्ताप्रवालञ्च गाङ्गेयो व्यसृजच्छुभम् ॥१५॥
तत् प्रगृह्य धनं सर्वं शल्यः सम्प्रीतमानसः । ददौ तां समलङ्कृत्य स्वसारं कौरवर्षभे ॥१६॥
स तां माद्रीमुपादाय भीष्मः सागरगासुतः । आजगाम पुरीं धीमान् प्रविष्टा गजसाह्वयम् ॥१७॥
तत इष्टेऽहनि प्राप्ते मुहूर्त्ते साधुसम्मते । जग्राह विधिवत् पाणिं माद्र्याः पाण्डुर्नराधिपः ॥१८॥
ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा कुरुनन्दन । स्थापयामास तां भार्य्यां शुभे वेश्मनि भामिनीम् ॥१९॥
सताभ्यांव्यचरत्सार्धंभार्य्याभ्यांराजसत्तमः । कुन्त्यामाद्र्याचराजेन्द्रोयथाकामंयथासुखम् ॥२०॥
ततः स कौरवो राजा विहृत्य त्रिदशा निशाः । जिगीषया महीं पाण्डुर्निरक्रामत्पुरात् प्रभो ॥२१॥
स भीष्मप्रमुखान्वृद्धानभिवाद्य प्रणम्य च । धृतराष्ट्रञ्च कौरव्यं तथान्यान् कुरुसत्तमान् ॥२२॥
आमन्त्र्य प्रययौ राजा तैश्चैवाभ्यनुमोदितः । मङ्गलाचारयुक्ताभिराशीर्भिरभिनन्दितः ॥२३॥
गजवाजिरथौघेन बलेन महतागमत् । स राजा देवगर्भाभो विजिगीषुर्वसुन्धराम् ॥२४॥
हृष्टपुष्टबलैः प्रायात् पाण्डुः शत्रूननेकशः । पूर्वमागस्कृतो गत्वा दशार्णाः समरे जिताः ॥
पाण्डुना नरसिंहेन कौरवाणां यशोभृता ॥२५॥
ततः सेनामुपादाय पाण्डुर्नानाविधध्वजाम् । प्रभूतहस्त्यश्वयुतां पदातिरथसंकुलाम् ॥२६॥
आगस्कारी महीपानां बहूनां बलदर्पितः । गोप्ता मगधराष्ट्रस्य दीर्घो राजगृहे हतः ॥२७॥

कुछ बिना बना था तथा अनेक प्रकार के हज़ारों रत्न राजा शल्य को दिये ॥१४॥ हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्र, आभरण, मणि, मुक्ता और मूँगा, गङ्गा पुत्र भीष्म ने दिये ॥१५॥

वह धन पाकर शल्य बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कुरुश्रेष्ठ भीष्म को अलंकृत करके कन्या दी ॥१६॥ गङ्गा-पुत्र बुद्धिमान् भीष्म माद्री को लेकर अपने नगर हस्तिनापुर में आये ॥१७॥ पुनः नियत दिन में, अच्छे मुहूर्त में, राजा पाण्डु ने विधिपूर्वक माद्री का पाणिग्रहण किया ॥१८॥ ब्याह हो जाने पर राजा ने नयी परिणीता वधू को अच्छे मकान में रखा ॥१९॥ राजा पाण्डु कुन्ती और माद्री दोनों रानियों के साथ स्वेच्छानुसार सुख-भोग करने लगे ॥२०॥ तीस रात्रियों तक स्वेच्छापूर्वक उनके साथ विहार करके राजा पाण्डु दिग्विजय करने की इच्छा से राजधानी से निकले ॥२१॥ भीष्म आदि वृद्ध कौरवों को अभिवादन कर, धृतराष्ट्र तथा अन्य प्रतिष्ठित कौरवों को प्रणाम कर और उनसे आज्ञा लेकर राजा चले। यात्रा के समय का मङ्गलाचार हुआ, लोगों ने उन्हें आशीर्वाद दिये ॥२२,२३॥ देवतुल्य राजा पाण्डु हाथी, घोड़े, रथ और सेना लेकर पृथिवी के राजाओं को जीतने की इच्छा से चले ॥२४॥ कुरु-वंश का यश बढ़ानेवाले नरसिंह पाण्डु ने पहले के अपराधी अनेक राजाओं को जीतकर दशार्ण देशवालों को युद्ध में जीता ॥२५॥

अनेक प्रकार की ध्वजावाली, बहुत से हाथी-घोड़े, रथ और पैदल से युक्त बड़ी सेना लेकर वे चले और मगध के राजा दीर्घ को उसकी राजधानी राजगृह में उन्होंने मारा। वह बल के घमण्ड में आकर अनेक राजाओं को कष्ट दिया करता था ॥२६,२७॥ वहाँ का खजाना और बहुत

ततः कोषं समादाय वाहनानि च भूरिशः । पाण्डुना मिथिलां गत्वा विदेहाः समरे जिताः ॥२८॥
तथा काशिषु सुह्मेषु पुण्ड्रेषु च नरर्षभ । स्वबाहुबलवीर्य्येण कुरूणामकरोद्यशः ॥२९॥
तं शरौघमहाज्वालं शस्त्रार्चिषमरिन्दमम् । पाण्डुपावकमासाद्य व्यदह्यन्त नराधिपाः ॥३०॥
ते ससेनाः ससेनेन विध्वंसितबला नृपाः । पाण्डुना वशगाः कृत्वा कुरुकर्मसु योजिताः ॥३१॥
तेन ते निर्ज्जिताः सर्वे पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः । तमेकं मेनिरे शूरं देवेष्विव पुरन्दरम् ॥३२॥
तं कृताञ्जलयः सर्वे प्रणता वसुधाधिपाः । उपाजग्मुर्धनं गृह्य रत्नानि विविधानि च ॥३३॥
मणिमुक्ताप्रवालञ्च सुवर्णं रजतं बहु । गोरत्नान्यश्वरत्नानि रथरत्नानि कुञ्जरान् ॥३४॥
खरोष्ट्रमहिषांश्चैव यच्चकिञ्चिदजाविकम् । कम्बलाजिनरत्नानि राङ्कवास्तरणानि च ।
तत्सर्वं प्रतिजग्राह राजा नागपुराधिपः ॥३५॥
तदादाय ययौ पाण्डुः पुनर्मुदितवाहनः । हर्षयिष्यन् स्वराष्ट्राणि पुरञ्च गजसाह्वयम् ॥३६॥
शान्तनो राजसिंहस्य भरतस्य च धीमतः । प्रनष्टः कीर्त्तिजः शब्दः पाण्डुना पुनराहृतः ॥३७॥
ये पुरा कुरुराष्ट्राणि जह्रुः कुरुधनानि च । ते नागपुरसिंहेन पाण्डुना करदीकृताः ॥३८॥
इत्यभाषन्त राजानो राजामात्याश्च सङ्गताः । प्रतीतमनसो हृष्टाः पौरजानपदैः सह ॥३९॥

से हाथी-घोड़े लेकर राजा पाण्डु मिथिला में गये और वहाँ उन्होंने विदेहों को जीता ॥२८॥ इसी प्रकार काशी, सुह्म और पुण्ड्र देशों में पाण्डु ने अपना भुज-पराक्रम दिखाकर कौरवों का यश बढ़ाया ॥२९॥ वहाँ के राजा पाण्डुरूपी अग्नि को पाकर जल मरे । इस राजरूपी अग्नि से बाण-समूहरूपी ज्वालाएँ निकलती थीं और शस्त्ररूपी लपटें ॥३०॥ सेना के साथ उन राजाओं को राजा पाण्डु ने अपनी सेना की सहायता से बलहीन बना दिया और अपने अधीन बनाकर उन्हें कुरुराज के अनुगत बना दिया ॥३१॥ उन्होंने पृथिवी के समस्त देवताओं को जीत लिया । वे राजा पाण्डु को ही सर्वप्रधान वीर समझने लगे, जिस प्रकार इन्द्र देवताओं में वीर समझा जाता है ॥३२॥ वे सब राजा हाथ जोड़कर, प्रणत होकर और धन-रत्न आदि लेकर राजा पाण्डु की सेवा में उपस्थित होने लगे ॥३३॥ मणि, मुक्ता, प्रवाल, सोना, चाँदी, अच्छे बैल और गौ, अच्छे घोड़े, रथ, हाथी, गधे, ऊँट, भैंसे, भेंड, बकरी, कम्बल, चर्म, पश्मीना के वस्त्र और बिछौने आदि जो कुछ राजालोग ले आये, वह सब राजा पाण्डु ने ग्रहण किया ॥३४,३५॥ राजाओं के दिये वे भेंट लेकर प्रसन्न सेना और वाहनों के साथ राजा पाण्डु अपनी प्रजा को प्रसन्न करने के लिए अपने नगर में आये ॥३६॥

राजसिंह शान्तनु और बुद्धिमान् राजा भरत की जो कीर्ति नष्ट हो गयी थी, पाण्डु ने पुनः उसे अर्जित किया ॥३७॥ जिन राजाओं ने पहले कुरुराज्य को दबा लिया था तथा कौरवों का धन छीन लिया था, उन सब को हस्तिनापुर के सिंह पाण्डु ने अधीन बनाकर करद बना लिया ॥३८॥ वहाँ एकत्र राजा-अमात्य आदि, नगर तथा राज्यवासी प्रजा के साथ इस प्रकार बातें करते थे ॥३९॥ राजा के आने का समाचार सुनकर भीष्म आदि उनकी अगवानी के लिए

प्रत्युद्ययुश्च तं प्राप्तं सर्वे भीष्मपुरोगमाः। ते न दूरमिवाध्वानं गत्वा नागपुरालयात् ॥४०॥
आवृतं ददृशुर्हृष्टा लोकं बहुविधैर्धनैः। नाना यानसमानीतै रत्नैरुच्चावचैस्तदा ॥४१॥
हस्त्यश्वरथरत्नैश्च गोभिरुष्ट्रैस्तथाऽविभिः। नान्तं ददृशुरासाद्य भीष्मेण सह कौरवाः ॥४२॥
सोऽभिवाद्य पितुः पादौ कौसल्यानन्दवर्द्धनः। यथार्हं मानयामास पौरजानपदानपि ॥४३॥
प्रमृद्य परराष्ट्राणि कृतार्थं पुनरागतम्। पुत्रमाश्लिष्य भीष्मस्तु हर्षादश्रूण्यवर्तयत् ॥४४॥
स तूर्य्यशतशङ्खानां भेरीणाञ्च महास्वनैः। हर्षयन् सर्वशः पौरान् विवेश गजसाह्वयम् ॥४५॥
इति श्रीमहाभारतेआदिपर्वणिसम्भवपर्वणिपाण्डुदिग्विजयेत्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११३॥

वैशम्पायन उवाच—
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः स्वबाहुविजितं धनम्। भीष्माय सत्यवत्यै च मात्रे चोपजहार सः ॥१॥
विदुराय च वै पाण्डुः प्रेषयामास तद्धनम्। सुहृदश्चापि धर्मात्मा धनेन समतर्पयत् ॥२॥
ततः सत्यवतीं भीष्मं कौसल्यां च यशस्विनीम्। शुभैः पाण्डुर्जितैरर्थैस्तोषयामास भारत ॥३॥
ननन्द माता कौसल्या तमप्रतिमतेजसम्। जयन्तमिव पौलोमी परिष्वज्य नरर्षभम् ॥४॥
तस्य वीरस्य विक्रान्तैः सहस्रशतदक्षिणैः। अश्वमेध शतैरीजे धृतराष्ट्रो महामखैः ॥५॥

गये। हस्तिनापुर से थोड़ी ही दूर आगे जाने पर उनलोगों ने भीड़ देखी, जिसके पास अनेक प्रकार के धन थे। विविध रत्न अनेक वाहनों पर लदे थे। हाथी-घोड़ों और बैल आदि का अन्त न था। भीष्म के साथ कौरवों ने देखा कि इस भीड़ का अन्त न था ॥४०-४२॥ राजा ने पालक पिता भीष्म को प्रणाम किया, प्रजाओं का सत्कार किया ॥४३॥ शत्रु-नगर और राज्यों को जीतकर लौटे हुए पुत्र का आलिङ्गन करके भीष्म हर्ष के आँसू बहाने लगे ॥४४॥ सैकड़ों बाजों, शंखों और मृदङ्गों के कोलाहल से पुरवासियों को प्रसन्न करते हुए राजा ने हस्तिनापुर में प्रवेश किया ॥४५॥
त्रयोदशाधिक शततम अध्याय।

पाण्डु का अपनी दोनों रानियों के साथ वन जाना।

वैशम्पायन बोले—धृतराष्ट्र के परामर्श से पाण्डु ने भुजबलोपार्जित धन भीष्म, सत्यवती और अपनी माता को उपहार में दिया ॥१॥ उस धन में से उन्होंने विदुर के लिए भी भेजा तथा धर्मात्मा पाण्डु ने उसी धन में से मित्रों को भी तृप्त किया ॥२॥ अनन्तर सत्यवती ने भीष्म और कौसल्या को पाण्डु के लाये धन से सन्तुष्ट किया अर्थात् उन्हें दिया ॥३॥ माता कौसल्या तेजस्वी पुत्र पाण्डु का आलिङ्गन करके प्रसन्न हुई, जिस प्रकार जयन्त के आलिङ्गन से इन्द्राणी प्रसन्न होती है ॥४॥ वीर पाण्डु के लाये धन से धृतराष्ट्र ने अश्वमेध के समान बड़े-बड़े यज्ञ किये, जिसमें सैकड़ों-हजारों दक्षिणा में दिये गये ॥५॥

सम्प्रयुक्तस्तु कुन्त्या च माद्र्या च भरतर्षभ। जिततन्द्रस्तदा पाण्डुर्बभूव वनगोचरः ॥६॥
हित्वा प्रासादनिलयं शुभानि शयनानि च। अरण्यनित्यः सततं बभूव मृगयापरः ॥७॥
स चरन्दक्षिणं पार्श्वं रम्यं हिमवतो गिरेः। उवास गिरिपृष्ठेषु महाशालवनेषु च ॥८॥
रराज कुन्त्या माद्र्या च पाण्डुः सह वने चरन्। करेण्वोरिव मध्यस्थः श्रीमान्पौरन्दरो गजः ॥९॥
भारतं सह भार्याभ्यां खड्गबाणधनुर्धरम्। विचित्रकवचं वीरं परमास्त्रविदं नृपम् ॥
देवोऽयमित्यमन्यन्त चरन्तं वनवासिनः ॥१०॥
तस्य कामाँश्च भोगाँश्च नरा नित्यमतन्द्रिताः। उपजह्रुर्वनान्तेषु धृतराष्ट्रेण चोदिताः ॥११॥
अथ पारसवीं कन्यां देवकस्य महीपतेः। रूपयौवनसम्पन्नां स शुश्रावापगासुतः ॥१२॥
ततस्तु वरयित्वा तामानीय भरतर्षभः। विवाहं कारयामास विदुरस्य महामतेः ॥१३॥
तस्यां चोत्पादयामास विदुरः कुरुनन्दनः। पुत्रान्विनयसम्पन्नानात्मनःसदृशान्गुणैः ॥१४॥
इति श्री महाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि विदुरपरिणये चतुर्दशाधिक शततमोऽध्यायः॥११४॥

वैशम्पायन उवाच—
ततः पुत्रशतं जज्ञे गान्धार्यां जनमेजय। धृतराष्ट्रस्य वैश्यायामेकश्चापि शतात्परः ॥१॥

कुछ दिनों के बाद नगरवास छोड़कर राजा पाण्डु दोनों स्त्रियों को लेकर वन में गये ॥६॥ उन्होंने राजमहल और सुन्दर तथा सुखद पलँग छोड़ दिये और सदा वन में रहकर वे नित्य शिकार करने लगे ॥७॥ राजा कभी पर्वत के शिखर पर निवास करते थे और कभी शालवन में विचरण करते थे ॥८॥ दो हथिनियों के बीच में इन्द्र का ऐरावत हाथी जैसा शोभता है, वैसे ही कुन्ती और माद्री के बीच में वन में भ्रमण करते हुए राजा पाण्डु शोभित होते थे ॥९॥ अस्त्रवेत्ता राजा पाण्डु धनुष-बाण और तलवार लेकर तथा विचित्र कवच पहनकर दोनों स्त्रियों के साथ वन में विचरण करते थे, तब वनवासी उनको देवता समझते थे ॥१०॥ राजा के कामभोग की समस्त सामग्री वन में भी धृतराष्ट्र के कर्मचारी सदा पहुँचाया करते थे ॥११॥

गङ्गापुत्र भीष्म को मालूम हुआ कि राजा देवक की एक पारसवी (शूद्रा के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न) कन्या है। वह रूपवती और युवती है ॥१२॥ उन्होंने राजा देवक से उस कन्या के लिए प्रार्थना की। राजा की आज्ञा से कन्या लेकर वे आये और महामति विदुर के साथ उसका ब्याह कर दिया ॥१३॥ कुरुनन्दन, विदुर ने उस स्त्री से अपने समान गुणी और विनयी पुत्र उत्पन्न किये ॥१४॥ चतुर्दश अधिक शततम अध्याय ॥

धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि पुत्रों का जन्म।

वैशम्पायन बोले—अनन्तर गान्धारी के गर्भ से धृतराष्ट्र के सौ पुत्र उत्पन्न हुए और वैश्या के गर्भ से एक, जो सौ से अधिक था ॥१॥ कुन्ती और माद्री के गर्भ से पाण्डु के पाँच

पाण्डोः कुन्त्यां च माद्र्यां च पुत्राः पञ्च महारथाः । देवेभ्यः समपद्यन्त सन्तानाय कुलस्य वै ॥२॥

जनमेजय उवाच—

कथं पुत्रशतं जज्ञे गान्धार्यां द्विजसत्तम । कियता चैव कालेन तेषामायुश्च किं परम् ॥३॥

कथं चैकः स वैश्यायां धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् । कथं च सदृशीं भार्यां गान्धारीं धर्मचारिणीम् ॥४॥

आनुकूल्ये वर्तमानां धृतराष्ट्रोऽभ्यवर्त्तत । कथं च शप्तस्य सतः पाण्डोस्तेन महात्मना ॥५॥

समुत्पन्ना दैवतेभ्यः पुत्राः पञ्च महारथाः । एतद्विद्वन्यथान्यायं विस्तरेण तपोधन ॥६॥

कथयस्व न मे तृप्तिः कथ्यमानेषु वन्धुषु ।

वैशम्पायन उवाच— क्षुच्छ्रमाभिपरिग्लानं द्वैपायनमुपस्थितम् ॥७॥

तोषयामास गान्धारी व्यासस्तस्यै वरं ददौ । सा वव्रे सदृशं भर्तुः पुत्राणां शतमात्मनः ॥८॥

ततः कालेन सा गर्भं धृतराष्ट्रादथाग्रहीत् । संवत्सरद्वयं तं तु गान्धारी गर्भमाहितम् ॥९॥

अप्रजा धारयामास ततस्तां दुःखमाविशत् । श्रुत्वा कुन्तीसुतं जातं बालार्कसमतेजसम् ॥१०॥

उदरस्यात्मनः स्थैर्यमुपलभ्यान्वचिन्तयत् । अज्ञातं धृतराष्ट्रस्य यत्नेन महता ततः ॥११॥

सोदरं घातयामास गान्धारी दुःखमूर्च्छिता । ततो जज्ञे मांसपेशी लोहाष्ठीलेव संहता ॥१२॥

द्विवर्षसम्भृता कुक्षौ तामुत्स्रष्टुं प्रचक्रमे । अथ द्वैपायनो ज्ञात्वा त्वरितः समुपागमत् ॥१३॥

महारथ पुत्र हुए। ये कुल-वृद्धि के लिए देवताओं से उत्पन्न हुए थे ॥२॥

जनमेजय बोले—द्विजश्रेष्ठ ! गान्धारी के सौ पुत्र कैसे उत्पन्न हुए ? कितने दिनों में हुए ? और उनकी आयु कितनी थी ? ॥३॥ वैश्या के गर्भ से धृतराष्ट्र के एक पुत्र कैसे हुआ ? क्योंकि गान्धारी, धृतराष्ट्र की अनुकूला स्त्री थी, धर्मचारिणी थी, उनके समान थी, फिर राजा ने उसके प्रतिकूल आचरण क्यों किया ? उस महात्मा के द्वारा शाप पाने पर राजा पाण्डु के देवताओं द्वारा पाँच महारथ पुत्र कैसे हुए ? क्रमानुसार विस्तार के साथ आप यह सब मुझ से कहें। अपने बान्धवों का वर्णन सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती।

वैशम्पायन बोले—भूख-प्यास से थके वेदव्यास एक बार गान्धारी के यहाँ गये। गान्धारी ने उन्हें खिला-पिलाकर सन्तुष्ट किया। व्यास ने उसको वर देना चाहा। उसने अपने गर्भ से सौ पुत्र उत्पन्न होने का वर माँगा ॥४-८॥

वैशम्पायन बोले—कुछ दिनों के बाद गान्धारी ने धृतराष्ट्र से गर्भ ग्रहण किया और दो वर्षों तक उसने उस गर्भ को धारण किया ॥९॥ इसी समय उसने सुना कि बालसूर्य के समान तेजस्वी पुत्र कुन्ती ने उत्पन्न किया है। इससे उसे दुःख हुआ। अपने पुत्रवती न होने से वह दुःखिनी हुई ॥१०॥ गान्धारी ने अपने गर्भ के शीघ्र प्रसव होने के कोई लक्षण नहीं देखे, तब दुःख-पीड़िता गान्धारी ने धृतराष्ट्र से छिपकर बड़े प्रयत्न से अपने गर्भ को दबाया, उससे लोहे के गोले के समान एक मांस की पोटली निकली ॥११-१२॥ व्यर्थ जानकर गान्धारी पेट में दो वर्ष बढ़ी हुई

तां स मांसमयीं पेशीं ददर्श जपतांवरः । ततोऽब्रवीत्सौबलेयीं किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥१४॥
सा चात्मनो मतं सत्यं शशंस परमर्षये ।
गान्धार्युवाच— ज्येष्ठं कुन्तीसुतं जातं श्रुत्वा रविसमप्रभम् ॥१५॥
दुःखेन परमेणेदमुदरं घातितं मया । शतञ्च किल पुत्राणां वितीर्णं मे त्वया पुरा ॥१६॥
इयं च मे मांसपेशी जाता पुत्रशताय वै ।
व्यास उवाच— एवमेतत्सौबलेयि नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ॥१७॥
वितथं नोक्तपूर्वं मे स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा । घृतपूर्णं कुण्डशतं क्षिप्रमेव विधीयताम् ॥१८॥
सुगुप्तेषु च देशेषु रक्षा चैव विधीयताम् । शीताभिरद्भिरष्ठीलामिमां च परिषिञ्चय ॥१९॥
वैशम्पायन उवाच—
सा सिच्यमाना ह्यष्ठीला ह्यभवच्छतधा तदा । अङ्गुष्ठपर्वमात्राणां गर्भाणां पृथगेव तु ॥२०॥
एकाधिकशतं पूर्णं यथायोगं विशांपते । मांसपेश्यास्तदा राजन्क्रमशः कालपर्ययात् ॥२१॥
ततस्ताँस्तेषु कुण्डेषु गर्भानवदधे तथा । स्वनुगुप्तेषु देशेषु रक्षां वै व्यदधात्ततः ॥२२॥
शशंस चैव भगवान्कालेनैतावता पुनः । उद्घाटनीयान्येतानि कुण्डानीति च सौबलीम् ॥२३॥

उस पोटली को फेंकने का विचार करने लगी । वेदव्यास यह बात जानकर वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने उस मांस की पोटली को देखा । उन्होंने कहा—सुबलपुत्रि, तुमने यह क्या किया?॥१३-१४॥ उसने अपना स्पष्ट अभिप्राय ऋषि से कह दिया।

गान्धारी बोली—पहले सूर्य के समान कुन्ती के तेजस्वी पुत्र हुआ । यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ । वही बड़ा हुआ और राज्य का अधिकारी होगा, यही दुःख का कारण है। इसीसे मैंने अपना पेट दबाया । आपने तो मुझे सौ पुत्र दिये थे। उन पुत्रों के बदले यही मांस की पोटली हुई है।

व्यास बोले—सुबलपुत्रि, जो मैंने कहा है, वह ठीक है, वैसा ही होगा ॥१५-१६॥ मेरी बात झूठी नहीं है, मैंने जानबूझकर कभी झूठी बात नहीं कही है। अब तुम घी से भरे सौ घड़े मँगवाओ और सुरक्षित स्थान में उन घड़ों को रखो तथा ठण्ढे जल से इस पोटली को सींचा करो ॥१७॥

वैशम्पायन बोले—जल से सींचने पर उस पोटली के सौ टुकड़े हो गये, वे प्रत्येक एक अँगूठे के बराबर थे, जो अलग-अलग गर्भ हुए ॥२०॥ राजन्, समय बीतने पर उस मांस की पोटली के जो टुकड़े हुए थे, उनकी संख्या एक सौ एक हुई ॥२१॥ अनन्तर गान्धारी ने उन टुकड़ों को घड़ों में रखा और सुरक्षित स्थान में उन घड़ों को रखकर वह उनकी रक्षा करने लगी ॥२२॥ भगवान् वेदव्यास ने गान्धारी से कहा कि इतने दिनों के बाद तुम इन घड़ों को खोलना ॥२३॥ गान्धारी से ऐसा कहकर तथा उन गर्भों को यथास्थान रखवाकर भगवान् व्यास हिमालय पर्वत पर

इत्युक्त्वा भगवान्व्यासस्तथाप्रतिनिधाय च । जगाम तपसे धीमान्हिमवन्तं शिलोच्चयम् ।।२४।।
जज्ञे क्रमेण चैतेन तेषां दुर्योधनो नृपः । जन्मतस्तु प्रमाणेन ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः ।।२५।।
तदाऽऽख्यातं तु भीष्माय विदुराय च धीमते । यस्मिन्नहनि दुर्धर्षो जज्ञे दुर्योधनस्तदा ।।२६।।
तस्मिन्नेव महाबाहुर्जज्ञे भीमोऽपि वीर्यवान् । स जातमात्र एवाथ धृतराष्ट्रसुतो नृप ।।२७।।
रासभारावसदृशं रुराव च ननाद च । तं खराः प्रत्यभाषन्त गृध्रगोमायुवायसाः ।।२८।।
वाताश्च प्रववुश्चापि दिग्दाहश्चाभवत्तदा । ततस्तु भीतवद्राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ।।२९।।
समानीय बहून्विप्रान्भीष्मं विदुरमेव च । अन्यांश्च सुहृदो राजन्कुरून्सर्वांस्तथैव च ।।३०।।
युधिष्ठिरो राजपुत्रो ज्येष्ठो नः कुलवर्धनः । प्राप्तः स्वगुणतो राज्यं न तस्मिन्वाच्यमस्ति नः ।।३१।।
अयं त्वनन्तरस्तस्मादपि राजा भविष्यति । एतद्विब्रूत मे तथ्यं यदत्र भविता ध्रुवम् ।।३२।।
वाक्यस्यैतस्य निधने दिक्षु सर्वासु भारत । क्रव्यादाः प्राणदन्घोराः शिवाश्चाशिवशंसिनः ।।३३।।
लक्षयित्वा निमित्तानि तानि घोराणि सर्वशः । तेऽब्रुवन्ब्राह्मणा राजन्विदुरश्च महामतिः ।।३४।।
यथेमानि निमित्तानि घोराणि मनुजाधिप । उत्थितानि सुते जाते ज्येष्ठे ते पुरुषर्षभ ।।३५।।
व्यक्तं कुलान्तकरणो भवितैष सुतस्तव । तस्य शान्तिः परित्यागे गुप्तावपनयो महान् ।।३६।।

तपस्या करने चले गये ॥२४॥ कुछ समय बीतने पर उन गर्भों में से पहले राजा दुर्योधन उत्पन्न हुए। पर पहले जन्म होने और शरीर की लम्बाई के कारण राजा युधिष्ठिर उनसे बड़े थे ॥२५॥ राजा दुर्योधन के जन्म लेने का संवाद भीष्म तथा बुद्धिमान विदुर को सुनाया गया ॥२६॥ जिस दिन दुर्धर्ष दुर्योधन उत्पन्न हुआ, उसी दिन महाबाहु पराक्रमी भीमसेन भी उत्पन्न हुए। वह धृतराष्ट्र का पुत्र उत्पन्न होते ही गधे के समान बोलने लगा, उसकी ध्वनि के समान ध्वनि करने लगा। उसके साथ ही गधे, गीध, सियार और कौए बोलने लगे ॥२७, २८॥ आँधी चलने लगी और दिशाएँ जलने लगीं। यह सब अमंगलसूचक चिन्ह देखकर धृतराष्ट्र बहुत भयभीत हुए। उन्होंने अनेक ब्राह्मणों, भीष्म-विदुर आदि मित्रों तथा कुरुवंशियों को बुलाया ॥२९॥ राजा उनसे बोले—"राजपुत्र युधिष्ठिर बड़ा है, उससे हमारे कुल की ख्याति होगी और वह राजा होगा। वह अपने गुणों से ही राज्य का अधिकारी हुआ है, अतएव उसके विषय में मुझे कुछ कहना नहीं है ॥३१॥ पर यह दुर्योधन उससे पीछे उत्पन्न हुआ है, यह उससे छोटा है, तो क्या यह भी राजा हो सकेगा ? इस विषय में जो सच्ची बात हो, जो होनेवाला हो, वह आपलोग सच-सच बतलावें" ॥३२॥ धृतराष्ट्र के इस बात के समाप्त होने पर दिशाओं में मांसभक्षी भयंकर जन्तु और अमंगल की सूचना देनेवाली सियारिन बोलने लगी ॥३३॥ चारों ओर होनेवाले अमंगल के चिन्हों को देखकर तथा विचारकर उन ब्राह्मणों ने तथा बुद्धिमान् विदुर ने कहा ॥३४॥ आपके ज्येष्ठ पुत्र के जन्म के समय जैसे ये भयंकर अशकुन हो रहे हैं, उनसे स्पष्ट मालूम हो रहा है कि अवश्य यह पुत्र कुरुकुल का नाश करेगा। इस घोर अनर्थ से बचने के लिए इस पुत्र का त्याग करना ही उचित है। यदि यह घर में रखकर पाला-पोसा गया तो बड़ा अनर्थ होगा ॥३५,३६॥ भारत, यदि आप अपने कुल का

शतमेकोनमप्यस्तु पुत्राणां ते महीपते । त्यजैनमेकं शान्तिं चेत्कुलस्येच्छसि भारत॥३७॥
एकेन कुरु वै क्षेमं कुलस्य जगतस्तथा । त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ॥३८॥
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् । स तथा विदुरेणोक्तस्तैश्च सर्वैर्द्विजोत्तमैः ॥३९॥
न चकार तथा राजा पुत्रस्नेहसमन्वितः । ततः पुत्रशतंपूर्णं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव ॥४०॥
मासमात्रेण सञ्जज्ञे कन्या चैकाशताधिका । गान्धार्यां क्लिश्यमानायामुदरेण विवर्धता ॥४१॥
धृतराष्ट्रं महाराजं वैश्या पर्यचरत्किल । तस्मिन्संवत्सरे राजन्धृतराष्ट्रान्महायशाः ॥४२॥
जज्ञे धीमांस्ततस्तस्यां युयुत्सुः करणो नृप । एवं पुत्रशतं जज्ञे धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥४३॥
महारथानां वीराणां कन्याचैका शताधिका । युयुत्सुश्च महातेजा वैश्यापुत्रः प्रतापवान् ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि गान्धारीपुत्रोत्पत्तौ
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

जनमेजय उवाच—
धृतराष्ट्रस्यपुत्राणामादितः कथितं त्वया । ऋषेः प्रसादात्तु शतं न च कन्या प्रकीर्तिता ॥१॥
वैश्यापुत्रो युयुत्सुश्च कन्याचैका शताधिका । गान्धारराजदुहिता शतपुत्रेति चानघ ॥२॥

कल्याण चाहते हों तो इस एक पुत्र का आप त्याग करें । इसका त्याग करने पर भी आप के एक कम सौ अर्थात् ९९ पुत्र रह जाँयगे ॥३७॥ एक पुत्र का त्याग करके आप अपने कुल तथा संसार का कल्याण कीजिये, कुल के कल्याण के लिए एक का त्याग करना उचित है और गाँव के कल्याण के लिए कुल का त्याग करना चाहिए । अपने प्रान्त के कल्याण के लिए गाँव का त्याग करना चाहिए तथा अपने कल्याण के लिए यदि आवश्यकता हो तो पृथिवी का ही त्याग करना उचित है । राजा धृतराष्ट्र से विदुर ने तथा अन्य ब्राह्मणों ने इस प्रकार कहा ॥३८,३९॥ पर राजा ने उनलोगों की बात नहीं मानी, क्योंकि वे पुत्र-स्नेह के अधीन थे ।

अनन्तर एक महीने के भीतर राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्र उत्पन्न हुए, और सौ से अधिक एक कन्या उत्पन्न हुई ।

जिस समय गान्धारी को गर्भ था, उसका पेट बढ़ा हुआ था, उस समय वैश्य जाति की एक स्त्री धृतराष्ट्र की सेवा किया करती थी । उसी वर्ष राजा धृतराष्ट्र के द्वारा उस स्त्री के गर्भ से यशस्वी युयुत्सु का जन्म हुआ, जो करण जाति के हुए (क्षत्रिय से वैश्या में उत्पन्न ; यहाँ ऐसा ही अर्थ समझना चाहिए, पर करण उसको कहते हैं, जो वैश्य से शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हो ।) इस प्रकार धृतराष्ट्र के सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जो वीर और महारथ हुए । सौ से अधिक एक कन्या और वैश्या-पुत्र तेजस्वी तथा प्रतापी युयुत्सु हुए ॥४०-४४॥ पञ्चदशाधिक शततम अध्याय ।

दुःशला का जन्म ।

जनमेजय बोले—धृतराष्ट्र के पुत्रों के समस्त वृत्तान्त आपने कहे, जो ऋषि की कृपा से उत्पन्न हुए थे, पर कन्या उत्पन्न होने की बात आपने नहीं कही ॥१॥ आपने कहा है कि धृतराष्ट्र

उक्ता महर्षिणा तेन व्यासेनामिततेजसा । कथं त्विदानीं भगवन्कन्यां त्वं तु ब्रवीषि मे ॥३॥
यदि भागशतं पेशी कृता तेन महर्षिणा । न प्रजास्यति चेद्‌भूयः सौबलेयी कथञ्चन ॥४॥
कथं तु सम्भवस्तस्या दुःशलाया वदस्व मे । यथावदिह विप्रर्षे परं मेऽत्र कुतूहलम् ॥५॥
वैशम्पायन उवाच–
साध्वयं प्रश्न उद्दिष्टः पाण्डवेय ब्रवीमि ते । तां मांसपेशीं भगवान्स्वयमेव महातपाः ॥६॥
शीताभिरद्भिरासिच्य भागंभागमकल्पयत् । यो यथा कल्पितो भागस्तं तं धात्र्या तथा नृप ॥७॥
घृतपूर्णेषु कुण्डेषु एकैकं प्राक्षिपत्तदा । एतस्मिन्नन्तरे साध्वी गान्धारी सुदृढव्रता ॥८॥
दुहितुः स्नेहसंयोगमनुध्याय वराङ्गना । मनसाऽचिन्तयद्देवी एतत्पुत्रशतं मम ॥९॥
भविष्यति न सन्देहो न ब्रवीत्यन्यथा मुनिः । ममेयं परमातुष्टिर्दुहिता मे भवेद्यदि ॥१०॥
एका शताधिका बाला भविष्यति कनीयसी । ततो दौहित्रजाल्लोकादबाह्योऽसौ पतिर्मम ॥११॥
अधिका किल नारीणां प्रीतिर्जामातृजा भवेत् । यदि नाम ममापिस्याद्दुहितैकशताधिका ॥१२॥
कृतकृत्या भवेयं वै पुत्रदौहित्रसंवृता । यदि सत्यं तपस्तप्तं दत्तं वाऽप्यथवा हुतम् ॥१३॥
गुरवस्तोषिता वाऽपि तथाऽस्तु दुहिता मम । एतस्मिन्नेव काले तु कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ॥१४॥
व्यभजत्स तदा पेशीं भगवानृषिसत्तमः । गणयित्वा शतं पूर्णमंशानामाह सौबलीम् ॥१५॥

के वैश्या के गर्भ से युयुत्सु नाम का एक पुत्र तथा सौ पुत्रों से अधिक एक कन्या हुई थी। पर अमित तेजस्वी ऋषि व्यासदेव ने गान्धारराज की कन्या को सौ पुत्र होने का वर दिया था, फिर आप कन्या होने की बात क्यों कहते हैं? ॥२,३॥ यदि उस मांस की पोटली का विभाग महर्षि व्यास ने किया और उनसे पुत्र उत्पन्न हुए तो गान्धारी ने पुनः वंश की इच्छा न की होगी, फिर दुःशला कैसे उत्पन्न हुई, यह आप यथावत् कहें, क्योंकि इस बात के सुनने का मुझे बड़ा कुतूहल है ॥४, ५॥

वैशम्पायन बोले—पाण्डुवंशज, आपने यह अच्छा प्रश्न किया। तपस्वी भगवान् ऋषि ने स्वयं उस मांसपेशी को ठंढे जल से सींचकर उसका विभाग किया था। उन्होंने जैसा और जो विभाग किया, उसको वैसे ही धाय घी से भरे घड़े में छोड़ने लगी। इसी समय दृढ़व्रता साध्वी गान्धारी अपने मन में कन्या-स्नेह का स्मरण करके सोचने लगी—ये सौ पुत्र तो मेरे होंगे, क्योंकि मुनि की बात असत्य नहीं होती, पर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती यदि इन सौ पुत्रों से अधिक सब से छोटी एक कन्या होती, इससे मेरे पति को दौहित्र (पुत्रीपुत्र) के द्वारा मिलनेवाले लोक मिलते ॥६-११॥ स्त्रियों को जामाता से अधिक प्रेम होता है। मेरे भी सौ पुत्रों से अधिक एक कन्या होती तो मैं पुत्रों और दौहित्रों के होने से कृतार्थ हो जाती। यदि सत्य-सत्य मैंने तपस्या की है, दान किया है, हवन किया है तथा बड़ों को सेवा के द्वारा प्रसन्न किया है, तो मेरे एक कन्या उत्पन्न हो। इस समय ऋषि श्रीकृष्ण द्वैपायन उस मांसपेशी का विभाग कर रहे थे। पूरे-पूरे सौ भाग गिनकर गान्धारी से बोले ॥१२-१५॥

व्यास उवाच-

पूर्णं पुत्रशतं त्वेतन्न मिथ्या वागुदाहृता । दौहित्रयोगाय भाग एकः शिष्टः शतात्परः ॥१६॥

एषा ते सुभगा कन्या भविष्यति यथेप्सिता । ततोऽन्यं घृतकुम्भं च समानाय्य महातपाः ॥

तं चापि प्राक्षिपत्तत्र कन्याभागं तपोधनः ॥१७॥

एतत्ते कथितं राजन्दुःशलाजन्म भारत । ब्रूहि राजेन्द्र किं भूयो वर्त्तयिष्यामि तेऽनघ ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि दुःशलोत्पत्तौ

षोड़शाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

जनमेजय उवाच-

ज्येष्ठाऽनुज्येष्ठतां तेषां नामानि च पृथक्पृथक् । धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामानुपूर्व्यात्प्रकीर्तय ॥१॥

वैशम्पायन उवाच—

दुर्योधनो युयुत्सुश्च राजन्दुःशासनस्तथा । दुःसहो दुःशलश्चैव जलसन्धः समः सहः ॥२॥

विन्दानुविन्दौ दुर्धर्षः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः । दुर्मर्षणो दुर्मुखश्च दुष्कर्णः कर्ण एव च ॥३॥

विविंशतिर्विकर्णश्च शलः सत्वः सुलोचनः । चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥४॥

दुर्मदो दुर्विगाहश्च विवित्सुर्विकटाननः । ऊर्णनाभः सुनाभश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥५॥

व्यासदेव बोले—ये सौ पुत्र हो गये, मैंने तुम से असत्य नहीं कहा था, सौ से अधिक एक भाग बचा हुआ है, जो दौहित्र उत्पन्न होने के लिए है ॥१६॥ इससे एक सुन्दरी कन्या होगी, जैसा तुम चाहती हो । यह कहकर और दूसरा घृतपूर्ण कलश मँगवाकर ऋषि ने उसमें वह कन्या-भाग भी रखवा दिया ॥१७॥ राजन् ! यह दुःशला का जन्म-वृत्तान्त मैंने आप से कहा । आप कहें और क्या आप को सुनाऊँ ? ॥१८॥

षोडशाधिक शततम अध्याय ।

दुर्योधन आदि सौ पुत्रों का नाम वर्णन ।

जनमेजय बोले—धृतराष्ट्र के पुत्रों में कौन बड़ा और कौन छोटा था, यह आप कहें तथा उनके नाम क्रम से कहें ॥१॥

वैशम्पायन बोले—दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, जलसन्ध, सम, सह, विन्द, अविन्द, दुर्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण विविंशति, विकर्ण, शल, सत्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्दक, चित्रवाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्राङ्ग, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्धन, उग्रायुध, सुषेण, कुण्डधार, महोदर, चित्रायुध, निषङ्गी, पाशी, वृन्दारक, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्ति, अनूदर, दृढ़सन्ध, जरा-

चित्रबाणश्चित्रवर्मा सुवर्मा दुर्विमोचनः । अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्राङ्गश्चित्रकुण्डलः ॥६॥
भीमवेगो भीमबलो बलाकी बलवर्धनः । उग्रायुधः सुषेणश्च कुण्डधारो महोदरः ॥७॥
चित्रायुधो निषङ्गी च पाशी वृन्दारकस्तथा । दृढवर्मा दृढक्षत्रः सोमकीर्तिरनूदरः ॥८॥
दृढसन्धो जरासन्धःसत्यसन्धः सदः सुवाक् । उग्रश्रवा उग्रसेनः सेनानीर्दुष्पराजयः ॥९॥
अपराजितः कुण्डशायी विशालाक्षो दुराधरः । दृढहस्तसुहस्तश्च वातवेगसुवर्चसौ ॥१०॥
आदित्यकेतुर्बह्वाशी नागदत्तोऽग्रयाय्यपि । कवची क्रथनः कुण्डी कुण्डधारो धनुर्धरः ॥११॥
उग्रभीमरथौ वीरौ वीरबाहुरलोलुपः । अभयो रौद्रकर्मा च तथा दृढरथाश्रयः ॥१२॥
अनाधृष्यः कुण्डभेदी विरावी चित्रकुण्डलः । प्रमथश्च प्रमाथी च दीर्घरोमश्च वीर्यवान् ॥१३॥
दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोरः कनकध्वजः । कुण्डाशी विरजाश्चैव दुःशला च शताधिका ॥१४॥
इति पुत्रशतं राजन् कन्या चैवं शताधिका । नामधेयानुपूर्व्येण विद्धि जन्मक्रमं नृप ॥१५॥
सर्वे त्वतिरथाः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः । सर्वे वेदविदश्चैव सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः ॥१६॥
सर्वेषामनुरूपाश्च कृतादारा महीपते । धृतराष्ट्रेण समये परीक्ष्य विधिवन्नृप ॥१७॥
दुःशलां चापि समये धृतराष्ट्रो नराधिपः । जयद्रथाय प्रददौ विधिना भरतर्षभ ॥१८॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि धृतराष्ट्रपुत्रनामकथने
सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

सन्ध, सत्यसन्ध, सुवक्ता, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढ़हस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चस, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, क्रथन, कुण्डी, कुण्डधार, धनुर्धर, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथाश्रय, अनाधृष्य, कुंडभेदी, विरावी, चित्रकुण्डल, प्रमथ, प्रमाथी, दीर्घरामा, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढ़ोरस्क, कनकध्वज, कुण्डाशी, विरजा और सौ से अधिक दुःशला नाम की एक कन्या ॥२-१४॥ राजन्, धृतराष्ट्र के ये ही सौ पुत्र और एक कन्या है। जैसे इनके नाम मैंने गिनाये हैं, वैसे ही इनके जन्म का भी समय आप समझें ॥१५॥ ये सभी अतिरथ हैं, शूर हैं और युद्ध में निपुण हैं। सभी वेद जाननेवाले तथा अस्त्रों के ज्ञाता हैं ॥१६॥ राजन्, राजा धृतराष्ट्र ने उचित समय पर विधिवत् परीक्षा करके इन पुत्रों का ब्याह किया ॥१७॥ इसी प्रकार राजा धृतराष्ट्र ने उचित समय पर विधिपूर्वक दुःशला जयद्रथ को दी ॥१८॥

सप्तदशाधिक शततम अध्याय।

जनमेजय उवाच—
कथितो धार्तराष्ट्राणामार्षः सम्भव उत्तमः। अमनुष्यो मनुष्याणां भवता ब्रह्मवादिना ॥१॥
नामधेयानि चाप्येषां कथ्यमानानि भागशः। त्वत्तः श्रुतानि मे ब्रह्मन्पाण्डवानाञ्च कीर्तय ॥२॥
ते हि सर्वे महात्मानो देवराजपराक्रमाः। त्वयैवांशावतरणे देवभागाः प्रकीर्तिताः ॥३॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुमतिमानुषकर्मणाम्। तेषामाजननं सर्वं वैशम्पायन कीर्तय ॥४॥
वैशम्पायन उवाच—
राजा पाण्डुर्महारण्ये मृगव्यालनिषेविते। चरन्मैथुनधर्मस्थं ददर्श मृगयूथपम् ॥५॥
ततस्तां च मृगीं तं च रुक्मपुङ्खैः सुपत्रिभिः। निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैः पाण्डुःपञ्चभिराशुगैः ॥६॥
स च राजन्महातेजा ऋषिपुत्रस्तपोधनः। भार्यया सह तेजस्वी मृगरूपेण संगतः ॥७॥
संसक्तश्च तया मृग्या मानुषीमीरयन्गिरम्। क्षणेन पतितो भूमौ विललापाकुलेन्द्रियः ॥८॥

मृग उवाच—
काममन्युपरीता हि बुद्ध्या विरहिता अपि। वर्जयन्ति नृशंसानि पापेष्वपि रता नराः ॥९॥
न विधिं ग्रसते प्रज्ञा प्रज्ञां तु ग्रसते विधिः। विधिपर्यागतानर्थान्प्राज्ञो न प्रतिपद्यते ॥१०॥

मृगरूपी मुनि का पाण्डु के द्वारा वध और मुनि का पाण्डु को शाप देना।

जनमेजय बोले—ब्रह्मवादी आपने धृतराष्ट्र के पुत्रों की उत्पत्ति बतलायी, जो ऋषि की कृपा से हुई थी। इसके पहले इस प्रकार का उत्पत्ति-क्रम मनुष्यों में नहीं देखा गया था ॥१॥ इनके अलग-अलग नाम भी मैंने आपसे सुने। अब आप पाण्डवों की उत्पत्ति कहिए ॥२॥ आप ही ने बतलाया है कि वे सभी पाण्डव, देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए थे और इन्द्र के समान पराक्रमी थे ॥३॥ उनके कर्म अतिमानुष थे, वे वैसे कर्म करते थे जैसे मनुष्यों के द्वारा सम्भव नहीं थे, उनके जन्म से लेकर सभी वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ। वैशम्पायन! वह आप कहें ॥४॥

वैशम्पायन बोले—राजा पाण्डु ने हिंस्र जन्तुओं से भरे घोर जंगल में एक मृगा को जो यूथपति थे, मृगी के साथ सम्भोग करते देखा ॥५॥ राजा ने उस मृगा और मृगी को सुवर्ण-पत्रवाले तीखे पाँच बाणों से मारा ॥६॥ राजन्, वह मृगा तपस्वी ऋषिपुत्र था। वह तेजस्वी मृगा के रूप में अपनी स्त्री से सम्भोग कर रहा था ॥७॥ मृगीरूपवाली अपनी स्त्री से वह जैसे ही मनुष्य की वाणी बोलता हुआ मिला, उसी समय वह पृथिवी पर गिरा और व्याकुल होकर विलाप करने लगा ॥८॥

मृगा बोला—जो मनुष्य पापी है, कामी है, क्रोधी है और बुद्धिहीन है, वह भी ऐसा निर्दय व्यवहार नहीं कर सकता ॥९॥ बुद्धि का प्रभाव भाग्य पर नहीं होता किन्तु भाग्य का ही प्रभाव बुद्धि पर होता है। बुद्धि भाग्य को नहीं पलट सकती किन्तु भाग्य बुद्धि को पलट देता है।

शश्वद्धर्मात्मनां मुख्ये कुले जातस्य भारत। कामलोभाभिभूतस्य कथं ते चलिता मतिः॥११॥

पाण्डुरुवाच—

शत्रूणां या वधे वृत्तिः सा मृगाणां वधे स्मृता। राज्ञां मृग न मां मोहात्त्वं गर्हयितुमर्हसि ॥१२॥

अच्छद्मना मायया च मृगाणां वध इष्यते। स एव धर्मो राज्ञां तु तद्वि त्वं किं नु गर्हसे ॥१३॥

अगस्त्यः सत्रमासीनश्चकार मृगयामृषिः। आरण्यान्सर्वदैवत्यान्मृगान्प्रोक्ष्य महावने ॥१४॥

प्रमाणदृष्टधर्मेण कथमस्मान्विगर्हसे। अगस्त्यस्याभिचारेण युष्माकं च वपाहुता॥१५॥

मृग उवाच—

न रिपून्वै समुद्दिश्य विमुञ्चन्ति नराः शरान्। रन्ध्र एषां विशेषेण वधकालः प्रशस्यते ॥१६॥

पाण्डुरुवाच—

प्रमत्तमप्रमत्तं वा विवृतं घ्नन्ति चौजसा। उपायैर्विविधैस्तीक्ष्णैः कस्मान्मृग विगर्हसे ॥१७॥

मृग उवाच—

नाहं घ्नन्तं मृगान् राजन्विगर्हे चात्मकारणात्। मैथुनं तु प्रतीक्ष्यं मे त्वयेहाद्यानृशंस्यतः ॥१८॥

भाग्य के द्वारा उपस्थित विषयों को बुद्धिमान भी नहीं समझ पाता। उसके कारण-आदि का पता उसे भी नहीं लगता ॥१०॥ श्रेष्ठ धर्मात्माओं के कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है, तुम काम और लोभ के वशीभूत कैसे हुए? तुम्हारी बुद्धि विचलित कैसे हुई? ॥११॥

पाण्डु बोले—शत्रुओं के मारने का जो उपाय किया जाता है, वही उपाय मृगों के वध के लिए भी राजा को करना चाहिए, अतएव अज्ञानवश तुमको मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिए ॥१२॥ छिपकर या प्रकट मृगों का वध करना चाहिए, यह राजाओं का धर्म है, फिर तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो? ॥१३॥ महर्षि अगस्त्य ने यज्ञ के समय शिकार किया था, क्योंकि जंगली मृगा का मांस समस्त देवताओं के लिए विहित है ॥१४॥ महर्षि अगस्त्य ने मारण के प्रयोग में मृगों की चर्बी का हवन किया था। अतएव मैंने वैदिक विधान के अनुसार तुम्हारा वध किया है, फिर तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो? ॥१५॥

मृगा बोला—शत्रु को देखते ही मनुष्य उस पर बाण नहीं छोड़ देते, किन्तु यदि उसने कुछ अपराध किया हो अथवा सम्मुख युद्ध में आवे, तब उसका वध उत्तम कहा गया है ॥१६॥

पाण्डु बोले—शत्रु सावधान हो या असावधान, अपराधी हो या निरपराध, उसका वध अनेक कठोर उपायों से किया जाता है, उसका वध प्रकट किया जाता है, फिर तुम हमारी निन्दा क्यों करते हो? ॥१७॥

मृगा बोला—राजन्, आपने मृगा को मारा है, इस अपने वध के कारण से मैं आपकी निन्दा नहीं करता; पर, तुमको मेरे सम्भोग के समय तक ठहरना चाहिए था,

सर्वभूतहिते काले सर्वभूतेप्सिते तथा। को हि विद्वान्मृगं हन्याच्चरन्तं मैथुनं वने ॥१९॥
अस्यां मृग्यां च राजेन्द्र हर्षान्मैथुनमाचरम्। पुरुषार्थफलं कर्तुं तत्त्वया विफलीकृतम् ॥२०॥
पौरवाणां महाराज तेषामक्लिष्टकर्मणाम्। वंशे जातस्य कौरव्य मानुरूपमिदं तव ॥२१॥
नृशंसं कर्म सुमहत्सर्वलोकविगर्हितम्। अस्वर्ग्यमयशस्यं चाप्यधर्मिष्ठं च भारत ॥२२॥
स्त्रीभोगानां विशेषज्ञः शास्त्रधर्मार्थतत्त्ववित्। नार्हस्त्वं सुरसंकाश कर्तुमस्वर्ग्यमीदृशम् ॥२३॥
त्वया नृशंसकर्तारः पापाचाराश्च मानवाः। निग्राह्याः पार्थिवश्रेष्ठ त्रिवर्गपरिवर्जिता ॥२४॥
किं कृतं ते नरश्रेष्ठ मामिहानागसं घ्नता। मुनिं मूलफलाहारं मृगवेषधरं नृप ॥२५॥
वसमानमरण्येषु नित्यं शमपरायणम्। त्वयाऽहं हिंसितो यस्मात्तस्मात्त्वामप्यहं शपे ॥२६॥
द्वयोर्नृशंसकर्तारमवशं कामसोहितम्। जीवितान्तकरो भाव एवमेवागमिष्यति ॥२७॥
अहं हि किन्दमो नाम तपसा भावितो मुनिः। व्यपत्रपन्मनुष्याणां मृग्यां मैथुनमाचरम् ॥२८॥
मृगो भूत्वा मृगैः सार्धं चरामि गहने वने। न तु ते ब्रह्महत्येयं भविष्यत्यविजानतः ॥२९॥
मृगरूपधरं हत्वा मामेवं काममोहितम्। अस्य तु त्वं फलं मूढ प्राप्स्यसीदृशमेव हि ॥३०॥

दयालुता की दृष्टि से तुम्हें ऐसा ही करना चाहिए था ॥१८॥ वह समय सब प्राणियों के लिए हितकारी है, सभी के लिए इष्ट है, सुखकारी है। ऐसे समय में एक मृग को जो वन में मैथुन कर रहा हो,कौन विद्वान् मार सकता है? ॥१९॥ राजन्, मैं इस मृगीके साथ प्रसन्न होकर मैथुन कर रहा था, जिससे पुरुषार्थ का फल मिले, सन्तान उत्पन्न हो, पर तुमने मेरा वह मनोरथ व्यर्थ कर दिया ॥२०॥ महाराज, आप पुण्यात्मा कौरवों के वंश में उत्पन्न हुए हैं, यह काम आपके योग्य नहीं हुआ है ॥२१॥ तुम्हारे इस निन्दित कर्म की निन्दा सभी करेंगे, यह कर्म स्वर्ग और यश नष्ट करने वाला है तथा अधार्मिक है ॥२२॥ देवोपम, स्त्री-सम्भोग का सुख तुम भी जानते हो, शास्त्र और धर्म के तत्वों को जानते हो, तुमको ऐसा स्वर्ग-विरोधी काम नहीं करना चाहिए ॥२३॥ राजन्, तुमको चाहिये कि जो निर्दय हैं, पापी हैं, धर्म-अर्थ और काम-रहित हैं, उनको दण्ड दो ॥२४॥ राजन्, निरपराध मुझको मारकर तुमने क्या किया? फल, मूल खानेवाला मैं मुनि था, मृगा के वेस में था ॥२५॥ मैं तो वन में रहनेवाला हूँ। सदा शान्त रहता हूँ। फिर भी तुमने मुझे मारा है, अतएव मैं भी तुमको शाप देता हूँ ॥२६॥ कामासक्त स्त्री-पुरुषों का निर्दयतापूर्वक वध करनेवाले काममोहित अजितेन्द्रिय आप की भी मृत्यु इसी अवस्था में होगी, जिस अवस्था में आपने हम दोनों स्त्री-पुरुषों का वध किया है। आपकी भी मृत्यु इसी अवस्था में होगी ॥२७॥ मैं किन्दम नाम का तपस्वी मुनि हूँ। मनुष्यों से लजाकर मैं मृगी से सम्भोग कर रहा था ॥२८॥ मृगा का रूप धरकर मैं मृगों के साथ वन में विचरा करता हूँ। तुमने मुझे मारा है। तुमको ब्रह्महत्या का अपराध तो नहीं लगेगा, क्योंकि तुमने मुझे मृगा समझकर मारा है, मेरे ब्राह्मण होने का ज्ञान तुम्हें नहीं था ॥२९॥ मृगरूपधारी काममोहित मेरा वध तुमने किया है, मूर्ख, इसका फल भी तुम इसी रूप में पाओगे ॥३०॥ काममोहित होकर तुम जिस समय स्त्री के साथ सहवास करोगे,

प्रियया सह संवासं प्राप्य कामविमोहितः । त्वमप्यस्यामवस्थायां प्रेतलोकं गमिष्यसि ॥३१॥
अन्तकाले हि संवासं यया गन्ताऽसि कान्तया । प्रेतराजपुरं प्राप्तं सर्वभूतदुरत्ययम् ॥
भक्त्या मतिमतां श्रेष्ठ सैव त्वाऽनुगमिष्यति ॥३२॥
वर्तमानः सुखे दुःखं यथाहं प्रापितस्त्वया । तथा त्वां च सुखं प्राप्तं दुःखमभ्यागमिष्यति ॥३३॥
वैशम्पायन उवाच—
एवमुक्त्वा सुदुःखार्तो जीवितात्स व्यमुच्यत । मृगः पाण्डुश्च दुःखार्तः क्षणेन समपद्यत ॥३४॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुमृगशापेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

वैशम्पायन उवाच—
तं व्यतीतमतिक्रान्तं राजा स्वमिव बान्धवम् । सभार्यः शोकदुःखार्तः पर्यदेवयदातुरः ॥१॥
पाण्डुरुवाच—
सतामपि कुले जाताः कर्मणा बत दुर्गतिम् । प्राप्नुवन्त्यकृतात्मानः कामजालविमोहिताः ॥२॥
शश्वद्धर्मात्मना जातो बाल एव पिता मम । जीवितान्तमनुप्राप्तः कामात्मैवेति नः श्रुतम् ॥३॥
तस्य कामात्मनः क्षेत्रे राज्ञः संयतवागृषिः । कृष्णद्वैपायनः साक्षाद्भगवान्मामजीजनत् ॥४॥

उसी समय, उसी अवस्था में तुम्हारी भी मृत्यु होगी ॥३१॥ अन्त समय में तुम जिस स्त्री के साथ सहवास करोगे, वही स्त्री तुम्हारे मरने पर तुम्हारा अनुगमन भक्ति से करेगी अर्थात् तुम्हारे साथ वह भी मरेगी ॥३२ मैं सुख भोग रहा था, उसी समय तुमने मुझे दुःखी बनाया, तुम भी जब सुख-भोग में रहोगे, उस समय तुम्हें भी दुःख मिलेगा, तुम्हारी मृत्यु होगी ॥३३॥

वैशम्पायन बोले—अत्यन्त दुःखी होकर मुनि ने राजा से ऐसा कहा और उनका प्राणान्त हो गया । उसी समय राजा पाण्डु भी इस घटना से नितान्त दुःखी हुए ॥३४॥

अष्टादशाधिक शततम अध्याय ।

पाण्डु का कुन्ती और माद्री के साथ शतशृङ्ग पर्वत पर तपस्या करना ।

वैशम्पायन बोले—राजा पाण्डु वहाँ से चलकर उस मरे हुए मृगरूपी महर्षि के लिए स्त्री के साथ शोक करने लगे । राजा इस शोक से बड़े दुःखी हो गये थे। राजा को बन्धु-वियोग के समान दुःख हुआ ॥१॥

पाण्डु बोले—सज्जनों के कुल में उत्पन्न मनुष्य भी यदि काम से मोहित हो जाय, यदि उसका मन वश में न हो तो वह दुःख उठाता है ॥२॥ मेरे पिता धर्मात्मा से उत्पन्न हुए थे, पर वे भी थोड़ी ही अवस्था में काम वश होकर मर गये । ऐसा हमने सुना है ॥३॥ उस कामी राजा की स्त्री के गर्भ से महर्षि कृष्ण द्वैपायन ने मुझे उत्पन्न किया है। उन ऋषि को अपनी वाणी पर

तस्याद्य व्यसने बुद्धिः संजातेयं ममाधमा । त्यक्तस्य देवैरनयान्मृगयां परिधावतः ॥५॥
मोक्षमेव व्यवस्यामि बन्धो हि व्यसनं महत् । सुवृत्तिमनुवर्तिष्ये तामहं पितुरव्ययाम् ॥६॥
अतीव तपसाऽऽत्मानं योजयिष्याम्यसंशयम् । तस्मादेकोऽहमेकाकी एकैकस्मिन्वनस्पतौ ॥७॥
चरन्भैक्ष्यं मुनिर्मुण्डश्चरिष्याम्याश्रमानिमान् । पांसुना समवच्छन्नः शून्यागारकृतालयः ॥८॥
वृक्षमूलनिकेतो वा त्यक्तसर्वप्रियाप्रियः । न शोचन्न प्रहृष्यंश्च तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥९॥
निराशीर्निर्नमस्कारो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः । न चाप्यवहसन्काञ्चिन्नकुर्वन्भ्रुकुटीं क्वचित् ॥१०॥
प्रसन्नवदनो नित्यं सर्वभूतहिते रतः । जङ्गमाजङ्गमं सर्वमविहिंसंश्चतुर्विधम् ॥११॥
स्वासु प्रजास्विव सदा समः प्राणभृतां प्रति । एककालं चरन्भैक्ष्यं कुलानि दश पञ्च वा ॥१२॥
असम्भवे वा भैक्ष्यस्य चरन्ननशनान्यपि । अल्पमल्पं च भुञ्जानः पूर्वालाभेन जातुचित् ॥१३॥
अन्यान्यपि चरँल्लोभादलाभे सप्तपूरयन् । अलाभे यदि वा लाभे समदर्शी महातपाः ॥१४॥
वास्यैकं तक्षतो बाहुं चन्दनेनैकमुक्षतः । नाकल्याणं न कल्याणं चिन्तयन्नुभयोस्तयोः ॥१५॥

अधिकार था ॥४॥ ऐसे ऋषि से उत्पन्न होने पर भी मेरी नीच बुद्धि बुरे कामों में लगी है। पुत्र-हीन होने के कारण देवलोक तो मुझे प्राप्त ही न होगा और अन्यायपूर्वक मृगया के लिए वन-वन घूम रहा हूँ। यह सब मेरे कामवशवर्ती होने का फल है ॥५॥ अब मुझे मोक्षमार्ग का ही अनुसरण करना चाहिए, उसी के लिए उद्योग करना चाहिए। स्त्री-पुत्र-धन आदि का संसारिक बन्धन बड़ा ही कष्टदायक है। अतएव मुझे अविनाशी ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए। मेरे पिता व्यासदेव ने भी यही ब्रह्मचर्य धारण किया है। अर्थात् अब मुझे मुनिवृत्ति धारण करनी चाहिए ॥६॥ अब मैं अपने मन को श्रवण-मनन आदि तपस्याओं में लगाऊँगा। स्त्रियों के साथ न रहूँगा। कोई साथी भी न रखूँगा। एक-एक वृक्ष से भिक्षा लेकर जीवन-निर्वाह करूँगा। सिर मुँडाकर आत्म-चिन्तन करता हुआ इन आश्रमों में विचरण करूँगा। जमीन में सोऊँगा, जिससे शरीर में धूल लिपट जायगी, पर शरीर-संस्कार न करूँगा। किसी सूने घर में रहूँगा या किसी वृक्ष के नीचे रहूँगा। प्रिय और अप्रिय सब का त्याग करूँगा। न दुःख करूँगा न हर्ष, अपनी निन्दा और प्रशंसा को समान समझूँगा ॥७-९॥ भोजन का त्याग करूँगा। न किसी को प्रणाम करूँगा और न किसी के प्रणाम का उत्तर दूँगा। सुख-दुःख से पृथक् रहूँगा, कोई भी चीज नहीं रखूँगा, कन्था-कमण्डल भी नहीं। मैं किसी का तिरस्कार न करूँगा, किसी पर क्रोध न करूँगा ॥१०॥ मैं सदा प्रसन्न रहूँगा, सब प्राणियों का हित करूँगा और सोचूँगा। स्थावर-जङ्गम चार प्रकार के प्राणियों में से किसी की हत्या न करूँगा ॥११॥ अपनी प्रजा के समान समस्त प्राणियों को समझूँगा। एक समय दस-पाँच घरों में भिक्षा माँग लूँगा। यदि भिक्षा नहीं मिलेगी तो भूखा ही रह जाऊँगा। थोड़ा-थोड़ा खाऊँगा, यदि इन घरों में भीख न मिलेगी तो और कहीं न माँगूँगा। लोभ से सात की संख्या पूरी करूँगा। यदि मिल गया तो ठीक, नहीं तो आगे के घरों में न जाऊँगा। मिले चाहे न मिले. मेरा भाव समान रहेगा, देने और न देनेवाले दोनों को मैं समान रूप से देखूँगा ॥१२-१४॥ कोई मेरा एक हाथ बसूले से काटे, और कोई दूसरे हाथ में चन्दन

न जिजीविषुवत्किञ्चिन्न मुमूर्षुवदाचरन् । जीवितं मरणं चैव नाभिनन्दन्न च द्विषन् ॥१६॥
याः काश्चिज्जीवता शक्याः कर्तुमभ्युदयक्रियाः । ताःसर्वाःसमतिक्रम्य निमेषादिव्यवस्थिताः ॥१७॥
तासु सर्वास्ववस्थासु त्यक्तसर्वेन्द्रियक्रियः । संपरित्यक्तधर्मार्थः सुनिर्णिक्तात्मकल्मषः ॥१८॥
निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो व्यतीतः सर्ववागुराः । न वशे कस्यचित्तिष्ठन् सधर्मा मातरिश्वनः ॥१९॥
एतया सततं धृत्या चरन्नेवंप्रकारया । देहं संस्थापयिष्यामि निर्भयं मार्गमास्थितः ॥२०॥
नाहं सुकृपणे मार्गे स्ववीर्यक्षयशोचिते । स्वधर्मात्सततापेते चरेयं वीर्यवर्जितः ॥२१॥
सत्कृतोऽसत्कृतोवाऽपि योऽन्यं कृपणचक्षुषा । उपैति वृत्तिं कामात्मा स शुनां वर्तते पथि ॥२२॥
वैशम्पायन उवाच—
एवमुक्त्वा सुदुःखार्तो निःश्वासपरमो नृपः । अवेक्षमाणः कुन्तीं च माद्रीं च समभाषत ॥२३॥

लगावे, उन दोनों में न एक की बुराई चाहूँगा और न दूसरे की भलाई । मैं दोनों को समान समझूँगा ॥१५॥ जीवन चाहनेवालों के समान तथा मृत्यु चाहनेवालों के समान मैं कुछ न करूँगा । मैं जीने-मरने से न प्रेम करूँगा और न द्वेष । जीवित मनुष्यों के द्वारा स्वर्गादि फल देनेवाली जो क्रियाएँ की जाती हैं, उन सब का मैं त्याग कर दूंगा, क्योंकि वे क्षण आदि काल के अधीन हैं, अतएव उनका अन्त है ॥१६-१७॥ इन्द्रिय सम्बन्धी समस्त क्रियाओं का मैं त्याग करूँगा, क्योंकि उनका फल विनाशी है । आज एक उत्पन्न होता है, कल वह नष्ट होता है, परसों फिर दूसरा उत्पन्न होता है । इस प्रकार उनमें कोई नियम नहीं होता । धर्म के द्वारा प्राप्त होनेवाले अर्थों की कामनाओं का मैं त्याग कर दूंगा और इस प्रकार वासना के नष्ट हो जाने से मैं अपने मन को शुद्ध कर लूँगा, उसके सब पापों को धो बहाऊँगा ॥१८॥ मैं सब प्रकार के पापों से अलग हो जाऊँगा, कोई पाप मुझ में नहीं रहेगा । मैं किसी भी बन्धन के अधीन नहीं रहूँगा, सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाऊँगा । इस प्रकार मैं वायु के समान सङ्गरहित हो जाऊँगा ॥१९॥ धैर्य के साथ इस प्रकार के आचरण-द्वारा मैं अपने शरीर का नाश करूँगा । मैं उस मार्ग में चलूँगा, जिसमें संसार का कोई भय नहीं रह जाता ॥२०॥ मैं कृपण मार्ग में कभी विचरण नहीं करूँगा । कर्म मार्ग को कृपण मार्ग कहते हैं, क्योंकि कर्म करने के लिए बाहरी साधनों की आवश्यकता रहती है । उस कृपण मार्ग में जाने से आत्मस्वरूप में विकार हो जाता है, जिससे हास्यास्पद बनना पड़ता है । आत्मा का स्वरूप है वशित्व आदि, और कर्म मार्ग में विषयों का आश्रय लेना पड़ता है । यह सच है कि गृहस्थ धर्म में रहकर भी मनुष्य मुक्त हो सकता है, पर मैं तो उसके योग्य नहीं हूँ । गृहस्थाश्रम की सिद्धि है पुत्र उत्पन्न करने में, पर मैं उसके लिए अयोग्य हूँ । मैं पुत्र उत्पन्न नहीं कर सकता ॥२१॥ ब्राह्मण के द्वारा क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराकर गृहस्थ-धर्म पालन करना भी उचित न होगा; क्योंकि जो पुत्र चाहनेवाला व्यक्ति दूसरे के यहाँ दीन दृष्टि से पुत्र उत्पन्न करने की प्रार्थना करता है, उसका सत्कार हो या असत्कार, उसकी प्रार्थना पूरी की जाय या न पूरी की जाय, पर उसका यह आचरण कुत्तों के आचरण के समान होगा । क्योंकि इसका परिणाम दोनों के लिए दुखदाई होता है ॥२२॥

कौसल्या विदुरः क्षत्ता राजा च सह बन्धुभिः। आर्या सत्यवती भीष्मस्ते च राजपुरोहिताः ॥२४॥
ब्राह्मणाश्च महात्मानः सोमपाः संशितव्रताः। पौरवृद्धाश्च ये तत्र निवसन्त्यस्मदाश्रयाः ॥
प्रसाद्य सर्वे वक्तव्याः पाण्डुः प्रव्रजितो वनम् ॥२५॥
निशम्य वचनं भर्तुर्वनवासे धृतात्मनः। तत्समं वचनं कुन्ती माद्री च समभाषताम् ॥२६॥
अन्येऽपि ह्याश्रमाः सन्ति ये शक्या भरतर्षभ। आवाभ्यां धर्मपत्नीभ्यां सह तप्तुं तपो महत् ॥२७॥
शरीरस्यापि मोक्षाय स्वर्ग्यं प्राप्य महाफलम्। त्वमेव भविता भर्ता स्वर्गस्यापि न संशयः ॥२८॥
प्रणिधायेन्द्रियग्रामं भर्तृलोकपरायणे। त्यक्त्वा कामसुखे ह्यावां तप्स्यावो विपुलं तपः ॥२९॥
यदि चावां महाप्राज्ञ त्यक्ष्यसि त्वं विशांपते। अद्यैवावां प्रहास्यावो जीवितं नात्र संशयः ॥३०॥

पाण्डुरुवाच—

यदि व्यवसितं ह्येतद्युवयोर्धर्मसंहितम्। स्ववृत्तिमनुवर्तिष्ये तामहं पितुरव्ययाम् ॥३१॥
त्यक्त्वा ग्रामसुखाहारं तप्यमानो महत्तपः। वल्कली फलमूलाशी चरिष्यामि महावने ॥३२॥
अग्नौ जुह्वन्नुभौ कालावुभौ कालावुपस्पृशन्। कृशः परिमिताहारश्चीरचर्मजटाधरः ॥३३॥
शीतवातातपसहः क्षुत्पिपासानवेक्षकः। तपसा दुश्चरेणेदं शरीरमुपशोषयन् ॥३४॥

वैशम्पायन बोले—दुःख से अत्यन्त विह्वल राजा पाण्डु इस प्रकार कहकर लम्बी सांस लेने लगे और कुन्ती तथा माद्री की ओर देखते हुए बोले ॥२३॥ कौसल्या, विदुर, बान्धवों के साथ राजा धृतराष्ट्र, दादी सत्यवती, भीष्म, राज-पुरोहित, सोम यज्ञ करनेवाले व्रतधारी महात्मा ब्राह्मण, नगर के मुखिया और जो लोग वहाँ मेरे आश्रय में रहते हैं, उन सब को समझाकर कह देना कि पाण्डु वन में चले गये अर्थात् वन में जाकर उन्होंने संन्यास ले लिया ॥२४-२५॥ वन जाने के लिए दृढ़ निश्चय करनेवाले अपने पति के वचन सुनकर कुन्ती और माद्री ने उचित उत्तर दिये अर्थात् राजा ने जैसा कहा था, वैसा ही उत्तर दिया ॥२६॥ भरतश्रेष्ठ ! और भी ऐसे आश्रम हैं, जहाँ हम दोनों धर्मपत्नियों के साथ आप कठोर तपस्या कर सकेंगे। अतएव संन्यास के अतिरिक्त किसी अन्य आश्रम का आप विचार करें ॥२७॥ उस आश्रम में रहकर आप शरीर त्याग करके स्वर्ग पा सकेंगे और स्वर्ग के स्वामी हो सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥२८॥ पति-लोक की इच्छा रखनेवाली हम दोनों समस्त इन्द्रियों को वश में रखकर और काम-सुख का त्याग कर रहेंगी ॥२९॥ महाप्राज्ञ महाराज ! आप हमलोगों का त्याग करते हैं तो आज ही निश्चित हमलोग भी प्राण त्याग कर देंगी ॥३०॥

पाण्डु बोले—यदि तुम दोनों का यह निश्चय धर्मानुकूल है और धर्मपालन के लिए ही तुमने यह निश्चय किया है तो मैं भी अपने पिता व्यासदेव के समान आचरण करूँगा अर्थात् दृढ़ ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ तुमलोगों के साथ रहूँगा ॥३१॥ ग्राम-सुख (स्त्री-प्रसंग का सुख) और भोजन का त्याग करके कठोर तपस्या करूँगा। वल्कल पहनूँगा, फलमूल खाऊँगा और वन में भ्रमण करूँगा, दोनों समय स्नान करूँगा। परिमित आहार करने से अपने शरीर को

एकान्तशीली विमृशन्पक्वापक्वेन वर्तयन् । पितॄन्देवांश्च वन्येन वाग्भिरद्भिश्च तर्पयन् ॥३५॥
वानप्रस्थजनस्यापि दर्शनं कुलवासिनाम् । नाप्रियाण्याचरिष्यामि किं पुनर्ग्रामवासिनाम् ॥३६॥
एवमारण्यशास्त्राणामुग्रमुग्रतरं विधिम् । कांक्षमाणोऽहमास्थास्ये देहस्यास्य समापनात् ॥३७॥
वैशम्पायन उवाच—
इत्येवमुक्त्वा भार्ये ते राजा कौरवनन्दनः । ततश्चूडामणिं निष्कमङ्गदे कुण्डलानि च ॥३८॥
वासांसि च महार्हाणि स्त्रीणामाभरणानि च । प्रदाय सर्वं विप्रेभ्यः पाण्डुः पुनरभाषत ॥३९॥
गत्वा नागपुरं वाच्यं पाण्डुः प्रव्रजितो वनम् । अर्थं कामं सुखं चैव रतिं च परमात्मिकाम् ॥४०॥
प्रतस्थे सर्वमुत्सृज्य सभार्यः कुरुनन्दनः । ततस्तस्यानुयातारस्ते चैव परिचारकाः ॥४१॥
श्रुत्वा भरतसिंहस्य विविधाः करुणा गिरः । भीममार्तस्वरं कृत्वा हाहेति परिचुक्रुशुः ॥४२॥
उष्णमश्रु विमुञ्चन्तस्तं विहाय महीपतिम् । ययुर्नागपुरं तूर्णं सर्वमादाय तद्धनम् ॥४३॥
ते गत्वा नगरं राज्ञो यथावृत्तं महात्मनः । कथयांचक्रिरे राज्ञस्तद्धनं विविधं ददुः ॥४४॥
श्रुत्वा तेभ्यस्ततः सर्वं यथावृत्तं महावने । धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठः पाण्डुमेवान्वशोचत ॥४५॥
न शय्यासनभोगेषु रतिं विन्दति कर्हिचित् । भ्रातृशोकसमाविष्टस्तमेवार्थं विचिन्तयन् ॥४६॥

दुर्बल बना दूँगा, पुराना वस्त्र, मृगचर्म और जटा-धारण करूँगा, सरदी-गरमी और वायु के कष्टों को सहूँगा। भूख-प्यास की ओर ध्यान न दूँगा। कठोर तपस्या के द्वारा इस शरीर को सुखा दूँगा। एकान्त में रहूँगा, ब्रह्म-विचार किया करूँगा, कच्चे-पक्के फल का भोजन करूँगा। पितरों और देवताओं का तर्पण, जंगली फल, वचन और जल से करूँगा। वानप्रस्थ आश्रमियों और गृहस्थाश्रमियों का कभी दर्शन कर लिया करूँगा। किसी का अहित न करूँगा। ग्रामवासियों का भी अहित न करूँगा। इस प्रकार वानप्रस्थ आश्रम के जो कठोर-से-कठोर शास्त्रीय विधान हैं, उनका मैं तब तक पालन करूँगा, जब तक यह शरीर है ॥३२-३७॥

वैशम्पायन बोले—कौरव-नन्दन राजा पाण्डु ने अपनी स्त्रियों से इस प्रकार कहा, अनन्तर मुकुट-मणि, हार, अंगद, कुण्डल, मूल्यवान वस्त्र और स्त्रियों के सब गहने ब्राह्मणों को देकर वे साथियों से बोले ॥३८, ३९॥ हस्तिनापुर जाकर तुमलोग कहना—अर्थ, काम, सुख, स्त्री-संग और पुत्र-सुख सब का त्याग करके पाण्डु वन में अपनी स्त्रियों को लेकर चले गये। पाण्डु के ये वचन सुनकर उनके साथी और भृत्य अनेक प्रकार के करुण विलाप करने लगे। धाड़ मारकर हाहाकार करने लगे ॥४०-४२॥ राजा पाण्डु को छोड़कर तथा वह सारा धन लेकर दुख का गरम आँसू बहाते हुए वे शीघ्र ही हस्तिनापुर आये ॥४३॥ उन लोगों ने महात्मा राजा पाण्डु के नगर में आकर उनकी सब बातें राजा धृतराष्ट्र से कहीं और वह सब धन भी दे दिया ॥४४॥ जो वन में वृत्तान्त हुआ था, वह उनलोगों से सुनकर नरश्रेष्ठ धृतराष्ट्र पाण्डु के लिए शोक करने लगे ॥४५॥ धृतराष्ट्र को सोना, बैठना, आनन्द-भोग आदि में मन नहीं लगने लगा, वे भाई के शोक से चिन्तित रहने लगे। वे सदा पाण्डु के सम्बन्ध की ही बातें सोचते रहते ॥४६॥ अनन्तर, हे कुरुश्रेष्ठ, राजपुत्र



पृष्ठ ४३८] पाण्डु के साथ कुन्ती श्रौर माद्री [चित्राकार-पी, मुकर्जी

The Onkar Press, Allahabad.

राजपुत्रस्तु कौरव्य पाण्डुर्मूलफलाशनः । जगाम सह पत्नीभ्यां ततो नागशतं गिरिम् ॥४७॥
स चैत्ररथमासाद्य कालकूटमतीत्य च । हिमवन्तमतिक्रम्य प्रययौ गन्धमादनम् ॥४८॥
रक्ष्यमाणो महाभूतैः सिद्धैश्च परमर्षिभिः । उवास स महाराज समेषु विषमेषु च ॥४९॥
इन्द्रद्युम्नसरः प्राप्य हंसकूटमतीत्य च । शतशृङ्गे महाराज तापसः समतप्यत ॥५०॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि पाण्डुचरिते ऊनविंशत्यधिक शततमोऽध्यायः॥११९॥

वैशम्पायन उवाच—
तत्रापि तपसि श्रेष्ठे वर्तमानः स वीर्यवान् । सिद्धचारणसङ्घानां बभूव प्रियदर्शनः ॥१॥
शुश्रूषुरनहंवादी संयतात्मा जितेन्द्रियः । स्वर्गं गन्तुं पराक्रान्तः स्वेन वीर्येण भारत ॥२॥
केषाञ्चिदभवद्भ्राता केषञ्चिदभवत्सखा । ऋषयस्त्वपरे चैनं पुत्रवत्पर्यपालयन् ॥३॥
स तु कालेन महता प्राप्य निष्कल्मषं तपः । ब्रह्मर्षिसदृशः पाण्डुर्बभूव भरतर्षभ ॥४॥
अमावास्यां तु सहिता ऋषयः संशितव्रताः । ब्रह्माणं द्रष्टु कामास्ते सम्प्रतस्थुर्महर्षयः ॥५॥
सम्प्रयातानृषीन्दृष्ट्वा पाण्डुर्वचनमब्रवीत् । भवन्तः क्व गमिष्यन्ति ब्रूत मे वदतांवराः ॥६॥

पाण्डु फल-मूल का आहार करते हुए स्त्रियों के साथ नागशत नामक पर्वत पर गये ॥४७॥ वहाँ से चैत्ररथ होकर कालकूट और हिमालय पर्वत को नाँघ कर गन्धमादन पर्वत पर गये ॥४८॥ वहाँ महाभूत सिद्ध और महर्षियों के द्वारा रक्षित होकर उस पर्वत के निर्भय और भयंकर स्थानों में इच्छानुसार रहने लगे ॥४९॥ वहाँ से इन्द्रद्युम्न नामक सरोवर पर गये, वहाँ से चल कर हंसकूट पर्वत को बीच में छोड़कर शतशृंग नामक पर्वत पर गये और वहाँ तपस्वी बनकर तपस्या करने लगे ॥५०॥ ऊनविंशाधिक शततम अध्याय ।

पाण्डु की तपस्या; ऋषियों के साथ ब्रह्म-लोक जाने के लिए पाण्डु का तैयार होना; ऋषियों का निषेध; पुत्र-प्राप्ति के लिए परामर्श और पुत्र उत्पन्न करने के लिए कुन्ती को आदेश ।

वैशम्पायन बोले—कष्टों को सहन करने की शक्ति रखनेवाले राजा पाण्डु उस पर्वत पर विधिपूर्वक तपस्या करने लगे और वहाँ के निवासी सिद्ध और चारणों के वे प्रिय बन गये ॥१॥ वे वृद्ध तथा असमर्थों की सेवा करते, अहंकार बिलकुल न रखते, मन और इन्द्रियों को वश में रखते, इस प्रकार अपने पराक्रम से स्वर्ग जाने की शक्ति उन्होंने पा ली । वे किसी के भाई बन गये और किसी के मित्र । ऋषिगण पुत्र के समान इनका पालन करने लगे ॥२-३॥ बहुत समय तक उग्र तप करके राजा पाण्डु निष्पाप हो गये और ब्रह्मर्षियों के समान हो गये ॥४॥ एकबार अमावस्या तिथि को सभी व्रतधारी ऋषि एकत्र हुए और वे एक साथ ब्रह्मा को देखने के लिए प्रस्थित हुए । यात्रा के लिए उद्यत ऋषियों को देखकर पाण्डु उनसे बोले—हे वाग्मीवर ऋषिगण, ! आपलोग कहाँ जा रहे हैं, कहें ? ॥५-६॥

ऋषय ऊचुः—

समवायो महानद्य ब्रह्मलोके महात्मनाम् । देवानां च ऋषीणां च पितॄणां च महात्मनाम् ॥
वयं तत्र गमिष्यामो द्रष्टुकामाः स्वयंभुवम् ॥७॥

वैशम्पायन उवाच—

पाण्डुरुत्थाय सहसा गन्तुकामो महर्षिभिः । स्वर्गपारं तितीर्षुः स शतशृंगादुदङ्मुखः ॥८॥
प्रतस्थे सह पत्नीभ्यामब्रुवंस्तं च तापसाः । उपर्युपरि गच्छन्तः शैलराजमुदङ्मुखाः ॥९॥
दृष्टवन्तो गिरौ रम्ये दुर्गान्देशान्बहून्वयम् । विमानशतसम्बाधां गीतस्वरनिनादिताम् ॥१०॥
आक्रीडभूमिं देवानां गन्धर्वाप्सरसां तथा । उद्यानानि कुवेरस्य समानि विषमाणि च ॥११॥
महानदीनितम्बांश्च गहनान् गिरिगह्वरान् । सन्ति नित्यहिमा देशा निर्वृक्षमृगपक्षिणः ॥१२॥
सन्ति क्वचिन्महादर्यो दुर्गाः काश्चिद्दुरासदाः । नातिक्रामेत पक्षी यान्कुत एवतरे मृगाः ॥१३॥
वायुरेको हि यात्यत्र सिद्धाश्च परमर्षयः । गच्छन्त्यौ शैलराजेऽस्मिन् राजपुत्र्यौ कथंत्विमे ॥१४॥
न सीदेतामदुःखार्हे मा गमो भरतर्षभ ।

पाण्डुरुवाच— अप्रजस्य महाभगा न द्वारं परिचक्षते ॥१५॥

ऋषि बोले—आज ब्रह्मलोक में महात्माओं, देवताओं, ऋषियों और पितरों का समागम होगा। वहीं स्वयम्भुव भगवान ब्रह्मा का दर्शन करने के लिए हमलोग जा रहे हैं ॥७॥

वैशम्पायन बोले—महर्षियों के साथ जाने की इच्छा से पाण्डु भी शीघ्र ही उठ खड़े हुए। वे दोनों स्त्रियों के साथ स्वर्ग लोक नाँघकर ब्रह्मलोक में जाने के लिए शतशृंग पर्वत से उत्तर की ओर चले। यह देखकर ऋषि उनसे बोले—हमलोगों ने इस पर्वत से उत्तर की ओर ऊपर-ही-ऊपर जाकर पर्वत के रमणीक प्रदेशों में अनेक सुन्दर देश देखे हैं ॥९,१०॥ जो बड़े ही दुर्गम हैं। वहाँ अनेक विमान हैं और गाने-बजाने की ध्वनि सुनाई पड़ती है। देवताओं, गन्धर्वों और अप्सराओं की क्रीड़ा-भूमि वहाँ ही है। कुबेर के उद्यान हैं और उसके बाद मैदान है, फिर ऊँची-नीची भूमि है ॥११॥ कहीं-कहीं पर्वत के बड़े-बड़े गहन खड्डे हैं, जिनके बगल में बड़ी-बड़ी नदियाँ बहती हैं। वह स्थान हमेशा बरफ से ढका रहता है। अतएव वृक्ष और पशु-पक्षी वहाँ नहीं रहते ॥१२॥ कहीं बड़ी-बड़ी गुफाएँ हैं और दर्रे हैं, जहाँ जाना सम्भव नहीं है। उन स्थानों पर पक्षी भी नहीं जा सकते, अन्य दूसरे पशु कैसे जा सकते हैं ॥१३॥ वहाँ केवल एक वायु ही जा सकती है और सिद्ध-ऋषि जा सकते हैं। अतएव राजन्, उस पर्वत पर ये राजपुत्रियाँ कैसे जा सकती हैं? ॥१४॥ इनलोगों ने तो कभी दुख नहीं उठाया है। अतएव इस पर्वत पर क्या इन लोगों को कष्ट नहीं होगा? राजन्! आप वहाँ जाने का विचार छोड़ दें। पाण्डु बोले—महापुरुषों, पुत्रहीन होने के कारण मुझे स्वर्ग में जाने का अधिकार नहीं है। इससे मैं बहुत

स्वर्गे तेनाभितप्तोऽहमप्रजस्तु ब्रवीमि वः। पित्र्याहणादनिर्मुक्तस्तेन तप्ये तपोधनाः ॥१६॥
देहनाशे ध्रुवो नाशः पितॄणामेष निश्चयः। ऋणैश्चतुर्भिः संयुक्ता जायन्ते मानवा भुवि ॥१७॥
पितृदेवर्षिमनुजैर्देयं तेभ्यश्च धर्मतः। एतानि तु यथाकालं यो न बुध्यति मानवः ॥१८॥
न तस्य लोकाः सन्तीति धर्मविद्भिः प्रतिष्ठितम्। यज्ञैस्तु देवान्प्रीणाति स्वाध्यायतपसा मुनीन् ॥१९॥
पुत्रैः श्राद्धैः पितॄंश्चापि आनृशंस्येन मानवान्। ऋषिदेवमनुष्याणां परिमुक्तोऽस्मि धर्मतः ॥२०॥
त्रयाणामितरेषां तु नाश आत्मनि नश्यति। पित्र्याहणादनिर्मुक्त इदानीमस्मि तापसाः ॥२१॥
इह तस्मात्प्रजाहेतोः प्रजायन्ते नरोत्तमाः। यथैवाहं पितुः क्षेत्रे जातस्तेन महर्षिणा ॥२२॥
तथैवास्मिन्मम क्षेत्रे कथं वै सम्भवेत्प्रजा।

ऋषय ऊचुः— अस्ति वै तव धर्मात्मन् विद्म देवोपमं शुभम् ॥२३॥
अपत्यमनघं राजन्वयं दिव्येन चक्षुषा। दैवोदिष्टं नरव्याघ्र कर्मणेहोपपादय ॥२४॥
अक्लिष्टं फलमव्यग्रो विन्दते बुद्धिमान्नरः। तस्मिन् दृष्टे फले राजन् प्रयत्नं कर्तुमर्हसि ॥२५॥
अपत्यं गुणसम्पन्नं लब्धा प्रीतिकरं ह्यसि।

दुःखी रहता हूँ, क्योंकि मैं पुत्रहीन हूँ। अतएव मैं आपलोगों से कुछ निवेदन करता हूँ, मैंने पितृऋण से मुक्ति नहीं पायी है, अर्थात् पुत्र न होने के कारण मैं पितरों के ऋण में बंधा हुआ हूँ और इसी लिए दुखी हूँ ॥१५,१६॥ हमारी देह के नष्ट होने पर अवश्य ही पितरों का नाश हो जायगा। मनुष्य जब जन्म लेता है तभी से उस पर चार ऋण होते हैं ॥१७॥ पितर, देवता, ऋषि और मनुष्य सम्बन्धी वे ऋण हैं, इनका चुकाना धर्म है। धर्मात्मा कहते हैं कि जो मनुष्य इन ऋणों को यथासमय नहीं चुकाता, उसे उत्तम लोक नहीं मिलते। यज्ञों के द्वारा देवताओं को प्रसन्न किया जाता है अर्थात् देव-ऋण चुकाया जाता है। स्वाध्याय और तपस्या के द्वारा ऋषि-ऋण पुत्र और श्राद्ध के द्वारा पितृ-ऋण और मनुष्यों पर दया रखने के द्वारा मनुष्य-ऋण चुकाया जाता है। ऋषि-देव और मनुष्य-ऋण मैंने धर्मानुसार चुका दिये हैं, पर पितृ-ऋण अभी नहीं चुका सका हूँ, अतएव मेरे शरीर के नाश के साथ इस ऋण का भी अन्त हो जायगा, अर्थात् यह चुकाया न जा सकेगा। हे तपस्वियों! अभी तक पितृ-ऋण से मैं मुक्त नहीं हूँ, अर्थात् अभी तक मेरे कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ है ॥१८,२१॥ यहाँ के सब बड़े लोगों ने पुत्र उत्पन्न किये हैं। मेरे पिता के भी अपुत्र होने पर महर्षि व्यासदेव के द्वारा क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराये गये। जिनमें एक मैं हूँ। उसी प्रकार क्या मेरी इन स्त्रियों में पुत्र उत्पन्न कराये जा सकते हैं? ऋषि बोले—धर्मात्मन्! राजन्! हमलोगों ने दिव्य दृष्टि से देखकर जाना है कि देव-तुल्य श्रेष्ठ और निष्पाप पुत्र तुम्हें होंगे। अतएव आप कर्म के द्वारा देवताओं का अभिप्राय पूर्ण करें, जिससे आप के पुत्र हों ॥२२-२४॥ जो मनुष्य बुद्धिमान् और धीर होता है, वही सुन्दर फल पाता है। राजन्, फल-प्राप्ति निश्चित है, आप उद्योग कीजिए ॥२५॥ गुणी और सुन्दर पुत्र आप पावेंगे।

वैशम्पायन उवाच— तच्छ्रुत्वा तापसवचः पाण्डुश्चिन्तापरोऽभवत् ॥२६॥
आत्मनो मृगशापेन जानन्नुपहतां क्रियाम् । सोऽब्रवीद्विजने कुन्तीं धर्मपत्नीं यशस्विनीम् ।
अपत्योत्पादने यत्नमापदि त्वं समर्थय ॥२७॥
अपत्यं नाम लोकेषु प्रतिष्ठा धर्मसंहिता । इति कुन्ति विदुर्धीराः शाश्वतं धर्मवादिनः ॥२८॥
इष्टं दत्तं तपस्तप्तं नियमश्च स्वनुष्ठितः । सर्वमेवानपत्यस्य न पावनमिहोच्यते ॥२९॥
सोऽहमेवं विदित्वैतत्प्रपश्यामि शुचिस्मिते । अनपत्यः शुभाँल्लोकान्न प्राप्स्यामीतिचिन्तयन् ॥३०॥
मृगाभिशापान्नष्टं मे जननं ह्यकृतात्मनः । नृशंसकारिणो भीरु यथैवोपहतं पुरा ॥३१॥
इमे वै बन्धुदायादाः षट् पुत्रा धर्मदर्शने । षडेवाबन्धुदायादाः पुत्रास्ताञ्छृणु मे पृथे ॥३२॥
स्वयं जातः प्रणीतश्च परिक्रीतश्च यः सुतः । पौनर्भवश्च कानीनः स्वैरिण्यां यश्च जायते ॥३३॥
दत्तः क्रीतः कृत्रिमश्च उपगच्छेत्स्वयं च यः । सहोढो ज्ञातिरेताश्च हीनयोनिधृतश्च यः ॥३४॥
पूर्वपूर्वतमाभावं मत्वा लिप्सेत वै सुतम् । उत्तमाद्देवरात्पुंसः काङ्क्षन्ते पुत्रमापदि ॥३५॥
अपत्यं धर्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवाः । आत्मशुक्रादपि पृथे मनुः स्वायंम्भुवोऽब्रवीत् ॥३६॥

वैशम्पायन बोले—ऋषियों के ये वचन सुनकर पाण्डु विचार में पड़ गये ॥२६॥ क्योंकि ब्राह्मणरूपी मृग के शाप से वे अपने को पुत्र उत्पन्न करने के अयोग्य समझते थे। अतएव एकान्त में उन्होंने यशस्विनी कुन्ती से कहा कि इस आपत्ति के समय पुत्र उत्पन्न करने का कोई उपाय तुम्हीं करो ॥२७॥ हे कुन्ति! पुत्र इस लोक में धार्मिक स्थिति का मूल है। पुत्र के द्वारा मनुष्यों की धार्मिक सत्ता बनी रहती है। धर्मवादी धीर पुत्रों को शाश्वत कल्याण देनेवाला कहते हैं ॥२८॥ यज्ञ, दान, तपस्या तथा नियम-पालन विधिपूर्वक किये जायँ तो भी वे पुत्रहीनों को पवित्र नहीं कर सकते, उनका कल्याण नहीं कर सकते ॥२६॥ शुचिस्मिते! यही सब विचारकर मैंने ऐसा निश्चय किया है। मैं पुत्रहीन हूँ। अतएव मुझे उत्तम लोक न मिलेगा। इसी विचार से मैं तुमसे ऐसा कह रहा हूँ ॥३०॥ मृगा के शापसे मुझ पापी की पुत्रोत्पादिका शक्ति नष्ट हो गयी है। मेरी निर्दयता के कारण मेरी कामशक्ति पहले ही नष्ट हो चुकी है ॥३१॥ कुन्ती, धर्मानुकूल छः पुत्र बान्धवों के उत्तराधिकारी हैं और छः ही पुत्रों को उत्तराधिकारी के अधिकार नहीं हैं। उन सब का वर्णन सुनो। अर्थात् बारह प्रकार के पुत्र हैं, जिनमें छः तो उत्तराधिकारी होते हैं और छः नहीं। वे ये हैं ॥३२॥ स्वयंजात, प्रणीत, परिक्रीत, पौनर्भव, कानीन, कुण्ड, दत्त, क्रीत, उपक्रीत, कृत्रिम सहोढ़, और हीनयोनिधृत, ये बारह प्रकार के पुत्र, पुत्र होते हैं ॥३३,३४॥ पूर्व के अभाव में आगे वाले पुत्रों को पाने का प्रयत्न करना चाहिए। आपत्ति के समय में, वंशनाश का समय उपस्थित होने पर, स्त्री को देवर से भी पुत्र उत्पन्न करा लेना चाहिए। स्वायम्भुव मनुने कहा है कि स्वयं पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति न रहने पर उत्तम धर्म-फल-प्रद पुत्र, श्रेष्ठ मनुष्यों से उत्पन्न कराया जा सकता

तस्मात्प्रहेष्याम्यद्य त्वां हीनः प्रजननात्स्वयम् । सदृशाच्छ्रेयसो वा त्वं विद्ध्यपत्यं यशस्विनि ॥३७॥
शृणु कुन्ति कथामेतां शारदण्डायिनीं प्रति । सा वीरपत्नी गुरुणा नियुक्ता पुत्रजन्मनि ॥३८॥
पुष्पेण प्रयता स्नाता निशि कुन्ति चतुष्पथे । वरयित्वा द्विजं सिद्धं हुत्वा पुंसवनेऽनलम् ॥३९॥
कर्मण्यवसिते तस्मिन्सा तेनैव सहावसत् । तत्र त्रीञ्जनयामास दुर्जयादीन्महारथान् ॥४०॥
तथा त्वमपि कल्याणि ब्राह्मणात्तपसाऽधिकात् । मन्नियोगाद्यत क्षिप्रमपत्योत्पादनं प्रति ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुपृथासम्वादे
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्ता महाराज कुन्ती पाण्डुमभाषत । कुरूणामृषभं वीरं तदा भूमिपतिं पतिम् ॥१॥
न मामर्हसि धर्मज्ञ वक्तुमेवं कथञ्चन । धर्मपत्नीमभिरतां त्वयि राजीवलोचने ॥२॥
त्वमेव तु महाबाहो मय्यपत्यानि भारत । वीर वीर्योपपन्नानि धर्मतो जनयिष्यसि ॥३॥
स्वर्गं मनुजशार्दूल गच्छेयं सहिता त्वया । अपत्याय च मां गच्छ त्वमेव कुरुनन्दन ॥४॥
नह्यहं मनसाऽप्यन्यं गच्छेयं त्वदृते नरम् । त्वत्तः प्रतिविशिष्टश्च कोऽन्योऽस्ति भुवि मानवः ॥५॥

है ॥३५,३६॥ अतएव आज मैं तुमको भेजता हूँ, मैं शक्तिहीन हो गया हूँ । पुत्र उत्पन्न नहीं कर सकता । अतएव अपने समान अथवा अपने से बड़े किसी पुरुष से पुत्र प्राप्त करने का उपाय करो ॥३७॥ कुन्ती, एक कथा सुनो । शरदण्डावन की स्त्री की वह कथा है । उसके पति ने उस वीरांगना को पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा दी । रजस्वला होने के बाद स्नान करके वह चौराहे पर चली गयी और एक ब्राह्मण को पसन्द करके लायी और पुत्र उत्पन्न करने के लिए उनसे सहवास किया । गर्भ रह जाने के पश्चात् वह अपने पति के साथ रहने लगी, जिससे उसे तीन महावीर दुर्जय आदि पुत्र उत्पन्न हुए ॥३८-४०॥ कल्याणि, इसी प्रकार तुम भी मेरी आज्ञा से किसी तपस्वी ब्राह्मण से पुत्र उत्पन्न करने का प्रयत्न करो ॥४१॥

विंशत्यधिक शततम अध्याय ।

कुन्ती-वर्णित राजा व्युषिताश्व की कथा ।

वैशम्पायन बोले—महाराज ! ऐसा कहने पर कुन्ती कुरुराज वीर अपने पति पाण्डु से इस प्रकार बोली ॥१॥ हे धर्मज्ञ, आप में अनुराग रखने वाली अपनी धर्मपत्नी से ऐसी बात न कहें । महाबाहो ! आप ही मुझ से पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं । आप ही धर्मपूर्वक मुझ से वीर पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं और आप के साथ मैं स्वर्ग जा सकती हूँ । हे कुरुश्रेष्ठ ! पुत्र के लिए आप ही मुझ से समागम करें ॥२-४॥ आप के अतिरिक्त दूसरे पुरुष के यहाँ जाने की बात मैं सोच भी नहीं

इमां च तावद्धर्मात्मन्पौराणीं शृणु मे कथाम् । परिश्रुतां विशालाक्ष कीर्त्तयिष्यामि यामहम् ॥६॥
व्युषिताश्व इति ख्यातो बभूव किल पार्थिवः । पुरा परमधर्मिष्ठः पूरोर्वंशविवर्धनः ॥७॥
तस्मिंश्च यजमाने वै धर्मात्मनि महाभुजे । उपागमँस्ततो देवाः सेन्द्रा देवर्षिभिः सह ॥८॥
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः । व्युषिताश्वस्य राजर्षेस्ततो यज्ञे महात्मनः ॥९॥
देवब्रह्मर्षयश्चैव चक्रुः कर्म स्वयं तदा । व्युषिताश्वस्ततो राजन्नतिमर्त्यान् व्यरोचत ॥१०॥
सर्वभूतान्प्रति यथा तपनः शिशिरात्यये । स विजित्य गृहीत्वा च नृपतीन् राजसत्तमः ॥११॥
प्राच्यानुदीच्यान्पाश्चात्यान्दाक्षिणात्यानकालयत्। अश्वमेधे महायज्ञे व्युषिताश्वः प्रतापवान्॥१२॥
बभूव स हि राजेन्द्रो दशनागबलान्वितः । अप्यत्र गाथां गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥१३॥
व्युषिताश्वे यशोवृद्धे मनुष्येन्द्रे कुरूत्तम । व्युषिताश्वः समुद्रान्तां विजित्येमां वसुन्धराम् ॥१४॥
अपालयत्सर्ववर्णान् पिता पुत्रानिवौरसान् । यजमानो महायज्ञैर्ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥१५॥
अनन्तरत्नान्यादाय स जहार महाक्रतून् । सुषाव च बहून्सोमान्सोमसंस्थास्ततान च ॥१६॥
आसीत्काक्षीवती चास्य भार्या परमसम्मता । भद्रा नाम मनुष्येन्द्र रूपेणासदृशी भुवि ॥१७॥
कामयामासतुस्तौ च परस्परमिति श्रुतम् । स तस्यां कामसम्मत्तो यक्ष्मणा समपद्यत ॥१८॥

सकता, क्योंकि इस पृथिवी में आप से बढ़कर कौन मनुष्य है ? ॥५॥ हे विशालाक्ष ! यह प्रसिद्ध पुराण की कथा सुनिए, जो मैं कहती हूँ ॥६॥ पुरुवंश के बढ़ाने वाले, परमधार्मिक व्युषिताश्व नामक एक प्रसिद्ध राजा हुए हैं ॥७॥ एक बार वे पराक्रमी और धर्मात्मा राजा यज्ञ कर रहे थे, उस समय देवर्षियों और इन्द्र के साथ देवता वहाँ आये ॥८॥ महात्मा राजर्षि व्युषिताश्व के यज्ञ में इन्द्र सोम पाकर और ब्राह्मण दक्षिणा पाकर प्रसन्न हुए । देवता और ऋषियों ने उनके यज्ञ के सब काम स्वयं किये । इससे राजा व्युषिताश्व समस्त मनुष्यों और राजाओं से श्रेष्ठ हो गये । जिस प्रकार शिशिर ऋतु के बीतने पर सूर्य सब प्राणियों पर अपना प्रताप फैला देता है, उसी प्रकार राजा का प्रताप फैल गया । राजा व्युषिताश्व ने पूरब, उत्तर, पच्छिम और दक्षिण के राजाओं को जीतकर तथा पकड़कर अपने अधीन कर लिया । प्रतापी व्युषिताश्व ने उस अश्वमेध यज्ञ में इन राजाओं को अपने वश कर लिया ॥९-१२॥ दस हाथियों का बल उन में था । उनके सम्बन्ध में पौराणिक यह गाथा (कहावत) कहते हैं । हे कुरुश्रेष्ठ, उन राजा व्युषिताश्व का यश चारों ओर फैला हुआ था । राजा व्युषिताश्व ने समुद्र पर्यन्त पृथिवी को जीता और समस्त वर्णों का पालन किया, जिस प्रकार पिता पुत्र का पालन करता है । बड़े-बड़े यज्ञ किये और ब्राह्मणों को धन दिये ॥१२-१५॥ बहुत सा धन-रत्न लेकर अनेक सोम तथा अग्निष्टोम आदि यज्ञ उन्होंने किये ॥१६॥

राजा व्युषिताश्व की स्त्री भद्रा थी । यह कक्षीवान की कन्या और पृथ्वी में सब से सुन्दरी थी । पति की प्रिया थी । पतिपत्नी में बड़ा अनुराग था । स्त्री में अधिक कामासक्त होने के कारण राजा को यक्ष्मा रोग हो गया ॥१८॥ अतएव शीघ्र ही वे राजा सूर्य के समान अस्त हो गये । उनकी मृत्यु होने पर स्त्री नितान्त दुःखिनी हुई । हमलोगों ने सुना है कि पतिपुत्र-हीन वह

तेनाचिरेण कालेन जगामास्तमिवांशुमान् । तस्मिन्प्रेते मनुष्येन्द्रे भार्याऽस्य भृशदुःखिता ॥१९॥
अपुत्रा पुरुषव्याघ्र विललापेति नः श्रुतम् । भद्रा परमदुःखार्त्ता तन्निबोध जनाधिप ॥२०॥
भद्रोवाच—
नारी परमधर्मज्ञ सर्वा भर्तृविनाकृता । पतिं विना जीवति या न सा जीवति दुःखिता ॥२१॥
पतिं विना मृतं श्रेयो नार्याः क्षत्रियपुङ्गव । त्वद्गतिं गन्तुमिच्छामि प्रसीदस्व नयस्व माम् ॥२२॥
त्वया हीना क्षणमपि नाहं जीवितुमुत्सहे । प्रसादं कुरु मे राजन्नितस्तूर्णं नयस्व माम् ॥२३॥
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि समेषु विषमेषु च । त्वमहं नरशार्दूल गच्छन्तमनिवर्तितुम् ॥२४॥
छायेवानुगता राजन् सततं वशवर्तिनी । भविष्यामि नरव्याघ्र नित्यं प्रियहिते रता ॥२५॥
अद्यप्रभृति मां राजन् कष्टा हृदयशोषणाः । आधयोऽभिभविष्यन्ति त्वामृते पुष्करेक्षण ॥२६॥
अभाग्यया मया नूनं वियुक्ताः सहचारिणः । तेन मे विप्रयोगोऽयमुपपन्नस्त्वया सह ॥२७॥
विप्रयुक्ता तु या पत्या मुहूर्तमपि जीवति । दुःखं जीवति सा पापा नरकस्थेव पार्थिव ॥२८॥
संयुक्ता विप्रयुक्ताश्च पूर्वदेहे कृता मया । तदिदं कर्मभिः पापैः पूर्वदेहेषु सञ्चितम् ॥२९॥
दुःखं मामनुसम्प्राप्तं राजंस्त्वद्विप्रयोगजम् । अद्य प्रभृत्यहं राजन् कुशसंस्तरशायिनी ॥
भविष्याम्यसुखाविष्टा त्वद्दर्शनपरायणा ॥३०॥

स्त्री बहुत विलाप करने लगी । राजन्, दुःखार्त होकर भद्रा ने जो कहा था, वह आप सुनें ॥२०॥

भद्रा बोली—हे परम धर्मज्ञ ! सब स्त्रियाँ पति के बिना दुःखिनी हो जाती हैं । जो स्त्री पति के बिना जीती है, उसका जीवन जीवन नहीं है ॥२१॥ हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! पति के न रहने पर स्त्री का मर जाना ही अच्छा है । मैं भी आप का अनुसरण करना चाहती हूँ । आप प्रसन्न हों और मुझे ले चलें ॥२२॥ आपके बिना एक क्षण भी मैं जीना नहीं चाहती । महाराज, आप कृपा करें, शीघ्र मुझे यहाँ से ले चलें ॥२३॥ अच्छे और बुरे समयों में मैं आपके साथ-साथ रहूँगी । महाराज, आप जा रहे हैं, न लौटने के लिए, आप पुनः लौटकर न आवेंगे ॥२४॥ अतएव सदा आपके अधीन रहनेवाली मैं छाया के समान आपके साथ ही रहूँगी । सदा आपके प्रिय और हित के काम किया करूँगी ॥२५॥ कमलनयन राजन् , आज से आपके न रहने के कारण हृदय को दुखानेवाली मानसिक चिन्ताएँ हमें आ घेरेंगी ॥२६॥ मेरा आपके साथ यह जो वियोग हुआ है, इससे मैं समझती हूँ कि अभागिनी मैंने साथ रहनेवाले किसी स्त्री-पुरुष का वियोग कराया होगा ॥२७॥ राजन् , पति से वियुक्त होकर जो स्त्री एक क्षण भी जीती है, वह पापिनी है, और वह नरक के समान दुःख भोगती है ॥२८॥ पूर्व जन्म में मैंने कई संयोगियों में, साथ रहने वाले स्त्री-पुरुषों में, वियोग कराया होगा । अतएव पूर्व जन्म में संचित उन्हीं पाप-कर्मों का यह फल है जो आपके वियोग के कारण मुझे भोगना पड़ता है । राजन् ! आज से मैं कुश की चटाई पर सोऊँगी । नरसिंह ! मुझ दुःखिनी को दर्शन दें और आज्ञा दें । मैं दीन होकर विलाप कर रही हूँ ॥२९-३१॥

दर्शयस्व नरव्याघ्र शाधि मामसुखान्विताम् । कृपणां चाथ करुणं विलपन्तीं नरेश्वर ॥३१॥
कुन्त्युवाच—
एवं बहुविधं तस्यां विलपन्त्यां पुनः पुनः । तं शवं सम्परिष्वज्य वाकिलाऽन्तर्हिताऽब्रवीत् ॥३२॥
उत्तिष्ठ भद्रे गच्छ त्वं ददानीह वरं तव । जनयिष्याम्यपत्यानि त्वय्यहं चारुहासिनि ॥३३॥
आत्मकीये वरारोहे शयनीये चतुर्दशीम् । अष्टमीं वा ऋतुस्नाता संविशेथा मया सह ॥३४॥
एवमुक्ता तु सा देवी तथा चक्रे पतिव्रता । यथोक्तमेव तद्वाक्यं भद्रा पुत्रार्थिनी तदा ॥३५॥
सा तेन सुषुवे देवी शवेन भरतर्षभ । त्रीन् शाल्वांश्चतुरो मद्रान् सुतान्भरतसत्तम ॥३६॥
तथा त्वमपि मय्येवं मनसा भरतर्षभ । शक्तो जनयितुं पुत्रांस्तपोयोगबलान्वितः ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि व्युषिताश्वोपाख्याने
एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

वैशम्पायन उवाच—
एवमुक्तस्तया राजा तां देवीं पुनरब्रवीत् । धर्मविद्धर्मसंयुक्तमिदं वचनमुत्तमम् ॥१॥
पाण्डुरुवाच—
एवमेतत्पुरा कुन्ति व्युषिताश्वश्चकार ह । यथा त्वयोक्तं कल्याणि स ह्यासीदमरोपमः ॥२॥

कुन्ती बोली—राजा के उस मृत शरीर से लिपटकर रानी इस प्रकार के अनेक विलाप कर रही थी । उस समय आकाशवाणी सुनायी पड़ी ॥३२॥ भद्रे ! उठो मैं तुम्हें वर देता हूँ । चारुहासिनि ! मैं तुम्हें पुत्र दूंगा ॥३३॥ ऋतु-स्नान के बाद आठवीं या चौदहवीं रात को अपनी पलँग पर तुम मेरे साथ शयन करोगी ॥३४॥ उस देवी ने आकाशवाणी के कथन के अनुसार किया था, क्योंकि वह पुत्र चाहती थी ॥३५॥ देवी भद्रा ने उस मृतक शरीर से शाल्व नामक तीन और मद्र नामक चार पुत्र उत्पन्न किये ॥३६॥ आप तपस्या और योगबल के द्वारा मुझ में इसी प्रकार मानसिक शक्ति से पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं । आप तपस्वी हैं और योगी हैं ॥३७॥

एकविंशत्यधिक शततम अध्याय ।

उद्दालक की कथा ; श्वेतकेतु का स्त्री-पुरुषों के लिए मर्यादा स्थापित करना ; पाण्डु का कुन्ती को किसी श्रेष्ठ और गुणी ब्राह्मण से पुत्र उत्पन्न कराने की आज्ञा देना ; कुन्ती का दुर्वासा के द्वारा पाये हुए मन्त्र की बात पाण्डु से कहना ।

वैशम्पायन बोले—कुन्ती के ऐसा कहने पर धर्मात्मा राजा पाण्डु इस प्रकार धर्मयुक्त वचन बोले ॥१॥

पाण्डु बोले—कुन्ती ! ठीक है, जैसा तुमने कहा राजा व्युषिताश्व ने ऐसा ही किया था,

अथ त्विदं प्रवक्ष्यामि धर्मतत्त्वं निबोध मे । पुराणमृषिभिर्दृष्टं धर्मविद्भिर्महात्मभिः ॥३॥
अनावृताः किल पुरा स्त्रिय आसन्वरानने । कामचारविहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुहासिनि ॥४॥
तासां व्युच्चरमाणानां कौमारात्सुभगे पतीन् । नाधर्मोऽभूद्वरारोहे स हि धर्मः पुराऽभवत् ॥५॥
तं चैव धर्मं पौराणं तिर्यग्योनिगताः प्रजाः । अद्याप्यनुविधीयन्ते कामक्रोधविवर्जिताः ॥६॥
प्रमाणदृष्टो धर्मोऽयं पूज्यते च महर्षिभिः । उत्तरेषु च रम्भोरु कुरुष्वद्यापि पूज्यते ॥७॥
स्त्रीणामनुग्रहकरः स हि धर्मः सनातनः । अस्मिंस्तु लोके न चिरान्मर्यादेयं शुचिस्मिते ॥८॥
स्थापिता येन यस्माच्च तन्मे विस्तरतः शृणुः । बभूवोद्दालको नाम महर्षिरिति नः श्रुतम् ॥९॥
श्वेतकेतुरिति ख्यातः पुत्रस्तस्याभवन्मुनिः । मर्यादेयं कृता तेन धर्म्या वै श्वेतकेतुना ॥१०॥
कोपात्कमलपत्राक्षि यदर्थं तन्निबोध मे । श्वेतकेतोः किल पुरा समक्षं मातरं पितुः ॥११॥
जग्राह ब्राह्मणःपाणौ गच्छाव इति चाब्रवीत् । ऋषिपुत्रस्ततः कोपं चकारामर्षचोदितः ॥१२॥
मातरं तां तथा दृष्ट्वा नीयमानां बलादिव । क्रुद्धं तं तु पिता दृष्ट्वा श्वेतकेतुमुवाच ह ॥१३॥
मा तात कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः । अनावृता हि सर्वेषां वर्णानामङ्गना भुवि ॥१४॥
यथा गावः स्थितास्तात स्वे स्वे वर्णे तथा प्रजाः । ऋषि पुत्रोऽथ तं धर्मं श्वेतकेतुर्न चक्षमे ॥१५॥

क्योंकि वे देवतुल्य थे । अब मैं तुम्हें धर्मतत्व बतलाता हूँ । उसे तुम समझो। ऋषियों ने, जो धर्मज्ञ और महात्मा थे, उस प्राचीन धर्म को देखा है, अर्थात् उनके द्वारा वह मालूम हुआ है ॥२-३॥ सुन्दरी, पहले स्त्रियाँ परदे में नहीं रहती थीं, वे खुले आ-जा सकती थीं, वे इच्छानुसार आचरण करतीं और विहार करती थीं । सब प्रकार से स्वतंत्र थीं, उनके लिए कोई रोक-टोक न था । सुभगे, बाल्यावस्था से ही वे पतियों से व्यभिचार कराती थीं, पर इससे उन्हें अधर्म नहीं होता था, क्योंकि उस समय यही धर्म था ॥४-५॥ वह प्राचीन धर्म आज भी पशु-पक्षियों में देखा जाता है । काम-क्रोध-रहित प्रजा में भी यही धर्म माना जाता है ॥६॥ प्रमाणों के द्वारा सिद्ध इस धर्म का आदर महर्षि भी करते हैं । उत्तर कुरुदेश में आज भी इस धर्म का प्रचार है ॥७॥ यह सनातन धर्म है और स्त्रियों पर कृपा करनेवाला है। हमलोगों में भी इसके विरुद्ध नयी मर्यादा का प्रचार थोड़े ही दिनों से हुआ है ॥८॥ इस नयी मर्यादा की स्थापना जिसने की और जिस कारण की, वह तुम मुझसे विस्तारपूर्वक सुनो । उद्दालक नामक एक महर्षि थे ऐसा हम लोगों ने सुना है ॥९॥ उस मुनि के पुत्र श्वेतकेतु नाम से प्रसिद्ध हैं । उन्हीं श्वेतकेतु ने क्रोध करके यह धर्म की मर्यादा स्थापित की है । अब इसका कारण सुनो । श्वेतकेतु की माता का हाथ किसी ब्राह्मण ने उनके पिता के सामने ही पकड़ा और कहा कि हमलोग चलें । श्वेतकेतु इस घटना को न सह सके । बलपूर्वक एक ब्राह्मण के द्वारा अपनी माता का ले जाना, उन्हें असह्य हो गया और उन्होंने बड़ा क्रोध किया । श्वेतकेतु को क्रुद्ध देखकर उनके पिता बोले ॥१०-१३॥ बेटा, तुम क्रोध मत करो। यह सनातन धर्म है । सब वर्णों की स्त्रियाँ परदे के बाहर रहती हैं, जिस प्रकार गौ रहती हैं, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी रहती हैं । पर ऋषि-पुत्र श्वेतकेतु इस धर्म को स्वीकार न कर सके । तभी से

चकार चैव मर्यादामिमां स्त्रीपुंसयोर्भुवि । मानुषेषु महाभागे न त्वेवान्येषु जन्तुषु ॥१६॥
तदा प्रभृति मर्यादा स्थितेयमिति नः श्रुतम् । व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्या अद्यप्रभृति पातकम् ॥१७॥
भ्रूणहत्यासमं घोरं भविष्यत्यसुखावहम् । भार्यां तथा व्युच्चरतः कौमारब्रह्मचारिणीम् ॥१८॥
पतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि । पत्या नियुक्ता या चैव पत्नी पुत्रार्थमेव च ॥१९॥
न करिष्यति तस्याश्च भविष्यत्येतदेव हि । इति तेन पुरा भीरु मर्यादा स्थापिता बलात् ॥२०॥
उद्दालकस्य पुत्रेण धर्म्या वै श्वेतकेतुना । सौदासेन च रम्भोरु नियुक्ता पुत्रजन्मनि ॥२१॥
मदयन्ती जगामर्षिं वसिष्ठमिति नः श्रुतम् । तस्माल्लेभे च सा पुत्रमश्मकं नाम भामिनी ॥२२॥
एवं कृतवती सापि भर्त्तुः प्रियचिकीर्षया । अस्माकमपि ते जन्म विदितं कमलेक्षणे ॥२३॥
कृष्णद्वैपायनाद्भीरु कुरूणां वंशवृद्धये । अत एतानि सर्वाणि कारणानि समीक्ष्य वै ॥२४॥
ममैतद्वचनं धर्म्यं कर्तुमर्हस्यनिन्दिते । ऋतावृतौ राजपुत्रि स्त्रिया भर्ता पतिव्रते ॥२५॥
नातिवर्त्तव्य इत्येवं धर्मं धर्मविदो विदुः । शेषेष्वन्येषु कालेषु स्वातन्त्र्यं स्त्री किलार्हति ॥२६॥
धर्ममेवं जनाः सन्तः पुराणं परिचक्षते । भर्ता भार्यां राजपुत्रि धर्म्यंवाऽधर्म्यमेव वा ॥२७॥
यद्ब्रूयात्तत्तथा कार्यमिति वेदविदो विदुः । विशेषतः पुत्रगृद्धी हीनः प्रजननात्स्वयम् ॥२८॥

महाभागे कुन्ती, उन्होंने स्त्री पुरुषों के लिए यह मर्यादा बाँध दी। अन्य प्राणियों में यह मर्यादा नहीं है ॥१४-१६॥ तभी से यह मर्यादा चली है, ऐसा हमलोगों ने सुना है। पति को छोड़कर दूसरे से व्यभिचार करनेवाली स्त्री को गर्भहत्या के समान भयंकर और दुःखदायी पाप होता है और बाल्यावस्था से ब्रह्मचारिणी पतिव्रता स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्री से व्यभिचार करनेवाले पुरुष को भी यही पाप होता है। जो स्त्री पुत्र उत्पन्न करने के लिए पति की आज्ञा पाकर दूसरे पुरुष से पुत्र उत्पन्न न करावेगी, उसको भी यही पाप होगा। उन्हीं श्वेतकेतु ने यह मर्यादा भी स्थापित कर दी है। यह मर्यादा उद्दालक-पुत्र श्वेतकेतु की चलायी अब धर्मानुकूल समझी जाती है। रम्भोरु! राजा सौदास ने अपनी स्त्री दमयन्ती को पुत्र उत्पन्न कराने की आज्ञा दी थी। हम लोगोंने सुना है कि वह महर्षि वशिष्ठ के यहाँ गयी थी और उनसे अस्मक नाम का पुत्र उसने पाया था। यह उसने पति की आज्ञा से उनको प्रसन्न करने के लिए किया था। कमलाक्षि, हमारा जन्म भी तुम्हें मालूम ही है ॥२३॥ कुरुवंश की वृद्धि के लिए कृष्णद्वैपायन व्यास से मेरी उत्पत्ति हुई है। अनिन्दिते, अतएव इन सब कारणों का विचार करके तुमको मेरा धर्मानुकूल यह वचन मानना चाहिए। प्रत्येक ऋतुकाल में स्त्री को पति के पास जाना चाहिए, यह भी उनका धर्म है। यह धर्मवेत्ता मुनि कहते हैं। ऋतुकाल के अतिरिक्त स्त्रियाँ पति के पास जाने के लिए स्वतंत्र हैं, चाहे जाँय या न जाँय ॥२६॥ यही प्राचीन धर्म था, ऐसा सज्जन कहते हैं। राजपुत्रि, पति स्त्री से जो कहे वह धर्मानुकूल हो या धर्म-विरुद्ध-स्त्री को उसका पालन करना ही चाहिए, ऐसा वेदज्ञ कहते हैं। विशेष कर जब पति पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति खो बैठा हो और पुत्र चाहता हो, उस समय तो अवश्य ही पति की आज्ञा माननी

यथाऽहमनवद्याङ्गि पुत्रदर्शनलालसः । तथा रक्ताङ्गुलिनिभः पद्मपत्रनिभः शुभे ॥२९॥
प्रसादार्थं मया तेऽयं शिरस्यभ्युद्यतोऽञ्जलिः । मन्नियोगात्सुकेशांते द्विजातेस्तपसाऽधिकात् ॥३०॥
पुत्रान्गुणसमायुक्तानुत्पादयितुमर्हसि । त्वत्कृतेऽहं पृथुश्रोणि गच्छेयं पुत्रिणां गतिम् ॥३१॥
वैशम्पायन उवाच—
एवमुक्ता ततः कुन्ती पाण्डुं परपुरञ्जयम् । प्रत्युवाच वरारोहा भर्तुः प्रियहिते रता ॥३२॥
पितृवेश्मन्यहं बाला नियुक्ताऽतिथिपूजने । उग्रं पर्यचरं तत्र ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥३३॥
निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः । तमहं संशितात्मानं सर्वयत्नैरतोषयम् ॥३४॥
स मेऽभिचारसंयुक्तमाचष्ट भगवान्वरम् । मन्त्रं त्विमं चमे प्रादादब्रवीच्चैव मामिदम् ॥३५॥
यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि । अकामो वा सकामो वा वशं ते समुपैष्यति ॥३६॥
तस्य तस्य प्रसादात्ते राज्ञि पुत्रो भविष्यति । इत्युक्ताऽहं तदा तेन पितृवेश्मनि भारत ॥३७॥
ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तस्य कालोऽयमागतः । अनुज्ञाता त्वया देवमाह्वयेयमहं नृप ॥३८॥
तेन मन्त्रेण राजर्षे यथास्यान्नौ प्रजा हिता । आवाहयामि कं देवं ब्रूहि सत्यवतांवर ।
त्वत्तोऽनुज्ञाप्रतीक्षां मां विद्ध्यस्मिन्कर्मणि स्थिताम् ॥३९॥

चाहिए ॥२७-२८॥ हे सुन्दरी, मैं भी आज वैसा ही हूँ, मैं पुत्र देखना चाहता हूँ, अतएव कमल-पत्र के समान लाल अंगुलियों के कारण सुन्दर दीखने वाली यह अंजलि तुम्हें प्रसन्न करने के लिए मैं सिर से लगाता हूँ । अर्थात् प्रसन्न होने के लिए तुम्हें हाथ जोड़ता हूँ । मेरी आज्ञा से तुम मुझ से अधिक तपस्वी ब्राह्मण से गुणवान् पुत्र उत्पन्न कराओ । तुम्हारे कारण पुत्रवानों को जो लोक मिलते हैं, वे मुझे भी मिलेंगे ॥२९-३१॥

वैशम्पायन बोले—ऐसा कहने पर सुन्दरी पति को सदा प्रसन्न रखनेवाली और उनका हित करनेवाली कुन्ती शत्रुविजयी पाण्डु से इस प्रकार बोली ॥३२॥ पिता के घर में जब मैं बालिका थी तब अतिथियों के सत्कार का भार मुझ पर था । एक बार प्रसिद्ध व्रतधारी और क्रोधी दुर्वासा की मैंने सेवा की । जिनकी धर्म में दृढ़ आस्था है, उन जितेन्द्रिय मुनि को मैंने सब प्रकार से सन्तुष्ट किया ॥३४॥ उन्होंने देवताओं को बुलाने का मुझे वर दिया और मन्त्र दिया, अनन्तर वे इस प्रकार बोले ॥३५॥ इस मन्त्र से तुम जिस-जिस देवता को बुलाओगी, उसकी इच्छा हो या न हो, वह अवश्य तुम्हारे पास आ जायगा ॥३६॥ राजपुत्रि, उस देवता की कृपा से तुम्हें पुत्र होगा । हे भारत, मुनि दुर्वासा ने पिता के घर में मुझ से ऐसा कहा था ॥३७॥ ब्राह्मण का बचन सत्य होता है, उसकी परीक्षा का समय भी आ गया । आप की आज्ञा हो तो मैं किसी देवता को बुलाऊँ ॥३८॥ राजर्षि, उस मन्त्र से मैं किस देवता को बुलाऊँ, जिससे हम दोनों का हितकारी पुत्र हो । हे सत्यवादी श्रेष्ठ, आप कहें । मैं इस काम के लिए तयार बैठी हूँ । केवल आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है ॥३९॥

पाण्डुरुवाच—

अद्यैव त्वं वरारोहे प्रयतस्व यथाविधि। धर्ममावाहय शुभे स हि लोकेषु पुण्यभाक् ॥४०॥
अधर्मेण न नो धर्मः संयुज्यति कथञ्चन। लोकश्चायं वरारोहे धर्मोऽयमिति मन्यते ॥४१॥
धार्मिकश्च कुरूणां स भविष्यति न संशयः। धर्मेण चापि दत्तस्य नाधर्मे रंस्यते मनः ॥४२॥
तस्माद्धर्मं पुरस्कृत्य नियता त्वं शुचिस्मिते। उपचाराभिचाराभ्यां धर्ममावहयस्व वै ॥४३॥

वैशम्पायन उवाच—

सा तथोक्ता तथेत्युक्त्वा तेन भर्त्रा वराङ्गना। अभिवाद्याभ्यनुज्ञाता प्रदक्षिणमवर्तत ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि कुन्तीपुत्रोत्पत्त्य-
नुज्ञाने द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

वैशम्पायन उवाच—

सम्वत्सरधृते गर्भे गान्धार्या जनमेजय। आह्वयामास वै कुन्ती गर्भार्थं धर्ममच्युतम् ॥१॥
सा बलिं त्वरिता देवी धर्मायोपजहार ह। जजाप विधिवज्जप्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा ॥२॥
आजगाम ततो देवो धर्मो मन्त्रबलात्ततः। विमाने सूर्यसङ्काशे कुन्ती यत्र जपस्थिता ॥३॥

पाण्डु बोले—सुन्दरी, तुम आज ही इसके लिए प्रयत्न करो। हे शुभे, तुम धर्मराज का आवाहन करो, क्योंकि वे ही समस्त लोकपालों में पुण्यात्मा हैं ॥४०॥ हमलोगों के धर्म में कहीं अधर्म न लग जाय, अतएव धर्मराज का बुलाना ही अच्छा है, क्योंकि एक तो वे स्वयं धर्माधर्म का विचार कर लेंगे और दूसरे उनका सम्बन्ध होने के कारण लोग भी इसको धर्म ही समझेंगे ॥४१॥ इसमें सन्देह नहीं कि धर्मराज के द्वारा उत्पन्न वह पुत्र कुरुवंश में अवश्य धार्मिक होगा और अधर्म में उसकी बुद्धि न रहेगी ॥४२॥ अतएव शुचिस्मिते, समस्त सामग्रियों को एकत्र कर और धर्मानुकूल संयत होकर मन्त्र के द्वारा भगवान धर्म का आवाहन करो ॥४३॥

वैशम्पायन बोले—पति के ऐसा कहने पर सुन्दरी कुन्ती ने उनकी आज्ञा स्वीकार की और उनको प्रणाम करके प्रदक्षिणा की ॥४४॥

द्वाविंशत्यधिक शततम अध्याय।

कुन्ती के गर्भ से धर्मराज के द्वारा युधिष्ठिर, वायु के द्वारा भीम और इन्द्र के द्वारा अर्जुन की उत्पत्ति।

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय, गान्धारी के गर्भ धारण करने के एक वर्ष बाद कुन्ती ने गर्भ धारण करने के लिए अविनाशी धर्मराज का आह्वान किया ॥१॥ उसने शीघ्र ही धर्म के लिए बलि दी। विधिपूर्वक दुर्वासा के दिये मन्त्र का जप किया ॥२॥ अनन्तर, मन्त्र-बल से धर्मराज, सूर्य के समान प्रकाशमान विमान पर बैठकर वहाँ आये, कुन्ती जप कर रही थी ॥३॥ हँसकर वे

विहस्य तां ततो ब्रूयाः कुन्ति किं ते ददाम्यहम् । सा तं विहस्यमानाऽपि पुत्रं देह्यब्रवीदिदम् ॥४॥
संयुक्ता सा हि धर्मेण योगमूर्तिधरेण ह । लेभे पुत्रं वरारोहा सर्वप्राणभृतां हितम् ॥५॥
ऐन्द्रे चन्द्रसमायुक्ते मुहूर्त्तेऽभिजितेऽष्टमे । दिवा मध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेऽतिपूजिते ॥६॥
समृद्धयशसं कुन्ती सुषाव प्रवरं सुतम् । जातमात्रे सुते तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ॥७॥
एष धर्मभृतां श्रेष्ठो भविष्यति नरोत्तमः । विक्रान्तः सत्यवाक्चैव राजा पृथ्व्यां भविष्यति ॥८॥
युधिष्ठिर इति ख्यातः पाण्डोः प्रथमजःसुतः । भविता प्रथितो राजा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥९॥
यशसा तेजसा चैव वृत्तेन च समन्वितः । धार्मिकं तं सुतं लब्ध्वा पाण्डुस्तां पुनरब्रवीत्॥१०॥
प्राहुः क्षत्रं बलज्येष्ठं बलज्येष्ठं सुतं वृणु । ततस्तथोक्ता भर्त्रा तु वायुमेवाजुहाव सा ॥११॥
ततस्तामागतो वायुर्मृगारूढो महाबलः । किं ते कुन्ति ददाम्यद्य ब्रूहि यत्ते हृदि स्थितम् ॥१२॥
सा सलज्जा विहस्याह पुत्रं देहि सुरोत्तम । बलवन्तं महाकायं सर्वदर्पप्रभञ्जनम् ॥१३॥
तस्माज्जज्ञे महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः । तमप्यतिबलं जातं वागुवाचाशरीरिणी ॥१४॥
सर्वेषां बलिनां श्रेष्ठो जातोऽयमिति भारत । इदमत्यद्भुतं चासीज्जातमात्रे वृकोदरे ॥१५॥
यदङ्कात्पातितो मातुःशिलां गात्रैर्व्यचूर्णयत् । कुन्ती व्याघ्रभयोद्विग्ना सहसोत्पतिता किल ॥१६॥
नान्वबुध्यत संसुप्तमुत्संगे स्वे वृकोदरम् । ततः स वज्रसङ्घातः कुमारोऽभ्यपतद्गिरौ ॥१७॥

बोले,—कुन्ती तुमको मैं क्या दूँ, कहो ? कुन्ती ने भी हँसकर उनसे कहा कि पुत्र दीजिए ॥४॥ योगमूर्ति धारण करनेवाले, धर्मराज से समागम करके सुन्दरी कुन्ती ने पुत्र पाया, पुत्र का गर्भ-धारण किया, जो सब प्राणियों का हितकारी था ॥५॥ चन्द्रवार के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र में अभिजित् मुहूर्त के आठवें अंश में तुला लग्न में अति प्रशंसित पंचमी तिथि को कुन्ती ने यशस्वी-श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया। जिस पुत्र के उत्पन्न होते ही यह आकाशवाणी हुई ॥६-७॥ 'यह धर्मात्माओं में श्रेष्ठ होगा। पराक्रमी, सत्यवादी और पृथिवी का राजा होगा। यह पाण्डु का पहला लड़का युधिष्ठिर नाम से प्रसिद्ध होगा। यह तीनों लोकों में यश, तेज और सदाचार के कारण प्रसिद्ध होगा।' उस धार्मिक पुत्र को पाकर पाण्डु ने पुनः कुन्ती से कहा ॥८-१०॥ क्षत्रियों में बल की अधिकता होनी चाहिए, अतएव एक बलवान पुत्र उत्पन्न करो। पति के ऐसी आज्ञा देने पर उसने वायु का आह्वान किया ॥११॥ मृगा पर चढ़कर महाबली वायुदेव आये और बोले—कुन्ती, तुम्हें क्या दूँ ? जो तुम्हारे मन में हो, कहो ॥ १२ ॥ वह लज्जापूर्वक हँसकर बोली—सुरोत्तम, विशाल शरीरवाला, बली और सब का दर्प-चूर्ण करनेवाला एक पुत्र दीजिए ॥१३॥ वायु से प्रबल पराक्रमी महाबाहु भीम उत्पन्न हुए। अतिबली भीम के उत्पन्न होने पर इस प्रकार की आकाशवाणी हुई—यह सब बलधानों में श्रेष्ठ उत्पन्न हुआ है। वृकोदर भीम के उत्पन्न होने के बाद यह बहुत ही अद्भुत बात हुई। उनके शरीर से पत्थर चूर हो गया था। एक दिन कुन्ती बाघ के भय से बहुत घबरा गयी और

पतता तेन शतधा शिला गात्रैर्विचूर्णिता । तां शिलां चूर्णितां दृष्ट्वा पाण्डुर्विस्मयमागतः॥१८॥
यस्मिन्नहनि भीमस्तु जज्ञे भरतसत्तम । दुर्योधनोऽपि तत्रैव प्रजज्ञे वसुधाधिप ॥१९॥
जाते वृकोदरे पाण्डुरिदं भूयोऽन्वचिन्तयत् । कथं नु मे वरः पुत्रो लोकश्रेष्ठो भवेदिति ॥२०॥
दैवे पुरुषकारे च लोकोऽयं सम्प्रतिष्ठतः । तत्र दैवं तु विधना कालयुक्तेन लभ्यते ॥२१॥
इन्द्रो हि राजा देवानां प्रधान इति नः श्रुतम् । अप्रमेयबलोत्साहो वीर्यवानमितद्युतिः ॥२२॥
तं तोषयित्वा तपसा पुत्रं लप्स्ये महाबलम् । यं दास्यति स मे पुत्रं स वरीयान्भविष्यति ॥२३॥
अमानुषान्मानुषाँश्च सङ्ग्रामे स हनिष्यति । कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्तप्स्ये महत्तपः॥२४॥
ततः पाण्डुर्महाराजो मन्त्रयित्वा महर्षिभिः । दिदेश कुन्त्याः कौरव्यो व्रतं साम्वत्सरं शुभम्॥२५॥
आत्मना च महाबाहुरेकपादस्थितोऽभवत् । उग्रं स तप आस्थाय परमेण समाधिना ॥२६॥
आरिराधयिषुर्देवं त्रिदशानां तमीश्वरम् । सूर्येण सह धर्मात्मा पर्यतप्यत भारत ॥२७॥
तं तु कालेन महता वासवः प्रत्यपद्यत ॥

शक्र उवाच— पुत्रं तव प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥२८॥
ब्राह्मणानां गवाञ्चैव सुहृदां चार्थसाधकम् । दुर्हृदां शोकजननं सर्वबान्धवनन्दनम् ॥२९॥

उछल पड़ी । उनकी गोद में भीम सो रहे थे, इसका उन्हें ध्यान नहीं रहा । अतएव वज्र के समान गठीले बदन का वह कुमार पत्थर की एक चट्टान पर गिर पड़ा । उसके गिरने से वह पत्थर की चट्टान चूर हो गयी, यह देखकर राजा पाण्डु को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥१४-१८॥

जिस दिन भीम उत्पन्न हुए, राजन् ! उसी दिन दुर्योधन भी उत्पन्न हुआ ॥१९॥ भीम के उत्पन्न होने पर पाण्डु पुनः इस प्रकार सोचने लगे—लोक में श्रेष्ठ और सब से प्रभावशाली एक पुत्र मेरे कैसे होगा ? ॥२०॥ भाग्य और पुरुषार्थ से लोगों के मनोरथ सिद्ध होते हैं । उचित समय पर और उचित रीति से उद्योग करने पर ही भाग्य भी अनुकूल होता है ॥२१॥ हमलोगों ने सुना है कि इन्द्र देवताओं का प्रधान राजा है । उसके बल और उत्साह का ठिकाना नहीं है । वह बड़ा प्रभावशाली और बड़ा बली है ॥२२॥ उसको तपस्या द्वारा संतुष्ट करके महाबली पुत्र पा सकूँगा । उससे जो पुत्र मुझे मिलेगा, वह अवश्य ही श्रेष्ठ होगा ॥२३॥ वह पुत्र मनुष्य तथा जो मनुष्य नहीं हैं उन सबका संग्राम में बध कर सकेगा । अतएव कर्म, मन और वचन से मैं कठोर तप करूँगा ॥२४॥ अनन्तर, महर्षियों से परामर्श करके राजा पाण्डु ने कुन्ती को एक वर्ष का व्रत रखने का आदेश किया ॥२५॥ महाबाहु पाण्डु स्वयं एक पैर से खड़े होकर और ध्यानमग्न होकर उग्र तपस्या, देवताओं के स्वामी इन्द्र की आराधना के लिए, करने लगे । वे धर्मात्मा पाण्डु सूर्योदय से सूर्यास्त तक तपस्या करने लगे ॥२६-२७॥ बहुत दिनों के बाद देवराज इन्द्र पाण्डु के पास आये और बोले—तुम्हें त्रिलोक में प्रसिद्ध पुत्र मैं दूँगा ॥२८॥ जो ब्राह्मणों, गौओं और मित्रों का मनोरथ पूरा करेगा । शत्रुओं का शोक बढ़ावेगा । अपने समस्त बान्धवों को आनन्दित करेगा ॥२९॥ तुमको मैं

सुतं तेऽग्र्यं प्रदास्यामि सर्वामित्रविनाशनम्। इत्युक्तः कौरवो राजा वासवेन महात्मना ॥३०॥
उवाच कुन्तीं धर्मात्मा देवराजवचः स्मरन्। उदर्कस्तव कल्याणि तुष्टो देवगणेश्वरः ॥३१॥
दातुमिच्छति ते पुत्रं यथासङ्कल्पितं त्वया। अतिमानुषकर्माणं यशस्विनमरिन्दमम् ॥३२॥
नीतिमन्तं महात्मानमादित्यसमतेजसम्। दुराधर्षं क्रियावन्तमतीवाद्भुतदर्शनम् ॥३३॥
पुत्रं जनय सुश्रोणि धाम क्षत्रियतेजसाम्। लब्धः प्रसादो देवेन्द्रात्तमाह्वय शुचिस्मिते ॥३४॥
वैशम्पायन उवाच—
एवमुक्ता ततः शक्रमाजुहाव यशस्विनी। अथाजगाम देवेन्द्रो जनयामास चार्जुनम् ॥३५॥
जातमात्रे कुमारे तु वागुवाचाशरीरिणी। महागम्भीरनिर्घोषा नभो नादयती तदा ॥३६॥
शृण्वतां सर्वभूतानां तेषां चाश्रमवासिनाम्। कुन्तीमाभाष्य विस्पष्टमुवाचेदं शुचिस्मिताम् ॥३७॥
कार्तवीर्यसमः कुन्ति शिवतुल्यपराक्रमः। एष शक्र इवाजय्यो यशस्ते प्रथयिष्यति ॥३८॥
अदित्या विष्णुना प्रीतिर्यथाऽभूदभिवर्धिता। तथा विष्णुसमः प्रीतिं वर्धयिष्यति तेऽर्जुनः ॥३९॥
एष मद्रान्वशे कृत्वा कुरूँश्च सह सोमकैः। चेदिकाशिकरूषाँश्च कुरुलक्ष्मीं वहिष्यति ॥४०॥
एतस्य भुजवीर्येण खाण्डवे हव्यवाहनः। मेदसा सर्वभूतानां तृप्तिं यास्यति वै पराम् ॥४१॥

ऐसा श्रेष्ठ पुत्र दूँगा, जो समस्त शत्रुओं का विनाश करेगा। महात्मा इन्द्र ने जब पाण्डु से ऐसा कहा, तब धर्मात्मा राजा पाण्डु इन बातों को मन में रखकर कुन्ती से इस प्रकार बोले—कल्याणि, तुम्हारा भाग्योदय हुआ, क्योंकि देवराज इन्द्र तुम पर प्रसन्न हुए हैं और वे तुमको तुम्हारे सङ्कल्प के अनुसार मनुष्यों से न होनेवाले काम करनेवाला यशस्वी और शत्रुओं का संहार करनेवाला पुत्र देना चाहते हैं॥३०-३२॥ नीति का पालन करनेवाला, सूर्य-तुल्य तेजस्वी, दुराधर्ष, क्रियावान्, सुन्दर और महात्मा पुत्र उत्पन्न करो, जो क्षात्र तेज का धाम हो, जिससे क्षत्रिय तेज प्रकाशित हो। शुचिस्मिते, इन्द्र ने वर दे दिया है, तुम उनका आवाहन करो॥३३-३४॥

वैशम्पायन बोले—राजा पाण्डु की आज्ञा से यशस्विनी कुन्ती ने इन्द्र का आवाहन किया। इन्द्र ने आकर अर्जुन को उत्पन्न किया॥३५॥ बालक के उत्पन्न होने पर इस प्रकार की आकाशवाणी हुई, जिसके गम्भीर घोष से आकाश प्रतिध्वनित हो गया॥३६॥ समस्त प्राणियों तथा उस पर्वत के आश्रम वासियों को सुनाती हुई वह आकाशवाणी कुन्ती को सम्बोधित करके इस प्रकार हुई॥३७॥ कुन्ती, तुम्हारा यह पुत्र, कार्तवीर्य सहस्रबाहु के समान होगा, शिव के समान पराक्रमी होगा, यह इन्द्र के समान अजेय होगा और तुम्हारा यश फैलावेगा॥३८॥ जिस प्रकार विष्णु से अदिति की प्रसन्नता बढ़ी थी, उसी प्रकार विष्णु-रूप यह अर्जुन तुम्हारी प्रसन्नता बढ़ावेगा॥३९॥ यह मद्र-देशवालों को सोमक-देशवालों के साथ कुरुओं को अधीन बनावेगा, चेदि-करुष और काशीराज्य को जीतकर कुरुवंश की लक्ष्मी बढ़ावेगा॥४०॥ इसकी भुजाओं के प्रताप से खाण्डव वन में समस्त प्राणियों का मेद (चर्बी) खाकर अग्नि खूब तृप्त होंगे॥४१॥ ग्रामपतियों

ग्रामणीश्च महीपालान्वै जित्वा महाबलः । भ्रातृभिः सहितो वीरस्त्रीन्मेधानाहरिष्यति ॥४२॥
जामदग्न्यसमः कुन्ति विष्णुतुल्यपराक्रमः । एष वीर्यवतां श्रेष्ठो भविष्यति महायशाः ॥४३॥
एष युद्धे महादेवं तोषयिष्यति शङ्करम् । अस्त्रं पाशुपतं नाम तस्मात्तुष्टादवाप्स्यति ॥४४॥
निवातकवचा नाम दैत्या विबुधविद्विपः । शक्राज्ञया महाबाहुस्तान्वधिष्यति ते सुतः ॥४५॥
तथा दिव्यानि चास्त्राणि निखिलेनाहरिष्यति । विप्रनष्टां श्रियं चायमाहर्त्ता पुरुषर्षभः ॥४६॥
एतामत्यद्भुतां वाचं कुन्ती शुश्राव सूतके । वाचमुच्चरितामुच्चैस्तां निशम्य तपस्विनाम् ॥४७॥
बभूव परमो हर्षः शतशृंगनिवासिनाम् । तथा देवनिकायानां सेन्द्राणां च दिवौकसाम् ॥४८॥
आकाशे दुन्दुभीनां च बभूव तुमुलः स्वनः । उदतिष्ठन्महाघोषः पुष्पवृष्टिभिरावृतः ॥४९॥
समवेत्य च देवानां गणाः पार्थमपूजयन् । काद्रवेया वैनतेया गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥५०॥
भरद्वाजः कश्यपो गौतमश्च विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः ।
यश्चोदितो भास्करेऽभूत्प्रनष्टे सोऽप्यत्रात्रिर्भगवानाजगाम ॥५१॥
मरीचिरङ्गिराश्चैव पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । दक्षः प्रजापतिश्चैव गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥५२॥
दिव्यमाल्याम्बरधराः सर्वालङ्कारभूषिताः । उपगायन्ति बीभत्सुं नृत्यन्तेऽप्सरसां गणाः ॥५३॥
तथा महर्षयश्चापि जेपुस्तत्र समन्ततः । गन्धर्वैः सहितः श्रीमान्प्रागायत च तुम्बुरुः ॥५४॥

और राजाओं को जीतकर यह वीर अपने भाइयों के साथ तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा ॥४२॥ कुन्ती, पराक्रमियों में श्रेष्ठ यशस्वी तुम्हारा यह पुत्र परशुराम के समान और विष्णु के समान होगा ॥४३॥ यह युद्ध में महादेव शंकर को सन्तुष्ट करेगा और उनसे पाशुपत नामक अस्त्र पावेगा ॥४४॥ देवताओं के शत्रु निवात कवचनामक जो दैत्य हैं, उनको महाबाहु तुम्हारा यह पुत्र इन्द्र की आज्ञा से मारेगा ॥४५॥ और वहां अनेक प्रकार के दिव्य अस्त्र संहार और प्रयोग (रोकना और चलाना) की विधि के साथ पावेगा और यह पुरुषश्रेष्ठ, गये हुये राज्य का पुनः उद्धार करेगा ॥४६॥ यह अद्भुत आकाशवाणी कुन्ती ने सूतिकागृह में सुनी । जोर से कही गयी उस वाणी को सुनकर शतशृङ्ग पर रहनेवाले तपस्वियों को बड़ा आनन्द हुआ । इसी प्रकार इन्द्र आदि देवताओं को भी इस आकाशवाणी से बड़ा आनन्द हुआ ॥४७-४८॥ आकाश में अनेक दुन्दुभियों का तुमुल शब्द हुआ, जो चारो ओर फैल गया, साथ ही पुष्पवृष्टि होने लगी ॥४९॥ देवताओं के समस्त गण ने एकत्र होकर अर्जुन की पूजा की । कद्रू के पुत्र, विनता के पुत्र, गन्धर्व, अप्सराएँ समस्त प्रजापति, सप्तर्षि, भरद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र यमदग्नि, वसिष्ठ और सूर्यास्त होने पर उदित होनेवाले भगवान चन्द्रमा भी आये ॥४९-५१॥ मरीचि अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह क्रतु और दक्ष प्रजापति आये । दिव्य मालाएँ और समस्त आभूषणों से अलंकृत होकर गन्धर्व और अप्सराएँ अर्जुन के पास गाने और नाचने लगीं ॥५२-५३॥ महर्षिगण आकर रक्षामन्त्र का जप करने लगे । गन्धर्वों के साथ श्रीमान् तुम्बरु गाने लगे ॥५४॥ भीमसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु,

भीमसेनोग्रसेनौ च ऊर्णायुरनघस्तथा । गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथाऽष्टमः ॥५५॥
युगपस्तृणपः कार्ष्णिर्नन्दिश्चित्ररथस्तथा । त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः ॥५६॥
कलिः पञ्चदशश्चैव नारदश्चात्र षोडशः । ऋत्वा बृहत्त्वा बृहकः करालश्च महामनाः ॥५७॥
ब्रह्मचारी बहुगुणः सुवर्णश्चेति विश्रुतः । विश्वावसुर्भुमन्युश्च सुचन्द्रश्च शरुस्तथा ॥५८॥
गीतमाधुर्यसम्पन्नौ विख्यातौ च हहाहुहू । इत्येते देवगन्धर्वा जग्मुस्तत्र नराधिप ॥५९॥
तथैवाप्सरसो हृष्टाः सर्वालङ्कारभूषिताः । ननृतुर्वैमहाभागा जगुश्चायतलोचनाः ॥६०॥
अनूचानाऽनवद्या च गुणमुख्या गुणावरा । अद्रिका च तथा सोमा मिश्रकेशी त्वलम्बुषा ॥६१॥
मरीचिः शुचिका चैव विद्युतपर्णा तिलोत्तमा । अम्बिका लक्षणा क्षेमा देवी रम्भा मनोरमा ॥६२॥
असिता च सुबाहुश्च सुप्रिया च वपुस्तथा । पुण्डरीका सुगन्धा च सुरसा च प्रमाथिनी ॥६३॥
काम्या शारद्वती चैव ननृतुस्तत्र सङ्घशः । मेनका सहजन्या च कर्णिका पुञ्जिकस्थला ॥६४॥
ऋतुस्थला धृताची च विश्वाची पूर्वचित्यपि । उम्लोचेति च विख्याता प्रम्लोचेति च ता दश ॥६५॥
ऊर्वश्येकादशी तासां जगुश्चायतलोचनाः । धाताऽर्यमाच मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥६६॥
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च त्वष्टा च सविता तथा । पर्जन्यश्चैव विष्णुश्च आदित्या द्वादश स्मृताः ॥
महिमानं पाण्डवस्य वर्धयन्तोऽम्बरे स्थिताः ॥६७॥
मृगव्याधश्च सर्पश्च निऋतिश्च महायशाः । अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी च परन्तपः ॥६८॥
दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च विशाम्पते । स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रास्तत्रावतस्थिरे ॥६९॥

अनघ, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, युगप, तृण, कार्ष्णि, नन्दी, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्जन्य, कलि, नारद, ऋत्वा, बृहत्त्वा, बृहक, कराल, ब्रह्मचारी बहुगुण, सुवर्ण, विश्वावसु, भुमन्यु, सुचन्द्र, शरु और मधुर गान में प्रसिद्ध हाहा हूहू इतने देव-गन्धर्व हे राजन्! वहाँ आये ॥५५,५९॥ इसी प्रकार सर्वालङ्कारभूषित विशाललोचना अप्सराएँ प्रसन्न होकर वहाँ नाचने और गाने लगीं ॥६०॥ अनूचाना, अनवद्या, गुणमुख्या, गुणावरा, अद्रिका, सोमा, मिश्रकेशी अलम्बुषा, मरीचि, शुचिका, विद्युतपर्णा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा, रम्भा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुप्रिया, वपु, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुरसा, प्रमाथिनी, काम्या और शारद्वती ये दलबद्ध होकर वहाँ नाचने लगीं। मेनका, सहजन्या, कर्णिका, पुंजिकस्थला, ऋतुस्थला, घृताची, विश्वाची, पूर्वचित्ति, उम्लोचा, प्रम्लोचा और उर्वशी ये वहाँ गाने लगीं।

धाता, अर्यमा मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता, पर्जन्य, विष्णु, बारह आदित्य, ये सब आकाश में एकत्र होकर अर्जुन के प्रभाव का वर्णन करने लगे ॥६१,६७॥ मृग, व्याध, सर्प, महायशा निर्ऋति, अज, एकपात्, अतिर्बुध्न, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली स्थाणु, भग और भगवान् रुद्र, ये रुद्र भी वहाँ उपस्थित थे ॥६८,६९॥ दो आश्विन, आठ वसु, महाबली

अश्विनौ वसवश्चाष्टौ मरुतश्च महाबलाः । विश्वेदेवास्तथासाध्यास्तत्रासन्परितः स्थिताः ॥७०॥
कर्कोटकोऽथ सर्पश्च वासुकिश्च भुजङ्गमः । कच्छपश्चाथ कुण्डश्च तक्षकश्च महोरगः ॥७१॥
आयुस्तपसायुक्ता महाक्रोधा महाबलाः । एते चान्ये च बहवस्तत्र नागा व्यवस्थिताः ॥७२॥
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्चासितध्वजः । अरुणश्चारुणिश्चैव वैनतेया व्यवस्थिताः ॥७३॥
ताँश्चदेवगणान्सर्वा स्तपःसिद्धा महर्षयः । विमानगिर्यग्रगतान्ददृशुर्नेतरे जनाः ॥७४॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मिता मुनिसत्तमाः । अधिकां स्म ततो वृत्तिमवर्त्तन्पाण्डवान्प्रति ॥७५॥
पाण्डुस्तु पुनरेवैनां पुत्रलोभान्महायशाः । वक्तुमैच्छद्धर्मपत्नीं कुन्ती त्वेनमथाब्रवीत् ॥७६॥
नातश्चतुर्थं प्रसवमापत्स्वपि वदंत्युत । अतः परं स्वैरिणीस्याद्बंधकी पञ्चमे भवेत् ॥७७॥
स त्वं विद्वन् धर्ममिममधिगम्य कथं नु माम् । अपत्यार्थं समुत्क्रम्य प्रमादादिव भाषसे ॥७८॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि पाण्डवोत्पत्तौ त्रयोविंशत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१२३॥

वैशम्पायन उवाच—

कुन्तीपुत्रेषु जातेषु धृतराष्ट्रात्मजेषु च । मद्रराजसुता पाण्डुं रहो वचनमब्रवीत् ॥१॥

मरुत, विश्वेदेव तथा साध्य भी वहाँ आसपास खड़े थे । कर्कोटक, सर्प, भुजङ्गम, वासुकि, कच्छप, कुण्ड, तक्षक, महाक्रोधी महाबली ये तथा और भी अनेक सर्प वहाँ आये । तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड़, असितध्वज, अरुण, आरुणि, ये सब विनता के पुत्र भी वहाँ आये थे ॥७०-७३॥ पर्वत-शिखर पर विमान में बैठे हुए इन देवताओं को केवल तपःसिद्ध महर्षि ही देख सकते थे ; और लोग नहीं देख सकते थे ॥७४॥

इतने देवताओं का एकत्र होना, यह आश्चर्य व्यापार देखकर मुनियों को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे पाण्डवों पर और अधिक प्रेम रखने लगे ॥७५॥ यशस्वी पाण्डु पुत्र-लोभ से धर्मपत्नी कुन्ती से और पुत्र उत्पन्न कराने के लिए कहना चाहते थे, यह देखकर कुन्ती उनसे बोली ॥७६॥ महाराज, आपत्ति काल में भी चौथा पुत्र उत्पन्न कराने की विधि नहीं है, इसे विद्वान् उचित नहीं समझते । इस प्रकार चौथा पुत्र उत्पन्न करानेवाली स्वैरिणी और पाँचवाँ पुत्र उत्पन्न कराने वाली वन्धकी (वेश्या) कही जाती है ॥७७॥ विद्वन् ! आप तो इस धर्म को जानते हैं, फिर इस धर्म की उपेक्षा करके प्रमादी मनुष्य के समान पुत्र उत्पन्न कराने के लिए क्यों कहते हैं ? ॥७८॥

त्रयोविंशत्यधिक शततम अध्याय ।

अश्विनी कुमारों के द्वारा माद्री के गर्भ से नकुल और सहदेव की उत्पत्ति ; युधिष्ठिर आदि का नाम-करण।

वैशम्पायन बोले—कुन्ती और गान्धारी के पुत्र उत्पन्न होने पर एक दिन माद्री राजा

न मेऽस्ति त्वयि सन्तापो विगुणेऽपि परन्तप । नावरत्वे वरार्हाया: स्थित्वा चानघ नित्यदा ॥२॥
गान्धार्याश्चैव नृपते जातं पुत्रशतं तथा । श्रुत्वा न मे तथा दुःखमभवत्कुरुनन्दन ॥३॥
इदं तु मे महद्दुःखं तुल्यतायामपुत्रता । दिष्ट्या त्विदानीं भर्तुर्मे कुन्त्यामप्यस्ति सन्तति: ॥४॥
यदि त्वपत्यसन्तानं कुन्तिराजसुता मयि । कुर्यादनुग्रहो मे स्यात्तव चापि हितं भवेत् ॥४॥
संरम्भो हि सपत्नीत्वाद्वक्तुं कुन्तिसुतां प्रति । यदि तु त्वं प्रसन्नो मे स्वयमेनां प्रचोदय ॥६॥
पाण्डुरुवाच—
ममाप्येष सदा माद्रि हृद्यर्थः परिवर्त्तते । न तु त्वां प्रसहे वक्तुमिष्टानिष्टविवक्षया ॥७॥
तव त्विदं मतं मत्वा प्रयतिष्याम्यतः परम् । मन्ये ध्रुवं मयोक्ता सा वचनं प्रतिपत्स्यते ॥८॥
वैशम्पायन उवाच—
ततः कुन्तीं पुनः पाण्डुर्विविक्त इदमब्रवीत् । कुलस्य मम सन्तानं लोकस्य च कुरु प्रियम् ॥९॥
मम चापिण्डनाशाय पूर्वेषामपि चात्मनः । मत्प्रियार्थं च कल्याणि कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥१०॥
यशसोऽर्थाय चैव त्वं कुरु कर्म सुदुष्करम् । प्राप्याधिपत्यमिन्द्रेण यज्ञैरिष्टं यशोऽर्थिना ॥११॥
तथा मन्त्रविदो विप्रास्तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् । गुरूनभ्युपगच्छन्ति यशसोऽर्थाय भामिनी ॥१२॥

पाण्डु से एकान्त में बोली॥१॥ परन्तप ! आप पुत्र उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहे, इसका मुझे दुःख नहीं है । हे अनघ ! बड़ी होकर रहने की योग्यता रखने पर भी मैं छोटी हूँ, इसका भी मुझे दुःख नहीं है ॥२॥ हे कुरुनन्दन ! गान्धारी के सौ पुत्र हुए हैं, यह सुनकर भी मुझे दुःख नहीं हुआ ॥३॥ पर इस बात का दुःख मुझे अवश्य है कि दोनों के बराबर होने पर भी कुन्ती के पुत्र हैं और मैं पुत्रहीना हूँ । यह प्रसन्नता की बात है कि कुन्ती के पुत्र हुए, जिनसे आप भी पुत्रवान् हुए ॥४॥ यदि कुन्तिराज की कन्या मेरे भी पुत्र उत्पन्न करा देने की कृपा करें तो उनका बड़ा अनुग्रह हो और इससे आप का भी हित हो ॥५॥ मैं उसकी सौत हूँ, अतएव अभिमान के कारण उससे प्रार्थना न कर सकूँगी । यदि आप मुझ पर प्रसन्न हों, यदि आप मेरी प्रार्थना पूरी करना चाहते हों तो स्वयं आप ही कुन्ती को मेरे लिए प्रेरित करें ॥६॥

पाण्डु बोले—माद्री, यह बात मेरे हृदय में भी पहले से थी । पर मैं तुमसे कह नहीं सका था । मालूम नहीं, तुम इसे क्या समझो, अच्छा या बुरा । इसी कारण मैं तुमसे कह नहीं सका था । अब तुम्हारा अभिप्राय मालूम हो गया । अब मैं इसके लिए प्रयत्न करूँगा । मैं समझता हूँ कि कुन्ती, मेरी कही हुई बात अवश्य मान लेगी ॥८॥

वैशम्पायन बोले—राजा पाण्डु ने कुन्ती से पुनः एकान्त में कहा—मेरा कुल बढ़ाओ और लोक का भी कल्याण करो ॥९॥ शरीर-त्याग के बाद मुझे पिण्ड मिले, पूर्वजों को तथा तुम्हें पिण्ड मिले, इसके लिए तथा मेरे आनन्द के लिए कल्याणि ! तुम उत्तम एक और पुत्र उत्पन्न कराओ ॥१०॥ यश के लिए, कीर्ति-विस्तार के लिए, तुम यह कठोर कर्म करो । इन्द्र ने देवराज्य पाकर भी यश के लिए यज्ञ किया था ॥११॥ मन्त्रज्ञ ब्राह्मण कठोर तपस्या करके भी गुरुओं की

तथा राजर्षयः सर्वे ब्राह्मणाश्च तपोधनाः। चक्रुरुच्चावचं कर्म यशसोऽर्थाय दुष्करम् ॥१३॥
सा त्वं माद्रीं प्लवेनैव तारयैनामनिन्दिते। अपत्यसंविभागेन परां कीर्तिमवाप्नुहि ॥१४॥
वैशम्पायन उवाच—
एवमुक्ताऽब्रवीन्माद्रीं सकृच्चिन्तय दैवतम्। तस्मात्ते भविताऽपत्यमनुरूपमसंशयम् ॥१५॥
ततो माद्री विचार्यैवं जगाम मनसाऽश्विनौ। तावागम्य सुतौ तस्यां जनयामासतुर्यमौ ॥१६॥
नकुलं सहदेवं च रूपेणाप्रतिमौ भुवि। तथैव तावपि यमौ वागुवाचाशरीरिणी ॥१७॥
सत्वरूपगुणोपेतौ भवतोऽत्यश्विनाविति। भासतस्तेजसाऽत्यर्थं रूपद्रविणसम्पदा ॥१८॥
नामानि चक्रिरे तेषां शतशृङ्गनिवासिनः। भक्त्या च कर्मणा चैव तथाऽऽशीर्भिर्विशाम्पते ॥१९॥
ज्येष्ठं युधिष्ठिरेत्येवं भीमसेनेति मध्यमम्। अर्जुनेति तृतीयं च कुन्तीपुत्रानकल्पयन् ॥२०॥
पूर्वजं नकुलेत्येवं सहदेवेति चापरम्। माद्रीपुत्रावकथयँस्ते विप्राः प्रीतमानसाः ॥२१॥
अनुसम्वत्सरं जाता अपि ते कुरुसत्तमाः। पाण्डुपुत्रा व्यराजन्त पञ्च सम्वत्सरा इव ॥२२॥
महासत्वा महावीर्या महाबलपराक्रमाः। पाण्डुर्दृष्ट्वा सुताँस्ताँस्तु देवरूपान्महौजसः ॥२३॥
मुदं परमिकां लेभे ननन्द च नराधिपः। ऋषीणामपि सर्वेषां शतशृङ्गनिवासिनाम् ॥२४॥

आराधना करते हैं, पुनः ज्ञानार्जन करते हैं, यह केवल यश के लिए ही ॥१२॥ इसी प्रकार अनेक राजर्षि और तपस्वी ब्राह्मणों ने यश के लिए अनेक छोटे-बड़े दुष्कर कर्म किये हैं ॥ १३॥ अतएव अनिन्दिते। माद्री के लिए नौका बनकर तुम उसका उद्धार करो, उसके भी पुत्र उत्पन्न कराकर शुद्ध कीर्ति का उपभोग करो ॥१४॥

वैशम्पायन बोले—राजा पाण्डु के कहने से कुन्ती ने माद्री से कहा—किसी एक देवता का ध्यान करके तुम उनका आवाहन करो, उन्हीं देवता के समान तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा ॥१५॥ अनन्तर विचार करके माद्री ने अश्विनीकुमारों का ध्यान किया। आकर उन दोनों ने माद्री के दो यमज पुत्र उत्पन्न किये ॥१६॥ नकुल और सहदेव, ये पृथिवी में सब से अधिक सुन्दर थे। इन दोनों यमजों के जन्म के समय भी उसी प्रकार आकाशवाणी हुई ॥१७॥ बल, रूप और गुण से युक्त ये बालक अश्विनीकुमारों से भी श्रेष्ठ होंगे। रूप, तेज और धन-सम्पत्ति से ये शोभित होंगे ॥१८॥

अनन्तर शतशृङ्ग निवासी मुनियों ने उन बालकों के कर्म तथा अपने मनोरथ के अनुसार उनके अलग-अलग नाम रखे ॥१९॥ बड़े का युधिष्ठिर, मझले का भीमसेन और तीसरे का अर्जुन इसप्रकार कुन्ती के तीनों पुत्रों का नाम-करण किया गया ॥२०॥ माद्री के दोनों पुत्रों में से बड़े का नकुल और छोटे का सहदेव नाम मुनियों ने प्रसन्न होकर रखे ॥२१॥वे पाण्डुपुत्र एक वर्ष से थोड़े ही बड़े हुये थे, पर पाँच वर्ष के समान मालूम पड़ते थे ॥२२॥महाबली,वीर्यवान्, पराक्रमी,ओजस्वी और देवतुल्य सुन्दर उन पुत्रों को देखकर राजा पाण्डु बड़े प्रसन्न हुए। शतशृङ्ग निवासी मुनियों और मुनि-स्त्रियों को वे पाण्डु-पुत्र बड़े प्रिय हो गये। पाण्डु ने माद्री के पुनः पुत्र उत्पन्न कराने के

प्रिया बभूवुस्तासां च तथैव कुलवासिनाम् । कुन्तीमथ पुनः पाण्डुर्माद्र्यर्थे समचोदयत् ॥२५॥
तमुवाच पृथा राजन् रहस्युक्ता तदा सती । उक्ता सकृद्द्वन्द्वमेषा लेभे तेनास्मि वञ्चिता ॥२६॥
बिभेम्यस्याः परिभवात्कुस्त्रीणां गतिरीदृशी । नाज्ञासिषमहं मूढा द्वन्द्वाह्वाने फलद्वयम् ॥२७॥
तस्मान्नाहं नियोक्तव्या त्वयैषोऽस्तु वरो मम । एवं पाण्डोः सुताः पञ्च देवदत्ता महाबलाः ॥२८॥
सम्भूताः कीर्तिमन्तश्च कुरुवंशविवर्धनाः । शुभलक्षणसम्पन्नाः सोमवत्प्रियदर्शनाः ॥२९॥
सिंहदर्पा महेष्वासाः सिंहविक्रान्तगामिनः । सिंहग्रीवा मनुष्येन्द्रा ववृधुर्देवविक्रमाः ॥३०॥
विवर्धमानास्ते तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ । विस्मयं जनयामासुर्महर्षीणां समेयुषाम् ॥३१॥
ते च पञ्चशतं चैव कुरुवंशविवर्धनाः । सर्वे ववृधुरल्पेन कालेनाप्स्विव नीरजः ॥३२॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि पाण्डवोत्पत्तौ
चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥

वैशम्पायन उवाच—
दर्शनीयाँस्ततः पुत्रान् पाण्डुः पञ्च महावने । तान्पश्यन्पर्वते रम्ये स्वबाहुबलमाश्रितः ॥१॥

लिए कुन्ती से कहा ॥२३,२५॥ राजा ने जब कुन्ती से एकान्त में यह बात कही, तब उसने राजा से कहा—महाराज ! मैंने माद्री से एक देवता का आवाहन करने के लिए कहा था, पर उसने दो देवताओं को बुला लिया, और दो पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार उसने मुझे धोखा दिया ॥२६॥ अतएव मैं उससे डर रही हूँ। कहीं मेरा उपकार ही मेरे तिरस्कार का कारण न बन जाय क्योंकि खोटी स्त्रियों का ऐसा ही स्वभाव होता है। मूर्खा मैं ने यह नहीं समझा था कि दो देवताओं के बुलाने का तात्पर्य दो पुत्र उत्पन्न करना है ॥२७॥ अतएव आप मुझे इस विषय में कोई आज्ञा न दें, यही मैं आप से प्रार्थना करती हूँ।

महाराज पाण्डु के देवताओं के दिये पाँच पुत्र हुए। वे पाँचों महाबली, कीर्तिमान् और कुरुवंश को बढ़ानेवाले उत्पन्न हुए थे। उनके सभी लक्षण उत्तम थे और वे चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन थे। वे महाधनुर्धारी सिंह के समान अहंकारी, सिंह के समान पराक्रमी, सिंह के समान चलनेवाले थे और उनका गला सिंह के समान था। वे देव-तुल्य पराक्रमी बढ़ने लगे ॥२८-३०॥ वे पाँचों पाण्डुपुत्र पवित्र हिमवान् पर्वत पर बढ़ने लगे। जो महर्षि वहाँ आते, वे उनको देखकर विस्मित होते ॥३१॥ धृतराष्ट्र के सौ पुत्र और पाँच पाण्डव ये एक सौ पाँच कुरुवंश को बढ़ानेवाले वीर थोड़े ही समय में बढ़ गये, जिस प्रकार कमल जल में बढ़ता है ॥३२॥

चतुर्विंशत्यधिक शततम अध्याय।

राजा पाण्डु की मृत्यु और माद्री का सती होना।

वैशम्पायन बोले—महाराज पाण्डु उस पर्वत के रमणीय बन में अपने सुन्दर पाँचों पुत्रों के साथ रहते थे, उनका सहारा अपनी भुजाओं के अतिरिक्त दूसरा न था, वे अपना सब काम स्वयं

स पुष्पितवने काले कदाचिन्मधुमाधवे। भूतसम्मोहने राजा सभार्यो व्यचरद्वनम् ॥२॥
पलाशैस्तिलकैश्चूतैश्चम्पकैः पारिभद्रकैः। अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैः फलपुष्पसमृद्धिभिः ॥३॥
जलस्थानैश्च विविधैः पद्मिनीभिश्च शोभितम्। पाण्डोर्वनं तत्सम्प्रेक्ष्य प्रजज्ञे हृदि मन्मथः ॥४॥
प्रहृष्टमनसं तत्र विचरन्तं यथाऽमरम्। तं माद्र्यनुजगामैका वसनं बिभ्रती शुभम् ॥५॥
समीक्षमाणः सतु तां वयस्थां तनुवाससम्। तस्य कामः प्रववृते गहनेऽग्निरिवोद्गतम् ॥६॥
रहस्येकां तु तां दृष्ट्वा राजा राजीवलोचनाम्। न शशाक नियन्तुं तं कामं कामवशीकृतः ॥७॥
तत एनां बलाद्राजा निजग्राह रहोगताम्। वार्यमाणस्तया देव्या विस्फुरन्त्या यथाबलम् ॥८॥
स तु कामपरीतात्मा तं शापं नान्वबुध्यत। माद्रीं मैथुनधर्मेण सोऽन्वगच्छद्बलादिव ॥९॥
जीवितान्ताय कौरव्यमन्मथस्य वशंगतः। शापजं भयमुत्सृज्य विधिना सम्प्रचोदितः ॥१०॥
तस्य कामात्मनो बुद्धिः साक्षात्कालेन मोहिता। सम्प्रमथ्येन्द्रियग्रामं प्रनष्टा सह चेतसा ॥११॥
स तया सह सङ्गम्य भार्यया कुरुनन्दनः। पाण्डुः परमधर्मात्मा युयुजे कालधर्मणा ॥१२॥
ततो माद्री समालिङ्ग्य राजानं गतचेतसम्। मुमोच दुःखजं शब्दं पुनः पुनरतीव हि ॥१३॥
सहपुत्रैस्ततः कुन्ती माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ। आजग्मुः सहितास्तत्र यत्र राजा तथागतः ॥१४॥
ततो माद्र्यब्रवीद्राजन्नार्त्ता कुन्तीमिदं वचः। एकैव त्वमिहागच्छ तिष्ठन्त्वत्रैव दारकाः ॥१५॥

करते थे। ऐसे ही अवसर में एक बार वसन्त ऋतु आयी। समस्त वन पुष्पित होगया। उसी प्राणियों को उन्मत्त बनानेवाली ऋतु में राजा पाण्डु स्त्री के साथ वन में घूमने निकले ॥२॥ पलाश, तिलक, आम, चंपक, नीम, तथा अन्य फल-पुष्प से लदे वृक्षों से और कमलवनवाले तालाबों से उस वन की शोभा बढ़ रही थी। उस समय की शोभा देखकर राजा के मन में काम उत्पन्न हुआ ॥३,४॥ राजा प्रसन्न मन से उस वन में भ्रमण कर रहे थे, मानों कोई देवता भ्रमण कर रहा हो। सुन्दर वस्त्र पहने हुई केवल माद्री राजा के साथ भ्रमण कर रही थी ॥५॥ पतले वस्त्रों में युवती माद्री को देखकर राजा का काम और बढ़ा, जिस प्रकार वन में आग बढ़ती है ॥६॥ एकान्त में कमलनयनी माद्री को अकेली पाकर राजा काम न रोक सके, क्योंकि वे काम के वश हो गये थे, सुध-बुध खो चुके थे ॥७॥ राजा ने एकान्त में माद्री को पकड़ लिया, उसने बहुत रोका, बलपूर्वक छटपटाती रही, पर राजा ने पकड़ लिया ॥८॥ राजा काम-वश हो गये थे। अतएव उन्हें शाप का ध्यान न रहा, और बलपूर्वक उन्होंने माद्री से मैथुन किया, केवल प्राण देने के लिए। कामवश होकर वे शाप का भय भूल गये, इसे भाग्य की ही प्रेरणा समझनी चाहिए ॥१०॥ कामवश राजा की बुद्धि काल से नष्ट हो गयी थी, जिसने इन्द्रियों को मथकर उनकी विचारशक्ति को नष्ट कर दिया था ॥११॥ कुरुनन्दन धर्मात्मा राजा पाण्डु माद्री के साथ समागम करके मर गये ॥१२॥ अनन्तर माद्री राजा के मृत शरीर को पकड़कर दुःख से बार-बार विलाप करने लगी ॥१३॥ जहाँ राजा का मृत शरीर पड़ा था, वहाँ कुन्ती अपने तथा माद्री के पुत्रों को लेकर आयी ॥१४॥ उस समय दुःखिनी माद्री ने कुन्ती से कहा—तुम अकेली ही यहाँ आओ, बालकों को वहीं रहने दो ॥१५॥ माद्री के कहने के

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्यास्तत्रैवाधाय दारकान् । हताऽस्मीति विक्रुश्य सहसैवाजगाम सा ॥१६॥
दृष्ट्वा पाण्डुं च माद्रीं च शयानौ धरणी तले । कुन्ती शोकपरीताङ्गी विललाप सुदुःखिता ॥१७॥
रक्ष्यमाणो मया नित्यं वीरः सततमात्मवान् । कथं त्वामत्यतिक्रान्तः शापं जानन्वनौकसः ॥१८॥
ननु नाम त्वया माद्रि रक्षितव्यो नराधिपः । सा कथं लोभितवती विजने त्वं नराधिपम् ॥१९॥
कथं दीनस्य सततं त्वामासाद्य रहोगताम् । तं विचिन्तयतः शापं प्रहर्षः समजायत ॥२०॥
धन्या त्वमसि बाल्हीकि मत्तो भाग्यतरा तथा । दृष्टवत्यसि यद्वक्रं प्रहृष्टस्य महीपतेः ॥२१॥
माद्रयुवाच—
विलपन्त्या मया देवि वार्यमाणेन चासकृत् । आत्मा न वारितोऽनेन सत्यं दिष्टं चिकीर्षुणा ॥२२॥
कुन्त्युवाच—
अहं ज्येष्ठा धर्मपत्नी ज्येष्ठं धर्मफलं मम । अवश्यं भाविनो भावान्मा मां माद्रि निवर्तय ॥२३॥
अन्विष्यामीह भर्तारमहं प्रेतवशं गतम् । उत्तिष्ठ त्वं विसृज्यैनमिमान्पालय दारकान् ॥२४॥
माद्रयुवाच—
अहमेवानुयास्यामि भर्तारमपलायिनम् । नहि तृप्ताऽस्मि कामानां ज्येष्ठा मामनुमन्यताम॥२५।

अनुसार बालकों को वहीं छोड़कर और "हाय मैं लुट गयी" कहकर विलाप करती हुई कुन्ती वहाँ शीघ्र ही आ गयी ॥१६॥ माद्री और राजा को पृथिवी पर पड़े देखकर कुन्ती शोक में डूब गयी, वह बड़ी ही दुःखिनी होकर विलाप करने लगी ॥१७॥

कुन्ती बोली—इन वीर और जितेन्द्रिय राजा की मैं सदा रक्षा किया करती थी, वनवासी का शाप जानते हुए भी इन्होंने तुम्हारे साथ बलात्कार क्यों किया ? ॥१८॥ माद्री, तुम्हें तो राजा की रक्षा करनी चाहिए थी, उनको रोकना चाहिए था, फिर तुमने एकान्त में ले जाकर क्यों इनका काम भड़काया ? क्यों हाव-भाव आदि से इनको प्रलोभित किया ? ॥१९॥ उस शाप के विचार से राजा सदा दुखी रहा करते थे, फिर तुमको वन में एकान्त में पाकर उन्हें हर्ष (कामवासना) कैसे हुआ ॥२०॥ हे वाह्लीकराजपुत्री, तुम्हीं धन्य हो और मुझसे भाग्यशालिनी हो, क्योंकि तुमने अन्त समय में राजा का प्रसन्न मुख देखा ॥२१॥

माद्री बोली—देवी, मैंने बार-बार रोका, विलाप किया, पर इन्होंने अपना चित्त स्थिर न किया, मालूम होता था कि ये आज भाग्य की रेख सत्य ही करना चाहते हों ॥२२॥

कुन्ती बोली—मैं राजा की प्रधान रानी हूँ, पटरानी हूँ, अतएव प्रधान धर्म-फल भी मुझे ही मिलना चाहिए। यों भी मुझे एक दिन मरना ही है, अतएव माद्री, तुम मुझे मेरे निश्चय से न रोको। राजा के साथ मुझे सती होने दो ॥२३॥ मृतपति का मैं अनुसरण करूँगी, इनके साथ प्राणत्याग करके मैं भी स्वर्ग जाऊँगी। तुम उठो, और राजा को छोड़कर उन बालकों को देखो, उनको सँभालो ॥२४॥ माद्री बोली—ये राजा फिर लौटने के लिए नहीं गये हैं, अतएव मैं ही

मां चाभिगम्य क्षीणोऽयं कामाद्भरतसत्तमः । तमुच्छिद्यामस्य कामं कथंनु यमसादने ॥२६॥
न चाप्यहं वर्तयन्ती निर्विशेषं सुतेषु ते । वृत्तिमार्ये चरिष्यामि स्पृशेदेनस्तथा च माम् ॥२७॥
तस्मान्मे सुतयोः कुन्ति वर्तितव्यं स्वपुत्रवत् । मां च कामयमानोऽयं राजा प्रेतवशं गतः॥२८॥
राज्ञः शरीरेण सह ममापीदं कलेवरम् । दग्धव्यं सुप्रतिच्छन्नमेतदार्ये प्रियं कुरु ॥२९॥
दारकेष्वप्रमत्ता च भवेथाश्च हिता मम । अतोऽन्यन्न प्रपश्यामि संदेष्टव्यं हि किंचन ॥३०॥
वैशम्पायन उवाच–
इत्युक्त्वा तं चिताग्निस्थं धर्मपत्नी नरर्षभम् । मद्रराजसुता तूर्णमन्वारोहद्यशस्विनी ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि पाण्डुपरमे
पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

वैशम्पायन उवाच—
पाण्डोरुपरमं दृष्ट्वा देवकल्पा महर्षयः । ततो मंत्रविदः सर्वे मंत्रयांचक्रिरे मिथः ॥१॥

इनके साथ जाऊँगी । अभी काम से मेरी तृप्ति नहीं हुई है । आप बड़ी हैं इसलिए आप मुझे अपना मनोरथ पूरा करने की आज्ञा दें ॥२५॥ कामवश होकर मेरे साथ सम्भोग करने ही के कारण इन भरतवंशी श्रेष्ठ राजा की मृत्यु हुई है । अतएव यमलोक में मैं इनकी काम-पिपासा को अतृप्त कैसे रहने दूँगी ? मैं वहाँ जाकर इनकी कामवासना पूरी करूँगी । एक और बात है, यदि मैं तुम्हारे पुत्रों के साथ अपने पुत्रों के समान व्यवहार न कर सकी तो इस असमान आचरण का अपराध भी मुझको लगेगा ॥२७॥ अतएव कुन्ती ! तुम्हीं मेरे पुत्रों का भी अपने पुत्रों के समान पालन करना । महाराज का अन्त मेरे ही कारण हुआ है । मुझ में कामासक्त होने के कारण ही इनकी मृत्यु हुई है, अतएव आर्ये, इनके शरीर के साथ मेरा शरीर भी जला दो, मेरा यह गुप्त अभिलाष पूरा करो ॥२८-२९॥ बालकों के लिए सावधान रहना, इनका पालन करके तुम मेरा हित कर सकोगी । इसके अतिरिक्त और कोई बात मैं नहीं देखती जो कहूँ । बस, मेरा इतना ही सन्देश है ॥३०॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार कहकर मद्रराज की कन्या यशस्विनी धर्मपत्नी ने उस चिता में प्रवेश किया, जिसमें महाराज पाण्डु का शरीर था ॥३१॥

पञ्चविंशत्यधिक शततम अध्याय ।

ऋषियों के साथ पाण्डवों का हस्तिनापुर जाना ।

वैशम्पायन बोले—राजा पाण्डु की मृत्यु का समाचार पाकर वेदज्ञ और देवतुल्य महर्षि एकत्र होकर परस्पर परामर्श करने लगे ॥१॥

तापसा ऊचुः—

हित्वा राज्यं च राष्ट्रं च स महात्मा महायशाः। अस्मिन् स्थाने तपस्तप्त्वा तापसान् शरणंगतः॥२॥
स जातमात्रान्पुत्रान्श्चदारान्श्च भवतामिह । प्रादायोपनिधिं राजा पाण्डुः स्वर्गमितो गतः॥३॥
तस्येमानात्मजान्देहं भार्यां च सुमहात्मनः । स्वराष्ट्रं गृह्य गच्छामो धर्म एष हि नः स्मृतः॥४॥

वैशम्पायन उवाच–

ते परस्परमामंत्र्य देवकल्पा महर्षयः । पाण्डोः पुत्रान्पुरस्कृत्य नगरं नागसाह्वयम् ॥५॥
उदारमनसः सिद्धा गमने चक्रिरे मनः । भीष्माय पाण्डवान्दतुं धृतराष्ट्राय चैव हि ॥६॥
तस्मिन्नेव क्षणे सर्वे तानादाय प्रतस्थिरे । पाण्डोर्दारांश्च पुत्रांश्च शरीरे ते च तापसाः ॥७॥
सुखिनी सा पुरा भूत्वा सततं पुत्रवत्सला । प्रपन्ना दीर्घमध्वानं संक्षिप्तं तदमन्यत ॥८॥
सात्वदीर्घेण कालेन संप्राप्ता कुरुजांगलम् । वर्धमानपुरद्वारमाससाद यशस्विनी ॥९॥
द्वारिणं तापसा ऊचू राजानं च प्रकाशय । ते तु गत्वा क्षणेनैव सभायां विनिवेदिताः ॥१०॥
ते चारणसहस्राणां मुनीनामागमं तदा । श्रुत्वा नागपुरे नृणां विस्मयः समपद्यत ॥११॥
मुहूर्तोदित आदित्ये सर्वे बालपुरस्कृताः । सदारास्तापसान्द्रष्टुं निर्ययुः पुरवासिनः ॥१२॥

तपस्वी बोले—यशस्वी महात्मा पाण्डु राज्याधिकार और देश छोड़कर यहाँ आये थे, और आपलोगों की शरण में रहकर तपस्या करते थे। वे महाराज पाण्डु अपना सर्वस्व, छोटे-छोटे बच्चे और अपनी महारानी को आपलोगों के आश्रय में छोड़कर यहाँ से स्वर्ग चले गये हैं ॥२,३॥ उन राजा के इन पुत्रों, स्त्री तथा उनके शरीर को लेकर हमलोग उन महात्मा के देश में चलें, क्योंकि हमलोगों का यही धर्म है। इन राज पुत्रों को इनके परिवारवालों को सौंप देना ही हमारा धर्म है ॥४॥

वैशम्पायन बोले—देवतुल्य वे महर्षि इस प्रकार परस्पर विचार करके पाण्डु के पुत्रों को साथ लेकर हस्तिनापुर चले। उदारचेता वे सिद्ध पाण्डवों को भीष्म और धृतराष्ट्र के पास पहुँचा देना चाहते थे ॥५,६॥ उसी समय पाण्डु के पुत्रों, उनकी स्त्री कुन्ती और उन दोनों के शरीर लेकर वे चले ॥७॥ पुत्रों पर प्रेम रखनेवाली कुन्ती को महर्षियों के इस निर्णय से प्रसन्नता हुई। अतएव लम्बा रास्ता चलने पर भी उन्होंने उसे थोड़ा ही समझा अर्थात् अपने राज्य में आने के और पुत्रों के लिए उचित प्रबन्ध होने के आनन्द से उन्हें मार्ग का कष्ट नहीं मालूम पड़ा ॥८॥ बहुत शीघ्र ही वे कुरुजाङ्गल देश में आयीं और वहाँ से चलकर यशस्विनी कुन्ती हस्तिनापुर के नगर-द्वार पर पहुँच गयी ॥९॥ तपस्वियों ने द्वारपालों से कहा कि इनलोगों के आने का संवाद राजा से जाकर कहो। द्वारपालों ने शीघ्र ही यह संवाद राजसभा में सुनायी ॥१०॥ द्वारपालों ने हजार चारणों के साथ मुनियों के आने का समाचार कहा, इस समाचार से हस्तिनापुर के निवासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥११॥ दो घड़ी दिन चढ़ते-चढ़ते सभी नगरवासी स्त्रियों और बालकों को लेकर तपस्वियों का दर्शन करने के लिए निकले ॥१२॥

स्त्रीसंघाः क्षत्रसंघाश्च यानसंघसमास्थिताः। ब्राह्मणैः सह निर्जग्मुर्ब्राह्मणानां च योषितः ॥१३॥
तथा विट्शूद्रसंघानां महान्व्यतिकरोऽभवत्। न कश्चिदकरोदीर्ष्यामभवन्धर्मबुद्धयः ॥१४॥
तथा भीष्मः शान्तनवः सोमदत्तोऽथ वाल्हिकः। प्रज्ञाचक्षुश्च राजर्षिः क्षता च विदुरः स्वयम् ॥१५॥
सा च सत्यवती देवी कौसल्या च यशस्विनी। राजदारैः परिवृता गांधारी चापि निर्ययौ ॥१६॥
धृतराष्ट्रस्य दायादा दुर्योधनपुरोगमाः। भूषिता भूषणैश्चित्रैः शतसंख्या विनिर्ययुः ॥१७॥
तान्महर्षिगणान्दृष्ट्वा शिरोभिरभिवाद्य च। उपोपविविशुः सर्वे कौरव्याः सपुरोहिताः ॥१८॥
तथैव शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च। उपोपविविशुः सर्वे पौरजानपदा अपि ॥१९॥
तमकूजमभिज्ञाय जनौघं सर्वशस्तदा। पूजयित्वा यथान्यायं पाद्येनार्घ्येण च प्रभो ॥२०॥
भीष्मो राज्यं च राष्ट्रं च महर्षिभ्यो न्यवेदयत्। तेषामथो वृद्धतमः प्रत्युत्थाय जटाजिनी ॥
ऋषीणां मतमाज्ञाय महर्षिरिदमब्रवीत् ॥२१॥
यः स कौरव्यदायादः पाण्डुर्नामनराधिपः। कामभोगान्परित्यज्य शतशृंगमितो गतः ॥२२॥
ब्रह्मचर्यव्रतस्थस्य तस्य दिव्येन हेतुना। साक्षाद्धर्मादयं पुत्रस्तत्र जातो युधिष्ठिरः ॥२३॥
तथैनं बलिनां श्रेष्ठं तस्य राज्ञो महात्मनः। मातरिश्वा ददौ पुत्रं भीमं नाम महाबलम् ॥२४॥
पुरुहूतादयं जज्ञे कुन्त्यामेव धनञ्जयः। यस्य कीर्तिर्महेष्वासान्सर्वानभिभविष्यति ॥२५॥

स्त्रियों और क्षत्रियों का समूह अपने-अपने रथ पर बैठकर चला। ब्राह्मण की स्त्रियाँ ब्राह्मणों के साथ चलीं ॥१३॥ इसी प्रकार वैश्य और शूद्रों का दल भी चला। इन सब के कारण बड़ी भीड़ हो गयी। पर इनमें किसी की किसी पर ईर्षा न थी। मैं आगे बढ़ जाऊँ, आदि भावों के कारण किसी का किसी के ऊपर द्वेष न था, सभी धर्मयुक्त होकर जा रहे थे ॥१४॥ शान्तनु पुत्र भीष्म, सोमदत्त, वाल्हिक, प्रज्ञाचक्षु, धृतराष्ट्र, देवी सत्यवती, यशस्विनी कौसल्या और गान्धारी, राज-परिवार की अन्य स्त्रियों को साथ ले कर चलीं ॥१५-१६॥ दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के सौ पुत्र, भूषणों से भूषित होकर चले ॥१७॥ उन तपस्वियों को देखकर कौरवों ने सिर से उनलोगों को प्रणाम किया और वे अपने पुरोहितों के साथ उनके पास बैठ गये ॥१८॥ पृथिवी पर सिर रखकर पुरवासियों ने भी प्रणाम किया और वे भी वहीं बैठ गये ॥१९॥ जब वह जनसमुदाय शान्त हो गया, कोलाहल शान्त हो गया, तब विधिपूर्वक अर्घ्य और पाद्य से पूजा करके भीष्म ने राज्य तथा देश का वृत्तान्त महर्षियों से कह सुनाया। अनन्तर उन तपस्वियों में के सब से बूढ़े जटामृगचर्मधारी एक ऋषि अन्य ऋषियों का अभिप्राय जानकर इस प्रकार बोले ॥२०,२१॥ कौरवों के दायाद (धन का अधिकारी) राजा पाण्डु काम-भोगका त्याग करके यहाँ से शतशृङ्ग पर्वत पर गये थे ॥२२॥ वे राजा वहाँ ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहते थे, अतएव दिव्य कारणों से साक्षात् धर्मराज से यह युधिष्ठिर नामका पुत्र उन्हें हुआ ॥२३॥ अनन्तर उस महात्मा राजा को वायु ने भीम नामक बली दूसरा पुत्र दिया ॥२४॥ यह तीसरा पुत्र धनंजय इन्द्र से कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ, यह धनुर्धारियों में श्रेष्ठ होगा और इसकी कीर्ति से अन्य धनुर्धारियों की कीर्ति छिप जायगी ॥२५॥

यौ तु माद्री महेष्वासावसूत कुरुपुङ्गवौ । अश्विभ्यां पुरुषव्याघ्राविमौ तावपि पश्यत ॥२६॥
चरता धर्मनित्येन वनवासं महात्मना । नष्टः पैतामहो वंशः पाण्डुना पुनरुद्धृतः ॥२७॥
पुत्राणां जन्मवृद्धिं च वैदिकाध्ययनानि च । पश्यन्तः सततं पाण्डोः परां प्रीतिमवाप्स्यथ ॥२८॥
वर्त्तमानः सतां वृत्ते पुत्रलाभमवाप्य च । पितृलोकं गतः पाण्डुरितः सप्तदशेऽहनि ॥२९॥
तं चितागतमाज्ञाय वैश्वानरमुखे हुतम् । प्रविष्टा पावकं माद्री हित्वा जीवितमात्मनः ॥०३॥
सा गता सहते नैव पतिलोकमनुव्रता । तस्यास्तस्य च यत्कार्यं क्रियतां तदनन्तरम् ॥३१॥
इमे तयोः शरीरे द्वे पुत्राश्चेमे तयोर्वराः । क्रियाभिरनुगृह्यन्तां सह मात्रा परन्तपाः ॥३२॥
प्रेतकार्ये निवृत्ते तु पितृमेधं महायशाः । लभतां सर्वधर्मज्ञः पाण्डुः कुरुकुलोद्वहः ॥३३॥
वैशम्पायन उवाच—
एवमुक्त्वा कुरून्सर्वान्कुरूणामेव पश्यताम् । क्षणेनान्तर्हिताः सर्वे तापसा गुह्यकैः सह ॥३४॥
गन्धर्वनगराकारं तथैवान्तर्हितं पुनः । ऋषिसिद्धगणं दृष्ट्वा विस्मयं ते परं ययुः ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ऋषिसंवादे
षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

माद्रीने दो श्रेष्ठ पुत्र अश्विन-कुमारों से उत्पन्न किये थे। ये भी बड़े धनुर्धारी होंगे। इन्हें भी आपलोग देखें ॥२६॥ धर्म को ही प्रधान समझनेवाले यशस्वी पाण्डु ने वनवास के समय अपने पूर्वजों के नष्ट होते हुए वंश को बचा लिया ॥२७॥॥ पाण्डु के इन पुत्रों का महत्वपूर्ण जन्म इनकी उन्नति और इनका वैदिक ज्ञान देखकर आपलोग बड़े प्रसन्न होंगे ॥२८॥ सज्जनों के समान आचरण करते हुए पुत्र पाकर राजा पाण्डु आज से सत्रहवें दिन स्वर्गलोक चले गये ॥२९॥ राजा का शरीर चिता पर रखा गया, वह अग्नि के मुख में हवि के रूप में डाला गया, यह जानकर माद्री ने भी प्राण-त्याग किया और चिता में प्रवेश किया ॥३०॥ पतिव्रता माद्री अपने पति के साथ उनके लोक को चली गयी। इसके अनन्तर राजा पाण्डु और महारानी माद्री के लिए जो कुछ करना हो, वह आपलोग करें ॥३१॥ ये उन दोनों के शरीर हैं ये उनके श्रेष्ठ पुत्र हैं, इन पर तथा इनकी माता पर उचित व्यवहार करने की आपलोग कृपा करें ॥३२॥ प्रेत-संस्कार कर लेने पर आपलोग पितृमेध कीजिएगा, क्योंकि सर्वधर्मज्ञ राजा पाण्डु कुरुकुल के प्रधान थे ॥३३॥

वैशम्पायन बोले—समस्त कौरवों के सामने कौरवों से इस प्रकार कहकर वे ऋषि चारणों के साथ शीघ्र ही एक क्षण में ही वहाँ से अन्तर्धान हो गये ॥३४॥ गन्धर्व-नगर के समान उन सिद्ध-ऋषियों का एक क्षण में ही अन्तर्धान होना देखकर वे सब नगरवासी बहुत विस्मित हुए। आकाश-नगर को गन्धर्व-नगर कहते हैं। यह कभी-कभी आकाश में दीख पड़ता है और शीघ्र ही लय हो जाता है। इसका दिखाई पड़ना अशुभ सूचक है ॥३५॥

षड्विंशत्यधिक शततम अध्याय।

धृतराष्ट्र उवाच—

पाण्डोर्विदुर सर्वाणि प्रेतकार्याणि कारय । राजवद्राजसिंहस्य माद्र्याश्चैव विशेषतः ॥१॥
पशून्वासांसि रत्नानि धनानि विविधानिच । पाण्डोः प्रयच्छ माद्र्याश्च येभ्यो यावच्च वाञ्छितम् ॥२॥
यथा च कुन्ती सत्कारं कुर्यान्माद्र्यास्तथा कुरु । यथा न वायुर्नादित्यः पश्येतां तां सुसंवृताम् ॥३॥
न शोच्यः पाण्डुरनघः प्रशस्यः स नराधिपः । यस्य पञ्च सुता वीरा जाताः सुरसुतोपमाः ॥४॥

वैशम्पायन उवाच—

विदुरस्तं तथेत्युक्त्वा भीष्मेण सह भारत । पाण्डुं संस्कारयामास देशे परमपूजिते ॥५॥
ततस्तु नगरात्तूर्णमाज्यगन्धपुरस्कृताः । निर्हृताः पावका दीप्ताः पाण्डो राजन्पुरोहितैः ॥६॥
अथैनामार्तवैः पुष्पैर्गन्धैश्च विविधैर्वरैः । शिबिकां तामलङ्कृत्य वाससाऽऽच्छाद्य सर्वशः ॥७॥
तां तथा शोभितां माल्यैर्वासोभिश्च महाधनैः । अमात्या ज्ञातयश्चैनं सुहृदश्चोपतस्थिरे ॥८॥
नृसिंहं नरयुक्तेन परमालङ्कृतेन तम् । अवहन् यानमुख्येन सह माद्र्या सुसंवृतम् ॥९॥
पाण्डुरेणातपत्रेण चामरव्यजनेन च । सर्ववादित्रनादैश्च समलञ्चक्रिरे ततः ॥१०॥
रत्नानि चाप्युपादाय बहूनि शतशो नराः । प्रददुःकाङ्क्षमाणेभ्यःपाण्डोस्तस्यौर्ध्वदेहिके ॥११॥
अथ छत्राणि शुभ्राणि चामराणि बृहन्ति च । आजह्रुःकौरवस्यार्थे वासांसि रुचिराणि च ॥१२॥

पाण्डु का श्राद्ध । सत्यवती का वन गमन । राजकुमारों की बालक्रीड़ा । भीमसेन का नागलोक गमन
और वहां वासुकि की कृपा से, अमृत पान ।

धृतराष्ट्र बोले—विदुर, राजसिंह पाण्डु के सभी प्रेत संस्कार राजाओं के समान करवाओ, माद्री का संस्कार और अधिकता से करवाओ ॥१॥ पशु वस्त्र, रत्न और विविध धन पाण्डु और माद्री के लिए दो, जो जितना चाहे, उसको उतना दो ॥२॥ कुन्ती माद्री का संस्कार जैसा करना चाहे वैसी व्यवस्था कर दो, और उसके शव को इस प्रकार ढक के रखो जिससे कि वायु और सूर्य भी उसे न देख सकें ॥३॥ निष्पाप और प्रशंसनीय राजा पाण्डु शोचनीय नहीं है, क्योंकि देव-कुमारों के समान उनके पाँच पुत्र वर्तमान हैं ॥४॥

वैशम्पायन बोले—विदुर ने भीष्म के साथ राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से, पाण्डु का संस्कार बहुत ही पवित्र स्थान में कराया ॥५॥ राजा पाण्डु के अग्निहोत्र के अग्नि को राजपुरोहित वहाँ ले आये । उन अग्नियों से घी की गन्ध फैल रही थी॥६॥ ताजे और सुगन्धित ऋतु के पुष्पों से एक पालकी सजायी गयी और एक वस्त्रसे वह चारों ओर ढक दी गयी ॥७॥ पुष्प मालाएँ और बहुमूल्य वस्त्रों से सजी उस पालकी के पास सचिव और ज्ञाति के लोग आये और उस पालकी पर राजा पाण्डु और माद्री का शव उन लोगों ने रखा, जो खूब ढँका हुआ था, उस पालकी को लेकर सैकड़ों मनुष्य चले जो खूब सजे हुए थे ॥८-९॥ श्वेत छत्र, चामर और पंखा ये राज चिन्ह लेकर मनुष्य साथ चले, सब तरह के बाजे बजाते हुए साथ चले ॥१०॥ सैकड़ों मनुष्य बहुत सा रत्न लेकर साथ चलते थे और वे उनको रत्न देते जाते थे जो चाहते थे। श्वेत छत्र, बड़े-बड़े चंवर तथासुन्दर वस्त्र राजा पाण्डु के लिए दिये गये॥१२॥ शुक्ल वस्त्र पहने हुए पुरोहित अग्नि में हवन करते

याजकैः शुक्लवासोभिर्हूयमाना हुताशनाः । अगच्छन्नग्रतस्तस्य दीप्यमानाः स्वलङ्कृताः ॥१३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव सहस्रशः । रुदन्तः शोकसन्तप्ता अनुजग्मुर्नराधिपम् ॥१४॥
अयमस्मानपाहाय दुःखे चाधाय शाश्वते । कृत्वा चास्माननाथाँश्च क्व यास्यति नराधिपः॥१५॥
क्रोशन्तः पाण्डवाः सर्वे भीष्मो विदुर एव च । रमणीये वनोद्देशे गङ्गातीरे समे शुभे ॥१६॥
न्यासयामासुरथ तां शिबिकां सत्यवादिनः । सभार्यस्य नृसिंहस्य पाण्डोरक्लिष्टकर्मणः ॥१७॥
ततस्तस्य शरीरं तु सर्वगन्धाधिवासितम् । शुचिकालीयकादिग्धं दिव्यचन्दनरूषितम् ॥१८॥
पर्यषिञ्चन् जलेनाशु शातकुम्भमयैर्घटैः । चन्दनेन च शुक्लेन सर्वतः समलेपयन् ॥१९॥
कालागुरुविमिश्रेण तथा तुङ्गरसेन च । अथैनं देशजैः शुक्लैर्वासोभिः समयोजयन् ॥२०॥
सञ्छन्नः स तु वासोभिर्जीवन्निव नराधिपः । शुशुभे स नरव्याघ्रो महार्हशयनोचितः ॥२१॥
याजकैरभ्यनुज्ञाते प्रेतकर्मण्यनुष्ठिते । घृतावसिक्तं राजानं सह माद्र्या स्वलङ्कृतम् ॥२२॥
तुङ्गपद्मकमिश्रेण चन्दनेन सुगन्धिना । अन्यैश्च विविधैर्गन्धैर्विधिना समदाहयन् ॥२३॥
ततस्तयोः शरीरे द्वे दृष्ट्वा मोहवशं गता । हा हा पुत्रेति कौसल्या पपात सहसा भुवि ॥२४॥
तां प्रेक्ष्य पतितामार्तां पौरजानपदो जनः । रुरोद दुखसन्तप्तो राजभक्त्या कृपाऽन्वितः॥२५॥

हुए राजा के शव के आगे-आगे जा रहे थे ॥१३॥ हजारों ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र विलाप करते हुए राजा के शव के पीछे पीछे जा रहे थे ॥१४॥ वे लोग विलाप करते हुए कहते थे—राजा हम लोगों का त्याग करके सदा हम लोगों को दुःख भोगने के लिए छोड़ गये। हम लोगों को अनाथ छोड़ कर राजा कहां गये ॥१५॥ पांचों पाण्डव भीष्म और विदुर रोते रोते राजा के शव के साथ गये।

अनन्तर बन के रमणीय प्रदेश में गङ्गा तीर पर समतल भूमि पर सत्यवादी पाण्डवों ने वह पालकी रखवायी, जिसमें धर्मात्मा नरसिंह राजा पाण्डु का शव उनकी स्त्री के शव के साथ था ॥१६-१७॥ उनका शरीर सुगन्ध पदार्थों से सुगन्धित किया गया था, अगर तथा दिव्य चन्दन उसमें लगाया गया था ॥१८॥ उस शरीर को सोने के घड़ों के जल से स्नान कराया और उसमें श्वेत चन्दन लगाया और तुङ्ग (एक सुगन्ध द्रव्य) रस युक्त अगरु उसके शरीर में लगाया गया, अनन्तर देशी शुक्ल वस्त्र उन्हें पहनाया गया ॥१९-२०॥ वस्त्र आदि पहनाने के अनन्तर वे बहुमूल्य पलंग पर सोनेवाले राजा जीवित के समान मालूम होने लगे ॥२१॥ अनन्तर पुरोहितों के द्वारा प्रेतकर्म कराये जाने पर राजा और माद्री के शरीर में घी लगाया गया, तुङ्ग पद्मक और चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्य उनके शरीर में लगाये गये, अनन्तर उन दोनों का दाह हुआ ॥२२-२३॥ उन दोनों माद्री और राजा के शरीरों को जलते देख कर हा पुत्र हा पुत्र कहती हुई कौशल्या मूर्च्छित हो कर पृथिवी पर गिर पड़ीं ॥२४॥ दुःखिनी रानी का पृथिवी पर गिरना देखकर पुरवासी भी रोने लगे, वे राजभक्ति तथा दया परवश होने के कारण बहुत ही दुःखी हुए ॥२५॥

कुन्त्याश्चैवार्तनादेन सर्वाणि च विचुक्रुशः । मानुषैः सह भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥२६॥
तथा भीष्मः शान्तनवो विदुरश्च महामतिः । सर्वशः कौरवाश्चैव प्राणदन् भृशदुखिताः ॥२७॥
ततो भीष्मोऽथ विदुरो राजा च सह पाण्डवैः । उदकं चक्रिरे तस्य सर्वाश्च कुरुयोषितः ॥२८॥
चुक्रुशुः पाण्डवाः सर्वे भीष्मः शान्तनवस्तथा । विदुरो ज्ञातयश्चैव चक्रुश्चाप्युदकक्रियाः ॥२९॥
कृतोदकाँस्तानादाय पाण्डवाञ्छोककर्शितान् । सर्वाः प्रकृतयो राजन्शोचमाना न्यवारयन्॥३०॥
यथैव पाण्डवा भूमौ सुषुपुः सह बान्धवैः । तथैव नागरा राजन् शिश्यिरे ब्राह्मणादयः॥३१॥
तद्गतानन्दमस्वस्थमाकुमारमहृष्टवत् । बभूव पाण्डवैःसार्धं नगरं द्वादश क्षपाः ॥३२॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुदाहे
सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः कुन्ती च राजा च भीष्मश्च सह बन्धुभिः । ददुः श्राद्धं तदा पाण्डोः स्वधामृतमयं तदा ॥१॥
कुरूंश्च विप्रमुख्यांश्च भोजयित्वा सहस्रशः । रत्नौघान्विप्रमुख्येभ्यो दत्वा ग्रामवराँस्तथा ॥२॥
कृतशौचांस्ततस्तांस्तु पाण्डवान् भरतर्षभान् । आदाय विविशुः सर्वे पुरं वारणसाह्वयम् ॥३॥
सततं स्मानुशोचन्तस्तमेव भरतर्षभम् । पौरजानपदाः सर्वे मृतं स्वमिव बान्धवम् ॥४॥

कुन्ती का आर्तविलाप सुनकर सभी मनुष्य ही नहीं, किन्तु पशु पक्षी भी रोने लगे ॥२६॥ भीष्म विदुर, राजा धृतराष्ट्र और पाण्डव भी अत्यन्त दुःखी हो कर रोए ॥२७॥ इसके अनन्तर भीष्म विदुर राजा धृतराष्ट्र और पाण्डव इन सब लोगों ने राजा पाण्डु को जल दिया, कुरु स्त्रियों ने भी जल दिया ॥२८॥ पाण्डव भीष्म विदुर तथा अन्य बान्धवों ने राजा के लिए विलाप किया और जल दिया ॥२९॥ जल देने के पश्चात् शोक से अत्यन्त विह्वल पाण्डवों को राज्य के कर्मचारी और प्रजा के मुखियों ने समझाया-बुझाया, शोक न करने के लिए कहा ॥३०॥ जिस प्रकार बान्धवों के साथ पाण्डवों ने भूमि पर शयन किया, उसी प्रकार राजन्, ब्राह्मण आदि नगर वासियों ने भी भूमि पर शयन किया । इस प्रकार बारह रात तक हस्तिनापुर में बालक से लेकर बूढ़े तक समस्त नगर आनन्दहीन और दुखी बना रहा ॥३१-३२॥

सप्तविंशत्यधिक शततम अध्याय ।

वैशम्पायन बोले—अनन्तर, कुन्ती धृतराष्ट्र और भीष्म ने राजा पाण्डु को पिण्ड दिया, जो स्वधा के साथ दिये जाने के कारण अमृत के समान स्वादिष्ट था ॥१॥ हजारों ब्राह्मणों और कुरुओं को भोजन कराया गया और ब्राह्मणों को रत्नराशि तथा बड़े बड़े गांव दिये गये ॥२॥ अशौच समाप्त होजाने पर भरतश्रेष्ठ पाण्डवों को लेकर सब लोग हस्तिनापुर में गये ॥३॥ वे समस्त पुरवासी अपने मृतबान्धव के समान राजा के लिए सदा शोक करते रहे ॥४॥ श्राद्ध

श्राद्धावसाने तु तदा दृष्ट्वा तं दुःखितं जनम् । संमूढां दुःखशोकार्तां व्यासो मातरमब्रवीत् ॥५॥
अतिक्रान्तसुखाः कालाः पर्युपस्थितदारुणाः । श्वः श्वः पापिष्ठदिवसाः पृथिवी गतयौवना ॥६॥
बहुमायासमाकीर्णो नानादोषसमाकुलः । लुप्तधर्मक्रियाचारो घोरः कालो भविष्यति ॥७॥
कुरूणामनयाच्चापि पृथिवी न भविष्यति । गच्छ त्वं योगमास्थाय युक्ता वस तपोवने ॥८॥
माद्राक्षीस्त्वं कुलस्यास्य घोरं संक्षयमात्मनः । तथेति समनुज्ञाय सा प्रविश्याब्रवीत्स्नुषाम् ॥९॥
अम्बिके तव पौत्रस्य दुर्नयात्किल भारताः । सानुबन्धा विनङ्क्ष्यन्ति पौराश्चैवेति नःश्रुतम् ॥१०॥
तत्कौसल्यामिमामार्त्तां पुत्रशोकाभिपीडिताम् । वनमादाय भद्रं ते गच्छामि यदि मन्यसे ॥११॥
तथेत्युक्ता त्वम्बिकया भीष्ममामन्त्र्य सुव्रता । वनं ययौ सत्यवती स्नुषाभ्यां सह भारत ॥१२॥
ताः सुघोरं तपस्तप्त्वा देव्यो भरतसत्तम । देहं त्यक्त्वा महाराज गतिमिष्टां ययुस्तदा ॥१३॥
अथाप्तवन्तो वेदोक्तान्संस्कारान्पाण्डवास्तदा । संव्यवर्धन्त भोगाँस्ते भुञ्जानाः पितृवेश्मनि ॥१४॥

वैशम्पायन उवाच—

धार्तराष्ट्रैश्च सहिताः क्रीडन्तो मुदिताः सुखम् । बालक्रीडासु सर्वासु विशिष्टास्तेजसाऽभवन् ॥१५॥
जवे लक्ष्याभिहरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे । धार्तराष्ट्रान्भीमसेनः सर्वान्स परिमर्दति ॥१६॥

समाप्त होने पर महर्षि व्यासदेव ने एक दिन आकर इन समस्त दुखी मनुष्यों को देखा । उन्होंने अपनी माता सत्यवती को दुःख के कारण मूढ़ बनी हुई और अत्यन्त व्याकुल देखा और वे उनसे इस प्रकार बोले ॥५॥ माता, सुख के दिन चले गये, अब तो बड़े भयंकर दिन आनेवाले हैं । अब तो आज से कल और कल से परसों पाप बढ़ता जायगा, पृथिवी भी फल पुष्प शून्य हो रही है ॥६॥ अब आगे का समय बड़ा भयंकर होगा, अनेक तरह के छल कपट होंगे, तरह तरह के अपराध होंगे, धर्म और सदाचार का लोप होगा ॥७॥ कुरुवंशियों के अन्याय से पृथिवी का नाश होगा । अतएव अब तुम तपोवन में जाकर योगसाधन करो ॥८॥ जिससे तुम्हें अपने इस कुल का भयंकर नाश अपनी आंखों न देखना पड़े । सत्यवती ने व्यास की सलाह मान ली और वे पुत्रवधू अम्बिका के पास गयीं और बोलीं ॥९॥ अम्बिके, तुम्हारे पोतों के अपराध से इस समस्त भरतवंश का और नगरवासियों का भी नाश होगा ऐसा हमने सुना है ॥१०॥ अतएव यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं पुत्रशोक पीड़ित कौशल्या को लेकर वन में जाकर रहूँ । तुम्हारा कल्याण हो ॥११॥ अम्बिका की सम्मति मिल जाने पर सत्यवती भीष्म से पूँछकर अपनी पुत्रवधुओं के साथ बन चली गयीं ॥१२॥ उन देवियों ने वहाँ बन में जाकर घोर तपस्या की और शरीर त्याग करके उत्तम गति पायी ॥१३॥

वैशम्पायन बोले—पाण्डवों के यथासमय वेदोक्त संस्कार कराये गये, वे पिता के घर में सुखभोग करते हुए बढ़ने लगे ॥१४॥ धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ वे प्रसन्नतापूर्वक खेलते और खुश होते थे । पाण्डव तेजस्वी थे, इससे खेलों में इन्हींकी जीत होती थी ॥१५॥ दौड़ने में, लक्ष्य वेध

हर्षात्प्रक्रीडमानाँस्तान् गृह्य राजन्निलीयते । शिरःसु विनिगृह्यैतान्योधयामास पाण्डवैः ॥१७॥
शतमेकोत्तरं तेषां कुमाराणां महौजसाम् । एक एव निगृह्णाति नातिकृच्छ्राद्वृकोदरः ॥१८॥
कचेषु च निगृह्यैतान्विनिहत्य बलाद्बली । चकर्ष क्रोशतो भूमौ घृष्टजानुशिरोंसकान् ॥१९॥
दश बालान् जले क्रीडन् भुजाभ्यां परिगृह्य सः । आस्ते स्म सलिले मग्नो मृतकल्पान्विमुञ्चति ॥२०॥
फलानि वृक्षमारुह्य विचिन्वन्ति च ते यदा । तदा पादप्रहारेण भीमः कम्पयते द्रुमान् ॥२१॥
प्रहारवेगाभिहता द्रुमा व्याघूर्णितास्ततः । सफलाः प्रपतन्ति स्म द्रुतं त्रस्ताः कुमारकाः ॥२२॥
न ते नियुद्धे न जवे न योग्यासु कदाचन । कुमारा उत्तरं चक्रुः स्पर्धमाना वृकोदरम् ॥२३॥
एवं स धार्त्तराष्ट्रांश्च स्पर्धमानो वृकोदरः । अप्रियेऽतिष्ठदत्यन्तं बाल्यान्न द्रोहचेतसा ॥२४॥
ततो बलमतिख्यातं धार्त्तराष्ट्रः प्रतापवान् । भीमसेनस्य तज्ज्ञात्वा दुष्टभावमदर्शयत् ॥२५॥
तस्य धर्मादपेतस्य पापानि परिपश्यतः । मोहादैश्वर्यलोभाच्च पापा मतिरजायत ॥२६॥
अयं बलवतां श्रेष्ठः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः । मध्यमः पाण्डुपुत्राणां निकृत्या स निगृह्यताम् ॥२७॥
प्राणवान्विक्रमी चैव शौर्येण महतान्वितः । स्पर्धते चापि सहितानस्मानेको वृकोदरः ॥२८॥

करने में, खाने में, धूल इकट्ठा करने में अकेला भीमसेन धृतराष्ट्र के पुत्रों को हरा देता था ॥१६॥ धृतराष्ट्र के लड़के आनन्द से आपस में खेलते रहते, उस समय भीष्म आता और उनको पकड़ कर छिप जाता या उनका सिर पकड़ कर उन्हें पाण्डवों से लड़ा देता ॥१७॥ राजा धृतराष्ट्र के एक सौ एक पुत्र थे और वे पराक्रमी भी थे, पर उनको एक भीमसेन अनायास पकड़ लेता था, हरा देता था ॥ १८ ॥ बली भीमसेन उनके बाल पकड़ कर मारता और जमीन में पटककर खींचता था, जिससे उनके घुटने, माथा और कन्धे छिल जाते थे और वे चिल्लाने लगते थे ॥१६॥ जल में खेलते-खेलते वह दस लड़कों को पकड़ लेता था और उनको लेकर जल में डूब जाता था, और जब वे मृतक-तुल्य हो जाते थे, तब वह उन्हें छोड़ता था ॥२०॥ जब वे लड़के पेड़ पर चढ़कर फल तोड़ने लगते थे, तब भीम पैरों से मार-मारकर उस पेड़ को कँपा देता था ॥२१॥ भीम की लातों की मार से पेड़ हिलने लगते थे और उस पर चढ़े लड़के डरकर फल के साथ पेड़ पर से गिर पड़ते थे ॥२२॥ ये धृतराष्ट्र के पुत्र कुश्ती में, दौड़ में भीम की बराबरी नहीं कर सकते थे, वे उनकी बराबरी करना चाहते थे, तो भी भीमसेन से हार जाते थे ॥२३॥ इस प्रकार भीमसेन धृतराष्ट्र के पुत्रों से स्पर्धा रखने के कारण उनके अप्रिय हो गये । पर भीमसेन उनसे जो कुछ करते थे, वह बाल-चाञ्चल्य के कारण करते थे, द्रोह से नहीं करते थे ॥२४॥ अनन्तर प्रतापी धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन भीमसेन का वह प्रसिद्ध बल देखकर उनसे द्वेष रखने लगा, उनके प्रति दुष्टता रखने लगा ॥२५॥ दुर्योधन की बुद्धि धर्म की ओर न थी, वह सदा पाप ही सोचा करता था, अतएव अज्ञान के कारण, तथा ऐश्वर्य के लोभ के कारण उसकी बुद्धि ही पापिनी हो गयी, अर्थात् पाण्डवों की, विशेषकर भीम की बुराई करने की बात सोचने लगा ॥२६॥ यह कुन्ती का बेटा मझला पाण्डव भीमसेन बड़ा बली है, अतएव इसे छल से दण्ड देना चाहिए ॥२७॥

तं तु सुप्तं पुरोद्याने गङ्गायां प्रक्षिपामहे । अथ तस्मादवरजं श्रेष्ठं चैव युधिष्ठिरम् ॥२९॥
प्रसह्य बन्धने बद्ध्वा प्रशासिष्ये वसुन्धराम् । एवं स निश्चयं पापः कृत्वा दुर्योधनस्तदा
नित्यमेवान्तरप्रेक्षी भीमस्यासीन्महात्मनः ॥३०॥
ततो जलविहारार्थं कारयामास भारत । चैलकंबलवेश्मानि विचित्राणि महान्ति च ॥३१॥
सर्वकामैः सुपूर्णानि पताकोच्छ्रायवन्ति च । तत्र सञ्जनयामास नानागाराण्यनेकशः ॥३२॥
उदकक्रीडनं नाम कारयामास भारत । प्रमाणकोट्यां तं देशं स्थलं किञ्चिदुपेत्य ह ॥३३॥
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च चोष्यं लेह्यमथापि च । उपपादितं नरैस्तत्र कुशलैः सूदकर्मणि ॥३४॥
न्यवेदयँस्तत्पुरुषा धार्तराष्ट्राय वै तदा । ततो दुर्योधनस्तत्र पाण्डवानाह दुर्मतिः ॥३५॥
गङ्गां चैवानुयास्याम उद्यानवनशोभिताम् । सहिता भ्रातरः सर्वे जलक्रीडामवाप्नुमः ॥३६॥
एवमस्त्विति तं चापि प्रत्युवाच युधिष्ठिरः । ते रथैर्नगराकारैर्देशजैश्च गजोत्तमैः ॥३७॥
निर्ययुर्नगराच्छूराः कौरवाः पाण्डवैः सह । उद्यानवनमासाद्य विसृज्य च महाजनम् ॥३८॥
विशन्तिस्म सदा वीराः सिंहा इव गिरेर्गुहाम् । उद्यानमभिपश्यन्तो भ्रातरः सर्व एव ते ॥३९॥
उपस्थानगृहैः शुभ्रैर्वलभीभिश्च शोभितम् । गवाक्षकैस्तथाजालैर्यन्त्रैः साञ्चारिकैरपि ॥४०॥

वह बली, पराक्रमी और बड़ा भारी शूर है, और वह अकेला एक भीम ही हम सबलोगों के साथ स्पर्धा रखता है ॥२८॥ यह जब कभी बाग में सो जाय, तब हमलोग इसे उठाकर गंगा में फेंक दें। अनन्तर उसके छोटे भाई अर्जुन और बड़े युधिष्ठिर को बलपूर्वक बाँधकर हम पृथिवी का शासन करेंगे। इस प्रकार निश्चय करके वह पापी दुर्योधन बराबर भीमसेन के लिए अवसर की ताक में रहने लगा ॥२९,३०॥

अनन्तर दुर्योधन ने जल-विहार के छल से कपड़े और कम्बल के बड़े-बड़े घर बनवाये, ये घर बड़े ही सुन्दर बनाये गये थे ॥३१॥ इन घरों में सभी आवश्यक चीज़ें वर्तमान थीं, ऊँची पताका लगी थी, इस प्रकार उसने वहाँ अनेक घर बनवाये। प्रमाणकोटि नामक गंगा के घाट पर आधे जल और आधे स्थल में जल-क्रीड़ा के लिए उसने मकान बनवाये। पाक-विद्या में चतुर मनुष्यों ने वहाँ भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य आदि भोजन बनाकर तयार रखे थे, ये सब सामग्रियाँ उनलोगों ने दुर्योधन के सामने रखीं। मूर्ख दुर्योधन ने उस समय पाण्डवों से कहा ॥३२,३५॥ उद्यान और वन से शोभित गङ्गा-तीर पर हमलोग चलें और वहाँ सब भाई मिलकर जल-क्रीड़ा करें ॥३६॥ युधिष्ठिर ने "अच्छा" कहकर दुर्योधन की बात मान ली। नगर के समान बड़े रथों, देशी बड़े-बड़े हाथियों पर चढ़ कर शूर कौरव, पाण्डवों के साथ नगर से चले। उद्यान-वन में जाकर दुर्योधन ने साथ की भीड़ को लौटा दिया ॥३७-३८॥ उद्यान देखने के लिए उन सब भाइयों ने वहाँ प्रवेश किया, मानो सिंह गुफा में प्रवेश कर रहे हों। वहाँ उपस्थान गृह (भेंट करने का घर) बराण्डे, खिड़कियाँ, झरोखे, जलयन्त्र और भ्रमण के स्थान से वहाँ के बने घर शोभित थे, शिल्पीने उसे चूने से पोत दिया था और चित्रकारों ने चित्रित कर दिया था। तालाब भरे हुए थे।

सम्मार्जितं सौधकारैश्चित्रकारैश्च चित्रितम्। दीर्घिकाभिश्च पूर्णाभिस्तथा पुष्करिणीभिर्हि ॥४१॥
जलं तच्छुशुभेच्छन्नं फुल्लैर्जलरुहैस्तथा। उपच्छन्ना वसुमती तथा पुष्पैर्यथर्तुकैः ॥४२॥
तत्रोपविष्टास्ते सर्वे पाण्डवाः कौरवाश्च ह। उपच्छन्नान्बहून्कामांस्ते भुञ्जन्ति ततस्ततः ॥४३॥
अथोद्यानवरे तस्मिंस्तथा क्रीडागताश्च ते। परस्परस्य वक्त्रेभ्यो ददुर्भक्ष्याँस्ततस्ततः ॥४४॥
ततो दुर्योधनः पापस्तद्भक्ष्ये कालकूटकम्। विषं प्रक्षेपयामास भीमसेनजिघांसया ॥४५॥
[illegible] चैवाथ हृदयेन क्षुरोपमः। स वाचामृतकल्पश्च भ्रातृवच्च सुहृद्यथा ॥४६॥
स्वयं प्रक्षिपते भक्ष्यं बहु भीमस्य पापकृत्। प्रतीक्षितं स्म भीमेन तं वै दोषमजानता ॥४७॥
ततो दुर्योधनस्तत्र हृदयेन हसन्निव। कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते पुरुषाधमः ॥४८॥
ततस्ते सहिताः सर्वे जलक्रीडामकुर्वत। पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च तदा मुदितमानसाः ॥४९॥
क्रीडावसाने ते सर्वे शुचिवस्त्राः स्वलङ्कृताः। दिवसांते परिश्रान्ता विहृत्य च कुरूद्वहाः ॥५०॥
विहारावसथेष्वेव वीरा वासमरोचयन्। खिन्नस्तु बलवान् भीमो व्यायम्याभ्यधिकं तदा ॥५१॥
वाहयित्वा कुमाराँस्तानजलक्रीडागतांस्तदा।प्रमाणकोट्यां वासार्थी सुष्वापावाप्य तत्स्थलम्॥५२॥
शीतं वातं समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः। विषेण च परीताङ्गो निश्चेष्टः पाण्डुनन्दनः ॥५३॥
ततो बद्ध्वा लतापाशैर्भीमं दुर्योधनः स्वयम्। मृतकल्पं तदा वीरं स्थलाज्जलमपातयत् ॥५४॥

उनमें कमल लगे हुए थे, उनमें का स्वच्छ जल विकसित कमलों से ढक गया था। इसी प्रकार ऋतु के पुष्पों से पृथिवी भी ढक गयी थी ॥३९-४२॥ वहाँ सभी कौरव और पाण्डव बैठे और इधर-उधर के शब्द सुनने तथा दृश्य देखने लगे ॥४३॥ उस श्रेष्ठ उद्यान में वे बालक क्रीड़ा करने लगे। एक-दूसरे के मुँह में अपने मुँह से भोजन देने लगा ॥४४॥ अनन्तर पापी दुर्योधन ने उस भोजन में भयंकर विष भीमसेन को मारने के लिए मिला दिया ॥४५॥ वह दुर्योधन भीतर छुरी रखता था और मुँह में अमृत। वह मारना चाहता था और मीठा बोलता था। उस पापी ने भीमसेन के सामने बहुतसा अन्न, स्वामी तथा मित्र के भाव से रख दिया। भीमसेन ने भी वह अन्न खा लिया, क्योंकि उन्हें दुर्योधन के पाप का पता न था ॥४६-४७॥ पुरुषाधम दुर्योधन मन-ही-मन हँसता हुआ अपने को कृतार्थ समझने लगा। उसने समझा कि भीमसेन को मार डालने से मेरा मनोरथ पूरा हुआ ॥४८॥ अनन्तर वे सभी कौरव और पांडव प्रसन्नचित्त होकर जल-क्रीड़ा करने लगे ॥४९॥ क्रीड़ा के अन्त में उन सबने श्वेत वस्त्र पहने, गहने पहने। सन्ध्या हो गयी थी, जल-विहार से वे थक गये थे, अतएव वहीं विहार-स्थान में ही उनलोगों ने उसदिन रहने का विचार किया। बली भीमसेन अधिक परिश्रम के कारण बहुत अधिक थक गके थे, वे खिन्न हो गये थे ॥५०-५१॥ जल-क्रीड़ा करनेवाले कुमारों को गंगा-तीर से उद्यान भवन में भेज दिया, क्योंकि वे स्वयं गङ्गा-तीर पर ही रह जाना चाहते थे, अतएव वहीं स्थान ढूँढकर वे सो गये ॥५२॥ वे थक गये थे, बेहोश हो रहे थे, ठण्ढी हवा लगने से वे वहीं सो गये। उनके समस्त शरीर में जहर फैल गया था और वे निश्चेष्ट हो गये थे ॥५३॥ उस समय स्वयं दुर्योधन ने लता-पाश से उन्हें बाँधा और उसने

स निःसंज्ञो [illegible] वै पाण्डवोऽविशत् । आक्रामन्नागभवने तदा नागकुमारकान् ॥५५॥
ततः समेत्य बहुभिस्तदा नागैर्महाविषैः । अदश्यत भृशं भीमो महादंष्ट्रैर्विषोल्वणैः ॥५६॥
ततोऽस्य दश्यमानस्य तद्विषं कालकूटकम् । हतं सर्पविषेणैव स्थावरं जङ्गमेन तु ॥५७॥
दंष्ट्राश्च दंष्ट्रिणां तेषां मर्मस्वपि निपातिताः । त्वचं नैवास्य बिभिदुः सारत्वात्पृथुवक्षसः ॥५८॥
ततः प्रबुद्धः कौन्तेयः सर्वं सञ्छिद्य बन्धनम् । पोथयामास तान्सर्वान्केचिद्भीताः प्रदुद्रुवुः ॥५९॥
हतावशेषा भीमेन सर्वे वासुकिमभ्ययुः । ऊचुश्च सर्पराजानं वासुकिं वासवोपमम् ॥६०॥
अयं नरो वै नागेन्द्र ह्यप्सु बद्धा प्रवेशितः । यथा च नो मतिर्वीर विषपीतो भविष्यति ॥६१॥
निश्चेष्टोऽस्माननुप्राप्तः स च दष्टोऽन्वबुध्यत । ससंज्ञश्चापि संवृत्तश्छित्वा बन्धनमाशु नः ॥६२॥
पोथयन्तं महाबाहुं त्वं वै तं ज्ञातुमर्हसि । ततो वासुकिरभ्येत्य नागैरनुगतस्तदा ॥६३॥
पश्यतिस्म महाबाहुं भीमं भीमपराक्रमम् । आर्यकेण च दृष्टः स पृथाया आर्यकेण च ॥६४॥
तदा दौहित्रदौहित्रः परिष्वक्तःसुपीडितम् । सुप्रीतश्चाभवत्तस्य वासुकिः स महायशाः॥६५॥
अब्रवीत्तं च नागेन्द्रःकिमस्य क्रियतां प्रियम् । धनौघो रत्ननिचयो वसु चास्य प्रदीयताम् ॥६६॥
एवमुक्तस्तदा नागो वासकिं प्रत्यभाषत । यदि नागेन्द्र तुष्टोऽसि किमस्य धनसञ्चयैः ॥६७॥

मृत-तुल्य वीर भीम को स्थल से जल में फेंक दिया ॥५४॥ उसी बेहोशी की दशा में भीमसेन जल के भीतर चले गये और नागलोक में जाकर पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर इनके शरीर से कई नाग-कुमार दब गये ॥५५॥ वहाँ अनेक जहरीले साँप इकट्ठे हुए और उनलोगों ने अपने जहरीले दाँतों से भीमसेन को खूब काटा ॥५६॥ उन जहरीले साँपों के काटने से भीम का विषप्रकोप जाता रहा, स्थावर विष जंगम विष से दब गया ॥५७॥ दाढ़वाले सर्पों ने भीमसेन के मर्मस्थानों में अपनी दाढ़ गड़ायी, पर वह गड़ न सकी, उनका चाम छिद न सका, क्योंकि विशालवक्ष भीम का चाम बड़ा पुष्ट था ॥५८॥ भीमसेन जब होश में आये तब उन्होंने सब बन्धन तोड़ डाले। फिर वे उन सर्पों को पकड़कर मसलने लगे, कई डरकर वहाँ से भाग गये ॥५९॥ जो सर्प भीम की मार से बच रहे थे, वे सभी वासुकि के पास गये और सर्प-राज इन्द्र-तुल्य वासुकि से वे इस प्रकार बोले ॥६०॥ राजेन्द्र, वह मनुष्य बाँधकर जल में छोड़ दिया गया था। हमलोग समझते हैंकि उसने विष पिया होगा ॥६१॥ क्योंकि वह जब आया था, तब निश्चेष्ट था, बिलकुल बेहोश था, जब हम-लोगों ने उसे काटा तब वह होश में आया। होश में आकर उसने लता बन्धन तोड़ दिया और हम लोगों को मारने लगा। आप चलकर उसे देखिए और पहचानिए कि वह कौन है? वासुकि नागों को साथ लेकर वहाँ आये ॥६२-६३॥ वहां उन्होंने भीम-पराक्रम भीमसेन को देखा। नागराज आर्यक ने भी उनको देखा, जो कुन्ती का नाना था ॥६४॥ आर्यक ने अपने दौहित्र के दौहित्र का गाढ़ आलिङ्गन किया, यशस्वी वासुकि भी भीमसेन पर प्रसन्न हुए ॥६५॥ वासुकि ने आर्यक से कहा—इसकी प्रसन्नता के लिए क्या किया जाय? बहुत सा धन-रत्न सोना-चाँदी आदि इसे दिया जाय ॥६६॥ आर्यक ने कहा—नागराज यदि आप प्रसन्न ही हैं तो धन आदि देने से इसको क्या

क्व गतो भविता मातर्नेह पश्यामि तं शुभे। उद्यानानि वनं चैव विचितानि समन्ततः ॥६॥
तदर्थं न च तं वीरं दृष्टवन्तो वृकोदरम्। मन्यमानास्ततः सर्वे यातो नः पूर्वमेव सः ॥७॥
आगताः स्म महाभागे व्याकुलेनान्तरात्मना। इहागम्य क्व नु गतस्त्वया वा प्रेषितः क्व नु ॥८॥
कथयस्व महाबाहुं भीमसेनं यशस्विनी। नहि मे शुध्यते भावस्तं वीरं प्रति शोभने ॥९॥
यतः प्रसुप्तं मन्येऽहं भीमं नेति हतस्तु सः। इत्युक्ता च ततः कुन्ती धर्मराजेन धीमता ॥१०॥
हाहेति कृत्वा सम्भ्रान्ता प्रत्युवाच युधिष्ठिरम्। न पुत्र भीमं पश्यामि न मामभ्येत्यसाविति ॥११॥
शीघ्रमन्वेषणे यत्नं कुरु तस्यानुजैः सह। इत्युक्त्वा तनयं ज्येष्ठं हृदयेन विदूयता ॥१२॥
क्षत्तारमानाय्य तदा कुन्ती वचनमब्रवीत्। क्व गतो भगवन् क्षत्तर्भीमसेनो न दृश्यते ॥१३॥
उद्यानान्निर्गताः सर्वे भ्रातरो भ्रातृभिः सह। तत्रैकस्तु महाबाहुर्भीमो नाभ्येति मामिह ॥१४॥
न च प्रीणयते चक्षुःसदा दुर्योधनस्य सः। क्रूरोऽसौ दुर्मतिःक्षुद्रो राज्यलुब्धोऽनपत्रपः ॥१५॥
निहन्यादपि तं वीरं जातमन्युः सुयोधनः। तेन मे व्याकुलं चित्तं हृदयं दह्यतीव च ॥१६॥
विदुरउवाच—
मैवं वदस्व कल्याणि शेषसंरक्षणं कुरु। प्रत्यादिष्टो हि दुष्टात्मा शेषेऽपि प्रहरेत्तव ॥१७॥
दीर्घायुषस्तव सुता यथोवाच महामुनिः। आगमिष्यति ते पुत्रः प्रीतिं चोत्पादयिष्यति ॥१८॥

आया है ॥५॥ वह कहाँ गया? यहाँ भी मैं उसे नहीं देखता हूँ। उद्यान में और बन में हमने उसे खूब ढूँढ़ लिया है ॥६॥ वहाँ खूब ढूँढ़ लेने पर भी हमलोगों ने भीमसेन को नहीं देखा, तब हमलोगों ने समझा कि वह पहले ही यहाँ चला आया है ॥७॥ पर महाभागे! हमारा चित्त बहुत व्याकुल हो रहा है। भीमसेन यहाँ आकर कहाँ गया? क्या आपने उसे किसी काम के लिए भेजा है? ॥८॥ यशस्विनी! महाबाहु भीमसेन का पता बताओ, उस वीर के लिए मेरे मन में अनेक तरह की शंकायें हो रही हैं ॥९॥ मैं नहीं समझता हूँ कि अभी तक भीम कहीं सो रहा होगा, किन्तु अवश्य वह मारा गया होगा। धर्मराज बुद्धिमान् युधिष्ठिर की बातें सुनकर कुन्ती भय से घबरा गयी और हाहाकार करके वह उनसे बोली—बेटा! मैं भी भीमसेन को नहीं देखती। वह मेरे पास नहीं आया है ॥१०,११॥ भाइयों के साथ उसको ढूँढ़ने का प्रयत्न शीघ्र करो। कुन्ती का हृदय फट रहा था, उसने युधिष्ठिर से ऐसा कहकर विदुर को बुलवाया और उनसे कहा—मैं भीमसेन को नहीं देखती हूँ। भगवन्! वह कहाँ गया ॥१२-१३॥ उद्यान से सभी भाई साथ ही चले हैं; और सब पहुँच गये, पर भीमसेन मेरे पास नहीं आया ॥१४॥ दुर्योधन की आँखों को वह सदा खटकता रहता है। राज्यलोभी मूर्ख दुर्योधन क्रूर है, ओछा है और निर्लज्ज है। वह क्रोध में आकर भीमसेन को मार भी सकता है। इससे मेरा चित्त बहुत व्याकुल है। मेरा हृदय जल रहा है ॥१५-१६॥

विदुर बोले—कल्याणि! ऐसा न कहो। जो पुत्र बच रहे हैं, उनकी रक्षा करो। दुर्योधन दुष्ट है। यदि दुर्योधन से भीमसेन के वध के विषय में कुछ पूछा जायगा तो वह अवश्य ही तुम्हारे अन्य पुत्रों की भी हानि करेगा, इनको भी मार डालेगा ॥ १७ ॥ महामुनि

एवमुक्त्वा ययौ विद्वान् विदुरः स्वं निवेशनम् । कुन्ती चिन्तापरा भूत्वा सहासीना सुतैर्गृहे ॥१९॥
ततोऽष्टमे तु दिवसे प्रत्यबुद्धयत पाण्डवः । तस्मिंस्तदा रसे जीर्णे सोऽप्रमेयबलो बली ॥२०॥
तं दृष्ट्वा प्रतिबुद्धयन्तं पाण्डवं ते भुजङ्गमाः । सान्त्वयामासुरव्यग्रा वचनं चेदमब्रुवन् ॥२१॥
यत्ते पीतो महाबाहो रसोऽयं वीर्यसम्भृतः । तस्मान्नागायुतबलो रणेऽधृष्यो भविष्यसि ॥२२॥
गच्छाद्य त्वं च स्वगृहं स्नातो दिव्यैरिमैर्जलैः । भ्रातरस्तेऽनुतप्यन्ति त्वां विना कुरुपुङ्गव ॥२३॥
ततः स्नातो महाबाहुः शुचिः शुक्लाम्बरस्रजः । ततो नागस्य भवने कृतकौतुकमङ्गलः ॥२४॥
ओषधीभिर्विषघ्नीभिः सुरभीभिर्विशेषतः । भुक्तावान्परमान्नं च नागैर्दत्तं महाबलः ॥२५॥
पूजितो भुजगैर्वीर आशीर्भिश्चाभिनन्दितः । दिव्याभरणसंछन्नो नागानामन्त्र्य पाण्डवः ॥२६॥
उदतिष्ठन्महृष्टात्मा नागलोकादरिन्दमः । उत्क्षिप्तः स तु नागेन जलाज्जलरुहेक्षणः ॥२७॥
तस्मिन्नेव वनोद्देशे स्थापितः कुरुनन्दनः । ते चान्तर्दधिरे नागाः पाण्डवस्यैव पश्यतः ॥२८॥
तत उत्थाय कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः । आजगाम महाबाहुर्मातुरन्तिकमञ्जसा ॥२९॥
ततोऽभिवाद्य जननीं ज्येष्ठं भ्रातरमेव च । कनीयसः समाघ्राय शिरःस्वरिविमर्दनः ॥३०॥

व्यास के कहने के अनुसार तुम्हारे पुत्र दीर्घायु हैं, भीमसेन लौट आवेगा और तुम्हें प्रसन्न करेगा ॥१८॥

वैशम्पायन बोले—कुन्ती को इस प्रकार समझा कर विदुर अपने घर चले गये। कुन्ती, पुत्रों के साथ चिन्तित हो कर अपने घर में ही पड़ रही। भीमसेन को ढूँढने का भी उपाय न कर सकी ॥१९॥

इधर आठवें दिन भीमसेन उठे। रस के पच जाने से वह बहुत अधिक बलवान् हो गये थे ॥२०॥ भीमसेन के उठने पर वे सब सर्प बिना घबड़ाये उनके पास आये और उन्हें समझाकर उनसे इस प्रकार बोले ॥२१॥ महाबाहु, जो रस आपने पीया है वह बड़ा बलकारक है। उसके पीने से आप में हजार हाथियों का बल हो गया है। अब युद्ध में आपको कोई जीत न सकेगा ॥२२॥ इस दिव्य जल से स्नान करके अब तुम अपने घर जाओ। कुरुपुङ्गव, तुम्हारे बिना तुम्हारे भाई बहुत दुखी हो रहे हैं ॥२३॥ महाबाहु भीम ने स्नान किया। स्वच्छ, शुद्ध वस्त्र धारण किया। मालाएँ पहनी और सर्पराज के घर में उनकी मंगल कामना की गयी। सुगन्धित और विष दूर करनेवाली ओषधियों के साथ सर्पों ने उन्हें पायस दिया और भीमसेन ने खाया ॥२४,२५॥ नागों ने उनका सत्कार किया, आशीर्वाद देकर अभिनन्दित किया। दिव्याभरण पहन कर, सर्पों से आज्ञा लेकर प्रसन्न चित्त अरिन्दम भीमसेन नागलोक से प्रस्थित हुए। सर्पों ने कमलनयन भीमसेन को जल के बाहर कर दिया और वहीं गंगा के प्रमाणकोटि घाट पर पहुंचा दिया। उनको पहुंचा कर नाग शीघ्र ही वहाँ से अन्तर्धान हो गये ॥२६-२८॥ महाबली कुन्ती-पुत्र भीमसेन वहां से उठकर शीघ्र ही अपनी माता के पास आये ॥२९॥ भीम ने माता और बड़े भाई को प्रणाम किया। शत्रुविमर्दन भीमसेन ने छोटे भाइयों का सिर सूंघकर प्यार जताया ॥३०॥

तैश्चापि संपरिष्वक्तः सह मात्रा नरर्षभैः । अन्योन्यगतसौहार्दाद्दिष्ट्यादिष्ट्येति चाब्रुवन् ॥३१॥
ततस्तत्सर्वमाचष्ट दुर्योधनविचेष्टितम् । भ्रातॄणां भीमसेनश्च महाबलपराक्रमः ॥३२॥
नागलोके च यद्वृत्तं गुणदोषसमन्वितः । तच्च सर्वमशेषेण कथयामास पाण्डवः ॥३३॥
ततो युधिष्ठिरो राजा भीममाह वचोऽर्थवत् । तूष्णीं भव न ते जल्प्यमिदं कार्यं कथञ्चन ॥३४॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्धर्मराजो युधिष्ठिरः । भ्रातृभिः सहितः सर्वैरप्रमत्तोऽभवत्तदा ॥३५॥
सारथिं चास्य दयितमपहस्तेन जघ्निवान् । धर्मात्मा विदुरस्तेषां पार्थानां प्रददौ मतिम् ॥३६॥
भोजने भीमसेनस्य पुनः प्राक्षेपयद्विषम् । कालकूटं नवं तीक्ष्णं संभृतं लोमहर्षणम् ॥३७॥
वैश्यापुत्रस्तदाचष्ट पार्थानां हितकाम्यया । तच्चापि भुक्त्वाऽजरयदविकारं वृकोदरः ॥३८॥
विकारं नह्यजनयत्सुतीक्ष्णमपि तद्विषम् । भीमसंहनने भीमे अजीर्यत वृकोदरे ॥३९॥
एवं दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः । अनेकैरभ्युपायैस्तान् जिघांसन्तिस्म पाण्डवान् ॥४०॥
पाण्डवाश्चापि तत्सर्वं प्रत्यजानन्नमर्षिताः । उद्भावनमकुर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः ॥४१॥
कुमारान् क्रीडमानाँस्तान्दृष्ट्वा राजाऽतिदुर्मदान् । गुरुं शिक्षार्थमन्विष्य गौतमं तान्न्यवेदयत्॥४२॥

उन लोगों ने भी माता के साथ भीमसेन का आलिंगन किया, परस्पर प्रेम के कारण सभी आनन्द आनन्द कहने लगे ॥३१॥ महाबली और पराक्रमी भीमसेन ने माता और भाइयों से दुर्योधन की सभी करतूत कह सुनायी ॥३२॥ नागलोक में कुछ अच्छा बुरा, हुआ था, वह सब भी भीमसेन ने भाइयों से कह सुनाया ॥३३॥ यह सब सुनकर राजा युधिष्ठिर ने भीमसेन से यह अर्थ पूर्ण बचन कहा, अब चुप हो जाओ, यह बात कहीं किसी से न कहना ॥३४॥ इस प्रकार भीमसेन को महाबाहु धर्मराज युधिष्ठिर ने समझाया, तब से वे स्वयं भाइयों के साथ सावधानी से रहने लगे॥३५॥इसी बीच पाण्डवों के प्रिय सारथि को दुर्योधनने थप्पड़ों की मार से मरवा डाला । धर्मात्मा विदुर समय समय पर पाण्डवों को सलाह दिया करते थे ॥३६॥ भीमसेन के भोजन में दुर्योधन ने पुनः भयंकर विष डलवाया, यह विष बड़ा ही तीक्ष्ण था ॥३७॥ वैश्यापुत्र युयुत्सु ने इसकी खबर उनके हित की कामना से पाण्डवों को दे दी, तो भी भीम ने वह विष मिला अन्न खा लिया, उससे उन्हें कुछ विकार न हुआ, उन्होंने विष पचा लिया ॥३८॥ उस तीखे विष से भी भीमसेन की कोई हानि न हुई, गठीले भीमसेन के उदर में आकर वह विष भी पच गया ॥३९॥ इस प्रकार दुर्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि पाण्डवों को मार डालने के लिए अनेक उपाय सोचा और किया करते थे ॥४०॥ पाण्डव भी उनके प्रयत्नों को जान जाते थे और उन्हें क्रोध भी आता था, पर विदुर की सलाह के अनुसार वे इन बातों को प्रकाशित नहीं करते थे ॥४१॥ राजा धृतराष्ट्र ने जब देखा कि लड़के खेल में पड़े रहने से उच्छृङ्खल होते जाते हैं, तब उन्होंने गुरु ढूँढकर कृपाचार्य के जिम्मे उन लड़कों को पढ़ने के लिए कर दिया ॥४२॥ इन आचार्य

शरस्तम्बे समुद्भूतं वेदशास्त्रार्थपारगम् । अधिजग्मुश्च कुरवो धनुर्वेदं कृपात्तु ते ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि [illegible]
ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

जनमेजय उवाच—

कृपस्यापि मम ब्रह्मन् सम्भवं वक्तुमर्हसि । शरस्तम्बात्कथं जज्ञे कथं वाऽस्त्राण्यवाप्तवान् ॥१॥

वैशम्पायन उवाच—

महर्षेर्गौतमस्यासीच्छरद्वान्नाम गौतमः । पुत्रः किल महाराज जातः सह शरैर्विभो ॥२॥
न तस्य वेदाध्ययने तथा बुद्धिरजायत । यथाऽस्य बुद्धिरभवद्धनुर्वेदे परन्तप ॥३॥
अधिजग्मुर्यथा वेदाँस्तपसा ब्रह्मचारिणः । तथा स तपसोपेतः सर्वाण्यस्त्राण्यवाप ह ॥४॥
धनुर्वेदपरत्वाच्च तपसा विपुलेन च । भृशं सन्तापयामास देवराजं स गौतमः ॥५॥
ततो जानपदीं नाम देवकन्यां सुरेश्वरः । प्राहिणोत्तपसे विघ्नं कुरु तस्येति कौरव ॥६॥
सा हि गत्वाऽऽश्रमं तस्य रमणीयं शरद्वतः । धनुर्बाणधरं बाला लोभयामास गौतमम् ॥७॥
तामेकवसनां दृष्ट्वा गौतमोऽप्सरसं वने । लोकेऽप्रतिमसंस्थानां प्रोत्फुल्लनयनोऽभवत् ॥८॥

की उत्पत्ति शरकंडे की झाड़ी से हुई थी। वे वेदशास्त्र के पारगामी थे। उन्हीं कृपाचार्य से कौरवोंने धनुर्वेद की शिक्षा पायी थी ॥४३॥

उनत्रिंशदधिक शततम अध्याय ।

कृपी और कृपाचार्य का परिचय । द्रोणाचार्य का परिचय और द्रोणाचार्य का दान पाने की इच्छा से परशुराम के यहाँ जाना ।

राजा जनमेजय बोले—भगवन्, कृपाचार्य का भी जन्मवृत्तान्त आप मुझसे कहें । शरकंडे की झाड़ो से इनकी उत्पत्ति कैसे हुई और इन्हें धनुर्वेद का ज्ञान कैसे हुआ ॥१॥

वैशम्पायन बोले—महाराज, महर्षि गौतम के पुत्र का नाम शरद्वान् था, सुनते हैं कि उनका जन्म शरकंडे की झाड़ी से हुआ था।।२।। हे परन्तप, उनकी बुद्धि जैसी धनुर्वेद में तेज थी वैसी वेदाध्ययन में तेज नहीं थी ॥३॥ अन्य ब्रह्मचारी जिस प्रकार तपस्या करके वेदाध्ययन करते हैं; उसी प्रकार इन्होंने तपस्या करके समस्त धनुर्वेद को प्राप्त किया, अर्थात् उसका अध्ययन किया ॥४॥ उनकी विमल तपस्या और धनुर्वेद में अनुराग देखकर उनके पिता मन ही मन कुढ़ा करते थे ॥५॥ वे तपस्या कर रहे थे, उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए इन्द्र ने जानपदी नाम की अप्सरा भेजी ॥६॥ वह बाला शरद्वान् के रमणीय आश्रम में गयी और धनुर्बाणधारी शरद्वान् को लुभाने लगी ॥७॥ बनमें लोकोत्तर सुन्दरी उस अप्सरा को एक वस्त्र धारण किये देखकर मुनि शरद्वान् की आंखें खिल गयीं, वे टक टकी लगा कर उसे देखने लगे ॥८॥ उनके हाथ से धनुष

धनुश्च हि शरास्तस्य कराभ्यामपतन्भुवि । वेपथुश्चापि तां दृष्ट्वा शरीरे समजायत ॥९॥
स तु ज्ञानगरीयस्त्वात्तपसश्च समर्थनात् । अवस्तस्थे महाप्राज्ञो धैर्येण परमेण ह ॥१०॥
यस्तस्य सहसा राजन् विकारः समदृश्यत । तेन सुस्राव रेतोऽस्य स च तन्नान्वबुध्यत ॥११॥
धनुश्च सशरं त्यक्त्वा तथा कृष्णाजिनानि च । स विहायाश्रमं तं च तान्चैवाप्सरसं मुनिः ॥१२॥
जगाम रेतस्तत्तस्य शरस्तम्बे पपात च । शरस्तम्बे च पतितं द्विधा तदभवन्नृप ॥१३॥
तस्याथ मिथुनं जज्ञे गौतमस्य शरद्वतः । मृगयां चरतो राज्ञः शान्तनोस्तु यदृच्छया ॥१४॥
कश्चित्सेनाचरोऽरण्ये मिथुनं तमपश्यत । धनुश्च सशरं दृष्ट्वा तथा कृष्णाजिनानि च ॥१५॥
ज्ञात्वा द्विजस्य चापत्ये धनुर्वेदान्तगस्य ह । स राज्ञे दर्शयामास मिथुनं सशरं धनुः ॥१६॥
स तदादय मिथुनं राजा च कृपयान्वितः । आजगाम गृहानेव मम पुत्राविति ब्रुवन् ॥१७॥
ततः संवर्धयामास संस्कारैश्चाप्ययोजयत् । प्रातिपेयो नरश्रेष्ठो मिथुनं गौतमस्य तत् ॥१८॥
गौतमोऽपि ततोऽभ्येत्य धनुर्वेदपरोऽभवत् । कृपया यन्मया बालाविमौ संवर्धिताविति ॥१९॥
तस्मात्तयोर्नाम चक्रे तदेव स महीपतिः । गोपितौ गौतमस्तत्र तपसा समविन्दत ॥२०॥
आगत्य तस्मै गोत्रादि सर्वमाख्यातवाँस्तदा । चतुर्विधं धनुर्वेदं शास्त्राणि विविधानि च ॥२१॥

और बाण गिर गये, और उसको देखने के कारण उनका शरीर काँपने लगा ॥९॥ पर महाप्राज्ञ ज्ञान की अधिकता और तप की शक्ति से धीर बने रहे, शीघ्र ही उन्होंने अपने को सम्भाल लिया ॥१०॥ पर राजन्, उस अप्सरा को देखते ही सहसा उनके मन में जो विकार उत्पन्न हो गया था उससे उनका वीर्य पात हो गया, पर मुनि को इस बात की खबर न लगी ॥११॥ उस अप्सरा को छोड़ कर वे मुनि जाने लगे, उसी समय शरकंडे की झाड़ी पर उनका वीर्य पात हुआ। वहां गिरे हुए उनके वीर्य का दो भाग हो गया ॥१२-१३॥ उससे गौतम शरद्वान की यमज सन्तान हुई, एक पुत्र और एक कन्या । महाराज शान्तनु उस समय उसी बन में आखेट के लिए घूम रहे थे, अकस्मात इनके किसी सैनिक की दृष्टि उन दोनों बालकों पर पड़ी । वहां ही उसने धनुषबाण और मृग चर्म पड़ा देखा, जिससे उसने अनुमान किया कि ये किसी धनुर्वेदज्ञ मुनि के बालक हैं । उस सैनिक ने धनुष बाण के साथ वे दोनों बालक राजा के सामने उपस्थित किये ॥१४-१६॥ कृपा परवश राजा शान्तनु उन दोनों बालकों को अपने घर ले आये, और उन्हें अपनी ही सन्तान समझने लगे ॥१७॥ राजा ने उनका पालन पोषण और संस्कार किया ॥१८॥ राजा ने कृपा से उन बालकों को पाला था इस कारण उन्होंने उनका नाम भी कृपा पर ही रखा, अर्थात् पुत्र का कृप और कन्या का कृपी नाम रखा । गौतम शरद्वान् ने भी तपस्या बल से यह जान लिया कि उनके लड़कों का पालन पोषण राजा शान्तनु कर रहे हैं ॥१९-२०॥ शरद्वान् राजा के पास आये और उन बालकों के गोत्र आदि का परिचय दिया । चार प्रकार का धनुर्वेद, अनेक प्रकार के शास्त्र और उनके रहस्य उन्होंने अपने पुत्र को बतलाये, जिससे थोड़े ही दिनों में वह बालक धनुर्विद्या का बड़ा आचार्य

निखिलेनास्य तत्सर्वं गुह्याख्यानसमन्वितम् । सोऽचिरेणैव कालेन परमाचार्यतां गतः ॥२२॥
ततोऽधिजग्मुः सर्वे ते धनुर्वेदं महारथाः । धृतराष्ट्रात्मजाश्चैव पाण्डवाः सह यादवैः ॥२३॥
वृष्णयश्च नृपाश्चान्ये नानादेशसमागताः ।

वैशम्पायन उवाच—

विशेषार्थी ततो भीष्मः पौत्राणां विनयेप्सया ॥२४॥
इष्वस्त्रज्ञान्पर्यपृच्छदाचार्यान्वीर्यसम्मतान् । नाल्पधीर्नामहाभागस्तथा नानास्त्रकोविदः ॥२५॥
नादेवसत्वो विनयेत्कुरूनस्त्रे महाबलान् । इति सञ्चिन्त्य गाङ्गेयस्तदा भरतसत्तमः ॥२६॥
द्रोणाय वेदविदुषे भारद्वाजाय धीमते । पाण्डवान्कौरवाँश्चैव ददौ शिष्यान्नरर्षभ ॥२७॥
शास्त्रतः पूजितश्चैव सम्यक् तेन महात्मना । स भीष्मेण महाभागस्तुष्टोऽस्त्रविदुषांवरः ॥२८॥
प्रतिजग्राह तान्सर्वान् शिष्यत्वेन महायशाः । शिक्षयामास च द्रोणो धनुर्वेदमशेषतः ॥२९॥
तेऽचिरेणैव कालेन सर्वशास्त्रविशारदाः । बभूवुः कौरवा राजन् पाण्डवाश्चामितौजसः ॥३०॥

जनमेजय उवाच—

कथं समभवद्द्रोणः कथं चास्त्राण्यवाप्तवान् । कथं चागात्कुरून्ब्रह्मन् कस्य पुत्रः सवीर्यवान् ॥३१॥
कथं चास्य सुतो जातः सोऽश्वत्थामाऽस्त्रवित्तमः । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण प्रकीर्तय ॥३२॥

वैशम्पायन उवाच—

गङ्गाद्वारं प्रति महान्बभूव भगवानृषिः । भारद्वाज इति ख्यातः सततं संशितव्रतः ॥३३॥

बन गया ॥२१-२२॥ उन्हीं कृपाचार्य से कौरव पाण्डव और यादव बालकों ने धनुर्वेद की शिक्षा पायी और वे सब निपुण हो गये। वृष्णि वंश के बालक तथा और भी अनेक देश के राजाओं ने धनुर्वेद की शिक्षा उनसे ग्रहण की।

वैशम्पायन बोले—पर भीष्म अपने पौत्रों को और शिक्षा दिलाना चाहते थे ॥२३,२४॥ अतएव वे पराक्रमी धनुर्वेदज्ञ का पता लगाते रहते थे। मन्द बुद्धि, अनुदार अस्त्र विद्या का प्रचुर ज्ञान न रखने वाला, देवतुल्य पराक्रम न रखने वाला मनुष्य महाबली कुरुवंशी बालकों को धनुर्वेद की शिक्षा नहीं दे सकता है, इसी विचार से भीष्म पितामह सदा अपने विचार का अध्यापक ढूँढ़ा करते थे ॥२५,२६॥ अन्त में उन्होंने वेदों के विद्वान् बुद्धिमान् भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य को कौरव और पाण्डवों को पढ़ाने के लिए नियत किया ॥२७॥ महात्मा भीष्म ने शास्त्रीय विधान के अनुसार उनकी पूजा की, जिससे अस्त्र विद्या के आचार्य द्रोण बहुत प्रसन्न हुए ॥२८॥ उन कौरव और पाण्डवों को शिष्य बनाकर द्रोणाचार्य उन बालकों को समस्त धनुर्वेद की शिक्षा देने लगे ॥२९॥ राजन्, वे कौरव तथा अमित तेजस्वी पाण्डव थोड़े ही समय में समस्त धनुर्वेद के ज्ञाता हो गये ॥३०॥

राजा जनमेजय बोले—द्रोण की उत्पत्ति कैसे हुई, उन्होंने धनुर्वेद किससे सीखा। ब्रह्मन्, वे कुरुदेश में कैसे आये तथा वे पराक्रमी किसके पुत्र हैं। इनके पुत्र प्रधान अस्त्रवेत्ता अश्वत्थामा कैसे उत्पन्न हुए। यह सब आप विस्तारपूर्वक कहें, मैं सुनना चाहता हूँ ॥३१,३२॥

वैशम्पायन बोले—प्रसिद्ध व्रतधारी भरद्वाज नामक ऋषि हरद्वार में रहते थे ॥३३॥

सोऽभिषेक्तुं ततो गङ्गां पूर्वमेवागमन्नदीम् । महर्षिभिर्भरद्वाजो हविर्धाने चरन्पुरा ॥३४॥
ददर्शाप्सरसं साक्षाद् घृताचीमाप्लुतामृषिः । रूपयौवनसम्पन्नां मदद्दृप्तां मदालसाम् ॥३५॥
तस्याः पुनर्नदीतीरे वसनं पर्यवर्तत । व्यपकृष्टाम्बरां दृष्ट्वा तामृषिश्चकमे ततः ॥३६॥
तत्र संसक्तमनसो भरद्वाजस्य धीमतः । ततोऽस्य रेतश्चस्कन्द तदृषिर्द्रोण आदधे ॥३७॥
ततः समभवद्द्रोणः कलशे तस्य धीमतः । अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥३८॥
अग्निवेशं महाभागं भरद्वाजः प्रतापवान् । प्रत्यपादयदाग्नेयमस्त्रमस्त्रविदांवरः ॥३९॥
अग्नेस्तु जातः स मुनिस्ततो भरतसत्तम । भारद्वाजं तदाग्नेयं महास्त्रं प्रत्यपादयत् ॥४०॥
भरद्वाजसखा चासीत्पृषतो नाम पार्थिवः । तस्यापि द्रुपदो नाम तदा समभवत्सुतः ॥४१॥
स नित्यमाश्रमं गत्वा द्रोणेन सह पार्थिवः । चिक्रीडाध्ययनं चैव चकार क्षत्रियर्षभः ॥४२॥
ततो व्यतीते पृषते स राजा द्रुपदोऽभवत् । पञ्चालेषु महाबाहुरुत्तरेषु नरेश्वरः ॥४३॥
भरद्वाजोऽपि भगवानारुरोह दिवं तदा । तत्रैव च वसन्द्रोणस्तपस्तेपे महातपाः ॥४४॥
वेदवेदाङ्गविद्वान्स तपसा दग्धकिल्बिषः । ततः पितृनियुक्तात्मा पुत्रलोभान्महायशाः ॥४५॥
शारद्वतीं ततो भार्यां कृपीं द्रोणोऽन्वविन्दत । अग्निहोत्रे च धर्मे च दमे च सततं रताम् ॥४६॥
अलभद्गौतमी पुत्रमश्वत्थामानमेव च । स जातमात्रो व्यनदद्यथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥४७॥

एक दिन अग्निहोत्र करनेवाले वे मुनि भरद्वाज गङ्गा में स्नान करने के लिए गये । वहां उन्होंने घृताची के समान एक अप्सरा देखी, जो रूपवती और युवती थी, वह यौवन मद से दृप्त तथा नशा से अलसायी हुई थी, और मुनि के स्नान करने से पहले स्नान कर चुकी थी ॥३४,३५॥ नदी तीर पर खड़ी उस अप्सरा का वस्त्र थोड़ा खिसक गया । वस्त्र के हटने पर उसे देखकर मुनि के मन में काम उत्पन्न हुआ ॥३६॥ बुद्धिमान् भरद्वाज का मन उस अप्सरा में आसक्त हो गया । उसी समय मुनि के वीर्यपात हुआ । मुनि ने उसको द्रोण (यज्ञपात्र) में रख दिया ॥३७॥ उसी पात्र से भरद्वाज ऋषि के द्रोण नामक पुत्र हुआ । जिसने समस्त वेदों और वेदाङ्गों का अध्ययन किया ॥३८॥ अस्त्र वेत्ताओं में श्रेष्ठ, प्रतापी भरद्वाज ने महाभाग अग्निवेश नामक मुनि को पहले अग्नेयास्त्र की शिक्षा दी थी ॥३९॥ हे भरतसत्तम, वे मुनि अग्नि से उत्पन्न हुए थे । उन्होंने आग्नेयास्त्र भारद्वाज द्रोण को दिया ॥४०॥ भरद्वाज के मित्र पृषत नामक एक राजा थे, उनके द्रुपद नामक पुत्र भी उसी समय हुआ ॥४१॥ वह क्षत्रियश्रेष्ठ राजपुत्र द्रुपद प्रतिदिन भरद्वाज के आश्रम में जाता था और द्रोण के साथ खेलता तथा पढ़ता था ॥४२॥ राजा पृषत के शरीरान्त होने पर यह महाबाहु द्रुपद उत्तर पाञ्चाल का राजा हुआ ॥४३॥ उन्हीं दिनों भगवान् भरद्वाज मुनि का भी स्वर्गवास हुआ, और द्रोणभी उसी आश्रम में रहकर तपस्या करने लगे॥४४॥ वेदवेदाङ्ग के ज्ञाता द्रोण के पाप, तपस्या के कारण नष्ट हो गये । अनन्तर पितरों के आदेश से पुत्र उत्पन्नकरने के लिए यशस्वी द्रोणने शरद्वान् मुनि की कन्या कृपी को व्याहा। वह द्रोण के अग्निहोत्र धर्म और इन्द्रियजप आदि में सदा तत्पर रहती थी ॥४५,४६॥ कृपी से उनके अश्वत्थामा नामक पुत्र हुआ। वह बालक उत्पन्न होते ही हिन हिनाया, जैसा उच्चैःश्रवा हिनहिनाता हो ॥४७॥ उस

तच्छ्रुत्वान्तर्हितं भूतमन्तरिक्षस्थमब्रवीत् । अश्वस्येवास्य यत्स्थाम नदतः प्रदिशो गतम् ॥४८॥
अश्वत्थामैव बालोऽयं तस्मान्नाम्ना भविष्यति । सुतेन तेन सुप्रीतो भारद्वाजस्ततोऽभवत् ॥४९॥
तत्रैव च वसन् धीमान्धनुर्वेदपरोऽभवत् । स शुश्राव महात्मानं जामदग्न्यं परन्तपम् ॥५०॥
सर्वज्ञानविदं विप्रं सर्वशस्त्रभृतांवरम् । ब्राह्मणेभ्यस्तदा राजन्दित्सन्तं वसु सर्वशः ॥५१॥
स रामस्य धनुर्वेदं दिव्यान्यस्त्राणि चैव ह । श्रुत्वा तेषु मनश्चक्रे नीतिशास्त्रे तथैव च ॥५२॥
ततः स व्रतिभिः शिष्यैस्तपोयुक्तैर्महातपाः । वृतः प्रायान्महाबाहुर्महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥५३॥
ततो महेन्द्रमासाद्य भारद्वाजो महातपाः । क्षान्तन्दान्तममित्रघ्नमपश्यद् भृगुनन्दनम् ॥५४॥
ततो द्रोणो वृतः शिष्यैरुपगम्य भृगूद्वहम् । आचख्यावात्मनो नाम जन्म चाङ्गिरसः कुले ॥५५॥
निवेद्य शिरसा भूमौ पादौ चैवाभ्यवादयत् । ततस्तं सर्वमुत्सृज्य वनं जिगमिषुं तदा ॥५६॥
जामदग्न्यं महात्मानं भारद्वाजोऽब्रवीदिदम् । भरद्वाजात्समुत्पन्नं तथा त्वं मामयोनिजम् ॥५७॥
आगतं वित्तकामं मां विद्धि द्रोणं द्विजोत्तमम् । तमब्रवीन्महात्मा स सर्वक्षत्रियमर्दनः ॥५८॥
स्वागतं ते द्विजश्रेष्ठ यदिच्छसि वदस्व मे । एवमुक्तस्तु रामेण भारद्वाजोऽब्रवीद्वचः ॥५९॥
रामं प्रहरतां श्रेष्ठं दित्सन्तं विविधं वसु । अहं धनमनन्तं हि प्रार्थये विपुलव्रत ॥६०॥

समय अन्तरिक्षस्थ प्राणी ने कहा था इस बालक के गर्जने का शब्द घोड़े के शब्द के समान था और वही दिशाओं में फैला है, अतएव इस बालक का नाम अश्वत्थामा होगा। अश्व का अर्थ घोड़ा है और थाम का शब्द। घोड़े के समान शब्द के कारण उसका नाम अश्वत्थामा पड़ा। उस पुत्र को पाकर भारद्वाज (द्रोण) बहुत प्रसन्न हुए ॥४८,४९॥ उसी आश्रम में रहकर बुद्धिमान् द्रोण धनुर्वेद का अभ्यास करते तथा शिक्षा देते रहे। उसी समय द्रोण ने सुना कि सर्व शास्त्रज्ञ शास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ शत्रुतापी महात्मा परशुराम अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को देना चाहते हैं ॥५०,५१॥ परशुराम धनुर्वेद दिव्य अस्त्र तथा नीतिशास्त्र के ज्ञाता हैं, यह समाचार सुनकर द्रोणाचार्य ने इन विद्याओं को उनसे सीखना चाहा ॥५२॥ इसी से वेदाध्ययन के व्रत लिये हुए तपस्वी, शिष्यों के साथ द्रोण महेन्द्र पर्वत पर गये ॥५३॥ महात्मा द्रोण ने महेन्द्र पर्वत पर जाकर क्षमाशील जितेंद्रिय शत्रुनाशी भृगुनन्दन को देखा ॥५४॥ शिष्यों के साथ ही द्रोण परशुराम के पास गये। उन्होंने अपना नाम बतलाया और अंगिरा के कुल में जन्म बतलाया ॥५५॥ और पृथ्वी पर सिर रखकर उनके चरणों को प्रणाम किया। अपना सर्वस्व दान करके वन में जाने के लिए तयार जमदग्नि पुत्र परशुराम से भारद्वाज द्रोण इस प्रकार बोले। मैं भरद्वाज का अयोनिज पुत्र हूँ ॥५६-५७॥ मैं द्विजश्रेष्ठ द्रोण धन के लिए आपके पास आया हूँ। क्षत्रिय कुल विनाशक महात्मा परशुराम ने कहा ॥५८॥ द्विजश्रेष्ठ, आपका स्वागत। जो आप चाहते हों वह कहें। परशुराम के ऐसा कहने पर भारद्वाज, वीरों में श्रेष्ठ, समस्त धन दान करने के लिए उद्यत परशुराम से बोले, मैं अनन्त धन चाहता हूँ ॥५९-६०॥

राम उवाच—

हिरण्यं मम यच्चान्यद्वसु किञ्चिदिह स्थितम् । ब्राह्मणेभ्यो मया दत्तं सर्वमेतत्तपोधन ॥६१॥
तथैवेयं धरा देवी सागरान्ता सपत्तना । कश्यपाय मया दत्ता कृत्स्ना नगरमालिनी ॥६२॥
शरीरमात्रमेवाद्य मयेदमवशेषितम् । अस्त्राणि च महार्हाणि शस्त्राणि विविधानि च ॥६३॥
अस्त्राणि वा शरीरं वा वरयैतन्मयोद्यतम् । वृणीष्व किं प्रयच्छामि तुभ्यं द्रोण वदाशु तत् ॥६४॥

द्रोण उवाच—

अस्त्राणि मे समग्राणि ससंहाराणि भार्गव । सप्रयोगरहस्यानि दातुमर्हस्यशेषतः ॥६५॥
तथेत्युक्त्वा ततस्तस्मै प्रादादस्त्राणि भार्गवः । सरहस्यव्रतं चैव धनुर्वेदमशेषतः ॥६६॥
प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं कृतास्त्रो द्विजसत्तमः । प्रियं सखायं सुप्रीतो जगाम द्रुपदं प्रति ॥६७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि द्रोणस्य भार्गवादस्त्रप्राप्तौ
त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वजः प्रतापवान् । अब्रवीत्पार्थिवं राजन्सखायं विद्धिमामिह ॥१॥

परशुराम बोले—हे तपोधन सोना तथा और जो कुछ मेरा धन यहाँ था, वह मैंने ब्राह्मणों को दे दिया है ॥६१॥ इसी प्रकार सागर पर्यन्त यह पृथ्वी जिसमें अनेक शहर हैं और जो नगरों की माला धारण करती है, अर्थात् जिसमें बहुत से नगर हैं, वह समस्त पृथ्वी मैंने कश्यप को दे दी ॥६२॥ अब आज यह मेरा शरीर ही बचा हुआ है और दुर्लभ अस्त्र तथा विविध शस्त्र भी मेरे पास रह गये हैं ॥६३॥ अस्त्र या शरीर इनमें जो चाहें आप मांगें मैं देने को तयार हूँ । द्रोण शीघ्र बोलो इनमें से मैं तुम्हें क्या दूँ ? ॥६४॥

द्रोण बोले—महराज आप अपने समस्त अस्त्र मुझे दें, और उनके चलाने तथा रोकने के रहस्य भी बतलावें ॥६५॥ परशुराम ने अच्छा कह कर द्रोणाचार्य को समस्त अस्त्र तथा उनके चलाने रोकने का रहस्य बतला दिया। परशुराम से धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करके प्रसन्न होते हुए द्रोण अपने प्रिय मित्र द्रुपद के पास गये ॥६६-६७॥

त्रिंशदधिकशततम अध्याय ॥

द्रोणाचार्य का द्रुपद के यहाँ जाना और वहाँ से अपमानित होकर लौटना। कौरव राजकुमारों से भेंट होना और उनके द्वारा भीष्मदेव के पास पहुंचना। भीष्म के द्वारा राजकुमारों को पढ़ाने के लिए नियुक्त होना।

वैशम्पायन बोले—प्रतापी भारद्वाज ने राजा द्रुपद के पास जाकर कहा कि राजन् मैं

इत्येवमुक्तः सख्या स प्रतिपूर्वं जनेश्वरः। भारद्वाजेन पाञ्चाल्यो नामृष्यत वचोऽस्य तत् ॥२॥
सक्रोधामर्षजिह्मभ्रूः कषायीकृतलोचनः। ऐश्वर्यमदसम्पन्नो द्रोणं राजाऽब्रवीदिदम् ॥३॥

द्रुपद उवाच—

अकृतेयं तव प्रज्ञा ब्रह्मन्नातिसमञ्जसा। यन्मां ब्रवीषि प्रसभं सखा तेऽहमिति द्विज ॥४॥
न हि राज्ञामुदीर्णानामेवंभूतैर्नरैः क्वचित्। सख्यं भवति मन्दात्मन् श्रियाहीनैर्धनच्युतैः ॥५॥
सौहृदान्यपि जीर्यन्ते कालेन परिजीर्यतः। सौहृदं मे त्वया ह्यासीत्पूर्वं सामर्थ्यबन्धनम् ॥६॥
न सख्यमजरं लोके हृदि तिष्ठति कस्यचित्। कालो ह्येनं विहरति क्रोधो वैनं रहत्युत ॥७॥
मैवं जीर्णमुपास्स्व त्वं सख्यं भवत्वपाकृधि। आसीत्सख्यं द्विजश्रेष्ठ त्वया मेऽर्थनिबन्धनम् ॥८॥
न दरिद्रो वसुमतो नाविद्वान् विदुषः सखा। न शूरस्य सखा क्लीवः सखिपूर्वं किमिष्यते ॥९॥
ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम्। तयोर्विवाहः सख्यं च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥१०॥
नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा। नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते ॥११॥

वैशम्पायन उवाच—

द्रुपदेनैवमुक्तस्तु भारद्वाजः प्रतापवान्। मुहूर्त्तं चिन्तयित्वा तु मन्युनाऽभिपरिप्लुतः ॥१२॥

आपका मित्र द्रोण हूँ ॥१॥ द्रुपद के मित्र भारद्वाज ने उनसे प्रेमपूर्वक ऐसा कहा, पर पंचाल राज द्रुपद ने उनकी बातों पर विश्वास न किया ॥२॥ क्रोध और अमर्ष से उनकी भौं टेढ़ी हो गयी और आंखें लाल हो गयीं। ऐश्वर्य मद के कारण राजा ने द्रोण से इस प्रकार कहा ॥३॥

द्रुपद बोले—ब्रह्मन्, यह बात आपने बिना समझे बूझे कही है। अतएव यह कुछ ठीक नहीं जंचती, जो आप मुझे जबरदस्ती यह कह रहे हैं कि मैं आपका मित्र हूँ ॥४॥ बड़े राजाओं का आपके समान अभागी निर्धन मनुष्यों से, अरे मूर्ख, मैत्री कैसे हो सकती है ॥५॥ मित्रता भी पुरानी पड़ जाती है। समय बीतने के साथ साथ वह भी नष्ट हो जाती है। पहले हमारी तुम्हारी मैत्री थी, जिसका कारण तुम्हारा बल था, अर्थात् उस समय तुम मुझसे श्रेष्ठ थे ॥६॥ मित्रता स्थायी नहीं होती, समय पाकर यह नष्ट हो जाती है। अथवा, कारणवश क्रोध उत्पन्न होने पर भी इसका नाश हो जाता है ॥७॥ अतएव, उस पुरानी मित्रता का ख्याल अब तुम छोड़ दो। ब्राह्मण श्रेष्ठ,पहले तुमसे जो हमारी मित्रता थी, वह मतलब के लिए थी। हम दोनों एक दशा में थे। बल्कि तुम्हीं हमसे बल में श्रेष्ठ थे ॥८॥ दरिद्र धनी का मित्र नहीं हो सकता, मूर्ख विद्वान का मित्र नहीं हो सकता, नपुंसक वीर का मित्र नहीं हो सकता अतएव आप पुरानी मित्रता का ख्याल छोड़ें ॥९॥ जिनका धन समान है, जिनकी विद्या बराबर है, उन्हीं में विवाह और मैत्री हो सकती है। दुर्बल और बलवान् की मैत्री कैसी ! ॥१०॥ जो श्रोत्रिय नहीं है वह श्रोत्रिय का, जो रथी नहीं है वह रथी का, जो राजा नहीं है वह राजा का मित्र कैसे हो सकता है ? ॥११॥

वैशम्पायन बोले—द्रुपद की इन बातों को सुनकर प्रतापी भारद्वाज को बड़ा क्रोध आया और वे थोड़ी देर तक सोचते रहे ॥१२॥ द्रुपद के सम्बन्ध में अपना कर्तव्य मन ही मन

स विनिश्चित्य मनसा पश्चाल्यं प्रति बुद्धिमान् । जगाम कुरुमुख्यानां नगरं नागसाह्वयम् ॥१३॥
स नागपुरमागम्य गौतमस्य निवेशने । भारद्वाजोऽवसत्तत्र प्रच्छन्नं द्विजसत्तमः ॥१४॥
ततोऽस्य तनुजः पार्थान् कृपस्यानन्तरं प्रभुः । अस्त्राणि शिक्षयामास नाबुध्यन्त च ते जनाः॥१५॥
एवं स तत्र गूढ़ात्मा कञ्चित्कालमुवास ह । कुमारास्त्वथ निष्क्रम्य समेता गजसाह्वयात् ॥१६॥
क्रीडन्तो वीटया तत्र वीराः पर्यचरन्मुदा । पपात कूपे सा वीटा तेषां वै क्रीडतां तदा ॥१७॥
ततस्ते यत्नमातिष्ठन्वीटामुद्धर्तुमादृता । न च ते प्रत्यपद्यन्त कर्म वीटोपलब्धये ॥१८॥
ततोऽन्योन्यमवैक्षन्त व्रीडयाऽवनताननाः । तस्या योगमविन्दन्तो भृशं चोत्कण्ठिताऽभवन् ॥१९॥
तेऽपश्यन्ब्राह्मणं श्याममापन्नं पलितं कृशम् । कृत्यवन्तमदूरस्थमग्निहोत्रपुरस्कृतम् ॥२०॥
ते तं दृष्ट्वा महात्मानमुपगम्य कुमारकाः । भग्नोत्साहक्रियात्मानो ब्राह्मणं पर्यवारयन् ॥२१॥
अथ द्रोणः कुमारांस्तान् दृष्ट्वा कृत्यवतस्तदा । प्रहस्य मन्दं पैशल्यादभ्यभाषत वीर्यवान् ॥२२॥
अहो वो धिग्बलं क्षात्रं धिगेतां वः कृतास्त्रताम् । भरतस्यान्वये जाता ये वीटां नाधिगच्छत॥२३
वीटां च मुद्रिकाञ्चैव ह्यहमेतदपि द्वयम् । उद्धरेयमिषीकाभिर्भोजनं मे प्रदीयताम् ॥२४॥

निश्चित करके बुद्धिमान द्रोण कुरुवंशी राजाओं के हस्तिनापुर नामक नगर में गये ॥१३॥ वे हस्तिनापुर जाकर कृपाचार्य के घर में छिपकर रहने लगे ॥१४॥ द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा अपने मामा कृपाचार्य के साथ कौरवों की पाठशाला में जाता था और कृपाचार्य के पढ़ालेने पर वह पढ़ता भी था, पर उसको कोई जान नहीं सका । यह द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा है, यह बात किसी को मालूम न हो सकी ॥१५॥ इस प्रकार कुछ दिनों तक द्रोणाचार्य उस नगर में छिपे रहे ।

एक दिन राजकुमार नगर के बाहर गये और वहां उत्साह के साथ गुल्ली डण्डा खेलने लगे । खेल में ही उनकी गुल्ली एक कुएँ में गिर पड़ी ॥१६-१७॥ उन लोगों ने कुएँ से गुल्ली निकालने के अनेक प्रयत्न किये, पर उनका कोई भी प्रयत्न सफल न हो सका । कुएँ से गुल्ली नहीं निकली ॥१८॥ इससे वे बहुत लज्जित हुए. उनके सिर झुक गये और वे एक दूसरे का मुँह देखने लगे कुएँ से गुल्ली निकालने का कोई उपाय सूझ न पड़ने के कारण वे अत्यन्त व्याकुल हुए ॥१९॥ इसी समय उन लोगों ने एक काले गरीब ब्राह्मण को देखा, जो अग्निहोत्र आदि नित्य कर्म समाप्त करके थोड़ी दूर पर खड़े थे ॥२०॥ उस महात्मा ब्राह्मण को देखकर राजकुमार उनके पास गये; क्योंकि उन लोगों का उत्साह और उद्योग नष्ट हो गया था ॥२१॥ द्रोणाचार्य ने उन कुमारों को देखा और वे किसी काम से आये हैं, यह भी समझा अतएव, पराक्रमी द्रोण हंस कर कुशलता पूर्वक उनसे बोले ॥२२॥ तुम क्षत्रियों का यही बल है ? यही तुम लोगों ने अस्त्र विद्या सीखी है ? तुम लोगों का जन्म तो भरत कुल में हुआ है ? कुएँ से एक गुल्ली भी नहीं निकाल सके ॥२३॥ मैं यह अँगूठी और गुल्ली दोनों को एक सींक से निकाल दूंगा, यदि तुम लोग मुझे खाने को

एवमुक्त्वा कुमारांस्तन्द्रोणः स्वाङ्गुलिवेष्टनम् । कूपे निरुदके तस्मिन्नपातयदरिन्दमः ॥२५॥
ततोऽब्रवीत्तदा द्रोणं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
युधिष्ठिर उवाच— कृपयानुमते ब्रह्मन् भिक्षामाप्नुहि शाश्वतीम् ॥२६॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच प्रहस्य भरतानिदम् ।
द्रोण उवाच— एषा मुष्टिरिषीकाणां मयाऽस्त्रेणाभिमन्त्रिता ॥२७॥
अस्या वीर्यं निरीक्षध्वं यदन्यस्य न विद्यते । भेत्स्यामीषीकया वीटां तामिषीकां तथाऽन्यया॥२८
तामन्यया समायोगे वीटाया ग्रहणं मम ।
वैशम्पायन उवाच— ततो यथोक्तं द्रोणेन तत्सर्वं कृतमञ्जसा ॥२९॥
तदवेक्ष्य कुमारास्ते विस्मयोत्फुल्ललोचनाः । आश्चर्यमिदमत्यन्तमिति मत्वा वचोऽब्रुवन् ॥३०॥
कुमारा ऊचुः—
मुद्रिकामपि विप्रर्षे शीघ्रमेतां समुद्धर ।
वैशम्पायन उवाच— ततः शरं समादाय धनुर्द्रोणो महायशाः ॥३१॥
शरेण विद्ध्वा मुद्रां तामूर्ध्वमावाहयत्प्रभुः । सशरं समुपादाय कूपादङ्गुलिवेष्टनम् ॥३२॥
ददौ ततः कुमाराणां विस्मितानामविस्मितः । मुद्रिकामुद्धृतां दृष्ट्वा तमाहुस्ते कुमारकाः ॥३३॥

दो ॥२४॥ राजकुमारों से ऐसा कह कर द्रोणाचार्य ने अपनी अँगुली की अँगूठी निकाल कर उस बिना जल के कूएँ में फेंक दी ॥२५॥ उस समय कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर द्रोणाचार्य से बोले ।

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मन् कृपाचार्य से आज्ञा लेकर आप सदा यहीं भोजन किया कीजिए ॥२६॥ युधिष्ठिर की बात सुनकर और हँस कर द्रोण राजकुमारों से बोले—

द्रोण बोले—इस एक मुठी सींक को मैंने मंत्रों से अभिमंत्रित करके अस्त्र बना लिया । अब इन सींकों का पराक्रम तुम लोग देखो । जो पराक्रम अन्य अस्त्रों में नहीं हैं । इस सींक से गुल्ली को छेद दूँगा और दूसरी सींक से इस सींक को छेदूंगा, इस प्रकार एक सींक दूसरी सींक से जुड़ती हुई चली आवेगी और सींक पकड़ कर हम तुम्हारी गुल्ली ऊपर खींच लेगें ।

वैशम्पायन बोले—द्रोणाचार्य ने जो कुछ कहा था वह सब उन्होंने शीघ्र ही कर दिखाया ॥२७-२९॥ उनकी यह निपुणता देखकर राजकुमारों की आंखें विस्मय से खुल गयीं । इस वृत्तान्त को अत्यन्त अद्भुत समझ कर वे बोले ॥३०॥

कुमार बोले—ब्रह्मर्षि, उस अँगूठी को भी शीघ्र निकालो ।

वैशम्पायन बोले—यशस्वी द्रोण ने धनुषबाण उठाया और बाण से अँगूठी छेदकर अँगूठी ऊपर खींची । बाण के साथ वह अँगूठी ऊपर चली आयी ॥३१,३२॥ अँगूठी का बाहर निकलना देखकर राजकुमारों को बड़ा विस्मय हुआ था, पर द्रोणाचार्य को कोई भी विस्मय नहीं था । उन्होंने अँगूठी निकाल कर राजकुमारों को दे दी । अँगूठी देखकर रजकुमार बोले ॥३३॥

कुमारा ऊचु—
अभिवादयामहे ब्रह्मन् नैतदन्येषु विद्यते । कोऽसि कस्यासि जानीमो वयं किं करवामहे ॥३४॥
वैशम्पायन उवाच— एवमुक्तस्ततो द्रोणः प्रत्युवाच कुमारकान् ॥
द्रोण उवाच— आचक्षध्वं च भीष्माय रूपेण च गुणैश्च माम् ॥३५॥
स एव सुमहातेजाः साम्प्रतं प्रतिपत्स्यते ।
वैशम्पायन उवाच— तथेत्युक्त्वा च गत्वा च भीष्ममूचुः कुमारकाः ॥३६॥
ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तच्च कर्म तथाविधम् । भीष्मः श्रुत्वा कुमाराणां द्रोणं तं प्रत्यजानत॥३७॥
युक्तरूपः स हि गुरुरित्येवमनुचिन्त्य च । अथैनमानीय तदा स्वयमेव सुसत्कृतम् ॥३८॥
परिपप्रच्छ निपुणं भीष्मः शस्त्रभृतांवरः । हेतुमागमने तच्च द्रोणः सर्वं न्यवेदयत् ॥३९॥
द्रोण उवाच—
महर्षेरग्निवेशस्य सकाशमहमच्युत । अस्त्रार्थमगमं पूर्वं धनुर्वेदचिकीर्षया ॥४०॥
ब्रह्मचारी विनीतात्मा जटिलो बहुलाः समाः । अवसं सुचिरं तत्र गुरुशुश्रूषणे रतः ॥४१॥
पाञ्चाल्यो राजपुत्रश्च यज्ञसेनो महाबलः । इष्वस्त्रहेतोर्न्यवसत्तस्मिन्नेव गुरौ प्रभुः ॥४२॥
स मे तत्र सखा चासीदुपकारी प्रियश्च मे । तेनाहं सह संगम्य वर्तयन्सुचिरं प्रभो ॥४३॥

राजकुमार बोले—महाराज, आपको हम लोग प्रणाम करते हैं, आपकी सी विद्या दूसरों में नहीं है । आप कौन हैं ? किसके हैं ? यह हम लोग जानना चाहते हैं और हम लोग आप के लिए क्या करें, यह आप कहें ॥३४॥

वैशम्पायन बोले—द्रोण ने कुमारों से कहा—भीष्म से जाकर तुमलोग हमारा परिचय दो । उनसे मेरे गुण कहो ॥३५॥ तेजस्वी भीष्म ही इसका उचित प्रबन्ध करेंगे ।

वैशम्पायन बोले—द्रोण की बात मानकर वे राजकुमार भीष्म के पास गये और उनसे सब बातें उन लोगों ने कहीं ॥३६॥ ब्राह्मण के वचन और उसके वैसे अभूतपूर्व कर्म कुमारों से सुनकर भीष्म ने समझ लिया कि ये द्रोणाचार्य हैं ॥३७॥ वे ही उन कुमारों के योग्य गुरु हो सकते हैं, ऐसा सोचकर उन्होंने द्रोण को आदर पूर्वक अपने पास बुलाया और, उनका समाचार पूछकर, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भीष्म ने उनके आने का कारण पूछा । द्रोण ने सब बतलाया ॥३८,३९॥

द्रोण बोले—मैं पहले महर्षि अग्निवेश के पास धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से अस्त्र सीखने गया ॥४०॥ वहां ब्रह्मचर्य पूर्वक जटाधारण करके विनय के साथ बहुत दिनों तक रहा और गुरु की सेवा करता रहा ॥४१॥ पंचाल का राजा महाबली यज्ञसेन भी बाण विद्या सीखने के लिए वहीं, मेरे गुरु के पास रहता था । वह वहाँ मेरा मित्र था, प्रिय उपकारी था । प्रभो, उसके साथ बहुत दिनों तक मेरी मैत्री रही॥४३॥ बाल्यवस्थासे ही हम दोनों साथ पढ़ते रहे।

बाल्यात्प्रभृति कौरव्य सहाध्ययनमेव च । स मे सखा सदा तत्र प्रियवादी प्रियङ्करः ॥४४॥
अब्रवीदिति मां भीष्मः वचनं प्रीतिवर्धनम् । अहं प्रियतमः पुत्रः पितुर्द्रोण महात्मनः ॥४५॥
अभिषेक्ष्यति मां राज्ये स पाञ्चाल्यो यदा तदा । त्वद्भोग्यं भविता तात सखे सत्येन ते शपे ॥४६॥
मम भोगाश्च वित्तं च त्वदधीनं सुखानि च । एवमुक्त्वाऽथ वव्राज कृतास्त्रः पूजितो मया ॥४७॥
तच्च वाक्यमहं नित्यं मनसा धारयंस्तदा । सोऽहं पितृनियोगेन पुत्रलोभाद्यशस्विनीम् ॥४८॥
नातिकेशीं महाप्राज्ञामुपयेमे महाव्रताम् । अग्निहोत्रे च सत्रे च दमे च सततं रताम् ॥४९॥
अलभद्गौतमी पुत्रमश्वत्थामानमौरसम् । भीमविक्रमकर्माणमादित्यसमतेजसम् ॥५०॥
पुत्रेण तेन प्रीतोऽहं भरद्वाजो मया यथा । गोक्षीरं पिबतो दृष्ट्वा धनिनस्तत्र पुत्रकान् ॥
अश्वत्थामाऽरुदद्बालस्तन्मे सन्देहयद्दिशः ॥५१॥
न स्नातकोऽवसीदेत वर्तमानः स्वकर्मसु । इति संचिन्त्य मनसा तं देशं बहुशो भ्रमन् ॥५२॥
विशुद्धमिच्छन् गाङ्गेय धर्मोपेतं प्रतिग्रहम् । अन्तादन्तं परिक्रम्य नाध्यगच्छं पयस्विनीम् ॥५३॥
अथ पिष्टोदकेनैनं लोभयन्ति कुमारकाः । पीत्वा पिष्टरसं बालः क्षीरं पीतं मयाऽपि च ॥५४॥
ननर्त्तोत्थाय कौरव्य हृष्टो बाल्याद्विमोहितः । तं दृष्ट्वा नृत्यमानं तु बालैः परिवृतं सुतम् ॥५५॥

इस कारण मेरा मित्र हो गया । मुझसे प्रिय बचन बोलता था और मेरा प्रिय काम करता था ॥४४॥ भीष्म, वह मुझसे अत्यन्त प्रीति सूचक ऐसा बचन कहा करता था द्रोण—मैं अपने महात्मा पिता का प्रिय पुत्र हूँ ॥४५॥ वे पँचाल देश के राजा जब मेरा राज्याभिषेक करेंगे, तब तुम आनन्द पूर्वक सुख भोग करना । यह तुमसे शपथ करके मैं कहता हूँ। मेरा भोग धन और सुख सब तुम्हारे अधीन होंगे । ऐसा कहकर अस्त्र सीखने पर वह चला गया । जाने के समय मैंने उसकी पूजा की ॥४६-४७॥ मैं उसकी बात याद रखे रहा । पुनः पितरों के आदेश से पुत्र प्राप्त करने के लिए मैंने यशस्विनी व्रतधारण करने वाली बुद्धिमती अल्पकेशी कृपी से व्याह किया । जो अग्निहोत्र, यज्ञ और इन्द्रिय विजय में सदा तत्पर रहती है ॥४८-४९॥ इस कृपी से अश्वत्थामा नाम का पुत्र हुआ, जो बड़ा ही पराक्रमी, अद्‌भुत कर्म करने वाला और सूर्य के समान तेजस्वी है ॥५०॥ मैं उस पुत्र को पाकर प्रसन्न हूँ, जिस प्रकार मुझे पाकर मेरे पिता प्रसन्न हुए थे । वह मेरा पुत्र अश्वत्थामा धनी के बेटों को दूध पीता देखकर दूध पीने के लिए रोने लगा यह देख मुझे बड़ा दुख हुआ ॥५१॥ यदि किसी स्नातक की गौ मैं ले आऊँ तो इससे उसे अपने अग्निहोत्र आदि कर्मों में बाधा उठानी पड़ेगी । यह सोचकर मैं चारों ओर अनेक देशों में घूमता रहा ॥५२॥ गांगेय, मैं धर्मानुकूल विशुद्ध दान चाहता था । एक देश से दूसरे देश में घूमता रहा पर मुझे कोई गौ नहीं मिली ॥५३॥

दूसरे लड़के मेरे लड़के को पिसे चावल को जल में घोल कर देते थे और वही चावल का पानी पीकर वह समझता था कि मैंने दूध पी लिया ॥५४॥ भीष्म, बाल्यावस्था के कारण चावल के जल को ही दूध समझ कर वह बालक प्रसन्न हो जाता था और नाचने लगता

हास्यतामुपसम्प्राप्तं कश्मलं तत्र मेऽभवत् । द्रोणं धिगस्त्वधनिनं यो धनं नाधिगच्छति ।।५६।।
पिष्टोदकं सुतो यस्य पीत्वा क्षीरस्य तृष्णया । नृत्यतिस्म मुदाविष्टः क्षीरं पीतं मयाऽच्युत ।।५७।।
इति सम्भाषतां वाचं श्रुत्वा मे बुद्धिरच्यवत् । आत्मानं चात्मना गर्हन्मनसेदं व्यचिन्तयम् ।।५८।।
अपि चाहं पुरा विप्रैर्वर्जितो गर्हितो वसे । परोपसेवां पापिष्ठां न च कुर्यां धनेप्सया ।।५९।।
इति मत्वा प्रियं पुत्रं भीष्मादाय ततो ह्यहम् । पूर्वस्नेहानुरागित्वात्सदारः सौमकिं गतः ।।६०।।
अभिषिक्तं तु श्रुत्वैव कृतार्थोऽस्मीति चिन्तयन् । प्रियं सखायं सुप्रीतो राज्यस्थं समुपागमम् ।।६१।।
संस्मरन्सङ्गमं चैव वचनं चैव तस्य तत् । ततो द्रुपदमागम्य सखिपूर्वमहं प्रभो ।।६२।।
अब्रुवं पुरुषव्याघ्र सखायं विद्धिमामिति । उपस्थितस्तु द्रुपदं सखिवच्चास्मि सङ्गतः ।।६३।।
स मां निराकारमिव प्रहसन्निदमब्रवीत् । अकृतेयं तव प्रज्ञा ब्रह्मन्नातिसमञ्जसा ।।६४।।
यदात्थ मां त्वं प्रसभं सखा तेहमिति द्विज । सङ्गतानीह जीर्यन्ति कालेन परिजीर्यतः ।।६५।।
सौहृदं मे त्वया ह्यासीत्पूर्वं सामर्थ्यबन्धनम् । नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा ।।६६।।
साम्पाद्धि सख्यं भवति वैषम्यान्नोपपद्यते । न सख्यमजरं लोके विद्यते जातु कस्यचित् ।।६७।।

था । बालकों के बीच में अश्वत्थामा प्रसन्नता से नाच रहा है और लड़के उसकी हंसी कर रहे हैं, यह देखकर मेरे मन में बड़ा क्रोध हुआ । द्रोण को धिक्कार है, जो धन नहीं कमाता । जिसका लड़का चावल का जल पी कर दूध की प्यास मिटाता है, और मैंने दूध पीया, ऐसा समझ कर प्रसन्नता से नाचता है । अपने सम्बन्ध की ऐसी बातें लोगों के मुँह से सुन कर मेरी बुद्धि नष्ट हो गई । मैं स्वयं अपनी निन्दा करने लगा । अन्त में मैंने सोचा कि पहले मैं धनहीन होने पर और उसके कारण तिरस्कृत होने पर भी धन लोभ के लिए अधम परसेवा नहीं करूंगा । यह निश्चित करके हे भीष्म, पुत्र और स्त्री को साथ लेकर अपने पुराने मित्र द्रुपद के यहाँ गया॥५५-६०॥ द्रुपद का राज्याभिषेक हो गया है, यह सुन कर मैंने अपने को कृतार्थ समझ लिया था । अपने मनोरथ के पूरा होने का मुझे विश्वास हो गया था । अतएव राज्यारूढ़ अपने प्रिय मित्र के पास प्रसन्नता पूर्वक मैं गया ॥६१॥ पहले का हमारा उनका साथ, और उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण करके मैं राजा द्रुपद के यहाँ गया और उन्हें मित्र कहकर मैंने उनसे कहा—मैं आपका मित्र हूँ। इस प्रकार राजा द्रुपद के यहाँ उनके एक मित्र के रूप में गया और उनसे मिला ॥६३॥ वह मुझे एक अधम समझकर और हँसकर बोले—ब्राह्मण यह तुम्हारी बात नासमझी की है, जो तुम यह कहते हो कि महाराज मैं आपका मित्र हूँ । यह ठीक नहीं है । बहुत काल बीतने के साथ साथ मित्रता भी बीत जाती है ॥६४-६५॥ पहले तुमसे मेरी मैत्री थी और वह तुम्हारे बलवान होने के कारण थी । जो श्रोत्रिय नहीं है, उसकी श्रोत्रिय से, जो रथी नहीं है उसकी रथी से, मैत्री नहीं हो सकती ॥६६॥ समानता में मैत्री होती है, विषमता में मैत्री नहीं होती और, वह मैत्री सदा के लिए नहीं होती । सदा कोई मित्र रहा हो, यह संसार में नहीं देखा जाता ॥६७॥ बहुत समय बीतने पर वह मैत्री नष्ट हो जाती है । क्रोध के कारण भी इसका नाश हो जाता है। अतएव उस पुरानी मैत्री का ख्याल

कालोवैनं विहरति क्रोधो वैनं रहत्युत । मैवं जीर्णमुपास्व त्वं सख्यं भवत्वपाकुरु ॥६८॥
आसीत्सख्यं द्विजश्रेष्ठ त्वया मेऽर्थनिबन्धनम् । नह्यनाढ्या सखाढ्यस्य नाविद्वान्विदुषः सखा ॥६९॥
न शूरस्य सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते । न हि राज्ञामुदीर्णानामेवं भूतैर्नरैः क्वचित् ॥७०॥
सख्यं भवति मन्दात्मन् श्रिया हीनैर्धनच्युतैः । नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा ॥७१॥
नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते । अहं त्वया न जानामि राज्यार्थे संविदं कृतम् ॥७२॥
एकरात्रं तु ते ब्रह्मन्कामं दास्यामि भोजनम् । एवमुक्तस्त्वहं तेन सदारः प्रस्थितस्तदा ॥७३॥
तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय यां कर्ताऽस्म्यचिरादिव । द्रुपदेनैवमुक्तोऽहं मन्युनाऽभिपरिप्लुतः ॥७४॥
अभ्यागच्छं कुरून्भीष्म शिष्यैरर्थी गुणान्वितैः । ततोऽहं भवतः कामं संवर्धयितुमागतः ॥७५॥
इदं नागपुरं रम्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ।

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तस्तदा भीष्मो भारद्वाजमभाषत ॥७६॥

भीष्म उवाच—

अपज्यं क्रियतां चापं साध्वस्त्रं प्रतिपादय । भुंक्ष्व भोगान्भृशं प्रीतः पूज्यमानः कुरुक्षये ॥७७॥
कुरूणामस्ति यद्वित्तं राज्यं चेदं सराष्ट्रकम् । त्वमेव परमो राजा सर्वे च कुरवस्तव ॥७८॥

आप छोड़ दें और सत्य बात समझ लें ॥६८॥ ब्राह्मण श्रेष्ठ, आप से मेरी मैत्री किसी मतलब से थी और वह समाप्त हो गयी। दरिद्र धनी का और मूर्ख विद्वान् का मित्र नहीं हो सकता ॥६९॥ नपुंसक वीर का मित्र नहीं हो सकता। मूर्ख, किसी प्रसिद्ध राजा का तुम्हारे समान दरिद्र से मैत्री कभी हो सकती है। जो श्रोत्रिय नहीं हैं, वह श्रोत्रिय का, जो रथी नहीं है वह रथी का, जो राजा नहीं है, वह राजा का मित्र कैसे हो सकता है। राज्य पाने पर तुम्हारे लिए मैंने कोई प्रतिज्ञा की है, इसका मुझे स्मरण नहीं है ॥७०-७२॥ ब्रह्मन्, एक रात आप मेरे यहाँ रह सकते हैं। और जो चाहें वह भोजन आपको मिल सकता है। उसकी यह बात सुनकर स्त्री के साथ मैं वहां से लौट आया ॥७३॥ द्रुपद की इन बातों से मुझे बड़ा क्रोध आया और मैं प्रतिज्ञा करके वहां से लौट आया। जो प्रतिज्ञा शीघ्र ही मैं पूरा करनेवाला हूँ ॥७४॥ भीष्म, मैं गुणवान शिष्यों की खोज में कुरुदेश में आया हूं और यहां आपकी इच्छापूर्ण करने के लिए अर्थात् आपकी आज्ञा के अनुसार काम करने के लिए इस रमणीय हस्तिनापुर में आया हूँ। कहिए, क्या करें ?

वैशम्पायन बोले—द्रोण के ऐसा कहने पर भीष्म उनसे बोले ॥७५-७६॥

भीष्म बोले—आप राजकुमारों को धनुर्वेद की शिक्षा दें। इस चढ़े धनुष को उतार दीजिए। अर्थात् यहीं रहने का निश्चय कीजिए। कुरुओं के द्वारा आदर पाकर, सब सुखों को भोगते हुए प्रसन्नतापूर्वक यहाँ रहिए ॥७७॥ यह जो कुरुओं का राज्य है, जो धन है वह सब आप का है। और, कौरव आपके अधीन हैं। ब्रह्मन्, जो कुछ आप के विचार थे, जो कुछ आपके

यच्च ते प्रार्थितं ब्रह्मन् कृतं तदिति चिन्त्यताम् । दिष्ट्या प्राप्तोऽसि विप्रर्षे महान्मेऽनुग्रहः कृतः ७९

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि भीष्मद्रोणसमागमे एकत्रिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१३१॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः सम्पूजितो द्रोणो भीष्मेण द्विपदांवरः । विशश्राम महातेजाः पूजितः कुरुवेश्मनि ॥१॥
विश्रान्तेऽथ गुरौ तस्मिन्पौत्रानादाय कौरवान् । शिष्यत्वेन ददौ भीष्मो वसूनि विविधानि च॥२॥
गृहं च सुपरिच्छन्नं धनधान्यसमाकुलम् । भारद्वाजाय सुप्रीतः प्रत्यपादयत प्रभुः ॥३॥
स तान् शिष्यान्महेष्वासःप्रतिजग्राह कौरवान् । पाण्डवान्धार्तराष्ट्रांश्च द्रोणो मुदितमानसः ॥४॥
प्रतिगृह्य च तान्सर्वानद्रोणो वचनमब्रवीत् । रहस्येकः प्रतीतात्मा कृतोपसदनांस्तथा ॥५॥
द्रोण उवाच—
कार्यं मे कांक्षितं किञ्चिद्यदि संपरिवर्तते । कृतास्त्रैस्तत्प्रदेयं मे तदेतद्वदतानघाः ॥६॥
वैशम्पायन उवाच—
तच्छ्रुत्वा कौरवेयास्ते तूष्णीमासन्विशांपते । अर्जुनस्तु ततः सर्वं प्रतिजज्ञे परन्तप ॥७॥

मनोरथ थे, वे सब पूरे हुए, ऐसा समझिए । ब्रह्मर्षि, भाग्य से ही आप आये हैं । आपने हम पर बड़ी कृपा की ॥७८-७९॥

एकत्रिंशदधिक शततम अध्याय ।

राजकुमारों की अस्त्रशिक्षा । अर्जुन की विशेषता । एकलव्य का वृत्तान्त और राजकुमारों की परीक्षा ।

वैशम्पायन बोले—मनुष्यों में श्रेष्ठ द्रोण को भीष्म ने सम्मानित किया और वे सम्मानित होकर उस दिन कुरुराज के भवन में ही ठहरे । उस दिन उन्होंने वहीं विश्राम किया ॥१॥ गुरु द्रोण के विश्राम कर लेने पर भीष्म ने अपने पोतों को, कौरव और पाण्डवों को, पढ़ने के लिए शिष्य के रूप में सौंपा । और अनेक प्रकार का धन दिया ॥२॥ धनधान्यपूर्ण एक मकान भी भारद्वाज द्रोण को प्रसन्न हो कर रहने के लिए दिया ॥३॥ महाधनुर्धारी द्रोण ने उन कौरवों को शिष्य बनाना स्वीकार किया । पाण्डु और कौरव दोनों को शिष्य बना कर द्रोण प्रसन्नता पूर्वक एकान्त में उन सब से इस प्रकार बोले, जब कि वे बालक उनको प्रणाम करके बैठे ॥४-५॥

द्रोण बोले— हे निष्पापो, एक काम करने की अभिलाषा मेरे हृदय में है । अस्त्र विद्या में निपुण हो कर तुम लोगों में से कौन वीर मेरा वह काम कर देगा । इसका उत्तर दो ॥६॥

वैशम्पायन बोले—द्रोण की बातों का किसी ने भी उत्तर नहीं दिया । सभी कौरव चुप रहे । तब अर्जुन ने द्रोणाचार्य के समस्त कार्यों को पूरा करने की प्रतिज्ञा की ॥७॥ इसमें गुरु

ततोऽर्जुनं तदा मूर्ध्नि समाघ्राय पुनः पुनः। प्रीतिपूर्वं परिष्वज्य प्ररुरोद मुदा तदा ॥८॥
ततो द्रोणः पाण्डुपुत्रानस्त्राणि विविधानि च। ग्राहयामास दिव्यानि मानुषाणि च वीर्यवान् ॥९॥
राजपुत्रास्तथा चान्ये समेत्य भरतर्षभ। अभिजग्मुस्ततो द्रोणमस्त्रार्थे द्विजसत्तमम् ॥१०॥
वृष्णयश्चान्धकाश्चैव नानादेश्याश्च पार्थिवाः। सूतपुत्रश्च राधेयो गुरुं द्रोणमियात्तदा ॥११॥
स्पर्धमानस्तु पार्थेन सूतपुत्रोऽत्यमर्षणः। दुर्योधनं समाश्रित्य सोऽवमन्यत पाण्डवान् ॥१२॥
अभ्ययात्स ततो द्रोणं धनुर्वेदचिकीर्षया। शिक्षाभुजबलोद्योगैस्तेषु सर्वेषु पाण्डवाः ॥१३॥
अस्त्रविद्यानुरागाच्च विशिष्टोऽभवदर्जुनः। तुल्येष्वस्त्रप्रयोगेषु लाघवे सौष्ठवेषु च ॥१४॥
सर्वेषामेव शिष्याणां बभूवाभ्यधिकोऽर्जुनः। ऐन्द्रिमप्रतिमं द्रोण उपदेशेष्वमन्यत ॥१५॥
एवं सर्वकुमाराणामिष्वस्त्रं प्रत्यपादयत्। कमण्डलुं च सर्वेषां प्रायच्छच्चिरकारणात् ॥१६॥
पुत्राय च ददौ कुम्भमविलम्बनकारणात्। यावत्ते नोपगच्छन्ति तावदस्मै परां क्रियाम् ॥१७॥
द्रोण आचष्ट पुत्राय कर्म तज्जिष्णुरौहत। ततः स वारुणास्त्रेण पूरयित्वा कमण्डलुम् ॥१८॥
सममाचार्यपुत्रेण गुरुमभ्येति फाल्गुनः। आचार्यपुत्रात्तस्मात्तु विशेषोपचयेऽपृथक् ॥१९॥
न व्यहीयत मेधावी पार्थोऽप्यस्त्रविदां वरः। अर्जुनः परमं यत्नमातिष्ठद्गुरुपूजने ॥२०॥

बहुत प्रसन्न हुए। प्रेमपूर्वक बारबार अर्जुन का मस्तक सूँघ कर उन्हें छाती से लगा कर रोने लगे ॥८॥ अनन्तर, द्रोण, कौरव और पाण्डवों को लौकिक और दिव्य अनेक प्रकार के अस्त्रों की शिक्षा देने लगे ॥९॥ भरतश्रेष्ठ इनके अतिरिक्त दूसरे राजकुमार भी अस्त्र शिक्षा के लिए दल के दल द्रोणाचार्य के पास आने लगे। वृष्णि, अन्धक तथा अन्य अनेक देशों के राजा और सूत पुत्र राधेय (कर्ण) द्रोणाचार्य के पास शिक्षा प्राप्त करने आये ॥१०-११॥ सूत पुत्र राधेय बड़ा ही क्रोधी था। वह अर्जुन से स्पर्द्धा रखता था। दुर्योधन से मिलकर पाण्डवों का तिरस्कार किया करता था। वह भी धनुर्वेद सीखने के लिए द्रोणाचार्य के पास आया। उन सबों में अर्जुन श्रेष्ठ थे। शिक्षा, भुज बल, अस्त्र विद्या की प्राप्ति के लिए उद्योग और अनुराग के कारण अर्जुन सब से बढ़े चढ़े थे। अस्त्र चलाने में सभी बराबर थे, पर अर्जुन की शीघ्रता और सुन्दरता सबसे बढ़ी चढ़ी थी। अतएव वे सबसे श्रेष्ठ माने जाते थे। द्रोणाचार्य अपने शिष्यों में उन्हीं को अधिक योग्य समझते थे ॥१२-१५॥ इस प्रकार वे, सभी राजकुमारों को अस्त्र विद्या की शिक्षा देने लगे।

मुनि ने अपने सब शिष्यों को जल लाने के लिए कमण्डलु दी थी। जिससे छोटा मुँह होने के कारण वे देर से भरें और शिष्यों के लौटने में बिलम्ब हो ॥१६॥ अपने पुत्र अश्वत्थामा को घड़ा दिया था जिससे बड़ा मुह होने के कारण वह जल्दी भर जाय और अश्वत्थामा जल्दी लौट आवे। ऐसा ही होता था। अश्वत्थामा और शिष्यों के आने के पहले ही लौट आया करता था और उस समय द्रोणाचार्य उसको अस्त्र विद्या की गुप्त बातें सिखाते थे। यह बात अर्जुन को मालूम हो गयी। अतः वारुणास्त्र से अपनी कमण्डल शीघ्र ही भर कर अश्वत्थामा के साथ ही वे भी गुरु के पास पहुंच जाने लगे। जिससे वे भी अश्वत्थामा के बराबर जान गये। कभी

अस्त्रे च परमं योगं प्रियो द्रोणस्य चाभवत् । तं दृष्ट्वा नित्यमुद्युक्तमिष्वस्त्रं प्रति फाल्गुनम् ॥२१॥
आहूय वचनं द्रोणो रहः सूदमभाषत । अन्धकारेऽर्जुनायान्नं न देयं ते कदाचन ॥
न चाख्येयमिदं चापि मद्वाक्यं विजये त्वया ॥२२॥
ततः कदाचिद्भुञ्जाने प्रववौ वायुरर्जुने । तेन तत्र प्रदीपः स दीप्यमानो विलोपितः ॥२३॥
भुङ्क्त एव तु कौन्तेयो नास्यादन्यत्र वर्तते । हस्तस्तेजस्विनस्तस्य अनुग्रहणकारणात् ॥२४॥
तदभ्यासकृतं मत्वा रात्रावपि स पाण्डवः । योग्यां चक्रे महाबाहुर्धनुषा पाण्डुनन्दनः ॥२५॥
तस्य ज्यातलनिर्घोषं द्रोणः शुश्राव भारत । उपेत्य चैनमुत्थाय परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥२६॥
द्रोण उवाच—
प्रयतिष्ये तथा कर्तुं यथा नान्यो धनुर्धरः । त्वत्समो भविता लोके सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥२७॥
वैशम्पायन उवाच—
ततो द्रोणोऽर्जुनं भूयो हयेषु च गजेषु च । रथेषु भूमावपि च रणशिक्षामशिक्षयत् ॥२८॥
गदायुद्धेऽसिचर्यायां तोमरप्रासशक्तिषु । द्रोणः सङ्कीर्णयुद्धे च शिक्षयामास कौरवान् ॥२९॥
तस्य तत्कौशलं श्रुत्वा धनुर्वेदजिघृक्षवः । राजानो राजपुत्राश्च समाजग्मुः सहस्रशः ॥३०॥

वेशो न रही । अर्जुन बुद्धिमान थे, अस्त्रज्ञों में श्रेष्ठ थे, वे अश्वत्थामा से कम न रहे। अर्जुन गुरु की सेवा में विशेष ध्यान रखने लगे और अस्त्र विद्या के अभ्यास से गुरु के प्रिय हो गये । अर्जुन वाण चलाने के अभ्यास में सदा उद्योग करता रहता है, यह बात जान कर द्रोणाचार्य ने एक दिन रसोई बनाने वाले से कहा—अँधेरे में अर्जुन को कभी भोजन न देना, और उनसे यह भी न कहना कि मैंने तुमसे ऐसा कहा है ॥१७-२२॥ तब से वह ऐसा ही करता था । एक दिन अर्जुन के भोजन करने के समय वायु के चलने से दीपक बुझ गया, जो वहां जल रहा था । वहां अन्धकार हो गया । अन्धकार में भी अर्जुन खाते ही रहे । तेजस्वी अर्जुन का हाथ मुँह से इधर उधर नहीं गया ; क्योंकि वैसा ही अभ्यास था ॥२३-२४॥ इस घटना से अर्जुन को अभ्यास का महत्व मालूम हुआ और वे रात को भी अँधेरे में महाबाहु अर्जुन अस्त्र चलाने का अभ्यास करने लगे ॥२५॥ अर्जुन के धनुष के रोंदे का शब्द एक दिन द्रोणाचार्य ने सुना और वे उनके पास जाकर उन्हें छाती से लगा कर इस प्रकार बोले ॥२६॥

द्रोणाचार्य बोले—मैं वैसा प्रयत्न करूँगा जिससे कोई भी धनुर्धर इस लोक में तुम्हारे समान न होगा । यह तुमसे मैं सत्य कहता हूँ ॥२७॥

वैशम्पायन बोले—उस दिन से द्रोणाचार्य अर्जुन को हाथी घोड़ा और रथ पर चढ़कर तथा जमीन में खड़ा होकर युद्ध करने की शिक्षा देने लगे ॥२८॥ अन्य कौरवों को गदा युद्ध तलवार चलाना तोमरशक्ति और भाला चलाने की शिक्षा देने लगे । सङ्कीर्ण युद्ध (जिस युद्ध में अनेक अस्त्रों से काम लिया जाय) की भी वे शिक्षा देने लगे ॥२९॥ इन राजकुमारों को द्रोणाचार्य जिस प्रकार धनुर्वेद की शिक्षा देते थे उससे उनकी कीर्ति फैल गयी और उनके पास चारों ओर

ततो निषादराजस्य हिरण्यधनुषः सुतः। एकलव्यो महाराज द्रोणमभ्याजगाम ह ॥३१॥
न स तं प्रतिजग्राह नैषादिरिति चिन्तयन्। शिष्यं धनुषि धर्मज्ञस्तेषामेवान्ववेक्षया ॥३२॥
सतु द्रोणस्य शिरसा पादौ गृह्य परन्तपः। अरण्यमनुसम्प्राप्य कृत्वा द्रोणं महीमयम् ॥३३॥
तस्मिन्नाचार्यवृत्तिं च परमामास्थितस्तदा। इष्वस्त्रे योगमातस्थे परं नियममास्थितः ॥३४॥
परया श्रद्धयोपेतो योगेन परमेण च। विमोक्षादानसन्धाने लघुत्वं परमाप सः ॥३५॥
अथ द्रोणाभ्यनुज्ञाताः कदाचित्कुरुपाण्डवाः। रथैर्विनिर्ययुः सर्वे मृगयामरिमर्दन ॥३६॥
तत्रोपकरणं गृह्य नरः कश्चिद्यदृच्छया। राजन्ननुजगामैकः श्वानमादाय पाण्डवान् ॥३७॥
तेषां विचरतां तत्र तत्तत्कर्मचिकीर्षया। श्वा चरन्स वने मूढ़ो नैषादिं प्रति जग्मिवान् ॥३८॥
स कृष्णमलदिग्धाङ्गं कृष्णाजिनजटाधरम्। नैषादिं श्वा समालक्ष्य भषँस्तस्थौ तदन्तिके ॥३९
तदा तस्याथ भषतः शुनः सप्त शरान्मुखे। लाघवं दर्शयन्नस्त्रे मुमोच युगपद्यथा ॥४०॥
स तु श्वा शरपूर्णास्यः पाण्डवानाजगाम ह। तं दृष्ट्वा पाण्डवा वीराः परं विस्मयमागताः॥४१॥
लाघवं शब्दवेधित्वं दृष्ट्वा तत्परमं तदा। प्रेक्ष्य तं व्रीडिताश्चासन्प्रशशंसुश्च सर्वशः ॥४२॥

से राजा और राजकुमार अस्त्र सीखने के लिए आने लगे ॥३०॥ महाराज, एक दिन हिरण्यधनु नामक निषाद राज का पुत्र एकलव्य द्रोणाचार्य के पास आया ॥३१॥ पर द्रोणाचार्य ने उसको शिष्य नहीं बनाया, उन्होंने उसे निषाद समझ कर तथा धनुर्विद्या में यह कौरवों से बढ़ न जाय इस विचार से उसे शिष्य न बनाया ॥३२॥ वह वीर द्रोणाचार्य के चरणों को प्रणाम करके बन में चला गया और वहाँ उसने द्रोण की मिट्टी की मूर्ति बनायी, और उसी को आचार्य मानकर उसमें दृढ़ भक्ति रखकर बाण चलाने का अभ्यास बड़े नियम के साथ करने लगा ॥३३-३४॥ गुरु में अत्यन्त श्रद्धा रखने तथा निरन्तर अभ्यास करने से, बाण छोड़ना, दूसरे का बाण रोकना और बाण चढ़ाना आदि में शीघ्रता प्राप्त करली। अर्थात्, अभ्यास के कारण वह इन सब कामों को बड़ी शीघ्रता से कर डालता था ॥३५॥

एक बार द्रोणाचार्य की आज्ञा से कौरव और पाण्डव सभी शिकार खेलने के लिए रथ पर चढ़कर नगर से निकले ॥३६॥ उन लोगों का एक आदमी शिकार सम्बन्धी कोई चीज लेकर एक कुत्ते के साथ पाण्डवों के पास जा रहा था ॥३७॥ वे राजकुमार भी उस वन में शिकार के लिए इधर उधर घूम रहे थे। इसी बीच में उनका एक कुत्ता एकलव्य के पास चला गया ॥३८॥ काले मैला शरीर और काला चमड़ा तथा जटा धारण करनेवाले उस निषाद को देखकर कुत्ता भौंकने लगा और उसी के पास ठहर गया ॥३९॥ एकलव्य ने बड़ी शीघ्रता से अपने अस्त्र चलाने की निपुणता दिखलाते हुए उस भौंकनेवाले कुत्ते के मुंह में सात बाण मारे। मालूम होता था जैसे वे बाण एक ही साथ चलाये गये हों ॥४०॥ वह कुत्ता उसी अवस्था में पाण्डवों के पास आया। उसका मुंह सात बाणों से भरा था। यह देखकर वीर पाण्डव बहुत विस्मित हुए ॥४१॥ उस बाण चलाने वाले की शीघ्रता और शब्दवेध देखकर वे राजकुमार लज्जित हुए और उसकी

तं ततोऽन्वेषमाणास्ते वने वननिवासिनम् । ददृशुः पाण्डवा राजन्नस्यन्तमनिशं शरान् ॥४३॥
न चैनमभिजानंस्ते तदा विकृतदर्शनम् । तथैनं परिपप्रच्छुः को भवान्कस्य वेत्युत ॥४४॥

एकलव्य उवाच—

निषादाधिपतेर्वीरा हिरण्यधनुषः सुतम् । द्रोणशिष्यं च मां वित्त धनुर्वेदकृतश्रमम् ॥४५॥

वैशम्पायन उवाच—

ते तमाज्ञाय तत्वेन पुनरागम्य पाण्डवाः । यथा वृत्तं वने सर्वं द्रोणायाचख्युरद्भुतम् ॥४६॥
कौन्तेयस्त्वर्जुनो राजन्नेकलव्यमनुस्मरन् । रहो द्रोणं समासाद्य प्रणयादिदमब्रवीत् ॥४७॥

अर्जुन उवाच—

तदाहं परिरभ्यैकः प्रीतिपूर्वमिदं वचः । भवतोऽन्यो न मे शिष्यस्त्वद्विशिष्टो भविष्यति ॥४८॥
अथ कस्मान्मद्विशिष्टो लोकादपि च वीर्यवान् । अन्योऽस्ति भवतः शिष्यो निषादाधिपते सुतः ४९

वैशम्पायन उवाच—

मुहूर्तमिव तं द्रोणश्चिन्तयित्वा विनिश्चयम् । सव्यसाचिनमादाय नैषादिं प्रतिजग्मिवान् ॥५०॥
ददर्श मलदिग्धाङ्गं जटिलं चीरवाससम् । एकलव्यं धनुष्पाणिमस्यन्तमनिशं शरान् ॥५१॥

प्रशंसा करने लगे ॥४२॥ राजकुमार ने उस वनवासी बाण चलानेवाले को ढूंढ़ते ढूंढ़ते उसे देखा। वह निरन्तर बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था ॥४३॥ पाण्डव उसे पहिचान न सके, क्योंकि उसका स्वरूप बहुत बदल गया था, अतएव उन लोगों ने उससे पूछा कि आप कौन हैं और किसके पुत्र हैं ॥४४॥

एकलव्य बोले—वीरों में निषादाधिपति हिरण्यधनु का पुत्र और द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ ; और धनुर्वेद का अभ्यास कर रहा हूँ । यही मेरा परिचय है ॥४५॥

वैशम्पायन बोले—पाण्डवों ने उस बाण चलानेवाले का पूरा पूरा परिचय पा लिया और लौटकर आने पर वन में जो कुछ हुआ था वह सब उन लोगों ने द्रोणाचार्य से कहा ॥४६॥ कुन्तीपुत्र अर्जुन एकलव्य को भूल नहीं सका था। वह उसका स्मरण करता हुआ द्रोणाचार्य को एकान्त में पाकर, प्रेमपूर्वक यह बोला ॥४७॥

अर्जुन बोले—उस समय आपने मुझे छाती से लगा कर प्रेमपूर्वक यह कहा था कि मेरा कोई शिष्य तुमसे बड़ा न होगा, तुमसे अधिक योग्य न होगा फिर आपका यह शिष्य निषाद-राज का पुत्र मुझसे तथा और लोगों से भी पराक्रमी क्यों है ॥४८॥

वैशम्पायन बोले—द्रोणाचार्य थोड़ी देर तक सोचते रहे। पुनः कुछ निश्चय करके और अर्जुन को साथ लेकर वे एकलव्य के पास गये ॥५०॥ उन्होंने देखा, एकलव्य मैले पुराने कपड़े पहने हुए हैं, उसके सिर पर जटा हो गयी है और शरीर पर मैल जमी हुई है। हाथ में बाण लेकर वह बराबर बाण चलाने का अभ्यास कर रहा है ॥५१॥ एकलव्य ने द्रोणाचार्य को पास

एकलव्यस्तु तं दृष्ट्वा द्रोणमायान्तमन्तिकात् । अभिवाद्योपसंगृह्य जगाम शिरसा महीम् ॥५२॥
पूजयित्वा ततो द्रोणं विधिवत्स निषादजः । निवेद्य शिष्यमात्मानं तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥५३॥
ततो द्रोणोऽब्रवीद्राजन्नेकलव्यमिदं वचः । यदि शिष्योऽसि मे वीर वेतनं दीयतां मम ॥५४॥
एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा प्रीयमाणोऽब्रवीदिदम् ।

एकलव्य उवाच— किं प्रयच्छामि भगवन्नाज्ञापयतु मां गुरुः ॥५५॥
न हि किञ्चिददेयं मे गुरवे ब्रह्मवित्तम ।

वैशम्पायन उवाच— तमब्रवीत्त्वयाङ्गुष्ठो दक्षिणो दीयतामिति ॥५६॥
एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा वचो द्रोणस्य दारुणम् । प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्सत्ये च नियतः सदा ॥५७
तथैव हृष्टमनसस्तथैवादीनमानसः । छित्वाऽविचार्य तं प्रादाद्द्रोणायाङ्गुष्ठमात्मनः ॥५८॥
ततः शरं तु नैषादिरङ्गुलीभिर्व्यकर्षत । न तथा च स शीघ्रोऽभूद्यथा पूर्वं नराधिप ॥५९॥
ततोऽर्जुनः प्रीतमना बभूव विगतज्वरः । द्रोणश्च सत्यवागासीन्नान्योऽभिभविताऽर्जुनम् ॥६०॥
द्रोणस्य तु तदा शिष्यौ गदायोग्यौ बभूवतुः । दुर्योधनश्च भीमश्च सदा संरब्धमानसौ ॥६१॥
अश्वत्थामा रहस्येषु सर्वेष्वभ्यधिकोऽभवत् । तथातिपुरुषानन्यान्त्सारुकौ यमजावुभौ ॥६२॥
युधिष्ठिरो रथश्रेष्ठः सर्वत्र तु धनञ्जयः । प्रथितः सागरान्तायां रथयूथपयूथपः ॥६३॥

आते देखकर पृथ्वी में मस्तक रखकर प्रणाम किया। विधिपूर्वक उनकी पूजा करके वह शिष्य रूप में हाथ जोड़कर उनके आगे खड़ा हो गया और बोला कि मैं आपका शिष्य हूं ॥५२,५३॥ राजन् द्रोणाचार्य ने उस समय एकलव्य से यह कहा, वीर यदि तुम मेरे शिष्य हो तो मुझे वेतन (दक्षिणा दो ॥५४॥ यह सुनकर एकलव्य बहुत प्रसन्न हुआ और बोला भगवन् मैं क्या दूँ ? मुझे गुरु महराज आज्ञा दें ॥५५॥ गुरु के लिए कुछ भी अदेय मुझे नहीं है। श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी, आप ऐसा समझें।

वैशम्पायन बोले—द्रोणाचार्य ने उससे कहा कि तू मुझे दाहिना अँगूठा दे दे ॥५६॥ गुरु का वह भयंकर बचन एकलव्य ने सुना। सत्य में सदा दृढ़ रहनेवाले, एकलव्य ने अपनी प्रतिज्ञा स्मरण की ॥५७॥ उसका मुँह उसी तरह से प्रसन्न था, उसके मनमें उसी तरह से प्रसन्नता थी, उसके मन में उसी तरह से उत्साह था। उसने बिना सोचे विचारे अँगूठा काट कर द्रोणाचार्य को दे दिया ॥५८॥ तब से एकलव्य अङ्गुलियों से बाण खींचने लगा, पर उसकी वह शीघ्रता न रही जो पहले थी ॥५९॥ इससे अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए, उनके मन की चिन्ता मिट गयी। द्रोणाचार्य भी सत्यवादी हो गये, क्योंकि अब अर्जुन को परास्त करनेवाला कोई नहीं रह गया ॥६०॥

गदायुद्ध में दो शिष्य बड़े योग्य और बड़े निपुण निकले भीमसेन और दुर्योधन। पर, ये क्रोधी थे। एक दूसरे से जलते थे ॥६१॥ अश्वत्थामा बाण विद्या के रहस्य जानने में सब से श्रेष्ठ थे। नकुल और सहदेव तलवार चलाने में सबसे योग्य थे ॥६२॥ युधिष्ठिर रथपर बैठकर

बुद्धियोगबलोत्साहैः सर्वास्त्रेषु च निष्ठितः । अस्त्रे गुर्वनुरागे च विशिष्टोऽभवदर्जुनः ॥६४॥
तुल्येष्वस्त्रोपदेशेषु सौष्ठवेन च वीर्यवान् । एकः सर्वकुमाराणां बभूवातिरथोऽर्जुनः ॥६५॥
प्राणाधिकं भीमसेनं कृतविद्यं धनञ्जयम् । धार्तराष्ट्रा दुरात्मानो नामृष्यन्त परस्परम् ॥६६॥
तांस्तु सर्वान्समानीय सर्वविद्यास्त्रशिक्षितान् । द्रोणः प्रहरणज्ञाने जिज्ञासुः पुरुषर्षभः ॥६७॥
कृत्रिमं भासमारोप्य वृक्षाग्रे शिल्पिभिः कृतम् । अविज्ञातं कुमाराणां लक्ष्यभूतमुपादिशत् ॥६८॥
द्रोण उवाच—

शीघ्रं भवन्तः सर्वेऽपि धनूंष्यादाय सर्वशः । भासमेतं समुद्दिश्य तिष्ठध्वं सन्धितेषवः ॥६९॥
मद्वाक्यसमकालं तु शिरोऽस्य विनिपात्यताम् । एकैकशो नियोक्ष्यामि तथा कुरुत पुत्रकाः ॥७०॥
वैशम्पायन उवाच—

ततो युधिष्ठिरं पूर्वमुवाचाङ्गिरसांवरः । सन्धत्स्व बाणं दुर्धर्षमद्वाक्यान्ते विमुञ्च तम् ॥७१॥
ततो युधिष्ठिरः पूर्वं धनुर्गृह्य परन्तपः । तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः ॥७२॥
ततो विततधन्वानं द्रोणस्तं कुरुनन्दनम् । स मुहूर्तादुवाचेदं वचनं भरतर्षभ ॥७३॥
पश्यैनन्तं द्रुमाग्रस्थं भासं नरवरात्मज । पश्याम्यित्येवमाचार्यं प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ॥७४॥

युद्ध करने में निपुण हुए, और अर्जुन सभी में योग्य थे। उनकी प्रसिद्धि समस्त पृथ्वी में हो गयी। वे प्रधान सेनापति होने के योग्य हो गये ॥६३॥ बुद्धि, अभ्यास, बल और उत्साह के कारण अर्जुन समस्त अस्त्रों के पूर्ण ज्ञाता हो गये। अस्त्र विद्या में तथा गुरुभक्ति में वे सबसे बढ़ चढ़ कर निकले ॥६४॥ गुरु ने सब राजकुमारों को एक ही समान उपदेश दिया था पर, अपनी विशेषता के कारण, पराक्रमी अर्जुन सबसे श्रेष्ठ हो गये और वे अतिरथ कहलाने लगे ॥६५॥ धृतराष्ट्र के दुरात्मा पुत्र, भीम को महाबली और अर्जुन को बाण विद्या में निपुण देखकर उनसे द्वेष रखने लगे ॥६६॥ एक बार द्रोणाचार्य ने अस्त्र विद्या पानेवाले समस्त राजकुमारों को एकत्र किया। क्योंकि, वे जानना चाहते थे कि कौन किस प्रकार अस्त्र चलाता है। कौन कैसा निशाना लगाता है। उन्होंने एक पक्षी बनवाया और उसे एक पेड़ पर रखवा दिया। पर, राजकुमारों को इस बात की खबर उन्होंने न होने दी। उसे ही उन्होंने लक्ष्य बानया ॥६७-६८॥

द्रोण बोले—तुम लोग शीघ्र ही धनुष लेकर खड़े हो जाओ और उस पक्षी को निशाना बनाकर बाण चढ़ाकर तैयार रहो। जब मैं कहूँ, उसी समय इसका सिर काट लो। एक,एक को मैं कहूँगा, और जिससे जब मैं कहूँ, तभी वह मेरी आज्ञा के अनुसार करे ॥६९-७०॥

वैशम्पायन बोले—अंगिरा गोत्रियों में प्रधान द्रोण पहले युधिष्ठिर से बोले-वीर युधिष्ठिर, बाण चढ़ा लो। और मेरी आज्ञा पाते ही उसे छोड़ो ॥७१॥ परन्तप युधिष्ठिर ने धनुष चढ़ाया और वे गुरु की आज्ञा के अनुसार पक्षी को निशाना बनाकर खड़े हो गये ॥७२॥ युधिष्ठिर धनुष चढ़ाये खड़े थे थोड़ी देर के बाद द्रोणाचार्य उनसे बोले ॥७३॥ राजपुत्र, पेड़ के सिरे पर जो

स मुहूर्तादिव पुनर्द्रोणस्तं प्रत्यभाषत ।

द्रोण उवाच— अथ वृक्षमिमं मां वा भ्रातॄन्वाऽपि प्रपश्यसि ॥७५॥

तमुवाच स कौन्तेयः पश्याम्येनं वनस्पतिम् । भवन्तं च तथा भ्रातॄन् भासं चेति पुनः पुनः ॥७६॥

तमुवाचापसर्पेति द्रोणोऽप्रीतमना इव । नैतच्छक्यं त्वया वेद्धुं लक्ष्यमित्येव कुत्सयन् ॥७७॥

ततो दुर्योधनादींस्तान् धार्त्तराष्ट्रान्महायशाः । तेनैव क्रमयोगेन जिज्ञासुः पर्यपृच्छत ॥७८॥

अन्यांश्च शिष्यान्भीमादीन्राज्ञश्चैवान्यदेशजान् । तथा च सर्वे तत्सर्वं पश्याम इति कुत्सिताः ॥७९॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि द्रोणशिष्यपरीक्षायां
द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो धनञ्जयं द्रोणः स्मयमानोऽभ्यभाषत । त्वयेदानीं प्रहर्तव्यमेतल्लक्ष्यं विलोक्यताम् ॥१॥

मद्वाक्यसमकालं ते मोक्तव्योऽत्र भवेच्छरः । वितत्य कार्मुकं पुत्र तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम् ॥२॥

पक्षी रखा गया है, उसे देखो। युधिष्ठिर ने कहा—आचार्य, मैं उसे देख रहा हूँ ॥७४॥ थोड़ी देर के बाद द्रोणाचार्य ने फिर उनसे कहा—

द्रोण बोले—क्या तुम इस वृक्ष को, मुझको और अपने भाइयों को भी देखते हो ?॥७५॥

युधिष्ठिर बोले—मैं इस पेड़ को देखता हूँ, आप को देखता हूँ, भाइयों को देखता हूँ, और उस पक्षी को भी देखता हूँ ॥७६॥ यह सुनकर द्रोणाचार्य अप्रसन्न हुए। तुम इस लक्ष्य को नहीं वेध सकते हो। इस प्रकार उनका तिरस्कार करके द्रोण ने कहा कि तुम वहाँ से हट जाओ ॥७७॥ अनन्तर, धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि से भी यशस्वी द्रोण ने उसी प्रकार पूछा, जिस प्रकार उन्होंने युधिष्ठिर से पूछा था। पुनः भीम आदि तथा अन्य देश के राजाओं से भी जो उनके शिष्य होने आये थे, उन्होंने वैसा ही पूछा। उन लोगों ने भी वैसाही उत्तर दिया, जिससे अप्रसन्न हो कर द्रोण ने उन लोगों की निन्दा की ॥७८-७९॥

द्वात्रिंशदधिक शततम अध्याय।

अर्जुन का लक्ष्य वेध। ग्राह से अर्जुन के द्वारा द्रोणाचार्य का उद्धार और ग्राह का वध। ब्रह्म शिरा अस्त्र की प्राप्ति।

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार सब राजकुमारों से पूछने पर द्रोण हँस कर अर्जुन से बोले—अब तुम बाण चलाओ। इस लक्ष्य को देखो ॥१॥ मेरी आज्ञा पाते ही तुम इस पर बाण छोड़ना। पुत्र, बाण चढ़ा कर थोड़ी देर प्रतीक्षा करो ॥२॥ गुरु के ऐसा कहने पर अर्जुन ने धनुष

एवमुक्तः सव्यसाची मण्डलीकृतकार्मुकः। तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः ॥३॥
मुहूर्तादिव तं द्रोणस्तथैव समभाषत। पश्यस्येनं स्थितं भासं द्रुमं मामपि चार्जुन ॥४॥
पश्याम्येकं भासमिति द्रोणं पार्थोऽभ्यभाषत। न तु वृक्षं भवन्तं वा पश्यामीति च भारत ॥५॥
ततः प्रीतमना द्रोणो मुहूर्तादिव तं पुनः। प्रत्यभाषत दुर्धर्षः पाण्डवानां महारथम् ॥६॥
भासं पश्यसि यद्येनं तथा ब्रूहि पुनर्वचः। शिरःपश्यामि भासस्य न गात्रमिति सोऽब्रवीत् ॥७॥
अर्जुनेनैव मुक्तस्तु द्रोणो हृष्टतनूरुहः। मुञ्चस्वेत्यब्रवीत्पार्थं स मुमोचाविचारयन् ॥८॥
ततस्तस्य नगस्थस्य क्षुरेण निशितेन च। शिर उत्कृत्य तरसा पातयामास पाण्डवः ॥९॥
तस्मिन्कर्मणि संसिद्धे पर्यष्वजत पाण्डवम्। मेने च द्रुपदं सङ्ख्ये सानुबन्धं पराजितम् ॥१०॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य सशिष्योऽङ्गिरसां वरः। जगाम गङ्गामभितो मज्जितुं भरतर्षभ ॥११॥
अवगाढमथो द्रोणं सलिले सलिलेचरः। ग्राहो जग्राह बलवान् जङ्घान्ते कालचोदितः ॥१२॥
स समर्थोऽपि मोक्षाय शिष्यान्सर्वानचोदयत्। ग्राहं हत्वा तु मोक्षयध्वंमामिति त्वरयन्निव ॥१३॥
तद्वाक्यसमकालं तु वीभत्सुर्निशितैः शरैः। अवार्यैः पञ्चभिर्ग्राहं मग्नमम्भस्यताडयत् ॥१४॥
इतरे त्वथ संमूढास्तत्रतत्र प्रपेदिरे। तं तु दृष्ट्वा क्रियोपेतं द्रोणोऽमन्यत पाण्डवम् ॥१५॥

चढ़ाया। उनका धनुष गोल हो गया और गुरु की आज्ञा के अनुसार उस पक्षी को लक्ष्य बना कर वे खड़े हो गये ॥३॥ थोड़ी देर के बाद द्रोणाचार्य ने जैसे औरों से पूछा था, वैसा ही इनसे भी पूछा। इस पक्षी को, और मुझको तुम देखते हो ॥४॥ अर्जुन ने कहा—मैं केवल उस पक्षी को देख रहा हूँ; आप को या पेड़ को नहीं देखता हूँ। इससे द्रोण बहुत प्रसन्न हुए और पाण्डवों के महारथ, अर्जुन से वे पुनः बोले ॥६॥ क्या तुम उस पक्षी को देखते हो? मेरी बात का उत्तर दो! अर्जुन ने कहा—मैं उस पक्षी का केवल सिर देख रहा हूँ और कोई अङ्ग नहीं ॥७॥ अर्जुन के ऐसा कहने पर प्रसन्नता के कारण द्रोणाचार्य के रोमांच हो आया। उन्होंने कहा—बाण छोड़ो। अर्जुन ने भी बिना सोचे विचारे बाण छोड़ दिया ॥८॥ वृक्ष पर रखे हुए उस कृत्रिम पक्षी का सिर क्षुर नामक तीखे बाण से काट कर अर्जुन ने शीघ्र ही गिरा दिया ॥९॥ इस पहिली परीक्षा में अर्जुन को उत्तीर्ण देख कर द्रोण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्जुन को छाती से लगाया ॥१०॥ द्रोण ने समझा कि द्रुपद और उसके साथियों को अब मैंने जीत लिया ॥१०॥

एक समय द्रोणाचार्य अपने शिष्यों के साथ स्नान करने के लिए गङ्गा गये ॥११॥ द्रोणाचार्य जल में घुसे। जल में रहनेवाले बलवान् ग्राह ने काल से प्रेरित होकर द्रोणाचार्य की जांघ पकड़ ली ॥१२॥ वे उस ग्राह से अपने को छुड़ा सकते थे, पर वैसा न कर उन्होंने शिष्यों से कहा कि शीघ्र ही ग्राह को मारकर तुमलोग मुझे छुड़ाओ ॥१३॥ गुरु की बात सुनते ही अर्जुन ने पाँच तीखे बाणों से जल में छिपे उस ग्राह को मारा। अर्जुन के वे बाण अमोघ थे। उन्हें कोई रोक नहीं सकता था ॥१४॥ द्रोणाचार्य के दूसरे शिष्य उस समय ग्राह को इधर उधर ढूँढ़ रहे थे। अतएव वे कुछ कर न सके। द्रोणाचार्य ने देखा कि अर्जुन ने यह काम भी कर दिया।

विशिष्टं सर्वशिष्येभ्यः प्रीतिमांश्चाभवत्तदा । स पार्थबाणैर्बहुधा खण्डशः परिकल्पितः॥१६॥
ग्राहः पञ्चत्वमापेदे जङ्घां त्यक्त्वा महात्मनः । अथाब्रवीन्महात्मानं भारद्वाजो महारथम् ॥१७॥
गृहाणेदं महाबाहो विशिष्टमतिदुर्धरम् । अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम सप्रयोगनिवर्तनम् ॥१८॥
न च ते मानुषेष्वेतत्प्रयोक्तव्यं कथञ्चन । जगद्विनिर्दहेदेतदल्पतेजसि पातितम् ॥१९॥
असामान्यमिदं तात लोकेष्वस्त्रं निगद्यते । तद्धारयेथाः प्रयतः शृणु चेदं वचो मम ॥२०॥
बाधेतामानुषः शत्रुर्यदि त्वां वीर कश्चन । तद्वधाय प्रयुञ्जीथास्तदस्त्रमिदमाहवे ॥२१॥
तथेति सम्प्रतिश्रुत्य वीभत्सुः स कृताञ्जलिः । जग्राह परमास्त्रं तदाहं चैनं पुनर्गुरुः ॥
भविता त्वत्समो नान्यः पुमाँल्लोके धनुर्धरः ॥२२॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि द्रोणग्राहमोक्षणे
त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥

वैशम्पायन उवाच—
कृतास्त्रान्धार्त्तराष्ट्राँश्च पाण्डुपुत्रांश्च भारत । दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद्राजन्धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥१॥
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः । गाङ्गेयस्य च सान्निध्ये व्यासस्य विदुरस्य च ॥२॥

अतएव, उन्हें अपने सब शिष्यों से श्रेष्ठ समझा और उनपर वे बड़ी कृपा करने लगे । वह ग्राह अर्जुन के बाणों से टुकड़े टुकड़े हो गया और महात्मा द्रोण की जांघ छोड़कर मर गया । इसके पश्चात् भारद्वाज द्रोण महारथ अर्जुन से बाले ॥१५-१७॥ महाबाहो अर्जुन, यह ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र लो । इसके प्रयोग (चलाना) और संहार (लौटाना) की रीति जान लो । यह बड़ा ही दुर्धर है, कोई इसे रोक नहीं सकता ॥१८॥ मनुष्यों पर इसका प्रयोग न करना, क्योंकि दुर्बल पर यदि इसका प्रयोग किया जाय तो यह समस्त संसार को जला दे ॥१९॥ बेटा, यह अस्त्र संसार में असाधारण है । अतएव, सावधान होकर तुम इस अस्त्र को धारण करो और मेरी बात सुनो ॥२०॥ यदि मनुष्य के अतिरिक्त शत्रु युद्ध में तुम्हें पीड़ित करे तो उसके बध के लिए इस बाण का प्रयोग युद्ध में करना ॥२१॥ अर्जुन ने वैसा करने की प्रतिज्ञा की और हाथ जोड़कर उस अस्त्र को ग्रहण किया । उस समय गुरु पुनः उनसे बोले, इस संसार में तुम्हारे समान धनुर्धर दूसरा न होगा ॥२२॥

त्रयस्त्रिंदधिक शततम अध्याय

राजकुमारों की परीक्षा के लिए मण्डप निर्माण । भीष्म आदि के द्वारा उस मण्डप को परीक्षा ।
युधिष्ठिर आदि की परीक्षा । भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध की परीक्षा ।

वैशम्पायन बोले—जनमेजय, द्रोणाचार्य ने जब देखा कि पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र अस्त्र विद्या में निपुण हो गये, तब उन्होंने राजा धृतराष्ट्र से इस प्रकार कहा । उस समय राजा धृतराष्ट्र के पास कृपाचार्य, सोमदत्त बुद्धिमान बाल्हीक, गांगेय भीष्म, व्यास और विदुर भी

राजन्संप्राप्तविद्यास्ते कुमाराः कुरुसत्तम । ते दर्शयेयुः स्वां शिक्षां राजन्ननुमते तव ॥३॥
ततोऽब्रवीन्महाराजः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
धृतराष्ट्र उवाच— भारद्वाज महत्कर्म कृतं ते द्विजसत्तम ॥४॥
यदानुमन्यसे काले यस्मिन्देशे यथा यथा । तथा तथा विधानाय स्वयमाज्ञापयस्व माम् ॥५॥
स्पृहयाम्यद्य निर्वेदात्पुरुषाणां सचक्षुषाम् । अस्त्रहेतोःपराक्रान्तान्ये मे द्रक्ष्यन्ति पुत्रकान् ॥६॥
क्षत्तर्यद्गुरुराचार्यो ब्रवीति कुरु तत्तथा । न हीदृशं प्रियं मन्ये भविता धर्मवत्सल ॥७॥
ततो राजानमामन्त्र्य निर्गतो विदुरो बहिः । भारद्वाजो महाप्राज्ञो मापयामास मेदिनीम् ॥८॥
समामवृक्षां निर्गुल्मामुदक्प्रस्रवणान्विताम् । तस्यां भूमौ बलिं चक्रे तिथौ नक्षत्रपूजिते ॥९॥
अवघुष्टे समाजे च तदर्थं वदतांवरः । रङ्गभूमौ सुविपुलं शास्त्रदृष्टं यथाविधि ॥१०॥
प्रेक्षागारं सुविहितं चक्रुस्ते तस्य शिल्पिनः । राज्ञः सर्वायुधोपेतं स्त्रीणां चैव नरर्षभ ॥११॥
मञ्चांश्च कारयामासुस्तत्र जानपदा जनाः । विपुलानुच्छ्रयोपेतान् शिबिकाश्च महाधनाः॥१२॥
तस्मिंस्ततोऽहनि प्राप्ते राजा ससचिवस्तदा । भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा कृपं चाचार्यसत्तमम् ॥१३॥

उपस्थित थे ॥१-२॥ राजन्, आपके राजकुमारों ने धनुर्वेद की शिक्षा पा ली । यदि आप की आज्ञा हो तो वे अपनी शिक्षा आप को दिखलावें, परीक्षा दें ॥३॥ राजा धृतराष्ट्र ने प्रसन्न हो कर उत्तर दिया ।

धृतराष्ट्र बोले—द्विजश्रेष्ठ, भारद्वाज, आपने यह बड़ा भारी काम किया ॥४॥ आप जिस समय और जिस स्थान पर राजकुमारों की परीक्षा लेना चाहते हों, तथा उस समय और भी कुछ करना चाहते हों तो उसकी भी आप स्वयं मुझे आज्ञा दें । आप ही की आज्ञा से व्यवस्था की जायगी ॥५॥ आज मैं बड़े दुःख से आंखवाले पुरुषों को बड़भागी समझता हूँ, क्योंकि वे आज अस्त्र कौशल दिखा कर विजय पाये हुए मेरे पुत्रों को देखेंगे ॥६॥ विदुर, गुरु द्रोणाचार्य जैसा कहें वैसा प्रबन्ध करवा दो, क्योंकि हे धर्मवत्सल, ऐसा प्रिय समय फिर उपस्थित न होगा ॥७॥ राजा धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर विदुर वहां से बाहर गये । बुद्धिमान द्रोणाचार्य ने मण्डप के लिए पृथिवी नपवायी ॥८॥ वह भूमि समतल थी, वहाँ वृक्ष न थे, झाड़ियां न थीं और उत्तर की ओर नीची थी, उत्तम नक्षत्र और तिथि में वहां बलि की गयी, पृथिवी पूजन किया गया ॥९॥ इस पृथिवी पूजन के लिए सभा की घोषणा की गयी थी, सभी बुलाये गये थे और उन सबकी उपस्थिति में यह उत्सव किया गया । उस रंग भूमि में (खेल के मैदान में) देखने वालों के लिए बड़े बड़े मकान बनाये गये थे, शिल्पियों ने शास्त्रीय विधि के अनुसार उन मकानों को बनाया था । राजा के लिए अस्त्र शस्त्र सहित घर बनवाये गये, और स्त्रियों के लिए भी घर बनवाये गये । प्रजा के लोगों ने वहाँ मंच बनवाये, बहुत लम्बे चौड़े चौतरे भी प्रजाओं की ओर से बनें ॥१०-१२॥ जब विद्या परिचय देने का दिन आया, तब राजा धृतराष्ट्र अपने मन्त्रियों के साथ, भीष्म और कृपाचार्य को साथ ले कर उस भवन में राजकुमारों की अस्त्र क्रीड़ा देखने के लिए गये । वह भवन मोतियों की माला से सजा था, वैदूर्य मणि से उसकी शोभा बढ़ायी गयी थी और सोने

मुक्ताजालपरिक्षिप्तं वैदूर्यमणिशोभितम् । शातकुम्भमयं दिव्यं प्रेक्षागारमुपागमन् ॥१४॥
गान्धारी च महाभागा कुन्ती च जयतां वर । स्त्रियश्च राज्ञः सर्वास्ताः सप्रेष्याः सपरिच्छदाः ॥१५॥
हर्षादारुरुहुर्मञ्चान्मेरुं देवस्त्रियो यथा । ब्राह्मणक्षत्रियाद्यं च चातुर्वर्ण्यं पुराद्द्रुतम् ॥१६॥
दर्शनेप्सु समभ्यागात्कुमाराणां कृतास्त्रताम् । क्षणेनैकस्थतां तत्र दर्शनेप्सुर्जगाम ह ॥१७॥
प्रवादितैश्च वादित्रैर्जनकौतूहलेन च । महार्णव इव क्षुब्धः समाजः सोऽभवत्तदा ॥१८॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान् । शुक्लकेशः सितश्मश्रुः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥१९॥
रङ्गमध्यं तदाऽऽचार्यः सपुत्रः प्रविवेश ह । नभोजलधरैर्हीनं साङ्गारक इवांशुमान् ॥२०॥
स यथासमयं चक्रे बलिं बलवतां वरः । ब्राह्मणांस्तु सुमन्त्रज्ञान्कारयमास मङ्गलम् ॥२१॥
सुखपुण्याहघोषस्य पुण्यस्य समनंतरम् । विविशुर्विविधं गृह्य शस्त्रोपकरणं नराः ॥२२॥
ततो बद्धाङ्गलित्राणा बद्धकक्षा महारथाः । बद्धतूणाः सधनुषो विविशुर्भरतर्षभाः ॥२३॥
अनुज्येष्ठं तु ते तत्र युधिष्ठिरपुरोगमाः । चक्रुरस्त्रं महावीर्याः कुमाराः परमाद्भुतम् ॥२४॥
केचिच्छराक्षेपभयाच्छिरांस्यवननामिरे । मनुजा धृष्टमपरे वीक्षांचक्रुः सुविस्मिताः ॥२५॥

का काम किया गया था ॥१३ १४॥ राजन्, गान्धारी महाभागा कुन्ती राजा की अन्य समस्त स्त्रियाँ उनकी दासियाँ और सखियाँ, सभी प्रसन्नतापूर्वक मंचों पर चढ़ीं, मानों देवस्त्रियाँ मेरु पर्वतपर चढ़ रही हों। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारो वर्ण के स्त्री-पुरुष राजकुमारों की अस्त्र निपुणता देखने के लिए वहाँ एकत्र हुए। एक क्षण में ही दर्शकों की भीड़ वहाँ एकत्र हो गयी ॥१६-१७॥ बाजाओं के शब्द तथा वहाँ की एकत्रित जनता के शब्द से वहाँ का जनसमाज क्षुभित समुद्र के समान मालूम पड़ने लगा ॥१८॥

सबके यथास्थान बैठ जाने पर शुक्ल वस्त्र और यज्ञोपवीत धारण किये हुए शुक्लकेश शुक्लश्मश्रु, आचार्य द्रोण ने श्वेत पुष्पों की माला पहनकर अपने पुत्र के साथ प्रवेश किया, मालूम हुआ कि मेघहीन आकाश में मंगलग्रह के साथ चन्द्रमा ने उदय लिया है ॥१९-२०॥ वहाँ आकर बलवानों में श्रेष्ठ आचार्य ने बलिदान किया, और मन्त्रज्ञ ब्राह्मणों से मङ्गल पाठ कराया ॥२१॥ अनन्तर सुखकारी और पवित्र उस दिन की घोषणा की गयी, अर्थात् आगे होनेवाले कार्यक्रम की सूचना दी गयी, इसके पश्चात् भृत्यों ने उनके अस्त्र तथा उसके सम्बन्ध की अन्य सामग्रियां लाकर वहां रखीं ॥२२॥ इसके पश्चात् धनुष हाथ में लिये और पीठपर तरकस बांधे राजकुमारों ने रङ्गशाला में प्रवेश किया। अंगुलियों की रक्षा के लिए दस्ताने वे पहने हुए थे, कच्छा बांधे हुए थे, पैर पीठ ढँके हुए थे ॥२३॥ ज्येष्ठादि क्रम से अर्थात् सबसे बड़ा पहले उसके पश्चात् उससे छोटा, फिर उससे छोटा इस क्रम से पराक्रमी राजकुमारों ने अस्त्र विद्या के अद्भुत कौशल दिखलाये ॥२४॥ कई दर्शकोंने घावों के लगने के भय से अपने अपने सिर झुका लिये, कई ढीठ ऐसे भी थे जो सिर उठाकर देखते रहे, और विस्मित होते रहे ॥२५॥ उन

ते स्म लक्ष्याणि विभिदुर्बाणैर्नामाङ्कशोभितैः। विविधैर्लाघवोत्सृष्टैरुह्यन्तो वाजिभिर्द्रुतम् ॥२६॥
तत्कुमारबलं तत्र गृहीतशरकार्मुकम्। गन्धर्वनगराकारं प्रेक्ष्य ते विस्मिताऽभवन् ॥२७॥
सहसा चुक्रुशुश्चान्ये नराः शतसहस्रशः। विस्मयोत्फुल्लनयनाः साधु साध्विति भारत ॥२८॥
कृत्वा धनुषि ते मार्गान् रथचर्यासु चासकृत्। गजपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च नियुद्धे च महाबलाः ॥२९॥
गृहीतखड्गचर्माणस्ततो भूयः प्रहारिणः। त्सरुमार्गान्यथोद्दिष्टांश्चेरुः सर्वासु भूमिषु ॥३०॥
लाघवं सौष्ठवं शोभां स्थिरत्वं दृढमुष्टिताम्। ददृशुस्तत्र सर्वेषां प्रयोगं खड्गचर्मणोः ॥३१॥
अथ तौ नित्यसंहृष्टौ सुयोधनवृकोदरौ। अवतीर्णौ गदाहस्तावेकशृङ्गाविवाचलौ ॥३२॥
बद्धकक्ष्यौ महाबाहू पौरुषे पर्यवस्थितौ। बृहन्तौ वासिताहेतोः समदाविव कुञ्जरौ ॥३३॥
तौ प्रदक्षिणसव्यानि मण्डलानि महाबलौ। चेरतुर्मण्डलगतौ समदाविव कुञ्जरौ ॥३४॥
विदुरो धृतराष्ट्राय गान्धार्याः पाण्डवारणिः। न्यवेदयेतां तत्सर्वं कुमाराणां विचेष्टितम् ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वण्यस्त्रदर्शने
चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३४॥

राजकुमारों ने घोड़े पर चढ़कर अपने नामाङ्कित अनेक बाणों से शीघ्रतापूर्वक लक्ष्य वेध किये ॥२६॥ धनुषबाण धारण करनेवाला वह राजकुमारों का मण्डल गन्धर्व नगर के समान दिखलाई पड़ता था और कभी गुप्त हो जाता था, यह देखकर दर्शकगण बहुत विस्मित हुए ॥२७॥ सैकड़ों हजारों मनुष्य अत्यन्त विस्मित होकर एकही बार साधु साधु कहकर चिल्ला उठते थे ॥२८॥ उन राजकुमारों ने धनुष चलाने के अनेक प्रकार दिखाये, इसी प्रकार रथ घोड़ा और हाथी के अनेक प्रकार के चाल दिखाये, कुश्ती के भी अनेक प्रकार दिखाये ॥२९॥ अनन्तर वे ढाल तलवार लेकर अखाड़े में आये, और तलवार चलाने के कई प्रकार उन लोगों ने बतलाये। गुरु से उन लोगों ने जैसा सीखा था वह सब उनलोगों ने बतलाया। इस प्रकार उनलोगों ने समूचे मैदान में पैतरा किये ॥३०॥ तलवार चलाने में शीघ्रता, चतुराई, शोभा, निर्भीकता, दृढ़ता से तलवार का पकड़ना आदि उन लोगों ने दिखाये और दर्शकों ने तलवार और ढाल के चलाने के अनेक प्रकार देखे ॥३१॥

अनन्तर सदा परस्पर जीतने की इच्छा रखने वाले दुर्योधन और भीमसेन गदा ले कर अखाड़े में आये। ये दोनों एक शिखर वाले पर्वत के समान मालूम पड़ते थे ॥३२॥ ये दोनों कच्छा कसे हुए थे अपना अपना पराक्रम दिखाने को तयार थे और गर्जन कर रहे थे। मानो एक हथिनी के लिए दो हाथी लड़ रहे हों ॥३३॥ महाबली उन बीरों ने अपने दाहिने बायें गदा घुमा कर मण्डल बना लिये थे और उसी मण्डल के बीच में वे परिश्रम कर रहे थे। मतवाले हाथियों के समान वे मालूम होते थे ॥३४॥ धृतराष्ट्र को विदुर और गान्धारी को कुन्ती राजकुमारों के करतब की सब बातें बतलाते जाते थे ॥३५॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततम अध्याय।

वैशम्पायन उवाच—

कुरुराजे हि रङ्गस्थे भीमे च बलिनां वरे। पक्षपातकृतस्नेहः स द्विधेवाभवज्जनः ॥१॥
ही वीर कुरुराजेति ही भीम इति जल्पताम्। पुरुषाणां सुविपुलाः प्रणादाः सहसोत्थिताः॥२॥
ततः क्षुब्धार्णवनिभं रङ्गमालोक्य बुद्धिमान्। भारद्वाजः प्रियं पुत्रमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥३॥

द्रोण उवाच—

वारयैतौ महावीर्यौ कृतयोग्यावुभावपि। मा भूद्रङ्गप्रकोपोऽयं भीमदुर्योधनोद्भवः ॥४॥

वैशम्पायन उवाच—

ततस्तावुद्यतगदौ गुरुपुत्रेण वारितौ। युगान्तानिलसंक्षुब्धौ महावेलाविवार्णवौ ॥५॥
ततो रङ्गाङ्गणगतो द्रोणो वचनमब्रवीत्। निवार्य वादित्रगणं महामेघनिभस्वनम् ॥६॥
यो मे पुत्रात्प्रियतरः सर्वशास्त्रविशारदः। ऐन्द्रिरिन्द्रानुजसमः स पार्थो दृश्यतामिति ॥७॥
आचार्यवचनेनाथ कृतस्वस्त्ययनो युवा। बद्धगोधाङ्गुलित्राणः पूर्णतूणः सकार्मुकः ॥८॥
काञ्चनं कवचं बिभ्रत्प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः। सार्कः सेन्द्रायुधतडित्ससन्ध्य इव तोयदः ॥९॥

भीमसेन और दुर्योधन के युद्ध का अश्वत्थामा के द्वारा रोका जाना, अर्जुन का अपना पराक्रम दिखाना और कर्ण का सभास्थल में आना।

वैशम्पायन बोले—दुर्योधन और बलवानों में श्रेष्ठ भीम जब रङ्ग शाला में अपना करतब दिखा रहे थे। उस समय वहां दो दल हो गये। एक दुर्योधन से स्नेह रखनेवाला दूसरा भीम से स्नेह रखनेवाला ॥१॥ एक दल कहता था वाह दुर्योधन, दूसरा दल कहता था वाह भीमसेन। बार बार इस प्रकार के शब्दों से वहां कोलाहल हो गया ॥२॥ बुद्धिमान द्रोणाचार्य ने देखा कि इन दोनों के युद्ध के कारण जनता में रोष बढ़ता जाता है, जनता क्षुभित समुद्र के समान हो गयी है, तब वे अपने प्रिय पुत्र अश्वत्थामा से बोले ॥३॥

द्रोण बोले—इन दोनों पराक्रमी वीरों को रोक दो। ये अपने अपने अभ्यास दिखा चुके। ऐसा न हो कि भीम और दुर्योधन के कारण जनता में और अधिक क्रोध फैल जाय ॥४॥

वैशम्पायन बोले—वायुवेग से क्षुभित ऊँचे तटवाले दो समुद्रों के समान भीम और दुर्योधन गदा उठा कर एक दूसरे की ओर झपटने ही वाले थे कि गुरु पुत्र अश्वत्थामा ने उन दोनों को रोक दिया ॥५॥ अनन्तर द्रोणाचार्य अखाड़े में आये। महामेघ के समान गर्जन करने वाले बाजों का बजना उन्हों ने रोक दिया। फिर वे इस प्रकार बोले ॥६॥ जो मुझे पुत्र से भी बढ़कर प्रिय है, जो समस्त अस्त्रों का ज्ञाता है। वह इन्द्र का पुत्र, इन्द्र के छोटे भाई विष्णु के समान बलवान अर्जुन को आप लोग देखे। उसके कौशल को देखें ॥७॥ आचार्य के कहने से अर्जुन मंगल आशीर्वाद लेकर अङ्गुलियों की रक्षा के लिए गोधा (दस्ताना पहन कर तरकश में बाण भर कर धनुष ले कर और सुवर्ण का कवच पहन कर दिखायी पड़े। वे सांयकाल के उस मेघ के समान मालूम होते थे, जिसमें सूर्य इन्द्र धनुष और विद्युत हो ॥८-९॥ जिस समय अर्जुन

ततः सर्वस्य रङ्गस्य समुत्पिञ्जलकोऽभवत् । प्रावाद्यन्त च वाद्यानि सशङ्खानि समन्ततः ॥१०॥
एष कुन्तीसुतः श्रीमानेष मध्यम पाण्डवः । एष पुत्रो महेन्द्रस्य कुरूणामेष रक्षिता ॥११॥
एषोऽस्त्रविदुषां श्रेष्ठ एष धर्मभृतां वरः । एष शीलवतां चापि शीलज्ञाननिधिः परः ॥१२॥
इत्येवं तुमुला वाचः शुश्रुवुः प्रेक्षकेरिताः । कुन्त्याः प्रस्नवसंयुक्तैरस्त्रैः क्लिन्नमुरोऽभवत् ॥१३॥
तेन शब्देन महता पूर्णश्रुतिरथाब्रवीत् । धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठो विदुरं हृष्टमानसः ॥१४॥
क्षत्तः क्षुब्धार्णवनिभः किमेष सुमहास्वनः । सहसैवोत्थितो रङ्गे भिन्दन्निव नभस्तलम् ॥१५॥
विदुर उवाच—
एष पार्थो महाराज फाल्गुनः पाण्डुनन्दनः । अवतीर्णः सकवचस्तत्रैष सुमहास्वनः ॥१६॥
धृतराष्ट्र उवाच—
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि रक्षितोऽस्मि महामते । पृथारणिसमुद्भूतैस्त्रिभिः पाण्डववह्निभिः ॥१७॥
वैशम्पायन उवाच—
तस्मिन्प्रमुदिते रङ्गे कथंचित्प्रत्युपस्थिते । दर्शयामास बीभत्सुराचार्यायास्त्रलाघवम् ॥१८॥
आग्नेयेनासृजद्वह्निं वारुणेनासृजत्पयः । वायव्येनासृजद्वायुं पार्जन्येनासृजद्घनान् ॥१९॥
भौमेन प्राविशद्भूमिं पार्वतेनासृजद्गिरीन् । अन्तर्धानेन चास्त्रेण पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥२०॥
क्षणात्प्रांशुः क्षणाद्ध्रस्वः क्षणाच्च रथभूमिगः । क्षणेन रथमध्यस्थः क्षणेनावतरन्महीम् ॥२१॥

सभा स्थल में आये, उस समय वहां प्रसन्नता की एक लहर दौड़ गयी । बाजे और शंख बजने लगे ॥१०॥ यह कुन्ती का पुत्र है, यह मझला पाण्डव है, यह इन्द्र का पुत्र है, यह कुरु वंश की रक्षा करने वाला है, यह अस्त्र के विद्वानों में सब से श्रेष्ठ है, यह बड़ा धर्मात्मा है, यह शीलवान और शील का ज्ञान रखने वाला है, उस समय दर्शक मण्डल में इस प्रकार की बातें होने लगीं। कुन्ती के स्तनों से दूध निकलने लगा, जिससे उनकी छाती भींग गई ॥११-१३॥ वह महान कोलाहल नरश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ने सुना और प्रसन्न होकर वे विदुर से बोले ॥१४॥ विदुर, क्षुभित समुद्र के शब्द के समान आकाश तक पहुँचने वाला यह कैसा शब्द सभास्थल से उठ रहा है ॥१५॥ विदुर बोले, महराज पाण्डुनन्दन, कुन्तीपुत्र अर्जुन कवच धारण करके सभास्थल में आया है । इसी से यह शब्द हो रहा है ॥१६॥

धृतराष्ट्र बोले—कुन्तीरूपी अरणि (अग्नि उत्पन्न करने की लकड़ी) से ये पाण्डव रूपी तीन अग्नि उत्पन्न हुए हैं । महामते, विदुर इससे मैं धन्य हूँ, अनुगृहीत हूँ और सुरक्षित हूँ ॥१७॥

वैशम्पायन बोले—उस उमड़ी हुई सभा का वेग जब शान्त हुआ, जब लोग प्रकृतिस्थ हुए, तब अर्जुन द्रोणाचार्य को अपना अस्त्र कौशल दिखलाने लगे ॥१८॥ आग्नेय बाण चलाकर आग उत्पन्न कर दी, वारुणास्त्र चलाकर जल पैदा किया, वायव्यअस्त्र चलाकर वायु बहाया, पार्जन्य अस्त्रसे मेघ उत्पन्न किये, भौम अस्त्रसे वे भूमि में घुस गये, पार्वत अस्त्र से अनेक पर्वत उत्पन्न किये और अन्तर्धान अस्त्रसे पुनः अन्तर्धान हो गये ॥१९-२०॥ एक क्षण में बहुत ऊँचे और दूसरे क्षण में

सुकुमारं च सूक्ष्मं च गुरुँचापि गुरुप्रियः। सौष्ठवेनाभिसंश्लिष्टः सोऽविध्यद्विविधैः शरैः ॥२२॥
भ्रमतश्च वराहस्य लोहस्य प्रमुखे समम्। पञ्च बाणानसंयुक्तान्स मुमोचैकबाणवत् ॥२३॥
गव्ये विषाणकोशे च चले रज्ज्ववलम्बिनि। निचखान महावीर्यः सायकानेकविंशतिम् ॥२४॥
इत्येवमादि सुमहत् खड्गे धनुषि चानघ। गदायां शस्त्रकुशलो मण्डलानि प्रदर्शयत् ॥२५॥
ततः समाप्तभूयिष्ठे तस्मिन्कर्मणि भारत। मन्दीभूते समाजे च वादित्रस्य च निःस्वने ॥२६॥
द्वारदेशात्समुद्भूतो माहात्म्यबलसूचकः। वज्रनिष्पेषसदृशः शुश्रुवे भुजनिःस्वनः ॥२७॥
दिर्यन्ते किंनु गिरयः किंस्विद्भूमिर्विदीर्यते। किंस्विदापूर्यते व्योम जलधारा घनैर्घनैः ॥२८॥
रङ्गस्यैवं मतिरभूत्क्षणेन वसुधाधिप। द्वारं चाभिमुखाः सर्वे बभूवुः प्रेक्षकास्तदा ॥२९॥
पञ्चभिर्भ्रातृभिः पार्थैर्द्रोणः परिवृतो बभौ। पञ्चतारेण संयुक्तः सावित्रेणेव चन्द्रमाः ॥३०॥
अश्वत्थाम्ना च सहितं भ्रातृणां शतमूर्जितम्। दुर्योधनममित्रघ्नमुत्थितं पर्यवारयत् ॥३१॥

स तैस्तदा भ्रातृभिरुद्यतायुधैर्गदाग्रपाणिः समवस्थितैर्वृतः।
बभौ यथा दानवसंक्षये पुरा पुरन्दरो देवगणैः समावृतः ॥३२॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि अस्त्रदर्शने
पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३५॥

बिलकुल छोटे, एक क्षण में रथ के धुरे के पास, एक क्षण में रथ के ऊपर, और क्षण में रथ से नीचे वे दिखायी पड़ते थे ॥२१॥ गुरुप्रिय अर्जुन ने कोमल छोटी और बड़ी वस्तुओं को चतुराई के साथ बाणों से वेध कर दूर फेंक दिया ॥२२॥ अनन्तर, लोहे का बना मयूर जो बराबर घूम रहा था, उसके मुह में अलग अलग पाँच बाण मारे। जो बाण एक बाण के समान अर्थात् बड़ी शीघ्रता के साथ चलाये गये थे ॥२३॥ गौ की सींग की बनी म्यान रस्सी में बाँधकर लटका दी गई थी और वह हिल रही थी। महाबली अर्जुन ने उसे एक्कीस बाणों से वेधा ॥२४॥ इस प्रकार के अनेक तलवार, धनुष, गदा आदि के करतब और पैंतरे शस्त्रनिपुण अर्जुन ने दिखाये ॥२५॥

जब अर्जुन का प्रदर्शन समाप्त हो रहा था। जनता का कोलाहल मन्द पड़ गया था और बाजों का बजना धीमा हो रहा था, उस समय द्वार पर पराक्रम और बल की सूचना देनेवाला, और वज्र के टक्कर के समान भयंकर ताल ठोकने का शब्द सुनायी पड़ा ॥२६-२७॥ क्या पर्वत फट पड़े या पृथ्वी फट गयी, अथवा जलधारा बरसानेवाले मेघों से आकाश भर गया? राजन् उस समय सभामण्डप में एकत्र मनुष्यों ने ऐसा ही समझा और सब लोग द्वार की ओर देखने लगे ॥२८-२९॥ पांच भाई पाण्डवों के साथ बैठे हुए द्रोणाचार्य, पांच नक्षत्रवाले हस्तराशि पर वर्त्तमान चन्द्रमा के समान शोभित होने लगे ॥३०॥ इस कोलाहल को सुनकर दुर्योधन उठकर खड़ा हो गया था। उस शत्रुनाशी दुर्योधन को उसके सौ भाई और अश्वत्थामा घेरकर खड़े हो गये ॥३१॥ गदा लिये हुए दुर्योधन अस्त्र शस्त्रों से सज्जित अपने भाइयों का बीच में खड़ा होकर मालूम होने लगा, जैसा पहले के समय में दानवों का संहार करने के लिए देवताओं से घिरे इन्द्र शोभित हुए थे ॥३२॥ पंचत्रिंशदधिक शततम अध्याय।

वैशम्पायन उवाच—

दत्तेऽवकाशे पुरुषैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनः । विवेश रङ्गं विस्तीर्णं कर्णः परपुरञ्जयः ॥१॥
सहजं कवचं बिभ्रत्कुण्डलोद्योतिताननः । स धनुर्बद्धनिस्त्रिंशः पादचारीव पर्वतः ॥२॥
कन्यागर्भः पृथुयशाः पृथायाः पृथुलोचनः । तीक्ष्णांशोर्भास्करस्यांशः कर्णोऽरिगणसूदनः ॥३॥
सिंहर्षभगजेन्द्राणां बलवीर्यपराक्रमः । दीप्तिकान्तिद्युतिगुणैः सूर्येन्दुज्वलनोपमः ॥४॥
प्रांशुः कनकतालाभः सिंहसंहननो युवा । असंख्येयगुणः श्रीमान्भास्करस्यात्मसंभवः ॥५॥
स निरीक्ष्य महाबाहुः सर्वतो रङ्गमण्डलम् । प्रणामं द्रोणकृपयोर्नात्यादृतमिवाऽकरोत् ॥६॥
स समाजजनः सर्वो निश्चलः स्थिरलोचनः । कोऽयमित्यागतक्षोभः कौतूहलपरोऽभवत् ॥७॥
सोऽब्रवीन्मेघगम्भीरस्वरेण वदतां वरः । भ्राता भ्रातरमज्ञातं सावित्रः पाकशासनिम् ॥८॥
पार्थयत्ते कृतं कर्म विशेषवदहं ततः । करिष्ये पश्यतां नृणां माऽऽत्मना विस्मयं गमः ॥९॥
असमाप्ते ततस्तस्य वचने वदतां वरः । यन्त्रोत्क्षिप्त इवोत्तस्थौ क्षिप्रं वै सर्वतो जनः ॥१०॥
प्रीतिश्च मनुजव्याघ्र दुर्योधनमथाविशत् । ह्रीश्च क्रोधश्च बीभत्सुं क्षणेनान्वाविवेश ह ॥११॥
ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः कर्णः प्रियरणः सदा । यत्कृतं तत्र पार्थेन तच्चकार महाबलः ॥१२॥

रंगशाला में कर्ण का आगमन । दुर्योधन की प्रसन्नता । अर्जुन से उसकी दो दो चोंचें, कर्ण का राज्याभिषेक ।

वैशम्पायन बोले—शत्रुओं को जीतनेवाले, आनन्दोत्फुल्ल नेत्र कर्ण ने दर्शकों के रास्ता देने पर विशाल रंगभूमि में प्रवेश किया ॥१॥ वह जन्म से उत्पन्न कवच और कुण्डल धारण किये हुए था । कवच की शोभा से उसका मुख प्रकाशित हो रहा था । धनुष और तलवार बांधे हुए था । वह पैर से चलनेवाले पर्वत के समान मालूम होता था । वह कर्ण था । कुन्ती की कन्या अवस्था में वह यशस्वी उत्पन्न हुआ था । तीक्ष्ण किरण सूर्य के अंश से उसकी उत्पत्ति हुई थी । वह सिंह, बैल और हाथी के समान बली-वीर्यवान् और पराक्रमी था । दीप्ति, कान्ति और द्युति से सूर्य चन्द्रमा तथा अग्नि के समान था । वह युवा सुवर्ण के ताल वृक्ष के समान लम्बा था । सिंह के समान गठीला था, सूर्य के पुत्र श्रीमान् कर्ण में अनेक गुण थे ॥२-५॥ महाबाहु कर्ण ने सभास्थल को चारों तरफ से देखा । कृपाचार्य और द्रोणाचार्य को उसने प्रणाम किया, पर विशेष आदर पूर्वक नहीं ॥६॥ वहां का दर्शक मण्डल निश्चल हो गया था । यह कौन है ? यह जानने के लिए टकटकी लगाकर देख रहा था । दर्शक मण्डल में एक प्रकार का क्षोभ और कुतूहल उत्पन्न हो गया था ॥७॥ सूर्यपुत्र कर्ण यह नहीं जानता था कि इन्द्रपुत्र अर्जुन उसके भाई हैं । अतएव मेघ गम्भीर स्वर से वह बोला ॥८॥ अर्जुन, इस सभा में जो काम तुमने किये हैं, उससे कुछ अधिक करके मैं यहाँ दिखाऊँगा । तुमको अपने अस्त्र ज्ञान का गर्व नहीं करना चाहिए ॥९॥ कर्ण के वचन पूरे न होते ही वहाँ की जनता उठ खड़ी हुई, मानो किसी यन्त्र द्वारा वे विवशतापूर्वक उठा दिये गये हों ॥१०॥ इस वचन को सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ और अर्जुन लज्जित तथा क्रुद्ध हुए ॥११॥ अनन्तर, द्रोणाचार्य से आज्ञा लेकर रण से सदा प्रेम रखनेवाले कर्ण ने वह सब कर

अथ दुर्योधनस्तत्र भ्रातृभिः सह भारत। कर्णं परिष्वज्य मुदा ततो वचनमब्रवीत् ॥१३॥
दुर्योधन उवाच—
स्वागतं ते महाबाहो दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद। अहं च कुरुराज्यं च यथेष्टमुपभुज्यताम् ॥१४॥
कर्ण उवाच—
कृतं सर्वमहं मन्ये सखित्वं च त्वया वृणे। द्वन्द्वयुद्धं च पार्थेन कर्तुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥१५॥
दुर्योधन उवाच—
भुङ्क्ष्व भोगान्मया सार्धं बन्धूनां प्रियकृद्भव। दुर्हृदां कुरु सर्वेषां मूर्ध्नि पादमरिन्दम ॥१६॥
वैशम्पायन उवाच—
ततः क्षिप्तमिवात्मानं मत्वा पार्थोऽभ्यभाषत। कर्णं भ्रातृसमूहस्य मध्येऽचलमिव स्थितम् ॥१७॥
अर्जुन उवाच—
अनाहूतोपसृष्टानामनाहूतोपजल्पिनाम्। ये लोकास्तान्हतः कर्ण मया त्वं प्रतिपत्स्यसे ॥१८॥
कर्ण उवाच—
रङ्गोऽयं सर्वसामान्यः किमत्र तव फाल्गुन। वीर्यश्रेष्ठाश्च राजानो बलं धर्मोऽनुवर्तते ॥१९॥
किं क्षेपैर्दुर्बलायासैः शरैः कथय भारत। गुरोः समक्षं यावत्ते हराम्यद्य शिरः शरैः ॥२०॥

दिखाया जो अर्जुन ने किया था ॥१२॥ इसी समय दुर्योधन ने भाइयों के साथ आकर कर्ण को छाती से लगाया और प्रसन्नतापूर्वक कहा—१३॥

दुर्योधन बोले—महाबाहो, आपका स्वागत है। हे मानद, आप भाग्य से आये। मैं और यह कुरु राज्य आपका है। इच्छानुसार आप इनका उपयोग और उपभोग करें ॥१४॥

कर्ण बोले—यह जो आप सब कह रहे हैं, इन सब की कुछ आवश्यकता नहीं है। तथापि आज्ञा को स्वीकार करूँगा। मैं तो आप से मित्रता करना चाहता हूँ और, प्रभो अर्जुन के साथ द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूँ ॥१५॥

दुर्योधन बोले—आप मेरे साथ राज्य भोगों को भोगिए। अपने मित्रों का प्रिय काम कीजिए और शत्रुओं के सिर पर पैर रखिए ॥१६॥

वैशम्पायन बोले—अर्जुन ने इन सब बातों से अपना अपमान समझा और वे दुर्योधन के भाइयों के बीच में पर्वत के समान खड़े कर्ण से बोले, ॥१७॥

अर्जुन—जो बिना बुलाए आवे और बिना पूछे बोले, हे कर्ण, ऐसे लोगों को जो लोक प्राप्त होता है, मेरे द्वारा मारे जाने पर तुम्हें भी वे लोक प्राप्त हों ॥१८॥

कर्ण बोले—यह रंगशाला सर्व साधारण के लिए है। केवल तुम्हारे ही लिए नहीं है। जो बली होता है वह राजा है। क्षत्रिय धर्म बल प्रधान होता है ॥१९॥ यह दुर्बलों के समान तुम आक्षेप क्या कर रहे हो! इस प्रकार किसी को लांछित करना दुर्बलों का ही अस्त्र है। जो कुछ कहना हो, बाणों से कहो, जब तक कि तुम्हारे गुरु के सामने तुम्हारा सिर मैं अपने बाणों से न काट लूँ ॥२०॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः पार्थः परपुरञ्जयः । भ्रातृभिस्त्वरयाऽऽश्लिष्टो रणायोपजगाम तम् ॥२१॥
ततो दुर्योधनेनापि सभ्रात्रा समरोद्यतः । परिष्वक्तः स्थितः कर्णः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥२२॥
ततः सविद्युत्स्तनितैः सेन्द्रायुधपुरोगमैः । आवृतं गगनं मेघैर्बलाकापङ्क्तिहासिभिः ॥२३॥
ततः स्नेहाद्धरिहयं दृष्ट्वा रङ्गावलोकिनम् । भास्करोऽप्यनयन्नाशं समीपोपगतान् घनान् ॥२४॥
मेघच्छायोपगूढस्तु ततोऽदृश्यत फाल्गुनः । सूर्यातपपरिक्षिप्तः कर्णोऽपि समदृश्यत ॥२५॥
धार्तराष्ट्रा यतः कर्णस्तस्मिन्देशे व्यवस्थिताः । भारद्वाजः कृपो भीष्मो यतः पार्थस्ततोऽभवन् ॥२६॥
द्विधा रङ्गः समभवत्स्त्रीणां द्वैधमजायत । कुन्तिभोजसुता मोहं विज्ञातार्था जगाम ह ॥२७॥
तां तथा मोहमापन्नां विदुरः सर्वधर्मवित् । कुन्तीमाश्वासयामास प्रेष्याभिश्चन्दनोदकैः ॥२८॥
ततः प्रत्यागतप्राणा तावुभौ परिदंशितौ । पुत्रौ दृष्ट्वा सुसंभ्रान्ता नान्वपद्यत किंचन ॥२९॥
तावुद्यतमहाचापौ कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् । द्वन्द्वयुद्धसमाचारे कुशलः सर्वधर्मवित् ॥३०॥
अयं पृथायास्तनयः कनीयान्पाण्डुनन्दनः । कौरवो भवता सार्धं द्वन्द्वयुद्धं करिष्यति ॥३१॥
त्वमप्येवं महाबाहो मातरं पितरं कुलम् । कथयस्व नरेन्द्राणां येषां त्वं कुलभूषणम् ॥३२॥

वैशम्पायन बोले—अनन्तर, शत्रु विजयी अर्जुन गुरु द्रोणाचार्य से आज्ञा लेकर और भाइयों से मिल भेंट कर युद्ध के लिए कर्ण के सामने आये ॥२१॥ युद्ध के लिए उद्यत कर्ण भी धनुष बाण लेकर युद्ध क्षेत्र में आया। दुर्योधन और उसके भाइयों ने चलने के समय उसका आलिंगन किया ॥२२॥ उस समय आकाश मेघों से भर गया। बगलों की पंक्तियाँ बादलों की हँसी के समान मालूम पड़ने लगीं। इन्द्र धनुष दिखाई पड़ा और बिजली कड़कने लगी। इन्द्र, पुत्र-स्नेह के वश रंग स्थल देखने के लिए आये, यह देखकर सूर्य ने भी अपने चारों ओर फैले मेघों को नष्ट कर दिया ॥२४॥ इस समय अर्जुन मेघों की छाया में खड़े दिखायी पड़े और कर्ण सूर्य के ताप में खड़ा दिखायी पड़ा ॥२५॥ धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन कर्ण की ओर खड़ा हुआ था, द्रोणाचार्य कृपाचार्य और भीष्म जिधर अर्जुन थे उधर की ओर खड़े हुए थे ॥२६॥ इस प्रकार सभास्थान में दो दल हो गये। स्त्रियों में भी दो दल हो गये। कुन्ती को जब अर्जुन और कर्ण के युद्ध की बात मालूम हुई, तब वह मूर्च्छित हो गयी ॥२७॥ धर्मज्ञ विदुर ने दासी के द्वारा चन्दन जल आदि के उपचार करा कर कुन्ती की मूर्च्छा दूर की ॥२८॥ मूर्च्छा दूर होने पर कुन्ती ने युद्ध के लिए उद्यत अपने दोनों पुत्रों को देखा और वह घबड़ा गयी। क्या करना चाहिए, इसका कुछ निश्चय न कर सकी ॥२९॥ जब वे दोनों वीर युद्ध क्षेत्र में धनुष चढ़ाकर खड़े हुए, तब शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य बोले—जो द्वन्द्व युद्ध के नियमों के अच्छे जानकार थे और विविध धर्मों के भी ज्ञाता थे ॥३०॥

ये कुन्ती के और महराज पाण्डु के पुत्र हैं। ये कुरु राजकुमार आप के साथ द्वन्द्व युद्ध करेंगे ॥३१॥ महाबाहो, आप भी इसी प्रकार अपने पिता माता और कुल का परिचय दीजिए। आप उन राजाओं का परिचय दीजिए, जिनके आप कुलभूषण हैं ॥३२॥ इस बात के जान लेने

ततो विदित्वा पार्थस्त्वां प्रतियोत्स्यति वा नवा । वृथाकुलसमाचारैर्न युध्यन्ते नृपात्मजाः॥३३॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तस्य कर्णस्य व्रीडावनतमाननम् । बभौ वर्षाम्बुविक्लिन्नं पद्ममागलितं यथा ॥३४॥

दुर्योधन उवाच—

आचार्य त्रिविधा योनी राज्ञां शास्त्रविनिश्चये । सत्कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेनां प्रकर्षति ॥३५॥

यद्ययं फाल्गुनो युद्धे नाराज्ञा योद्धुमिच्छति । तस्मादेषोऽङ्गविषये मया राज्येऽभिषिच्यते ॥३६॥

वैशम्पायन उवाच—

ततस्तस्मिन्क्षणे कर्णः सलाजकुसुमैर्घटैः । काञ्चनैः काञ्चने पीठे मन्त्रविद्भिर्महारथः ॥३७॥

अभिषिक्तोऽङ्गराज्ये स श्रिया युक्तो महाबलः । सच्छत्रवालव्यजनो जयशब्दोत्तरेण च ॥३८॥

उवाच कौरवं राजन्वचनं स वृषस्तदा । अस्य राज्यप्रदानस्य सदृशं किं ददानि ते ॥३९॥

प्रब्रूहि राजशार्दूल कर्ता ह्यस्मि तथा नृप । अत्यन्तं सख्यमिच्छामीत्याह तं स सुयोधनः ॥४०॥

एवमुक्तस्ततः कर्णस्तथेति प्रत्युवाच तम् । हर्षाच्चोभौ समाश्लिष्य परां मुदमवापतुः ॥४१॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि कर्णाभिषेके
षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६॥

पर आप के साथ अर्जुन का युद्ध होना और न होना निर्भर है। जिनके कुल का कोई ठिकाना नहीं, उनके साथ राजपुत्र युद्ध नहीं किया करते ॥३३॥

वैशम्पायन बोले—इस बात के सुनते ही कर्ण का मुख लज्जा से झुक गया। जिस प्रकार मेघ की जलधारा से भींग कर कमल पुष्प झुक जाता है ॥३४॥

दुर्योधन बोले—आचार्य, तीन प्रकार के राजा शास्त्रों में बतलाये गये हैं। सत्कुलीन, वीर और सेनापति ॥३५॥ यदि यह अर्जुन, जो राजा नहीं है, उससे युद्ध करना न चाहता हो तो मैं इसी समय कर्ण का अंग देश के राज्य पर अभिषेक करता हूँ ॥३६॥

वैशम्पायन बोले—उसी समय लावा, फूल, सोने के घड़े आदि के द्वारा सोने के पीढ़े पर बैठा कर मन्त्रज्ञ ब्राह्मणों ने कर्ण का अंग राज्य पर अभिषेक किया। वह बली राज्यश्री से शोभित होने लगा। छत्र, चंवर, पंखा और जय जयकार से उसकी शोभा और भी बढ़ गई ॥३८॥ कर्ण ने दुर्योधन से कहा—यह जो आपने मुझे राज्य दिया है, इसके योग्य कौन प्रत्युपकार मैं आपका कर सकता हूँ, राजशर्दूल, आप कहें। मैं उसे इसी समय पूर्ण करूँगा। दुर्योधन ने कहा—मैं आप की दृढ़ मैत्री चाहता हूँ ॥३९-४०॥ कर्ण ने दुर्योधन की बात स्वीकार की और हर्षित होकर परस्पर आलिंगन करके वे दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥४१॥

षट् त्रिंशदधिक शततम अध्याय।

वैशम्पायन उवाच—

ततः स्रस्तोत्तरपटः सप्रस्वेदः सवेपथुः। विवेशाधिरथो रङ्गं यष्टिप्राणो ह्वयन्निव ॥१॥
तमालोक्य धनुस्त्यक्त्वा पितृगौरवयन्त्रितः। कर्णोऽभिषेकार्द्रशिराः शिरसा समवन्दत ॥२॥
ततः पादाववच्छाद्य पटान्तेन ससंभ्रमः। पुत्रेति परिपूर्णार्थमब्रवीद्रथसारथिः ॥३॥
परिष्वज्य च तस्याथ मूर्धानं स्नेहविक्लवः। अङ्गराज्याभिषेकार्द्रमश्रुभिः सिषिचे पुनः ॥४॥
तं दृष्ट्वा सूतपुत्रोऽयमिति संचिन्त्य पाण्डवः। भीमसेनस्तदा वाक्यमब्रवीत्प्रहसन्निव ॥५॥
न त्वमर्हसि पार्थेन सूतपुत्र रणे वधम्। कुलस्य सदृशस्तूर्णं प्रतोदो गृह्यतां त्वया ॥६॥
अङ्गराज्यं च नार्हस्त्वमुपभोक्तुं नराधम। श्वा हुताशसमीपस्थं पुरोडाशमिवाध्वरे ॥७॥
एवमुक्तस्ततः कर्णः किंचित्प्रस्फुरिताधरः। गगनस्थं विनिःश्वस्य दिवाकरमुदैक्षत ॥८॥
ततो दुर्योधनः कोपादुत्पपात महाबलः। भ्रातृपद्मवनात्तस्मान्मदोत्कट इव द्विपः ॥९॥
सोऽब्रवीद्भीमकर्माणं भीमसेनमवस्थितम्। वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशम् ॥१०॥
क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना। शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल ॥११॥
सलिलादुत्थितो वह्निर्येन व्याप्तं चराचरम्। दधीचस्यास्थितो वज्रं कृतं दानवसूदनम् ॥१२॥

कर्ण के पिता का आगमन, भीम और दुर्योधन की चख चख। उत्सव की समाप्ति।

वैशम्पायन बोले—उस समय अधिरथ जो कर्ण के पिता के नाम से प्रसिद्ध था, रंगस्थल में आया। उसके कंधे का चद्दर जमीन पर लटक रहा था। शरीर पसीने से भींग रहा था। वह थर थर कांप रहा था, लाठी टेकता हुआ आया मानों कर्ण को बुलाने के लिए आया हो ॥१॥ उसको देखकर कर्ण ने धनुष रख दिया और पिता के गौरव के कारण अभिषेक से भींगे मस्तक से उसने प्रणाम किया। अधिरथ ने शीघ्रतापूर्वक अपने पैर वस्त्र से ढक लिये और राज्य पाने से पूर्णमनोरथ पुत्र को उस रथ हांकनेवाले सारथि ने "पुत्र" कहा—स्नेह व्याकुल हो कर उसने पुत्रको छाती से लगाया और अभिषेक से भींगे उसके मस्तक को सूंघा और प्रेमाश्रु से उसे भिंगाया ॥२-४॥ उस सारथि को देख कर पाण्डव भीमसेन ने कर्ण को सारथि-पुत्र जाना और हंसते हुए, इस प्रकार वे बोले ॥५॥ अरे सूतपुत्र, तू युद्ध में अर्जुन के द्वारा मारे जाने के भी योग्य नहीं है। तुझे तो अपने कुल की वृत्ति करनी चाहिए। घोड़ा हांकने की चाबुक तू ले ले ॥६॥ नराधम, तू अङ्गदेश के राजा होने योग्य नहीं है। अग्नि देव के समीप रखा हुआ यज्ञ का पुरोड़ाश (हविष) क्या कुत्ते खा सकते हैं ॥७॥ यह सुनने से कर्ण के ओठ फड़कने लगे, पर उसने कुछ कहा नहीं। आकाशस्थ सूय की ओर एक वार देख भर लिया ॥८॥ उस समय महाबली दुर्योधन भ्रातृरूपी कमलबन से मतवाले हाथी के समान क्रोध कर के बाहर निकला ॥९॥ भयङ्कर कर्म करने वाले, सामने खड़े भीमसेन से वह बोला—भीमसेन, तुमको ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए ॥१०॥ क्षत्रियों की प्रधानता बल से ही होती है, चाहे नाम ही का कोई क्षत्रिय हो, उससे युद्ध करना चाहिए। शूरों और नदियों की उत्पत्ति का कोई ठिकाना नहीं होता ॥११॥ अग्नि की उत्पत्ति जलसे हुई, जिसकी समस्त संसार में प्रतिष्ठा है। वज्र दधीचि की हड्डियों से बना है, जिससे दैत्योंका नाश हुआ ॥१२॥ भगवान् कार्तिकेय

आग्नेयः कृत्तिका पुत्रो रौद्रो गाङ्गेय इत्यपि । श्रूयते भगवान्देवः सर्व गुह्यमयो गुहः ॥१३॥
क्षत्रियेभ्यश्च ये जाता ब्राह्मणास्ते च ते श्रुताः । विश्वामित्रप्रभृतयः प्राप्ता ब्रह्मत्वमव्ययम् ॥१४॥
आचार्यः कलशाज्जातो द्रोणः शस्त्रभृतां वरः । गौतमस्यान्ववाये च शरस्तम्बाच्च गौतमः ॥१५॥
भवतां च यथाजन्म तदप्यागमितं मया । सकुण्डलं सकवचं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
कथमादित्यसदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति ॥१६॥
पृथिवीराज्यमर्होऽयं नागराज्यं नरेश्वरः । अनेन बाहुवीर्येण मया चाज्ञानुवर्तिना ॥१७॥
यस्य वा मनुजस्येदं न क्षान्तं मद्विचेष्टितम् । रथमारूह्य पद्भ्यां स विनामयतु कार्मुकम् ॥१८॥
ततः सर्वस्य रङ्गस्य हाहाकारो महानभूत् । साधुवादानुसंबद्धः सूर्यश्चास्तमुपागमत् ॥१९॥
ततो दुर्योधनः कर्णमालम्ब्याग्रकरे नृपः । दीपिकाभिः कृतालोकस्तस्माद्रङ्गाद्विनिर्ययौ ॥२०॥
पाण्डवाश्च सहद्रोणाः सकृपाश्च विशांपते । भीष्मेण सहिताः सर्वे ययुः स्वं स्वं निवेशनम् ॥२१॥
अर्जुनेति जनः कश्चित्कश्चित्कर्णेति भारत । कश्चिद्दुर्योधनेत्येवं ब्रुवन्तः प्रस्थितास्तदा ॥२२॥
कुन्त्याश्च प्रत्यभिज्ञाय दिव्यलक्षणसूचितम् । पुत्रमङ्गेश्वरं स्नेहाच्छन्ना प्रीतिरजायत ॥२३॥
दुर्योधनस्यापि तदा कर्णमासाद्य पार्थिव । भयमर्जुनसंजातं क्षिप्रमन्तरधीयत ॥२४॥

को कोई अग्नि से उत्पन्न बतलाते हैं और कोई कृत्तिका के पुत्र बतलाते हैं, कोई रुद्र के पुत्र कहते हैं और कोई गङ्गा के । इस प्रकार कितनी ही रहस्यमय बातें स्वामी कीर्तिकेय के सम्बन्ध में सुनी जाती हैं । ॥१३॥ बिश्वामित्र आदि क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुए हैं, और वे बड़े प्रसिद्ध हैं । इन लोगों ने ब्राह्मणत्व पा लिया है ॥१४॥ द्रोणाचार्य धनुर्धारियों में श्रेष्ट, कलश से उत्पन्न हुए हैं अतएव उनका नाम द्रोण पड़ा है । गौतम कुल में सरकण्डे से शरद्वान् मुनि की उत्पत्ति हुई है ॥१५॥ तुमलोगों का जन्म जिस प्रकार हुआ है वह भी मैं जानता हूँ । कुण्डल कवच तथा समस्त शुभ लक्षणों के साथ कर्ण का जन्म क्या किसी साधारण कुल में हो सकता है । क्या मृगी से बाघ पैदा होता है ॥१६॥ यह केवल अंगदेश का ही नहीं किन्तु समस्त पृथ्वी का राज्य करने के योग्य है । अपने बाहुबल तथा इसकी आज्ञा माननेवाले मेरे बल से यह समस्त पृथ्वी का राजा हो सकता है ॥१७॥ जो कोई मनुष्य मेरे इस काम को बुरा समझता हो । जिसे मेरा काम पसन्द न हो, वह पैदल ही या रथ पर चढ़कर धनुष उठा ले । अर्थात् मुझसे युद्ध करे ॥१८॥ उस समय सभा स्थान में सर्वत्र हाहाकार होनेलगा । कोई दुर्योधन की और कोई भीमसेन की प्रशंसा करने लगा इसी समय सूर्यास्त हो गया ॥१९॥ दुर्योधन कर्ण का हाथ पकड़ कर दीपिका के प्रकाश में रंगस्थल से बाहर निकला ॥२०॥ द्रोणाचार्य कृपाचार्य और भीष्म पितामह के साथ पाण्डव भी अपने घर गये ॥२१॥ दर्शक दल में कोई अर्जुन की कोई कर्ण की और कोई दुर्योधन की प्रशंसा करता जा रहा था ॥२२॥ कुन्ती ने दिव्य लक्षणोंसे अपने पुत्र कर्ण को पहचान लिया था । वह कर्ण अंगदेश का राजा बनाया गया, यह सुनकर कुन्ती मनही मन प्रसन्न हुई ॥२३॥ अर्जुन की वीरता देखकर दुर्योधन के मन में जो भय उत्पन्न हो गया था, वह कर्ण की मैत्री होने से नष्ट हो गया ॥२४॥ शस्त्र

विषय-सूची

स चापि वीरः कृतशस्त्रनिश्रमः परेण साम्नाऽभ्यवदत्सुयोधनम् ।
युधिष्ठिरस्याप्यभवत्तदा मतिर्न कर्णतुल्योऽस्ति धनुर्धरः क्षितौ ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि अस्त्रदर्शने
सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥

वैशम्पायन उवाच—

पाण्डवान्धार्तराष्ट्रांश्च कृतास्त्रान्समवीक्ष्य सः । गुर्वर्थं दक्षिणाकाले प्राप्तेऽमन्यत वै गुरुः ॥१॥
ततः शिष्यान्समाहूय आचार्योऽर्थमचोदयत् । द्रोणः सर्वानशेषेण दक्षिणार्थं महीपते ॥२॥
पञ्चालराजं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि । पर्यानयत भद्रं वः सा स्यात्परमदक्षिणा ॥३॥
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे रथैस्तूर्णं प्रहारिणः । आचार्यधनदानार्थं द्रोणेन सहिता ययुः ॥४॥
ततोऽभिजग्मुः पञ्चालान्निघ्नन्तस्ते नरर्षभाः । ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महौजसः ॥५॥
दुर्योधनश्च कर्णश्च युयुत्सुश्च महाबलः । दुःशासनो विकर्णश्च जलसन्धः सुलोचनः ॥६॥
एते चान्ये च बहवः कुमारा बहुविक्रमाः । अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येवं क्षत्रियर्षभाः ॥७॥
ततो वररथारूढाः कुमाराः सादिभिः सह । प्रविश्य नगरं सर्वे राजमार्गमुपाययुः ॥८॥

में विशेष परिश्रम करनेवाला वह कर्ण भी बड़े विनय से दुर्योधन से बातें करने लगा। अर्थात् उनके आश्रय में रहने लगा। युधिष्ठिर ने यह समझा कि कर्ण के समान वीर पृथ्वी में दूसरा नहीं है ।२५॥

सप्तत्रिंशदधिक शततम अध्याय

—o—

गुरु दक्षिणा—राजा द्रुपद पर चढ़ायी और अर्जुन के द्वारा द्रुपद का बन्दी होना ।

वैशम्पायन बोले—पाण्डवों और धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अस्त्रविद्या में निपुणता पा ली यह देखकर द्रोणाचार्य ने इस समय को गुरु दक्षिणा मांगने के लिए उपयुक्त समझा ॥१॥ अनन्तर शिष्यों को एकत्र करके आचार्य द्रोण ने सबसे गुरुदक्षिणा देने के लिए कहा ॥२॥ पांचालराज द्रुपद को युद्ध में बन्दी बनाकर तुम लोग मेरे पास ले आओ। तुम्हारा कल्याण हो। यही तुम्हारी सबसे बड़ी गुरुदक्षिणा होगी ॥३॥ शिष्यों ने गुरु की आज्ञा स्वीकार की और आचार्य का गुरु दक्षिणा देने की इच्छा से वे सब द्रुपद पर आक्रमण करने के लिए चले ॥४॥ वे नरश्रेष्ठ, पांचाल देशवासियों को मारते हुए पांचाल देश में चले। तेजस्वी राजा द्रुपद के नगर को उन लोगों ने उजाड़ दिया ॥५॥ दुर्योधन, कर्ण, महाबली युयुत्सु, दुःशासन, विकर्ण जलसन्ध, सुलोचन और भी अनेक पराक्रमी राजकुमार सबसे पहले मैं ही आक्रमण करूँ, इस इच्छा से सारथियों के साथ उत्तम रथों पर बैठकर, राजनगर में प्रवेश करके राजमार्ग पर आये ॥६-८॥ उस समय पांचाल

तस्मिन्काले तु पञ्चालःश्रुत्वा दृष्ट्वा महद्बलम् । भ्रातृभिः सहितो राजंस्त्वरया निर्ययौ गृहात्॥९॥
ततस्तु कृतसन्नाहो यज्ञसेनो महीधरः । शरवर्षाणि मुञ्चन्तः प्रणेदुः सर्व एव ते ॥१०॥
ततो रथेन शुभ्रेण समासाद्य तु कौरवान् । यज्ञसेनः शरान्घोरान्ववर्ष युधि दुर्जयः ॥११॥
वैशम्पायन उवाच—

पूर्वमेव तु संमन्त्र्य पार्थो द्रोणमथाब्रवीत् । दर्पोद्रेकात्कुमाराणामाचार्यं द्विजसत्तमम् ॥१२॥
एषां पराक्रमस्यान्ते वयं कुर्याम साहसम् । एतैरशक्यः पञ्चालो ग्रहीतुं रणमूर्धनि ॥१३॥
एवमुक्त्वा तु कौन्तेयो भ्रातृभिः सहितोऽनघः । अर्धक्रोशे तु नगरादतिष्ठद्बहिरेव सः ॥१४॥
द्रुपदः कौरवान्दृष्ट्वा प्राधावत समन्ततः । शरजालेन महता मोहयन्कौरवीं चमूम् ॥१५॥
तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे । अनेकमिव सन्त्रासान्मेनिरे तत्र कौरवाः ॥१६॥
द्रुपदस्य शरा घोरा विचेरुः सर्वतो दिशम् । ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्च सहस्रशः ॥१७॥
प्रावाद्यन्त महाराज पञ्चालानां निवेशने । सिंहनादश्च संजज्ञे पञ्चालानां महात्मनाम् ॥१८॥
धनुर्ज्यातलशब्दश्च संस्पृश्य गगनं महन् । दुर्योधनो विकर्णश्च सुबाहुर्दीर्घलोचनः ॥१९॥
दुःशासनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् । सोऽतिविद्धो महेष्वासः पार्षतो युधि दुर्जयः ॥२०॥

राज ने भी इस बड़ी सेना के आने की खबर सुनी और इसे उन्होंने देखा भी । भाइयों के साथ शीघ्र ही वे राजभवन के बाहर निकल आये ॥९॥ राजा द्रुपद ने घर के बाहर आकर युद्ध के उचित वेश धारण किया । कौरव राजकुमार उन पर बाण वृष्टि और गर्जन करने लगे ॥१०॥ राजा द्रुपद श्वेत रथ पर बैठकर कौरवों के पास आये और दुर्जय वे द्रुपद कौरवों पर भयंकर बाणवृष्टि करने लगे ॥११॥

वैशम्पायन बोले—अर्जुन ने कौरव राजकुमारों का अहंकार देखकर पहले ही द्रोणाचार्य से इस बात की सलाह करली थी ॥१२॥ उन्हों ने कहा था कि इन राजकुमारों के पराक्रम दिखा लेने पर मैं अपना पराक्रम दिखाऊँगा । ये लोग द्रुपद को युद्ध क्षेत्र में नहीं पकड़ सकते ॥१३॥ निष्पाप अर्जुन द्रोणाचार्य से ऐसा कह कर भाइयों के साथ नगर से आध कोश दूर ही ठहरे रहे ॥१४॥ कौरवों को इधर उधर दौड़ते देखकर राजा द्रुपद ने बाणवृष्टि के द्वारा समस्त कौरव सेना को मोहित कर दिया ॥१५॥ राजा द्रुपद अकेले लड़ रहे थे । पर इतनी शीघ्रता से वे बाण चलाते थे कि कौरव घबड़ा गये और वे समझने लगे कि कई आदमी बाण चला रहे हैं ॥१६॥ द्रुपद के भयंकर बाण चारो दिशाओं में विचरण करने लगे । पंचालदेशवासियों के घर घर शंख भेरी और मृदंग बजने लगे । पांचालदेशवाले सिंह गर्जन करने लगे । धनुष के रोंदे और डण्डे का महान् शब्द आकाश तक फैल गया । दुर्योधन, विकर्ण, सुबाहु, दीर्घलोचन, और दुःशासन आदि वीर क्रोध करके बाणवृष्टि करने लगे । महा धनुर्धारी युद्ध में दुर्जय द्रुपद बाणों से बिंध गये ॥१७-२०॥ हे जनमेजय, द्रुपद ने उसी समय कौरव सेना पर आक्रमण किया । दुर्योधन,

व्यधमत्तान्यनीकानि तत्क्षणादेव भारत । दुर्योधनं विकर्णं च कर्णं चापि महाबलम् ॥२१॥
नानानृपसुतान्वीरान्सैन्यानि विविधानि च । अलातचक्रवत्सर्वं चरन्बाणैरतर्पयत् ॥२२॥
ततस्तु नागराः सर्वे मुसलैर्यष्टिभिस्तदा । अभ्यवर्षन्त कौरव्यान्वर्षमाणा घना इव ॥२३॥
सबालवृद्धास्ते पौराः कौरवानभ्ययुस्तदा । श्रुत्वा सुतुमुलं युद्धं कौरवानेव भारत ॥२४॥
द्रवन्तिस्म नदन्तिस्म क्रोशन्तःपाण्डवान्प्रति । पाण्डवास्तु स्वनं श्रुत्वा आर्त्तानां लोमहर्षणम्॥२५॥
अभिवाद्य ततो द्रोणं रथानारुरुहुस्तदा । युधिष्ठिरं निवार्याशु मा युध्यस्वेति पाण्डवम् ॥२६॥
माद्रेयौ चक्ररक्षौ तु फाल्गुनश्च तदाऽकरोत् । सेनाग्रगो भीमसेनस्तदाभूद्गदया सह ॥२७॥
तदा शत्रुस्वनं श्रुत्वा भ्रातृभिःसहितोऽनघः । आयाज्जवेन कौन्तेयो रथेनानादयन्दिशः ॥२८॥
पञ्चालानां ततः सेनामुद्धूतार्णवनिःस्वनाम् । भीमसेनो महाबाहुर्दण्डपाणिरिवान्तकः ॥२९॥
स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चातुलः । अहनत्कुञ्जरानीकं गदया कालरूपधृक् ॥३१॥
ते गजा गिरिसंकाशाः क्षरन्तो रुधिरं बहु । भीमसेनस्य गदया भिन्नमस्तकपिण्डिकाः ॥३२॥
पतन्ति द्विरदा भूमौ वज्राघातादिवाचलाः । गजानश्वान्रथांश्चैव पातयामास पाण्डवः ॥३३॥
पदातींश्च रथांश्चैव न्यवधीदर्जुनाग्रजः । गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान्वने ॥३४॥

विकर्ण, महाबली कर्ण और अन्य वीर राजकुमार तथा सेनाओं को, अलातचक्र आग की लपटें) के समान चारों ओर भ्रमण करते हुए, राजा द्रुपद ने बाणों से घायल कर दिया ॥२१,२२॥ अनन्तर सभी नगरवासी मुसल, लाठी आदि लेकर कौरवों पर मेघ के समान बरसाने लगे ॥२३॥ बालक वृद्ध आदि सभी पुरवासी कौरवों पर चढ़ दौड़े । तुमुल युद्ध का सम्वाद सुनकर वे लोग कौरवों पर चढ़ आये थे । वे वहां से भगे, चिल्लाने लगे तथा पाण्डवों का दोष देने लगे। दुखियों का रोमहर्षण आर्त्तनाद सुनकर पाण्डव द्रोण को प्रणाम कर अपने रथपर बैठे । युधिष्ठिर को अर्जुन ने युद्ध करने से रोक दिया ॥२४-२६॥ नकुल और सहदेव को रथ के दोनों पहियों की रक्षा के लिए नियत किया और भीमसेन सेना के आगे आगे गदा लेकर चले ॥२७॥ उस समय शत्रुओं का गर्जन सुनकर भाइयों के साथ रथ पर चढ़ कर कौन्तेय अर्जुन दिशाओं को आनन्दित करते हुए चले ॥२८॥ द्रुपद की सेना क्षुभित समुद्र के समान गर्जन कर रही थी । उस महासेना में महाबाहु भीमसेन ने गदा लेकर प्रवेश किया, जिस प्रकार मगर समुद्र में प्रवेश करता है । गदा लेकर द्रुपद की, हाथियों की सेना पर भीम ने आक्रमण किया ॥२९-३०॥ युद्धकुशल कालरूपी भीम हाथों के बल से तथा गदा से हाथियों की सेना का नाश करने लगे ॥३१॥ पर्वत के समान ऊँचे वे हाथी भीमसेन के गदाप्रहार से मस्तक के फट जाने के कारण रुधिर की धार बहाने लगे ॥३२॥ वज्र के आघात से पर्वतों के समान, भीम गदा की प्रहार से हाथी गिरने लगे । इसी प्रकार घोड़ों और रथों को भी भीमसेन ने गिरा दिया । अर्जुन के बड़े भाई भीम ने पैदलों और रथियों का वध किया, जिस प्रकार वन में गोप डण्डे से पशुओं को हांकता है । इसी प्रकार भीमसेन रथियों और हाथियों को हांकने लगे और उनके साथ स्वयं चलने लगे ।

चालयन् रथनागांश्च संचचाल वृकोदरः। भारद्वाजप्रियं कर्तुमुद्यतः फाल्गुनस्तदा ॥३५॥
पार्षतं शरजालेन छादयामास पाण्डवः। हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च समंततः ॥३६॥
पातयन्समरे राजन्युगान्ताग्निरिवज्ज्वलन्। ततस्ते हन्यमाना वै पश्चालाः सृञ्जयास्तथा ॥३७॥
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पार्थं संच्छाद्य सर्वशः। सिंहनादं मुखैः कृत्वा समभ्युद्रवन्त पाण्डवम् ॥३८॥
तद्युद्धमभवद्घोरं सुमहाद्भुतदर्शनम्। सिंहनादस्वनं श्रुत्वा नामृष्यत्पाकशासनिः ॥३९॥
ततः किरीटी सहसा पश्चालान्समरेऽद्रवत्। छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव ॥४०॥
शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान्संदधानस्य चानिशम्। नान्तरं ददृशे किंचित्कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥४१॥
सिंहनादश्च संजज्ञे साधुशब्देन मिश्रितः। ततः पाञ्चालराजस्तु तथा सत्यजिता सह ॥४२॥
त्वरमाणोऽभिदुद्राव महेन्द्रं शम्बरो यथा। महता शरवर्षेण पार्थः पाञ्चालमावृणोत् ॥४३॥
ततो हलहलाशब्द आसीत्पाञ्चलके बले। जिघृक्षति महासिंहे गजनामिव यूथपम् ॥४४॥
दृष्ट्वा पार्थं तदाऽऽयान्तं सत्यजित्सत्यविक्रमः। पाञ्चालं वै परीप्सुर्वै समभ्युदद्रुवत् ॥४५॥
ततस्त्वर्जुनपाञ्चालौ युद्धाय समुपागतौ। व्यक्षोभयेतां तौ सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव ॥४६॥
ततः सत्यजितं पार्थो दशभिर्मर्मभेदिभिः। विव्याध बलवद्गाढं तदद्भुतमिवाभवत् ॥४७॥

वैशम्पायन बोले—उसी समय अर्जुन द्रोणाचार्य का प्रिय कार्य करने के लिए उद्यत हुए ॥३३-३५॥ उन्होंने बाणों की वर्षा से द्रुपद को ढँक दिया, वे उनको हाथी से नीचे गिरा देना चाहते थे। अर्जुन के द्वारा प्रहृत होनेवाले पांचाल और उनके संगयोंने अर्जुन को बाणों से ढँककर सिंह नाद किया और वे उनसे युद्ध करने लगे ॥३६-३८॥ वह युद्ध बड़ा ही भयङ्कर और अद्भुत होगया, पांचालों का वह सिंहनाद, वह विजय सूचक गर्जन अर्जुन नहीं सह सके ॥३९॥ वे शीघ्रही पांचालों के पास पहुंचे और निरन्तर बाणवृष्टि के द्वारा उनको ढँककर मूर्छित से करने लगे ॥४०॥ यशस्वी अर्जुन इतना शीघ्र बाण धनुषपर चढ़ाते थे और इतना शीघ्र छोड़ते थे कि इनके बीच के समय का किसी को पता ही नहीं लगता था, कोई यह नहीं जान सकता था कि कब बाण निकाला गया, कब चढ़ाया गया और कब वह छोड़ा गया ॥४१॥ चारों ओर से अर्जुन की प्रशंसा के साथ सिंहनाद होने लगा। इसके पश्चात् पांचालराज द्रुपद ने सत्यजित् के साथ शीघ्रतापूर्वक अर्जुन पर आक्रमण किया, जिस प्रकार शंबरासुर ने इन्द्र पर आक्रमण किया था। अर्जुन ने बाणों की वृष्टि करके द्रुपद को छिपा दिया ॥४२-४३॥ इससे द्रुपद की सेना में कोलाहल मचगया। जिस प्रकार सिंह गजयूथप को पकड़ने के लिए दौड़ता है, उसी प्रकार द्रुपद को पकड़ने के लिए अर्जुन बढ़े आ रहे है यह देखकर सत्यविक्रम सत्यजित् ने अर्जुन पर आक्रमण किया ॥४४,४५॥ इसके अनन्तर अर्जुन और पांचालराज का आमना सामना युद्ध होने लगा। इन दोनों ने दोनों की सेनाओं को क्षुभित कर दिया, जिस प्रकार इन्द्र और बलिराज ने एक दूसरे की सेना को क्षुभित कर दिया था ॥४६॥ अर्जुन ने मर्मभेदी दस बाण सत्यजित् को मारे यह बात बड़े आश्चर्य की हुई ॥४७॥ अनन्तर पांचाल सत्यजित् ने सौ बाणों से अर्जुन को पीड़ित

ततः शरशतैः पार्थं पाञ्चालो शीघ्रमार्दयम् । पार्थस्तु शरवर्षेणाच्छाद्यमानो महारथः ॥४८॥
वेगं चक्रे महावेगो धनुर्ज्यामवमृज्य च । ततः सत्यजितश्चापं छित्वा राजानमभ्ययात् ॥४९॥
अथान्यद्धनुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरम् । साश्वं ससूतं सरथं पार्थं विव्याध सत्वरः ॥५०॥
स तं न ममृषे पार्थः पाञ्चालेनार्दितो युधि । ततस्तस्य विनाशार्थं सत्वरं व्यसृजच्छरान् ॥५१॥
हयान्ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ तौ पार्ष्णिसारथी । स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ॥५२॥
हयेषु विनिकृत्तेषु विमुखोऽभवदाहवे । स सत्यजितमालोक्य तथा विमुखमाहवे ॥५३॥
वेगेन महता राजन्नभ्यधावत पार्षतम् । तदा चक्रे महद्युद्धमर्जुनो जयतां वरः ॥५४॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्वा ध्वजं चोर्व्यामपातयत् । पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान्सूतं च सायकैः ॥५५॥
तत उत्सृज्य तच्चापमाददानः शरावरम् । खड्गमुद्धृत्य कौन्तेयः सिंहनादमथाकरोत् ॥५६॥
पाञ्चालस्य रथस्येषामाप्लुत्य सहसाऽपतत् । पाञ्चालरथमास्थाय अवित्रस्तो धनञ्जयः ॥५७॥
विक्षोभ्याम्भोनिधिं पार्थस्तं नागमिव सोऽग्रहीत् । ततस्तु सर्वपञ्चाला विद्रवन्ति दशोदिशि ॥५८॥
दर्शयन्सर्वसैन्यानां स बाह्वोर्बलमात्मनः । सिंहनादस्वनं कृत्वा निर्जगाम धनञ्जयः ॥५९॥
आयान्तमर्जुनं दृष्ट्वा कुमाराः सहितास्तदा । ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महात्मनः ॥६०॥

किया । महारथ अर्जुन बाणों से ढँक गये । अर्जुन ने पुनः बल लगाया, धनुष का रोंदा साफ किया और वे बड़े वेग से बाण चलाने लगे । सत्यजित् का धनुष काटकर वे राजा के पास चले गये ॥४८,४९॥ सत्यजित् ने दूसरा दृढ़ धनुष लिया और वे घोड़ा रथ सारथि और अर्जुन को शीघ्रतापूर्वक बाणों से घायल करने लगे ॥५०॥ सत्यजित् ने अर्जुन को बाणवर्षा से पीड़ित कर दिया, अर्जुन इसको सहन न कर सके और उसके नाश के लिए उन्होंने बाण छोड़े ॥५१॥ जिससे उसके रथ के घोड़े ध्वजा, धनुष का मुट्ठा (धनुष पकड़ने की जगह) रथ के दोनों ओर के रथ सारथि आहत हुए । सत्यजित् ने जब देखा कि उनका धनुष बारबार काट दिया जाता है, रक्षक के घोड़े बारबार घायल कर दिये जाते हैं, तब उन्होंने युद्ध करना छोड़ दिया । द्रुपद ने जब देखा कि सत्यजित् युद्धक्षेत्र से हट गया तब वे बड़े वेग से बाणवृष्टि करने लगे । इस समय श्रेष्ठ विजयी अर्जुन ने घोर युद्ध किया ॥५२,५४॥ अर्जुन ने उनका धनुष काट दिया और उनकी ध्वजा काटकर पृथिवी पर गिरा दी और पांच बाणों से उनके घोड़े और सारथि को घायल किया ॥५५॥ इसके पश्चात् कुन्तीनन्दन अर्जुन ने धनुष रख दिया और तलवार लेकर उन्होंने सिंह गर्जन किया । अर्जुन कूदकर द्रुपद के रथपर चढ़ गये, और वहां निर्भय बैठ गये, जिस प्रकार गरुड़ समुद्र को हलोरकर उसमें से नाग को पकड़ लेता है, उसी प्रकार अर्जुन ने राजा द्रुपद को पकड़ लिया । राजा के पकड़े जाने पर पांचाल लोग इधर उधर भागने लगे ॥५६,५८॥ समस्त पांचाल सेनाओं को अपनी भुजाओं का बल दिखलाते हुए तथा सिंहनाद करते हुए अर्जुन द्रुपद के साथ लौट आये । अर्जुन को आते देखकर अन्य सब राजकुमार मिलकर द्रुपद के नगर को लूटने लगे ॥५९,६०॥

अर्जुन उवाच—

सम्बन्धी कुरुवीराणां द्रुपदो राजसत्तमः। मा वधीस्तद्बलं भीम गुरुदानं प्रदीयताम् ॥६१॥

वैशम्पायन उवाच—

भीमसेनस्तदा राजन्नर्जुनेन निवारितः। अतृप्तो युद्धधर्मेषु न्यवर्तत महाबलः ॥६२॥
ते यज्ञसेनं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि। उपाजग्मुः सहामात्यं द्रोणाय भरतर्षभ ॥६३॥
भग्नदर्पं हृतधनं तं तथा वशमागतम्। सवैरं मनसा ध्यात्वा द्रोणो द्रुपदमब्रवीत् ॥६४॥
विमृद्य तरसा राष्ट्रं पुरं ते मृदितं मया। प्राप्य जीवन्रिपुवशं सखिपूर्वं किमिष्यते ॥६५॥
एवमुक्त्वा प्रहस्यैवं किंचित्स पुनरब्रवीत्। मा भैः प्राणभयाद्वीर क्षमिणो ब्राह्मणा वयम् ॥६६॥
आश्रमे क्रीडितं यत्तु त्वया बाल्ये मया सह। तेन संवर्धितः स्नेहः प्रीतिश्च क्षत्रियर्षभ ॥६७॥
प्रार्थयेयं त्वया सख्यं पुनरेव जनाधिप। वरं ददामि ते राजन् राज्यस्यार्धमवाप्नुहि ॥६८॥
अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति। अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन मया तव ॥६९॥
राजाऽसि दक्षिणे कूले भागीरथ्याऽहमुत्तरे। सखायं मां विजानिहि पाञ्चाल यदि मन्यसे ॥७०॥

अर्जुन बोले—भीम, राजश्रेष्ठ द्रुपद कुरु राजाओं के सम्बन्धी हैं अतएव इनके सैनिकों को मत मारो, केवल गुरु दक्षिणा का ही पूरा करो, अर्थात गुरुने जो द्रुपद को पकड़ मगवाया है, इतनाही हम लोगों को करना चाहिए। ये हमारे शत्रु नहीं हैं, अतएव इनके साथ शत्रु के समान आचरण नहीं करना चाहिए ॥६१॥

वैशम्पायन बोले—राजन्, अर्जुन ने भीमसेन को इस प्रकार रोक दिया, इस कारण यद्यपि उनका मन युद्ध से भरा न था तथापि उन्होंने युद्ध बन्द कर दिया ॥६२॥ भरतश्रेष्ठ राजा द्रुपद को अमात्य के साथ युद्ध क्षेत्र में पकड़ कर वे राजकुमार गुरु द्रोण के पास ले आये ॥६३॥ जिस राजा द्रुपद का अहंकार नष्ट हो गया था सर्वस्व लूट लिया गया था और जो अपने अधीन बन्दी होकर आया था, उसका पूर्व बैर स्मरण कर के द्रोणाचार्य उससे बोले ॥६४॥ बल पूर्वक मैंने तुम्हारे राज्य को जीत लिया है। तुम्हारा जीवन इस समय मेरे अधीन है, क्या तुम पुनः जीवन पाकर मुझसे मैत्री बनाये रखना चाहते हो ॥६५॥ ऐसा कह कर तथा थोड़ा हंस कर द्रोण ने पुनः कहा. प्राण भय से भीत मत होओ। हम लोग क्षमाशील ब्राह्मण हैं ॥६६॥ हे क्षत्रिय श्रेष्ठ, एक आश्रम में बाल्यावस्था में मैंने तुम्हारे साथ खेल किया है, उसी से स्नेह और प्रेम बढ़ गया है ॥६७॥ राजन्, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम मेरे मित्र बने रहो और मैं तुमको यह वर देता हूँ कि अपने राज्य का आधा भाग तुमको मिले ॥६८॥ यज्ञसेन तुमने कहा था कि जो राजा नहीं है वह राजा का मित्र नहीं हो सकता, अतएव तुमसे मैत्री करने के लिए ही ऐसा प्रयत्न किया है ॥६९॥ गंगा के दक्षिण तीर के राजा तुम रहो और उत्तर तीर का राजा मैं रहूँगा, पांचाल, यदि तुम उचित समझो तो मुझे भी अब अपना मित्र समझो ॥७०॥

द्रुपद उवाच—

अनाश्चर्यमिदं ब्रह्मन् विक्रान्तेषु महात्मसु। प्रीये त्वयाऽहं त्वत्तश्च प्रीतिमिच्छामि शाश्वतीम् ॥७१॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तः स तं द्रोणो मोक्षयामास भारत। सत्कृत्य चैनं प्रीतात्मा राज्यार्धं प्रत्यपादयत् ॥७२॥
माकन्दीमथ गङ्गायास्तीरे जनपदायुताम्। सोऽध्यावसद्दीनमनाः काम्पिल्यं च पुरोत्तमम् ॥७३॥
दक्षिणांश्चापि पञ्चालान यावच्चर्मण्वती नदी। द्रोणेन चैवं द्रुपदः परिभूयाथ पालितः ॥७४॥
क्षात्रेण च बलेनास्य नापश्यत्स पराजयम्। हीनं विदित्वा चात्मानं ब्राह्मणे सबलेन तु ॥७५॥
पुत्रजन्म परीप्सन्वै पृथिवीमन्वसंचरत्। अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत ॥७६॥
एवं राजन्नहिच्छत्रा पुरी जनपदायुता। युधि निर्जित्य पार्थेन द्रोणाय प्रतिपादिता ॥७७॥
इति श्री महाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि द्रुपदशासनेऽष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः संवत्सरस्यान्ते यौवराज्याय पार्थिव। स्थापितो धृतराष्ट्रेण पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१॥
धृतिस्थैर्यसहिष्णुत्वादानृशंस्यात्तथाऽऽर्जवात्। भृत्यानामनुकम्पार्थं तथैव स्थिरसौहृदात् ॥२॥

द्रुपद बोले—आपके समान पराक्रमी महात्मा के लिए यह कोई आश्चर्य नहीं है। आप मुझपर प्रेम रखते हैं, मैं भी आप से सदा प्रेम रखना चाहता हूँ ॥७१॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत, द्रुपद के ऐसा कहने पर द्रोण ने उनके बन्धन खुलवा दिये, और प्रसन्नता पूर्वक उनका सत्कार करके उन्होंने उन्हें आधा राज्य दे दिया ॥७२॥ गंगातीर के अनेक प्रान्तों से युक्त माकन्दी देश को पा कर द्रुपद काम्पिल्य नामक सुन्दर नगर में दुःखी होकर रहने लगे ॥७३॥ द्रुपद ने चर्मण्वती (चंबल) नदी तक दक्षिण पांचाल तक का राज्य पाया। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने द्रुपद को हराया और पुनः उन्हें राजा बनाया ॥७४॥ राजा द्रुपद को यह निश्चय हो गया कि वह क्षत्रबल से द्रोणाचार्य को नहीं हरा सकता है और ब्राह्मबल उसमें नहीं है, अतएव पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से वह पृथिवी पर भ्रमण करने लगा।

द्रुपद के राज्य का आधा भाग पाकर द्रोणाचार्य अहिच्छत्र नामक नगर में रहने लगे ॥७५-७६॥ युद्ध में जीत कर अर्जुन ने यह अहिच्छत्र नगर तथा अनेक संदेशोंवाला राज्य द्रोणाचार्य को दिया था ॥७७॥

अष्टत्रिंशदधिक शततम अध्याय।

पाण्डवों का अभ्युदय, युधिष्ठिर का युवराज होना, अर्जुन की वीरता, धृतराष्ट्र की चिन्ता।

वैशम्पायन बोले—इसके एक वर्ष के बाद राजा धृतराष्ट्र ने पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर को युवराज का पद दिया ॥१॥ क्योंकि युधिष्ठिर बड़े गुणी थे, वे धीर, स्थिर सहिष्णु दयालु, विनयी,

ततोऽदीर्घेण कालेन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। पितुरन्तर्दधे कीर्तिं शीलवृत्तसमाधिभिः ॥३॥
असियुद्धे गदायुद्धे रथयुद्धे च पाण्डवः। संकर्षणादशिक्षद्वै शश्वच्छिक्षां वृकोदरः ॥४॥
समाप्तशिक्षो भीमस्तु द्युमत्सेनसमो बले। पराक्रमेण संपन्नो भ्रातॄणामचरद्वशे ॥५॥
प्रगाढदृढमुष्टित्वे लाघवे वेधने तथा। क्षुरनाराचभल्लानां विपाठानां च तत्ववित् ॥६॥
ऋजुवक्रविशालानां प्रयोक्ता फाल्गुनोऽभवत्। लाघवे सौष्ठवे चैव नान्यः कश्चन विद्यते ॥७॥
बीभत्सुसदृशो लोके इति द्रोणो व्यवस्थितः। ततोऽब्रवीद्गुडाकेशं द्रोणः कौरवसंसदि ॥८॥
अगस्त्यस्य धनुर्वेदे शिष्यो मम गुरुः पुरा। अग्निवेश इति ख्यातस्तस्य शिष्योऽस्मि भारत ९॥
तीर्थात्तीर्थं गमयितुमहमेतत्समुद्यतः। तपसा यन्मया प्राप्तममोघमशनिप्रभम् ॥१०॥

भृत्यों पर दया रखने वाले थे। युधिष्ठिर के इन्हीं गुणों को देखकर धृतराष्ट्र ने प्रजा पर कृपा करने की इच्छा से और युधिष्ठिर के ऊपर अनुराग होने से उन्हें युवराज का पद दिया। तात्पर्य यह कि युधिष्ठिर के समान शासक पाने से प्रजा का कल्याण ही होगा इसी कृपाभाव से धृतराष्ट्र प्रेरित थे ॥२॥ थोड़े ही दिनों युधिष्ठिर ने विनय सौजन्य आदि गुणों से, शौर्य तेज आदि से तथा सब प्रकार से प्रजा को प्रसन्न रखने से अपने पिता से भी बढ़ कर कीर्ति पाली ॥३॥

भीमसेन ने बलदेव जी के पास सदा रहकर असि युद्ध, गदा युद्ध और रथ युद्ध की शिक्षा पायी ॥४॥ इन सब प्रकार के युद्धों की शिक्षा पाकर भीमसेन राजा द्युमत्सेन के समान पराक्रमी और बलवान् हो गये और अपने भाइयों के साथ रहने लगे। युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार रहने लगे ॥५॥

अर्जुन अस्त्र विद्या में बड़े निपुण हुए। बल पूर्वक धनुष का मुट्ठा पकड़ने में, शीघ्र शीघ्र बाण छोड़ने में निशाना लगाने में, क्षुर, नाराच भाला, और विपाठ नामक बाणों को सीधा टेढ़ा और दूर तक फेंकने में अर्जुन निपुण हो गये। शीघ्र बाण चलाने में और चतुराई में उनके समान कोई वीर न था ॥६-७॥ द्रोणाचार्य ने भी यह कहा था कि अर्जुन के समान इस लोक में कोई वीर नहीं है। एक दिन द्रोणाचार्य ने कौरवों की सभा में अर्जुन से कहा था ॥८॥ मेरे गुरु अग्निवेश ने अगस्त्य मुनि से धनुर्वेद की शिक्षा पायी थी। हे भारत, मैं उन्हीं अग्निवेश का शिष्य हूँ ॥९॥ अब मैं उस विद्या का सम्प्रदाय बनाये रखना चाहता हूँ, अर्थात् अपने गुरु से मैंने जो विद्या सीखी है वह दूसरे को देना चाहता हूँ। वज्र के समान अकाट्य जो ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र मैंने तपस्या के द्वारा पाया है वही मैं तुमको देना चाहता हूँ। वह अस्त्र अपने तेज से समूची पृथिवी को जला सकता है। इस अस्त्र की शिक्षा देने के समय गुरु ने मुझसे कहा था कि इस अस्त्र का प्रयोग तुम मनुष्यों पर न करना, द्रोण, इसका प्रयोग दुर्बलों पर भी न करना। वीर, अर्जुन, यह दिव्य अस्त्र मैं तुमको देता हूं तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा इस लोक में मुझसे यह अस्त्र नहीं पा सकता। मुनि ने इस अस्त्र के सम्बन्ध में जो नियम बतलाये हैं, उनका पालन तुम भी करना। तुम भी इस अस्त्र का प्रयोग दुर्बलों और मनुष्यों पर

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम यद्दहेत्पृथिवीमपि । ददता गुरुणा चोक्तं न मनुष्येष्विदं त्वया ॥११॥
भारद्वाज विमोक्तव्यमल्पवीर्येष्वपि प्रभो । त्वया प्राप्तमिदं वीर दिव्यं नान्योर्हति त्विदम् ॥१२॥
समयस्तु त्वया रक्ष्यो मुनिसृष्टो विशांपते । आचार्यदक्षिणां देहि ज्ञातिग्रामस्य पश्यतः ॥१३॥
ददानीति प्रतिज्ञाते फाल्गुनेनाब्रवीद्गुरुः । युद्धेऽहं प्रतियोद्धव्यो युध्यमानस्त्वयाऽनघ ॥१४॥
तथेति च प्रतिज्ञाय द्रोणाय कुरुपुंगवः । उपसंगृह्य चरणौ संप्रायादुत्तरां दिशम् ॥१५॥
स्वभावादगमच्छब्दो महीं सागरमेखलाम् । अर्जुनस्य समो लोके नास्ति कश्चिद्धनुर्धरः ॥१६॥
गदायुद्धेऽसियुद्धे च रथयुद्धे च पाण्डवः । पारगश्च धनुर्युद्धे बभूवाथ धनञ्जयः ॥१७॥
नीतिमान्सकलां नीतिं विबुधाधिपतेस्तदा । अवाप्य सहदेवोऽपि भ्रातॄणां वर्तते वशे ॥१८॥
द्रोणेनैव विनीतश्च भ्रातॄणां नकुलः प्रियः । चित्रयोधी समाख्यातो बभूवातिरथोदितः ॥१९॥
त्रिवर्षकृतयज्ञस्तु गन्धर्वाणामुपप्लवे । अर्जुनप्रमुखैः पार्थैः सौवीरः समरे हतः ॥२०॥
न शशाक वशे कर्तुं यं पाण्डुरपि वीर्यवान् । सोऽर्जुनेन वशं नीतो राजाऽऽसीद्यवनाधिपः ॥२१॥
अतीवबलसंपन्नः सदा मानी कुरून्प्रति । विपुलो नाम सौवीरः शस्तः पार्थेन धीमता ॥२२॥
दत्तामित्र इतिख्यातं संग्रामे कृतनिश्चयम् । सुमित्रं नाम सौवीरमर्जुनो दमयच्छरैः ॥२३॥

न करना । इस प्रकार अर्जुन को दिव्य अस्त्र की शिक्षा देकर द्रोणाचार्य ने कहा कि अब तुम अपने बान्धवों तथा ग्रामवासियों के सामने मुझे गुरु दक्षिणा दो ॥१०-१३॥ अर्जुन ने जब गुरु-दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा की तब द्रोणाचार्य बोले—हे निष्पाप, युद्धक्षेत्र में यदि मैं तुम्हारे सामने युद्ध करने आऊं तो तुम मुझसे युद्ध करना यही मेरी गुरु दक्षिणा है ॥१४॥ अर्जुन ने गुरु द्रोणा-चार्य से वैसा करने की प्रतिज्ञा की और वे गुरु के चरणों को प्रणाम करके उत्तर दिशा की ओर चले गये ॥१५॥ स्वभाव से ही यह बात समुद्रपर्यन्त समस्त पृथिवी में फैल गयी कि अर्जुन के समान अस्त्रवेत्ता दूसरा इस लोक में नहीं है ॥१६॥ गदायुद्ध असियुद्ध और धनुर्युद्ध में अर्जुन अत्यन्त निपुण थे इन युद्धों के समस्त रहस्य उन्हें मालूम थे ॥१७॥

देवरूप द्रोणाचार्य से विनयी सहदेव ने समस्त नीतिशास्त्र की शिक्षा पायी थी और वे अपने भाइयों के अधीन उनके साथ रहते थे ॥१८॥ भाइयों के प्रिय नकुल को भी द्रोणाचार्य ने ही शिक्षा दी थी। वे चित्रयोधी, और अतिरथ के नाम से प्रसिद्ध थे ॥१९॥

गन्धर्वों के उपद्रव रहने पर भी सौवीर ने तीन वर्षों तक यज्ञ किया था, अर्थात् उसने गन्धर्वों के उपद्रव को नगण्य समझा था, उसको अर्जुन आदि पाण्डवों ने मार डाला ॥२०॥ यवन राज इतना बली था कि उसे राजा पाण्डु भी अपने वश नहीं ला सके थे, पर अर्जुन ने उसे भी वश कर लिया ॥२१॥ सौवीर देश का राजा विपुल बड़ा बली था, वह कौरवों को कुछ नहीं समझता था, उसे बुद्धिमान् अर्जुन ने मार डाला ॥२२॥ दत्तामित्र के नाम से प्रसिद्ध सुमित्रनामक सौवीर देश के योद्धा को, जो सदा युद्ध किया करता था अर्जुन ने बाणों से परास्त कर दिया ॥२३॥

भीमसेनसहायश्च रथानामयुतं च सः। अर्जुनः समरे प्राच्यान्सर्वानेकरथोऽजयत् ॥२४॥
तथैवैकरथो गत्वा दक्षिणामजयद्दिशम्। धनौघं प्रापयामास कुरुराष्ट्रं धनञ्जयः ॥२५॥
एवं सर्वे महात्मनः पाण्डवा मनुजोत्तमाः। परराष्ट्राणि निर्जित्य स्वराष्ट्रं ववृधुः पुरा ॥२६॥
ततो बलमतिख्यातं विज्ञाय दृढधन्विनाम्। दूषितः सहसा भावो धृतराष्ट्रस्य पाण्डुषु ॥
स चिन्तापरमो राजा न निद्रामलभन्निशि ॥२७॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि धृतराष्ट्रचिन्तायामून-
चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३९॥

वैशम्पायन उवाच—
श्रुत्वा पाण्डुसुतान्वीरान् बलोद्रिक्तान्महौजसः। धृतराष्ट्रो महीपालश्चिन्तामगमदातुरः ॥१॥
तत आहूय मन्त्रज्ञं राजशास्त्रार्थवित्तमम्। कणिकं मन्त्रिणां श्रेष्ठं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्वचः ॥२॥
धृतराष्ट्र उवाच—
उत्सक्ताः पाण्डवा नित्यं तेभ्योऽसूये द्विजोत्तम। तत्र मे निश्चिततमं सन्धिविग्रहकारणम्।
कणिक त्वं ममाचक्ष्व करिष्ये वचनं तव ॥३॥

भीमसेन की सहायता से अकेले अर्जुन ने पूर्वदिशा के दसहजार रथी राजाओं को जीत लिया ॥२४॥ इसी प्रकार अकेले अर्जुन दक्षिण दिशा में गये और वहां के राजाओं को उन्होंने जीता। अर्जुन ने इन देशों से धन बटोर कर कुरुदेश में पहुंचाया ॥२५॥ इस प्रकार मनुष्य श्रेष्ठ महात्मा पाण्डव दूसरे राज्यों को जीतकर अपना राज्य बढ़ाने लगे ॥२६॥ पाण्डवों के बल और वीरता की प्रसिद्धि चारो ओर होगयी है यह जानकर धृतराष्ट्र का भाव पाण्डवों की ओर से बदल गया। वे इनसे शङ्कित रहने लगे। इतने शङ्कित होगये कि उन्हें रात में अच्छी तरह नींद भी न आने लगी ॥२७॥

एकोनचत्वारिंशदधिक शततम अध्याय।

धृतराष्ट्र की चिन्ता और कणिक से परामर्श, कणिक नीति।

वैशम्पायन बोले—राजा धृतराष्ट्र ने सुना कि तेजस्वी पाण्डु पुत्र बड़े वीर निकले। उनका बल बढ रहा है, इससे वे बहुत व्याकुल हुए, सदा चिन्तित रहने लगे ॥१॥ तब उन्होंने राजनीति शास्त्र के विशेष पण्डित, परामर्श देने में निपुण, मन्त्रियों में विश्वासी कणिक को बुलाया और उनसे राजा इस प्रकार बोले ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—ब्राह्मण श्रेष्ठ, पाण्डवों की दिनोंदिन होनेवाली बढ़ती देखकर मैं उनसे ईर्ष्या करने लगा हूँ। उनकी उन्नति से मुझे शङ्का हो रही है। अतएव इस सम्बन्ध में मुझे क्या करना चाहिए, सन्धि या विग्रह, यह आप निश्चय करके कहें, जो आप कहेंगे वह मैं करूँगा ॥३॥

वैशम्पायन उवाच—

स प्रसन्नमनास्तेन परितुष्टो द्विजोत्तमः । उवाच वचनं तीक्ष्णं राजशास्त्रार्थदर्शनम् ॥४॥
शृणु राजन्निदं तत्र प्रोच्यमानं मयाऽनघ । न मेऽभ्यसूया कर्तव्या श्रुत्वैतत्कुरुसत्तम ॥५॥
नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः । अच्छिद्रश्छिद्रदर्शी स्यात्परेषां विवरानुगः ॥६॥
नित्यमुद्यतदण्डाद्धि भृशमुद्विजते जनः । तस्मात्सर्वाणि कार्याणि दण्डेनैव विधारयेत् ॥७॥
नास्य च्छिद्रं परः पश्येच्छिद्रेण परमन्वियात् । गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥८॥
नासम्यक्कृत्यकारी स्यादुपक्रम्य कदाचन । कण्टकोह्यपि दुश्छिन्न आस्रावं जनयेच्चिरम् ॥९॥
वधमेव प्रशंसन्ति शत्रूणामपकारिणाम् । सुविदीर्णं सुविक्रान्तं सुयुद्धं सुपलायितम् ॥१०॥
आपद्यापदि काले च कुर्वीत न विचारयेत् । नावज्ञेयो रिपुस्तात दुर्बलोऽपि कथंचन ॥११॥

वैशम्पायन बोले—धृतराष्ट्र का प्रश्न सुनकर वह ब्राह्मण बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह राजशास्त्र के अनुकूल उग्र वचन बोलने लगा ॥४॥ हे निष्पाप, इस सम्बन्ध में जो मैं कहता हूँ आप सुनें और हे कुरुश्रेष्ठ मेरी बातें सुनकर आप मुझे बुरा न समझिएगा, मुझ पर क्रोध न कीजिएगा ॥५॥ राजा को सदा दण्ड देने के लिए तयार रहना चाहिए, दुर्बलों का न तो नाश करना चाहिए और न उपेक्षा ही, केवल दण्ड देने के लिए उद्यत रहना चाहिए। सदा पराक्रम दिखाने के लिए उद्यत रहना चाहिए, सदा युद्ध के लिए तयार रहना चाहिए। अपने दोषों, कमजोरियों को दूर करते रहना चाहिए और दूसरों के दोषों को कमजोरियों को देखते रहना चाहिए। साथ ही शत्रु राजा की कमजोरियों को देखकर ही अपना कर्तव्य, निश्चित करना चाहिए ॥६॥ जो राजा सदा दण्ड देने के लिए उद्यत रहता है किन्तु दण्ड देता नहीं, उससे लोग डरते हैं, अतएव राजा को चाहिए कि अपने समस्त कार्य दण्ड के द्वारा ही सिद्ध करे ॥७॥ राजा को चाहिए कि उसकी कमजोरियों को, उसके दोषों को शत्रु न जानने पावें, पर वह स्वयं शत्रु की कमजोरियों को जान ले और उनसे लाभ उठावे। जिस प्रकार कछुआ अपने अंग छिपा लेता है उसी प्रकार राजा को भी अपनी कमजोरियां छिपानी चाहिए, अपनी कमजोरियां प्रकट नहीं होने देनी चाहिए ॥८॥ शत्रु नाश के लिए कोई कार्य प्रारम्भ करके उसे बीच से ही नहीं छोड़ देना चाहिए, उसे पूरा कर देना चाहिए। क्योंकि शत्रु को यदि जड़मूल से उखाड़ न दिया जाय तो वह सदा दुख देता रहता है। एक कांटा भी यदि पूरा पूरा न निकाल दिया जाय तो उससे घाव हो जाता है, पीब बहती रहती है ॥९॥ अपकारी शत्रु का तो वध कर देना ही प्रशंसित कहा गया है। यदि वह बड़ा पराक्रमी हो तो उस पर आपत्ति आने पर उसे मार डाले, यदि वह योद्धा हो तो उसकी आपत्ति के समय उससे युद्ध करके उसे भगा दे। जब शत्रु किसी आपत्ति में फंसा हो तो अवश्य उसको नीचा दिखावे, अवश्य उसका विनाश करे। यह सब बिना सोचे विचारे करे, दया आदि का विचार मन में न आने दे। भाई, छोटे शत्रु की भी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, उसका तो नाश ही कर डालना चाहिए ॥१०-११ थोड़ी भी

अल्पोऽप्यग्निर्वनं कृत्स्नं दहत्याश्रयसंश्रयात् । अन्धः स्यादन्धवेलायां बाधिर्यमपि चाश्रयेत् ॥१२॥
कुर्यात्तृणमयं चापं शयीत मृगशायिकाम् । सान्त्वादिभिरुपायैस्तु हन्याच्छत्रुं वशे स्थितम्॥१३॥
दया न तस्मिन्कर्तव्या शरणागत इत्युत । निरुद्विग्नो हि भवति न हताज्जायते भयम् ॥१४॥
हन्यादमित्रं दानेन तथा पूर्वापकारिणम् । हन्यात्त्रीन्पञ्च सप्तेति परमक्षस्य सर्वशः ॥१५॥
मूलमेवादितश्छिन्द्यात्परपक्षस्य नित्यशः । ततः सहायांस्तत्पक्षान् सर्वांश्च तदनन्तरम् ॥१६॥
छिन्नमूले ह्यधिष्ठाने सर्वे तज्जीविनो हताः । कथं नु शाखास्तिष्ठेरंश्छिन्नमूले वनस्पतौ ॥१७॥
एकाग्रः स्यादविवृतो नित्यं विवरदर्शकः । राजन्नित्यं सपत्नेषु नित्योद्विग्नः समाचरेत् ॥१८॥
अग्न्याधानेन यज्ञेन काषायेण जटाजिनैः । लोकान्विश्वासयित्वैव ततो लुम्पेद्यथा वृकः ॥१९॥
अङ्कुशं शौचमित्याहुरर्थानामुपधारणे । आनाम्य फलितां शाखां पक्वं पक्वं प्रशातयेत् ॥२०॥

आग आश्रय मिल जाने से समूचे वन को जला देती है। अन्धा बनने से यदि लाभ हो तो राजा को अन्धा बन जाना चाहिए, बहरा होने से लाभ होता हो तो बहरा हो जाना चाहिए ॥१२॥ अवसर आने पर अपने धनुष को तृण के समान बना देना चाहिए; उससे काम न लेकर तिनके के समान व्यर्थ बना देना चाहिए, जिससे शत्रु अपने पर विश्वास करने लगे और स्वयं मृग-शयन किये हो, (मृगा को मारने के लिए जिस प्रकार व्याध सोने का बहाना करके बैठा रहता है, और मौका देखते ही मृगा को मार देता है। व्याध्र के इसी सोने को "मृगशयन" कहते हैं) साम दाम आदि उपायों से शत्रु को वश में करे और जब शत्रु वश में आ जाय तब उसे मार डाले ॥१३॥ शत्रु शरण में आया है, ऐसा समझकर उस पर दया नहीं करनी चाहिए। क्योंकि शत्रु का नाश कर देने से मनुष्य निरुद्वेग हो जाता है. शत्रु का वध कर देने पर किसी प्रकार का भय नहीं रह जाता ॥१४॥ दान के द्वारा परिचारकों को वश में करके उनके द्वारा विष प्रयोग करके सहज शत्रु (वान्धव) को मरवा डाले। जिसने पहले अपकार किया है और इस समय वह अनुगत हो गया हो तो भी उसे मार डाले। शत्रु पक्ष के तीन--ऐश्वर्य--मन्त्र और उत्साह को, पांच--मन्त्री, राज्य, दुर्ग, खजाना और सेना को, तथा सात--साम, दान, दण्ड, भेद, उद्बन्धन, विष और आग को नष्ट कर दे अर्थात् शत्रु के सहायक साधनों को नष्ट कर दे ॥१५॥ पहले शत्रु का मूल ही काट डाले। पुनः उसके सहायकों को और उसके पश्चात् जितने शत्रु के पक्षवाले हों उन सब का नाश कर दे ॥१६॥ आश्रय की जड़ काट देने पर उसके आश्रय से जीनेवाले आपही आप नष्ट हो जाते हैं। शत्रु की जड़ काट देने पर शत्रु के आश्राय से जीनेवाले आपही आप नष्ट हो जाते हैं। क्या वृक्ष की जड़ काट देने पर उसकी शाखें हरी रह सकती हैं ॥१७॥ राजा को शत्रु की ओर से सदा सावधान रहना चाहिए, स्वयं सब प्रकार से रक्षित रहकर शत्रु के अरक्षित स्थानों का पता लगाते रहना चाहिए। इस प्रकार शत्रुओं के सम्बन्ध में कभी निरुद्वेग न हो जाय, कभी निश्चिन्त न हो ॥१८॥ अग्निहोत्र, यज्ञ, संन्यास, जटा, मृगचर्म आदि के द्वारा लोक में विश्वास उत्पन्न करा दे, फिर भेड़िये के समान उनको लूटे ॥१९॥ लोग कहते हैं कि धार्मिक शुद्धता मतलब साधने का एक अंकुश है, उपाय है। धार्मिक शुद्धि से मनुष्य आकृष्ट होता है। जिस प्रकार पेड़ का डाल झुकाकर पके पके फल तोड़ लियेजाते हैं ॥२०॥ विद्वान् पुरुष शत्रु नाश के लिए

फलार्थोऽयं समारम्भो लोके पुंसां विपश्चिताम् । वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः ॥२१॥
ततः प्रत्यागते काले भिन्द्याद्घटमिवाश्मनि । अमित्रो न विमोक्तव्यः कृपणं बह्वपि ब्रुवन् ॥२२॥
कृपा न तस्मिन्कर्तव्या हन्यादेवापकारिणम् । हन्यादमित्रं सान्त्वेन तथा दानेन वा पुनः ॥२३॥
तथैव भेददण्डाभ्यां सर्वोपायैः प्रशातयेत् ।

धृतराष्ट्र उवाच— कथं सान्त्वेन दानेन भेदैर्दण्डेन वा पुनः ॥२४॥
अमित्रः शक्यते हन्तुं तन्मे ब्रूहि यथातथम् ।

कणिक उवाच— शृणु राजन्यथावृत्तं वने निवसतः पुरा ॥२५॥
जम्बुकस्य महाराज नीतिशास्त्रार्थदर्शिनः । अथ कश्चित्कृतप्रज्ञः शृगालः स्वार्थपण्डितः ॥२६॥
सखिभिर्न्यवसत्सार्धं व्याघ्राखुवृकबभ्रुभिः । तेऽपश्यन्विपिने तस्मिन्बलिनं मृगयूथपम् ॥२७॥
अशक्ता ग्रहणे तस्य ततो मन्त्रममन्त्रयन् ।

जम्बुक उवाच— असकृद्यतितो ह्येष हन्तुं व्याघ्र वने त्वया ॥२८॥
युवा वै जवसंपन्नो बुद्धिशाली न शक्यते । मूषिकोऽस्य शयानस्य चरणौ भक्षयत्वयम् ॥२९॥
अथैनं भक्षितैः पादैर्व्याघ्रो गृह्णातु वै ततः । ततो वै भक्षयिष्यामः सर्वे मुदितमानसाः ॥३०॥

ऐसेही उपाय किया करते हैं । जब तक समय पलटा न खाय, तब तक शत्रु को कन्धे पर रखना चाहिए अर्थात् उसका आदर करते रहना चाहिए ॥२१॥ पुनः समय आने पर घड़े के समान उसे पत्थर पर पटककर मार डालना चाहिए । हाथ में आये शत्रु को कभी न छोड़े, चाहे वह कितनी ही खुशामद करे, दीनता पूर्वक कितनी ही विनती करे ॥२२॥ शत्रु पर कृपा कभी न करे, जो अपकारी है उसे अवश्य मार डाले । साम से अथवा दान से शत्रु का मार डाले ॥२३॥ इसी प्रकार भेद से अथवा दण्ड से शत्रु का नाश करे । अथवा सभी उपायों से नाश करे । जिस तरह से हो शत्रु का नाश कर देना चाहिए ।

धृतराष्ट्र बोले—साम, दान दण्ड और भेद से शत्रु किस प्रकार नष्ट किया जाता है वह तुम मुझसे ठीक ठीक बतलाओ ।

कणिक बोले—राजन्, पहले के समय वन में जो घटना घटी थी वह आप सुनें ॥२४-२५॥ वह घटना राजनीति शास्त्र के ज्ञाता एक शृगाल के कारण हुई थी । कोई विद्वान्, अपना मतलब साधने में चतुर शृगाल अपने मित्रों के साथ उस वन में रहता था बाघ, चूहा, भेड़िया और नेवला ये उसके मित्र थे । वन में घूमते घूमते उन लोगों ने एक यूथपति बलवान् मृगा को देखा ॥२६,२७॥ पर वे सब उस मृगा को पकड़ न सके, तब उन लोगों ने आपस में परामर्श किया ।

शृगाल बोला—बाघ, तुमने इसको पकड़ने के लिए कई बार प्रयत्न किया । पर यह जवान है, तेज भागने वाला है, और बुद्धिमान् है, इससे तुम इसे मार न सके । अतएव जब यह सोता रहे, तब चूहा जाकर इसके पैर की नस काट डाले ॥२८,२९॥ जब इसके पैर कटजांय तब बाघ जाकर इसको पकड़ ले अर्थात् मार डाले और हम सबलोग प्रसन्नता पूर्वक इसका

जम्बुकस्य तु तद्वाक्यं तथा चक्रुः समाहिताः। मूषिकाभक्षितैःपादैर्मृगं व्याघ्रोऽवधीत्तदा ॥३१॥
दृष्ट्वैवाचेष्टमानं तु भूमौ मृगकलेवरम्। स्नात्वाऽऽगच्छत भद्रं वो रक्षामीत्याह जम्बुकः ॥३२॥
शृगालवचनात्तेऽपि गताः सर्वे नदीं ततः। स चिन्तापरमो भूत्वा तस्थौ तत्रैव जम्बुकः॥३३॥
अथाजगाम पूर्वं तु स्नात्वा व्याघ्रो महाबलः। ददर्श जम्बुकं चैव चिन्ताकुलितमानसम् ॥३४॥

व्याघ्र उवाच—

किं शोचसि महाप्राज्ञ त्वं नो बुद्धिमतां वरः। अशित्वा पिशितान्यद्य विहरिष्यामहे वयं ॥३५॥

जम्बुक उवाच—

शृणु मे त्वं महाबाहो यद्वाक्यं मूषिकोऽब्रवीत्। धिग्बलं मृगराजस्य मयाऽद्यायं मृगो हतः ॥३६॥
मद्बाहुबलमाश्रित्य तृप्तिमद्य गमिष्यति। गर्जमानस्य तस्यैवमतो भक्ष्यं न रोचये ॥३७॥

व्याघ्र उवाच—

ब्रवीति यदि स ह्येवं काले ह्यस्मिन्प्रबोधितः। स्वबाहुबलमाश्रित्य हनिष्येऽहं वनेचरान् ॥३८॥
खादिष्ये तत्र मांसानि इत्युक्त्वा प्रस्थितो वनम्। एतस्मिन्नेव काले तु मूषिकोऽप्याजगाम ह॥३९॥
तमागतमभिप्रेत्य शृगालोऽप्यब्रवीद्वचः।

जम्बुक उवाच— शृणु मूषिक भद्रं ते नकुला यदिहाब्रवीत् ॥४०॥

मांस खांय ॥३०॥ शृगाल की सलाह सबलोगों ने मानी और सावधानी के साथ वैसाही किया भी। चूहे के पैर काट डालने पर मृगा को बाघने मारडाला ॥३१॥ मृगा का शरीर जमीन पर छट पटाने लगा, यह देखकर शृगाल ने अपने साथियों से कहा कि भाइयो, आप स्नान करके आवें, तब तक मैं इसकी रखवाली करता हूँ ॥३२॥ शृगाल के कहने से वे सब नदी में स्नान करने चले गये, इधर शृगाल चिन्तित के समान स्वरूप बनाकर वहीं बैठा रहा ॥३३॥ सबसे पहले महावली बाघ स्नान करके वहाँ लौट आया और शृगाल को चिन्तित देखकर वह बोला ॥३४॥

बाघ बोला—महाप्राज्ञ, तुम क्या सोच रहे हो, तुम तो हम सबलोगों से अधिक बुद्धिमान् हो। आओ हम सबलोग मांस खाकर आनन्द पूर्वक विहार करें ॥३५॥

शृगाल बोला—महाबाहो, सुनो, चूहा जो बात कह गया है वह सुनो। बाघ के बल को धिक्कार है। उससे जो मृगा नहीं मारा जासका उसे मैंने मारा। मेरे पराक्रम से मारे गये मृगा को खाकर वह आज पेट भरेगा। वह गर्ज गर्ज कर ऐसी बातें कह गया है, उसकी बातें सुनने के बाद से मैं इस मांस को खाना उचित नहीं समझता ॥३६,३७॥

बाघ बोला—यदि वह ऐसा कहता है तो अच्छी बात है, तुमने ठीक समय पर यह बात मुझे बतलादी, अब मैं अपने बाहुबल से दूसरे पशुओं को मारूंगा, उसी मांस को खाऊँगा। ऐसा कहकर बाघ वहाँ से चला गया। इसी समय चूहा भी आया। उसको आया देख शृगाल उससे बोला। चूहे, सुनो नेवले ने जो कहा है। उसने कहा है कि इस मांस में

मृगमांसं न स्वादेयं गरमेतन्न रोचते। मूषिकां भक्षयिष्यामि तद्भवाननुमन्यताम् ॥४१॥
तच्छ्रुत्वा मूषिको वाक्यं संत्रस्तः प्रगतो बिलम्। ततः स्नात्वा सवै तत्र आजगाम वृको नृप ॥४२॥
तमागतमिदं वाक्यमब्रवीज्जम्बुकस्तदा। मृगराजो हि संक्रुद्धो न ते साधु भविष्यति ॥४३॥
सकलत्रस्त्विहायाति कुरुष्व यदनन्तरम्। एवं संचोदितस्तेन जम्बुकेन तदा वृकः ॥४४॥
ततोऽवलुम्पनं कृत्वा प्रयातः पिशिताशनः। एतस्मिन्नेव काले तु नकुलोऽप्याजगाम ह ॥४५॥
तमुवाच महाराज नकुलं जम्बुको वने। स्वबाहुबलमाश्रित्य निर्जितास्तेऽन्यतो गताः ॥४६॥
मम दत्वा नियुद्धं त्वं भुङ्क्ष्व मांसं यथेप्सितम्।

नकुल उवाच—

मृगराजो वृकश्चैव बुद्धिमानपि मूषिकः ॥४७॥
निर्जिता यत्त्वया वीरास्तस्माद्वीरतरो भवान्। न त्वयाऽप्युत्सहे योद्धुमित्युक्त्वा सोऽप्युपागमत् ४८

कणिक उवाच—

वनं तेषु प्रयातेषु जम्बुको हृष्टमानसः। खादति स्म तदा मांसमेकः सन्मन्त्रनिश्चयात् ॥४९॥
एवं समाचरन्नित्यं सुखमेधेत भूपतिः। भयेन भेदयेद्भीरुं शूरमञ्जलिकर्मणा ॥५०॥
लुब्धमर्थप्रदानेन समं न्यूनं तथौजसा। एवं ते कथितं राजन् शृणु चाप्यपरं तथा ॥५१॥

विष है अतएव मैं उसे न खाऊँगा, मैं तो चूहे को खाऊँगा, अतएव आप मुझे ऐसा करने की आज्ञा दें। शृगाल की ऐसी बात सुनकर चूहा डरकर बिल में घुस गया। राजन्, इसी समय स्नान करके भेड़िया भी वहाँ आया ॥३८,४२॥ भेड़िया के आनेपर शृगाल उससे ऐसा बोला, बाघ तुम्हारे ऊपर कुपित होगया है, अब तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥४३॥ वह अपनी स्त्री को साथ लेकर शीघ्रही यहाँ आता है, अब आगे जो कुछ तुम्हारा कर्तव्य हो वह तुम करो। जब शृगाल ने भेड़िये से इस प्रकार कहा तब मांस खाने का प्रेमी वह भेड़िया दुम दबा कर वहाँ से भाग गया। इसी समय नवेला भी वहाँ आया ॥४४,४५॥ महाराज, उस वन में, शृगाल ने नेवले से इस तरह कहा था। मेरे बाहुबल से डरकर वे बाघ भेड़िये आदि तो यहां से भाग गये। पहले तुम मुझसे लड़ लो, तब इच्छानुसार इस मांस को खाओ।

नेवला बोला—बाघ, भेड़िया और बुद्धिमान् चूहे को तुमने जीत लिया, इन वीरों को जीतने के कारण तुम महावीर हो गये हो। मैं तुमसे युद्ध नहीं कर सकता। शृगाल से ऐसा कहकर वह नेवला वहां से चला गया ॥४६,४८॥

कणिक बोले—इस प्रकार उन सबके चले जाने से शृगाल ने निश्चिन्त होकर अकेले ही उस मांस को खाया, क्योंकि उसकी नीति सफल हो गयी थी, उसने शत्रुओं को परास्त कर दिया था ॥४९॥ इस प्रकार आचरण करने से राजा सुखी होता है डरपोक शत्रु को भय दिखाकर, वीरशत्रु को हाथ पैर जोड़कर, लोभी को धन देकर तथा बराबरवाले या कमजोर को बल से जीतना चाहिए। राजन् ये सब बातें मैंने आपको बतलायीं अब और बातें सुनिए ॥५०,५१॥

पुत्रः सखा वा भ्राता वा पिता वा यदि वा गुरुः । रिपुस्थानेषु वर्त्तन्तो हन्तव्या भूतिमिच्छता ॥५२॥
शपथेनाप्यरिं हन्यादर्थदानेन वा पुनः । विषेण मायया वाऽपि नोपेक्षेत कथंचन ।
उभौ चेत्संशयोपेतौ श्रद्धावांस्तत्र वर्द्धते ॥५३॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम् ॥५४॥
क्रुद्धोऽप्यक्रुद्धरूपः स्यात्स्मितपूर्वाभिभाषिता । न चाप्यन्यमपध्वंसेत्कदाचित्कोपसंयुतः ॥५५॥
प्रहरिष्यन्प्रियं ब्रूयात्प्रहरन्नपि भारत । प्रहृत्य च कृपायीत शोचेत च रुदेत च ॥५६॥
आश्वासयेच्चापि परं सान्त्वधर्मार्थवृत्तिभिः । अथास्य प्रहरेत्काले यदा विचलिते पथि ॥५७॥
अपि घोरापराधस्य धर्ममाश्रित्य तिष्ठतः । सहि प्रच्छाद्यते दोषः शैलो मेघैरिवासितैः ॥५८॥
यः स्यादनुप्राप्तवधस्तस्यागारं प्रदीपयेत् । अधनान्नास्तिकांश्चौरान् विषये स्वे न वासयेत् ॥५९
प्रत्युत्थानासनाद्येन संप्रदानेन केनचित् । प्रतिविश्रब्धघाती स्यात्तीक्ष्णदंष्ट्रो निमग्नकः ॥६०॥
अशङ्कितेभ्यः शङ्केत शङ्कितेभ्यश्च सर्वशः । अशङ्क्याद्भयमुत्पन्नमपि मूलं निकृन्तति ॥६१॥

बेटा हो, मित्र हो, भाई हो अथवा गुरू ही क्यों न हो, यदि वह शत्रुता करे तो अपना कल्याण चाहनेवाले राजा को चाहिए कि उसका बध करडाले ॥५२॥ शपथ से विश्वास दिलाकर, धन से वशकर, विष देकर छलप्रपंच से ठगकर शत्रु को मारडाले, कभी शत्रु की उपेक्षा न करे। जहाँ दोनों बराबर हों, शत्रु पक्ष भी सावधान हो वहाँ जो मेरी नीति का आदर करनेवाला है मेरी नीति के अनुसार चलनेवाला है वही विजयी होगा ॥५३॥ गुरु ही क्यों न हो, यदि वह अहंकार रखता हो, कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान न रखता हो और मर्यादा के अनुसार न चलता हो उसको भी दण्ड देना उचित है ॥५४॥ राजा को चाहिए कि क्रोध आने पर भी वह अपना वाहरीरूप ऐसा दिखावे जिससे क्रोध प्रकट न हो। हँसकर बोले। क्रोध में आकर किसी को वह भला बुरा न कहे ॥५५॥ राजा किसी पर प्रहार करना चाहता हो तोभी उससे प्रिय बोले। प्रहार करते समय भी प्रिय बोले। प्रहार करने के पश्चात् शत्रु को मारने के पश्चात् उसपर कृपा दिखावे, उसके लिए शोक करे और उसके शोक में रोए भी ॥५६॥ शत्रु को समझा बुझा कर स्नेह दिखा कर धर्मोपदेश देकर धन देकर तथा जीविका का प्रबन्ध कर अपने वश कर लेना चाहिए, जब वह थोड़ा भी प्रतिकूल आचरण करे तो उसी समय उसे मार डाले ॥५७॥ बड़ा अपराधी भी यदि धार्मिक बना रहता है अर्थात् बाहरी आचरण धर्म का रखता है और छिप कर पाप करता है, उसका पाप उसके धार्मिक आचरणों से छिप जाते हैं। जिस प्रकार काली घटाओं से पर्वत छिप जाते हैं ॥५८॥ ऐसे मनुष्यों का वध करना आवश्यक हो जाय तो उसका वध न करना चाहिए, उसका घर जलवा देना चाहिए। निर्धनों, नास्तिकों और चोरों को अपने राज्य में नहीं रहने देना चाहिए ॥५९॥ यदि शत्रु अपने यहां आवे तो उसके लिए प्रत्युत्थान करे, खड़ा होकर उसका स्वागत करे, आसन दे और भेंट आदि दे। पुनः अवसर आने पर छिपकर उसे मार डाले, ऐसे जोर से मारे जिससे वह सदा के लिए नष्ट हो जाय, कभी उठ न सके ॥६०॥ जिससे शंका होने के कारण न हों, उनसेभी शंका करे, और जिनसे शंका होने के कारण हों उनसे तो सदा शङ्कित

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्। विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥६२॥
चारः सुविहितः कार्य आत्मनश्च परस्य वा। पाषण्डांस्तापसादींश्च परराष्ट्रेषु योजयेत् ॥६३॥
उद्यानेषु विहारेषु देवतायतनेषु च। पानागारेषु रथ्यासु सर्वतीर्थेषु चाप्यथ ॥६४॥
चत्वरेषु च कूपेषु पर्वतेषु वनेषु च। समवायेषु सर्वेषु सरित्सु च विचारयेत् ॥६५॥
वाचा भृशं विनीतः स्याद्धृदयेन तथा क्षुरः। स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात्सृष्टो रौद्रेण कर्मणा ॥६६॥
अञ्जलिः शपथः सान्त्वं शिरसा पादवन्दनम्। आशाकरणमित्येवं कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता ॥६७॥
सुपुष्पितः स्यादफलः फलवान्स्याद्दुरारुहः। आमः स्यात्पक्वसंकाशो न च जीर्येत कर्हिचित् ॥६८॥
त्रिवर्गे त्रिविधा पीडा ह्यनुबन्धस्तथैव च। अनुबन्धाः शुभा ज्ञेयाः पीडास्तु परिवर्जयेत् ॥६९॥
धर्मं विचरतः पीडा सापि द्वाभ्यां नियच्छति। अर्थं चाप्यर्थलुब्धस्य कामं चातिप्रवर्तिनः ॥७०॥

रहे ही। क्योंकि विश्वासी से जो भय उत्पन्न होता है वह जड़ मूल से नष्ट कर देता है। अतएव राजा को कभी असावधान नहीं रहना चाहिए ॥६१॥ जो विश्वासी नहीं है उस पर विश्वास न करे जो विश्वसी है उसपर भी बहुत विश्वास न करे, क्योंकि विश्वासी से जो भय उत्पन्न होता है वह राजा को जड़मूल से नष्ट करदेता है ॥६२॥ अपने राज्य के तथा शत्रु राज्य के गुप्त समाचार जानने के लिए राजा को गुप्तचर नियुक्त करने चाहिए, वे गुप्तचर सुपरीक्षित हों, वे ऐसे हों जिन-पर विश्वास किया जा सके। शत्रु राज्य का समाचार जानने के लिए सन्यासी और तपस्वियों को नियुक्त करना चाहिए ॥६३॥ उद्यान, विहारस्थान, देवमन्दिर, शराब आदि पीने के स्थान गली, घाट, अड्डे, कुंआ, पर्वत, वन मेला उत्सव तथा नदीतीर इन स्थानों पर गुप्तचरों को घूमना चाहिए ॥६४,६५॥ सदा मीठा बचन बोलें और मन में सदा कतरनी चलावें कोई भयंकर से भयंकर काम करना हो तो मुस्कुरा कर ही बोलें ॥६६॥ अपना कल्याण चाहने वाले राजा को चाहिए कि वह शत्रु को हाथ जोड़कर, शपथ करके, समझा बुझाकर पैर पर सिर रखकर आशा प्रलोभन देकर उससे अपना अर्थ सिद्ध करे ॥६७॥ राजा को वैसे वृक्ष के समान होना चाहिए, जो फूल दिखावे, फल नहीं अर्थात् फूल देखने से देखने वालों के मन में फल की आशा बनी रहे। यदि फल भी हो तो इतने ऊँचे पर कि वहाँ तक चढ़ना कठिन हो। वे फल कच्चे हों, पर पके के समान मालूम पड़ें, ऐसा व्यवहार रखनेवाला राजा कभी जीर्ण नहीं होता, उसकी कोई हानि नहीं होती ॥६८॥

धर्म अर्थ और काम ये त्रिवर्ग हैं इनका पालन कठिन है, एक में अधिक अनुराग होने से दूसरे का पालन ठीक नहीं होता, यही इनमें दुःख है, पर इनका फल उत्तम है। अतएव इनमें दुःख भी है और सुख भी। फल उत्तम हैं अतएव फल ग्रहण करना चाहिए, और इनका पालन इस तरह करना चाहिए जिससे एक से दूसरे को हानि न पहुंचे। धर्म से अर्थ और अर्थ से काम दबने न पावे ॥६९॥ जो केवल धर्माचरण ही करता है, उसे अर्थ और काम को ओर से पीड़ा होती है, उसकी अर्थ सिद्धि और कामसिद्धि नहीं होती। इसी प्रकार अतिलोभ के कारण जो धनार्जन में लगजाते हैं, उनके धर्म और अर्थ पीड़ित होते हैं। काम में अधिक आसक्त पुरुष के अर्थ

अगर्वितात्मा युक्तश्च सान्त्वयुक्तोऽनसूयिता । अवेक्षितार्थः शुद्धात्मा मन्त्रयीत द्विजैः सह ॥७१॥
कर्मणा येन केनैव मृदुना दारुणेन च । उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ॥७२॥
न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति । संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति ॥७३॥
यस्य बुद्धिः परिभवेत्तामतीतेन सान्त्वयेत् । अनागतेन दुर्बुद्धिं प्रत्युत्पन्नेन पण्डितम् ॥७४॥
योऽरिणा सह सन्धाय शयीत कृतकृत्यवत् । स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते ॥७५॥
मन्त्रसंवरणे यत्नः सदा कार्योऽनसूयता । आकारमभिरक्षेत चारैश्चाप्यनुपालितः ॥७६॥
नाच्छित्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दारुणम् । नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥७७॥
कर्शितं व्याधितं क्लिन्नमपानीयमघासकम् । परिविश्वस्तमन्दं च प्रहर्तव्यमरेर्बलम् ॥७८॥
नार्थिकोऽर्थिनमभ्येति कृतार्थे नास्ति संगतम् । तस्मात्सर्वाणि साध्यानि सावशेषाणि कारयेत् ॥७९॥

और धर्म पीड़ित होते हैं । अतएव इन तीनों का समान रूप से पालन करे । एक में अधिक आसक्त न हो ॥७०॥ अहंकार न करे, सदा सावधान रहे, किसी की उन्नति देख कर जले नहीं । अपने स्वार्थ पर पूरा ध्यान रखे । चित्त को शुद्ध रखे और समय समय पर ब्राह्मणों से सलाह ले लिया करे ॥७१॥ जब स्वयं विपत्ति में फंस जाय, तब कोमल या कठोर किसी भी उपाय से अपना उद्धार कर ले, पुनः उद्धार हो जाने पर जब समर्थ हो जाय, जब शक्ति पा ले तब धर्माचरण करे ॥७२॥ साहस का काम किये बिना मनुष्य कल्याण नहीं पाता उसकी उन्नति नहीं होती, हां साहस का काम करने पर यदि मनुष्य जीता रहा तो वह कल्याण पाता है, उसकी उन्नति होती है । अतएव उन्नति कामी को संकट का सामना करना अनिवार्य है ॥७३॥ जिसपर विपत्ति पड़ जाय और शोक से उसकी बुद्धि नष्ट हो जाय, तो उसे पहले के नल राम आदि का उपाख्यान कह कर समझावे । जब मूर्ख मनुष्य, विपत्ति ग्रस्त हो तो उसे भविष्य में उन्नति होने की बात कह कर समझावे और विद्वान् को वर्तमान वस्तुओं से ही सन्तोष करने का उपदेश दे ॥७४॥ जो शत्रु के साथ मित्रता करके निश्चिन्त हो जाता है, वह उस मनुष्य के समान है, जो पेड़ के ऊपर जाकर सो जाता है और वहां से नीचे गिरने पर जागता है ॥७५॥ अपने मन्त्र को, जो कर्तव्य निश्चित करे उसको, सदा गुप्त रखे, शत्रु के गुप्त दूतों को उसकी खबर न लगने पावे, किसी से ईर्षा न रखे, ऐसा न हो कि ईर्षा के कारण उसके मुँह से कोई बात निकल जाय । आकार से भी क्रोध आदि का पता शत्रु के गुप्त दूतों को न लगने पावे इसका यत्न करे, पर उस के गुप्त दूत इन बातों का पता लगावें, वे शत्रु की बातों को जानें ॥७६॥ जब तक शत्रु को मर्म पीड़ा न पहुंचायी जाय, जब तक कोई कठोर कर्म न किया जाय, तब तक राजा को श्री नहीं मिलती, उसका अभ्युदय नहीं होता । जिस प्रकार मछली मारनेवाला करता है । वह पहले कोड़े मारता है फिर उनकी सहायता से मछलियां पकड़ता है ॥७७॥ शत्रु सेना जब दुर्बल पड़ गयी हो, जब उसमें रोग फैलगया हो, जब वह थकी हो, अन्न और जल जब न मिले अथवा आक्रमण न होने के विश्वास से निश्चिन्त पड़ी हो, उस समय उस पर आक्रमण करना चाहिए । अर्थात् राजा को चाहिए कि वह शत्रु सेना को ऐसी अवस्था में लावे और उसका नाश करे ॥७८॥ धनी अर्थी के पास नहीं जाता और जिसका मनोरथ पूरा हो गया है, वह भी किसी

संग्रहे विग्रहे चैव यत्नः कार्योऽनसूयता । उत्साहश्चापि यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता ॥८०॥
नास्य कृत्यानि बुध्येरन्मित्राणि रिपवस्तथा । आरब्धान्येव पश्येरन्सुपर्यवसितान्यपि ॥८१॥
भीतवत्संविधातव्यं यावद्भयमनागतम् । आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥८२॥
दण्डेनोपनतं शत्रुमनुगृह्णाति यो नरः । स मृत्युमुपगृह्णाति गर्भमश्वतरी यथा ॥८३॥
अनागतं हि बुध्येत यच्च कार्यं पुरः स्थितम् । न तु बुद्धिक्षयात्किंचिदतिक्रामेत्प्रयोजनम् ॥८४॥
उत्साहश्चापि यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता । विभज्य देशकालौ च दैवं धर्मादयस्त्रयः ।
नैःश्रेयसौ तु तौ ज्ञेयौ देशकालाविति स्थितिः ॥८५॥
तालवत्कुरुते मूलं बालः शत्रुरुपेक्षितः । गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः क्षिप्रं संजायते महान् ॥८६॥
अग्निस्तोकमिवात्मनं सन्धुक्षयति यो नरः । स वर्धमानो ग्रसते महान्तमपि संचयम् ॥८७॥
आशां कालवतीं कुर्यात्कालं विघ्नेन योजयेत् । विघ्नं निमित्ततो ब्रूयान्निमित्तं वाऽपि हेतुतः ॥८८॥
क्षुरो भूत्वा हरेत्प्राणान्निशितः कालसाधनः । प्रतिच्छन्नो लोमहारी द्विषतां परिकर्तनः ॥८९॥

से मैत्री नहीं रखता। अतएव राजा यदि किसी का काम करे भी, तो वह पूरा कभी न करे उसमें थोड़ा बाकी रख छोड़े, जिससे वह मनुष्य आशा रखे रहे, सदा आश्रित बना रहे ॥७९॥ कल्याण चाहनेवाले राजा को सहाय आदि के संग्रह में तथा शत्रु से युद्ध करने में सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए और सदा प्रयत्न पूर्वक इन कामों में उत्साह रखना चाहिए ॥८०॥ राजा जो काम करना चाहता हो, उसकी खबर मित्र या शत्रु किसीको भी न लगने पावे, कार्य प्रारम्भ करने पर ही लोगों को पता लगे, अथवा कार्य की समाप्ति पर, फल देख कर लोग समझें कि ये ऐसा चाहते थे ॥८१॥ जब तक भय सामने न आवे, तब तक भयभीत के समान सब प्रबन्ध करते रहना चाहिए, उसे दूर करने का उद्योग करना चाहिए ॥८२॥ जो शत्रु दण्ड से अधीन किया गया है उसपर जो राजा दया दिखाता है, उसे धन मान देता है, वह अपनी मृत्यु को ही बुलाता है। जिस प्रकार खच्चरी मृत्यु के लिए गर्भ धारण करती है ॥८३॥ जो काम आगे आने वाला है उसपर बुद्धिपूर्वक विचार करे और जो काम सामने हो उस पर भी ध्यान दे, कहीं ऐसा न हो कि असावधानी में कोई काम ही छूट जाय ॥८४॥ कल्याण चाहनेवाले राजा को देश और काल का विचार पूर्वक प्रयत्न करके उत्साह करना चाहिए। भाग्य और धर्म अर्थ का भी देश काल के अनुसार विभाग कर देना चाहिए, क्योंकि देशकाल का अनुसरण करना सब प्रकार के कल्याणों का मूल है ॥८५॥ शत्रु बालक भी हो छोटा ही हो, तो भी उसकी उपेक्षा करने से ताल वृक्ष के समान वह जड़ जमा लेता है। बन में आग की एक चिनगारी भी यदि डाल दी जाय तो वह शीघ्र ही बढ़ जाती है ॥८६॥ जो राजा आग की चिनगारी के समान फूंक मार कर अपने को बढ़ाता है वह बढ़ता जाता है और बढ़कर बहुत बड़े शत्रु समूह का ग्रास कर लेता है ॥८७॥ यदि किसी को कुछ आज्ञा दे तो उसको पूरा करने की अवधि लम्बी बतलावे। जब वह समय आ जाय तब कोई विघ्न बतला कर उसे भी टाल दे, उस विघ्न का कोई कारण बतला दे और उस कारण का भी कोई कारण बतला दे इस प्रकार टालता रहे, कभी उसे पूरा न करे ॥८८॥ जब अनुकूल समय आ जाय तब

पाण्डवेषु यथान्येषु च कुरूद्वह। वर्तमानो न मज्जेस्त्वं तथा कृत्यं समाचर ॥९०॥
सर्वकल्याणसंपन्नो विशिष्ट इति निश्चयः। तस्मात्त्वं पाण्डुपुत्रेभ्यो रक्षात्मानं नराधिप ॥९१॥
भ्रातृव्या बलिनो यस्मात्पाण्डुपुत्रा नराधिप। पश्चात्तापो यथा न स्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥९२॥
वैशम्पायन उवाच—
एवमुक्त्वा संप्रतस्थे कणिकः स्वगृहं ततः। धृतराष्ट्रोऽपि कौरव्यः शोकार्तः समपद्यत ॥९३॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभपर्वणि कणिकवाक्ये
चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥ समाप्तं च सम्भवपर्व ॥

तीखा छूरा बनकर शत्रु का प्राण ले। जिस प्रकार छूरा बाल काटता है। उसी प्रकार शत्रु को काट दे। जिस प्रकार छूरा छिपा रहता है उसी प्रकार छिपा रहे, अवसर मिलते ही अपना मतलब साध ले ॥८९॥ कुरुश्रेष्ठ धृतराष्ट्र, अब आप इसी नीति के अनुसार पाण्डवों तथा दूसरे राजाओं के साथ व्यवहार करें। आप ऐसा आचरण करें जिससे आपको दुःख उठाना न पड़े ॥९०॥ आप धन पुत्र राज्य आदि के स्वामी हैं, श्रेष्ठ हैं। अब आप को पाण्डवों से अपनी रक्षा करनी चाहिए ॥९१॥ पाण्डुपुत्र आपके भतीजे हैं इससे स्वाभाविक शत्रु हैं, और बलवान् भी हैं, अतएव आपको ऐसी नीति बरतनी चाहिए जिससे पश्चात्ताप करना न पड़े ॥९२॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार नीति का उपदेश करके कणिक अपने घर चले गये और धृतराष्ट्र शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥९३॥

चत्वारिंशदधिक शततम अध्याय।

जतुगृह पर्व

वैशम्पायन उवाच—

ततः सुबलपुत्रस्तु राजा दुर्योधनश्च ह । दुःशासनश्च कर्णश्च दुष्टं मन्त्रममन्त्रयन् ॥१॥
ते कौरव्यमनुज्ञाप्य धृतराष्ट्रं नराधिपम् । दहने तु सपुत्रायाः कुन्त्या बुद्धिमकारयन् ॥२॥
तेषामिङ्गितभावज्ञो विदुरस्तत्त्वदर्शिवान् । आकारेण च तं मन्त्रं बुबुधे दुष्टचेतसाम् ॥३॥
ततो विदितवेद्यात्मा पाण्डवानां हिते रतः । पलायने मतिं चक्रे कुन्त्याः पुत्रैः सहानघः ॥४॥
ततो वातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम् । ऊर्मिक्षमां दृढां कृत्वा कुन्तीमिदमुवाच ह ॥५॥
एष जातः कुलस्यास्य कीर्तिवंशप्रणाशनः । धृतराष्ट्रः परीतात्मा धर्मं त्यजति शाश्वतम् ॥६॥
इयं वारिपथे युक्ता तरङ्गपवनक्षमा । नौर्यया मृत्युपाशात्त्वं सपुत्रा मोक्ष्यसे शुभे ॥७॥
तच्छ्रुत्वा व्यथिता कुन्ती पुत्रैः सह यशस्विनी । नावमारुह्य गङ्गायां प्रययौ भरतर्षभ ॥८॥
ततो विदुरवाक्येन नावं विक्षिप्य पाण्डवाः । धनं चादाय तैर्दत्तमरिष्टं प्राविशन्वनम् ॥९॥

संक्षिप्त और विस्तारपूर्वक लाक्षागृह के दाह का वृत्तान्त । दुर्योधन का धृतराष्ट्र के पास जाना ।

वैशम्पायन बोले—कणिक के उपदेश के पश्चात् सुबलपुत्र शकुनि, राजा दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण इन चारों ने मिलकर एक नीच विचार निश्चित किया ॥१॥ उन लोगों ने कुरुराज धृतराष्ट्र की सम्मति लेकर पुत्रों के साथ कुन्ती को आग में जला देने का विचार किया । तत्वदर्शी तथा मुखमुद्रा और शरीर के आकार प्रकार से मनुष्यों के अभिप्राय समझनेवाले विदुर ने दुर्योधन आदि के आकार से उनका नीच अभिप्राय समझ लिया ॥२,३॥ अनन्तर, सब बातों के ठीक ठीक जान लेने पर पाण्डवों के हितकारी विदुर ने पुत्रों के साथ कुन्ती का वहाँ से भाग जाना ही उत्तम समझा ॥४॥ निष्पाप विदुर ने हवा के झोंके और लहरियों के धक्के सहने योग्य एक नाव ठीक की, जिसमें यन्त्र लगा हुआ था और पताका फहरा रही थी, ऐसी मजबूत नाव ठीक करके वे कुन्ती से बोले ॥५॥
यह धृतराष्ट्र इस कुरुकुल की कीर्ति और वंश नाश के लिए उत्पन्न हुआ है । इसकी समझ ही उलटी हो गयी है । अतएव यह सनातन धर्म का त्याग कर रहा है ॥६॥ शुभे कुन्ती, यह नौका मैंने जल में तयार करा रखी है । यह हवा और लहरों को सह सकेगी । इसी नौका के द्वारा तुम अपने पुत्रों के साथ मृत्युपाश से बच सकती हो ॥७॥ विदुर के इन वचनों को सुनकर, यशस्विनी कुन्ती और उनके पुत्र बहुत दुखी हुए । हे भरतश्रेष्ठ जनमेजय, वे नाव पर चढ़कर गंङ्गा की राह से चले गये ॥८॥ विदुर के कहने से नाव पर चढ़कर और दुर्योधन आदि का दिया हुआ धन लेकर निर्विघ्नता पूर्वक पाण्डव वन में चले गये ॥९॥ उस लाक्षागृह में पाँच बेटों के

निषादी पञ्चपुत्रा तु जातुषे तत्र वेश्मनि । कारणाभ्यागता दग्धा सह पुत्रैरनागसा ॥१०॥
स च म्लेच्छाधमः पापो दग्धस्तत्र पुरोचनः । वञ्चिताश्च दुरात्मानो धार्तराष्ट्राःसहानुगाः॥११
अविज्ञाता महात्मानो जनानामक्षतास्तथा । जनन्या सह कौन्तेया मुक्ता विदुरमन्त्रिताः॥१२॥
ततस्तस्मिन्पुरे लोका नगरे वारणावते । दृष्ट्वा जतुगृहं दग्धमन्वशोचन्त दुःखिताः ॥१३॥
प्रेषयामास् राजानं यथावृत्तं निवेदितुम् । संवृत्तास्ते महान् कामः पाण्डवान्दग्धवानसि ॥१४॥
सकामो भव कौरव्य भुंक्ष्व राज्यं सपुत्रकः । तच्छ्रुत्वा धृतराष्ट्रस्तु सह पुत्रेण शोचयन् ॥१५॥
प्रेतकार्याणि च तथा चकार सह बान्धवैः । पाण्डवानां तथा क्षत्ता भीष्मश्च कुरुसत्तमः ॥१६॥

जनमेजय उवाच—

पुनर्विस्तरशः श्रोतुमिच्छामि द्विजसत्तम । दाहं जतुगृहस्यैव पाण्डवानां च मोक्षणम् ॥१७॥
सुनृशंसमिदं कर्म तेषां क्रूरोपसंहितम् । कीर्त्तयस्व यथावृत्तं परं कौतूहलं मम् ॥१८॥

वैशम्पायन उवाच—

शृणु विस्तरशो राजन्वदतो मे परंतप । दाहं जतुगृहस्यैतत्पाण्डवानां च मोक्षणम् ॥१९॥
प्राणाधिकं भीमसेनं कृतविद्यं धनञ्जयम् । दुर्योधनो लक्षयित्वा पर्यतप्यत दुर्मनाः ॥२०॥
ततो वैकर्तनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः । अनेकैरभ्युपायैस्ते जिघांसंतिस्म पाण्डवान् ॥२१॥

साथ एक निषादी कारणवश आगई थी, वह निरपराधिन बेटों के साथ उसी लाक्षागृह में जल मरी ॥१०॥ वह पापी म्लेच्छाधम पुरोचन भी वहीं जल मरा । इस प्रकार दुर्योधन के पापी पुत्र और उनके सलाहकार ठगे गये । विदुर के परामर्श से माता के साथ पाण्डव अक्षत शरीर वहाँ से निकल गये । यह बात वारणावत के रहनेवाले मनुष्यों को मालूम न थी । अतएव वे लाक्षागृह का जलना देखकर पाण्डवों के लिए शोक करने लगे ॥१२,१३॥ उन लोगों ने वारणावत में जो घटना हुई थी उसको राजा से कहने के लिए आदमी भेजा और कहवा दिया कि महराज, आपका बहुत बड़ा मनोरथ पूरा हुआ, जो आपने पाण्डवों को जलवा दिया ॥१४॥ कुरुराज, अब आप प्रसन्न हों और पुत्रों के साथ राज्य भोग करें । वारणावत के मनुष्यों से यह बात सुनकर राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के साथ शोक करने लगे और भीष्म, विदुर तथा अन्य बान्धवों के साथ उन्होंने पाण्डवों का प्रेत संस्कार भी कर दिया ॥१५,१६॥

जनमेजय बोले—द्विजश्रेष्ठ, मैं लाक्षागृह का दाह और वहाँ से पाण्डवों का बँच निकलना पुनः विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ ॥१७॥ क्रूर कणिक के कहने से राजा दुर्योधन ने जो यह निर्दय कार्य किया, उसे आप पुनः कहें । इसके सुनने का मुझे बड़ा ही कुतूहल है ॥१८॥

वैशम्पायन बोले—महराज, मैं कहता हूँ, आप लाक्षागृह का जलना और पाण्डवों का वहाँ से बँच निकलना विस्तार से सुनें ॥१९॥ भीमसेन का अनुपम बल और अर्जुन की शस्त्र विद्या में निपुणता देखकर दुर्योधन बहुत दुखी हुआ और वह उदास रहने लगा ॥१९,२०॥ दुर्योधन का दुख दूर करने के लिए सूर्यपुत्र कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि अनेक उपायों से

पाण्डवा अपि तत्सर्वं प्रतिचक्रुर्यथागतम् । उद्भावनमकुर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः ॥२२॥
गुणैः समुदितान् दृष्ट्वा पौराः पाण्डुसुतांस्तदा । कथयांचक्रिरे तेषां गुणान्संसत्सु भारत ॥२३॥
राज्यप्राप्तिं च संप्राप्तं ज्येष्ठं पाण्डुसुतं तदा । कथयन्ति स्म सम्भूय चत्वरेषु सभासु च ॥२४॥
प्रज्ञाचक्षुरचक्षुष्ट्वाद्धृतराष्ट्रो जनेश्वरः । राज्यं न प्राप्तवान्पूर्वं स कथं नृपतिर्भवेत् ॥२५॥
तथा शान्तनवो भीष्मः सत्यसन्धो महाव्रतः । प्रत्याख्याय पुरा राज्यं न स जातु गृहीष्यति ॥२६॥
ते वयं पाण्डवं ज्येष्ठं तरुणं वृद्धशीलिनम् । अभ्यषिंचाम साध्वद्य सत्यकारुण्यवेदिनम् ॥२७॥
सहि भीष्मं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च धर्मवित् । सपुत्रं विविधैर्भोगैर्योजयिष्यति पूजयन् ॥२८॥
तेषां दुर्योधनः श्रुत्वा तानि वाक्यनि जल्पताम् । युधिष्ठिरानुरक्तानां पर्यतप्यत दुर्मतिः ॥२९॥
स तप्यमानो दुष्टात्मा तेषां वाचो न चक्षमे । ईर्ष्यया चापि संतप्तो धृतराष्ट्रमुपागमत् ॥३०॥
ततो विरहितं दृष्ट्वा पितरं प्रतिपूज्य सः । पौरानुरागसंतप्तः पश्चादिदमभाषत ॥३१॥
दुर्योधन उवाच—
श्रुता मे जल्पतां तात पौराणामशिवा गिरः । त्वामनादृत्य भीष्मं च पतिमिच्छंति पाण्डवम् ॥३२॥
मतमेतच्च भीष्मस्य न स राज्यं बुभुक्षति । अस्माकं तु परां पीडां चिकीर्षन्ति पुरे जनाः ॥३३॥

पाण्डवों को मारने का उद्योग करने लगे ॥२१॥ पाण्डव भी विदुर के परामर्श के अनुसार कर्ण आदि के उपायों को व्यर्थ कर देते थे और इस बात को प्रकट नहीं करते थे ॥२२॥ पाण्डु के पुत्रों को गुणी देखकर नगरवासी सभाओं में जहाँ कुछ लोग एकत्रित होते थे वहाँ, पाण्डवों का गुणगान करते थे ॥२३॥ जहाँ इकट्ठे होते, नगर के चौपाल में या सभाओं में, वहाँ वे सबलोग यही कहते कि राजा पाण्डु का ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर ही राज्य के योग्य है ॥२४॥ राजा धृतराष्ट्र तो अन्धे हैं, वे जो कुछ देखते हैं बुद्धि से देखते हैं अर्थात् प्रज्ञाचक्षु हैं। अतएव पहले उनको राज्य नहीं दिया गया था। वे अब कैसे राजा हो सकते हैं ॥२५॥ सत्यप्रतिज्ञ, दृढ़व्रत शन्तनुपुत्र भीष्म ने पहले ही राज्य त्याग कर दिया। वे कभी राज्य ग्रहण नहीं कर सकते ॥२६॥ अतएव हमलोग वृद्धों का सम्मान करनेवाले युवा बड़े पाण्डव का अभिषेक करेंगे। जो सत्यवादी दयालु वेदज्ञ हैं ॥२७॥ शन्तनुपुत्र भीष्म और पुत्रों के साथ राजा धृतराष्ट्र को सम्मान के साथ भोग की समस्त वस्तु वे देंगे। क्योंकि वे धर्मात्मा हैं ॥२८॥ युधिष्ठिर में प्रेम रखनेवाले नगरवासियों की यह बात सुनकर दुर्बुद्धि दुर्योधन बहुत दुखी हुआ ॥२९॥ वह दुष्ट उनकी बातें सुनकर जलने लगा और सह न सका। ईर्षा से जलता हुआ वह धृतराष्ट्र के पास गया ॥३०॥ उसने पिता को अकेला देखकर प्रणाम किया और इसके पश्चात् पाण्डवों में पुरवासियों का अनुराग देखकर जलता हुआ दुर्योधन इस प्रकार बोला ॥३१॥

दुर्योधन बोला—पिता मैंने नगरवासियों की बातचीत में बहुत ही अशुभ बात सुनी है। वे आपका और भीष्म का अनादर करके युधिष्ठिर को राजा बनाना चाहते हैं ॥३२॥ भीष्म भी इस बात से सहमत हैं, क्योंकि उन्हें स्वयं राज्य भोग करना नहीं है। पर नगरवासी हम लोगों

पितृतः प्राप्तवान् राज्यं पाण्डुरात्मगुणैः पुरा । त्वमन्धगुणसंयोगात्प्राप्तं राज्यं न लब्धवान् ॥३४॥
स एव पाण्डोर्दायाद्यं यदि प्राप्नोति पाण्डवः । तस्य पुत्रो ध्रुवं प्राप्तस्तस्य तस्यापि चापरः ॥३५॥
ते वयं राजवंशेन हीनाः सह सुतैरपि । अवज्ञाता भविष्यामो लोकस्य जगतीपते ॥३६॥
सततं निरयं प्राप्ताः परपिण्डोपजीविनः । न भवेम यथा राजंस्तथानीतिर्विधीयताम् ॥३७॥
यदि त्वं हि पुरा राजन्निदं राज्यमवाप्तवान् । ध्रुवंप्राप्स्याम च वयं राज्यमप्यवशे जने ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि दुर्योधनेर्ष्यायामेक-
चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१॥

वैशम्पायन उवाच---

एवं श्रुत्वा तु पुत्रस्य प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः । कणिकस्य च वाक्यानि तानि श्रुत्वा च सर्वशः ॥१॥
धृतराष्ट्रो द्विधाचित्तः शोकार्त्तः समपद्यत । दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिः सौबलस्तथा ॥२॥
दुःशासनचतुर्थास्ते मंत्रयामासुरेकतः । ततो दुर्योधनो राजा धृतराष्ट्रमभाषत ॥३॥
पाण्डवेभ्यो भयंनः स्यात्तान्विवासयतां भवान् । निपुणेनाभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥४॥
धृतराष्ट्रस्तु पुत्रेण श्रुत्वा वचनमीरितम् । मुहूर्तमिव सञ्चिन्त्य दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥५॥

को भयंकर दुख देना चाहते हैं ॥३३॥ पहले पाण्डु ने अपने गुणों ही के कारण पिता का राज्य पाया था । राज्य का अधिकारी होने पर भी अन्धा होने के कारण आपको राज्य न मिला ॥३४॥ यदि युधिष्ठिर को राज्य मिला तो यह समझा जायगा कि इनके पिता राजा थे, अतएव इनको राज्य पाने का अधिकार था । अनन्तर, युधिष्ठिर का पुत्र पुनः उसका पुत्र, इसी प्रकार राज्य परम्परा चलेगी ॥३५॥ इससे हम लोग राजवंश न रह जायँगे । हमारे पुत्र भी राजवंशी न समझे जांयगे । राजन्, संसार में इससे हमारी अप्रतिष्ठा होगी ॥३६॥ राजन्, आप ऐसा उपाय करें, जिससे हम लोगों को सदा दुख भोगना न पड़े, दूसरों के दिये टुकड़ों पर जीना न पड़े ॥३७॥ राजन्, पहले आपने यह राज्य पाया है । अतएव हम लोग यह राज्य अवश्य पावेंगे, प्रजा का विरोध कुछ महत्व नहीं रखता । क्योंकि वे पराधीन हैं ॥३८॥

एक चत्वारिंशशदधिक शततम अध्याय ।

धृतराष्ट्र दुर्योधन संवाद ।

वैशम्पायन बोले—प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र, पुत्र की बातों को सुनकर तथा कणिक की कही हुई समस्त बातों को सुनकर दुविधा में पड़ गये और वे बहुत दुखी हो गये । दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और दुशासन वहीं एक ओर परस्पर विचार करने लगे । अनन्तर दुर्योधन धृतराष्ट्र से बोला ॥१-३॥ हम लोगों को पाण्डवों से भय है । अतएव आप किसी अच्छी चतुराई के साथ इन लोगों को वारणावत नगर में निर्वासित कर दीजिए ॥४॥ पुत्र की कही बातें सुनकर राजा धृतराष्ट्र थोड़ी देर तक सोचते रहे । पुनः सोच कर वे दुर्योधन से इस प्रकार बोले—५॥

धृतराष्ट्र उवाच—

धर्मनित्यः सदा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः। सर्वेषु ज्ञातिषु तथा मयि त्वासीद्विशेषतः ॥६॥
नास्य किंचिद्विजानाति भोजनादि चिकीर्षितम्। निवेदयति नित्यं हि मम राज्यं धृतव्रतः ॥७॥
तस्य पुत्रो यथा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः। गुणवान् लोकविख्यातः पौरवाणां सुसंमतः ॥८॥
स कथं शक्यतेऽस्माभिरपाकर्तुं बलादितः। पितृपैतामहाद्राज्यात्ससहायो विशेषतः ॥९॥
भृता हि पाण्डुनाऽमात्या बलं च सततं भृतम्। भृताः पुत्राश्च पौत्राश्च तेषामतिविशेषतः ॥१०॥
ते पुरा सत्कृतास्तात पाण्डुना नागरा जनाः। कथं युधिष्ठिरस्यार्थे न नो हन्युः सबान्धवान् ॥११॥

दुर्योधन उवाच—

एवमेतन्मया तात भावितं दोषमात्मनि। दृष्ट्वा प्रकृतयः सर्वा अर्थमानेन पूजिताः ॥१२॥
ध्रुवमस्मत्सहायास्ते भविष्यन्ति प्रधानतः। अर्थवर्गः सहामात्यो मत्संस्थोऽद्य महीपते ॥१३॥
स भवान्पाण्डवानाशु विवासयितुमर्हसि। मृदुनैवाभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥१४॥
यदा प्रतिष्ठितं राज्यं मयि राजन्भविष्यति। तदा कुन्ती सहापत्या पुनरेष्यति भारत ॥१५॥

धृतराष्ट्र उवाच—

दुर्योधन ममाप्येतद्धृदि संपरिवर्तते। अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम् ॥१६॥

धृतराष्ट्र बोले—पाण्डु बड़े ही धर्मपरायण और धर्मात्मा थे, वे समस्त बान्धवों, विशेष कर मेरे साथ धर्मानुकूल व्यवहार रखते थे। नित्य के होनेवाले भोजन आदि में भी उनका कोई विशेष अनुराग न था। वे जो कुछ होता सब मुझे ही पहले देते थे। स्वयं व्रत धारण करके उन्होंने मुझे राज्य सौंप दिया था ॥७॥ उनका पुत्र भी वैसा ही धर्मपरायण है, जैसे पाण्डु थे। वे गुणवान् हैं, लोक प्रसिद्ध हैं और पुरवासियों के प्रिय हैं ॥८॥ अतएव जबरदस्ती पिता पितामह के राज्य से हमलोग उनको कैसे हटा सकते हैं और उनके सहायक भी हैं, ऐसी दशा में उनको निर्वासित करना कैसे सम्भव हो सकता है ॥९॥ पाण्डु ने अमात्यों और सैनिकों का खूब पालन पोषण किया है। विशेष कर उनके पुत्रों और पौत्रों को भी पाला पोसा है ॥१०॥ तात, पाण्डु नगरवासियों का बड़ा आदर करते थे। अतएव युधिष्ठिर के लिए, बान्धवों के साथ हमारा वध वे क्यों न करेंगे ॥११॥

दुर्योधन बोले—जैसा आप कह रहे हैं, यह ठीक है। पर पाण्डवों के कारण हमलोगों के प्रति जब प्रजा का विरोध बढ़ेगा, उस समय प्रजा को धन और आदर से अपने वश में कर लेंगे और उस समय वह हमारी सहायक बन जायगी। राजन्, इस समय सचिवगण और खजाना हमारे अधिकार में है। अतएव आप शीघ्र ही किसी कोमल उपाय से पाण्डवों को वारणावत नगर में निर्वासित कर दीजिए ॥१४॥ राजन्, जब राज्य पर हमारा अधिकार जम जायगा, जब हम प्रजा का अनुराग प्राप्त कर लेंगे, तब कुन्ती भी पुत्रों को लेकर यहां चली आवेगी ॥१५॥

धृतराष्ट्र बोले—दुर्योधन, ये सब बातें मेरे हृदय में भी हैं। पर ये विचार पाप पूर्ण हैं,

न च भीष्मो न च द्रोणो न च क्षत्ता न गौतमः। निरस्यमानान्कौन्तेयाननुमंस्यंति कर्हिचित् ॥१७॥
समा हि कौरवेयाणां वयं ते चैव पुत्रक। नैते विषममिच्छेयुर्धर्मयुक्ता मनस्विनः ॥१८॥
ते वयं कौरवेयाणामेतेषां च महात्मनाम्। कथं न वध्यतां तात गच्छाम जगतस्तथा ॥१९॥
दुर्योधन उवाच—
मध्यस्थः सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो मयि स्थितः। यतः पुत्रस्ततो द्रोणो भविता नात्र संशयः ॥२०॥
कृपः शारद्वतश्चैव यत एतौ ततो भवेत्। द्रोणं च भागिनेयं च न सत्यक्ष्यति कर्हिचित् ॥२१॥
क्षत्ताऽर्थबद्धस्त्वस्माकं प्रच्छन्नं संयतः परैः। न चैकः स समर्थोःस्यान्पाण्डवार्थेऽधिबाधितुम् ॥२२॥
सुविस्रब्धः पाण्डुपुत्रान् सहमात्रा प्रवासय। वारणावतमद्यैव यथा यान्ति तथा कुरु ॥२३॥
विनिद्रकरणं घोरं हृदि शल्यमिवार्पितम्। शोकपावकमुद्भूतं कर्मणैतेन नाशय ॥२४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि दुर्योधनपरामर्शे
द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४२॥

अतएव इनको मैं प्रकाशित नहीं करता ॥१६॥ एक और बात है, भीष्म, द्रोण विदुर और कृपाचार्य ये पाण्डवों को निर्वासित करने में सम्मत न होंगे ॥१७॥ पुत्र, हम लोग और पाण्डव कुरुवंशियों के लिए समान हैं। कुरुवंशी हम दोनों को समान समझते हैं। अतएव बुद्धिमान् धर्मात्मा वे पक्षपात न करेंगे ॥१८॥ अतएव, कौरवों के, तथा भीष्म आदि महात्माओं के हम लोग विराग भाजन क्यों न होंगे ? क्यों न क्रोध करके ये लोग हमें मार डालेंगे ? ॥१९॥

दुर्योधन बोले—तात ! भीष्म सदा मध्यस्थ रहते हैं। उनका किसी पक्ष विशेष से राग द्वेष नहीं है। द्रोण का पुत्र मेरी ओर है। यह निश्चय है कि जिधर पुत्र रहेगा, पिता भी उधर ही रहेगा ॥२०॥ कृपाचार्य भी उधर ही रहेंगे, जिधर ये दोनों रहेंगे, क्यों कि द्रोण को और भांजे अश्वत्थामा को वे कभी छोड़ नहीं सकते हैं ॥२१॥ विदुर धन के कारण हमारे आश्रित हैं। वे छिपकर पाण्डवों के साथ मिलें भी तो वे अकेले हम लोगों का कुछ नहीं कर सकते। पाण्डवों के पक्ष में होकर वे हम लोगों की कोई बुराई नहीं कर सकते ॥२२॥ अतएव आप निःशंक होकर पाण्डवों को माता के साथ यहाँ से निकाल दीजिए। महाराज, ऐसा उपाय कीजिए जिससे वे आज ही वारणावत नगर में चले जायँ। यह दुख की आग भयंकर शूल के समान हृदय में चुभी है। जिससे रात को नींद नहीं आती। आप पाण्डवों को निर्वासित करके इस शूल को दूर करें ॥२४॥

द्विचत्वारिंशदधिक शततम अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततो दुर्योधनो राजा सर्वाः प्रकृतयः शनैः। अर्थमानप्रदानाभ्यां संजहार सहानुजः ॥१॥
धृतराष्ट्रप्रयुक्तास्ते केचित्कुशलमन्त्रिणः। कथयाञ्चक्रिरे रम्यं नगरं वारणावतम् ॥२॥
अयं समाजः सुमहान् रमणीयतमो भुवि। उपस्थितः पशुपतेर्नगरे वारणावते ॥३॥
सर्वरत्नसमाकीर्णे पुण्यदेशे मनोरमे। इत्येवं धृतराष्ट्रस्य वचनाच्चक्रिरे कथाः ॥४॥
कथ्यमाने तथा रम्ये नगरे वारणावते। गमने पाण्डुपुत्राणां जज्ञे तत्र मतिर्नृप ॥५॥
यदा त्वमन्यत नृपो जातकौतूहला इति। उवाचैतानेत्य तदा पाण्डवानम्बिकासुतः ॥६॥
ममैते पुरुषा नित्यं कथयन्ति पुनः पुनः। रमणीयतमं लोके नगरं वारणावतम् ॥७॥
ते ताता यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते। सगणाः सान्वयाश्चैव विहरध्वं यथाऽमराः ॥८॥
ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि गायनेभ्यश्च सर्वशः। प्रयच्छध्वं यथा कामं देवा इव सुवर्चसः ॥९॥
कञ्चित्कालं विहृत्यैवमनुभूय परां मुदाम्। इदं वै हास्तिनपुरं सुखिनः पुनरेष्यथ ॥१०॥

वैशम्पायन उवाच—

धृतराष्ट्रस्य तं काममनुबुध्य युधिष्ठिरः। आत्मनश्च सहायत्वं तथेति प्रत्युवाच तम् ॥११॥

धनदान के द्वारा राजा दुर्योधन का प्रजा को अपने पक्ष में लाना। पाण्डवों को वारणावत नगर में जाने को धृतराष्ट्र का आदेश।

वैशम्पायन बोले—राजा दुर्योधन ने भाइयों के साथ समस्त प्रजाओं को धीरे धीरे धन सम्मान आदि के द्वारा अपने अधीन कर लिया। राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से कई चतुर मंत्री वारणावत नगर की रमणीयता वर्णन करने लगे ॥१,२॥ वे कहने लगे कि वहाँ बड़ा मेला होता है। पृथ्वी के सब मेलों से अच्छा होता है। वह महादेव का मेला वारणावत नगर में शीघ्र ही होनेवाला है। वारणावत नगर बड़ा धनी नगर है। रत्नों से भरा पूरा है। वह स्थान बड़ा मनोहर है। राजा धृतराष्ट्र के कहने से उनके आदमी इसी प्रकार इधर उधर बातें करने लगे थे ॥२-४॥ वारणावत नगर की रमणीयता की बात जब पाण्डवों ने सुनी, तब उन लोगों की भी वहाँ जाने की इच्छा हुई ॥५॥ जब राजा को मालूम हुआ कि पाण्डव वारणावत नगर में जाने के लिए उत्सुक हो गये हैं, तब वे अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र उनके पास जाकर इस प्रकार बोले—॥६॥ ये मेरे आदमी प्रतिदिन बारबार वारणावत नगर की रमणीयता की बात कहते हैं। वे उस नगर को संसार के सब नगरों से रमणीय बतलाते हैं ॥७॥ अतएव, बेटो, यदि वहाँ का उत्सव करने की तुमलोगों की इच्छा हो, तो अपने परिवार और साथियों के साथ जाओ और वहाँ देवताओं के समान विहार करो ॥८॥ वहाँ ब्राह्मणों को और गायकों को इच्छानुसार धन रत्न दो। इस प्रकार देवताओं के समान सुन्दर तुमलोग वहाँ कुछ समय तक विहार करो और आनन्द उठाओ। पुनः वहाँ से सुखपूर्वक यहीं हस्तिनापुर में लौट आओ ॥९,१०॥

वैशम्पायन बोले—युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र का अभिप्राय समझ लिया, और अपने को असहाय देखकर उन्होंने उनकी बात मान ली ॥११॥ अनन्तर, शन्तनुपुत्र भीष्म, महामति विदुर,

ततो भीष्मं शान्तनवं विदुरं च महामतिम् । द्रोणं च बाह्लिकं चैव सोमदत्तं च कौरवम् ॥१२॥
कृपमाचार्यपुत्रं च भुरिश्रवसमेव च । मान्यानन्यानमात्यांश्च ब्राह्मणांश्च तपोधनान् ॥१३॥
पुरोहितांश्च पौरांश्च गान्धारीं च यशस्विनीम् । युधिष्ठिरः शनैर्दीन उवाचेदं वचस्तदा ॥१४॥
रमणीये जनाकीर्णे नगरे वारणावते । सगणास्तत्र यास्यामो धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥१५॥
प्रसन्नमनसः सर्वे पुण्या वाचो विमुञ्चत । आशीर्भिर्वृंहितानस्मान्न पापं प्रसहिष्यते ॥१६॥
एवमुक्तास्तु ते सर्वे पाण्डुपुत्रेण कौरवाः । प्रसन्नवदना भूत्वा तेऽन्ववर्तन्त पाण्डवान् ॥१७॥
स्वस्त्यस्तु वः पथि सदा भूतेभ्यश्चैव सर्वशः । मा च वोऽस्त्वशुभं किंचित्सर्वशःपाण्डुनन्दनाः॥१८॥
ततः कृतस्वस्त्ययना राज्यलंभाय पार्थिवाः । कृत्वा सर्वाणि कार्याणि प्रययुर्वारणावतम् ॥१९॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि वारणावतयात्रायां
त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४३॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तेषु राज्ञा तु पाण्डुपुत्रेषु भारत । दुर्योधनः परं हर्षमगच्छत्स दुरात्मवान् ॥१॥
स पुरोचनमेकान्तमानीय भरतर्षभ । गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ सचिवं वाक्यमब्रवीत् ॥२॥

द्रोण, वाह्लीक, कुरुवंशी सोमदत्त, कृपाचार्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, भूरिश्रवा तथा माननीय अन्य आमात्य, तपस्वी ब्राह्मणों, पुरोहित, पुरवासी और यशस्विनी गान्धारी के पास जाकर युधिष्ठिर ने दीनता पूर्वक और धीरे धीरे इस प्रकार कहा ॥१२-१४॥ मनुष्यों से भरे रमणीय वारणावत नगर में हमलोग अपने परिवार के साथ धृतराष्ट्र की आज्ञा से जांयगें ॥१५॥ आप लोग प्रसन्न चित्त होकर हमलोगों को शुभाशीर्वाद दें। आपके आशीर्वाद से हमलोगों का अभ्युदय होगा और हमारी कोई बुराई नहीं हो सकेगी ॥१६॥ युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर समस्त कुरुवंशी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने पाण्डवों को आशीर्वाद दिये ॥१७॥ पाण्डुपुत्रों, मार्ग में आपका कल्याण हो। किसी भी प्राणी से अनिष्ट न हो ॥१८॥ अनन्तर, अपना राज्य भाग पाने के लिए पाण्डवों ने स्वस्तिवाचन कराया और यात्रा के समय के अन्य समग्र कार्य कराये। पुनः वारणावत नगर के लिए वे प्रस्थित हुए ॥१९॥

त्रिचत्वारिंशदधिकशततम अध्याय

दुर्योधन की आज्ञा से वारणावत नगर में पुरोचन के द्वारा लाक्षागृह का निर्माण।

वैशम्पायन बोले—राजा ने पाण्डु पुत्रों को ऐसा आदेश दिया है यह सुनकर दुरात्मा दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ ॥१॥ हे भरतश्रेष्ठ जनमेजय, वह दुर्योधन अपने मित्र पुरोचन को एकान्त में ले गया और उसका दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर इस प्रकार बोला—॥२॥

ममेयं वसुसम्पूर्णा पुरोचन वसुन्धरा । यथेयं मम तद्वत्ते स तां रक्षितुमर्हसि ॥३॥
न हि मे कश्चिदन्योऽस्ति विश्वासिकतरस्त्वया । सहायो येन सन्धाय मन्त्रयेयं यथा त्वया ॥४॥
संरक्ष तात मन्त्रं च सपत्नांश्च ममोद्धर । निपुणेनाभ्युपायेन यद्ब्रवीमि तथा कुरु ॥५॥
पाण्डवा धृतराष्ट्रेण प्रेषिता वारणावतम् । उत्सवे विहरिष्यन्ति धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥६॥
स त्वं रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना । वारणावतमद्यैव यथा यासि तथा कुरु ॥७॥
तत्र गत्वा चतुःशालं गृहं परमसंवृतम् । नागरोपान्तमाश्रित्य कारयेथा महाधनम् ॥८॥
शणसर्जरसादीनि यानि द्रव्याणि कानिचित् । आग्नेयान्युत सन्तीह तानि तत्र प्रदापय ॥९॥
सर्पिस्तैलवसाभिश्च लाक्षया चाप्यनल्पया । मृत्तिकां मिश्रयित्वा त्वं लेपं कुड्येषु दापय ॥१०॥
शणं तैलं घृतं चैव जतुदारूणि चैव हि । तस्मिन्वेश्मनि सर्वाणि निक्षिपेथाः समंततः ॥११॥
यथा च तन्न पश्येरन्परीक्षन्तोऽपि पाण्डवाः । आग्नेयमिति तत्कार्यमिति चान्येऽपि मानवाः॥१२॥
वेश्मन्येवं कृते तत्र गत्वा तान्परमार्चितान् । वासयेथाः पाण्डवेयान्कुन्तीं च ससुहृज्जनाम् ॥१३॥
आसनानि च दिव्यानि यानानि शयनानि च । विधातव्यानि पाण्डूनां यथा तुष्येत वै पिता॥१४॥
तथा च तत्र जानन्ति नगरे वारणावते । तथा सर्वं विधातव्यं यावत्कालस्य पर्ययः ॥१५॥

हे पुरोचन, धनपूर्ण यह पृथिवी मेरी है। इसपर जितना मेरा अधिकार है उतना तुम्हारा भी, अतएव तुम्हें इसकी रक्षा करनी चाहिए ॥३॥ तुम्हारे समान मेरा अत्यन्त विश्वासी सहायक दूसरा नहीं है जिसके साथ मैं परामर्श कर सकूँ; जैसा कि तुम्हारे साथ कर सकता हूँ ॥४॥ भाई, मैं जो तुमसे कहूँ उसे गुप्त रखो। मेरे शत्रुओं का नाश करो और बहुत ही निश्चित उपाय के द्वारा जैसा मैं कहता हूँ वैसा करो ॥५॥ धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को वारणावत नगर में भेजा है। धृतराष्ट्र की आज्ञा से वे वहाँ मेला देखेंगे ॥६॥ अतएव तुम शीघ्र चलनेवाले खच्चरों के रथ पर बैठ कर, जिस तरह आज ही वारणावत नगर में तुम पहुंच जाओ, वैसा करो ॥७॥ वहां जाकर नगर के बाहर किसी गुप्त स्थान में एक चौकोन मकान बनाओ। इस मकान के बनाने में ज्यादा खर्च करो ॥८॥ सन, राल तथा और जो कुछ चीजें आग से भक से जल उठनेवाली हों वह सब उसमें लगाओ ॥९॥ घी तेल चर्बी तथा बहुत अधिक लाह मिट्टी में मिलाकर उस मिट्टी से उस घर की दीवारों को लिपवा दो ॥१०॥ सन, तेल घी, लाह, तथा लकड़ी उस घर में चारो तरफ रखवा दो ॥११॥ इन सब कामों को ऐसी बुद्धिमानी से करो जिससे पाण्डवों को इनका पता न लगे। वे जांच करने पर भी इस बात को न जान सकें कि यह आग्नेय गृह है। इसमें शीघ्र ही आग फैल जा सकती है। इसी प्रकार वहां के किसी मनुष्य को भी इसका पता न लगने पावे ॥१२॥ इस प्रकार घर के तयार हो जाने पर वहां बड़े आदर और उत्साह के साथ पाण्डवों को ले जाकर ठहराओ। साथियों के साथ कुन्ती को भी ठहराओ ॥१३॥ वहाँ ठहरने के, सुन्दर आसन, अच्छी सवारियाँ, पलंग आदि का प्रबन्ध करदो। जिससे हमारे पिता धृतराष्ट्र को प्रसन्नता हो ॥१४॥ यह सब ऐसी बुद्धिमानी से करो कि नियत समय आने

ज्ञात्वा च तान्सुविश्वस्तान् शयानानकुतोभयान्।अग्निस्त्वयाततो देयो द्वारतस्तस्य वेश्मनः॥१६॥
दह्यमाने स्वके गेहे दग्धा इति ततो जनाः। न गर्हयेयुरस्मान्वै पाण्डवार्थाय कर्हिचित् ॥१७॥
स तथेति प्रतिज्ञाय कौरवाय पुरोचनः। प्रायाद्रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना ॥१८॥
स गत्वा त्वरितं राजन् दुर्योधनमते स्थितः। यथोक्तं राजपुत्रेण सर्वं चक्रे पुरोचनः ॥१९॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि पुरोचनोपदेशे
चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४४॥

वैशम्पायन उवाच—

पाण्डवास्तु रथान्युक्तान्सदश्वैरनिलोपमैः। आरोहमाणा भीष्मस्य पादौ जगृहुरार्तवत् ॥१॥
राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य द्रोणस्य च महात्मनः। अन्येषां चैव वृद्धानां कृपस्य विदुरस्य च ॥२॥
एवं सर्वान्कुरून्वृद्धानभिवाद्य यतव्रताः। समालिङ्ग्य समानान्वै बालैश्चाप्यभिवादिताः ॥३॥
सर्वा भ्रातृस्तथाऽऽपृच्छ्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्। सर्वाः प्रकृतयश्चैव प्रययुर्वारणावतम् ॥४॥

के पहले इसका पता किसी को न लगे। वरणावत नगर के निवासियों को भी इसकी कोई खबर न होने पावे ॥१५॥ जब समझ लो कि पाण्डवों के मन के किसी प्रकार की शंका नहीं है। तुम्हारे ऊपर पूरा पूरा उनका विश्वास हो गया है, तब पाण्डवों के सोने के समय उस घर में आग लगा दो तथा उसके द्वार बन्द कर दो ॥१६॥ इस प्रकार अपने घर में जब पाण्डव जल जायंगे तब उनके जलाने के अपराधी हमलोग नहीं समझे जायंगे। इसके लिए लोग हमारी निन्दा न करेंगे ॥१७॥ पुरोचन ने दुर्योधन से वैसा करने की प्रतिज्ञा की और खच्चर के शीघ्रगामी रथपर बैठकर वह चला ॥१८॥ राजन्, दुर्योधन की आज्ञा का पालन करने के लिए वह शीघ्र ही वारणावत नगर में गया और राजपुत्र दुर्योधन ने उससे जैसा कहा था, वैसा ही उसने किया ॥१९॥

चतुश्चत्वारिंशदधिक शततम अध्याय

पाण्डवों की वारणावत यात्रा। साथ जाने वाले नगरवासियों को लौटाना। म्लेच्छ भाषा में विदुर का उपदेश।

वैशम्पायन बोले—वायुतुल्य वेगवाले घोड़े पाण्डवों ने रथ में जुतवाये और रथ पर बैठने के समय उन लोगों ने भीष्म को दुखी के समान प्रणाम किया ॥१॥ राजा धृतराष्ट्र महात्मा द्रोण, अन्य वृद्धों, कृपाचार्य, विदुर तथा अन्त बूढ़े कौरवों को व्रतधारी पाण्डवों ने प्रणाम किये अपने बराबरवालों से वे मिले और छोटों ने उन लोगों को प्रणाम किया ॥२,३॥ गान्धारी आदि माताओं की प्रदक्षिणा करके उनलोगों ने उनसे आज्ञा ली और वे प्रस्थित हुए। उनलोगों के साथ सभी पुरवासी वारणावत जाने के लिए उद्यत हुए ॥४॥ महाबुद्धिमान् विदुर और बूढ़े कौरव

विदुरश्च महाप्राज्ञस्तथाऽन्ये कुरुपुंगवाः । पौराश्च पुरुषव्याघ्रानन्वीयुः शोक कर्शिताः ॥५॥
तत्र केचिद्ब्रुवन्ति स्म ब्राह्मणा निर्भयास्तदा । दीनान्दृष्ट्वा पाण्डुसुतानतीवभृशदुखिताः ॥६॥
विषमं पश्यते राजा सर्वथा स सुमन्दधीः । कौरव्यो धृतराष्ट्रस्तु न च धर्मं प्रपश्यति ॥७॥
न हि पापमपापात्मा रोचयिष्यति पाण्डवः । भीमो वा बलिनां श्रेष्ठःकौन्तेयो वा धनञ्जय ॥८॥
कुत एव महात्मानौ माद्रीपुत्रौ करिष्यतः । तान् राज्यं पितृतः प्राप्तान् धृतराष्ट्रो न मृष्यते ॥९॥
अधर्म्यमिदमत्यन्तं कथं भीष्मोऽनुमन्यते । विवास्यमानानस्थाने नगरे योऽभिमन्यते ॥१०॥
पितेव हि नृपोऽस्माकमभूच्छान्तनवः पुरा । विचित्रवीर्यो राजर्षिः पाण्डुश्च कुरुनन्दनः ॥११॥
स तस्मिन्पुरुषव्याघ्रे देवभावं गते सति । राजपुत्रानिमान्बालान्धृतराष्ट्रो न मृष्यते ॥१२॥
वयमेतदनिच्छन्तः सर्व एव पुरोत्तमात् । गृहान्विहाय गच्छामो यत्र गन्ता युधिष्ठिरः ॥१३॥
तांस्तथा वादिनःपौरान्दुःखितान्दुःखकर्शितः । उवाच मनसा ध्यात्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥१४॥
पिता मान्यो गुरुः श्रेष्ठो यदाह पृथिवीपतिः । अशङ्कमानैस्तत्कार्यमस्माभिरिति नो व्रतम् ॥१५॥
भवन्तः सुहृदोऽस्माकमस्मान्कृत्वा प्रदक्षिणम् । प्रतिनन्द्य तथाऽशीर्भिर्निवर्त्तध्वं यथागृहम् ॥१६॥

तथा पुरवासी शोक से दुःखी होकर पाण्डवों के साथ वन में चले ॥५॥ पाण्डवों को दुखी देखकर ये सभी बहुत ही दुखी हो गये थे। उनमें कई ब्राह्मण जो निर्भय थे, वे इस प्रकार बोले—॥६॥ यह राजा बड़ा ही मूर्ख है, पक्षपात करता है। कुरुवंशी यह धृतराष्ट्र धर्म का पालन नहीं करता ॥७॥ धर्मात्मा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर यह पाप सह न सकेंगे। बली श्रेष्ठ भीमसेन और कुन्ती पुत्र अर्जुन ही कैसे इस पाप को सहेंगे। इनके न सहने पर माद्री पुत्र महात्मा नकुल और सहदेव ही कैसे सहेंगे। यह राज्य पाण्डवों के पिता का है अतएव पाण्डव इसके अधिकारी हैं, पर धृतराष्ट्र उनको राज्य देना नहीं चाहता ॥८,९॥ भीष्म इतने बड़े अधर्म का होना कैसे देख रहे हैं। अन्याय पूर्वक पाण्डवों को नगर से निर्वासित करने की सम्मति उन्होंने कैसे दी ॥१०॥ पहले शन्तनुपुत्र विचित्रवीर्य हम लोगों के राजा हुए, वे पिता के समान हम लोगों का पालन करते थे, कुरुनन्दन राजर्षि पाण्डु ने भी हमलोगों का पालन पिता के समान किया ॥११॥ पुरुषसिंह पाण्डु के स्वर्गवासी होने पर धृतराष्ट्र इन बालक राजकुमारों को देख नहीं सकता। वह अपना शत्रु समझ कर इन्हे यहाँ से हटा रहा है ॥१२॥ हम लोग ऐसा नहीं चाहते, हम लोग इस अधर्म कार्य को पसन्द नहीं करते। अतएव पिता पितमह के इस श्रेष्ठ नगर को छोड़कर हमलोग भी वहीं जांयगे जहां युधिष्ठर जानेवाले हैं ॥१३॥ दुःखित होकर इस प्रकार बातें करने वाले नगर वासियों को देखकर युधिष्ठिर बहुत ही दुखी हुए। थोड़ी देर तक मनही मन विचार कर धर्मराज युधिष्ठर उनसे इस प्रकार बोले ॥१४॥

राजा धृतराष्ट्र हमारे पिता हैं, गुरु हैं और बड़े हैं, वे जो कहें विना सन्देह किये उसका पालन करना हमलोगों का कर्तव्य है ॥१५॥ आप लोग हमारे मित्र हैं। आप लोग आशीर्वाद के द्वारा हमलोगों को प्रसन्न करके हमारी दाहिनी ओर से अपने अपने घर को लौट

यदा तु कार्यमस्माकं भवद्भिरुपपत्स्यते । तदा करिष्यथास्माकं प्रियाणि च हितानि च ॥१७॥
एवमुक्तास्तदा पौराःकृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । आशीर्भिश्चाभिनन्द्यैतान् जग्मुर्नगरमेव हि॥१८॥
पौरेषु विनिवृत्तेषु विदुरः सर्वधर्मवित् । बोधयन्पाण्डवश्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
प्राज्ञः प्राज्ञप्रलापज्ञः प्रलापज्ञमिदं वचः । प्राज्ञं प्राज्ञः प्रलापज्ञं प्रलापज्ञो वचोऽब्रवीत् ॥२०॥
यो जानाति परप्रज्ञां नीतिशास्त्रानुसारिणीम् । विज्ञायेह तथा कुर्यादापदं निस्तरेद्यथा ॥२१॥
अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्त्तनम् । यो वेत्ति न तु तं घ्नन्ति प्रतिघातविदं द्विषः ॥२२॥
कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः । न दहेदिति चात्मानं यो रक्षति स जीवति ॥२३॥
नाचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाचक्षुर्विन्दते दिशः । नाधृतिर्बुद्धिमाप्नोति बुध्यस्वैवं प्रबोधितः ॥२४॥
अनाप्तैर्दत्तमादत्ते नरः शस्त्रमलोहजम् । श्वाविच्छरणमासाद्य प्रमुच्येत हुताशनात् ॥२५॥
चरन्मार्गान्विजानाति नक्षत्रैर्विन्दते दिशः । आत्मना चात्मनः पञ्च पीडयन्नानपीड्यते ॥२६॥

जांय ॥१६॥ जब हमलोगों का कोई काम आपके करने योग्य होगा उस समय आपलोग हमारे हितकारी और प्रिय काम कर दीजिएगा ॥१७॥ युधिष्टर के ऐसा कहने पर पुरवासियों ने आशीर्वाद देकर पाण्डवों को अभिनन्दित किया और उनकी दाहिनी ओर से वे लौट गये ॥१८॥ नगरवासियों के लौट जाने पर सर्वधर्मज्ञ विदुर युधिष्ठिर को समस्त रहस्य समझाने के लिए उनसे इस प्रकार बोले ॥१९॥ बुद्धिमान् विदुर असंस्कृत भाषाओं को जानते थे, वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे । युधिष्ठिर भी असंस्कृत भाषाओं को समझते थे । अतएव विदुर उसी भाषा में उनसे बोले । प्रकृति प्रत्यय आदि का विभाग न होने के कारण उस भाषा को म्लेच्छ भाषा कहते हैं । विदुर उसी म्लेच्छ भाषा में बोले ॥२०॥ शत्रु के द्वारा नीति शास्त्र के अनुसार निश्चित व्यवहार को जो जानते हैं, शत्रु ऐसा करना चाहता है यह जो जानते हैं, उन्हें इस बात को जानकर ऐसा काम करना चाहिए जिससे उनकी रक्षा विपत्तियों से हो ॥२१॥ जो शस्त्र लोहा का बना नहीं है, पर तीखा है और शरीर को काटनेवाला है, उस शस्त्र को तथा उससे होनेवाले आघात को जो जानते हैं, उनको शत्रु मार नहीं सकते ॥२२॥ तृण आदि को जलानेवाली और शीत मिटानेवाली आग यदि बन में लग जाय तो वह बिल में रहने वालों को जला नहीं सकती, इसी प्रकार जो लोग अपने बचने का उपाय करते हैं वे जीवित रहते हैं ॥२३॥ जो आंख के अन्धे हैं, वे मार्ग नहीं पहचान सकते, उन्हे दिशाओं का भी ज्ञान नहीं होता । जिन्हे धैर्य नहीं है उनको समय पर ज्ञान नहीं होता, उनकी बुद्धि काम नहीं देती । मैं तुमको यह बात समझाना चाहता हूँ, इसे तुम समझो ॥२४॥ जो मनुष्य शत्रु के लिए अस्त्र को ग्रहण करता है, जो अस्त्र लोहे का बना नहीं है अर्थात् शत्रु के दिये भक से जल उठने वाले घर में निवास करता है, वह यदि खरगोश के घर के समान निकलने के द्वार दोनों ओर रखे तो उसकी रक्षा आग से हो सकती है ॥२५॥ जो सदा इधर उधर घूमता रहता है, उसेही आस पास के रास्ते मालूम होते हैं और वह नक्षत्रों को देखकर दिशा का ज्ञान कर लेता है । जो अपनी पांच इन्द्रियों को अपने वश में रखता है वह कभी पीड़ित नहीं होता । शत्रु उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता ॥२६॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजो युधिष्ठिरः । विदुरं विदुषां श्रेष्ठं ज्ञातमित्येव पाण्डवः ॥२७॥
अनुशिक्ष्यानुगम्यैतान्कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् । पाण्डवानभ्यनुज्ञाय विदुरः प्रययौ गृहान् ॥२८॥
निवृत्ते विदुरे चापि भीष्मे पौरजने तथा । अजातशत्रुमासाद्य कुन्ती वचनमब्रवीत् ॥२९॥
क्षत्ता यदब्रवीद्वाक्यं जनमध्येऽब्रुवन्निव । त्वया च स तथेत्युक्तो जानीमो न च तद्वयम् ॥३०॥
यदिदं शक्यमस्माभिर्ज्ञातुं न च सदोषवत् । श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं संवादं तव तस्य च ॥३१॥
गृहादग्निश्च बोद्धव्य इति मां विदुरोऽब्रवीत् । पन्थाश्च वोनाविदितः कश्चित्स्यादिति धर्मधीः ॥३२॥
जितेन्द्रियश्च वसुधां प्राप्स्यतीति च मेऽब्रवीत् । विज्ञातमिति तत्सर्वं प्रत्युक्तो विदुरो मया ॥३३॥
वैशम्पायन उवाच—
अष्टमेऽहनि रोहिण्यां प्रयाताः फाल्गुनस्य ते । वारणावतमासाद्य ददृशुर्नागरं जनम् ॥३४॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि वारणावतगमने
पञ्चचत्वारिंशदधिक शततमोऽध्यायः ॥१४५॥

विद्वानों में श्रेष्ठ विदुर के ऐसा कहने पर पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर ने उत्तर में केवल इतना ही कहा कि मैंने सब समझ लिया ॥२७॥ इस प्रकार युधिष्ठिर को विदुर ने समझाया, उनके साथ साथ थोड़ी दूर तक वे गये, पुनः वे पाण्डवों को आशीर्वाद और वारणावत जाने की आज्ञा देकर पाण्डवों की दाहिनी ओर से लौट आये ॥२८॥ भीष्म, विदुर तथा पुरवासियों के लौट आने पर कुन्ती अजातशत्रु युधिष्ठिर के पास गयीं और उनसे वे इस प्रकार बोलीं ॥२९॥ सब लोगों के सामने विदुर ने जो बात तुमसे कही है, जो बात समझ में न आने के कारण न कही के समान है। तुमने उनकी बातें सुनकर कहा कि हां, हम समझ गये। पर हम लोग उस बात को कुछ भी नहीं समझे ॥३०॥ यदि वह बात हम लोगों के जानने लायक हो, यदि इसमें कोई दोष न हो तो मैं विदुर के साथ तुम्हारा संवाद सुनना चाहती हूँ ॥३१॥

युधिष्ठिर बोले—विदुर ने मुझसे कहा है कि जिस घर में तुम लोग ठहराये जाओगे, उसमें आग लगेगी, यह बात तुम पहले ही से समझ लो। वहां का रास्ता भी तुम्हें मालूम नहीं है, जिससे भाग कर तुम प्राण बचा सकोगे। धर्म बुद्धि विदुर ने यही कहा है ॥३२॥ उन्होंने पुनः मुझसे कहा कि जो जितेन्द्रिय है वही पृथिवी का अधिकार पाता है। ये ही उनकी बातें सुनकर मैंने कहा था कि मैं समझ गया ॥३३॥

वैशम्पायन बोले—फाल्गुन मास की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में पाण्डवों ने माता के साथ हस्तिनापुर से प्रस्थान किया। यथा समय वारणावत पहुंच कर उन लोगों ने वहां के निवासियों को देखा ॥३४॥

पंचचत्वारिंशदधिक शततम अध्याय ।

वैशम्पायन उवाच—

ततः सर्वाः प्रकृतयो नगराद्वारणावतात्। सर्वमङ्गलसंयुक्ता यथाशास्त्रमतन्द्रिताः ॥१॥
श्रुत्वागतान्पाण्डुपुत्रान्नानायानैः सहस्रशः। अभिजग्मुर्नरश्रेष्ठान् श्रुत्वैव परया मुदा ॥२॥
ते समासाद्य कौन्तेयान्वारणावतका जनाः। कृत्वा जयाशिषः सर्वे परिवार्योपतस्थिरे ॥३॥
तैर्वृतः पुरुषव्याघ्रो धर्मराजो युधिष्ठिरः। विबभौ देवसङ्काशो वज्रपाणिरिवामरैः ॥४॥
सत्कृताश्चैव पौरैस्ते पौरान्सत्कृत्य चानघ। अलङ्कृतं जनाकीर्णं विविशुर्वारणावतम् ॥५॥
ते प्रविश्य पुरीं वीरास्तूर्णं जग्मुरथो गृहान्। ब्राह्मणानां महीपाल रतानां स्वेषु कर्मसु ॥६॥
नगराधिकृतानां च गृहाणि रथिनां तदा। उपतस्थुर्नरश्रेष्ठा वैश्यशूद्रगृहाण्यपि ॥७॥
अर्चिताश्च नरैः पौरैः पाण्डवा भरतर्षभ। जग्मुरावसथं पश्चात्पुरोचनपुरःसराः ॥८॥
तेभ्यो भक्ष्याणि पानानि शयनानि शुभानि च। आसनानि च मुख्यानि प्रददौ स पुरोचनः ॥९॥
तत्र ते सत्कृतास्तेन सुमहार्हपरिच्छदाः। उपास्यमानाः पुरुषैरूषुः पुरनिवासिभिः ॥१०॥
दशरात्रोषितानां तु तत्र तेषां पुरोचनः। निवेदयामास गृहं शिवाख्यमशिवं तदा ॥११॥
तत्र ते पुरुष व्याघ्रा विविशुः सपरिच्छदाः। पुरोचनस्य वचनात्कैलासमिव गुह्यकाः ॥१२॥
तच्चागारमभिप्रेक्ष्य सर्वधर्मभृतां वरः। उवाचाग्नेयमित्येवं भीमसेनं युधिष्ठिरः ॥१३॥

वैशम्पायन बोले—पाण्डुपुत्र वारणावत में आये हैं यह सुन कर वहां की समस्त प्रजा, शास्त्रानुसार समस्त मङ्गल द्रव्या को लेकर, आलस त्याग कर बड़ी प्रसन्नता से विविध वाहनों पर चढ़ कर, हजारों की संख्या में वहां आयी ॥१-२॥ कुन्तीपुत्र पाण्डवों के पास आकर, जयजयकार कर तथा आशीर्वाद देकर वारणावत की प्रजा के लोग उनको घेर कर बैठ गये ॥३॥ उनसे घिरे धर्मराज युधिष्ठिर, देवताओं से घिरे वज्रपाणि देवराज के समान मालूम होते थे ॥४॥ पुरवासियों ने नगर के बाहर ही पाण्डवों का सत्कार किया, पाण्डवों ने भी उनका सत्कार किया। अनन्तर उन लोगोंने सजे हुए और मनुष्यों से भरे हुए वारणावत नगर में प्रवेश किया ॥५॥ राजन्, वारणावत नगर में शीघ्र प्रवेश करके वे वीर पाण्डव उन ब्राह्मणों के घरों में गये, जो ब्राह्मण अपना कर्म किया करते हैं ॥६॥ वहां से वे नगर के अधिकारी तथा रक्षक के घरों में गये, पुनः वे वैश्यों और शूद्रों के घरों में भी गये ॥७॥ पुरवासी मनुष्यों ने पाण्डवों का सत्कार किया, इसके पश्चात् पाण्डव पुरोचन के साथ अपने निवास स्थान पर गये ॥८॥ पुरोचन ने पाण्डवों को उत्तम भोजन, पान, सोने के लिए पलंग तथा उत्तम आसन दिये ॥९॥ इस प्रकार बहुमूल्य वस्त्र धारण करने वाले वे पुरुषसिंह, पुरोचन तथा पुरवासियों के द्वारा सेवित हो कर निवास करने लगे ॥१०॥ जब वहां रहते पाण्डवों को दस रात बीत गयी तब पुरोचन ने उन लोगों को शिव नामक अशिव (अमङ्गल) भवन की बात सुनायी। वहां चलने के लिए उसने कहा ॥११॥ पुरुषसिंह पाण्डव अपने साथियों के साथ उस भवन में पुरोचन के कहने से गये, जिस प्रकार यक्ष कैलास पर्वत पर जाते हैं ॥१२॥ उस घर को देखकर श्रेष्ठ धर्मात्मा युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा कि यही वह आग्नेय (आग से भकसे जलने वाला) गृह है ॥१३॥

युधिष्ठिर उवाच—

जिघ्राणोऽस्य वसागन्धं सर्पिर्जतुविमिश्रितम्। कृतं हि व्यक्तमाग्नेयमिदं वेश्म परन्तप ॥१४॥
शणसर्जरसं व्यक्तमानीय गृहकर्मणि। मुञ्जबल्वजवंशादिद्रव्यं सर्वं घृतोक्षितम् ॥१५॥
शिल्पिभिः सुकृतं ह्याप्तैर्विनीतैर्वेश्मकर्मणि। विश्वस्तं मामयं पापो दग्धुकामः पुरोचनः ॥१६॥
तथा हि वर्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः। इमां तु तां महाबुद्धिर्विदुरो दृष्टवांस्तथा ॥१७॥
आपदं तेन मां पार्थ स सम्बोधितवान्पुरा। ते वयं बोधितास्तेन नित्यमस्मद्धितैषिणा ॥१८॥
पित्रा कनीयसा स्नेहाद्बुद्धिमन्तोऽशिवं गृहम्। अनार्यैः सुकृतं गूढैर्दुर्योधनवशानुगैः ॥१९॥

भीमसेन उवाच—

यदीदं गृहमाग्नेयं विहितं मन्यते भवान्। तत्रैव साधु गच्छामो यत्र पूर्वोषिता वयम् ॥२०॥

युधिष्ठिर उवाच—

इह यत्तैर्निराकारैर्वस्तव्यमिति रोचये। अप्रमत्तैर्विचिन्वद्भिर्गतिमिष्टां ध्रुवामितः ॥२१॥
यदि विन्देत चाकारमस्माकं स पुरोचनः। क्षिप्रकारी ततो भूत्वा प्रसह्यापि दहेत नः ॥२२॥
नायं बिभेत्युपक्रोशादधर्माद्वा पुरोचनः। तथाहि वर्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः ॥२३॥

युधिष्ठिर बोले—घी और लाह मिली चर्बी की गन्ध से साफ मालूम होता है, यह गृह आग्नेय है, आग का संयोग होते ही जल उठने वाला है ॥१४॥ शन, राल, मूंज, तृण और बांस आदि घी से भिगा कर इस घर में लगाये गये हैं। चतुर और विश्वासी शिल्पियों ने यह घर बनाया है। यह पापी पुरोचन मुझे भुलावा देकर इस घर में जला देना चाहता है ॥१५-१६॥ यह मूर्ख दुर्योधन के वश में है। हम लोगों पर आने वाली इस विपत्ति को महाबुद्धिमान् विदुर ने जान लिया और उन्होंने मुझे इसकी सूचना दे दी। वे सदा हम लोगों का हित चिन्तन किया करते हैं ॥१७-१८॥ छोटे पिता विदुर ने हमको बतलाया था कि दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार काम करनेवाले नीचों ने छिप कर यह अद्भुत गृह बनवाया है ॥१९॥

भीमसेन बोले—यदि आप इस घर को आग्नेय समझते हैं, यदि यह घर आग से शीघ्र जलने वाला है, तो अच्छा हो कि हम लोग वहीं चले चलें जहाँ हम लोग पहले ठहरे हुए थे ॥२०॥

युधिष्ठिर बोले—हमारी समझ से यही अच्छा है कि हम यहीं सवाधान होकर रहें। किसी प्रकार यह बात हम प्रकट न होने द कि दुर्योधन का और पुरोचन का अभिप्राय हम लोग जानते हैं। सदा सावधान रह कर यहाँ से निकल भागने का अनुकूल मार्ग हम लोग ढूँढते रहें ॥२१॥ यदि किसी प्रकार हमलोगों के आकार आदि से पुरोचन को मालूम हो गया कि हम लोगों को उसका अभिप्राय मालूम है, तो वह अपना काम शीघ्र पूरा करने के लिए बल पूर्वक हम लोगों को इस घर में जला देगा ॥२२॥ यह मूर्ख पुरोचन दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार चलने वाला है अतएव यह अधर्म या निन्दा से नहीं डरता ॥२३॥ यदि हम लोग यहां जल

अपि चायं प्रदग्धेषु भीष्मोऽस्मासु पितामहः । कोपं कुर्यात्किमर्थं वा कौरवान्कोपयीत सः ॥२४॥
अथवाऽपीह दग्धेषु भीष्मोऽस्माकं पितामहः । धर्म इत्येव कुप्येरन्ये चान्ये कुरुपुङ्गवाः ॥२५॥
वयं तु यदि दाहस्य बिभ्यतः प्रद्रवेमहि । स्पशै र्निर्घातयेत्सर्वान् राज्यलुब्धःसुयोधनः ॥२६॥
अपदस्थान्पदे तिष्ठन्नपक्षान् पक्षसंस्थितः । हीनकोशान्महाकोशः प्रयोगैर्घातयेद्ध्रुवम् ॥२७॥
तदस्माभिरिमं पापं तं च पापं सुयोधनम् । वञ्चयद्भिर्निवस्तव्यं छन्ना वासं क्वचित्क्वचित् ॥२८॥
ते वयं मृगया शीलाश्चराम वसुधामिमाम् । तथा नो विदिता मार्गा भविष्यन्ति पलायताम् ॥२९॥
भौमं च बिलमद्यैव करवाम सुसंवृतम् । गूढश्वासान्न नस्तत्र हुताशः संप्रधक्ष्यति ॥३०॥
वसतोऽत्र यथा चास्मान्न बुध्येत पुरोचनः । पौरो वापिजनः कश्चित्तथा कार्यमतिन्द्रितैः॥३१॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि भीमसेनयुधिष्ठिरसंवादे
षट्चत्वारिंशतदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

वैशम्पायन उवाच—
विदुरस्य सुहृत्कश्चित्खनकः कुशलो नरः । विविक्ते पाण्डवान् राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥१॥

मरें तो भीष्म पितामह भी क्रोध क्यों करेंगे और क्रोध करके वे कौरवों को क्यों क्रुद्ध करेंगे ॥२४॥ अथवा हम लोगों के पितामह हैं, अतएव हम लोगों के जल जाने पर धर्म समझ कर क्रोध करें भी । हाँ, दूसरे जो कौरव हैं वे क्रोध करेंगे पर वह व्यर्थ होगा ॥२५॥ यदि जल जाने के भय से हम लोग यहाँ से भाग जांय तो दुर्योधन गुप्त दूतों के द्वारा हम सब को मरवा डालेगा, क्योंकि वह राज्य लोभी है ॥२६॥ इस समय दुर्योधन राज्यधिकारी है उसके अनेक सहायक हैं और उसके हाथ में बड़ा खजाना है, अतएव वह अनेक उपायों से राज्यहीन सहायहीन और धन हीन हम लोगों को मरवा डालेगा ॥२७॥ अतएव हम लोगों को भी चाहिए कि इस पापी पुरोचन को और पापी दुर्योधन को धोखा दें और छिपकर जहाँ तहाँ रहें ॥२८॥ यहाँ रहकर चारो ओर शिकार खेलने के बहाने हम लोग घूमेंगे, जिससे भागने के सभी मार्ग हम लोगों को मालूम हो जांयगें ॥२९॥ आज ही हम लोग छिपकर किसी गुप्त स्थान में पृथिवी में सुरंग बनावेंगे। जहाँ रहने से आग लग जाने पर भी हम लोग जल न सकेंगे ॥३०॥ हम लोगों का वहाँ रहना वहाँ रहकर सुरंग खोदना पुरोचन को तथा नगवासियों को भी जिससे मालूम न होने पावे ऐसा उद्योग हम लोगों को आलस्य छोड़कर करना चाहिए ॥३१॥

षट्चत्वारिंशदधिक शततम अध्याय ।

विदुर के भेजे मनुष्य के द्वारा सुरंग निर्माण ।

वैशम्पायन बोले—राजन्, विदुर का कोई मित्र जो सुरंग आदि खोदने में निपुण था, वह एकान्त में पाण्डवों के पास जाकर बोला ॥१॥ मुझे विदुर ने भेजा है। मैं खोदने के काम में

प्रहितो विदुरेणास्मि खनकः कुशलो ह्यहम् । पाण्डवानां प्रियं कार्यमिति किं करवाणि वः ॥२॥
प्रच्छन्नं विदुरेणोक्तःश्रेयस्त्वमिह पाण्डवान् । प्रतिपादय विश्वासादिति किं करवाणि वः ॥३॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रात्रावस्यां पुरोचनः । भवनस्य तव द्वारि प्रदास्यति हुताशनम् ॥४॥
मात्रा सह प्रदग्धव्याः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः । इति व्यवसितं तस्य धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥५॥
किंचिच्च विदुरेणोक्तो म्लेच्छवाचाऽसि पाण्डव । त्वया च तत्तथेत्युक्तमेतद्विश्वासकारणम् ॥६॥
उवाच तं सत्यधृतिः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । अभिजानामि सौम्य त्वां सुहृदं विदुरस्य वै ॥७॥
शुचिमाप्तं प्रियं चैव सदा च दृढभक्तिकम् । न विद्यते कवेः किंचिदविज्ञातं प्रयोजनम् ॥८॥
यथा तस्य तथा नस्त्वं निर्विशेषा वयं त्वयि । भवतश्च यथा तस्य पालयास्मान्यथा कविः ॥९॥
इदं शरणमाग्नेयं मदर्थमिति मे मतिः । पुरोचनेन विहितं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ॥१०॥
स पापः कोषवांश्चैव ससहायश्च दुर्मतिः । अस्मानपि च पापात्मा नित्यं काले प्रबाधते ॥११॥
स भवान्मोक्षय त्वस्मान्यत्नेनास्माद्धुताशनात् । अस्मास्विह हि दग्धेषु सकामःस्यात्सुयोधनः॥१२॥
समृद्धमायुधागारमिदं तस्य दुरात्मनः । वप्रान्तं निष्प्रतीकारमाश्रित्येदं कृतं महत् ॥१३॥

निपुण हूँ । विदुर ने कहा है कि पाण्डवों का प्रिय काम करना । आपके लिए मैं क्या करूँ, यह आप बतलावें ॥२॥ विदुर मुझ पर विश्वास करते हैं अतएव एकान्त में उन्होंने मुझसे कहा है कि पाण्डवों के कल्याण का काम जाकर तुम करो । आप आज्ञा दें, मैं क्या करूँ ॥३॥ कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात को पुरोचन तुम्हारे रहने के इस घर के द्वार पर आग लगावेगा ॥४॥ धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्बुद्धि दुर्योधन का यह अभिप्राय है कि माता के साथ पाण्डव जला दिये जांय ॥५॥ हे पाण्डव, विदुर ने म्लेच्छ भाषा में तुमसे कुछ कहा है और तुमने भी उसे स्वीकार किया है, इससे तुम मुझ पर विश्वास करो । मैं विदुर का विश्वासी हूँ यह समझो ॥६॥

सत्यवादी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर उस पुरुष से बोले, सौम्य, मैं आपको जानता हूं । आप विदुर के विश्वासी मित्र हैं ॥७॥ आप शुद्ध स्वभाव, विश्वासी, प्रिय और विदुर में सदा दृढ़ भक्ति रखने वाले हैं । विदुर सर्वज्ञ हैं, उन से मेरा अभिप्राय छिपा नहीं है ॥८॥ आप विदुर के जैसे हैं, वैसे ही हमारे भी हैं, हम लोग भी विदुर को जैसा समझते हैं वैसा ही आप को भी समझते हैं, अतएव हे सर्वज्ञ आप हमारी रक्षा कीजिए ॥९॥ दुर्योधन की आज्ञा से पुरोचन ने यह आग्नेय गृह हमारे लिए बनाया है । आग से शीघ्रही जलनेवाले इस घर में हम लोगों को जला देने के लिए यह बनवाया गया है ॥१०॥ पापी दुर्योधन के पास खजाना है, उसके सहायक हैं और वह बुद्धि हीन है । वह पापी हम लोगों का नाश करने के लिए सदा उद्योग करता रहता है ॥११॥ अतएव आप उद्योग करके इस अग्निगृह से हम लोगों की रक्षा करें । यदि हम लोग यहाँ जल गये तो दुर्योधन का मनोरथ पूरा हो जायगा ॥१२॥ उस दुरात्मा ने बहुत सा धन लाकर यह अस्त्ररूपी गृह हम लोगों को नष्ट करने के लिए बनवाया है । यह गृह इतना बड़ा है पर कहीं से निकलने की इसमें राह नहीं है । इसकी दीवार में द्वार नहीं है ॥१३॥ दुर्योधन का यह निन्दित काम

इदं तदशुभं नूनं तस्य कर्म चिकीर्षितम् । प्रागेव विदुरो वेद तेनास्मानन्वबोधयत् ॥१४॥
सेयमापदनुप्राप्ता क्षत्तायां दृष्टवान्पुरा । पुरोचनस्याविदितानस्मांस्त्वं प्रतिमोचय ॥१५॥
स तथेति प्रतिश्रुत्य खनको यत्नमास्थितः । परिखामुत्किरन्नाम चकार च महाबिलम् ॥१६॥
चक्रे च वेश्मनस्तस्य मध्ये नातिमहद्बिलम् । कपाटयुक्तमज्ञातं समं भूम्याश्च भारत ॥१७॥
पुरोचनभयादेव व्यदधात्संवृतं मुखम् । स तस्य तु गृहद्वारि वसत्यशुभधीः सदा ॥
तत्र ते सायुधः सर्वे वसन्ति स्म क्षपां नृप ॥१८॥
दिवा चरन्ति मृगयां पाण्डवेया वनाद्वनम् । विश्वस्तवदविश्वस्ता वञ्चयन्तः पुरोचनम् ॥
अतुष्टास्तुष्टवद्राजन्नूषुः परमविस्मिताः ॥१९॥
न चैनानन्वबुध्यन्त नरा नगरवासिनः । अन्यत्र विदुरामात्यात्तस्मात्खनकसत्तमात् ॥२०॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि जतुगृहवासे सप्तचत्वरिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४७॥

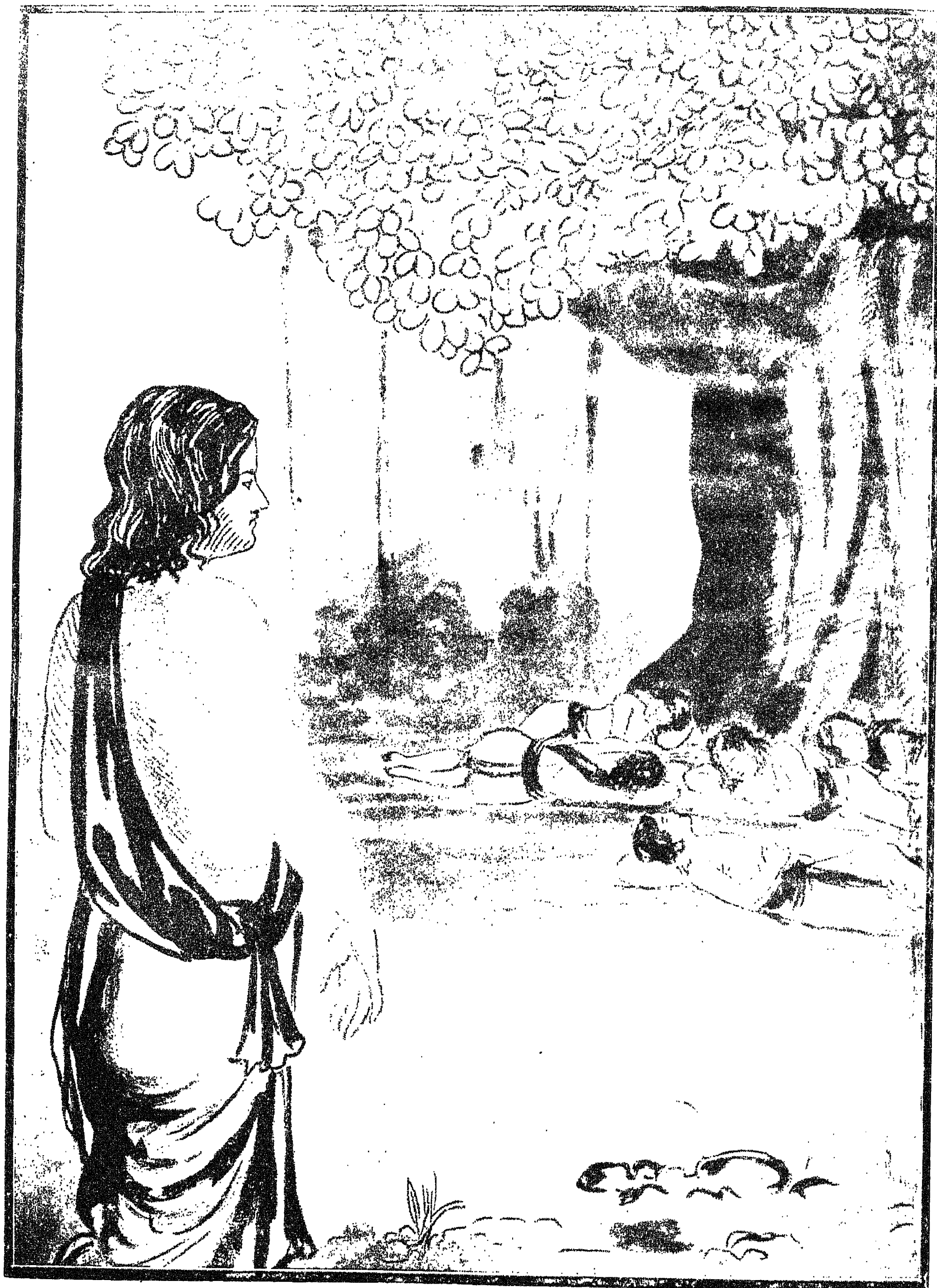
वैशम्पायन उवाच—
तांस्तु दृष्ट्वा सुमनसः परिसंवत्सरोषितान् । विश्वस्तानिव संलक्ष्य हर्षं चक्रे पुरोचनः ॥१॥

विदुर पहले ही जान गये थे और उन्होंने उसकी सूचना भी हम लोगों को दे दी थी ॥१४॥ अब वह विपत्ति सामने आ खड़ी हुई है, जिसको पहले विदुर ने जाना था, जिसके आने की उन्होंने शंका की थी । अब आप यहाँ से हम लोगों का उद्धार कीजिए, पर यह बात पुरोचन को मालूम होने न पावे ॥१५॥

विदुर के भेजे मनुष्य ने युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार काम करने की प्रतिज्ञा की और वह उद्योग करने लगा । खाई साफ करने के बहाने उसने वहाँ एक बड़ा भारी बिल बनवाया ॥१६॥ वह सुरंग उस घर के बीच से बनाया गया था । इसमें किवाड़ लगाये गये । वह सुरंग पृथिवी से बिलकुल मिला दिया गया था । जिससे उसका पता नहीं लगता था ॥१७॥ उस सुरंग का मुंह पुरोचन के भय से ही बन्द कर दिया गया था, क्योंकि वह नीच बुद्धि सदा उस घर के द्वार पर रहा करता था । राजन्, वे पाण्डव, अस्त्र शस्त्र से सज्जित होकर रात को उस घर में रहते थे ॥१८॥ दिन को शिकार खेलने के लिए वे इस बन से उस बन में घूमा करते थे। पाण्डव पुरोचन पर विश्वास नहीं करते थे, पर ऊपर से विश्वास दिखाते थे, वे सन्तुष्ट नहीं थे पर सन्तुष्ट के समान रहते थे । इस प्रकार पुरोचन को धोखा देते हुए उन लोगों ने वहाँ निवास किया ॥१९॥ पाण्डवों के इस अभिप्राय को कोई भी नहीं जानता था, कोई नगरवासी भी नहीं जानता था विदुर के मित्र सुरंग खोदने वाले के अतिरिक्त और किसी को इस बात की खबर तक न थी ॥२०॥ सप्त चत्वारिंशदधिक शततम अध्याय ।

भीम का लाक्षागृह में आग लगाना और भाइयों तथा माता के साथ भागना ।

वैशम्पायन बोले—पाण्डव एक वर्ष तक वहां प्रसन्नता पूर्वक रहे, यह देख कर पुरोचन



भूमि पर सोये माता और भाइयों को देखकर भीम का दुखी होना। (पृष्ठ ५५८)

पुरोचने तथा हृष्टे कौन्तेयोऽथ युधिष्ठिरः । भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमौ प्रोवाच धर्मवित् ॥२॥
अस्मानयं सुविश्वस्तान्वेत्ति पापः पुरोचनः । वञ्चितोऽयं नृशंसात्मा कालं मन्ये पलायने ॥३॥
आयुधागारमादीप्य दग्ध्वा चैव पुरोचनम् । षट्प्राणिनो निधायेह द्रवामोऽनभिलक्षिताः ॥४॥
अथ दानापदेशेन कुन्ती ब्राह्मणभोजनम् । चक्रे निशि महाराज आजग्मुस्तत्र योषितः ॥५॥
ता विहृत्य यथा कामं भुक्त्वा पीत्वा च भारत । जग्मुर्निशि गृहानेव समनुज्ञाप्य माधवीम् ॥६॥
निषादी पञ्च पुत्रा तु तस्मिन्भोज्ये यदृच्छया । अन्नार्थिनी समभ्यागात्सपुत्रा कालचोदिता ॥७॥
सा पीत्वा मदिरां मत्ता सपुत्रा मदविह्वला । सहसर्वैः सुतैः राजंस्तस्मिन्नेव निवेशने ॥८॥
सुष्वाप विगतज्ञाना मृतकल्पा नराधिप । अथ प्रवाते तुमुले निशि सुप्ते जने तदा ॥९॥
तदुपादीपयद्भीमः शेते यत्र पुरोचनः । ततो जतुगृहद्वारं दीपयामास पाण्डवः ॥१०॥
समन्ततो ददौ पश्चादग्निं तत्र निवेशने । ज्ञात्वा तु तद्गृहं सर्वमादीप्तं पाण्डुनन्दनाः ॥११॥
सुरङ्गां विविशुस्तूर्णं मात्रा सार्धं मरिन्दमाः । ततः प्रतापः सुमहाञ्छब्दश्चैव विभावसोः ॥१२॥
प्रादुरासीत्तदा तेन बुबुधे स जनव्रजः । तदवेक्ष्य गृहं दीप्तमाहुः पौराः कृशाननाः॥ ॥१३॥

बहुत खुश हुआ, उसने समझा कि इन लोगों का विश्वास हम पर हो गया है, मेरे अभिप्राय का पता इनको नहीं है ॥१॥ इस प्रकार पुरोचन को प्रसन्न देख कर धर्मज्ञ युधिष्ठिर—भीमसेन, अर्जुन तथा नकुल सहदेव से इस प्रकार बोले ॥२॥ यह पापी पुरोचन समझता है कि हम लोग इस पर विश्वास करने लगे हैं, इस की ओर से हमें कोई भी शंका नहीं है। इस प्रकार यह खुद धोखे में है। हम लोगों ने इसे ठग लिया है। हम लोगों के भागने का अब यही अवसर है ॥३॥ अस्त्र रूपी इस घर में आग लगा कर पुरोचन को इसी में जलाकर तथा अन्य छः प्राणियों को इसी घर में छोड़ कर हम लोग यहां से छिप कर भाग चलें ॥४॥

उस दिन दान देने के बहाने से कुन्ती ने रात को ब्राह्मण भोजन कराया। अतएव वहां नगर की अनेक स्त्रियां आयीं ॥५॥ वे वहां आनन्द पूर्वक रहीं, इच्छा पूर्वक भोजन किया और रात को कुन्ती से आज्ञा ले कर वे अपने अपने घर गयीं ॥६॥ उस भोज में एक निषादी अपने पांच पुत्रों के साथ अकस्मात् आगयी थी। कालप्रेरित होकर अन्न के लिए वह अपने पुत्रों के साथ आयी थी ॥७॥ वह शराब पीकर मतवाली हो गयी, और मद से व्याकुल हो कर पांचों पुत्रों के साथ वह उसी घर में सो गयी। उसे कुछ होश न था। वह मरी हुई के समान वहां पड़ी रही। जब रात हो गयी, सब लोग सो गये जोरों की हवा चलने लगी ॥८-९॥ उस समय भीमसेन ने उस घर में वहाँ आग लगा दी. जहाँ पुरोचन सो रहा था, इसके पश्चात् पाण्डवों ने लाक्षा-गृह के द्वार पर आग लगायी ॥१०॥ इसके पश्चात् उन लोगों ने चारों ओर से उस घर में आग लगा दी और वे सब पाण्डुपुत्र माता के साथ सुरंग में घुस गये। इस समय तक आग का प्रकाश फैल गया। आग का शब्द होने लगा। प्रकाश देख कर और शब्द सुनकर नगर वासियों को आग लगने का पता लगा। लाक्षागृह का जलना देख कर पुरवासियों का मुंह सूख गया। वे आपस में इस प्रकार बातें करने लगे ॥११-१३॥

पौरा ऊचुः—

दुर्योधनप्रयुक्तेन पापेनाकृतबुद्धिना । गृहमात्मविनाशाय कारितं दाहितं च तत् ॥१४॥
अहो धिग्धृतराष्ट्रस्य बुद्धिर्नातिसमञ्जसा । यः शुचीन्पांडुदायादान्दाहयामास शत्रुवत् ॥१५॥
दिष्ट्या त्विदानीं पापात्मा दग्धोऽयमति दुर्मतिः । अनागसः सुविश्वस्तान्यो ददाह नरोत्तमान् ।१६॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं ते विलपन्ति स्म वारणावतका जनाः । परिवार्य गृहं तच्च तस्थू रात्रौ समन्ततः ॥१७॥
पाण्डवाश्चापि ते सर्वे सह मात्रा सुदुःखिताः । बिलेन तेन निर्गत्य जग्मु द्रुतमलक्षिताः ॥१८॥
तेन निद्रोपरोधेन साध्वसेन च पाण्डवाः । न शेकुः सहसा गन्तुं सहमात्रा परन्तपाः ॥१९॥
भीमसेनस्तु राजेन्द्र भीमवेगपराक्रमः । जगाम भ्रातॄनादाय सर्वान्मातरमेव च ॥२०॥
स्कन्धमारोप्य जननीं यमावङ्केन वीर्यवान् । पार्थौ गृहीत्वा पाणिभ्यां भ्रातरौ सुमहाबलः ॥२१॥
उरसा पादपानभञ्जन्महीं पद्भ्यां विदारयन् । स जगामाशु तेजस्वी वातरंहा वृकोदरः ॥२२॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि जतुगृहदाहे
अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

पुरवासी बोले—दुर्योधन के कहने से पापी और मूर्ख पुरोचन ने यह घर अपने नाश के लिए बनाया था, वह इसमें पाण्डवों को जला कर अपना नाश करना चाहता था अतएव उसने इस घर में आग लगा दी ॥१४॥ ओह, धृतराष्ट्र की बुद्धि में विवेक नहीं है। उसकी बुद्धि को धिक्कार है। जिस बुद्धि के कारण धृतराष्ट्र ने पाण्डु के शुद्ध चरित्र पुत्रों को शत्रु के समान जला दिया ॥१५॥ पर प्रसन्नता की बात है कि वह दुरात्मा मूर्ख पुरोचन भी इसी में जल मरा है, जिसने निरपराध और विश्वासी पाण्डवों को जलाया है ॥१६॥

वैशम्पायन बोले—वारणावत निवासी इस प्रकार विलाप करने लगे और रात भर उस घर को घेर कर वे लोग बैठे रहे ॥१७॥ अत्यन्त दुःखी पाण्डव भी माता के साथ उस बिल में से होकर छिपे छिपे निकल कर भाग गये ॥१८॥ रात को नींद आ रही थी इसके अतिरिक्त वे घबड़ा भी गये थे, अतएव माता के साथ वे तेज नहीं चल सकते थे॥१९॥ राजन् जनमेजय, बड़े पराक्रमी और बड़े तेज चलने वाले भीमसेन माता और भाइयों को लेकर वहां से शीघ्रता पूर्वक चले ॥२०॥ महाबली भीमसेन ने माता को कन्धे पर रखा, नकुल और सहदेव को दोनों बगल, तथा युधिष्ठिर और अर्जुन का उन्होंने हाथ पकड़ा, इस प्रकार वे चले ॥२१॥ सामने जो पेड़ मिलते थे उनको छाती के धक्के से तोड़ देते थे और पैरों के आघात से मानों पृथिवी को तोड़ रहे हों। तेजस्वी और वायु के समान वेगवाले भीमसेन वहां से शीघ्रता पूर्वक चले ॥२२॥

अष्टचत्वारिंशदधिक शततम अध्याय।

वैशम्पायन उवाच—

एतस्मिन्नेव काले तु यथासम्प्रत्ययं कविः। विदुरः प्रेषयामास तद्वनं पुरुषं शुचिम् ॥१॥
स गत्वा तु यथोद्देशं पाण्डवान्ददृशे वने। जनन्या सह कौरव्य मापयानान्नदीजलम् ॥२॥
विदितं तन्महाबुद्धेर्विदुरस्य महात्मनः। ततस्तस्यापि चारेण चेष्टितं पापचेतसः ॥३॥
ततः प्रवासितो विद्वन्विदुरेण नरस्तदा। पार्थानां दर्शयामास मनोमारुतगामिनीम् ॥४॥
सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम्। शिवे भागीरथीतीरे नरैर्विश्रम्भिभिः कृताम् ॥५॥
ततः पुनरथोवाच ज्ञापकं पूर्वचोदितम्। युधिष्ठिर निबोधेदं संज्ञार्थं वचनं कवेः ॥६॥
कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः। न हन्तीत्येवमात्मानं यो रक्षति स जीवति ॥७॥
तेन मां प्रेषितं विद्धि विश्वस्तं संज्ञायाऽनया। भूयश्चैवाह मां क्षत्ता विदुरः सर्वतोऽर्थवित् ॥८॥
कर्णं दुर्योधनं चैव भ्रातृभिः सहितं रणे। शकुनिं चैव कौन्तेय विजेताऽसि न संशयः ॥९॥
इयं वारिपथे युक्ता नौरप्सु सुखगामिनी। मोचयिष्यति वः सर्वानस्माद्देशान्न संशयः ॥१०॥
अथ तान्व्यथितान्दृष्ट्वा सह मात्रा नरोत्तमान्। नावमारोप्य गङ्गायां प्रस्थितानब्रवीत्पुनः ॥११॥

विदुर की भेजी नौका से गंगा पार करना।

वैशम्पायन बोले—इसी समय विदुर ने एक शुद्धाचारी मनुष्य को उस बन में भेजा था, वह मनुष्य ऐसा था जिस पर पाण्डव भी विश्वास कर सकें। वह मनुष्य नाव चलाने वाला था ॥१॥ वह मनुष्य नियत स्थान पर पहले ही से आया था, उसने माता के साथ पाण्डवों को वन में देखा, उस समय पाण्डव नदी का जल माप रहे थे ॥२॥ पापी दुर्योधन जो करना चाहता था उसकी खबर गुप्त दूतों के द्वारा बुद्धिमान् महात्मा विदुर को पहले ही से लग गयी थी, अतएव विदुर ने उस प्रान्त से जानकारी रखने वाले एक मनुष्य को वहाँ भेजा था। उस मनुष्य ने पाण्डवों को एक नौका दिखायी, जो मन तथा वायु के समान तेज चलने वाली थी ॥३,४॥ उस नाव में यन्त्र लगे हुए थे, उस पर पताका फहरा रही थी और वह वायु के झोंके को सहने वाली थी। गङ्गा के मङ्गलमय तीर पर विश्वासी मनुष्यों ने वह नाव लाकर रखी थी ॥५॥ वह मनुष्य पुनः बोला, मुझे विदुर ने ही भेजा है इस बात के विश्वास के लिए आप विदुर की वह बात सुनें, जो उन्होंने चलने के समय आपसे कही है ॥६॥ जब आप हस्तिनापुर से प्रस्थान कर रहे थे, तब विदुर ने कहा था कि घास फूस जलाने वाली और शीत मिटाने वाली आग यदि बन में लग जाय तो वह बिल में रहने वालों को नहीं जला सकती, इसी नीति के अनुसार जो मनुष्य अपनी रक्षा करता है वह जीवित रहता है ॥७॥ उन्हीं विदुर ने मुझे यहाँ भेजा है, मैं उनका विश्वासी हूँ। जो सङ्केत मैंने बतलाया है, इससे आप यह बात जानें। सब विषयों को जानने वाले विदुर ने आप से कहने के लिए पुनः यह कहा है ॥८॥ हे कुन्ती पुत्र, कर्ण, भाइयों के साथ दुर्योधन और शकुनि को युद्ध में तुम अवश्य जीतोगे ॥९॥ यह जल मार्ग में चलने वाली नौका इस स्थान से आप लोगों का उद्धार करेगी। यह आप लोगों को नदी के पार उतार देगी, यह जल में सुख पूर्वक चलती है ॥१०॥ माता के साथ नरश्रेष्ठ पाण्डवों को नाव पर बैठा कर वह मनुष्य पुनः बोला। वे उस समय बड़े दुखी थे और नाव पर बैठ कर गङ्गा पार

विदुरो मूर्ध्न्युपाघ्राय परिष्वज्य वचो मुहुः। अरिष्टं गच्छताव्यग्राः पन्थानमिति चाब्रवीत् ॥१२॥
इत्युक्त्वा स तु तान्वीरान्पुमान्विदुरचोदितः। तारयामास राजेन्द्र गङ्गां नावा नरर्षभान् ॥१३॥
तारयित्वा ततो गङ्गां पारं प्राप्तांश्च सर्वशः। जयाशिषः प्रयुज्याथ यथागतमगाद्धि सः ॥१४॥
पाण्डवाश्च महात्मानः प्रतिसन्दिश्य वै कवेः। गङ्गामुत्तीर्य वेगेन जग्मुर्गूढमलक्षिताः ॥१५॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि गङ्गोत्तरणे
ऊनपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४९॥

वैशम्पायन उवाच—
अथ रात्र्यां व्यतीतायामशेषो नागरो जनः। तत्राजगाम त्वरितो दिदृक्षुः पाण्डुनन्दनान् ॥१॥
निर्वापयन्तो ज्वलनं ते जना ददृशुस्ततः। जातुषं तद्गृहं दग्धममात्यं च पुरोचनम् ॥२॥
नूनं दुर्योधनेनेदं विहितं पापकर्मणा। पाण्डवानां विनाशायेत्येवं ते चुक्रुशुर्जनाः ॥३॥
विदिते धृतराष्ट्रस्य धार्तराष्ट्रो न संशयः। दग्धवान्पाण्डुदायादान्न ह्येनं प्रतिषिद्धवान् ॥४॥
नूनं शान्तनवोऽपीह न धर्ममनुवर्तते। द्रोणश्च विदुरश्चैव कृपश्चान्ये च कौरवाः ॥५॥

जा रहे थे ॥११॥ आप लोगों का मस्तक सुँघ कर और आलिङ्गन करके बार बार कहा है कि तुम लोग निर्विघ्न और निर्भय होकर यात्रा करो ॥१२॥ राजेन्द्र जनमेजय, विदुर के भेजे उस मनुष्य ने ऐसा कहकर नरश्रेष्ठ वीर उन पाण्डवों को नाव के द्वार गंगा पार कर दिया ॥१३॥ उस मनुष्य ने उन लोगों को गङ्गा पार कर दिया। जब वे उस पार पहुंच गये तब उन्हें आशीर्वाद देकर तथा जय जयकार करके वह जहां से आया था वहाँ चला गया ॥१४॥ महात्मा पाण्डवों ने भी विदुर को उनके सन्देश का उत्तर दिया। गङ्गा पार करके और छिपकर वे बड़े वेग से वहाँ से चले ॥१५॥

ऊन पंचाशदधिक शततम अध्याय।

नगर वासियों का धृतराष्ट्र के पास लाक्षागृह के जलने का संवाद भेजना; कौरवों के द्वारा पाण्डवों का श्राद्ध करना।

वैशम्पायन बोले—अनन्तर रात बीतने पर घर के समस्त स्त्री पुरुष वहां लाक्षागृह के पास पाण्डवों को देखने के लिए आये ॥१॥ उस घर की आग बुझाते हुए उन मनुष्यों ने देखा कि वह लाक्षागृह जल गया है और उसके साथ ही दुर्योधन का सचिव पुरोचन भी जल गया है ॥२॥ यह निश्चय है कि पापी दुर्योधन ने ही पाण्डवों के विनाश के लिए यह सब करवाया था। ऐसा कह कहकर वे सब विलाप करने लगे ॥३॥ धृतराष्ट्र को भी इस बात की खबर थी धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने पाण्डवों को जला दिया और धृतराष्ट्र ने उसे रोका नहीं ॥४॥ यह भी निश्चय है कि शान्तनुपुत्र भीष्म भी इस सम्बन्ध में अपने धर्म का पालन

ते वयं धृतराष्ट्रस्य प्रेषयामो दुरात्मनः । संवृत्तास्ते परः कामः पाण्डवान्दग्धवानसि ॥६॥
ततो व्यपोहमानास्ते पाण्डवार्थे हुताशनम् । निषादीं ददृशुर्दग्धां पञ्चपुत्रामनागसम् ॥७॥
खनकेन तु तेनैव वेश्म शोधयता बिलम् । पांसुभिः पिहितं तच्च पुरुषैस्तैर्न लक्षितम् ॥८॥
ततस्ते ज्ञापयामासुर्धृतराष्ट्रस्य नागराः । पाण्डवानग्निना दग्धानमात्यं च पुरोचनम् ॥९॥
श्रुत्वा तु धृतराष्ट्रस्तद्राजा सुमहदप्रियम् । विनाशं पाण्डुपत्राणां विललाप सुदुःखितः ॥१०॥
अद्य पाण्डुर्मृतो राजा मम भ्राता महायशाः । तेषु वीरेषु दग्धेषु मात्रा सह विशेषतः ॥११॥
गच्छन्तु पुरुषाः शीघ्रं नगरं वारणावतम् । सत्कारयन्तु तान्वीरान्कुन्तिराजसुतां च ताम् ॥१२॥
कारयंतु च कुल्यानि शुभानि च बृहंति च । ये च तत्र मृतास्तेषां सुहृदो यांतु तानपि ॥१३॥
एवं गते मया शक्यं यद्यत्कारयितुं हितम् । पाण्डवानां च कुन्त्याश्च तत्सर्वक्रियतां धनैः ॥१४॥
एवमुक्त्वा ततश्चक्रे ज्ञातिभिः परिवारितः । उदकं पाण्डुपुत्राणां धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥१५॥
रुरुदुः सहिताः सर्वे भृशं शोकपरायणाः । हा युधिष्ठिर कौरव्य हा भीम इति चापरे ॥१६॥
हा फाल्गुनेति चाप्यन्ये हा यमाविति चापरे । कुन्तीमार्ताश्च शोचन्त उदकं चक्रिरे जनाः ॥१७॥
अन्ये पौरजनाश्चैवमन्वशोचन्त पाण्डवान् । विदुरस्त्वल्पशश्चक्रे शोकं वेद परं हि सः ॥१८॥

नहीं करते । द्रोण, विदुर, कृप तथा अन्य कौरव भी अपने धर्म का पालन नहीं करते ॥५॥ अब हम लोग दुरात्मा धृतराष्ट्र के पास दूत भेजेंगे कि तुम्हारा मनोरथ पूरा हुआ तुमने पाण्डवों को जलवा दिया ॥६॥ अनन्तर, पाण्डवों का पता लगाने के लिए आग कुरेदते हुए उन नगर वासियों ने निरपराधिन निषादी को पाँच पुत्रों के साथ जली हुई देखा ॥७॥ उस समय उस सुरंग खोदने वाले ने घर साफ करने के बहाने से उस सुरंग का मुँह ढँक दिया, उसमें मिट्टी डाल कर उसने बराबर कर दिया, जिससे दूसरे मनुष्यों को पता न लगा ॥८॥ अनन्तर, वारणावत वासियों ने धृतराष्ट्र के पास खबर भेजी कि पाण्डव और पुरोचन आग में जल मरे ॥९॥

पाण्डुपुत्रों के मरने का यह बहुत ही अप्रिय संवाद सुनकर राजा धृतराष्ट्र बहुत ही दुःखी हुए और विलाप करने लगे ॥१०॥ यशस्वी मेरे भाई पाण्डु की मृत्यु आज हुई है, जब कि आज माता के साथ पाण्डव जल मरे ॥११॥ शीघ्र ही वारणावत नगर में मनुष्य भेजे जांय, वे वहाँ जाकर पाण्डवों का तथा कुन्तिराज की कन्या का अन्तिम सत्कार करें ॥१२॥ कुलानुसार जितने शुभ कर्म होते हैं वे बृहत् परिमाण में किये जांय । वहां और लोग मरें हों, उनके परिवार वाले भी जांय ॥१३॥ अब तो ऐसी घटना हो गयी, पाण्डव माता के साथ जल मरे, ऐसी दशा में कुन्ती और पाण्डवों की सद्गति के लिए जो कुछ काम धन के द्वारा किया जा सकता है वह सब किया जाय ॥१४॥ ऐसी आज्ञा दे कर अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र ने अपने बान्धवों के साथ पाण्डवों को जलाञ्जलि दी ॥१५॥ शोक पीडित होकर सभी वहां रोने लगे । कोई कहते थे, हा युधिष्ठिर, दूसरे कहते थे हा भीमसेन, कोई कहता था हा अर्जुन, कोई कहता था हा नकुल । उन सब दुखी मनुष्यों ने जल दिया ॥१६-१७॥ पुरवासी भी पाण्डवों के लिए बहुत शोक करते थे । केवल विदुर ही सबसे थोड़ा शोक करते थे, क्योंकि उन्हें यथार्थ बात का पता था ॥१८॥

पाण्डवाश्चापि निर्गत्य नगराद्वारणावतात् । नदीं गङ्गामनुप्राप्ताः मातृषष्ठा महाबला ॥१९॥
दाशानां भुजवेगेन नद्याः स्रोतोजवेन च । वायुना चानुकूलेन तूर्णं पारमवाप्नुवन् ॥२०॥
ततो नावं परित्यज्य प्रययुर्दक्षिणां दिशम् । विज्ञाय निशि पन्थानं नक्षत्रगणसूचितम् ॥२१॥
यतमाना वनं राजन्गहनं प्रतिपेदिरे । ततः श्रांताः पिपासार्त्ता निद्रान्धाः पाण्डुनन्दनाः ॥२२॥
पुनरूचुर्महावीर्यं भीमसेनमिदं वचः । इतः कष्टतरं किंनु यद्वयं गहने वने ।
दिशश्च न विजानीमो गन्तुं चैव न शक्नुमः ॥२३॥
तं च पापं न जानीमो यदि दग्धः पुरोचनः । कथन्तु विप्रमुच्येम भयादस्मादलक्षिताः ॥२४॥
पुनरस्मानुपादाय तथैव व्रज भारत । त्वं हि नो बलवानेको यथा सततगस्तथा ॥२५॥
इत्युक्तो धर्मराजेन भीमसेनो महाबलः । आदाय कुन्तीं भ्रातॄंश्च जगामाशु महाबलः ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि पाण्डववनप्रवेशे
पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५०॥

वैशम्पाय उवाच—

तेन विक्रममाणेन ऊरुवेगसमीरितम् । वनं सवृक्षविटपं व्याघूर्णितमिवाभवत् ॥१॥

वारणावत नगर से निकल कर पाण्डव भी स्वयं पांच और छठीं माता के साथ गङ्गातीर पर पहुंचे ॥१९॥ नदी की धार प्रखर होने के कारण, मल्लाहों के तेज चलाने के कारण और वायु के अनुकूल होने के कारण पाण्डव शीघ्र ही गङ्गा पार पहुंच गये ॥२०॥ अनन्तर वे नाव छोड़ कर वहां से दक्षिण दिशा की ओर चले। नक्षत्रों के द्वारा मार्ग का पता लगा कर वे आगे बढ़ते गये ॥२१॥ बड़े प्रयत्न से चलते चलते वे एक बड़े गहन बन में पहुंचे। वहां पहुंचते पहुंचते पाण्डव थक गये; उन्हें प्यास लग आयी और नींद से अन्धे हो गये ॥२२॥ उन लोगों ने महाबली भीमसेन से इस प्रकार कहा—इस से अधिक और कष्ट क्या होगा, हम लोग आज इस घोर बन में आ पहुंचे हैं, रास्ते का पता ही नहीं लगता और आगे हम लोग चल भी नहीं सकते ॥२३॥ वह पापी पुरोचन जला कि नहीं इसका पता हम लोगों को नहीं है। इस सङ्कट से हम लोगों का उद्धार कैसे होगा, कैसे हम लोग छिपे रह सकेंगे ॥२४॥ अब भीम तुम्हीं हमलोगों में बलवान् हो और शीघ्र चलने वाले हो, अतएव पहले के समान हमलोगों को लेकर तुम फिर चलो ॥२५॥ महाबली भीमसेन से युधिष्ठिर ने इस प्रकार कहा। तब वे महाबली भीम माता तथा भाइयों को ले कर वहां से आगे चले ॥२६॥ पञ्चाशदधिक शततम अध्याय।

—o—

वट वृक्ष के नीचे माता और भाइयों को रख कर भीमसेन का पानी लाने जाना।

वैशम्पायन बोले—भीमसेन वहां से वेग से चले। उनके चलने के वेग से वृक्ष और शाखाओं के साथ वह वन मानों घूमने लगा ॥१॥ भीम की जंघा के वेग से वहाँ वायु जोर से

तच्छ्रुत्वा भीमसेनस्य मातृस्नेहात्प्रजल्पितम् । कारुण्येन मनस्तप्तं गमनायोपचक्रमे ॥१४॥
ततो भीमो वनं घोरं प्रविश्य विजनं महत् । न्यग्रोधं विपुलच्छायं रमणीयं ददर्शह ॥१५॥
तत्र निक्षिप्य तान्सर्वानुवाच भरतर्षभः । पानीयं मृगयामीह विश्रमध्वमिति प्रभो ॥१६॥
एते रुवंति मधुरं सारसा जलचारिणः । ध्रुवमत्र जलस्थानं महच्चेति मतिर्मम ॥१७॥
अनुज्ञातः स गच्छेति भ्रात्रा ज्येष्ठेन भारत । जगाम तत्र यत्र स्म सारसा जलचारिणः ॥१८॥
स तत्र पीत्वा पानीयं स्नात्वा च भरतर्षभ । तेषामर्थे च जग्राह भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलः ॥
उत्तरीयेण पानीयमानयामास भारत ॥१९॥
गव्यूतिमात्रादागम्य त्वरितो मातरं प्रति । शोकदुःखपरीतात्मा निशश्वासोरगो यथा ॥२०॥
स सुप्तां मातरं दृष्ट्वा भ्रातृंश्च वसुधातले । भृशं शोकपरीतात्मा विललाप वृकोदरः ॥२१॥
अतः कष्टतरं किंनु द्रष्टव्यं हि भविष्यति । यत्पश्यामि महीसुप्तान् भ्रातॄनद्य सुमंदभाक् ॥२२॥
शयनेषु पराद्धर्येषु ये पुरा वारणावते । नाधिजग्मुस्तदा निद्रां तेऽद्य सुप्ता महीतले ॥२३॥
स्वसारं वसुदेवस्य शत्रुसंघावमर्दिनः । कुन्तिराजसुतां कुन्तीं सर्वलक्षणपूजिताम् ॥२४॥
स्नुषां विचित्रवीर्यस्य भार्यां पांडोर्महात्मनः । तथैव चास्मज्जननीं पुंडरीकोदरप्रभाम् ॥२५॥

हृदय मातृ स्नेह से दयावश दुखित हो गया और वे वहां से चलने के लिए तयार हो गये ॥१४॥ भीमसेन वहां से आगे अत्यन्त भयंकर बन में गये, जो नितान्त निर्जन था। वहां उन्होंने एक सुन्दर वट का वृक्ष देखा, जिसकी छाया दूर तक फैली थी और वहाँ का स्थान अत्यन्त रमणीय था ॥१५॥ वहाँ भाइयों और माताको ठहरा कर भरतश्रेष्ठ भीमसेन उनसे बोले, मैं पानी ढूँढ़ने जा रहा हूँ तब तक आप लोग यहाँ विश्राम करें ॥१६॥ इधर जलचारी सारसों का शब्द सुनायी पड़ता है। अतएव मैं समझता हूँ कि इधर अवश्य ही कोई बड़ा जलाशय होगा ॥१७॥ बड़े भाई युधिष्ठिर ने उन्हें जाने की आज्ञा दी। वे जिधर से जलचर सारस का शब्द आता था उधर ही चले ॥१८॥ हे जनमेजय, भीमसेन ने वहाँ स्नान किया, जलपान किया, और मातृ प्रेमी भीमसेन अपने भाइयों के लिए भी अपनी चादर में जल ले आये ॥१९॥ वे शीघ्र ही दौड़कर दो कोश से माता के पास आये। उनका मन उस समय बहुत ही दुःखी और शोक सन्तप्त था। वे सर्प के समान लम्बी सांस ले रहे थे ॥२०॥ माता और भाइयों को पृथिवी पर सोते देखकर भीमसेन बहुत ही शोक पीडित हुए और वे विलाप करने लगे ॥२१॥ इससे भी बढ़कर क्या कोई कष्टमय दृश्य हो सकता है, जो मैं अभागी आज अपने भाइयों को पृथिवी पर सोते देख रहा हूँ। ॥२२॥ वारणावत नगर में बहुमूल्य बिछौने पर जिन्हें अच्छी नींद नहीं आती थी वे आज जमीन पर सो रहे हैं ॥२३॥ शत्रु समूह को मर्दन करने वाले वसुदेव की जो बहन हैं, जो कुन्तिराज की कन्या है, जिनमें समस्त सुलक्षण वर्तमान हैं ॥२४॥ महाराज विचित्रवीर्य की जो पुत्र बधू है, महात्मा पाण्डु की स्त्री हैं, जो हम लोगों की माता हैं, और कमल गर्भ के समान सुन्दरी और सुकुमार हैं ॥२५॥ सुकुमारी और बहुमूल्य पलंग पर सोने वाली ये कुन्ती आज

सुकुमारतरामेनां महार्हशयनोचिताम् । शयानां पश्यताऽद्येह पृथिव्यामतथोचिताम् ॥२६॥
धर्मादिंद्राच्च वाताच्च सुषुवे या सुतानिमान् । सेयं भूमौ परिश्रांता शेते प्रासादशायिनी ॥२७॥
किं नु दुःखतरं शक्यं मया द्रष्टुमतः परम् । योऽहमद्य नरव्याघ्रान् सुप्तान्पश्यामि भूतले ॥२८॥
त्रिषु लोकेषु यो राज्यं धर्मं नित्योऽर्हते नृपः । सोऽयं भूमौ परिश्रांतः शेते प्राकृतवत्कथम् ॥२९॥
अयं नीलांबुदश्यामो नरेष्वप्रतिमोऽर्जुनः । शेते प्राकृतवद्भूमौ ततो दुःखतरं नु किम् ॥३०॥
अश्विनाविव देवानां याविमौ रूपसंपदा । तौ प्राकृतवदद्येमौ प्रसुप्तौ धरणीतले ॥३१॥
ज्ञातयो यस्य नैव स्युर्विषमाः कुलपांसनाः । स जीवते सुखं लोके ग्रामद्रुम इवैकजः ॥३२॥
एको वृक्षो हि यो ग्रामे भवेत्पर्णफलान्वितः । चैत्यो भवति निर्ज्ञातिरर्चनीयः सुपूजितः ॥३३॥
येषां च बहवः शूरा ज्ञातयो धर्ममाश्रिताः । ते जीवंति सुखं लोके भवंति च निरामयाः ॥३४॥
बलवन्तः समृद्धार्था मित्रबान्धवनन्दनाः । जीवंत्यन्योन्यमाश्रित्य द्रुमाः काननजा इव ॥३५॥
वयं तु धृतराष्ट्रेण स पुत्रेण दुरात्मना । विवासिता न दग्धाश्च कथंचिद्दैवसंश्रयात ॥३६॥
तस्मान्मुक्ता वयं दाहादिमं वृक्षमुपाश्रिताः । कां दिशं प्रतिपत्स्यामः प्राप्ताः क्लेशमनुत्तमम् ॥३७॥

पृथिवी पर सो रही हैं । क्या ये पृथिवी पर सोने योग्य हैं ॥२६॥ धर्मराज, इन्द्र, और वायु से जिन्होंने हम लोगो को उत्पन्न किया है । जो अटारी पर सोने वाली हैं, वे ही आज थक कर पृथिवी पर सो रही हैं ॥२७॥ क्या इससे भी अधिक कोई दुःख की बात मैं देख सकता हूँ, जो आज मैं इन पुरुष सिंहों को पृथिवी पर सोते देखता हूँ ॥२८॥ नित्य धर्मात्मा जो युधिष्ठिर तीनों लोकों के राजा होने की योग्यता रखते हैं, वे ही आज साधारण मनुष्यों के समान थक कर पृथिवी पर सो रहे हैं ॥२९॥ ये नील कमल के समान सुन्दर अर्जुन हैं, इनके समान कोई दूसरा मनुष्य नहीं है । ये आज साधारण मनुष्य के समान पृथिवी पर सो रहे हैं इससे बढ़ कर दुःख की बात और क्या हो सकती है ॥३०॥ जो नकुल और सहदेव सबसे अधिक सुन्दर हैं, जैसे अश्विनी कुमार देवताओं में सुन्दर हैं । वे आज पृथिवी पर सो रहे हैं ॥३१॥

जिस मनुष्य के कुटिल बान्धव नहीं होते, कुलकलङ्क नहीं होते; वह मनुष्य सुखपूर्वक जीता है । जिस प्रकार गांव का वह वृक्ष जो अकेला ही उत्पन्न होता है । बान्धव हीन जीवन ही अच्छा है ॥३२॥ गाँव में जो एक वृक्ष होता है, जिसके पत्ते हों और फल हों, वह बान्धव हीन अपने समान दूसरे वृक्ष के न होने से पवित्र समझा जाता है और इसी पवित्रता के कारण उसकी पूजा होती है ॥३३॥ जिनके अनेक बान्धव होते हैं वे वीर धर्मात्मा होते हैं, वे भी इस लोक में सुखपूर्वक रहते हैं और नीरोग रहते हैं ॥३४॥ जिनके बान्धव बली धनी और मित्रों तथा बान्धवों को सुख देने वाले होते हैं, वे भी जङ्गली वृक्षों के समान परस्पर के आश्रय से सुखपूर्वक जीते हैं ॥३५॥ एक हम लोगों का बान्धव दुरात्मा धृतराष्ट्र है और उसके पुत्र हैं । उसने हमलोगों को हस्तिनापुर से निकाल दिया । किसी प्रकार भाग्य वश हमलोग जलने से बच गये यही कुशल हुई ॥३६॥ लाक्षागृह से बच कर हमलोग यहाँ इस वृक्ष के नीचे ठहरे हुए हैं । यहाँ से आगे

सकामो भव दुर्बुद्धे धार्त्तराष्ट्राल्पदर्शन । नूनं देवाः प्रसन्नास्ते नानुज्ञां मे युधिष्ठिरः ॥३८॥
प्रयच्छति वधे तुभ्यं तेन जीवसि दुर्मते । नन्वद्य ससुतामात्यं सकर्णानुजसौबलम् ॥३९॥
गत्वा क्रोधसमाविष्टः प्रेषयिष्ये यमक्षयम् । किं नु शक्यं मया कर्त्तुं यत्तो न क्रुध्यते नृपः ॥४०॥
धर्मात्मा पांडवश्रेष्ठः पापाचार युधिष्ठिरः । एवमुक्त्वा महाबाहुः क्रोधसंदीप्तमानसः ॥४१॥
करं करेण निष्पिष्य निःश्वसन् दीनमानसः । पुनर्दीनमना भूत्वा शांतार्चिरिव पावकः ॥४२॥
भ्रातॄन्महीतले सुप्तानवैक्षत वृकोदरः । विश्वस्तानिव संविष्टान् पृथग्जनसमानिव ॥४३॥
नातिदूरेण नगरं वनादस्माद्धि लक्षये । जागर्त्तव्ये स्वपन्तीमे हंत जागर्म्यहं स्वयम् ॥४४॥
पाश्यंतीमे जलं पश्चात्प्रतिबुद्धा जितक्लमाः । इति भीमो व्यवस्यैव जजागार स्वयं तदा ॥४५॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि भीमजलाहरणे एकपञ्चा-
शदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५१॥ समाप्तं जतुगृहपर्व ॥

हमलोग कहाँ जाँयगे इस का भी निश्चय नहीं है, कैसा भयंकर दुःख हमलोगों पर आ पड़ा है ॥३७॥ अदूरदर्शी धृतराष्ट्र पुत्र मूर्ख दुर्योधन, तू अपना मनोरथ पूरा कर ले । अवश्य ही तुझ पर देवता प्रसन्न हैं, अतएव युधिष्ठिर मुझे तेरे वध की आज्ञा नहीं देते ॥३८॥ वे तुम्हारे वध की आज्ञा नहीं देते, इसी से दुर्बुद्धि, तू आज तक जीवित है । नहीं तो आज ही पुत्रों, सचिवों, कर्ण भाइयों और शकुनि के साथ तुझे मैं क्रोध करके यमराज के घर भेज देता । पर मैं क्या कर सकता हूँ जब कि राजा युधिष्ठिर तुझ पर क्रोध ही नहीं करते । अरे पापी; बड़े पाण्डव धर्मात्मा युधिष्ठिर तेरा वध करने की आज्ञा ही नहीं देते । ऐसा कह कर महाबाहु भीम क्रोध से जल उठे । हाथ से हाथ मसलने लगे, लम्बी सांस लेने लगे । अनन्तर ग्लानि कारण वे दीन हो गये । बुझी आग के समान वे शान्त हो गये ॥३९-४२॥ अनन्तर भीमसेन पृथिवी पर सोए हुए भाइयों को देखने लगे, जो साधारण मनुष्यों के समान निश्चिन्त हो कर पृथिवी पर सो रहे थे ॥४३॥ इस बन से थोड़ी दूर पर नगर मालूम होता है, अतएव यहाँ जागते रहना चाहिए । पर ये लोग तो सो रहे हैं, अच्छा, ये लोग सोवें मैं ही जागता रहूँगा ॥४४॥ जब ये सो कर उठेंगे, जब इनकी थकावट दूर हो जायगी तब ये जल पीएँगे इस प्रकार निश्चय करके भीमसेन स्वयं जागने लगे ॥४५॥

एकपंचाशदधिक शततम अध्याय । जतु गृहपर्व समाप्त ।

हिडिम्बवधपर्व

वैशम्पायन उवाच—

तत्र तेषु शयानेषु हिडिम्बो नाम राक्षसः । अविदूरे वनात्तस्माच्छालवृक्षं समाश्रितः ॥१॥
क्रूरो मानुषमांसादो महावीर्यपराक्रमः । प्रावृड्जलधरश्यामः पिंगाक्षो दारुणाकृतिः ॥२॥
दंष्ट्राकरालवदनः पिशितेप्सुः क्षुधार्दितः । लंबस्फिग्लंबजठरो रक्तश्मश्रुशिरोरुहः ॥३॥
महावृक्षगलस्कंधः शंकुकर्णो विभीषणः । यदृच्छया तानपश्यत्पांडुपुत्रान्महारथान् ॥४॥
विरूपरूपः पिंगाक्षः करालो घोरदर्शनः । पिशितेप्सुः क्षुधार्त्तश्च तानपश्यद्यदृच्छया ॥५॥
ऊर्ध्वाङ्गुलिः स कण्डूयन् धुन्वन् रूक्षान् शिरोरुहान् । जृम्भमाणो महावक्त्रःपुनःपुनरवेक्ष्य च ॥६॥
हृष्टो मानुषमांसस्य महाकायो महाबलः । आघ्राय मानुषं गंधं भगिनीमिदमब्रवीत् ॥७॥
उपपन्नश्चिरस्याद्य भक्ष्योऽयं मम सुप्रियः । स्नेहास्रवान्प्रस्रवति जिह्वा पर्यैति मे सुखम् ॥८॥
अष्टौ दंष्ट्रा सुतीक्ष्णाग्राश्चिरस्यापातदुःसहाः । देहेषु मज्जयिष्यामि स्निग्धेषु पिशितेषु च ॥९॥
आक्रम्य मानुषं कण्ठमाच्छिद्य धमनीमपि । उष्णं नवं प्रपास्यामि फेनिलं रुधिरं बहु ॥१०॥

हिडिम्बा का पाण्डवों के पास जाना । भीमसेन हिडिम्बा की बातचीत ।

वैशम्पायन बोले—चारो पाण्डव और उनकी माता वहीं सो गयीं । उस बन से थोड़ी ही दूर पर एक साल के वृक्ष पर एक राक्षस रहता था, उसका नाम हिडिम्ब था ॥१॥ वह क्रूर मनुष्य मांस खानेवाला राक्षस बड़ा पराक्रमी और वीर था, बरसात के मेघ के समान काला था । उसकी आंखें भूरी थीं और देखने में वह बड़ा भयंकर था ॥२॥ बड़ी बड़ा दाढ़ के कारण उसका मुँह भयंकर दीखता था, वह मांस खाना चाहता था; क्योंकि भूखा था । उसके जंघा मूल और पेट बहुत बड़े थे । उसकी मूँछे और सिर के बाल लाल थे ॥३॥ उसका गला और कन्धे वृक्ष के समान विशाल थे । उसके कान कांटे के समान नुकीले थे । वह देखने में भयंकर था। उस राक्षस ने अकस्मात् महारथ पाण्डु पुत्रों को वहां देखा । उस कुरूप भूरी आंखवाले क्रूर, देखने में भयंकर मांस खाने की इच्छा रखनेवाले और भूखे राक्षस ने अकस्मात् उन लोगों को वहां देखा ॥५॥ वह राक्षस अंगुलियाँ उठाकर सिर खुजलाने लगा और सूखे बाल सुलझाने लगा । पाण्डवों को बार बार देखकर बड़े मुँहवाला वह राक्षस बार बार जंभाई लेने लगा ॥६॥ वह विशाल शरीरवाला महाबली राक्षस, मनुष्य मांस मिलने की आशा से बड़ा प्रसन्न हुआ । मनुष्यों की गन्ध पाकर वह अपनी बहन से बोला ॥७॥ मेरी जीभ से पानी टपकने लगा है और मनुष्य मांस मिलने की आशा से मेरी जीभ लपलपा रही है ॥८॥ मेरे इन आठों, दांतों का आगेवाला हिस्सा बड़ा तेज है, जिस पर ये चुभते हैं उसके लिए असहनीय हो जाते हैं । इन दांतों को आज मैं चिकने मांस में चुभाऊँगा ॥९॥ आज मैं इन मनुष्यों का गला मरोड़ दूँगा, इनकी नाड़ियां काट दूँगा और गरम गरम, फेनवाला बहुत सा ताजा खून पीऊँगा ॥१०॥ तुम जाओ और पता लगाओ कि यहाँ

गच्छ जानीहि के त्वेते शेरते वनमाश्रिताः । मानुषो बलवान् गन्धो घ्राणं तर्पयतीव मे ॥११॥
हत्वैतान्मानुषान्सर्वानानयस्व ममांतिकम् । अस्मद्विषयसुप्तेभ्यो नैतेभ्यो भयमस्ति ते ॥१२॥
एषामुत्कृत्य मांसानि मानुषाणां यथेष्टतः । भक्षयिष्याव सहितौ कुरु तूर्णं वचो मम ॥१३॥
भक्षयित्वा च मांसानि मानुषाणां प्रकामतः । नृत्याव सहितावावां दत्ततालावनेकशः ॥१४॥
एवमुक्त्वा हिडिम्बा तु हिडिम्बेन तदा वने । भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणेव राक्षसी ॥१५॥
जगाम तत्र यत्र स्म पाण्डवा भरतर्षभ । ददर्श तत्र सा गत्वा पाण्डवान्पृथया सह ।
शयानान् भीमसेनं च जाग्रतं त्वपराजितम् ॥१६॥
दृष्ट्वैव भीमसेनं सा शालपोतमिवोद्गतम् । राक्षसी कामयामास रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥१७॥
अयं श्यामो महाबाहुः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः । कंबुग्रीवः पुष्कराक्षो भर्त्ता युक्तो भवेन्मम ॥१८॥
नाहं भ्रातृवचो जातु कुर्यां क्रूरोपसंहितम् । पतिस्नेहोऽतिबलवान्न तथा भ्रातृसौहृदम् ॥१९॥
मुहूर्त्तमेव तृप्तिश्च भवेद्भ्रातुर्ममैव च । हतैरेतैरहत्वा तु मोदिष्ये शाश्वतीः समाः ॥२०॥
सा कामरूपिणी रूपं कृत्वा मानुषमुत्तमम् । उपतस्थे महाबाहुं भीमसेनं शनैः शनैः ॥२१॥

वन में सोनेवाले ये कौन हैं। मनुष्य की तीखी गन्ध मेरी नाकों को तृप्त कर रही है ॥११॥ इन मनुष्यों को मार कर तुम मेरे पास ले आओ। ये लोग मेरे राज्य में सो रहे हैं अतएव इनसे तुमको कोई भय नहीं है। इनसे डर की कोई बात नहीं है ॥१२॥ इन मनुष्यों का मांस नचोड़ नचोड़ कर हम दोनों साथही यहाँ खूब खांयगे, अतएव मैं जो कहता हूँ वह करो ॥१३॥ मनुष्यों का मांस भर पेट खाकर हम दोनों ताली दे देकर एक साथ ही अनेक तरह का नाच नाचेंगे ॥१४॥ हे भरतश्रेष्ठ जनमेजय, हिडिम्ब राक्षस ने अपनी बहन हिडिम्बा से इस प्रकार उस वन में कहा। भाई के बचन सुनकर वह राक्षसी शीघ्र ही वहाँ से चली, जहाँ वे पाण्डव सो रहे थे वहाँ आयी और वहाँ उसने पाण्डवों के साथ कुन्ती को देखा। और लोग सो रहे थे और अपराजेय भीमसेन जाग रहे थे ॥१५,१६॥ उस राक्षसी ने भीमसेन को देखा, जो सालवृक्ष के अङ्कुर के समान उगे थे अर्थात् उसके समान विशाल और सुन्दर थे। वह राक्षसी पृथिवी में सब से अधिक सुन्दर भीमसेन पर मोहित हो गयी ॥१७॥ उसने मन में सोचा, महाबाहु द्युतिमान् सिंह के समान कन्धेवाले, शंख के समान गलावाले और कमल के समान नेत्रवाले ये साँवले पुरुष ही हमारे पति होने के योग्य हैं ॥१८॥ अपने भाई की क्रूर हिंसावाली बातें मैं न मानूंगी। पति प्रेम बड़ा बलवान् होता है, वैसा भ्रातृप्रेम नहीं होता, अतएव मैं भाई की बातें न मानूंगी ॥१९॥ भाई के कहने से यदि मैं इन लोगों को मारूं तो इससे थोड़ी देर के लिए मेरी और मेरे भाई की तृप्ति होगी, थोड़ी देर के लिए हम लोगों की भूख बुझ जायगी, पर यदि इनको मैं न मारूं तो बहुत दिनों तक मैं इनके साथ आनन्द भोग करुंगी ॥२०॥ वह राक्षसी इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी, अतएव मानुषी का सुन्दर रूप धारण करके वह धीरे धीरे महाबाहु भीमसेन के पास गयी ॥२१॥ उसने दिव्य भूषणों से अपने को सजा लिया था,



हिडिम्बा का भीम के पास आना। (पृष्ठ ५२३)



व्यासदेव का पाण्डवों के पास आना। (पृष्ठ ५७७)

राक्षस्युवाच—

यत्ते प्रियं तत्करिष्ये सर्वानेतान्प्रबोधय । मोक्षयिष्यामि वः सर्वान् कामं राक्षसात्पुरुषादकात् ॥३३॥

भीमसेन उवाच—

सुखसुप्तान्वने भ्रातॄन्मातरं चैव राक्षसि । न भयाद्बोधयिष्यामि भ्रातुस्तव दुरात्मनः ॥३४॥

न हि मे राक्षसा भीरु सोढुं शक्ताः पराक्रमम् । न मनुष्या न गन्धर्वा न यक्षाश्चारुलोचने ॥३५॥

गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे यद्वाऽपीच्छसि तत्कुरु । तं वा प्रेषय तन्वङ्गि भ्रातरं पुरुषादकम् ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि हिडिम्बवधपर्वणि भीमहिडिम्बासंवादे
द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५२॥

वैशम्पायन उवाच—

तां विदित्वा चिरगतां हिडिम्बो राक्षसेश्वरः । अवतीर्य द्रुमात्तस्मादाजगामाशु पांडवान् ॥१॥

लोहिताक्षो महाबाहुरूर्ध्वकेशो महाननः । मेघसंघातवर्ष्मा च तीक्ष्णदंष्ट्रो भयानकः ॥२॥

तमापतंतं दृष्ट्वैव तथा विकृतदर्शनम् । हिडिम्बोवाच वित्रस्ता भीमसेनमिदं वचः ॥३॥

आपतत्येष दुष्टात्मा संक्रुद्धः पुरुषादकः । साऽहं त्वां भ्रातृभिःसार्द्धं यद्ब्रवीमि तथाकुरु ॥४॥

राक्षसी बोली—जिसे आप अच्छा समझेंगे वही मैं करूँगी, आप इन लोगों को जगा दें। मनुष्यभक्षी से मैं इन लोगों का उद्धार करूँगी ॥३३॥

भीमसेन बोले—राक्षसी, मेरे भाई और माता बन में सो रही हैं। तेरे दुष्ट भाई के भय से मैं इनको नहीं जगाऊँगा ॥३४॥ हे चारुलोचने भीरु, राक्षस, मनुष्य, गन्धर्व या यक्ष, मेरे पराक्रम को नहीं सह सकते। मैं युद्ध में इनको मार सकता हूँ ॥३५॥ तुम जाना चाहो जा सकती हो या रहना चाहो रह सकती हो। तुम जैसा चाहो वैसा करो। तुम चाहो तो मनुष्य खानेवाले अपने भाई को जाकर भेज दो ॥३६॥

द्विपंचाशदधिक शततम अध्याय

हिडिम्ब राक्षस का वहां आना। भीम और हिडिम्ब का युद्ध।

वैशम्पायन बोले—हिडिम्ब राक्षस ने देखा कि हिडिम्बा को यहाँ से गये बड़ी देर हुई अभी तक वह नहीं लौटी, तब वह पेड़ से उतर कर पाण्डवों के पास स्वयं आया ॥१॥ उस राक्षस की आंखें लाल थीं, भुजाएँ लम्बी, बाल बड़े बड़े और मुंह विशाल था। मेघ के समान वह काला था, उसके दांत तीखे थे और वह बड़ा भयानक था ॥२॥ देखने में भयंकर उस राक्षस को आते देखकर हिडिम्बा डर गयी और वह भीमसेन से इस प्रकार बोली ॥३॥ यह मनुष्य भक्षक दुष्ट राक्षस क्रोध करके आ रहा है। अतएव तुम अपने भाइयों के साथ जैसा मैं बतलाऊँ वैसा करो ॥४॥ वीर, मैं इच्छानुसार सर्वत्र आ जा सकती हूँ। मेरे शरीर में राक्षसों के समान बल

अहं कामगमा वीर रक्षोबलसमन्विता । आरुहेमां मम श्रोणिं नेष्यामि त्वां विहायसा ॥५॥
प्रबोधयैतान्संसुप्तान्मातरं च परंतप । सर्वानेव गमिष्यामि गृहीत्वा वो विहायसा ॥६॥
भीम उवाच—
मा भैस्त्वं पृथुसुश्रोणि नैष कश्चिन्मयि स्थिते । अहमेनं हनिष्यामि प्रेक्षन्त्यास्ते सुमध्यमे ॥७॥
नायं प्रतिबलो भीरु राक्षसापसदो मम । सोढुं युधि परिस्पन्दमथवा सर्वराक्षसाः ॥८॥
पश्य बाहू सुवृत्तौ मे हस्तिहस्तनिभाविमौ । ऊरू परिघसंकाशौ संहतं चाप्युरो महत् ॥९॥
विक्रमं मे यथेन्द्रस्य साऽद्य द्रक्ष्यसि शोभने । मावमंस्थाःपृथुश्रोणि मात्वा मामिह मानुषम् ॥१०॥
हिडिम्बोवाच—
नावमन्ये नरव्याघ्र त्वामहं देवरूपिणम् । दृष्टप्रभावस्तु मया मानुषेष्वेव राक्षसः ॥११॥
वैशम्पायन उवाच—
तथा संजल्पतस्तस्य भीमसेनस्य भारत । वाचः शुश्राव ताः क्रुद्धो राक्षसः पुरुषादकः ॥१२॥
अवेक्षमाणस्तस्याश्च हिडिम्बो मानुषं वपुः । स्रग्दामपूरितशिखं समग्रेन्दुनिभाननम् ॥१३॥
सुभ्रूनासाक्षिकेशान्तां सुकुमारनखत्वचम् । सर्वाभरणसंयुक्तं सुसूक्ष्माम्बरवाससम् ॥१४॥

भी है। तुम मेरी पीठ पर चढ़ जाओ, मैं तुम्हें लेकर आकाश में चली जाऊँगी ॥५॥ परन्तप, अपने भाइयों को और माता को जगा दो। तुम सब लोगों को लेकर मैं आकाश में चली जाऊँगी ॥६॥

भीम बोले—हे पृथुश्रोणि, तुम डरो मत, मेरे सामने यह राक्षस कुछ भी नहीं है। मेरे रहते इससे डरने की जरूरत नहीं है। हे सुमध्यमे, तुम्हारे सामने ही मैं इसको मार डालूंगा ॥७॥ हे भीरु, यह अधम राक्षस मुझसे बलवान् नहीं है। अथवा यही क्या समस्त राक्षस भी मिलकर युद्ध में मेरा आक्रमण नहीं सह सकते ॥८॥ हाथी की सूंड़ के समान मेरी गोल भुजाओं को देखो, परिघतुल्य मेरी जंघाओं को देखो, और गठी हुई मेरी विशाल छाती देखो ॥९॥ शोभने, मेरा पराक्रम इन्द्र के पराक्रम के समान है। मेरा वह पराक्रम आज तुम देखोगी। हे पृथुश्रोणि, मनुष्य समझ कर तुम मेरा अपमान मत करो। मैं मनुष्य हूँ, इस लिए मुझे निर्बल मत समझो, ऐसा समझना मेरा अपमान होगा ॥१०॥

हिडिम्बा बोली—हे नरव्याघ्र मैं देवतुल्य आपका तिरस्कार नहीं करती। पर, मनुष्यों पर राक्षसों का प्रभाव मैं देख चुकी हूँ इसलिए ऐसा कहती हूँ ॥११॥

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय, भीमसेन हिडिम्बा से इस प्रकार बातें कर रहे थे। उनकी वे बातें मनुष्यभक्षी और क्रुद्ध उस राक्षस ने सुनी ॥१२॥ हिडिम्ब राक्षस ने अपनी बहन हिडिम्बा को मनुष्य के रूप में देखा, उसके बालों में फूल की माला गुथी हुई थी उसका मुख चन्द्रमा के समान शोभित हो रहा था ॥१३॥ उसकी भौं, नाक और आखें सुन्दर थीं उसके बाल मनोहर थे, उसके नख और त्वचाएं कोमल थीं। समस्त आभूषण वह धारण किये हुए

तां तथा मानुषं रूपं बिभ्रतीं सुमनोहरम् । पुंस्कामां शङ्कमानश्च चुक्रोध पुरुषादकः ॥१५॥
संक्रुद्धो राक्षसस्तस्या भगिन्याः कुरुसत्तम । उत्फाल्य विपुले नेत्रे ततस्तामिदमब्रवीत् ॥१६॥
को हि मे भोक्तुकामस्य विघ्नं चरति दुर्मतिः । न बिभेषि हिडिम्बे किं मत्कोपाद्विप्रमोहिता ॥१७॥
धिक्त्वामसति पुंस्कामे मम विप्रियकारिणि । पूर्वेषां राक्षसेन्द्राणां सर्वेषामयशस्करि ॥१८॥
यानिमानाश्रिताऽकार्षीर्विप्रियं सुमहन्मम । एष तानद्य वै सर्वान्हनिष्यामि त्वया सह ॥१९॥
एवमुक्त्वा हिडिम्बां स हिडिम्बो लोहितेक्षणः । वधायाभिपपातैनां दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥२०॥
समापतन्तं संप्रेक्ष्य भीमः प्रहरतां वरः । भर्त्सयामास तेजस्वी तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥२१॥
वैशम्पायन उवाच—
भीमसेनस्तु तं दृष्ट्वा राक्षसं प्रहसन्निव । भगिनीं प्रति सङ्क्रुद्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥२२॥
किं ते हिडिम्ब एतैर्वा सुखसुप्तैः प्रबोधितैः । मामासादय दुर्बुद्धे तरसा त्वं नराशन ॥२३॥
मय्येव प्रहरैहि त्वं न स्त्रियं हन्तुमर्हसि । विशेषतोऽनपकृते परेणापकृते सति ॥२४॥
न हीयं स्ववशा बाला कामयत्यद्य मामिह । चोदितैषा ह्यनङ्गेन शरीरान्तरचारिणा ॥२५॥
भगिनी तव दुर्वृत्त रक्षसां वै यशोहर । त्वन्नियोगेन चैवेयं रूपं मम समीक्ष्य च ॥२६॥

थी और सुन्दर पतला वस्त्र धारण किये हुए थी ॥१४॥ अपनी बहन को मनुष्य के ऐसे मनोहर रूप में देखकर उस राक्षस को यह सन्देह हुआ कि कहीं यह पुरुष तो नहीं चाहती, इस मनुष्य को पति तो नहीं बनाना चाहती ॥१५॥ कुरुश्रेष्ठ, इसी सन्देहवश उस राक्षस ने अपनी बहन हिडिम्बा पर क्रोध किया, और आखें तरेर कर वह उससे बोला ॥१६॥ मैं भोजन करना चाहता हूँ । कौन मूर्ख मनुष्य मेरे इस काम में विघ्न डाल रहा है । हिडिम्बा, क्या तुम्हें मेरे क्रोध का भय नहीं रहा । क्या तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गयी ॥१७॥ अरे व्यभिचारिणी, तू पुरुष के प्रेम में फंस कर मेरा अहित कर रही है । पूर्वज राक्षस राजों के यश में तू कलङ्क लगा रही है ॥१८॥ इन पुरुषों के प्रेम में फंस कर तुमने मेरा बड़ा भारी अपकार किया है, मैं आज तुम्हारे साथ इन सब को मारता हूँ ॥१९॥ वह राक्षस हिडिम्ब दांत से दांत कटकटाते हुए और आंखें लाल किये हिडिम्बा को मारने के लिए उसकी ओर दौड़ा ॥२०॥ हिडिम्ब दौड़ा आ रहा है यह देखकर प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ तेजस्वी भीमसेन डपट कर उससे बोले—ठहर जा, ठहर जा ॥२१॥

वैशम्पायन बोले—उस राक्षस को अपनी बहन पर क्रोधित देखकर भीमसेन हंसते हुए उससे इस प्रकार बोले ॥२२॥ अरे मनुष्यभक्षी, हिडिम्ब, इन सोनेवालों से तुम्हें क्या काम है ? अरे मूर्ख, तू मेरे पास ही आ और बल दिखा ॥२३॥ तू आ और मुझ पर ही प्रहार कर, स्त्री को न मार, क्योंकि इसने तेरा कुछ अपराध नहीं किया है । किन्तु तूनेही इसका अपराध किया है ॥२४॥ यह स्त्री अपनी इच्छा से मुझपर अनुरक्त नहीं हुई है, किन्तु प्रत्येक प्राणी के मनमें रहनेवाले कामदेव की प्रेरणा से यह मुझ पर अनुरक्त हुई है, अतएव इस विषय में इसका कुछ अपराध नहीं है ॥२५॥ अरे राक्षस कुल कलङ्क नीच, तुम्हारे कहने से ही

कामयत्यद्य मां भीरुस्तव नैषापराध्यति । अनङ्गेन कृते दोषे नेमां गर्हितुमर्हसि ॥२७॥
मयि तिष्ठति दुष्टात्मन्न स्त्रियं हन्तुमर्हसि । संगच्छस्व मया सार्द्धमेकेनैको नराशनः ॥२८॥
अहमेको गमिष्यामि त्वामद्य यमसादनम् । अद्य मद्बलनिष्पिष्टं शिरो राक्षस दीर्यताम् ॥
कुञ्जरस्येव पादेन विनिष्पिष्टं बलीयसः ॥२९॥
अद्य गात्राणि ते कङ्काः श्येना गोमायवस्तथा । कर्षन्तु भुवि संहृष्टा निहतस्य मया मृधे ॥३०॥
क्षणेनाद्य करिष्येऽहमिदं वनमराक्षसम् । पुरा यद्दषितं नित्यं त्वया भक्षयता नरान् ॥३१॥
अद्य त्वां भगिनी रक्षः कृष्यमाणं मयाऽसकृत् । द्रक्ष्यत्यद्रिप्रतीकाशं सिंहेनेव महाद्विपम् ॥३२॥
निराबाधास्त्वयि हते मया राक्षसपांसन । वनमेतच्चरिष्यन्ति पुरुषा वनचारिणः ॥३३॥

हिडिम्ब उवाच—

गर्जितेन वृथा किं ते कत्थितेन च मानुष । कृत्वैतत्कर्मणा सर्वं कत्थेथामा चिरं कृथाः॥३४॥
बलिनं मन्यसे यच्चाप्यात्मानं सपराक्रमम् । ज्ञास्यस्यद्य समागम्य मयाऽऽत्मानं बलाधिकम् ॥३५॥
न तावदेतान्हिंसिष्ये स्वपन्त्वेते यथासुखम् । एष त्वामेव दुर्बुद्धे निहन्म्यद्याप्रियंवदम् ॥३६॥

तुम्हारी यह बहन मेरे पास आयी थी, यहाँ आकर और मेरा रूप देखकर यह मुझपर अनुरक्त हो गयी, मुझे चाहने लगी। अतएव इसने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया, यदि इसमें कुछ अपराध हो तो यह अपराध कामदेव का है इसका नहीं। अतएव तुम्हें इसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए, तुम्हें इस पर क्रोध नहीं करना चाहिए ॥२६,२७॥ अरे दुष्ट, तू मेरे सामने स्त्री का वध नहीं कर सकता, मनुष्यभक्षी, तू अकेला मेरे साथ आकर लड़ ॥२८॥ मैं ही अकेला आज तुम को यमराज के घर भेज दूंगा। आज मेरे बलसे पिस जाने के कारण राक्षस, तेरा मस्तक चूर चूर हो जायगा, बलवान् हाथी के पैरों से पिसे हुए के समान हो जायगा ॥२९॥ आज युद्ध में मैं तुमको मारूँगा, आज कौए सियार आदि तेरे अङ्गों को पृथिवी पर घसीटेंगे ॥३०॥ बहुत दिनों से मनुष्यों को खा खा करके तुमने इस बन को भयंकर बना दिया है, आज शीघ्र ही एक क्षण में इस बन को राक्षस हीन बना दूंगा, अर्थात् शीघ्र ही तुमको मार डालूंगा ॥३१॥ राक्षस, पर्वत तुल्य तुम्हारे शरीर को मैं पृथिवी में घसीटूंगा, जिस प्रकार सिंह बड़े हाथी को घसीटता है। बहन यह सब देखेगी ॥३२॥ राक्षस कुल कलङ्क, जब मैं तुमको मारूँगा तब इस बन में बनबासी मनुष्य बिना बाधा विघ्न के भ्रमण करेंगे ॥३३॥

हिडिम्ब बोला—तू तो व्यर्थ गरज रहा है, व्यर्थ अपनी तारीफ कर रहा है। अरे मनुष्य, जो तू कहता है वह करके दिखला फिर अपनी तारीफ करना, अब शीघ्रता कर ॥३४॥ तू अपने को बलवान् समझता है, पराक्रमी समझता है। पर अपने से बलवान् मुझसे जब तू लड़ेगा तब तुझे इसका पता लगेगा, तब तू समझेगा कि बलवान् कौन है ॥३५॥ मैं इन सोने वाले मनुष्यों को नहीं मारूँगा, ये सुखपूर्वक सोएँ। दुर्वचन बोलनेवाले, तुमको ही अभी

पीत्वा तवासृग्गात्रेभ्यस्ततः पश्चानिमानपि । हनिष्यामि ततः पश्चादिमां विप्रियकारिणीम् ॥३७॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा ततो बाहुं प्रगृह्य पुरुषादकः । अभ्यद्रवत संक्रुद्धो भीमसेनमरिन्दमम् ॥३८॥

तस्याभिद्रवतस्तूर्णं भीमो भीमपराक्रमः । वेगेन प्रहितं बाहुं निजग्राह हसन्निव ॥३९॥

निगृह्य तं बलाद्भीमो विस्फुरन्तं चकर्ष ह । तस्माद्देशाद्धनूंष्यष्टौ सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥४०॥

ततः स राक्षसः क्रुद्धः पाण्डवेन बलार्दितः । भीमसेनं समालिङ्ग्य व्यनदद्भैरवं रवम् ॥४१॥

पुनर्भीमो बलादेनं विचकर्ष महाबलः । मा शब्दः सुखसुप्तानां भ्रातॄणां मे भवेदिति ॥४२॥

अन्योन्यं तौ समासाद्य विचकर्षतुरोजसा । हिडिम्बो भीमसेनश्च विक्रमं चक्रतुः परम् ॥४३॥

बभञ्जतुस्तदा वृक्षांल्लताश्चाकर्षतुस्तदा । मत्ताविव च संरब्धौ वारणौ षष्टिहायनौ ॥४४॥

तयोः शब्देन महता विबुद्धास्ते नरर्षभाः । सह मात्रा च ददृशुर्हिडिम्बामग्रतः स्थिताम् ॥४५॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि हिडिम्बवधपर्वणि हिडिम्बयुद्धे
त्रिपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

मारूँगा ॥३६॥ तुम्हारे शरीर का खून पी लेने के पश्चात्, इन लोगों को भी मारूँगा, इनको मारने के पश्चात् इस अपकारिणी को भी मारूँगा ॥३७॥

वैशम्पायन बोले—वह मनुष्यभक्षक राक्षस, क्रोध करके घूसा तानकर शत्रुनाशी भीमसेन पर झपटा ॥३८॥ भीमपराक्रमी भीमसेन ने अपने पर आक्रमण करनेवाले राक्षस का जोर से फेंका हाथ हँसते हुए पकड़ लिया ॥३९॥ भीमसेन ने बलपूर्वक उसको पकड़ा, वह छटपटाने लगा। उसको पकड़कर भीमसेन वहां से आठ धनुष आगे ले गये। जिस प्रकार सिंह किसी छोटे पशु को पकड़कर खींच ले जाता है ॥४०॥ भीमसेन के बल से पीड़ित होकर उस राक्षस ने क्रोध किया और भीमसेन को पकड़कर उसने बड़ा भयंकर गर्जन किया ॥४१॥ उसके गर्जन से सुखपूर्वक सोए हुए हमारे भाई जाग न जांय इसलिए महाबली भीमसेन उस राक्षस को पकड़ कर वहां से और दूर ले गये ॥४२॥ वे दोनों बलपूर्वक एक दूसरे को खींचने लगे। भीमसेन हिडिम्ब को अपनी ओर खींचते थे और हिडिम्ब उनको अपनी ओर खींचता था, इस प्रकार वे दोनों परस्पर बल दिखाने लगे ॥४३॥ साठ वर्ष के मतवाले हाथियों के समान वे दोनों क्रोधकर पेड़ों और लताओं को तोड़ने लगे अर्थात् उनके धक्के से पेड़ आदि टूटने लगे ॥४४॥ उन दोनों के लड़ने के शब्द से मनुष्यश्रेष्ठ पाण्डव जाग गये, उनकी माता भी जाग गयीं। उन लोगों ने सामने खड़ी हिडिम्बा को देखा ॥४५॥

त्रिपंचाशदधिकशततम अध्याय।

वैशम्पायन उवाच—

प्रबुद्धास्ते हिडिम्बाया रूपं दृष्ट्वातिमानुषम् । विस्मिताः पुरुषव्याघ्रा बभूवुः पृथया सह ॥१॥
ततः कुन्ती समीक्ष्यैनां विस्मिता रूपसम्पदा । उवाच मधुरं वाक्यं सान्त्वपूर्वमिदं शनैः ॥२॥
कस्य त्वं सुरगर्भाभे का वाऽसि वरवर्णिनि । केन कार्येण सम्प्राप्ता कुतश्चागमनं तव ॥३॥
यदि वाऽस्य वनस्य त्वं देवता यदि वाऽप्सरा । आचक्ष्व मम तत्सर्वं किमर्थं चेह तिष्ठसि ॥४॥

हिडिम्बोवाच—

यदेतत्पश्यसि वनं नीलमेघनिभं महत् । निवासो राक्षसस्यैष हिडिम्बस्य ममैव च ॥५॥
तस्य मां राक्षसेन्द्रस्य भगिनीं विद्धि भामिनि । भ्रात्रा संप्रेषितास्म्यार्ये त्वां सपुत्रां जिघांसता ॥६॥
क्रूरबुद्धेरहं तस्य वचनादागता त्विह । अद्राक्षं नवहेमाभं तव पुत्रं महाबलम् ॥७॥
ततोऽहं सर्वभूतानां भावे विचरता शुभे । चोदिता तव पुत्रस्य मन्मथेन वशानुगा ॥८॥
ततो वृतो मया भर्ता तव पुत्रो महाबलः । अपनेतुं च यतितो न चैव शकितो मया ॥९॥
चिरायमाणां मां ज्ञात्वा ततः स पुरुषादकः । स्वयमेवागतो हन्तुमिमान्सर्वांस्तवात्मजान् ॥१०॥
स तेन मम कान्तेन तव पुत्रेण धीमता । बलादितो विनिष्पिष्य व्यपनीतो महात्मना ॥११॥

कुन्ती हिडिम्बा संवाद । हिडिम्ब का वध ।

वैशम्पायन बोले—चारों पाण्डव उठे, उन लोगों ने मनुष्यों में दिखाई न पड़नेवाली हिडिम्बा का सुन्दर रूप देखा, जिससे वे पुरुषसिंह और कुन्ती भी विस्मित हुई ॥१॥ कुन्ती ने उसे देखा और उसका सौन्दर्य देखकर वे विस्मित हो गयीं । वे उसको आश्वासन देती हुई धीरे धीरे मधुर स्वर से उससे बोलीं ॥२॥ हे सुन्दरि, हे देवकन्या के समान रूपवती, तुम किसकी कन्या हो, तुम कौन हो । तुम किस काम के लिए यहां आयी हो और कहां से आयी हो ॥३॥ क्या तुम इस वन की वनदेवी हो, या कोई अप्सरा हो, जो कुछ हो वह सब तुम मुझसे कहो, तुम यहां किस कारण से निवास करती हो यह भी बतलाओ ॥४॥

हिडिम्बा बोली—काले मेघ के समान जो यह बड़ा बन दीख रहा है, वहाँ राक्षस हिडिम्ब और मैं रहती हूँ ॥५॥ मैं उस राक्षसराज की बहन हूं । पुत्रों के साथ आप को मारने के लिए मेरे भाई ने यहाँ मुझे भेजा है ॥६॥ क्रूरबुद्धि राक्षस के कहने से मैं यहाँ आयी, यहाँ आकर सुवर्ण के समान दीप्तिमान् महाबली आप के पुत्र को मैंने देखा । सब प्राणियों के मन में विचरण करनेवाले कामदेव की प्रेरणा से मैं आपके पुत्र के वश हो गयी ॥८॥ तब मैंने आपके महाबली पुत्र को अपना पति निर्वाचित किया और यहाँ से उन्हें ले जाने का मैंने बड़ा प्रयत्न किया, पर मैं इसमें समर्थ न हो सकी ॥९॥ मेरे लौटने में विलम्ब देखकर मनुष्यभक्षी वह राक्षस आपके इन समस्त पुत्रों को मारने के लिए यहाँ स्वयं आया ॥१०॥ उस राक्षस को महात्मा बुद्धिमान् मेरे पति और आपके पुत्र, बलपूर्वक यहाँ से घसीट कर दूर ले गये ॥११॥ वे

विकर्षन्तौ महावेगौ गर्जन्तौ परस्परम् । पश्यैवं युधि विक्रान्तावेतौ च नरराक्षसौ ॥१२॥
वैशम्पायन उवाच—
तस्याः श्रुत्वैव वचनमुत्पपात युधिष्ठिरः । अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवश्च वीर्यवान् ॥१३॥
तौ ते ददृशुरासक्तौ विकर्षन्तौ परस्परम् । काङ्क्षमाणौ जयं चैव सिंहाविव बलोत्कटौ ॥१४॥
अथान्योन्यं समाश्लिष्य विकर्षन्तौ पुनःपुनः । दावाग्निधूमसदृशं चक्रतुः पार्थिवं रजः ॥१५॥
वसुधारेणुसंवीतौ वसुधाधरसन्निभौ । वभ्राजतुर्यथा शैलौ नीहारेणाभिसंवृतौ ॥१६॥
राक्षसेन तदा भीमं क्लिश्यमानं निरीक्ष्य च । उवाचेदं वचः पार्थः प्रहसञ्छनकैरिव ॥१७॥
भीम मा भैर्महाबाहो न त्वां बुध्यामहे वयम् । समेतं भीमरूपेण रक्षसा श्रमकर्शिताः ॥१८॥
साहाय्येऽस्मि स्थितः पार्थ पातयिष्यामि राक्षसम् । नकुलः सहदेवश्च मातरं गोपयिष्यतः ॥१९॥
भीम उवाच—
उदासीनो निरीक्षस्व न कार्यः संभ्रमस्त्वया । नजात्वयं पुनर्जीवेन्मद्बाह्वन्तरमागतः ॥२०॥
अर्जुन उवाच—
किमेतेन चिरं भीम जीवता पापरक्षसा । गन्तव्ये न चिरं स्थातुमिह शक्यमरिन्दम ॥२१॥

दोनों मनुष्य और राक्षस एक दूसरे को अपनी ओर खींचते हैं, गर्जन कर रहे हैं और युद्ध में अपना पराक्रम दिखा रहे हैं, यह आप देखें ॥१२॥

वैशम्पायन बोले—उसके इन वचनों को सुनकर युधिष्ठिर, अर्जुन और पराक्रमी नकुल सहदेव झट उठ खड़े हुए ॥१३॥ उन लोगों ने देखा कि हिडिम्ब और भीम परस्पर सट गये हैं और एक दूसरे को धक्का दे रहे हैं। वे दो बलवान सिंहों के समान अपनी अपनी विजय चाहते हैं ॥१४॥ वे दोनों दोनों को पकड़ कर बार बार खींच रहे हैं। उनकी इस खींचा खींची से पृथिवी की धूल उड़कर आकाश में दावानल के धूएँ के समान फैल गयी ॥१५॥ पर्वत तुल्य वे दोनों वीर पृथिवी की धूल में छिप गये और बर्फ से ढँके दो पर्वतों के समान वे शोभित होने लगे ॥१६॥ उस समय उन लोगों ने देखा कि वह राक्षस भीमसेन को पीडित कर रहा है उनको दबा रहा है। यह देखकर अर्जुन हंसते हुए धीरे से उनसे बोले ॥१७॥ महाबाहु भीम, डरना मत, हम लोग थके हुए थे इससे जान ही नहीं सके कि तुम भयंकर राक्षस से लड़ रहे हो ॥१८॥ अब मैं तुम्हारी सहायता के लिए आ गया हूँ, मैं ही इस राक्षस को मार डालूंगा और नकुल तथा सहदेव माता की रक्षा करेंगे ॥११॥

भीमसेन बोले—तुम चुपचाप खड़े खड़े देखते रहो, डरो मत, मेरी पकड़ में आया हुआ यह राक्षस क्या अब जीता बच सकता है ॥२०॥

अर्जुन बोले—भीम, यह पापी राक्षस अब और अधिक देर तक जीता ही क्यों रहे, इसकी जरूरत ही क्या है। अब हम लोगों को यहाँ से चलना भी तो है। हे शत्रुनाशन, अब यहाँ और देर तक ठहरना उचित नहीं है ॥२१॥ यह देखो, सामने पूर्व दिशा लाल हो रही है, सन्ध्या

पुरा संरज्यते प्राची पुरा सन्ध्या प्रवर्तते। रौद्रे मुहूर्ते रक्षांसि प्रबलानि भवन्त्युत ॥२२॥
त्वरस्व भीम माक्रीड जहि रक्षो विभीषणम्। पुरा विकुरुते मायां भुजयोः साहसम् ॥२३॥

वैशम्पायन उवाच—

अर्जुनेनैवमुक्तस्तु भीमो रोषाज्ज्वलन्निव। बलमाहारयामास यद्वायोर्जगतःक्षये ॥२४॥
ततस्तस्याम्बुदाभस्य भीमो रोषात्तु रक्षसः। उत्क्षिप्याभ्रामयद्देहं तूर्णं शतगुणं तदा ॥२५॥

भीम उवाच—

वृथा मांसैर्वृथा पुष्टो वृथा वृद्धो वृथामतिः। वृथा मरणमर्हस्त्वं वृथाऽद्य न भविष्यसि ॥२६॥
क्षेममद्य करिष्यामि यथा वनमकण्टकम्। न पुनर्मानुषान्हत्वा भक्षयिष्यसि राक्षस ॥२७॥

अर्जुन उवाच—

यदि वा मन्यसे भारं त्वमिमं राक्षसं युधि। करोमि तव साहाय्यं शीघ्रमेष निपात्यताम् ॥२८॥
अथवाऽप्यहमेवैनं हनिष्यामि वृकोदर। कृतकर्मा परिश्रान्तः साधु तावदुपारम ॥२९॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षणः। निष्पिष्यैनं बलाद्भूमौ पशुमारममारयत् ॥३०॥

होने ही वाली है। प्रातः और सायंकाल की सन्ध्याएँ रौद्र मुहूर्त कही जाती हैं, इन समयों में राक्षसों का बल बढ़ जाता है। अतएव तुम शीघ्र ही इस राक्षस को मार डालो ॥२२॥ भीमसेन अब इसको मारने में शीघ्रता करो, खिलवाड़ छोड़ो। इस भयंकर राक्षस का शीघ्र ही बध कर डालो। थोड़ी ही देर में यह अपनी माया दिखाने लगेगा; अतएव तुम अपने भुज बल का परिचय दो, इसे मार गिराओ ॥२३॥

वैशम्पायन बोले—अर्जुन के ऐसा कहने पर भीम क्रोध से—जलने से लगे। प्रलय काल में संसार के नाश के लिए वायु देव जैसा बल लगाते वैसा बल उस राक्षस को मारने के लिए भीमसेन लगाने लगे ॥२४॥ मेघ के समान काले उस राक्षस को भीमसेन ने क्रोध करके ऊपर उठाया और सौ बार से अधिक उसे घुमाया ॥२५॥

भीम बोले—तू मनुष्यों के मांस से व्यर्थ ही इतना पुष्ट हुआ और व्यर्थ बढ़ा, तेरी बुद्धि और तू भी व्यर्थ ही है अतएव तुम्हारी मृत्यु भी उसी व्यर्थ के ढंग से होनी चाहिए। जैसा तू पशु है वैसा ही पशु के समान तुम्हारा वध होना चाहिये। अब आज तू बच नहीं सकता ॥२६॥ आज मैं सबका कल्याण करूँगा और इस बन को निष्कण्टक बनाऊँगा पुनः तुम मनुष्यों को मार कर उन्हें खाने लायक न रह जाओगे ॥२७॥

अर्जुन बोले—यदि युद्ध में यह राक्षस तुमको भारी मालूम पड़ता हो तो कहो मैं तुम्हारी सहायता करूँ। इस राक्षस को शीघ्रही मार डालो ॥२८॥ अथवा इसको मैं ही मारूँगा। तुमने परिश्रम किया है, अब थक गये हो, अच्छा है अब विश्राम करो ॥२९॥

वैशम्पायन बोले—अर्जुन के बचन सुनकर अत्यन्त क्रोधी भीमसेन ने उस राक्षस को

स मार्यमाणो भीमेन ननाद विपुलं स्वनम् । पूरयंस्तद्वनं सर्वं जलार्द्र इव दुन्दुभिः ॥३१॥
बाहुभ्यां योत्क्रयित्वा तं बलवान्पाण्डुनन्दनः । मध्ये भङ्क्त्वा महाबाहुर्हर्षयामास पाण्डवान् ३२॥
हिडिम्बं निहतं दृष्ट्वा संहृष्टास्ते तरस्विनः । अपूजयन्नरव्याघ्रं भीमसेनमरिन्दमम् ॥३३॥
अभिपूज्य महात्मानं भीमं भीमपराक्रमम् । पुनरेवार्जुनो वाक्यमुवाचेदं वृकोदरम् ॥३४॥
न दूरं नगरं मन्ये वनादस्मादहं विभो । शीघ्रं गच्छाम भद्रं ते न नो विद्यात्सुयोधनः ॥३५॥
ततः सर्वे तथेत्युक्त्वा मात्रा सह महारथाः । प्रययुः पुरुषव्याघ्रा हिडिम्बा चैव राक्षसी ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि हिडिम्बवधपर्वणि हिडिम्बवधे
चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५४॥

भीमसेन उवाच—

स्मरन्ति वैरं रक्षांसि मायामाश्रित्य मोहिनीम् । हिडिम्बे व्रज पन्थानं त्वमिमं भ्रातृसेवितम् ॥१॥

पृथिवी पर पटक कर मसला और पशु के समान मार डाला ॥३०॥ भीमसेन जब उस राक्षस को मार रहे थे उस समय उसने भींगे नगाड़े के समान बड़ा भयंकर शब्द किया, जिससे वह समूचा वन गूंज गया ॥३१॥ बलवान् पाण्डुनन्दन भीमसेन ने उसके शरीर को दोनों ओर से पकड़ कर झुकाया, उसे मोड़ा, जिससे उसका शरीर बीच ही से टूट गया उसके दो टुकड़े हो गये । भीमसेन के इस काम से पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए ॥३२॥ वे बली पाण्डव हिडिम्ब का मारा जाना देखकर बड़े प्रसन्न हुए और वे शत्रुनाशी नरश्रेष्ठ भीमसेन की प्रशंसा करने लगे ॥३३॥ भीम पराक्रमी महात्मा भीमसेन की प्रशंसा कर के अर्जुन पुनः उनसे बोले ॥३४॥ मैं समझता हूँ कि इस वन के पास ही कहीं गांव है। तुम्हारा कल्याण हो, अब हम लोगों को यहां से शीघ्र चल देना चाहिए । जिससे दुर्योधन को हम लोगों का पता न लगने पावे ॥३५॥ यह बात सब लोगों को पसन्द आयी, सभी ने इसे स्वीकार किया, वे सभी पुरुषसिंह महारथ माता के साथ वहां से चले और हिडिम्बा राक्षसी भी उनके साथ चली ॥३६॥

चतुः पंचाशदधिक शततम अध्याय ।

युधिष्ठिर और कुन्ती की सम्मति से भीमसेन का हिडिम्बा से व्याह । भीमसेन को लेकर हिडिम्बा का भिन्न भिन्न स्थानों में भ्रमण । घटोत्कच की उत्पत्ति । हिडिम्बा का प्रस्थान । पाण्डवों की सहायता करने की घटोत्कच की प्रतिज्ञा ।

भीमसेन बोले—हिडिम्बा, मैं जानता हूँ, राक्षसगण, वैर याद रखते हैं और ऊपर से मोहिनी माया भी दिखाते हैं, अतएव अब तुमको भी उसी रास्ते जाना चाहिए जिस रास्ते तुम्हारा भाई गया है । अर्थात् अब तुमको भी मरना चाहिए ॥१॥

युधिष्ठिर उवाच—

क्रुद्धोऽपि पुरुषव्याघ्र भीम मा स्म स्त्रियं वधीः । शरीरगुप्त्यभ्यधिकं धर्मं गोपाय पाण्डव ॥२॥
वधाभिप्रायमायान्तमवधीस्त्वं महाबलम् । रक्षसस्तस्य भगिनी किं नः क्रुद्धा करिष्यति ॥३॥

वैशम्पायन उवाच—

हिडिम्बा तु ततः कुन्तीमभिवाद्य कृताञ्जलिः । युधिष्ठिरं तु कौन्तेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥४॥
आर्ये जानासि यद्दुःखमिह स्त्रीणामनङ्गजम् । तदिदं मामनुप्राप्तं भीमसेनकृतं शुभे ॥५॥
सोढं तत्परमं दुःखं मया कालप्रतीक्षया । सोऽयमभ्यागतःकालो भविता मे सुखोदयः॥६॥
मया ह्युत्सृज्य सुहृदः स्वधर्मं स्वजनं तथा । वृतोऽयं पुरुषव्याघ्रस्तव पुत्रः पतिः शुभे ॥७॥
वीरेणाऽहं तथाऽनेन त्वया चापि यशस्विनी । प्रत्याख्याता न जीवामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥८॥
तदर्हसि कृपां कर्तुं मयि त्वं वरवर्णिनि । मत्वा मूढेति तन्मां त्वं भक्तावाऽनुगतेति वा ॥९॥
भर्त्राऽनेन महाभागे संयोजय सुतेन ह । तमुपादाय गच्छेयं यथेष्टं देवरूपिणम् ।
पुनश्चैवानयिष्यामि विस्रम्भं कुरु मे शुभे ॥१०॥
अहं हि मनसा ध्याता सर्वान्नेष्यामिवः सदा । वृजिनात्तारयिष्यामि दुर्गेषु विषमेषु च ॥११॥

युधिष्ठिर बोले—भीम, यद्यपि तुम्हें क्रोध है, तथापि तुमको स्त्री का वध नहीं करना चाहिए, क्योंकि शरीर रक्षा की अपेक्षा तुम्हें धर्म की रक्षा अधिकता से करनी चाहिए। अर्थात् इसको न मारने से भय अवश्य है तथापि, स्त्री का वध करना अनुचित है अधर्म है इस कारण तुम्हें धर्म का पालन करना चाहिए ॥२॥ जो राक्षस हम लोगों का वध करने के अभिप्राय से आया था उसका वध तो तुमने कर दिया। उसकी बहन यह हिडिम्बा यदि क्रोध भी करे, यदि यह हम लोगों का अपकार भी करना चाहे तो क्या कर सकती है ॥३॥

वैशम्पायन बोले—हिडिम्बा ने हाथ जोड़कर कुन्ती को प्रणाम किया और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को भी प्रणाम किया, पुनः वह बोली ॥४॥ आर्ये, कामदेव की पीड़ा स्त्रियों के लिए कितनी दुःखदायक है यह आप जानते हैं। शुभे, मैं वही पीड़ा भीमसेन के लिए भोग रही हूँ ॥५॥ उस असहनीय कष्ट को मैंने अवसर की प्रतीक्षा से अब तक सहा है। अब वह समय आ गया है, अब मेरे सुख का उदय होगा ॥६॥ अपने मित्रों को, अपने धर्म और बान्धवों को छोड़कर मैंने तुम्हारे पुरुषसिंह पुत्र को अपना पति वरण किया है ॥७॥ यशस्विनी, ये वीर अथवा आप मेरा प्रत्याख्यान कर दें—नहीं कर दें, तो मैं जीवित नहीं रहूँगी, यह मैं आप से सत्य सत्य कहती हूँ ॥८॥ अतएव हे सुन्दरि, अब आपको मुझपर कृपा करनी चाहिए, मुझे अज्ञानी, अपनी भक्ता तथा सेविका समझकर मुझपर आपको कृपा करनी चाहिए ॥९॥ महाभागे, इन अपने पुत्र को मेरा पति बनाकर इनके साथ मेरा संयोग करा दो। देवतुल्य आप के पुत्र को लेकर मैं अपने इच्छित स्थानों पर जाऊँगी। पुनः इन्हें यहां लौटा जाऊँगी, आप मुझ पर विश्वास करें ॥१०॥ जब आप लोग मन में मेरा ध्यान करेंगी, मेरा स्मरण करेंगी उस समय में उपस्थित होऊँगी और आप

पृष्ठेन वो वहिष्यामि शीघ्रां गतिमभीप्सतः । यूयं प्रसादं कुरुत भीमसेनो भजेत माम् ॥१२॥
आपद्स्तरण प्राणान्धारये येन तेन वा । सर्वमादृत्य कर्तव्यं तं धर्ममनुवर्तता ॥१३॥
आपत्सु यो धारयति स वै धर्मविदुत्तमः । व्यसनं ह्येव धर्मस्य धर्मिणामापदुच्यते ॥१४॥
पुण्यं प्राणान्धारयति पुण्यं प्राणदमुच्यते । येन केनाचरेद्धर्मं तस्मिनार्हा न विद्यते ॥१५॥
युधिष्ठिर उवाच—
एवमेतद्यथात्थ त्वं हिडिम्बे नात्रसंशयः । स्थातव्यं तु त्वया सत्ये यथा ब्रूयां सुमध्यमे ॥१६॥
स्नातं कृताह्निकं भद्रे कृतकौतुकमङ्गलम् । भीमसेनं भजेथास्त्वमुदिते वै दिवाकरे ॥१७॥
अहःसु विहरानेन यथाकामं मनोजवा । अयं त्वानयितव्यस्ते भीमसेनः सदा निशि ॥१८॥
वैशम्पायन उवाच—
तथेति तत्प्रतिज्ञाय भीमसेनोऽब्रवीदिदं । शृणु राक्षसि सत्येन समयं ते वदाम्यहं ॥१९॥
यावत्कालेन भवति पुत्रस्योत्पादनं शुभे । तावत्कालं गमिष्यामि त्वया सह सुमध्यमे ॥२०॥

सब लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाऊँगी और आपके दुःख दूर करूँगी। दुर्गम और ऊबडखाबड स्थानों में मैं आप लोगों को सदा ले जाऊँगी और आप लोगों को कोई कष्ट न होने दूँगी ॥११॥ यदि आप लोग कहीं शीघ्र जाने चाहेंगी तो मैं अपनी पीठ पर आप लोगों को वहां पहुंचा दूँगी, आप लोग मुझपर कृपा करें, जिससे भीमसेन मेरा ग्रहण करें ॥१२॥ आपत्ति से उद्धार पाने के लिए मनुष्य को चाहे जिस किसी उपाय से हो अपने प्राणों की रक्षा करनी चाहिए, अतएव प्राण रक्षण रूप धर्म का पालन करनेवालों को चाहिए कि इसके लिए चाहे जितने कष्ट भोगने पड़ें वे उन सब दुःखों को भोगें ॥१३॥ आपत्ति के समय जो धर्म की रक्षा करता है वही धर्मवेत्ता है। धर्मात्माओं के धर्म का जो बाधक है वही आपत्ति कहा जाता है ॥१४॥ पुण्य के द्वारा मनुष्य प्राण धारण करता है अतएव पुण्य को प्राण प्रद कहते हैं, अतएव चाहे जिस उपाय से हो धर्म की रक्षा करनी चाहिए, प्राणों को बँचाना चाहिए इसमें कोई निन्दा की बात नहीं है ॥१५॥

युधिष्ठिर बोले—हिडिम्बे, जैसा तुम कह रही हो, वह बिलकुल ठीक है। पर मैं तुमसे जो कहता हूँ उस पर सत्यता पूर्वक दृढ़ रहना उसका सदा पालन करना ॥१६॥ भद्रे, प्रातःकाल भीमसेन जब स्नान करलें, अन्य दैनिक कार्य कर लें वस्त्र आदि पहनकर तयार हो जांय उस समय तुम भीमसेन की सेवा में जाओ और सूर्यास्त होने तक तुम उनके साथ रहो ॥१७॥ मन के समान वेगवाली तुम सदा दिन में इनके साथ विहार किया करो और रात के समय इनको हमारे पास पहुंचा दिया करो ॥१८॥

वैशम्पायन बोले—युधिष्ठिर की बातें सुनकर हिडिम्बा ने वैसा करने की प्रतिज्ञा की। उस समय भीमसेन उससे बोले—राक्षसि, सुनो मैं तुमसे सत्य सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ ॥१९॥ हे सुमध्यमे शुभे, जब तक तुम्हें पुत्र उत्पन्न न होगा तब तक मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा ॥२०॥

वैशम्पायन उवाच—

तथेति तत्प्रतिज्ञाय हिडिम्बा राक्षसी तदा। भीमसेनमुपादाय सोर्ध्वमाचक्रमे ततः ॥२१॥
शैलश्रृंगेषु रम्येषु देवतायतनेषु च। मृगपक्षिविघुष्टेषु रमणीयेषु सर्वदा ॥२२॥
कृत्वा च रूपं परमं सर्वाभरण भूषिता। सञ्जल्पन्ती सुमधुरं रमयामास पाण्डवम् ॥२३॥
तथैव वनदुर्गेषु पुष्पितद्रुमसानुषु। सरःसु रमणीयेषु पद्मोत्पलयुतेषु च ॥२४॥
नदीद्वीपप्रदेशेषु वैदूर्यसिकतासु च। सुतीर्थवनकूलासु तथा गिरिनदीषु च ॥२५॥
काननेषु विचित्रेषु पुष्पितद्रुमवल्लिषु। हिमवद्गिरिकुञ्जेषु गुहासु विविधासु च ॥२६॥
प्रफुल्लशतपत्रेषु सरःस्वमलवारिषु। सागरस्य प्रदेशेषु मणिहेमचितेषु च ॥२७॥
पल्वलेषु च रम्येषु महाशालवनेषु च। देवारण्येषु पुण्येषु तथा पर्वतसानुषु ॥२८॥
गुह्यकानां निवासेषु तापसायतनेषु च। सर्वर्तुफलरम्येषु मानसेषु सरस्सु च ॥२९॥
बिभ्रती परमं रूपं रमयामास पाण्डवम्। रमयन्ती तथा भीमं तत्र तत्र मनोज वा ॥३०॥
प्रजज्ञे राक्षसी पुत्रं भीमसेनान्महाबलम्। विरूपाक्षं महावक्रं शंकुकर्णं विभीषण ॥३१॥
भीमनादं सुताम्रोष्ठं तीक्ष्णदंष्ट्रं महाबलम्। महेष्वासं महावीर्यं महासत्वं महाभुजम् ॥३२॥

वैशम्पायन बोले—हिडिम्बा ने भीमसेन की प्रतिज्ञा के अनुसार चलने की प्रतिज्ञा की। अनन्तर वह भीमसेन को लेकर आकाश में उड़ गयी ॥२१॥ पर्वत के रमणीय शिखरों पर देव-मन्दिरों में जो पशुपक्षी के शब्दों से सदा रमणीय रहते हैं, वहां सुन्दर रूप धर कर समस्त भूषणों से भूषित होकर और वह मधुर स्वर से बोलती हुई भीमसेन को रमण कराने लगी ॥२२-२३॥ इसी प्रकार पुष्पित वृक्षवाले बीहड वन में लाल और नीले कमलों से सुगन्धित रमणीय तालाबों के तीर पर, कभी वैदूर्यमणि की बालुवाले द्वीपों में, कभी पर्वत की स्वच्छ जलवाली नदियों के सुन्दर घाट पर, कभी पुष्पित वृक्ष और लतावाले अद्भुत वनों में, कभी हिमवान् पर्वत के कुञ्जों में कभी भिन्न भिन्न गुफाओं में, भीमसेन को वह राक्षसी रमण कराने लगी ॥२४-२६॥ कभी निर्मल जल और विकसित कमलवाले तालाबों पर, मणि और सुवर्ण से सुशोभित समुद्रों के तीर पर, कभी रमणीय वापियों के तीर पर, कभी शालवन में, कभी पवित्र देववन और आश्रमों में, कभी यक्षों के देश में कभी तपस्वियों के आश्रमों में जो सदा रमणीय रहते हैं और जहां सदा फल होते हैं और कभी मानसरोवर में वह राक्षसी सुन्दर रूप धारण करके भीमसेन को रमण कराने लगी। इस प्रकार भिन्न भिन्न स्थानों में रमण कराती हुई उस मन के समान वेगवाली राक्षसी ने भीमसेन से एक महबाली पुत्र उत्पन्न किया। उसकी आंखें छोटी, बड़ी, मुंह विशाल, कान कीलके ऐसे तीखे थे और वह देखने में बड़ा भयंकर था ॥२८,३१॥ उसका गर्जन बड़ा भयंकर था, उसके ओठ लाल और दांत तीखे थे, वह महाबली, महाधनुर्धर महा पराक्रमी और बड़ा दृढ़ था तथा महाबाहु था ॥३१॥ महा वेगवान् विशाल शरीर तथा अनेक राक्षसी माया जानने वाला शत्रुओं को दमन करने वाला वह बालक उत्पन्न हुआ। उसकी नाक ऊँची, छाती चौड़ी और

महाजवं महाकायं [illegible]न्दम् । दीर्घघोणं महोरस्कं विकटोद्बद्धपिंडिकम् ॥३३॥
अमानुषं मानुषजं भीमवेगं महाबलं । यः पिशाचानतीत्यान्यान्वभूवातीव राक्षसान् ॥३४॥
बालोऽपि यौवनं प्राप्तो मानुषेषु विशाम्पते । सर्वास्त्रेषु परं वीरः प्रकर्षमगमद्बली ॥३५॥
सद्यो हि गर्भं राक्षस्यो लभन्ते प्रसवन्ति च । कामरूपधराश्चैव भवन्ति बहुरूपिकाः ॥३६॥
प्रणम्य विकचः पादावगृह्णात्स पितुस्तदा । मातुश्च परमेष्वासस्तौ च नामास्य चक्रतुः ॥३७॥
घटोहास्योत्कच इति माता तं प्रत्यभाषत । अब्रवीत्तेन नामास्य घटोत्कच इति स्मह ॥३८॥
अनुरक्तश्च [illegible] घटोत्कचः । तेषां च दयितो नित्यमात्मनित्यो बभूवह ॥३९॥
संवाससमयो जीर्ण इत्याभाष्य ततस्त्यतान् । हिडिम्बा समयं कृत्वा स्वां गतिं प्रत्यपद्यत ॥४०॥
घटोत्कचो महाकायःपाण्डवान्पृथया सह । अभिवाद्य यथान्यायमब्रवीच्च प्रभाष्य तान् ॥४१॥
किं करोम्यहमार्याणां निःशङ्का वदतानघाः । तं ब्रुवन्तं भैमसेनिं कुन्तीवचनमब्रवीत् ॥४२॥
त्वं कुरूणां कुले जातःसाक्षाद्भीमसमो ह्यसि । ज्येष्ठःपुत्रस्तु पञ्चानां साहाय्यं कुरुपुत्रका ॥४३॥
कृत्यकाल उपस्थास्ये पितॄनिति घटोत्कचः । आमन्त्र्य रक्षसां श्रेष्ठःप्रतस्थे चोत्तरां दिशम् ॥४४॥

पिंडलियाँ ऊँची और टेढ़ी थीं ॥३२,३३॥ मनुष्य से उत्पन्न वह राक्षस महाबली और बड़ा वेगवान् था यह अन्य पिशाचों और राक्षसों से बल में बढ़ा हुआ था ॥३४॥ राजन्, वह बाल्यावस्था में ही युवा मनुष्य के समान हो गया । वह वीर बली सब अस्त्र शस्त्रों में निपुण होगया ॥३५॥ राक्षसियाँ शीघ्र ही गर्भ धारण करती हैं और प्रसव करती हैं । वे इच्छानुसार रूप धारण करती हैं अतएव अनेक प्रकार के रूप धारण करती हैं ॥३६॥ महाधनुर्धर और केशहीन उस बालक ने पिता और माता के पैर पकड़े; तथा उन दोनों ने उस बालक का नाम वरण किया ॥३७॥ हिडिम्बा ने कहा इसका मस्तक घड़े के समान केशहीन है । भीमसेन ने कहा इसका नाम घटोत्कच होना चाहिए । दोनों की सम्मति से उस बालक का यही नाम रखा गया ॥३८॥ वह घटोत्कच पाण्डवों में बड़ा प्रेम रखता था । यद्यपि वह पाण्डवों से अलग स्वतंत्र रहता था, तथापि इस पर पाण्डवों का अधिक प्रेम था ॥३९॥ भीमसेन ने हिडिम्बा से जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरी हो गयी यह बात पाण्डवों को जनाकर हिडिम्बा ने अपना राक्षसी रूप धारण किया और वह अपने स्थान पर चली गयी ॥४०॥

महाकाय घटोत्कच ने कुन्ती और पाण्डवों को प्रणाम किया और उनको सम्बोधित करके सम्मान पूर्वक उनसे वह बोला ॥४१॥ आप माननीयों का मैं कौन सा काम करूँ, निष्पापो आप लोग निः शङ्क होकर कहें । भीमसेन के पुत्र घटोत्कच के ऐसा कहने पर कुन्ती उससे इस प्रकार बोली ॥४२॥ तुम कुरु कुल में उत्पन्न हुए हो तुम साक्षात भीमसेन के समान हो । तुम इन पांचों पाण्डवों के ज्येष्ठ पुत्र हो अतएव इनकी सहायता करो ॥४३॥ कुन्ती के ऐसा कहने पर उनको प्रणाम करके वह बोला । उसने अपने पिताओं से कहा कि जब आप लोगों का कोई काम होगा तब मैं आऊँगा । वह राक्षस श्रेष्ठ उनसे ऐसा कह कर तथा उनकी आज्ञा लेकर उत्तर दिशा में

सहि सृष्टो मघवता शक्तिहेतोर्महात्मना । कर्णस्याप्रतिवीर्यस्य प्रतियोद्धा महारथः ॥४५॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि हिडिम्बवधपर्वणि घटोत्कचोत्पत्तिनाम
पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

वैशम्पायन उवाच—

ते वनेन वनं गत्वा घ्नन्तो मृगगणान्बहून् । अपक्रम्य ययू राजंस्त्वरमाणा महारथाः ॥१॥
मत्स्यांस्त्रिगर्तान्पाञ्चालान्कीचकानन्तरेण च । रमणीयान्वनोद्देशान्प्रेक्षमाणाः सरांसि च ॥२॥
जटाः कृत्वा ततः सर्वे वल्कला जिनवाससः । सह कुन्त्या महात्मानो बिभ्रतस्तापसं वपुः ॥३॥
क्वचिद्वहन्तो जननीं त्वरमाणा महारथाः । क्वचिच्छन्देन गच्छन्तस्ते जग्मुः प्रसभं पुनः ॥४॥
ब्राह्मं वेदमधीयाना वेदाङ्गानि च सर्वशः । नीतिशास्त्रं च सर्वज्ञाद्ददृशुस्ते पितामहम् ॥५॥
तेभिवाद्य महात्मानं कृष्णद्वैपायनं तदा । तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे सह मात्रा परन्तपाः ॥६॥

व्यास उवाच—

मयेदं व्यसनं पूर्वं विदितं भरतर्षभाः । यथा तु तैरधर्मेण धार्तराष्ट्रैर्विवासिताः ॥६॥

चला गया ॥४४॥ महा पराक्रमी कर्ण से युद्ध करने के लिए इन्द्र ने इस महारथ को उत्पन्न किया था, और एकपुरुष घातिनी शक्ति को सहने के लिए भी उत्पन्न किया था जिससे अर्जुन की रक्षा हो ॥४५॥

पंच पंचाशदधिक शततम अध्याय ।

व्यासदेव का पाण्डवों के पास पुनः आना और उनको एकचक्रा नगरी में ले जाकर ठहराना ।

वैशम्पायन बोले—वे महारथ पाण्डव एक बन से दूसरे बन में होते हुए और पशुओं को मारते हुए चले ॥१॥ मत्स्य, त्रिगर्त, पांचाल और कीचक देशों के पास वे लोग गये । रमणीय बन और सुन्दर तालाब उन लोगों ने देखे ॥२॥ उन लोगों ने अपना तथा कुन्ती का रूप तपस्वियों का सा बना लिया था । सिर पर जटा धारण किया था और बल्कल वस्त्र पहन लिया था ॥३॥ वे महारथ कहीं माता को उठा कर वेग से चलते थे और कहीं आनन्द पूर्वक धीरे धीरे चलते थे, इस प्रकार वे बराबर चलते गये ॥४॥ वे पाण्डव मार्ग में उपनिषद वेद और वेदाङ्गों का अध्ययन करते जाते थे । वे सर्वज्ञ नीतिशास्त्र का भी अध्ययन करते थे । वहाँ उन लोगों ने अपने पितामह व्यासदेव को देखा ॥५॥

व्यासदेव बोले—भरतश्रेष्ठो, तुम लोगों के इस दुःख का समाचार मुझे पहले ही मिल गया है । धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अधर्म के द्वारा तुम लोगों को हस्तिनापुर से जिस प्रकार निकाला है वह मैं जान गया हूँ ॥६॥ वही जानकर मैं यहाँ आया हूँ, मैं तुम लोगों का कल्याण करना चाहता

तद्विदित्वास्मि सम्प्राप्तश्चिकीर्षुः परमं हितं । न विषादोऽत्र कर्तव्यः सर्वमेतत्सुखाय वः ॥७॥
समास्ते चैव मे सर्वे यूयं चैव न संशयः । दीनतो बालतश्चैव स्नेहं कुर्वन्ति मानवाः ॥८॥
तस्मादभ्यधिकः स्नेहो युष्मासु मम साम्प्रतं । स्नेहपूर्वं चिकीर्षामि हितं वस्तन्निबोधत ॥९॥
इदं नगरमभ्याशे रमणीयं निरामयं । वसतेह प्रतिच्छन्ना ममागमनकाङ्क्षिणः ॥१०॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं स तान्समाश्वास्य व्यासः सत्यवतीसुतः । एकचक्रामभिगतः कुन्तीमाश्वासयन्प्रभुः ॥११॥

व्यास उवाच—

जीवत्पुत्रि सुतस्येयं धर्मनित्यो युधिष्ठिरः । धर्मेण पृथिवीं जित्वा महात्मा पुरुषर्षभः ॥
पृथिव्यां पार्थिवान्सर्वान्प्रशासिष्यति धर्मराट् ॥१२॥
पृथिवीमखिलां जित्वा सर्वां सागरमेखलां । भीमसेनार्जुनबलाद्भोक्ष्यते नात्र संशयः ॥१३॥
पुत्रास्तव च माद्रयाश्च सर्व एव महारथाः । स्वराष्ट्रे विहरिष्यन्ति सुखं सुमनसः सदा ॥१४॥
यक्ष्यन्ति च नरव्याघ्रा निर्जित्य पृथिवीमिमां । राजसूयाश्वमेधाद्यैः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥१५॥

हूँ,। तुम लोगों के साथ धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जो व्यवहार किया है उसके कारण तुम लोगों को दुःखी नहीं होना चाहिए, हताश नहीं होना चाहिए, इससे तुम लोगों का कल्याण ही होगा ॥७॥ दुर्योधन आदि तथा तुम लोग हमारे लिए दोनों ही समान हो इसमें सन्देह नहीं । पर मनुष्य स्वभाव यह है कि वह दुखियों और बालकों पर दया करता है ॥८॥ इस समय तुम लोग दुःख में पड़े हो इस कारण मेरा स्नेह तुम लोगों पर अधिक हो गया है । उसी स्नेह के कारण मैं तुम लोगों का हित करना चाहता हूँ; अतएव तुम लोग मेरी बात ध्यान लगाकर सुनो ॥९॥ यहाँ से पास ही एक सुन्दर रमणीय नगर है, वहाँ की जलवायु अच्छी है, वहाँ कोई रोग भी नहीं है । वहाँ जाकर तुम लोग छिपकर तब तक रहो जब तक मैं लौट न आऊँ । अर्थात् वहाँ रहकर तुम लोग मेरे आने की प्रतीक्षा करो ॥१०॥

वैशम्पायन बोले—सत्यवती पुत्र व्यासदेव ने इस प्रकार पाण्डवों को समझाया, उन्हें आश्वासन दिया । एकचक्रा नगरी में जाने के समय उन्होंने कुन्ती को भी बहुत समझाया । भविष्य में उन्नति की आशा दिलाकर उन्हें आश्वासन दिया ॥११॥

व्यासदेव बोले—हे चिरंजीवि पुत्रि, धर्म में सदा दृढ़ रहने वाला तुम्हारा पुरुषश्रेष्ठ यह पुत्र, धर्मपूर्वक पृथिवी को जीतेगा और पृथिवी के समस्त राजाओं पर शासन करेगा ॥१२॥ भीमसेन, अर्जुन के बल से यह समुद्र पर्यन्त पृथिवी को जीतेगा और उसका भोग करेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥१३॥ तुम्हारे और माद्री के सभी पुत्र महारथ होंगे । प्रसन्न मन होकर सुख पूर्वक अपने राज्य में ये लोग विहार करेंगे ॥१४॥ इस समग्र पृथिवी को जीतकर ये नरश्रेष्ठ, राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञ करेंगे और उन यज्ञों में खूब अधिक दक्षिणा देंगे ॥१५॥ ये अपने मित्रों

अनुगृह्य सुहृद्वर्गं भोगैश्वर्यसुखेन च। पितृपैतामहं राज्यमिमे भोक्ष्यन्ति ते सुताः ॥१६॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा निवेश्यैनान्ब्राह्मणस्य निवेशने। अब्रवीत्पाण्डवश्रेष्ठमृषिर्द्वैपायनस्तदा ॥१७॥
इह मां सम्प्रतीक्षध्वमागमिष्याम्यहं पुनः। देशकालौ विदित्वैव लभध्वं परमां मुदं ॥१८॥
स तैः प्राञ्जलिभिः सर्वैस्तथेत्युक्तो नराधिप। जगाम भगवान् व्यासो यथागतमृषिः प्रभुः ॥१९॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि हिडिम्बवधपर्वणि एकचक्राप्रवेशे व्यासदर्शनं नाम षष्ठपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥ हिडिम्बवधपर्व समाप्तं।

को भोग ऐश्वर्य आदि देकर सुखी करेंगे और पिता, पितामह के राज्य का भोग करेंगे। अर्थात् ये अपना राज्य प्राप्त करेंगे ॥१६॥

वैशम्पायन बोले—व्यासदेव पाण्डवों तथा कुन्ती को इस प्रकार समझा कर और एकचक्रा नगरी में उनको ठहरा कर युधिष्ठिर से इस प्रकार बोले ॥१७॥ एक मास तक तुम लोग मेरी प्रतीक्षा करो, मैं पुनः आऊँगा, देश और काल का विचार करके यदि तुम लोग चलोगे तो आनन्द उठाओगे, तुम्हारा कल्याण होगा ॥१८॥ राजन्, पाण्डवों ने हाथ जोड़कर महर्षि व्यासदेव से कहा—अच्छा, हम लोग आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। इसके पश्चात् ऋषि व्यासदेव जी जहां से आये थे वहां चले गये। अपने आश्रम पर चले गये ॥१९॥

षट्पंचाशदधिक शततम अध्याय। हिडिम्बवधपर्व समाप्त।

बकवधपर्व

जनमेजय उवाच—

एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः। अत ऊर्ध्वं द्विजश्रेष्ठ किमकुर्वत पाण्डवाः ॥१॥

वैशम्पायन उवाच—

एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः। ऊषुर्नातिचिरं कालं ब्राह्मणस्य निवेशने ॥२॥
रमणीयानि पश्यन्तो वनानि विविधानि च। पार्थिवानपि चोद्देशान्सरितश्च सरांसि च ॥३॥
चेरुर्भैक्षं तदा ते तु सर्व एव विशाम्पते। बभूवुर्नागराणां च गुणैः संप्रियदर्शनाः ॥४॥
निवेदयन्तिस्म तदा कुन्त्या भैक्षं सदा निशि। तया विभक्तान्भागांस्ते भुञ्जतेस्म पृथक्पृथक् ॥५॥
अर्धं ते भुञ्जते वीराः सहमात्रा परन्तपाः। अर्धं सर्वस्य भैक्षस्य भीमो भुङ्क्ते महाबलः ॥६॥
तथा तु तेषां वसतां तस्मिन् राष्ट्रे महात्मनाम्। अतिचक्राम सुमहान्कालोऽथ भरतर्षभ ॥७॥
ततः कदाचिद्भैक्षाय गतास्ते पुरुषर्षभाः। संगत्या भीमसेनस्तु तत्रास्ते पृथया सह ॥८॥
अथार्त्तिजं महाशब्दं ब्राह्मणस्य निवेशने। भृशमुत्पतितं घोरं कुन्ती शुश्राव भारत ॥९॥
रोरूयमाणांस्तान्दृष्ट्वा परिदेवयतश्च सा। कारुण्यात्साधुभावाच्च कुन्ती राजन्न चक्षमे ॥१०॥
मथ्यमानेव दुःखेन हृदयेन पृथा तदा। उवाच भीमं कल्याणी कृपान्वितमिदं वचः ॥११॥

भिक्षाटन से पाण्डवों का निर्वाह करना और ब्राह्मण का विलाप।

जनमेजय बोले—ब्राह्मणश्रेष्ठ, कुन्तीपुत्र महारथ पाण्डव जब एकचक्रा नाम की नगरी में आये तब वहां रहकर उन लोगों ने क्या किया ॥१॥

वैशम्पायन बोले—कुन्तीपुत्र महारथ वे पाण्डव एकचक्रा नगरी में आकर थोड़े ही दिन वहां ब्राह्मण के घर में रहे ॥२॥ वहां के भिन्न भिन्न सुन्दर वनों, मैदानों, नदियों और तालाबों को उन्होंने देखा ॥३॥ राजन्, वे सभी पाण्डव, वहां भिक्षा से निर्वाह करते थे, वे अपने गुणों से नगरवासियों के प्रिय हो गये ॥४॥ भिक्षा में जो कुछ मिलता था वह लाकर वे सन्ध्या को कुन्ती को दे देते थे और कुन्ती के विभाग कर देने पर वे अपना अपना भाग खाते थे ॥५॥ भिक्षा के आधे भाग में माता के साथ चारो पाण्डव खाते थे और समूची भिक्षा का आधा भाग महाबली भीमसेन अकेला खाते थे ॥६॥ भरतश्रेष्ठ जनमेजय, महात्मा पाण्डवों को उस नगरी में रहते रहते बहुत समय बीत गया ॥६॥ एक दिन पुरुषश्रेष्ठ चारो पाण्डव भिक्षा के लिए गये थे और भीमसेन वहीं रह गये थे, कुन्ती अकेली थी ॥८॥ उस समय उस ब्राह्मण के घर में विलाप का शब्द सुन पड़ा, वह विलाप का शब्द बराबर बढ़ता गया। जनमेजय, कुन्ती ने भी वह शब्द सुना ॥९॥ उन लोगों का रोना और विलाप करना सुनकर अपनी दयालुता और सज्जनता के कारण कुन्ती अधीर हो गयीं, वे उन लोगों का दुःख सह न सकीं ॥१०॥ उनका हृदय दुःख से व्यथित होने लगा, अत-

वसाम सुसुखं पुत्र ब्राह्मणस्य निवेशने। अज्ञाता धार्तराष्ट्रस्य सत्कृता वीतमन्यवः ॥१२॥
सा चिन्तये सदा पुत्र ब्राह्मणस्यास्य किं न्वहम्। प्रियं कुर्यामिति गृहे यत्कुर्युरुषिताः सुखम् ॥१३॥
एतावान्पुरुषस्तात कृतं यस्मिन्न नश्यति। यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्यादभ्यधिकं ततः ॥१४॥
तदिदं ब्राह्मणस्यास्य दुःखमापतितं ध्रुवम्। तत्रास्या यदि साहाय्यं कुर्यामुपकृतं भवेत् ॥१५॥
भीमसेन उवाच—
ज्ञायतामस्य यद्दुःखं यतश्चैव समुत्थितम्। विदित्वा व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥१६॥
वैशम्पायन उवाच—
एवं तौ कथयन्तौ च भूयः शुश्रुवतुः स्वनम्। आर्तिजं तस्य विप्रस्य सभार्यास्य विशाम्पते ॥१७॥
ब्राह्मण उवाच—
धिगिदं जीवितं लोके गतसारमनर्थकम्। दुःखमूलं पराधीनं भृशमप्रियभागि च ॥२०॥
जीविते परमं दुःखं जीविते परमो ज्वरः। जीविते वर्तमानस्य दुःखानामागमो ध्रुवः ॥२१॥

एव कल्याणी कुन्ती इस प्रकार दयायुक्त वचन भीमसेन से बोलीं ॥११॥ पुत्र, इस ब्राह्मण के घर में हमलोग सुख पूर्वक रहते हैं। यहां रहने से धृतराष्ट्र को भी हमारा पता नहीं लगा है। यह ब्राह्मण भी हम लोगों का आदर करता है। यहां हमें कोई कष्ट नहीं है ॥१२॥ मैं सदा यह सोचा करती हूं कि इसका कौन प्रिय कार्य करूँ जो सुखपूर्वक इसके घर में रहने का प्रतिफल हो ॥१३॥ पुत्र, वही पुरुष है जो किसी के किये उपकार को भूल न जाय, किन्तु उसका कोई जितना उपकार करे उसके दूना उसका उपकार कर दे ॥१४॥ मालूम होता है कि आज इस ब्राह्मण पर कोई दुःख आ पड़ा है। यदि इस समय मैं इसकी कोई सहायता कर सकी तो अवश्य ही इसका बड़ा उपकार होगा ॥१५॥

भीमसेन बोले—आप इसका पता लगावें कि इस ब्राह्मण को क्या दुःख है और उस दुःख का कारण क्या है। इसका पता लग जाने पर मैं उसे दूर करने का प्रयत्न करूँगा, चाहे वह कितना ही कठिन क्यों न हो ॥१६॥

वैशम्पायन बोले—राजन्, कुन्ती और भीमसेन बातें कर रहे थे उस समय उन लोगों ने पुनः उस ब्राह्मण और उसकी स्त्री का दुःखमय विलाप सुना ॥१७॥ कुन्ती शीघ्र ही उस महात्मा ब्राह्मण के घर के भीतर गयीं, जिस प्रकार गौ अपने बँधे बछड़े के पास दौड़ी दौड़ी जाती है ॥१८॥ वहां कुन्ती ने ब्राह्मण को अपनी स्त्री कन्या और पुत्र के साथ सिर झुकाये बैठा देखा ॥१९॥

ब्राह्मण बोला—इस अनर्थक जीवन को धिक्कार है, जिसमें कुछ आनन्द नहीं है। यह पराधीन जीवन दुःखों का मूल है। इस जीवन में सदा अप्रिय काम करने और देखने पड़ते हैं ॥२०॥ जीवन में बड़ा दुःख है, यह एक प्रकार का भयंकर ज्वर है जो तपाया करता है। जो लोग जीवित रहते हैं उनको अवश्य ही दुःख भोगना पड़ता है ॥२१॥ धर्म अर्थ और काम का

आत्मा ह्येको हि धर्मार्थौ कामं चैव निषेवते । एतैश्च विप्रयोगोऽपि दुःखं परमनन्तकम् ॥२२॥
आहुः केचित्परं मोक्षं स च नास्ति कथंचन । अर्थप्राप्तौ तु नरकः कृत्स्न एवोपपद्यते ॥२३॥
अर्थेप्सुता परं दुःखमर्थप्राप्तौ ततोऽधिकम् । जातस्नेहस्य चार्थेषु विप्रयोगे महत्तरम् ॥२४॥
नहि योगं प्रपश्यामि येन मुच्येयमापदः । पुत्रदारेण वा सार्धं प्राद्रवेयमनामयम् ॥२५॥
यतितं वै मया पूर्वं वेत्थ ब्राह्मणि तत्तथा । क्षेमं यतस्ततो गन्तुं त्वया तु मम न श्रुतम् ॥२६॥
इह जाता विवृद्धाऽस्मि पिता चापि ममेति वै । उक्तवत्यसि दुर्मेधे याच्यमाना मयाऽसकृत् ॥२७॥
स्वर्गतोऽपि पिता वृद्धस्तथा माता चिरं तव । बान्धवा भूतपूर्वाश्च तत्र वासे तु का रतिः ॥२८॥
सोऽयं ते बन्धुकामाया अकुर्वन्त्या वचो मम । बन्धुप्रणाशः संप्राप्तो भृशं दुःखकरो मम ॥२९॥
अथवा मद्विनाशोऽयं न हि शक्ष्यामि कंचन । परित्यक्तुमहं बन्धुं स्वयं जीवन्नृशंसवत् ॥३०॥
सहधर्मचरीं दान्तां नित्यं मातृसमां मम । सखायं विहितां देवैर्नित्यं परमिकां गतिम् ॥३१॥
पित्रा मात्रा च विहितां सदा गार्हस्थ्यभागिनीम् । वरयित्वा यथान्यायं मन्त्रवत्परिणीय च ॥३२॥

उपभोग एक आत्मा (मन) करता है । पर इन तीनों में किसी एक पर वह अधिक आसक्त हो गया और उसका अभाव हुआ, वह वस्तु नहीं मिली तो कष्ट और अधिक बढ़ जाता है ॥२२॥ कई लोग कहते हैं कि मोक्ष में परम सुख है । पर उसके प्राप्त होने की कौन सम्भावना है । क्या वह हम लोगों को मिल सकती है । धन मिलनेसे भी सुख नहीं होता, धन मिला, मानों नरक का द्वार ही खुल गया ॥२३॥ धन की लालसा से बड़ा दुःख होता है, धन मिल गया तो दुःख और अधिक बढ़ गया । जिनका धन में प्रेम हो गया है, धन नाश होने पर उनको बड़ा दुःख होता है ॥२४॥ मैं कोई ऐसा उपाय नहीं देखता जिससे मनुष्य जीवन में दुःख से छुटकारा हो, वर्तमान दुःख भी जीवन धारण करने के ही कारण हम पर आया है । स्त्री पुत्र के साथ मैं यहां से भाग जाऊँ तो रक्षा हो सकती है ॥२५॥ ब्राह्मणि, मैंने ऐसा करने का उद्योग पहले किया था और यहां से भाग जाने से हम लोगों का कल्याण भी होता, पर तुमने मेरी बात न सुनी ॥२६॥ मैंने बार बार तुमसे यह स्थान छोड़ने का अनुरोध किया, पर मूर्खा तुमने मुझसे यही कहा कि मैं यहां उत्पन्न हुई, मेरे माता पिता यहीं उत्पन्न हुए और बढ़े यह स्थान कैसे छोड़ूं । ॥२७॥ तुम्हारे बूढ़े पिता और माता बहुत दिन हुए स्वर्ग चली गईं, तुम्हारे पुराने बान्धव भी स्वर्ग चले गये, फिर इस जगह रहने में न मालूम तुम्हारा क्या अनुराग था ॥२८॥ इस प्रकार बान्धवों के प्रेम के कारण तुमने मेरी बात नहीं सुनी, जिससे आज समस्त बान्धवों के नाश का समय आ गया, जिससे मुझे अत्यन्त दुःख हो रहा है ॥२९॥ अब तो मेरा भी विनाश होने ही वाला है । क्यों कि ऐसा नहीं हो सकता कि निर्दय के समान स्वयं अपने जीने के लिये मैं अपने बान्धव का त्याग करूँ ॥३०॥ ऐसा है भी कौन, जिसका मैं त्याग कर सकता हूँ । तुम मेरे धर्म कर्म में सहायता देनेवाली हो और इन्द्रियों को वश में रखकर माता के समान मेरी देखरेख रखने वाली हो । अग्निदेव को साक्षी बनाकर मैंने तुमको अपनी सखी बनाया है, तुम आश्रय हो ॥३१॥ मेरे पिता और माता ने तुम्हें हमारी गृहस्थी में भाग दिया है, मैंने धर्मानुसार तुम्हारा वरण किया

कुलीनां शीलसम्पन्नामपत्यजननीमपि । त्वामहं जीवितस्यार्थे साध्वीमनपकारिणीम् ॥२३॥
परित्यक्तुं न शक्ष्यामि भार्यां नित्यमनुव्रताम् । कुत एव परित्यक्तुं सुतं शक्ष्याम्यहं स्वयम् ॥३४॥
बालामप्राप्तवयसमजातव्यञ्जनाकृतिम् । भर्तुरर्थाय निक्षिप्तां न्यासं धात्रा महात्मना ॥३५॥
यया दौहित्रजाँल्लोकानाशंसे पितृभिः सह । स्वयमुत्पाद्य तां बालां कथमुत्स्रष्टुमुत्सहे ॥३६॥
मन्यन्ते केचिदधिकं स्नेहं पुत्रे पितुर्नराः । कन्यायां केचिदपरे मम तुल्यावुभौ स्मृतौ ॥३७॥
यस्यां लोकः प्रसूतिश्च स्थिता नित्यमथो सुखम् । अपापां तामहं बालां कथमुत्स्रष्टुमुत्सहे ॥३८॥
आत्मानामपि चोत्सृज्य तप्स्यामि परलोकगः । त्यक्ता ह्येते मयाऽव्यक्तं नेह शक्ष्यन्ति जीवितुम् ॥३९॥
एषां चान्यतमत्यागो नृशंसो गर्हितो बुधैः । आत्मत्यागे कृते चेमे मरिष्यन्ति मया विना ॥४०॥
स कृच्छ्रामहमापन्नो न शक्तस्तर्तुमापदम् । अहो धिक्कृतां गतिं त्वद्य गमिष्यामि सबान्धवः ।
सर्वैः सह मृतं श्रेयो न च मे जीवितुं क्षमम् ॥४१॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि बकवधपर्वणि ब्राह्मणचिन्तायां
सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥

है और मंत्रों के द्वारा तुम्हारा पाणि ग्रहण किया है ॥३२॥ तुम कुलवती और शीलवती हो, तुमने मेरे लिये पुत्र उत्पन्न किये हैं। अपने जीवन के लिये उस सती अनपकारिणी भार्या का त्याग मैं नहीं कर सकता, वह सदा मेरी अनुगामिनी है, ऐसी भार्या का त्याग करना क्या सम्भव है। फिर अपने पुत्र का ही त्याग मैं कैसे कर सकता हूँ ॥३३-३४॥ यह अभी बिलकुल बालक है, अभी इसके अंग भी पुष्ट नहीं हुए हैं इसको मैं अपने लिए कैसे छोड़ सकता हूँ। कन्या को भी मैं नहीं छोड़ सकता। वह तो किसी सत्पात्र को सौंपने के लिए विधाता की दी हुई थाती है ॥३५॥ उस कन्या के पुत्र के द्वारा मुझे और मेरे पितरों को शुभ लोक मिलेंगे। जिस कन्या को मैंने स्वयं उत्पन्न किया है उसका त्याग मैं कैसे कर सकता हूँ ॥३६॥ कई मनुष्य समझते हैं कि पुत्र पर पिता का अधिक स्नेह होता है, कई कन्या पर ही अधिक स्नेह रखते हैं पर मेरे लिए तो कन्या और पुत्र दोनों ही बराबर हैं ॥३७॥ जिससे परलोक सुधरता है, वंश की रक्षा होती है इस लोक में सुख होता है उस निष्पाप कन्या का भला मैं कैसे त्याग कर सकता हूँ ॥३८॥ यदि मैं अपने ही शरीर का त्याग करके परलोक चला जाऊँगा तो भी ठीक नहीं होगा। उस अवस्था में भी मुझे इनका त्याग करना पड़ेगा और मेरे त्याग करने पर इनका जीवन असम्भव हो जायगा ॥३९॥ इनमें से किसी का भी त्याग करना अत्यन्त निर्दय काम होगा. ऐसे कामों की विद्वानों ने निन्दा की है। यदि मैं आत्म त्याग करदूँ तो मेरे बिना ये सब मेरे परिवार वाले मर जायंगे ॥४०॥ इस प्रकार मैं बड़ी घोर विपत्तियों में फँस गया हूं। इस विपत्ति से उद्धार नहीं हो सकता। धिक्कार है। बान्धवों के साथ मेरी क्या गति होगी। अब सब के साथ मेरा मरना ही उत्तम है, अब जीना नहीं हो सकता ॥४१॥

सप्त पंचाशदधिक शततम अध्याय।

ब्राह्मण्युवाच—

न सन्तापस्त्वया कार्यः प्राकृतेनेव कर्हिचित् । न हि सन्तापकालोऽयं वैद्यस्य तव विद्यते ॥१॥
अवश्यं निधनं सर्वैर्गन्तव्यमिह मानवैः । अवश्यभाविन्यर्थे वै सन्तापो नेह विद्यते ॥२॥
भार्या पुत्रोऽथ दुहिता सर्वमात्मार्थमिष्यते । व्यथां जहि सुबुद्ध्या त्वं स्वयं यास्यामि तत्र च ॥३॥
एतद्धि परमं नार्याः कार्यं लोके सनातनम् । प्राणानपि परित्यज्य यद्भर्तुर्हितमाचरेत् ॥४॥
तच्च तत्र कृतं कर्म तवापीदं सुखावहम् । भवत्यमुत्र चाक्षय्यं लोकेऽस्मिंश्च यशस्करम् ॥५॥
एष चैव गुरुर्धर्मो यं प्रवक्ष्याम्यहं तव । अर्थश्च तव धर्मश्च भूयानत्र प्रदृश्यते ॥६॥
यदर्थमिष्यते भार्या प्राप्तः सोऽर्थस्त्वयामयि । कन्या चैका कुमारश्च कृताऽहमनृणा त्वया ॥७॥
समर्थः पोषणे चासि सुतयो रक्षणे तथा । न त्वहं सुतयोः शक्ता तथा रक्षणपोषणे ॥८॥
मम हि त्वद्विहीनायाः सर्वप्राणधनेश्वर । कथं स्यातां सुतौ बालौ भरेयं च कथं त्वहम् ॥९॥
कथं हि विधवाऽनाथा बालपुत्रा विना त्वया । मिथुनं जीवयिष्यामि स्थिता साधुगते पथि ॥१०॥
अहंकृतावलिप्तैश्च प्रार्थ्यमानामिमां सुताम् । अयुक्तैस्तव सम्बन्धे कथं शक्ष्यामि रक्षितुम् ॥११॥

ब्राह्मणी का प्रस्ताव

ब्राह्मणी बोली—साधारण मनुष्यों के समान आपको कभी सन्ताप नहीं करना चाहिए। आप जैसे विद्वान् को ऐसे समय में सन्ताप नहीं करना चाहिए ॥१॥ सभी मनुष्यों को एक दिन अवश्य ही मरना होगा, अतएव जो बात अवश्य होने वाली है उसके लिए विद्वान् सन्ताप नहीं करते ॥२॥ स्त्री पुत्र और कन्या ये सभी मनुष्य के सुख के लिए होते हैं अतएव आप इस बात पर बुद्धिपूर्वक विचार करें और दुःख करना छोड़ दें। मैं स्वयं उस राक्षस के पास जाऊँगी और इस प्रकार आपके प्राण बचाऊँगी ॥३॥ स्त्री का यह परम धर्म है और यह उनका सनातन से चला आया धर्म है कि वे अपने प्राणों का त्याग करके भी पति का हित करें। अतएव मैं अपने उस धर्म का पालन करूँगी ॥४॥ मैं उस राक्षस के पास जाकर जो मैं अपने प्राण त्याग करूँगी उससे इस लोक तथा परलोक में मुझे अक्षय फल मिलेगा और उससे यश होगा। उस काम से आप को भी सुख मिलेगा ॥५॥ आपसे मैं जो धर्म कह रही हूँ वह महान् धर्म है ऐसा करने से इष्ट सिद्धि होगी और बड़ा धर्म भी होगा ॥६॥ स्त्री का जो प्रयोजन है वह आपने मुझसे पा लिया है। मुझसे एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई है इस प्रकार मैं आपसे अनृण हो गयी हूं ॥७॥ आप इन दोनों कन्या पुत्रों का पालन और रक्षण अच्छी तरह कर सकते हैं। पर आपके न रहने पर मैं न तो इनका पालन ही कर सकती हूँ और न रक्षा ही कर सकती हूं। हे मेरे प्राण और धन के ईश्वर, आपके न रहने पर मेरे ये दोनों पुत्र और पुत्री किस प्रकार रहेंगे मैं इनका पालन कैसे करूँगी ॥९॥ आपके न रहने पर मैं विधवा अनाथ हो जाऊंगी, ये मेरे बच्चे भी बालक ही रहेंगे, सन्मार्ग पर स्थित रह कर मैं इन बालकों को कैसे जीवित रख सकूँगी ॥१०॥ आपके न रहने पर अहङ्कारी कलङ्कित और अयोग्य मनुष्य मुझसे आपकी कन्या मागेंगे, व्याह करने के लिए कहेंगे, उनसे मैं आपकी कन्या की रक्षा कैसे कर सकूँगी। आपकी कन्या का व्याह, योग्य मनुष्य से मैं कैसे कर सकूँगी ॥११॥

उत्सृष्टमामिषं भूमौ प्रार्थयन्ति यथा खगाः । प्रार्थयन्ति जनाःसर्वे पतिहीनां तथा स्त्रियम् ॥१२॥
साऽहं विचाल्यमाना वै प्रार्थ्यमाना दुरात्मभिः । स्थातुं पथि न शक्ष्यामि सज्जनेष्टे द्विजोत्तम ॥१३॥
कथं तव कुलस्यैकामिमां बालामनागसम् । पितृपैतामहे मार्गे नियोक्तुमहमुत्सहे ॥१४॥
कथं शक्ष्यामि बालेऽस्मिन्गुणानाधातुमीप्सितान् । अनाथे सर्वतो लुप्ते यथा त्वं धर्मदर्शिवान् ॥१५॥
इमामपि च ते बालामनाथां परिभूय माम् । अनर्हाः प्रार्थयिष्यन्ति शूद्रा वेदश्रुतिं यथा ॥१६॥
तां चेदहं न दित्सेयं त्वद्गुणैरुपबृंहिताम् । प्रमथ्यैनां हरेयुस्ते हविर्ध्वांक्षा इवाध्वरात् ॥१७॥
सम्प्रेक्षमाणा पुत्रं ते नानुरूपमिवात्मनः । अनर्हवशमापन्नामिमां चापि सुतां तव ॥१८॥
अवज्ञाता च लोकेषु तथात्मानमजानती । अवलिप्तैर्नरैर्ब्रह्मन् मरिष्यामि न संशयः ॥१९॥
तौ च हीनौ मया बालौ त्वया चैव तथात्मजौ । विनश्येतां न सन्देहो मत्स्याविव जलक्षये ॥२०॥
त्रितयं सर्वथाऽप्येवं विनशिष्यत्यसंशयम् । त्वया विहीनं तस्मा त्वं मां परित्यक्तुमर्हसि ॥२१॥
व्युष्टिरेषा परा स्त्रीणां पूर्वं भर्तुः परां गतिम् । गन्तुं ब्रह्मन्सपुत्राणामिति धर्मविदो विदुः ॥२२॥

जिस प्रकार पक्षी पृथिवी पर पड़ा मांस चाहते हैं, रक्षक न रहने से उस मांस को वे उठा ले जाते हैं, उसी प्रकार पतिहीना स्त्री को सभी मनुष्य चाहने लगते हैं । रक्षक न होने से उसको अपनी बनाना चाहते हैं ॥१२॥ बार बार दुर्जनों की प्रार्थना से मैं विचलित हो सकती हूँ । हे द्विजश्रेष्ठ, वैसी दशा में मैं सज्जनों के प्रिय मार्ग में कैसे स्थिर रह सकती हूं ॥१३॥ तुम्हारे कुल की एक इस निरपराधिनी कन्या काज पिता पितामह के द्वारा जैसा सम्बन्ध होता आया है वैसा सम्बन्ध कैसे कर सकूंगी ॥१४॥ मैं इस बालक में क्या उन गुणों का प्रवेश करा सकूंगी, जिन गुणों का प्रवेश कराना आवश्यक है । धर्म-दर्शी आप इसको जैसा शिक्षित कर सकते हैं वैसा क्या आपके न रहने पर इस अनाथ की शिक्षा हो सकेगी ॥१५॥ तुम्हारी इस अनाथ कन्या से व्याह करने के लिए अयोग्य मनुष्य मेरी प्रार्थना करेंगे; मुझको दबावेंगे । जिस प्रकार शूद्र वेद पढ़ने की प्रार्थना करे ॥१६॥ तुम्हारे समान उत्तम गुणवाली यह कन्या यदि मैं उन लोगों को न दूंगी तो वे बलपूर्वक इसका हरण कर लेंगे, जिस प्रकार काक यज्ञ से हवि उठा ले जाता है ॥१७॥ मैं इन सबका कोई उपाय न कर सकूंगी । मैं केवल देखती रहूंगी कि तुम्हारा पुत्र तुम्हारे समान गुणी नहीं हुआ और तुम्हारी कन्या अयोग्य के हाथ में चली गयी ॥१८॥ उस समय लोग मेरा तिरस्कार करेंगे और मुझे अपने को भूल कर यह सब सहना पड़ेगा । अहङ्कारी मनुष्यों के द्वारा तिरस्कृत होकर निःसन्देह मुझे प्राण त्याग करना पड़ेगा ॥१९॥ हमारे पुत्र और पुत्री दोनों बालक हमारे और तुम्हारे न रहने के कारण अवश्य ही नष्ट हो जांयगे । जिस प्रकार जल के बिना मछलियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥२०॥ इस प्रकार तुम्हारे न रहने पर हम तीनों का नाश हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है । अतएव तुमको चाहिए कि मुझे तुम राक्षस के पास भेज दो ॥२१॥ ब्रह्मन्, धर्मात्मा कहते हैं कि यह स्त्रियों का परम भाग्य है कि वे पति के पहले ही पुत्र छोड़कर परलोक चली जांय ॥२२॥ मेरा जीवन आपके लिए है,

परित्यक्तः सुतश्चायं दुहितेयं तथा मया। बान्धवाश्च परित्यक्तास्त्वदर्थं जीवितं च मे ॥२३॥
यज्ञैस्तपोभिर्नियमैर्दानैश्च विविधैस्तथा। विशिष्यते स्त्रिया भर्त्तुर्नित्यं प्रियहिते स्थितिः ॥२४॥
तदिदं चिकीर्षामि धर्मं परमसंमतम्। इष्टं चैव हितं चैव तव चैव कुलस्य च ॥२५॥
इष्टानि चाप्यपत्यानि द्रव्याणि सुहृदःप्रियाः। आपद्धर्मप्रमोक्षाय भार्या चापि सतां मतम् ॥२६॥
आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि। आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥२७॥
दृष्टादृष्टफलार्थं हि भर्या पुत्रो धनं गृहम्। सर्वमेतद्विधातव्यं बुधानामेष निश्चयः ॥२८॥
एकतो वा कुलं कृत्स्नमात्मा वा कुलवर्धनः। न समं सर्वमेवेति बुधानामेष निश्चयः ॥२९॥
स कुरुष्व मया कार्यं तारयात्मानमात्मना। अनुजानीहि मामार्य सुतौ मे परिपालय ॥३०॥
अवध्यां स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये। धर्मज्ञान्राक्षसानाहुर्न हन्यात्स च मामपि ॥३१॥
निःसंशयं वधः पुंसां स्त्रीणां संशयितो वधः। अतो मामेव धर्मज्ञ प्रस्थापयितुमर्हसि ॥३२॥
भुक्तं प्रियाण्यवाप्तानि धर्मश्च चरितो महान्। त्वत्प्रसूतिःप्रिया प्राप्ता न मां तप्स्यत्यजीवितम् ॥३३॥

अतएव मैंने पुत्र कन्या और बान्धवों का भी त्याग करना निश्चित कर लिया है। इनको छोड़कर मैं आपके लिए उस राक्षस के पास जाना चाहती हूं ॥२३॥ अपने पति के प्रिय और हितकर कार्य करते रहने से बढ़कर स्त्री के लिए यज्ञ, तप, नियम तथा अनेक प्रकार के दान भी नहीं हैं ॥२४॥ अतएव मैं उस धर्म का पालन करना चाहती हूं। उस धर्म को सभी श्रेष्ठ समझते हैं। उसी धर्म का पालन करना इस समय उचित भी है। उससे तुम्हारा और तुम्हारे कुलका कल्याण होगा ॥२५॥ सन्तान, धन, प्रियमित्र और स्त्री ये सब आपत्ति के समय अपनी रक्षा के लिए हैं, यह सज्जनों की सम्मति है। अर्थात् ऐसा सदाचार है। अतएव ऐसा करने से आपकी निन्दा न होगी ॥२६॥ आपत्ति के समय के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए; धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिए और अपनी रक्षा स्त्री तथा धन के द्वारा करनी चाहिए ॥२७॥ स्त्री, पुत्र, धन और गृह से इस लोक तथा परलोक में कल्याण होता है अतएव विद्वानों का यह निश्चय है कि मनुष्य को इन सबका संग्रह करना चाहिए, ब्याह करना चाहिए, पुत्र उत्पन्न करना चाहिए; धन अर्जन करना चाहिए और घर बनवाना चाहिए ॥२८॥ विद्वान् कहते हैं कि एक ओर समूचा कुल और एक ओर स्वयं अपने को रखकर यदि तौला जाय तो ये दोनों बराबर नहीं हो सकते, क्योंकि कुल से अपना शरीर नहीं मिल सकता, पर अपना शरीर रहने से पुनः कुल हो जा सकता है ॥२९॥ अतएव आप मेरे द्वारा इस समय की विपत्ति टालें और अपनी रक्षा करें। आर्य, आप राक्षस के पास जाने की मुझे आज्ञा दें। आप मेरे बच्चों का पालन कीजिएगा ॥३०॥ धर्म का निर्णय करते हुए धर्मात्माओं ने स्त्रियों को अवध्य बतलाया है। राक्षस भी धर्मज्ञ होते हैं। अतएव सम्भव है वह मुझे न मारे ॥३१॥ वह राक्षस पुरुष का वध अवश्य करेगा, इसमें सन्देह नहीं है। पर स्त्री के वध में सन्देह है। सम्भव है स्त्री का वध न करे। अतएव हे धर्मज्ञ, आप मुझको ही वहां भेजें ॥३२॥ मैंने भोग, भोग लिये, मन की साध मिटाली। बड़े बड़े धर्मों का पालन किया, प्रिय सन्तानें भी हो चुकीं। अतएव मुझे अब मरने का दुःख नहीं है ॥३३॥ मेरे पुत्र हो गये हैं, मैं बूढ़ी भी हूं और

जातपुत्रा च वृद्धा च प्रियकामा च ते सदा। समीक्ष्यैतदहं सर्वं व्यवसायं करोम्यतः ॥३४॥
उत्सृज्यापि हि मामार्य प्राप्स्यस्यन्यामपि स्त्रियम्। ततः प्रतिष्ठितो धर्मो भविष्यति पुनस्तव ॥३५॥
न चाप्यधर्मः कल्याण बहुपत्नीकतां नृणाम्। स्त्रीणामधर्मः सुमहान्भर्तुः पूर्वस्य लङ्घने ॥३६॥
एतत्सर्वं समीक्ष्य त्वमात्मत्यागं च गर्हितम्। आत्मानं तारयाद्याशु कुलं चेमौ च दारकौ ॥३७॥
वैशम्पायन उवाच—
एवमुक्तस्तया भर्त्ता तां समालिङ्ग्य भारत। मुमोच बाष्पं शनकैः सभार्यो भृशदुःखितः ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि बकवधपर्वणि ब्राह्मणीवाक्ये
अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५८॥

वैशम्पायन उवाच—
तयोर्दुःखितयोर्वाक्यमतिमात्रं निशम्य तु। ततो दुःखपरीताङ्गी कन्या तावभ्यभाषत ॥१॥
किमेवं भृशदुःखार्त्तौ रोरुयेतामनाथवत्। ममापि श्रूयतां वाक्यं श्रुत्वा च क्रियतां क्षमम् ॥२॥
धर्मतोऽहं परित्याज्या युवयोर्नात्र संशयः। त्यक्तव्यां मां परित्यज्य त्राहि सर्वं मयैकया ॥३॥

आपका प्रिय कार्य करने को सदा उद्यत रहती हूँ। इन्हीं सब बातों को सोच विचार कर मैंने ऐसा करने का निश्चय किया है ॥३४॥ आर्य, यदि आप मेरा त्याग भी करेंगे तो आपको कोई कष्ट न होगा, क्योंकि आपको दूसरी स्त्री मिल जायगी, जिससे आपका गृहस्थ धर्म पुनः पालित होने लगेगा ॥३५॥ पुरुष को अनेक स्त्रियों से व्याह करने में भी अधर्म नहीं होता, पर स्त्री यदि एक पति को छोड़ कर दूसरा पति करे तो उसे अधर्म होता है ॥३६॥ आप इन सब बातों पर विचार करें। अपना नाश करना निन्दित है, इस बात पर भी ध्यान दें और अपनी, अपने कुलकी तथा इन बालकों की आप रक्षा करें। नाश से बचावें ॥३७॥

वैशम्पायन बोले—जनमेजय, ब्राह्मणी के ऐसा कहने पर ब्राह्मण उसका आलिङ्गन करके धीरे धीरे आंसू बहाने लगा। वे दोनों स्त्री पुरुष बड़े दुःखी हुए ॥३८॥

अष्ट पंचाशदधिक शततम अध्याय

कन्या का प्रस्ताव और पुत्र के बालोचित वचन से ब्राह्मण का प्रसन्न होना; कुन्ती का उनके पास जाना।

वैशम्पायन बोले—उन माता और पिता की बातें बहुत अधिक सुनने के कारण उनकी कन्या दुःखी हो गयी और वह उन दोनों से इस प्रकार बोली ॥१॥ आप लोग इतने दुःखी होकर अनाथ के समान क्यों रो रहे हैं। मेरी भी बात सुन लीजिए; फिर आप लोगों को जो उचित मालूम पड़े वह कीजिएगा ॥२॥ इसमें सन्देह नहीं कि एक दिन धर्मपूर्वक आप लोग हमारा त्याग करेंहींगे। हमें किसी को देहींगे। जब मेरा त्याग करना ही है; तब मुझे ही उस राक्षस के पास भेजकर आपलोग सब की रक्षा कर लीजिए ॥३॥ सन्तान की कामना इसीलिए की जाती

इत्यर्थमिष्यतेऽपत्यं तारयिष्यति मामिति । अस्मिन्नुपस्थिते काले तरध्वं प्लववन्मया ॥४॥
इह वा तारयेद्दुर्गादुत वा प्रेत्य भारत । सर्वथा तारयेत्पुत्रः पुत्र इत्युच्यते बुधैः ॥५॥
आकाङ्क्षते च दौहित्रान्मयि नित्यं पितामहाः । तत्स्वयं वै परित्रास्ये रक्षन्ती जीवितं पितुः ॥६॥
भ्राता च मम बालोऽयं गते लोकममुं त्वयि । अचिरेणैव कालेन विनश्येत न संशयः ॥७॥
तातेऽपि हि गते स्वर्गं विनष्टे च ममानुजे । पिण्डः पितृणां व्युच्छिद्येत्तत्तेषां विप्रियं भवेत् ॥८॥
पित्रा त्यक्ता तथा मात्रा भ्रात्रा चाहमसंशयम् । दुःखाद्दुःखतरं प्राप्य म्रियेयमतथोचिता ॥९॥
त्वयि त्वरोगे निर्मुक्ते माता भ्राता च मे शिशुः । सन्तानश्चैव पिण्डश्च प्रतिष्ठास्यत्यसंशयम् ॥१०॥
आत्मा पुत्रः सखा भार्या कृच्छ्रं तु दुहिता किल । स कृच्छ्रान्मोचयात्मानं मां च धर्मे नियोजय ॥११॥
अनाथा कृपणा बाला यत्र क्वचन गामिनी । भविष्यामि त्वया तात विहीना कृपणा सदा ॥१२॥
अथवाऽहं करिष्यामि कुलस्यास्य विमोचनम् । कृतसंस्था भविष्यामि कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥१३॥
अथवा यास्यसे तत्र त्यक्त्वा मां द्विजसत्तम । पीडिताऽहं भविष्यामि तदवेक्षस्व मामपि ॥१४॥
तदस्मदर्थं धर्मार्थं प्रसवार्थं च सत्तम । आत्मानं परिरक्षस्व त्यक्तव्यां मां च तं त्यज ॥१५॥

है कि वह मुझे तारे। अतएव इस उपस्थित सङ्कट में मुझे ही नौका बनाकर आप लोग अपना उद्धार कर लें ॥४॥ इस लोक के कष्टों से अथवा परलोक के कष्टों से जो उद्धार करे वह पुत्र है। तात्पर्य यह कि इस लोक या परलोक में कष्ट दूर करनेवाला पुत्र ही पुत्र है, यही पुत्र का फल है ॥५॥ हमारे पितर यह चाहते होंगे कि मेरे पुत्र हो और वह उन लोगों का उद्धार करे। पर मैं स्वयं अपने पिता की रक्षा करके उन लोगों का उद्धार करना चाहती हूँ ॥६॥ मेरा यह भाई अभी छोटा है; आपके परलोक चले जाने पर शीघ्र ही इसका नाश हो जायगा इसमें सन्देह नहीं ॥७॥ पिता के स्वर्ग जाने पर और मेरे छोटे भाई के मर जाने पर पितरों को पिण्ड देने वाला कोई नहीं रह जायगा और इससे उन लोगों का बड़ा अनिष्ट होगा ॥८॥ पिता माता और भाई जब कोई भी नहीं रह जायगा, तब मैं बड़े बड़े कष्ट भोग कर मर जाऊँगी। अनाथ के समान मरूँगी जैसा कि मुझे मरना नहीं चाहिए ॥९॥ यदि आपकी रक्षा इस सङ्कट से निर्विघ्न हो गयी तो मेरी माता और छोटे भाई की भी रक्षा हो जायगी और पितरों का पिण्ड भी लुप्त न होगा ॥१०॥ पुत्र आत्मा कहा जाता है, स्त्री मित्र कही जाती है और कन्या विपत्ति समझी जाती है। अतएव आप विपत्ति रूप कन्या का त्याग करें और अपनी रक्षा करें। इस प्रकार मुझे भी धर्मपालन का अवसर दें ॥११॥ पिता जी, जब आप न रहेंगे, तब मैं अनाथ दुःखिनी हो जाऊँगी। इधर उधर भटकती फिरूँगी। इस प्रकार मैं सदा के लिए दुःखिनी हो जाऊँगी ॥१२॥ अथवा मैं स्वयं इस कुल की रक्षा करूँगी, इस कठोर कर्म को करने से मेरी मृत्यु सफल समझी जायगी, क्योंकि इससे मेरे कुल की रक्षा होगी ॥१३॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, यदि आप मेरा त्याग करके स्वयं राक्षस के पास चले जाँयगे, तो मुझे कितना दुःख होगा, आप इसका भी विचार करलें; मेरे दुःख की ओर भी देखें ॥१४॥ अतएव हम लोगों के लिए, धर्म के लिए और सन्तान के लिए आप अपनी रक्षा करें

अवश्यकरणीये च मा त्वां कालोऽत्यगादयम् । किं त्वतः परमं दुःखं यद्वयं स्वर्गते त्वयि ॥१६॥
याचमानाः परादन्नं परिधावेमहि श्ववत् । त्वयि त्वरोगे निर्मुक्ते क्लेशादस्मात्सबान्धवे ॥
अमृतेव सती लोके भविष्यामि सुखान्विता ॥१७॥
इतः प्रदाने देवाश्च पितरश्चेति नः श्रुतम् । त्वया दत्तेन तोयेन भविष्यन्ति हिताय वै ॥१८॥
वैशम्पायन उवाच—
एवं बहुविधं तस्या निशम्य परिदेवितम् । पिता माता च सा चैव कन्या प्ररुरुदुस्त्रयः ॥१९॥
ततः प्ररुदितान्सर्वान्निशम्याथ सुतस्तदा । उत्फुल्लनयनो बालः कलमव्यक्तमब्रवीत् ॥२०॥
मा पिता रुद मा मातर्मा स्वसस्त्विति चाब्रवीत् । प्रहसन्निव सर्वांस्तानेकैकमनुसर्पति ॥२१॥
ततः सतृणमादाय प्रहृष्टः पुनरब्रवीत् । अनेनाहं हनिष्यामि राक्षसं पुरुषादकम् ॥२२॥
तथाऽपि तेषां दुःखेन परीतानां निशम्य तत् । बालस्य वाक्यमव्यक्तं हर्षः समभवन्महान् ॥२३॥
अयं काल इति ज्ञात्वा कुन्ती समुपसृत्य तान् । गतासूनमृतेनेव जीवयन्तीदमब्रवीत् ॥२४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि बकवधपर्वणि ब्राह्मणकन्यापुत्रवाक्ये
ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

और जिसका त्याग करना ही है उसका त्याग करें ॥१५॥ जो काम अवश्य करना है उसके लिए समय बिताना ठीक नहीं । अतएव आप मुझे जाने के लिए कहिए। इससे अधिक दुःख की बात क्या होगी कि आपके परलोक चले जाने पर दूसरों से अन्न मांगने के लिए मैं घर घर कुत्ते के समान दौड़ती फिरूँगी। यदि बान्धवों के साथ आपका इस सङ्कट से उद्धार हो गया तो मैं इस लोक में अमर और सुखी हो जाऊँगी ॥१६-१७॥ इस प्रकार कन्या को राक्षस के आहार के लिए देना उचित नहीं है। इससे देवता और पितर प्रसन्न नहीं होते ऐसा मैंने सुना है, पर जब आप उनको जल दान करेंगे तब वे प्रसन्न हो जायंगे और आपका कल्याण करेंगे ॥१८॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार का बहुत सा कन्या का विलाप सुनकर माता और पिता रोने लगे, उनके साथ कन्या भी रोने लगी ॥१९॥ इन सब को रोते देखकर उनका छोटा बच्चा प्रसन्न होकर मधुर और तोतली वाणी से इस प्रकार बोला ॥२०॥ वह बालक हँसता हुआ सब के पास गया और जाकर बोला कि पिताजी आप न रोएँ, माता आप भी न रोएँ, बहन तुम भी न रोओ ॥२१॥ पुनः एक लकड़ी उठा कर और खुश होकर इस प्रकार बोला—"मैं इसीसे उस मनुष्यभक्षी राक्षस को मारूँगा" ॥२२॥ यद्यपि वे सब दुःख से व्याकुल थे, तथापि उस बालक की तोतली वाणी सुनकर तथा उसका अद्भुत उत्साह देखकर उन लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई ॥२३॥ कुन्ती ने इसी अवसर को वहां जाने के लिए उपयुक्त समझा। वे उनके पास गयीं और मृतक समान उन सब को जीवन दान देती हुई इस प्रकार बोली ॥२४॥

ऊनषष्ट्याधिक शततम अध्याय ।

कुन्त्युवाच—

कुतो मूलमिदं दुःखं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः। विदित्वाऽप्यपकर्षेयं शक्यं चेदपकर्षितुम् ॥१॥

ब्राह्मण उवाच—

उपपन्नं सतामेतद्यद्ब्रवीषि तपोधने। न तु दुःखमिदं शक्यं मानुषेण व्यपोहितुम् ॥२॥
समीपे नगरस्यास्य बको वसति राक्षसः। ईशो जनपदस्यास्य पुरस्य च महाबलः ॥३॥
पुष्टो मानुषमांसेन दुर्बुद्धिः पुरुषादकः। रक्षत्यसुरराड्नित्यमिमं जनपदं बली ॥४॥
नगरञ्चैव देशं च रक्षोबलसमन्वितः। तत्कृते परचक्राच्च भूतेभ्यश्च न नो भयम् ॥५॥
वेतनं तस्य विहितं शालिवाहस्य भोजनम्। महिषौ पुरुषश्चैको यस्तदादाय गच्छति ॥६॥
एकैकश्चापि पुरुषस्तत्प्रयच्छति भोजनम्। स वारो बहुभिर्वर्षैर्भवत्यसुकरो नरैः ॥७॥
तद्विमोक्षाय ये केचिद्यतन्ते पुरुषाः क्वचित्। सपुत्रदारांस्तान्हत्वा तद्रक्षो भक्षयत्युत ॥८॥
वेत्रकीयगृहे राजा नायं नयमिहास्थितः। उपायं तं न कुरुते यत्नादपि स मन्द धीः।
अनामयं जनस्यास्य येन स्यादद्य शाश्वतम् ॥९॥

कुन्ती का प्रश्न। ब्राह्मण के द्वारा बक राक्षस का परिचय।

कुन्ती बोलीं—आप लोग किस कारण इतने दुःखी हो रहे हैं? मैं आप लोगों के दुःख का कारण ठीक ठीक जानना चाहती हूँ। जान कर मैं आप लोगों का दुःख दूर करने का प्रयत्न करूँगी, यदि दूर कर सकी ॥१॥

ब्राह्मण बोले—तपस्विनि, आप जो कह रही हैं, सज्जनों को वैसा ही कहना चाहिए। पर मेरा दुःख किसी मनुष्य के हटाये हटनेवाला नहीं है ॥२॥ इस नगर के पास ही बक नाम का एक राक्षस रहता है। वह महाबली राक्षस इस प्रान्त का तथा इस नगर का स्वामी है ॥३॥ वह मनुष्यभक्षी दुर्बुद्धि राक्षस मनुष्य का मांस खाकर बड़ा पुष्ट हुआ है। वह बलवान् राक्षसराज इस प्रान्त की रक्षा करता है ॥४॥ इस देश की तथा इस नगर की रक्षा वही राक्षसराज करता है, जिससे हम लोगों को दूसरे राज्यों से तथा प्राणियों से किसी प्रकार का भय नहीं होता। हम लोगों का कोई अनिष्ट नहीं होता ॥५॥ इसके लिए राक्षस को वेतन देना पड़ता है। वह वेतन है बीस खारी (एक परिमाण) चावल का भात, दो भैंसे, और एक मनुष्य, जो उस राक्षस का भोजन लेकर उसके पास जाय ॥६॥ एक एक मनुष्य उस राक्षस को भोजन देता है। बहुत वर्षों के बाद राक्षस को भोजन देने की बारी आती है। पर यह बात है बड़ी कठिन। उसको भोजन देना लोगों को रुचता नहीं ॥७॥ यदि कोई मनुष्य ऐसा प्रयत्न करता है जिससे उसे राक्षस को भोजन देना न पड़े, तो वह राक्षस उस मनुष्य को स्त्री पुत्र के साथ मार कर खा जाता है ॥८॥

वेत्रकीय नामक स्थान में यहाँ का राजा रहता है, पर वह नीति निपुण नहीं है और मूर्ख भी है, इससे ऐसा कोई उपाय भी नहीं करता, जिससे वह राक्षस मारा जाय और यहाँ के

एतदर्हा वयं नूनं वसामो दुर्बलस्य ये। विषये नित्यवास्तव्याः कुराजानमुपाश्रिताः ॥१०॥
ब्राह्मणाः कस्य वक्तव्याः कस्य वाच्छन्दचारिणः। गुणैरेते हि वत्स्यन्ति कामगाः पक्षिणो यथा ११॥
राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततो धनम्। त्रयस्य संचयेनास्य ज्ञातीन्पुत्रांश्च तारयेत् ॥१२॥
विपरीतं मया चेदं त्रयं सर्वमुपार्जितम्। तदिमामापदं प्राप्य भृशं तप्यामहे वयम् ॥१३॥
सोऽयमस्माननुप्राप्तो वारः कुलविनाशनः। भोजनं पुरुषश्चैकः प्रदेयं वेतनं मया ॥१४॥
न च मे विद्यते वित्तं संक्रेतुं पुरुषं क्वचित्। सुहृज्जनं प्रदातुं च न शक्ष्यामि कदाचन ॥१५॥
गतिं चान्यां न पश्यामि तस्मान्मोक्षाय रक्षसः। सोऽहं दुःखार्णवे मग्नो महत्यसुकरे भृशम् ॥१६॥
सहैवैतैर्गमिष्यामि बान्धवैरद्य राक्षसम्। ततो नः सहितान्क्षुद्रः सर्वानेवोपभोक्ष्यति ॥१७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि वकवधपर्वणि कुन्तीप्रश्ने षष्ट्य-
धिकशततमोऽध्यायः ॥१६०॥

वासियों का सङ्कट सदा के लिए टल जाय, उनकी रक्षा हो ॥९॥ हम लोग उसी के पात्र भी हैं, क्योंकि ऐसे कुबुद्धि और दुर्बल राजा के राज्य में रहते हैं ॥१०॥

ब्राह्मण तो किसी की बात नहीं सुनते, किसी की आज्ञा नहीं मानते। वे स्वेच्छाचारी होते हैं। वे गुणवान् राजा के राज्य में अथवा सुन्दर देश में रहते हैं। जिस प्रकार पक्षी स्वच्छन्द होते हैं; ब्राह्मण भी वैसे ही होते हैं ॥११॥ पहले राजा का आश्रय ग्रहण करना चाहिए तब व्याह करना चाहिए और इसके बाद धन संचय करना चाहिए। इन तीनों के संग्रह से ही मनुष्य अपने बान्धवों और पुत्रों का पालन कर सकता है। उनका दुःख दूर कर सकता है ॥१२॥ मैंने भी इन तीनों का संग्रह किया है, पर उलटी रीति से। इसी कारण इस विपत्ति में फँसकर हमलोग यह असीम कष्ट भोग रहे हैं ॥१३॥ आज उस राक्षस को भोजन देने की हमारी बारी है। आज मुझे उसको भोजन और एक मनुष्य देना पड़ेगा जिससे हमारे कुल का नाश हो जायगा ॥१४॥ मेरे पास इतना धन भी नहीं है कि कोई मनुष्य खरीदकर राक्षस के पास भेज दूं। अपने परिवार में से किसी को मैं राक्षस के पास भेजना नहीं चाहता। यह काम मुझसे कभी न हो सकेगा ॥१५॥ कोई ऐसा उपाय भी मैं नहीं देखता जिससे उस राक्षस से उद्धार हो सके। इसी भयंकर दुःख समुद्र में इस समय में मग्न हो रहा हूँ ॥१६॥ मैं आज अपने सब परिवारवालों को लेकर उस राक्षस के पास जाऊँगा, जिससे वह नीच राक्षस हम सब लोगों को साथ ही खा ले ॥१७॥

षष्ट्यधिक शततम अध्याय।

कुन्त्युवाच—

न विषादस्त्वया कार्यो भयादस्मात्कथंचन। उपायः परिदृष्टोऽत्र तस्मान्मोक्षाय रक्षसः ॥१॥
एकस्तव सुतो बालः कन्या चैका तपस्विनी। न चैतयोस्तथा पत्न्या गमनं तव रोचये ॥२॥
मम पञ्च सुता ब्रह्मंस्तेषामेको गमिष्यति। त्वदर्थं बलिमादाय तस्य पापस्य रक्षसः ॥३॥

ब्राह्मण उवाच—

नाहमेतत्करिष्यामि जीवितार्थी कथंचन। ब्राह्मणस्यातिथेश्चैव स्वार्थे प्राणान्वियोजयन् ॥४॥
न त्वेतदकुलीनासु नाधर्मिष्ठासु विद्यते। यद्ब्राह्मणार्थे विसृजेदात्मानमपि चात्मजम् ॥५॥
आत्मनस्तु वधः श्रेयो बोद्धव्यमिति रोचते। ब्रह्मवध्याऽऽत्मवध्या वा श्रेयानात्मवधो मम ॥६॥
ब्रह्मवध्या परं पापं निष्कृतिर्नात्र विद्यते। अबुद्धिपूर्वं कृत्वापि प्रायश्चित्तं हि विद्यते ॥७॥
न त्वहं वधमाकाङ्क्षे स्वयमेवात्मनः शुभे। परैः कृते वधे पापं न किंचिन्मयि विद्यते ॥८॥
अभिसन्धिकृते तस्मिन्ब्राह्मणस्य वधे मया। निष्कृतिं न प्रपश्यामि नृशंसं क्षुद्रमेव च ॥९॥
आगतस्य गृहं त्यागस्तथैव शरणार्थिनः। याचमानस्य च वधो नृशंसो गर्हितो बुधैः ॥१०॥
कुर्यान्न निन्दितं कर्म न नृशंसं कथंचन। इति पूर्वे महात्मान आपद्धर्मविदो विदुः ॥११॥

राक्षस के पास अपने पुत्र को भेजने को कुन्ती का प्रस्ताव।

कुन्ती बोलीं—अब आप लोग दुःख न करें। इस राक्षस के भय से आपलोगों की रक्षा का उपाय मुझे मालूम है ॥१॥ आपके एक ही पुत्र है, वह भी बालक है। बिचारी कन्या भी एक ही है। अतएव इन दोनों का तथा तुम्हारी स्त्री का राक्षस के यहाँ जाना मुझे अच्छा नहीं लगता ॥२॥ ब्रह्मन्, मेरे पांच पुत्र हैं। उनमें का एक तुम्हारे स्थान पर उस पापी राक्षस का भाजन लेकर चला जायगा ॥३॥

ब्राह्मण बोले—अपने जीने के लिए मैं ऐसा कभी नहीं कर सकता हूँ। अपने स्वार्थ के लिए ब्राह्मण का, विशेष कर अतिथि का प्राण लेना मैं नहीं चाहता ॥४॥ जो उत्तम कुल का नहीं है और अधर्मी है वह भी ऐसा करना पसन्द नहीं करेगा। ब्राह्मण के लिए अपना और अपने पुत्र का प्राण दे देना चाहिए मैं तो इसी को अपना कल्याण समझता हूँ। ब्राह्मण बध और अपना वध इन दोनों में मैं तो अपने वध को ही अच्छा समझता हूँ। ब्राह्मण वध की अपेक्षा आत्म वध में ही मेरी समझ से कम पाप है ॥५,६॥ अज्ञान से भी यदि ब्राह्मण वध हो जाय तो उससे बड़ा भारी पाप होता है, उसका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं है। इसकी अपेक्षा तो अपना वध ही मुझे अच्छा मालूम होता है ॥७॥ शुभे, मैं अपनी इच्छा से तो अपना वध करता नहीं हूँ। यदि दूसरा कोई मेरा वध कर दे तो इसमें मेरा क्या दोष? अतएव इसका पाप भी मुझे न होगा ॥८॥ यदि जान कर मैं ब्राह्मण का वध करूँगा तो इस नीच और क्रूर कर्म का कोई प्रायश्चित भी नहीं है ॥९॥ शरण के लिए घर पर आये हुए का त्याग और याचक का वध ये दोनों बड़े ही निन्दित और क्रूर काम हैं ॥१०॥ आपत्धर्म जानने वाले महात्मा कहते हैं कि आपत्ति के समय भी कोई निन्दित

श्रेयांस्तु सहदारस्य विनाशोऽद्य मम स्वयम् । ब्राह्मणस्य बधं नाहमनुमंस्ये कदाचन ॥१२॥

कुन्त्युवाच—

ममाप्येषा मतिर्ब्रह्मन्विप्रा रक्ष्या इति स्थिरा । न चाप्यनिष्टः पुत्रो मे यदि पुत्रशतं भवेत् ॥१३॥
न चासौ राक्षसः शक्तो मम पुत्रविनाशने । वीर्यवान्मन्त्रसिद्धश्च तेजस्वी च सुतो मम ॥१४॥
राक्षसाय च तत्सर्वं प्रापयिष्यति भोजनम् । मोक्षयिष्यति चात्मानमिति मे निश्चिता मतिः ॥१५॥
समागताश्च वीरेण दृष्टपूर्वाश्च राक्षसाः । बलवन्तो महाकाया निहताश्चाप्यनेकशः ॥१६॥
न त्विदं केषुचिद्ब्रह्मन्व्याहर्तव्यं कथंचन । विद्यार्थिनो हि मे पुत्रान्विप्रकुर्युः कुतूहलात् ॥१७॥
गुरुणा चाननुज्ञातो ग्राहयेद्यत् सुतो मम । न स कुर्यात्तथा कार्यं विद्ययेति सतां मतम् ॥१८॥
एवमुक्तस्तु पृथया स विप्रो भार्यया सह । हृष्टः संपूजयामास तद्वाक्यममृतोपमम् ॥१९॥
ततः कुन्ती च विप्रश्च सहितावनिलात्मजम् । तमब्रूतां कुरुष्वेति स तथेत्यब्रवीच्च तौ ॥२०॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि बकवधपर्वणि भीमबकवधांगीकारे
एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६१॥

अथवा क्रूर काम नहीं करना चाहिए ॥११॥ अतएव स्वयं मेरा ही स्त्री के साथ विनाश होना उत्तम है। अपने प्राणों के लिए ब्राह्मण बध की अनुमति मैं कभी नहीं दे सकता। अतएव यह आप का प्रस्ताव मुझे स्वीकार नहीं है ॥१२॥

कुन्ती बोली—ब्रह्मन्, मैं भी ऐसा ही समझती हूँ। ब्राह्मणों की रक्षा करनी चाहिए, मेरी भी यही सम्मति है। यदि मेरे सौ पुत्र भी होते तो उनमें एक भी भारी न होता ॥१३॥ पर मैं जानती हूँ कि वह राक्षस मेरे पुत्र का कुछ बिगाड़ नहीं सकता। वह मेरे पुत्र का नाश नहीं कर सकता; क्योंकि मेरा पुत्र तेजस्वी है, पराक्रमी है और उसे मन्त्र सिद्ध है ॥१४॥ मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि वह मेरा पुत्र राक्षस को भोजन दे आवेगा और अपनी भी रक्षा कर लेगा ॥१५॥ उस वीर से कई राक्षसों से भेंट हो चुकी है, यह मैंने देखा है और विशाल शरीर वाले अनेक बली राक्षसों को उसने मारा भी है ॥१६॥ ब्रह्मन्, पर यह बात आप किसी से कहिएगा मत नहीं तो उस विद्या को सीखने वाले विद्यार्थी मेरे पुत्र को तंग करने लगेंगे ॥१७॥ गुरू की आज्ञा के विना यदि मेरा पुत्र वह विद्या किसी को सिखावेगा तो वह विद्या निष्फल हो जायगी। वह उससे अपना कार्य सिद्ध नहीं कर सकेगा। यह बात साधु पुरुष कहते हैं ॥१८॥ कुन्ती के ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण और ब्राह्मणी बहुत प्रसन्न हुए और उन दोनों ने कुन्ती के अमृत तुल्य वचन की प्रशंसा की ॥१९॥ अनन्तर; कुन्ती और उस ब्राह्मण ने भीमसेन से राक्षस का भोजन ले जाने के लिए कहा। भीमसेन ने उन लोगों की बात स्वीकार की ॥२०॥

एकषष्ट्यधिक शततत अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

करिष्य इति भीमेन प्रतिज्ञातेऽथ भारत। आजग्मुस्ते ततः सर्वे भैक्षमादाय पाण्डवाः ॥१॥

आकारेणैव तं ज्ञात्वा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः। रहः समुपविश्यैकस्ततः पप्रच्छ मातरम् ॥२॥

युधिष्ठिर उवाच—

किं चिकीर्षत्ययं कर्म भीमो भीमपराक्रमः। भवत्यनुमते कच्चित्स्वयं वा कर्तुमिच्छति ॥३॥

कुन्त्युवाच—

ममैव वचनादेष करिष्यति परन्तपः। ब्राह्मणार्थे महत्कृत्यं मोक्षाय नागरस्य च ॥४॥

युधिष्ठिर उवाच—

किमिदं साहसं तीक्ष्णं भवत्या दुष्करं कृतम्। परित्यागं हि पुत्रस्य न प्रशंसन्ति साधवः ॥५॥

कथं परसुतस्यार्थे स्वसुतं त्यक्तुमिच्छसि। लोकवेदविरुद्धं हि पुत्रत्यागात्कृतं त्वया ॥६॥

यस्य बाहू समाश्रित्य सुखं सर्वे शयामहे। राज्यं चापहृतं क्षुद्रैराजिहीर्षामहे पुनः ॥७॥

यस्य दुर्योधनो वीर्यं चिन्तयन्नमितौजसः। न शेते रजनीः सर्वा दुःखाच्छकुनिना सह ॥८॥

यस्य वीरस्य वीर्येण मुक्ता जतुगृहाद्वयम्। अन्येभ्यश्चैव पापेभ्यो निहतश्च पुरोचनः ॥९॥

भिक्षा लेकर युधिष्ठिर आदि का लौटना; राक्षस के पास भीम के जाने की बात सुनकर युधिष्ठिर का दुखी होना; भीम का प्रभाव बतला कर कुन्ती का युधिष्ठिर को समझाना।

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय, जिस समय भीमसेन ने राक्षस को भोजन देने जाने की स्वीकृति दी; उसी समय भिक्षा लेकर चारों पाण्डव वहाँ आये ॥१॥ पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर ने भीम के स्वरूप से ही उनका अभिप्राय जान लिया। राक्षस के पास जाने की बात उन्हें मालूम हो गयी। माता कुन्ती को एकान्त में ले जाकर उन्होंने उनसे इस प्रकार पूछा ॥२॥

युधिष्ठिर बोले—महापराक्रमी भीमसेन यह क्या करने जा रहा है। क्या ऐसा करने की आपने उसे आज्ञा दी है या वह स्वयं यह काम करने जा रहा है ॥३॥

कुन्ती बोलीं—मेरे ही कहने से परन्तप भीमसेन, इस ब्राह्मण तथा इस नगर के कल्याण के लिए यह काम करने जा रहा है ॥४॥ युधिष्ठिर बोले—आपने यह बड़ा ही अद्भुत साहस किया है। आपको ऐसा नहीं करना चाहिए। सज्जन, पुत्र के त्याग की प्रशंसा नहीं करते ॥५॥ दूसरे के पुत्र के लिये तुम अपने पुत्र का बलिदान करना क्यों चाहती हो? पुत्र का त्याग करके तुमने यह लोक और वेद के विरुद्ध काम किया है ॥६॥ जिसके बाहु बल के भरोसे हम लोग सुख पूर्वक सोते हैं और नीचों के द्वारा हड़पे राज्य को पुनः लौटा लेना चाहते हैं ॥७॥ जिस असीम पराक्रमी के बलसे दुर्योधन सदा भयभीत रहता है, दुःख के कारण रात को शकुनि के साथ उसे नींद नहीं आती ॥८॥ जिस वीर के पराक्रम से हम लोगों का लाक्षागृह से उद्धार हुआ है; और भी अनेक विपत्तियाँ जिसके पराक्रम से दूर हुई हैं; तथा पुरोचन मारा गया है ॥९॥ जिसके पराक्रम के भरोसे हम

यस्य वीर्यं समाश्रित्य वसुपूर्णां वसुन्धराम् । इमां मन्यामहे प्राप्तां निहत्य धृतराष्ट्रजान् ॥१०॥
तस्य व्यवसितस्त्यागो बुद्धिमास्थाय कां त्वया । कच्चिन्नु दुःखैर्बुद्धिस्ते विलुप्ता गतचेतसः॥११॥
कुन्त्युवाच—
युधिष्ठिर न संतापस्त्वया कार्यो वृकोदरे । न चायं बुद्धिदौर्बल्याद्व्यवसायः कृतो मया ॥१२॥
इह विप्रस्य भवने वयं पुत्र सुखोषिताः । अज्ञाता धार्तराष्ट्राणां सत्कृता वीतमन्यवः ॥१३॥
तस्य प्रतिक्रिया पार्थ मयेयं प्रसमीक्षिता । एतावानेव पुरुषः कृतं यस्मिन्न नश्यति ॥१४॥
यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्याद्बहुगुणं ततः । दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तं तदा जतुगृहे महत् ।
हिडिम्बस्य वधाच्चैवं विश्वासो मे वृकोदरे ॥१५॥
बाह्वोर्बलं हि भीमस्य नागायुतसमं महत् । येन यूयं गजप्रख्या निर्व्यूढा वारणावतात् ॥१६॥
वृकोदरेण सदृशो बलेनान्यो न विद्यते । यो व्यतीयाद्युधि श्रेष्ठमपि चक्रधरं स्वयम् ॥१७॥
जातमात्रः पुरा चैव ममाङ्कात्पतितो गिरौ । शरीरगौरवादस्य शिला गात्रैर्विचूर्णिता ॥१८॥
तदहं प्रज्ञया ज्ञात्वा बलं भीमस्य पाण्डव । प्रतिकार्ये च विप्रस्य ततः कृतवती मतीम् ॥१९॥
नेदं लोभान्न चाज्ञानान्न च मोहाद्विनिश्चितम् । बुद्धिपूर्वं तु धर्मस्य व्यवसायः कृतो मया ॥२०॥

लोग इस बात की आशा रखते हैं कि धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर धन पूर्ण यह पृथिवी हम एक दिन पावेंगे ॥१०॥ उसी वीर का त्याग करने के लिए आप आज किस विचार से तयार हुई हैं। दुःख भोगते भोगते क्या आपकी बुद्धि मारी गयी है, आपका ज्ञान लुप्त हो गया है ॥११॥

कुन्ती बोलीं—युधिष्ठिर, भीमसेन के लिए तुम चिन्ता मत करो, बुद्धि नाश के कारण मैं यह काम करने नहीं जा रही हूँ ॥१२॥ पुत्र, यहाँ ब्राह्मण के घर में हम लोगों ने सुख पूर्वक निवास किया है। जिससे धृतराष्ट्र के पुत्रों को हमारा पता नहीं लगा है। यहाँ हम लोगों को कोई भी कष्ट नहीं हुआ है ॥१३॥ ब्राह्मण के इस उपकार का बदला चुकाने के लिए मैं यह काम करने जा रही हूँ। उपकारी का प्रत्युपकार करना ही मनुष्यत्व है ॥१४॥ जिस परिणाम में कोई उपकार करे उससे बहुत अधिक प्रत्युपकार कर देना ही मनुष्यत्व है। लाक्षागृह में भीमसेन का महान् पराक्रम मैं देख चुकी हूँ। उसने हिडिम्ब राक्षस का भी वध किया है, इससे मेरा उस पर विश्वास है। मैं जानती हूँ कि वह इस राक्षस का भी वध कर सकेगा ॥१५॥ भीमसेन की भुजाओं में दस हजार हाथियों का बल है। अतएव वह हाथी के समान विशाल आप लोगों को वारणावत से ढोकर यहाँ ले आया है ॥१६॥ भीमसेन के समान बली यहां दूसरा नहीं है। मैं तो समझती हूँ कि युद्ध में वह चक्रधारी विष्णु को भी जीत सकता है ॥१७॥ जिस समय वह उत्पन्न हुआ था उस समय एक दिन मेरी गोद से एक पत्थर पर गिर पड़ा, इसके शरीर के बोझ से वह पत्थर चूर चूर हो गया था ॥१८॥ पाण्डव, भीमसेन का यह बल देखकर ही, सोच विचार कर मैंने ब्राह्मण का प्रत्युपकार करने का निश्चय किया है ॥१९॥ लोभ से, मोह से, या अज्ञान से, मैंने ऐसा करने का विचार नहीं किया है। सोच विचार कर धर्मकी रक्षा के लिए मैंने यह उद्योग करना निश्चित किया है ॥२०॥

अर्थौ द्वावपि निष्पन्नौ युधिष्ठिर भविष्यतः । प्रतीकारश्च वासस्य धर्मश्च चरितो महान् ॥२१॥
यो ब्राह्मणस्य साहाय्यं कुर्यादर्थेषु कर्हिचित् । क्षत्रियः स शुभाँल्लोकाननुप्राप्नोति मे मतिः ॥२२॥
क्षत्रियस्यैव कुर्वाणः क्षत्रियो वधमोक्षणम् । विपुलां कीर्तिमाप्नोति लोकेऽस्मिंश्च परत्र च ॥२३॥
वैश्यस्यार्थे च साहाय्यं कुर्वाणः क्षत्रियो भुवि । स सर्वेष्वपि लोकेषु प्रजा रञ्जयते ध्रुवम् ॥२४॥
शूद्रं तु मोचयेद्राजा शरणार्थिनमागतम् । प्राप्नोतीह कुले जन्म सद्द्रव्ये राजपूजिते ॥२५॥
एवं मां भगवान्व्यासः पुरः पौरवनन्दन । प्रोवाचासुकरप्रज्ञस्तस्मादेवं चिकीर्षितम् ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि बकवधपर्वणि कुन्तीयुधिष्ठिरसंवादे
द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६२॥

युधिष्ठिर उवाच—
उपपन्नमिदं मातस्त्वया यद्बुद्धिपूर्वकम् । आर्तस्य ब्राह्मणस्यैतदनुक्रोशादिदं कृतम् ॥१॥
ध्रुवमेष्यति भीमोऽयं निहत्य पुरुषादकम् । सर्वथा ब्राह्मणस्यार्थे यदनुक्रोशात्करिष्यसि ॥२॥
यथा त्विदं न विन्देयुर्नरा नगरवासिनः । तथाऽयं ब्राह्मणो वाच्यः परिग्राह्यश्च यत्नतः ॥३॥

युधिष्ठिर, इससे दो लाभ होंगे । एक तो ब्राह्मण के घर में रहने का बदला चुकेगा, दूसरा एक बड़े धर्म का पालन होगा ॥२१॥ मैं समझती हूँ कि जो क्षत्रिय ब्राह्मण के किसी काम में उसकी सहायता करता है उसे उत्तम लोक प्राप्त होते हैं ॥२२॥ जो क्षत्रिय के प्राणों की रक्षा करे तो वह इस लोक तथा परलोक में विपुल कीर्ति पाता है ॥२३॥ यदि कोई क्षत्रिय वैश्य की सहायता करे तो वह समस्त लोकों की प्रजा को प्रसन्न करता है ॥२४॥ यदि कोई शूद्र उसकी शरण में आये और वह उसकी रक्षा करे तो उसका जन्म राजा के द्वारा सम्मानित धनी कुल में होता है ॥२५॥ हे युधिष्ठिर, यह बात भगवान् व्यासदेव ने मुझसे पहले कही थी । उन महाबुद्धिमान् के कहने के कारण ही मैं भीमसेन को राक्षस के पास भेज रही हूँ ॥२६॥

द्विषष्ट्यधिक शततम अध्याय ।

अन्न लेकर भीमसेन का जाना । उस अन्न को स्वयं खाना । राक्षस के साथ युद्ध ।
राक्षस का भीम के द्वारा मारा जाना ।

युधिष्ठिर बोले—माता, आपने सोच विचार कर ऐसा निश्चय किया है तब यह ठीक ही है । दुःखी ब्राह्मण का दुःख दूर करने के लिए आपने यह काम करना निश्चिय किया है ॥१॥ निश्चय ही उस पुरुषभक्षी राक्षस को मार भीमसेन लौट आवेगा, क्योंकि ब्राह्मण के दुःख से दयार्द्र होकर आप यह काम कर रही हैं ॥२॥ पर उस ब्राह्मण से कह दीजिए और उसे अच्छी तरह समझा भी दीजिए कि वह इस बात को नगरवासियों से न कहे । जिससे नगरवासी इस बात को न जानने पावें ॥३॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो रात्र्यां व्यतीतायामन्नमादाय पाण्डवः । भीमसेनो ययौ तत्र यत्रासौ पुरुषादकः ॥४॥
आसाद्य तु वनं तस्य रक्षसः पाण्डवो बली । आजुहाव ततो नाम्ना तदन्नमुपपादयन् ॥५॥
ततः स राक्षसः क्रुद्धो भीमस्य वचनात्तदा । आजगाम सुसंक्रुद्धो यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥६॥
महाकायो महावेगो दारयन्निव मेदिनीम् । लोहिताक्षः करालश्च लोहितश्मश्रुमूर्धजः ॥७॥
आकर्णाद्भिन्नवक्त्रश्च शङ्कुकर्णो विभीषणः । त्रिशिखां भृकुटिं कृत्वा संदश्य दशनच्छदम् ॥८॥
भुञ्जानमन्नं तं दृष्ट्वा भीमसेनं स राक्षसः । विवृत्य नयने क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥९॥
कोऽयमन्नमिदं भुङ्क्ते मदर्थमुपकल्पितम् । पश्यतो मम दुर्बुद्धिर्यियासुर्यमसादनम् ॥१०॥
भीमसेनस्ततः श्रुत्वा प्रहसन्निव भारत । राक्षसं तमनादृत्य भुङ्क्त एव पराङ्मुखः ॥११॥
रवं स भैरवं कृत्वा समुद्यम्य करावुभौ । अभ्यद्रवद्भीमसेनं जिघांसुः पुरुषादकः ॥१२॥
तथाऽपि परिभूयैनं प्रेक्षमाणो वृकोदरः । राक्षसं भुङ्क्त एवान्नं पाण्डवः परवीरहा ॥१३॥
अमर्षेण तु संपूर्णः कुन्तीपुत्रं वृकोदरम् । जघान पृष्ठे पाणिभ्यामुभाभ्यां पृष्ठतः स्थितः ॥१४॥
तथा बलवता भीमः पाणिभ्यां भृशमाहतः । नैवावलोकयामास राक्षसं भुङ्क्त एव सः ॥१५॥

वैशम्पायन बोले—अनन्तर, रात के बीतने पर भीमसेन अन्न लेकर उस पुरुष भक्षी राक्षस के स्थान पर गये ॥४॥ बली भीमसेन उस राक्षस के स्थान पर गये, वहां जाकर उस राक्षस को पुकारने लगे और वह अन्न स्वयं खाने लगे ॥५॥ भीमसेन के वचन सुनकर उस राक्षस ने बड़ा क्रोध किया; और जहाँ भीमसेन बैठे थे वहाँ वह बड़ा क्रोध करके आया ॥६॥ वह विशालकाय राक्षस पृथिवी को कँपाता हुआ बड़े वेग से आया। उसकी आंखें लाल और भयंकर थीं, सिर के और दाढ़ी के बाल लाल थे ॥७॥ उसका मुंह कान तक फैला था, उसके कान कील के समान तीखे थे, वह देखने में भयंकर था, उसने भौं टेढ़ी थी, ओठ चबाये, ॥८॥ भीमसेन को अन्न खाते देखकर वह राक्षस आंखें तरेरकर और क्रोधकर इस प्रकार बोला ॥९॥ जो अन्न मेरे लिए आया है उस अन्न को यह कौन खा रहा है। कौन बुद्धिहीन मनुष्य मेरे सामने ही यह काम कर रहा है और यमराज के यहाँ जाना चाहता है ॥१०॥

भीमसेन ने राक्षस की ये बातें सुनीं; पर उन्होंने उधर कुछ ध्यान नहीं दिया। वे हंसते हुए उसकी ओर पीठ करके खाते ही रहे ॥११॥ तब वह मनुष्यभक्षी राक्षस भयंकर गर्जन करके दोनों हाथ उठाकर भीमसेन को मारने के लिए उनकी ओर दौड़ा ॥१२॥ पर भीमसेन ने उसकी कोई चिन्ता नहीं की। उसकी उपेक्षा करके भीमसेन वह अन्न खाते रहे और उसकी ओर देखते रहे ॥१३॥ भीमसेन के इस आचरण से उस राक्षस को बड़ा क्रोध हुआ। उसने दोनों हाथों से भीमसेन को पीठ पर दो घूंसे लगाये, क्योंकि वे उसकी ओर पीठ करके बैठे थे ॥१४॥ इस प्रकार उस बलवान् राक्षस ने भीमसेन को कई घूंसे मारे। पर उन्होंने राक्षस की ओर देखा भी नहीं, वे केवल

ततः स भूयः संक्रुद्धो वृक्षमादाय राक्षसः । ताडयिष्यंस्तदा भीमं पुनरभ्यद्रवद्बली ॥१६॥
ततोभीमः शनैर्भुक्त्वा तदन्नं पुरुषर्षभः । वार्युपस्पृश्य संहृष्टस्तस्थौ युधि महाबलः ॥१७॥
क्षिप्तं क्रुद्धेन तं वृक्षं प्रतिजग्राह वीर्यवान् । सव्येन पाणिना भीमः प्रहसन्निव भारत ॥१८॥
ततः स पुनरुद्यम्य वृक्षान्बहुविधान्बली । प्राहिणोद्भीमसेनाय तस्मै भीमश्च पाण्डवः ॥१९॥
तद्वृक्षयुद्धमभवन्महीरुहविनाशनम् । घोररूपं महाराज नरराक्षसराजयोः ॥२०॥
नाम विश्राव्य स बकः समभिद्रुत्य पाण्डवम् । भुजाभ्यां परिजग्राह भीमसेनं महाबलम् ॥२१॥
भीमसेनोऽपि तद्रक्षः परिरभ्य महाभुजः । विस्फुरन्तं महाबाहुं विचकर्ष बलाद्बली ॥२२॥
स कृष्यमाणो भीमेन कर्षमाणश्च पाण्डवम् । समयुज्यत तीव्रेण क्रमेण पुरुषादकः ॥२३॥
तयोर्वेगेन महता पृथिवी समकम्पत । पादपांश्च महाकायांश्चूर्णयामासतुस्तदा ॥२४॥
हीयमानं तु तद्रक्षः समीक्ष्य पुरुषादकम् । निष्पिष्य भूमौ जानुभ्यां समाजघ्ने वृकोदरः ॥२५॥
ततोऽस्य जानुना पृष्ठमवपीड्य बलादिव । बाहुना परिजग्राह दक्षिणेन शिरोधराम् ॥२६॥
सव्येन च कटीदेशे गृह्य वाससि पाण्डवः । तद्रक्षो द्विगुणं चक्रे रुवन्तं भैरवं रवम् ॥२७॥

खाते रहे ॥१५॥ तब उस राक्षस का क्रोध और बढ़ा और वह राक्षस वृक्ष लेकर भीमसेन को मारने के लिए उनकी ओर दौड़ा ॥१६॥ तब तक पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन ने धीरे धीरे वह सब अन्न खा लिया था, हाथ मुंह धोकर वे भी प्रसन्नता पूर्वक उस राक्षस से युद्ध करने के लिए तयार हो गये ॥१७॥ क्रोध करके राक्षस ने वह वृक्ष भीमसेन पर चलाया। बली भीमसेन ने उस वृक्ष को हंसते हुए बाँये हाथ से पकड़ लिया ॥१८॥ अनन्तर, बली उस राक्षस ने अनेक वृक्ष तोड़ कर भीमसेन पर चलाये और भीमसेन ने भी उस राक्षस पर वृक्ष चलाये ॥१९॥ महाराज जनमेजय, मनुष्य और राक्षस का वह वृक्षयुद्ध बड़ा ही भयंकर हुआ, इस युद्ध से उस बन के वृक्ष नष्ट हो गये ॥२०॥ उस राक्षस ने अपना नाम बतला कर, महाबली भीमसेन को अपनी भुजाओं से पकड़ लिया ॥२१॥ विशाल भुजावाले भीमसेन ने भी उस राक्षस को दबा लिया। वह महाबाहु राक्षस छट-पटाने लगा और बली भीम ने उसे बलपूर्वक खींचा ॥२२॥ वह राक्षस भीमसेन को खींचता था, और भीमसेन उस राक्षस को खींचते थे। इस खींचाखींची में वह पुरुषभक्षी राक्षस बहुत थक गया ॥२३॥ उन दोनों के वेग से पृथिवी काँपने लगी और उन दोनों ने बड़े बड़े वृक्षों को चूर चूर कर दिया ॥२४॥ भीमसेन ने देखा कि वह राक्षस थक गया है, बलहीन हो रहा है, तब उन्होंने पृथिवी पर पछाड़ कर उसे घुटनों से मार डाला ॥२५॥ अनन्तर, भीमसेन ने घुटने से बलपूर्वक उस राक्षस की पीठ दबायी। दहिने हाथ से उसका गला पकड़ा और बाँये हाथ से उसकी कमर का कपड़ा पकड़ा तथा उसको दूना कर दिया अर्थात् गला और कमर एक में मिलाकर उन्होंने उस राक्षस के दो टुकड़े कर डाले। जिससे उस राक्षस ने भयंकर गर्जन किया ॥२६,२७॥ राजन्,

ततोऽस्य रुधिरं वक्त्रात्प्रादुरासीद्विशांपते । भज्यमानस्य भीमेन तस्य घोरस्य रक्षसः ॥२८॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि बकवधपर्वणि बकभीमसेन युद्धे
त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६३॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः स भग्नपार्श्वाङ्गो नदित्वा भैरवं रवम् । शैलराजप्रतीकाशो गतासुरभवद्बकः ॥१॥
तेन शब्देन वित्रस्तो जनस्तस्याथ रक्षसः । निष्पपात गृहाद्राजन्सहैव परिचारिभिः ॥२॥
तान्भीतान्विगतज्ञानान्भीमः प्रहरतां वरः । सांत्वयामास बलवान्समये च न्यवेशयत् ॥३॥
न हिंस्या मानुषा भूयो युष्माभिरिति कर्हिचित् । हिंसतां हि वधः शीघ्रमेवमेव भवेदिति ॥४॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तानि रक्षांसि भारत । एवमस्त्विति तं प्राहुर्जगृहुः समयं च तम् ॥५॥
ततः प्रभृति रक्षांसि तत्र सौम्यानि भारत । नगरे प्रत्यदृश्यन्त नरैर्नगरवासिभिः ॥६॥
ततो भीमस्तमादाय गतासुं पुरुषादकम् । द्वारदेशे विनिक्षिप्य जगामानुपलक्षितः ॥७॥
दृष्ट्वा भीमबलोद्धूतं बकं विनिहतं तदा । ज्ञातयोऽस्य भयोद्विग्नाः प्रतिजग्मुस्ततस्ततः ॥८॥

अनन्तर उस राक्षस के मुंह से रुधिर की धार बहने लगी, क्योंकि वह भयंकर राक्षस भीम के द्वारा बीच से ही तोड़ डाला गया था ॥२८॥

त्रिषष्ट्यधिक शततम अध्याय ।

बक के बान्धवों से मनुष्य न मारने की प्रतिज्ञा कराना । मृत राक्षस को देखने के लिए नगरवासियों का एकत्रित होना ।

वैशम्पायन बोले—पर्वत के समान विशालकाय वह बक राक्षस भीमसेन के द्वारा पंजर (हाथ पैर आदि) तोड़ दिये जाने के कारण भयंकर गर्जन करके मर गया ॥१॥ उस राक्षस के वैसे गर्जन से उसके आदमी डर गये और वे भृत्यों के साथ शीघ्रही घर से निकल कर वहाँ दौड़े आये ॥२॥ वहाँ आकर उन लोगों ने जो दृश्य देखा उससे वे डर गये, वेहोश हो गये । वीर, बली भीमसेन ने उन लोगों को समझाया, धीरज दिया और उनसे प्रतिज्ञा करायी ॥३॥ अब तुम लोग कभी किसी मनुष्य को नहीं मारना । यदि अबसे तुम लोगों ने किसी मनुष्य को मारा तो इसी तरह तुम लोगों का भी वध किया जायगा ॥४॥ जनमेजय, भीम के वे वचन सुनकर उन राक्षसों ने वैसा करने का वचन दिया और प्रतिज्ञा की ॥५॥ तब से वहाँ के राक्षस सीधे हो गये । नगरवासियों ने भी उन्हें इसी रूप में देखा । उनका व्यवहार नगरवासियों के साथ कोमल हो गया ॥६॥ अनन्तर, भीमसेन ने मनुष्यभक्षी उस राक्षस का मृत शरीर लेकर नगर द्वार पर रख दिया और वे वहाँ से छिपे छिपे अपने स्थान पर चले गये । अर्थात् किसी को यह मालूम न हो सका कि यह राक्षस का शव यहाँ कैसे आया ॥७॥ भीमसेन के बल से परास्त बक राक्षस को उसके बान्धवों ने जब मरा हुआ देखा तब वे भय से व्याकुल हो गये

ततः स भीमस्तं हत्वा गत्वा ब्राह्मणवेश्म तत् । आचचक्षे यथावृत्तं राज्ञः सर्वमशेषतः ॥९॥
ततो नरा विनिष्क्रान्ता नगरात्कल्यमेव तु । ददृशुर्निहतं भूमौ राक्षसं रुधिरोक्षितम् ॥१०॥
तमद्रिकूटसदृशं विनिकीर्णं भयानकम् । दृष्ट्वा संहृष्टरोमाणो बभूवुस्तत्र नागराः ॥११॥
एकचक्रां ततो गत्वा प्रवृत्तिं प्रददुः पुरे । ततः सहस्रशो राजन्नरा नगरवासिनः ॥१२॥
तत्राजग्मुर्बकं द्रष्टुं सस्त्रीवृद्धकुमारकाः । ततस्ते विस्मिताः सर्वे कर्म दृष्ट्वाऽतिमानुषम् ॥
दैवतान्यर्चयाश्चक्रुः सर्व एव विशांपते ॥१३॥
ततः प्रगणयामासुः कस्य वारोऽद्य भोजने । ज्ञात्वा चागम्य तं विप्रं पप्रच्छुः सर्वएव ते ॥१४॥
एवं पृष्टः स बहुशो रक्षमाणश्च पाण्डवान् । उवाच नागरान्सर्वानिदं विप्रर्षभस्तदा ॥१५॥
आज्ञापितं मामशने रुदन्तं सह बन्धुभिः । ददर्श ब्राह्मणः कश्चिन्मन्त्रसिद्धो महामनाः ॥१६॥
परिपृच्छय स मां पूर्वं परिक्लेशं पुरस्य च । अब्रवीद्ब्राह्मणश्रेष्ठो विश्वास्य प्रहसन्निव ॥१७॥
प्रापयिष्याम्यहं तस्मा अन्नमेतद्दुरात्मने । मन्निमित्तं भयं चापि न कार्यमिति चाब्रवीत् ॥१८॥
स तदन्नमुपादाय गतो बकवनं प्रति । तेन नूनं भवेदेतत्कर्म लोकहितं कृतम् ॥१९॥

और वे इधर उधर भाग गये ॥८॥ अनन्तर, उस राक्षस को मारकर उस ब्राह्मण के घर जाकर भीमसेन ने युधिष्ठिर से वे सब बातें कहीं जो राक्षस के साथ हुई थीं ॥९॥ जब प्रातःकाल नगर-वासी, नगर से बाहर निकले तब उन लोगों ने राक्षस का मृतक शरीर पृथिवी पर पड़ा देखा, वह शरीर रुधिर से भींगा था, पर्वत शिखर के समान विशाल और भयंकर वह शरीर पृथिवी पर फैला था। उसे देखकर नगरनिवासियों का रोम रोम प्रसन्न हो गया ॥१०,११॥ एकचक्रा नगरी में जाकर उन लोगों ने यह खबर लोगों से कही, इस संवाद को सुनकर हजारों नगरवासी स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, बक को देखने के लिए वहां आये। मनुष्य से न होनेवाले इस काम को देखकर वे विस्मित हुए। राक्षस को मारना मनुष्य के लिए असम्भव था, उसी राक्षस को उन लोगों ने मरा देखा जिससे उन्हें आश्चर्य हुआ। राजन्, राक्षस के मरने की प्रसन्नता के उपलक्ष में नगरवासी देवताओं की पूजा करने लगे ॥१२,१३॥ तब उन लोगों ने पता लगाना शुरू किया कि आज राक्षस को भोजन देने की किसकी बारी थी, पता लगाकर वे सब ब्राह्मण के घर पर आये और उनसे राक्षस वध की बात पूछने लगे ॥१४॥ नगरवासियों के बहुत पूछने पर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ पाण्डवों को बँचा कर नगरवासियों से इस प्रकार बोला—॥१५॥ राक्षस को भोजन देने की आज्ञा मुझे हुई थी। मैं अपने परिवार के साथ रो रहा था। उस समय एक मन्त्रसिद्ध उदार ब्राह्मण ने मुझे देखा, अर्थात् वे मेरे पास आये ॥१६॥ उन्होंने मेरे और नगर के कष्ट का कारण पूछा। तब उन ब्राह्मण ने हंसते हुए मुझे विश्वास दिलाया और वे इस प्रकार बोले ॥१७॥ उस दुरात्मा राक्षस के लिए भोजन लेकर मैं जाऊँगा, मेरे लिए आप लोग किसी प्रकार का भय न करें। ऐसा कह कर उन्होंने हम लोगों को विश्वास दिलाया ॥१८॥ वे अन्न लेकर बक राक्षस के बन में गये, मालूम होता है कि उन्होंने ही लोक के कल्याण के लिए यह काम किया है ॥१९॥ इस संवाद को सुनकर ब्राह्मण

ततस्ते ब्राह्मणाः स वैक्षत्रियाश्च सुविस्मिताः। वैश्याः शूद्राश्च मुदिताश्चक्रुर्ब्रह्ममहं तदा ॥२०॥
ततो जानपदाः सर्वे आजग्मुर्नगरं प्रति। तमद्भुततमं द्रष्टुं पार्थास्तत्रैव चावसन् ॥२१॥
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि बकवधपर्वाणि बकवधे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥

चैत्ररथपर्व

जनमेजय उवाच—
ते तथा पुरुषव्याघ्रा निहत्य बकराक्षसम्। अतः ऊर्ध्वं ततो ब्रह्मन्किमकुर्वत पाण्डवाः ॥१॥
वैशम्पायन उवाच—
तत्रैव न्यवसन्राजन्निहत्य बकराक्षसम्। अधीयानाः परं ब्रह्म ब्राह्मणस्य निवेशने ॥२॥
ततः कतिपयाहस्य ब्राह्मणः संशितव्रतः। प्रतिश्रयार्थी तद्वेश्म ब्राह्मणस्याजगाम ह ॥३॥
स सम्यक् पूजयित्वा तं विप्रं विप्रर्षभस्तदा। ददौ प्रतिश्रयं तस्मै सदा सर्वातिथिव्रतः ॥४॥
ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सह कुन्त्या नरर्षभाः। उपासाञ्चक्रिरे विप्रं कथयन्तं कथाः शुभाः ॥५॥
कथयामास देशांश्च तीर्थानि सरितस्तथा। राज्ञश्च विविधाश्चर्यान्देशांश्चैव पुराणि च ॥६॥

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बड़े विस्मित हुए और उन लोगों ने ब्राह्मणों के सम्मान में उत्सव किया ॥२०॥ इस संवाद को सुनकर उस राज्य के वासी भी उस नगर में आये और उन लोगों ने भी वह अद्भुत काम देखा। पाण्डव वहीं निवास करते रहे ॥२१॥

चतुःषष्ठ्यधिक शततम अध्याय। बकवधपर्व समाप्त।

द्रौपदी स्वयम्बर का संवाद पाना। धृष्टद्युम्न और द्रौपदी की उत्पत्ति सुनने के लिए पाण्डवों का प्रश्न।

जनमेजय बोले—ब्रह्मन्, बक राक्षस के मारे जाने पर उन पुरुषसिंह पाण्डवों ने क्या किया ॥१॥

वैशम्पायन बोले—बक राक्षस को मारकर पाण्डव वहीं, ब्राह्मण ही के घर में रहे और वे वहां उपनिषदों का परायण करते रहे। ब्रह्मचिन्तन करते रहे ॥२॥ अनन्तर, एक ब्राह्मण उस ब्राह्मण के घर में रहने के लिए आया। वह व्रतधारी ब्राह्मण थोड़े दिन वहां रहना चाहता था ॥३॥ उस गृहपति ब्राह्मण का अतिथि पूजा का व्रत था। उसने आये हुए ब्राह्मणश्रेष्ठ का पूजन किया और उन्हें रहने का स्थान दिया ॥४॥ पश्चात् पांचो पाण्डव अपनी माता कुन्ती के साथ उस ब्राह्मण के पास गये। उन लोगों में अनेक तरह की बातें होने लगीं ॥५॥ उस ब्राह्मण ने उन लोगों से अनेक तीर्थों, नदियों, राजाओं, आश्चर्यमय देशों और नगरों का वृत्तान्त कहा ॥६॥ और सब बातें हो जाने

स तत्राकथयद्विप्रः कथान्ते जनमेजय । पञ्चालेष्वद्भुताकारं याज्ञसेन्याः स्वयंवरम् ॥७॥
धृष्टद्युम्नस्य चोत्पत्तिमुत्पत्तिं च शिखण्डिनः । अयोनिजत्वं कृष्णाया द्रुपदस्य महामखे ॥८॥
तदद्भुततमं श्रुत्वा लोके तस्य महात्मनः । विस्तरेणैव पप्रच्छुः कथां ते पुरुषर्षभाः ॥९॥
पाण्डवा ऊचुः—
कथं द्रुपदपुत्रस्य धृष्टद्युम्नस्य पावकात् । वेदीमध्याच्च कृष्णायाः संभवः कथमद्भुतः ॥१०॥
कथं द्रोणान्महेष्वासात्सर्वाण्यस्त्राण्यशिक्षत । कथं विप्रसखायौ तौ भिन्नौ कस्य कृतेन वा ॥११॥
वैशम्पायन उवाच—
एवं तैश्चोदितो राजन्स विप्रः पुरुषर्षभैः । कथयामास तत्सर्वं द्रौपदीसम्भवं तदा ॥१२॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि द्रौपदीसम्भवे
पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६५॥

—o—

ब्राह्मण उवाच—
गङ्गाद्वारं प्रति महान्बभूवर्षिर्महातपाः । भरद्वाजो महाप्राज्ञः सततं संशितव्रतः ॥१॥
सोऽभिषेक्तुं गतो गङ्गां पूर्वमेवागतां सतीम् । ददर्शाप्सरसं तत्र घृताचीमाप्लुतामृषिः ॥२॥

के बाद उस ब्राह्मण ने पाण्डवों से कहा कि पांचाल देश में याज्ञसेनी (द्रौपदी) का अद्भुत स्वयंवर होने वाला है ॥७॥ पुनः उस ब्राह्मण ने कहा कि द्रुपद के यज्ञ में धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और कृष्णा (द्रौपदी) का जन्म यज्ञवेदी से हुआ है। ये लोग अयोनिज हैं ॥८॥ उस महात्मा ब्राह्मण से यह लोक विलक्षण अद्भुत वृत्तान्त सुनकर पाण्डवों ने उनकी बात समाप्त होने पर उनसे इस प्रकार पूछा ॥९॥

पाण्डव बोले—द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति अग्नि से कैसे हुए और यज्ञवेदी से कृष्णा की उत्पत्ति कैसे हुई? यह तो बड़ी अद्भुत बात है ॥१०॥ महाधनुर्धर द्रोणाचार्य से धृष्टद्युम्न ने अस्त्रशिक्षा कैसे पायी और किस कारण द्रुपद और द्रोण में विरोध हुआ ॥११॥

वैशम्पायन बोले—राजन्, पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवों के ऐसा पूछने पर उस ब्राह्मण ने उन लोगों को सभी बातें बतलायीं, उसने द्रौपदी के जन्म का वृत्तान्त भी कहा ॥१२॥

पंचषष्ट्यधिक शततम अध्याय।

———

धृष्टद्युम्न आदि के उत्पत्ति के प्रसंग में द्रोण और द्रुपद की उत्पत्ति।

ब्राह्मण बोला—पहले हरद्वार में महातपस्वी महाबुद्धिमान् व्रतधारी भरद्वाज नाम के एक मुनि रहते थे ॥१॥ वे एक दिन गंगा स्नान करने गये वहाँ पहले से आयी हुई घृताची नाम की अप्सरा को उन ऋषि ने देखा। वह अप्सरा पहले ही स्नान कर चुकी थी ॥२॥ नदी तीर

तस्या वायुर्नदीतीरे वसनं व्यहरत्तदा । अपकृष्टम्बरां दृष्ट्वा तामृषिश्चकमे तदा ॥३॥
तस्यां संसक्तमनसः कौमारब्रह्मचारिणः । चिरस्य रेतश्चस्कन्द तदृषिर्द्रोण आदधे ॥४॥
ततः समभवद्द्रोणः कुमारस्तस्य धीमतः । अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥५॥
भरद्वाजस्य तु सखा पृषतो नाम पार्थिवः । तस्यापि द्रुपदो नाम तदा समभवत्सुतः ॥६॥
स नित्यमाश्रमं गत्वा द्रोणेन सह पार्षतः । चिक्रीडाध्ययनं चैव चकार क्षत्रियर्षभः ॥७॥
ततस्तु पृषतेऽतीते स राजा द्रुपदोऽभवत् । द्रोणोऽपि रामं सुश्राव दित्सन्तं वसुसर्वशः ॥८॥
वनं तु प्रस्थितं रामं भरद्वाजसुतोऽब्रवीत् । आगतं वित्तकामं मां विद्धि द्रोणं द्विजोत्तम ॥९॥

राम उवाच—

शरीरमात्रमेवाद्य मया समवशेषितम् । अस्त्राणि वा शरीरं वा ब्रह्मन्नेकतमं वृणु ॥१०॥

द्रोण उवाच—

अस्त्राणि चैव सर्वाणि तेषां संहारमेव च । प्रयोगं चैव सर्वेषां दातुमर्हति मे भवान् ॥११॥

ब्राह्मण उवाच—

तथेत्युक्त्वा ततस्तस्मै प्रददौ भृगुनन्दनः । प्रतिगृह्य तदा द्रोणः कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥१२॥
संप्रहृष्टमना द्रोणो रामात्परमसम्मतम् । ब्रह्मास्त्रं समनुप्राप्य नरेष्वभ्यधिकोऽभवत् ॥१३॥

पर खड़ी उस अप्सरा का वस्त्र वायु के लगने से हट गया था । वस्त्र के हट जाने पर उस अप्सरा को देखकर मुनि उस पर मोहित हो गये ॥३॥ बाल्यावस्था से ब्रह्मचर्य धारण करने वाले उन मुनि का मन उस स्त्री में लग गया । जिससे उनका वीर्य पात हुआ । ऋषि ने उस वीर्य को एक द्रोण (पात्र) में रख दिया ॥४॥ जिससे द्रोण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस कुमार ने समस्त वेद और वेदाङ्गों का अध्ययन किया ॥५॥ पृषत नामके एक राजा भरद्वाज के मित्र थे उनके भी द्रुपद नामक एक पुत्र उसी समय हुआ ॥६॥ वह क्षत्रियश्रेष्ठ द्रुपद प्रतिदिन भरद्वाज के आश्रम पर जाता था और द्रोण के साथ खेलता तथा पढ़ता था ॥७॥ अनन्तर पृषत के मरने पर द्रुपद राजा हुआ । द्रोण ने भी उसी समय सुना कि परशुराम अपना समस्त धन दान करके बन जा रहे हैं । बन जाने के लिए तयार परशुराम के पास जाकर द्रोण ने कहा—द्विजश्रेष्ठ, मैं आपके पास धन की कामना से आया हूँ । मेरा नाम द्रोण है ॥८-९॥

परशुराम बोले—ब्रह्मन्, अब मेरा शरीर ही बच रहा है, धन आदि मैं दान कर चुका । अस्त्र और शरीर इन दोनों में जो चाहो ले लो ॥१०॥

द्रोण बोले—आप अपने समस्त अस्त्र ही दे दें और उन सब के चलाने, और रोकने की रीति बतला दें ॥११॥

ब्राह्मण बोला—द्रोण की प्रार्थना स्वीकार करके परशुराम ने अपने समस्त अस्त्र द्रोण को दिये । उनके चलाने और रोकने की रीति बतलायी । उन अस्त्रों को पाकर द्रोण कृतार्थ हो गये ॥१२॥ अस्त्र पाकर द्रोण बड़े प्रसन्न हुए, सर्वजन प्रशंसित ब्रह्मास्त्र पाकर द्रोण मनुष्यों में श्रेष्ठ

ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वाजः प्रतापवान् । अब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः सखायं विद्धि मामिति ॥१४॥

द्रुपद उवाच—

नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनःसखा । नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते ॥१५॥

ब्राह्मण उवाच—

स विनिश्चित्य मनसा पाञ्चाल्यं प्रति बुद्धिमान् । जगाम कुरुमुख्यानां नगरं नागसाह्वयम् ॥१६॥

तस्मै पौत्रान्समादाय वसूनि विविधानि च । प्राप्ताय प्रददौ भीष्मःशिष्यान्द्रोणाय धीमते ॥१७॥

द्रोणःशिष्यांस्ततःसर्वानिदं वचनमब्रवीत् । समानीय तु तान्शिष्यान्कुरुपाण्डुसुतान् वै ॥१८॥

आचार्यवेतनं किंचिद्धृदि यद्वर्तते मम । कृतास्त्रैस्तत्प्रदेयं स्यात्तदृतं वदतानघाः ॥

सोऽर्जुनप्रमुखैरुक्तस्तथास्त्विति गुरुस्तदा ॥१९॥

यदा च पाण्डवाःसर्वे कृतास्त्राःकृतनिश्चयाः । ततो द्रोणोऽब्रवीद्भूयो वेतनार्थमिदं वचः ॥२०॥

पार्षतो द्रुपदो नाम क्षत्रवत्यां नरेश्वरः । तस्मादाकृष्य तद्राज्यं मम शीघ्रं प्रदीयताम् ॥२१॥

ततः पाण्डुसुताः पञ्च निर्जित्य द्रुपदं युधि । द्रोणाय दर्शयामासुर्बद्ध्वा ससचिवं तदा ॥२२॥

द्रोण उवाच—

प्रार्थयामि त्वया सख्यं पुनरेव नराधिप । अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति ॥२३॥

हो गये ॥१३॥ भरद्वाज पुत्र प्रतापी द्रोण इसके अनन्तर द्रुपद राजा के पास गये और पुरुषसिंह द्रोण ने उनसे कहा कि आप मुझे अपना मित्र समझें ॥१४॥

द्रुपद बोले—जो श्रोत्रिय नहीं है वह श्रोत्रिय का, जो रथी नहीं है वह रथी का और जो राजा नहीं है वह राजा का मित्र नहीं हो सकता ॥१५॥

ब्राह्मण बोला—उस समय द्रोण ने द्रुपद के प्रति अपना कर्तव्य निश्चित किया और वे वहां से कुरुओं की राजधानी हस्तिनापुर में चले आये ॥१६॥ उस बुद्धिमान् द्रोण के आने पर भीष्म ने उन्हें बहुत सा धन दिया और पौत्रों को पढ़ाने के लिए उन्हें नियत किया ॥१७॥ द्रोण ने अपने समस्त शिष्यों और पाण्डवों से द्रुपद का अहङ्कार चूर्ण करने के लिए यह कहा—॥१८॥ जब तुम लोग विद्या पढ़कर निपुण हो जाओ तब आचार्य को दक्षिणा में जो मैं मांगू उसे देने की प्रतिज्ञा करो। उस समय अर्जुन ने वैसा करने की प्रतिज्ञा की ॥१९॥ जब सभी पाण्डव अस्त्रविद्या में निपुण हो गये और गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए तयार हुए, उस समय द्रोणाचार्य ने अपनी दक्षिणा के लिए उनसे यह कहा ॥२०॥ राजा पृषत का पुत्र द्रुपद अहिच्छत्र नगर में एक राजा है। उसका राज्य छीनकर तुम लोग वह राज्य मुझे शीघ्र दो ॥२१॥ पाण्डवों ने युद्ध में द्रुपद को जीता और सचिव के साथ उनको बांधकर वे द्रोणाचार्य के पास ले आये ॥२२॥

द्रोण बोले—राजन्, मैं पुनः आपसे मैत्री करने की प्रार्थना करता हूँ। जो राजा नहीं है वह राजा का मित्र नहीं हो सकता, अतएव तुम्हारे साथ मैत्री करने के लिए मैंने राज्य पाने का

अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन त्वया सह । राजाऽसि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे ॥२४॥
ब्राह्मण उवाच—
एवमुक्तो हि पाञ्चाल्यो भारद्वाजेन धीमता । उवाचास्त्रविदां श्रेष्ठं द्रोणं ब्राह्मणसत्तमम् ॥२५॥
एवं भवतु भद्रं ते भारद्वाज महामते । सख्यं तदेव भवतु शश्वद्यदभिमन्यसे ॥२६॥
एवमन्योन्यमुक्त्वा तौ कृत्वा सख्यमनुत्तमम् । जग्मतुर्द्रोणपाञ्चाल्यौ यथागतमरिन्दमौ ॥२७॥
असत्कारः स तु महान्मुहूर्तमपि तस्य तु । नापैति हृदयाद्राज्ञो दुर्मनाः स कृशोऽभवत् ॥२८॥
इति श्री महाभारते आदिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि द्रौपदीसंभवे
षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६६॥

ब्राह्मण उवाच—
अमर्षी द्रुपदो राजा कर्मसिद्धान्द्विजर्षभान् । अन्विच्छन्परिचक्राम ब्राह्मणावसथान्बहून् ॥१॥
पुत्रजन्म परीप्सन्वै शोकोपहतचेतनः । नास्ति श्रेष्ठमपत्यं म इति नित्यमचिन्तयत् ॥२॥
जातान्पुत्रान्स निर्वेदाद्धिग्बन्धूनिति चाब्रवीत् । निःश्वासपरमश्चासीद्द्रोणं प्रतिचिकीर्षया॥३॥

उद्योग किया है। अब गङ्गा के दक्षिण तीर के राजा तुम रहोगे और उत्तर तीर का राजा मैं रहूँगा ॥२३-२४॥

ब्राह्मण बोला—बुद्धिमान् द्रोण के ऐसा कहने पर अस्त्रज्ञों में श्रेष्ठ द्रुपद, ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोण से इस प्रकार बोले—॥२५॥ बुद्धिमान् भारद्वाज, जैसा आप चाहते हैं वैसा ही हो। यदि आप चाहते हैं, आपसे सदा के लिए मेरी मैत्री हो ॥२६॥ इस प्रकार उन दोनों ने कहकर आपस में उत्तम मैत्री स्थापित की, और वे द्रोण और द्रुपद अपने अपने स्थान पर चले गये ॥२७॥ पर द्रोण ने द्रुपद की जो अप्रतिष्ठा की वह एक क्षण के लिए भी राजा के मन से दूर नहीं होता था। मनही मन उसकी चिन्ता करने से वे दुर्बल हो गये ॥२८॥

षट्षष्ट्यधिक शततम अध्याय ।

याज और उपयाज के द्वारा यज्ञ कराने से धृष्टद्युम्न आदि का जन्म; द्रोण के द्वारा धृष्टद्युम्न को अस्त्र शिक्षा।

ब्राह्मण बोला—क्रोधी द्रुपद का क्रोध दूर नहीं हुआ। कर्म कराने में निपुण किसी ब्राह्मण को वे ढूंढते थे, शायद उस ब्राह्मण से अनुष्ठान कराके द्रोण से बदला चुकाना चाहते हों। ऐसे ब्राह्मण को ढूंढने के लिए वे अनेक ब्राह्मण बस्तियों में घूमते फिरे ॥१॥ दुःख के कारण वे व्याकुल हो गये थे, उनका होश दुरुस्त न था। कोई उत्तम पुत्र मुझे नहीं है यही उनकी प्रधान चिन्ता थी। वे उत्तम पुत्र उत्पन्न करना चाहते थे ॥२॥ वे हताश होकर पहले के अपने पुत्रों को और बान्धवों को धिक्कार देते थे। द्रोण से बदला न लेने के कारण वे सदा दुख की लम्बी सांस लिया करते थे ॥३॥ द्रोण का प्रभाव, विनय, शिक्षा, चरित और उनका क्षात्रबल जब द्रुपद सोचते थे तब उन्हें

प्रभावं विनयं शिक्षां द्रोणस्य चरितानि च । क्षात्रेण च बलेनास्य चिन्तयन्नाध्यगच्छत ॥४॥
प्रतिकर्तुं नृपश्रेष्ठो यतमानोऽपि भारत । अभितः सोऽथ कल्माषीं गङ्गाकूले परिभ्रमन् ॥५॥
ब्राह्मणावसथं [illegible] महीपतिः । तत्र नास्नातकः कश्चिन्न चासीदव्रती द्विजः ॥६॥
तथैव च महाभागः सोऽपश्यत्संशितव्रतौ । याजोपयाजौ ब्रह्मर्षी [illegible] परमेष्ठिनौ ॥७॥
संहिताध्ययने युक्तौ गोत्रतश्चापि काश्यपौ । तारणेयौ युक्तरूपौ ब्राह्मणावृषिसत्तमौ ॥८॥
स तावामन्त्रयामास सर्वकामैरतन्द्रितः । बुद्ध्वा बलं तयोस्तत्र कनीयांसमुपह्वरे ॥९॥
प्रपेदे च्छन्दयन्कामैरुपयाजं धृतव्रतम् । पादशुश्रूषणे युक्तः प्रियवाक्सर्वकामदः ॥१०॥
अर्चयित्वा यथान्यायमुपयाजमुवाच सः । येन मे कर्मणा ब्रह्मन्पुत्रः स्याद्द्रोणमृत्यवे ॥११॥
उपयाज कृते तस्मिन् गवां दाताऽस्मि तेऽर्बुदं । यद्वा तेऽन्यद्द्विजश्रेष्ठ मनसः सुप्रियं भवेत् ॥
सर्वं तत्ते प्रदाताऽहं न हि मेऽत्रास्ति संशयः ॥१२॥
इत्युक्तो नाहमित्येवं तमृषिः प्रत्यभाषत । आराधयिष्यन्द्रुपदः स तं पर्यचरत्पुनः ॥१३॥
ततः संवत्सरस्यान्ते द्रुपदं स द्विजोत्तमः । उपयाजोऽब्रवीत्काले राजन्मधुरया गिरा ॥१४॥

द्रोणाचार्य से बदला लेने का उपाय नहीं सूझता था, वे प्रयत्न कराना चाहते थे पर कर नहीं सकते थे । वे यमुना के दोनों तीरों पर घूम आये, पर कोई फल नहीं हुआ । अन्त में गङ्गातीर पर घूमते घूमते उन्हें ब्राह्मणों का पवित्र निवास स्थान मिला । यहां कोई भी ऐसा नहीं था जो वेदज्ञ न हो, कोई भी ऐसा नहीं था, जो व्रतधारण करने वाला न हो ॥४, ६॥ महाभाग राजा ने वहां व्रतधारी, सदा वेदाध्यायन करने वाले याज और उपयाज नामक दो ब्रह्मर्षियों को देखा ॥७॥ वे दोनों श्रेष्ठ ऋषि थे, वेद मन्त्रों के द्रष्टा थे, वे कश्यप गोत्र के थे और कुमारी से उत्पन्न हुए थे । संहिता का पाठ कर रहे थे, वे राजा द्रुपद का मनोरथ पूरा कर सकते थे ॥८॥ उसी समय आलस-रहित राजा ने उनके सब मनोरथों को पूरा करने के बचन देकर उन्हें आमन्त्रित किया । उन दोनों में छोटे को बलवान् योग्य समझकर राजा एकान्त में उसी के पास गये । उन्होंने उस व्रतधारी ऋषि के मनोरथों के पूरा करने का विश्वास दिला कर उन्हें अपने अनुकूल बना लिया । राजा उनके पैर दबाने लगे, उनसे प्रिय बचन बोलने लगे और उनकी आवश्कताएँ पूरी करने लगे ॥९-१०॥ इस प्रकार विधिपूर्वक उपयाज की पूजा करके राजा उनसे बोले—उपयाज, यदि आप मुझसे ऐसा कोई अनुष्ठान करावें जिससे द्रोण को मारनेवाला पुत्र उत्पन्न हो तो मैं आपको एक अरब गौ दूंगा । यदि इसके अतिरिक्त आप और कोई अपनी प्रिय वस्तु चाहें तो वह भी मैं दूंगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥११-१२॥

द्रुपद के ऐसा कहने पर वे मुनि उनसे बोले कि मैं ऐसा नहीं कर सकता । इसके अनन्तर राजा द्रुपद पुनः उस मुनि की सेवा करने लगे ॥१३॥ इस प्रकार एक वर्ष बीतने के पश्चात् वे मुनि उपयाज मधुर वाणी के द्वारा राजा द्रुपद से इस प्रकार बोले—॥१४॥ गहन बन में

ज्येष्ठो भ्राता ममागृह्णाद्विचरन् गहने वने । अपरिज्ञातशौचायां भूमौ निपतितं फलम् ॥१५॥
तदपश्यमहं भ्रातुरसाम्प्रतमनुव्रजन् । विमर्शं संकरादाने नायं कुर्यात्कदाचन ॥१६॥
दृष्ट्वा फलस्य नापश्यद्दोषान्पापानुबन्धकान् । विविनक्ति न शौचं यःसोऽन्यत्रापि कथं भवेत् ॥१७॥
संहिताध्ययनं कुर्वन्वसन्गुरुकुले च यः । भैक्षमुच्छिष्टमन्येषां भुङ्क्ते स्म च यदा तदा ॥१८॥
कीर्तयन्गुणमन्नानामघृणी च पुनः पुनः । तं वै फलार्थिनं मन्ये भ्रातरं तर्कचक्षुषा ॥१९॥
तं वै गच्छस्व नृपते स त्वां संयाजयिष्यति । जुगुप्समानो नृपतिर्मनसेदं विचिन्तयन् ॥२०॥
उपयाजवचः श्रुत्वा याजस्याश्रममभ्यगात् । अभिसम्पूज्य पूजार्हमथ याजमुवाच ह ॥२१॥
अयुतानि ददान्यष्टौ गवां याजय मां विभो । द्रोणवैराभिसन्तप्तं प्रह्लादयितुमर्हसि ॥२२॥
स हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो ब्रह्मास्त्रे चाप्यनुत्तमः । तस्माद्द्रोणः पराजैष्ट मां वै स सखिविग्रहे ॥२३॥
क्षत्रियो नास्ति तस्यास्यां पृथिव्यां कश्चिदग्रणीः । कौरवाचार्यमुख्यस्य भारद्वाजस्य धीमतः॥२४॥
द्रोणस्य शरजालानि प्राणिदेहहराणि च । षडरत्नि धनुश्चास्य दृश्यते परमं महत् ॥२५॥
स हि ब्राह्मणवेषेण क्षात्रं वेगमसंशयम् । प्रतिहन्ति महेष्वासो भारद्वाजो महामनाः ॥२६॥

घूमते हुए मेरे बड़े भाई ने पृथिवी में गिरा एक फल उठा लिया था, पर उन्हें वहां की पृथिवी की शुद्धता के विषय में कुछ मालूम न था। वहां की पृथिवी शुद्ध है या अशुद्ध, वे यह कुछ भी नहीं जानते थे ॥१५॥ उनके पीछे पीछे जाते हुए मैंने अपने भाई का यह अनुचित कार्य देखा था। इससें मैंने जाना कि ये दूषित वस्तु का ग्रहण करने में विचार नहीं करते ॥१६॥ फल देखकर उन्होंने उठा लिया पर उसके गुण दोष पर विचार नहीं किया, इस फलके उठाने से पाप होगा कि नहीं इसपर उन्होंने विचार नहीं किया। जो फल की शुद्धाशुद्धि का विचार नहीं करते वे दूसरी बातों की शुद्धाशुद्धि का विचार क्यों करेंगे ॥१७॥ जब वे वेदाध्ययन करते थे और गुरुगृह में निवास करते थे, तब दूसरों का जब तब जूठी भिक्षा खा लिया करते ॥१८॥ वे उस अन्न का बखान करते थे, इन्हें थोड़ी भी घृणा नहा होती थी। उन सब बातों को देखकर मैं तर्क दृष्टि से कह सकता हूँ कि वे फलार्थी हैं, उन्हें फल की कामना है। वे तुम्हारे दान की बात सुन कर अवश्य तुम्हें अनुष्ठान करावेंगे। ॥१९॥ राजन्, आप उन्हीं के पास जांय, वे आपको यज्ञ करावेंगे। उपयाज के वचन सुन कर राजा द्रुपद याज से मनही मन घृणा करने लगे, पर स्वार्थ का विचार करके वे याज के आश्रम में आये। पूजा योग्य याज मुनि की पूजा करके वे उनसे बोले ॥२०-२१॥ विभो, मुझे आप यज्ञ करावें, आठ हजार गौ आपको देता हूँ। द्रोण के विरोध से मैं जल रहा हूँ आप मुझे आनन्दित करें ॥२२॥ वह श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी है, ब्रह्मास्त्र में भी वह सबसे श्रेष्ठ है इसी कारण उसने मुझे पराजित किया है। मित्रता को लेकर उनसे मेरा विरोध हुआ था, वह मुझसे मित्रता चाहता था, और मैं इसे स्वीकार नहीं करता था ॥२३॥ इस पृथिवी में कोई भी क्षत्रिय कौरवों के प्रधान आचार्य बुद्धिमान् भारद्वाज से बड़ा वीर नहीं है ॥२४॥ द्रोण के बाण प्राणियों के शरीर को नष्ट कर देते हैं। उसका धनुष छः बित्ता लम्बा है ॥२५॥ महाधनुर्धर और महामना भारद्वाज ब्राह्मण वेष से क्षत्रियों का पराक्रम नष्ट कर देता है ॥२६॥ क्षत्रियों के नाश

क्षत्रोच्छेदाय विहितो जामदग्न्य इवास्थितः । तस्य [illegible] घोरमप्रधृष्यं नरैर्भुवि ॥२७॥
ब्राह्मं सन्धारयंस्तेजो हुताहुतिरिवानलः । समेत्य स दहत्याजौ क्षात्रधर्मपुरःसरः ॥२८॥
ब्रह्मक्षेत्रे च विहिते ब्राह्मं तेजो विशिष्यते । सोऽहं क्षत्राद्बलाद्धीनो ब्राह्मं तेजः प्रपेदिवान ॥२९॥
द्रोणाद्विशिष्टमासाद्य भवन्तं ब्रह्मवित्तमम् । द्रोणान्तकमहं पुत्रं लभेयं युधि दुर्जयम् ॥३०॥
तत्कर्म कुरु मे याज वितराम्यर्बुदं गवाम् । तथेत्युक्त्वा तु तं याजो याज्यार्थमुपकल्पयत् ॥३१॥
गुर्वर्थ इति चाकाममुपयाजमचोदयत् । याजो द्रोणविनाशाय प्रतिजज्ञे तथा च सः ॥३२॥
ततस्तस्य नरेन्द्रस्य उपयाजो महातपाः । आचख्यौ कर्म वैतानं तदा पुत्रफलाय वै ॥३३॥
स च पुत्रो महावीर्यो महातेजा महाबलः । इष्यते यद्विधो राजन्भविता ते तथाविधः ॥३४॥
भारद्वाजस्य हन्तारं सोऽभिसन्धाय भूपतिः । आजह्रे तत्तथा सर्वं द्रुपदः कर्मसिद्धये ॥३५॥
याजस्तु हवनस्यान्ते देवीमाज्ञापयत्तदा । प्रेहि मां राज्ञि पृषति मिथुनं त्वामुपस्थितम् ॥३६॥

के लिए मानों वह दूसरे परशुराम के समान उत्पन्न हुआ है । इस पृथिवी में उसके भयंकर अस्त्र बल के सामने कोई भी वीर नहीं ठहरता, कोई भी उसका सामना नहीं कर सकता ॥२७॥ वह तेज धारण करता है, अतएव आहुति दिये अग्नि के समान वह तेजस्वी है । वह क्षात्रधर्म (वीरता) को आगे करके युद्ध में जाता है और अपने प्रतिपक्षी को जला देता है ॥२८॥ द्रोणाचार्य में ब्राह्मण और क्षात्र दोनों तेज हैं । मैं ब्राह्म तेज को क्षात्र तेज से अधिक समझता हूँ । अतएव क्षात्र बल से हीन हो कर मैं ब्राह्मतेज की शरण आया हूँ । अर्थात् आप में केवल ब्राह्मतेज ही है तथापि आप द्रोणाचार्य से श्रेष्ठ हैं और मैं आप की शरण आया हूँ ॥२९॥ द्रोणाचार्य से श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी आप के पास मैं आया हूँ । जिससे युद्ध में अजेय और द्रोण को मारने वाला पुत्र उत्पन्न हो ॥३०॥ हे याज, आप मेरे लिए ऐसा ही अनुष्ठान करें । मैं आपको एक अरब गौ दूंगा । याज ने द्रुपद की प्रार्थना स्वीकार की, और मनही मन द्रुपद के लिए उचित अनुष्ठान की बात सोचने लगे ॥३१॥ इस अनुष्ठान को बहुत कठिन समझ कर याज ने उपयाज से भी सम्मति ली । उन्होंने द्रुपद के अर्थ सिद्धि के लिए कौन अनुष्ठान उपयुक्त होगा, इस बात को सोचने के लिए उपयाज से भी कहा । इस प्रकार द्रोण के नाश के लिए यज्ञ कराने का वचन याज ने दिया ॥३२॥ इसके पश्चात महातपस्वी उपयाज ने राजा द्रुपद को ऐसा वैदिक कर्म बतलाया, जिससे द्रोण का नाश करने वाला पुत्र उत्पन्न हो । उन्होंने राजा से कहा—आप का वह पुत्र महापराक्रमी, तेजस्वी और बलवान् होगा । राजन्, आप जैसा पुत्र चाहते हैं, वैसा ही वह होगा ॥३३,३४॥ द्रोण को मारने वाला पुत्र होगा, इसबात का ध्यान करके राजा द्रुपद यज्ञ करने की सब सामग्रियां एकत्र करने लगे और यज्ञ के समस्त कर्म करने लगे ॥३५॥ हवन के अन्त में याज ने द्रुपद की महारानी को बुलाया । उन्होंने कहा—हे राजा पृषत की पुत्र-बधू मेरे पास आओ और मुझसे एक पुत्र और एक पुत्री लो ॥३६॥

राज्ञ्युवाच—
अवलिप्तं मुखं ब्रह्मन्दिव्यान्गन्धान्बिभर्मि च । सुतार्थे नोपलब्धाऽस्मि तिष्ठ याज मम प्रिये ॥३७॥
याजउवाच—
याजेन श्रपितं हव्यमुपयाजाभिमन्त्रितम् । कथं कामं न सन्दध्यात्सा त्वं विप्रेहि तिष्ठ वा ॥३८॥
ब्राह्मण उवाच—
एवमुक्त्वा तु याजेन हुते हविषि संस्कृते । उत्तस्थौ पावकात्तस्मात्कुमारो देवसन्निभः ॥३९॥
ज्वालावर्णो घोररूपः किरीटी वर्म चोत्तमम् । बिभ्रत्सखड्गः सशरो धनुष्मान्विनदन्मुहुः ॥४०॥
सोऽध्यारोहद्रथवरं तेन च प्रययौ तदा । ततः प्रणेदुः पञ्चालाः प्रहृष्टाः साधुसाध्विति ॥४१॥
हर्षाविष्टांस्ततश्चैतान्नेयं सेहे वसुन्धरा । भयापहो राजपुत्रः पञ्चालानां यशस्करः ॥४२॥
राज्ञः शोकापहो जात एष द्रोणवधाय वै । इत्युवाच महद्भूतमदृश्यं खेचरं तदा ॥४३॥
कुमारी चापि पाञ्चाली वेदीमध्यात्समुत्थिता । सुभगा दर्शनीयाङ्गी स्वसितायतलोचना ॥४४॥
श्यामा पद्मपलाशाक्षी नीलकुञ्चितमूर्धजा । ताम्रतुङ्गनखी सुभ्रूश्चारुपीनपयोधरा ॥४५॥
मानुषं विग्रहं कृत्वा साक्षादमरवर्णिनी । नीलोत्पलसमो गन्धो यस्याः क्रोशात्प्रधावति ॥४६॥

रानी बोलीं—राजन्, अभी तक मैंने मुँह नहीं धोया है और स्नान भी नहीं किया है। अतएव, शरीर में अंगराग आदि लगे हुए हैं। अतएव, पुत्र प्राप्ति के लिए जो आप हवि देनेवाले हैं, उसको छूने के योग्य मैं नहीं हूँ। अतएव, याज आप ठहरें, मेरा प्रिय करने के लिए प्रतीक्षा करें ॥३७॥

याज बोले—यह हवि महर्षि याज ने तयार की है और उपयाज ने इसे अभिमंत्रित किया है। इस हवि से राजा का मनोरथ क्यों सिद्ध न होगा ? अतएव, तुम आओ चाहे न आओ। अर्थात् तुम्हारे बिना भी इस हवि से पुत्र और पुत्री अवश्य उत्पन्न होंगे ॥३८॥

ब्राह्मण बोले—महर्षि याज ने ऐसा कह कर वह संस्कृत हवि आग में डाल दी; जिससे उस अग्नि से देवता तुल्य रूपवान् एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३९॥ वह बालक अग्नि ज्वाला के समान तेजस्वी, भयंकर रूपवाला, किरीट, कवच, तलवार, बाण सहित धनुष लिए हुए उत्पन्न हुआ, और वह बार बार गर्जन कर रहा था। वह राजकुमार एक उत्तम रथ पर बैठ गया और वहाँ से चला। यह देख कर पांचाल देश के वासी प्रसन्न हो कर साधु साधु कहने लगे और अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगे ॥४०,४१॥ पाञ्चाल देश की प्रजा उस समय इतनी प्रसन्न हुई कि उसकी प्रसन्नता के वेग को पृथिवी सह न सकी। उस समय अदृश्य किसी आकाशचारी प्राणी ने यह कहा—"यह राजपुत्र, पाञ्चाल देश-वासियों का यश बढ़ावेगा और भय दूर करेगा। यह राजा का शोक दूर करेगा। द्रोण का वध करने के लिए यह उत्पन्न हुआ है" ॥४२,४३॥

एक कुमारी भी यज्ञवेदी से उत्पन्न हुई जिसका नाम पाञ्चाली था। बड़ी सुन्दरी थी, उस के अंग दर्शनीय थे। उसकी आँखें काली और विशाल थीं ॥४४॥ वह श्याम वर्ण की थी। कमल पत्र के समान उसकी आँखें थीं। उसके बाल काले और घुँघराले थे। उसके नख लाल और ऊँचे थे। उसकी भौंएँ सुन्दर थीं। उसके स्तन मोटे और सुन्दर थे ॥४५॥ वह साक्षात् देव कन्या मनुष्य रूप में उत्पन्न

या बिभर्ति परं रूपं यस्या नास्त्युपमा भुवि । देवदानवयक्षाणामीप्सितां देवरूपिणीम् ॥४७॥
तां चापि जातां सुश्रोणीं वागुवाचशरीरिणी । सर्वयोषिद्वरा कृष्णा निनीषुः क्षत्रियान्क्षयम् ॥४८॥
सुरकार्यमियं काले करिष्यति सुमध्यमा । अस्य हेतोः कौरवाणां महदुत्पत्स्यते भयम् ॥४९॥
तच्छ्रुत्वा सर्वपञ्चालाः प्रणेदुः सिंहसङ्घवत् । न चैतान्हर्षसम्पूर्णानियं सेहे वसुन्धरा ॥५०॥
तौ दृष्ट्वा पार्षती याजं प्रपेदे वै सुतार्थिनी । न वै मदन्यां जननीं जानीयातामिमाविति ॥५१॥
तथेत्युवाच तां याजो राज्ञः प्रियचिकीर्षया । तयोश्च नामनी चक्रुर्द्विजाः सम्पूर्णमानसाः ॥५२॥
धृष्टत्वादत्यमर्षित्वाद्द्युम्नाद्युत्संभवादपि । धृष्टद्युम्नः कुमारोऽयं द्रुपदस्य भवत्विति ॥५३॥
कृष्णेत्येवाब्रुवन्कृष्णां कृष्णाऽभूत्सा हि वर्णतः । तथा तन्मिथुनं जज्ञे द्रुपदस्य महामखे ॥५४॥
धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यमानीय स्वं निवेशनम् । उपाकरोदस्त्रहेतोर्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥५५॥
अमोक्षणीयं दैवं हि भावि मत्वा महामतिः । तथा तत्कृतवान्द्रोण आत्मकीर्त्यनुरक्षणात् ॥५६॥
इति श्री महाभारते आदिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि द्रौपदीसम्भवे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६७॥

हुई थी । नीलकमल के समान उसके शरीर की गन्ध एक कोश तक फैलती थी ॥४६॥ वह कन्या बड़ी ही सुन्दरी थी । उसके समान सुन्दरी दूसरी पृथिवी में न थी । उस देवांगना तुल्य कन्या को देवता दानव और यक्ष आदि पाना चाहते थे ॥४७॥ जब वह सुश्रोणि-सुन्दर नितम्बवाली यज्ञवेदी से उत्पन्न हुई, उस समय भी आकाशवाणी हुई । यह कृष्णा नामकी कन्या सब स्त्रियों में श्रेष्ठ होगी और क्षत्रियों के नाश का कारण बनेगी ॥४८॥ यह सुमध्यमा समय आने पर देवताओं का काम करेगी । इसके कारण कौरवों के ऊपर बड़ा भारी संकट आवेगा ॥४९॥ इस आकाशवाणी को सुनकर पांचालवासी दलबद्ध सिंहों के समान गर्जन करने लगे । वे इतने हर्षित हुए कि उनके हर्षवेग को पृथिवी न सह सकी ॥५०॥ पुत्र की इच्छा रखनेवाली, राजा द्रुपद की महारानी उन पुत्र और कन्या दोनों को देखकर महर्षि याज के पास गयीं और बोलीं—महराज आप ऐसी व्यवस्था करें; जिससे ये दोनों मुझे ही अपनी माता समझें ॥५१॥ राजा का कल्याण करने की इच्छा से महर्षि याज ने महारानी की प्रार्थना स्वीकार की । ब्राह्मणों ने उन दोनों का नाम करण किया । वे ब्राह्मण राजा द्रुपद से दान दक्षिणा आदि पाकर पूर्ण मनोरथ हो चुके थे ॥५२॥ मुनियों ने कहा कि यह कुमार धृष्ट है, क्रोधी है और मुकुट, कवच, तलवार आदि धन के साथ उत्पन्न हुआ है । अतएव राजा द्रुपद का यह कुमार धृष्टद्युम्न नाम से प्रसिद्ध होगा ॥५३॥ कन्या का नाम उन लोगों ने कृष्णा रखा । क्योंकि उसका वर्ण काला था इस प्रकार राजा द्रुपद के यज्ञ से ये दो; पुत्र और कन्या उत्पन्न हुए ॥५४॥ अनन्तर, पंचालराज द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न को द्रोणाचार्य अपने यहाँ ले गये और उन्होंने उसे अस्त्र विद्या की शिक्षा दी और इस प्रकार द्रुपद का उपकार किया ॥५५॥ द्रोणाचार्य ने अपने शत्रु के पुत्र को यह जानकर भी कि यह मेरे वध करने के लिए उत्पन्न किया गया है; अस्त्र विद्या को शिक्षा दी । क्योंकि वे भावी को अमिट समझते थे और अपनी कीर्ति की भी रक्षा करना चाहते थे, इसी कारण उन्होंने वैसा किया ॥५६॥

सप्तषष्ट्यधिक शततम अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयाः शल्यविद्धा इवाभवन् । सर्वे चास्वस्थमनसो बभूवुस्ते महाबलाः ॥१॥
ततः कुन्ती सुतान्दृष्ट्वा सर्वांस्तद्गतचेतसः । युधिष्ठिरमुवाचेदं वचनं सत्यवादिनी ॥२॥

कुन्त्युवाच—

चिररात्रोषिताः स्मेह ब्राह्मणस्य निवेशने । रममाणाः पुरे रम्ये लब्धभैक्षा महात्मनः ॥३॥
यानीह रमणीयानि वनान्युपवनानि च । सर्वाणि तानि दृष्टानि पुनः पुनररिन्दम ॥४॥
पुनर्दृष्टानि तानीह प्रीणयन्ति न नस्तथा । भैक्षं च न तथा वीर लभ्यते कुरुनन्दन ॥५॥
ते वयं साधु पञ्चालान्गच्छाम यदि मन्यसे । अपूर्वदर्शनं वीर रमणीयं भविष्यति ॥६॥
सुभिक्षाश्चैव पञ्चालाः श्रूयन्ते शत्रुकर्शन । यज्ञसेनश्च राजाऽसौ ब्रह्मण्य इति शुश्रुम ॥७॥
एकत्र चिरवासश्च क्षमो न च मतो मम । ते तत्र साधु गच्छामो यदि त्वं पुत्र मन्यसे ॥८॥

युधिष्ठिर उवाच—

भवत्या यन्मतं कार्यं तदस्माकं परं हितम् । अनुजांस्तु न जानामि गच्छेयुर्नेति वा पुनः ॥९॥

पाण्डवों का द्रुपद की राजधानी में जाने के लिए प्रस्थान

वैशम्पायन बोले—ब्राह्मण के ये वचन सुनकर कुन्ती के पुत्र बहुत व्याकुल हुए। काँटे चुभ जाने के समान वे व्यथित हुए। उनके मन अस्वस्थ हो गये ॥१॥ अनन्तर, कुन्ती ने जब देखा कि उनके सभी पुत्र द्रौपदी का स्वयम्बर देखने द्रुपद की राजधानी में जाने को उत्सुक हैं, तब वह सत्यवादिनी कुन्ती युधिष्ठिर से इस प्रकार बोलीं— ॥२॥

कुन्ती बोलीं—यहाँ ब्राह्मण के घर हम लोग बहुत दिनों तक रहे। इस रमणीय नगर में हम लोगों ने विचरण किया और यहाँ भिक्षा भी खूब मिली ॥३॥ यहाँ जो वन उपवन रमणीय हैं, उन सब को हम लोगों ने बार बार देख लिया है ॥४॥ अब बार बार वे ही देखी हुई चीजें देखने में भली मालूम नहीं होतीं। उनसे अब मन प्रसन्न नहीं होता। हे वीर कुरुनन्दन, अब यहाँ पहले के समान भिक्षा भी नहीं मिलती ॥५॥ इस लिए यदि तुम्हारी राय हो तो हम लोग पाञ्चाल देश में चलें। हे वीर, उस रमणीय देश को हमलोग पहले पहल देखेंगे ॥६॥ हे शत्रुकर्षण, सुना जाता है कि पाञ्चाल देश में भिक्षा भी खूब मिलती है और यह भी सुना जाता है कि यज्ञसेन महाराज द्रुपद भी ब्राह्मणों के बड़े अनुरागी हैं ॥७॥ हे पुत्र, एक स्थान पर बहुत दिनों तक रहना नहीं हो सकता है और यह उचित भी है। अतएव, यदि तुम चाहो तो हम सब लोग वहाँ चलें। मेरी समझ से वहाँ जाना अच्छा होगा ॥८॥

युधिष्ठिर बोले—आपका जो विचार है, आप जो काम करना चाहती हैं, उससे हम लोगों का बड़ा हित होगा, पर मैं नहीं जानता कि छोटे भाइयों की क्या इच्छा है। वे जाना पसन्द करेंगे या नहीं ॥९॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः कुन्ती भीमसेनमर्जुनं यमजौ तथा। उवाच गमनं ते च सर्वे तेऽनुकुर्वंस्तदा ॥१०॥
तत आमन्त्र्य तं विप्रं कुन्ती राजसुतैः सह। प्रतस्थे नगरीं रम्यां द्रुपदस्य महात्मनः ॥११॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि पाञ्चालदेशयात्रायां अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६८॥

वैशम्पायन उवाच—

वसत्सु तेषु प्रच्छन्नं पाण्डवेषु महात्मसु। आजगामाथ तान्द्रष्टुं व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य प्रत्युद्गम्य परन्तपाः। प्रणिपत्याभिवाद्यैनं तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ॥२॥
समनुज्ञाप्य तान्सर्वानासीनान्मुनिरब्रवीत्। प्रच्छन्नं पूजितः पार्थैः प्रीतिपूर्वमिदं वचः ॥३॥
अपि धर्मेण वर्तध्वं शास्त्रेण च परन्तपाः। अपि विप्रेषु पूजा वः पूजार्हेषु न हीयते ॥४॥
अथ धर्मार्थवद्वाक्यमुक्त्वा स भगवानृषिः। विचित्राश्च कथास्तास्ताः पुनरेवेदमब्रवीत् ॥५॥

व्यास उवाच—

आसीत्तपोवने काचिदृषेः कन्या महात्मनः। विलग्नमध्या सुश्रोणी सुभ्रूः सर्वगुणान्विता ॥६॥

वैशम्पायन बोले—अनन्तर, कुन्ती ने भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव से पाञ्चाल देश में जाने की बात कही और उन लोगों ने वहां जाना स्वीकार किया ॥१०॥ अनन्तर, ब्राह्मण से आज्ञा लेकर महात्मा द्रुपद की रमणीय नगरी में जाने के लिए कुन्ती ने पुत्रों के साथ वहां से प्रस्थान किया ॥११॥

अष्टषष्ठ्यधिक शततम अध्याय

व्यास जी का आगमन, स्वयम्बर में द्रौपदी की प्राप्ति का भविष्य कथन

वैशम्पायन बोले—महात्मा पाण्डव छिपकर जिस समय निवास कर रहे थे, उस समय सत्यवती पुत्र व्यास उनको देखने के लिए वहां आये ॥१॥ व्यास जी को आये देखकर शत्रुनाशी पाण्डव उनके स्वागत के लिए गये। प्रणाम और अभिवादन किया। पुनः वे हाथ जोड़कर व्यासदेव के सामने खड़े हो गये ॥२॥ पाण्डवों को बैठने की आज्ञा देकर और उनके बैठ जानेपर पाण्डवों के द्वारा पूजित व्यास मुनि प्रेमपूर्वक धीरे धीरे उनसे इस प्रकार बोले—॥३॥ क्या तुम लोग धर्म और शास्त्र के अनुसार व्यवहार करते हो? और जो ब्राह्मण पूजा के योग्य हैं, उनकी पूजा में तो त्रुटि नहीं करते? ॥४॥ वे भगवान ऋषि धर्म और अर्थ युक्त ऐसे बचन कहकर अद्भुत अद्भुत कथाएँ कहने लगे। पश्चात् वे इस प्रकार पाण्डवों से कहने लगे ॥५॥

व्यास बोले—किसी तपोवन में एक महात्मा ऋषि के एक कन्या थी। उसकी कमर पतली थी, नितम्ब सुन्दर थे, भौंएँ मनोहर थीं, वह सब गुणों से गुणवती थी ॥६॥ पर अपने

कर्मभिः स्वकृतैः सा तु दुर्भगा समपद्यत । नाध्यगच्छत्पतिं सा तु कन्या रूपवती सती ॥७॥
तपस्तप्तुमथारेभे पत्यर्थमसुखा ततः । तोषयामास तपसा सा किलोग्रेण शङ्करम् ॥८॥
तस्याः स भगवांस्तुष्टस्तामुवाच यशस्विनीम् । वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मीति शङ्करः ॥९॥
अथेश्वरमुवाचेदमात्मनः सा वचो हितम् । पतिं सर्वगुणोपेतमिच्छामिति पुनः पुनः ॥१०॥
तामथ प्रत्युवाचेदमीशानो वदतां वरः । पञ्च ते पतयो भद्रे भविष्यन्तीति भारताः ॥११॥
एवमुक्ता ततः कन्या देवं वरदमब्रवीत् । एकमिच्छाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्पतिं प्रभो ॥१२॥
पुनरेवाब्रवीद्देव इदं वचनमुत्तमम् । पञ्चकृत्वस्त्वया ह्युक्तः पतिं देहीत्यहं पुनः ॥१३॥
देहमन्यं गतायास्ते यथोक्तं तद्भविष्यति । द्रुपदस्य कुले जज्ञे सा कन्या देवरूपिणी ॥१४॥
निर्दिष्टा भवतां पत्नी कृष्णा पार्षत्यनिन्दिता । पाञ्चालनगरे तस्मान्निवसध्वं महाबलाः ॥
सुखिनस्तामनुप्राप्य भविष्यथ न संशयः ॥१५॥
एवमुक्त्वा महाभागः पाण्डवान्स पितामहः । पार्थानामन्त्र्य कुन्तीं च प्रातिष्ठित महातपाः ॥१६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि द्रौपदीजन्मानुकथने
ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९॥

कर्मों के कारण वह दुर्भगा हो गयी । वह कन्या रूपवती होने पर भी कोई पति नहीं पा सकी ॥७॥ अनन्तर, वह दुःखिनी होकर पति प्राप्त होने के लिए तपस्या करने लगी । उसने कठोर तपस्या करके भगवान् महादेव को प्रसन्न किया ॥८॥ उस यशस्विनी पर प्रसन्न होकर भगवान् शिव उससे इस प्रकार बोले—मैं शंकर हूँ, वर देने वाला हूँ । भद्रे, तुम मुझसे वर माँगो ॥९॥ वह भगवान् महादेव से अपने हित का यह बचन बोली ॥१०॥ सब गुणों से युक्त पति मुझे दीजिए । यह बात उस कन्या ने बार बार कही । वक्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् महादेव उससे इस प्रकार बोले—भद्रे, तुम्हारे पाँच पति होंगे ॥११॥ जब भगवान् ने उस कन्या से यह बात कही, तब उसने कहा—महाराज, मैं तो एक पति चाहती थी और वही मैंने आपसे माँगा भी था ॥१२॥

पुनः महादेव इस प्रकार सुन्दर बचन बोले—तुमने पांच बार मुझसे पति के लिए प्रार्थना की थी, इसी कारण मैंने तुम्हें पाँच पति दिये ॥१३॥ जो मैंने तुमसे कहा है, वह इस जन्म के बादवाले जन्म में होगा । वही देवकन्या के समान सुन्दरी कन्या द्रुपद के कुल में उत्पन्न हुई है ॥१४॥ वह सुन्दरी कृष्णा, राजा पृषत् की पौत्री तुम पाँचों भाइयों की स्त्री होनेवाली है । अतएव महाबलो, तुम पाञ्चाल नगर में जाकर निवास करो । उस कन्या को पाकर तुम लोग सुखी होगे, इसमें सन्देह नहीं ॥१५॥ पितामह महाभाग व्यासदेव पाण्डवों से ऐसा कहकर और पाण्डवों तथा कुन्ती से आज्ञा लेकर चले गये ॥१६॥

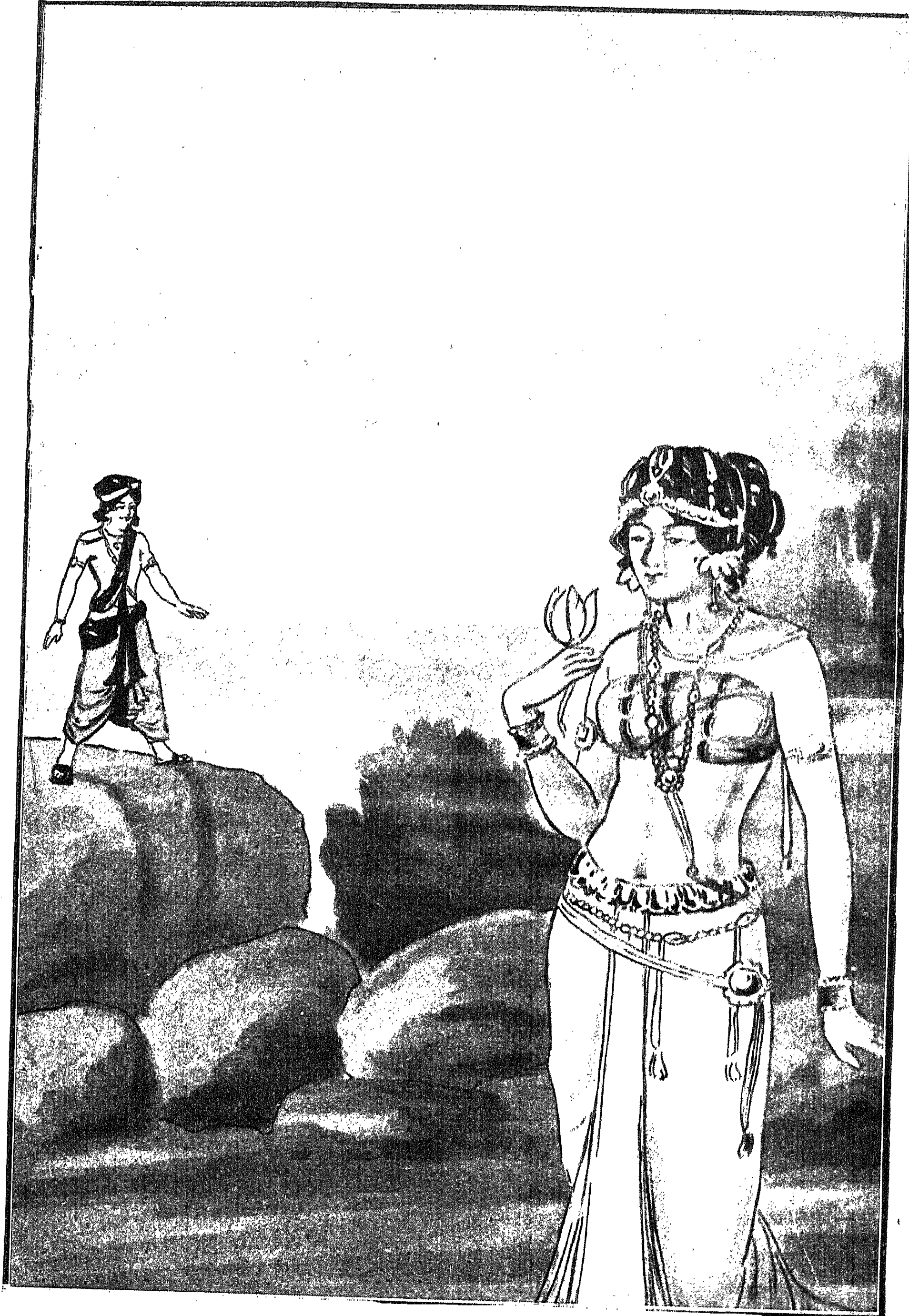
ऊनसप्तत्यधिक शततम अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

गते भगवति व्यासे पाण्डवा हृष्टमानसाः । ते प्रतस्थुः पुरस्कृत्य मातरं पुरुषर्षभाः ॥१॥
आमन्त्र्य ब्राह्मणं पूर्वमभिवाद्यानुमान्य च । समैरुदङ्मुखैर्मार्गैर्यथोद्दिष्टं परन्तपाः ॥२॥
ते त्वगच्छन्नहोरात्रात्तीर्थं सोमाश्रयायणम् । आसेदुः पुरुषव्याघ्रा गङ्गायां पाण्डुनन्दनाः ॥३॥
उल्मुकं तु समुद्यम्य तेषामग्रे धनञ्जयः । प्रकाशार्थं ययौ तत्र रक्षार्थं च महारथः ॥४॥
तत्र गङ्गाजले रम्ये विविक्ते क्रीडयन् स्त्रियः । ईर्ष्युर्गन्धर्वराजो वै जलक्रीडामुपागतः ॥५॥
शब्दं तेषां स शुश्राव नदीं समुपसर्पताम् । तेन शब्देन चाविष्टश्चुक्रोध बलवद्बली ॥६॥
स दृष्ट्वा पाण्डवांस्तत्र सह मात्रा परन्तपान् । विष्फारयन्धनुर्घोरमिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥
सन्ध्या संरज्यते घोरा पूर्वरात्रागमेषु या । अशीतिभिर्लवैर्हीनं तन्मुहूर्तं प्रचक्षते ॥८॥
विहितं कामचाराणां यक्षगन्धर्वरक्षसाम् । शेषमन्यं मनुष्याणां कर्मचारेषु वै स्मृतम् ॥९॥
लोभात्प्रचारं चरतस्तासु वेलासु वै नरान् । उपक्रान्ता निगृह्णीमो राक्षसैः सह बालिशान् ॥१०॥
अतो रात्रौ प्राप्नुवतो जलं ब्रह्मविदो जनाः । गर्हयन्ति नरान्सर्वान्बलस्थान्नृपतीनपि ॥११॥
आराच्च तिष्ठतास्माकं समीपं नोपसर्पत । कस्मान्मां नाभिजानीत प्राप्तं भागीरथीजलम् ॥१२॥

आधी रात को पाण्डवों का गंगातीर पहुंचना । वहां स्त्रियों के साथ जल क्रीड़ा करनेवाले चित्ररथ से अर्जुन का युद्ध । आग्नेयास्त्र के द्वारा अर्जुन का उसका रथ जलाना और उसे पकड़ना । उसकी स्त्री की प्रार्थना पर उसका उद्धार पाना । दोनों की मैत्री । परस्पर अस्त्र प्रदान ।

वैशम्पायन बोले—भगवान् व्यास के चले जाने पर पुरुषश्रेष्ठ वे पाण्डव प्रसन्न मन से ब्राह्मण की आज्ञा लेकर प्रणाम और उनका सत्कार कर के माता के साथ उत्तर ओर जाने वाले सीधे मार्ग से पाञ्चाल देश के लिए प्रस्थित हुए ॥१-२॥ दिन रात चलकर सोमतीर्थ नामक गंगा के तीर पर पुरुषसिंह पाण्डव पहुंचे ॥३॥ उनके आगे आगे मसाल लेकर अर्जुन चलते थे, जिससे प्रकाश हो तथा उनकी रक्षा हो ॥४॥ वहां एकान्त स्थान में, रमणीय गंगाजल में गन्धर्वराज स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करता था; जो बड़ा क्रोधी था ॥५॥ नदी की ओर आने वाले पाण्डवों का शब्द गन्धर्वराज ने सुना । उस शब्द से वह बली गन्धर्वराज धनुष चढ़ाने लगा और उनसे इस प्रकार बोला—॥७॥ पश्चिम दिशा में जब सूर्य मण्डल आधा लाल हो जाता है, अर्थात् आधा अस्त हो जाता है, उस समय को सन्ध्या कहते हैं । उस समय अस्सी निमेष छोड़कर जो समय आता है वह इच्छानुसार घूमनेवाले यक्ष, गन्धर्व और राक्षसों के प्रस्थान का समय है । उसके अतिरिक्त के समय मनुष्यों के प्रस्थान के लिए हैं, अर्थात् संध्या के बाद यक्ष राक्षस आदि घूमते हैं, मनुष्य नहीं । अतएव, ऐसे समय आकर तुम लोगों ने अपराध किया है ॥८-९॥ जो मूर्ख मनुष्य लोभ वश संध्या के बाद भ्रमण करते हैं, उनको हम गन्धर्व और राक्षस मिलकर पकड़ लेते हैं ॥१०॥ इसी कारण रात्रि के समय जो नदी तीर पर जाते हैं, वे बलवान् राजा भी क्यों न हों, वेदज्ञ पुरुष उनकी निन्दा ही करते हैं ॥११॥ तुमलोग वहीं ठहर



संवरण और तपती का मिलन।

(पृष्ठ ६२३)

आङ्गरपर्णं गन्धर्वं वित्त मां स्वबलाश्रयम् । अहं हि मानी चेर्ष्युश्च कुवेरस्य प्रियः सखा ॥१३॥
अङ्गारपर्णमित्येवं ख्यातं चेदं वनं मम । अनुगङ्गं चरन्कामांश्चित्रं यत्र रमाम्यहम् ॥१४॥
न कौणपाः शृङ्गिणो वा न देवा न च मानुषाः । इदं समुपसर्पन्ति तत्किं समुपसर्पथ ॥१५॥
अर्जुन उवाच—
समुद्रे हिमवत्पार्श्वे नद्यामस्यां च दुर्मते । रात्रावहनि सन्ध्यायां कस्य गुप्तः परिग्रहः ॥१६॥
भुक्तोवाऽप्यथ वाऽभुक्तो रात्रावहनि खेचर । न कालनियमो ह्यस्ति गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम् ॥१७॥
वयं च शक्तिसम्पन्ना अकाले त्वामधृष्णुम । अशक्ता हि रणे क्रूर युष्मानर्चन्ति मानवाः ॥१८॥
पुरा हिमवतश्चैषा हेमशृङ्गाद्विनिःसृता । गङ्गा गत्वा समुद्राम्भः सप्तधा समपद्यत ॥१९॥
गङ्गां च यमुनां चैवप्लक्षजातां सरस्वतीम् । रथस्थां सरयूं चैव गोमती गण्डकीं तथा ॥२०॥
अपर्युषितपापास्ते नदीः सप्त पिबन्ति ये । इयं भूत्वा चैकवप्रा शुचिराकाशगा पुनः ॥२१॥
देवेषु गङ्गा गन्धर्व प्राप्नोत्यलकनन्दताम् । तथा पितॄन्वैतरणी दुस्तरा पापकर्मभिः ॥
गङ्गा भवति वै प्राप्य कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥२२॥

जाओ । मेरे पास न आओ । क्या तुम लोगों को मालूम नहीं है कि मैं यहां गंगातीर पर आया हूँ ॥१२॥ तुम लोग समझो कि मैं अङ्गारपर्ण नामका गन्धर्व हूं और मुझे अपने बल का भरोसा है । मैं बड़ा अभिमानी और क्रोधी हूँ । मैं कुबेर का मित्र हूँ ॥१३॥ यह मेरा वन भी मेरे नाम से प्रसिद्ध है, अर्थात् यह अङ्गारपर्ण वन कहा जाता है । मैं यहां गंगातीर पर विचरण करता हूँ और आनन्द करता हूँ ॥१४॥ राक्षस, सींगवाले पशु, वन देवता अथवा मनुष्य कोई भी इस वन में नहीं आता । फिर तुम लोग क्यों आये ?॥१५॥

अर्जुन बोले—समुद्र, हिमालय पर्वत के समीप के प्रदेश तथा गंगातीर पर रात में, दिन में या संध्या के समय सभी आ जा सकते हैं । यहां किसी का अधिकार नहीं है । कोई यहां अपने परिवार को पर्दा में नहीं रख सकता ॥१६॥ भोजन किया हो या भूखा हो; वह दिन रात जब चाहे तब गङ्गा तीर आ सकता है । आकाशचारी गन्धर्व, नदीश्रेष्ठ गङ्गा तीर पर आने के लिए समय की कैद नहीं है ॥१७॥ हम लोग बली हैं । अतएव, इस असमय में भी यहां आ गये हैं और तुम्हारा निरस्कार किया है । क्रूर, जो लोग असमर्थ हैं, दुर्बल हैं, वे ही मनुष्य तुम लोगों की पूजा करते हैं ॥१८॥ यह गङ्गा पहले हिमवान् पर्वत के एक शिखर से निकली है और समुद्र में जाकर सात धाराओं से मिली है ॥१९॥ गङ्गा, यमुना, प्लक्षजातासरस्वती, रथस्था, सरयू, गोमती, और गण्डकी ये गङ्गा की सात धाराएँ हैं ॥२०॥ जो इन सातों नदियों का जल पीते हैं उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । यह पवित्र गंगा अपनी अन्य धाराओं से मिलकर आकाश में चली जाती है ॥२१॥ हे गन्धर्व, देवलोक में इस गंगा का नाम अलकनन्दा है और पितृलोक में इसका नाम वैतरणी है जिसका पार करना पापियों के लिए असम्भव है । यह बात महर्षि कृष्ण द्वैपायन ने कही है ॥२२॥ यह देवनदी गंगा सदा पवित्र रहती है, यह पवित्र नदी स्वर्ग देनेवाली

असम्बाधा देवनदी स्वर्गसंपादनी शुभा। कथमिच्छसि तां रोद्धुं नैष धर्मः सनातनः ॥२३॥
अनिवार्यमसम्बाधं तव वाचा कथं वयम्। न स्पृशेम यथाकामं पुण्यं भागीरथीजलम्॥२४॥
वैशम्पायन उवाच—
अङ्गारपर्णस्तच्छ्रुत्वा क्रुद्ध आनाम्य कार्मुकम्। मुमोच बाणान्निशितानहीनाशीविषानिव ॥२५॥
उल्मुकं भ्रामयंस्तूर्णं पाण्डवश्चर्म चोत्तरम्। व्यपोहत शरांस्तस्य सर्वानेव धनञ्जयः ॥२६॥
अर्जुन उवाच—
विभीषिका वै गन्धर्व नास्त्रज्ञेषु प्रयुज्यते। अस्त्रज्ञेषु प्रयुक्तेयं फेनवत्प्रविलीयते ॥२७॥
मानुषानति गन्धर्वान्सर्वान् गन्धर्व लक्षये। तस्मादस्त्रेण दिव्येन योत्स्येऽहं न तु मायया ॥२८॥
पुराऽस्त्रमिदमाग्नेयं प्रादात्किल बृहस्पतिः। भारद्वाजाय गन्धर्व गुरुर्मान्यः शतक्रतोः ॥२९॥
भरद्वाजादग्निवेश्य अग्निवेश्याद्गुरुर्मम। साध्विदं मह्यमददाद्द्रोणो ब्राह्मणसत्तमः ॥३०॥
वैशम्पायन उवाच—
इत्युक्त्वा पाण्डवः क्रुद्धो गन्धर्वाय मुमोच ह। प्रदीप्तमस्त्रमाग्नेयं ददाहास्य रथं तु तत् ॥३१॥
विरथं विप्लुतं तं तु स गन्धर्वं महाबलः। अस्त्रतेजः प्रमूढं च प्रपतन्तमवाङ्मुखम्॥३२॥

है। फिर तुम हम लोगों को गंगा के पास जाने से क्यों रोकते हो। यह तो सनातन धर्म नहीं है, यह सनातन की मर्यादा से विरुद्ध है ॥२३॥ इस गंगा के तीर पर आने में किसी के लिए भी कोई रुकावट नहीं है। फिर तुम्हारे कहने से हमलोग इस पवित्र गंगाजल का स्पर्श क्यों न करेंगे ॥२४॥

वैशम्पायन बोले—अर्जुन के ये वचन सुनकर अंगारपर्ण ने धनुष चढ़ाया और विषैले साँप के समान तीखे बाण उसने छोड़े ॥२५॥ अर्जुन ने उस मसाल को घुमाकर तथा ढाल से रोककर उस गन्धर्व के सभी बाण व्यर्थ कर दिये ॥२६॥

अर्जुन बोले—हे गन्धर्व, जो अस्त्र जाननेवाले हैं उन्हें भय दिखाना व्यर्थ है। क्योंकि वे भयभीत नहीं होते, उनके सामने भय दिखाना पानी के फेन के समान गल जाता है ॥२७॥ गन्धर्व, मैं जानता हूँ कि सभी गन्धर्व मनुष्यों से अधिक बली होते हैं, अतएव मैं तुमसे माया के द्वारा युद्ध न करके दिव्यास्त्र से युद्ध करूँगा ॥२८॥ गन्धर्व, इन्द्र के माननीय गुरु बृहस्पति ने पहले यह आग्नेय अस्त्र भरद्वाज मुनि को दिया था ॥२९॥ भरद्वाज से यह अस्त्र अग्निवेश को मिला और अग्निवेश से, ब्राह्मण श्रेष्ठ मेरे गुरु द्रोण को मिला और द्रोण ने मुझे दिया ॥३०॥

वैशम्पायन बोले—गन्धर्व से ऐसा कहकर अर्जुन ने क्रोध करके उस गन्धर्व पर जलता हुआ आग्नेय अस्त्र छोड़ा, जिससे उसका रथ जल गया ॥३१॥ वह गन्धर्व रथ के जलने से व्याकुल हो गया, आग्नेय अस्त्र के तेज से घबरा गया, रथ से कूद न सका और औंधे मुंह नीचे गिर पड़ा ॥३२॥ तब फूल से गुंथे उसके बालों को अर्जुन ने पकड़ लिया। उसे खींच कर वे

शिरोरुहेषु जग्राह माल्यवत्सु धनञ्जयः। भ्रातृन्प्रति चकर्षाथ सोऽस्त्रपाताद्चेतसम् ॥३३॥
युधिष्ठिरं तस्य भार्या प्रपेदे शरणार्थिनी। नाम्ना कुम्भीनसी नाम पतित्राणमभीप्सती ॥३४॥
गन्धर्व्युवाच—
त्रायस्व मां महाभाग पतिं चेमं विमुञ्च मे। गन्धर्वी शरणं प्राप्ता नाम्ना कुम्भीनसी प्रभो ॥३५॥
युधिष्ठिर उवाच—
युद्धे जितं यशोहीनं स्त्रीनाथमपराक्रमम्। को निहन्याद्रिपुं तात मुञ्चेमं रिपुसूदन ॥३६॥
अर्जुन उवाच—
जीवितं प्रतिपद्यस्व गच्छ गन्धर्व मा शुचः। प्रदिशत्यभयं तेऽद्य कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥३७॥
गन्धर्व उवाच—
जितोऽहं पूर्वकं नाम मुञ्चाम्यङ्गारपर्णताम्। न च श्लाघे बलेनांग न नाम्ना जनसंसदि ॥३८॥
साध्विमं लब्धवाँल्लाभं योऽहं दिव्यास्त्रधारिणम्। गन्धर्व्या माययेच्छामि संयोजयितुमर्जुनम् ॥३९॥
अस्त्राग्निना विचित्रोऽयं दग्धो मे रथ उत्तमः। सोऽहं चित्ररथो भूत्वा नाम्नाद्ग्धरथोऽभवम् ॥४०॥
संभृता चैव विद्येयं तपसेह मया पुरा। निवेदयिष्ये तामद्य प्राणदाय महात्मने ॥४१॥
संस्तम्भयित्वा तरसा जितं शरणमागतम्। यो रिपुं योजयेत्प्राणैः कल्याणं किं न सोऽर्हति ॥४२॥

अपने भाइयों के पास ले आये। उस समय वह गन्धर्व अचेत था ॥३३॥ उस गन्धर्व की कुम्भीनसी नाम की स्त्री पति की रक्षा के लिए युधिष्ठिर की शरण में गयी ॥३४॥

गन्धर्वी बोली—मैं कुम्भीनसी नाम की गन्धर्वी हूँ, आप की शरण आयी हूँ। मेरे पति को छोड़ दें, मेरी रक्षा करें ॥३५॥

युधिष्ठिर बोले—हे तात रिपुसूदन, जो युद्ध में हार गया है, जिसके पराक्रम और यश नष्ट होगये हैं, जिसकी रक्षा स्त्री कर रही है। उस शत्रु को कौन मार सकता है, अतएव इसे छोड़ दो ॥३६॥

अर्जुन बोले—गन्धर्व, अब तुम्हारे प्राण बच गये, जाओ, शोक मत करो। कुरुराज युधिष्ठिर तुम्हें अभय दान दे रहे हैं ॥३७॥

गन्धर्व बोला—आज मेरी पहली हार हुई है। अब मैं अंगारपर्ण नाम छोड़ता हूँ। (अग्नि के समान चमकीला रथ होने के कारण यह अंगारपर्ण कहा जाता था। अब तो रथ जल गया, अतएव वह अपना नाम बदलता है) अब जनसमाज में इस नाम से तथा अपने बल से परिचित होना कोई प्रशंसा की बात न रही ॥३८॥ हाँ, इतना लाभ अवश्य हुआ कि दिव्यास्त्रधारी अर्जुन को गन्धर्वों की माया सिखा देना चाहता हूँ ॥३९॥ अस्त्र की आग से मेरा यह उत्तम रथ जल गया। अब तक मैं चित्ररथ था, अब दग्धरथ हो गया हूँ ॥४०॥ यह विद्या मैंने तपस्या के द्वारा पायी थी। प्राण रक्षक महात्मा को यह विद्या मैं आज दूंगा ॥४१॥ जो शत्रु को स्तम्भित कर शीघ्र ही जीत लेता है और वही शत्रु पुनः जब शरण में आता है तब उसे छोड़ देता है,

चाक्षुषी नाम विद्येयं यां सोमाय ददौ मनुः । ददौ स विश्वावसवे मम विश्वावसुर्ददौ ॥४३॥
सेयं कापुरुषं प्राप्ता गुरुदत्ता प्रणश्यति । आगमोऽस्या मया प्रोक्तो वीर्यं प्रतिनिबोध मे ॥४४॥
यच्चक्षुषा द्रष्टुमिच्छेत्त्रिषु लोकेषु किंचन । तत्पश्येद्यादृशं चेच्छेत्तादृशं द्रष्टुमर्हति ॥४५॥
एकपादेन षण्मासान्स्थितो विद्यां लभेदिमाम् । अनुनेष्याम्यहं विद्यां स्वयं तुभ्यं व्रतेऽकृते ॥४६॥
विद्यया ह्यनया राजन्वयं नृभ्यो विशेषिताः । अविशिष्टाश्च देवानामनुभावप्रदर्शिनः ॥४७॥
गन्धर्वजानामश्वानामहं पुरुषसत्तम । भ्रातृभ्यस्तव तुभ्यं च पृथग्दाता शतं शतम् ॥४८॥
देवगन्धर्ववाहास्ते दिव्यवर्णा मनोजवाः । क्षीणाक्षीणा भवन्त्येते न हीयन्ते च रंहसः ॥४९॥
पुरा कृतं महेन्द्रस्य वज्रं वृत्रनिबर्हणम् । दशधा शतधा चैव तच्छीर्णं वृत्रमूर्धनि ॥५०॥
ततो भागीकृतो देवैर्वज्रभाग उपास्यते । लोके यशोधनं किंचित्सैव वज्रतनुः स्मृता ॥५१॥
वज्रपाणिर्ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रं वज्ररथं स्मृतम् । वैश्या वै दानवज्राश्च कर्मवज्रा यवीयसः ॥५२॥
क्षत्रवज्रस्य भागेन अवध्या वाजिनः स्मृताः । रथाङ्गं वडवा सूते शूराश्चाश्वेषु ये मताः ॥५३॥

ऐसा वीर किस कल्याण का अधिकारी नहीं है । ऐसे उदार को सभी पदार्थ पाने का अधिकार है ॥४२॥ इस विद्या का नाम चाक्षुषी विद्या है । मनु ने यह विद्या सोम को दी थी । सोम ने विश्वावसु को दी थी और उन्होंने मुझे दी ॥४३॥ गुरु की दी हुई यह विद्या कायर पुरुषों के पास जा कर नष्ट हो जाती है, इसकी शक्ति जाती रहती है । यह विद्या मुझे किससे मिली यह मैंने आप को बतलाया, अब इसका प्रभाव आप मुझसे सुनें ॥४४॥ त्रिलोक की जिस किसी वस्तु को मनुष्य अपनी आँखों से देखना चाहे, वह इस विद्या के प्रभाव से देख सकता है । जिसको जिस रूप में वह देखना चाहे, उसको उसी रूप में वह देख सकता है ॥४५॥ छः महीने तक एक पैर पर खड़े रहकर जो तपस्या करता है वह इस विद्या को पाता है । इस व्रत के बिना किये ही मैं स्वयं तुम्हें यह विद्या दूंगा ॥४६॥ राजन्, इसी विद्या के कारण हम लोग मनुष्यों से श्रेष्ट समझे जाते हैं और देवताओं से छोटे। इसी विद्या के कारण हमलोगों का प्रभाव है ॥४७॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, गन्धर्वदेश के घोड़े तुमको और तुम्हारे भाइयों को सौ सौ मैं अलग अलग दूंगा ॥४८॥ ये घोड़े देवताओं और गन्धर्वों के बाहन हैं । इनका वर्ण बड़ा सुन्दर होता है । ये वायु के समान तेज चलते हैं । ये पतले होते हैं, पर इनका वेग कम नहीं होता ॥४९॥ वृत्रासुर का नाश करने के लिए पहले वज्र बनाया गया था, वह बज्र उसके मस्तक पर पड़ कर पहले दस टुकड़े हो गया पुनः उसके सौ सौ टुकड़े हुए ॥५०॥ अनेक भागों में विभक्त उसी बज्र के टुकड़ों की उपासना देवता करते हैं । लोक में यश धन आदि जो कुछ हैं वे सब उसी बज्र के टुकड़े ही हैं ॥५१॥ ब्राह्मण का हाथ बज्र है क्योंकि वह उस हाथ से हवन करता है । क्षत्रियों का रथ बज्र है, वैश्यों का दान बज्र है और शूद्रों का कर्म बज्र है ॥५२॥ क्षत्रियों के बज्र का अंग घोड़ा है, इसी कारण वह अवध्य समझा जाता है, रथ के उस अङ्ग को घोड़ी उत्पन्न करती है और वह रथ का अङ्ग घोड़ों में बीर समझा जाता है ॥५३॥ ये घोड़े अपनी इच्छा के अनुसार रूप बदल सकते हैं,

कामवर्णाः कामजवाः कामतः समुपस्थिताः। इति गन्धर्वजाःकामं पूरयिष्यन्ति मे हयाः ॥५४॥
अर्जुन उवाच—
यदि प्रीतेन मे दत्तं संशये जीवितस्य वा। विद्याधनं श्रुतं वाऽपि न तद्गन्धर्व रोचये ॥५५॥
गन्धर्व उवाच—
संयोगो वै प्रीतिकरो महत्सु प्रतिदृश्यते। जीवितस्य प्रदानेन प्रीतो विद्यां ददामि ते ॥५६॥
त्वत्तोऽप्यहं ग्रहीष्यामि अस्त्रमाग्नेयमुत्तमम्। तथैव योग्य बीभत्सो चिराय भरतर्षभ ॥५७॥
अर्जुन उवाच—
त्वत्तोऽस्त्रेण वृणोम्यश्वान्संयोगःशाश्वतोऽस्तु नौ। सखे तद्ब्रूहि गन्धर्व युष्मभ्यो यद्भयं भवेत् ॥५८॥
कारणं ब्रूहि गन्धर्व किं तद्येन स्म धर्षिताः। यान्तो वेदविदः सर्वे सन्तो रात्रावरिन्दमाः॥५९॥
गन्धर्व उवाच—
अनग्नयोऽनाहुतयो न च विप्रपुरस्कृताः। यूयं ततो धर्षिताः स्थ मया वै पाण्डुनन्दनाः ॥६०॥
यक्षराक्षसगन्धर्वाः पिशाचोरगदानवाः। विस्तरं कुरुवंशस्य धीमन्तः कथयन्ति ते ॥६१॥
नारदप्रभृतीनां तु देवर्षीणां मया श्रुतम्। गुणान्कथयतां वीर पूर्वेषां तव धीमताम् ॥६२॥

इच्छानुसार चल सकते हैं और इच्छानुसार उपस्थित हो सकते हैं। मेरे दिये हुए ये गन्धर्व देश के घोड़े तुम्हारे मनोरथ पूरे करेंगे ॥५४॥

अर्जुन बोले—प्राण सङ्कट से मैंने तुम्हारी रक्षा की है, इसकी प्रसन्नता में यदि तुम मुझे विद्या और घोड़े देते हो तो यह सब मुझे न चाहिए, मैं उपकार का बदला नहीं चाहता ॥५५॥

गन्धर्व बोला—महात्माओं के पास जब कोई जाता है, तब वे उससे प्रेम करने लगते हैं, यह उनका स्वभाव है। आपने मुझे प्राण दान भी दिया है, इससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हो कर यह विद्या दे रहा हूँ ॥५६॥ मैं भी आप से उत्तम आग्नेय अस्त्र ग्रहण करूँगा। इस प्रकार अस्त्र के बदले में अस्त्र लेना यह उचित बदला होगा और हम लोगों की सदा के लिए मैत्री हो जायगी ॥५७॥

अर्जुन बोले—आग्नेय अस्त्र के बदले में मैं घोड़े लेना चाहता हूँ। हमारी तुम्हारी मैत्री सदा के लिए होगी। मित्र गन्धर्व, मनुष्यों को गन्धर्वों से भय होने का कारण क्या है, बतलाओ। गन्धर्व, हमलोग शत्रुओं का दमन कर सकते हैं, हम सब वेदज्ञ हैं, फिर भी तुम ने गंगातीर जाते हुए हम लोगों को रोका इसका कारण बतलाओ ॥५८,५९॥

गन्धर्व बोला—आप लोग अग्निहोत्र नहीं करते, अर्थात् अभी तक आप का विवाहनहीं हुआ है और आप लोगों ने अग्निहोत्र ग्रहणनहीं किया है, आप लोग हवन नहीं करते और न कोई ब्राह्मण पुरोहित ही आप लोगों के साथ है। इसी कारण हमने आपलोगों को रोका, आपका तिरस्कार किया ॥६०॥ यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, नाग, दानव, ये बुद्धिमान्, तुम्हारे कुरुवंश का वर्णन करते हैं ॥ ६१ ॥ नारद आदि देवर्षियों के द्वारा भी तुम्हारे बुद्धिमान् पूर्वजों के गुण मैं सुन चुका हूँ ॥६२॥ इस सागराम्बरा समस्त पृथिवी पर भ्रमण करते

त्वयं चापि मया दृष्टश्चरता सागराम्बराम् । इमां वसुमतीं कृत्स्नां प्रभावः सुकुलस्य ते ॥६३॥
वेदे धनुषि चाचार्यमभिजानामि तेऽर्जुन । विश्रुतं त्रिषु लोकेषु भारद्वाजं यशस्विनम् ॥६४॥
धर्मं वायुं च शक्रं च विजानाम्यश्विनौ तथा । पाण्डुं च कुरुशार्दूल षडेतान्कुरुवर्धनान् ॥
पितॄनेतानहं पार्थ देवमानुषसत्तमान् ॥६५॥
दिव्यात्मानो महात्मानः सर्वशस्त्रभृतांवराः । भवन्तो भ्रातरः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः॥६६॥
उत्तमां च मनोबुद्धिं भवतां भावितात्मनाम् । जानन्नपि च वः पार्थ कृतवानिह धर्षणाम् ॥६७॥
स्त्रीसकाशे च कौरव्य न पुमान्क्षन्तुमर्हति । धर्षणामात्मनः पश्यन्बाहुद्रविणमाश्रितः ॥६८॥
नक्तं च बलमस्माकं भूय एवाभिवर्धते । यतस्ततो मां कौन्तेय सदारं मन्युराविशत् ॥६९॥
सोऽहं त्वयेह विजितः सङ्ख्ये तापत्यवर्धन । येन तेनेह विधिना कीर्त्यमानं निबोध मे ॥७०॥
ब्रह्मचर्यपरो धर्मःस चापि नियतस्त्वयि । यस्मात्तस्मादहं पार्थ रणेऽस्मि विजितस्त्वया ॥७१॥
यस्तु स्यात्क्षत्रियः कश्चित्कामवृत्तः परन्तप । नक्तं च युधि युध्येत न स जीवेत्कथंचन ॥७२॥
यस्तु स्यात्कामवृत्तोऽपि पार्थ ब्रह्मपुरस्कृतः । जयेन्नक्तञ्चरान्सर्वान्स पुरोहितधूर्गतः ॥७३॥
तस्मात्तापत्य यत्किंचिन्नृणां श्रेय इहेप्सितम् । तस्मिन्कर्मणि योक्तव्या दान्तात्मानःपुरोहिताः॥७४॥

हुए मैं स्वयं तुम्हारे श्रेष्ठकुल का प्रभाव देख चुका हूँ ॥६३॥ अर्जुन, वेद और अस्त्र के तुम्हारे आचार्य को भी मैं जानता हूँ । वे यशस्वी भारद्वाज तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं ॥६४॥ धर्मराज, वायु, इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमारों और पाण्डु को भी मैं जानता हूँ । येही छः कुरुकुल को बढ़ाने वाले हैं । देवश्रेष्ठ और मनुष्यश्रेष्ठ ये छः आप लोगों के पिता हैं यह भी मैं जानता हूँ ॥६५॥ आपलोग पांचों पाण्डव देवस्वरूप हैं, महात्मा हैं, शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ हैं । आप सभी भाई वीर हैं चरित्रवान् हैं और व्रतपूर्ण करनेवाले हैं ॥६६॥ आप लोगों का अन्तः करण पवित्र है, बुद्धि और मन निर्मल हैं, यह सब जान कर भी मैंने आप लोगों का तिरस्कार किया, धमकी दी ॥६७॥ कौन्तेय जिसकी भुजा में बल है वह कोई पुरुष स्त्री के सामने अपना तिरस्कार नहीं सह सकता । तुमलोग उस समय चले आये मैं स्त्री के साथ था, इससे मैंने अपना अपमान समझा और तुम लोगों का तिरस्कार किया ॥६८॥ एक और बात है, रात के समय हमलोगों का बल बढ़ जाता है, इसी कारण उस समय स्त्री के साथ मुझे क्रोध आ गया था ॥६९॥ हे तापत्यवर्धन, युद्ध में तुमने मुझे जीत लिया है । युद्ध में तुमसे क्यों हार गया, यह मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥७०॥ हे पार्थ, ब्रह्मचर्य पालन बड़ा धर्म है, तुम्हारा ब्रह्मचर्य अखण्डित है । अतएव युद्ध में मैं तुमसे हार गया ॥७१॥ यदि कोई क्षत्रिय विवाहित हो, उसका ब्रह्मचर्य नष्ट हो गया हो और वह रात को हम लोगों से लड़े, तो वह कभी जीता नहीं बच सकता ॥७२॥ पर विवाहित होने पर भी यदि कोई क्षत्रिय वेदज्ञ हो, पुरोहित की आज्ञा के अनुसार चलने वाला हो तो वह रात को भी सभी निशाचरों को जीत सकता है ॥७३॥ अतएव हे तापत्य, इस लोक में मनुष्य जो कुछ कल्याण चाहे, कल्याण के लिए जो कुछ काम करना चाहे उस काम में उसे

वेदे षडङ्गे निरताः शुचयः सत्यवादिनः। धर्मात्मानः कृतात्मनः स्युर्नृपाणां पुरोहिताः ॥७५॥
जयश्च नियतो राज्ञःस्वर्गश्च तदनन्तरम्। यस्य स्याद्धर्मविद्वाग्मी पुरोगाःशीलवाञ्शुचिः ॥७६॥
लाभं लब्धुमलब्धं वा लब्धं वा परिरक्षितुम्। पुरोहितं प्रकुर्वीत राजा गुणसमन्वितम् ॥७७॥
पुरोहितमते तिष्ठेद्य इच्छेद्भूतिमात्मनः। प्राप्तुं वसुमतीं सर्वां सर्वशः सागराम्बराम् ॥७८॥
न हि केवलशौर्येण तापत्याभिजनेन च। जयेदब्राह्मणः कश्चिद्भूमिं भूमिपतिः क्वचित् ॥७९॥
तस्मादेवं विजानीहि कुरूणां वंशवर्धन। ब्राह्मणप्रमुखं राज्यं शक्यं पालयितुं चिरम् ॥८०॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि गन्धर्वपराभवे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

अर्जुन उवाच—

तापत्य इति यद्वाक्यमुक्तवानसि मामिह। तदहं ज्ञातुमिच्छामि तापत्यार्थं विनिश्चितम् ॥१॥
तपती नाम का चैषा तापत्या यत्कृते वयम्। कौन्तेया हि वयं साधो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ॥२॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तः स गन्धर्वः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम्। विश्रुतं त्रिषु लोकेषु श्रावयामास वै कथाम् ॥३॥

जितेन्द्रिय पुरोहित की सहायता लेनी चाहिए। पुरोहित की आज्ञा के अनुसार उसे चलना चाहिए। ॥७४॥ वेदज्ञ वेदाङ्ग के ज्ञाता पवित्र, सत्यवादी धर्मात्मा और शुद्धचित्त पुरुष को राजा का पुरोहित होना चाहिए ॥७५॥ जिस राजा का पुरोहित धर्मज्ञ, वक्ता, शीलवान् और पवित्र होता है, उस राजा की विजय और पश्चात् स्वर्ग प्राप्ति निश्चित है ॥७६॥ धन पाने और पाये धन की रक्षा के लिए राजा को चाहिए कि गुणवान पुरुष को पुरोहित बनाये ॥७७॥ यदि वह अपना कल्याण चाहे तो पुरोहित की आज्ञा के अनुसार चले। सागराम्बरा समस्त पृथिवी को पाने के लिए वह पुरोहित की आज्ञा माने ॥७८॥ तापत्य, केवल पराक्रम से अथवा कुलसे, ब्राह्मण की सहायता के बिना कोइ राजा पृथिवी नहीं जीत सकता ॥७९॥ हे कुरुवंश वर्धन, तुम यह निश्चित समझो कि ब्राह्मण को आगे करके ही राजा बहुत दिनों तक राज्य पालन कर सकता है ॥८०॥

सप्तत्यधिक शततम अध्याय।

तपती की कथा। शिकार के लिए वन में घूमनेवाले राजा संवरण का तपती को देखना और काम मोहित होना। तपती का छिपजाना।

अर्जुन बोले—तुमने मुझे तापत्य कह कर सम्बोधित किया है। अतएव मैं तापत्य शब्द का निश्चित अर्थ जानना चाहता हूँ। किस कारण से तुमने मुझे तापत्य कहा है, यह बतलाओ ॥१॥ साधो, हमलोग कुन्ती के पुत्र हैं इसकारण कौन्तेय कहे जाते हैं। यह तपती कौन है जिसके कारण हम लोग तापत्य भी कहे जाते हैं। इसका यथार्थ रहस्य हम जानना चाहते हैं ॥२॥

वैशम्पायन बोले—कुन्तीपुत्र अर्जुन के ऐसा कहने पर उस गन्धर्व ने तीनों लोकों में प्रसिद्ध कथा उनको सुनायी ॥३॥

गन्धर्व उवाच—

हन्त ते कथयिष्यामि कथामेतां मनोरमाम्। यथावदखिलां पार्थ सर्वबुद्धिमतां वर ॥४॥
उक्तवानस्मि येन त्वां तापत्य इति यद्वचः। तत्तेऽहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना भव ॥५॥
य एष दिवि धिष्ण्येन नाकं व्याप्नोति तेजसा। एतस्य तपती नाम बभूव सदृशी सुता ॥६॥
विवस्वतो वै देवस्य सावित्र्यवरजा विभो। विश्रुता त्रिषु लोकेषु तपती तपसा युता ॥७॥
न देवी नासुरी चैव न यक्षी न च राक्षसी। नाप्सरा न च गन्धर्वी तथा रूपेण काचन ॥८॥
सुविभक्तानवद्याङ्गी स्वसितायतलोचना। स्वाचारा चैव साध्वी च सुवेषा चैव भामिनी ॥९॥
न तस्याः सदृशं कंचित्त्रिषु लोकेषु भारत। भर्तारं सविता मेने रूपशीलगुणैः श्रुतैः ॥१०॥
सम्प्राप्तयौवनां पश्यन्देयां दुहितरं तु ताम्। नोपलेभे ततः शान्तिं संप्रदानं विचिंतयन् ॥११॥
अथर्क्षपुत्रः कौन्तेय कुरूणामृषभो बली। सूर्यमाराधयामास नृपः संवरणस्तदा ॥१२॥
अर्घ्यमाल्योपहाराद्यैर्गन्धैश्च नियतः शुचिः। नियमैरुपवासैश्च तपोभिर्विविधैरपि ॥१३॥
शुश्रूषुरनहंवादी शुचिः पौरवनन्दन। अंशुमन्तं समुद्यन्तं पूजयामास भक्तिमान् ॥१४॥
ततः कृतज्ञं धर्मज्ञं रूपेणासदृशं भुवि। तपत्याः सदृशं मेने सूर्यः संवरणं पतिम् ॥१५॥

गन्धर्व बोला—अच्छी बात है। हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ अर्जुन, वह समस्त कथा ठीक ठीक मैं तुमको सुनाता हूँ। वह कथा बड़ी ही मनोहर है ॥४॥ मैंने तुमको तापत्य शब्द से जो सम्बोधित किया है इसका कारण मैं तुमसे कहूँगा, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥५॥ जो यह आकाश में बर्तमान रहकर अपने मण्डल के तेज से स्वर्गलोक को प्रकाशित करते हैं उन्हीं सूर्य की कन्या तपती थी, उसका भी तेज सूर्यही के समान था ॥६॥ वह तपस्विनी तपती सूर्यदेव की सावित्री से छोटी कन्या थी। वह तीनों लोकों में अपनी तपस्या के कारण प्रसिद्ध थी ॥७॥ उसके समान रूपवती न कोई देवी थी, न आसुरी, न यक्षी, न राक्षसी, न अप्सरा और न गन्धर्वी ही थी ॥८॥ उसके अङ्ग पुष्ट थे, वह सुन्दरी थी, उसकी आंखें काली और विशाल थीं। उसका आचरण शुद्ध था, वह साध्वी थी, सुन्दर वेष में रहती थी ॥९॥ भगवान् सूर्य ने तीनों लोकों में किसी ऐसे पुरुष को उसके योग्य नहीं पाया, जो रूप, शील, गुण और विद्या से उसके पति होने योग्य हो ॥१०॥ कन्या युवती हो गयी; उसका दान करना है। कन्या के ब्याह की बात सोचकर भगवान् सूर्य को शान्ति नहीं मिलती थी, यह कन्या किसको दी जाय इस बात के लिए वे चिन्तित रहा करते थे ॥११॥

हे कौन्तेय, उन्हीं दिनों राजा ऋक्ष का पुत्र कुरुवंश का राजा बलवान् संवरण सूर्य की आराधना करता था ॥१२॥ वह गन्ध धूप नैवेद्य माल्य अर्घ्य दे उदय के समय सूर्यदेव की पूजा करता था। वह जितेन्द्रिय शुद्धता पूर्वक रहता था, नियम उपवास तथा अनेक तरह की तपस्याओं से वह सूर्यदेव की अराधना करता था। अहंकार त्याग करके शुद्धता पूर्वक वह राजा भक्तिपूर्वक सूर्यदेव की पूजा करता था ॥१३,१४॥ सूर्य ने संवरण को धर्मज्ञ कृतज्ञ और पृथिवी में सब से

दातुमैच्छत्ततः कन्यां तस्मै संवरणाय ताम् । नृपोत्तमाय कौरव्य विश्रुताभिजनाय च ॥१६॥
यथा हि दिवि दीप्तांशुः प्रभासयति तेजसा । तथा भुवि महिपालो दीप्त्या संवरणोऽभवत् ॥१७॥
यथाऽर्चयन्ति चादित्यमुद्यन्तं ब्रह्मवादिनः । तथा संवरणं पार्थ ब्राह्मणावरजाः प्रजाः ॥१८॥
स सोममति कान्तत्वादादित्यमतितेजसा । बभूव नृपतिः श्रीमान्सुहृदां दुर्हृदामपि ॥१९॥
एवंगुणस्य नृपतेस्तथावृत्तस्य कौरव । तस्मै दातुं मनश्चक्रे तपतीं तपनः स्वयम् ॥०२॥
स कदाचिदथो राजा श्रीमानमितविक्रमः । चचार मृगयां पार्थ पर्वतोपवने किल ॥२१॥
चरतो मृगयां तस्य क्षुत्पिपासासमन्वितः । ममार राज्ञः कौन्तेय गिरावप्रतिमो हयः ॥२२॥
स मृताश्वश्चरन्पार्थ पद्भ्यामेव गिरौ नृपः । ददर्शासदृशीं लोके कन्यामायतलोचनाम् ॥२३॥
स एक एकामासाद्य कन्यां परबलार्दनः । तस्थौ नृपतिशार्दूलः पश्यन्नविचलेक्षणः ॥२४॥
स हि तां तर्कयामास रूपतो नृपतिः श्रियम् । पुनः संतर्कयामास रवेर्भ्रष्टामिव प्रभाम् ॥२५॥
वपुषा वर्चसा चैव शिखामिव विभावसोः । प्रसन्नत्वेन कान्त्या च चन्द्रेरखामिवामलाम् ॥२६॥
गिरिपृष्ठे तु सा यस्मिन्स्थिता स्वसितलोचना । विभ्राजमाना शुशुभे प्रतिमेव हिरण्मयी ॥२७॥

सुन्दर देखा । उन्होंने उसको तपती के पति बनने के योग्य समझा ॥१५॥ हे कौरव, सूर्यदेव ने संवरण को कन्या देने की इच्छा की, क्योंकि वह श्रेष्ठ राजा था और प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न हुआ था ॥१६॥ प्रदीप्त किरणोंवाले सूर्य जिस प्रकार आकाश में अपने तेज से प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार संवरण भी पृथिवी में अपने तेज से प्रकाशित हुए ॥१७॥ जिस प्रकार उदय के समय ब्रह्मवादी सूर्य की पूजा करते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण से भिन्न अन्य सब वर्णों के लोग राजा संवरण की पूजा किया करते थे ॥१८॥ राजा संवरण अत्यन्त सुन्दर होने के कारण अपने मित्रों को चन्द्रमा से भी अधिक सुखदायी थे और तेज के कारण शत्रुओं को सूर्य से भी अधिक सन्तापकारी थे ॥१९॥ राजा के ऐसे गुण और ऐसे आचरण देखकर ही सूर्यदेव ने अपनी कन्या तपती उन्हें देने का विचार किया ॥२०॥

पार्थ, वे अमित पराक्रमी श्रीमान् राजा एक बार पर्वत के उपवन में शिकार खेलने के लिए गये ऐसा सुना जाता है ॥२१॥ राजा शिकार के लिए उस वन में घूम रहे थे। वहीं उनका घोड़ा भूखा प्यासा होकर और अधिक थक जाने के कारण मर गया ॥२२॥ घोड़ा के मरजाने पर वे राजा पैदल ही उस पर्वत पर भ्रमण करने लगे। वहाँ उन्होंने सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी और विशाल नेत्रा एक कन्या देखी ॥२३॥ शत्रु सेना को पीड़ित करनेवाले राजा वहाँ अकेले थे, वह कन्या भी अकेली थी। राजा एकटक उसको देखने लगे ॥२४॥ राजा ने उस कन्या का सौन्दर्य देखकर उसे लक्ष्मी समझा। पुनः उन्होंने आकाश से उतरी हुई सूर्य की प्रभा समझी ॥२५॥ शरीर की कान्ति और तेज से वह अग्निशिखा के समान थी। प्रसन्नता और कान्ति से वह निर्मल चन्द्रलेखा के समान थी ॥२६॥ जिस पर्वत शिखर पर वह काली आंखवाली कन्या सुवर्ण प्रतिमा के समान शोभित हो रही थी, उसके रूप से और वेष से वह पर्वत उसके वृक्ष पौधे और लताएँ

तस्या रूपेण स गिरिर्वेषेण च विशेषतः । स सवृक्षक्षुपलतो हिरण्मय इवाभवत् ॥२८॥
अवमेने च तां दृष्ट्वा सर्वलोकेषु योषितः । अवाप्तं चात्मनो मेने स राजा चक्षुषः फलम् ॥२९॥
जन्मप्रभृति यत्किंचिद्दृष्टवान्स महीपतिः । रूपं न सदृशं तस्यास्तर्कयामास किंचन ॥३०॥
तया बद्धमनश्चक्षुः पाशैर्गुणमयैस्तदा । न चचाल ततो देशाद् बुबुधे न च किंचन ॥३१॥
अस्या नूनं विशालाक्ष्याः सदेवासुरमानुषम् । लोकं निर्मथ्य धात्रेदं रूपमाविष्कृतं कृतम् ॥३२॥
एवं संतर्कयामास रूपद्रविणसंपदा । कन्यामसदृशीं लोके नृपः संवरणस्तदा ॥३३॥
तां च दृष्ट्वैव कल्याणीं कल्याणाभिजनो नृपः । जगाम मनसा चिन्तां कामबाणेन पीडितः ॥३४॥
दह्यमानः स तीव्रेण नृपतिर्मन्मथाग्निना । अप्रगल्भां प्रगल्भस्तां तदोवाच मनोहराम् ॥३५॥
काऽसि कस्यासि रम्भोरु किमर्थं चेह तिष्ठसि । कथं च निर्जनेऽरण्ये चरस्येका शुचिस्मिते ॥३६॥
त्वं हि सर्वानवद्याङ्गी सर्वाभरणभूषिता । विभूषणमिवैतेषां भूषणानामभीप्सितम् ॥३७॥
न देवीं नासुरीं चैव न यक्षीं न च राक्षसीम् । न च भोगवतीं मन्ये न गन्धर्वीं न मानुषीम् ॥३८॥
या हि दृष्टा मया काश्चिच्छ्रुता वाऽपि वराङ्गना । न तासां सदृशीं मन्ये त्वामहं मत्तकाशिनी ॥३९॥
दृष्ट्वैव चारुवदने चन्द्रात्कान्ततरं तव । वदनं पद्मपत्राक्षं मां मथ्नातीव मन्मथः ॥४०॥

सुवर्णमय मालूम पड़ती थीं ॥२७-२८॥ उस कन्या को देखने के बाद से राजा के मन में समस्त स्त्रियों के प्रति तिरस्कार उत्पन्न हो गया और उसे देखकर उन्होंने अपनी आँखों को कृतार्थ समझा ॥२९॥ जन्म से लेकर आज तक उस राजा ने जो कुछ देखा था, वह सब उसके रूप के समान न था। राजा ने अपनी देखी कोई वस्तु भी उसके समान सुन्दरी नहीं समझी ॥३०॥ राजा का मन और आँखें उस कन्या के गुणरूपी पाश से बँध गये। वे उस स्थान से कहीं इधर उधर हट न सके और क्या करना चाहिए यह भी वे जान न सके ॥३१॥ राजा संवरण अपने मन में इस प्रकार सोचने लगे। विधाता ने तीनों लोकों के सौन्दर्य का सार निकाल कर इस कन्या के रूप का निर्माण किया है ॥३२॥ उस कन्या की रूप सम्पत्ति देखकर राजा अपने मन में इस प्रकार का तर्क करने लगे। उत्तम कुलवाले राजा उस कल्याणी और सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को देखकर कामबाण से पीड़ित हुए और मनही मन चिन्ता करने लगे ॥३३-३४॥ तीव्र कामाग्नि से राजा जलने लगे और वे बोलने में ढीठ राजा उस मनोहर कन्या से इस प्रकार बोले ॥३५॥ रम्भोरु, तुम कौन हो, किसकी कन्या हो, यहां किस कारण निवास करती हो। हे शुचिस्मिते, इस निर्जन वन में किस कारण से घूम रही हो ॥३६॥ तुम सर्वाङ्ग सुन्दरी हो, समस्त आभूषणों से भूषित हो। तुम इन आभूषण के मनचाहे आभूषण हो। अर्थात् तुमसे इन आभूषणों की शोभा है ॥३७॥ देवी, आसुरी, यक्षी, राक्षसी नागस्त्री, गन्धर्वी और मानुषी इनमें कोई भी तुम्हारे समान सुन्दरी नहीं है ॥३८॥ मैंने जितनी सुन्दरियां देखी हैं अथवा जिनकी प्रशंसा सुनी हैं, उन सब को मैं तुम्हारे समान सुन्दरी नहीं समझता ॥३९॥ हे सुन्दरि, चन्द्रमा से भी सुन्दर कमल नेत्रवाला तुम्हारा मुँह देखने के पश्चात् ही यह कामदेव मुझे पीड़ित कर रहा है ॥४०॥ इस प्रकार राजा ने

एवं तां स महीपालो बभाषे न तु सा तदा । कामार्तं निर्जनेऽरण्ये प्रत्यभाषत किंचन ॥४१॥
ततो लालप्यमानस्य पार्थिवस्यायतेक्षणा । सौदामिनीव चाभ्रेषु तत्रैवान्तरधीयत ॥४२॥
तामन्वेष्टुं स नृपतिः परिचक्राम सर्वतः । वनं वनजपत्राक्षीं भ्रमन्नुन्मत्तवत्तदा ॥४३॥
अपश्यमानः स तु तां बहु तत्र विलप्य च । निश्चेष्टः पार्थिवश्रेष्ठो मुहूर्तं स व्यतिष्ठत ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि तपत्युपाख्याने
एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

गन्धर्व उवाच—
अथ तस्यामदृश्यायां नृपतिः काममोहितः । पातनः शत्रुसङ्घानां पपात धरणीतले ॥१॥
तस्मिन्निपतिते भूमावथ सा चारुहासिनी । पुनः पीनायतश्रोणी दर्शयामास तं नृपम् ॥२॥
अथावभाषे कल्याणी वाचा मधुरया नृपम् । तं कुरूणां कुलकरं कामाभिहतचेतसम् ॥३॥
उवाच मधुरं वाक्यं तपती हसतीव सा । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते न त्वमर्हस्यरिन्दम ॥४॥
मोहं नृपतिशार्दूल गन्तुमाविष्कृतः क्षितौ । एवमुक्तोऽथ नृपतिर्वाचा मधुरया तदा ॥५॥

उस कन्या से कहा, पर उसने काम पीड़ित राजा को उस निर्जन वन में कोई उत्तर नहीं दिया ॥४१॥ इस प्रकार की बहुत सी बातें राजा बोलते रहे, उसी समय वह कन्या वहीं अन्तर्धान हो गयी, जिस प्रकार बिजली मेघ में अन्तर्धान हो जाती है, छिप जाती है ॥४२॥ कमलपत्राक्षी उस कन्या को ढूंढने के लिए उस वन में उन्मत्त के समान राजा घूमने लगे ॥४३॥ राजा ने जब उस कन्या को कहीं नहीं पाया, तब वे बहुत विलाप करने लगे, पुनः थोड़ी देर के लिए निश्चेष्ट होकर वे वहीं पड़ गये ॥४४॥

एक सप्तत्यधिक शततम अध्याय ।

जमीन में पड़े हुए राजा के पास तपती का उपस्थित होना । दोनों की बातचीत

गन्धर्व बोला—उस कन्या के अदृश्य होने पर अनेक शत्रुओं को पृथिवी पर गिरानेवाले राजा काम से पीड़ित होकर स्वयं पृथिवी पर गिर पड़े ॥१॥ इस प्रकार राजा के अचेत होकर पृथिवी पर गिर जाने पर उस सुन्दर हंसनेवाली तथा विशाल और मोटे नितम्बवाली कन्या ने राजा के सामने अपने को पुनः प्रकट किया ॥२॥ वह कल्याणी कन्या मधुर वचन के द्वारा कुरुवंश वर्धन काम पीड़ित उस राजा से इस प्रकार बोली ॥३॥ तपती हंसती हुई इस प्रकार मधुर बचन बोली । हे अरिन्दम, उठिए उठिए, आपका कल्याण हो, आपके समान प्रसिद्ध राजा का मोहित होकर पृथिवी पर इस प्रकार गिरना उचित नहीं । राजा से इस प्रकार मधुर वचन जब उसने कहे । उस समय राजा ने अपने सामने उस विशाल नितम्बवाली कन्या

दर्दश विपुलश्रोणीं तामेवाभिमुखे स्थिताम् । अथ तामसितापाङ्गीमाबभाषे स पार्थिवः ॥६॥
मन्मथाग्निपरीतात्मा सन्दिग्धाक्षरया गिरा । साधु त्वमसितापाङ्गि कामार्तं मत्तकाशिनि ॥७॥
भजस्व भजमानं मां प्राणा हि प्रजहन्ति माम् । त्वदर्थं हि विशालाक्षि मामयं निशितैः शरैः ॥८॥
कामः कमलगर्भाभे प्रतिविध्यन्न शाम्यति । दष्टमेवमनाक्रन्दे भद्रे काममहाहिना ॥९॥
सा त्वं पीनायतश्रोणी मामाप्नुहि वरानने । त्वदधीना हि मे प्राणाः किन्नरोद्गीतभाषिणि ॥१०॥
चारुसर्वानवद्याङ्गि पद्मेन्दुप्रतिमानने । न ह्यहं त्वदृते भीरु शक्ष्यामि खलु जीवितुम् ॥११॥
कामः कमलपत्राक्षि प्रतिविध्यति मामयम् । तस्मात्कुरु विशालाक्षि मय्यनुक्रोशमङ्गने ॥१२॥
भक्तं मामसितापाङ्गि न परित्यक्तुमर्हसि । त्वं हि मां प्रीतियोगेन त्रातुमर्हसि भामिनि ॥१३॥
त्वद्दर्शनकृतस्नेहं मनश्चलित मे भृशम् । न त्वां दृष्ट्वा पुनश्चान्यां द्रष्टुं कल्याणि रोचते ॥१४॥
प्रसीद वशगोऽहं ते भक्तं मां भज भामिनि । दृष्ट्वैव त्वां वरारोहे मन्मथो भृशमङ्गने ॥१५॥
अन्तर्गतं विशालाक्षि विध्यति स्म पतत्रिभिः । मन्मथाग्निसमुद्भूतं दाहं कमललोचने ॥१६॥
प्रीतिसंयोगयुक्ताभिरद्भिः प्रह्लादयस्व मे । पुष्पायुधं दुराधर्षं प्रचण्डशरकार्मुकम् ॥१७॥

को देखा और उस काली पलक वाली कन्या से इस प्रकार बोले ॥४,६॥ काम बाण से पीडित वे राजा इस प्रकार अस्पष्ट वचन बोले—हे काली पलक वाली सुन्दरी, मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ तुम मुझे स्वीकार करो, नहीं तो मेरे ये प्राण नहीं रहेंगे। हे विशालाक्षी, कमल गर्भ के समान वर्ण वाली, तुम्हारे कारण यह कामदेव तीखे बाणों से मुझे निरन्तर वेध रहा है, विश्राम नहीं लेता। भद्रे, यह काम रूपी सूर्य मुझे ऐसे समय में डँस रहा है जब कि मेरा कोई रक्षक भी नहीं है। मैं अपनी रक्षा के लिए किसी को बुला भी नहीं सकता। हे विशाल और मोटे नितम्ब-वाली सुन्दरि, तुम मेरी बनो। हे किन्नरों के जान के समान मधुर बोलने वाली, मेरे प्राण तुम्हारे अधीन हैं ॥७,१०॥ हे सर्वाङ्ग सुन्दरि, हे कमल और चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली, हे भीरु, मैं तुम्हारे विना जीवित नहीं रह सकता ॥११॥ हे कमलपत्राक्षि, यह कामदेव मुझे निरन्तर वेध रहा है। अतएव हे विशालाक्षि, तुम मुझ पर कृपा करो ॥१२॥ हे कालीपलकवाली, मैं तुम्हारा भक्त हूँ, तुम्हें मेरा त्याग नहीं करना चाहिए। हे भामिनि, तुम मुझ पर प्रेम करके मेरी रक्षा कर सकती हो, मेरा उद्धार कर सकती हो ॥१३॥ तुम्हें देखने से मेरे मन में तुम्हारे प्रति स्नेह उत्पन्न हो गया है, और मन चञ्चल हो गया है। कल्याणि तुमको देखकर अब किसी दूसरी स्त्री को देखने की इच्छा नहीं होती ॥१४॥ तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ मैं तुम्हारे अधीन हूँ। मैं तुम्हारा भक्त हूँ, भामिनि, तुम मुझे स्वीकार करो। हे सुन्दरी, विशालाक्षि जबसे मैंने तुम्हें देखा है तभी से यह कामदेव मेरे हृदय को बाणों से वेध रहा है। हे कमललोचने, कामाग्नि से जो जलन मेरे मन में उत्पन्न हुई है, तुम उसे अपने प्रेम जल से ठंढी करो और मुझे हर्षित करो। यह दुराधर्ष और प्रचण्ड धनुष बाण वाला कामदेव, जो तुम्हें देखने से उत्पन्न हुआ है, वह मुझे असहनीय बाणों से घायल करता है। हे कल्याणि, तुम आत्मदान करके उस काम को शान्त करो। तुम मेरी वनना

त्वद्दर्शनसमुद्भूतं विध्यन्तं दुःसहै शरैः । उपशामय कल्याणि आत्मदानेन भामिनि ॥१८॥
गान्धर्वेण विवाहेन मामुपेहि वराङ्गने । विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥१९॥
तपत्युवाच—
नाहमीशाऽऽत्मनो राजन्कन्या पितृमती ह्यहम् । मयि चेदस्ति ते प्रीतिर्याचस्व पितरं मम ॥०२॥
यथा हि ते मया प्राणाः संगृहीता नरेश्वर । दर्शनादेवभूयस्त्वं तथा प्राणान्ममाहरः ॥२१॥
न चाहमीशा देहस्य तस्मान्नृपतिसत्तम । समीपं नोपगच्छामि न स्वतन्त्रा हि योषितः ॥२२॥
का हि सर्वेषु लोकेषु विश्रुताभिजनं नृपम् । कन्या नाभिलषेन्नाथं भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥२३॥
तस्मादेवं गते काले याचस्व पितरं मम । आदित्यं प्रणिपातेन तपसा नियमेन च ॥२४॥
स चेत्कामयते दातुं तव मामरिसूदन । भविष्याम्यद्य ते राजन्सततं वशवर्तिनी ॥२५॥
अहं हि तपती नाम सावित्र्यवरजा सुता । अस्य लोकप्रदीपस्य सवितुः क्षत्रियर्षभ ॥२६॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि द्रौपदीसंभवे
तपत्युपाख्याने द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥

स्वीकार करो जिससे काम शान्त हो ॥१५,१८॥ हे श्रेष्ठ सुन्दरि, तुम मुझसे गान्धर्व विवाह करके मेरे पास आओ । मेरी बनो । हे रम्भोरु, गान्धर्व विवाह सब विवाहों में श्रेष्ठ कहा जाता है ॥१९॥

तपती बोली—राजन् ! मेरा अपने पर अधिकार नहीं है । मेरे पिता वर्तमान हैं, मैं कन्या हूँ । यदि तुम्हारा मझ पर प्रेम है तो तुम मेरे पिता से प्रार्थना करो ॥२०॥ हे नरेश्वर, मैंने जैसे आपके प्राण हरण किये हैं, उसी प्रकार आपने भी दर्शन के साथही मेरे प्राण हर लिये हैं ॥२१॥ राजश्रेष्ठ, मैं अपने शरीर की अधिकारिणी नही हूँ । अतएव मैं तुम्हारे पास आ नहीं रही हूँ । स्त्रियाँ तो स्वतन्त्र नहीं होतीं ॥२२॥ तीनों लोकों में कौन ऐसी कन्या है, जो प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न तुम्हारे समान राजा को जो आश्रितों पर प्रेम रखनेवाला है, अपना पति बनाने न चाहेगी ॥२३॥ ऐसी स्थिति में आप मेरे पिता सूर्यदेव की प्रार्थना करें । प्रणिपात तपस्या यथा व्रत आदि के द्वारा उनको प्रसन्न कीजिए ॥२४॥ शत्रुसूदन यदि वे मुझे तुमको देना स्वीकार करलें तब मैं तुम्हारे अधीन हो जाऊँगी । और सदा के लिए ॥२५॥ मेरा नाम तपती है । मैं सावित्री से छोटी हूँ और लोक प्रदीप सूर्य की कन्या हूँ ॥२६॥

द्विसप्तत्यधिक शततम अध्याय ।

गन्धर्व उवाच—

एवमुक्त्वा ततस्तूर्णं जगामोर्ध्वमनिन्दिता । स तु राजा पुनर्भूमौ तत्रैव निपपात ह ॥१॥
अन्वेषमाणः सबलस्तं राजानं नृपोत्तमम् । अमात्यः सानुयात्रश्च तं ददर्श महावने ॥२॥
क्षितौ निपतितं काले शक्रध्वजमिवोच्छ्रितम् । तं हि दृष्ट्वा महेष्वासं निरस्तं पतितं भुवि ॥३॥
बभूव सोऽस्य सचिवः संप्रदीप्त इवाग्निना । त्वरया चोपसङ्गम्य स्नेहादागतसंभ्रमः ॥४॥
तं समुत्थापयामास नृपतिं काममोहितम् । भूतलाद्भूमिपालेशं पितेव पतितं सुतम् ॥५॥
प्रज्ञया वयसा चैव वृद्धः कीर्त्या नयेन च । अमात्यस्तं समुत्थाप्य बभूव विगतज्वरः ॥६॥
उवाच चैनं कल्याण्या वाचा मधुरयोत्थितम् । मा भैर्मनुजशार्दूल भद्रमस्तु तवानघ ॥७॥
क्षुत्पिपासापरिश्रान्तं तर्कयामास वै नृपम् । पतितं पातनं सङ्ख्ये शात्रवाणां महीतले ॥८॥
वारिणा च सुशीतेन शिरस्तस्याभ्यषेचयत् । अस्फुटन्मुकुटं राज्ञः पुण्डरीकसुगन्धिना ॥९॥
ततः प्रत्यागतप्राणस्तद्बलं बलवान्नृपः । सर्वं विसर्जयामास तमेकं सचिवं विना ॥१०॥

तपती का अन्तर्धान होना । राजा का मोहित होना मंत्रियों का राजा के पास आना । वशिष्ट के प्रयत्न से राजा को तपती की प्राप्ति तपती के साथ राजा का पर्वत पर विहार करना । राजा के राज्य में बारह वर्ष की अनावृष्टि । वशिष्ट के प्रयत्न से राजा का राजधानी में लौटना । अनावृष्टिका दूर होना । राजा का बारह वर्ष के लिए यज्ञ करना

गन्धर्व बोला—राजा से इस प्रकार कहकर वह सुन्दरी आकाश में चली गयी और राजा पुनः उसी स्थान पर भूमि में लोट गये ॥१॥ राजा के सचिव सेना तथा साथियों के साथ राजा को ढूंढते ढूंढते वहाँ आये, उन लोगों ने उस महावन में राजा को पड़ा देखा ॥२॥ राजा विशाल इन्द्र ध्वजा के समान पृथिवी में पड़े हुए थे । तपती के छोड़ कर चली जाने पर महा धनुर्धर राजा को उन लोगों ने भूमि पर पड़ा देखा ॥३॥ राजा को इस अवस्था में देखकर आग से जले हुए के समान सचिव की दशा हो गया । स्नेह के कारण वह भयभीत हो गया । वह शीघ्रही दौड़कर राजा के पास पहुंचा ॥४॥ काम मोहित होकर पृथिवी पर पड़े हुए उस राजा को सचिव ने पृथिवी पर से उठाया मानों कोई पिता पुत्र को उठाता हो ॥५॥ बुद्धि, वय कीर्ति और नीति से बड़े वे सचिव राजा को पृथिवी पर से उठाकर शान्त हुए, उनके मन का दुःख मिटा ॥६॥ उठकर बैठे हुए राजा से वे मधुर और मङ्गलमय बचन इस प्रकार बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ, हे निष्पाप, आप निर्भय हो जाँय, आपका कल्याण हो ॥७॥ सचिव ने सोचा कि शत्रुसमूह को पृथिवी पर गिरानेवाले राजा अभीतक स्वयं पृथिवी पर पड़े हुए, अतएव ये अवश्य ही भूखे प्यासे होंगे ॥८॥ शीतल जलसे उन्होंने राजा का सिर धुलवाया । सुगन्धित कमल के पत्तों का बना मुकुट उन्होंने राजा के मस्तक पर रखवाया, जो शीघ्रही फट गया ॥९॥ इस प्रकार उपचार करने से राजा में पुनः बल का संचार हुआ । उन्होंने उस मन्त्री को छोड़कर समस्त सेना तथा साथियों को वहाँ से चलेजाने के लिए कहा ॥१०॥ राजा की आज्ञा से वह बड़ी सेना लौट गयी और वे राजा उस

ततस्तस्याज्ञया राज्ञो विप्रतस्थे महद्बलम् । स तु राजा गिरिप्रस्थे तस्मिन्नुपविवेश ह ॥११॥
ततस्तस्मिन् गिरिवरे शुचिर्भूत्वा कृताञ्जलिः। आरिराधयिषुः सूर्यं तस्थावूर्ध्वमुखःक्षितौ ॥१२॥
जगाम मनसा चैव वसिष्ठमृषिसत्तमम् । पुरोहितममित्रघ्नं तदा संवरणो नृपः ॥१३॥
नक्तन्दिनमथैकत्र स्थिते तस्मिञ्जनाधिपे । अथाजगाम विप्रर्षिस्तदा द्वादशमेऽहनि ॥१४॥
स विदित्वैव नृपतिं तपत्या हृतमानसम् । दिव्येन विधिना ज्ञात्वा भावितात्मा महानृषिः ॥१५॥
तथा तु नियतात्मानं तं नृपं मुनिसत्तमः । आबभाषे स धर्मात्मा तस्यैवार्थचिकीर्षया ॥१६॥
स तस्य मनुजेन्द्रस्य पश्यतो भगवानृषिः । ऊर्ध्वमाचक्रमे द्रष्टुं भास्करं भास्करद्युतिः ॥१७॥
सहस्रांशुं ततो विप्रः कृताञ्जलिरुपस्थितः । वसिष्ठोहमिति प्रीत्या स चात्मानं न्यवेदयत् ॥१८॥
तमुवाच महातेजा विवस्वान्मुनिसत्तमम् । महर्षे स्वागतं तेऽस्तु कथयस्व यथेप्सितम् ॥१९॥
यदिच्छसि महाभाग मत्तः प्रवदतां वर । तत्ते दद्यामभिप्रेतं यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥२०॥
एवमुक्तः स तेनर्षिर्वसिष्ठः संस्तुवन्गिरा । प्रणिपत्य विवस्वन्तं भानुमन्तमथाब्रवीत् ॥२१॥

वसिष्ठ उवाच—

येषा ते तपती नाम सावित्र्यवरजा सुता । तां त्वां संवरणस्यार्थे वरयामि विभावसो ॥२२॥
स हि राजा बृहत्कीर्तिर्धर्मार्थविदुदारधीः । युक्तः संवरणो भर्ता दुहितुस्ते विहङ्गम ॥२३॥

पर्वत के एक शिलापर बैठे ॥११॥ उस पर्वत शिखर पर राजा संवरण पवित्र होकर हाथ जोड़कर सूर्य की आराधना करने को ऊपर की ओर मुँह करके खड़े हुए ॥१२॥ उस समय राजा संवरण ने मनही मन अपने पुरोहित, ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ को स्मरण किया ॥१३॥ अनन्तर, राजा दिन रात एकही जगह बैठे रहे । इस प्रकार राजा के बैठे बैठे जब बारहवाँ दिन बीता तब महर्षि वसिष्ठ वहां आये ॥१४॥ आत्मज्ञानी महर्षि ने अलौकिक उपायों के द्वारा जान लिया कि राजा का मन सूर्य कन्या तपती ने हरण किया है । इस बात को जानकर धर्मात्मा मुनि ने अब तक इस प्रकार अपने को वश में किये हुए राजा से उन्हीं की इष्टसिद्धि के सम्बन्ध में बातचीत की । अर्थात् मुनि ने राजा का काम कर देने की बात कही ॥१५-१६॥ सूर्य के समान दीप्तिमान वे महर्षि राजा के सामने सूर्यदेव से मिलने के लिए ऊपर आकाश में चले ॥१७॥ हाथ जोड़कर वे सूर्य के समीप गये । मैं वसिष्ठ हूँ, ऐसा कहकर उन्होंने प्रेमपूर्वक अपना परिचय दिया ॥१८॥ महातेजस्वी सूर्य उन मुनि श्रेष्ठ से बोले । महर्षि, आपका स्वागत है, आप अपना अभिप्राय कहें ॥१९॥ वक्ताओं में श्रेष्ठ हे महाभाग, आप मुझसे जो चाहते हों वह कहें, मैं आपको दूंगा, यदि उसका देना कठिन भी हो तो भी दूंगा ॥२०॥ सूर्यदेव के ऐसा कहने पर तपस्वी ऋषि वसिष्ठ ने सहस्र किरणधारी सूर्यदेव को प्रणाम करके उन्हें यह उत्तर दिया ॥२१॥

वसिष्ठ बोले—हे सूर्य; तपती नाम की सावित्री से छोटी जो आपकी कन्या है, उसे मैं राजा संवरण के लिए चाहता हूँ ॥२२॥ वह राजा बड़ा कीर्तिमान् धर्म और अर्थ का ज्ञाता है उदार बुद्धि है । आकाशचारिन्, संवरण आपकी कन्या का योग्य पति है ॥२३॥ सूर्यदेव इस

इत्युक्तः स तदा तेन ददानीत्येव निश्चितः। प्रत्यभाषत तं विप्रं प्रतिनन्द्य दिवाकरः ॥२४॥
वरः संवरणो राज्ञां त्वमृषीणां वरो मुने। तपती योषितां श्रेष्ठा किमन्यत्रापवर्जनात् ॥२५॥
ततः सर्वानवद्याङ्गीं तपतीं तपनः स्वयम्। ददौ संवरणस्यार्थे वसिष्ठाय महात्मने ॥२६॥
प्रतिजग्राह तां कन्यां महर्षिस्तपतीं तदा। वसिष्ठोऽथ विसृष्टस्तु पुनरेवाजगाम ह ॥२७॥
यत्र विख्यातकीर्तिः स कुरूणामृषभोऽभवत्। स राजा मन्मथाविष्टस्तद्गतेनान्तरात्मना ॥२८॥
दृष्ट्वा च देवकन्यां तां तपतीं चारुहासिनिम्। वसिष्ठेन सहायान्तीं संहृष्टोऽभ्यधिकं बभौ ॥२९॥
रुरुचे साऽधिकं सुभ्रूरापतन्ती नभस्तलात्। सौदामनीव विभ्रष्टा द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ॥३०॥
कृच्छ्राद्द्वादशरात्रे तु तस्य राज्ञः समाहिते। आजगाम विशुद्धात्मा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥३१॥
तपसाऽऽराध्य वरदं देवं गोपतिमीश्वरम्। लेभे संवरणो भार्यां वसिष्ठस्यैव तेजसा ॥३२॥
ततस्तस्मिन्गिरिश्रेष्ठे देवगन्धर्वसेविते। जग्राह विधिवत्पाणिं तपत्याः स नरर्षभः ॥३३॥
वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञातस्तस्मिन्नेव धराधरे। सोऽकामयत राजर्षिर्विहर्तुं सह भार्यया ॥३४॥
ततः पुरे च राष्ट्रे च वनेषूपवनेषु च। आदिदेश महिपालस्तमेव सचिवं तदा ॥३५॥
नृपतिं त्वभ्यनुज्ञाप्य वसिष्ठोऽथापचक्रमे। सोऽथ राजा गिरौ तस्मिन्विजहारामरो यथा ॥३६॥

सम्बन्ध में पहले ही निश्चय कर चुके थे अतएव मुनि के वचन सुनकर उन्होंने देने की प्रतिज्ञा की। पुनः ऋषि के वचनों की प्रशंसा करके उन्होंने उनसे इस प्रकार कहा ॥२४॥ संवरण राजाओं में श्रेष्ठ है, तुम ऋषियों में श्रेष्ठ हो और तपती स्त्रियों में श्रेष्ठ है। ऐसी स्थिति में उसका दान कर देने से बढ़कर दूसरी बात क्या हो सकती है ॥२५॥ अनन्तर स्वयं सूर्यदेव ने सर्वाङ्ग सुन्दरी तपती को राजा संवरण के लिए महर्षि वसिष्ठ के हाथ में सौंप दिया ॥२६॥ महर्षि वसिष्ठ ने उस तपती नाम की कन्या को ग्रहण किया और सूर्यदेव के विदा देने पर वे वहाँ से लौट आये ॥२७॥ जहां विख्यात कीर्ति कुरुराज कामवश होकर तपती का ध्यान कर रहे थे ॥२८॥ राजा ने देखा कि महर्षि वसिष्ठ के साथ चारुहासिनी वह सुन्दरी देवकन्या तपती आ रही है, इससे राजा बड़े ही प्रसन्न हुए और उनकी शोभा बहुत अधिक बढ़ गयी ॥२९॥ आकाश से उतरती हुई वह सुन्दरी तपती भी बहुत अधिक शोभित होती थी। आकाश से गिरी बिजली के समान वह अपने तेज से दिशाओं को प्रकाशित कर रही थी ॥३०॥ राजा संवरण ने बारह दिनों का व्रत लिया था, उसको उन्होंने बड़े कष्ट से बारहवें दिन पूरा किया और उसी दिन विशुद्धात्मा भगवान् वसिष्ठ उनके पास आये ॥३१॥ भगवान् सूर्यदेव की उस राजा ने आराधना की। पुनः ऋषि वसिष्ठ के प्रभाव से राजा ने स्त्री पायी अर्थात् उन्हें तपती मिली ॥३२॥ अनन्तर उस राजश्रेष्ठ संवरण ने देवता और गन्धर्वों के निवास स्थान उस पर्वत पर विधिपूर्वक तपती का पाणिग्रहण किया ॥३३॥ वसिष्ठ से आज्ञा लेकर राजा ने कुछ दिनों तक उसी पर्वत पर रहकर स्त्री के साथ विहार करने की इच्छा की ॥३४॥ इससे राजा ने नगर, राज्य, वन और उपवन की रक्षा का भार उसी अपने सचिव को सौंपा ॥३५॥ राजा से पूँछकर महर्षि वसिष्ठ अपने आश्रम में लौट आये

ततो द्वादशवर्षाणि काननेषु वनेषु च । रेमे तस्मिन्गिरौ राजा तयैव सह भार्यया ॥३७॥
तस्य राज्ञः पुरे तस्मिन्समा द्वादश सत्तम । न ववर्ष सहस्राक्षो राष्ट्रे चैवास्य भारत ॥३८॥
ततस्तस्यामनावृष्ट्यां प्रवृत्तायामरिन्दम । प्रजाः क्षयमुपाजग्मुः सर्वाः सस्थाणुजङ्गमाः ॥३९॥
तस्मिंस्तथाविधे काले वर्तमाने सुदारुणे । नावश्यायः पपातोर्व्यां ततः सस्यानि नाऽरुहन् ॥४०॥
ततो विभ्रान्तमनसो जनाः क्षुद्भयपीडिताः । गृहाणि संपरित्यज्य बभ्रमुः प्रदिशो दिश ॥४१॥
ततस्तस्मिन्पुरे राष्ट्रे त्यक्तदारपरिग्रहाः । परस्परममर्यादाः क्षुधार्ता जघ्निरे जनाः ॥४२॥
तत्क्षुधार्तैर्निरानन्दैः शवभूतैस्तथा नरैः । अभवत्प्रेतराजस्य पुरं प्रेतैरिवावृतम् ॥४३॥
ततस्तत्तादृशं दृष्ट्वा स एव भगवानृषिः । अभ्याद्रवत धर्मात्मा वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥४४॥
तं च पार्थिवशार्दूलमानयामास तत्पुरम् । तपत्या सहितं राजन्वर्षे द्वादशमे गते ॥
ततः प्रवृष्टस्तत्रासीद्यथापूर्वं सुरारिहा ॥४५॥
तस्मिन्नृपतिशार्दूले प्रविष्टे नगरं पुनः । प्रववर्ष सहस्राक्षः सस्यानि जनयन्प्रभुः ॥४६॥
ततः सराष्ट्रं मुमुदे तत्पुरं परया मुदा । तेन पार्थिवमुख्येन भावितं भावितात्मना ॥४७॥
ततो द्वादशवर्षाणि पुनरीजे नराधिपः । तपत्या सहितः पत्न्या यथा शच्या मरुत्पतिः ॥४८॥

और वे राजा पर्वत पर रहकर देवता के समान विहार करने लगे ॥३६॥ राजा संवरण उस पर्वत पर बारह वर्षों तक रहकर वहाँ के वनों में उस स्त्री के साथ विहार करते रहे ॥३७॥ यज्ञ आदि क्रियाओं का होना बन्द हो गया इससे उनके नगर तथा राज्य में बारहवर्षों तक इन्द्र ने वृष्टि नहीं की ॥३८॥ राजा के राज्य में जब से अनावृष्टि हुई तब से प्रजा का नाश होने लगा, स्थावर और जंगम सभी का नाश होने लगा। जल के बिना वृक्ष आदि सूखने लगे, अन्न के बिना मनुष्य मरने लगे ॥३९॥ उस भयंकर अनावृष्टि के समय आकाश से कुहरा भी नहीं पड़ा अतएव थोड़ा भी अन्न उत्पन्न नहीं हुआ ॥४०॥ अतएव वहाँ के वासी व्याकुल हो गये, वे भूख से पीड़ित हो गये और घरबर छोड़ाकर इधर उधर घूमने लगे ॥४१॥ राजा के नगर और राज्य के वासियों ने अपने स्त्री बाल बच्चे आदि छोड़ दिये। कोई मर्यादा न रह गयी, भूख से पीड़ित होकर लोग एक दूसरे को मारने लगे ॥४२॥ वहाँ के निवासी क्षुधा पीड़ित निराहार मृतक तुल्य हो गये उनके कारण राजा की राजधानी प्रेतों से घिरी यमराज की नगरी के समान हो गयी ॥४३॥ राजा संवरण के राज्य की जब यह दशा महर्षि वसिष्ठ ने देखी, तब मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा वसिष्ठ को उनपर दया आयी ॥४४॥ राजश्रेष्ठ संवरण को मुनि ने राजधानी में बुलाया, जो तपती के साथ बहुत दिनों से बाहर रहते थे। जब राजा अपने नगर में आकर रहने लगे तब इन्द्रदेव ने भी वहां वृष्टि की ॥४५॥ राजश्रेष्ठ संवरण ने जब अपनी राजधानी में प्रवेश किया, उसी समय इन्द्र ने वृष्टि की जिससे अन्न उत्पन्न हुआ ॥४६॥ वृष्टि होने से राजा के राज्य और नगर के वासी बड़े प्रसन्न हुए। निर्मलचित्त राजा के लौट आने से उन लोगों को बहुत अधिक आनन्द हुआ ॥४७॥ इसके अनन्तर राजा ने पुनः

गन्धर्व उवाच—

एवमासीन्महाभागा तपती नाम पौर्विकी। तव वैवस्वती पार्थ तापत्यस्त्वं यया मतः ॥४९॥
तस्यां संजनयामास कुरुं संवरणो नृपः। तपत्यां तपतां श्रेष्ठ तापत्यस्त्वं ततोऽर्जुन ॥५०॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि तपत्युपाख्यानसमाप्तौ
त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३॥

वैशम्पायन उवाच—

स गन्धर्ववचः श्रुत्वा तत्तदा भरतर्षभ। अर्जुनः परया भक्त्या पूर्णचन्द्र इवाबभौ ॥१॥
उवाच च महेष्वासो गन्धर्वं कुरुसत्तमः। जातकौतूहलोऽतीव वसिष्ठस्य तपोबलात् ॥२॥
वसिष्ठ इति तस्यैतदृषेर्नाम त्वयेरितम्। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं यथावत्तद्वदस्व मे ॥३॥
य एष गन्धर्वपते पूर्वेषां नः पुरोहितः। आसीदेतन्ममाचक्ष्व क एष भगवानृषिः ॥४॥

गन्धर्व उवाच—

ब्राह्मणो मानसः पुत्रो वसिष्ठोऽरुन्धतीपतिः। तपसा निर्जितौ शश्वदजेयावमरैरपि ॥५॥
कामक्रोधावुभौ यस्य चरणौ समुवाहतुः। इन्द्रियाणां वशकरो वशिष्ठ इति चोच्यते ॥६॥

बारह वर्षों का यज्ञ करना प्रारम्भ किया। जिस प्रकार इन्द्र अपनी स्त्री शची के साथ यज्ञ करते हैं उसी प्रकार राजा संवरण ने अपनी स्त्री तपती के साथ यज्ञ किया ॥४८॥

गन्धर्व बोला—अर्जुन, यही तपती तुम्हारे कुल में उत्पन्न हुई थी, सूर्य की पुत्री इसी तपती के कारण तुम लोग तापत्य कहे जाते हो ॥४९॥ राजा संवरण ने तपती के गर्भ से कुरु को उत्पन्न किया। हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ अर्जुन, इसी कारण तुम तापत्य कहे जाते हो ॥५०॥

त्रिसप्तत्यधिक शततम अध्याय।

गन्धर्व द्वारा वसिष्ठ का वर्णन। पाण्डवों को पुरोहित वरण करने की आवश्यकता।

वैशम्पायन बोले—हे भरतश्रेष्ठ जनमेजय, गन्धर्व के वचन सुनने से अत्यन्त भक्ति होने के कारण अर्जुन चन्द्रमा के समान शोभित हुए ॥१॥ वसिष्ठ के तपोबल की बात सुनकर उनके मन में बड़ी उत्कण्ठा हो गयी थी। अतएव महाधनुर्धर कुरुश्रेष्ठ अर्जुन उस गन्धर्व से बोले ॥२॥ गन्धर्व, तुमने उन ऋषि का नाम वसिष्ठ बतलाया है। उनके सम्बन्ध की बातें मैं जानना चाहता हूँ; तुम कहो ॥३॥ गन्धर्वराज, तुमने कहा है कि वे हमारे पूर्वजों के पुरोहित थे। तुम मुझे बतलाओ कि वे भगवान् ऋषि कौन थे ॥४॥

गन्धर्व बोला—वे ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं और अरुन्धती के पति हैं। देवताओं के लिए भी अजेय, काम और क्रोध को उन्होंने तपस्या के द्वारा जीता है। ये दोनों मुनि की चरण सेवा करते हैं। उन्होंने इन्द्रियों को वश कर लिया है इस कारण वे वसिष्ठ कहे जाते हैं ॥५,६॥ जिस उदार

यस्तु नोच्छेदनं चक्रे कुशिकानामुदारधीः । विश्वामित्रापराधेन धारयन्मन्युमुत्तमम् ॥७॥
पुत्रव्यसनसंतप्तः शक्तिमानप्यशक्तवत् । विश्वामित्रविनाशाय न चक्रे कर्म दारुणम ॥८॥
मृतांश्च पुनराहर्तुं शक्तः पुत्रान्यमक्षयात् । कृतान्तं नातिचक्राम वेलामिव महोदधिः ॥९॥
यं प्राप्य विजितात्मानं महात्मानं नराधिपः । इक्ष्वाकवो महीपाला लेभिरे पृथिवीमिमाम् ॥१०॥
पुरोहितमिमं प्राप्य वसिष्ठमृषिसत्तमम् । ईजिरे क्रतुभिश्चैव नृपास्ते कुरुनन्दन ॥११॥
स हि तान्याजयामास सर्वान्नृपतिसत्तमान् । ब्रह्मर्षिः पाण्डवश्रेष्ठ बृहस्पतिरिवामरान् ॥१२॥
तस्माद्धर्मप्रधानात्मा वेदधर्मविदीप्सितः । ब्राह्मणो गुणवान्कश्चित्पुरोधाः प्रतिदृश्यताम् ॥१३॥
क्षत्रियेणाभिजातेन पृथिवीं जेतुमिच्छता । पूर्वं पुरोहितः कार्यः पार्थ राज्याभिवृद्धये ॥१४॥
महीं जिगीषता राज्ञा ब्रह्म कार्यं पुरः सरम् । तस्मात्पुरोहितः कश्चिद्गुणवान्विजितेन्द्रियः॥
विद्वान्भवतु वो विप्रो धर्म कामार्थतत्त्ववित् ॥१५॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि पुरोहितकरणकथने
चतुः सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७४॥

बुद्धि वसिष्ठ ने विश्वामित्र के अपराध से अत्यन्त क्रोध करने पर भी कुशिक वंशियों का नाश नहीं किया ॥७॥ उनका पुत्र मारा गया, जिससे उनको बड़ा कष्ट हुआ। इसका बदला लेने की शक्ति रखते हुए भी वे असक्त के समान बैठे रहे; विश्वामित्र के नाश के लिए उन्होंने कोई भयंकर कर्म नहीं किया ॥८॥ वे अपने मरे पुत्रों को यमराज के यहाँ से लौटा ला सकते थे पर उन्होंने यमराज के नियमों को उलटा पलटा करना उचित नहीं समझा, जिस प्रकार समुद्र अपनी मर्यादा तोड़ना उचित नहीं समझता ॥९॥ मनको जीतने वाले जिन महात्मा को पाकर इक्ष्वाकुवंशी राजाओं ने इस समस्त पृथिवी का अधिकार पाया है ॥१०॥ हे कुरुनन्दन, ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ को पुरोहित बना इक्ष्वाकुवंशी राजाओं ने अनेक यज्ञ किये थे ॥११॥ हे पाण्डव श्रेष्ठ, उन ब्रह्मर्षि ने उन श्रेष्ठ राजाओं को यज्ञ कराया था। जिस प्रकार बृहस्पति देवताओं को यज्ञ कराते हैं ॥१२॥ अतएव, हे अर्जुन तुम लोग भी किसी धर्म प्रधान वेदज्ञ धर्मज्ञ और मनोनुकूल गुणवान् ब्राह्मण को पुरोहित बनाने का उद्योग करो। अपने लिए पुरोहित ढूंढो ॥१३॥ हे पार्थ, कुलीन और पृथिवी जीतने की इच्छा रखने वाले क्षत्रिय को सबसे पहले एक योग्य पुरोहित की आवश्यकता होती है, इसीसे उसका राज्य बढ़ता है ॥१४॥ पृथिवी विजय करने वाले राजाओं को आगे ब्राह्मणों को रखना चाहिए, अर्थात् ब्राह्मण से परामर्श कर लेना चाहिए। अतएव कोई गुणवान् जितेन्द्रिय विद्वान् और धर्म अर्थ और काम के तत्वों को जानने वाला एक पुरोहित तुम लोगों को चाहिए ॥१५॥

चतुःसप्तत्यधिक शततम अध्याय।

अर्जुन उवाच—

किंनिमित्तमभूद्वैरं विश्वामित्रवसिष्ठयोः। वसतोराश्रमे दिव्ये शंस नः सर्वमेव तत् ॥१॥

गन्धर्व उवाच—

इदं वासिष्ठमाख्यानं पुराणं परिचक्षते। पार्थ सर्वेषु लोकेषु यथावत्तन्निबोध मे ॥२॥
कान्यकुब्जे महानासीत्पार्थिवो भरतर्षभ। गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्यात्मसंभव ॥३॥
तस्य धर्मात्मनः पुत्रः समृद्धबलवाहनः। विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः ॥४॥
स चचार सहामात्यो मृगयां गहने वने। मृगान्विध्यन्वराहांश्च रम्येषु मरुधन्वसु ॥५॥
व्यायामकर्शितः सोऽथ मृगलिप्सुः पिपासितः। आजगाम नरश्रेष्ठ वसिष्ठस्याश्रमं प्रति ॥६॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः। विश्वामित्रं नरश्रेष्ठं प्रतिजग्राह पूजया ॥७॥
पाद्यार्ध्याचमनीयैस्तं स्वागतेन च भारत। तथैव परिजग्राह वन्येन हविषा तदा ॥८॥
तस्याथ कामधुग्धेनुर्वसिष्ठस्य महात्मनः। उक्ता कामान्प्रयच्छेति सा कामान्दुदुहे ततः ॥९॥
ग्राम्यारण्याँश्चौषधीश्च दुदुहे पय एव च। षड्रसं चामृतनिभं रसायनमनुत्तमम् ॥१०॥

वसिष्ठ की कथा का प्रारम्भ। विश्वामित्र का वशिष्ठ के आश्रम पर जाना। वशिष्ठ के द्वारा विश्वमित्र का अतिथि सत्कार। विश्वामित्र का वशिष्ठ से कामधेनु मांगना, विश्वामित्र का बलपूर्वक कामधेनु को ले जाना। कामधेनु के प्रभाव से विश्वामित्र की हार होना। विश्वामित्र का ब्राह्मण होना।

अर्जुन बोले—विश्वामित्र और वसिष्ठ के परस्पर विरोध होने का कारण क्या है? वे तो दिव्य आश्रम में रहते थे, आप इन सबका वर्णन मुझसे करें ॥१॥

गन्धर्व बोला—वसिष्ठ का यह आख्यान प्राचीन है, यह सब लोकों में प्रसिद्ध है। मैं तुमसे ठीक ठीक उसका वर्णन करता हूँ तुम सुनो ॥२॥ हे भरतश्रेष्ठ, कान्यकुब्ज में कुशिक के पुत्र गाधी नाम से प्रसिद्ध एक बहुत बड़े राजा थे ॥३॥ उस धर्मात्मा के पुत्र विश्वामित्र हुए। इनके पास बड़ी सेना और अनेक बाहन थे। ये शत्रुओं का दमन करने वाले थे ॥४॥ वे अपने मन्त्रियों के साथ सघन वन में शिकार खेलने गये। निर्जल मरु देश में भ्रमण करते हुए राजा ने अनेक मृग और सूअर मारे ॥५॥ मृगा मारने का लोभी वह राजा अधिक परिश्रम के कारण थक गया, उसे प्यास लग आयी। वह राजा महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में आया ॥६॥ पूजनीयों की पूजा करने वाले महर्षि वसिष्ठ ने राजा विश्वामित्र को आश्रम में आया जानकर बड़े आदर से उनका स्वागत किया, उनकी पूजा की ॥७॥ पाद्य अर्घ्य आचमनीय तथा स्वागत के द्वारा उन्होंने राजा का सत्कार किया और जङ्गली फलमूल आदि उन्होंने राजा को अर्पित किये ॥८॥ महात्मा वसिष्ठ के पास एक कामधेनु थी, वसिष्ठ उससे कहते थे अमुक मनोरथ पूर्ण हो और वह उस मनोरथ को पूरा कर देती थी ॥९॥ गांव तथा वन की वस्तु, अनेक प्रकार की ओषधियां, छहो रस, अमृत तुल्य श्रेष्ठ रसायन (जिससे शरीर दिव्य हो जाता है) उस गौ ने

भोजनीयानि पेयानि भक्ष्याणि विविधानि च । लेह्यान्यमृतकल्पानि चोष्याणि च तथार्जुन ॥११॥
रत्नानि च महार्हाणि वासांसि विविधानि च । तैः कामैः सर्वसंपूर्णैः पूजितश्च महीपतिः ॥१२॥
सामात्यः सबलश्चैव तुतोष स भृशं तदा । षडुन्नतां सुपार्श्वोरुं पृथुपञ्चसमावृताम् ॥१३॥
मण्डूकनेत्रां स्वाकारां पीनोधसमनिन्दिताम् । सुवालधिं शङ्कुकर्णां चारुशृङ्गां मनोरमाम् ॥१४॥
पुष्टायतशिरोग्रीवां विस्मितः सोऽभिवीक्ष्य ताम् । अभिनन्द्य स तां राजा नन्दिनीं गाधिनन्दनः ॥१५॥
अब्रवीच्च भृशं तुष्टः स राजा तमृषिं तदा । अर्बुदेन गवां ब्रह्मन्मम राज्येन वा पुनः ॥१६॥
नन्दिनीं संप्रयच्छस्व भुङ्क्ष्व राज्यं महामते ।

वसिष्ठ उवाच— देवतातिथिपित्रर्थं याज्यार्थं च पयस्विनी ॥१७॥
अदेया नन्दिनीयं वै राज्येनापि तवानघ ।

विश्वामित्र उवाच— क्षत्रियोऽहं भवान्विप्रस्तपःस्वाध्यायसाधनः ॥१८॥
ब्राह्मणेषु कुतं वीर्यं प्रशान्तेषु धृतात्मसु । अर्बुदेन गवां यस्त्वं न ददासि ममेप्सितम् ॥१९॥
स्वधर्मं न प्रहास्यामि नेष्यामि च बलेन गाम् ।

वसिष्ठ की आज्ञा से दिये ॥१०॥ भोजन, पान, अनेक प्रकार के भक्ष्य, अमृत के समान लेह्य (चाटने की चीज़ें पायस आदि) और चोष्य उस गौ ने उत्पन्न किये ॥११॥ बड़े मूल्यवान् रत्न तथा अनेक प्रकार के वस्त्र उस गौ ने दिये। इस प्रकार राजा विश्वामित्र के सब मनोरथ गौ के दिये पदार्थों से पूरे हुए ॥१२॥ अपने यात्रियों और सैनिकों के साथ राजा विश्वामित्र बड़े प्रसन्न हुए। उस गौ के मस्तक, गला जंघे सास्ना, पूंछ और थन ऊँचे थे। दोनों बगल बड़े सुन्दर थे, ललाट कान और दोनों आंखे बड़ी थीं। मेढक के समान आंखें उसकी उठी हुई थीं; उसका शरीर सुन्दर और निर्दोष था। उसके थन मोटे थे। उसकी पूंछ सुन्दर थी, कान लम्बे और नुकीले थे, सींग दर्शनीय थीं। सिर और गला पोढे तथा चौड़े थे। उस गौ को देखकर राजा विश्वामित्र बड़े विस्मित हुए। गाधिनन्दन राजा विश्वामित्र ने वसिष्ठ की गौ उस नन्दिनी की प्रशंसा की ॥१३, १५॥ वे राजा प्रसन्न होकर उस ऋषि से इस प्रकार बोले— ब्रह्मन्, एक अरब गौ लेकर अथवा मेरा समस्त राज्य लेकर आप यह नन्दिनी गौ मुझे दे दें और आप राज्य भोग करें।

वसिष्ठ बोले—देवता, अतिथि, पितर और यज्ञकार्य के लिए यह नन्दिनी है। अतएव हे निष्पाप, आप का समस्त राज्य लेकर भी मैं यह आपको नहीं दे सकता।

विश्वामित्र बोले ! मैं क्षत्रिय हूँ और आप तपस्या तथा वेदाध्ययन करनेवाले ब्राह्मण है ॥१६, १८॥ आत्मत्यागी शान्त ब्राह्मणों में पराक्रम कहां से हो सकता है। एक अरब गौ लेकर आप मेरे पसन्द की उत्तम यह गौ मुझे देना नहीं चाहते, तो मैं अपने क्षत्रिय धर्म का त्याग नहीं करूँगा और बलपूर्वक इस गौ को ले जाऊंगा।

वसिष्ठ उवाच— बलस्थश्चासि राजा च बाहुवीर्यश्च क्षत्रियः ॥२०॥
यथेच्छसि तथा क्षिप्रं कुरु मा त्वं विचारय ।
गन्धर्व उवाच— एवमुक्तस्तथा पार्थ विश्वामित्रो बलादिव ॥२१॥
हंसचन्द्रप्रतीकाशां नन्दिनीं तां जहार गाम् । कशादण्डप्रणुदिता काल्यमाना इतस्ततः ॥२२॥
हंभायमाना कल्याणी वसिष्ठस्याथ नन्दिनी । आगाम्याभिमुखी पार्थ तस्थौ भगवदुन्मुखी ॥२३॥
भृशं च ताड्यमाना वै न जगामाश्रमात्ततः ।
वसिष्ठ उवाच— शृणोमि ते रवं भद्रे विनदन्त्याः पुनः पुनः ॥२४॥
ह्रियसे त्वं बलाद्भद्रे विश्वामित्रेण नन्दिनी । किं कर्तव्यं मया तत्र क्षमावान्ब्राह्मणोह्यहम् ॥२५॥
गन्धर्व उवाच—
सा भयान्नन्दिनी तेषां बलानां भरतर्षभ । विश्वामित्रभयोद्विग्ना वसिष्ठं समुपागमत् ॥२६॥
गौरुवाच—
काशाग्रदण्डभिहतां क्रोशन्तीं मामनाथवत् । विश्वामित्रबलैर्घोरैर्भगवन् किमुपेक्षसे ॥२७॥

वसिष्ठ बोले—आप के पास सेना है, आप राजा हैं, भुजाओं में बल रखनेवाले आप क्षत्रिय हैं। जैसा आप चाहते हैं वैसा आप शीघ्र ही कर डालिए, सोच विचार करके विलम्ब मत कीजिए।

गन्धर्वबोला—हे पार्थ, जब वसिष्ठ ने विश्वामित्र से ऐसा कहा, तब हंस और चन्द्रमा के समान श्वेत नन्दिनी को बलपूर्वक लेकर विश्वामित्र चले। उस पर कोडे और डण्डे की मार पड़ने लगी। वह जब भागना चाहती थी तब विश्वामित्र के आदमी उसे चारों ओर से रोकते थे ॥१८, २२॥ वसिष्ठ की गौ नन्दिनी रंभाती हुई आकर वसिष्ठ के सामने खड़ी हो गयी और उनके मुँह की ओर देखने लगी ॥२३॥ विश्वामित्र के आदमियों ने उस गौ को बार बार मारा, पर वह आश्राम से टली नहीं।

वसिष्ठ बोले—भद्रे, बार बार तेरे रंभाने का शब्द मैं सुन रहा हूँ ॥२४॥ भद्रे नन्दिनि, विश्वामित्र बलपूर्वक मुझसे तुम्हे छीनकर लिये जा रहे हैं। इस विषय में मैं क्या कर सकता हूँ। मैं तो क्षमाशील ब्राह्मण हूँ ॥२५॥

गन्धर्व बोला—हे भरत श्रेष्ठ, वह गौ विश्वामित्र के भय से व्याकुल थी। उनके सैनिकों के भय से अत्यन्त भयभीत होकर वसिष्ठ के विलकुल पास वह चली गयी ॥२६॥

गौ बोली—कोड़े और दण्डे से मैं पीटी जा रही हूँ। अनाथ के समान मैं विलाप कर रही हूँ। भगवान्, विश्वामित्र के भयंकर सैनिकों के अत्याचार से आप मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ॥२७॥

गन्धर्व उवाच—

नन्दिन्यामेवं क्रंदंत्यां धर्षितायां महामुनिः । न चुक्षुभे तदा धैर्यान्न चचाल धृतव्रतः ॥२८॥

वसिष्ठ उवाच—

क्षत्रियाणां बलं तेजो ब्राह्मणानां क्षमा बलम् । क्षमा मां भजते यस्माद्गम्यतां यदि रोचते ॥२९॥

नन्दिन्युवाच—

किं नु त्यक्तास्मि भगवन्यदेवं त्वं प्रभाषसे । अत्यक्ताऽहं त्वया ब्रह्मन्नेतुं शक्या नवै बलात् ॥३०॥

वसिष्ठ उवाच—

न त्वां त्यजामि कल्याणि स्थीयतां यदि शक्यते । दृढेन दाम्ना बद्धैष वत्सस्ते ह्रियते बलात् ॥३१॥

गन्धर्व उवाच—

स्थीयतामिति तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्य पयस्विनी । ऊर्ध्वाञ्चितशिरोग्रीवा प्रबभौ रौद्रदर्शना ॥३२॥

क्रोधरक्तेक्षणा सा गौर्हंभारवघनस्वना । विश्वामित्रस्य तत्सैन्यं व्यद्रावयत सर्वशः ॥३३॥

कशाग्रदण्डाभिहता काल्यमाना ततस्ततः । क्रोधरक्तेक्षणा क्रोधं भूय एव समाददे ॥३४॥

आदित्य इव मध्यान्हे क्रोधदीप्तवपुर्बभौ । अङ्गारवर्षं मुञ्चन्ती मुहुर्वालधितो महत् ॥३५॥

गन्धर्व बोला—वसिष्ठने विश्वामित्र के द्वारा नन्दिनी का सताया जाना देखा, उसका विलाप सुना, पर वे क्षुभित नहीं हुए, व्रतधारी मुनि विचलित नहीं हुए ॥२८॥

वसिष्ठबोले—क्षत्रियों का तेज बल है और ब्राह्मणों का बल क्षमा है। मैं क्षमाशील हूँ, इसलिए कुछ कर नहीं सकता। यदि तेरी इच्छा हो तू राजा के साथ जा ॥२९॥

गौ बोली—भगवन्, आप इस प्रकार क्यों बोल रहे हैं, क्या आपने मेरा त्याग कर दिया। भगवन्, यदि आप मेरा त्याग न करें तो जबरदस्ती मुझे यह राजा यहां से नहीं ले जा सकता ॥३०॥

वसिष्ठने कहा—मैं तुम्हारा त्याग नहीं करता। यदि तुम यहां रह सकती हो तो रहो। यह देखो, तुम्हारा बच्छा, मजबूत रस्सी में बाँधकर जबरदस्ती खींचा जा रहा है ॥३१॥

गन्धर्व बोला—वसिष्ठने उस गौ से कहा, तुम यहीं रहो, मुनि के इस वचन को सुनकर गौ ने सिर और गला ऊपर उठाया, उस समय उसका रूप बड़ा ही भयंकर हो गया ॥३२॥ उस समय उसकी आँखें क्रोध से लाल हो गयीं, वह बार बार रंभाने लगी। उसने विश्वामित्र के सैनिकों पर आक्रमण किया जिससे वे चारो ओर भागने लगे ॥३३॥ विश्वामित्र के सैनिक उसे कोडों और डण्डों से मारने लगे और उसे चारो ओर से घेरने लगे। उस समय उस क्रोध रक्ताक्षी गौ ने और अधिक क्रोध किया ॥३४॥ क्रोध से जलती हुई वह गौ मध्यान्ह काल के सूर्य के समान मालूम होने लगी। उस समय उसकी पूंछसे आग की वर्षा होने लगी ॥३५॥ उस गौने उस समय पूंछसे पल्हवों को, थन से द्राविण और शकों को योनि देश यवनों को गोबर से अनेक शवरों को, मूत्र से

असृजत्पह्लवान्पुच्छात्प्रस्रवाद्द्राविडाञ्छकान् । योनिदेशाच्च यवनाञ्शकृतः शबरान्बहून् ॥३६॥
मूत्रतश्चासृजत्कश्चिच्छबरांश्चैव पार्श्वतः । पौण्ड्रान्किरातान्यवनान्सिंहलान्बर्बरान्खसान् ॥३७॥
चिबुकांश्च पुलिन्दांश्च चीनान्हूणान्सकेरलान् । ससर्ज फेनतः सा गौर्म्लेच्छान्बहुविधानपि ॥३८॥
तैर्विसृष्टैर्महासैन्यैर्नानाम्लेच्छगणैस्तदा । नानावरणसंच्छन्नैर्नानायुधधरैस्तथा ॥३९॥
अवाकीर्यत संरब्धैर्विश्वामित्रस्य पश्यतः । एकैकश्च तदा योधा पञ्चभिः सप्तभिर्वृतः ॥४०॥
अस्त्रवर्षेण महता वध्यमानं बलं तदा । प्रभग्नं सर्वतस्त्रस्तं विश्वामित्रस्य पश्यतः ॥४१॥
न च प्राणैर्वियुज्यन्ते केचित्तत्रास्य सैनिकाः । विश्वामित्रस्य संक्रुद्धैर्वासिष्ठैर्भरतर्षभ ॥४२॥
सा गौस्तत्सकलं सैन्यं कालयामास दूरतः । विश्वामित्रस्य तत्सैन्यं काल्यमानं त्रियोजनम् ॥४३॥
क्रोशमानं भयोद्विग्नं त्रातारं नाध्यगच्छत । दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यं ब्राह्मतेजोभवं तदा ॥४४॥
विश्वामित्रः क्षत्रभावान्निर्विण्णो वाक्यमब्रवीत् । धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम् ॥४५॥
बलाबले विनिश्चित्य तप एव परं बलम् । स राज्यं स्फीतमुत्सृज्य तां च दीप्तां नृपश्रियम् ॥४६॥
भोगांश्च पृष्ठतः कृत्वा तपस्येव मनोदधे । स गत्वा तपसा सिद्धिं लोकान्विष्टभ्य तेजसा ॥४७॥

से अन्य कई शवरों को, दोनों बगलों से पौंड, किरात, यवन, सिंहल, वर्वर, खश, चिबुक, पुलिन्द, हूण, और केरलों को तथा अपने फेन से अन्य अनेक म्लेच्छों को उत्पन्न किया ॥३६,३८॥ उस गौ ने यह बहुत बड़ी सेना और म्लेच्छों को उत्पन्न किया । इनके वर्ण अनेक प्रकार के थे, ये अनेक अस्त्र शस्त्र धारण किये हुए थे । क्रोध करके इन लोगों ने विश्वामित्र के सामने ही उनकी सेना को घेर लिया । उनके एक एक सैनिक को पाँच पाँच सात सैनिकों ने घेर लिया ॥३९,४०॥ अस्त्रों की वर्षा से विश्वामित्र की सेना को वशिष्ठमुनि की सेना ने व्याकुल कर दिया । विश्वामित्र के सैनिक डर गये । वे उनके देखते रहने पर भी इधर उधर भागने लगे ॥४१॥ विशवामित्र का कोई सैनिक भी मारा नहीं गया । वशिष्ठ के सैनिकों ने क्रोध करके भी राजा के सैनिकों को प्राण से नहीं मारा ॥४२॥ वह गौ विश्वामित्र की सेना को दूर तक भगा ले गयी । वसिष्ठ के आश्रम से तीन योजन तक उसने राजा की सेना को भगा दिया ॥४३॥ वे सैनिक भय से व्याकुल होकर आर्तनाद करने लगे । उस समय उन लोगों ने अपना कोई रक्षक नहीं देखा ॥४४॥ ब्रह्मतेज का प्रभाव आश्चर्यमय देखकर राजा विश्वामित्र को अपने क्षत्रिय होने का बड़ा दुःख हुआ । वे बहुत ही दुखी होकर बोले—ब्रह्मतेज का जो बल है वही बल है, क्षत्रिय बल को धिक्कार है ॥४५॥ बल कौन है, इस बात का विचार करके राजा विश्वामित्र ने निश्चय किया कि तपस्या का बलही सबसे बड़ा बल है । ऐसा निश्चय करके उन्होंने वह बड़ा राज्य, प्रभावशाली राज्य लक्ष्मी का त्याग कर दिया । भोगों को भुला दिया और तपस्या करने में मन लगाया । उन्होंने तपस्या करके सिद्धि पायी, अपना तेज सब लोकों में फैलाया । वे अपने तेज से सब लोकों को तपाने

ततापं सर्वान्दीप्तौजा ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् । अपिबच्च ततःसोममिन्द्रेण सह कौशिकः ॥४८॥

इति श्री महाभारते आदिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि वासिष्ठे विश्वामित्रपराभवे
पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

—०—

गन्धर्व उवाच—

कल्माषापाद इत्येवं लोके राजा बभूव ह । इक्ष्वाकुवंशजः पार्थ तेजसाऽसदृशो भुवि ॥१॥
स कदाचिद्वनं राजा मृगयां निर्ययौ पुरात् । मृगान्विध्यन्वराहांश्च चचार रिपुमर्दनः ॥२॥
तस्मिन्वने महाघोरे खड्गांश्च बहुशोऽहनत् । हत्वा च सुचिरं श्रान्तो राजा निववृते ततः ॥३॥
अकामयत्तं याज्यार्थे विश्वामित्रः प्रतापवान । स तु राजा महात्मानं वासिष्ठमृषिसत्तमम् ॥४॥
तृषार्तश्च क्षुधार्तश्च एकायनगतः पथि । अपश्यदजितः सङ्ख्ये मुनिं प्रतिमुखागतम् ॥५॥
शक्तिं नाम महाभागं वसिष्ठकुलवर्धनम् । ज्येष्ठं पुत्रं पुत्रशताद्वसिष्ठस्य महात्मनः ॥६॥
अपगच्छ पथोऽस्माकमित्येवं पार्थिवोऽब्रवीत् । तथा ऋषिरुवाचैनं सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥७॥
मम पन्था महाराज धर्म एष सनातनः । राज्ञा सर्वेषु धर्मेषु देयः पन्था द्विजातये ॥८॥
एवं परस्परं तौ तु पथोऽर्थं वाक्यमूचतुः । अपसर्पापसर्पेति वागुत्तरमकुर्वताम् ॥९॥

लगे । अन्त में वे ब्राह्मण बन गये । कौशिक विश्वामित्र ने इन्द्र के साथ सोम पान किया ॥४६,४८॥
पंच सप्तत्यधिक शततम अध्याय ।

राजा कल्माषपाद की कथा । वसिष्ठ पुत्र शक्ति का शाप देना । राजा को एक अन्य ब्राह्मण का शाप ।
राक्षस राजा का वशिष्ठ के पुत्रों को खा जाना । प्राणत्याग के लिए वसिष्ठ का उद्योग ।

गन्धर्व बोला—पार्थ, कल्माषपाद नामके इक्ष्वाकुवंशी एक राजा हुए थे । उनके समान तेजस्वी उस समय पृथिवी में दूसरा न था ॥१॥ एक समय वे राजा शिकार करने के लिए नगर से बन में गये । मृगा और सूअरों को मारते हुए वे वन में विचरण करने लगे ॥२॥ उस जगह वन में राजा ने अनेक गेंडे मारे । इस प्रकार बहुत से पशुओं को मारने के कारण राजा बहुत थक गये और उन्होंने शिकार करना बन्द कर दिया ॥३॥ इसी राजा को प्रतापी विश्वामित्र ने अपना यजमान बनाना चाहा था, पर राजा, ऋषिश्रेष्ठ महात्मा वसिष्ठ को पुरोहित बनाना चाहता था ॥४॥ वह युद्ध विजयी राजा भूखा और प्यासा था, वह एक पतले मार्ग से जा रहा था। उसने सामने से आते एक मुनि को देखा ॥५॥ वे महाभाग वसिष्ठ के पुत्र शक्ति थे। वे वसिष्ठ के सौ पुत्रों में से सबसे बड़े थे ॥६॥ राजा ने उन ऋषि से कहा कि मेरा मार्ग छोड़कर तुम हट जाओ। ऋषि मधुर बचनों से समझाते हुए राजा से बोले ॥७॥ राजन् यह मेरा मार्ग है । श्रोत्रिय के लिए मार्ग देने का विधान है । यही सनातन धर्म है । राजा को चाहिए कि वह ब्राह्मणों के लिए मार्ग छोड़ दे ॥८॥ इस प्रकार वे दोनों मार्ग के लिए परस्पर झगड़ने लगे । दोनों कहने लगे, हट

ऋषिस्तु नापचक्राम तस्मिन्धर्मपथे स्थितः । नापि राजा मुनेर्मार्गात्क्रोधान्नापजगाम ह ॥१०॥
अमुञ्चन्तं तु पन्थानं तमृषिं नृपसत्तमः । जगाम कशया मोहात्तदा राक्षसवन्मुनिम् ॥११॥
कशाप्रहाराभिहतस्ततः स मुनिसत्तमः । तं शशाप नृपश्रेष्ठं वासिष्ठः क्रोधमूर्च्छितः ॥१२॥
हंसि राक्षसवत्तस्माद्राजापसद तापसम् । तस्मात्त्वमद्य प्रभृति पुरुषादो भविष्यति ॥१३॥
मनुष्यपिशिते सक्तश्चरिष्यसि महीमिमाम् । गच्छ राजाधमेत्युक्तः शक्तिना वीर्यशक्तिना ॥१४॥
ततो याज्यनिमित्तं तु विश्वामित्रवसिष्ठयोः । वैरमासीत्तदा तं तु विश्वामित्रोऽन्वपद्यत ॥१५॥
तयोर्विवदतोरेवं समीपमुपचक्रमे । ऋषिरुग्रतपाः पार्थ विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥१६॥
ततः स बुबुधे पश्चात्तमृषिं नृपसत्तमः । ऋषेः पुत्रं वसिष्ठस्य वसिष्ठमिव तेजसा ॥१७॥
अन्तर्धाय ततोऽत्मानं विश्वामित्रोऽपि भारत । तावुभावतिचक्राम चिकीर्षन्नात्मनःप्रियम् ॥१८॥
स तु शप्तस्तदा तेन शक्तिना वै नृपोत्तमः । जगाम शरणं शक्तिं प्रसादयितुमर्हयन् ॥१९॥
तस्य भावं विदित्वा स नृपतेः कुरुसत्तम । विश्वामित्रस्ततो रक्ष आदिदेश नृपं प्रति ॥२०॥
शापात्तस्य तु विप्रर्षेर्विश्वामित्रस्य चाज्ञया । राक्षसः किङ्करो नाम विवेश नृपतिं तदा ॥२१॥

जाओ, हटजाओ ॥९॥ ऋषि मार्ग से नहीं हटे, क्योंकि वे धर्मपर स्थित थे। धर्मानुसार उनको मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए था। अपने सम्मान के खयाल से तथा क्रोध से राजा भी उस मार्ग से नहीं हटे ॥१०॥ जब मुनि ने मार्ग नहीं छोड़ा, तब उस राजा ने राक्षस के समान मुनि को कोडे से मारा, क्योंकि वह ज्ञान खोचुका था ॥११॥ कोडा लगने पर वसिष्ठ के पुत्र उन मुनि को बड़ा क्रोध आया, उन्होंने उस राक्षस को शाप दिया ॥१२॥ अरे नृपाधम, तू राक्षस के समान तपस्वी को मारता है, अतएव तू मनुष्य खानेवाला राक्षस बन जा ॥१३॥ तू मनुष्य का मांस खाता हुआ समस्त पृथिवी पर विचरण करेगा। शक्तिशाली शक्ति ने इसप्रकार शाप देकर राजा का मार्ग छोड़ दिया। उन्होंने कहा, जा, राजाधम निकल जा ॥१४॥

इस राजा को यजमान बनाने के विषय में विश्वामित्र और वसिष्ठ का विरोध पहले ही से था। इस अवसर पर विश्वामित्र उस राजा के पास गये ॥१५॥ शक्ति और राजा का जब परस्पर विवाद हो रहा था, उस समय तपस्वी प्रतापी विश्वामित्र उनके पास गये ॥१६॥ राजा कल्माषपाद को पीछे से शक्ति का परिचय मिला। उन्हें मालूम हुआ कि ये वसिष्ठ के समान तेजस्वी मुनि वसिष्ठ के पुत्र हैं ॥१७॥ जब विश्वामित्र ने इन दोनों को देखा तब वे छिपकर आगे चले गये क्योंकि वे इस अवसर से लाभ उठाना चाहते थे, वे अपना प्रिय मनोरथ पूरा करना चाहते थे ॥१८॥ शक्ति ने जब उस राजा को शाप दिया, जब उसे उनका परिचय मिला, तब वह उनकी शरण गया और वह विनय करके शक्ति को प्रसन्न करने लगा ॥१९॥ हे कुरुश्रेष्ठ, राजा का यह अभिप्राय विश्वामित्र को मालूम होगया और उन्होंने राक्षस को राजा के शरीर में प्रवेश करने की आज्ञा दी ॥२०॥ महर्षि शक्ति के शाप से और विश्वामित्र की आज्ञा से किंकर नामक राक्षस ने राजा के शरीर में प्रवेश किया ॥२१॥ जब मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्र को मालूम हो गया कि